[illegible]

[illegible]

D[illegible]

With [illegible] to [illegible] letter dated [illegible] I [illegible] herewith [illegible] from the Go[illegible]

Yours faithfully
(Sd.)
For Secretary to the
Governor.

GOVERNOR'S CAMP,
UTTAR PRADESH.
June 7, 1962.

Ayurveda is a science of life and it has yet a great contribution to make to the world culture and knowledge. Ayurveda implies Shuddha Ayurveda. The Government of India have now accepted the same. State Governments have yet to make up their minds soon, not only to adopt the system, but also to give full and honest operation for the operation of the system. The difficulties for the future of Ayurveda arise, not from the Government, but from its advisers. During British Raj and some time thereafter, the advisers of the Union and State Goveraments for promotion of Ayurveda were allopathic experts, most of whom regarded this as a quackery. The present advisers are those who have been brought up in the hybrid system called the integrated system, in which the knowledge of Ayurveda represents a very small fraction. In the result, Ayurveda still has to look to the patronage of the people.

Truth sometimes is unpleasant. A good few of the modern village vaidyas are equally enemies of Ayurveda. They profess as Kavirajas, but go on treating, in their own way, propagating quackery or using allopathic medicines in their treatment. In very many places, they fail to administer the easiest and best Ayurvedic prescriptions available. They even take to injections without necessary knowlege nor training. Let me hope that the system will be saved from these two classes of friends and be allowed to grow, contributing its best to human prosperity.

(Biswanath Das)
Governor U. P.

आपका पत्र मिला । आपकी [illegible] में विशेषांक के लिए निम्नलिखित सन्देश भेज रहा हूँ ।

३० वर्ष बाद पीढ़ियाँ बदलती रहती [illegible] । धन्वन्तरि के प्रथम प्रकाशन को लगभग उतना ही समय हो गया । आज भी जिस शान से 'धन्वन्तरि' सेवा कर रहा है वह आयुर्वेद जगत में सर्व विदित है । कहने के [illegible] नहीं होता किन्तु 'धन्वन्तरि' की [illegible] का प्रारम्भ [illegible] से हुआ—जिस पर पुरानी पीढ़ियाँ [illegible] ।

धन्वन्तरि के प्रकाशन से जहाँ चिकित्सकों को लाभ पहुँचा है वहाँ उनकी संख्या से कहीं अधिक पाठक लाभान्वित हुये हैं, वैद्यों और हकीमों की जानकारी बढ़ी, नये अनुभूत योग मिले, शास्त्रीय चर्चा से अवगत हुये, आधुनिक अन्वेषण और वैज्ञानिक खोजों को समझने में सुगमता हुई और आये दिन की कठिन समस्याओं का हल करने में मदद मिली ।

वहाँ जनसाधारण को सुगम, सुलभ योगों से घर बैठे विश्वास के साथ प्रयोग कर समय और धन की बचत हुई और वे भी अनेक अनुभूतियों से पीढ़ियों तक लाभ उठाते रहेंगे ।

'धन्वन्तरि' के विशेषांक धन्वन्तरि की विशेषता रही है । इस बार 'प्राकृतिक चिकित्सांक' के रूप में निकलने वाला विशेषांक देश विदेश के अनेक गण्यमान विद्वानों के, मानव और प्रकृति के पारस्परिक अध्ययन की चुनी हुई अनुभूतियों का संग्रहणीय संकलन का संभाल कर रखने योग्य अंक होगा ।

मानव बहुत कुछ प्रकृति के आधीन,प्रकृति के ज्ञात अज्ञात प्रभाव से प्रभावित होता रहता है । यदि कहा जाय कि मानव प्रकृति की देन है तो अत्युक्ति न होगी । प्रकृति अपनी रचना की स्वयं रक्षा करती है अनेकों रोग प्रकृति की प्राकृतिक प्रक्रिया से स्वयं अच्छे होते रहते है । यदि इस रहस्य को जानकर प्रयोग किया जाय तो उसे प्राकृतिक चिकित्सा की संज्ञा दी जायगी ।

बडे विद्वान्, मनीषी, तत्ववेत्ता, दर्शन शास्त्री प्राकृतिक चिकित्सा के समर्थक रहे है । स्वर्गीय पूज्य महात्मा गांधी प्राकृतिक चिकित्सा पर बडा विश्वास रखते थे । उन्होंने स्वयं अनेक, अपने पर प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग किये । औषधि से उत्पन्न होने वाले अनेक विकारों से बचकर उपचार के प्राकृतिक प्रयोगों का समर्थन किया । पूज्य विनोवा जी आज भी इस सुगम पद्धति को पसन्द करते है । यह अति आवश्यक था कि प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के निचोड को और अगणित अनुभूतियों को एक जगह संग्रह किया जाय जो सर्व साधारण को सुलभ हो ।

धन्वन्तरि का यह विशेषांक पठनीय और संग्रहणीय होगा ऐसा मेरा विश्वास है ।

(दरवारी लाल शर्मा)
(सभापति विधान परिषद् उत्तर प्रदेश)

श्री मुकुन्दीलाल द्विवेदी डी०आई०एम०एस० आयुर्वेदाचार्य,
आयुर्वेदिक एवं यूनानी सेवा निदेशक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि धन्वन्तरि का १९६६ का विशेषांक 'प्राकृतिक
प्रकाशित होने जा रहा है । धन्वन्तरि के प्रायः सभी विशेषांक संग्रहणीय एवं उपादेय सि
यह विशेषांक भी धन्वन्तरि की पूर्व परम्पराओं के अनुसार ही उपादेय तथा लोकोपयोगी
लिए मेरी शुभ कामनाएं ।

[illegible]

[illegible]

उपर्युक्त पू० [illegible] के विचार को ध्यान मे रखते हुए आपका 'प्राकृतिक-चिकित्साक' निकलेगा ऐसी आशा रखता हू, और ऐसे चिकित्साक के लिये मै अपनी शुभकामनाये भेजता हू।

—बालकोबा भावे

प्राकृतिक चिकित्सक एस० जे० सिंह एम०ए०, बी० एस्-सी०, एन०डी०(लन्दन),एफ०एन०एफ०यू० (लन्
आचार्य, भारतीय प्राकृतिक विद्यापीठ, कलकत्ता
पो० विष्णुपुर (२४ परगना)

मुझे यह जान कर बहुत प्रसन्नता हुई है कि "धन्वन्तरि" आगामी विशेषाक प्राकृतिक चिकित्सा पर निकलने जा रहा है और यह भी हर्ष की बात है कि इसका सम्पादन प्राकृतिक चिकित्सा के सुवि लेखक श्री गंगाप्रसाद जी गौड़ 'नाहर' करने जा रहे है। 'धन्वन्तरि' के वि पाको से जनता भली प्रकार परिचित है और इसलिए यह अनुमान इसका प्राकृतिक चिकित्सा विशेषाक अनुपम और अद्वितीय होना एक रण बात है और इस पर 'नाहर' जी द्वारा सम्पादन से और चार लगने की आशा की जाती है। इस कार्य की सफलता के लिए मै हार्दि कामनाएं भेजता हू।

डा० एस० जे० सिंह

श्री महावीर प्रसाद जी पोद्दार
सञ्चालक, प्राकृतिक, चिकित्सा केन्द्र, जसीडीह, संथाल परगना बिहार

प्रिय 'नाहर' जी,

कृपा कार्ड मिला। 'धन्वन्तरि' के आगामी विशेपाक 'प्राकृतिक चिकित्साक' के आप द्वारा सम्पादन के मे मालूम हुआ। मेरी शुभ कामनाए। अपना चित्र और नाम छपवाने का शौक नही है अन्दर। लाभ भी है? सिर्फ 'अहं' की वृद्धि होती है।

महावीर प्रसाद पोद्दार

धर्मचन्द सरावगी एम० एल० सी०
न मन्त्री, अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद ८/१ एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता–१

प्रिय बन्धु,

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप 'धन्वन्तरि' का प्राकृतिक चिकित्सा अंक निकालने का भारसभाल लिया है। भगवान आपको इस कार्य मे सफलता दे। धन्वन्तरि सुन्दर विशेषांक निकालने के लिए प्रयत्न है। भारतवर्ष मे केवल दो ही ऐसे मासिकपत्र हैं जो काफी मेहनत करके विशेषांक निकालते है, एक कल्याण और दूसरा धन्वन्तरि। धन्वन्तरि ने प्राकृतिक चिकित्सा का विशेषांक निकालने का निश्चय किया यह एक शोभनीय बात है।

प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार दुनिया मे तो हो ही रहा है परन्तु भारतवर्ष मे हो रहा है यह एक शुभ लक्षण जनता जनार्दन के लिए और देश के लिए भी है क्योकि विशेषज्ञो से जब बात होती है तो वे कहते है कि भारतवर्ष जैसे गरीब देश के लिए एलोपैथी के अस्पताल हजारो बनने के बाद हम जनता के स्वास्थ्य की देख-भाल नही कर सकेगे। इन हजारो अस्पतालो के बनाने मे अरबो रुपये लगेंगे और पचासो साल समय भी लगेगा। इसके बनिस्बत हम सब लोगो को प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा स्वास्थ्य के प्रति सजग बनावे तो यह मसला बडे सस्ते मे हल हो सकेगा। धन्वन्तरि के शुभ के लिए मेरी शुभ कामना है।

— धर्मचन्द सरावगी

राधाकृष्ण नेवटिया उपसभापति अ० भा० प्रा० चि० परिषद तथा
, भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा विद्यापीठ, १८५, महात्मागाधी रोड, कलकत्ता–७

यह ज्ञात कर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि 'धन्वन्तरि' का १९६६ क प्राकृतिक चिकित्साक के रूप मे प्रकाशित होने जा रहा है। यह कर और भी प्रसन्नता हुई कि 'प्राकृतिक जीवन' के सम्पादक और क चिकित्सा सम्बन्धी अनेक पुस्तको के लेखक श्री गगाप्रसाद जी ' इस विशेषाक का सम्पादन कर रहे है। श्री 'नाहर' जी के सम्पा- मे 'स्वस्थ जीवन' कलकत्ता का प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास विशे- प्रकाशित हुआ था, जो एक अमूल्य साहित्य है। मुझे पूर्ण विश्वास है न्वन्तरि का यह विशेषाक भी प्राकृतिक चिकित्सा के साहित्य मे एक म दैन होगी।

धन्वन्तरि के प्रकाशको के प्रति भी मै अपनी शुभाकाक्षा प्रकट करना कर्तव्य समझता हू, जिन्होने इस प्राकृतिक चिकित्साक के प्रस्तुत करने ोजना बनाई। मेरी धारणा है कि आज ससार मे प्रचलित चिकित्सा यो मे आयुर्वेदिक पद्धति ही प्राकृतिक चिकित्सा के सर्वाधिक निकट है और इस विशेषाक द्वारा हमारे देश मे दज्ञ प्राकृतिक चिकित्सा से अव गत होकर जनता जनार्द्दन की अधिकाधिक सेवा मे समर्थ होगे।

इस उपयोगी विशेषाक की सफलता के लिए मैं हृदय से कामना करता हू।

सत्व चिकित्सक कुलरंजन मुखर्जी
नेचर क्योर इन्स्टीट्यूट [illegible]
[illegible] कलकत्ता–२६

प्रिय डा० साहब जी

आप धन्वन्तरि के प्राकृतिक चिकित्सा-विशेषांक का विशाल आयोजन कर रहे हैं जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। बधाई। इस विशेषांक [illegible]।

धन्वन्तरि [illegible] निरन्तर है। मैं प्राकृतिक चिकित्सक [illegible] विशेषांक निकाल [illegible] हमेशा सुन्दर होते हैं। [illegible] सम्पादकत्व में निकल [illegible] 'प्राकृतिक चिकित्सांक' [illegible] जनसाधारण [illegible] लाभ उठायेंगे।

—कुलरंजन मुखर्जी

सत्वचिकित्सक हीरालाल गौड़
सञ्चालक प्राकृतिक चिकित्सालय, मल्हारगंज, इन्दौर

श्रद्धेय श्री गौड़ जी, सविनय प्रणाम।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके सम्पादकत्व में धन्वन्तरि का प्राकृतिक चिकित्सा विशेषांक निकल रहा है।

प्राकृतिक चिकित्सा-जगत, विशेषकर आपके लिए गौरव का विषय है कि एक उच्च कोटि की आयुर्वेदिक पत्रिका एक प्राकृतिक चिकित्सक के (आपके) सम्पादकत्व मे विशाल विशेषांक 'प्राकृतिक चिकित्सांक' निकालने जा रही है। और इससे अधिक 'धन्वन्तरि' के लिये अति गौरव का विषय है कि उसे आप जैसे अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक तथा सुयोग्य सम्पादक का मार्गदर्शन प्राप्त हो रहा है।

मैं धन्वन्तरि एवं आपको इस प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह अंक प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद के बीच समन्वय का कार्य करेगा, और यह सर्व साधारण द्वारा अपनाया जाकर इस गरीब देश को ही नहीं, बल्कि 'धन्वन्तरि'–परिवार को भी दवाओं के चंगुल एवं दवा-भक्ति से मुक्ति दिलायेगा। —हीरालाल

सत्वचिकित्सक एम० एम० भामगरा, एम० एस० एफ० (इंग्लैण्ड), एम० एस-सी (इंग्लैण्ड)
१६, भारत महाल, ८६ मेरीनड्राइव, बम्बई–२

Dear Ganga prasad ji Gour Nahar

All best wishes for the 'Nature Cure' special number of 'Dhanwant

[illegible] उनका पालन [illegible]

[illegible] परिपुष्ट होगा और [illegible] को लाभ पहुंचेगा।

[illegible] और हमारी सुख की [illegible]। संसार मे प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ और सुखी रहना चाहता है, पर वह जानता नही कि उसे किस प्रकार से जीवन-यापन करना चाहिये, जिससे उसकी यह अभिलाषा पूर्ण हो सके। प्राकृतिक चिकित्सा बताती है कि हमारा शरीर किस प्रकार रोग मुक्त रह सकता है। इतना ही नहीं, वह यह भी बताती है कि यदि शरीर मे कोई रोग हो जाय तो उसके उपचार के लिए किसी डाक्टर के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। वह घर बैठे ही [illegible] अपना इलाज स्वयं कर सकता है। एक चिकित्सक ने अपने यहां एक वाक्य लिखकर टंगवा रखा था—'आई ट्रीट' ही क्योर्स' अर्थात् 'इलाज तो मैं करता हूं, पर लाभ प्रकृति पहुंचाती है।' यह बात सोलह आने सही है। वस्तुत रोगो का मूल कारण विजातीय द्रव्य है जो शरीर मे एकत्र हो जाते है और जिन्हे प्रकृति बाहर निकालने का लगातार प्रयत्न करती है। यदि हम प्रकृति की सहायता करे तो गम्भीर से गम्भीर व्याधि से भी सहज ही छुट्टी पाई जा सकती है।

हमारा देश बड़ा निर्धन है। वह ऐलोपथी के भारी बोझ को सहन नही कर सकता। जो विवशता से वह सहन करता है, पर एक कठिनाई को दूर करने के प्रयत्न मे दूसरी कठिनाई को आमन्त्रित कर लेता है। इस तरह आपत्तियो का दूषित चक्र चलता रहता है, जिनमे धन और स्वास्थ्य, दोनो की हानि होती है।

आज डाक्टर भी अनुभव करने लगे है कि दवा जितनी कम दी जाय उतनी कम देनी चाहिए, पर उनका विश्वास इस बात पर अभी नही जमा है कि रोग–निवारण मे प्रकृति से बढकर और कोई दवा नही है।

प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ है, प्राकृतिक रहन-सहन और कठिनाई मे प्रकृति पर भरोसा।

मै आशा करता हूं कि 'धन्वन्तरि' का विशेषांक इस दिशा मे विशेष सहायक होगा।

मै एक बार पुन उसकी सफलता की कामना करता हूं।

— [illegible]

कवि० श्री विश्वनाथ द्विवेदी, आयुर्वेदशास्त्राचार्य, बी०ए०, आयुर्वेदबृहस्पति, शास्त्री, प्राध्यापक आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर-शिक्षण केन्द्र जामनगर।

आपका पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप 'प्राकृतिक चिकित्साङ्क' निकालने जा रहे हैं। 'धन्वन्तरि' के विशेषाक सदा सुरुचिपूर्ण होते हैं। अतः आशा है कि आपका यह विशेषाङ्क भी जन-मानस के अनुकूल और जनता के व्याधि परिमोक्ष मे उपयोगी सिद्ध होगा।

—विश्वनाथ द्विवेदी

श्री वैद्य प० अम्बालाल जोशी, आयुर्वेद केशरी, साहित्यायुर्वेद रत्न, अध्यक्ष श्री मोहनायुर्वेदिक औषधालय (पुगलपाड़ा) मकराना मोहल्ला, जोधपुर।

मुझे यह कहते प्रसन्नता है कि धन्वन्तरि, आयुर्वेद के प्रति अपने कर्तव्य को भली प्रकार समझता है। इसके सभी विशेषाङ्क आयुर्वेद की माला मे अमूल्य मणि के रूप मे जुडते गये है।

प्राकृतिक चिकित्सा निश्चय ही आयुर्वेद का एक अग है। इसका परिवर्द्धन तथा विकास आयुर्वेद के ही एक अग का विकास होगा। वैद्यो को अपने ही इस विकसित अ ग को समझने मे आपके इस अ क से सहायता मिलेगी ऐसा विश्वास किया जा सकता है। धन्वन्तरि अपने विशेषाको की गौरवशाली परम्परा को इस बार भी बडी शान से निबाह सकेगा ऐसी आशा है।

आपकी सम्पादन योग्यता, सुयोग्य लेखको का सहयोग, विषय की मौलिकता तथा धन्वन्तरि की प्रतिष्ठा मिलकर इस विशेषाक को मणिकाचन के रूप मे सुशोभित करेगा।

मेरी शुभ कामनाये सदैव ही धन्वन्तरि तथा आपके साथ रही है।

——अम्बालाल जोशी

आयुर्वेदाचार्य श्री मदनगोपाल वैद्य, ए० एम० एस०
संचालक-आरोग्य धाम, फैजाबाद

यह बड़े गौरव की बात है कि 'धन्वन्तरि' पिछले ४० वर्षों से अपने विशेषाको द्वारा आयुर्वेद समाज की स सेवा कर रहा है। आगामी वर्ष का विशेषाक प्राकृतिक चिकित्साक–सचित्र बड़ा महत्वपूर्ण व उपयोगी विशेषाक गा जिससे चिकित्सक तथा साधारण जनता दोनो ही लाभ उठा सकेंगे। उसके आयोजको का प्रयत्न सर्वथा य है। मैं उसके सफल प्रकाशन की कामना करता हू।

——मद गो

डा० प्रभाकर चटर्जी, [illegible], डा० [illegible],
एम० आर० ए० एस (लन्दन)
आयुर्वेद [illegible], [illegible], [illegible], आदि,
१०२, [illegible] स्ट्रीट, कलकत्ता–१२

प्रिय महाशय,

आपका पत्र मिला। पढ़कर बहुत खुश हुआ। आप जो विशेषांक निकालते है, सब अच्छे ही होते है। आप आयुर्वेद जगत के लिये महान कार्य कर रहे है। मुझे आशा है कि आगामी वर्ष का प्राकृतिक चिकित्सांक, विशेषांक भी अत्यन्त उपयोगी, सुन्दर और आकर्षक होगा। ईश्वर से प्रार्थी हूं कि आपका 'धन्वन्तरि' सम्प्रदाय दिनोदिन उन्नति करता रहे।

—प्रभाकर चटर्जी

श्री रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी
उपसचालक, आयुर्वेद, भोपाल, मध्यप्रदेश

धन्वन्तरि आयुर्वेद जगत् की अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त पत्रिका है जिसने वैद्यो की सेवा गत ३९ वर्षो से मनोयोग के साथ की है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसने अपना मार्ग वैद्यो मे व्याप्त राजनैतिक दल बन्दियो से पृथक बनाया। यही कारण है कि धन्वन्तरि पत्रिका का नाम आज सर्वत्र अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिय जाता है। इसके विशेषांको को परम्परा अतीव मौलिक और सुन्दर रही है इनके द्वारा उनसे उत्कृष्ट कोटि साहित्य सदा प्रदान किया है।

धन्वन्तरि की अन्यतम विशेषता यह है कि उसकी विशाल गोद मे सभी वर्ग का वैद्य समाज सदैव आश्र पाता रहा है चाहे वह शुद्धायुर्वेदीय पक्ष का हो या मिश्रायुर्वेद का भक्त हो, चाहे सोपाधिक हो या निरुपाधि सभी को आयुर्वेदीय साहित्य की सेवा मे सलग्न करना ही मानो उसका ध्येय हो। यही कारण है कि वह अक्षुण गति से बढ रहा है।

धन्वन्तरि के मान्य सम्पादको ने, जो मेरे घनिष्टतम मित्र है मुझसे सन्देश की कामना की है। मैं तो को उसी परिवार का घटक मानता हूं अत. परिवार के व्यक्ति का सन्देश देने का प्रश्न ही नही उठता। मेरा वि है कि यदि धन्वन्तरि का संचालन कुशल हाथो मे सुरक्षित रहा तो इसके द्वारा अवाप्त स्थान सदा सुरक्षित और यह आयुर्वेद की सेवा के निरन्तर सफल योगदान करने मे समर्थ होगा।

मै इसके आगामी प्राकृतिक चिकित्सा विषयक विशेषाक की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा हूं। इसमे आयुर्वेद मे निहित प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तो का उद्घाटन विशेषरूप से किया जावे तो बहुत उत्तम होगा।

—रघुवीर प्रसाद

कविराज गयाप्रसाद शास्त्री, डी० एस सी, ए०
साहित्याचार्य, आयुर्वेद वृहस्पति, भिषग्रत्न,
प्रधानाचार्य श्रीनागार्जुन आयुर्वेद विद्यापीठ,
मुरलीधर बाग, हैदराबाद (आ० प्र०)

यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि 'धन्वन्तरि' का आगामी विशेषाक 'प्राकृतिक चिकित्साक' नाम से प्रकाशित हो रहा है। 'धन्वन्तरि' ने अपने पुण्य जीवन के मङ्गलमय प्रभात काल से ही आयुर्वेद विज्ञान के भण्डार को भरा है। प्राय. सभी उपयोगी विषयो पर 'धन्वन्तरि' के विशेषाक प्रकाशित हुए है। उन विशेषाको ने जनता तथा वैद्यसमाज का असीम उपकार किया है, इस सत्य की उपेक्षा नही की जा सकती है। 'प्राकृतिक चिकित्सा'' किसी देश विशेष की देन है, इस भारी भ्रम के निराकरण के लिये 'धन्वन्तरि' १९६६ का अपना विशेपाक 'प्राकृतिक-चिकित्साङ्क' नाम से प्रकाशित करने के प्रयत्नों मे सलग्न है। प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेदविज्ञान का ही प्रमुख अङ्ग है, इस विशेपांक मे प्रस्तुत तथ्य पर समुचित प्रकाश डाला जायगा।

मैं 'धन्वन्तरि' की लोकोत्तर सफलता का अभिलापी हू।

—गयाप्रसाद शास्त्री

आयुर्वेदाचार्य कविराज श्री हरदयाल वैद्य वाचस्पति,
के० आर०, ए० वी०, एम० ए० एस०
प्रधान चिकित्सक मू० खै० आयुर्वेदिक अस्पताल
लाजपत नगर, नई दिल्ली।

यह जानकर अतिशय प्रसन्नता हुई कि आप सन् १९६६ मे 'धन्वन्तरि' के विशेपाक के रूप मे 'प्राकृतिक-चिकित्साक' प्रकाशित कर रहे हैं। निश्चय ही यह अङ्क भी 'धन्वन्तरि' की विशाल परम्पराओ से ओतप्रोत होगा।

नि सन्देह प्रकृति की उपेक्षा अथवा प्राकृतिक नियमो के उल्लघन करने से ही मनुष्य रोगी होता है, और औपधीय चिकित्सा से रोगमुक्त भी होता है।

सम्प्रति यह समझने की अत्यन्त आवश्यकता है कि प्राकृतिक नियमोल्लघन से उत्पन्न रोगो को दूर करने के लिये प्राकृतिक प्रायश्चित्य की विधि क्या है ? इस रहस्य को अवगत करने से मनुष्य चिरस्वस्थ और दीर्घजीवी बन सकता है। आशा है आप इसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने मे सफल होगे।

—हरदयाल वैद्य

अखण्ड भूमण्डलाचार्य अनन्त श्री विभूषित रसेशाचार्य
जगद्गुरु श्री चरणतीर्थ महाराज, सभापति श्री भुवनेश्वरी-
पीठ, गौडल, सौराष्ट्र।

आपका विशेषाक समय-समय पर निकलता रहता है और विविध विषय के आयुर्वेदीय ज्ञान से भरा हुआ रहता है।

आप अपने सिद्धान्त से जो कुछ सरस्वती का उपहार आयुर्वेदीय समाज को दे रहे है उसके लिये अनेकश धन्यवाद। आप और आपके सहायक वर्ग और उनके कुटुम्ब परिवार दीर्घायुषो हों, आयुरारोग्यैश्वर्य सम्पन्न हों, ऐसी श्री भुवनेश्वरी मा से प्रार्थना करता हू।

—श्री चरण तीर्थ महाराज

श्रीमान महेन्द्रनाथ पाण्डेय लिखित

उपयोगी पुस्तकें

अपूर्व चिकित्सा विधान

[illegible] रोगों के निदान, लक्षण और [illegible] तरह अस्त-व्यस्त कर दिये गये हैं। आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा की समस्त बारीकियों को वैज्ञानिक ढङ्ग से समझाया गया है। मनुष्य और चिकित्सक दोनों ही इस पुस्तक से समान रूप से लाभ उठा सकते हैं। जिसने पुस्तक देखी सभी ने तारीफ की। एलोपैथी और आयुर्वेद के समस्त रोगों के निदान, लक्षण और चिकित्सा इस पुस्तक में दी गई है। इतनी उपयोगी पुस्तक अभी तक हिन्दी में न थी। सचमुच यह अपूर्व पुस्तक है। मजबूत चिकना कागज, बढ़िया छपाई, मूल्य सस्ता।

पहला अध्याय—ज्वर चिकित्सा २ रु० ७५ न० पै०
दूसरा अध्याय—ग्रन्थि और ग्रन्थि प्रणाली के रोग१)
तीसरा अध्याय—पाचन प्रणाली के रोग मूल्य २.२५
प्रथम खण्ड तीनों अध्याय एक साथ। मू०६.००

स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां

आधुनिक रसायन शास्त्र के अध्ययन से यह बात सिद्ध हो गई है कि जिन रोगों को औषधियां दूर नही कर सकतीं उनको शाक तरकारियो के उचित उपयोग से मार भगाया जा सकता है। इनमे लवण और विटामिनो की वह राशि मौजूद है जो सैकड़ो रुपये खर्च करने पर भी अन्यत्र मिल नही सकती। इस सम्बन्ध मे वैद्यक शास्त्र से लेकर आज तक के वैज्ञानिक अनुसंधानो एव प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभव के आधार पर लिखी गई पुस्तक के चौथे सस्करण का मूल्य २.००

मठा, उसके गुण तथा उपयोग

मठा वहुत साधारण सी चीज है। परन्तु भोजन-शास्त्र की दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है। यह कमजोर रोगियो का भोजन और औषधि दोनो है। कमजोर रोगियो को [illegible] त के समान गुण करता है। बवासीर, कब्ज, भगन्दर, तिल्ली आदि रोगो मे मठा किस प्रकार रामबा औषधि का काम करता है? मठा से किस प्रकार अमृत गुण प्राप्त होते हैं? इससे सभी तरह का बिगड़ा स्वास् कैसे बनता है? यह उपयोगी वर्णन इस पुस्तक में पढ़िये पांचवा संस्करण मूल्य १.००

आंख का अचूक इलाज

आंख से बढकर संसार की कोई निधि नही है आजकल हमारे देश में नेत्र-रोग इतने भयानक रूप में ब रहे हैं कि बूढों की कौन कहे ५-६ वर्ष के बच्चों को भी चश्म लगाना पड़ रहा है। चश्मा लगाने के कारण कितने ह एम० ए०, बी० ए० पास विद्यार्थी नौकरियों के लि अयोग्य समझ लिये जाते हैं। देश के कल्याण की भावन से प्रेरित होकर चश्मा छोड़ने की अनुभूत विधि बता गई है। आप चश्मा लगाते हों या लगाना चाहते ह अथवा आप की आख मे कोई रोग हो, हर हालत में य पुस्तक आपकी सहायता करेगी और अचूक इलाज बतायेगी मूल्य २.२५

जुकाम

जुकाम यदि अच्छा न हुआ तो अनेक असाध्य औ कष्ट साध्य रोगों को उत्पन्न करने का कारण बन जात है। ब्रोकाइटिस, दमा, खांसी, निमोनिया, इन्फ्लुएंजा आदि क्या है? ये सब जुकाम से ही तो पैदा होने वाले रोग हैं तपेदिक जैसा महारोग भी तो जुकाम के कारण ही पैदा होता है। इस पुस्तक में जुकाम को उत्पन्न करने वाले कारण तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले सभी रोगो का अचूक इलाज बताया गया है। साथ ही वह रहन-सहन भी बताई गई है जिस पर चलने से जुकाम और उससे पैदा होने वाले भयानक रोग कभी पैदा नहीं होते। यह जनता के बड़े काम की चीज है। दूसरा संस्करण मूल्य १.७५

शहद के गुण तथा उपयोग

शहद सामान्य वस्तु नहीं, संसार का पांचवां अमृत है।

मक्खियों द्वारा उत्पन्न यह पदार्थ हमारे स्वास्थ्य के लिए कितना उपयोगी है उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसी शहद का वर्णन इस पुस्तक मे किया गया है। शहद के सम्बन्ध की सारी जानकारी और इलाज की बात इसमे बताई गई हैं। दूसरा संस्करण, मूल्य ०.७५।

मधुमेह-निदान और उपचार

मधुमेह के कारण, लक्षण पर विशद रूप से विचार करके उसका पथ्यापथ्य, भोजन सुधार और चिकित्सा बताने वाली हिन्दी मे बेजोड़ पुस्तक। प्राकृतिक और आयुर्वेदीय दोनों ही चिकित्सक पद्धतियों का आश्रय लेकर अनुभवपूर्ण चिकित्सा लिखी गई है। २.००

जीवन तत्व

जैसा इस पुस्तक का नाम है वैसा ही इसका विषय भी है। इसमें जीवन तत्वों—विटामिनो, खनिज लवणो और प्रोटीन, स्टार्च, चीनी, वसा आदि पर लेखक ने विस्तृत अध्ययन के साथ प्रकाश डाला है। आधुनिक अन्वेषणो के विषय मे पूरी-पूरी जानकारी देने वाली पुस्तको मे यह पुस्तक सर्व-श्रेष्ठ है। यह पुस्तक सर्व साधारण और चिकित्सक दोनो के बड़े काम की है। अन्त में खाने पीने की चीजो का चार्ट भी लगाया गया है। मू० १.५०

दूध चिकित्सा

दूध मे क्या गुण हैं? इससे इलाज किस प्रकार होता है? दूध की बनी चीजों का स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है? दूध से जीवनी शक्ति किस तरह बढ़ती है? इससे पूरा-पूरा लाभ किस तरह उठाया जाय? किस चीज के साथ दूध का मेल है किसके साथ नही। यह तथा अन्य उपयोगी वर्णन पुस्तक मे पढिए। इस विषय पर आज तक हिन्दी में ऐसी पुस्तक नही निकली स्वास्थ्य-सम्बन्धी अपूर्व पुस्तक। मू० ४.००

बच्चों के रोग और उनका इलाज

इस पुस्तक मे बच्चो के रोगो का निदान और इलाज प्राकृतिक चिकित्सा और आयुर्वेदीय ढङ्ग से दिया गया है। पुस्तक के सहारे बच्चो के रोग आराम करने मे सर्वसाधारण को बहुत अच्छी मदद मिलेगी। इसकी एक प्रति प्रत्येक घर में रहनी चाहिए। यह पुस्तक भी हमारे अपूर्व चिकित्सा विधान का एक अध्याय है जो उससे अलग है। मूल्य २.००

प्रमेह-विवेचन

आजकल यह रोग ९५ प्रतिशत लोगो को है। सभी तरह के प्रमेह तथा पेशाब सम्बन्धी रोगो और स्वप्नदोष आदि रोगो का विस्तृत वर्णन है। इलाज सरल और सब के समझने और करने लायक है इन रोगो की चिकित्सा में भोजन और प्राकृतिक चिकित्सा पर विशेष जोर दिया गया है और रोगो को दूर करने वाले उत्तमोत्तम नुस्खे भी दिये गये हैं। इस प्रकार यह पुस्तक सब के लिए उपयोगी हो गई है। पुस्तक की भाषा सरल, सुबोध और बोल चाल की है। मूल्य २ ००

कब्ज और मलावरोध

कब्ज को जड़से दूर करने की विधि बताने वाली अद्वितीय पुस्तक। कब्ज के कारण, लक्षण, चिकित्सा, भोजन और पथ्यापथ्य आदि पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। मू. ५.००

रोगी सुश्रूषा

अपने विषय की बेजोड़ पुस्तक है। सभी के घर मे लोग बीमार पड़ते है परन्तु बहुतो को यह नही मालूम कि बीमार की देख-रेख, सेवा सुश्रूषा कैसे की जाय। इस विषय की पूरी जानकारी इस पुस्तक से होगी। इस पुस्तक पर लेखक को उत्तर प्रदेश सरकार और विन्ध्य प्रदेश सरकार से क्रमशः ४००.रु० और २००.रु० के पुरस्कार मिल चुके हैं। २.५०

धातुरोग और उसका इलाज

यह पुस्तक अपने विषय की हिन्दी मे अद्वितीय है। कई परीक्षाओ में भी स्वीकृत है। जो लोग अपने को स्वस्थ रखना चाहते हों उन्हे यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए। मूल्य १ रुपये ५० पैसे।

महिलाओं के रोग निदान और उपचार

इस पुस्तक मे महिलाओ के समस्त रोगों का वर्णन एलोपैथी और आयुर्वेद के आधार पर किया गया है। इसमें बताई चिकित्सा विधि सरल और सबके समझने योग्य है।। अपने विषय की बेजोड़ पुस्तक है। प्रत्येक गृहस्थ के घर मे इसका रहना आवश्यक है। इससे गृहस्थो का तो लाभ होगा ही वैद्य बन्धु भी इससे विशेष लाभान्वित होगे। मूल्य ४ रु० ५० पै०

पुस्तकें मिलने का पता—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

[illegible] महेन्द्रनाथ पाण्डेय लिखित

उपयोगी पुस्तकें

अपूर्व चिकित्सा विधान

इस पुस्तक में [illegible] सभी रोगों के निदान, लक्षण और [illegible] समझा-समझा कर लिखे गये हैं। आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा की समस्त [illegible] को वैज्ञानिक ढंग से समझाया गया है। गृहस्थ और चिकित्सक दोनों ही इस पुस्तक से समान रूप से लाभ उठा सकते हैं। जिसने पुस्तक देखी उसी ने तारीफ की। एलोपैथी और आयुर्वेद के समस्त रोगों के निदान, लक्षण और चिकित्सा इस पुस्तक में दी गई है। इतनी उपयोगी पुस्तक अभी तक हिन्दी में न थी। सचमुच यह अपूर्व पुस्तक है। मजबूत चिकना कागज, बढ़िया छपाई, मूल्य सस्ता।

पहला अध्याय—ज्वर चिकित्सा २ रु० ७५ न० पै०
दूसरा अध्याय—ग्रन्थि और ग्रन्थि प्रणाली के रोग१)
तीसरा अध्याय—पाचन प्रणाली के रोग मूल्य २.२५
प्रथम खण्ड तीनो अध्याय एक साथ। मू०६.००

स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां

आधुनिक रसायन शास्त्र के अध्ययन से यह बात सिद्ध हो गई है कि जिन रोगों को औषधियां दूर नही कर सकती उनको शाक तरकारियो के उचित उपयोग से मार भगाया जा सकता है। इनमें लवण और विटामिनों की वह राशि मौजूद है जो सैकड़ो रुपये खर्च करने पर भी अन्यत्र मिल नही सकती। इस सम्बन्ध मे वैद्यक शास्त्र से लेकर आज तक के वैज्ञानिक अनुसंधानो एव प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभव के आधार पर लिखी गई पुस्तक के चौथे सस्करण का मूल्य २ ००

मठा, उसके गुण तथा उपयोग

मठा बहुत साधारण सी चीज है। परन्तु भोजन-शास्त्र की दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है। यह कमजोर रोगियो का भोजन और औषधि दोनों है। कमजोर रोगियो को मठा अमृत के समान गुण करता है। बवासीर, कब्ज, भगन्दर, हिचकी आदि रोगो मे मठा किस प्रकार रामबाण औषधि का काम करता है? मठा से किस प्रकार अमृत गुण प्राप्त होते हैं? उससे सभी तरह का बिगडा स्वास्थ्य कैसे बनता है? यह उपयोगी वर्णन इस पुस्तक में पढ़िये पांचवां संस्करण मूल्य १.००

आंख का अचूक इलाज

आंख से बढकर संसार की कोई निधि नहीं है आजकल हमारे देश में नेत्र-रोग इतने भयानक रूप में बढ़ रहे हैं कि बूढों की कौन कहे ५-६ वर्ष के बच्चों को भी चश्मा लगाना पड़ रहा है। चश्मा लगाने के कारण कितने ही एम० ए०, बी० ए० पास विद्यार्थी नौकरियों के लिये अयोग्य समझ लिये जाते है। देश के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर चश्मा छोड़ने की अनुभूत विधि बताई गई है। आप चश्मा लगाते हो या लगाना चाहते हो, अथवा आप की आंख मे कोई रोग हो, हर हालत में यह पुस्तक आपकी सहायता करेगी और अचूक इलाज बतायेगी। मूल्य २.२५

जुकाम

जुकाम यदि अच्छा न हुआ तो अनेक असाध्य और कष्ट साध्य रोगों को उत्पन्न करने का कारण बन जाता है। ब्रोंकाइटिस, दमा, खांसी, निमोनिया, इन्फ्लुएंजा आदि क्या है? ये सब जुकाम से ही तो पैदा होने वाले रोग हैं। तपेदिक जैसा महारोग भी तो जुकाम के कारण ही पैदा होता है। इस पुस्तक मे जुकाम को उत्पन्न करने वाले कारण तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले सभी रोगों का अचूक इलाज बताया गया है। साथ ही वह रहन-सहन भी बताई गई है जिस पर चलने से जुकाम और उससे पैदा होने वाले भयानक रोग कभी पैदा नहीं होते। यह जनता के बड़े काम की चीज है। दूसरा संस्करण मूल्य १.७५

शहद के गुण तथा उपयोग

शहद सामान्य वस्तु नही, संसार का पांचवां अमृत है।

मक्खियों द्वारा उत्पन्न यह पदार्थ हमारे स्वास्थ्य के लिए कितना उपयोगी है उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसी शहद का वर्णन इस पुस्तक मे किया गया है। शहद के सम्बन्ध की सारी जानकारी और इलाज की बात इसमे बताई गई हैं। दूसरा सस्करण, मूल्य ०.७५।

मधुमेह-निदान और उपचार

मधुमेह के कारण, लक्षण पर विशद रूप से विचार रके उसका पथ्यापथ्य, भोजन सुधार और चिकित्सा ताने वाली हिन्दी मे बेजोड़ पुस्तक। प्राकृतिक और ायुर्वेदीय दोनो ही चिकित्सक पद्धतियो का आश्रय लेकर नुभवपूर्ण चिकित्सा लिखी गई है। २.००

जीवन तत्व

जैसा इस पुस्तक का नाम है वैसा ही इसका विषय ी है। इसमे जीवन तत्वो—बिटामिनों, खनिज लवणों ौर प्रोटीन, स्टार्च, चीनी, वसा आदि पर लेखक ने वेस्तृत अध्ययन के साथ प्रकाश डाला है। आधुनिक न्वेषणो के विषय मे पूरी-पूरी जानकारी देने वाली ुस्तको मे यह पुस्तक सर्व-श्रेष्ठ है। यह पुस्तक सर्व साधारण और चिकित्सक दोनो के बड़े काम की है। अन्त में खाने ीने की चीजों का चार्ट भी लगाया गया है। मू० १.५०

दूध चिकित्सा

दूध मे क्या गुण हैं ? इससे इलाज किस प्रकार होता है ? दूध की बनी चीजों का स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? दूध से जीवनी शक्ति किस तरह बढ़ती है ? इससे पूरा-पूरा लाभ किस तरह उठाया जाय ? किस चीज के साथ दूध का मेल है किसके साथ नही। यह तथा अन्य उपयोगी वर्णन पुस्तक मे पढिए। इस विषय पर आज तक हिन्दी में ऐसी पुस्तक नही निकली स्वास्थ्य-सम्बन्धी अपूर्व पुस्तक। मू० ४.००

बच्चों के रोग और उनका इलाज

इस पुस्तक मे बच्चो के रोगो का निदान और इलाज ाकृतिक चिकित्सा और आयुर्वेदीय ढङ्ग से दिया गया है। स्तक के सहारे बच्चो के रोग आराम करने में सर्वसाधारण को बहुत अच्छी मदद मिलेगी। इसकी एक प्रति प्रत्येक र में रहनी चाहिए। यह पुस्तक भी हमारे अपूर्व चिकित्सा धान का एक अध्याय है जो उससे अलग है। मूल्य २.००

प्रमेह-विवेचन

आजकल यह रोग ९५ प्रतिशत लोगो को है। सभी तरह के प्रमेह तथा पेशाब सम्बन्धी रोगो और स्वप्नदोष आदि रोगो का विस्तृत वर्णन है। इलाज सरल और सब के समझने और करने लायक है इन रोगों की चिकित्सा मे भोजन और प्राकृतिक चिकित्सा पर विशेष जोर दिया गया है और रोगो को दूर करने वाले उत्तमोत्तम नुस्खे भी दिये गये हैं। इस प्रकार यह पुस्तक सब के लिए उपयोगी हो गई है। पुस्तक की भाषा सरल, सुबोध और बोल चाल की है। मूल्य २.००

कब्ज और मलावरोध

कब्ज को जड़से दूर करने की विधि बताने वाली अद्वितीय पुस्तक। कब्ज के कारण, लक्षण, चिकित्सा, भोजन और पथ्यापथ्य आदि पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। मू. ५.००

रोगी सुश्रूषा

अपने विषय की बेजोड़ पुस्तक है। सभी के घर में लोग बीमार पड़ते हैं परन्तु बहुतों को यह नही मालूम कि बीमार की देख-रेख, सेवा सुश्रूषा कैसे की जाय। इस विषय की पूरी जानकारी इस पुस्तक से होगी। इस पुस्तक पर लेखक को उत्तर प्रदेश सरकार और विन्ध्य प्रदेश सरकार से क्रमश: ४००.रु० और २००.रु० के पुरस्कार मिल चुके है। २.५०

धातुरोग और उसका इलाज

यह पुस्तक अपने विषय की हिन्दी मे अद्वितीय है। कई परीक्षाओं में भी स्वीकृत है। जो लोग अपने को स्वस्थ रखना चाहते हो उन्हे यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए। मूल्य १ रुपये ५० पैसे।

महिलाओं के रोग निदान और उपचार

इस पुस्तक मे महिलाओ के समस्त रोगों का वर्णन ोपैथी और आयुर्वेद के आधार पर किया गया है। इसमें ाणत चिकित्सा विधि सरल और सबके समझने योग्य है।। अपने विषय की बेजोड़ पुस्तक है। प्रत्येक गृहस्थ के घर में इसका रहना आवश्यक है। इससे गृहस्थो का लाभ होगा ही वैद्य बन्धु भी इससे विशेष लाभान्वित होंगे। मूल्य ४ रु० ५० पै०

पुस्तकें मिलने का पता—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

With the Compliments from–

The-National-Screw-wire-Products-Ltd
51. Stephen House
Dalhaousi Square East
Po. Calcutta-1

चिकित्सा रहस्य

आयुर्वेद सूरिः श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य बी० ए०

●

इस ग्रन्थ की प्रस्तावना आयुर्वेद के प्रसिद्ध प्रकाण्ड विद्वान, हिन्दूविश्वविद्यालय वाराणसी आयुर्वेदिक कालेज के सम्मानित परामर्शदाता एव भूतपूर्व प्रिन्सिपल श्री वैद्य राजेश्वरदत्त जी शास्त्री आयुर्वेद शास्त्राचार्य, डी. एस. सी. ए. ने लिखी है।

श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य की लेखन शैली से हमारे सभी पाठक भलोप्रकार से परिचित है। योग्य लेखक ने ऋषि प्रणीत संहिता ग्रन्थो का सार लेकर सरल हिन्दी भाषा में "चिकित्सा रहस्य" नामक एक विशालकाय ग्रन्थ लिखा है जिसका प्रथम खण्ड प्रकाशित हो गया है।

इस प्रथम खण्ड मे विषय प्रवेश के पश्चात् आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त 'दोष धातु मलमूलं हि शरीर' के अनुसार चिकित्सा के उपयुक्त शरीर, मन और आत्मा की स्वस्थ दशा की सुस्थिति, एव रोग प्रतिकार की दृष्टि से आवश्यक स्वस्थवृत्त विषयक कुछ बाते प्रथम अध्याय से दशम अध्याय तक संक्षेप में वर्णित हैं। तत्पश्चात् रोग प्रतिकार एवं चिकित्सा-सारल्य की दृष्टि से आयुर्वेदीय कुछ प्रमुख सूत्रों का विवेचन ११वें अध्याय मे किया गया है। तदुपरात चार अध्यायो मे तीनो दोषो का विशद विवेचन एवं तत्सम्बन्धी चिकित्सा दर्शाई गई है।

चिकित्सा रहस्य के इस प्रथम भाग मे पहले उन्ही बातों का उल्लेख किया है जिनका जानना चिकित्सा-कर्म के पूर्व ही उसकी सफलता के लिए अत्यावश्यक है। जैसे आत्मा, मन, इन्द्रिय, पचमहाभूत, दोष धातु और मल का विशद विवेचन, दोष दूष्य का परस्पर सम्बन्ध, रोगोत्पत्ति और चिकित्सा में दोषो का महत्व, आहार द्रव्य, आहार विधि एव जल सम्बन्धी अत्युपयोगी ज्ञान, स्नान निद्रा, ब्रह्मचर्य तथा वीर्य रक्षा के विषय मे आवश्यक उपदेश और प्रमुख चिकित्सा सूत्रो का सम्यक् निर्देश किया है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति का अन्य चिकित्सा-पद्धतियो के साथ तुलनात्मक विचार भी किया गया है। बीच बीच मे आधुनिक विज्ञान द्वारा समन्वय करने का प्रयत्न किया गया है। लेखन शैली इतनी सरल और रोचक है कि बहुत शीघ्र ही गूढ विषय भी समझ में आ जाता है और पढते पढते जी नही ऊबता। आयुर्वेदीय छात्रो तथा आयुर्वेदानुरागियो के लिये यह ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा।

इस पुस्तक का मूल्य ४.५० है। उत्तम ग्लेज कागज पर छपी, २० × ३० सोलह पेजी साइज में लगभग ३७५ पृष्ठ, उत्तम छपाई सुपुष्ट जिल्द आकर्षक दोरगा टाइटिल।

प्रकाशक

धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

प्रकाशकीय निवेदन–

गत १० माह के कठिन परिश्रम एवं धन-व्यय के फलस्वरूप यह प्राकृतिक चिकित्सांक कृपालु ग्राहकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए महान प्रसन्नता है। यह कैसा है कहां तक आपको पसन्द आएगा ? यह तो आप ही समझेंगे लेकिन इतना निवेदन करना चाहते हैं कि इसे अधिकाधिक उपयोगी एव आकर्षक बनाने मे सम्माननीय लेखक तथा हमने महान परिश्रम किया है तथा अपनी योग्यता एव सामर्थ्य के अनुसार किसी प्रकार की कमी रहने नहीं दी है। सम्माननीय लेखक श्री डा० गंगाप्रसाद गौड प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के मर्मज्ञ ज्ञाता,विद्वान, लेखक एवं विचारक है। आपने इस विषय का गहन अध्ययन किया है तथा इस विशेषाक को मनोयोग से पढने पर आप अनुभव करेंगे कि विद्वान लेखक ने प्राकृतिक-चिकित्सा के हर पहलू का कितनी सरलता एवं बारीकी से स्पष्टीकरण किया है

आधुनिक आयुर्वेद-चिकित्सक जिनको आयुर्वेद एव एलोपैथी दोनों चिकित्सा पद्धतियो का ज्ञान होता है देखा गया है कि वे उभय पद्धतियो की सहायता लेते हुए रोग निवारण मे अधिक और शीघ्र सफलता प्राप्त करते है। इसी प्रकार हमारी यह धारणा है कि आयुर्वेद चिकित्सक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का उचित ज्ञान प्राप्त करने पर अनेक कष्ट-साध्य रोगों को नष्ट करने के लिए इस पद्धति से भी बहुत कुछ सहायता ले सकेंगे। जनसाधारण को प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने के महत्व को समझा सकेंगे जिससे कि वे स्वस्थ जीवन-यापन कर सके।

सामान्य पठित समुदाय तो इस विशेषाक से अत्यधिक लाभान्वित हो सकेगा। प्रत्येक मनुष्य की कामना होती है कि वह नीरोग-स्वस्थ जीवन व्यतीत करे। स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए निश्चय ही प्राकृतिक एव नियमबद्ध रहन-सहन, खान-पान का अवलम्बन लेना होता है जहा मनुष्य ने प्रकृति की अवहेलना की, वहीं प्रकृति दण्डस्वरूप उसे रोगी बना डालती है। इस विशेषाक के मनन से आपको प्राकृतिक जीवन का रहस्य ज्ञात होगा और रोगी होगे पर रोग दूर करने के सरल उपाय भी ज्ञात होगे।

आजकल नवीन पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित सभ्य-समाज प्राकृतिक जीवन से दिन व दिन दूर होता जारहा है खान-पान, रहन-सहन, पहिनावा सभी कुछ विकृत है। चाय, बिस्कुट, कोकोकेला, काफी आदि की भरमार, क्लब-जीवन, रात्रि जागरण, दिन मे सोना आदि अप्राकृतिक रहन-सहन का परिणाम प्रत्यक्ष है कि यह सभ्य समाज मानसिक एव शारीरिक व्याधियों का अड्डा बना हुआ है। इन मनुष्यो के लिए (यदि वे थोड़ी समझ रखते हैं तथा स्वस्थ–नीरोग जीवन व्यतीत करने की भावना रखते हैं तो) यह विशेषांक उचित मार्ग दर्शन करेगा। 'धन्वन्तरि' का यह विशाल विशेषाक भी हमको विश्वास है कि पाठको को अवश्य पसंद आएगा तथा इससे वे प्रर्याप्त ज्ञान प्राप्त करेंगे।

'धन्वन्तरि' ४० वर्षो से चिकित्सक समाज की जो सेवा कर रहा है वह सभी को सुविदित है। इस विषय मे हम निवेदन करना चाहते हैं कि 'धन्वन्तरि' द्वारा जो भी सा[illegible] य हम आपकी सेवा मे प्रस्तुत करने मे सफल होते है यह सभी कुछ कृपालु ग्राहको की सत्प्रेरणा एवं सहयोग का ही फल है। अस्तु आपके अधिकाधिक सहयोग की हम याचना करते है।

अपील

हम अपने ग्राहको से विनम्र अपील करते है कि वे इस विशेषाक को छुपा-कर न रखे। अपने सहयोगियो मिलने जुलने वालो को दिखावे तथा उन्हे धन्वन्तरि के स्थायी ग्राहक बनने के लिए उत्साहित करें। यदि आप चाहेगे तो २-४ नवीन ग्राहक बना देना आपके लिए कठिन नही है, लेकिन आपके इस सहयोग से आपके प्रिय धन्वन्तरि को बहुत कुछ लाभ होगा। धन्वन्तरि की ग्राहक सख्या जितनी बढ़ेगी हम उसे उतना ही अधिक उपयोगी एवं विशाल बनाने मे सफल हो सकेगे।

आगामी वर्ष १९६७ का विशाल विशेषाक 'वनौषधि।विशेषाक'' चतुर्थ भाग प्रकाशित किया जायगा। जिन सज्जनो के पास बनौषधि विशेषाक प्रथम तीन भागो मे से कोई भाग न हो वे शीघ्र ही मगालें। इस समय तीनों भाग हमारे पास है।

–भवदीय

वैद्य देवीशरण गर्ग—प्र. सम्पादक

धन्वन्तरि 'प्राकृतिक-चिकित्सांक'

की

विषयानुक्रमणिका

तृतीय खण्ड

ग. चि ३

चतुर्थ खण्ड

अन्य अधिकारी विद्वानों के लेख

एक लाभकारी सूचना

प्राकृतिक स्वास्थ्य-प्रश्नोत्तरी

अप्रैल ६६ से 'धन्वन्तरि' मे प्राकृतिक स्वास्थ्य-प्रश्नोत्तरी' के नाम से हम एक विशेष स्तम्भ आरम्भ करने जा रहे हैं। इसमें 'धन्वन्तरि' के पाठको एवं ग्राहको के स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर कुशल एव विद्वान प्राकृतिक चिकित्सक आचार्य श्री गगा प्रसाद गौड नाहर द्वारा दिये जायेगे। प्रश्नकर्त्ता एक बार में एक से अधिक प्रश्न न पूछें। प्रश्नकर्त्ता अपने प्रश्न दि निम्न पते से ही भेजे।

—— सम्पादक 'धन्वन्तरि'

प्रश्नादि भेजने का पता:—

आचार्य श्री गंगा प्रसाद गौड 'नाहर'
रंजना-निवास
बाग म.यना बीबी
५८/१२५ हुमेनग

यन्त्र शस्त्र परिचय

के विषय में

विद्वानों के विचार

ी पं० शिव शर्मा आयुर्वेद सलाहकार, दिल्ली।

मैंने डा० दाऊदयाल गर्ग लिखित "यन्त्र शस्त्र परिचय" नामक पुस्तक का अवलोकन किया है। इसमे बीसवी शताब्दि मे प्रयुक्त होने वाले आधुनिक यन्त्रो और शस्त्रों का वर्णन, परिचय, उपयोग और प्रयोग विधि सरल और सुगम हिन्दी भाषा मे वर्णित हैं। विद्यार्थियो और चिकित्सा व्यवसाइयो के लिए यह पुस्तक ज्ञानप्रद और सहायक सिद्ध होगी।

श्री मुकुन्दीलाल द्विवेदी, डी० आई० एम० एस०, आयुर्वेदाचार्य
आयुर्वेदिक एवं यूनानी सेवा निदेशक उत्तर प्रदेश, लखनऊ

डा० दाऊ दयाल गर्ग द्वारा लिखित एव धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ द्वारा प्रकाशित 'यन्त्र शस्त्र परिचय' पुस्तक का अवलोकन करने का अवसर मिला। पुस्तक मे रोग निदान तथा चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले मुख्य-मुख्य यन्त्रो के प्रयोग को विधियो का सचित्र और सुन्दर रीति से वर्णन किया गया है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक चिकित्सको एव विद्यार्थियो के लिए अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगी।

श्री डा० महेन्द्रकुमार शास्त्री बी. ए., एल. एम. पी. आयुर्वेदाचार्य वैद्य वाचस्पति,
आर. ए. पोद्दार मैडीकल कालेज, बम्बई-१८

श्री डा० दाऊ दयाल गर्ग A., M. B. S. का लिखा यह सक्षिप्त ग्रथ सभी विधियो के चिकित्सको के लिए विशेषत. आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सको के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है। प्रतिदिन निदान तथा चिकित्सा मे काम आने वाले प्राचीन तथा आधुनिक यन्त्र शस्त्रो के परिचय तथा प्रयोग ज्ञान की प्रतिदिन की चिकित्सा में अत्यन्त उपयोगिता है। इस महत्वपूर्ण विषयक ग्रन्थ का आयुर्वेद तथा हिन्दी मे अभाव बहुत खटकता था। यह कमी इस ग्रंथ द्वारा पूरी होगई है। वैद्य इससे अवश्य लाभ उठाये। पुस्तक की उपयोगिता के विषय में दो मत हो ही नही सकते।

श्री कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय साहित्य महोपाध्याय (आयुर्वेद) आयुर्वेद विशारद, आय० वाचस्पति
महेन्द्र रसायनशाला, ममफोर्ड गंज, इलाहाबाद।

आज के युग में यन्त्र और शस्त्रो के सम्बन्ध मे आवश्यक जानकारी रखना चिकित्सक के लिए बहुत आवश्यक है। इस विषय पर अभीतक कोई भी साहित्य उपलब्ध नही था। बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि डाक्टर गर्ग ने इस अछूते विषय पर एक प्रामाणिक पुस्तक लिखकर इस अभाव की पूर्ति बड़े सफल ढंग से की है। लेखक इसके लिए बधाई के पात्र है। लेखककी यह प्रथम कृति है किन्तु लेखकने सिद्ध कर दिया है कि उनकी भाषा में जोर है और शैली सरल और सुबोध है। विद्वान लेखक ने यह पुस्तक बहुत उत्तम ढग से लिखी है और धन्वन्तरि कार्यालय ने इसे प्रकाशित करके वैद्य बन्धुओ का बहुत कल्याण एव उपकार किया है। जिन चिकित्सको को किसी कालेज में प्रत्यक्ष कर्म करने का अवसर नही मिला उनके लिए यह पुस्तक बहुत लाभदायक और ज्ञानवर्द्धक है।

पुस्तक बहुत उपयोगी है और प्रत्येक चिकित्सक के पुस्तकालय मे सग्रह के योग्य है।

श्री डा० पद्मदेव नारायणसिंह M B B S., सिन्दरी (धनबाद) बिहार

ऐसी सुन्दर एव अत्युपयोगी पुस्तकप्रणयन के लिए आप समस्त चिकित्सक समाज की ओर से बधाई के पात्र है। हिन्दी भाषा मे आज तक इस विषय पर मैने कोई भी पुस्तक नही देखी थी। आयुर्वेद की उन्नति के लिए यह परमावश्यक है कि इस तरह के और आधुनिकतम खोजपूर्ण साहित्य का सृजन किया जाये। आपका यह सत्प्रयास इस क्षेत्र मे एक बड़े अभाव को दूर कर देगा।

इस पुस्तक का मूल्य मात्र ६.०० रु०

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

पट्तत्व-महिमा

([illegible])

[illegible] चराचर पति विभुम् ।
[illegible] सर्वान् अपोहति ॥

—चरक चिकित्सा अ० ३७, श्लं

(चराचर के स्वामी विष्णु के हजार नामों में से एक का भी जप करने से सब रोग शान्त होते है।)

([illegible])

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ।
आचार प्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥

—श्रीमद्

(चारों वेदो में सबसे प्रथम आचार माना गया है । आचार से धर्म उत्पन्न होता है और श्रीकृष्णचन्
को सदा रक्षा करते है ।)

(वायुतत्व)

आ वात वाहि भेषजं विवात वाहियद्रपः ।
त्वं हि विश्व-भेषज ! देवानां दूतईयसे ॥

-ऋ

(हे वायो ! दवा यहां ला । रोग को पैदा करने वाले जो दोष हैं उन्हे दूर कर । हे सम्पूर्ण रोगों की द
तू देवताओं का दूत बनकर बहता है ।)

(अग्नि तत्व)

तनूपा अग्निऽसितन्वं मे पाहि ।
आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ॥
अग्ने यन्मे ऊनं तन्म आपृण ।

—यजु

(हे अग्नि ! तुम शरीर की रक्षा करने वाले हो, मेरे शरीर को पुष्ट करो । तुम आयु को देने वाले
मुझे पूर्ण आयु दो । मेरे शारीरिक स्वास्थ्य में जो भी न्यूनता हो उसे पूरा कर दो ।)

(जल तत्व)

आयोहिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जेदधातन। महेरणाय चक्षसे ॥
यो वः शिव तमो रसस्तस्य भाजयतेहनः। उशतीरिवमातरः ॥
तस्माद रंग माम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ आपो जनयथाचनः ॥
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो या चामि भेषजम् ॥

—ऋग्वेद १०।९। १, २, ३,

(जल हमको सुख दे, सुखोपभोग के लिये पुष्ट करे, बड़ा करे, और दृढ़ करे । जिस प्रकार मातायें अपने दुध
मुंहे बच्चों को दूध पिलाती है, हे जल ! उसी प्रकार तुम हमे अपना मंगलमय रस पान कराओ । तुम हमारे मल
का नाश करो और योग्य संतान प्राप्त करने मे सहायक हो । हे परमेश्वर ! हम तुम से अन्नादिक वरणीय पदार्थों के
स्वामी, मनुष्य का रक्षक और रोग मात्र की औषधि जल मागते है।)

(पृथ्वी तत्व)

सर्वाधारे सर्व बीजे सवशक्ति समन्विते ।
सर्व कामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे धरे ॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण

(सर्वाधार मयी, सर्व वीर्य (बीज)मयी, सर्व शक्ति सम्पन्न, सर्व काम प्रदायवी, प्रकाशमयी, हे पृथ्वी देवि !
हमारे मनोरथो को प्रदान करो ।)

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा ॥

—गीता

भाग ४० | प्राकृतिक-चिकित्सांक | फरवरी
अङ्क २ | | १९६६ ई०

दो शब्द

अपने सम्बन्ध में

बात बावन वर्ष पुरानी है । तब मेरी आयु लगभग १४ वर्ष की थी और मैं एक कस्बे के मिडिल स्कूल में पढता था । जहा मेरा छात्रावास था उसके बगल मे एक गाव था और उससे कुछ दूर पर एक छोटी-सी नदी बहती थी । मई-जून के दिन थे । एक रात अचानक पडोस के उसी गाव मे भयङ्कर आग लग गई जो थोड़ी ही देर मे इतनी प्रचण्ड हो उठी कि उसमे गाव का सब कुछ स्वाहा हो गया और कितने ही गाव वाले उसमे जल-भुन कर मर भी गये । दूसरी सुबह जो ग्रामीण मर गये थे उन्हे लोगो ने पास की नदी मे प्रवाहित कर दिया और जिनके शरीर मे अभी कुछ जान बाकी थी उन्हे अस्पताल पहुँचा दिया । मेरे छात्रावास का एक नौकर था जो उसी गाव का रहने वाला था । वह भी अगलग्गी का शिकार हो गया और मरकर मरने वालों के साथ नदी मे पहुँच गया । बात आयी-गयी हो गई ।

उपर्युक्त घटना के २०-३० दिन बाद ही देखता क्या हू कि छात्रावास का वही नौकर जिसे अगलग्गी मे मरा हुआ समझकर लोगो ने अन्य मुर्दों के साथ नदी मे फेक दिया था, छात्रावास मे पुन. अपने काम पर मौजूद है और स्वस्थ है । बडा आश्चर्य हुआ । रहस्य का पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि नौकर को जब नदी मे मरा हुआ समझकर फेका गया था उस समय उसके शरीर मे जान थी और यह कि नदी के शीतल जल

इस विशेषांक को निकालने का ख्याल कैसे आया ?

प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्र के प्रणयन का कार्य स्थगित तो कर दिया, पर प्राकृतिक चिकित्सा-विषय की अपनी जानकारी और खोज को दिलखोल कर कागज पर उतार देने की आकाक्षा तो दिल मे ज्यो की त्यो बनी ही थी। अत उस उत्कट आकाक्षा द्वारा हृदय का मंथन कम न हुआ। फलत उसमे राहत पाने के लिये कुछ न कुछ किये बिना काम चलता दिखाई न दिया।

'धन्वन्तरि' मासिक पत्रिका का स्थाई लेखक होने के नाते उसके सम्पादक सचालको की महती कृपा मुझ पर रहती है। मैंने उन लोगों को मई ६३ मे यह सुझाव दिया कि वे सन्' ६५ का 'धन्वन्तरि'—विशेषांक प्राकृतिक चिकित्सा-विषय पर निकालें, मैं उस कार्य को सफलतापूर्वक कर दूंगा। लौटती डाक से उतार आया, 'आगामी विशेषाक के विषय की घोषणा करने के बारे में आपने प्राकृतिक चिकित्साक निकालने का सुझाव दिया है। यदि यही सुझाव आप एक माह पूर्व देते तो निश्चय ही आगामी विशेषांक 'प्राकृतिक चिकित्सांक' प्रकाशित किया जाता। अब तो कमान से तीर निकल गया। वर्ष १९६५ में वनौषधि विशेषाक तृतीय भाग प्रकाशित किया जायगा, अस्तु अब तो १९६६ में प्राकृतिक चिकित्सांक विशेषांक-निकालने के लिये यथा समय विचार करेंगे। इस उत्तर को पाकर थोड़ी आशा बंधी। अतः संतोष की सास ली।

आखिर समय आया और 'धन्वन्तरि' के कृपालु सचालको से 'धन्वन्तरि' के सन्' ६६ का विशेषाक प्राकृतिक चिकित्सांक के नाम से तैयार करने का मुझे आदेश मिला पर इस शर्त के साथ कि उसका कलेवर ५२० पृष्ठो से अधिक न बढने पावे। इस पर मैंने उन लोगो से निवेदन किया कि वे मुझे विशेषाक के इनसीमित पृष्ठो मे बाधें नहीं, और प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान पर दिल खोल कर पूर्णरूपेण लिखने की छूट देदे, परन्तु उन लोगो ने अपने पिछले विशेषांको की पृष्ठ सम्बन्धी परम्परा को ही कायम रखना चाहा और मेरी एक न मानी। अत विवश होकर मुझे इस विशेषांक के सभी विषयो पर सक्षिप्त रूप से और सावधानी के साथ कमल चलानी पडी, ताकि पृष्ठो के सम्बन्ध में इसकी परम्परा की रक्षा हो सके।

प्रस्तुत विशेषांक के सम्बन्ध में

विशेषांक आपके हाथ में है। अतः उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नही जान पड़ती। आप स्वयं पढे और अपनी राय कायम करें। फिर भी इसके लेखक तथा सम्पादक होने के नाते मैं एक बात आप से अवश्य कहना चाहूंगा। वह यह कि प्राकृतिकचिकित्सा-विज्ञान का विषय एक अगम और अगाध विषय है। उस महासागर को प्रस्तुत विशेषाक रूपी इस छोटे से कुल्हड में पूरा-पूरा भरा जाना असम्भव था। इसलिये इसके सीमित पृष्ठों मे प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी किसी विषय विशेष की पूर्णता ढूढने वाले पाठको को निराशा ही हाथ लगेगी, इस बात को दृढता पूर्वक मैं पहले ही कह देना अपना कर्तव्य समझता हू। कारण, यह विज्ञान मूलत छ छ तत्त्वो—महत्तत्त्व, आकाश तत्त्व, अग्नितत्त्व, जलतत्त्व, पृथ्वीतत्व पर एक साथ सम्पूर्ण रूप से आधारित है, जिनमे से प्रत्येक तत्त्व पर यदि १-१ हजार पृष्ठो का भी अलग-अलग विशेषांक निकाला जाय तब भी पूरा नही पड सकता। फिर इन छयो तत्त्वो और साथ मे आपाद मस्तक समस्त रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा—वर्णन के लिये यह ५००-६०० पृष्ठो का नगण्य विशेषाक क्या पूरा पड सकता है? अत इसमे जो कुछ भी दरसाया गया है सूक्ष्म रूप से दरशाया गया है—सूत्र रूप मे सकेत मात्र किया गया है। फिर भी, धृष्टता क्षमा हो, इतना जरूर कहूंगा कि विशेषाक मे जितना कुछ भी लिखा गया है, उसे अपनी योग्यतानुसार, ठीक ठीक लिखने का प्रयत्न किया गया है और अनुभव–अध्ययन की कसौटी पर कसकर लिखा गया है, ताकि साधारण जनता और चिकित्सक समाज–दोनो इस विशेषाक द्वारा प्राकृतिक-चिकित्सा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने में सुगमता, उपादेयता, तथा सरलता का अनुभव करें।

यदि देश की रोगो से पीडित, जनता का इस विशेषाक से कुछ भी उपकार हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

[illegible] की कृ[illegible] ... [illegible] सर्मा, ... [illegible] 'धन्वन्तरि' ... [illegible] चिकित्सा का ग्रन्थ ... [illegible] नहीं है।

[illegible] वैद्य बन्धुओं के प्रति ... [illegible]

[illegible] धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य [illegible]

[illegible] पत्र-पत्रिकाओं से भी सहायता ली गयी है जिसके [illegible] और उनका साभार स्वीकार करता हूँ।

क्षमा-याचना

[illegible] विशेषाङ्क मे कुछ त्रुटियां एव अशुद्धियां हो सकती हैं जिन्हे सहृदय [illegible] और मुझे इस कष्ट के लिये क्षमा प्रदान करे।

[illegible] तथा वैद्य बन्धुओं से उनको व्यक्तिगत पत्र लिखकर एव 'धन्वन्तरि' [illegible] प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी केवल निम्न लिखित विवाद ग्रस्त विषयों पर ही लेख [illegible] भेजने का कष्ट करे। परन्तु खेद है, इन निर्धारित आवश्यक [illegible] परीक्षित प्रयोग को छोडकर कुल दो ही लेख आये जिन्हे चतुर्थ खण्ड मे प्रथम स्थान दिया गया है—

१—क्या प्राकृतिक चिकित्सा का आविष्कार भारतेतर देशो मे हुआ था ? २—क्या प्राकृतिक चिकित्सा ही विशुद्ध आयुर्वेद नही है ? ३—प्राकृतिक चिकित्सा की प्रगति मद क्यो है ? ४—प्राकृतिक चिकित्सा के साथ-साथ किसी औषधि का प्रयोग क्यो नहीं किया जाय ? ५—क्या विद्युत यत्रो का प्रयोग प्राकृतिक चिकित्सा के विरुद्ध है ? ६—रोग होने पर हम प्राकृतिक चिकित्सा ही क्यो करे ? ७—परीक्षित प्रयोग।

जिन लेखकों के लेख स्थानाभाव अथवा किन्ही अन्य अनिवार्य कारणो से विशेषाङ्क मे स्थान न पा सके वे मेरी विवशता को ध्यान मे रखते हुये मुझे अवश्य क्षमा कर देगे, ऐसा विश्वास है।

विशेषाङ्क के लिये प्राप्त अन्य विद्वानो के स्वीकृत लेखो का सम्पादन करके मैने उन्हे एक अलग खण्ड (चतुर्थ खण्ड) मे, विशेषाङ्क की सुव्यवस्था एव सुन्दरता बढाने के ख्याल से एक साथ सजा दिया है जिसके लिये लेखक बन्धु अन्यथा न समझेगे और रुष्ट न होगे।

एक निवेदन

अत मे 'धन्वन्तरि' के प्रत्येक पाठक से निवेदन है कि प्रस्तुत विशेषाङ्क को कम से कम एक बार आद्योपान्त अवश्य पढे और इसके सम्बन्ध मे अपनी अमूल्य और निष्पक्ष सम्मति मेरे पते से अथवा सम्पादक 'धन्वन्तरि' के पते से अवश्य भेजने की कृपा करे जिससे वह 'धन्वन्तरि' मे प्रकाशित की जा सके।

विनीत
गगा प्रसाद गौड़ 'नाहर'
विशेष सम्पादक

रजना-निवास
बाग आइना बीबी
५८/१२५ हुसैनगज लखनऊ—१

प्राकृतिक चिकित्साङ्क

(प्रथम खण्ड)

है कि वे कभी अस्वस्थ नहीं होते। उनके स्वास्थ्य
डी बहुत गड़बडी होने पर प्रकृति ही उनकी सम्हाल
है और उन्हे डाक्टर-वैद्य की जरूरत नही पडती।
औषधि चिकित्सक, वैद्य, डाक्टर इन बातो को नही
ते। किसी को साधारण ज्वर हुआ नही कि वे
आसवारिष्ट वा रासायनिक तीव्र औषधियो का प्रयोग
ते या सूचीभेदन क्रिया द्वारा प्रकृति प्रतिकूल औष-
को रक्त मे प्रवेश कर उसे दूषित बनाते। उन्हे
झना चाहिये कि भगवन्नाम, आकाश, वायु, अग्नि, जल
मिट्टी—इन छ प्राकृतिक तत्वो द्वारा ही रोगी के
स्थ्य मे स्थायी सुधार हो सकता है। हमे सोचना चाहिये
प्रकृति ने भिन्न-भिन्न प्रकार के मौसिमी फलो मे सभी
षधिगुण निहित कर रखे है। सामयिक फल भोजनो मे
श्रेष्ठ भोजन है और औषधियो मे सर्वश्रेष्ठ औषधि।
सी भी रोग को केवल फल और सब्जियां, उनके प्राकृतिक
मे खाकरके अनायास भगाया जासकताहै। शास्त्रो मे
आहारी को देव तुल्य कहाहै। हमे प्रकृति के सकेतो को
मझना चाहिये। आयुर्वेद का कथन है—जायन्ते विविधा
ग प्रायसो मल सचयात्, अर्थात् शरीर के भीतर मल के
चय होने से ही भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते
। मल शरीर मे सचय होता है अपच या अजीर्ण
ारा। मल-सचय एव ज्वरादि रोग में वैद्य-डाक्टर का
र्तव्य है कि रोगी को औषधि न खिलाकर प्रकृति के
केत के अनुसार उपवास आदि प्राकृतिक उपचार द्वारा
थवा जल या मिट्टी के प्रयोगो द्वारा शरीर के भीतर
स्थित विकृत मल को बाहर निकलवा दे। जब प्राकृ-
तिक उपचारो द्वारा शरीर का मल जो रोगो का कारण
होता है, बाहर निकल जायगा तब ज्वरादि रोग आपसे
दूर हो जायगे ही। आयुर्वेद शास्त्रकार का कथन है—
'ज्वरादौ लघन प्रोक्तम्' अर्थात् ज्वर के प्रारम्भ मे उप-
वास परिक श्रेयस्कर है। इसीलिये प्राकृतिक चिकित्सा
मे उपवास का बडा महत्व है। प्राकृतिक चिकित्सा की
एक विशेषता यह भी है कि एक रोग की चिकित्सा पर
ध्यान दिया जाता है और मिट जाते है शरीर के छिपे
और अनछिपे रोग सर्वा।

प्राकृतिक जीवन प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान का
... रोग ... [illegible]

प्राकृतिक जीवन के अन्तर्गत प्राकृतिक चिकित्सा आ
जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा से रोग दूर किये जाते हैं,
परन्तु प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने से रोग होते ही
नहीं। दोनो मे यही अन्तर है। प्राकृतिक जीवन प्रकृति
का वरदान है, तो विविध रोग प्रकृति के दण्ड-विधान
एवं प्राकृतिक चिकित्सा तत्सम्बन्धी प्रायश्चित का एक
ढङ्ग, एक तपस्या—कठिन तपस्या। प्राकृतिक जीवन,
सरल, सुन्दर मानव स्वभाव है और उसका फल नैस-
र्गिक स्वास्थ्य, मानव का जन्म सिद्ध अधिकार। अन्यथा
स्वास्थ्य कोई घटना नहीं है। प्राकृतिक जीवन पद्धति
हमे प्रकृति की ओर ले जाती है, प्रकृति से सदा के लिये
सम्बन्ध जोड़ना सिखाती है, जिससे हम उससे कभी
पृथक् न हो सकें। प्रकृति से पृथक् रहना ही रोग, शोक
तथा निरानन्द का कारण होता है। प्राकृतिक जीवन-
पद्धति हमे ईश्वर की ओर भी ले जाती है। ईश्वर से सदा
के लिये सम्बन्ध जोड़ना सिखाती है, जिससे हम उससे
कभी पृथक् न हो सके। ईश्वर से पृथक् रहना ही रोग,
शोक तथा निरानन्द का कारण होता है। इस तरह प्रकृति
और ईश्वर मे मूलत कोई भेद नही होता। दोनों के गुण
समान होते हैं।

प्राकृतिक जीवन-पद्धति के अनुसरण करने वाले को
यह कभी ध्यान ही नहीं आता कि शरीर नाम की कोई
चीज भी उसके पास है। क्योंकि स्वस्थ तन के भीतर
स्वस्थ मन जो रहता है वही उसका सच्चा, सरल
रूप होता है। उसी मे वह मगन रहता है। वह रोग
को क्या जाने, शोक को क्या जाने। वह प्रकृति पुत्र,
वन विहारी स्वच्छन्द पक्षी की भाति, कल-कल करती
हुई बहती मुक्त सरिता की भाति तथा सुन्दर, सुगन्धित
एव मोहक पुष्प की भाति जीवन भर शाश्वत आनन्द का
स्वयं तो उपयोग करता ही रहता है, साथ ही साथ
उसके सम्पर्क मे जो आते है वे भी समान रूप से लाभा-
न्वित हुये बिना नहीं रहते।

रोग, पाप, सताप, भय, अभाव, जीवन नहीं है।
इनसे लिपटे रहना, जीवन नहीं है। वह तो जीवित
मृत्यु है। जीवन है, रोग, पाप, सताप आदि से
मुक्त रहना अथवा इनसे मुक्ति पाना जो ...
पर जीवन के ही पास हो सकता है।

कहना है कि एक स्वस्थ मनुष्य अपने स्वास्थ्य से विलग में आनन्दी नहीं रह सकता। क्योंकि स्वास्थ्य ही जीवन है। स्वास्थ्य और जीवन किसी जमाने में पर्याय-वाची शब्द थे—एक ही चीज के दो नाम। एक ग्रीक कवि स्वास्थ्य के बगैर जीवन का अस्तित्व ही नहीं मानता और एक रोमन कवि के विचार से सिर्फ रहने का नाम जीवन नहीं, अपितु आनन्दपूर्वक एवं स्वस्थ रहने का नाम जीवन है। प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान मनुष्य को इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करना सिखाता है। आज से बहुत पहले, हजरत मूसा के समय में लोग प्राकृतिक जीवन अधिक व्यतीत करते थे जिसकी वजह से उनकी आयु भी लम्बी होती थी। परमात्मा ने मनुष्य को तो स्वस्थ पैदा किया था, किन्तु उसने प्रकृति और परमात्मा के कल्याणकारी स्वास्थ्य सम्बधी नियमों के प्रतिकूल नष्ट करके अथवा उन्हें भंग करके आज अपने को रोगों का पुंज बना लिया है—रोगी बना लिया है। यही वजह है कि वह अपने समय से पूर्व ही रोग-शैया पर एड़िया रगड़ते-रगड़ते इस संसार से कूच कर जाता है। थोरो ने ठीक ही लिखा है, कुदरत के विरुद्ध काम करना तथा उसके काम में बाधा उपस्थित करना, उससे बगावत और स्वयं से दुश्मनी करना है। कुदरत किसी को माफ नही करती। जार्ज राइस के मतानुसार आप किसी रोग को अच्छा करही नही सकते। आप प्रकृति और परमात्मा का सहारा लेकर रोगी के शरीर को दोषमुक्त कीजिये, उसका रोग अपने आप चला जायगा।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली या प्राकृतिक जीवन कोई विशिष्ट उपचार पद्धति न होकर जीवन-यापन का अटूट नियम वा मुख्य प्राणी-धर्म है। इस धर्म की उप-योगिता उन्ही भाग्यवान प्राणियों के लिये है जो उसमे आस्था रखते हैं और जो इसका प्राणपण से पालन करके लाभ उठाना चाहते है। पर हम मे से कितने भाग्यवान ऐसे है जो इस मानव-धर्म का पालन करते है? प्रकृति और परमात्मा के प्रति अटल और अटूट अनुराग रखते है? अथवा सही मानी मे आस्तिक है?

प्रकृति, पथ वह पथ है जिस पर चलकर कोई भी प्राणी जीवन की परिपूर्णता को, जीवन के सच्चे आनन्द को तथा जीवन के ध्येय को प्राप्त कर सकता है और

गया नहीं? दयासागर परमेश्वर और उसकी कृपा प्रकृति अपनी छत्र-छाया में प्राणीमात्र को जो उन ईसा माना है, पालन प्रदान करने के लिये प्रस्तुत जो रहती है। यहां तो जो शरण में आया अभय दान मिला।

स्वास्थ्य विशेषज्ञ 'वाट' से किसी ने पूछा कि सं में सबसे तन्दुरुस्त कौन लोग होते है? उसने उत्तर दि वे लोग, जिनका रसोइया स्वयं प्रकृति होती है कोठारी स्वयं आवश्यकता तथा जिनके लिये वायु, प्र आदि तत्वों के अतिरिक्त और कोई डाक्टर नही हो और जो व्यायाम और सात्विक भोजन के अतिरिक्त कि अन्य दवा का इस्तेमाल नही करते। इस उत्तर मे सत्यता है उसी का प्रचार मानव समाज में प्राकृतिक चिकित्सा—विज्ञान का उद्देश्य देश और जलवायु के अनुसार लोग तिक सादा भोजन करे। जीवन को संयमपूर्ण नियमित बनावे तथा अपने मस्तिष्क और हृदय आवश्यक एवं अनिष्टकारी भावनाओं—भय, क्रोध, द्वेष, सन्ताप, निराशा आदि से मुक्त रखकर पूर्वक स्वास्थ्य जीवन व्यतीत करें यही इस विज्ञान स्वास्थ्यमयय प्रधान लक्ष्य है।

प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध मे डाक्टर ट्रेल का मत स्पष्ट है। वह कहते है—दुनियां मे जितने डाक्टर हैं जो दवाओं मे कम विश्वास रखते है (चाहे किसी भी चिकित्सा-पद्धति के अनुयायी क्यों न हो) स्वास्थ्य प्रद रहनसहन (प्राकृतिक जीवन) कोही चिकि में मुख्य स्थान देते है। ऐसे डाक्टरो का ध्यान रोगी शरीर से विकार निकालने की तरफ और उसके और पुष्टि के लिये हवा, धूप, पानी जैसे आवश्यक सा को पहुचाने की ओर ज्यादा रहता है। स्वस्थ्य विज्ञा का मूल्य सिद्धान्त यही है और यही असली प्रणाली है। प्रकृति इसके एलावा कोई दूसरा रास्ता बताती और ईश्वर भी इसके एलावा कोई दूसरा नही सुझा सकता।

नैसर्गिक चिकित्सा प्रणाली का आविष्कार प्र वा ईश्वर के इशारो को समझने वाले कुछ

ात्मबली एव समझदार व्यक्तियो ने किया है जो रोगी हो अच्छा करने के ठेकेदारो की गुलामी से निकल भगाना चाहते थे। इन प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियो के साहसपूर्ण उद्योगो का ही यह फल है कि स्वास्थ्य-रक्षा एव रोग निवारण के सुनिश्चित नियमो—भगवन्नाम स्मरण, उपवास जीवन शक्ति, ब्रह्मचर्य, क्षारमय भोजन, जल, वायु एव प्रकाश के उपयोग का पता लग सका। इस तरह डाक्टर के० एल० शर्मा के शब्दो मे प्राकृतिक चिकित्सा उस जीवन प्रणाली का दूसरा नाम है जो हमे जाकर वैद्यो की गुलामी से सदा के लिये मुक्त कर देती है। जो लोग यह समझते है कि प्राकृतिक चिकित्सा कुछ ऐसी चीज है जिसे कराने के लिये किसी नये किस्म के डाक्टर के यहा जाना होता है अथवा किसी अस्पताल मे जाकर भर्ती होना पडता है वे गलती पर है। प्राकृतिक चिकित्सा केवल उन बहादुरो के लिये है जो अपने स्वास्थ्य शक्ति एव जीने की प्रधान जिम्मेदारी अपने कन्धो पर लेना चाहते है। प्राकृतिक चिकित्सा मे अन्य चिकित्सा प्रणालियो की भाति अ ध विश्वासी की तरह बिना समझे-बूझे अपने को किसी के हवाले नही करना होता, इसमे तो स्वय सब कुछ सीखना-समझना पडता है और सीखे हुए नियमो को जीवन का अ ग विशेष समझकर, उन्हे जीवन मे उतार कर उन पर उत्साहपूर्वक जीवन भर चलना होता है। हम कष्ट केवल इसलिये पाते है क्योकि हम गलतिया करते है गलतिया करनी बन्द करके ठीक तरह रहने लग कर ही हम कष्टो से बच सकते है। वह ठीक तरह से रहना क्या है? उसे केवल प्राकृतिक चिकित्सा सिखाती है। वह यह बताती है कि रोग, स्वास्थ्य सबधी नियमो के उल्लघन का फल होता है। उसके इस शिक्षण के कारण वह मानव-धर्म का एक अ ग है व्यापार, व्यवसाय अथवा माल बेचने की चीज नही।

प्राकृतिक चिकित्सा मे धर्म, आस्तिकता एव स्वास्थ्य का आपस मे सामञ्जस्य एव समावेश-समन्वय माना जाता है। अत प्राकृतिक चिकित्सा उस धर्म प्रणाली को कहेगे जिस पर चलने से सच्चे स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है जो स्थायी होता है। इसका आचरण ही रोगों से बचने और रोग होने पर उससे स्वय मुक्त होने का सहज, सरल उपाय है।

प्राकृतिक चिकित्सा हमें ऐसे नियमो का ज्ञान कराती है जिसे कोई अन्य चिकित्सा प्रणाली नही करा पाती। वह हमे बताती है कि, निराशा एव आशा के क्षणो मे अपने मन को किस प्रकार स्थिर रखना चाहिये कि हम ईश्वर की कृपा के पूर्णतया भागी बन सकें जो जीवन को सुखमय बनाने का एक मात्र उपाय है।

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग मुक्ति तो एक बहुत साधारण सी चीज है जिसकी विधि पशु-पक्षी तक जानते है और उनके पास पुस्तकें एव शिक्षक न रहने पर भी वे उस ज्ञान का ठीक-ठीक एव सफलतापूर्वक उपयोग करते है। प्राकृतिक चिकित्सा मे हमे सीधे ईश्वर और उसकी कृपा पर भरोसा करना होता है। इसके लिये हमे डाक्टर, वैद्य या किसी अन्य पण्डा-पुजारी की जरूरत नही होती। प्राकृतिक चिकित्सा का विशेषज्ञ हमे प्राकृतिक चिकित्सा की विधिया बताता है पर अन्य डाक्टर वैद्यो की भाति हमे अपना गुलाम नही बनाता। डाक्टर टिल्डन ने ईश्वर का एक नाम नियम रखा है। एक नियम के मातहत ही विश्व के सारे कार्य होते है। स्वास्थ्य के नियमो का पालन करना तथा प्राकृतिक जीवन के नियमो को जानना ही स्वास्थ्य की उस दशा को प्राप्त करने का जिसके लिये मनुष्य बहुत लालायित रहता है बीमा है स्वास्थ्य के नियम सृष्टि के आरम्भ से एक ही है। मनुष्य ने उनके केवल पालन करने की रीति मे फेर बदल की है जो उसकी अनधिकार चेष्टा है। डाक्टर डब्लू० ए० फिनले ने एक जगह पर ठीक लिखा है कि यदि लोगो को उन नियमो पर जिन पर मनुष्य का स्वास्थ्य निर्भर है, चलना न सिखाया गया तो निश्चय ही मनुष्य जाति का घोर शारीरिक और मानसिक ह्रास होकर रहेगा। डाक्टर फिनले का विश्वास है कि सौ वर्ष बाद का चिकित्सक दवा देने वाला नही, अपितु लोगो को प्राकृतिक जीवन का पाठ पढाकर उनके स्वास्थ्य की रक्षा करने वाला होगा, क्योकि लोगो मे बीमारी उसके लिये कलक होगी।

जैसा कि कुछ लोग गलती मे समझ बैठे हैं कि तिक जीवन या प्रकृति की ओर लौटने का म
या जगली-जीवन की पुनरावृत्ति। नही, व

जीवन, [illegible] एवं जीवन के [illegible] में [illegible] है, जिसमें [illegible] इन [illegible] का [illegible] किये बिना ही [illegible] को [illegible] प्राकृतिक नियमों का अनुसरण किया जाता है।

[illegible] जीवन [illegible] भी, इस [illegible] की [illegible] है। [illegible] इसके मूल सिद्धान्तों को [illegible], [illegible] में आविष्कार [illegible] नियमपूर्वक पालन करने में किसी को बीमार [illegible] नहीं [illegible]। प्रातः जागरण, उषापान, सूर्यनमस्कार, सात्विक भोजन एकादशी आदि व्रत, उपवास, तथा प्राणायाम आदि नियम इसके उदाहरण है।

प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी सिद्धान्त अटल, अचूक और अपरिवर्तन शील है। कारण, प्राकृतिक चिकित्सा में आज जिन छः तत्वों को उपकारी व गुणकारी समझकर काम मे लाया जाता है वे कल भी और सदैव ही उपयोग मे लायेजाते रहेंगे। ईश्वर, उसकी प्रकृति, एव सत्य—तीनो पर्यायवाची है, और तीनो सर्वव्यापक है। क्षिति, जल, पावक, गगन, तथा समीर सहित प्रकृति से मनुष्य-शरीर की रचना होना तथा उसमे परमात्मांश आत्मा का होना भी सत्य हे। अत. इन्हीं षट् तत्वो, जो सर्वव्यापक एव पृथ्वी पर सर्वत्र प्राप्य है, के द्वारा रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली भी सत्य और शाश्वत ही ठहरती है, जबकि अन्य सब चिकित्सा प्रणालिया मनुष्यकृत होने के कारण मिथ्योपचार की श्रेणी मे आती है। मनुष्य स्वयं अपूर्ण है, अत उसके अपूर्ण ज्ञान जनित किसी भी चिकित्सा–विधि के अपूर्ण होने मे शका की कोई गुन्जायश ही नही है।

डाक्टर जोसिया ओल्डफील्ड ने एक जगह लिखा है—यह अधिक अच्छा है कि लोगों को यह बताया जाय कि रोगो से बचा कैसे रहा जा सकता है बनिस्पत इसके कि रोग होने दिया जाय और तब उसकी दवा की जाय। यह अधिक आवश्यक है कि रोगियो को यह बताया जाय कि वे रोगी हुए तो क्यो हुए, बनिस्वत इसके कि उन्हे बोतलो, विषैली दवाऐं पिलायी जाये। यह अधिक युक्ति युक्त है कि सारी कमाई का पैसा स्वास्थ्य [illegible] हवा, सूर्य-प्रकाश, साग-सब्जी, फलों के [illegible] भोजन सम्बन्धी उचित शिक्षा, तथा प्राकृतिक जीवन की तालीम आदि पर खर्च किया जाय, बनिस्बत इस के उसे व्यर्थ में महंगी दवाइयों, डाक्टरों के बिल, इंजेक्शनों आदि में फूंका जाय। जब तक सृष्टि है तब तक यह सत्य भी कायम रहेगा कि मनुष्य जितना ही [illegible] और परमेश्वर के निकट रहने का यत्न करेगा वह [illegible] ही स्वास्थ्य एवं सुख-शान्ति का भागी होगा। क्योंकि ईश्वर के समीप और प्रकृति की गोद में रहने [illegible] के पास रोग, शोक, दुःख, या अशान्ति फटक [illegible] सकती।

रोगो की उत्तम चिकित्सा-प्रणाली वही है [illegible] शोधक, शामक, और पूरक—तीनो गुण साथ [illegible] और ये तीनो गुण प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली [illegible] मान है। इस चिकित्सा से रोग का कारण, शरीर [illegible] विजातीय द्रव्य का बहिष्करण होकर रोगी का [illegible] निर्मल बनता है जो इसका शोधक गुण है। इस [illegible] त्सा प्रणाली के सीधे-साधे प्रयोगो द्वारा रोगी को [illegible] आराम पहुंचता है, यह इसका शामक गुण है। [illegible] चिकित्सा से रोगी-शरीर को आवश्यक पोषक तत्व [illegible] उपलब्धि होती है, यह इसका पूरक गुण है।

साधारणत. प्रकृति प्रतिदिन मल, मूत्र, पसीना [illegible] श्वास के द्वारा हमारी देह के विकारो को बाहर [illegible] कर और देह के भीतरी अवयवों द्वारा ही [illegible] करके हमे स्वस्थ रखती है। रोग होने पर प्रकृति की [illegible] रीति का सहारा लेकर हम रोगमुक्त भी हो [illegible] जैसे प्रकृति, शरीर मे पैदा हुये मल और विष को बाहर निकाल कर और देह के भीतर ही उन्हे नष्ट [illegible] शरीर को स्वस्थ रखती है ठीक वैसे ही रोगी [illegible] रोगमुक्त करने की रीति का नाम प्राकृतिक [illegible] प्रकृति और केवल प्रकृति रोगो को दूर कर सकती है [illegible] करती है। हम लोग प्रकृति की उसके इस काम मे मदद कर सकते है और करते है। अर्थात् प्रकृति [illegible] निवारण के कार्य मे सहूलियते पैदा करना अथवा [illegible] हाथ बटाना मात्र एक कुशल प्राकृतिक चिकित्सक [illegible] त्वपूर्ण कर्तव्य होता है। क्योकि देह के रक्षात्मक

मूलक अवयवो को स्वस्थ करके देह की जीवनी और प्रतिरोध-क्षमता की वृद्धि करने, जो रोग की वेक चिकित्सा है, में प्रकृति को एक सहायक—एक गी की नितान्त आवश्यकता होती है जिसके मिलने ाम अच्छा और सन्तोषप्रद होता है।

ुमारे राष्ट्र पिता महात्मा गांधी ने अपने जीवन ने एक वार नही हजार बार बड़े जोरदार शब्दों ा था कि तन और मन को स्वस्थ रखने के लिये ाक जीवन अपनाना तथा उसमे किसी प्रकार का ाम होने के कारण रोग होने पर प्राकृतिक चिकित्सा ा मात्र ग्राह्य पद्धति है। डाक्टरी दवाएँ जिनसे करोडो लोग लाभ नही उठा सकते, हमारे लिये है। रोग के लक्षणों को दबाकर या दूर कर देने ः डाक्टर और रोगी का नाता टूट जाता है, मगर ाक चिकित्सा अपने रोगी को जीवन बिताने का एक ा सिखाती है, जिससे वह अपने घर मे रह कर तरह अपना जीवन बिता सके और आगे कभी ः न पड़े। वह अपने रोगी का उपचार कर चुकने के ासे नाता नही तोड़ बैठती। सच तो यह है कि साधारण डाक्टरो की दिलचस्पी अपने रोगी के ातम हो जाती है, वहा प्राकृतिक चिकित्सा की सच्ची स्पी शुरू होती है। प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति से ांट जाने के साथ ही रोगी के लिये एक ऐसी जीवन का आरम्भ होता है जिसमे पुनः रोग के लिये कोई ाश ही नही रहती। कुदरती इलाज या कोई तरीका यह दावा नही कर सकता कि उससे सब वीमारी दूर होती है। ऐसा यदि होता तो सभी अमर न हो ? लेकिन यह सच है कि जिन रोगों को प्राकृतिक ासा-प्रणाली मिटा नही सकती, मन का तौल खोये पूरी-पूरी शान्ति के साथ, उन रोगो का सामना और उन्हे सह लेने की ताकत वह अवश्य देती है।

ांधी जी ने अपने उपर्युक्त शब्दो मे प्राकृतिक ासा की सर्वाङ्गपूर्ण परिभाषा अपने स्वानुभव एवं ाशा मे गम्भीर खोज के वल पर ही की थी। फिर ाकृतिक चिकित्सा क्या है, इस सम्बन्ध मे आजकल तरह की धारणाये फैल रही हैं। स्वयं आधुनिक चिकित्सकों में भी मतैक्य नही है। ऐसी दशामें साधारण जनता तो गुमराह होगी ही। अतः हमें समझ लेना चाहिये कि प्राकृतिक चिकित्सा षट्-विधि है, जिसमे पच तत्वो और राम नाम, जो इस शरीर का जीवन है, से इलाज होता है। इस चिकित्सा-प्रणाली का पथ इतना सहज और सुगम है कि एक बार इसका आश्रय ग्रहण कर लेने के बाद हर व्यक्ति इसका सच्चा अनुरागी और अनुगामी बन जाता है।

इस चिकित्सा प्रणाली मे न आडम्बर होता है और न ढोंग जैसा कि अन्य डाक्टर अपने रोगियो को भुलावे मे रखकर उनसे द्रव्य ऐंठने के लिये प्रायः अखतियार करते है। इनके लिये न बडे-बड़े अस्पतालो के चकाचोंध की जरूरत है और न डिग्रीधारी डाक्टरो और नर्सों की ही। इसके लिये न तो दवाओ की फैक्टरियो की जरूरत है और न सूइयो, औजारो और डाक्टरों को लम्बी-लम्बी फीस देने की। इसमे जरूरत यदि है तो सिर्फ यही कि समझदारी और धैर्य के साथ अपना इलाज स्वय कर-लिया जाय।

यह चिकित्सा प्रणाली आम चिकित्सा प्रणालियो की अपेक्षा बहुत कम खर्चीली होने के कारण, हमारे निर्धन देश के लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है जिसे हमारे ग्रामीण भाई जो करोडो की सख्या मे है, आसानी से अपनाकर बिना दवा बिना डाक्टर के रोगो से मुक्ति पा सकते है।

सबसे वडी खूबी जो प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति मे है, वह यह है कि इसका समझदारी के साथ प्रयोग करने पर इससे लाभ के अतिरिक्त हानि की सम्भावना नही रहती। इसके सीधे सादे स्वाभाविक प्रयोगो से किसी प्रकार के दुख के बदले आनन्द ही प्राप्त होता है, और वह आनन्द बच्चे, जवान, बूढ़े-सब के लिये समान होता है, जबकि डाक्टरी आदि अन्य पद्धतियो मे जहरीली दवाइयां व्यवहार मे आती है। भयानक से भयानक जहर की सूइयां वदन मे भोंकी जाती है, तथा शरीर के अगो की जान लेवा चीड फाड़ वडी बुरी तरह की जाती है, जिनका स्मरण आते ही वडे वडे जवा मर्दों की भी आत्मा काप जाती है। [स्वसम्पादित 'स्वस्थ-जीवन' प्राकृतिक-चिकित्सा का इतिहास-विशेषाङ्क से साभार]

दूसरा अध्याय

प्राकृतिक चिकित्सा के दस आधारभूत सिद्धान्त

(१) सभी रोग एक, उनके कारण एक, उनकी चिकित्सा भी एक

रवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ने एक जगह लिखा है—'भारत की सदा से यही चेष्टा देखी जाती है कि वह अनेकता मे एकता स्थापित करना चाहता है। वह अनेक मार्गों को एक ही लक्ष्य की ओर अभिमुख करना चाहता है। वह बहुत के बीच किसी एक को निःसंशय रूप से, अन्तरतम रूप से उपलब्ध करना चाहता है। उसका सिद्धान्त या उद्देश्य यह है कि बाहर जो विभिन्नता दीख पडती है उसे नष्ट करके उसके भीतर जो निगूढ संयोग देख पडता है, उसे प्राप्त करना चाहिये।

गुरुदेव के उपर्युक्त कथन मे सोलहो आने सत्यता विद्यमान है। कारण, 'एकमेवद्वितीयं ब्रह्म' शास्त्रो मे आया ही है जिसका अर्थ है, ब्रह्म एक ही है, दूसरा नही, सभी दार्शनिक सिद्धान्तो मे इस अद्वैत सिद्धान्त का प्रमुख स्थान है। जिसके लिए कहा गया है कि उसे जान लेने पर फिर कुछ जानना शेष नही रह जाता।

प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान भी एक दर्शन है। इसके सिद्धान्तानुसार समस्त रोग वस्तुत एक ही है, उनका कारण एक ही है, तथा उनकी चिकित्सा भी एक ही है।

एक सत्य वस्तु जिस प्रकार विभिन्न रूपो मे प्रगट होती है, एक स्वर्ण जिस प्रकार विविध नाम और रूप के आभूषणो मे भासता है, उसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान का यह एक अटल सिद्धान्त है कि मानव शरीर में स्थित एक ही विजातीय द्रव्य अनेक रोगो के रूप मे तथा विभिन्न नामो से प्रगट और विख्यात होता है।

उपर्युक्त भारतीय संस्कृति के सिद्धान्तानुसार मानव शरीर एक और अभिन्न होता है। समूचा मनुष्य एक और अभिन्न है। सारा विश्व एक और अभिन्न है। अखिल ब्रह्माण्ड एक और अभिन्न है। सारे ब्रह्माण्ड को एक नियम के सूत्र मे बाधने वाली सत्ता की शक्ति एक अभिन्न है, और यही 'सर्वंखल्विद ब्रह्म का' अर्थ है। सत्ता का यही दार्शनिक सिद्धान्त, प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन का भी प्रमुख सिद्धान्त है।

सूक्ष्म रूप से देखने और विचार करने से मनुष्य को सताने वाले विभिन्न प्रकार के रोगो मे एकरूपता प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होगी। सारे रोग अनेक होते हुये भी वस्तुत एक ही होते हैं। केवल उनके रूप और प्रकार मे ही विभिन्नता होती है। इस तथ्य को एक दृष्टान्त देकर स्पष्ट किया जाता है—

एक घर में चार प्राणी रहते है। चारो अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करते है। उत्तेजक और मादक द्रव्यो का सेवन करते है। ठूंस-ठूंस कर अनाप-शनाप खाते हैं। कसरत नही करते। तथा निर्मल जल, सूर्यप्रकाश, तथा स्वच्छ वायु आदि प्राकृतिक उपादानो का उचित रूप मे सेवन नही करते। फलस्वरूप उन चारो प्राणियो के शरीर का रक्त विषाक्त हो उठता है। उनका शरीर दूषित मल, जिसको प्राकृतिक चिकित्सा की भाषा मे 'विजातीय द्रव्य' कहते है, से भर जाता है। परिणाम यह होता है कि उन चारो प्राणियो को, देर से या सवेरे, बीमार पड़ना ही पडता है ताकि प्रकृति को रोगो के रूप मे उनके भीतर स्थित उस विजातीय द्रव्य को निकालने और उन्हे पुन. स्वस्थ बना देने का मौका मिले।

परिस्थिति, आयु, प्रकृति, आदि के अनुसार उन चारो प्राणियो मे से प्रत्येक एक ही रोग से आक्रात नहीं भी हो सकता. हालाकि चारो के रोगो का कारण एक ही, है उनके शरीरो मे अप्राकृतिक जीवन-यापन जनित विजातीय द्रव्य की उपस्थिति। उनमे से किसी को दस्त आना शुरू हो सकता है, किसी को ज्वर आना, तो किसी को गठिया रोग, और किसी को बवासीर हो सकता है। ये सभी रोग एक दूसरे से भिन्न है, पर वस्तुत. वे एक ही हैं— अर्थात् शरीर मे उपस्थित विजातीय द्रव्य का बहिष्करण विभिन्न तरीकों से होना। अब प्रकृति के इस मल-बहिष्करण—कार्य मे रोगी और उसके चिकित्सक का क्या कर्तव्य

ना चाहिए। केवल प्रकृति के उस कल्याणकारी कार्य सहूलियत पैदा करना—उसे मदद देना। अर्थात् उप-त वा युक्ताहार से जीवनी शक्ति को बढाना तथा जलो-पचार, मिट्टी की पट्टी, सेक, मर्दन, एनिमा आदि से शरीर मल मार्गो को पूर्णत खोलकर उनको क्रियाशील कर ना ताकि वे शरीर के मल का वहिष्करण करने मे सफल । वस । इस तरह देखेगे कि ससार के सभी रोग वास्तव एक ही है, तथा उनके कारण, निदान, एव चिकित्सा भी एक ही है।

बहुधा ऐसा देखा गया है कि रोगी अपने किसी एक रोग का उपचार कराने प्राकृतिक चिकित्सक के पास आता , पर प्रकृतोपचार करने पर उस एक रोग के साथ-साथ रोगी के अन्य तमाम छोटे-मोटे विभिन्न नामधारी रोग भी सदैव के लिये उससे विदा हो जाते है। यह इस बात का ज्वलत प्रमाण है कि सभी रोग एक होते है और वे सब के सब एक ही प्रकार के इलाज से जाते भी है, क्योकि इन रोगो के होने का कारण केवल एक ही होता है—शरीर मे मल का एकत्र हो जाना।

(२) रोग के कारण कीटाणु नहीं—

उपर्युक्त विवेचन द्वारा शरीर मे एकत्र दूषित मल को रोगो का मात्र कारण मान लेने के बाद, इस बात की शंका ही नही रह जाती कि वस्तुत कीटाणु रोगो के कारण नही होते जैसा कि आधुनिक एलोपैथ-डाक्टरों की धारणा ही नही उनका सिद्धान्त भी है।

असलियत यह है कि यदि हम नियमित और सही आहार करने के अभ्यासी है तो कीटाणु-परमाणु जो सारे ससार मे फैले हुये है हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर वहां रह ही नही सकते, अपितु वे हमारे शरीर के अनगिनित स्वस्थ कोषो के रूप मे वदल जायेगे जिनसे शरीर का निर्माण हुआ है, किन्तु यदि हमारा खान-पान अनियमित एवं अप्राकृतिक है तो वे ही सर्वव्यापी परमाणु,हमारे शरीर मे असख्य कीटाणुओ का रूप धारण करके हमें अवश्य रोगी बनादेगे।

यह एक प्राकृतिक नियम है कि सृष्टि मे जितने पदार्थ है, इनके सूक्ष्म परमाणु अनवरत रूप से गतिशील रहते हैं। जिन वस्तुओ के परमाणु एक सी गति रखते हैं, उनमे परस्पर आकर्षण होता है, और विरुद्ध गति वाले परमाणु एक दूसरे से दूर भागते है। अत इस सिद्धान्तानुसार रोग के कीटाणुओ का अस्तित्व उन्ही शरीरों मे सम्भव है जिनमे पहले से ही रोग का कारण विजातीय द्रव्य विद्यमान होता है या जो रोगग्रस्त है, या जिनमे रोग के ग्रहण करने की काबिलियत है। लेकिन जिन शरीरो के भीतर, कीटाणुओ के विपरीत पोषक तत्व विद्यमान होगे अर्थात् जो विजातीय द्रव्य से सर्वथा मुक्त होगे और सही मानी में जो स्वस्थ होगे उन पर उपर्युक्त प्राकृतिक नियम के अनुसार कीटाणुओं का आक्रमण होना असम्भव है। और यदि यह कार्य सम्भव भी मानलिया जाय तो ऐसे शरीरो मे निषेधक शक्ति पहले से ही विद्यमान होने के कारण रोगाणुओ का विपकृत प्रभाव ही नष्ट हो जायगा और वे स्वय नाश को प्राप्त हो जावेगे। निर्मल शरीर मे ससार के सारे रोगाणु एक साथ मिलकर भी रोग उत्पन्न नही कर सकते। परन्तु जिस शरीर मे कीटाणुओ के पोषण योग्य मल विद्यमान है उसमे रोगाणु अवश्य उत्पन्न होगे पनपेगे तथा वृद्धि को प्राप्त होगे। इस तरह हम देखते है कि कीटाणु रोग के कारण नही होते वल्कि रोग ही कीटाणु के कारण है।

(३) रोग शत्रु नहीं, मित्र होते हैं:—

एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक का कथन है—तुम मुझे ज्वर दो, मै तुम्हे स्वास्थ्य देता हूं। अर्थात् मल पूरित शरीर को मल रहित करने के लिये ज्वरादि तीव्र रोग ही एक मात्र सच्चे उपाय हैं। शरीर में सदैव विजायती द्रव्य (मल) उत्पन्न होता रहता है, जिसको हमारे शरीर के मल-मार्ग (रोमकूप, गुर्दे, गुदा आदि) प्रतिदिन निकालते रहते है। यदि किसी कारण से उस मल को वाहर निकल जाने का रास्ता न मिले तो वह शरीर मे बीमारी उत्पन्न करके वाहर निकल जाने की प्रकृतित. कोशिश करता है। इसी स्थिति को रोग होना कहते है। इस तथ्य को समझ लेने के वाद यह स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यकता पडने पर मनुष्य को रोग होना कितना आवश्यक है। अथवा, दूसरे शब्दो मे, रोग हमारे शत्रु नही मित्र होते हैं जो हमे स्वास्थ्य देने आते है, लेने नही। दृष्टान्तस्वरूप मान लीजिये कि प्रकृति को पेट जनित मल को धोना है, तो इस कार्य को वह कै या दस्त की वीमारी पैदा कर सकती है, साथ मे पानी की प्रवल प्यास भी

हो सकती है और यदि इसे मस्तिष्क के विकार को साफ करना है तो जुकाम होगा, खांसी आयेगी और नाक के रास्ते पस आयेंगे, आदि।

हम जिसे रोग कहते है, वह वास्तव मे चिकित्सा है। रोग होने पर हमे अपनी गलतियो की तरफ निगाह दौड़ानी चाहिये। सोचना चाहिये कि हमने जो अपराध किये है उनका प्रायश्चित हमे रोगी बन कर करना पड़ रहा है जो अपने भले के लिये ही है। क्योकि अगर विकार शरीर मे रह जाते और अपनी गलतियों का सिलसिला भी जारी रहता तो भविष्य मे उसका कितना भयंकर परिणाम होता, कौन जाने! जीवन बेकार हो जाता, असमय मृत्यु हो जाती अथवा जाने क्या अनिष्ट होकर रहता। अतः हमे रोग से डरने का कोई कारण नही है, अपितु उसका हर हालत में स्वागत करना ही बुद्धिमानी है।

एक घेघा वाले रोगी की मै प्राकृतिक चिकित्सा कर रहा था। कुछ ही दिनो में घेघे की सूजन आठ आने कम होगयी। पर एक दिन पुन उभाड़ आया और उसकी सूजन कुछ बढी सी मालूम हुई, साथ ही साथ उसमें एक फोड़ा-सा भी बना, जिसमे से सेरो सड़ा पानी (पस) निकला, और दो एक दिन मे ही सूजन घट कर चार आने रह गयी। कहिये उस फोड़े को शत्रु समझे या मित्र।

जैसा कि अन्य चिकित्सा पद्धतियो मे होता है, प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति मे रोगो को शत्रु समझ कर उनसे लड़ा नही जाता। क्योकि रोग स्वयं कोई चीज नही होते जिनके साथ लडाई छेडी जाय। स्वास्थ्य के अभाव को ही रोग कहते है। स्वास्थ्य-निर्माण की कोशिश कीजिये रोग का कही पता न लगेगा।

प्रश्न हो सकता है कि यदि रोग—विशेषकर तीव्र रोग यदि शरीर की सफाई के लिये होने वाले प्रकृति के प्रयत्न के रूप मे होते है तो उनके कारण लोग मरते क्यो है! इसका उत्तर यह है कि रोगी मे या तो जीवन शक्ति बहुत कम बच रही होती है, या शरीर स्थित विजातीय द्रव्य की मात्रा अत्यधिक होती है, या उपचार अपर्याप्त वा हानिकार हुआ है। ऐसे वक्तो मे प्रकृति अपनी सफाई का कार्य करने मे असफल रह जाती है और रोगी मर जाता है।

कर सोने मे जो सुख मिलता है, भूख मे आहार जो आनन्द देता है, तथा विपत्ति मे ईश्वर और धैर्य का आश्रय लेने से जो शान्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार की सुख-शांति मनुष्य को रोग से मुक्त हो जाने के बाद मिलती है और मिलनी चाहिये। यदि रोग को दवा नहीं दिया गया तो रोग के चले जाने के बाद रोगी को इस तरह की अनुभूति होनी चाहिये कि उसका शरीर हल्का हो गया है-नया हो गया है, और एक बोझा सिर से उतर गया है। यदि यह अनुभूति नही होती तो समझना चाहिये कि प्रकृति, रोग द्वारा शरीर का जो कल्याण करना चाहती थी उसमे विघ्न पड गया है।

(४) प्रकृति स्वयं चिकित्सक है—

प्राकृतिक चिकित्सा मे यह माना जाता है कि जीवन का सञ्चालन एक विचित्र, आश्चर्यजनक एवं सर्व शक्तिमान शक्ति द्वारा होता है जो प्रत्येक के जीवन के पार्श्व मे रहकर उसके जन्म, मरण, स्वास्थ्य, रोग, आदि सभी बातो की देखभाल करती है। उस महान शक्ति को प्राकृतिक चिकित्सक, जीवन-शक्ति 'ईश्वर वादी', ईश्वरी शक्ति एव अनीश्वर वादी, 'प्रकृति' कहते हैं। यही शक्ति जब हमारे शरीरो मे रोग उत्पन्न करने की जरूरत समझती है तो रोग उत्पन्न करती है। और फिर वही शक्ति उस रोग से मुक्ति देकर आरोग्य भी प्रदान करती है चिकित्सा केवल वही शक्ति है जो हमारे भीतर वास करती है। केवल वही हमारे स्वास्थ्य को कायम रख सकती है और रोग को दूर कर सकती है। भगवान का श्री गीता मे श्री मुख वचन है—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

अर्थात्, मै ही समस्त प्राणियो की देह मे वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपान-समीकरण और बहिष्करण-इन दो प्राणधारक क्रियाओ से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्न (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, और चोष्य) को पचाता हू। अतः शरीर की समस्त क्रियाये और अवस्थाए एकमात्र उसी अन्तर्भूत शक्ति की ही उपस्थिति के फलस्वरूप होती है। वह न केवल शरीर विकारो को अपितु मानसिक विकारो को भी दूर करने वाला होता है।

हम मन्त्रमुग्ध होकर रह जाते हैं जब सोचते हैं कि

प्रकृति ने किस कौशल और बुद्धिमानी से मानव शरीर की रचना की है। मस्तिष्क, नाड़ी संस्थान, हृदय, यकृत, उत्पादन संस्थान—चाहे जिस अंग को लें उसके निर्माण और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये व्यवस्था करने मे जो महान कौशल दिखाया गया है उसे देख समझ कर चकित रह जाना पड़ता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि परमात्मा ने इस छोटे शरीर के भीतर ही उसकी साज संभार के लिये सारी आवश्यक वस्तुएं प्रस्तुत कर रखी हैं, जीवन शक्ति इन्ही वस्तुओ के योग से रोग होने पर रोगों का शमन करती है और जन्म से लेकर मरण तक यही शक्ति शरीर के निर्माण और सुधार का काम करती रहती है। यह शक्ति अपने प्रयोग मे तभी विफल होती है जब हम स्वयं अथवा मिथ्योपचारक अज्ञानवश उसके रास्ते मे रोड़े अटकाते है या उसके कार्य मे हस्तक्षेप करते है।

साधारण से साधारण बुद्धि भी इसे स्वीकार नही कर सकती कि हमारा उदार रचयिता प्रभु, हमें संसार में पैदा करके अन्न-वस्त्र तो दे, पर रोगी होने पर उससे मुक्ति पाने की हमे शक्ति न दे और डाक्टर रूपी अन्य व्यक्तियों का गुलाम बनने को मजबूर करे। नही, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति इस संसार मे ऐसी शक्ति लेकर पैदा हुआ है जिसकी मदद से वह अपने स्वास्थ्य की स्वय रक्षा कर सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा हमे इसी बात का ज्ञान कराती है।

प्रकृति 'स्वय' चिकित्सक है, इसके कुछ उदाहरण लीजिये। जब पानी पीते वक्त पानी हवा की नली में चला जाता है तो खासी पैदा करके कौन उसको ठीक करता है? जब तम्बाकू आदि कोई जहरीली चीज पेट मे चली जाती है तो कै के जरिये उसे कौन निकालता है? घाव हो जाने पर उसे कौन भरता है? हड्डी के टूट जाने पर उसे फिर से कौन जोड़ता है? प्रकृति ही तो? इसी तरह फोड़ा फुन्सी से लेकर कालरा, ताऊन, चेचक तक सभी रोग शरीर शुद्धि के लिये प्रकृति के प्रयास ही तो है अर्थात् ये रोग वास्तव मे रोग न होकर प्रकृति की चिकित्सा विधियां ही तो है। अत. यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि रोगी को रोग से मुक्ति अपने आपसे ही मिलती है अर्थात् रोगी के रोग का निवारण उसका शरीर स्वयं करता है। प्राकृतिक चिकित्सक का कार्य केवल इतना ही होता है कि वह शरीर के इस कार्य में उसकी मदद करे जिससे प्रकृति की रोग निवारण शक्ति का अपेक्षाकृत अधिक पूर्णता से प्रादुर्भाव हो सके आत्मसाहाय्य ही मनुष्य की मुक्तिका बीजमंत्र है रोग मुक्ति की सम्भावना चाहे कितनी ही कम क्यो न हो प्रकृति उसके लिये कुछ उठा नही रखती और रोगी के आखरी दम तक प्रयत्नशील रहती है।

(५) चिकित्सा रोग की नहीं रोगी के पूरे शरीर की होती है।

चिकित्सा की अन्य पद्धतियो मे रोगी के रोग की चिकित्सा पर जोर दिया जाता है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति मे रोगी के समूचे शरीर की चिकित्सा करके उसे नया बनाया जाता है। जिससे रोग के चिन्ह आपसे आप गायब हो जाते हैं। जिस चीज को चिकित्सा की अन्य पद्धतियों को अपनाने वाले रोग का नाम देते है उसे प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा मे रोग नही रोग का चिह्न कहते हैं। असल रोग तो शरीर के भीतर इकट्ठा हुआ विजातीय द्रव्य या विष होता है जो समय पाकर रोग विशेष द्वारा निकल जाने का प्रयत्न करता है। अत. चिकित्सा, रोग नामधारी रोग के चिह्नों की न होकर असल रोग की ही होनी युक्ति संगत है और यह प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली मे किया जाता है। सर दर्द होने पर सर दर्द की दवा नही होनी चाहिये, अपितु सर दर्द के कारणस्वरूप पाचन प्रणाली के दोष या समूचे शरीर के रक्त-दोष की होनी चाहिये जिसके करने से सर दर्द आपसे आप चला जायगा।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली से प्रत्येक रोग अच्छा किया जा सकता है पर प्रत्येक रोगी नही। प्रत्येक रोगी इसलिये नहीं, क्योकि रोगी का अच्छा होना या न होना नीचे लिखी पाच बातो पर निर्भर करता है:—

(१) रोगी के शरीर मे विजातीय द्रव्य (मल) की मात्रा कितनी है?

(२) रोग निवारण के लिये यथेष्ट जीवन-शक्ति उसमे है या नही?

(३) रोगी किस हदतक चिकित्सा कर चुका है या कर रहा है? वह धैर्य को खो तो नही रहा है?

(४) प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ करने से प्रथम रोगी

[illegible] कोई [illegible]
[illegible]

(५) [illegible] मे [illegible]
[illegible]

[illegible] रोगी मर जाते है। [illegible] चिकित्सा [illegible] होती है [illegible], [illegible] हार आदि [illegible] रोगी की मृत्यु आसानी से [illegible] होती है और मरने वाले को [illegible] भगवान मे [illegible] मिलता है। सुभीता होता है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि [illegible] प्राकृतिक चिकित्सा होने पर भी रोगी नही बच पाता जिसमे रोगी के पैतृक रोग उनकी [illegible] जीवन शक्ति [illegible] उनके पूर्व सस्कार कारण होते है। वरन प्राकृतिक चिकित्सको का तो दावा है कि प्राकृतिक चिकित्सा से कभी कोई हानि हो ही नही सकती। ऐसा कभी नही [illegible] गया कि अन्य चिकित्सा प्रणालियो से बच सकने वाला रोगी उस चिकित्सा से न बच सके और मर जाय।

(६) रोग-निदान की विशेष आवश्यकता नही—

जैसा कि ऊपर की पक्तियो से स्पष्ट है प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली मे रोग की चिकित्सा नही होती है अपितु रोगी की होती है। ऐसी दशा मे इस चिकित्सा मे रोग निदान का प्रश्न ही नही उठता। रोग-निदान की अनावश्यकता इस बात से और पुष्ट हो जाती है कि यदि प्रकृति को यह मन्जूर होता कि रोग या नीरोग अवस्था मे डाक्टर निदान के लिये मनुष्य शरीर के भीतरी अवयवो (हृदय वृक्क, आतो आदि) को और उनमे होने वाली स्पन्दन आदि प्राकृतिक क्रियाओ का होना देख सके तो वह मनुष्य के शरीर पर अपारदर्शी चमडे और मास का खोला चढा कर उसे मजबूती के साथ न जकडती बल्कि मानव शरीर पर एक ऐसा पारदर्शी झिल्ली लगा रखती जिसके जरिये [illegible]र लोग आसानी से देख पाते कि शरीर के भीतर के [illegible] मे क्या गड़बड़ी है और इस तरह रोग के निदान (Diagnosis) करने मे उन्हे सहूलियत होती। इ[illegible] होता है कि प्रकृति यह कभी नही चाहती कि को[illegible] [illegible] रोगी के निदान के लिये माथा पच्ची करे [illegible] चिकित्सा के लिये वह बिल्कुल अनावश्यक है [illegible] इस बात के करने की तो जरूरत ही नही मालूम [illegible] निदान की छानबीन के लिये मानव बुद्धि ने आज [illegible] यन्त्र बना रखे है वे प्राकृतिक और परमात्मा के गूढ [illegible] का पता लगाने मे अक्षम है अत. उनसे पूर्ण रूप [illegible] निदान की आशा ही कैसे की जा सकती है। औ[illegible] कारण है कि निदान करने वाले ९० प्रतिशत [illegible] लगभग गलत होते है और १० प्रतिशत जो स[illegible] है वे केवल दैवात या इत्तेफाकिया। अब यह [illegible] से समझा जा सकता है कि इन गलत निदानो पर आ[illegible] गलत चिकित्सा करके डाक्टर लोग मानव समाज [illegible] कितना अहित करते है कितनी बड़ी जिम्मेदारी अप[illegible] लेते है। जिनका यही परिणाम अतीव भयानक हो[illegible] जिसे निरीह रोगियो को भुगतना पड़ता है।

थोडी देर के लिये मान लिया जाय कि रोग का निदान भी हो गया। पर केवल निदान हो जाने से तो [illegible] चला नही जाता। इस सम्बन्ध मे बड़े बड़े डा[illegible] का अनुभव बताता है कि औषधोपचार पद्धति मे [illegible] निदान हो जाने पर भी बहुत से रोगो पर चिकित्सा [illegible] कोई प्रभाव नही पडता उल्टे बहुत से रोग जीर्णावस्था [illegible] परिणत हो जाते है और उनमे से कुछ तो असाध्य भी क[illegible] दे दिये जाते है।

ऐसी अवस्था मे प्राकृतिक पद्धति ही एक ऐसी प[illegible] ठहरती है जिसमे निदान की विशेष आवश्यकता [illegible] समझी गई और जो थोड़ा बहुत नाममात्र का नि[illegible] होता है उसमे किसी प्रकार की भूल के कारण [illegible] के बढने की कोई सम्भावना ही नही रहती।

इस प्रकार कह आये है कि रोगी के शरीर [illegible] विजातीय द्रव्य का एकत्र होना ही रोग है। निदान [illegible] लिये एक प्राकृतिक चिकित्सक को केवल यह देखना [illegible] है कि वह दुर्द्रव्य (वादीपन) शरीर के किस [illegible] मे स्थित है—सामने, बगल मे या पीछे अथवा समस्त श[illegible] मे व्याप्त है जिसके उदाहरण मोटे आदमी होते है [illegible] यदि वादीपन सामान्य हुआ तो उसे प्राकृतोपचार

रोगी नवजीवन और आरोग्य पा सकता है।

[illegible] रोगियों से पाला पड़ा है जिनका रोग [illegible] प्राकृतिक चिकित्सा से [illegible] में ही साधारण तौर पर [illegible] हो गये और चिकित्सा छोड़ बैठे पर [illegible] से [illegible] रोगियों का आरोग्य कुछ ही दिनों तक टिक सका और वे पुनः बीमार पड़ गये। कारण वही था—उभारों [illegible]।

एक उदाहरण दिया जाता है। एक व्यक्ति है जो दवा गोलियों और सुइयाँ ले-लेके अपनी जीवन शक्ति खो बैठा, फिर भी उसका रोग नहीं गया, बल्कि और असाध्य हो गया - उसकी नाड़ियों की शक्ति क्षीण हो गई। रक्त में विष भर गया सारा बदन सूज आया। मल-मार्गों के स्वाभाविक कार्य मे शिथिलता आने लगी, पाचन खराब हो गया। दस्त आने लगे। तथा भेजे मे भी कुछ खराबी आ गई। ऐसे रोगी को प्राकृतिक-चिकित्सा-प्रणाली ही क्यों, कोई भी चिकित्सा प्रणाली पलक मारते ठीक करने का वादा नही कर सकती। ऐसा रोगी कई वर्षों मे भी यदि अच्छा हो जाय तो भगवान की बड़ी कृपा समझनी चाहिए।

बहुधा देखा गया है कि किसी फकीर ने कोई यन्त्र दे दिया और रोगी का रोग जाता रहा, किसी ने कोई लटका बता दिया और मामूली-सा कोई रोग अच्छा हो गया, तथा किसी का रोग मानसोपचार आदि से मन्त्रवत चला गया। इन दशाओं मे हमे यह न भूलना चाहिए कि उपर्युक्त प्रयोग प्रायः उन्ही मौकों पर कारगर होते है—अपना चमत्कार दिखाते है जहा रोगी की वास्तविक चिकित्सा, प्रकृति समाप्त कर चुकी होती है अर्थात् रोग का कारण विजातीय द्रव्य, रोगी के शरीर से निकल चुका रहता है।

इसमे सन्देह नही कि कष्ट पीड़ित रोगी का रोग से जल्दी छुटकारा न मिलने के कारण, धैर्य छूट जाना सर्वथा स्वाभाविक है। किन्तु उसकी उस अधीरता को भी हमे उसके रोग का ही एक अंग समझ कर उसको धैर्य बधाना चाहिए और चिकित्साक्रम जारी रखकर उसको स्वस्थ बनाना चाहिए।

(८) प्राकृतिक चिकित्सा से दबे रोग उभड़ते हैं—

हां औषधोपचार से उभड़े रोग दब जाते है, वहा प्राकृतिक उपचार से दबे रोग उभड़ते है, और उभड़ सदा के लिए चले जाते है। प्राकृतिक चिकित्स इस स्वर्ण सिद्धान्त को समझने के लिए पहले हमे समझना होगा कि रोगोपचार मे उभाड़ से हमारा मतलब होता है।

'उभाड़' को चिकित्सा की भाषा मे रोग का तीव्र रोग की अपकर्षावस्था, पुराने रोग का प्रत्यावर्तन, 'आ रोग्यप्रद दारुण स्थिति,' 'रोग उपशम संकट,' Heal Crisis, तथा Curative Crisis आदि कई नामो पुकारते है। इसका सीधा-सादा मतलब है, जीर्ण के उपचार काल मे किसी समुचित समय पर उस रोग तीव्र प्रतिक्रिया का होना, या दबे रोग का प्राकृतोपच द्वारा अर्जित प्रबल जीवनी शक्ति के प्रभाव से जड़ से उ कर सदा के लिए चले जाने के लिए प्रस्तुत हो जा और थोड़े समय तक अपना जलवा दिखाकर रोगी पिंड हमेशा के लिए छोड़ देना। उभाड़ साधारणतः चार दिन या हद सेहद एक सप्ताह रहकर शांत हो जा है और शरीर को निरोग दशा मे छोड़ जाता है। उभा की क्रिया मे यह एक विलक्षण बात है कि रोगी के शरी मे जिस क्रम से जो-जो रोग पहले से दबे हुये रहते है उभाड़ काल मे उनके विपरीत क्रम से एक एक रोग उभड़ है और नाश को प्राप्त होते चले जाते है। और हर द रोग के उभाड़ के बीच मे जो वक्फा होता है वह सात क भाग देने पर कट जाने वाला कोई अंक होता है। जै यदि रोगी को पहले दस्त की बीमारी हुई और दवा दब गयी, फिर दर्द हुआ और वह भी दबा दिया गया, उसके बाद ज्वर हुआ, वह भी दब गया। तो प्राकृतोपचा से जब उभाड़ होने शुरू होगे तो सर्व प्रथम ज्वर की बीमारी ७ या १४ दिन पर उभड़ेगी और चली जायगी फिर दर्द उभड़ेगा उसके ७, १४ या २१ दिन बाद, और चला जायगा, और सब के बाद दस्त का रोग उभड़े दर्द के चले जाने के बाद, और रोगी को पूरा नीरो करके चला जायगा। इस सिद्धात के अपवाद भी हो सक है, पर साधारणतया ऐसा ही होते देखा गया है। इस तरह हम देखते है कि दबे रोग को उभड़ने में प्रकृति एक निश्चित काल तक काम करना पड़ता है, तत्पश्चा दूसरे दबे रोग को उभाड़ने मे, और उसके बाद तीसरे औ

चौथे। और हर तय्यारी के बाद उभाड होता है।-उदाहरणार्थ पलट पलट कर आने वाले मलेरिया ज्वर को लीजिये। प्राकृतोपचार करने पर इसमे कुछ दिनों तक ज्वर का बढना और तेज बना रहना आरम्भ हो जायेगा। यह उभाड़ है। प्रत्येक उभाड को तन्दुरुस्ती की एक मञ्जिल समझनी चाहिये, स्वास्थ्य के मार्ग की एक चट्टी, जहां हम दुख के बाद आराम और सुख पाते है। बादी के रोगो मे प्राय: सात घंटे, या सात के पहाड़े वाले घटे, अथवा सात घड़ी, सात पहर, या सात दिन, या सात सप्ताह आदि के हिसाब से रोग का उभाड़ होता है। इसे ही बारी-बारी से रोग का आना भी कहते हैं। परन्तु यह वस्तुतः रोग की उग्रता का विभिन्न कालों मे विभक्त हो जाना है।

यह सात का अङ्क प्रकृति की किताब मे एक बड़ा विचित्र अङ्क है। सात द्वीप है; सात समुद्र है; सात वर्ष तक बच्चा एकदम निस्सहाय होता है; चौदह वर्ष तक की अवस्था कुमारावस्था, इक्कीस वर्ष तक की किशोरावस्था अट्ठाईस वर्ष तक की जवानी, पैतीस वर्ष तक की अवस्था स्थिर प्रौढावस्था कहलाती है। इसी तरह सप्तक-चक्र, जीवनावस्था मे उसके एक प्रकार के उभाड़ ही हैं। तात्पर्य यह कि यह सात का अङ्क मनुष्य-जीवन की प्रत्येक अवस्था मे—और रोगो के उभाड मे भी सिद्धान्ततः लागू होता रहता है, जो एक अति गोपनीय प्राकृतिक रहस्य है जिससे भगवान की विचित्र लीला का आभास मिलता है।

उभाड़ के इस रोग सम्बन्धी प्राकृतिक नियम का अनुसधान करने वाला हिपोक्रेट्स था, और प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सा डा० विन्सिज इसके पूरक कहे जाते है।

सृष्टि के संचालन मे मुख्यत: प्रकृति की दो शक्तियां-रचनात्मक (Constructive) और विनाशक (Destructive)—विशेष रूप से कार्य करती है, जिनका उदाहरण ससार मे हम सर्वत्र देख सकते है। प्राकृतिक रोगोपचार मे प्रकृति की उपर्युक्त रचनात्मक शक्ति का कार्य होता है रोगी मे 'रोग उपशम सकट' (Curative crisis) उत्पन्न करके रोग से मुक्त कर देना। स्वस्थ्य बना देना। और विनाशक शक्ति का काम होता है रोगी मे विध्वसकारक 'रोग सकट' (Destructive Disease crisis) पैदा करके रोगी की मृत्यु का कारण बनना। यह पिछली अवस्था उस वक्त पैदा होती है जब रोगी के शरीर मे भरा विजातीय द्रव्य (मल) शरीर के मल बहिष्करण मार्गो—पेशाब, पाखाना, रोमकूपादि द्वारा किसी प्रकार शरीर से बाहर नही निकलता और वही पडा-पडा सडा करता है, और परिणाम उसका, रोगी का निधन होता है। कारण किसी की मृत्यु तभी होती है जब रोग उसके शरीर की विकार निवारक शक्ति से बहुत अधिक बढ जाता है।

जैसाकि कहा जा चुका है कि 'उभाड' या 'दारुण स्थिति' के उदाहरण न केवल रोग के सम्बन्ध मे ही, अपितु संसार मे सर्वत्र मिलते है। डाक्टर लिडल्हार ने समर और क्रान्तियो को बडे-बडे राज्यो का जीवन सम्बन्धी आरोग्यप्रद दारुणस्थिति माना है, सुधारो को धर्म सम्बन्धी तथा जनता की हड़ताल और बलवा को व्यवसाय और वाणिज्य सम्बन्धी।

इसी प्रकार गर्मियो मे किसी-किसी दिन बड़े जोरो से गर्मी होकर उमस बढ जाती है। उसे ऋतु उपशम सकट कह सकते है। क्योकि उसके थोडी देर बाद ही निश्चय रूप से हवा तेजी से बहने लगती है या आधी आजाती है अथवा कुछ फुहारे पड़ने लगती है, या तेज बारिश होने लगती है और शान्ति मिल जाती है।

जाडा बीत जाने के बाद पतझड से पेड़ो की पत्तिया गिर पड़ती है और वे नगे बूचे हो जाते है। प्रकृति ऐसा करके उन पेड़ो के लिये रोग उपशम सकट (Curative crisis) उपस्थित करती है। क्योकि उसके बाद थोडे ही अर्से मे वे पहले से भी अधिक हरे भरे और पल्लवित दिखने लगते हैं।

जब नौकर हमारा कमरा बुहारता है तो गर्द-गुबार से वह कमरा भर जाता है। यह उस सुन्दर कमरे के लिये Curative Crisis ही तो है। क्योकि कमरा बुहार जाने के बाद जब गर्द व गुबार साफ हो जाता है तो कमरा साफ होकर कितना खूबसूरत निकल आता हैं।

मल-मूत्र निकलने के पहले जो थोड़ी-सी तकलीफ के साथ हाजत महसूस होती है। वह प्रकृति की 'उभाड' क्रिया के अतिरिक्त और क्या है? क्योकि उस हाजत के बाद तबियत पहले से कितनी हल्की हो जाती है।

[illegible] प्रतिकार मानसिक धर्म से लाना, उनको पदार्थ करना, [illegible] और [illegible], [illegible] निकालने [illegible] सभी [illegible] किया है [illegible] है।

सभी तीव्र रोग जैसे हैजा, ज्वर, खसरा, चेचक आदि हमारे अप्राकृतिक शरीर मे, शरीर की जीवनी शक्ति द्वारा, मल को बाहर निकाल फेंकने मे सहायता करते है। उसे हम रोग का तीव्र रूप, या तीव्र उभार सकट कह सकते है।

इन सब से हम देख सकते है कि उपचार काल मे रोग का उभाड़ होना कितना कल्याणकारी, मगलमय, और आवश्यक है, जिससे घबराने और डरने की जगह प्रसन्न होना चाहिये। यह अवश्य है कि उभार को जल्दी दबाना या उसे विकट रूप देना बुद्धिमानी नहीं है। उस काल मे जल्दीबाजी से काम लेना हानि कर सकता है। प्रकृति द्वारा शनै. शनैः कार्य सम्पादन होने का नियम यहा भी लागू होने देना चाहिये। यही उत्तम है। परेशान करने वाले उभाड उन्ही रोगियो की चिकित्सा मे अक्सर होते देखे गये है जो चिकित्सा के पहले बहुत सी विषाक्त औषधिया लिये रहते है, और जिनको निकालने मे प्राकृतिक चिकित्सक बहुधा जल्दी करते है। जो प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते है और दवाओ से बचे रहते है उनके बीमार पड़ने पर निसर्गोपचार काल मे या तो उभाड़ होता ही नही, या बहुत हल्के होते है, और इतने ही से वे पूर्णरूप स्वस्थ हो जाते है।

(९)मन, शरीर, तथा आत्मा–तीनो की चिकित्सा साथ-साथ

शरीर, मन, और आत्मा-तीनो के स्वास्थ्य-सामञ्जस्य का नाम पूर्ण स्वास्थ्य है। प्राकृतोपचार मे इन तीनो की स्वास्थ्योन्नति पर बराबर ध्यान रखा जाता है। यह प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली की सबसे बडी विशेषता है। प्राकृतिक-चिकित्सक, मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को उसके शारीरिक स्वास्थ्य से अधिक आवश्यक और गुरुतर समझते है, और आत्मिक स्वास्थ्य वा आत्म-बल को सर्वोपरि एवं गुरुतम। एक प्राकृतिक चिकित्सक की नजर मे शारीरिक स्वास्थ्य का अर्थ केवल रोगरहित शरीर ही नही होता, अपितु वह यह भी जानता है मनुष्य के शरीर के स्वास्थ्य का सम्बन्ध उसके मन और आत्मा से बड़ा घनिष्ट होता है।

सुकरात कहा करता था कि अगर मनुष्य केवल बलवान ही हो तो इसमे उसकी कोई विशेषता नही है। पशु मनुष्य नही है, सब मास है, शरीर ही शरीर है। इसका [illegible] कुछ नहीं है। परन्तु जीवित मनुष्य मे शरीर और मन का अविच्छेद्य सम्बन्ध होता है। दोनों को मिलाकर एक समझना होगा और एक को छोड़कर दूसरे का विकास किया भी नही जासकता। मस्तिष्क को उन्नत रखते हुये शरीर को बलशाली करने वाला व्यक्ति सत्य के मार्ग पर होता है।

प्राकृतिक जीवन प्राकृतिक रहन सहन तथा प्राकृतिक खान पान हमारे जीवन मे सात्विकता लाकर हमें ऊपर उठाते है। मन का सयम करके हमे आध्यात्म की ओर ले जायेंगे। यह असत्य नही है कि यदि मानवजाति प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन का अनुकरण करे उसे अपनाये तो निर्दयता, पाशुविकता, पैशाचिकता ससार से एकदम उठ जाय और पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आवे। रोगी शरीर, निर्बल आत्मा और कलुषित मन तीनों की चिकित्सा के लिये ईश प्रार्थना अथवा राम नाम जप जो प्राकृतिक चिकित्सा का प्रमुख अङ्ग है, रामबाण चिकित्सा है।

(१०) प्राकृतोपचार में उत्तेजक औषधियो के दिये जाने का प्रश्न ही नहीं

औषधोपचार प्रणाली का सिद्धांत है कि रोग बाहरी चीज है, जिसका शरीर पर आक्रमण हुआ करता है, अत शक्तिशाली से शक्तिशाली साधन का प्रयोग करके उससे लडना चाहिये और उसे परास्त करना चाहिये। इसलिये डाक्टर और वैद्य विषैली दवाइयों जैसे–पारा, अफीम, सखिया आदि का प्रयोग करके रोगो से निपटने का यत्न करते है और इस बात का जरा भी ख्याल नही करते कि विष आखिर विष ही है, चाहे उसकी मात्रा कम हो या अधिक। वह हर हालत मे जीवन के लिये घातक है, जिससे रोग बजाय घटने के दिन पर दिन गम्भीर ही होता जाता है। इसलिये प्राकृतोपचार मे उत्तेजक औषधियों का प्रयोग आवश्यक ही नही अपितु हानिकारक भी समझा जाता है। कारण प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त इस सम्बन्ध मे औषधोपचार प्रणाली के उपर्युक्त सिद्धात से एकदम उल्

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली मे रोग बाहरी चीज
अपितु शरीर के भीतर की चीज मानी जाती है,
को बिलकुल उन्ही प्राकृतिक साधनों द्वारा दूर किया
ा है, जिनके प्रयत्न से रोग आवश्यकता पडने पर
न होता है। दूसरे शब्दो मे जिन प्राकृतिक तरीको
अखत्यार करके हम रोगो से बचे रहते है, उन्ही
को को रोग होने पर भी अखत्यार करके हम रोग
निवारण करते है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक
न का चालक उसको एक ही वाष्प शक्ति (Steam)
केवल मशीन घुमाकर आगे भी चला देता है और
भी। शरीर की जो शक्ति हमे उत्तम स्वास्थ्य प्रदान
ती है, वही रोग से मुक्त भी करती है। एञ्जिन
चलता है तो चालक उसको आगे चलाने के लिए
बाहरी चीज एञ्जिन की मशीन मे नही डालता।
प्रकार जब हमारा शरीर रोगी होता है तो उसको
ोग करने के लिये हमे किसी बाहरी चीज (औषधि)
आवश्यकता नही होती और न होनी चाहिये।

डाक्टरों की औषधियो मे शरीर के लिये आवश्यक
क जीवन तत्व नही होते उनके प्रयोग से शरीर मे
प्रतिक्रिया होती है वह वास्तव मे औषधियों की
होती वरन् उस शरीर की होती है जिसमे वे
वहीन औषधिया प्रवेश करती है। क्या औषधियो
कुछ भी प्रभाव एक मुर्दे पर हो सकता है? अतः
यह नही है कि बाहर से ली गई औषधियां शरीर
क्या असर डालती हैं? वलिक प्रश्न यह है कि बाहर
ी गई उन औषधियो से शरीर कैसे निपटता है।
र यही कोशिश करेगा कि वे आवश्यक दुर्द्रव्य
ी से जल्दी शरीर से निकल जाये और वह निर्मल
जाय। प्राकृतिक चिकित्सक जीवन तत्व हीन विषैली
धियो को शरीर के लिये अनावश्यक ही नही अपितु
क भी समझते है।

औषधिया—विशेपकर विषैली औषधियो को जब हम
तन्दुरुस्ती की हालत मे ग्रहण नही करते—न कर सकते,
तो समझ में नही आता वे रोग की दशा मे क्यों सेवन
कराई जाती है और किस आशा से। जो औषधि तन्दु-
रुस्ती की दशा मे आदमी को हानि कर सकती है वही
बीमार पड़ने पर उसको लाभ करे वह कैसे मुमकिन
हो सकता है?

जैसाकि सिद्धान्त नं०४ मे बताया गया है कि
प्रकृति ही चिकित्सक है अर्थात रोग से मुक्ति प्रकृति
देती है, दवा नही औषधि का काम रोग छुडाना नही
है। औषधि तो वह सामग्री है जो प्रकृति
के द्वारा मरम्मत के काम मे लगायी जाती है। ऐसा इस
लिये कि वह शरीर द्वारा ग्राह्य है और अवयवो के गठन
मे अथवा आन्तरिक क्रियाओ मे जैसे विजातीय द्रव्य के
निकालने मे लगायी जासकती है। औषधि की यही वास्तविक
परिभाषा है जो औषधि चिकित्सकों की औषधि परिभाषा
से भिन्न है। इस तरह सभी सप्राण खाद्य पदार्थ औषधि
कहलायेगे—हवा, धूप, जल से लेकर फल सब्जी और बहुत
सी विषहीन जडी बूटियों तक जो खाद्य वस्तुओं की तरह
ही काममे आसकती है आती हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में
येही खाद्य-पदार्थ खाद्य भी है और औषधिया भी। ये पहले
खाद्य है फिर औषधिया है।

इस तरह काष्ठ औषधियां प्राकृतिक चिकित्सा के
अन्तर्गत है। पर शर्त यह है कि वे ताजी हो अनुत्तेजक
हो और अकेली या सजातीय होने पर दो तीन से अधिक
एक साथ न मिलायी जाय साथ ही साथ मात्रा में अधिक
न हो और रोगी के स्वभाव के अनुकूल हों। प्राकृतोपचार
में काष्ठ-औषधौपचार और खाद्योपचार एक वस्तु के दो
नाम हैं। प्राय सभी उद्भिज्ज पदार्थो मेजो मनुष्य के भोजन
का अगहो सकते है प्राणकणो के लिये अच्छी और ताजी
काष्ठौषधियां मौजूद होती है जिनका प्रयोग प्राकृतोपचार
के रोगी के स्वभाव की सहायता पहुँचाने के लिये धडल्ले
के साथ करते हैं।

तीसरा अध्याय

प्राकृतिक चिकित्सा ही विशुद्ध आयुर्वेद है

'आयुर्वेद' शब्द का अर्थ है 'जीवन का ज्ञान'। 'आयुर्वेद' शब्द से किसी विशेष ग्रन्थ का [illegible] होता। अर्थात् 'आयुर्वेद' नाम से न [illegible] का कोई किताब है, न भेषज-चिकित्सा का कोई ग्रन्थ और न ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथवा अथर्ववेद [illegible] कोई वेद हो। इसीलिये 'आयुर्वेद' को 'आयुर्विज्ञान' कहना ही ठीक है। क्योंकि 'आयुर्वेद' अथवा 'आयुर्विज्ञान' से विज्ञान की उस शाखा का ज्ञान होता है, जिसका सम्बन्ध मनुष्य के जीवन-मरण से है। अर्थात् विज्ञान की वह शाखा जिसके द्वारा एक स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा हो, रोगग्रस्त व्यक्ति को रोग से मुक्ति मिले, आतुरो के कष्टो का निवारण हो, तथा मनुष्य की आयु लम्बी हो, आयुर्विज्ञान अथवा आयुर्वेद है।

दूसरा लक्षण विशुद्ध आयुर्वेद का उसका अपौरुषेय होना है। अपौरुषेय, अर्थात् मनुष्यकृत न होना। जिस प्रकार चारो वेद अपौरुषेय हैं उसी प्रकार विशुद्ध आयुर्वेद भी अपौरुषेय है। वस्तुत. वेद वा आयुर्वेद का तात्विक अर्थ 'ज्ञान' है। ज्ञान किसी बात का हो, वह सदा अपौरुषेय होता है।

विशुद्ध आयुर्वेद का तीसरा लक्षण उसका अनादि और अनन्त होना है। वेदो की भाति ही विशुद्ध आयुर्वेद भी अनादि और अनन्त है। यही वजह है कि प्राकृतिक चिकित्सा जो सही अर्थों मे विशुद्ध आयुर्वेद है, का जितना अच्छा वर्णन वेदो मे है उतना अच्छा वर्णन ससार के किसी भी चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ मे मिलना दुर्लभ है।

जीवन को कैसे जीना चाहिये सर्वप्रथम यह बताना या ज्ञान कराना, विशुद्ध आयुर्वेद का चौथा लक्षण है। यजुर्वेद मे मनुष्यों के लिये दिनचर्या, रात्रिचर्या, तथा ऋतुचर्या का जो विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है, वह विशुद्ध आयुर्वेद ही है। चरक मे वर्णित 'प्राज्ञ:प्रागेव तत्कुर्याद्धितं विद्याद्यदात्मन:' न्यायानुसार जीवन को इस ढग से जीना चाहिये कि रोग हो ही न।

सब रोगो का मूल कारण शरीरस्थित विजाती[illegible] है, चिकित्सा-विज्ञान के इस मूल सिद्धान्त को मान[illegible] इसे मानते हुये तदनुसार रोगो की चिकित्सा करना, आयुर्वेद का पाचवा लक्षण है। यथा—

> रोगाः सर्वेऽपि मंदेऽग्नौ सुतरामुदराणि च।
> अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैः जायन्ते मल संचया[illegible]
>
> —

अर्थात् सब रोग मल-सचय और मन्दाग्नि से[illegible] हैं। सब विकारो का सम्बन्ध उदर से है। [illegible] मन्दाग्नि का कारण होता है और वह अजीर्ण [illegible] (मल अथवा विजातीय द्रव्य) के कारण होता है।

> अग्नि दोषान्मनुष्याणां रोगसंघाःपृथग्विधाः।
> मल वृद्ध्या प्रवर्तन्ते विशेषेणोदराणि तु॥

अर्थात् जठराग्नि के दोष से रोगो की जमात[illegible] होती है। मल (विजातीय द्रव्य) वृद्धि रोगो का, विशेषकर उदर रोगो का कारण होती है।

> सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।
> तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहित सेवनम्॥

अर्थात् सभी रोगो का कारण कुपित (Ferm[illegible] सड़ा हुआ) मल (विजातीय द्रव्य, Foreign matte[illegible] है। और उनके प्रकोप का कारण विविध अहित आ[illegible] विहार का सेवन है।

> कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्।
> यत्र संगः खवैगुण्याद् व्याधिस्तत्रोपजायते॥
>
> —[illegible]

अर्थात्, कुपित हुये दोष (विषाक्त विजातीय[illegible] रक्त द्वारा शरीर में परिभ्रमण करते हुये रक्तवहा [illegible] मे रुकावट आजाने के कारण जहा रुक जाते हैं, व्याधि की उत्पत्ति होती है।

> 'दोष एवहि सर्वेषां रोगाणामेक कारणम्'
>
> —

अर्थात्, सब रोगो का एकमेव कारण 'दोष' ([illegible] तीय द्रव्य) है।

'आहारस्य रसः शेषो यो न पक्वोग्निलाघवात्'
समूलं सर्वं रोगाणाम् आम इत्यभिधीयते।,

अर्थात्, मन्दाग्नि होने से अपक्व रस रह जाता है। का नाम आम (दोष या विजायतीय द्रव्य) है। वही रोगो का कारण है।

यत्रस्थमामे विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारः जातः"

अर्थात्, जिस देश मे आम (विजातीय द्रव्य) संगृहीत ता है, उसी मे अनेक विकार हो जाते है विशुद्ध युर्वेद मे मिथ्या आहार विहार ही समस्त रोगो का रण माना जाता है और उसका सुधार ही उनका ारण। यह विशुद्ध आयुर्वेद का छठा लक्षण अथवा ात है। यथा.—

"अति भोजनं रोग मूलम्"

अर्थात्, आवश्यकता से अधिक भोजन करना रोग की है।

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान् मरणंवा नियच्छति॥

अर्थात्, आहार के अन्तिम रूप वीर्य की रक्षा प्रयत्न क करनी चाहिये। इसका क्षय करना (मिथ्या विहार) त रोगो का कारण होता है।

विशुद्ध आयुर्वेद मे मिथ्या आहार विहार के अन्तर्गत गो के तीन कारण माने जाते हैं—विषयो का अतियोग, योग, तथा मिथ्या योग। मर्यादा से अधिक सेवन तियोग' है, जैसे अधिक भोजन करना, अधिक स्त्री ग करना, आदि। बिल्कुल न सेवन करना 'अयोग' लाता है, जैसे शरीर की किसी इन्द्रिय से उसका स्वा-विक कार्य बिल्कुल न लेना। तथा विषयो का गलत से सेवन 'मिथ्या योग' कहलाता है, जसे, जिह्वा के ाय रस से वशीभूत होकर अधिक मिर्च-मसाला-तेल-ई आदि अखाद्य वस्तुओ से युक्त आहार ग्रहण करना दे। इस तरह शरीर की पाचो इन्द्रियो—नेत्र, जिह्वा, सिका, कर्ण तथा, चर्म के क्रमश पाचो विषयो—रूप, , गंध, शब्द, तथा स्पर्श के सेवन की गलतियो के रण ही रोग होते है।

'मिथ्या आहार से रोगो की उत्पत्ति'—सिद्धांत के रमाण विशुद्ध आयुर्वेद से एक बडी सख्या में उद्धृत जा सकते हैं। उनमे से केवल दो और नीचे दिये जा रहे हैं:—

तत्तद्वृद्धिकराहार विहारा तिनिषेवणात्
दोष-धातु-मलानां हि वृद्धिरुक्ता भिषग्वरैः।

—चरक

अर्थात्, श्रेष्ठ चिकित्सक दोप बढ़ाने वाले आहार-विहार मे ज्यादती करने से दोष, धातु, और मल की वृद्धि मानते है।

'येनाहार विहारेण रोगाणामुद्भवो भवेत्'

—चरक

अर्थात्, आहार-विहार के कारण रोग पैदा होते हैं।

'आहार-सुधार से रोगो की निवृत्ति,—सिद्धात के प्रमाण भी विशुद्ध आयुर्वेद मे भरे पड़े है। यथा:—

यद्यपथ्यं किमौषध्याः यदि पथ्यं किमौषधैः।
पथ्येसति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणम्॥
पथ्ये असति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणम्॥

अर्थात्, यदि अपथ्य हो, यानी आहार-विहार गलत हो तो दवा से क्या होना है, और पथ्य हो ता दवा की दरकार क्या है? तब रोग होगा ही क्यो?

'न चाहारसमं किञ्चिद् भैषज्यमुपलभ्यते
शक्यतेप्यन्नमात्रेण नरः कर्तुं निरामयः
भेषजोपपन्नोपि निराहारो न शक्यते
तस्माद् भिषग्भिराहारो महाभैषज्यमुच्यते
विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते
न तु पथ्य विहीनस्य भेषजानां शतैरपि
पथ्य सेविनमारोग्यं गुणेन भजतेनरम्
अपथ्य सेविनं क्षिप्रं रोगः समभिमर्दति।,

अर्थात्, आहार के समान कोई दवा नही है। केवल आहार-सुधार द्वारा रोगी मनुष्य को रोग मुक्त किया जा सकता है। दवा दे और आहार की परवा न करे तो कुछ न होगा, सिर्फ इसीलिये भिषको ने आहार को महान भैषज्य (औषधि) कहा है। रोग दवा के विना पथ्यमात्र से अच्छा हो सकता है, और पथ्य ठीक न रखने पर सैकड़ो दवायें भी कुछ नही कर सकती। पथ्य पर चलने वाले नीरोग रहते हैं, और अपथ्य सेवी को रोग जल्दी पछाड़ता है।

विशुद्ध आयुर्वेद मे रोगो की एकता अत. उपचार की एकता—'रोगाद्वैताचिकित्सा द्वैता' (unity of disease and unity of cure) अथवा (Oneness of

diseases and oneness of their cure) में विश्वास किया जाता है। यह उसका सातवा लक्षण है। यथा:—

'त एवापरि संख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि
निदान वेदना वर्ण स्थान संस्थान नामभिः,

अर्थात्, रोगो के अनगिनित नाम जो पड गये है। वह सिर्फ यह समझने के लिये कि पीडा शरीर के किस अङ्ग मे और किस तरह की है। रोग के निदान से स्थान-भेद से, वेदना के प्रकार से तथा रंग से रोगो के नाम अलग-अलग पड जाते है, (अन्यथा, रोग एक ही होता है—शरीर के किसी स्थान पर या समूचे शरीर मे दोष अथवा विजायतीय द्रव्य की उपस्थिति, अत उस दोष—विजायतीय द्रव्य को दूरकर देना ही वास्तविक चिकित्सा है जो प्रत्येक रोग मे केवल एक ही प्रकार की होती है।)

और कहा है—

विकारनामा कशलो न जिह्रीयात कदाचन ।
नहि सर्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रु वास्थितिः ॥

अर्थात्, सब रोगो के नाम न रख पाने मे कोई सकोच की बात नही है; रोग का यही नाम होना चाहिये, ऐसो कोई शर्त नही है।

एक जगह स्पष्ट उल्लेख है—

'रोगत्वं एक विधं रुक् सामान्यात्'

अर्थात्, सब रोगो मे वेदना एक सर्वसामान्य लक्षण होने के कारण रोग असख्य होने पर भी रोगत्व एक है।

सुश्रुत में लिखा है—

'तत्र संचितानां खलु दोषाणां स्तब्धपूर्ण कोष्ठता
पीतावभासता, मन्दोष्मतां चांगानां गौरव—
मालस्य चय कारण विद्वे षश्चेति लिगानि भवन्ति।,

अर्थात्, शरीर मे दोष—सचय होने से आतो मे भारीपन लगना, पीला दिखाई देना, या त्वचा के वर्ण मे कुछ पीलापन, शरीर मे हरारत, अङ्गों का भारीपन, आलस्य बढना, और दोषो का सचय करने वाले कारणो की ओर विद्वेष ये लक्षण होते हैं। भला किस रोग मे ये सब, अथवा इनमें से कुछ लक्षण नही मिलते ?

अत. जिन कर्म—प्रकार—वा द्रव्य से शरीर हल्का हो (दोष मिटे) वह लङ्घन ही सभी रोगो का एक मात्र उपचार है। यह है विशुद्ध आयुर्वेद मे प्रतिपादित रो[ग] के उपचार की एकता यथा:—

'शरीर लाघव करं यद्‌द्रव्यं कर्म वा पुनः तल्लंघनमिति'
—सुश्[ुत]

अर्थात् लङ्घन से सभी रोगो का कारण शरीर स्थि[त] दोष (विजातीय द्रव्य) शरीर से निकल जाता है [या] पचपचा जाता है जिससे शरीर हल्का हो जाता है। इसी लिये एक लङ्घन सभी रोगो का एकमात्र उपचार है।

इस 'लङ्घन' शब्द का यहा केवल 'उपवास' अर्थ नही लगाना चाहिए। बल्कि 'लङ्घन' से मुराद वे सभी प्राकृतिक उपचार है जो प्राकृतिक चिकित्सा मे रोगो के निवारण में प्रयुक्त होते हैं। जैसे वमन, विरेचन, एनिमा, भाप-नहान, जल तत्व के प्रयोग, वायु तत्व के प्रयोग, अग्नि तत्व के प्रयोग, पृथ्वी तत्व के प्रयोग तथा आकाश तत्व के प्रयोग यथा—

चतुष्प्रकारा संशुद्धि, पिपासा, मारुतातपौ,
पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेतिलङ्घनम्।
—चरक

अर्थात् लङ्घन से मतलब शरीर सशोधन के निम्न लिखित दस उपायो से है—

(१) वमन (कै करना)
(२) विरेचन (ऊपर से कोई चीज पिलाकर दस्त लाना)
(३) एनिमा।
(४) भाप-नहान।
(५) पिपासा आदि दूर करने के लिये जल तत्व के विविध प्रयोग।
(६) रोग-निवृत्ति के लिये वायु तत्व के विविध प्रयोग।
(७) रोग-निवृत्ति के लिये अग्नि तत्व के विविध प्रयोग।
(८) रोग-निवृत्ति के लिये पृथ्वी तत्व के विविध प्रयोग जिनमे खाद्य-चिकित्सा और मृत्तिका चिकित्सा भी शामिल है।
(९) रोग-निवृत्ति के लिये आकाश तत्व के विविध प्रयोग जैसे उपवास, नीद आदि।
(१०) व्यायाम।

इस तरह विशुद्ध आयुर्वेद मे रोगो की चिकित्सा में 'दोष-सशोधन' क्रिया को प्रधानता दी जाती है। क्योंकि अन्य उपायो द्वारा शान्त किये हुये दोष बाद को [illegible]

भी पुन. रोगजनक हो सकते है; परन्तु जो रोग एक बार दोष-सशोधन क्रिया द्वारा दूर हो जाते है, वे बाद को फिर कभी नही होते । यथा—

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनः,
येतु संशोधनैः शुद्धा न तेषांपुनरुद्भवः ।

विशुद्ध आयुर्वेद की यह 'दोष-सशोधन' वाली चिकित्सा ही वह आदर्श चिकित्सा है जिससे हुये रोग मिट जाते है और नये रोग होने नही पाते । इसमे रोग के आसानी से दूर होने के साथ ही औषधियो के कारण प्राय नये पैदा होने वाले रोगो का डर बिल्कुल नही रहता : यथा—

याह्यु दीर्ण शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ।
सा क्रिया न तु या व्याधि हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥

विशुद्ध आयुर्वेद मे किसी रोग के लिये औषधियो का विधान न होना उसका आठवा लक्षण है । चरक चिकित्सा स्थान आयुर्वेद चिकित्सा का आधार माना जाता है । इन अध्यायो मे चिकित्सा का जो वर्णन है उनमे दोष सशोधन द्वारा रोग निवारण को ही चिकित्सा की सज्ञा दीगयी है । दूसरे शब्दो मे पचकर्मादि द्वारा रोगो को दूर करना ही वास्तविक चिकित्सा है और औषधियो द्वारा रोगोको दूर करनेको चिकित्सा कहना गलत है । क्योकि सभी रोगो का उपचार पचकर्म के प्रयोग करने से होता है औषधियों के प्रयोगो से नही । यथा—

भगवन पञ्च कर्माणि समस्तानि प्रथक तथा ।
निर्दिष्टन्यास् यानांतु सर्वेपामेव भैपज्यं ॥
दोप जस्त्यामयःकश्चिद्यस्मैतानि भिषग्वर : ।
तस्युः शक्तानिशयते साध्यस्य क्रियया सत. ॥

सुश्रुत के अध्ययन से भी यही बात प्रमाणित होती है कि दोष संशोधन ही चिकित्सा है अथवा चिकित्सा का अर्थ ही दोप संशोधन है औषधि प्रयोग नही । यथा:-

द्विविधास्तु व्याधयः शस्त्र साध्या स्नेहादिभिर्यो साध्यश्च ।
तत्र शस्त्र साध्येपु स्नेहादिभिर्यो न प्रतिपिध्यते, स्नेहादिभिर्योसाध्येपु शस्त्र कर्म न क्रियते ।

सु० सू० २४

विशुद्ध आयुर्वेद मे औषधियो की भाति ही अस्त्र चिकित्सा(Surgery)का भी स्थान न होना या नाम मात्र को स्थान होना, उसका नवा लक्षण है, जिनके भी प्रमाण मे उपर्युक्त सुश्रुत का सूत्र २४ पर्याप्त है जिसमे कहा गया है कि रोग चाहे शस्त्र साध्य ही क्यो न हो उसकी सही चिकित्सा अस्त्र प्रयोग नही अपितु दोष सशोधन (पचकर्म द्वारा) ही है । इसके अतिरिक्त, वैद्य श्री व्य०म० गोगटे के शब्दो मे, शस्त्रकर्म के प्रसग ही कम उपस्थित हो ऐसी विचार सारिणी या स्वास्थ्य-सरक्षण आदि (विशुद्ध)आयुर्वेद मे प्रतिपादित है इसीलिये (विशुद्ध) आयुर्वेद-पद्धति मे अस्त्र-चिकित्सा का उतना स्थान नही है । क्योकि शास्त्रोक्त स्वास्थ्य सरक्षण करने वाले नियमो का यथावत परिपालन करने से रोग होने के प्रसग ही बहुत कम आते है, अत कोई रोग शस्त्र-क्रिया साध्य है, अथवा औषधि चिकित्सा साध्य,इस बात को जानने की कोई आवश्यकता नहीं होती । और इसलिये विशुद्ध आयुर्वेद मे औषधि चिकित्सा और अस्त्र–चिकित्सा—दोनो का स्थान नही है, या यदि है तो नाम मात्र को ही है ।

पास के ही आरोग्यकारी उपादानो, अर्थात् सर्वत्र प्राप्त, सहज प्राप्त, तथा सर्व सुलभ महत्तत्व एवं पच-महाभूतो, जो हमारे अस्तित्व के कारण है और जिनसे ही हमारा शरीर बना है, से समस्त रोगो की सफल चिकित्सा होना विशुद्ध आयुर्वेद का दसवां और अन्तिम लक्षण है । यथा'—

'अथार्वाडे. नमेतास्वेवाऽप्स्वन्विच्छेति'

—गोपथ ब्राह्मण १४

अर्थात् अब पासही है उसे ढूंढो । वह पास ही है । मतलव यह कि रोग होने पर उसकी दवा ढूंढने कही दूर न जाओ, अपितु वह पास ही है, यानी भगवन्नाम, आकाशतत्व, वायुतत्व, अग्नितत्व, जलतत्व, तथा पृथ्वी तत्व—ये छ चीजे जो मनुष्य-जीवन के आधार है, पास ही हैं, इन्ही मे उस रोग की दवा ढूढो, और उसका ही प्रयोग करके स्वास्थ्य–लाभ करो ।

अव विशुद्ध आयुर्वेद के उपर्युक्त वर्णित दसो लक्षणो का मिलान प्राकृतिक चिकित्सा के दस आधार भूत सिद्धान्तो से कीजिये तो आपको पता चलेगा कि जो विशुद्ध आयुर्वेद के लक्षण है वे ही हूवहू प्राकृतिक चिकित्सा के भी हैं । अर्थात् –

(१) प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ है 'जीवन का तत्व ज्ञान' ।

(२) महत्तत्व एव पच महाभूत समन्वित प्राकृतिक

diseases and oneness of their cure) मे विश्वास किया जाता है। यह उसका सातवा लक्षण है। यथा—

'त एवापरि संख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि
निदान वेदना वर्ण स्थान संस्थान नामभिः,

अर्थात्, रोगो के अनगिनित नाम जो पड गये है। वह सिर्फ यह समझने के लिये कि पीडा शरीर के किस अङ्ग मे और किस तरह की है। रोग के निदान से स्थान-भेद से, वेदना के प्रकार से तथा रग से रोगो के नाम अलग-अलग पड़ जाते है, (अन्यथा, रोग एक ही होता है—शरीर के किसी स्थान पर या समूचे शरीर मे दोप अथवा विजायतीय द्रव्य की उपस्थिति, अत उस दोप—विजायतीय द्रव्य को दूरकर देना ही वास्तविक चिकित्सा है जो प्रत्येक रोग मे केवल एक ही प्रकार की होती है।)

और कहा है—

विकारनामा कशलो न जिव्हीयात कदाचन ।
नहि सर्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थिति ॥

अर्थात्, सब रोगो के नाम न रख पाने मे कोई सकोच की वात नही है; रोग का यही नाम होना चाहिये, ऐसी कोई शर्त नही है।

एक जगह स्पष्ट उल्लेख है—

'रोगत्वं एक विधं रुक् सामान्यात्'

अर्थात्, सब रोगो मे वेदना एक सर्वसामान्य लक्षण होने के कारण रोग असख्य होने पर भी रोगत्व एक है।

सुश्रुत मे लिखा है—

'तत्र संचितानां खलु दोषाणां स्तब्धपूर्ण कोष्ठता
पीतावभासता, मन्दोष्मतां चांगानां गौरव—
मालस्य चय कारण विद्वेषश्चेति लिगानि भवन्ति।,

अर्थात्, शरीर मे दोप–सचय होने से आतो मे भारीपन लगना, पीला दिखाई देना, या त्वचा के वर्ण मे कुछ पोलापन, शरीर मे हरारत, अङ्गो का भारीपन, आलस्य वढना, और दोपो का संचय करने वाले कारणो की ओर विद्वेप ये लक्षण होते है। भला किस रोग मे ये सव, अथवा इनमें से कुछ लक्षण नही मिलते ?

अत जिन कर्म—प्रकार–वा द्रव्य से शरीर हल्का हो (दोप मिटे) वह लङ्घन ही सभी रोगो का एक मात्र उपचार है। यह है विशुद्ध आयुर्वेद मे प्रतिपादित रो[गो] के उपचार की एकता यथा.—

'शरीर लाघव कर्ं यद्द्रव्यं कर्म वा पुनः तल्लंघनमिति।'

—सुश्रु[त]

अर्थात् लङ्घन से सभी रोगो का कारण शरीर स्थि[त] दोप (विजातीय द्रव्य) शरीर से निकल जाता है [या] पचपचा जाता है जिससे शरीर हल्का हो जाता है। इसी लिये एक लङ्घन सभी रोगो का एकमात्र उपचार है।

इस 'लङ्घन' शब्द का यहा केवल 'उपवास' अ[र्थ] नही लगाना चाहिए। वल्कि 'लङ्घन' से मुराद वे सर्व प्राकृतिक उपचार है जो प्राकृतिक चिकित्सा मे रोगो [के] निवारण में प्रयुक्त होते हैं। जैसे वमन, विरेचन, एनिमा भाप-नहान, जल तत्व के प्रयोग, वायु तत्व के प्रयोग अग्नि तत्व के प्रयोग, पृथ्वी तत्व के प्रयोग तथा आका[श] तत्व के प्रयोग यथा—

चतुष्प्रकारा सशुद्धि, पिपासा, मारुतातपौ,
पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेतिलङ्घनम्।

—च[रक]

अर्थात् लङ्घन से मतलव शरीर सशोधन के नि[म्न]लिखित दस उपायो से है—

(१) वमन (कै करना)
(२) विरेचन (ऊपर से कोई चीज पिलाकर दस्त लाना)
(३) एनिमा।
(४) भाप-नहान।
(५) पिपासा आदि दूर करने के लिये जल तत्व के विवि[ध] प्रयोग।
(६) रोग-निवृत्ति के लिये वायु तत्व के विविध प्रयोग।
(७) रोग-निवृत्ति के लिये अग्नि तत्व के विविध प्रयोग।
(८) रोग-निवृत्ति के लिये पृथ्वी तत्व के विवि[ध] प्रयोग जिनमे खाद्य-चिकित्सा और मृत्तिका चिकित्[सा] भी शामिल है।
(९) रोग-निवृत्ति के लिये आकाश तत्व के विविध प्रयो[ग] जैसे उपवास, नीद आदि।
(१०) व्यायाम।

इस तरह विशुद्ध आयुर्वेद मे रोगो की चिकित्सा मे 'दोप-सशोधन' क्रिया को प्रधानता दी जाती है। क्योंकि अन्य उपायो द्वारा शान्त किये हुये दोप वाद को क[भी]

भी पुन रोगजनक हो सकते है, परन्तु जो रोग एक बार दोष-सशोधन क्रिया द्वारा दूर हो जाते है, वे बाद को फिर कभी नही होते । यथा—

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनः,
येतु संशोधनैः शुद्धा न तेषांपुनरुद्भवः ।

विशुद्ध आयुर्वेद की यह 'दोष-सशोधन' वाली चिकित्सा ही वह आदर्श चिकित्सा है जिससे हुये रोग मिट जाते है और नये रोग होने नही पाते । इसमे रोग के आसानी से दूर होने के साथ ही औषधियो के कारण प्राय नये पैदा होने वाले रोगो का डर बिल्कुल नही रहता ; यथा—

याह्य दीर्ण शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ।
सा क्रिया न तु या व्याधि हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥

विशुद्ध आयुर्वेद मे किसी रोग के लिये औषधियो का विधान न होना उसका आठवा लक्षण है । चरक चिकित्सा स्थान आयुर्वेद चिकित्सा का आधार माना जाता है । इन अध्यायो मे चिकित्सा का जो वर्णन है उनमे दोष सशोधन द्वारा रोग निवारण को ही चिकित्सा की सज्ञा दीगयी है । दूसरे शब्दो मे पंचकर्मादि द्वारा रोगों को दूर करना ही वास्तविक चिकित्सा है और औषधियो द्वारा रोगो को दूर करने को चिकित्सा कहना गलत है । क्योकि सभी रोगो का उपचार पचकर्म के प्रयोग करने से होता है औषधियों के प्रयोगो से नही । यथा—

भगवन पञ्च कर्मणि समस्तानि प्रथक तथा ।
निर्दिष्टन्याम् यानांतु सर्वेषामेव भैपज्यं ॥
दोष जस्त्यामयःकश्चिद्यस्सैतानि भिषग्वर : ।
तस्युः शक्तानिशयते साध्यस्य क्रियया सत. ॥

सुश्रुत के अध्ययन से भी यही बात प्रमाणित होती है कि दोष सशोधन ही चिकित्सा है अथवा चिकित्सा का अर्थ ही दोष संशोधन है औषधि प्रयोग नही । यथा -

द्विविधास्तु व्याधयः शस्त्र साध्या स्नेहादिभिर्यो साध्यश्च ।
तत्र शस्त्र साध्येपु स्नेहादिभिर्यो न प्रतिषिध्यते, स्नेहादिभिर्योसाध्येपु शस्त्र कर्म न क्रियते ।

सु० सू० २४

विशुद्ध आयुर्वेद मे औषधियो की भाति ही अस्त्र चिकित्सा (Surgery) का भी स्थान न होना या नाम मात्र को स्थान होना, उसका नवा लक्षण है, जिसके भी प्रमाण मे उपर्युक्त सुश्रुत का सूत्र २४ पर्याप्त है जिसमे कहा गया है कि रोग चाहे शस्त्र साध्य ही क्यो न हो उसकी सही चिकित्सा अस्त्र प्रयोग नही अपितु दोष सशोधन (पञ्चकर्म द्वारा) ही है । इसके अतिरिक्त, वैद्य श्री त्र्य० म० गोगटे के शब्दो मे, शस्त्रकर्म के प्रसग ही कम उपस्थित हो ऐसी विचार सारिणी या स्वास्थ्य-सरक्षण आदि (विशुद्ध) आयुर्वेद मे प्रतिपादित है इसीलिये (विशुद्ध) आयुर्वेद-पद्धति मे अस्त्र-चिकित्सा का उतना स्थान नही है । क्योकि शास्त्रोक्त स्वास्थ्य सरक्षण करने वाले नियमो का यथावत परिपालन करने से रोग होने के प्रसग ही बहुत कम आते है, अत कोई रोग शस्त्र-क्रिया साध्य है, अथवा औषधि चिकित्सा साध्य, इस बात को जानने की कोई आवश्यकता नही होती । और इसलिये विशुद्ध आयुर्वेद मे औषधि चिकित्सा और अस्त्र–चिकित्सा—दोनो का स्थान नही है, या यदि है तो नाम मात्र को ही है ।

पास के ही आरोग्यकारी उपादानो, अर्थात् सर्वत्र प्राप्त, सहज प्राप्त, तथा सर्व सुलभ महत्तत्व एव पच-महाभूतो, जो हमारे अस्तित्व के कारण है और जिनसे ही हमारा शरीर बना है, से समस्त रोगो की सफल चिकित्सा होना विशुद्ध आयुर्वेद का दसवां और अन्तिम लक्षण है । यथा –

'अथार्वाडे. नमेतास्वेवाऽप्स्वन्विच्छेति'

—गोपथ ब्राह्मण १ ४

अर्थात् अब पासही है उसे ढूंढो । वह पास ही है । मतलब यह कि रोग होने पर उसकी दवा ढूंढने कही दूर न जाओ, अपितु वह पास ही है, यानी भगवन्नाम, आकाश-तत्व, वायुतत्व, अग्नितत्व, जलतत्व, तथा पृथ्वी तत्व–ये छ चीजे जो मनुष्य-जीवन के आधार है, पास ही हैं, इन्ही मे उस रोग की दवा ढूढो, और उसका ही प्रयोग करके स्वास्थ्य–लाभ करो ।

अब विशुद्ध आयुर्वेद के उपर्युक्त वर्णित दसो लक्षणो का मिलान प्राकृतिक चिकित्सा के दस आधार भूत सिद्धान्तो से कीजिये तो आपको पता चलेगा कि जो विशुद्ध आयुर्वेद के लक्षण है वे ही हूबहू प्राकृतिक चिकित्सा के भी हैं । अर्थात् –

(१) प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ है 'जीवन का तत्व ज्ञान' ।

(२) महत्तत्व एव पच महाभूत समन्वित प्राकृतिक

चिकित्सा 'अपौरुषेय' है, मनुष्यकृत नही ।

(३) महत्तत्व एव पचमहाभूत समन्वित प्राकृतिक-चिकित्सा अनादि और अनन्त है।

(४) प्राकृतिक चिकित्सा, जीवन-पद्धति का दूसरा नाम है। यह जीवन को जीने की कला सिखाती है।

(५) प्राकृतिक चिकित्सा मे शरीर स्थित विजातीय द्रव्य को ही रोगो का मूल कारण माना जाता है।

(६) प्राकृतिक चिकित्सा में मिथ्या आहार-विहार से रोगो की उत्पत्ति तथा उनके सुधार से रोगो की निवृत्ति होती है।

(७) प्राकृतिक चिकित्सा मे रोगो की एकता, अत: उपचार की भी एकता मानी जाती है।

(८) प्राकृतिक चिकित्सा मे औषधियो का विधान नही है; विशेषकर उत्तेजक औषधियो का।

(९) प्राकृतिक चिकित्सा मे अस्त्र-चिकित्सा (Surgery) को कोई स्थान प्राप्त नही है।

(१०) प्राकृतिक चिकित्सा के साधन, मात्र भगवन्नाम और पचमहाभूत है।

इनके अतिरिक्त महर्षि चरक का सूत्र है:—

'हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्यहिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥

अर्थात् हितमय, अहितमय, सुखमय, दुख:मय, आयु, तथा आयु के लिये हितकर एव अहितकर द्रव्य गुण, कर्म, आयु का प्रमाण एव लक्षण जिस शास्त्र में वर्णित होता है उसे आयुर्वेद (विशुद्ध) कहते है। विशुद्ध आयुर्वेद का प्रयोजन भी हमे आचार्यो ने इस प्रकार बताया है।

"स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकार प्रशमनं च इति आयुर्वेदस्य प्रयोजनम् ॥

और ये ही प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र की परिभाषा एव उसके उद्देश्य है।

अत सब प्रकार से यही सिद्ध होता है कि प्राकृतिक चिकित्सा ही वास्तव मे लोक प्रसिद्ध विशुद्ध आयुर्वेद है।

प्रचलित कथित आयुर्वेद, विशुद्ध आयुर्वेद नहीं

प्रचलित कथित आयुर्वेद के हिमायती विद्वान वैद्यगण हमे क्षमा करेंगे यदि हम कहे कि आजकल जिसे आयुर्वेद कहकर पुकारा जाता है वह भेषज-चिकित्सा भले ही हो, विशुद्ध आयुर्वेद निश्चय ही नही है। और वह 'अपौरुषेय' भी नही है, तथा न अनादि और न अनन्त ही। अपने इस कथन के प्रमाण मे खुद कुछ न कहकर भिवानी (हिसार) के प्रोफेसर गंगाचरण शर्मा आयुर्वेदाचार्य के एक लेख का साराश देना ही उचित समझता हूँ। वह लिखते है, हमे यह जानना चाहिये कि आयुर्वेद का वास्तविक स्वरूप और इतिहास क्या है, यानी आज का आयुर्वेद शत प्रतिशत शुद्ध ही है या उसमे कोई अशुद्धि भी है। अफसोस की बात तो यह है कि हम आज के आयुर्वेद के अन्दर किसी प्रकार की अशुद्धि मानते ही नही हैं।

अथर्ववेद सबसे अन्तिम वेद है। उसके पहले आयुर्वेद का ही प्रचार था। अथर्ववेद काल के पहले भेषज और शल्य चिकिसा का तो कोई नाम भी नही जानता था। उस जमाने मे लोग भेषज चिकित्सा पर बिलकुल विश्वास नही करते थे। अत उस समय जनता का विश्वास जमाने के लिये भेषज चिकित्सा विहीन विशुद्ध आयुर्वेद मे भेषज चिकित्सा को भी घुसेड़ कर तथा उसे विकृति और अशुद्ध आयुर्वेद को ब्रह्मा के मुख से प्रादुर्भूत हुआ बताकर जनता का विश्वास जमाया गया था जैसा कि सुश्रुत मे भी एक स्थान पर आया है:—

इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्ग मथर्व-
वेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः।
श्लोक शत सहस्र अध्याय सहस्रं च-
कृतवान् स्वयंभुः

जिसका सारांश यह है कि इस अथर्ववेद के भेषज-प्रयोग सहित आयुर्वेद को ब्रह्माजी ने प्रजा उत्पन्न करने से पहले ही एक लक्ष श्लोक और एक सहस्र अध्यायो में बनाया। कितनी कपोल कल्पित कथा है यह ? न तो ब्रह्मा जी की बनाई हुई कही कोई ब्रह्मासहिता नामक आयुर्वेद सहिता नही उसके कही होने का कोई प्रमाण मिलता है। इतना मात्र सत्य अवश्य है कि अथर्ववेद में आयुर्वेद का थोड़ा सा वर्णन आया है। बस।

विशुद्ध आयुर्वेद कसे बना, इसका भी एक इतिहास है। अर्थात ईसा से लगभग ५५० वर्ष पूर्व जब पृथ्वी पर जन-सख्या बढी साथ ही विविध रोगो की सख्या और उनकी प्रबलता भी, तो कहा जाता है कि तब जनता को दुखी देख कर उस काल मे प्रादुर्भूत भेषजीय आयुर्वेद के आदि प्रवर्तक आत्रेय पुनर्वसु और भरद्वाजादि ऋषियो में जनता के क

को निवारण करने हेतु गोष्ठियां और परस्पर विचार विनिमय होने लगे। अन्त में निष्कर्ष यह निकला कि जंगलों में रहने वाले तपस्वी, योगी, ग्वाले तथा व्याध लोग जंगली जड़ी बूटियों के प्रयोग द्वारा अपने रोगों की निवृति स्वयं कर लेते है अतः उन लोगो से मिलकर जगली औषधियो का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। फलतः उन्होने जंगल मे रहने वाले लोगों से कुछेक जड़ी बूटियों का ज्ञान प्राप्त किया और आगे आगे इस कार्य मे उन्नति करते चलेगये। जितना जितना ज्ञान जंगली जड़ी बूटियों का वे प्राप्त करते गये उतना अथर्ववेद मे लिपि बद्ध करते गये। इसके अतिरिक्त यज्ञों मे मारे जाने वाले पशुओ के मृत शरीरों से उन्होने अस्थि सन्धि पेशी और शिरा स्नायुओ का भी कुछ ज्ञान प्राप्त किया और उसे भी अथर्व वेद में लिख दिया जो आज भी वहां विद्यमान है। इससे यह सिद्ध हो जाता है। कि भेषजीय आयुर्वेद अथवा अशुद्ध आयुर्वेद का काल ईसा से लगभग ५५० वर्ष पूर्व से अथवा अथर्ववेद काल से ही आरम्भ होता है और उससे पहले विशुद्ध अपौरुषेय अनादि और अनन्त आयुर्वेद अथवा प्राकृतिक चिकित्सा का ही प्रचार था।

आत्रेय पुनर्वसु ने आत्रेय सहिता का निर्माण किया जिसका प्रतिसस्कार उनके मरने के ६००वर्ष बाद कनिष्क राजा के राजत्व कालमे चरक के७०० वर्ष बाद जब वाग्भट का समय आया तो उस जमाने के चिकित्सकों ने विशुद्ध आयुर्वेद को जो उस समय तक भेषजीय आयुर्वेद बन चुका था उसमें रसो, भस्मो एवं अन्य विषैली औषधियों को जोड कर एकदम ही भ्रष्ट कर दिया और आजका एक साधारण वैद्य विशुद्ध आयुर्वेद अथवा प्राकृतिक चिकित्सा को आजकल के विकृत तथा अशुद्ध आयुर्वेद का पूर्व एवं असल रूप मानने से भी इनकार करता है।

उपर्युक्त विकृत आयुर्वेद के बारे मे ही एक बार महात्मा गान्धी ने अपनी सायकालीन प्रार्थना के समय कहा था–'मैं आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के समकक्ष किसी अन्य चिकित्सा पद्धति को नही मानता हूँ मगर उसके बादीपने (भ्रष्टता) को मैं पसद नही करता।'

आजकल के वैद्यो और प्राचीन विशुद्ध आयुर्वेद-काल के वैद्यो की रोग निवारक पद्धतियो मे आकाश और पाताल का अन्तर होगया है।

प्राचीन विशुद्ध आयुर्वेद (प्राकृतिक चिकित्सा) के अनुसार रोगों की चिकित्सा केवल 'व्याधि-विपरीत'-रीति से की जाती थी। पर बाद को जब वैद्यगण अधिकांश दशाओ मे विषैली औषधियो द्वारा रोग को शीघ्रातिशीघ्र अच्छा करने की लालच से रोग के लक्षणों को दबा देने का व्यवसाय करने लगे तभी से 'व्याधि विपरीत'–रीति से प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इलाज करने का काम उन लोगो ने त्याग दिया और उसकी जगह "हेतु विपरीत,' 'हेतु-व्याधि विपरीत,' 'हेतुसम,' व्याधिसम' तथा हेतु व्याधिसमके प्रकारों में से कुछेक को अपना कर चलने लगे।

आजकल के अधिकाश वैद्य प्राकृतोपचार क्या वस्तु है? जानते तक नही। विशुद्ध आयुर्वेद का वास्तविक रूप कैसा होता है उन्हे पता तक नही है। आज संसार के प्राकृतिक चिकित्सक जिन सरल, निर्दोष, और प्राकृतिक उपायो से रोगियो को चगा करते है, उनकी समझ मे वह चिकित्सा की एक नई प्रणाली है और जिसके सम्बन्ध मे वे यह मानने के लिए तय्यार नही है कि वही वह विशुद्ध आयुर्वेद है जो प्राचीन काल में प्रचलित था। पर इसके लिये उन वैद्यो को दोषी ठहराना ठीक नही, अपितु वे दया के पात्र हैं। कारण, आजकल अग्रेजी दवाओ की कुछ ऐसी माया फैली हुई है कि उसके जाल में बेतरह फसकर वे वैद्य अपनी असल विद्या ही भूल गये है और जो उस असल विद्या को जानते हैं वे उसे उपयोग मे नही लाते।

'आज आयुर्वेद का वह प्राचीन रूप नहीं रह गया है। बल्कि अब नौबत तो यहा तक पहुँच गयी है कि कही-कही निज देशीय आयुर्वेद के ज्ञान के लिये भी पाश्चात्य देशो का मुँह ताका जाता है। मगर पारा, गधक, कुनैन, कुचला, सिंघिया से बने रस, भस्म, तथा विषैली औषधिया चाहे वे भारतीय विधि से बनी हो या योरोपीय विधि से, है तो हलाहल विषही जिनका सेवन करना-कराना खतरे से किसी तरह खाली नही होता। पर हम हैं कि इनके बल से ही रोगो को दूर करने में अपना बहुत बड़ा पौरुष समझते हैं।,

'चिकित्सा के समय आहार का प्रश्न कोई कम महत्व रखने वाला नही है; पर आज प्रभावी औषधियो के कारण चिकित्सा समय को इस महत्व पूर्ण बात को ही प्राय वैद्यों ने भुला दिया है। यहा तक कि रोगा:–

सर्वेऽजनौ' वाले वचन का एक बाजू रटन करते हुए भी उसी मन्दाग्नि की जननी चाय के अनुपान को सुझाने वाले वैद्यो की भी समाज मे कमी नही है ।'

उपर्युक्त शब्द, आजकल के वैद्यो और उनकी वैद्य-विद्या के सम्बन्ध मे इन पक्तियो के लेखक के नही है, अपितु आचार्य श्री हरदयाल वैद्य, श्री शिवकुमार 'व्यास' दिल्ली, तथा श्री किशोरी दास गुप्ता बम्बई जैसे आयुर्वेद शास्त्र के महारथियो का सम्मिलित स्वर है जिसको आजकल के वैद्य समाज को सुनना और उस पर विचार करना चाहिए ।

प्रसिद्ध उपचार-ग्रन्थ 'स्वास्थ्य साधन' मे उसके विद्वान लेखक स्व० प्रो० रामदास गौड़ ने भी लिखा है—'आजकल का वैद्य विष की पुड़िया रखता है । उसके रस वस्तुत उग्र विष होते है, जो रोग के स्वाभाविक उभारो को दबाते है और शरीर मे विष की मात्रा मे वृद्धि करते है । क्योकि वैद्यक के रस 'मारे हुए' या 'कुश्ता' कहलाते है, जो कच्ची धातुओ से बनते है, और जो हलाहल विष होते है, जिनमे प्राण-शक्ति नाम को भी नही होती । और जिन वस्तुओ मे प्राण-शक्ति नही है उनसे यह आशा करना कि वे रोगी के शरीर को लाभ पहुँचायेंगे, व्यर्थ है । रासायनिक रीति से बने पदार्थ निष्प्राण होते है । उनसे किसी का पोषण नही होसकता । 'जीवो जीवस्य जीवनम्' के अनुसार मनुष्य रोगी हो या निरोग, उसे औषधि द्वारा वा भोजन द्वारा सप्राण भोजन चाहिए जो उसके अंगीकरण के लिए आवश्यक है ।

आधुनिक वैद्य-समाज से विनम्र प्रार्थना

यदि हम भूलते नही है तो भारतवर्ष मे इस वक्त ५ लाख से अधिक वैद्य है । उनका प्रतिनिधित्व करने वाला अखिल भारतीय आयुर्वेद महा सम्मेलन भी है जो दिल्ली मे है । जिसकी शाखाये-प्रशाखायें भारतवर्ष के सारे प्रदेशो जिलो, एवं तहसीलो मे फैलीहुई है । इस तरह भारत मे सर्वत्र फैले वैद्य-समुदाय से हमारा सविनय निवेदन है कि वे यह न समझें कि प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति के आविष्कारक जर्मन विद्वान लुईकूने या कोई और थे बल्कि उन्हे जानना चाहिए कि यह उनकी अपनी चीज है, जो आज भी है, और जिसे परिस्थितिवश वे काम मे नहीं लारहे है । लुईकूने आदि पाश्चात्य विद्वान प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान के प्रवर्तक भले ही माने जा सकते है, परन्तु आविष्कारक कभी नही कहला सकते । इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा को कोई बाहरी चिकित्सा-प्रणाली समझना भूल है । यह तो उनका आयुर्वेद ही है—विशुद्ध आयुर्वेद । अत वे इसे औषधियो की जगह अपनाये और अपने रोगियो का अधिक हित करे ।

कैसी विडम्बना है कि आयुर्वेदाचार्य प्रोफेसर गगाचरण शर्मा जैसे अधिकारी आयुर्वेदज्ञ भी अपने सर्वागपूर्ण आयुर्वेद के सम्बन्ध मे आज कहने लगे है कि यह अनादि नही है बल्कि एलोपैथिक से ही निकली है, इसलिए हमें उसकी हर अच्छी बुरी चीज की नकल करके समक्ष आजाना चाहिए । वह और उनके ख्याल वाले कुछ अन्य चोटी के वैद्य आज यहा तक कहने लगे है कि आयुर्वेद तो एक अपूर्ण चिकित्सा प्रणाली है जिसे यदि जीवित रखना है तो इसकी अपूर्णताओ को अन्य चिकित्सा विज्ञानो से पूर्ण कर लेना चाहिए । उदाहरणार्थ, वे इस बात की जबर्दस्त वकालत करते है कि क्यो न वैद्य लोग भी आज एलोपैथी के जीवाणुवाद को अपना कर रस-रसायनो द्वारा एलोपैथ डाक्टरो की भाति ही जनता पर रोब गाठें और वाहवाही लूटें । वे अपने तीन हजार वर्ष पुराने त्रिदोष वाद को भी झूठा, आडम्बर पूर्ण और अवैज्ञानिक बताने लगे है और कहने लगे है कि एलोपैथी मे भी पहले त्रिदोष वाद ही था मगर जब उन लोगो ने आगे कदम बढाना आरम्भ किया तो त्रिदोषवाद को त्याग दिया, अत हमे भी उसे त्याग देना चाहिये, आदि । हमे तो ये ख्याल, ये लक्षण विनाश के दिखाई देते है । इसलिये हम समस्त वैद्य-गण से प्रार्थना करते है कि उनका आयुर्वेद आजकल काफी अशुद्ध एव विकृतावस्था मे ही है, उसे अब और अशुद्ध तथा विकृत न करें, साथ ही वे अपना आत्म शुद्धिकरण करके प्राकृतिक चिकित्सा को, जो सर्वाङ्गपूर्ण विशुद्ध आयुर्वेद है पुन अपनावे और उसका घर-घर प्रचार करके यश के भागी बने ।
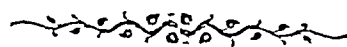
प्राकृतिक चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास

कृतिक चिकित्सा-विज्ञान या प्राकृतिक चिकित्सा
 उतनी ही पुरानी है जितनी कि प्रकृति स्वय वा
आधार षटतत्व–महतत्व, आकाशतत्व, वायु तत्व, अग्नि
जल तत्व तथा पृथ्वी तत्व। इस तरह यह प्रणाली
 मे प्रचलित सभी चिकित्सा प्रणालियो से पुरानी या
 जननी है। वेदो मे जो ससार के आदि ग्रन्थ हैं इस
 की सभी मोटी मोटी वाते जैसे जल चिकित्सा, उप-
चिकित्सा आदि पायी जाती है।

वेद काल के बाद पुराण-काल मे प्राकृतिक चिकित्सा
 प्रचलित थी। महाबग्ग नामक बौद्ध ग्रन्थ मे एक
 लिखा है कि एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती नगरी से
ह जाते समय कलद निवाय नामक सघ मे ठहरे हुये
वहा एक दिन एक बौद्ध भिक्षु को साप ने काट खाया
 ने उसकी सूचना भगवान बुद्ध को दी भगवान बुद्ध
हा–'हे भिक्षुओ! मैं तुम्हे आज्ञा देता हूँ कि विष-नाश
लये चिकनी मिट्टी, गोबर, मूत्र और राख का उपयोग
।' भिक्षुओ के प्रश्न करने पर कि उपर्युक्त वस्तुओ
 एक का या सब का एक साथ उपयोग होना चाहिये
वान ने कहा—'मिले उसका।' अत इस ढाई हजार
 पुरानी घटना से इस बात का पता चलता है कि रोग नाश
लिये मिट्टी का प्रयोग भारतवर्ष मे अति प्राचीन काल से
लित है। इसी प्रकार भगवान बुद्ध ने पिलीदवक्क नामक
क्षु के बीमार पडने पर वाष्प स्नान, जल स्नान के भी
 उष्ण जल स्नान के भी प्रयोग की आज्ञा दी थी।
दि सृष्टि का इतिहास देखने से पता चलता है कि
दि युग मे आजकल की भाति तरह तरह की न औषधिया
 न डाक्टर और न अस्पताल फिर भी आदमी आज की
निस्वत अधिक सुख से जीते थे और लम्बी-लम्बी उमरे
ते थे। वह एक युग था जब लोग प्राकृतिक रूप से स्वस्थ
हते थे - आज की तरह उस समय लोग असमय मे ही
र्बल नही होते थे। उनकी शारीरिक, मानसिक तथा
ात्मिक तीनो शक्तिया मृत्यु पर्यन्त बलवती रहती थी,
और उस जमाने के लोग आजकल के लोगो भाति न तो
जल्द बूढे होते थे और न अल्पायु वाले ही होते थे। यह
इसलिये कि सृष्टि के आदि मे रहने वाले लोग सच्चे
अर्थों में प्रकृति के उपासक होते थे अथवा प्रकृति के नियमों
पर चलने वाले होते थे उनका सम्बन्ध प्रकृति से अटूट और
सनातन होता था। ये प्रकृति के ही क्रोड़ मे जन्म लेते थे
वही पलते थे और लम्बी आयु भोगने के बाद खुशी खुशी वही
से महा प्रयाण भी कर जाते थे। उसी काल से अपने देश
मे तो यह परम्परा ही बन गयी है कि तीर्थ स्थानो का
भ्रमण, कल्प वास, व्रत उपवास, सात्विक भोजन, सप्ताह मे
एक दिन लवणहीन भोजन तथा रामनाम स्मरण एव आकाश,
वायु अग्नि जल और पृथ्वी का पूजन प्रयोग आदि स्वास्थ्य
के लिये अत्यन्त आवश्यक है साथ ही ये सारी बाते स्वास्थ्य-
प्रद होने के कारण धर्म का अग मान ली गयी है।
प्राचीन समय मे इस प्रकार का प्राकृतिक जीवन बिताने के
कारण मनुष्य को रोगी होने का अवसर ही न मिलता था
और अगर किसी प्राकृतिक नियम के तोडने के फलस्वरूप
कोई अस्वस्थ हो जाता था तो उपवासादि प्राकृतिक उपायो को
करके वह शीघ्र ही स्वस्थ होजाता था। उस समय रोगो से
लोहा लेने के लिये मनुष्य के पास सिवा प्राकृतिक उपायों
के और कोई दूसरा उपाय न था और न किसी अन्य उपाय
की आवश्यकता ही होती थी।

प्राकृतिक चिकित्सा मे यौगिक आसनो का एक विशिष्ट
स्थान है। हमारे देश मे आसनो द्वारा स्वास्थ्य-सुधार का
प्रचलन आदि काल से चला आ रहा है। आसन अनेक है।
उनको भारतीय महर्षियो ने मानव जाति की शारीरिक,
मानसिक एव आध्यात्मिक उन्नति के लिये हजारो वर्षों
तक सपरिश्रम अन्वेषण और प्रयोग करके निकाला है और
उनकी वैज्ञानिकता सिद्ध की है। इनका प्रयोग आजकल
अधिकतर रोगो को दूर करने के लिये ही किया जाता है।
आसनो से असाध्य से असाध्य और पुराने से पुराने रोग
तो दूर होते ही हैं, इसके उपरान्त यदि कोई इन आसनो

को, अन्य यौगिक क्रियाओं के साथ विधि-पूर्वक करता रहे और उसकी मृत्यु किसी दुर्घटना के कारण अगर बीच में ही न हो जाय तो कोई आश्चर्य नही कि वह अमरत्व तक को प्राप्त कर सके। क्योंकि आसनों के प्रभाव से शरीर का मल वा विष, जो कि मृत्यु का कारण होता है, दूर हो जाता है और काया निर्मल और दिव्य बन जाती है।

सारांश यह है कि जिन-जिन स्वास्थ्य सम्बन्धी प्राकृतिक क्रियाओं का हम आजकल प्रयोग कर रहे है वे सभी अपनी पूर्वावस्था में प्राचीन भारत मे विद्यमान थी। यह बात दूसरी है कि उनमें से बहुतों के नाम आधुनिक चिकित्सा विधियों के नाम से भिन्न थे। जैसे इस जमाने के 'वाटर-सिपिंग' 'सिटजबाथ' 'एनिमा' तथा 'स्टीमबाथ' को पुराने जमाने मे क्रम से—'आचमन' 'जलस्पर्श' 'वस्ति' तथा 'स्वेद-स्नान' कहते थे। इसी प्रकार 'सन-वाथ' से जो आजकल काम लिया जाता है वही काम प्राचीन काल मे 'सूर्य-नमस्कार-पद्धति' से लाभ केसाथ लिया जाता था। नेत्र—रोग आजकल Sun-Gazingसे अच्छा किये जाते हैं, प्राचीनकाल में इसी क्रिया को 'त्राटक' कहते थे। आजकल का Air-Cure पुराने जमाने का 'प्राणायाम' है। उपवास-चिकित्सा भी नयी नही है। छान्दोग्य उपनिषद मे लिखा है कि मनुष्य १५ दिनों तक आसानी से और लाभ के साथ उपवास कर सकता है यदि वह उपवास-काल मे खूब जल का सेवन करता रहे। उपनिषद मे यह भी बताया गया है कि उपवास चिकित्सा किन-किन रोगो मे लाभदायक है तथा उपवास तोड़ने के नियम क्या हैं?

यह बात नही कि केवल प्राचीन भारत ही रोग निवारणार्थ प्राकृतिक उपचारों का उपयोग करता था। बल्कि प्राचीन समय में संसार के अन्य देश भी इस विद्या से काफी परिचित थे।

इन सब तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल मे न केवल भारत मे ही बल्कि संसार के कोने-कोने मे प्राकृतिक चिकित्सा का किसी न-किसी रूप मे प्रचार था, और अच्छा प्रचार था।

मगर बाद को ज्यों-ज्यो औषधियों तथा औषधि चिकित्सको का जोर बढ़ता गया। त्यो-त्यो प्राकृतिक चिकित्सा को लोग भूलते गये। औषधियां, विशेषकर विषैली औषधियां रोगो का तत्काल दवा देने वाला अपना छलनामय प्रभाव जनता के सामने प्रकट करने लगी तो अजान धोखे मे आकर रोग के उस चमत्कारक, तात्कालिक क्षणिक शमन को ही पूर्ण रूपेण गया हुआ समझने और समझने लगी कि औपधि चिकित्सा ही जो लाभ पहुँचा देती है, उत्तम चिकित्सा है। उसको क्या कि औषधियो से रोग अच्छे नही होते, केवल दब जाते हे जो रोगावस्था से भी भयानक अवस्था होती साधारण जनता का यही मिथ्या विश्वास औपधि के प्रचार मे विशेष सहायक बना और फलतः चिकित्सा का, जो वास्तव मे सर्वाङ्गपूर्ण एव चिकित्सा है और जिससे कि रोगो का मूलच्छेदन हो है, दिन-दिन ह्रास होता गया।

रोग को चमत्कारक रीति से दवा देने के औषधि चिकित्सा मे एक प्रलोभन और है जो जनता अपनी ओर अधिक आकर्पित करता है। वह है औषधि मे सहूलियत का होना। रोग हुआ, वैद्य जी से माग दो गोलिया निगल ली, कर्तव्य की पूर्ति हो गयी। तिक चिकित्सा करने वालों की भाति इसके लिये न की आवश्यकता, न टव-स्नान का खटराग, और न आदि का झझट।

तीसरा और सर्व प्रवल कारण प्राकृतिक चिकित्सा पराभव का जो था वह सामयिक सरकारो और द्वारा औपधि-चिकित्सा एवं औषधि चिकित्सकों को हनो एव सरक्षता का मिलना तथा प्राकृतिक चिकित्सा प्रति उनका उदासीन-प्रदर्शन एवं मूकवत् व्यवहार होना। प्राचीन एव अर्वाचीन सरकारो की इस नीति के होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा निर्जीव न हो यह उसके बड़े सौभाग्य की बात है। और यही उसके युक्त एवं सत् चिकित्सा होने का सबसे बड़ा प्रमाण

औषधि-चिकित्सा मे जहां अनेक अवगुण हैं व अवगुण यह भी है कि दवा-लेते-लेते मनुष्य दवा आदी-सा हो जाता है और तब उसकी जीवनी शक्ति बलहीन हो जाती है कि वह प्राकृतिक चिकित्सा के नियमो को बर्दाश्त करने मे अपने को अक्षम समझने है और उनसे घवड़ाता है। इस तरह जनता का धियो का आदी वन जाना, प्राकृतिक चिकित्सा का चौथा कारण हुआ।

उपर्युक्त चार और इनके अतिरिक्त अन्य और भी छोटे अनेक कारणो से औषधि प्रचार काल में प्राकृ- चिकित्सा-रीति को जनता उपेक्षा की दृष्टि से देखने , साथ ही औषधि चिकित्सक समुदाय, विशेषकर पैथिक चिकित्सा वाले, प्राकृतिक चिकित्सा की जड़ ने के लिए और उसकी जगह अपनी जड जमाने के सभी उचित और अनुचित कार्यवाहियो से काम लेने । फलतः औषधोपचार का प्रचार दिन दूना और रात ना बढता गया और प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली दिन अवनति के अधकार में विलीन होते होते एक- लोप ही होगयी, यहा तक कि आजसे कुछ ही सौ साल ससार यह भी न जानता था कि प्राकृतिक चिकित्सा की कोई चिकित्सा प्रणाली कभी थी भी या नही ।

परन्तु अठारहवी शताब्दी के मध्य से प्राकृतिक कत्सा का पुनरुत्थान होने लगा और तभी से प्राकृतिक कत्सा की उपादेयता के सम्बन्ध मे हम पुनः जानने तथा हमारा तत्सम्बन्धी ज्ञान नित्य-प्रति बढ़ता गया । यह कि जब संसार के विचारकों और विद्वानो ने स किया कि औषधि चिकित्सा विशेषकर एलोपैथी दोषो का घर है साथ ही एक अस्वाभाविक एवं म चिकित्सा प्रणाली भी, तो उनका माथा ठनका । लोगों ने यह भी जाना कि एलोपैथी पूर्णतया वैज्ञा- और बुद्धि सगति भी नही है और वह मंहगी तो ही है जिसकी वजह से साधारण स्थिति के लोग गावों की गरीब जनता तो उसे अपनाने से रही तब की आखें खुली । तथा उन लोगो ने जब अपनी आखो खा और समझा कि निरीह जनता के हृदय मे यह वात घुसी हुई है कि पाश्चात्य आविष्कार उच्चकोटि ोते हैं और यह कि डाक्टरी ही सबसे उत्तम चिकित्सा ली है, साथ ही इस भ्रम और माया-मरीचिका मे कर लोग विष खाते हैं । विष की पिचकारियां ले- र रक्त को दूषित करते है, अपने रोगी अङ्गो को न की छुरियों द्वारा कटवा-कटवा कर फेंकते हैं, तथा ज के नाम पर और भी बहुत से पैशाचिक कृत्य ाते है तो उन लोगो की आत्माये काप उठी । फलतः लोगो ने औषधि-चिकित्सा-प्रणाली के विरुद्ध आवाज नी शुरु करदी और उसकी जगह प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रण किया । और मजे की बात यह है कि इस प्रकार की आवाज उठाने वालो मे अधिकतर एलोपैथी के ही चोटी के डाक्टर थे ।

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति, भारत की अपनी प्राचीन चिकित्सा-पद्धति है सही, किन्तु बीच मे इस चिकित्सा- प्रणाली के ससार से लोप हो जाने के बाद इसके पुनर्निर्माण का श्रेय पाश्चात्य देशों को ही है, इससे इनकार नही किया जा सकता ।

प्राकृतिक चिकित्सा के पुनरुत्थान में मदद देने वाले अनेक प्रभावशाली व्यक्ति हो गये है, और ये या तो वे लोग थे जो औषधियो द्वारा रोगो का उपचार करते-करते अपनी आयु के बड़े से बड़े भाग को समाप्तकर देने पर भी शाति न पा सके थे, या औषधि-विज्ञान पर ईमान न लासके थे, या वे लोग थे जो कभी स्वयं रोगी रहकर औषधि चिकित्सा-प्रणाली का कटुफल चख चुके थे और बाद को जिनके प्राण प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा बचे थे। पहली श्रेणी के व्यक्तियो मे दो प्रमुख एलोपैथिक डाक्टर:—

जेम्स क्यूरी (James Currie) और
सर जान फ्लायर (Sir John Floyer)

थे, जो अठारहवी शताब्दी के अंत में ही हो गुजरे हैं । डाक्टर फ्लायर इग्लैंड के लिचफील्ड नगर के निवासी थे । लिचफील्ड के एक सोते के पानी मे कुछ किसानो को नहाकर स्वास्थ्य लाभ करते देख, उन्हे जल के स्वास्थ्यवर्द्धक प्रभाव के सम्बन्ध मे अधिकाधिक जांच पडताल करने की प्रवल इच्छा हुई थी ।

डाक्टर जेम्स क्यूरी लिवर पूल के रहने वाले थे । सन् १७१७ ई० के लगभग इन्होने एक जलचिकित्सा सम्बन्धी पुस्तक लिखकर प्रकाशित करवाई थी ।

विनसेंज प्रिस्निज (Vincenz Preisnitz)

यदि पूछा जाय तो उपर्युक्त दो डाक्टरो के समय तक जनता मे फिर भी प्राकृतिक चिकित्सा का व्यावहारिक रूप से प्रचार न हो सका था । इस काम को सर्व प्रथम किया जर्मन डाक्टर विनसेंज प्रिस्निज ने । यही कारण है कि कुछ विद्वानो की धारणानुसार डाक्टर प्रिस्निज ही आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के जनक माने जाते है । जो भी हो किन्तु यह तो सत्य ही है कि आज से
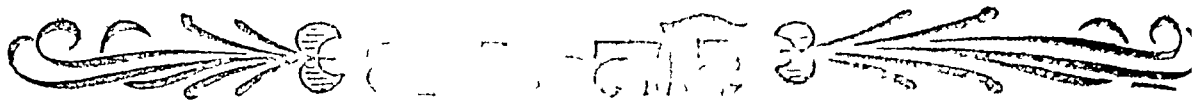
लगभग २३०० वर्ष पहले—हिपोक्रेट्स के उठाये हुये रोग उपशम सकट (*Curativecrises*) के अनुसंधान-कार्य को प्रिस्निज ने ही अपने काल मे पूरा किया । इस तथ्य से भी इन्कार नही किया जा सकता कि आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का आन्दोलन आज से प्राय सवा सौ वर्ष पूर्व वा विन्सेज प्रिस्निज के समय से ही आरम्भ हुआ है ।

सीलास ओ० ग्लीसन
Silas o Gleason

यह विनसेज प्रिस्निज के शिष्य थे ।

जेम्स सी० जैक्सन
James c-Jackson

वस्तुत: इन्ही को प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली का प्रथम अमेरिकन उन्नायक माना जाता है । इनका जन्म सन् १८११ ई० मे हुआ था ।

हरगार्शेन, ब्लिज, फेल्के

जर्मनी मे ये तीनो प्राकृतिक चिकित्सक बडे नामी हो गजरे है । इन लोगों ने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रवर्त्तन मे अथक परिश्रम किया था ।

जोहान्स स्क्राथ
(Johannes Schroth)

स्क्राथ ने भी प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति का पुनरुद्धार प्रिस्निज की भाति ही, उनके ही काल के लगभग एव उनके ही स्थान के आस पास किया, किंतु सर्वथा स्वतन्त्ररूप से । एक साधु द्वारा उत्साहित किये जाने पर सर्व प्रथम इन्होने अपने घुटने की कडी चोट का जल-चिकित्सा से ठीक किया । वाद को इन्होने अपने इस अजमाये हुये अचूक प्रयोग को मनुष्यो के वजाय पालतू कुत्तो और घोडो पर करके आशातीत सफलता प्राप्त की । अत मे इस कार्य मे सिद्धस्थ हो जाने पर यह रोगी मनुष्यो को घडल्ले के साथ अच्छा करने लगे । प्रिस्निज की भाति ख्याति वढने पर औपधि-विज्ञान के भक्तो ने उनकी भी खूब ही निन्दा की । लगभग वीस साल तक उन लोगो ने इन्हे वहुत सताया । जेल तक भेजवाया । [illegible] जेल से निक-लने के वाद सन् १८४६ ई० मे जब [illegible] वुर्टे-म्वर्ग (Wurtemberg) के ड्यूक के [illegible] को कुछ ही दिनो में विल्कुल ठीक कर दिया तो फिर स्क्राथ के मनुष्यो का कही पता न रह गया । उनकी चिकित्सा-[illegible] लोग 'स्क्राथ-चिकित्सा' (Schroth-Cure) [illegible] पुकारते है ।

इमेन्युल स्क्राथ
(Emanule Schroth)

यह उपर्युक्त सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक जे० [illegible] के सुपुत्र थे, जिन्होने अपने पिता के वाद उनकी चि[illegible] विधि को अपनाकर और उसका प्रचार करके उसके [illegible] अनगिनित रोगियो का उपकार किया ।

फादर सेवस्टियन नीप
(Father Sebastian Kneepp)

जे० स्क्राँथ के समकालीन प्रकृति उपासक इन [illegible] महोदय ने भी, असीम उत्साह और जवरदस्त ल[illegible] साथ, प्राकृतिक चिकित्सा-विधि का प्रचार किया और [illegible] चिकित्सा सम्वन्धी अनेक वहुमूल्य आविष्कार किये [illegible] चिकित्सा के साथ साथ यह जडी वूटियो द्वारा चि[illegible] करने के पक्ष मे थे । यह ववेरिया निवासी थे । [illegible] एक अपना स्वास्थ्यगृह था, जिसका सचालन इन्होंने [illegible] साल से अधिक, वड़ी तत्परता और सफलता के

किया। आज भी जर्मनी मे इनके नाम पर एक नही अनेक सस्थायें कायम है जिनमे इनकी ही चिकित्सा-प्रणाली प्रचलित है। इन सस्थाओ की सदस्य-सख्या ५०००० से भी ऊपर है। जर्मनी के डुसेलडोर्फ नगर मे एक 'नीप स्टोर्स' भी है जहा पर जडी-बूटियो, तेल, साबुन, तथा स्नान सम्बन्धी सभी आवश्यक वस्तुओ एव हर प्रकार के स्वास्थ्यप्रद प्राकृतिक भोजनो का प्रदर्शन किया जाते है।

नीप ने जल-चिकित्सा पर एक अति उत्तम पुस्तक 'My water cure' नाम से लिखी है जो आज भी व्यापक रूप से पढी जाती है। इनका देहान्त सन् १८९७ ई० मे ७५ वर्ष की अवस्था मे हुआ।

आर्नल्ड रिक्ली (Arnold Rickli)

यह पहले एक व्यापारी थे। बाद को प्राकृतिक चिकित्सा के गुणो पर मुग्ध होकर, इन्होने अपना सारा ही जीवन उसके प्रचार मे लगा दिया। इन्होने अपने देश आस्ट्रिया मे केन प्रान्त अन्तर्गत टेल्डास नामक स्थान पर सन् १८४८ ई० मे धूप और वायु का सेनिटोरियम स्थापित किया, जो अपने ढंग का सर्वप्रथम प्राकृतिक चिकित्सा-भवन था, और जिसकी नकल बाद को प्राय सभी प्राकृतिक चिकित्सको ने की। इन्होने ही पहले पहल रोगियो को सात्विक आहार पर रखकर वायु और आतप द्वारा सारे रोगो को अच्छा करने की प्रणाली निकाली थी और तत्सम्बन्धी-सिद्धान्तो का प्रचार किया था। डा० रिक्ली इस प्रकार की चिकित्सा को वायु-चिकित्सा—(Atmosphere-Cure) कहते है। इस चिकित्सा का प्रयोग वह मुख्यत कब्ज के रोगियो पर करते थे।

इन्होने ९७ वर्ष की लम्बी आयु का उपभोग किया और मरने के समय तक स्वस्थ और स्फूर्तिवान बने रहे।

डा० मेलजर (Melzer)
डा० थियोडोरहैन (Theodorhann)
डा० रसे (Rause)

ये तीनो डाक्टर प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक लूई कूने के पहले हुये थे। इन्ही के आश्रमो मे डा० कूने ने अपने रोग की प्राकृतिक चिकित्सा करवायी थी, जिसके फलस्वरूप वह प्राकृतिक चिकित्सा के गुणो पर मुग्ध होकर स्वय बडे भारी प्राकृतिक चिकित्सक बने।

लूई कूने (Louis Kuhne)

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली, विशेषकर जल-चिकित्सा को पुनर्विकास देने, तथा उसको वर्तमान उन्नति के शिखर पर पहुंचाने का श्रेय प्रिस्निज, नीप और कूने—तीनो को है। किंतु वस्तुत इन तीनो मे कूने प्राकृतिक चिकित्सा के सबसे बडे आचार्य माने जाते है। यहा तक कि प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति का दूसरा नाम कूने के नाम पर ही कूने चिकित्सा-प्रणाली (Louis kuhne system of healing) पड गया है। कूने की लिखी जर्मन भाषा मे अनेक पुस्तको मे 'The new science of healing' और 'The science of Facial Expression' ससार प्रसिद्ध है जिनकी आजतक लगभग ६०—७० आवृत्तिया छप चुकी है। इन पुस्तको का अनुवाद ससार की प्राय सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध भाषाओ मे हो गया है, और उनकी भी अब तक कितनी ही आवृत्तिया छप कर निकल चुकी है।

कूने का जन्म जर्मनी अन्तर्गत लिपजिग (Leipzig) नगर मे एक जुलाहे के घर हुआ था। इनके माता पिता की मृत्यु औषधि चिकित्सको के हाथ हुई थी। २० वर्ष की उम्र मे इन्हे मस्तिष्क, फेफड़ो तथा पेट के फोडे के असाध्य रोग हुए थे। जब ये रोग औषधि-चिकित्सा द्वारा ठीक न हुये तो ऊब कर सन् १८६४ ई० के लगभग इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली जिससे धीरे-धीरे
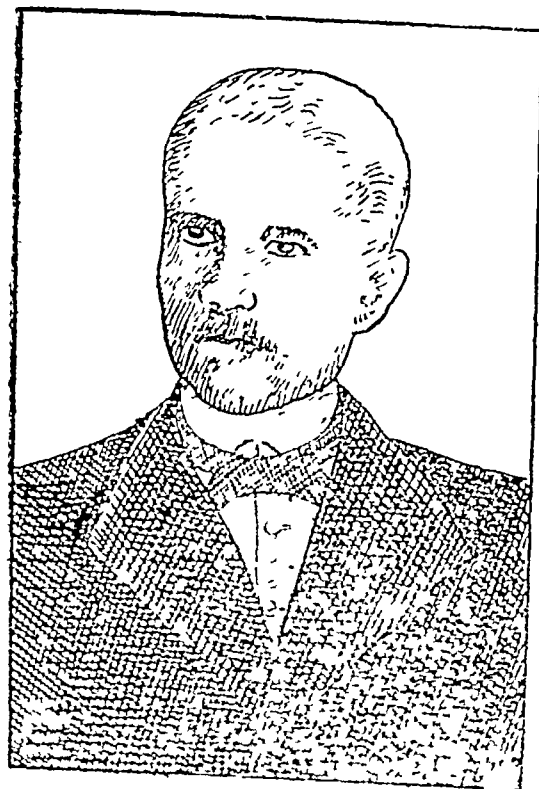
यह पूर्ण स्वस्थ हो गये। परिणामत यह प्राकृतिक-चिकित्सा के पूर्णरूप से भक्त बन गये और १० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को लिपजिग स्थित प्लासप्लेटज (१५-२४) स्थान पर निज का एक स्वास्थ्यगृह खोल दिया जिससे इनकी ख्याति कुशल जलचिकित्सक के रूप मे दिग्दिगन्त मे फैलने लगी।

डा० ओलिवरवेण्डेल होम्स (Dr. Oliver Wendell Homes)
डा० ओबरानकी (Dr, Obranki)
डा० जे० विलसन (Dr. J. Wilson)
डा० क्लार्क (Dr Clark) अमेरिकन

ये सभी डाक्टर औषधि चिकित्सा-प्रणाली के जबरदस्त विरोधी और प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के हिमायती थे।

हेनरिच लेमैन (Heinrich Lamann)

यह जर्मन डाक्टर पहले एलोपैथी के ही भक्त थे। किंतु बाद को कट्टर प्राकृतिक चिकित्सक बन गये। ड्रेस

डेन मे इनका अपना एक स्वास्थ्यगृह भी था। इन्होने मानव-स्वास्थ्य के लिये आवश्यक पोषक तत्वो से सम्पन्न प्राकृतिक भोजनो के महत्व का अनुसधान करके आहार-विज्ञान को सबसे बडी सहायता पहुचाई थी।

एडोल्फ जुस्ट (Adolf Just)

प्राकृतिक चिकित्सा पर ससार प्रसिद्ध पुस्तक 'Return
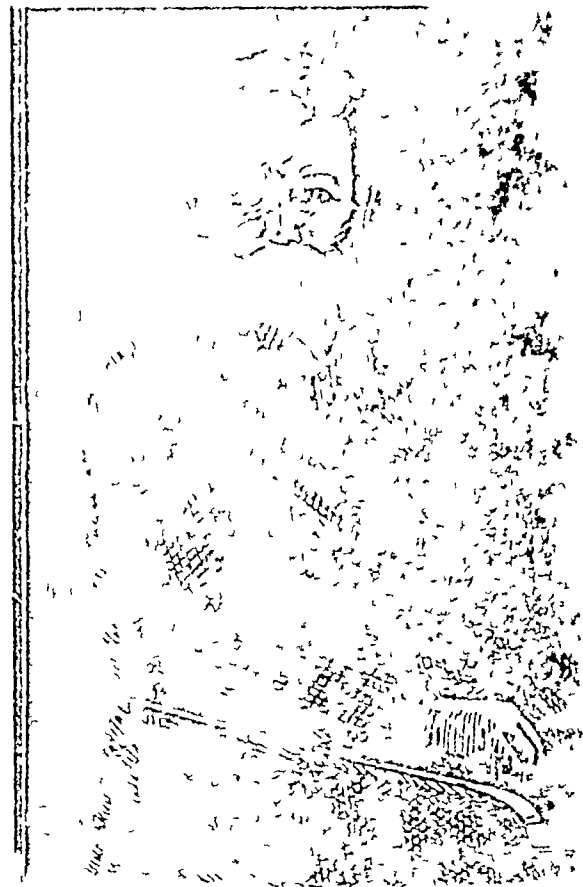
to Nature' के लिखने वाले जर्मन प्राकृतिक चिकि[त्सक] ए० जुस्ट जिसने साधारण मिट्टी के प्रयोग द्वारा सम[स्त] रोगो को दूर किया जाना सम्भव किया था, पहले प[हल] एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति थे। किंतु बाद को इ[न्होने] प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अनेक ऐसे ऐसे उपयो[गी] आविष्कार किये कि जिनसे ससार मे इनकी बडी ख्या[ति] हो गयी। इन्होने जर्मनी मे 'हार्ज पर्वत' पर 'जगब[ोर्न]' नामक एक सेनीटोरियम की स्थापना की थी। इन्होने अपने आप मालिश करने की क्रिया (Self Massa[ge]) को जन्म दिया था।

हेनरी लिण्डलहार (Henry Lindlhar)

यह भी पहले चोटी के एलोपैथ ही थे, पर पीछे प्रा[कृ]तिक चिकित्सा के गुणो पर मुग्ध होकर प्राकृतिक चि[कि]त्सा के अनुयायी होगये। यह अमेरिकन थे, और उन [गिने] गिने प्राकृतिक चिकित्सकोमेसे एक थे जो प्राकृतिक चि[कि]त्सा के सिद्धान्तो के विरुद्ध, रोग-उपशम-सकट (Curat[ive] Crisis) के उपस्थित होने पर प्राकृतिक उपचारो के स[ाथ] साथ, अनुतेजक औषधियो, विशेपकर होमियोपैथिक औ[ष]धियो के दिये जाने के पक्ष मे थे। इन्होने सिद्ध किया

...त्र रोग अपना चिकित्सक स्वय होते हैं। चक्षु-विज्ञान (...diagnosis) के ये जोरदार समर्थक थे। इन्होने ... नाम से शिकागो और एल्महर्स्ट (न्युयार्क) मे दो ...ोरियम खोले। इनकी लिखी दो पुस्तके—Iridia...sis और The Philosophy and Practice of ...ural Therapeutic ससार प्रसिद्ध है।

एडवड हूकर डेवी (Edward Hooker Dewey)

...वरनर मैकफेडन की भाति डेवी भी उपवास चिकित्सा ...क वडे नामी विशेषज्ञ थे। ३० वर्ष तक लगातार उप... के प्रयोग करने के उपरात इन्होने अपने तत्सम्बन्धी ...का साधारण जनता मे प्रचार करना आरम्भ किया। ... ही सर्व प्रथम No Break Fast Plan अर्थात् ...य रक्षार्थ प्रात: समय कुछ न खाने की सत्यता प्रमा... की थी। प्राकृतिक चिकित्सा के इस आचार्य ने भोजन ...उपवास सम्बन्धी, अन्य और बहुत सी बातो पर ... डालकर इस विज्ञान को सर्वाङ्ग पूर्ण बनाने का ...प्राप्त किया है।

रावट हावड (Robert Howard)

...यह भी प्राकृतिक आहार के अच्छे ज्ञाता थे।

वेनिडिक्ट लुस्ट (Benedict Lust)

...यह प्राकृतिक चिकित्सा के उन महारथियों में थे जिनका ...ससार मे अमर है। यह फादरनीप के प्रिय शिष्यो मे ...क थे। इनका जन्म मिचैल वर्ग, वेडेन, जर्मनी मे ३ ...री १८७२ई. को हुआ था। सन् १८९२ई. मे जब यह ... २० वर्ष के युवक थे, तभी फादरनीप ने इन्हे अमे... जाकर जल-चिकित्सा का सन्देश सुनाने और सारे ... मे उसका प्रचार और प्रसार करने के लिये चुना। ...का मे इन्होने 'नीप-वाटर क्योर' नामक एक मासिक ...निकाला। न्युयार्क मे एक स्कूल तथा कालेज स्थापित ...। वाद मे इन्होने एक और पत्र 'नेचर्स-पाथ' भी ...शित किया। वह स्कूल 'अमेरिकन स्कूल आफ नेचुरो... तथा वह अस्पताल अवासुप्रसिद्ध 'यग वार्न्स अस्पताल' ... मे परिणत होगया है। इनका एक अस्पताल वटलर ...सी मे और दूसरा टैजरिन फ्लोरिडा मे है।

'अमेरिकन स्कूल आफ नेचुरोपैथी' की स्थापना करने ...रान्त इन्होंने 'अमेरिकन स्कूल आफ केरोप्रैक्टिक' की ...थापना की। इन दोनोसस्थाओं मे शिक्षा प्राप्त करके निकलने वाले ग्रेजुएटो की सख्या हजारो मे है जो आज संसार के हर कोने मे चिकित्सा-कार्य कर रहे है। इन्होने अंग्रेजी तथा अन्य कई विदेशी भाषाओ मे बहुत सी पुस्तके भी लिखी और प्रकाशित करवायी। इन सब कार्यो मे लुस्ट ने लगभग २००००० डालर लगा दिये थे और सपत्नीक अपने घरेलू जीवन को प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार मे समर्पित कर दिया था।

५ सितम्बर बुधवार सन् १९४५ ई० को इनका देहात न्यूजेरसी के उसी अस्पताल मे हुआ जिसकी इन्होने ५० वर्ष पूर्व स्थापना की थी।

प्राकृतिक चिकित्सा की वतमान प्रगति

वर्तमान समय मे प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली ने संसार मे पर्याप्त उन्नति की है और अब साधारण जनता भी इसके गुणो और रहस्यो को समझने लगी है। एक इंग्लैण्ड मे जो क्षेत्र फल मे भारत के उत्तर प्रदेश से भी छोटा है, इस समय लगभग तीन-चार सौ प्राकृतिक चिकित्सक, प्राकृतिक चिकित्सा को सफलतापूर्वक चला रहे है। इन चिकित्सको मे से अधिकाश चिकित्सक अमेरिका के प्राकृतिक चिकित्सा सिखाने वाले कालेजो मे और कुछ ने स्काटलैण्ड के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक थामसन के कालेज मे शिक्षा ग्रहण करके चिकित्सक वने है। इन दोनो जगहों मे चार वर्षो तक प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा दी जाती है। इंग्लैन्ड के अलावा फ्रास, जर्मनी, स्वीटजर लैण्ड आदि लगभग सभी पाश्चात्य देशो मे प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार आजकल अच्छा हो रहा है। औषधियों से अब दुनिया के लोग प्राय. ऊब गये हैं और उनकी रोगो को दवाने वाली छलनामयी प्रकृति से सभी लोग अवगत होते जा रहे हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा को इस वर्तमान स्थिति मे लाने का श्रेय उन महान अध्यवसायी आचार्यो को प्राप्त है जिन्होंने मान-अपमान को सहन कर और सब प्रकार के क्लेशो और कठिनाइयो को झेलते हुये संसार में इस विज्ञान का प्रचार किया है और करते जारहे है। इन प्रचारको मे कुछ के नाम और काम सक्षेप मे नीचे दिये जा रहे हैं।

एल्फ्रेड डब्लू मैक्कन
ऐराड्र्यू ही स्टिल
डेनियल डी० पामर (Dr, Daniel D, Palmer)

डाक्टर मैक्कन अमेरिका के सुप्रसिद्ध आहार शास्त्री है जिनकी लिखी पुस्तक (The science of Eating लोक प्रसिद्ध है।

डाक्टर स्टिल आस्टियोपैथी के जन्म दाता है।

डाक्टर पामर Chiropractic (कर-चिकित्सा) के सस्थापक है।

ये लोग आजकल प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार मे प्राणपण से लगे हुए है। डाक्टर डी. डी. पामर का शायद अब देहान्त हो चुका है, और उनकी जगह उनके सुपुत्र Col B J Palmer D C Ph C. अपने पिता द्वारा आविष्कृत विज्ञान की वृद्धि और प्रचार मे काफी मेहनत कर रहे है।

हैरी बेनजामिन (Dr,Harry Benjamin)

डा हैरी बेनजामिन का जन्म १८९६ ई. मे लन्दन मे हुआ। आपकी आखे बचपन से ही खराब थी और जैसे जैसे आयु बढती गयी उनकी दृष्टि क्षीण होती चली गयी। पर अन्त मे उन्होने डा वेट्स द्वारा लिखित 'चश्मे के बगैर पूर्ण दृष्टि, नामक पुस्तक पढकर अपनी आखो को बिल्कुल ठीक कर लिया।
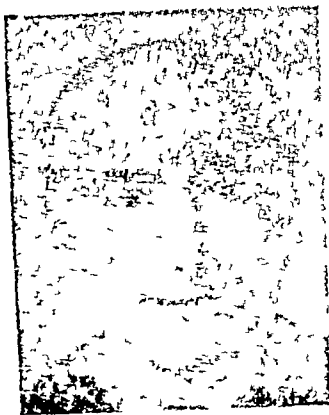
आपने श्री हैरी क्लेमेन्ट्स मे प्राकृतिक चिकित्सा सीखी और सितम्बर १९२६ ई० से 'हैल्थ फार आल' नामक पत्रिका मे काम कर रहे है।

इस डाक्टर की लिखी कई उत्तम पुस्तकें जनता को लाभ पहुचा रही हैं। इनकी तीन पुस्तकें— 'your diet in Health and Disease' 'Everybody's Guide to Nature cure' तथा 'Better Sight without Glasses' अधिक उपयोगी और प्रसिद्ध है।

स्टेनली लीफ (Dr. Stanley Lief)

वर्तमान समय के प्रमुख विदेशी प्राकृतिक चिकित्सक इग्लैराड से निकलने वाले 'Health for all मासिक पत्रिका के सम्पादक, तथा दो प्रसिद्ध पुस्तको—'Diet Reform Simplified' और 'How to feed children from
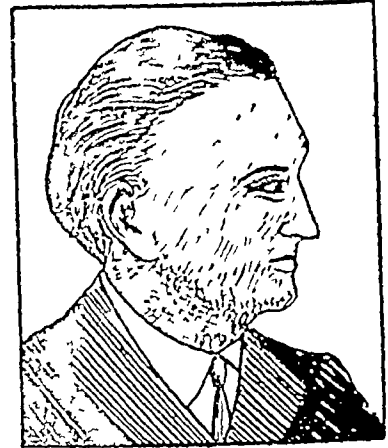
स्टैनली लीफ

Infancy onward' के लेखक, तथा लंदन से ३५ मील चपनी नाम के गाव मे स्थित विशाल प्राकृतिक चिकित्सालय Lief's Nature cure Resort' के सस्थापक Stanley lief N D, D. O, D.C. आजकल प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के सम्बन्ध मे बहुत कुछ कर रहे लदन का प्रसिद्ध 'ब्रिटिश कालेज आफ नेचुरोपैथी' आप ही तत्वावधान मे दिन दूना और रात चौगुना उन्नति कर रहा है।
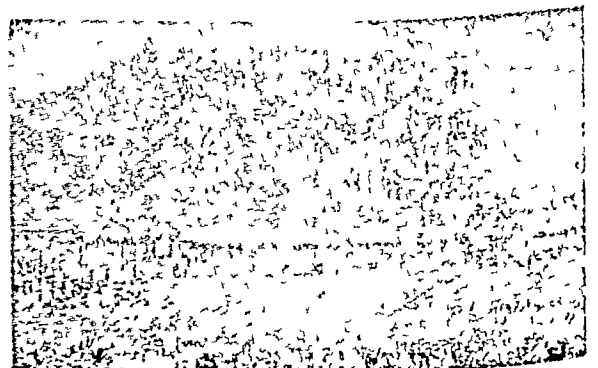
चंपनी के चिकित्सालय के अहाते मे रोगियों के रहने के काठ के कुछ सुन्दर घर
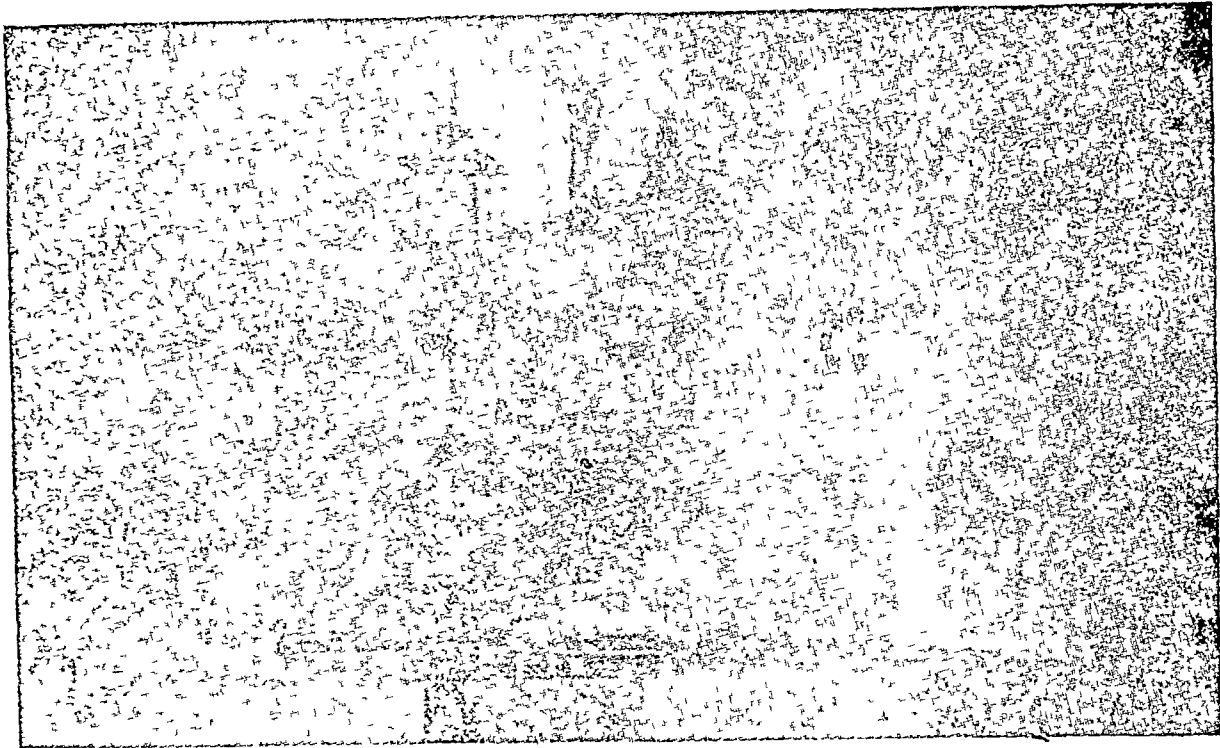
चंपनी का चिकित्सालय (इंग्लैण्ड)

आप सन् १८९२ में ई० रूस के एक गाव मे पैदा हुये चपन आपका दक्षिण अफ्रीका मे बीता, और जब बड़े ब अमेरिका जाकर मैकफेडन के प्राकृतिक शिक्षालय र्ती होकर प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा ग्रहण की। चात् अपने गुरु डा० मैकफेडन के ही कहने पर आपने लिये प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार-कार्य का क्षेत्र एड को चुना।

डमर (Thomas G. Dummer)

डाक्टर लीफ के ब्रिटिश कालेज आफ नेचुरोपैथी के प्रोफेसरो मे प्राकृतिक चिकित्सक डमर अधिक प्रतिभा- ो है। आप उद्भट विद्वान और अपने पेशे के अच्छे जानकार आपकी प्राकृतिक चिकित्सा की प्रैक्टिस लदन मे खूब ती है।

बर्नर मैकफेडन (Barnarr macfadden)

आधुनिक काल के प्राकृतिक चिकित्सा विशारदो मे ysical culture पत्रिका के सम्पादक तथा Book Health' Fasting for Health तथा macfaddens cyclopedia forphysical Culture आदि दर्जनो सर्वो- गी पुस्तको के प्रणेता अमेरिकन डाक्टर बरनर मैकफे- अधिक प्रसिद्ध है। इन्होने आजीवन संसार की समस्त व्यायाम पद्धतियो का स्वय अनुभव करके Father of Physical culture की उपाधि प्राप्त की है। उपवास विज्ञान के, जो प्राकृतिक चिकित्सा का एक प्रमुख अग है आप प्रवर्तक और बडे समर्थक है।

डैन्सविली (Dans villi) न्युयार्क अन्तर्गत जगत प्रसिद्ध स्वास्थ्य सस्था जैक्सन सेनीटोरियम आजकल आपकी ही
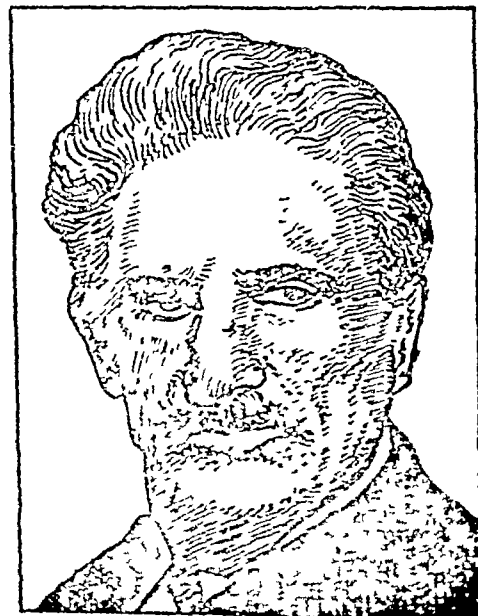
सरक्षता मे सचालित हो रही है।

सर विलियम अर्बुथनांट लेन
Sir William Arbuthnot lane

एलोपैथ होते हुये भी प्राकृतिक चिकित्सा मे विश्वास करते थे और उसका खूब प्रचार करते थे। आपकी लिखी पुस्तक Good Health जगत प्रसिद्ध है।

रेड्डीमालेट (Reddie Mallett)

इस डाक्टर ने प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी कई पुस्तके लिखी है जिनमे 'Natures way' अधिक प्रसिद्ध है।

प्रो० आर्नल्ड एहरेट (Arnold Ehret)

यह जर्मन थे परन्तु इनका कार्य क्षेत्र अमेरिका था। अपनी चिकित्सा पद्धति मे यह फलाहार और उपवास पर

बहुत जोर देते थे। इनकी बनाई दो पुस्तके अधिक प्रसिद्ध हैं। पहली का नाम 'Rational fasting' है, और दूसरे का 'Mucusless Diet Healing System'।

जे० एच० केलॉग (J. H. Kellog)

डाक्टर जे० एच केलॉग एम०डी० एफ० आर० सी० एन० एल० एल० डी० अमेरिका के महान सत्व चिकित्सक आहार एवं शल्य क्रिया के विशेषज्ञ, मालिश क्रिया, धूप-नि.त्व आदि अनेक विषयों पर अनगिनित पुस्तको के लेखक, तथा मिचिगैन (Michigan) अमेरिका के सु प्रसिद्ध बैटिल क्रीक सेनीटोरियम के डाइरेक्टर है, जि आज ससार विशेषकर प्राकृतिक चिकित्सा ससार जानता और पहचानता है।

आपका जन्म २६ फरवरी सन् १८५२ ई० को अ रिका मे हुआ।

आपके अनगिनित चिकित्सा सम्बन्धी आविष्कार एक विद्युतज्योतिस्नान (Electric Light Bath) भी जिसका इस्तेमाल आज ससार के सभी वडे वडे अस्पत में लाभ के साथ हो रहा है। सन १८८४ ई० मे डा केलॉग ने विजली के Sinusoidal current को स किया।

डाक्टर केलॉग का बैटिल क्रीक सेनीटोरियम सत्ता अपने ढग का एक ही सेनेटोरियम है जिसकी छत के संसार मे प्रचलित लगभग सभी चिकित्सा प्रणालियो जल चिकित्सा, आहार चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, स्वी मूवमेन्ट तथा विद्युत-चिकित्सा आदि द्वारा रोगो इलाज होता है और जहां रोगी केवल नीरोग ही किये जाते वलिक उन्हे यह भी वताया और सिखाया है कि कोई उत्तम स्वास्थ्य और लम्बी आयु कैसे प्राप्त सकता है।

आजकल डाक्टर केलॉग यद्यपि ११२ वर्ष के हैं आप मे जबानो जैसे स्फूर्ति, उमंग एव दैवी मुदिता अ विद्यमान है। इस वृद्धावस्था मे भी आप छोटे मोटे को साइकिल पर चढ़ाकर सुबह नाश्ता के पहले तीन मील की दौड़ प्रतिदिन लगाने से बाज नही आते। ' डायटेटिक्स' 'रैशनल हाइड्रो थिरैपी' तथा 'होम हैंड आफ हाइजीन एण्ड मेडिसिन' आदि आप की लिखी पुस्त वड़ी प्रसिद्ध है।

जे० एच० टिल्डेन (J. h. Tildden)

अमेरिका के अग्रगण्य प्राकृतिक चि० मे डाक्टर टिल्डे एक हैं। आपके विचारानुसार उपचार की ठीक विधि यह है कि सर्वप्रथम उन कारणों को ही दूर किया जाय जि से रोग उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् रोगी को शिक्षा दी जाय कि उसे स्वस्थ रहने के लिये किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिये। डाक्टर टिल्डेन एक महान लेखक तथा जबर्दस्त विचारक भी हैं। इनकी सबसे अधिक

सिद्ध पुस्तक 'Impaired Health' लोकप्रिय है। होने दूसरी अच्छी पुस्तक 'Food' बड़ी खोज के साथ लिखी है जो प्राकृतिक आहार-विज्ञान सम्बन्धी अद्वितीय पुस्तक है।

श्वेनिगर (Schweninger)

डाक्टर श्वेनिगर पहले एलोपैथिक डाक्टर थे। बाद को प्राकृतिक चिकित्सक बने। इन्होने 'The Doctor' नामक एक सुविख्यात पुस्तक लिखकर आजकल प्रचलित जहरीली तथा प्राणघातक औषधियों द्वारा चिकित्सा-विधि की बडी कडी आलोचना की है।

सर विलियम औसरल (Sir william Osler)

इंग्लैड निवासी एलोपैथी के यह सुविख्यात डाक्टर औषधि चिकित्सक होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा मे अगाध विश्वास रखते थे। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा-विधि की वृद्धि एव प्रचार मे बडी सहायता पहुंचायी है। इनकी लिखी पुस्तक 'The Principles and Practice of Medicine' देखने लायक है।

आप अमेरिका के 'जान हापकिन्स युनिवर्सिटी' के तथा इंग्लैड के 'आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी' के चिकित्सा विभागो के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित कर चुके है।

रसेल टी० ट्राल (Russel T. Trall)

डाक्टर रसेल टी० ट्राल भी पहले एलोपैथिक थे, किन्तु बाद को प्राकृतिक चिकित्सक ही नही महान प्राकृतिक चिकित्सक बन गये। इन्होने ही फ्लोरेन्स (न्युयार्क) में 'हाइजिनिक थेराप्युटिक' कालेज की स्थापना की है। इनकी बनाई हुई प्राकृतिक जीवन, एव प्राकृतिक चिकित्सा पर कितनी ही पुस्तके बडे आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं।

राबर्ट वाल्टर (Robert walter)

यह भी अपने समय के एक नामी प्राकृतिक चिकित्सक थे।

वैल (Bail)

डाक्टर वैल लदन के एक सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक थे जो केवल निरामिष भोजन द्वारा रोगो का इलाज करने मे सिद्धस्थ थे।

सेलमन एम० डी० (Selmon M. D)

डाक्टर सेलमन ने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार मे अच्छा योग दिया है। इनकी लिखी पुस्तक 'स्वास्थ्य और दीर्घायु' काफी प्रसिद्ध है।

लिउनडर विलियम्स (Leonard Williams)

डाक्टर लिइनर्ड ने भी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार मे खूब योगदान दिया है। इनकी लिखी पुस्तक 'Minor Maladies and Their treatment' बहुत अच्छी है।

हरबट स्पेन्सर (Herbert Spencer)
ओसवाल्ड (Oswald)
पेज (Page)
एलिन्सन (Allinson)
हैन (Hahn)
टर्न वेटर जान (Turn vater Jahn)
वोन पेजली (Von Peckzely)

ये सभी डाक्टर प्राकृतिक चिकित्सा की उन्नति मे सहायक थे।

विन्टर निट्ज

यह वियना युनिवर्सिटी के सुप्रसिद्ध जल चिकित्सक थे।

ओटो कार्क

आप जर्मनी निवासी थे और अपने समय के अच्छे प्राकृतिक चिकित्सको मे गिने जाते थे।

एडगर जे० सैक्सन

यह प्राकृतिक चिकित्सा के उन्नायको में गिने जाते थे। लदन से प्रकाशित होने वाले पत्र 'हेल्थलाइफ', हेल्थ-

एण्ड लाइफ' तथा 'हियर्ज हेल्थ' के आप सुयोग्य सम्पादक भी थे। जन्म दिन ६ सितम्बर १८७८। मृत्यु १२ सितम्बर १८५६।

जेम्स सी० थामसन (James C. Thomson)

Kingston clinic, Edinburgh मे डाक्टर थामसन का एक सुन्दर चिकित्सालय है, जिसमे ४० रोगियो के रहने की जगह है। चिकित्सालय के निकट ही आप द्वारा ही सचालित एक कालेज है जो ब्रिटेन मे सबसे पहला और पुराना प्राकृतिक चिकित्सा का शिक्षण केन्द्र माना जाता है। आपकी लिखी पुस्तके—'Nature cure form Inside, Influenja, Two Health Problems, The

थामसन

थामसन के सहायक डा० वेलसली· थामसन, उनका २४ वर्षीय पुत्र

Heart, Appendicitis, High and low Blood Pressure, तथा How to obtain Healthy Hairs, बहुत प्रसिद्ध हैं। 'रुडहेल्थ' नामक एक मासिक पत्र भी आप निकालते हैं।

आपकी पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू, पुत्रिया, और दामाद आदि सभी प्राकृतिक चिकित्सक है।

हैन्स माल्टेन (med Hans malten)

Baden-Baden (East Germany)के निवासी डा हैन्स माल्टेन एलोपैथिक डाक्टर और प्राकृतिक चिकित्सक

थामसन का किंग्सटन क्लिनिक

हैस साल्टेन और उनकी पत्नी
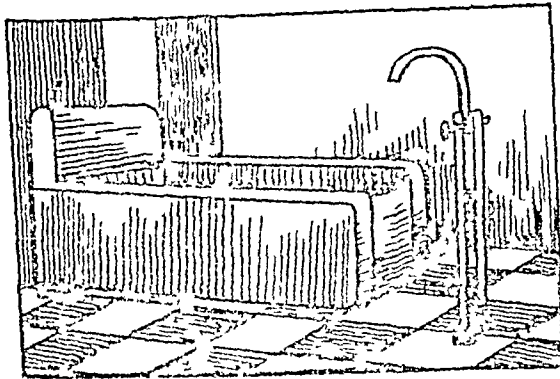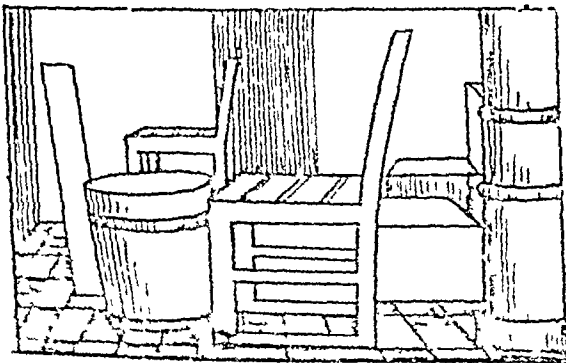
साल्टेन के उपचार गृह के कुछ टब

साल्टेन के उपचार गृह का दूसरा दृश्य

दोनो है। आप केवल मधुमेह और हृदय-सम्बन्धी रोगो का इलाज करते है। आपने एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक लिखी है जिसका नाम है एंजाइना पैक्टोरिस।

बिर्चर बर्नर

स्वीटजरलैंड के इस प्राकृतिक चिकित्सक का क्लिनिक अपने भोजन सम्बन्धी अनुसन्धानो के लिए जगत प्रसिद्ध है। आप उपवास, जलोपचार, और भोजन द्वारा ही रोगो की चिकित्सा अधिकतर करते है। आपने प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी कई पुस्तके लिखी है जो सभी जर्मन भाषा मे

बिर्चर बनर का क्लिनिक (जूरिख)

है। आपकी केवल दो पुस्तको—'The Prevention of incurable diseases' और 'Food Science for All' का अनुवाद अंग्रेजी भाषा मे हुआ है।

इलियट (T J Elliot)

ब्रिस्टल (ब्रिटेन) स्थित डा० इलियट के चिकित्सालय का नाम 'टावर लेज चिकित्सालय' है। आपका जन्म स्थान अमेरिका है। आपने प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा अमेरिका मे चार वर्षो तक ग्रहण की थी।

शेल्टन

अमेरिका मे आजकल डा० शेल्टन प्राकृतिक चिकित्सा का अच्छा प्रचार कर रहे है। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी आपकी लिखी ५-६ बडी बडी पुस्तके अब तक प्रकाशित हो चुकी है।
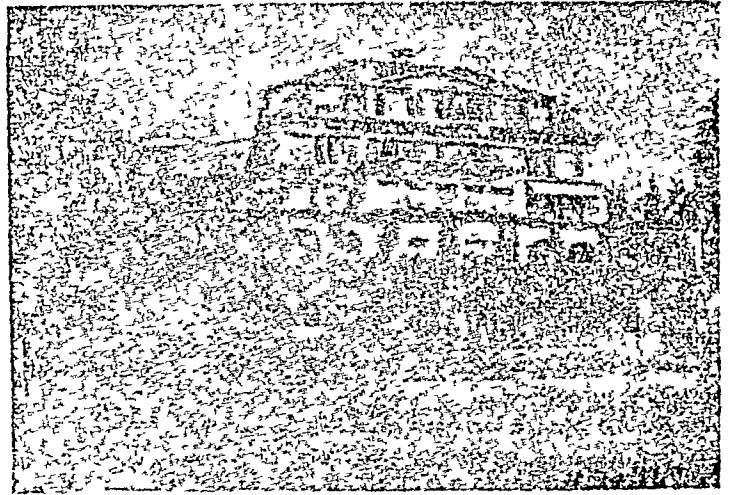
एडविन बैबिट एम० डी०

आपको कुछ लोग सूर्यकिरण-चिकित्सा का जन्मदाता मानते है। आपकी लिखी दो पुस्तकें प्रकाश और रंगो के

जेम्स सी० थामसन (James C. Thomson)

Kingston clinic, Edinburgh मे डाक्टर थामसन का एक सुन्दर चिकित्सालय है, जिसमे ४० रोगियो के रहने की जगह है। चिकित्सालय के निकट ही आप द्वारा ही सचालित एक कालेज है जो ब्रिटेन मे सबसे पहला और पुराना प्राकृतिक चिकित्सा का शिक्षण केन्द्र माना जाता है। आपकी लिखी पुस्तके—'Nature cure form Inside, Influenja, Two Health Problems, The
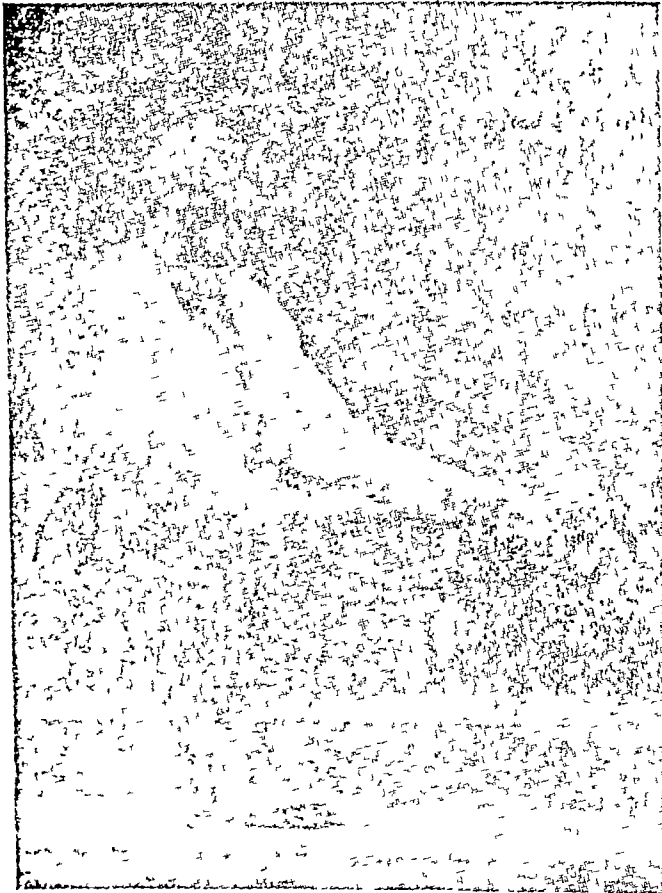
थामसन

Heart, Appendicitis, High and low Blood Pressure, तथा How to obtain Healthy Hairs, बहुत प्रसिद्ध हैं। 'रूडहेल्थ' नामक एक मासिक पत्र भी आप निकालते हैं।

आपकी पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू, पुत्रिया, और दामाद आदि सभी प्राकृतिक चिकित्सक है।

हैन्स माल्टेन (med Hans malten)

Baden-Baden (East Germany) के निवासी डा हैन्स माल्टेन एलोपैथिक डाक्टर और प्राकृतिक चिकित्सक
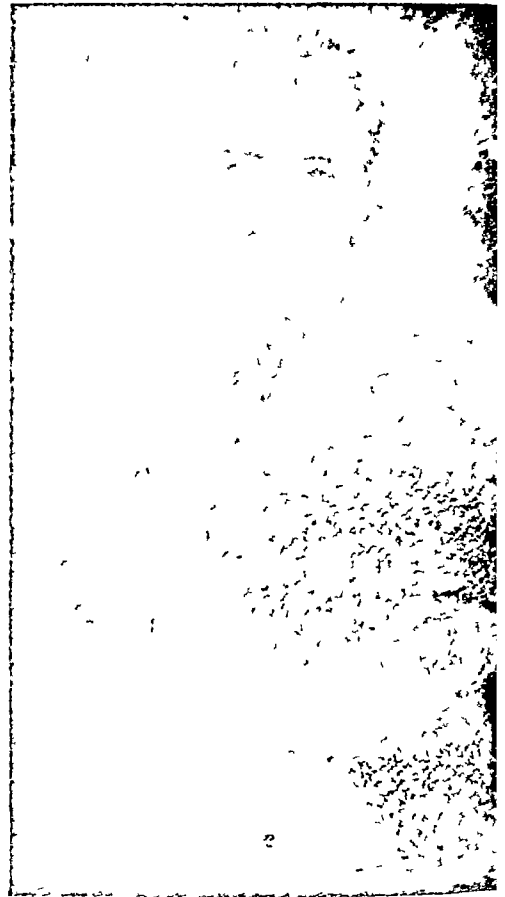
थामसन के सहायक डा० वेल्सली थामसन, उनका २४ वर्षीय पुत्र

थामसन का किंग्सटन क्लिनिक

है जिसका नाम है एजाइना पैक्टोरिस ।

विर्चर बर्नर

स्वीटजरलैंड के इस प्राकृतिक चिकित्सक का क्लिनिक अपने भोजन सम्बन्धी अनुसन्धानो के लिए जगत प्रसिद्ध है। आप उपवास, जलोपचार, और भोजन द्वारा ही रोगो की चिकित्सा अधिकतर करते है। आपने प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी कई पुस्तके लिखी है जो सभी जर्मन भाषा मे

विर्चर बनर का क्लिनिक (ज़ूरिख)

है। आपकी केवल दो पुस्तको—'The Prevention of incurable diseases' और 'Food Science for All' का अनुवाद अंग्रेजी भाषा मे हुआ है।

इलियट (T J Elliot)

ब्रिस्टल (ब्रिटेन) स्थित डा० इलियट के चिकित्सालय का नाम 'टावर लेज चिकित्सालय' है। आपका जन्म स्थान अमेरिका है। आपने प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा अमेरिका मे चार वर्षों तक ग्रहण की थी।

शेल्टन

अमेरिका मे आजकल डा० शेल्टन प्राकृतिक चिकित्सा का अच्छा प्रचार कर रहे है। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी आपकी लिखी ५-६ बड़ी बड़ी पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी है।

एडविन बैबिट एम० डी०

आपको कुछ लोग सूर्यरश्मि-चिकित्सा का जन्मदाता मानते है। आपकी लिखी दो पुस्तकें प्रकाश और रगो के

हैस साल्टेन और उनकी पत्नी

साल्टेन के उपचार गृह के कुछ दृश्य

साल्टेन के उपचार गृह का दूसरा दृश्य

रोगो। आप पेट के रोगों और रक्त-सम्बन्धी रोगों का इलाज करते है। आपने कई उपयोगी पुस्तकें लिखी

एडविन वैविट एम० डी०

नियम तथा 'The Human Culture and cure' जगत प्रसिद्ध है।

मारगेरेट ब्रैडी

डा० मारगेरेट ब्रैडी, एम० एस० सी० को जब सन् १९२७ ई० मे पहली संतान हुई तो आपने गर्भकालीन और प्रसव के दिनो की हालतो और समस्याओ का बारीकी के साथ अध्ययन किया तथा उनको वैज्ञानिक दृष्टि से समझने का यत्न भी। इस गम्भीर अध्ययन के परिणामस्वरूप
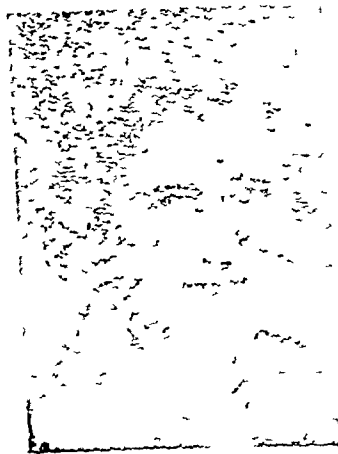
आपने १९३४ से इंग्लैंड की प्रमुख पत्रिकाओ मे गर्भिणी और माताओ की समस्याओ पर लिखना आरम्भ किया, विशेषत. 'हेल्थ फार आल' नामी पत्रिका मे। आप गत २४-२५ वर्षों मे माता और शिशुपालन सम्बन्धी समस्याओ पर उपर्युक्त पत्रिका से लगभग १० ह अधिक स्त्रियो को परामर्श-पत्र लिख चुकी हैं। की जानकारी और ज्ञानगरिमा का प्रत्यक्ष प्रमा

सन् १९४० ई० मे आपने यह आवश्यक स माताओ की सुविधा के लिये, प्राकृतिक चिकित्स के दृष्टिकोण से एक पुस्तक लिखी जाय। तब 'सुख प्रसव' के नाम से अपनी प्रथम रचना प्रकाशि जिसके अब तक ६ सस्करण निकल चुके हैं। सन् मे आपकी दूसरी कृति 'बालस्वास्थ्य' प्रकाशित हुई ३-४ वर्ष की आयु से लेकर १२-१४ वर्ष तक के के पालन-पोषण पर प्रकाश डाला गया है।

अल्फ्रेड जीहरे

आपका जन्म १८८० मे सेंटपीटर पोर्ट में आपको छोटी आयु से ही शारीरिक रचना, शारीरि आदि विषयो मे अध्ययन की रुचि थी। आपके पास चिकित्सा सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ थे, इसलिये अपना शौक पूरा करने के लिये अधिक सुविधा सन् १९०० ई० मे आप वरनार मैकफेडन के आये जिससे आपका आहार-शास्त्र सम्बन्धी अध्ययन पक्का हुआ। आपने व्यापार छोड़कर अपने गांव मे

प्राकृतिक चिकित्सा का धन्धा शुरू किया। सन् ई० मे आपने इस धन्धे के साथ-साथ आहार-शास्त्र प्राकृतिक चिकित्सा पर भाषण देने भी शुरू करदि पत्र-पत्रिकाओं मे लिखने भी।

सन् १९२६ ई० मे आपने बृटिश प्राकृतिक चि

की सदस्य परीक्षा पास की ।

आजकल आप गरन्सी के देहातों मे रहते है । आप वक्त ७७ वर्ष के हैं फिर भी हर रोज ५-७ मील टह- हैं ।

टाम डब्ल्यू मौले

आप पहले इंग्लैड मे किसी कम्पनी मे एकाउन्टेन्ट पद पर काम करते थे । आपका स्वास्थ्य आरम्भ से खराब था । सन् १६२८ ई० मे आपने अपने जीवन वीमा कराना चाहा तो डाक्टरी परीक्षा मे आप रह । तब आपने प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली र दो साल बाद फिर डाक्टरी कराई जिसमें पास हो । फिर तो प्राकृतिक चिकित्सा के भक्त ही बन गये र उसका अध्ययन विधितत् शुरू कर दिया । सन् १६३३ मे आप वृटिश नेचरोपैथ्स् एसोसियेशन के सदस्य बन । आप १० साल तक उस सस्था के मन्त्री भी रहे ।

आप वी० वी० सी० पर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति र ब्राडकास्ट करते रहे हे । आपकी पत्नी और पुत्र भी ाकृतिक चिकित्सक है ।

मिल्टन पावल

आपकी आयु इस समय ७४ वर्ष की है । आप वर- ार मेकफेडन और पुस्टेस माइलन के सहकारी रहे है। आप ायाम, आसन और आहार शास्त्र के बहुत अच्छे ज्ञाता । पहले विश्व युद्ध मे आप एक सैनिक अस्पताल मे भी ाम करते रहे ।

आप ब्रिटिश नेचर क्योर एसोसियेशन के संस्थापकों

मे से है आप बहुत दिनो तक उसके मन्त्री भी रहेथे । स्टैनली लीफ, जेम्स सी० थामसन आदि के साथ आप भी इंग्लैण्ड मे व्याख्यानों द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करते रहेहैं। आप वृटिश नेचरोपैथिक एसोसियेशन के प्रधान भी रहे और ८ वर्षो तक उसकी मासिक पत्रिका के सम्पादक भी । आपने आमाशय सस्थान आदि के रोगो पर प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी कई ग्रन्थ भी लिखे है । आप लदन के प्राकृतिक चिकित्सा विद्यालय के सस्थापको मे से है। आप गत ४२ वर्षो से प्राकृतिक चिकित्सा का काम कर रहे है । आजकल भी आप एक मासिक पत्रिका का सम्पादकीय लिखते हैं और एक अन्य मासिक मे पाठकोकी स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओ का समाधान करते है । आप इंग्लैण्ट के अत्यन्त प्रतिष्ठित प्राकृतिक चिकित्सक माने जाते है ।

एलेन मायेल

आप इंग्लैण्ड मे प्राकृतिक चिकित्सा के प्रसिद्ध और

लोक प्रिय लेखक है। निरन्तर १८ वर्ष तक हेल्थ फार आल नामी पत्रिका मे प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति पर लेख लिखते रहे। आपको स्टेनली लीफ ने प्राकृतिक चिकित्सा की दिशा में बहुत प्रोत्साहन दिया है।

आप इंलैण्ड के प्रसिद्ध प्राकृतिक मिल्टन पावल के शिष्य है। आप मि० पिट करेन नालेस के साथ भी काम करते रहे है। आपने प्राकृतिक चिकित्सा पर कई पुस्तके लिखी है।

रोलियर ए०

इस डाक्टर ने स्वीटजरलैण्ड में लगभग १९०० मे यक्ष्मा के रोगियों के लिये पहली धूपशाला खोली जिसके प्रयोगों के आश्चर्यजनक परिणाम को देख कर सारा संसार

धूप की रोगनाशक शक्ति का कायल होगया। आपने इस विज्ञान पर एक बडी सुन्दर और उपयोगी पुस्तक लिखी है जिस का नाम' Helio-therapy' है।

प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र मे भारत ने भी आज कल,पहले की अपेक्षा काफी प्रगति की है जो हमारे राष्ट्र महात्मा गाधी का पावन इच्छा और जन कल्याण कठिन तपस्या का ही फल है। गाधी जी की अन्तरात्म यह अनुभव किया था कि लोक कल्याण के लिये कोई सच्ची, व्यवहारिक और सर्वोत्तम चिकित्सा-प हो सकती है तो वह प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति ही हो सकती है। यही कारण था जो वह स्वराज्य-प्राप्ति बाद अपना शेष सारा जीवन ही प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार और प्रसार मे लगा देना चाहते थे। और यदि वह आज जीवित रहते तो प्राकृतिक चिकित्सा अब तक उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर यदि न भी पहुच गयी होती तो उसके करीब तो अवश्य ही पहुची होती। फिर भी आजकल भारत मे प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी प्रगति अच्छी हुई है जो दिनो दिन बढती जारही है।

कुछ दिन पहले देश मे प्राकृतिक चिकित्सा की प्रगति के विषय मे भारत सरकार का रुख सन्तोषप्रद नही था, परन्तु अब वह भी इस विषय मे योग देने लगी है और सहायता भी, जो शुभ लक्षण है।

पहली जनवरी सन् १९६५ को अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद की स्थापना हुई जिसका सगठन बना कर विधान बनाया गया और वह रजिस्टर्ड की गयी। तब से यह सस्था अपना कार्य सुचारु

भारतीय प्राकृतिक विद्यापीठ कलकत्ता
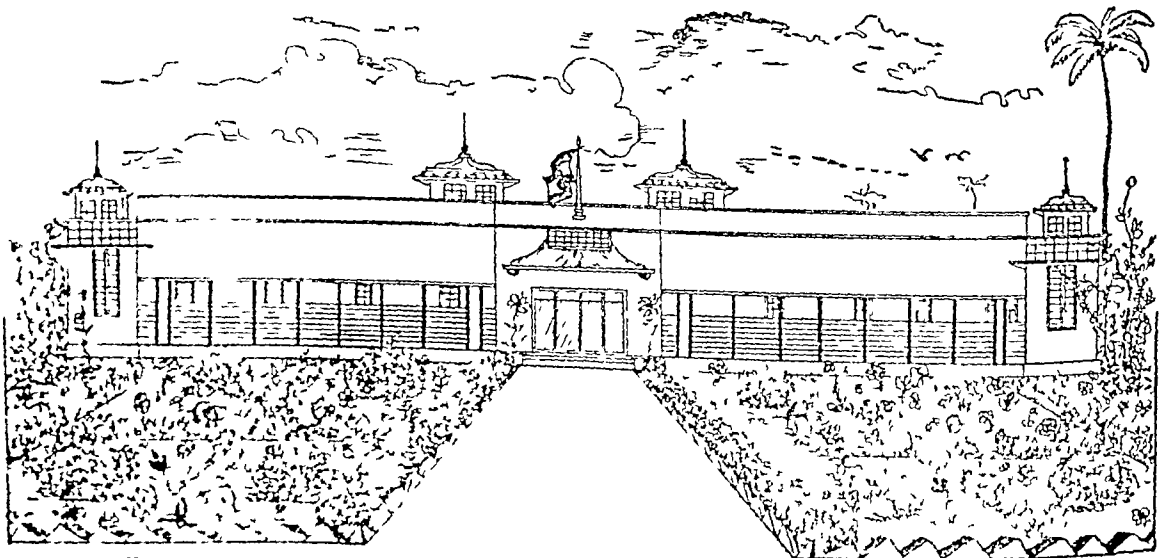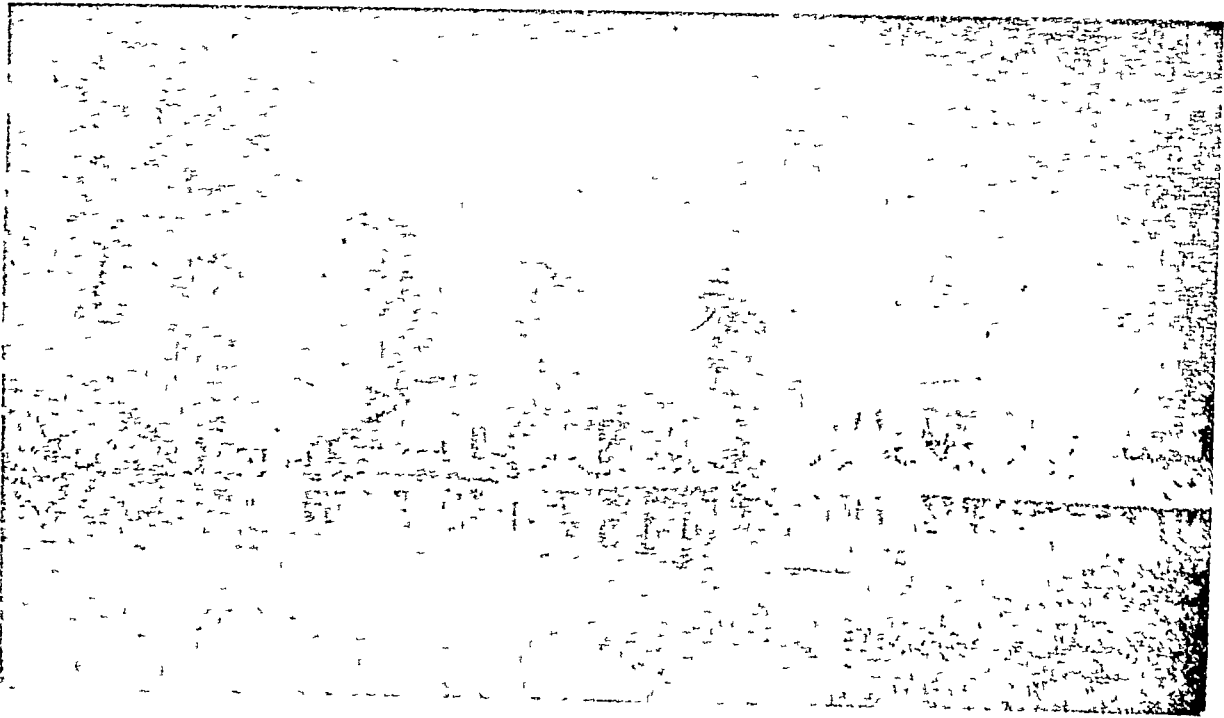
आरोग्य मन्दिर गोरखपुर

ति कर रही है और इसको विभिन्न स्थानो मे फैले प्राकृतिक चिकित्सको और प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमियो [का पू]रा-पूरा सहयोग मिल रहा है।

अभी हाल मे, अर्थात २० जनवरी सन् १९६३ को [...] एम डायमण्ड हार्वर रोड कलकत्ते मे भारतीय [प्राकृ]तिक विद्यापीठ की नींव पडी और ३ अगस्त सन् [१९६]४ से उस मे शिक्षा भी आरम्भ होगयी। यह विद्या-[पीठ] भारतवर्ष मे अपने विषय की सर्व प्रथम विद्यापीठ है
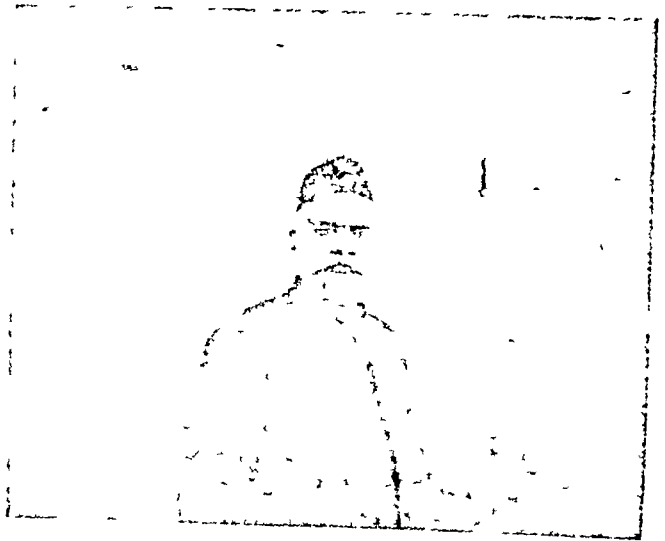
श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप
भारतमें प्राकृतिक चिकित्सा के सर्व प्रथम उन्नायकों मे से एक
जन्म १८८८ मृत्यु: १९३२
कूने मे प्रभावित
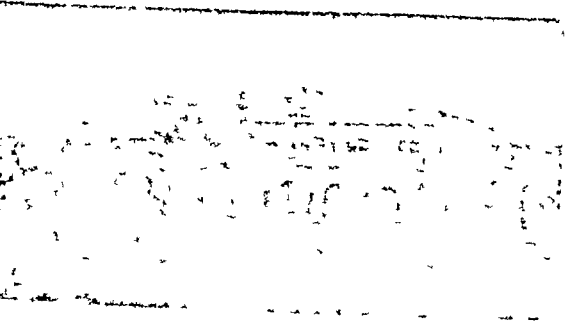
आरोग्य निकेतन, लखनऊ

सम्भवत समस्त एशिया मे इसके अतिरिक्त देश में [...] जगहो मे भी प्राकृतिक चिकित्सा के विद्यालयो [के खु]लने की सूचनाये मिली है। इन कालेजो और विद्यापीठो के अलावा देश भर मे जो आज सैकड़ों प्राकृतिक-केन्द्रों तथा छोटे-बडे अनगिनित प्राकृतिक चिकित्सालयो का जाल बिछा हुआ है सो अलग। सब मिलाकर प्राकृतिक चिकित्सा का भविष्य अत्यन्त उज्वल

जानकी शरण वर्मा दरभंगा (बिहार)
जन्मः १८६८
कार्य क्षेत्रः प्रयाग

"मैंने २२ वर्ष होमियोपैथी और बायोकेमिस्ट्री प्रैक्टिस करके छोड दी। नये रोग मे तो लाभ हो जाता है पर पुराने रोगो मे कुछ ही लक्षणो को दूर करने के बाद लाभ स्थगित हो जाता है। सो नये रोग नेचरोपैथी द्वारा विना औषधि के ही जल्द दूर हो जाते है। .... अपने अनुभव की बात कह रहा हू। जबकि पेट में मल भरा है, मासपेशी और पुट्ठो मे विकार घुस गया है स्नायु-जाल भी विकार पूर्ण हो रहा है तब तो उपवास, फलाहार, नियमिताहार, हवा, पानी, धूप इत्यादि से ही शरीर स्वस्थ हो सकता है।"

लक्ष्मी नारायण चौधरी
रिटायर्ड सिविल सर्जन जबलपुर
बाद को कट्टर प्राकृतिक चिकित्सक
जन्मः १८६४ मृत्युः १९३९
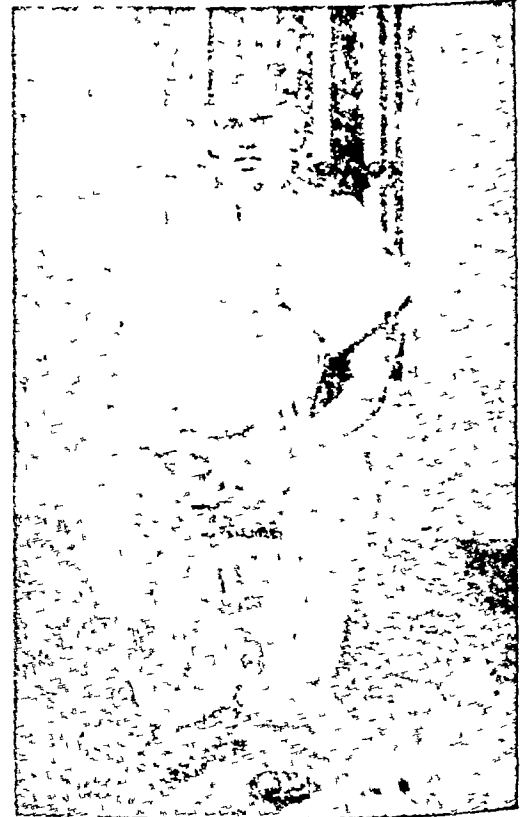
वेगिराज कृष्णम् राजू
मरी पुडी ग्राम, गन्टूर (आन्ध्र)
जन्मः ७-१२--१९१०
मृत्युः ५-२-१९५७

प्राकृतिक-चिकित्सांक

(द्वितीय खण्ड)

प्राकृतिक चिकित्सक महात्मा गांधी

महात्मा गाधी एक कुष्ठ रोगी की प्राकृतिक चिकित्सा मे संलग्न है।

"मेरी १२५ वर्ष जीने की आकांक्षा है। इस शेष जीवन को मै प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार में लगाना चाहता हूँ।

पहला अध्याय

प्राकृतिक चिकित्सा के साधन—पञ्चमहाभूत और रामनाम

पञ्चतत्वों की उत्पत्ति एवं कार्य

सृष्टि के पूर्व जब सम्पूर्ण जीवो के अन्तरात्मा परमात्मा के सिवा कही कुछ न था तब यह जगत एकमात्र भगवद्रूप ही था। सृष्टि के आरम्भ मे सर्व प्रथम भगवान की चेतना शक्ति की प्रेरणा से शब्द तन्मात्र का प्रादुर्भाव हुआ जिससे आत्मा का बोध कराने वाला 'आकाश' उत्पन्न हुआ। अन्य चार तत्वो को अवकाश देना, सबके बाहर-भीतर वर्तमान रहना तथा प्राण, इन्द्रिय और मन का आश्रय होना—ये आकाश के कार्य रूप लक्षण है। नवीन वैज्ञानिक गण 'आकाश' को 'ईथर' या 'स्पेस' (Space) कहते है।

फिर निष्क्रिय शान्त 'आकाश' मे कालगति से विकार होने पर उससे गत्यात्मक तत्व 'वायु' की उत्पत्ति हुई। वृक्ष की शाखा आदि को हिलाना, तृणादि को एकत्र कर देना, सर्वत्र गतिशील होना, गन्धादि युक्त द्रव्य को घ्राणादि इन्द्रियो के पास तथा शब्द को श्रोत्रेन्द्रिय के पास ले जाना तथा समस्त इन्द्रियो को कार्य शक्ति देना—ये वायु के कार्य रूप लक्षण है।

तदनन्तर दैव की प्रेरणा से महा बलवान वायु के विकृत होने पर उससे संसार के नेत्र रूप तेज वा 'अग्नि' की उत्पत्ति हुई। चमकना, पकाना, शीत को दूर करना, सुखाना, भूख-प्यास पैदा करना और उनकी निवृत्ति के लिये भोजनादि कराना व पचाना—ये अग्नि के कार्यरूप लक्षण हैं।

फिर दैव की प्रेरणा से अग्नि व तेज के विकृत होने पर उससे द्रव्य तत्व 'जल' की उत्पत्ति हुई। गीला करना, मिट्टी आदि को पिंडाकार बना देना, तृप्त करना, जीवित रखना, प्यास बुझाना पदार्थों को मृदु कर देना, ताप की निवृत्ति करना और कूपादि मे से निकाल लिये जाने पर उन्हे फिर भर देना—ये जल के कार्य रूप लक्षण है।

इसके पश्चात् दैव प्रेरित रस स्वरूप जल के विकृत होने पर गन्ध गुणमयी 'पृथ्वी' की उत्पत्ति हुई। प्रतिमादि रूप मे [illegible] की भावना का आश्रय होना, [illegible]

स्थित रहना, जलादि अन्य पदार्थो को धारण करना, आकाशादि का अवच्छेदक होना तथा सम्पूर्ण प्राणियो के स्त्रीत्व पुरुषत्व आदि गुणो को प्रकट करना—ये पृथ्वी के कार्य-रूप लक्षण हैं।

उत्पत्ति के बाद ये पाचो तत्व सृष्टि रचना के लिये उस समय तक निष्क्रिय या अक्षम रहे, जब तक कि स्वयं परमात्मा वा राम(सब मे रमण करने वाला) ने उनमें प्रवेश करके(रमण करके) उन्हे सक्रिय नही बनाया अथवा उनको सृष्टि-रचना करने की क्षमता नही प्रदान की।

क्षितिरपतेजोमरुद्व्योम (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) ईश्वर से ही आविर्भूत हुये है या ईश्वर रूप है या ईश्वर इनका उपादान है। 'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' अर्थात् सच तो यह है कि मृत्तिका ही वास्तविक उपादान है। उपनिषद् के इस सिद्धान्तानुसार पृथ्वी, जल से उत्पन्न हुई है या जल का ही विकार है अत वह जल रूप ही है। इसी प्रकार जल अग्नि से उत्पन्न हुआ अथवा अग्नि का ही रूपान्तर है अत. वह अग्नि रूप ही है। अग्नि भी वायु से उत्पन्न होने के कारण वायु रूप ही है। वायु आकाश से प्रादुर्भूत होने के कारण आकाश रूप ही हुआ और अन्त मे आकाश ईश्वर से उत्पन्न होने के कारण ईश्वर की ही अभिव्यक्ति कहलायेगा अत वह ईश्वर से अभिन्न है। इस तरह विश्व की उत्पत्ति ईश्वर से एव उसकी एकता ईश्वर के साथ सिद्ध होती है—

सर्वगुण सम्पन्न ईश्वर
|
आकाश—एक गुण—शब्द
|
वायु—दो गुण—शब्द + स्पर्श
|
अग्नि—तीन गुण—शब्द + स्पर्श + रूप
|
जल—चार गुण—शब्द + स्पर्श + रूप + रस
|
पृथ्वी—पाच गुण—शब्द + स्पर्श + रूप + रस

यहां पर एक बात उल्लेखनीय है। वह यह कि विकार के कारण जो तत्त्व क्रमश· उत्पन्न होते गये उनमे से प्रत्येक अपने से पहले उत्पन्न होने वाले तत्व की तुलना मे स्थूल थे। अर्थात् सूक्ष्मतम भगवान से आकाश स्थूल है, आकाश से वायु स्थूल है; वायु से अग्नि स्थूल है, अग्नि से जल स्थूल है, तथा जल से पृथ्वी स्थूल है।

एक बात और। पदार्थ-विज्ञान का एक सिद्धान्त है कि जो पदार्थ पहले से ही था, वह नये सिरे से उत्पन्न नही हो सकता। इस सिद्धात की पुष्टि गीता भी 'नासतो विद्यते भाव' द्वारा करती है। इसलिये उपर्युक्त कोष्टक में पृथ्वी का पाचवा गुण गध जो सब के अन्त मे दिखाया गया है, उसे नया नहो मानना चाहिये, अपितु उसका स्थान जल मे पहले से ही मानना पडेगा क्योकि पृथ्वी की उसके गुणो के साथ उत्पत्ति जल से हुई है। इसी प्रकार जल के चौथे गुण रस की स्थिति अग्नि मे, रूप की वायु मे, स्पर्श की आकाश मे, और अन्त मे शब्द की स्थिति अव्यक्त रूप से ईश्वर मे माननी ही पडेगी। इस प्रकार पञ्चतत्व ईश्वर का ही रूप सिद्ध हुये।

सर्व शक्तिमान ईश्वर से आविर्भूत पाचो तत्वो का उपर्युक्त क्रम ही हमारे जीवन, स्वास्थ्य, और आनन्द के लिए उनकी उपादेयता और मूल्य के दृष्टिकोण से वास्तविक एव प्राकृतिक क्रम है। केवल इसी क्रम से उनका प्रयोग करके हम सुख-शान्ति के भागी हो सकते हैं। अर्थात् ईश्वर या राम नाम के विना तो हमारी कोई सत्ता ही नही है, इस महत्तत्व का स्मरण हमे अनवरत होते रहना चाहिये। यह हमारे जीवन, सुख, सवृद्धि के लिए सर्वाधिक आवश्यक तत्व है। तत्पश्चात् हमारा सम्पर्क आकाशतत्व मे अटूट रहना परमावश्यक है। उसके बाद वायु तत्व से। वायु से कम हमे रोशनी की आवश्यकता होती है। रोशनी से कम जल की। और सबसे कम जिस वस्तु की आवश्यकता हमारे जीवन-यापन के लिये है, वह है पृथ्वी प्रदत्त भोजन, वस्त्र, तथा आवास। इस तरह हम देखते हैं कि हमारी जीवन-रक्षा के लिये 'राम-नाम' अधिक आवश्यक और भोजनादि जीवन के अन्य साधन सबमे कम आवश्यक हैं। पर हम जानते हैं कि आजकल हमारा जीवन इससे ठीक उल्टा और विपरीत दिशा मे चल रहा है। अर्थात् 'राम-नाम' जो जीवन के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है, उसे तो एक प्रकार से भूल ही चुके है, या उसकी आवश्यकता नही समझते। और यदि कुछ आवश्यकता समझते हैं तो श्रद्धा और विश्वास के बिना 'राम-नाम' लेना सिद्ध होता है परन्तु भोजन, कपड़ा, और महल-महलात सबसे कम आवश्यक वस्तुयें है, उनके लिये और केवल के लिये हम जी रहे हैं। जिसका परिणाम जो कुछ भी है सामने है। अर्थात् हम अपने जन्म सिद्ध उत्तम स्वास्थ्य, गिक सौन्दर्य, एव लम्बी आयु को खोकर दिनोंदिन दीन दशा को प्राप्त हो रहे है।

पाचो तत्वो मे से पहले के तीन तत्वो (आकाश, और अग्नि) से जीवन-शक्ति को बल मिलता है, अन्तिम दो' अर्थात् जल और पृथ्वी (भोजन) से की परिपुष्टि होती है। जीवन-शक्ति स्वयं एक स्व सत्ता है जो शरीर से भिन्न एवं उससे उच्च है।

वेदान्त में इन पञ्चतत्वो के दो रूप प्रतिपादि हैं—सूक्ष्म पञ्चतत्व और स्थूल पञ्चतत्व। पञ्चतत्वो की उत्पत्ति, स्थूल पञ्चतत्वो से हुई बतायी गई है, और यह कि स्थूल पञ्च सूक्ष्म पञ्चतत्वो के ही स्थूल रूप है या यो कहिये कि पञ्चतत्वो का सूक्ष्माश, अर्थात् पञ्चीकरण होने के मे व्याकृत आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी के सूक्ष्मांश अन्त करण बने। इन सूक्ष्म तत्वो की समष्टि और उसके आधारभूत आत्मा को ही हिरण्यगर्भ कहते है। इसलिए यह समझना भूल है कि इन पञ्चतत्वो से केवल स्थूल शरीर की ही रचना हुई है। वस्तुत ये पाचो तत्व स्थूल देहावलम्बी भी है और स्थूलदेह के उपादान स्वरूप भी। इसका अर्थ यह हुआ कि सूक्ष्म जगत और सूक्ष्म शरीरों की सृष्टि सूक्ष्म तत्वो से हुई है और स्थूल जगत एवं स्थूल शरीरो की सृष्टि स्थूल तत्वो से। इस तरह हमारे स्थूल शरीर की रचना स्थूल तत्वो से एव सूक्ष्म शरीर की रचना सूक्ष्म तत्वो से हुई है। हमारे सूक्ष्म शरीर चूंकि अदृश्य सूक्ष्म तत्वो से निर्मित हुये है, इसलिए वे अधिक शक्तिशाली हैं अत· हमारे स्थूल शरीर का सञ्चालन करते है। हमारी जीवन शक्ति या प्राण-शक्ति सूक्ष्म शरीर के ही आधीन रहकर अपना कार्य सम्पादन करते है। स्थूल शरीर की कोई अपनी जीवन-शक्ति अलग

नही होती ।

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पञ्च-तत्व निर्मित हमारे शरीर की रक्षा केवल भोजन से ही नही हो सकती, बल्कि उसके साथ-साथ इस काम के लिये बाकी चार तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, और जल) भी परमावश्यक है । अर्थात् पाचो तत्व हमारे शरीर के लिये पाच प्रकार के भोजन है । इन भोजनो में से किसी एक या दो या कई भोजनो की हमारे शरीर में कमी हो जाने से वह रोगाक्रान्त हो जाता है । उस वक्त हम इन्ही तत्वों से बुद्धिमानी के साथ, दवा का काम लेकर आश्चर्यजनक रूप से आरोग्य लाभ करते हैं ।

पुनीत पुरातन वैदिक युग मे पांचो तत्वों—आकाश, वायु, अग्नि, जल, एव पृथ्वी को निर्दोष बनाये रखने के लिए जीतोड प्रयत्न किये जाते थे । उस युग मे सुन्दर और स्वच्छ वायु श्वास लेने के लिए मिलती थी । घर-घर यज्ञ की आहुतियो की धूम, आकाश मण्डल को सतत शुद्ध रखती थी जिससे ऋतुयें अपने समय पर होकर हमारे घरो को धन-धान्य और घी दूध से परिपूर्ण रखती थी, जिनको भोग कर हम शूर-वीर तो होते ही थे, साथ ही साथ सैकड़ो वर्ष तक जीवित भी रहते थे । गगा-यमुना आदि नदियो का निर्मल जल सर्वत्र उपयोग मे आता था । सूर्य प्रकाश का उचित रूप मे श्रद्धा भक्ति के साथ उपयोग किया जाता था । पृथ्वी पर से अनेक प्रकार के मल तथा दोषो को दूर करने के लिए उस समय के पुरुष पुङ्गव निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे । फल यह होता था कि वे लोग स्वस्थ, बलिष्ट, सद्गुणी एवं दीर्घायु वाले होते थे ।

पर आज उन्ही पञ्च तत्वो, जिन पर हमारा जीवन निर्भर है, को दूषित बनाने के लिए, विश्व मे एक होड सी लगी हुई है । वन-उपवनो को नष्ट करके खेत बनाए जा रहे है जो वायु के दूषित होने का प्रधान कारण है । आजकल यज्ञ-हवन के नाम से ही लोगो को चिढ है । उनके स्थान पर अणु बमो के परीक्षण आए दिन किए जा रहे है । फलस्वरूप ऋतुये भी अपने समय पर पूर्णरूप से नियमित नही हो पाती, जिसकी वजह से आजकल, बीमारियों से हम सदैव त्रस्त रहते है । जल-विकृति का यह हाल है कि गंगा-यमुना जैसी पवित्र सरिताओं में भी नगरो का नारकीय मल सतत बहता रहता है जिनका दूषित कृत्रिम जल नलो द्वारा प्राप्त कर हम अपना जीवन किसी प्रकार बिता रहे है । अग्निदेव की छीछालेदर जो इस युग मे हो रही है, वह कहने योग्य नही । लाखो-लाखो मन विष्टा प्रतिदिन अग्निहोत्र की जगह अग्निदेव को समर्पित कर उन्हे दूषित धूम्र का साधन बनाया जाता है । पत्थर के कोयले से चलने वाले अगणित कल-कारखानो को खोलकर विश्व का सारा वातावरण मानव-समाज को सास लेने के सर्वथा अयोग्य बनाया जा रहा है । इसी प्रकार पृथ्वी पर फैले खेतो मे रासायनिक खादो का प्रयोग करके उनकी उर्वरा–शक्ति को नष्ट किया जा रहा है । ऐसे खेतों में जो कुछ थोडा बहुत खाद्य-पदार्थ उपजता है वह तत्वहीन होता है और हमारे शरीर को पूरा पूरा लाभ पहुचाने की क्षमता नही रखता । ये ही कारण है जो आज हमे जीवनस्वरूप इन पञ्चतत्वो से वास्तविक लाभ नही प्राप्त हो रहा है, और उपर्युक्त प्रकृति–वैषम्य की वजह से ही उस वैदिक युग और वर्तमान युग मे आकाश और पाताल का अन्तर होगया है ।

रामनाम सर्वोपरि और प्रबल साधन

पञ्च महाभूत प्राकृतिक चिकित्सा के साधन तो है ही, पर उनका मूलाधार राम–नाम–तत्व है । अर्थात् रामनाम के बिना प्राकृतिक चिकित्सा अधूरी है ।

रामनाम अथवा ईश्वर, पञ्चमहाभूत समन्वित प्रकृति का अधिष्ठाता है रामनाम के बिना पञ्च महाभूत की कोई सत्ता एवं गति नही होती । । रामानाम, अर्थात् आत्मतत्व मे जीवित श्रद्धा बिना रोगरहित जीवन अस–म्भव है ।

गीता मे भगवान कृष्ण कहते है.—

"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्व क्षेत्रेषु भारत ।

अर्थात् ईश्वर का वास सबके दिलों मे समान रूप से होता है जो अपनी आश्चर्यमयी शक्ति से एक मशीन की तरह हमारे भीतर बाहर के सभी कार्यों को हमसे करवाता है । तुम्हे हृदय से उसी शक्ति को आत्मसमर्पण करो, तुमको उसकी कृपा से शान्ति एवं मुक्ति प्राप्त होगी ।

राम का भी यही अर्थ है, अर्थात जो सबमे रमण करे वह राम है—ईश्वर है । अत. जो यह कहता है—'मैं इस शरीर से मालिक परमात्मा से दूर हूं ।" वह

अज्ञानी है। और जो यह कहता है—"मै अपने मालिक परमात्मा के इतना निकट हू कि मै उसमें और अपने मे कुछ भी अन्तर नही देख पा रहा हूँ और अपना 'मै पन' भूल चुका हू।" वही सच्चा ज्ञानी है।

एक प्राकृतिक चिकित्सक जानता है कि प्रत्येक प्राणी के भीतर आरोग्य प्रदान करने वाली एक शक्ति होती हे जो उसे स्वस्थ तथा निरोग रखती है, आवश्यकता पड़ने पर शरीर को स्वच्छ और निरोग करने के लिए रोगो की उत्पत्ति करती है, तथा वही फिर उन रोगो से मुक्ति भी देती है। उसी शक्ति को कोई जीवन-शक्ति, कोई परमात्मा, कोई अन्तरात्मा, तथा कोई राम कहकर पुकारता है। इस तरह प्राकृतिक चिकित्सा को यदि ईश्वरीय चिकित्सा कहे तो गलत न होगा। क्योकि इस चिकित्सा मे हमको वह काम परमात्मा पर ही छोड देना पड़ता है जो वही और केवल वही कर सकता है। मेरी नही, अपितु तेरी इच्छा पूर्ण हो, इस भावना का दूसरा नाम 'आत्म समर्पण' है जिसे आत्मोन्नति का सर्वोच्च ... माना गया है और यही प्राकृतिक चिकित्सा ... जान है।

महात्मा गाधी का कथन है कि मनुष्य का ईश्वर अटट्ट सम्बन्ध है। इसलिए मनुष्य जितने ही अंशो... अपने इस सम्बन्ध को पहचानेगा, उतने ही अंशो मे... पाप और रोग से मुक्त हो जायगा अथवा मुक्त रहेगा।

रोगो को दूर करने के लिए राम-नाम कितना अमो... है, इसको भगवान धन्वन्तरि के ही शब्दो मे पढिये। भगवान धन्वन्तरि कहते है—

"अच्युतानन्द गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥"

अर्थात्, अच्युतानन्द गोविन्द का नाम उच्चारण ... एक दवा है जो सब रोगो का नाश करती है, मैं सत्य-सत्य कहता हू।

दूसरा अध्याय

महत्तत्व-चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा का मूलाधार महत्तत्व अथवा राम नाम तत्व है रामनाम वा भगन्नाम के बिना प्राकृतिक चिकित्सा अधूरी ही रह जाती है, इस कथन का उल्लेख पहले अध्याय मे हो चुका है वहा यह भी सकेत किया गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा के साधनो—आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी, मे से प्रत्येक साधन का शक्ति-स्रोत रामनाम ही है। अर्थात् सर्वशक्तिमान रामनाम से ही उन्हे रोग निवारण शक्ति की प्राप्ति होती है। उनमे अपनी निज की कोई ऐसी शक्ति नही होती। इस सम्बन्ध मे उपनिषद् में एक कथा है।

एक बार पञ्चतत्वो सहित सब देव आपस मे झगडने लगे। वायु बोला, मैं श्रेष्ठ हू, अग्नि कहे, मैं श्रेष्ठ हूं, जल कहे मैं श्रेष्ठ हू, और इन्द्र कहे, श्रेष्ठ हूं। जब उनका इस तरह विवाद चल रहा था, तब अचानक उनके बीच मे एक देवी आ खडी हो गई वह ज्ञान की देवी उमा थी। उनका दिव्य रूप झलमला रहा था। इन्द्र, वायु से बोला कि जाओ उस देवी से पूंछताछ करो। वायु, देवी के पास गया, और बोला, आप कौन है? देवी ने पूछा, तुम कौन हो? वायु गर्व से बोला, तुम्हे मालूम नही, अरे मैं वायु हूं। मै पर्वतो को उडाता हूँ, वृक्षो को उखाडता हूं, समुद्र को हिलाता हू, मेरी शक्ति अपार है। देवी बोली, यहा एक तिनका है, जरा इसे तो उडाओ। वायु ने तिनके को उडाने की कोशिश की, पर उडाते न बना। उसका दर्प चूर्ण हो गया और वह चला गया। उसके बाद अग्नि आया। उसने देवी से पूछा, तुम कौन हो? देवी ने ... पूछा, आप कौन? अग्नि अभिमान से बोला, तुम्हे मालूम नही, मैं कौन हू? यदि मैं चाहूँ तो सारे ब्रह्माण्ड को

कर डालूं, मेरा प्रभाव असीम है। देवी बोली, यह
का है, जरा इसे तो जलाओ। अग्नि ने बड़ी कोशिश
पर तिनका तनिक भी नही जला। इसी प्रकार अन्य
देवताओ की किरकिरी हुई। अत मे ज्ञान की देवी
ो, अरे देवगण! मैं बड़ा हू, मैं बड़ा हू कह-कह कर
लड़ रहे हो, सूर्य को प्रकाश करने की शक्ति दी गयी
वहा वह बड़ा है, वायु को उड़ाने की शक्ति दी गई
वहा वह बड़ा है, अग्नि को जलाने की शक्ति दी गई
वहाँ वह बड़ा है, फिर अपनी-अपनी शक्ति का इतना
भमान क्यो? उस विश्वेश्वर ने विशेष-विशेष शक्ति आप
से प्रत्येक को दे रखी है। यदि वह अपनी शक्ति समेट
तो तुम सब मिट्टी हो, अर्थात् कुछ नही हो।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर एव राष्ट्रपिता महात्मा
धी के सहयोगी तथा सूफी सत पूज्य गुरुदयालमल्लिक
खते है —

"महापुरुषो के चरणो मे बैठकर और जीवन का
नुभव लेकर मुझे यह विश्वास हो गया है कि प्रकृति प्रभु
प्रांगण है। इसलिये प्रकृति के नियम जानना प्रभु को
छ-कुछ पहचानना है। यह शरीर तो प्रकृति का बनाया
आ एक पुतला है। इसलिये प्रकृति का नियम जानना
मारा कर्तव्य है। एक अनुभवी ईसाई सज्जन ने अपने
त्तम स्वास्थ्य का जो रहस्य मुझे बताया वह यह था: —

Every day I study Regularly my bowels
nd the bible

अर्थात्, मैं हर रोज अपने पेट की हालत का ख्याल
रखता हूं और धर्म-शास्त्र का भी अभ्यास करता हूं।"

"दोनो की खबर रखने की जरूरत है—प्रभु की और
ेट की। इसीलिये तो रामनाम के बिना कोई चिकित्सा
सफल नही हो सकती।'

महात्मा गाधी का कथन है, कि श्रद्धा से मनुष्य जो
रोग मुक्त हो जाता है, उसका रहस्य यही है कि ईश्वर,
जिसकी हम भक्ति करते हैं, स्वयं सत्य, स्वास्थ्य, और प्रेम
है। और वह तो वैद्य भी है, इसलिये रामनाम का आश्रय
लेने से हर प्रकार के रोग-शोक के दूर होने मे देर नही
लगती।

वस्तुत यदि चिकित्सा-शास्त्र मे महत्तत्व-चिकित्सा का
... विकास दिया जाय तो आचार्य श्री गौरकृष्ण गो-
स्वामी शास्त्री के शब्दों में वह विनाश विनिश्चित है जिसकी
कभी कल्पना नही की जा सकती।

रोगो से छुटकारा पाने के लिये विष्णुसहस्रनाम पाठ,
महामृत्युंजय, दुर्गासप्तशती, शीतला-स्तवन से आज के
इस नास्तिक युग मे भी आस्तिक भारतवासी लाभ उठाते
हैं यथा —

'सोमं सानुचरंदेवं समातृगणमीश्वरम्।
पूजयन प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात्॥
विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिविभुम्।
स्तुवन् नाम सहस्रेण ज्वरान् सर्वानिव्यपोहति॥
(चरक चि० ६।३१०-३११)

श्रोतव्यं पठितव्यंच नरैर्भक्तिसमन्वितैः।
उपसर्ग विनाशाय परं स्वस्तयनं महत्॥
(भावप्रकाश ६०।८१)

विषम ज्वर को भगाना हो तो श्रीमद्भागवत की
कथा श्रवण कीजिये। देखिये.—

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतुतेमज्वराद्भवम्।
योनौ स्मरति सम्वादं तस्य तन्न भवेन्नयम्॥
(श्रीमद्भागवत् १०।६३।८६)

इसी प्रकार हृदय रोगोंकी अव्यर्थ औषधि श्री कृष्ण-
चन्द्र की ललित लीलाओ का सप्रेम कीर्तन है:—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं चविष्णोः,
श्रद्धान्वितोऽनुश्रणुयादनुवर्णयेद्यः।
भक्ति परां भगवति प्रतिलभ्य कामं,
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्य चिरेण धीरः॥
(श्रीमद्भागवत् १०।३३।३६) आदि।

इस रोग-शोक से भरे ससार मे मनुष्यो को उद्विग्न
होजाने के, घबरा जाने के, मौके आते ही रहते हैं।
ऐसे मौको पर उन्हे जिस चीज की सबसे अधिक जरूरत होती
है, वह है 'शाति'। उस शाति को प्राप्त करने के अनेक
मार्ग है। जिनमे सर्वोत्तम और राज मार्ग रामनाम जप,
आत्मचिन्तन या ईश प्रार्थना है।

प्रार्थना द्वारा परमात्मा के चरण-कमलो में आश्रय
लेने से रोग, शोक, दुख, विपत्ति सबसे छुटकारा मिल
जाता है। उस समय हमें बोध होता है कि जो कुछ
बुरा भला हो रहा है, सब ईश्वर की इच्छा से हो रहा
है, और हमारी भलाई के लिए ही हो रहा है। केवल
इस प्रकार की अनुभूति से ही पूर्ण शाति प्राप्त हो जाती
है। अत जब कभी किसी प्रकार की विपत्ति आ

हो तो मनुष्य को भगवान की प्रार्थना करते हुए उपर्युक्त विचारो को मन मे लाकर शाति प्राप्त करनी चाहिए।

महात्मा ईसा ने कहा है—'तुम ईश्वर को प्राप्त करो तो जगत और उसके पदार्थ तुम्हे स्वत. प्राप्त हो जायेगे, क्योकि जगत ईश्वर का है।' यही उपदेश ससार के अन्य धर्मो और धर्माचार्यो का भी है और परमात्मा को प्राप्त करने का मुख्य द्वार उसकी प्रार्थना ही है।

प्रार्थना से सासारिक समस्त चिन्ताओ और क्लेशो का नाश हो जाता है। मनुष्य जिनकी कल्पना तक नही कर सकता, ऐसी चीजे प्रार्थना द्वारा प्राप्त हो जाती है। इससे हमारी समझ में यह बात आ जाती है कि एक महा शक्ति है जो सर्वत्र उपस्थित रहकर सब कुछ करती रहती है। उपनिषदो में आया है—'एक ही चेतन तत्व इस सारे ब्रह्माण्ड को चला रहा है। प्रार्थना द्वारा जब उस महा-शक्ति का ज्ञान होता है तो उसके चरणो मे लिपट जाने की प्रबल इच्छा का होना स्वाभाविक ही है। यही प्रार्थना की पराकाष्ठा है। महर्षि श्री अरविन्द घोष ने लिखा है—'मनुष्य के अन्दर भगवान है'। यह एक महान सत्य है। प्रार्थना और तत्पश्चात् ईश्वरानुग्रह से ही मनुष्य इस सत्य का साक्षात्कार कर सकता है।

प्रार्थना से मन का कलुष धुल जाता है और आत्मा विशुद्ध हो जाता है। आत्मा विशुद्ध होने पर ही वह अपना सम्बन्ध परमात्मा के साथ स्थापित कर सकता है, जिससे उसे स्थाई सुख शाति की प्राप्ति होती है। यथा.—

> सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्मयो वेद
> निहित गुहायां परमे व्योमन्।
> सोश्नुते सर्वात कामान्॥
>
> —उपनिषद्

अर्थात्, ब्रह्म सत्य और ज्ञान अनन्त है। वह हृदयाकाश की गुफा मे रहता है। जो उसे जान लेता है उसकी सब कामनाये पूर्ण हो जाती है।

जिस प्रकार धूल जमे शीशे मे चेहरा साफ नही दिखाई देता, उसी प्रकार मनुष्य के कलुषित हृदय में परमात्मा की झलक की आशा करना दुराशा मात्र है। महात्मा गाधी ने एक जगह लिखा है— मनुष्य को पहले अपना हृदय स्वच्छ करना चाहिए। ईश्वर की प्रार्थना को छोड़ हृदय को स्वच्छ करने वाली वस्तु कौन सी है? ईश्वर के नाम के झाड़ू से अपने हृदय को सा[illegible] साफ करो।'

एक स्वच्छ हृदय की सच्ची प्रार्थना, जिसमें [illegible] मे भी ईश्वर दिखाई देता है, हमे कठिनाई से [illegible] करने का बल ही नही देती बल्कि कठिनाई की [illegible] सुख ला देती है। जगत प्रसिद्ध द्रोपदी, गजराज, [illegible] आदि की प्रार्थनाये कुछ इसी कोटि की सर्व[illegible] प्रभावोत्पादक प्रार्थनायें थी जिनसे भगवान का [illegible] पल मात्र मे डोल गया था।

प्रार्थना से मनुष्य का हृदय स्वच्छ होकर उसका [illegible] बदल जाता है, जिससे उसे संतोष और शान्ति [illegible] उपलब्धि होती है। सरहदी गांधी खान अब्दुल [illegible] खा ने भी एक बार कहा था—'प्रार्थना या नमाज [illegible] एक ही मकसद है, और वह यह कि हम अपने [illegible] तमाम गदगी और कमीनेपन से बरी करलें।...... प्रार्थना की मदद से हमें इस काबिल बनना है कि [illegible] किसी एक कौम या फिरके की नही, बल्कि खुदा के [illegible] खल्क की खिदमत कर सके। खुदा ने इसीलिए [illegible] इस दुनिया मे भेजा है।

विश्व-वन्द्य बापू के योग्य शिष्य आचार्य विनोबा भा[illegible] ईश- प्रार्थना को भूख से बढ कर मानते हैं। वह क[illegible] हैं—भूख से बढ़ कर हमारे पास उपमा के लिये शब्द न[illegible] है, इसलिये भूख के साथ प्रार्थना की तुलना करते हैं लेकिन दर असल प्रार्थना ऐसी चीज है जिसकी उपयोगि[illegible] का वर्णन करने के लिये हमारे पास शब्द नही हैं-..... परमेश्वर का भजन, उसका नाम स्मरण, व्यक्तिगत तौर पर और सामूहिक तौर मिलकर करना। अकेले एकान्त में भी करना मनुष्य-जीवन के लिए, उसकी उन्नति के लिए सामाजिक उन्नति के लिए, चित्त शुद्धि के लिए, आत्मनिष्ठा की प्राप्ति के लिये और शोक मोहादि प्रसगो मे सावधान रहने के लिए अतिशय उपयोगी है। इस विषय मे कोई विचार-भेद मैने किसी धर्म में नही देखा।

ईश प्रार्थना कैसे करें—

प्रार्थना का सबसे उपयुक्त समय प्रात काल, शय्या छोड़ते समय तथा सायंकाल शय्या पर जाने से पहले है। सवेरे की प्रार्थना मे भगवान से, उस दिन अच्छे काम बन पड़े, इस बात की प्रार्थना करनी चाहिये। और साथ ही

[illegible]ना में जो भी अच्छा-भला काम उस दिन बन पड़ा [illegible]गवान को समर्पण करते हुए उन्हे प्रणाम करना [illegible]ए और बुरे कामो के लिये जो उस दिन जाने या [illegible]जाने मे होगये हो, भगवान से क्षमा मांगनी चाहिए उसके सामने इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि बुरे काम फिर कभी न होगे। इस प्रकार अपना हृदय [illegible]ना के समय भगवान के सामने बिलकुल खोल देना [illegible]हए। दिल मे किसी प्रकार का खोट या छल कपट रखना चाहिए। ऐसा करने से एक विचित्र प्रकाश [illegible]प्रार्थना करने वाले का हृदय भर उठता है और उसमे [illegible]लौकिक दैवी शक्ति का सञ्चार हो जाता है। यह कभी [illegible] भूलना चाहिए। परमेश्वर से ही यह सब कुछ है, वह [illegible]त्र है, तथा वही सब प्रकार की शक्तियो का भण्डार भी [illegible]और जब हम उसकी प्रार्थना करते है तो इसका अर्थ [illegible] होता है कि हम उस शक्ति-भण्डार से शक्ति प्राप्त [illegible]ते हैं जो हमारी जीवन यात्रा मे काम आती है और [illegible] सफल बनाती है।

प्रार्थना की मधुरता बढ़ाने के लिये उसे शुद्ध हृदय से [illegible]नी चाहिये। यदि कहना चाहे तो कह सकते है कि [illegible]र्थना जिह्वा से नही अपितु हृदय से होनी चाहिये। [illegible]र्थना के शब्द तो हृदय के भावो को व्यक्त भर करते हैं, [illegible]स्तव मे उनका स्रोत तो हृदय ही होता है। हृदय मे [illegible]र्थना की शुद्ध भावना रहने से नि शब्द प्रार्थना भी की [illegible] सकती है। प्राचीन भारतीय ऋषिगण शब्दो द्वारा ही [illegible]-प्रार्थना करते थे और उनकी प्रार्थनाये ईश्वर कबूल [illegible]रता था और तदनुसार फल प्रदान करता था। लेकिन [illegible] शब्दो मे वे ऋषिगण अपने प्राण भर देते थे समस्त [illegible]वन को ही प्रार्थनामय बना देते थे, तथा वे केवल प्रार्थना [illegible]न्त्रो को जपते ही नही थे अपितु जप के साथ तप भी [illegible]रते थे। तप का अर्थ यहा साधना है। बिना साधना के [illegible]चित्त-शुद्धि असम्भव है। और बिना चित्त शुद्ध हुए प्रार्थना [illegible]फल नही हो सकती।

प्रार्थना करते समय धन-दौलत, लड़का बाला आदि [illegible]सांसारिक वस्तुये भगवान से मांगना बड़ी निकृष्ट कोटि [illegible] [illegible] । प्रार्थना मे [illegible] हम ये तुच्छ वस्तुयें [illegible] [illegible] भगवान [illegible] [illegible] नहीं चाहिए। उस वक्त हम इन तुच्छ सांसारिक वस्तुओ को भगवान से माग कर भगवान और उसकी प्रार्थना—दोनो का महत्व घटा देते है, जो कदापि नही होना चाहिए। इसीलिए प्रायः सभी सत महात्माओ ने इस बात पर जोर दिया है कि प्रार्थना मे कोई सासारिक वस्तु नही मागनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्द के शब्दो मे प्रार्थना आत्मिक उन्नति के लिये अथवा 'सर्वे भवन्तु सुखिन' अर्थात् सबके कल्याण के लिए होनी चाहिये। संत तुलसीदास भी 'हेतु रहित अनुराग राम-पद' ही मानते है। मुस्लिम संत रबिया भी 'हे प्रभु तेरी इच्छा ही मेरी इच्छा हो' कहकर हेतु रहित प्रार्थना की ही स्वीकृति देती है। अत. अनासक्ति पूर्वक कर्तव्य समझकर स्वच्छ हृदय और सात्विक बुद्धि से की हुई प्रार्थना ही सच्ची प्रार्थना है।

प्रार्थना के लिए शात वातावरण, तथा शातिपूर्ण स्थान का भी कम महत्व नही है। इसी प्रकार चिन्तित हृदय से उत्तम प्रार्थना सम्भव नही है। प्रार्थना ही क्यो ससार का कोई भी काम चिन्तित व्यक्ति से ठीक ठीक नही हो सकता। हृदय की चिन्ता को भगवान के पावन प्रेम से बदल कर शान्ति पूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए। विश्वास और श्रद्धा पूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए यह आशा करते हुए कि ईश्वर हमारा पथ अपनी रीति और इच्छानुसार सुगम बना रहा है, वह हमारी समस्याओ को अपनी इच्छित विधि से सुलझा रहा है। प्रार्थना मे धैर्य को खोना एक बड़ी भारी बाधा है क्योकि प्रार्थना का अर्थ होता है—अपने प्रिय और शुभैषी से मिलना। वहा अधीरता का क्या काम ?

प्रार्थना मे ध्यान का भी प्रमुख स्थान होता है। ध्यान को आत्मा का प्राण कहा जाता है। जिस काम मे मन न लगे, ध्यान न जमे उसे पूरा कभी न समझिये। मनुष्य का मस्तिष्क केवल ध्यान द्वारा ही तथ्यो का दर्शन कर पाता है। परमात्मा ने हमारी इन्द्रियों को बहिर्मुख ही बनाया है, जिसके सहारे हमें केवल बाह्य ससार का ज्ञान होता है। अन्तर्जगत या अन्तरात्मा का ज्ञान उन इन्द्रियो से नहीं होता। परन्तु ध्यान द्वारा जब उन इन्द्रियो को हम आवृत या अन्तर्मुखी कर लेते हैं तो हमारे लिये अन्तर का भी ज्ञान सुलभ हो जाता है। अन्तर, अन्तःकरण, आत्मा, परमात्मा, एक ही चीज

अनेक नाम हैं। साधना से ध्यान जमने लगता है। अधिकारी महात्माओ ने बताया है कि जब प्रार्थना के समय ध्यान न जमे, चित्त चञ्चल हो जाय तो अपने इष्ट देव रूपी भगवन्नाम का जप आरम्भ करदेना चाहिये, या कुछ देर इधर उधर टहल या घूम फिर कर चञ्चल मन को बहला लेना चाहिये। तत्पश्चात पुनः ध्यान मे प्रवृत हो जाना चाहिये। मन का बन्दर की तरह इधर उधर उछलना-कूदना और एक स्थान पर, एक लक्ष्य पर स्थिर न रहना ही विक्षेप कहलाता है। प्रार्थना के समय यह एक भारी विघ्न है। इसे अवश्य रोकना चाहिये। इसके लिये अभ्यासी को प्राणायाम, सुदृढव्रत, निरन्तर उद्योग तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

ध्यान जमाने के लिये मौन रहना सीखना चाहिये। मौन और एकान्तवास एक महान तप है। इससे आत्मिक उन्नति और शक्ति प्राप्त होती है जिससे मन पर विजय पायी जा सकती है। मौनावस्था मे मनष्य दुनिया के सारे बन्धनो सेछूट कर अपने प्रभु से अपना सम्बन्ध स्थापित कर पाता है, तथा मानसिक एव आत्मिक शान्ति का अनुभव कर सकता है।

इस तरह हम देखते है कि ईश्वर-प्रार्थना को सफल बनाने के लिये निम्न-लिखित दस बाते अत्यन्त आवश्यक है, जिनके अभाव मे प्रार्थना खरी नही उतर सकती —

(१) प्रभु-प्रेम, (२) प्रभु गुण-गान (३) हरि नाम चिन्तन, (४) आत्म समर्पण, (५) अपनापन, (६)ध्यान (७) विशुद्ध हृदय (८)शान्त वातावरण (९) मौनावलम्बन, तथा (१०) अनासक्ति।

प्रार्थना द्वारा रोग निवारण

यदि उपर्युक्त पंक्तिया ध्यान से पढी जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि प्रार्थना वह अमोघ आध्यात्मिक अस्त्र है जिससे मनुष्य का भाग्य तक बदल सकता है, फिर रोग-शोक किस लेखे मे है। यह मिथ्या नही है कि प्रार्थना से वस्तुओ और परिस्थितियो मे आमूल परिवर्तन हो जाता है। जब रोगी स्वयं या कोई उसका अभिभावक रोग निवृति के लिये प्रार्थना करता है। तो उस समय प्रार्थना के सूक्ष्म अणु रोगी के शरीर के कोषाओ को बदल कर उसे स्वास्थ्य प्रदान करते है। इनके लिये सर्व प्रथम प्रार्थना के सूक्ष्म अणुओ का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है जिनसे शरीर के कोष निर्मित हैं तत्पश्चात् सीधे शरीर के कोषो पर और सबके... रोगी के मूल रोग पर। और इस तरह प्रार्थना... कठिन-से-कठिन रोग तो दूर किया ही जा सकता... मौत को भी प्रार्थना द्वारा कुछ काल के लिये टाल सकता है। कौन नही जानता कि सती सावित्री केवल प्रा... बल से ही अपने प्रिय पति सत्यवान को मौत के ... से बचाने में समर्थ हो सकी। इसी प्रकार इतिहा... जानने वाले जानते है कि हिन्दुस्तान का भूतपूर्व ... बाबर अपने प्रिय पुत्र हुमायू को मौत के मुह... केवल प्रार्थना के अस्त्र का ही प्रयोग करके, ... सका था।

पतित पावन प्रभु के नाम-स्मरण से आत्मा शुद्ध एव स्वस्थ हो जाती है, तो क्या आत्मा के... होने पर उस पर आश्रित मन और शरीर भी स्वस्थ... हो जावेगे ? अत शुद्ध हृदय से निकली हुई ... प्रार्थना अरोग्य-लाभ का उत्तम उपाय है। आत्मा को ... मात्मा से मिलने की सर्वदा इच्छा रहती है। ... वही उसका लक्ष्य होता है। सच्ची प्रार्थना से आत्मा परमात्मा का सामीप्य प्राप्त होता है। जिससे ... सन्तोष होता है, और तब उसे सासारिक विषय भोग... विराग हो जाता है, जिनमे वह पुन. लिप्त नही होता... फलत. उसे रोग शोक से मुक्ति मिल जाती है। क्यों... सासारिक विषय-भोग, आहार-बिहार, तथा अहभाव ससार मे सब प्रकार के रोग-शोक के मूल होवे हैं, ... आत्मा, प्रार्थना के बल से निर्लिप्त हो जाता है।

प्रसिद्ध अग्रेज कवि टेनिसन ने कहा है:—

'More things are wrought by prayer than the world dreams of' अर्थात्, जितना ससार समझ... है प्रार्थना से उससे कही अधिक काम बन जाते हैं। पाश्चात्य देशो मे प्रार्थना द्वारा चिकित्सा करने के दो-... अस्पताल भी अब बन गये है, जहा केवल प्रार्थना से ... रोगो का इलाज किया जाता है। प्राचीनकाल मे स... के विभिन्न देशो मे साधु-सत प्रार्थना द्वारा रोगो का नाश करते थे इसके कितने ही प्रमाण आज भी मिलते हैं।

पूज्य बापू तो रामनाम या ईश-प्रार्थना द्वारा रोग निवारण करने के विशेषज्ञ ही थे। वह रामनाम ...

शारीरिक, मानसिक, और नैतिक, सभी व्याधियो की रामवाण दवा मानते थे और तदनुसार उसका प्रयोग करते थे। प्राकृतिक-चिकित्सा का एकमात्र साधन वह 'रामनाम' को मानते थे। उसके बाद रामनाम से आविर्भूत पच-तत्वो (आकाश, वायु, अग्नि, जल, एवं पृथ्वी) को। पर राम का नाम हृदय से निकलना चाहिये और राम के बताये हुए सत्य मार्ग पर चलते हुए निकलना चाहिये। बापू ने स्वय कहा है—'ईश्वर की स्तुति और सदाचार का प्रचार हर तरह की बीमारी को रोकने का अच्छे से अच्छा और सस्ते से सस्ता इलाज है मुझे इसमे जरा भी शक नही है। 'उन्होने यह भी कहा है' रामनाम मे 'फेथ-हीलिंग' (विश्वास चिकित्सा) और 'क्रिश्चियन साइस' के गुण होते हुये भी वह उनसे बिलकुल अलग है। राम-नाम लेना उस सचाई का एक नमूना मात्र है जिसके लिये वह लिया जाता है। जिस वक्त कोई आदमी बुद्धिपूर्वक अपने अन्दर ईश्वर का दर्शन करता है, उसी वक्त वह अपनी शारीरिक मानसिक और नैतिक सब व्याधियो से छूट जाता है। (हरिजन सेवक २८-४-१९४३)

बापू रामनाम और उससे आविर्भूत पचमहाभूत दोनो को विशुद्ध प्राकृतिक चिकित्सा का साधन मानते थे, जबकि ससार के अन्य प्राकृतिक चिकित्सक केवल पचमहाभूत को। रामनाम को प्राकृतिक चिकित्सा का साधन बताना बापू के अपने अनुभवो और प्रयोगो के आधार पर उनकी अपनी खोज है। अपने जीवन के अन्तिम वर्षो मे प्राकृतिक चिकित्सा का काम हाथ मे लेने के बाद बापू ने बार-बार लिखा और कहा है कि रामनाम शरीर की बीमारियो को मिटाने की रामवाण प्राकृतिक चिकित्सा है। वह प्राकृतिक चिकित्सा का केन्द्रबिन्दु है। रामनाम के बिना प्राकृतिक चिकित्सा को अधूरी ही नही, निष्प्राण भी समझना चाहिये। इस सम्बन्ध मे बापू ने जो समय-समय पर अपने विचार प्रगट किये है उनमे से कुछ नीचे दिये जा रहे है।

"आश्चर्य है कि वैद्य मरते है, डाक्टर मरते है, फिर भी उनके पीछे हम भटकते है। लेकिन जो राम मरता नही, हमेशा जिन्दा रहता है और अचूक वैद्य है उसे हम भूल जाते है।" (सेवाग्राम ३०-१२-४४)

मै जितना [illegible] करता हूँ उतना ही ज्यादा महसूस करता हूँ कि ज्ञान के साथ हृदय से लिया हुआ रामनाम सारी बीमारियो की रामवाण दवा है।"

(उरुली २२-३-४६)

"अगर रामनाम का मन्त्र मेरे दिल मे पूरा पूरा रम जायगा तो मैं कभी बीमार होकर नही मरूंगा। यह नियम सिर्फ मेरे ही लिये नही, सब के लिये है।"('बापू मेरी मां' से ३०-१-४७)

'मेरे लिये मेरा राम सीतापति, दशरथनदन कहलाते हुये भी वह सर्व शक्तिमान ईश्वर ही है, जिसका नाम हृदय मे होने से मानसिक, नैतिक, और भौतिक सब दुःखो का नाश हो जाता है।"

"रामनाम सब जगह मौजूद रहने वाली रामवाण दवा है, यह शायद मैंने पहले पहल उरली काचन मे ही साफ-साफ जाना था। जो उसका पूरा-पूरा उपयोग जानता है, उसे जगत मे कम से कम बाहरी काम करना पडता है फिर भी उसका काम बडे से बडा होता है।' ('हरिजन सेवक' २२-६-४७)

"दूसरी सब चीजो की तरह मेरी कुदरती इलाज की कल्पना ने भी धीरे धीरे विकास किया। वर्षो से मेरा यह विश्वास रहा है कि जो मनुष्य अपने मे ईश्वर का अस्तित्व अनुभव करता है और जिस तरह विकार रहित स्थिति प्राप्त कर चुकता है वह लम्बे जीवन के रास्ते मे आने वाली सारी कठिनाइयो को जीत सकता है। मैंने देखा और धर्मशास्त्रो मे पढा है। इसके आधार पर इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि जब मनुष्य मे उस अदृश्य शक्ति के प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा पैदा हो जाती है, तब उसके शरीर मे भीतरी परिवर्तन होता है। लेकिन यह सिर्फ इच्छा करने मात्र से नही हो जाता। इसके लिये हमेशा सावधान रहने और अभ्यास करने की जरूरत रहती है। दोनो के होने हुए भी ईश्वर कृपा न हो तो मानव-प्रयत्न व्यर्थ जाता है।" (प्रेस-रिपोर्ट १२-६-४५)

'रम्भा (गांधी जी की बचपन की आया) मुझसे कहती कि जब डर मालूम हो, रामनाम लिया करो, वह तुम्हारी रक्षा करेगा। उस दिन से रामनाम सब तरह के डरो के लिये मेरा अचूक सहारा बन गया।'

(हरिजन सेवक [illegible])

[illegible] दावा है कि [illegible]

करने के लिये भी रामनाम बढ़िया इलाज है।" ('हरिजन सेवक' ७-४-४६)

"रामनाम आदमी की बीमारी मे मदद कर सकता है, लेकिन उसके कुछ नियम और अनुशासन है। रामनाम का उचित ढंग से उपयोग किया जाय तभी उससे लाभ होता है। कोई आदमी रामनाम जपे और लूटपाट मचावे तो वह मोक्ष की आशा नही कर सकता। वह सिर्फ उन्ही के लिये है जो आत्मशुद्धि के लिये उचित अनुशासन पालन के लिये तय्यार है।" (बम्बई १५-३-४६)

"रामनाम शारीरिक और मानसिक बीमारियो के लिये सबसे असरकारक इलाज है। अगर आप भगवान से प्रार्थना करे तो वह आपके दुःखो और चिन्ताओं को जरूर मिटा सकता है। लेकिन प्रार्थना को असरकारक बनाने के लिये हमे सच्चे दिल से रामधुन में भाग लेना चाहिये और तभी हमे शान्ति और सुख का अनुभव हो सकता है। ....दूसरी शर्तें भी है। .... सबसे पहली बात तो यह है कि हमे कुदरत के साथ मेल साधकर रहना चाहिये और उसके नियमों का पालन करना चाहिये।" (पूना २२-३-४६)

"जिस रामनाम को मैं सब बीमारियों की रामबाण दवा मानता हूं, वह रामनाम न तो ऐतिहासिक राम है और न उन लोगो का राम है जो उसका इस्तेमाल जादू-टोने के लिये करते है। सब रोगो की रामबाण दवा के रूपमे जिस राम का नाम सुझाता हूं, वह तो खुद ईश्वर ही है जिसके नाम का जप करके भक्तो ने शुद्धि और शान्ति पाई है, और मेरा यह दावा है कि रामनाम सभी बीमारियो की चाहे वे तन की हों या मन की, एक ही अचूक दवा है। इसमे शक नही कि डाक्टरो या वैद्यो से शरीर की बीमारियों का इलाज कराया जा सकता है। लेकिन रामनाम तो आदमी को खुद ही अपना वैद्य या डाक्टर बना लेता है और उसे अपने को अन्दर से नीरोग बनने की संजीवनी हासिल करा देता है। (हरिजन)

बापू के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल लिखते हैं- "बापू को गोली मार दी गई थी। डाक्टर राजसब्बरवाल उनके सिर को अपनी गोद मे रखे उनके कापते हुए औंधे शरीर और अधमंदी आंखो को अपनी भीगी आंखों से निहार रही थीं कि थोड़ी ही देर मे कुछ इलाज किये जाने से पहले ही उनका अवसान हो गया। उस महाप्रयाण के कुछ क्षणों पहले डाक्टर भार्गव आये और एड्रेनलिन (एक अंग्रेजी दवा) तलाश करने लगे। मैंने उनसे दलील की कि वे दवाई को ढूंढने की जहमत न उठाएं। क्योंकि गांधीजी ने हमसे कहा है कि उनकी जान बचाने के लिये भी कोई निषिद्ध दवाई उनको न दी जाय। जैसे जैसे वर्ष बीतते गये उन्हे ज्यादा-ज्यादा विश्वास होता गया कि सिर्फ रामनाम ही उनकी और दूसरो की सारी बीमारियों को दूर कर सकता है।

तीसरा अध्याय

आकाश तत्त्व-चिकित्सा

आकाश तत्त्व

आकाश तत्त्व, पञ्च तत्त्वो मे सबसे अधिक उपयोगी एव प्रथम तत्त्व है। इसको आकाश' और शून्य' भी कहते है।

जिस प्रकार महत्तत्त्व (ईश्वर) निराकार किन्तु सत्य है। उसी प्रकार आकाश तत्त्व निराकार भी है और सत्यभी है महात्तत्त्व अविनाशी है। उसी प्रकार आकाश तत्त्व ी कभी नाश नही होता—महाप्रलय मे भी नही। आकाश विशुद्ध तथा निर्विकार होता है। अतः उससे हमे विशुद्धता एवं निर्मलता (आरोग्य)की प्राप्ति होती है आकाश में देवताओं का वास माना गया है जो अमर है। हम भी आकाश तत्त्व का भरपूर, और उचित सेवन करके अमर नहीं तो: निरोग और दीर्घजीवी तो अवश्य ही हो सकते हैं।

स्मरण रखना चाहिये कि जिस प्रकार निराकार महत्तत्त्व को देखने मे हमे कोई ठोस या दृश्यमान वस्तु नहीं

मिलती अपितु हर ठोस या दृश्यमान वस्तु की प्राप्ति के लिये शक्ति की उपलब्धि होती है, उसी प्रकार विराकार आकाश तत्व से भी वही बात सम्भव है। क्योंकि विराकार से निराकार वस्तु की ही प्राति होती है। किन्तु जो शक्ति हमे महत्तत्व अथवा आकाशतत्व से मिलती है, वह अमोघ होती है—परम कल्याणकारी होती है—आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक, तीनो प्रकार के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने वाली होती है।

यह सत्य है यदि आकाश तत्व का सृजन न हुआ होता तो न तो हम सांस ही लेसकते और न हमारी स्थिति और अस्तित्व ही होता। शेष चारो का आधार भी यही तत्व है। आन्तरिक स्फूर्ति एवं स्वर्गीय आनन्द की अनुभूति आकाश तत्व से ही सम्भव होती है।

आकाश ब्रह्माण्ड का भी आधार है। उपवास इस तत्व की प्राप्ति का एक प्रबल साधन है। वैसे भी प्रतिदिन भूख से थोड़ा कम खाकर हम इस अमूल्य एवं उपकारी तत्व का अर्जन करके सुख शान्ति के भागी बन सकते हैं। बीमारी पड़ने पर उपवास द्वारा शरीर की जीवन शक्ति को अन्य शारीरिक कार्यो से अवकाश दिलाकर हम अपने शरीर मे आकाश तत्व की कमी को पूरा करते है। जिसके फलस्वरूप हम आपसे आप चंगा हो जाते हैं। आकाश तत्व केही कार्य—शोक, काम, क्रोध, मोह, एव भय हैं। शरीर में आकाशतत्व के विशेष स्थान—सिर, कण्ठ, हृदय उदर और कटिप्रदेश है। मस्तिष्क मे स्थित आकाश, वायु का भाग है जो प्राण का मुख्य स्थान है। हृदयदेशगत तेज का भाग है जो पित्त का मुख्य स्थान है। इससे अन्न का पाचन होता है। उदर देश गत आकाश जल का भाग है। इससे सर्व प्रकार की मल विसर्जन क्रिया सम्भव होती है। कटि देशगत आकाश पृथ्वी का भाग है यह अधिक स्थूल होता है और गंध का आश्रय है।

महात्मा गांधी ने आकाशतत्व को 'आरोग्य सम्राट' की संज्ञा दी है और बताया है कि ईश्वर का भेद जानने के समान ही आकाश का भेद जानना है। ऐसे महान तत्व का जितना ही अभ्यास और उपयोग किया जायगा उतना ही अधिक आरोग्य प्राप्त होगा। यदि दिन रात घर बार अथवा कमरे के इस आकाश के साथ सम्बन्ध जुड़ जाय तो हमारा शरीर, बुद्धि और आत्मा पूर्णरीति से आरोग्य भोगे। इस आदर्श को जानना, समझना, और आदर करना आवश्यक है। इसके अनुसार घर-बार साज समाज और वस्त्रादि के उपयोग मे हमे काफी अवकाश रखना चाहिये। जो आकाश अथवा अवकाश के साथ सम्बन्ध जोड़ता है उसके पास कुछ नही होता है और सब कुछ होता है। मनुष्य के सोने का स्थान आकाश के नीचे होना चाहिये। ओस सर्दी से बचने के लिये ओढ़ना भलेही हो। बरसात मे एक छतरी जैसी ऊपर साया भलेही हो बाकी हर समय अगणित तारों से जड़ा हुआ आकाश ही उसकी छतरी होनी चाहिये।

आकाश जैसे हमारे आसपास और ऊपर नीचे है वैसे ही हमारे भीतर भी है। चमड़ी के एक एक छिद्र मे तथा दो छिद्रों के बीच में जहा जगह है, वहा आकाश है। इस आकाश की खाली जगह—को हमें भरने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। इस तरह यदि हम अपना दैनिक आहार, जितना चाहिये उतना ही लें और ठूस-ठूस कर न लें तो शरीर मे मुक्तता रहेगी। इसलिये सप्ताह में या पखवारे में जैसी सुविधा हो उपवास कर लिया जाय तो सब घट बढ सभल सकती है। पूरा उपवास न हो सके तो एक या अधिक समय का भोजन त्याग देने से सभी लाभ होगा। आगे उपवास के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा गया है।

हमारी सजीवनी शक्ति की वृद्धि एवं रोग-शोक की निवृति के लिए आकाश तत्व की प्राप्ति, उपवास के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य और सयम, सदाचार, मानसिक अनुशासन एवं सतुलन, विश्राम अथवा शिथिलीकरण, प्रसन्नता मनोरञ्जन, तथा गाढी नींद से भी होती है।

ब्रह्मचर्य और संयम—

शास्त्रो मे ब्रह्मचर्य की दो श्रेणिया वर्णित हैं। एक का नाम है 'उपकुर्वाण' और दूसरेका नाम है 'नैष्ठिक' जो विद्यार्थी एक, दो, या तीन वेदो का सांगोपांग अध्ययन करके गुरु की आज्ञा से गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करता है उसे उपकुर्वाण कहते है। और जो विद्यार्थी जीवन भर ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार कर लेता है उसे नैष्ठिक कहते है।

मैथुन के त्याग—

आठ प्रकार के मैथुन के त्याग का नाम

शास्त्रो मे मैथुन के निम्निलिखित प्रकार कहे गये है —

(१) किसी सुन्दर स्त्री के रूप अथवा हावभाव, कटाक्षादि का स्मरण करना, कुत्सित पुरुषो की कुत्सित क्रियाओ का स्मरण करना, अपने द्वारा पूर्व मे घटी हुई मैथुन आदि क्रियाओं का स्मरण करना, भविष्य मे किसी स्त्री के साथ मैथुन करने का सकल्प अथवा भावना करना, शृङ्गार-वस्तुओ जैसे इत्र-फुलेल आदि कामोद्दीपक पदार्थों का स्मरण करना, पूर्व मे देखे हुए किसी सुन्दर स्त्री के चित्र का अथवा गदे चित्र का स्मरण करना। ये सभी मानसिक मैथुन के अन्तर्गत है।

(२) गदे तथा कामोद्दीपक एव शृङ्गार-रस का गद्य-पद्यात्मक वर्णन सुनना, स्त्रियो के रूप-लावण्य, तथा अङ्गो का वर्णन सुनना, उनके हावभाव, कटाक्षादि का वर्णन सुनना, तथा अन्य काम विषयक बाते श्रवण करना ये सभी रूप मैथुन के अन्तर्गत है।

(३) अश्लील बातो का कथन, शृङ्गार-रस का वर्णन, स्त्रियो के रूप, लावण्य, यौवन, एव शृङ्गार की प्रशंसा, तथा उनके हावभाव, कटाक्षादि का वर्णन, विलासिता का वर्णन, कामोद्दीपक तथा गदे गीत गाना, तथा ऐसे साहित्य को स्वय पढना और दूसरो को सुनाना। ये सभी कीर्तन-मैथुन के अन्तर्गत है।

(४) स्त्रियो के रूप, लावण्य, शृङ्गार तथा उनके अङ्गों की रचना को देखना, किसी सुन्दर स्त्री के चित्र को देखना, शृङ्गाररस के नाटक सिनेमा देखना, कामोद्दीपक वस्तुओ तथा सजावट के सामान को देखना तथा दर्पण आदि में अपना रूप तथा शृङ्गार देखना। ये सभी प्रेक्षण मैथुन के अन्तर्गत है।

(५) स्त्रियो के साथ हसीमजाक करना, नाचना, गाना, आमोद प्रमोद के लिये क्लब इत्यादि मे जाना, जल-विहार मे जाना और करना, फाग खेलना तथा गंदी चेष्टाये करना। ये सभी केलि-मथुन क अन्तर्गत हैं।

(६) अपने को सुन्दर दिखने के लिये बाल संवारना, कघी करना, काकुल रखना, ~~शरीर को~~ वस्त्राभूषणादि से सजाना, इत्र-फुलेल लगाना, फूलो की माला धारण करना, अगराग लगाना, सुरमा लगाना। साबुन, तेल, पाउडर लगाना, दातो मे मिस्सी लगाना, दातो मे सोना जडवाना, तथा होठ लाल करने के लिये पान खाना या लिपस्टिक लगाना। ये सभी कृत्य शृङ्गार-मैथुन के अन्तर्गत है।

(७) स्त्रियो के साथ एकान्त मे अश्लील बातें करना उनके रूप, लावण्य, यौवन, एव शृङ्गार की प्रशसा करना, हसी-मजाक करना। ये सभी गुह्यभाषण-मैथुन के अन्तर्गत है।

(८) काम बुद्धि से किसी स्त्री अथवा बालक का स्पर्श करना, चुम्बन करना, कामोद्दीपक तथा कोमल अङ्गो का स्पर्श करना तथा स्त्री प्रसङ्ग करना। ये सभी स्पर्श-मैथुन के अन्तर्गत है।

उपर्युक्त बाते पुरुषो को दृष्टि मे रखकर ही कही गई है। स्त्रियो को भी पुरुषो के सम्बन्ध मे ये ही बातें समझनी चाहिये।

वीर्य और रज क्या ?

जिस प्रकार दूध मे मक्खन, तिल मे तेल, मीठे में मिठास, तथा फूल मे खुशबू रहती है, उसी प्रकार शरीर मे वीर्य और रज रहता है। अर्थात् शरीर मे वीर्य और रज का कोई विशेष स्थान निश्चित नही है। वैज्ञानिक प्रक्रियाओ द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि भोजन की मात्रा यदि एक मन हो तो उससे एक सेर रुधिर बनेगा। और एक सेर रुधिर से केवल दो तोला वीर्य बनता है। यदि स्वस्थ आदमी एक सेर भोजन प्रतिदिन करे, वह भी ठीक और उचित भोजन, तो इस हिसाब से ४० दिन मे ४० सेर भोजन वह करेगा। जिससे बनेगा केवल दो तोला वीर्य। अर्थात् ४० दिन की कमाई दो तोले वीर्य होती है। यदि शरीर से एक तोला वीर्य निकलता है तो इसके यह मानी हुये कि शरीर से ४० तोला खून निकल गया। शास्त्रो मे कहा गया है कि एक बार के वीर्य-पात से मनुष्य की आयु ३० दिन यानी एक महीना कम हो जाती है। अब विचारने की बात है कि क्षणिक विषय-सुख के लिए अनावश्यक रूप से वीर्य-स्खलन करना कितनी बडी मूर्खता है।

वीर्य और रज की दो गतियां होती है—ऊर्ध्वगति और अधोगति, वीर्य और रज उत्पन्न होकर शरीर मे रक्त के माध्यम से ऊर्ध्व हो जाय तो उसे ऊर्ध्वगति कहते है। जब वीर्य और रज शरीर मे बन जाता है और नष्ट नही किया जाता तब वह शरीरस्थ

मिलकर ओज मे परिणित हो जाता है और सारे में फैल जाता है, जिसके फलस्वरूप युवक मे [illegible]था के सारे लक्षण तथा युवतियो मे युवतियो के [illegible]क्षण प्रगट होकर, उनमे तेज, शौर्य, कान्ति, मेधा [illegible] की उत्पत्ति होती है।

[illegible]ज या वीर्य का पात हो जाना, उसकी अधोगति [illegible]ता है।

[illegible]र्य-पात से कैसे बचें ?

[illegible]१) अनावश्यक वीर्यपात से बचने के लिए उपर्युक्त प्रकार के मैथुन से बचना चाहिये।

[illegible]२) भोजन मे उत्तेजक पदार्थो, जैसे मिर्च, गरम [illegible], अचार, खटाई, मास, मछली आदि को न रख कर [illegible]ादा, सात्विक एव प्राकृतिक भोजन लेना चाहिये।

(३) किसी प्रकार की नशे की चीज नही लेनी [illegible]। चाय-कहवा आदि भी नही।

(४) सूर्योदय से दो घंटा पहले शय्या त्याग देना [illegible]।

(५) प्रात: साय मुक्त और विशुद्ध वायु मे [illegible] [illegible]मरण करना चाहिए।

(६) सोते समय लघुशका करके तथा हाथो पैरो को [illegible]ानी से खूब धो पोछ कर, तथा कुल्ला करके भगवान [illegible]म का स्मरण करते हुए सो जाना चाहिए।

(७) कुसग को छोडकर सत्सग करना चाहिए।

(८) सद्ग्रन्थो में मन लगाना चाहिए।

(९) मन को सदा उत्तम कार्यो मे फंसाये रखना [illegible]ए।

(१०) नित्य कोई आसन या व्यायाम करने की [illegible] डालनी चाहिए।

(११) सप्ताह मे एक दिन जल पर रहकर उपवास [illegible]र करना चाहिए।

(१२) कब्ज कभी न होने देना चाहिए।

(१३) ठूस ठूसकर अधिक भोजन नही करना [illegible]ए।

(१४) [illegible] भोजन [illegible] करना चाहिए।

(१५) रात मे सोने से पहले गरम-गरम दूध पीने [illegible] [illegible] और वीर्य पात हो जाता है।

[illegible] [illegible] हो तो [illegible] छोड देना चाहिए और उसकी जगह आधे या गिलास भर गुनगुने जल मे आधा या एक कागजी नीबू का रस निचोड कर पीना चाहिए।

(१६) वीर्य पात से बचने के लिए औषधियो के सेवन से बचना चाहिए। उनसे लाभ के बदले हानि ही अधिक होती है।

(१७) वीर्यपात से बचने के लिए पौष्टिक योगो (Tonic) का सेवन भी खतरे से खाली नही होता।

(१८ अत्यधिक स्त्री-पुरुष प्रसंग से बचना चाहिए।

(१९) हस्त क्रिया आदि कुटेवो से हाथ खीच लेना चाहिए।

(२०) विचारो को शुद्ध रखते हुए प्राकृतिक जीवन-यापन अपनाना चाहिए।

(२१) वीर्यपात ने यदि रोग का रूप धारण कर लिया है तो उस दशा मे किसी अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक से उपचार कराकर उसके मुक्ति पायी जानी चाहिए।

संयम—

ब्रह्मचर्य और संयम का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। संयम, मानवजीवन का सर्वोच्च आदर्श है। खान पान, रहन सहन, विचार, व्यवहार आदि जीवन के समस्त कार्य कलाप मे इस मर्यादा का पालन कर मनुष्य, शरीर और मन दोनो मे स्वस्थ और सुखी बना रह सकता है। इस नियम पालन में इन्द्रिय सुख को कोई स्थान प्राप्त नही है। क्योंकि उच्छ्रृंखल इन्द्रियो का निग्रह करना ही जीवन कला है। सयमित जीवन का पुनीत मार्ग प्रगट [illegible] से भले ही नीरस एव अग्राह्य प्रतीत हो, किन्तु [illegible] वह कितना कल्याणकारी है, यह कथन का [illegible] अपितु सोचने, समझने और व्यवहार में [illegible] करने का विषय है। वस्तुतः संयम मनुष्य [illegible] धर्म है, जिससे च्युत होकर मनुष्य [illegible] खोकर, फिर मनुष्य नहीं रह जाता।

यद्यपि [illegible] संयम [illegible] और [illegible] संयम [illegible] मन, वाणी, एव कर्म [illegible] और [illegible] [illegible]।

मन का संयम—

मनः संयम मे इन्द्रियो की गुलामी सबसे बड़ी बाधा है जो चित्त-चाञ्चल्य का मूल कारण है। विविध प्रकार की सांसारिक वासनाओ के हाथो मे पड़ा यह मानव कठ-पुतली की तरह नाचा करता है। वासनाये जब जैसा नाच नचाना चाहती है, मानव तब तैसा ही नाच नाचता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, काम, क्रोध, मोह, लोभ तथा अभिमान के हाथों निरीह मानव गद-सा उछलता फिरता है। बिडम्बना तो यह है कि इन वासनाओं की पूर्ति न तो कभी होती है और न इनसे कभी तृप्ति ही होती है। चैन कभी नही मिलता। विश्राम की आशा, दुराशा मात्र होती है। एक वासना से छुटकारा मिला नहीं कि मन दूसरी वासना का शिकार हो जाता है, फिर तीसरी का और यही क्रम मनुष्य के मरते दम तक चलता रहता है उसे अपने कल्याण के बारे मे सोचने-समझने की छुट्टी ही नहीं मिलती। कारण स्पष्ट है, अर्थात् स्वामी और सेवक मे पद-परिवर्तन हो जाने से यह सब अनर्थ होता है। इन्द्रियो को मनुष्य की नौकरानी की भांति काम करना था, पर होगया होता है इसके विपरीत। दूसर शब्दो मे हमने इन्द्रियो को प्रभुत्व तथा बुद्धि विवेक को उनकी दास्यता दे रखी है जिसके परिणामस्वरूप हम इन्द्रियों के गुलाम बने हुए अनेकानेक दुख भोग रहे है। यह उल्टी बात है कि बुद्धि बेचारी इन्द्रियो के पीछे-पीछे दौड़ती। फिरे यह तो पतन का मार्ग है ही। होना यह चाहिये कि इन्द्रियो को बुद्धि निर्दिष्ट मार्ग पर चलाये। मनुष्य को आहार-विहार परिश्रम-विश्राम आदि सभी की आवश्यकता जीवन मे होती है। पर कौन-कौन सी आहार वस्तुयें श्रेयस्कर है और उनका किस सीमा तक सेवन करना चाहिये, विहार कब और कैसे करना चाहिए, तथा परिश्रम या विश्राम कितना करना चाहिये आदि बातो का निर्णय अधां इन्द्रियों पर छोड़ना बुद्धिमानी की बात नहीं है। ये काम तो स्वयं बुद्धि के हैं। बुद्धि को धीरे-धीरे अभ्यास से शुद्ध करते रहने से वह एक दिन इस योग्य अवश्य हो जायगी कि वह इन्द्रियों पर शासन कर सके। पर यदि उसको इन्द्रियो का दास ही बना रहने दिया जायगा तो सदैव धोखा ही होता रहेगा।

मनः शुद्धि में एकांत मे आत्मपर्यालोचन से बड़ी सहायता मिलती है। प्रतिदिन सोने से पहले उस [illegible] गए अपने सारे अच्छे और बुरे कामो तथा [illegible] लेखा-जोखा लेते रहना, आत्मपर्यालोचन वा [illegible] कहलाता है। यह महापुरुषो का लक्षण है। इससे [illegible]न्तर मे मन की चंचलता मिटना सम्भव हो जाता [illegible] कारण, हम दूसरो से अपने बहुत से दुर्गुण छिपा [illegible] है, पर अपने से तो कुछ छिपाना सम्भव नहीं [illegible] अत. जब तटस्थ होकर हम अपने दिन भर के [illegible] आलोचना करने लगते है तो चित्त के न जाने कित[illegible] दोष-पाप एक-एक करके सामने प्रगट होने लगते हैं [illegible] वक्त हम अपने दम्भ, कपट, नीचता और कुकर्मों [illegible] कर स्वय थर्रा उठते हैं और भविष्य में फिर वैसा न [illegible] का सकल्प करते है। आत्मपर्यालोचन के समय [illegible] ज्ञान, सच्चे वैराग्य, सच्ची उन्नति, और सच्चे मन[illegible] की कुञ्जी है।

मन. संयम का एक दूसरा साधन है—ईश्वर [illegible] जिसका आजकल के कथित शिक्षित समाज में अ[illegible] दीख पड रहा है जो ठीक नही। प्रत्येक धर्म मे [illegible] नेमाज आदि नित्योपासना करने का आदेश है वह [illegible] नही। उससे मन. सयम मे, अथवा अपवित्र मन को [illegible] करने मे बड़ी सहायता मिलती है। यदि २० [illegible] भी प्रतिदिन, श्रद्धा भक्ति के साथ, तथा सच्चे [illegible] ईश्वरोपासना कर ली जाय तो मन निःसन्देह वश [illegible] हो जायगा और काम बन जायगा।

कुछ प्रत्यक्षवादी लोग कहते हैं कि मन को विषय [illegible] करने की एकदम छूट दे देनी चाहिए। वह जब [illegible] भोग करके पूर्णतः तृप्त हो जायगा तो स्वयं स्थिर [illegible] जायगा, यह विचार नितान्त भ्रममूलक एवं प्रतिकूल [illegible] प्रतीत होता है। क्योकि जनकादि प्रभृति राजर्षिगण [illegible] उत्तमात्युत्तम विषयो का दीर्घ काल तक सतत सेवन कि[illegible] फिर भी उनके मन की तुष्टि नही हुई प्रत्युत इच्छा बल[illegible]वती ही होती गयी। यथा—

"होय न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन।"

अत. यह कथन सर्वथा असगत है कि मनोनुकूल विषय[illegible] के सम्पर्क से मन स्थिर होता है।

वाणी का संयम—

वाणी मे इन्द्रियो को चलायमान करने की शक्ति होत[illegible]

अतः वचन का संयम मनुष्य के लिये अतीव आवश्यक किसी को ताना मारना, चिढाना, गाली देना, घृणा भाव प्रदर्शित करना, बुरी निगाह से देखकर भद्दा क करना, आदि असंयमित वचन के लक्षण हैं। इनसे ना, वाणी का संयम कहलाता है। कठोर शब्द वैमनस्य उत्पन्न करते है और वर्षो की पक्की मित्रता को मात्र मे तोड़ देते हैं। इसके विपरीत प्रेम भरे मीठे न बडे से बड़े दुश्मन को भी दोस्त बनाने मे सहायक होते है। कहा भी है—

"वशीकरण इक मन्त्र है तज दे वचन कठोर।"

शब्द मे अपरम्पार शक्ति होती है। मन्त्र का दूसरा नाम द ही तो है जिससे असम्भव से असम्भव कार्य भी मन्त्रोच्चा- के साथ-साथ सम्भव हो जाता है। परन्तु प्रत्येक शब्द नही हो सकता। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के मुख निकला मंत्र (शब्द) अपना प्रभाव नही दिखला सकता। स मनुष्य को सयम करना आता है केवल उसी की णी मे वह अद्भुत शक्ति होती है जो सुनने वालो को ह लेती है अथवा उन पर अपना प्रभाव डाल सकती है। मी व्यक्ति के भाषण मे एक प्रभावोत्पादक विद्युत-शक्ति ती है जो उसके सुनने वालो से जो चाहती है, करा लेती । महापुरुषो, ऋषियो, मुनियो के मुख से निकले प्रत्येक द का वजन होता है। उनका एक एक शब्द अमोघ होता है जो अचूक होता है। कारण वे शब्द सयमित ते है और उनका आधार सत्यता होता है।

वचन को संयमित करने का एकमात्र उपाय 'मौनावलम्बन' है। मौन मे बड़ा बल होता है। मौन का एक म शांति भी है, जिससे सृष्टि की सभी वस्तुयें उद्भूत ई हैं, जिसमें वे स्थित रहती हैं, और अंत में जिसमें वे भी विलीन हो जायेंगी। वेदो मे जिस स्थल पर मौन की चर्चा की गयी है वहा उसको 'शान्तम्' कहा गया है जिसका अभिप्राय सुख और आनन्द है। 'शान्तम्' को ही ओम्, ॐ, या सोऽहम् कहते है जो सदा हमारे श्वास-प्रश्वास मे रमा रहता है। सृष्टि का सारा ज्ञान मौनवत् होता है। गर्भ मे बच्चे की वृद्धि मौनवत् होती है, वृक्षादि मौनवत् उत्पन्न होते हैं बढ़ते हैं तथा नष्ट होजाते हैं। [illegible] सर्वदा मौन हो [illegible] है। [illegible] अवर्णनीय है, स्वयं मौन

है, और यही मौन की अमित शक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण है।

अपनी वाणी को संयमित करने के लिए हमे सप्ताह या महीने मे एक दिन बिल्कुल मौन रहना चाहिए। उस दिन एकाग्रचित होकर आत्मा और परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए। गत सप्ताह या गत मास वचन द्वारा यदि किसी को क्लेश पहुँचाया हो, किसी से लड़ाई की हो तो मौनावस्था मे उसपर विचार करना चाहिये—पश्चाताप करना चाहिये और भविष्य मे उसकी पुनरावृत्ति न होने देने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए।

हमारे पूज्य बापू मौनालम्बन के महत्व को भली भांति जानते थे। इसीलिये वह सप्ताह मे एक दिन नियमित रूप से मौनव्रत धारण करते थे।

कर्म का संयम

सत् कर्म और असत् कर्म को समझना तथा तद्नुसार आचरण करना कर्म का सयम कहलाता है। इस कार्य मे विवेक बुद्धि से सहायता लेना होता है। जब कोई सत् कर्म अपने सामने आवे, जिसे बुद्धी अच्छा समझे तो उसमें तुरन्त लग जाना चाहिये। दान करने की इच्छा हुई, दान कर डालना चाहिये। क्योकि हो सकता है देर करने से अवसर निकल जावे या कोई अन्य विघ्न-बाधा उपस्थित हो जाय और पीछे पछताना पडे। अत सत् कर्म को पकड़ लो फिर वह कर्म आपको कभी नही छोडेगा। वास्तव मे कर्म करने मे एक निश्चित स्वाद होता है। वह स्वाद स्वय कर्म मे है। जो कर्मयोगी है, उसके मार्ग मे चाहे सैकडों विघ्न-बाधा क्यो न हो, कर्म मार्ग से विचलित नही होता। निष्काम कर्म, जीवन यात्रा का एकमात्र सहचर होता है। लोकहित करना चाहिये पर इस भाव से नही कि लोक पर कोई उपकार कर रहे हैं, बल्कि यह समझ कर कि यह अपना कर्तव्य है। कर्म का संयम निष्काम सत्कर्म करने मे है। पर निष्काम कर्म करना सरल नहीं है। दम्भ, महत्वाकांक्षा, फलाशा आदि रिपु, निष्काम कर्मयोगी को पग-पग पर दबाते हैं। परन्तु अभ्यास से सब कुछ सम्भव हो जाता है। अपने को कर्म-प्रवाह मे छोड़ देना चाहिये फिर भी दोष अपने आप दौड़े, धीरे [illegible]। कर्म मे आसक्त न होना, कर्म के

दूसरा साधन है। शरीर से कर्म होते रहे, पर चित्त को उनसे तटस्थ रखना चाहिये। कर्म मे लिपायमान रहने का नाम तो बन्धन है। कर्म का संयम और कर्म-बन्धन दोनों भिन्न चीजे है।

सदाचार

श्रीमद्भागवत् मे सभी मनुष्यो के लिये धर्म के तीस लक्षण लिखे गये है। उस तीस लक्षण वाले धर्म को पालन करने का नाम सदाचार है। दूसरे शब्दो मे सत्पुरुषो के आचरण को सदाचार कहते हैं। तन और मन दोनो की पवित्रता सदाचार का दूसरा नाम है। सदाचार से ही आत्म-सुधार सम्भव है। सदाचार विश्वात्मा के उन प्रधान धर्मो मे से एक है जिसके समुचित अनुसरण से मानव जीवन अबाध गति से प्रवाहित होता रहता है। सदाचार, सद्विचार का छोटा भाई है। सद्विचार का बीजारोपण मानसिक शुचिता के क्षेत्र मे होता है और वह क्षेत्र तैयार करता है सदाचार। सदाचार, आत्मा की शास्वत शान्ति का सच्चा मार्ग है, संसार में मानव समाज मे प्रतिष्ठा पाने का उपाय है तथा एक शब्द द्वारा विश्व को हिला देने वाली एक ही शक्ति है। योगिराज कृष्ण की मुरली की एक ही तान पर सारा ब्रज मण्डल हिल उठा था। वह सदाचार की ही तो महिमा थी। एक वाक्य मे सदाचार प्रत्येक जाति, प्रत्येक समाज, प्रत्येक राष्ट्र तथा प्रत्येक व्यक्ति के शाश्वत सुख एव शान्ति का मूल है।

सदाचार की भाषा मौन होती है। वह नाद करता हुआ भी शान्त और मूक दृष्टिगोचर होता है। एक सदाचारी सारे विश्व को अपने साथ कर सकता है। वह सच्चे परमानन्द का रसास्वादन करता है।

मनुष्य के लिये सदाचार ही उच्च आदर्श होना चाहिये। कारण सदाचार से मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो जाता है और आचरण से गिरा हुआ प्राणी ससार मे सबसे पतित गिना जाता है। कहा भी है—

"आचारेण हतोहत." तथा—

"If wealth is lost nothing is lost, if health is lost something is lost, but if character is lost every thing in lost.

अर्थात् यदि धन गया तो कुछ भी नहीं गया। यदि स्वास्थ्य गया तो कुछ गया। पर यदि आचार गया तो सभी कुछ चला गया।

इतना ही नही, एक निर्धन सदाचारी, ... चक्रवर्ती सम्राट् से कही बढकर है। एक अशिक्षित ... चारी अशिक्षित होता हुआ भी दिग्गज विद्वान पण्डितो से कहीं बढचढ कर है। सदाचारी की ... विश्व और विश्वात्मा के साथ आत्मसात हो ... उसमे अहर्निश विश्व बन्धुत्व और "वसुधैव कुटुम्... के शब्द गुंजायमान होते रहते है। उसका दुख शोक और शान्ति विश्व के दुख, सुख, शोक और ... के साथ होती है।

चरक ने सदाचार के सिद्धान्तो पर विशेष विचार किया है। क्योकि मनुष्य की शारीरिक ... का स्रोत इसी तत्व मे है। समस्त प्राचीन भा... आचार के नियमो की सहायता से प्रचार होता ... सभी वर्गो के लोग धार्मिक उत्साह के साथ उनका ... तया पालन करते थे। पुरोहित घर-घर मे उनका ... करता था और न्यायाधीश, सामाजिक वा ... सम्बन्धी साधारण नियमो को भङ्ग करने वाले ... धियो को दण्ड देता था। क्योकि ऐसा कृत्य अधर्म ... जिसके लिये इतना घोर दण्ड होता था कि आजु ... समय मे हमारे लिये यह बात असङ्गत सी प्रतीत ... कि किसी सामान्य जगह पर थूकने या लघुशंका ... सरीखे मामूली अपराध को इतना गुरुतर माना जा... धर्म और सदाचार के इस कठिन अनुशासन का अद्भुत परिणाम था कि हमारा प्राचीन भारत संसार मे पवित्र राष्ट्र था और सभ्यता मे सब देशो का ... मणि था।

मानसिक अनुशासन एवं संतुलन

मन की शक्ति अपरम्पार होती है, इसे सभी ... है। वही मन की प्रबल शक्ति मनुष्य के बुरे और ... स्वास्थ्य का भी कारण होती है। अत रोगावस्था ... रोगी की मनोभावना जैसी होती है उसी के अनु... उसका रोग दूर होता है या बिगडता है। रोगी ही ... मृत्यु भी तभी आती है जब मनुष्य का मन उसके ... के लिये तैयार होता है। अर्थात्, जब मनुष्य मरने ... तय्यारी कर लेता है तभी वह मरता है। दूसरे शब्दों

पिलाना आरम्भ कर दिया। नतीजा यह हुआ कि मां की उस दशा का दूध बच्चे के लिए विष साबित हुआ और वह थोड़ी देर बाद ही तडप तड़प कर मर गया। यह है मानसिक उत्तेजना का घातक परिणाम। इसीलिये कहा गया है कि जो चिन्ता, क्रोध, भय आदि करता है वह धीरे धीरे अपने शरीर को जहर की छोटी छोटी मात्रा दे देकर उसे विषाक्त बनाता रहता है। जो कालान्तर में भयानक रोग के रूप मे फूट निकलता है, या मारक सिद्ध होता है।

आंकड़ो से यह बात जानी गयी है कि कब्ज, सग्रहणी सिर-दर्द, मिरगी, उन्माद, तथा पागलपन आदि बीमारियो का मूल कारण अधिक चिन्ता है। ऐसे रोगियो की स्मरण शक्ति भी क्षीण होते देखी गई है। प्रायः हिस्टीरिया ग्रस्त स्त्रियो को देखा गया है कि बच्चा पैदा होने के बाद वे इस रोग से अपने आप छुटकारा पाजाती हैं। इसका कारण यही है कि बच्चे के लालन पालन मे व्यस्त होकर वे चिन्ताओ से मुक्त हो जाती है। फलत. हिस्टीरिया रोग का मूल कारण चिन्ता के दूर होते ही रोग का भी नाश हो जाता है। बहुत बार ऐसा हुआ है कि किसी व्यक्ति के सर के बाल एकाएक गिरने आरम्भ हो गये हैं, जिसके कारण का पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वह व्यक्ति उन दिनो अधिक चिन्ताग्रस्त था।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणो से यह सिद्ध हो जाता है कि मन के विकार से शरीर मे विकार आता है, और शरीर के घटने बढने से मन का विकार घटता या बढता है। अर्थात् हमारा मन ही हमे रोगी भी बना सकता है, और आरोग्य भी प्रदान कर सकता है। किसी रोग के विषय मे बार बार चिन्तन करने से चिन्तन करने वाले व्यक्ति को वह रोग अवश्य हो जाता है। शायद उस अवस्था मे शरीर के अवयवो के अणुओ से कोई विषाक्त द्रव्य क्षरित होने लगता है जो शरीर के भीतर व्याप्त तरल द्रव्य मे फैल जाता है और रोग का कारण बन जाता है।

मनः-शक्ति का रोग-निवारण में प्रयोग—

जिस प्रकार रोग का चिन्तन शरीर को धीरे धीरे रोगी बना देता है, उसी प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्तम भावनायें रोगी को निरोग करने की पूरी शक्ति रखती है। विचारों का परिवर्तन होते ही शारीरिक परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। मनुष्य का स्वास्थ्य उसके अन्तर्मन की स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्तम भावना के ऊपर निर्भर करता है। चिकित्सा जब कभी लाभदायक सिद्ध नहीं होती तो उसका कारण बहुधा रोगी के मन का किसी अन्य तरफ लगा रहना तथा निरोग होने की उसकी ख्वाहिश का न होना होता है। ऐसा व्यक्ति अपने रोग की अच्छी से अच्छी चिकित्सा क्यो न करे, किन्तु यदि वह अपने मन को सदा चिन्ताओ मे फंसाये रहेगा तो उसका रोग कदापि न जायगा। बार बार चिन्तन किया गया विचार चाहे वह बुरा हो या भला, आत्म निर्देश का रूप धारण कर लेता है, और प्रबल आत्म निर्देश केवल मनुष्य के स्वभाव मे अपितु उसके शरीर मे चमत्कारपूर्ण परिवर्तन कर देता है। आज केवल 'आत्म निर्देश' द्वारा असाध्य रोग अच्छे किये जा रहे हैं। चिकित्सा की इस पद्धति को 'मानसिक-चिकित्सा' कहते हैं। मनोविज्ञान का एक सिद्धान्त है कि जो व्यक्ति अपने प्रति जैसा विचार रखता है, वह वैसा ही हो जाता है। (What a man thinps that he becomes) यह सिद्धान्त रोग और आरोग्य के सम्बन्ध मे भी निश्चय ही लागू है। जब तक मनुष्य के विचार निराशावादी होते है तब तक रोग ही क्यो, जीवन की सभी घटनाये उसके दुख को बढाती है। पर जब उसके विचार आशावादी हो जाते है तो सभी दुःखद घटनाये उसका कल्याण करने वाली सिद्ध होती है। विचारो की धारा बदल जाने से मनुष्य का भाग्य, स्वास्थ्य आदि सब कुछ बदल जाता है। मनकी इच्छा करते ही उसकी सारी शक्तिया सक्रिय होकर स्थिति को बदल देती है। मन, विश्वास और सकल्प द्वारा संसार की सारी वस्तुओं मे कायापलट कर सकता है, तो क्या मनोबल शरीर के रोगों को दूर नही कर सकता ? जरूर कर सकता है। आवश्यकता होती है केवल दृढ़ विश्वास और दृढ संकल्प की। मनोभावना सच्ची और प्रखर होनी चाहिए फिर तो, उसके अनुसार वस्तु स्थिति मे रूपान्तर धीरे-धीरे भले ही हो, तथापि वह अपना असर बिना दिखाए नही रह सकती।

अतः रोज सवेरे और सायकाल को सोने के पहले यदि रोगी विश्वास के साथ और सच्चे मन से सकल्प करे

कि उसका अमुक रोग नाश हो जाय और शरीर पर हाथ फेरता जाय, और सच्ची भावना से कहता जाय 'मैं निरोग हू,' मेरे अन्दर किसी प्रकार का भी रोग नही है। आदि, आदि तो वह कुछ ही दिनो मे देखेगा कि उसके शरीर पर एक प्रकार की कान्ति झलक रही है और वह निरोग और सुन्दर वन गया है।

इस कार्य मे विश्वास मे दृढता आने मे थोडी देर लगती है, पर भावना का प्रभाव शरीर के अणुओ पर तुरन्त पडता है। ज्योही रोगी इच्छा करेगा कि उसका अमुक रोग दूर होजाय, त्योही उस रोग के अणु बदलने लगेगे और मन की विचित्र शक्ति शरीर के प्रत्येक अणु की गति को रोग की ओर से मोड़ कर आरोग्य की तरफ कर देगी और रोगी अच्छा हो जायगा। कहा भी है:—

'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवतितादृशी।'

अर्थात्, प्राणी की जैसी भावना होती है, उसी के अनुरुप उसे सिद्धि प्राप्त होती है। बाइबिल मे लिखित ईसामसीह द्वारा रोगियो को अच्छा करने की करामातें भी दृढभावना तत्व द्वारा ही सफल हो सकी थी। वह जब किसी रोगी को अच्छा करते थे तो यह जरूर कहते थे 'जाओ तुम्हारे विश्वास ने तुम्हे चङ्गा किया।' वे तो यहा तक कहते थे—'यदि तुम दृढ विश्वास से कहोगे कि यह पर्वत हट जाय तो वह अवश्य हट जायगा।' महात्मा तुलसीदास के शब्दो मे भी यदि श्रद्धा और विश्वास नही तो भवानी-शकर तक देवता न होकर पत्थर ही है। यथा

'भवानी शकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपणौ।'

साधु-महात्माओ की एक चुटकी राख, तथा जन्त्र मन्त्र झाड फूंक से रोगो की निवृति, श्रद्धा-विश्वास के करिश्मे होते है। अतः आकाश चिकित्सा के अन्त- [illegible] 'मानसिक अनुशासन' को भी हमने रोग निवारण [illegible] एक सबल साधन माना है, जिसके द्वारा लगभग सभी [illegible] आसानी से दूर किये जा सकते है।

विश्राम या शिथिलीकरण

[illegible] —

[illegible]

[illegible]

विश्राम चाहता है, यह स्वाभाविक है। शरीर की थकावट दूर होना, और मस्तिष्क की शाति या शरीर और मन को कुछ काल के लिए विराम देना ही विश्राम कहलाता है। विश्राम के मानी केवल शारीरिक विश्राम नही हैं। शारीरिक विश्राम का मानसिक विश्राम से मेल होने पर ही शरीर को पूर्ण विश्राम का सौभाग्य प्राप्त होता है। पर जब हम आराम करते हैं उस वक्त विश्राम की मानसिक दशा को हम भूले रहते है। उस वक्त भी हम दिमाग से काम लेते रहते हैं। शय्या पर पड़े रहने की हालत मे भी हमारे शरीर, विशेष कर मस्तिष्क मे तनाव बना रहता है जो मन की चञ्चल अवस्था के कारण होता है। यह विश्राम नही है। किसी सोते बच्चे को गौर से देखने से पता चल जायगा कि विश्राम वास्तव मे कैसे करना चाहिए। बच्चा किस बेफिक्री से देह और मस्तिष्क को शिथिल किए शय्या पर पड़ा रहता है। यही विश्राम का उत्तम प्रकार है। कुछ दिनो की कोशिश से बच्चो की तरह ही सारे शरीर को शिथिल करके विश्राम करने की आदत डाली जा सकती है। विश्राम के निमित्त शरीर को शिथिल (Relax) करना ही सबसे बडी बात है। प्राकृतिक चिकित्सा की भाषा मे इसे आरोग्यमूलक शिथिलता (Curative Relaxation) कहते है, जो आकाश-चिकित्सा का एक प्रमुख साधन है।

रोग और निरोग—दोनो अवस्थाओ मे विश्राम की यथेष्ट आवश्यकता होते हुए भी यह जानना चाहिए कि विश्राम और आलस्य दोनो एक चीज नही है। मेहनत के बाद आराम करके मेहनत मे लगाई गई शक्ति को पुन. प्राप्त करना विश्राम कहलाता है। पर जो आराम मेहनत के बाद नही चलता वह देह और मन की निष्क्रिय अवस्था को बढाता है, अत. वह आलस्य हो सकता है, विश्राम नही हो सकता। यही विश्राम और आलस्य मे अन्तर है। आलस्य, शरीर और मन के भीतर मुर्दनी ला देता है, विश्राम शरीर और मन को [illegible] करने के लिए स्फूर्ति और नयी शक्ति प्रदान करता है। आलसी व्यक्ति को काम करने की इच्छा ही नही होती और विश्राम करने वाला व्यक्ति काम करने के लिए [illegible] करता है। [illegible]

एक अज्ञात विद्वान के शब्दो मे 'जीवन की सफलता उसकी अनवरतगति मे है'— उसका उद्देश्य अपने पथ पर निरन्तर अग्रसर होना ही है। इस जीवन यात्रा मे उचित विश्राम की आवश्यकता पड़ सकती है, किन्तु विराम की कदापि नही। और यदि हम अपनी तरफ से जीवन की इस अवाधगति मे विराम लगाने का अप्राकृतिक यत्न करे तो उसका तात्कालिक और क्षणिक फल मीठा ही क्यो न मालूम पड़े, परन्तु अन्तिम परिणाम मनुष्य की शक्तियो के विनाश, उसके शारीरिक, मानसिक, और नैतिक पतन के रूप मे प्रगट होता है।' इसलिए इस सम्बन्ध मे हमे सदैव यह बात याद रखनी चाहिए कि परिश्रम के बाद आवश्यकता पड़ने पर उचित विश्राम लिया जावे पुनः परिश्रम करने के लिए शक्ति-सचय के हेतु। परन्तु एक दम विराम की कोई आवश्यकता नही। आलस्य और अकर्मण्यता की कोई जरूरत नही। आलस्य और अकर्मण्यता तो गतिशील जीवन के दूषण है, जबकि विश्राम उसका भूषण है।

बहुतो की धारणा है कि सवेरे से शाम तक मिलो, दूकानो, कारखानो आदि मे काम करने के बाद रात मे भोजन करके सो जाना ही विश्राम कहलाता है। परन्तु यह धारणा भी गलत है। जिस प्रकार विश्राम और आलस्य दोनो भिन्न चीजे हैं, उसी प्रकार नीद को विश्राम समझना भी भूल है। क्योकि सोना तो मानव स्वभाव ही है। एक अकर्मण्य व्यक्ति के लिए भी निद्रा उतनी ही अनिवार्य है, जितनी एक कर्मठ के लिये। पर विश्राम, अकर्मण्य व्यक्ति के लिये बिल्कुल अनावश्यक है, और कर्मठ के लिये अत्यन्त आवश्यक। अर्थात् विश्राम की आवश्यकता मनुष्य को तभी होती है जब वह परिश्रम करता है, पर नीद की आवश्यकता उसे दोनो हालतो मे होती है—परिश्रम करने पर भी और न परिश्रम करने पर भी। सोना एक तरह का सूक्ष्म स्नान है, जिससे मनुष्य के शरीर मे ताजगी या स्फूर्ति आजाती है। नीद और विश्राम मे यही अन्तर है। यो नीद और विश्राम दोनो ही शरीर की, काम मे खर्च हुई शक्ति की पुन. प्राप्ति के साधन है।

हमें विश्राम की जरूरत क्यो होती है ?—

शरीर के लिये विश्राम उतना ही आवश्यक है जितना भूख के लिए भोजन, यदि कोई मनुष्य समस्त दिन अवाध गति से परिश्रम ही करता रहे तो यह निश्चित है कि कुछ ही घन्टो मे उसका शरीर, विश्राम न मिलने के कारण थक कर चूर-चूर हो जायगा, और ऐसे मनुष्य का शरीर बहुत दिनो तक टिक नही सकता। मनुष्य तो मनुष्य, निर्जीव रेलगाडी के इ जन तक को भी यदि उचित विश्राम (Rest) न मिले, लम्बी दौड के बाद दूसरे इ जन से वह न बदला जाय, तथा उसके कल पुर्जे नित्य साफ न किये जावे तो वह एक कदम भी आगे नही चल सके। संसार के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, आदि सभी परिश्रम के बाद आराम चाहते है। यह सारी सृष्टि भी अपने विनाश काल मे एक दिन विश्राम करती है। ईसाइयो की धर्म पुस्तक बाइबिल मे भी इसी बात की ओर सकेत है।

विश्राम के समय मनुष्य के मस्तिष्क और शरीर के सारे अवयव इन्द्रियां शिथिल हो जाती है और विश्राम के बाद शरीर एव मस्तिष्क मे पुनः बल और ताजगी का अनुभव होने लगता है। परिश्रम मे खोई हुई जीवन शक्ति (Energy) को पुन. अर्जित करने के लिये ही विश्राम की आवश्यकता होती है।

हम जानते हैं कि हमारे शरीर मे जो हृदय नाम का एक यन्त्र है, वह चौबीस घण्टे मे एक लाख बार से अधिक धक-धक करता है और हमारी बारह हजार मील लम्बी रक्त वाहनियो मे लगभग पाच हजार गैलन खून को दौडाता है। पर इतना महत्वपूर्ण और कठिन कार्य वह भी बिना विश्राम लिये नही करता और न कर सकता है। दो 'धक' शब्दो के बीच का जो समय होता है वही हृदय के विश्राम करने का समय होता है। इतने थोडे से समय मे वह विश्राम करके इतनी अपार शक्ति ग्रहण कर लेता है, जिससे वह मनुष्य के मरने तक क्रियाशील रहता है। अत विश्राम के सम्बन्ध मे जो बात हृदय के लिये सत्य है वही मनुष्य शरीर के प्रत्येक अवयव के लिये भी सत्य है।

जीवन मे परिश्रम और विश्राम दोनो साथ-साथ चलने चाहिये तभी सुख शान्ति प्राप्त हो सकती है। हम जितने अधिक क्रियाशील हो उतना ही अधिक हमें विश्राम पर भी ध्यान देना चाहिए। विश्राम एक औषधि है जिससे थकावट दूर होती है और खोई हुई शक्ति प्राप्त होती है।

...छ लोगो का विचार है कि काम करते रहने से ही ...मे शक्ति का सञ्चार होता है। यह उसकी बड़ी भूल है। ऐसे लोगो को क्या यह भी बताना ... कि काम करने मे शक्ति का व्यय ही होता है, ...वा सञ्चार नही ? सच बात तो यह है कि जीवन के लिये जितनी आवश्यकता वायु, जल, भोजनादि ..., विश्राम की आवश्यकता, शरीर संरक्षण के लिए ...किसी हालत मे भी कम नही है।

...रोप, अमेरिका आदि देश जो आज भारत से ... माने में बढ़े हुए हैं इसके अनेक कारणो मे से ...कारण यह भी है कि उन देशो के निवासी सच्चे ... मे परिश्रम के बाद विश्राम करना जानते है। वहा ...वृद्ध, क्या युवक, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या धनी ...क्या निर्धन सबने अपने दैनिक कार्यों के लिए समय ...रित कर रखा है अर्थात् चौबीस घण्टो मे आठ ... काम करने के लिए और आठ घण्टा आराम करने ...ये। वे इस नियम का बड़ी कड़ाई और ईमानदारी ...लन करते हैं जिसका परिणाम जो कुछ भी है, वह ...र के सामने है। गत महायुद्ध के समय दुश्मन के ... की बौछारो की छाव मे भी लन्दन महानगरी के ... विश्रामस्थल—हाइडपार्क आदि चालू रहे और उनमे ...रो की सख्या मे अथक परिश्रमी नर-नारी विश्राम ...लिये भरे रहते रहे। इतिहास के जानकारो से यह बात ...ी नही है कि वाटर लू के घमासान युद्ध के चन्द ही ...ट पहले महावीर नेपोलियन पर विजय प्राप्त करने ...ा ड्यूक आफ वेलिंगटन (Duke of welligton) ... परिश्रम के बाद विश्राम कर रहा था।

मानसिक वा शारीरिक कोई काम हो सर्व प्रथम मन ...इस काम के करने की प्रवृत्ति होती है। तत्पश्चात् ...मे विचार उठता है। विचार से चेतना की ...ति होती है, जिससे उस काम के करने वाले अंग ...मे एक प्रकार की उत्तेजना रूपी तरंग का ...र होता है और स्नायुओं द्वारा प्राप्त अथवा शरीर ...जीवनी-शक्ति [illegible] से पूरा करता [illegible] ... [illegible] ... [illegible] ...

है कि यदि शारीरिक स्नायु मण्डल को परिश्रम द्वारा जीवनी-शक्ति को केवल व्यय ही करना पड़े और विश्राम द्वारा उसे उस व्यय की हुई जीवनी-शक्ति को पुन. प्राप्त करने का मौका न दिया जाय तो शरीर इस अत्याचार को कितने दिनो तक सहन करता रहेगा ? निश्चय ही ऐसी दशा मे उसका एक न एक दिन दिवाला होना अनिवार्य है।

प्रकृति की मूक वाणी को हम भले ही न समझ पर वह प्रति दिवस, दिन के बाद रात लाकर हमे सभी आवश्यक अनावश्यक कामो को छोड़कर, विश्राम और केवल विश्राम करने के लिये मजबूर करती रहती है। पर हम हैं कि उसकी बात सुनते ही नही और उसके इस कल्याणकारी आदेश की अवहेलना करके रात होने पर भी बत्ती जलाकर मिलो,कारखानो आदि मे काम करते रहते है और सुख स्वास्थ्य की बलि देते रहते है। कलकत्ते आदि शहरो का कोई भी करोड़पति व्यवसायी एक बजे रात से पहले बिस्तर पर नही जाता। कोयले की खानो के काम करने वाले कुलियो से कभी-कभी अठारह-अठारह, बीस-बीस घ टे लगातार काम लिया जाता है तथा बड़े-बड़े शहरो के मिलो, कारखानो इत्यादि मे 'ओवर टाइम वर्क' (Over Time Work) की परिपाटी और उसके मोह ने बेचारे मजदूरो की मिट्टी और भी पलीद कर रखी है। इन सबके ही परिणामस्वरूप आज हम भारतवासी स्वास्थ्य के विषय मे इतने दीनहीन हो रहे हैं कि कुछ कहने की बात नहीं, और यही वजह है जो हमारी औसत आयु आज कुल २३ वर्ष ही रह गयी है, जबकि ससार के अन्य देशो के लोगों की औसत आयु ५०–६० वर्षों तक पहुंचती है।

विश्राम द्वारा रोगों की रोक-थाम—

आजकल बढ़ते हुए रोगियो की संख्या बहुत कम हो जाय, यदि हम केवल उचित विश्राम करने के महत्व को समझ कर विश्राम करना सीख जावें। स्नायु-दौर्बल्य के कारण ही मन्दाग्नि, [illegible], अनिद्रा, रक्तचाप का बढ़ना, नपुंसकता, तथा उन्माद आदि रोग होते हैं, और स्नायु-दौर्बल्य होता है बिना परिश्रम के लगातार आवश्यकता से अधिक स्नायुविक शक्ति खर्च करने से। अब यदि हम चाहते है कि उपर्युक्त रोग हमें न हों, तथा हमारा भविष्य

सुखपूर्ण हो तो हमें अपने शरीर को बराबर तनाव की अवस्था मे न रखकर उसे विश्राम देना होगा।

जैसे प्रत्येक मेहनत का कार्य करने के बाद विश्राम आवश्यक है, वैसे ही कई दिन तक लगातार श्रम के बाद भी एक पूरे दिन विश्राम करना जरूरी है। इसलिये छ. दिन काम करने के बाद एतवार को विश्राम करने की व्यवस्था ससार मे लगभग सभी जगह प्रचलित है। जिनके लिये मुमकिन हो उन्हे एक लम्बे काल तक परिश्रम करने के बाद इसी तरह थोड़ा लम्बा समय विश्राम के लिये लेना चाहिये। उससे लाभ ही होगा, क्योकि विश्राम के लिये दिये गये समय को भविष्य के शक्ति-भण्डार की सञ्चित पूंजी ही समझना चाहिये। और यह गलत नही है कि दिमागी काम करने वाले लोग, शारीरिक काम करने वालों की अपेक्षा अधिक-आयु वाले होते है, क्योकि वे शारीरिक काम करने वाले श्रमिको की अपेक्षा परिश्रम के बाद विश्राम करने के महत्व को समझते हैं और तदनुसार थोड़ा बहुत आचरण भी करते हैं।

लेकिन अनुभव बतलाता है कि आजकल की भाग-दौड़ की दुनियां मे विश्राम का अवसर ही मनुष्य को नही मिलता। आज के मनुष्य का, अपने जीवन-निर्वाह के लिये कुत्तो की तरह इधर उधर दौड़ना-धूपना देखकर रोना आता है। आज का हमारा रहन-सहन और काम करने का तरीका ही कुछ विचित्र सा है। हम सदैव किसी न किसी काम मे बराबर व्यस्त रहते हैं। हर समय कोई न कोई चिन्ता हमें घेरे रहती है। कितने ही अभागे व्यक्ति तो ऐसे मिलेगे जो रात-दिन काम मे जुटे रहकर अपने स्वास्थ्य को जान-बूझ कर चौपट कर लेते है। मनुष्य काम के बोझ से उतना नही दबता जितना उसकी परेशानियो से। काम की परेशानिया, व्यस्तता, और उद्वेग काम के बोझ को बढा देते हैं, जिससे शरीर अधिक छीजता है। श्रम से बचा नही जा सकता, पर वह ऐसे ढग से किया अवश्य जा सकता है, जिसमे व्यस्तता और परेशानिया न हो। काम के बीच मे और उसके बाद विश्राम करने की एक कला है, जिसका ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना ही चाहिये। काम के बीच मे बहुत से लोग चाय और सिग्रेट का इस्तेमाल करके काम की थकान मिटाने की कोशिश करते हैं, यह हास्यास्पद है। काम के समय अधिक थकान से बचने के लिये यह जरूरी है कि हम [illegible] फिरने उठने-बैठने आदि मे अपने शरीर के अ[illegible] को उचित मुद्रा मे रखें। चलते समय गर्दन को झुका[illegible] चलना, खड़ा होते समय केवल एक पैर पर ही भार [illegible] खड़ा होना, बैठते समय एक पैर को दूसरे पैर पर [illegible] कर बैठना, तथा उसी प्रकार की अन्य आदतो से ब[illegible] चाहिये जो शरीर के सन्तुलन मे बाधक होते हैं, और थकाते भी बहुत जल्द है। बिस्तर पर पड़कर किसी [illegible] को सोचना बुरा है। इससे नीद नही आसकती। [illegible] भ्रमण के समय किसी समस्या के सुलझाने की सोचते रहना, प्रात. भ्रमण के लाभ से वञ्चित होना इन दशाओ मे और विश्राम की अन्य दशाओ में भी हमारा मन भाति-भाति के विचारो मे व्यस्त रहता [illegible] उन समयो मे हमारे रक्त का, शरीर की शिराओ मे [illegible]लना चलना स्वाभाविक है, जो शरीर के लिये वि[illegible] नही बल्कि श्रम ही है।

विश्राम द्वारा रोगो का इलाज—

शरीर रोगी होने पर स्वभावत. विश्राम चाहता है। वह चाहता है कि विश्राम द्वारा अधिक से अधिक जीवनी-शक्ति प्राप्त करे और उसे शरीर के निरोग करने मे लगाये। नये रोग में काफी विश्राम की उतनी आवश्यकता नही पड़ती, जितनी कि पुराने रोगो मे। पुराने रोग (Chronic Disease) मे यदि पूर्ण विश्राम नही किया जायगा तो रोग हठीला हो जायगा और शीघ्र नही जायगा। इसलिये पुराने रोग से पीड़ित रोगियो को पूर्ण विश्राम करना, उनके रोगो की दवा है।

पाश्चात्य डाक्टर विलियम वाल्टर ने एक जगह लिखा है—'मेरे वार्ड मे रहने वाले रोगी जो बरामदे मे सोते रहते हैं, उनको उसी विश्राम की अवस्था मे रखकर मैं रोग मुक्त कर देता हूं। मैंने हजारों रोगियो को इस पद्धति से अच्छा किया है।' एक दूसरे डाक्टर हार्ड का कहना है कि बिस्तर पर, विशेषकर खुले मैदान के स्वच्छ वातावरण मे केवल पड़े रहकर आराम करके रोग से छुटकारा पाने का कारण यह है कि विश्राम न करने की दशा मे हमारे शरीर का रक्त गुरुत्वाकर्षण के कारण शरीर के भीतर विशेष रूप से सचालन करता है, और

…के स्नायु में संकोच और प्रसार से उसका नियमन …ा रहता है। पर जब हम विस्तर पर पड़कर विश्राम …ते होते हैं, उस वक्त हमारा गुरुत्वाकर्षण कम हो जाता … और हमारे हृदय तथा अन्य रक्ताभिसरण से सम्बन्ध …ने वाले अवयवो का बोझा हल्का हो जाता है। फलतः …े आराम मिलता है, और बची हुई जीवन शक्ति …ा निवारण मे खर्च होकर रोग-मुक्ति का कारण …ती है।

रोगों से मुक्ति पाने के लिए यह आवश्यक है कि …गी का अन्तर और बाह्य—दोनो शात हो। दूसरे शब्दो … उसे पूर्ण विश्राम प्राप्त हो। अकेले यही क्रिया अनेक …गों को नष्ट करने की पूरी ताकत रखती है, और अन्य …भी रोगो के उपचार मे सहायक सिद्ध होती है। उन …गियो का रोग जो आराम करना नही जानते, देर से …ाता है। चिंतित, भयातुर, क्रुद्ध, और घबराए हुए …गी अपने रोग से जल्द छुटकारा नही पाते।

दुनिया मे जितनी बीमारिया है, उन सबका कारण …सी न किसी प्रकार की थकावट ही है। जब तक …मारे शरीर का नाड़ी-संस्थान ठीक-ठीक काम करता …हता है, हमारे अङ्ग प्रत्यङ्ग मे लचीलापन बना रहता …। यही उन अङ्गो के स्वास्थ्य का वास्तविक रूप होता …। पर जब उन अङ्गो मे विजातीय द्रव्य के जमा हो …ाने के कारण, उनमे कडापन आ जाता है जो नाडी-…संस्थान के काम मे स्वाभावत रुकावट पैदा हो जाती …है। यही उन अङ्गो की रोगावस्था है। इतना ही नही …बल्कि लचीलापन ही जीवन है और कडापन ही मृत्यु …कहते है। (Mobility is life, Rigidity is death) …शरीर के किसी भी अङ्ग मे यदि कडापन आजाय तो उसमे सूजन अवश्य होगी। तत्पश्चात् दर्द और फिर ज्वर की उत्पत्ति होती है। सूजन की हालत मे यदि वहा पर रक्त का प्रवाह ठीक तरह हो सका उन अङ्ग मे विश्राम या शिथिलीकरण द्वारा तो धीरे धीरे वहा जमा विजातीय द्रव्य निकल जाता है, और दर्द वगैरह मद [illegible] है। किसी अङ्ग मे कडापन [illegible] पर ही होता है। कडापन से यह सूचित होता है कि उस अङ्ग पर किसी प्रकार का [illegible] (Strain) [illegible] है। [illegible] शारीरिक [illegible], [illegible]

प्रकार की हो सकती है। उदाहरण स्वरूप एक चिड़चिड़े व्यक्ति की भौहे हमेशा चढी हुई रहती है। इससे आंख की मासपेशियो मे थकावट आती है जिससे आखें कमजोर हो जाती हैं, और कभी कभी तो अधी भी।

जो लोग निरोगावस्था मे उचित आराम करने के अभ्यासी नही होते, प्रकृति उनको बीमार डालकर आराम करने पर मजबूर करती है। यह एक प्राकृतिक नियम है। रोगावस्था मे जो हम कोई काम नही कर सकते, करने के लायक नही रह जाते, अथवा करना नही पसंद करते, वह इसी कारण कि उस वक्त हम बीमार होते है, और प्रकृतितः उस बीमारी को दूर करने के लिए हमे विश्राम—पूर्ण विश्राम की आवश्यकता होती है।

विश्राम करने के साधारण तरीके—

सर्व साधारण के लिए विश्राम करने के कई तरीके हैं। अपनी-अपनी रुचि और परिस्थिति के अनुसार उनमें से कोई-सा एक चुनकर उसे काम मे लाना चाहिए। कुछ तरीके निम्नलिखित हैं.—

(१) परिश्रम करके घर लौटने पर विश्राम की नीयत से चटाई या विस्तर पर लम्बा पड़ जाओ। शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग को एकदम ढीला कर दो। मस्तिष्क को विचारो से शून्य कर दो। आखे बन्द करके १०-१५ मिनटो तक इसी प्रकार निश्चेष्ट पडे रहो। पर सो न जाओ इसका ध्यान रहे।

(२) परिश्रम करने के बाद कोई दिलचस्प खेल खेलो, टहलो, मन बहलाव के लिए कुछ पढो, अथवा अपनी रुचि विशेष (Hobby) के अनुसार चित्रकारी आदि करो।

(३) बारहो महीना घोर परिश्रम करने वाले व्यक्ति लम्बी छुट्टिया लेकर देश विदेश की यात्रा करें, तीर्थ स्थानो मे घूमे।

(४) सप्ताह मे छः दिन [illegible] परिश्रम करने के बाद किसी एक दिन अवश्य छुट्टी रखो और उस दिन वन-भोजन, 'पिकनिक' आदि के लिए कही बाहर चले जाओ।

(५) [illegible]

बताते है—

पीठ के बल चारपाई पर लेट जाओ। धीरे-धीरे और सजगतापूर्वक शरीर के किसी एक अङ्ग जैसे दाहिने हाथ की मांसपेशियों को सिकोड़ो, साथ ही उस सिकुड़न का अनुभव करने की चेष्टा करो उस वक्त तक जब तक कि वह सिकुड़न या संकुचन मिट जाय और मास-पेशियों का पूर्ण शिथिलीकरण न हो जाय। इसी प्रकार बांये हाथ, दाये पैर, बांये पैर आदि शरीर के सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग की मासपेशियो का शिथिलीकरण करना चाहिए। इसे साधारण शिथिलीकरण कहते हैं।

शरीर के अन्य अङ्गों को सक्रिय बनाये रखते हुए भी किसी एक अङ्ग का पूरी तौर से शिथिलीकरण किया जा सकता है। जैसे कोई व्यक्ति अपने मेरुदण्ड को सक्रियतापूर्वक सीधा रखकर बैठ सकता है और उसके साथ ही शरीर के अन्य अङ्गो को पूर्ण शिथिल भी बनाये रख सकता है। इसे स्थानीय शिथिलीकरण कहते है।

(६) शरीर के थके हुए स्नायुओ को ढीला करके उन्हें आराम देने की विधि डाक्टर डेविर्डफिक इस तरह बताते हैं—

पीठ के बल चित लेट जाओ। सर, गर्दन और घुटनो के नीचे छोटे-छोटे मुलायम तकिये रखलो। बाहुओ को सहारा देने के लिये पार्श्व मे भी तकिये रखो। पहले बाहुओ को शिथिल करने के लिये उन्हे तकियो मे घुस जाने दो। ख्याल करो कि वे धीरे-धीरे अधिकाधिक भारी होते जा रहे है। जब उगलियो के अग्र भाग मे कुछ गढने की सी अनुभूति हो तो समझो कि बाहुओ को ढीला करने की क्रिया पूरी हो गई। इसी प्रकार शरीर के अन्य अङ्गो—सीना, पीठ, पैर आदि को भी ढीला करने का अभ्यास करो। जब तक पूरी सफलता न मिल जाय, इसे नियमित रूप से प्रतिदिन आधे घन्टे करना चाहिए। इससे स्नायुओं की थकावट दूर होकर स्वास्थ्य उन्नत हो जायगा।

अभ्यास हो जाने पर इस क्रिया को जब कभी मौका मिले—भोजन की प्रतीक्षा करते समय, कार चलाते समय, टाइप करते समय, किया जा सकता है और इस तरह से शरीर की थकावट मिटाकर काम के उत्साह की मात्रा दूनी बढ़ाई जा सकती है।

यौगिक शिथिलीकरण

शिथिलीकरण-विज्ञान, हठ-योग का एक [illegible] है। शरीर तथा मन को शिथिल करने को [illegible] शिथिलीकरण-क्रिया कहते है। इस क्रिया के [illegible] अनेक रोग तो दूर होते ही है। साथ [illegible] मनुष्य अत्यन्त क्रियाशील और शक्तिमान भी [illegible] है।

यौगिक शिथिलीकरण के लिये दो आसन [illegible] लाये जाते है। वे है शवासन और प्राण धा[illegible]

शवासन से मनुष्य का शरीर शव की [illegible] लगता है। इसीसे इस आसन का नाम [illegible] पड़ गया। आसनो के करने वाले सब आस[illegible] के बाद विश्राम करने के निमित्त इस आसन को करते हैं। विधि यह है—

समतल भूमि पर एक कम्बल बिछाकर पीठ [illegible] लेट जाओ। दोनों हाथ अगल-बगल शरीर से [illegible] रखो। दोनों पैर सीधे रहे, एड़िया सटी रहे और [illegible] खुले रहे। अब आंखें बन्द करके समस्त शरीर को [illegible] करदो। धीरे-धीरे सास लो और चित्त की वृत्तियों [illegible] अन्तर्मुखी करदो। शरीर ढीला करने की क्रिया [illegible] के अगूठो से आरम्भ करके क्रमश पिंडली, पीठ, [illegible] गर्दन और शिर की मासपेशियो तक होनी [illegible] सोना नही चाहिए। इस आसन को पाच [illegible] करना चाहिए।

शवासन के करने से बडा लाभ होता है। शरीर को आराम मिलता है और उसमे शक्ति व[illegible] का सञ्चार होता है। इससे शरीर के [illegible] क्रियाशीलता प्राप्त होती है और दिल मे नये [illegible] और नये उमंग की उत्पत्ति होती है, जिससे काम मेंं जी लगता है और वह भारस्वरूप नही होता।

प्रसिद्ध योगी श्री स्वामी शिवानन्द जी बता[illegible] यदि कोई चाहे तो उपर्युक्त आसन को आरा[illegible] पर लेट कर अथवा मन को शिथिल करके [illegible] कर सकता है। क्योकि जो शरीर को शिथिल [illegible] विधि जानता है वह किसी समय, किसी स्थल [illegible] क्रिया को करके शक्ति और स्फूर्ति अपने भीतर ल[illegible]

है। मन को शिथिल करके कहीं भी विश्राम किया जा सकता है। मनुष्य मात्र को इस आसन का अभ्यास करके लाभ उठाना चाहिए। इस आसन के अभ्यासी को मानसिक वा शारीरिक, किसी प्रकार की थकावट की अनुभूति कभी होती ही नहीं।

शवासन से जब कोई व्यक्ति शिथिलीकरण की दिशा मे कुछ उन्नति कर लेता है तब वह दूसरे आसन-प्राणधारण का लाभ उठाता है। इसके लिये आसन करने वाला व्यक्ति शरीर की मासपेशियो के शिथिलीकरण के साथ-साथ सास के बाहर निकलने तथा भीतर आने की क्रिया पर ध्यान रखते हुए धीरे २ श्वास-प्रश्वास के सचालन के बीच पूर्ण सामजस्य स्थापित कर लेता है। इस सतर्क तथा सामञ्जस्य पूर्ण सास लेने की क्रिया का समूची स्नायु प्रणाली पर निषेधात्मक प्रभाव पडता है। इस आसन द्वारा न केवल हृदय तथा फेफडे को यथेष्ट शिथिलता प्राप्त होती है बल्कि शरीर की मासपेशियो के प्रत्येक अवयव का पूरी तौर से शिथिलीकरण हो जाता है।

उपवास

उपवास क्या ! और क्यों ?—

उपवास का अभिप्राय, शरीर के पाचन सस्थान को पूर्ण विश्राम देना है। वस्तुत उपवास-काल मे ही उसे विश्राम मिलता भी है। क्योकि साधारणत. हम रोज अपना पेट दो-तीन बार भरा करते है, जिससे हमारा पाचन सस्थान हमेशा काम किया ही करता है।

ससार की बात तो नहीं कह सकते परन्तु हमारे भारतवर्ष मे आदि काल से उपवास का बहुत अधिक महत्व रहा है। हमारी धार्मिक पुस्तको मे उपवास को शारीरिक और मानसिक शुचिता का एक साधन माना गया है। उपवास की यह परम्परा जैन धर्मावलम्बियो मे विशेष रूप से और अन्य हिन्दुओं मे साधारण रूप से आज तक चला आ रहा है।

उपवास एक प्राकृतिक [illegible] है। प्रकृति की माग है। पशु पक्षी आदि सभी जीवधारियो को [illegible] [illegible]

ताकता तक नही। कारण, वह समझता है रोगावस्था मे कुछ खाना, विष, और कुछ न खाकर उपवास करना अमृत वा रोग की औषधि है। हम जब बीमार पड़ते है तो हमारी भी भूख स्वभावतः बन्द हो जाती है, पर हम बुद्धिशील प्राणी होते हुये भी प्रकृति के आदेश को नही मानते और रोगी होने पर भी कुछ न कुछ खाते ही रहते है, जिससे दुख पाते हैं। रोग होने पर रोग के कारण विजातीयद्रव्य को दूर करने का उपवास एक प्रबल साधन है। उपवास-काल मे शरीर की सारी की सारी जीवनी शक्ति केवल रोग को दूर करने मे लग जाती है और उसे दूर करके ही दम लेती है। यहा पर एक बात समझ लेनी चाहिये वह यह कि उपवास अपने आप कोई नवीन शक्ति प्रदान करने वाली क्रिया नही है, पर उसके प्रभाव से शरीर स्थित विष जो अस्वस्थता का कारण होता है, अवश्य निकल जाता है. और शरीर नीरोग और स्वभावतः शक्तिशाली बन जाता है। इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि जो रोगी नही है, अथवा जिनके शरीर मे विष की उपस्थिति नही है, उनके लिये उपवास की बिलकुल जरूरत नही है। लेकिन यदि वे भी यदा कदा छोटा उपवास कर लिया करे तो उनका स्वास्थ्य सदैव एकसा बना रह सकता है।

बहुत से लोग उपवास को भूखो मरना समझकर बडी भूल करते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि विष की स्थिति ही शरीर के रोगी होने का कारण होता है। हमे जानना चाहिये कि उपवास काल मे यही विष सर्वप्रथम नाश को प्राप्त होता है। तदोपरान्त उन सञ्चित पदार्थो से शरीर अपना काम लेने लगता है जो उनको प्रकृति ने विशेष आवश्यकता पड़ने पर काम मे आने के लिये पहले से शरीर मे जमा करके रखा होता है। उदाहरणार्थ, ऊँट जो मरुभूमि का जानवर है, जहा उसे कभी कभी हफ्तो भूखा रहना पड़ता है, उपवास काल मे अपनी जीवन-रक्षा अपनी पीठ पर के कोहान के सञ्चित पदार्थ से करता रहता है, और पानी की कमी को अपने पेट के सञ्चित पानी के कोष से [illegible] [illegible] शरीर का विष (विजातीय द्रव्य) और दूसरे [illegible]

शरीर के पोषण मे प्रकृतितः लग जाता है और शरीर
दुबला हो जाता है, और तब हमे वास्तविक भूख लगती
है। और उपवास तोड़ कर खाने की प्रबल इच्छा होती
है। यह उपवास की परिसमाप्ति है। मगर उसके बाद
भी यदि उपवास जारी रखा गया तो शरीर का पोषण
शरीर स्थित उन आवश्यक जीवन द्रव्यो से होने लगेगा
जिनके बिना शरीर खड़ा ही नही रह सकता, और
जिनसे हमारे शरीर का सगठन हुआ है। यही से मरण
आरम्भ होता है। उपवास से मनुष्य तभी मरता है जब
शरीर स्थित फालतू पदार्थो की समाप्ति के बहुत बाद उसके
शरीर के आवश्यक अग भी नष्ट हो चुकते है। जबतक
मनुष्य के शरीर के आवश्यक अगो से पोषण का आरम्भ
नही होता तब तक मनुष्य केवल दुबला ही होता है।
परन्तु आवश्यक अगो से शरीर का पोषण आरम्भ होते
ही, शरीर का नाश होना भी आरम्भ हो जाता है,
और धीरे धीरे आदमी मर जाता है। यही उपवास और
भूखों मरने मे अन्तर है।

उपवास-चिकित्सा विशेषज्ञ डा० कैरिंगटन ने उप-
वास और भूखो मरने के अन्तर को इन थोडे से शब्दों
मे स्पष्ट किया है:—

"उपवास प्रथम भोजन छोड़ने से प्रारम्भ होकर
वास्तविक भूख लगने पर समाप्त होता है। और भूखो
मरना, वास्तविक भूख लगने से प्रारम्भ होकर मृत्यु मे
समाप्त होता है।

उपवास से न केवल शारीरिक-विकृति ही दूर होती
है, अपितु उसके करने वाले का मन और आत्मा का भी
परिष्कार हो जाता है, क्योकि उसका रुख ईश्वर की तरफ
होता है।

एक बार महात्मा गाधी से किसी ने प्रश्न किया—
'जब कभी आपके सामने जबर्दस्त मुश्किल आ जाती है तो
आप उपवास क्यों कर बैठते है ?' इस प्रश्न के उत्तर
मे उन्होने कहा था—अहिंसा के पुजारी के पास यही
आखिरी हथियार है। जब इन्सानी अक्ल काम नही
करती तो अहिंसा का पुजारी उपवास करता है। उपवास
मे प्रार्थना की तरफ तबियत तेजी से जाती है। यानी
उपवास एक रुहानी चीज है और उसका रुख ईश्वर की
[illegible]ता है।

उपवास, शारीरिक, मानसिक, एव आध्यात्मिक स्व
च्छता के लिये अपूर्व एवं एकही उपाय है, सही, कि
उसका पूरा-पूरा लाभ वही उठा सकता है जो उपवास
कला का पूर्ण मर्मज्ञ हो। उपवास-विज्ञान का वास्तवि
ज्ञान न होने पर, या इस विद्या के विशेषज्ञो द्वारा मा
प्रदर्शन न पाने पर, उपवास हानिकारक भी हो सक
है। यहा त[illegible] कि उपवास के नियमो मे व्यतिक्रम होने
कारण, अथवा उनका ठीक-ठीक पालन न हो सकने
कारण, कितने ही उपवासियो को जान से भी हाथ धो
पड़ा है। एक प्रसिद्ध चिकित्सक के कथनानुसार उप
की उपमा दो धारी तलवार से दी जा सकती है, अ
यदि उपवास का प्रयोग उसके नियमो के अनुकूल हुआ
तो वह अक्सीर बन जाता है, और उसका परिणाम
अत्यन्त लाभदायक होता है, किन्तु वही उपवास, यदि उप
वास के नियमो के प्रतिकूल चलाया गया तो वह उल्टे
शरीर को बड़ी से बड़ी हानि भी पहुंचा सकता है।

यह धारणा निर्मूल है कि उपवास का काम, भोजन
की मात्रा घटा देने से भी चल सकता है। सूक्ष्म विवेचन
से यह बात सिद्ध हो जाती है कि भोजन की मात्रा घट
देना और ठूस-ठूस कर भोजन न करना, दोनो एक ह
बात नही है। जितनी भूख हो उससे कम खाना, प्राकृति
नियमो मे नही आता। प्रयोगो से यह बात साबित हो
चुकी है कि थोड़ा भोजन करके चाहे कोई कितने ही दिन
गुजार दे, कोई विशेष लाभ नही हो सकता। अन्य आहार
पर रहना न केवल व्यर्थ है, बल्कि कष्टदायक भी है।
उपवास-काल मे तो मनुष्य को, शुरू के दो-तीन दिनो तक
ही कष्ट होता है, किंतु थोड़ा भोजन करने से तो कष्ट
प्रतिदिन समान बना रहता है। अनुभव से यह भी जाना
गया है, कि थोडा खाकर रहने से दुर्बलता शीघ्र आती है,
जबकि उपवास करने से ऐसी बात नही होती। अतः यह
मानना पडेगा कि उपवास के प्रकार मे, थोड़े भोजन पर
रहना, नही आसकता।

उपवास के प्रकार—

(१) प्रातः कालिक उपवास—

यह सबसे सुगम उपवास है। इसमे केवल सुबह का
नाश्ता छोड़ देना पडता है, और दिन-रात मे केवल दो
बार ही भोजन करने की व्यवस्था रहती है। अंग्रेजी मे

इसको 'No Breakfast system' कहते है।

(२) सायंकालिक उपवास—

इसको अर्द्धोपवास या एक वक्ती उपवास कहते है। इसमे रात का भोजन बंद कर देना पड़ता है और रात-दिन मे केवल एक वार ही भोजन करना होता है। जो लोग पुराने और जटिल रोगो के शिकार होते हैं, उनको इस उपवास से बड़ा लाभ होता है। इस उपवास में जो भोजन किया जाता है उसका सुपाच्य एवं प्राकृतिक होना जरूरी होता है।

(३) एकाहारोपवास---

एक बार एक ही चीज खाना, एकाहारोपवास कहलाता है। जैसे सुबह को यदि रोटी खाय तो शाम को केवल तरकारी, दूसरे दिन सुबह को एक प्रकार का कोई फल, और शाम को केवल दूध, आदि। शरीर की मामूली गडबड़ी मे यह उपवास लाभ के साथ किया जासकता है। इससे साधारण स्वास्थ्य मे असाधारण उन्नति दृष्टिगोचर होती है।

(४) रसोपवास--

इस उपवास मे अन्न, तथा फलादि ठोस पदार्थ नही ग्रहण किये जाते। केवल रसदार फलो के रस अथवा साग सब्जियो के सूप (जूस) पर ही रहा जाता है। दूध लेना भी वर्जित होता है। क्योकि दूध की गिनती भी ठोस-खाद्य पदार्थों मे की जाती है। इस उपवास मे एनिमा लेते रहने से शरीर की सफाई अच्छी होती है।

(५) फलोपवास—

कुछ दिनों तक केवल रसदार फलो अथवा साक-भाजी पर रहना फलोपवास कहलाता है। इस उपवास मे भी कभी कभी पेट साफ करने के लिए एनिमा लेते रहना चाहिए। इस उपवास मे किसी किसी को एकाएक फलाहार माफिक नही पड़ता और पेट में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्तियो को पहले दो तीन दिनो पड़े उन्हींको व्यवहार मे लाना चाहिए क्योकि कोई भी उपवास हो, उसमे वदहजमी हरगिज न होने देना चाहिए। पिछले दिनो लेखक को खूनी बवासीर की शिकायत हो गयी थी। २१ दिनो के इसी फलोपवास के प्रयोग से वह ऐसी गायव हुई कि फिर आज तक न लौटी।

(६) दुग्धोपवास—

इसे 'दुग्ध-कल्प' भी कहते है। कुछ दिनो तक दिन में चार-पांच वार केवल दूध पी कर ही रहना दुग्धोपवास कहलाता है। इस उपवास मे जिस दूध का उपवास किया जाय वह स्वस्थ गाय का धारोष्ण होना चाहिए।

(७) मठोपवास—

इसे मठा-कल्प भी कहते हैं। पाचन-शक्ति यदि निर्वल हो तो दुग्धोपवास की जगह यह मठोपवास करना चाहिए। इस उपवास मे जो मठा लिया जाय वह घी रहित एव कम खट्टा होना चाहिये।

दुग्धोपवास अथवा मठोपवास आरम्भ करने के पहले यदि दो-एक दिनो का पूर्णोपवास कर लिया जाय तो अधिक लाभ होने की सम्भावना रहती है। ये उपवास डेढ-दो महीने आसानी से चलाये जा सकते हैं। इनसे शरीर के छोटे-मोटे रोगो का शमन तो हो ही जाता है, साथ ही साथ सामान्य स्वास्थ्य मे भी काफी उन्नति हो जाती है। इन उपवासो मे जब कभी पेट भारी मालूम दे तो एनिमा का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

(८) पूर्णोपवास—

स्वेच्छापूर्वक विशुद्ध ताजे जल के अतिरिक्त किसी प्रकार की खाद्य वस्तु ग्रहण न करना पूर्णोपवास कहलाता है। इसमे उपवास सम्बन्धी अनेक आवश्यक नियमो का पालन करना होता है, जिसके विषय मे आगे लिखा गया है।

कम से कम यह उपवास जरूर करना चाहिए। उपवास के दिन एक दो बार एनिमा भी लिया जाय तो उत्तम है। इस उपवास से अरुचि मिटती है। सिर दर्द, सुस्ती, तथा अन्य कई शारीरिक और मानसिक व्याधिया आप से आप अच्छी हो जाती है।

(१०) लघु उपवास—

तीन दिन से लेकर सात दिनो के पूर्णोपवास को लघु उपवास कहते है।

(११) कड़ा उपवास—

यह उपवास असाध्य रोगो के लिए है। इसमे पूर्णोपवास के सभी नियमो को कडाई के साथ बरतना पडता है।

(१२) टूट उपवास—

इसमे दो से सात दिनो का पूर्णोपवास करने के बाद कुछ दिनो तक हल्के प्राकृतिक भोजन पर रह कर पुन. उतने ही दिनो का उपवास करना होता है। उपवास और हल्के भोजन का यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक कि अभीष्ट की सिद्धि न हो जाय। इस उपवास का प्रयोग कष्टसाध्य रोगो मे प्रायः किया जाता है।

(१३) दीर्घ उपवास—

इस उपवास मे पूर्णोपवास बहुत दिनो तक चलाना होता है जिसके लिये कोई निश्चित समय पहले से निर्धारित नही होता। इसमे २१ से लेकर ५०-६० दिन भी लग सकते है। प्रायः यह उपवास तभी भग किया जाता है जब स्वाभाविक भूख जान पडने लगती है, अथवा शरीर के सारे विजातीय द्रव्य के पच चुकने के बाद जब शरीर के आवश्यक अवयवों के पचने की नौबत आजाने की सम्भावना होजाती है। यह उपवास जब शारीरिक दृष्टि से किया जाता है तो इसका लक्ष्य शरीर के विविध भागोमें एकत्र हुये विजातीय द्रव्य के निष्कासन की ओर ही होता है, और जब यह मन्तव्य पूरा हो जाता है तो उपवास तोड दिया जाता है। इस प्रकार का लम्बा उपवास बिना तैयारी किये, तथा बिना उपवास-कला का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये नहीं करना चाहिये। अच्छा तो यह है कि इस प्रकार के लम्बे उपवास, किसी उपवास-विशेषज्ञ की देख रेख में ही चलाये जावे, अन्यथा बिना जाने बूझे लम्बे उपवासो का प्रयोग करने मे तकलीफ और हानि ` सकती हैं।

पूर्णोपवास कितने दिनों का ?

उपवास कितने दिनों का करना चाहिये, यह उपवास करने वाले की प्रकृति, आवश्यकता, तथा उपवास के प्रकार पर निर्भर करता है। अत इसके लिये कोई विशेष नियम नही बनाया जासकता। साधारणत कोई भी पाच-सात दिनों का पूर्णोपवास कर सकता है। विषय लोलुप, लालची, एव दुराचारी व्यक्ति लम्बे उपवास नहीं निभा सकते। उनके लिये ये उपवास ठीक भी नही हैं। इसके विपरीत शुद्ध वृत्ति एव धार्मिक विचार वाले सदाचारी व्यक्तियो को लम्बे उपवास विशेष रूप से अनुकूल पड़ते है। उत्तम स्वास्थ्य के चाहने वालो को, सप्ताह मे एक दिन रविवार को, प्रतिमास की दो एकादशियो को, तथा प्रति वर्ष आठ, दश, या पन्द्रह दिनों का पूर्णोपवास नियमित रूप से करते रहना चाहिए। ऐसा करने से बड़ा लाभ होता है। जो लोग अधिक दुर्बल नही है, वे सात दिनो का उपवास बिना भय के कर सकते हैं और उससे लाभ उठा सकते है। ऐसे लोगो को पहले दो तीन दिनों के उपवास का अभ्यास करके तब सात या इससे अधिक दिनो का उपवास आरम्भ करना चाहिए।

पूर्णोपवास के लिए तय्यारी—

यदि सच पूछा जाय तो उपवास के लिए किसी विशेष तय्यारी की जरूरत न होनी चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार भूख लगने पर भोजन करने के लिए कोई तय्यारी नही की जाती, उसी प्रकार रोगग्रस्त होने पर, चाहे रोग मानसिक हो वा शारीरिक, रोग निवारणार्थ उपवास करने के लिये किसी प्रकार के सोच विचार की आवश्यकता न होनी चाहिए। हा, उपवास के आरम्भ मे मानसिक वृत्ति को थोडा शान्त एवं अविचल रखने की जरूरत जरूर पड़ती है। मन की उपवास सम्बन्धी उद्विग्नता शान्त होते ही लम्बा से लम्बा उपवास भी सरल और सहज हो जाता है। लम्बा उपवास आरम्भ करने से पहले यदि कुछ दिनो तक प्राकृतिक सादे आहार पर रहकर आतप-स्नान, कटि-स्नान, तथा कुछ व्यायाम कर लिया जाय और तब उपवास आरम्भ किया जाय तो ऐसे उपवास से विशेष लाभ होने की सम्भावना रहती है। उपवास आरम्भ करने के पहले यह भी कम जरूरी नहीं है कि उपवासी, उपवास विज्ञान का थोड़ा ज्ञान अर्जन करले

से उसको उपवास काल में बल और विश्वास की लब्धि होगी, जिससे वह घबड़ायेगा नही । लम्बे वासो मे उपवास आरम्भ करने से पहले उपवासी को ड़ी और हृदय की जांच करा लेनी चाहिए ।

जो जीर्ण रोग रोगी है, उन्हे चाहिए कि लम्बा वास आरम्भ करने के पहले वे अपने भोजन मे क्रमशः रिवर्तन करें, तत्पश्चात धीरे धीरे लम्बे उपवास का श्रय लें । जैसे पहले सवेरे का भोजन त्याग दे और ल सायकाल को ही भोजन करे । फिर दो तीन दिन द अन्न लेना विल्कुल ही त्याग दें और केवल फल खा रहे । फिर दो तीन दिन तक फलाहार करने के वाद धिवत उपवास आरम्भ कर दे । ऐसा करने से उपवास ल में वड़ी सहूलियत हो जाती है ।

वहुधा यह प्रश्न होता है कि उपवास किस ऋतु मे —जाड़े या गर्मी मे ? इसका सीधा सादा उत्तर यह है उपवास का करना या न करना उपवास की वश्यकता एव अनावश्यकता पर अवलम्बित है, तु पर नहीं । जब उपवास की अवश्यकता हो, वास आरम्भ कर देना चाहिए और उसी को का ठीक और उपयुक्त समय समझना चाहिये । र भी वहुत लोगो को गर्मी मे उपवास करना वहुत ठिन प्रतीत होता है । और वे जाडे के दिन उपवास के ए उत्तम मानते हे । डाक्टर शर्मा के० लक्ष्मण का हना है कि लम्बे उपवास के लिए सवसे सुन्दर ऋतुयें त और गीष्म ही हैं जवकि हमे पर्याप्त धूप और भी मिल सकती है जो शरीर स्थित विजातीय द्रव्य के कासन मे सहायक सिद्ध होती है ।

पूर्णोपवास काल मे—

पूर्णोपवास जव चलता रहे तव निम्नलिखित वातो र विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए—

१—जलपीना—उपवास काल में किसी प्रकार भोजन न ग्रहण करना चाहिए । किन्तु स्वच्छ ताजा जल [illegible] पीते रहना चाहिये । सारे दिन मे [illegible] सेर [illegible] जल पिया जा सकता है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अच्छी होती

का रस मिलाया जा सकता है ऐसा करने से शरीर की सफाई अच्छी होती है । उपवास काल मे जल ग्रहण न करने से भारी हानि की सम्भावना रहती है । इसलिए उस वक्त शरीर को भरपूर और नियमित रूप से पानी मिलना ही चाहिए, नही तो शरीर मे जल की कमी के कारण आंते सूख जा सकती है और रक्त की स्वाभाविक चाल मे वाधा उपस्थित हो सकती है । उपवास में पानी न पीने या कम पीने से शरीर के भीतर उष्णता वढ़ जाने का डर रहता है, जिससे उपवासी को तकलीफ हो सकती है ।

२—एनिमा—उपवास काल मे जितना पानी पीना जरूरी है उससे कम जरूरी एनिमा लेना नही है । उपवास काल मे आतें अपना काम एक तरह से वद कर देती हैं, इसलिये उन्हे अन्य उपाय से नित्यप्रति साफ करते रहना नितान्त आवश्यक है । ऐसा सोचना गलत है कि भोजन जव किया ही नही जाता तो पाखाना कहां से होगा । क्योकि प्रथम तो आतें कभी भी मल से विल्कुल खाली नही रहती, दूसरे भोजन न करने पर भी आतों मे जो स्वाभाविक क्रिया होती रहती है, उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले मल को साफ करने की आवश्यकता तो पडेगी ही । इसलिये उपवास काल मे रोज कम से कम एक वार एनिमा लेकर आतो को स्वच्छ रखना परमावश्यक है । एनिमा का पानी साधारण गरम होना चाहिए । ठडे पानी का एनिमा भी लिया जा सकता है । एनिमा के पानी मे कुछ बूंदे कागजी नीवू के रस को मिला देने से सफाई अच्छी होती है ।

३—स्नान—उपवास-काल मे प्रतिदिन शीतल जल से साधारण स्नान करना भी जरूरी है । यदि प्रति दूसरे दिन एक उदर या मेहन स्नान भी लिया जाया करे तो उत्तम है । उपवास-काल मे त्वचा को स्वच्छ, स्वस्थ, एव सतेज रखना वहुत जरूरी है । इसलिए इन दिनो कभी-कभी सारे वदन की गीली मिट्टी की पट्टी लाभदायक होती है । यदि उपवास लम्वा होने के कारण उपवासी पूरा स्नान लेने में असमर्थ हो तो उसे [illegible] [illegible] गरम पानी मे [illegible] [illegible] [illegible] अपने सम्पूर्ण शरीर को [illegible] [illegible] [illegible] चाहिए ।

४—[illegible]—[illegible] मे [illegible] [illegible] छोटकर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] दीर्घ वार

परिश्रम का कार्य करते रहना नितान्त आवश्यक है। उत्तम स्वास्थ्य के लिये, तथा जीर्ण रोगों मे किये गये उपवासों में अपना मामूली दैनिक कामधाम तो जारी रखना ही चाहिए, ऊपर से शक्तिभर व्यायामादि भी करना आवश्यक है, और न कुछ हुआ तो टहलना ही सही। हा, यह ख्याल जरूर रखना चाहिए कि उपवास-काल मे किये गये परिश्रम से थकान न आने पावे। क्योकि-शक्ति अधिक घट जाने पर किया हुआ परिश्रम, शरीर को लाभ के बदले हानि ही अधिक पहुँचाता है तथापि ऐसे मनुष्यो को भी टहलने चलने-फिरने, तथा हल्के व्यायाम से मुह न मोड़ना चाहिए। उपवास-काल में यदि उपवासी बिछौने से लग गया हो और उठ न सकता हो तो उसे बिस्तर पर पड़े ही पड़े बच्चों की भाति अपने शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग मे हरकत उत्पन्न करके हल्के व्यायाम का लाभ लेना चाहिए। स्मरण रहे, जिन व्यक्तियों के शरीर मे चर्बी की मात्रा बहुत कम होती है, उपवास काल मे उन्ही को चारपाई पर पड़े रहना पड़ता है।

५—आराम—उपवास-काल मे व्यायाम के साथ-साथ नियमित विश्राम की भी बड़ी सख्त जरूरत रहती है। बहुत कमजोर रोगियो के लिए तो कभी कभी पूरा आराम अनिवार्य हो जाता है। उपवास के दिनों मे शरीर को जितना आराम दिया जाय, यदि उतनाही आराम उपवास के बाद भी उसे दिया जाय तो उपवास से किसी बुरे परिणाम की आशका नही रहती। उपवास में यदि उपवासी गाढी नीद ले सके तो अति उत्तम है।

६—मानसिक स्थिति—उपवास काल मे मानसिक स्थिति के शात और स्थिर रहने की बड़ी जरूरत है, और यह चीज ईश्वरोपासना के अतिरिक्त अन्य साधनो द्वारा प्राप्त होना दुर्लभ है। इसलिए उपवासी को उपवास-काल मे अपने चित्त की शाति के लिए ईश्वरोपासना मे मन लगाना चाहिए। उपवास-कला-विशेषज्ञ महात्मा गांधी अपनी 'आत्मकथा' भाग ४ अध्याय ३१ मे लिखते है कि यदि शारीरिक उपवास के साथ साथ मन का उपवास न हो तो वह दम्भपूर्ण और हानिकारक हो सकता है। मतलब, उपवास-काल मे विषयो को रोकने और स्वाद को जीतने की निरन्तर भावना होनी चाहिए तभी उपवास से शुभ की आशा की जासकती है। उपवास काल मे सदैव प्रसन्न वदन एव आशापूर्ण रहना चाहिए। खिन्नता, भय आदि मानसिक आवेगों को उन दिनों पास भी न देना चाहिए। उपवास मे आशा, उत्साह, आदि से असाधारण बल प्राप्त होता है।

७—उपचार—उपवास काल मे किसी उपद्रव के पर या वैसे ही कभी भूल से भी किसी प्रकार की औ ग्रहण करना, भयकर आपदा को निमन्त्रण देना है। सम्बन्ध मे उपवास करने वालों को यह बात समझ चाहिए कि उपवास के समय तथा उसके उपरात बहुत तक शरीर की हालत बहुत ही नाजुक होती है। अतः अवसरो पर औषधियो आदि को प्रयोग करने से पर बहुत भयंकर प्रभाव पड़ता है। उपवास-काल मे उपद्रव के होने पर या तबियत घबड़ाने पर सीधे प्राकृतिक उपचारो का ही सहारा लेना युक्ति सगत है ये उपचार पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी, उदर, तथा कपड़े की ठंडी पट्टिया आदि हैं, जिनका प्रयोग वास-काल मे, आवश्यकता पड़ने पर लाभ के साथ जा सकता है। उपवासी को यथासम्भव खुली हवा मे और सोना चाहिए। प्रातःकाल खुले बदन कुछ देर धूप मे बैठना चाहिये। उपवास-काल मे उपवासी शरीर का तापमान घट जाने पर या देह के भिन्न अवयवो मे रक्त सचार की क्रिया बढ़ाने के लिए मालिस यथेष्ट लाभकारी होती है।

पूर्णोपवास कब, और कैसे तोड़े ?

कहा जाता है कि उपवास करने से उपवास करना अधिक कठिन है, यह अक्षरशः सत्य है। वस्तुत उपवास तोड़ने मे बहुत ही सावधानी, अतीव सतर्कता, तथा कठोर आत्म सयम की आवश्यकता होती है। उप के दिनो मे पाचन-शक्ति क्षीण होकर बहुत दुर्बल पड़ जाती है। इसलिए उपवास समाप्ति के समय बहुत सतर्कता साथ अत्यन्त हल्का भोजन, स्वल्प मात्रा मे लिया जा अनिवार्य है। उसके बाद पाचन शक्ति ज्यो ज्यो बढ़ने लगे त्यो त्यों भोजन की मात्रा भी क्रमशः बढ़ानी चाहिये। इस तरह से उपवास को ठीक ढंग से तोड़कर उपवासी न केवल अवस्था परिवर्तन के खतरे से ही बच सकता है बल्कि उपवास का पूरा पूरा लाभ भी उसको तभी मिल सकता है जब वह यह जाने कि उसको उपवास के

ढ़ना चाहिये। अन्यथा इस सम्बन्ध मे यदि किसी प्रकार
गलती हुई तो उपवास का अधिकाश लाभ नष्ट हुआ
भिये और तब हो सकता है, स्वास्थ्य पर भी उसका
। प्रभाव पड़े।

छान्दोग्य उपनिषद मे लम्बा उपवास करने वाले
क्ति की पाचन शक्ति की उपमा बुझती हुई आग की
ट से दी गयी है। यदि ऐसी आग पर भारी भारी
ाडी के कुन्दे डाले जायेगे तब तो उसका प्रज्वलित होना
दूर उसका अस्तित्व ही खतरे मे पड़ जायगा। लेकिन
बुझती हुई अग्नि को पहले खर पात या छोटी
टी लकड़ो की चुन्नियां देकर जिला लियाजाय और तब
रेधीरे वड़ी लकड़िया देकर प्रज्वलित किया जाय तो वह
दावानल का रूप धारण कर सकती है। ठीक वही
लम्बे उपवास करने वालो की जठराग्नि की समझनी
हिये। उपवास काल मे मनुष्य की पाचनेन्द्रिय शरीर
मल या विकार दूर करने का काम करते करते अपने
भाविक कर्म, पाचन को एक प्रकार से भूल सी जाती
लिये उसको उसके पूर्व स्वाभाविक कर्म का पुन अभ्यासी
ाने में जल्द बाजी नही करनी चाहिये। सिद्धान्तत उप-
स जितना लम्बा होता है, उतनी ही सावधानी की
रत उसे भंग करने के समय होती है।

उपवास भग करने के लिये पानी के समान तरल
र्थ लेना चाहिये। इसकी वजह यह है कि उपवास
ल मे हमारी आते जल ग्रहण करने की अभ्यासी रहती
अत तरल भोजन लेने पर उनको उसका भार नही प्रतीत
गा और वे उसे पचाने में भी शीघ्र सफल हो जावेगी
र उपवास यह भी ध्यान रखना चाहिये कि भोजन तरल
ो तो भी, साथ साथ उसका हल्का और सादा होना भी
जरूरी है। इस ध्यान से उपवास विज्ञान विशेषज्ञो की
य मे रस-पदार्थ के लिये सबसे उत्तम और उपयुक्त आहार
ाग सब्जियो का सादा रस (सूप) है। इससे उतर कर [illegible]

लिये लिया जायगा, उतना ही वह गुणकारी एवं स्वास्थ्य-
वर्द्धक सिद्ध होगा और उपवासी की दशा सुधार मे उतनी
ही उन्नति होने की सम्भावना रहेगी। लम्बे उपवासो मे
उपवास तोडने के बाद कुछ काल तक केवल साग
भाजियो पर रहना बाद को थोड़े दिनो तक फलो पर
रखना चाहिये और तदुपरान्त धीरे धीरे अन्न भोजन पर
आना चाहिये।

एकदिन का उपवास तोड़ने के लिये पहले पहल तर-
कारियो का रस, फलों का रस, खूब सीझी हुई सादी तर-
कारी अल्प मात्रा मे लेसकते है। उसके बाद धीरे धीरे
अन्न भोजन पर आना चाहिये। सावधानी इस बात की
होनी चाहिये कि एक बार का किया हुआ भोजन जब
पच जाय तभी दूसरा भोजन ग्रहण किया जाय। कोई उप-
वास हो उसके तोडने के बाद अनपच कभी न होने देना
चाहिये।

दो तीन दिनो के उपवास के बाद चौथे दिन सिर्फ तीन
बार थोडा तरकारी का सूप या फलो का रस ले। पाचवे
दिन एक बार रस या सूप और दो बार सादी पकी तर-
कारी ले। छठे दिन तीन बार साग भाजी या रसदार फल।
सातवे दिन एक बार के भोजन मे रोटी भाजी लें और
इसके बाद धीरे धीरे स्वाभाविक भोजन पर आजावे।

लम्बे उपवासो की दशा मे तरल खाद्य जितना लम्बा
उपवास हो उसके तिहाई समय तक चलना चाहिये, ऐसा
डाक्टर शर्मा के० लक्ष्मण की राय है। इस हालत मे भी
भोजन की मात्रा तथा कितनी बार भोजन लिया जाय
इन बातो पर ध्यान देने की अधिक जरूरत है। तत्पश्चात
प्रतिदिन या दूसरे दिन एक बार अत्यन्त हल्का एव सादा
फलो या साग भाजियो का भोजन भी प्रारम्भ किया
जा सकता है। किन्तु इन दिनो भी दूसरा भोजन फलो के
रस [illegible] या तरकारी के सूप का ही होगा इस तरह से क्रमश-

उसे उपवास तोड़ना चाहिये। इस बात का पता तो हमको उपवास के अंत मे प्रकृति द्वारा ही मिलता है, अर्थात उपवास के अंत मे जब उपवासी को.—

(अ) प्राकृतिक सच्ची भूख मालूम दे और गले तथा मुखमे उस भूख की सवेदना हो।

(ब) जब जीभपर की सफेद मैल जो उपवास काल में जम जाती है साफ होजाय।

(स) मुंह का स्वाद जब ज्वर के समय जैसा न रहे।

(ल) श्वास का स्वाद मीठा मीठा मालूम पड़े।

(व) नाड़ी ठीक चलने लगे।

(ष) शुद्ध रक्त-प्रवाह के कारण त्वचा नरम और लचीली हो जाय।

(स) शरीर का तापमान नारमल हो जाय।

(ह) शरीर हल्का फुल्का हो जाय और भीतर एक विचित्र प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव हो तो उपवास पूरा हुआ समझना चाहिये, और तब उपवास जरूर तोड देना चाहिये।

पूर्णोपवास के बाद—

उपवास समाप्ति या उपवास तोड़ने के बाद भूख जोरो से लगती है, लेकिन उस वक्त सयम से काम लेकर अधिक नही खाना चाहिये। प्रत्येक ग्रास को धीरे-धीरे और चबा चबा कर निगलने से, तथा जीभ को वश मे रखने से क्षुधा पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यदि उपवास तोड़ने के बाद भूल से कोई गल्ती हो जाय और उस गल्ती के कारण शरीर के पुन. रोगी हो जाने की सम्भावना हो तो उस गल्ती के प्रायश्चित स्वरूप दूसरा उपवास कर लेने ही मे अपना कल्याण समझना चाहिये। उपवास के बाद प्राकृतिक और शरीर को रोगी बनाने वाले भोजनो को त्यागकर प्राकृतिक और विशुद्ध सात्विक भोजनो को अपनाना चाहिये, अन्यथा उपवास का मन्तव्य ही न सिद्ध होगा। उपवास के बाद भी यदि खाने पीने के वे ही पुराने तौर-तरीके काम मे लाये जावेगे जिनके कारण उपवास करना पड़ा था, तो फिर उपवास करने से लाभ ही क्या हुआ? उपवास के बाद का समय, पुरानी बुरी आदतो को छोड़ने, तथा नवीन स्वास्थ्यवर्द्धक गुणों को ग्रहण करने के लिये अच्छा एव उपयुक्त होता है। इस समय यदि चाहे तो अपने को प्रकृति के सहारे चलाकर, वास्तविक स्वास्थ्य का एक आदर्श उपस्थित कर सकता है।

अनुभव से जाना गया है कि उपवास काल मे ... का वजन जितना घटता है, और जितनी जीवनी ... व्यय होती है, उपवास के बाद उनकी पूर्ति मे कम से ... उसके दूने दिन लग जाते हैं। मगर इसे नियम नहीं ... झना चाहिये। कमजोर और कमसाध्य रोग के ... के सम्बन्ध में यह अवधि बढ भी सकती है। उपवास ... उपवास के नियमो के अनुकूल ठीक ठीक चलाया जाय ... वजन प्रतिदिन लगभग एक पौण्ड के हिसाब से घटे ... और उपवास तोडने के बाद वजन बढने का औसत ... आधा होगा।

पूर्णोपवास का शरीर पर प्रभाव—

पाचन–सस्थान—जिस प्रकार अत्यधिक भोजन ... सर्वप्रथम दुष्प्रभाव आमाशय पर दिखाई पडता है, ... प्रकार उपवास का भी प्रभाव सर्वप्रथम आमाशय ... दिखाई पडता है। उपवास करने के दूसरे या तीसरे ... बडे जोर की भूख प्रतीत होती है जिसका कारण यह है ... है कि हमारे खाने की आदत हमको उस समय सताती ... जिससे बड़ी बेचैनी मालूम होती है। जब यह ... भूख सताना बद कर देती है तब शरीर से विषों का निकलना प्रारम्भ होता है और यह अवस्था विषो की मात्रा के अनुसार ३ या ४ दिनो तक बनी रहती है, कभी कभी १५ दिनो तक भी रहती देखी गयी है। विषो के निकलने के कारण जिह्वा मैली, श्वास दुर्गन्धयुक्त तथा भूख बिलकुल खतम हो जाती है। शरीर की स्वोपचार शक्ति इस समय कार्य कर रही होती है। विषो के कम होने के कारण इसी समय रोग का जोर भी कम हो जाता है। विषो के नष्ट हो जाने के बाद पेट हल्का हो जाता है और वास्तविक भूख की प्रतीति होने लगती है, साथ ही जिह्वा साफ हो जाती है और शरीर हल्का प्रतीत होने लगता है यद्यपि भीतर शारीरिक तथा मानसिक कार्य करने की शक्ति कम रहती है।

आंतो पर भी देखने लायक प्रभाव होता है। आंतो मे मल के सड़ने से आमवात, अतिसार, प्रवाहिका आदि रोगो मे परिवर्तन होने लगता है। आंतो मे नया अन्न रस न आने के कारण उसके सेलो को कम काम करना पड़ता है जिससे उनकी लुप्त हुई शक्ति पुनः जाग्रत ...

जाती है। आंतें मल का पाक करके उसे धीरे धीरे निकालने लगती है, तथा आंतो मे उत्पन्न हुई हवा शोषित हो जाती है, और आंतो मे मल को ढकेलने की शक्ति कम होने कारण, कुछ दिनो बाद मल अपने आप नही निकल सकता है और उसको एनिमा द्वारा निकालना पडता है। जिस समय सारा मल निकल जाता है उसके बाद शरीर के स्नायुओ का नाश होने लगता है जिसकी वजह से शरीर का भार बहुत अधिक घट जाता है।

मल-त्याग—पहले मल की मात्रा तथा उसकी नियामकता पर प्रभाव होता है। आंतो मे बहुत दिनो तक मल के रुके रहने से मल कमजोर हो जाता है और उसके निकालने में कठिनता होती है। कई बार उसके निकलने से बहुत दर्द तथा रक्तस्राव भी हो जाता है। इसलिये एनिमा का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। यदि उपवास आरम्भ से पहले दिन साधारण भोजन किया जायगा तो प्रथम दिन और दिनो के समान ही मल आयेगा। किन्तु दो-तीन दिन बाद मल का आना रुक जाता है और तब यदि उसे एनिमा द्वारा न निकाला जाय तो उसके बुरे परिणाम हो सकते है।

रुधिर-सस्थान-तापमान—भोजन शरीर मे पचकर तापमान पैदा करता है। जिस प्रकार इंजन मे कोयले की जरूरत होती है, उसी प्रकार शरीर रूपी इंजन को उसे सुचारु रूप से सचालित रखने के लिए भोजन रूपी ईंधन की जरूरत होती है। भोजन हमारे शरीर मे ईंधन का काम करते हुये शरीर के तापमान को स्थिर रखता है। इसीलिए जब हम भोजन नही करते तो हमारे शरीर का तापमान कम हो जाना चाहिए क्योंकि ताप का आधार भोजन पर अनुपस्थित होता है। किंतु डा० बेनेडिक्ट बहुत अन्वेषणा के बाद इसके बिल्कुल विपरीत परिणाम पर पहुँचे

नाडी—उपवास-काल मे नाड़ी मे भिन्न भिन्न प्रकार के परिवर्तन होते देखे जाते हैं, इसलिये चिकित्सक लोग इस सम्बन्ध मे अभी तक ठीक परिणाम पर नही पहुँच पाये है। उपवास की कुछ अवस्थाओ मे नाड़ी साधारण रहती है, किंतु कुछ अवस्थाओ मे इसकी गति मन्द हो जाती है। लगभग ६४ प्रतिशत व्यक्तियो मे नाडी की गति साधारण देखी गई है, ३६ प्रतिशत में कम, तथा किसी-किसी व्यक्ति मे यह गति बढी हुई भी पायी गयी है।

रक्त—उपवास के समय रक्त मे भिन्न-भिन्न परिवर्तन देखे गये है। डाक्टर मूलर तथा सिनेटर ने परीक्षा करके देखा है कि रक्त मे रक्ताणुओ की सख्या बढ जाती है। किंतु इससे भी आगे बढकर डा. टौसिज्क ने उपवास के समय होने वाले रक्त मे निम्न लिखित परिवर्तन बताये है:—

१—कुछ समय तक रक्ताणुओ की सख्या घटने के बाद बढनी शुरू होजाती है।

२—उपवास की वृद्धि के साथ साथ श्वेताणुओ की सख्या कम होती जाती है।

३—एक न्यूक्लियस वाले श्वेताणुओ की संख्या घट जाती है।

४—इओसिनोफिल्स तथा पोलीन्यूक्लियर की सख्या घट जाती है।

इन प्रभावो के अतिरिक्त आंतो मे से जो अन्त्र-रस रक्त मे चला गया होता है वह भी धीरे धीरे पाक को प्राप्त होकर मल द्वारा निकलने लगता है। इसलिये इस अन्त्र-रस से उत्पन्न आमवात आदि बीमारियां अच्छी हो जाती है।

श्री एल्वोज टेनरने ६० वर्ष की आयु में आमवात के लिए उपवास किया और वे पूर्ण स्वस्थ होगये।

यकृत के सेल अधिक मात्रा मे उत्तेजित होते है जिससे पित्त अधिक निकलता है। आतो मे स्थित मल का ठीक परिपाक होने लगता है। मल का रग मटियाला पीला हो जाता है और उसका अवरोध दूर हो जाता है। हेमिल्टव व्रुकने यकृत-अवरोध के लिए उपवास किया और केवल ३० दिनों मे पूर्ण स्वस्थ होगये। पित्त के अधिक निकलने के कारण ही अजीर्ण, मलबन्ध, अतिसार आदि रोगो को उपवास द्वारा दूर किया जा सकता है।

मूत्र-संस्थान—आमाशय मे उत्पन्न विष द्रव्य रक्त द्वारा शरीर मे फैलकर, बाद को वृक्को द्वारा बाहर निकलते है। इनमें सबसे मुख्य यूरिया होता है, यदि यह यूरिया-विष शरीर से बाहर न हो तो उसका भयकर परिणाम हो सकता है। डा० एलेक्जेन्डर हेग आदि तो सिर्फ यूरिया के निकलने की मात्रा से ही शरीर की वृद्धि तथा ह्रास का अनुपात लगाते हैं। जिस समय रक्त मे यूरिया की मात्रा अधिक हो जाती है, उस वक्त वृक्क को आराम मिलता है। क्योकि उस वक्त नये विष द्रव्य पैदा होकर शरीर मे नही आते होते हैं। वृक्क यूरिया को अधिक मात्रा मे उस वक्त तक निकालते रहते है जब तक कि उसकी अतिरिक्त मात्रा नही निकल जाती है। तत्पश्चात् शनैः शनैः यूरिया की मात्रा कम होने लगती है जिससे मालूम पड़ता है कि अब शरीर की शक्ति क्षीण होने लग गयी है। किंतु इस प्रकार की क्षीणता की अवस्था के आने से पहले कई बार स्फूर्ति प्रतीत होती है और कुछ समय तक यूरिया अधिक मात्रा मे निकलने लगती है। इसके कारण के विषय मे डा० हेग लिखते है—

'I believe that the body has begun to feed on its own tissue'.

अर्थात्, शरीर के पाचक रस उस समय शारीरिक स्नायुओं को नष्ट करने लगते है और उत्पन्न यूरिया मूत्र मार्ग द्वारा वहिर्गत होने लगता है।

मूत्र—यदि उपवास के दिनो मे पानी का प्रयोग न किया जाय तो मूत्र की मात्रा साधारण तौर पर घट जाती है। पर यदि पानी का प्रयोग किया जाय तो मूत्र की मात्रा साधारण के समान या उससे कुछ ही कम होती है। किन्तु उपवास के प्रथम दिन मूत्र की मात्रा अवस्था की मात्रा के समान ही होती है। मूत्र की प्रतिक्रिया आम्लिक होती है। घनत्व १०१५ से १०२५ तक होता है। मूत्र मे ठोस पदार्थों की मात्रा ४० ग्राम प्रतिदिन से अधिक नही होती।

त्वचा—शरीर मे त्वचा के मुख्य तीन काम है। शरीर की रक्षा करना, सवेदनाओ को मस्तिष्क तक पहुंचाना, तथा शरीर के विष को बाहर निकालना। फेफड़ो द्वारा जितना विष शरीर से बाहर निकलता है उससे कम विष त्वचा द्वारा नही निकलता। जब अत्यधिक भोजन करने के फलस्वरूप त्वचा के नीचे चर्बी अधिक मात्रा मे एकत्र हो जाती है तब त्वचा के पसीना निकालने वाले छिद्र बन्द प्रायः हो जाते हैं। परिणामतः त्वचा द्वारा पसीने के रूप मे यूरिया आदि शरीर के विष बाहर नही निकलने पाते हैं। उपवास करने से त्वचा के नीचे स्थित श्रम बिन्दु-ग्रन्थियां अपने स्वाभाविक कार्य को आरम्भ कर देती है और उनसे निकलना जारी हो जाता है जिससे यूरिया आदि विष बहुत अधिक मात्रा मे बाहर निकलने लगते है। यही वजह है कि उपवासी के पसीना मे बड़ी कड़ी दुर्गन्ध होती है। सचित चर्बी शरीर मे ईंधन का काम करती है जिससे पसीना की नलिकाएं खुल जाती है पसीना खूब आने से त्वचा नरम और चिकनी हो जाती है, और इस प्रकार पसीने के शरीर के भीतर रुकने से उत्पन्न होने वाली बीमारियो से मनुष्य निजात पा जाता है।

स्नायु सस्थान—सबसे मुख्य संस्थान शरीर मे स्नायु संस्थान है। इसमे किसी भी प्रकार का दोष हो जाने से सारे शरीर मे कोई न कोई विकार उत्पन्न हो जाता है। इसी को आयुर्वेद मे वात रोग के नाम से सम्बोधित किया गया है और माना गया है कि वात के दूषित होने से सब रोगों की उत्पत्ति होती है (वागभट्ट १६--८५ सूत्र-स्थान) इस का पोषण रक्त द्वारा होता है। इसलिये रक्त के दूषित हो जाने पर उसका सबसे बुरा प्रभाव मनुष्य की मानसिक शक्तियो पर पड़ता है जिससे उनका ह्रास होने लगता है। मनुष्य मानसिक कार्यों जैसे पढने-लिखने, सोचने-विचारने तथा याद रखने आदि मे अपने मन को नही लगा सकता है। उसमे धैर्य उत्साह आदि मानवोचित गुणो का अभाव होने लगता है।

उपवास करने से रक्त शुद्ध हो जाता है जिससे मस्तिष्क पर से विषो का प्रभाव हट जाता है और उसकी मानसिक शक्तियां पुन: बलवती हो जाती है। इस तरह स्नायु सस्थान सम्बन्धी रोग भी उपवास द्वारा ठीक हो जाते हैं। कैलिफोर्विया की श्रीमती ई० एच० फर्रार ने लकवा के लिये उपवास किया और वह इसी से पूर्णत: स्वस्थ हो गयी। इसी प्रकार एडोल्फ क्राइस वर्नार्ड ने-म्युरेस्थेनिया (वातिक दोष) के लिये उपवास किया और स्वस्थ हो गये। तात्पर्य यह हे कि उपवास के प्रभाव से रोगी के शरीर से ज्यों ज्यो पूर्व संचित विप निकलते जाते हैं त्यो-त्यों उसके नाड़ी अथवा स्नायु संस्थान के दोष मिटते जाते हैं।

भार—यदि कोई स्वस्थ आदमी उपवास करे तो उसके भार मे १-२ दिन तक कोई विशेष अन्तर नही पड़ता है, किन्तु यदि मोटा और अस्वस्थ व्यक्ति उपवास करे तो २-३दिनो बाद उसके वजन मे लगभग ५ पौण्ड की कमी अवश्य आजायगी। और उसके बाद प्रतिदिन एक पौण्ड उसका वजन कम होता जायगा। यदि साधारण रोग मे उपवास किया जायगा तो प्रतिदिन लगभग एक पौण्ड के वजन, कम होगा।

श्वास–संस्थान—उपवास काल मे श्वास संस्थान में भिन्न भिन्न प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं। किन्तु जो परिवर्तन देखे जाते हैं वे लगभग सभी उपवास करने वाले व्यक्तियो मे समान रूप से विद्यमान होते हैं।

उपवास काल मे पहले २-३ दिनो तक बड़ी दुर्गन्ध-युक्त सास निकलती है, जो शरीर से विष व गंदगी निकालने का प्रमाण होता है। किन्तु ५-६ दिन बाद सास गन्धहीन निकलने लगती है जो शरीर के निर्मल होने की निशानी है।

उपवास काल के उपद्रव और

पहुचना होता है। इस अवस्था को दूर करने के ल रोगी को सीधा लिटा कर उसकी टागो को कुछ ऊंच कर देना चाहिये जिससे रक्त सिर मे अधिक जा सके ऐसी दशा मे रोगी को खड़ा कभी नही करना चाहिये अन्यथा उसकी मृत्यु तक हो जा सकती है।

चक्कर आना—इसके कारण तथा चिकित्सा मूर्च्छा के समान ही है। किन्तु यह लक्षण कभी-कभी सिर मे रक्त की अधिकता हो जाने से भी उत्पन्न हो जाता है। ऐसी दशा मे रोगी के सिर को ऊंचा रखना चाहिये साथ ही उसे खुली हवा में रख कर विश्राम देना चाहिये।

मूत्र रोध—उपवास के दिनों मे यदि पानी तो काफी पिलाया जाय, पर मूत्राशय को खाली करने का उपाय न किया जाय तो मूत्रावरोध प्राय: हो जाता है। उस दशा मे ठंडा मेहन स्नान या पेडू पर गरम और ठडा स्प्रे लाभकारी होता है।

अतिसार—उपवास-काल मे अतिसार बहुत कम होता है। पर यदि किसी को हो जाय तो उसकी अतिसार के समान ही चिकित्सा करनी चाहिये।

सिर दर्द–यह लक्षण प्राय. उपवास के आरम्भ मे पाया जाता है जो कुछ समय बाद आप से आप ठीक हो जाता है।

हृदय मे दर्द—उपवास काल मे आमाशय मे मल एकत्र होने तथा अन्य आमाशय सम्बन्धी रोगो के कारण प्राय. हृदय मे दर्द होने लगता है। यह लक्षण भी धीरे धीरे आप से आप मिट जाता है।

नाड़ी गति का मन्द होना—प्राय. ही यह लक्षण उत्पन्न हो जाता है जो खतरनाक नही होता। गरम जल से स्नान करने तथा हल्का व्यायाम करने से यह लक्षण मिटता है। मालिश से भी लाभ होता है।

होना चाहिये अपितु शरीर के तापमान के बराबर होना चाहिये। पेडू पर ठडी पट्टी रखना, सिर को ठडा तथा पावो को गरम रखना भी इसमे लाभकारी होता है। इसमे शुद्ध वायु का व्यवहार भी खूब होना चाहिये।

वमन—उपवास काल मे वमन होना सबसे खतरनाक उपद्रव है। ऐसी दशा उत्पन्न होने पर रोगी जितना गरम पानी पी सके उतना पिलाना चाहिये ताकि आमाशय स्थित उत्तेजक पदार्थ जल्दी से जल्दी बाहर निकल जावे, यदि ऐसा करने से लाभ न दिखे तो गरम और ठडा स्नान कराना चाहिये। यदि यह भी बेकार साबित हो तो थोडी ग्लिसरिन पानी मे मिलाकर पिला देने से वमन की प्रवृत्ति अवश्य जाती रहेगी।

उपवास से आरोग्य

यदि कहा जाय कि रोगो से मुक्ति पाने के लिये उपवास करने की प्रथा उतनी ही पुरानी है जितनी कि स्वयं मनुष्य जाति, तो गलत न होगा। बाइबिल कुरान और हिन्दुओ के आदि धर्मग्रन्थो मे इसके अनगिनित प्रमाण मिलते है। केलसस के मतानुसार अनाहार परमोत्तम औषधि है, जो अकेले ही, बिना किसी खतरे के रोग दूर कर देता है।

हमारे शरीर के भीतर प्रतिदिन जो क्रियाये होती रहती है उनमे शरीर के निरुपयोगी और हानिकारक द्रव्यो को बाहर निकाल देने की एक महत्वपूर्ण क्रिया प्रत्येक क्षण जारी रहती है। इस शरीर यन्त्र को व्यवस्थित रूप से चलाने की जिम्मेदारी मुख्यत. शुद्ध रक्त पर होती है। रक्त के लाल कण नये नये कोषो की रचना करते रहते है और श्वेतकण शरीर के हानिकारक या निरुपयोगी अ श को बाहर निकालने का काम करते रहते हैं शरीर मे अधिक परिणाम मे सचित हुये मल वा विष को बाहर निकाल देने की जोरदार कोशिश को ही बीमारी कहते है। सभी चिकित्सा पद्धतियो मे अब यह माना जाने लगा है कि रोगी होने पर शरीर स्वभावत स्वय निरोग होने का प्रयत्न करता है, दवा या अन्य किसी प्रकार का इलाज केवल उसकी सहायता करते है। रोगो से मुक्त होने के लिये शरीर सदा प्रयत्नशील रहता है। और यह काम शरीर के शुद्ध रक्त द्वारा होना है रोग मुक्ति के इस स्वर्ण सिद्धान्त को समझ के लेने के बाद फिर इस बात की शंका ही नही रह जाती कि रोगो का कारण शरीर स्थित मल को दूर करने के लिये उपवास सर्वोपरि और आवश्यक साधन है। कारण उपवास का अर्थ ही होता है शरीर की सब प्रकार की शुद्धि जिस मे रक्त विकार भी शामिल है।

उपवास विशेषज्ञो का अनुभव है रोगोपचार के मामले मे उपवास का स्थान ग्रहण करने योग्य कोई भी अन्य तरीका आज तक नही निकल सका है। श्री सैन्फोर्डबेनेट के मतानुसार रोगो की उपवास चिकित्सा बड़ी ही सुन्दर और आशुफलप्रद है।

उपवास काल मे शरीर मे जो ओषजन लिया जाता है वह नये लिये गये भोजन के अभाव मे पहले के बचे हुवे वा अनपचे भोजन तथा शरीर के विष या मल को धीरे धीरे भस्मकर डालता है, यही वजह है जो उपवास से रोग अपने आप आराम हो जाता है।

हमारा शरीर पांच तत्वो से मिलकर बना है जिनमें आकाश तत्व सबसे अधिक मूल्यवान है। शरीर को आकाश तत्व जन्य शक्ति उपवास द्वारा प्राप्त होती है। इस दृष्टि कोण से भी रोगो के निवारण के लिये उपवास सबसे अधिक महत्व रखता है।

ज्वर, सग्रहणी, पेचिश, दस्त, सर्दी, खासी, फोडे, चेचक आदि तीव्र रोग कहलाते है जो अपनी चिकित्सा आप होते है। इस प्रकार के रोगो मे आरम्भ से ही उपवास करना बडा लाभ करता है। बहुमूत्र, दमा, गठिया, अजीर्ण, कब्ज, मोटापा आदि जीर्ण रोग कहलाते हैं। इस प्रकार के रोगो की चिकित्सा नियमित आहार से आरम्भ करनी चाहिये, और उसके अन्त मे रोगी को लम्बा उपवास या छोटे-छोटे कई उपवास कराने चाहिये। जीर्ण रोगो मे रोगी की शारीरिक अवस्था ऐसी नही रहती जो आरम्भ मे उपवास के लिये उपयुक्त हो। एक प्रकार का और रोग होता है जिसे मारक कह सकते है जैसे क्षय रोग। ऐसे रोगो में रोगी की जीवन शक्ति इतनी कमजोर हो गयी होती है कि उसका पुन निर्माण असम्भव नही तो कठिन अवश्य होता है। इन रोगो मे जब तक मौत की अटल तिथि आ नहीं पहुचती चिकित्सा रोगी को केवल थोडा सा आराम पहुँचा सकती है तथा आने वाली मौत को थोड़ा कम

...दायक बना सकती है ऐसे रोगी को यों तो उपवास ...कराना चाहिये और अगर कराना ही हो तो एक दिन ...धिक न हो। इस प्रकार यदि शरीर का कोई अङ्ग ...कुल नष्ट हो गया है, तो वह भी उपवास से ठीक न ...।

अपवादस्वरूप उपर्युक्त कुछ रोगो को छोड़ कर अधि-...साधारण रोगो मे उपवास जादू का काम करता है। ...द ही ऐसा कोई रोग हो जिसमे लघु या दीर्घ उपवास ...विकर न होता हो। वल्कि किसी अवस्था मे तो ...वास का न कराया जाना मृत्यु का कारण होता है।

प्रसन्नता

यह गलत नही है कि हमारी प्रसन्नता और अप्र-...न्नता बहुत कुछ स्वय हम पर निर्भर करती है। जब ... ख्याल करते है कि 'हम प्रसन्न है।' तो हम जरूर ...न्न हैं और जब हम ख्याल करते है 'हम अप्रसन्न और ...न्न है।' तो उस वक्त हमे अप्रसन्न और खिन्न होना पड़ता है। यह सिद्धान्त की बात है कि एक व्यक्ति ...सा अपने विषय में सोचेगा वैसा ही वह हो जायेगा। ...येक व्यक्ति स्वय अपने विचार की उपज होता है। वह ...पने को जैसा भी बनाना चाहे वैसा जरूर बना सकता ...।

यह बात भी दृढ़ता से कही जा सकती है कि ससार ... विषाद का कारण, ससार की वस्तुओं मे आसक्ति ...व तत्सम्बन्धी हमारी कभी न पूरी होने वाली लाल-...साएं ही है। हम दैवी मुदिता चाहते है पर तलाश मे ...रहते है झूठे ससारी आनन्द को। बस यही पर स्वर्गीय ...सन्नता एव सासारिक आनन्द दोनो को एक ही वस्तु ...समझने मे हम भारी भूल करते है। हम मधु के अक्षय ...भण्डार की तलाश करते है एक क्षण भगुर साधारण पुष्प ...मे जो आज खिलता है और कल मुरझा जाता है। इस ...तरह से हम ठगे जाते है और परिणामस्वरूप चिन्ता ...और ... के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता।

[illegible]

उसी प्रकार जैसे एक जल विन्दु कमलपत्र पर रहकर प्रसन्नतापूर्वक मस्ती से इधर उधर हिलता डुलता रहता है और सदैव आनन्दित दिखता है। जीवन-सरिता का बहना कभी रुकने वाला नही है हमे उसके किनारे खड़े होकर केवल लखते रहना है उसमें उठती तरङ्गो को। कभी-कभी उसमे से थोडा सा जल लेकर अपनी प्यास बुझा सकते है, पर उसमे एक बारगी कूद कर जान दे देने वाले को कोई बुद्धिमान न कहेगा। शायद इसी वजह से लदन के महान विचारक लार्ड एडबरी को कहना पडा था कि जहा बुद्धि है, वही प्रसन्नता है।

वास्तव मे प्रसन्नता वह अपूर्व शक्ति है जो हतोत्साह होने पर हमे धैर्य प्रदान करती है, दरिद्रावस्था मे धन बन जाती है, तथा असहायावस्था मे सच्ची मैत्री और सहानुभूति दिखलाती है।

प्रसन्नता प्राप्ति के साधनः—

(१) खिलखिला कर हसना—अग्रेजी मे एक कहावत है—"एक सेव रोज खाओ और डाक्टर को पास न फटकने दो।" इसमे ईंगलैड के एक दूसरे प्रसिद्ध डाक्टर ने इस प्रकार संशोधन किया है—"एक बार रोज खिलखिलाकर हसो और बीमारी को पास न आने दो।" इस डाक्टर का कहना है कि बालको को फुर्तीला और नीरोग रखने के लिए उनका हंसते रहना अत्यन्त आवश्यक है। यदि बालको के शिक्षक जिनसे उनका साथ बहुत रहता है, क्रोधी या रूखे मिजाज वाले हुये तो वे बालक, दब्बू अस्वस्थ अवश्य होंगे।

हसने के विषय मे एक बात यह भी प्रसिद्ध है कि हसो और मोटे हो जाओ। अर्थात हसने से आदमी मोटा (हृष्टपुष्ट) हो जाता है। ऐसा भी देखा जाता है कि मोटे आदमी अधिकतर हसोड होते है। इस कथन मे अतिशयोक्ति भले ही हो पर यह सच है कि खिलखिलाकर हसने से ... हो जाती है। जो लोग हसोड़ होते है ... बहुत ... है। वे ... हैं और ... भी हैं।

[illegible]

हंसना एक प्रकार का सुखकर व्यायाम भी है। इस क्रिया के करने मे मुंह गर्दन छाती एवं उदर के बहुत से स्नायुओ को एक साथ भाग लेना पड़ता है जिससे वे सबल सुदृढ़ तथा क्रियाशील बनते है। मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओ तथा मुंह और उदर की मासपेशियों, नसो और नाड़ियो की हंसना सबसे अच्छी कसरत है। हंसोड़ व्यक्ति के गाल गोल, सुन्दर और चमकीले होते है और चेहरा गुलाब के फूल के सदृश खिला रहता है। जिन्हे हंसने की आदत होती है उन्हे फेफड़े वाले रोग कम होते है क्योकि हंसने से फेफड़ों में हर वक्त ताजी हवा भरती है जो स्वास्थ्य के लिये उत्तम है।

हंसना कितने ही रोगो की रामबाण औषधि है। क्षय जैसे भयङ्कर रोगो मे हंसना जादू का काम करता है। पुराने कब्ज के मरीज हसने से अच्छा होते देखे गये हैं। पेरिस मे एक डाक्टर अपने रोगियों को केवल हंसाकर उनके रोगो को आश्चर्यजनक ढग से दूर करता है। वह प्रत्येक रविवार को सवेरे एक हाल मे अपने रोगियों को उनकी आखो पर पट्टी बाध कर बैठाता है। फिर वह ग्रामोफोन पर एक ऐसा रिकार्ड रखकर बजाता है जो हास्य रस से परिपूर्ण होता है और जिसको सुनकर सारे के सारे रोगी एक साथ हंसना आरम्भ करते है। इस तरह सारा हाल कहकहो से गूंज उठता है। उपर्युक्त डाक्टर का कहना है कि इस प्रकार हंसने और दूसरो का हंसना सुनने से मरीजो का स्वास्थ्य बहुत जल्द सुधर जाता है।

कुछ दिन हुए जब किसी पत्र मे छपा था कि एक बार एक व्यक्ति ज्वर से पीड़ित हुआ। डाक्टर ने उसे पीने की दवा दी। बीमार का एक पालतू बन्दर था। मालिक को दवा पीते देख बन्दर को भी उसकी सूझी और उसने मौका पाकर थोड़ी सी दवा स्वय पीली। दवा कड़वी थी पीते ही बन्दर बुरा मुंह बनाने लगा और उस सम्बन्ध मे मालिक का दोष समझ कर उसे घुड़कने लगा। बन्दर की उस समय की विचित्र भाव भंगी देख कर रोगी को बड़ी हंसी आई। वह हंसते हसते लोट पोट हो गया और लगातार आधा घंटा तक हंसता ही रहा। डाक्टर ने दो घंटे बाद आकर जो देखा तो रोगी का ज्वर उतर चुका था और वह उसी क्षण से बिल्कुल अच्छा होगया।

दूसरी गोलमेजसभा के समय जब गाधी जी लदन गये तो वह गरीबो की बस्ती पूर्वी लंदन मे ठहरे थे। पड़ौसी के कुछ बच्चे गाधीजी के पास आये और लिये कोई संदेश मागा। गाधीजी ने सन्देश दिया ही तुम सब जोर से दो तीन मिनट तक रोज सप्ताह बाद मेरे पास फिर आना। बच्चो ने गान्धी जी का कहना अक्षरशः पालन किया। गली, कूचे, घर से बच्चा के खिलखिलाने की लगी। बिना बात ही वे खूब हंसते और देर मुहल्ले वालो तथा घरके लोगो को यह बड़ा अचम्भा हुआ। सारी बात का पता लगने जी के पास गये और पूछा—'यह आपने क्या सिखा दिया!' "गाधी जी ने उत्तर दिया-यह जाने दो। एक सप्ताह बाद जब बच्चे पुनः गाधीजी आये तब गाधीजी ने देखा तथा उनके कहने पर घर वालों ने भी देखा कि बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा है। उनके गालों की सुर्खी कुछ अधिक है की चमक बढ़ गई है। बच्चे अब घरो मे मचलते अतः बच्चो की माताओ ने गाधी जी को इस सबके खास तौर से धन्यवाद दिया।

प्रश्न हो सकता है कि अकारण कोई हर हंस सकता है? हंसने का भी मौका होता है है मौके पर ही हंसिये। पर हंसने का मौका हूंढ़ हंसिये। बहुत से लोग ऐसे मिलेगे जिनको हंसना ही नही। ऐसे लोगो को हंसने की कला सीख लेनी और प्रयोग करना चाहिये। जब अकेले बैठे हो तो हास्योत्पादक मनोरजक घटना का स्मरण करें और दर्पण के सामने बैठकर कहकहा लगावे। छोटे बच्चों से बाते करे। उनकी तोतली भाषा मे आप के प्रश्न विचित्र उत्तर मिलेगे उनमे हंसने का मसाला काफी मिलेगा। प्रत्येक व्यक्ति को हर रोज कम एक बार खिलखिला कर जरूर हंसना चाहिये।

(२) मुसकराना—मुसकराहट, हास्य की बहिन है। मुसकराता हुआ चेहरा सभी को प्रिय मुसकराने से स्वय को तो प्रसन्नता प्राप्त होती साथ ही साथ उस मुसकराहट को देखने वाला चित्त बिना प्रसन्न हुए नही रहता। बड़ी से बड़ी चीफ का सामना करना हो, हंसते-मुसकराते

...रने की कोशिश कीजिये, तकलीफ आधी रह ... बालचरों (Scouts) को हर मुश्किल मे मुस-...ने की शिक्षा इसी वजह से दी जाती है। रोगी ... हो उसके पास मुसकराते हुए जाइये और ... हुए ही उससे बातें कीजिये। आप उसका ... दर्द हर लेगे। जो व्यक्ति दु:ख और सुख—...भाव रूप से मुसकराता रहता है वह धन्य है। ... एक जगह लिखा है—'मृदुलस्वभाव, ओठो की ...कान और कुछ स्नेह भरे शब्द किसी को इतना ...सकते है जिसे लाखो रुपये पर भी खरीदा नही ...। इससे अपना कुछ खर्च नही लगता पर इससे ... जीवन मे आनन्द की ज्योति जगमगाने लगती ... सौदा दुर्लभ है।'

...) गुनगुनाना—प्रसन्नता का तीसरा साधन ... है। मुह की सीटी बजाना अथवा किसी गीत ... कड़ी को निम्न स्वर मे, धीमे-धीमे मौज से ... दोहराना गुनगुनाना कहलाता है। इससे हृदय ... शान्ति मिलती है।

४) गाना—गायन प्रसन्नता का माना हुआ साधन ... इसके यह मानी नही है कि प्रसन्नता प्राप्ति के ...ब लोग अपना कामधाम छोड़कर चोटी के ... बनने के लिये प्राणपण से जुट जायें। नहीं, ... जो भी अच्छा बुरा गाना आता हो उसी को ... खुले दिल से मस्त होकर गाने से प्रसन्नता ... उपलब्धि होती है।

मनोरंजन

...नोरंजन, हँसी-मजाक, तथा आमोद-प्रमोद—सब एक ... है। जीवन मे मनोरंजन का अभाव, मनुष्य की ... और मानसिक शक्तियो को कुंठित कर देता ... [illegible]

नही है। पर तन्दुरुस्ती कायम रखने के लिये वह एक बड़ी चीज जरूर है। मनोरंजन से आराम के अभाव की पूर्ति किसी भी तरह से सम्भव नही है।

मनोरंजन से मन और शरीर—दोनो का विकास होता है, और काम करने से जल्दी थकावट नही आती। ४० वर्ष से अधिक अवस्था वालो को चाहिए कि वे मनोरंजन के लिए कोई न कोई साधन अपने लिये जरूर चुन लें। इससे उनका शेष जीवन सुखमय बीतेगा। बहुत से बूढ़े व्यक्ति कीर्तन करना, पूजा के गायन गाना, भजनादि को अपने मनोरंजन का साधन बनाते है। कुछ लोग तैरने का शौक करते है, कुछ लोग शिकार का तथा कुछ लोग टिकट एकत्र करने आदि का। ये सब शौक उनकी तन्दुरुस्ती को लाभ पहुंचाते हैं और उनके मस्तिष्क को कुछ देर के लिए सांसारिक बखेड़ों से अलग रखते हैं।

वे स्त्रिया जो पुरुषो के साथ उनके मनोरंजन के तरीको मे भाग नही ले सकती, रामायण-महाभारत आदि पोथिया, लोकगीत सम्बन्धी किताबें, हल्के सामाजिक उपन्यास और कहानिया पढ़ सकती हैं। ढोलक पर मधुर गीत गाकर अपना तथा दूसरो का दिल खुश कर सकती है और रस की गंगा बहा सकती है तथा सावनमे झूला झूल कर और गाकर अपना दिल बहला सकती है।

देहातो मे बिरहा, कहरवा, आल्हा, विजयमल, राधे-श्याम का रामायण आदि आज भी देहातियो के मनोरंजन के सामान कहे जाते हैं जिनसे उनकी बूढ़ी-नर-नारियों मे आज भी स्वस्थ रक्त दौड़ने लगता है।

छुट्टी के दिनो मे मनोरंजन के लिये हम सामूहिक ढंग से बाहर जाकर उद्यान, जंगल या किसी अन्य रमणीक स्थान मे 'पिकनिक' कर सकते, किसी झील या सरिता में नौका-विहार कर सकते हैं तथा किसी प्राकृतिक स्थान की सैर कर सकते हैं, आदि। घरेलू मनोरंजन के साधनों में ताश, [illegible], [illegible], तथा कैरम आदि [illegible] [illegible]

[illegible]

या मन बहलाव के साधनों की सबसे अधिक जरूरत होती है। यदि ये साधन उन्हें प्राप्त न कराए जायेंगे तो सारे दिन वे केवल अपनी बीमारियो के सम्बन्ध मे ही सोच-सोच घुलते और घबडाते रहेगे, जिससे वे बजाय अच्छा होने के परिस्थिति को और भी गम्भीर बना देगे। अच्छा डाक्टर इस बात की हमेशा कोशिश करता है कि उसका बीमार अपनी बीमारी के सम्बन्ध मे कुछ सोच-विचार न किया करे। लेकिन यह तभी हो सकता है जब उसका मन किसी मन बहलाव के साधन द्वारा बहलता रहे। बीमारी की हालत में रोगियो के लिये सान्त्वना, आशा, दिल बहलाव तथा मनोरंजन आदि की सामग्री जुटाकर हम उनके रोगो की विभीषिका को बहुत कुछ कम कर देते है।

गाढ़ी नींद

निद्रा के गुणो के विषय मे आयुर्वेद कहता है—

निद्रा तु सेविता काले धातु साम्यमतन्द्रिताम।
पुष्टिवर्ण बलोत्साहं वह्निदीप्ति करोतिहि॥

अर्थात् दिन मे व्यर्थ शयन करके जो रात के दूसरे पहर से निद्रा आरम्भ कर रात के चौथे प्रहर मे चार बजे प्रात काल जाग जाते है उनके शरीर की सब धातुएं साम्यावस्था मे रहती है। उन्हे किसी प्रकार का आलस्य नही सताता। उनका शरीर पुष्ट होता है, सौन्दर्य निखरता है, उत्साह बढता है तथा उनकी जठराग्नि प्रदीप्त होकर भूख खूब खुलकर लगती है।

यदि हम केवल काम करते चले जावे और निद्रा न लेवें तो एक समय आवेगा जब हमारा शरीर और मस्तिष्क दोनो काम करने के अयोग्य हो जावेंगे और तब हम या तो पागल हो जावेगे या मर जावेगे।

हमारे घरों मे माताएं अपने सोते हुए बच्चों को जगाकर इसलिए दूध पिलाती है या खाना खिलाती हैं क्योंकि वे भूखे सो गये होते है। काश उन्हें पता होता कि उनके दूध और भोजन से निद्रा अधिक बलप्रद एवं आवश्यक है इसलिये अपने सोते हुए बच्चो को जगाकर वे उन पर बहुत बड़ा अत्याचार करती है।

कुछ नासमझ विद्यार्थी रात-रात भर अध्ययन करते रह जाने हैं और अपनी प्यारी नींद को भगाने के लिये ऐसे भयानक उपायो का सहारा लेते हैं कि जिनको ... कलेजा दहल जाता है। कोई नींद भगाने के लिए अपनी आखो में सरसो का तेल चुपड लेता है, लाल मिर्च डाल लेता है तो कोई चाय पान मे अतिशय करके नींद को दूर-दूर रखता है। ऐसी दशा मे यदि विद्यार्थियो के नेत्र निर्बल हो जाये, मस्तिष्क कुण्ठित जाय और उनका नैसर्गिक स्वास्थ्य चौपट हो जाय इसमे आश्चर्य की कौनसी बात है। इस सम्बन्ध मे एक पाश्चात्य वैज्ञानिक का निम्नलिखित मत कभी न भुलाना चाहिए। वह कहता है—

'They can do most who sleep best"

अर्थात् वे बहुत कुछ कर सकते हैं जो खूब अच्छी तरह सोना जानते है।

गाढ़ी नींद क्या है ?

गाढी नीद वह नीद है जिसमे एक जीवित प्राणी ... की भाति निश्चेष्ट होकर सम्पूर्ण रूप से विश्राम करता है। एक नवजात स्वस्थ शिशु की नीद गाढी नीद कहला सकती है। सपनो से भरी नीद को गाढी नीद कभी नहीं कह सकते। गाढ़ी नीद मे शरीर के अग-प्रत्यग को आराम मिलता है और व्यय हुई शक्ति पुन: प्राप्त होती है। उस वक्त सास की गति धीमी हो जाती है, नाड़ियां धीरे-धीरे चलने लगती हैं और मस्तिष्क मे रक्त की मात्रा कम हो जाती है। गाढ़ी नींद से सोने वाले की स्पर्श एव श्रवण शक्तियो का लोप हो जाता है। नींद खुलने पर ऐसे व्यक्ति की सर्व प्रथम श्रवण शक्ति लौटती है, तत्पश्चात् स्पर्श शक्ति। आखें सबसे पीछे खुलती हैं। जिसको अपने मन अथवा चित्त पर नियन्त्रण होता है वह कही भी, किसी भी अवस्था मे एकाग्रचित्त होकर गाढ़ी नीद ले सकता है। उदाहरणार्थ वृद्धावस्था में भी महात्मा गाधी जी जब चाहते थे आखे बन्द करके तथा अपने मन के घोड़ो को अति शीघ्र रोक कर गाढ़ी और मीठी नीद ले लेते थे। स्मरण रखना चाहिए तीन घन्टे की गाढ़ी नीद, आठ घन्टे की उथली वा सपनों वाली नीद से कही उत्कृष्ट है। नेपोलियन बोनापार्ट दिन-रात मे केवल तीन घन्टे सोया करता था और फिर भी आजन्म नीरोग रहा। इसका रहस्य यही है कि जब वह विस्तर पर जाता तो केवल सोने के लिये जाता और क्षण मात्र में ही उसे गाढ़ी नींद आ जाती।

गाढ़ी नींद लाने के कुछ उपाय

१— गाढी नीद लाने के लिये प्रतिदिन ठीक समय पर कोई सा भी व्यायाम करते रहना चाहिए ।

२—परिश्रमी मनुष्य को सदैव गाढी नीद आती है। पर आलसी और निठल्ले व्यक्ति बिस्तर पर पडे पड़े करवटें बदलते रहते हैं और उन्हे नीद नही आती ।

३—सोने जाने से पहले मस्तिष्क को विचारो और दुनियावी झंझटो से शून्य कर देना चाहिये । सदैव प्रसन्न रहने की आदत डालने से यह काम आसानी से हो सकता है ।

४—सूर्यास्त के पहले ही रात का भोजन कर लेना चाहिये ताकि नीद आने तक पाचन का कार्य निपट चुका रहे। ऐसा नियम रखने से गाढी नीद न आने की शिकायत कभी नही होती है । एकदम खाली पेट तथा ठूस ठूस कर भरे पेट—दोनो अवस्थाओ मे अच्छी नीद नही आती । सोने से पहले दूध पीकर सोना अच्छी आदत नही है ।

५—रात को गाढी नीद लाने के लिये पाखाना-पेशाब से निवृत्त होकर शीतल जल से गुप्त इन्द्रिय, हाथो-पैरो, तथा मुखमण्डल को धोकर तब बिस्तर पर जाना चाहिये ।

६—सोने का स्थान स्वच्छ, साफ और हवादार होना चाहिए । बिस्तर भी साफ-सुथरा होना चाहिये, पर उसका अधिक गुदगुदा होना ठीक नही । निर्जन स्थान और अंधेरे मे सोने से नीद अच्छी आती है ।

७—सोते समय मनुष्य जिस स्थिति मे सोता है नीद पर उसका भी प्रभाव बहुत पडता है । वैसे तो जिस करवट सोकर सुख मिले उसी करवट सोने से नीद अच्छी आती है, पर प्राय चित लेटने से गाढी नीद नही आती और [illegible] दिखाई देते है । बाई करवट [illegible] श्वास-नली सीधी रहती है और शरीर मे प्राण-वायु का सञ्चार बेरोकटोक होता रहता है जिसका एक वैज्ञानिक कारण है वह यह कि शरीर के बाई ओर की नाडियो को इडा तथा दाहिनी ओर की नाडियो को पिंगला कहते है । इडा मे चन्द्र और पिंगला मे सूर्य की कल्पना की जाती है । अत रात मे बाई करवट सोने से प्राण-वायु दाहिने नासापुट से स्वभावत भीतर प्रवेश करता है जिससे सूर्य की शक्ति मिलती है । इस प्रकार चन्द्रमा की ठडक के साथ सूर्य की उष्णता मिलने से मनुष्य की प्रकृति मे साम्य रहता है । यही कारण है कि बाई करवट सोने वाले व्यक्ति काफी लम्बी आयु वाले होते है । फिर भी जिन्हे हृदय सम्बन्धी कोई रोग हो उन्हे बाई करवट न सोकर दाहिनी करवट सोने मे ही लाभ है ।

कुछ डाक्टर पेट के बल सोना उत्तम बताते है । उनका कहना है कि पेट के बल सोने से पाचन-क्रिया मे सहायता मिलती है । परन्तु इस अवस्था मे मुह नीचे की ओर न होना चाहिये अन्यथा नेत्र-विकार के होने का भय रहता है । पेट के बल सोकर सिर को इस भांति तकिये पर रखना चाहिये जिससे मुखमण्डल या तो दायी ओर हो या बाई ओर । मनुष्येतर लगभग सभी प्राणी पेट के बल ही सोते है ।

दाहिनी करवट देर तक सोना मना है । कारण, इस स्थिति मे सोने से यकृत पर अनावश्यक दबाव पडता है जिससे उसके कार्य मे बाधा उपस्थित होती है । फलत मनुष्य को अग्निमान्द्य की शिकायत हो जाती है ।

८—चारपाई पर लेटकर किसी व्यक्ति द्वारा अपने सिर के बालो पर धीरे धीरे कंघी करने से नीद गहरी और जल्दी आती है । [illegible] के प्रसिद्ध [illegible] को [illegible] की [illegible] थी । [illegible] ने द्वारा

बच्चे जो अपनी मां की लोरी पर फौरन मीठी नीद लेने लगते है, उसका यही रहस्य है।

१०–सोने से पहले कमरे के बरामदे या आगन मे उस वक्त तक टहलते रहना चाहिये जब तक कि थकावट न मालूम होने लगे। उस वक्त मस्तिष्क में किसी प्रकार के विचार को स्थान नही देना चाहिये। थकावट का भान होते ही बिस्तर पर लेटकर सोजाना चाहिये। गहरी नीद शीघ्र आजायगी।

११–बिस्तर पर लेटकर और सरलतापूर्वक गहरी सास लेकर उसे धीरे-धीरे पुन. बाहर निकाल देना चाहिये। इस प्रकार कई बार करने से आदमी गहरी नीद मे शीघ्र सो जाता है। अथवा सोते समय 'सोऽहम्' मन्त्र का जप कुछ देर तक चालू रखना चाहिये। इससे १० मिनट के भीतर ही नीद आजाती है। सास को भीतर ले जाते समय 'सो' और सास बाहर निकालते समय 'हम्' का मानसिक उच्चारण करना चाहिये।

१२–वृद्ध व्यक्तियो को २४ घटो मे केवल एक बार भोजन करने से उन्हें अच्छी और गहरी नीद आती है।

१३–सोने के पूर्व यदि दोनो पावों को ५-१० मिनट तक सहने योग्य उष्ण जल मे डाल रखा जाय तो मस्तिष्क मे एकत्र अतिरिक्त रक्त पावो की तरफ उतर आवेगा। इस तरह मस्तिष्क ठडा होजावेगा और पाव गर्म जिससे सुख की नीद आना स्वाभाविक है।

१४–ठडे पानी से स्नान करने के बाद गरम कपड़ा पहने या लपेट कर सोने से भी अच्छी नीद आती है। मगर साधारण दशा मे नगे बदन सोना सर्वोत्तम है। यदि यह न हो सके तो सोते समय अत्यन्त अल्प और हल्के कपड़े पहने जाये। बहुत अधिक कपडो मे लिपटे रहने से नीद ठीक से नही आती।

१५–मस्तिष्क की ओर रक्त का प्रवाह अधिक रहने से अच्छी नीद नहीं आती। इसलिये सोते समय सिर के नीचे तकिया रखने की चलन है। सोते समय सदैव सिर को ऊचा और बाकी धड़ को नीचा रखना चाहिए -

१६–चारपाई के पायो के नीचे ३-३ वर्ग इञ्च रबर के टुकड़े रखें। ये टुकड़े पुराने टायर या ट्यूब मे से काट कर बनाये जा सकते है। ऐसा करने से नीद अच्छी

१७–विभिन्न धातुओ के तारो मे विभिन्न रग के काच के मनको को पिरोकर सोते समय पहनने से उनमे विद्युत प्रवाह उत्पन्न होकर नीद अच्छी आती है। तीन-चार लड़ियो की माला धारण करनी चाहिये।

१८–क्रोध, घृणा, प्रेम, चिन्ता, अधिक भोजन, अति परिश्रम, रोग, भय, चाय, जर्दा, काफी, मसाला, शोरगुल, तथा सोने के कमरे मे रोशनी—ये अच्छी नीद के दुश्मन है। इनसे बचना चाहिये।

१९–नीद लाने के लिए किसी दवा का प्रयोग भूल से भी नही करना चाहिये।

कितने घन्टे सोना चाहिए ?

साधारणत प्रत्येक मनुष्य के लिये ६ से ८ घन्टो की अटूट और गाढी नीद काफी है। किन्तु वास्तव मे जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी के लिये खुराक की मात्रा निर्धारित करना मुश्किल है उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए नीद का समय स्थिर करना भी आसान नही है। कारण, ऐसा देखा जाता है कि एक मनुष्य अपनी नीद कुछ ही घटो मे पूरी कर लेता है, जबकि दूसरे की कुम्भकरणी नीद जल्दी टूटती ही नही।

अमेरिका की एक सौन्दर्य की रानी का कहना है—"मै सूर्यास्त होने के समय से सूर्योदय तक सोने के सिद्धात को ही प्राकृतिक समझती हू। इस नियम का पालन करने से मेरे स्वास्थ्य एव सौन्दर्य मे आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है।"

एक नवजात शिशु, प्राकृतिक रूप से, प्रौढ व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक देर तक सोना पसद करता है। क्योंकि उसकी शरीर-वृद्धि के लिये उसकी जीवनी शक्ति को शात रूप से कार्य करने की अधिक आवश्यकता पडती है। साधारणतः एक छोटा बच्चा १५।१६ घंटों से कम नहीं सोना चाहेगा। पैदा होने के बाद से लेकर कई महीनो तक दूध पीने वाले बच्चों को १८ से २० और कभी-कभी २२ घटे तक सोने की नितान्त आवश्यकता होती है।

वृद्ध व्यक्तियो, रोगियो, प्रसूताओ तथा दुर्बल लोगों को अन्य लोगो की अपेक्षा अधिक निद्रा की आवश्यकता होती है। स्त्रियो को पुरुषो से अधिक सोना चाहिये। गर्भिणी स्त्रियो को भी अधिक सोना चाहिए।

वैज्ञानिको और डाक्टरो ने बडी छान-बीन के बाद

जो विविध आयु के लोगो के लिए सोने के घन्टे निर्धारित किये हैं, वे नीचे दिए जाते हैं—

आयु	कितने घटे सोना चाहिए
१ सप्ताह से ६ सप्ताह तक	२२
१ साल से २ साल तक	१८
२ साल से ३ साल तक	१५ से १७
३ साल से ४ साल तक	१४ से १६
४ साल से ६ साल तक	१३ से १५
६ साल से ९ साल तक	१० से १२
९ साल से १३ साल तक	९ से १०
१३ साल से १५ साल तक	८ से १०
१५ साल से ऊपर	७ से ८

आवश्यकता से अधिक सोना रोग को निमन्त्रण देना और आयु को घटाना है। इसी तरह बिना नीद पूरी हुये बिस्तर छोड देना भी रोगो का कारण होता है। अत्यधिक सोने से शरीर में गुरुता और मेदवृद्धि होने लगती है तथा आलस्य और सुस्ती आती है। सोने के लिए अधिक समय की आवश्यकता पर विशेष ध्यान न देकर हमे गहरी नीद पर ध्यान देना चाहिए। क्योकि चार घटे की गहरी नीद, आठ घटे की तन्द्रा से अधिक लाभदायक एव स्वास्थ्य वर्द्धक होती है।

सोने का स्थान और बिस्तर—

सोने के स्थान मे हमारी आयु का लगभग ⅓ भाग व्यतीत होता है, इसलिए उसका स्वच्छ, तथा हवादार होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि वह स्थान कोई कमरा हो तो उसको काफी बडा होना चाहिए, तथा उसमे शुद्ध वायु एव प्रकाश आने के लिए काफी खिडकिया और रोशनदान होने चाहिए। सोने का कमरा सामान से भरा नही होना चाहिए। सोते समय कमरे के दरवाजे और खिडकियो को खोल करके सोना आवश्यक है ऐसा करने से उस कमरे स्मृति मे उल्लेख है कि रात्रि को पूर्व तथा दक्षिण की तरफ मस्तक करके सोने से धन तथा आयुष्य की वृद्धि होती है पश्चिम की तरफ मस्तक करके सोने से चिन्ता सताती है, तथा उत्तर दिशा की तरफ सिर करके सोने से प्राणतत्व का क्षय होता है। इसलिए दक्षिण पैर और उत्तर सिर करके कभी नही सोना चाहिये।

कोमल शय्या, जैसे गद्दे–गद्दियो पर सोना, स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है विशेषकर बच्चो और बालको के लिए जिनका शरीर बाढ पर होता है, जिनकी नसो और मासपेशियो का सगठन होरहा होता है, जिनके सीने का फैलाव अभी पूरा नही हुआ रहता, तथा जिनका मेरु-दण्ड सुदृढ और पूर्ण विकसित नही हुआ रहता। समतल और कडे बिस्तर, जैसे चौकी, भूमि आदि पर सोने से मेरुदण्ड सीधा रहता है और पेट तथा छाती के यन्त्रो को समुचित रीति से कार्य करने का अवसर मिलता है साथ ही श्वास शुद्ध और गम्भीर चलती है।

वैज्ञानिको और प्रकृति उपासको के मत से पृथ्वी पर सीधे शयन करना सर्वोत्तम है। क्योकि पृथ्वी के सयोग, सस्पर्श तथा सम्पर्क से ही पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियो को जीवनी शक्ति की उपलब्धि होती है। पृथ्वी मे समस्त रोगो को नाश करने की अद्भुत शक्ति होने के कारण उस पर शयन करना और भी युक्तियुक्त है हमारे प्राचीन ऋषि मुनि पृथ्वी की इन अद्भुत शक्तियो से अपरिचित न थे। वे उनका पूरा-पूरा लाभ प्राप्त करते थे। तभी तो उन्हे ससार को चकित कर देने वाली शारीरिक एव आध्यात्मिक शक्तियो की प्राप्ति होती थी। प्रसिद्ध [illegible] [illegible] पृथ्वी पर ही शयन करते थे। वनवास के समय भी राम सीता, तथा लक्ष्मण जी ने १४ वर्षो तक लगातार पृथ्वी पर शयन कर ही [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की थी।

मोते समय तकिया अलग मे लगाना ठीक नही उस जगह की पृथ्वी कोही सिर की ओर थोडी ऊँची करके उस ऊ ची जगह से हो तकिये का काम लेना चाहिये ।

मोने का समय

प्रकृति तो हमे सूर्योदय से सूर्यास्त तक काम करने तथा सूर्यास्त से सूर्योदय तक सोने का ही आदेश देती है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से शाम को नौ बजे तक सो जाना और सवेरे ४ वजे जग जाना सर्वोत्तम है इस सम्बन्ध मे अग्रेजी मे एक कहावत है—"Early to bed and early to rise,makesa man healthy, wealthy and wise." जो बिलकुल ठीक है । गर्मियो मे दिन मे १५-२० मिनट झपकी लेलेना बुरा नही पर अधिक सोना अवश्य हानिकारक है क्योकि दिन में सोना शरीर मे शिथिलता उत्पन्न करता है पाचन-क्रिया को दूषित करता है तथा शरीर को रोगी बनाता है मध्यरात्रि अर्थात् रात के १२ वजे के पूर्व गाढी नीद लेलेना बहुत लाभदायक है । क्योकि विकारो को पैदा करने वाला, स्वप्न जजाल उत्पन्न करने वाला तथा चित्त मे क्षोभ लाने वाला विशेषकर मध्य रात्रि के बाद काही समय होता है । शास्त्रो मे जो ब्राह्ममुहूर्त मे जाग उठने का आदेश है उसका यही रहस्य है। सवेरे तडके उठने से आयु मे वृद्धि होती है दृष्टि तीव्र होती है बुद्धि बढती है तथा धन, यश और अक्षय स्वास्थ्य एव सौन्दर्य की प्राप्ति होती है ।

नींद और स्वप्न

उत्तम मध्यम स्वप्नो के फलाफल पर विचार न करके यहा पर हम केवल, स्वास्थ्य से स्वप्नो का क्या सम्बन्ध है, इसी पर थोडा प्रकाश डालने की कोशिश करेगे ।

यह अक्सर देखा जाता है कि अधिक स्वप्न उन्ही लोगो को दिखाई देते हैं जिन्हे गहरी नीद नही आती । इससे पता चलता है कि अधिक स्वप्न देखना रोग की निशानी है। इसी प्रकार बार-बार एक ही दृश्य को स्वप्न मे देखना भी शरीर मे किसी गुप्त रोग की उपस्थिति का सूचक है। डाक्टरो ने स्वप्न के विषय मे अन्वेषण करके पता लगाया है कि भिन्न भिन्न प्रकार के रोगो से पीडित व्यक्ति प्राय: निर्दिष्ट प्रकार के ही स्वप्न देखते है । उदाहरणार्थ, राज-यक्ष्मा के रोगी को हवा मे उड़ने का स्वप्न देखना स्वाभाविक है और हृदय के रोगी को स्वप्न मे अक्सर भीषण एव भयानक दृश्य दिखाई देते है। निश्चित रूप से कहना तो मुश्किल है कि मनुष्य के सभी स्वप्न रोग के सूचक होते है किन्तु लगभग एक प्रकार का दृश्य यदि बार बार दिखाई पडे तो यह उचित होगा कि ऐसे स्वप्न की उपेक्षा न करके अपने स्वास्थ्य की परीक्षा अवश्य करवा ली जाय।

हम किस प्रकार का भोजन करते है आदि बातो का भी प्रभाव हमारे स्वप्नो पर कम नही पडता। गोश्त, मछली खाने वाले व्यक्ति अक्सर रेगिस्तान आदि मे प्यास की तडपन का दृश्य स्वप्न मे देखते है । इसी प्रकार ठूस-ठूसकर भोजन करने वाले को अक्सर बुरे स्वप्न दिखाई देते हैं।

यह भी देखा गया है कि परिश्रमी व्यक्ति प्राय कम स्वप्न देखते हैं इससे यह स्पष्ट है । कि शारीरिक परिश्रम या व्यायाम स्वप्नो से मुक्ति होने का एक उत्तम उपाय है।

निद्रा, रोग निवारण का एक साधन

विश्राम या शिथिलीकरण की भांति ही निद्रा भी आकाश तत्व चिकित्सा के अन्तर्गत रोग निवारण का एक साधन है।रोगो मे प्राय. यह कोशिश की जाती है कि किसी प्रकार रोगी को नीद आजाय और जिस रोगी को अच्छी नीद आने लगती है उसके विषय मे यह समझा जाता है कि उसका रोग अब बहुत जल्द दूर हो जायगा।

डाक्टर मेनेन्दर का कथन है कि निद्रा मे अनेक आरोग्यदायक गुण है । अत उसे लगभग सभी रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा कहनी चाहिये ।

नीद से शरीर का मल निकलता है अनावश्यक गरमी दूर होती है तथा शरीर पुष्ट होता है। निद्रावस्था मे सास जाग्रत अवस्था की अपेक्षा अधिक लम्बी और तेज चलती है जिसकी वजह से फेफडो के जरिये मल और विष के निकास की क्रिया भी अधिक जोरदार होती है। रोगावस्था मे रोग का कारण विष (विजातीय द्रव्य) सोते समय बहुत कुछ निकल जाता है रोगी के शरीर मे जितना अधिक विष होगा उतनी ही अधिक नीद उसके लिये आवश्यक होगी । जहा शरीर के विषाक्त होने पर ८-१० घटे सोना आवश्यक होता है वहा साधारण स्थिति मे स्वस्थ व्यक्तियो के लिये ५-६ घटे ही सोना काफी

।
द्रा अगो की क्षति पूर्ति करती है वह नाडियो का
र करती है। निद्रा आहार मे अधिक महत्व की
क्योकि रोगी को आहार की बिलकुल जरूरत नही
र नींद की उसको केवल जरूरत ही नही होती
है उसके लिये दवा भी है।

विषाक्त शरीर वाले अधिक समय तक सोना नही टाल सकने पर जिनका शरीर स्वच्छ और स्वस्थ है वे कई दिन तक बिना सोये रह सकते है। इसतरह निद्रा विषाक्त शरीर वालों के लिये मलनिष्कासन का एक प्रभावशाली साधन है।

चौथा अध्याय

वायु तत्व-चिकित्सा

वायु तत्व

ायु तत्व, पञ्च तत्वो मे दूसरा आवश्यक तत्व है। वन है और वायु प्राणियों का प्राण ही है। एक भी हमको वायु न मिले तो हम घबडा उठते है। रीर मे बेचैनी फैल जाती है अधिक देर तक वायु तो प्राणान्त हो जाता है। अतः वह मनुष्य मात्र त्यन्त आवश्यक भोजन तत्व है। वास्तव मे हम त्रा मे वायु का अनवरत भक्षण करते रहते है। ामी एक मिनट मे १६ से १८ बार सास लेता क बार सास लेने में २५ से ३० घन इञ्च वा िन मे ३२ से ३० पौड तक वायु की आवश्यकता है। सास लेने की प्रत्येक क्रिया का सम्बन्ध शरीर ्कों से अधिक मासपेशियो से होता है। प्रतिदिन ना भोजन करते है और जल ... ास से वायु ... भक्षण करते है। हम सास द्वारा ... भीतर लेते है वह फेफड़ो मे ... ...

के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन दोनों के सिवा कार्बन डाई आक्साइड वायु भी दस हजार मे चार अंश तक वायु मण्डल मे मौजूद है। अत्यन्त अल्प मात्राओ में कही-कही रासायनिक क्रिया से उपजे अन्य प्रकार के वायव्य भी मिलते है। धूल-कण भी वायु मण्डल में व्याप्त रहते हैं।

जो वायु सास द्वारा शरीर के भीतर जाता है। उसमे 'नाइटरोजन' वायु शरीर के लिये बेकार होती है। वह जैसा जाता है वैसा ही लौट भी आता है। आक्सीजन वायु लौटकर नही आता। वह जाते ही फुफ्फुस मे रक्त से मिलता है। गन्दे, नीले रक्त को शोधकर स्वच्छ एव लाल कर देता है। नीले, गन्दे रक्त से कार्बन डाइ आक्साइड निकलता है जो नाइट्रोजन वायु और वाष्पादि के साथ भीतर से बाहर निर्गत होता रहता है।

वायु मण्डल की नाइट्रोजन हवा का शोषण, चर-प्राणी तो करता ही नही। ... पौधे और स्वयं पृथ्वी इसका शोषण अधिक परिमाण मे करती है।

सोते समय तकिया अलग से लगाना ठीक नही उस जगह की पृथ्वी कोही सिर की ओर थोडी ऊँची करके उस ऊ ची जगह से ही तकिये का काम लेना चाहिये ।

सोने का समय

प्रकृति तो हमे सूर्योदय से सूर्यास्त तक काम करने तथा सूर्यास्त से सूर्योदय तक सोने का ही आदेश देती है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से शाम को नौ बजे तक सो जाना और सवेरे ४ बजे जग जाना सर्वोत्तम है इस सम्बन्ध मे अग्रेजी मे एक कहावत है—"Early to bed and early to rise,makesa man healthy, wealthy and wise" जो बिलकुल ठीक है । गर्मियो मे दिन मे १५-२० मिनट झपकी लेलेना बुरा नही पर अधिक सोना अवश्य हानिकारक है क्योकि दिन में सोना शरीर मे शिथिलता उत्पन्न करता है पाचन-क्रिया को दूषित करता है तथा शरीर को रोगी बनाता है मध्यरात्रि अर्थात् रात के १२ बजे के पूर्व गाढी नीद लेलेना बहुत लाभदायक है । क्योकि विकारो को पैदा करने वाला, स्वप्न जजाल उत्पन्न करने वाला तथा चित्त मे क्षोभ लाने वाला विशेषकर मध्य रात्रि के बाद का ही समय होता है । शास्त्रो मे जो ब्राह्ममुहूर्त मे जाग उठने का आदेश है उसका यही रहस्य है। सबेरे तडके उठने से आयु मे वृद्धि होती है दृष्टि तीव्र होती है बुद्धि बढती है तथा धन, यश और अक्षय स्वास्थ्य एव सौन्दर्य की प्राप्ति होती है ।

नींद और स्वप्न

उत्तम मध्यम स्वप्नो के फलाफल पर विचार न करके यहा पर हम केवल, स्वास्थ्य से स्वप्नो का क्या सम्बन्ध है, इसी पर थोडा प्रकाश डालने की कोशिश करेगे ।

यह अक्सर देखा जाता है कि अधिक स्वप्न उन्ही लोगो को दिखाई देते हैं जिन्हे गहरी नीद नही आती । इससे पता चलता है कि अधिक स्वप्न देखना रोग की निशानी है । इसी प्रकार बार-बार एक ही दृश्य को स्वप्न मे देखना भी शरीर मे किसी गुप्त रोग की उपस्थिति का सूचक है । डाक्टरो ने स्वप्न के विषय मे अन्वेषण करके पता लगाया है कि भिन्न भिन्न प्रकार के रोगो से पीडित व्यक्ति प्राय· निर्दिष्ट प्रकार के ही स्वप्न देखते है । उदाहरणार्थ, राज-यक्ष्मा के रोगी को हवा मे उड़ने का स्वप्न देखना स्वाभाविक है और हृदय के रोगी को स्वप्न मे अक्सर भीषण एव भयानक दृश्य दिखाई देते है । निश्चित रूप से कहना तो मुश्किल है कि मनुष्य के सभी स्वप्न रोग के सूचक होते है किन्तु लगभग एक प्रकार का दृश्य यदि बार बार दिखाई पडे तो यह उचित होगा कि ऐसे स्वप्न की उपेक्षा न करके अपने स्वास्थ्य की परीक्षा अवश्य करवा ली जाय ।

हम किस प्रकार का भोजन करते है आदि बातो का भी प्रभाव हमारे स्वप्नो पर कम नही पडता । गोश्त, मछली खाने वाले व्यक्ति अक्सर रेगिस्तान आदि मे प्यास की तडपन का दृश्य स्वप्न मे देखते है । इसी प्रकार ठूस-ठूसकर भोजन करने वाले को अक्सर बुरे स्वप्न दिखाई देते हैं ।

यह भी देखा गया है कि परिश्रमी व्यक्ति प्राय कम स्वप्न देखते हैं इससे यह स्पष्ट है । कि शारीरिक परिश्रम या व्यायाम स्वप्नो से मुक्ति होने का एक उत्तम उपाय है।

निद्रा, रोग निवारण का एक साधन

विश्राम या शिथिलीकरण की भांति ही निद्रा भी आकाश तत्व चिकित्सा के अन्तर्गत रोग निवारण का एक साधन है ।रोगो मे प्राय. यह कोशिश की जाती है कि किसी प्रकार रोगी को नीद आजाय और जिस रोगी को अच्छी नीद आने लगती है उसके विषय मे यह समझा जाता है कि उसका रोग अब बहुत जल्द दूर हो जायगा ।

डाक्टर मेनेन्दर का कथन है कि निद्रा मे अनेक आरोग्यदायक गुण है । अत उसे लगभग सभी रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा कहनी चाहिये ।

नीद से शरीर का मल निकलता है अनावश्यक गरमी दूर होती है तथा शरीर पुष्ट होता है। निद्रावस्था मे सास जाग्रत अवस्था की अपेक्षा अधिक लम्बी और तेज चलती है जिसकी वजह से फेफडों के जरिये मल और विष के निकास की क्रिया भी अधिक जोरदार होती है। रोगावस्था मे रोग का कारण विष (विजातीय द्रव्य) सोते समय बहुत कुछ निकल जाता है रोगी के शरीर में जितना अधिक विष होगा उतनी ही अधिक नीद उसके लिये आवश्यक होगी । जहा शरीर के विषाक्त होने पर ८-१० घटे सोना आवश्यक होता है वहा साधारण स्थिति मे स्वस्थ व्यक्तियो के लिये ५-६ घटे ही सोना काफी

...।

...ा अंगों की क्षति पूर्ति करती है वह नाडियों का ...र करती है। निद्रा आहार से अधिक महत्व की ...क्योंकि रोगी को आहार की बिलकुल जरूरत नहीं ...र नींद को उनको केवल जरूरत ही नहीं होती ...ह उनके लिये दवा भी है।

विषाक्त शरीर वाले अधिक समय तक सोना नहीं टाल सकते पर जिनका शरीर स्वच्छ और स्वस्थ है वे कई दिन तक बिना सोये रह सकते है। इसतरह निद्रा विषाक्त शरीर वालो के लिये मलनिष्कासन का एक प्रभावशाली स.धन है।

चौथा अध्याय

वायु तत्व-चिकित्सा

वायु तत्व

...यु तत्व, पञ्च तत्वो मे दूसरा आवश्यक तत्व है। ...वन है और वायु प्राणियों का प्राण ही है। एक ...मी हमको वायु न मिले तो हम घबड़ा उठते है। ...रीर मे बेचैनी फैल जाती है अधिक देर तक वायु ...तो प्राणान्त हो जाता है। अतः यह मनुष्य मात्र ...त्यन्त आवश्यक भोजन तत्व है। वास्तव मे हम ...त्रा मे वायु का अनवरत भक्षण करते रहते है। ...दमी एक मिनट मे १६ से १८ बार सास लेता ...क बार सास लेने में २५ से ३० घन इञ्च वा ...न मे ३२ से ३७ पौंड तक वायु की आवश्यकता ...है। सास लेने की प्रत्येक क्रिया का सम्बन्ध शरीर ...कसो से अधिक मासपेशियो से होता है। प्रतिदिन ...तना भोजन करते है और जल पीते है उसस ...सातगुना वायु भक्षण करते है। हम सास द्वारा ...यु भीतर खीचते हैं वह फेफडो मे १५ वर्गफुट ...क का चक्कर लगाता है। फेफडो मे लगभग ६० ...च वायु सदैव मौजूद रहता है और २५ से ३३ ...च वायु नि श्वास के रूप मे बाहर निकल जाता है। ...विश्व का वायु मण्डल जिसमे हम सास लेकर जीवित ...हैं पृथ्वी के चारो ओर ३०० मील तक फैला हुआ ...ह वायु मण्डल कई प्रकार की वायु का मिश्रण ...इसमें जल के वाष्प का बहुत बडा अंश विद्यमान ...इसके सिवा इसमे चार भाग नाइट्रोजन और एक ...आक्सीजन है। ये दोनो वायव्य हमारे शरीर के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन दोनों के सिवा कार्बन डाई आक्साइड वायु भी दस हजार मे चार अंश तक वायु मण्डल में मौजूद है। अत्यन्त अल्प मात्राओं में कहीं-कही रासायनिक क्रिया से उपजे अन्य प्रकार के वायव्य भी मिलते है। धूल-कण भी वायु मण्डल मे व्याप्त रहते है।

जो वायु सास द्वारा शरीर के भीतर जाता है। उसमे 'नाइटरोजन' वायु शरीर के लिये बेकार होती है। वह जैसा जाता है वैसा ही लौट भी आता है। आक्सीजन वायु लौटकर नहीं आता। वह जाते ही फुफ्फुस म रक्त से मिलता है। गन्दे, नीले रक्त को शोधकर स्वच्छ एव लाल कर देता है। नीले, गन्दे रक्त से कार्बन डाइ आक्साइड निकलता है जो नाइट्रोजन वायु और वाष्पादि के साथ भीतर से बाहर निर्गत होता रहता है।

वायु मण्डल की नाइट्रोजन हवा का चोषण, चर-प्राणी तो करता हो नहीं। हा कुछ पौधे और स्वयं पृथ्वी इसका चोषण अधिक परिमाण में करती है।

वृक्षादि कार्बनडाई आक्साइड वायु का शोषण करके जीवित रहते है और उसके बदले में वे आक्सीजन छोड़ते है। इस इन्तजाम से कार्बन डाई आक्साइड वायु, वायु मण्डल मे बढकर उसे गन्दा नहीं करने पाता और दूसरी तरफ वायु मण्डल मे आक्सीजन की कमी भी नहीं होने पाती।

आक्सीजन बडा उग्रदाहक है। शुद्ध आक्सीजन मे तो लोहा आतशबाजी की तरह जलता है। इसका अन्य

वस्तुओं से रासायनिक सयोग इतना प्रचण्ड एवं भयङ्कर होता है कि जीवन सङ्कट मे पड जाता है। लोहे, तावे आदि का मुर्चा, मनुष्य की सास, वस्तुओ का सड़ना, आग का जलना, सभी में आक्सीजन की सयोजन क्रिया है। सेब काटने पर कटे हुए स्थान का रग वदल देना आक्सीजन का ही काम है। गाय के थन से दूध निकला नही कि उस पर आक्सीजन को क्रिया हुई। वह तो कहो कि वायु मण्डल मे आक्सीजन केवल पञ्चमास मात्र है नही तो ससार आज राख के सिवा कुछ न होता। जलने का अर्थ है किसी वस्तु का आक्सीजन से मेल। यदि वायु मण्डल मे आधोआध भी आक्सीजन होता तो तवे पर की रोटी मय तवे के कागज की तरह भक से जल जाती। यह आक्सीजन की दहन क्रिया ही का प्रताप है कि नीला, गन्दा रक्त क्षण मात्र मे शुद्ध होकर लाल हो जाता है। इस सम्बन्ध मे एक बात यह मार्के की है कि यदि आक्सीजन का सम्पर्क जल वा जल वाष्प से न हो तो उसकी दाहिका शक्ति खतम होजाती है। यही वजह है जो हमारे सास लेने से, सास मे उपस्थित आक्सीजन हमे जलाता नही, अपितु जीवन प्रदान करता है। कारण, सास के साथ विशुद्ध आक्सीजन हम नही अन्दर ले जाते बल्कि आक्सीजन के साथ, वारिवाष्प एव नाइट्रोजन भी मिली होती है जो आक्सीजन की प्रबल दाहक शक्ति को मातदिल किये रहती है।

आक्सीजन से प्रकाश और ताप—दोनो की उत्पत्ति होती है। प्राणियों के शरीर मे जो ताप होता है, वह आक्साजन का ही देन है। जीवन क्या है? शरीर के अवयवो का, वायु (आक्सीजन) के सयोग से धीमे-धीमे, मोमवत्ती की भाति जलना ही तो? रक्त के लालकण, आक्सीजन को वायु से ग्रहण करके, शरीर के प्रत्येक सूक्ष्म कण के पास जिसको कोष वा Cell कहते हैं, पहुँचाते है। इसी प्राकृतिक विधि का नाम oxidation है जो जलने का केवल रूपान्तर है। इस विधि से ताप उत्पन्न होता है, जिससे शरीर का ताप यथावत रहता है और जीवन नष्ट नही होता वल्कि कायम रहता है।

शुद्ध वायु मे एक प्रकार का और परमोपयोगी वायु मिला होता है, जिसको ओजोन (ozone) कहते हैं, जो केवल जगल, उपवन, पहाड़ और समुद्र के किनारे की हवा मे ही पाया जाता है। ओजोन की गंध बडी... है। इसी से वह पहचानी जाती है। क्षय... पहाड पर इसी ओजोनसे रक्षा होती है।

वायु की शुद्धि केवल अग्निहोत्र से होती है। हमारे पूर्वजो ने उसका विधान रखा था। वायु... हम ऊपर लिख आये हैं। इसीलिए प्राण को... भी कहते है। आयुर्वेद मे वायु का एक नाम 'वि... मृत' भी है।

वायु-चिकित्सा सम्बन्धी अनेक ऋचायें वेदो... हैं, जिनमे से केवल दो नीचे दी जाती है।

> वात आ वातु भेपजं शंभु मयोभुवोहृदे।
> प्रण आयूंषि तारिषत्

अर्थात् वायु हमारे हृदयो मे शान्ति पैदा... सुख देने वाला होकर हमारे पास वहता रहे। वह... आयुष्य को दीर्घ करे।

> यददो वात ते गहे मृतस्य निधिहितः ततोनो देहि...

अर्थात्, हे वायो! तेरे घर मे जो वह अपूर्व... खजाना है, उसमे से हमारे दीर्घ जीवन के लिये... भाग दे।

पवन—स्नान या वायु सेवन

पवन-स्नान और वायु-सेवन एक ही चीज के दो... है। इसी को अग्रेजी मे Air-Bath या morning... lk कहते है, और साधारण बोल चाल मे टहलना... हवा खाना। यह एक ऐसा स्नान है, जिससे... बाहरी और भीतरी दोनो सफाई साथ-साथ होती है। स्नान नगे बदन अधिक उपयोगी होता है।

यदि हम इस बात को भलीभाति समझ... जिस प्रकार हम नाक से प्रतिक्षण सास लिया करते... उसी प्रकार हमारी अपनी त्वचा के असख्य छिद्रो... सास लेना भी अनिवार्य है तो हम पवन-स्नान की... एव आवश्यकता से कभी भी इन्कार न करें। जिस... घर को शुद्ध और स्वच्छ रखने के लिये, घर की... किया और झरोखे खोल कर अन्तर ताजी हवा का... होने देना आवश्यक है, उसी प्रकार इस शरीर... त्वचा छिद्र रूपी झरोखो से होकर ताजी वायु... प्रवेश नित्य होते रहना परमावश्यक है। कपड़ो से...

वि लपेटे रहनेसे शरीर पीला पड़ जाता है, और
प अकर्मण्य होकर शिथिल पड जाते है, और बहुत
एक दम बद ही हो जाते हैं, जिसका फल यह होता
आये दिन कब्जियत, हृदय-रोग, तथा मधुमेहादि
क रोग सताया करते है ।

ब पवन स्नान करने वाला विशुद्ध वायु- मण्डल मे
न उचित रीति से अवगाहन करने लगता है तो
ससार के समस्त आनन्द को पीता हो, आकाश
वार्तालाप करता हो, फेफड़ो को ओपजन से जो
माता के स्तन का अमृत ही है भरता हो ऐसा
अनुभव करता है ।

ल के वारहो महीने पवन-स्नान सुखपूर्वक एव
पूर्वक लिया जा सकता है । सरदी के दिनो में
या पवन-स्नान करने मे जो आनन्द आता है
वर्णन नही हो सकता ।

सिद्ध विचारक श्री जूलियट सैनफोर्ड के शब्दो मे
न केवल जीवन की एक आवश्यकता है अपितु
कला है, आनन्द है, पौष्टिक तत्व है, खुशी है
वी का वरदान है, और है ससार की सर्वश्रेष्ठ
। ससार मे कसरत की अनगिनत पद्धतिया पायी
, जिनमे से कुछ केवल शरीर की मासपेशियो
शक्त करने वाली होती है, और कुछ फेफड़ो और
म्बन्धित अवयवो को । पर जितनी सरल और
क तरीके से टहलने से शरीर केएक दो नही बल्कि
सशक्त होजाते है, उसतरह किसी भी अन्य व्यायाम
नही होते । टहलने से वालक जवान, एव वूढा
से लाभ उठा सकता है, यह इस कसरत
ता है और दूसरी विशेषता यह है कि टहलने
त से किसी का भी जी नही ऊवता जब कि
रतो को लोग कुछ दिनो तक करने के वाद अक्सर
या करते है ।

वचपन मे चलना सीख कर जीवन पर्यन्त टह–
हते है । आजकल जो लोग शहरो मे रहकर और
रूप से अपाहिज वने मोटर-तांगो मे लदे
रहकर पैदल चलने को वुरा और फैशन के
समझते हैं उनकी वुद्धि को क्या कहा जाय ।
सच पूछा जाय तो इन गद्दे तकियो पर वैठने
वाले शहरी व्यक्तियों के लिये तो टहलने से बढ़कर
दूसरी कोई कसरत है ही नही और सबसे सुन्दर बात जो
टहलने-घूमने मे है वह यह है कि टहलना आराम भी है और
कसरत भी है टहलने से शरीर की कसरत हो जाती है
और साथ ही साथ मन को आराम भी मिलता है । एक
स्वस्थ व्यक्ति रात भर गहरी नीद सोने के बाद जब
प्रात. काल अमृतमयी वायु-सिन्धु मे हिलोरे लेने के लिये
अग्रसर होता है, तो उसका मन संसार की तमाम चिन्ता
परेशानियो से ऊपर उठकर जिस प्रकार आशा शान्ति
और उत्साहपूर्ण स्वर्गीय लोक में जा पहुंचता है, उसे
भुक्त भोगी ही भली भाति जानता है ।

जो लोग अन्य प्रकार की कोई कसरत नही कर
सकते, उनके लिये टहलने की कसरत बहुत जरूरी है ।
इससे सिर से पाव तक की २०० मासपेशियो की हल्की
हल्की स्वाभाविक कसरत हो जाती है । टहलते समय दिल
की गति एक मिनट मे ७२ बार से बढकर ८२ बार हो
जाती है । टहलते समय हमारी सास भी तेजी से चलने
लगती है और अधिक ओषजन खून में पहुच कर खून
को साफ करता है । पर कसरत की अन्य पद्धतियों से
दिल पर टहलने की अपेक्षा अधिक जोर पड़ता है । इसी-
लिये टहलना, कसरत की सर्वोत्तम पद्धति मानी गयी है।

टहलने या पवन-स्नान मे एक बात मार्के की
यह है कि यह स्नान केवल प्राकृतिक शुद्ध वायु मे करने
से ही लाभकारी सिद्ध होता है । विजली के पखो आदि के
कृत्रिम वायु मे यह स्नान कदापि न करना चाहिए ।
कारण पवन स्नान के लिये किसी भी प्रकार की कृत्रिम
हवा का इस्तेमाल करना अहितकर है । पखे की हवा
घूमती हुई और तीव्र होती है । ऐसा वायु, उदान वायु को
खराब कर देता है तथा व्यान को रोक देता है जिससे
सर मे चक्कर आने लगता है और शरीर के जोडो को
आक्रान्त करने वाले गठिया आदि रोग हो जाते हैं ।

कपडे के पंखे की हवा पसीना, मूर्च्छा और थकावट
को दूर करती है । ताड के पखे की हवा कफ-पित्त
और वात तीनो को कुपित करती है । वास के पखे की
हवा गरम होती है और रक्तपित्त को कुपित करती है ।
अम्वर, खस, मोर के पखों तथा वेंत के पखो की हवा
स्निग्ध तथा हृदय को आनन्द देने वाली होती है । अशुद्ध

स्थान के वायु का सेवन करने से पाचन-दोष, खासी, फुफ्फुस प्रदाह तथा दुर्बलता आदि दोष उत्पन्न हो जाते है।

भारतवर्ष मे शुद्ध वायु के अभाव में प्रति सहस्र २७ मौतें होती है। प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति अपनी नासिका की सिधाई से २१ इञ्च की दूरी तक की वायु ग्रहण करता और फेकता है। अत इस बात को खाते, पीते, सोते, उठते, बैठते तथा चलते समय सदैव ध्यान मे रखना चाहिए।

वायु पर दिशाओ का भी बहुत कुछ प्रभाव पडता है। पूर्व दिशा का वायु भारी, गरम, स्निग्ध, रक्त पित्त दूषक, दाहकारक तथा वात व्याधिकारक होता है। दक्षिण दिशा की वायु स्वादिष्ट, रक्तपित्तनाशक, हल्का, शीतवीर्य, बलकारक तथा नेत्र के लिये हितकारी होता है। पश्चिम दिशा का वायु तीक्ष्ण, शोषक बल नाशक, हल्का, चरबी, कफ तथा पित्त नाशक होता है। उत्तर दिशा का वायु शीतल, स्निग्ध दोषो को कुपित करने वाला, ग्लानिकारक मधुर तथा कोमल होता है। पर स्मरण रहे स्वर्गवेला अर्थात् सूर्योदय के कुछ पहले सभी दिशाओ का वायु सब प्रकार के दोषो से मुक्त होता है। इसीलिये स्वर्गवेला मे वायु सेवन हितकर होता है।

वायु की शुद्धि सूर्य की किरणो, जल, वृक्ष, ऋतु परिवर्तन तथा प्रभात के कारण होती है। धूल मिश्रित वायु से आर्द्र वायु अधिक शुद्ध होता है। क्योकि आर्द्र वायु मे तीन आवश्यक पदार्थ—आक्सीजन (Oxygen) नाइट्रोजन (Nitrogen) तथा कार्बोनिक एसिड गैस (Carbonic Acid Gas) मुख्यत अधिक मात्रा मे मिश्रित रहते है।

टहलने के लिये बस्ती से दूर कोई ऐसा साफ-सुथरा पथ चुनना चाहिए जो प्रकृति के साम्राज्य से होकर गुजरा हो। अर्थात् जिसके दोनो ओर पेड़-पौधे अथवा हरे भरे खेत लहलहाते हो, चिडिया चहचहाती हो तथा ब्राह्मवेला मे जलाशयो मे तरङ्ग-मालाये उमड-उमड कर उषादेवी के स्वागत मे विह्वल हो रही हो, ऐसे ही पथ पर टहल कर टहलने वाला नूतन उत्साह, एवं नूतन स्वास्थ्य लेकर घर वापस आता है।

कुछ लोग टहलते समय दो-एक साथी … करते है, जिनके साथ वे टहलते समय बाते … यह गलत है। टहलना तो बस अकेले ही अच्छा है। टहलते समय टहलने वाला हो और उसके चा… छाई हुई प्रकृति की छटा। तीसरी वस्तु की… आवश्यकता ? क्योकि स्वच्छन्द रूप से प्रकृति… को खूब छक कर पान करने का मौका मिल… सम्भव है जब मनुष्य अकेले रह कर अपने को… मिला दे, ऐसा कि उसमे और प्रकृति मे फिर को… भाव न रह जाय।

अब प्रश्न स्वत उपस्थित होता है कि रोज… टहलना चाहिए, जिसके लिए कोई खास नियम… करना तो मुश्किल ही है। हा, एक साधारण स्व… मनुष्य को रोज कम से कम ४-५ मील जरूर… चाहिये। अधिक स्वस्थ मनुष्य ८-९ मील तक आ… टहल सकते हैं। ५-६ मील तक प्रतिदिन टहलना… स्वास्थ्य वाले व्यक्तियो के लिए ठीक होता है। नौसिखिये पहले दिन ही दूर तक टहलने न … बल्कि उन्हे तेजी और दूरी दोनो धीरे-धीरे बढानी चा… टहलने की चाल १५ मिनट मे एक मील काफी है। जोर और रोगी व्यक्तियो को आरम्भ मे आधा… मील से अधिक कभी नही टहलना चाहिये। पर… जैसे जीवनी शक्ति बढती जाय और ताकत आती… यह दूरी धीरे-धीरे बढाते जाना चाहिए।

टहलते समय गहरी सास लेने का अभ्यास… जरूरी है। एक सास मे सात कदम चलना चाहिये, बाद चार कदम तक सास रोक रखना चाहिए। … सात कदम तक सास बाहर निकालना चाहिए। यो … समय गहरी सास लेने की विधि है। मगर आरम्… सास की इस कसरत के सम्बन्ध मे बडी सावधानी … चाहिए। गहरी सास लेने का यह अभ्यास थका देने… कभी नही होना चाहिये। उचित ढग से टहलते हुए जब… उपर्युक्त प्रकार से गहरी सास लेने की क्रिया का … करते है तो सासो के जरिये अपने शरीर मे उस सर्व… प्राण-शक्ति को ग्रहण करते हे जो शरीर के पुनर्निर्मा… विकास एव जीवन-धारण के लिये नितात आवश्यक है…

टहलने की क्रिया पर टहलने वाले की मान…

अवस्था का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए यदि टहलने का पूरा-पूरा लाभ उठाना हैं तो टहलते समय अपनी मानसिक अवस्था ठीक रखनी चाहिये। टहलना एक ड्यूटी न होकर आनन्द का एक साधन होना चाहिये। टहलते समय वास्तविक आनन्द का अनुभव होना चाहिए। उस वक्त सिवा आनन्द के मस्तिष्क मे और कुछ होना ही नही चाहिए। टहलने मे पूरा आनन्द आये इसके लिए निसर्ग के तरु-तृण, एव जलाशय आदि सम्पूर्ण प्रकृति मे बिखरा जीवन, आनन्द तथा सौन्दर्य का अवलोकन करना चाहिये उसवक्त टहलने वाले के मन मे ऐसे सुन्दर और उत्तम विचार उत्पन्न होंने चाहिए जिनसे शरीर के स्नायुओ को आराम और आनन्द प्राप्त हो और उनका शैथिलीकरण हो जाय। ऐसा होने से शरीर की रग-रग को नवजीवन प्राप्त होता है और रोग-व्याधियो से स्थायी रूप से मुक्ति मिल जाती हे।

नगे पैर और नगे बदन टहलने पर जो अधिक जोर दिया जाता है, उसका बहुत बड़ा वैज्ञानिक कारण है, जिस पर थोड़ा सा प्रकाश ऊपर डाला जा चुका है। जाडो मे जब ठडक बर्दाश्त के बाहर हो उसवक्त कमीज या कुर्त्ता और निकर पहन कर टहला जाय तो ठीक है पर अन्य समयो पर तो नगे पैर और नगे बदन ही टहलना अधिक लाभदायक होगा। क्योकि शुद्ध, शीतल, मद, सुगन्ध पवन का सीधा शरीर पर लगना ही स्फूर्ति दायक एव रोगनाशक होता है, जो कपड़ो से ढके बदन के लिये सम्भव नही है। पेड़ू पर जगल की ठडी हवा के थपेडे लगना कितने ही रोगो का अचूक इलाज है। यदि प्रात काल खुली जगह पर नगे बदन दौडा जाय या कोई हल्का व्यायाम भी नित्य किया जाय तो परम आरोग्य प्राप्त होता है। कहा भी है—

"आरोग्य चापि परम व्यायामादुपजायते।"

पाश्चात्य प्रसिद्व प्राकृतिक चिकित्सक ए० जुस्ट के प्रधान भारतीय शिष्य महात्मागाधी जब तक जीवित रहे प्रतिदिन नगे बदन ही वायु सेवन करते रहे।

टहलने का लाभ और भी अधिक उस वक्त होता है जब नगे पैर ओस से भीगी घास पर टहला जाय। यह सुविधा जाडे के दिनो मे विशेष रूप से होती है। ओस के अभाव मे वर्षा से भीगी घास पर भी चलकर लाभ उठाया जा सकता है। इससे सिर दर्द, गले की पीड़ा, पुरानी सर्दी, और पैर और सिर का ठडा रहना आदि रोग आसानी से दूर हो जाते है।

पवन-स्नान करने वाले का भोजनादि कैसा हो ?

पवन-स्नान करने वाला यदि सतुलित प्राकृतिक भोजन पर रहकर, नियमित जीवन व्यतीत करते हुए, उचित विश्राम और मनोरञ्जन के साथ पवन-स्नान की आदत डालता है तो सोना मे सुगन्ध ही समझिये। सतुलित प्राकृतिक भोजन से मतलब है, आसानी से पचने वाला पुष्टिकर भोजन। फल, दूध, दही, साग-सब्जी, समेत गेहूँ के आटे की मोटी रोटी, कन सहित हाथ छाटा चावल, छिलका सहित खाई जाने वाली गाढी दाले पौष्टिक खाद्य पदार्थ है। एक बार के भोजन मे अधिक प्रकार के खाद्य पदार्थ न होने चाहिये। इसी प्रकार दो भोजनो के बीच काफी अन्तर का भी होना जरूरी है। जो खाया जाय खूब चबाकर खाया जाय और ठूस-ठूस कर न खाया जाय। मिर्च-मसालो और तली-भुनी चीजो से परहेज अच्छा है।

लौटने पर यदि पसीना निकला हो तो सारे बदन को गीले कपडे से पौछ दे, इच्छा हो तो नहा भी सकते है। नहाने से देह की आवश्यक गरमी दूर होकर शीतलता आती है। पर कमजोर और रोगी यदि टहलने के बाद तुरत स्नान न करे तो अच्छा।

टहलने वाल को टहलने से उचित लाभ के लिए अपने आतो की सफाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रात काल शौच आदि निपटकरही टहलने निकलना चाहिये और लौटने पर यदि पुन- आवश्यकता जान पडे तो शौच जरूर जावे शौच के बाद यदि जरूरत जान पडे तो कभी-कभी एनिमा द्वारा भी पेट साफ कर लेना चाहिये।

पवन-स्नान से लाभ—

ऊपर कहा जा चुका है कि पवन-स्नान से शरीर की बाहरी और भीतरी सफाई साथ-साथ होती है। इस स्नान से शरीर की त्वचा स्वस्थ, लचीली एव कोमल हो जाती हे। यह शरीर की बाहरी सफाई हुई। पवन-स्नान से भीतरी सफाई किस प्रकार होती है, अब इसे देखिये।

एक मिनट मे एक व्यक्ति १६-१८ बार श्वास लेता है। अर्थात् दिनभर मे २६,००० बार। एक बार श्वास

लेने मे शरीर की १०० मासपेशिया भाग लेती है। एक श्वास मे २५-३० इञ्च वायु भीतर जाता है। दिनभर मे १६-२० सेर वायु हम भीतर खीचते है। यह वायु फेफडो के १५ वर्ग फीट स्थान मे चक्कर लगाता है। इस वायु से आक्सीजन (प्राण-वायु) का अश, फेफडो द्वारा खिचकर रक्त में चला जाता है और कार्बनडाई आक्साइड का अश बाहर निकल जाता है। इस तरह शरीर का रक्त अनवरत शुद्ध होता रहता है। फेफडो में सदैव १६० क्यूबिक इञ्च वायु भरा रहता है जिसको बाहरी विशुद्ध वायु से सदा बदलते रहना नितान्त आवश्यक है जो पवन-स्नान के बिना होना मुश्किल है।

इसके अतिरिक्त हमारे शरीर के भीतर जगह जगह पर स्थित पाच प्रकार के वायु—प्राण अपान, समान, व्यान, और उदान के नैसर्गिक कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न नही हो सकते जबतक कि वे विशुद्ध न हो, और वे विशुद्ध होते हैं केवल पवन-स्नान से। इस दृष्टिकोण से पवन-स्नान की महत्ता पर काफी प्रकाश पडता है। शरीर का कोई स्थान ऐसा नही है जहा वायु न हो और कोई ऐसा कर्म नही है जो बिना वायु की सहायता से सुसम्पन्न हो सके। पित्त, रक्त, कफ, मल, तथा धातु आदि सब लूने है। शरीर मे इन सबो की गति, एक वायु की गति पर ही निर्भर करती है। वायु उन्हे जहा ले जाता है, उनकी गति वही होती है।

जो वायु समूचे शरीर मे चक्कर लगाया करता है, उसका नाम व्यान-वायु है। शीतल, मन्द सुगध वायु रोम कूपो द्वारा शरीर के भीतर प्रवेश कर व्यान-वायु को शुद्ध करता है जिससे शरीर मे शुद्ध रक्त की वृद्धि होती है। मल-मूत्र को निकालने वाला अपान-वायु है। आने वाले स्वच्छ वायु की तरफ मुंह करके शौच के लिये बैठने से अपान-वायु शुद्ध होता है। यही कारण है जो हम भारतीय शौच-घरो मे जाने के बजाय मैदान मे जाना अधिक पसद करते है। शहर की गलियो मे रहने वाले एव नित्यप्रति शौच-घरो मे शौच करने वाले व्यक्तियो का अपान-वायु कुपित होकर यदि आये दिन अग्निमान्द्य, कोष्ठबद्धता, तथा प्रपच आदि का कारण बने तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? भोजन का पाचन एव शरीर मे गर्मी को साम्यावस्था मे का कार्य समान वायु द्वारा सम्पन्न होता है। पवन-स्नान से समान-वायु को इन कार्यों के लिए असाधारण शक्ति मिलती है। पवन स्नान के अभाव मे, समान-वायु विकृत होकर पेट के कितने ही रोग खडा कर देता है। शरीर मे जीवन—शक्ति को कायम रखने वाले वायु का नाम प्राण वायु है। खुले, उचे, एव पर्वतादि स्थानो का मुक्त वातावरण प्राण-वायु को बल देता है। यही कारण है जो असाध्य रोगो से पीडित एव मरणोन्मुख रोगियो को डाक्टर लोग पहाड़ो पर रह कर वहा के मुक्त और स्वच्छ वायु मे सास लेने की सलाह देते है। प्राण वायु को शुद्ध पवन-स्नान से बडी शक्ति प्राप्त होती है। हृदय और फेफडो की शक्ति जो जीवन का मूल है, पवन स्नान से ही प्राप्त की जा सकती है। यह स्नान जीवन-शक्ति को सुदृढ बनाता है और शारीरिक सहन-शक्ति को बहुत अधिक बढा देता है। इससे मनुष्य की शारीरिक और मानसिक—दोनो प्रकार के स्वास्थ्य की उन्नति होती है। यदि किसी का मन और शरीर—दोनो निर्बल पड जाए तो उसके मानसिक और शारीरिक सगठन को समस्थिति पर लाने के लिए शुद्ध वायु मे अवगाहन करने से बढकर कोई अन्य उपाय नही हो सकता। पवन स्नान से समस्त शरीर मे अच्छी तरह से रक्त सचार होने के कारण शरीर जीवन- शक्ति से भर उठता है और रक्त विशुद्ध हो जाता है जो स्वास्थ्य के उत्तम रहने का प्रधान कारण होता है।

पवन स्नान से दिमागी ताकत बडी शीघ्रता से बढती है। इससे मनुष्य की मानसिक दृष्टि निर्मल और तीव्र हो जाती है और वह कही अधिक-निश्चयात्मक और सन्तोष प्रद तरीके से गूढ से गूढ प्रश्नो का निर्णय करने मे सफलीभूत हो सकती है। महात्मा गाधी जो अन्त समय तक इस स्नान को अपनाये हुए थे उसका यही रहस्य है।

पवन-स्नान नियमित रूप से करके कितनी ही पुरानी बीमारिया जिनका इलाज बडे बड़े डाक्टर करते करते थक जाते है, बात की बात मे अच्छी की जा सकती हैं। यह कहना भी अतिशयोक्ति नही कि पवन-स्नान से आयु भी काफी बढ जाती है। कारण, आयु का बढना-घटना शरीर की जीवन-शक्ति के घटने-बढने पर निर्भर करता है और पवन-स्नान से जीवन-शक्ति अति बलवती हो जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप आयु की वृद्धि स्वाभा

विक ही है ।

उदान-वायु का कार्य शरीर को गिरने से रोकना, एवं मस्तिष्क के सम्पूर्ण छोटे बडे अवयवो को रक्त पहुंचाने मे सहायता प्रदान करना है । पवन-स्नान से विशेष कर ऊचे स्थानो के वायु मे सास लेने से उदान-वायु बल प्राप्त करता है, और मस्तिष्क की शक्तिया जाग्रत होती है ।

स्नायु दौर्बल्य, मानसिक रोग, अनिद्रा, स्वप्नदोष, सर्दी, खासी, साधारणयक्ष्मा, कब्ज, दुबलापन और कमजोरी आदि हजारो रोगो की टहलना रामवाण-औषधि है । डा० कार्नेलिया ई० फिलिप्स, डी० ओ० कहते है—"मैं यह वात अपने ३० वर्षो के तजुर्बे से कह रहा हू, जिस अवधि मे मैंने इन रोगो से पीडित न जाने कितने निराश, हताश और निरुपाय रोगियो को पूर्ण स्वास्थ्यलाभ कराया है । इसलिए मुझे दृढ विश्वास हो गया है कि खोये हुए स्वास्थ्य को फिर से पाने का यह कुदरती तरीका इतना प्रभावशाली है कि इसके बारे मे चाहे जितना भी कहा जाय उसमे अतिरजना नही होगी ।"

नियमित रूप से टहलने से स्वास्थ्य तो ठीक रहता ही है साथ ही साथ जीवन मे अधिकाधिक सजीवता का अनुभव भी होने लगता है । टहलना जवानी को बहुत काल तक स्थिर रखता है तथा कमजोर अणु-इन्द्रियो को शरीर से बाहर कर उनकी जगह सजीव अणुओ को जन्म देता है । यह बुढापे को हड्डियो और मासपेशियो से निकाल बाहर करता है आखो मे चमक लाता है, और शरीर की काति को निखारता है । ऐसी दशा मे आश्चर्य है कि लोग स्वास्थ्य-सुधार के लिये क्यो हजारो रुपये व्यर्थ दवादारू मे खर्च करते है और जब स्वास्थ्य नही सुधरता तो अफसोस करते है जबकि वे पैसे का अचूक नुस्खा 'टहलना उनके अपने पास होता है सच है — 'आब-आब करि मिया मरिगये, खटियातर है पानी ।'

प्राणायाम

प्राणायाम दो शब्दो से मिलकर बना है । प्राण,और 'आयाम' । प्राण का अर्थ मोटे तौर पर जीवन अथवा आयु लगाया जाता है,और आयाम का लम्बाई । अत जिस क्रिया द्वारा आयु की लम्बाई बढ़ाई जा सके, जीवन-काल मे वृद्धि की जा सके उस प्राणायाम कहेगे । प्राणायाम की योगिक परिभाषा या अर्थ प्राणो को वश मे करना है । अत प्राणायाम के विषय मे जानने से पहले, शरीर मे प्राण क्या वस्तु है, यह जानना बहुत जरूरी है ।

प्राण क्या है ? जो ज्योति या चेतन-शक्ति इस विशाल ब्रह्माण्ड मे ही क्यो अपितु सर्वत्र विद्यमान है, वही इस लघुपिण्ड शरीर मे भी विराजमान है । उसी को प्राण कहते है । इस प्राण के द्वारा ही मन और इन्द्रिया अपना अपना काम करती रहती है । यह प्राण का सूक्ष्म रूप है ।

वायु शरीर मे नाक के नथुनो से होकर प्रवेश करता रहता है । वह पाच प्राण-वायु (व्यान, समान, अपान, उदान और प्राण) और पाच उप-प्राणवायु (नाग, कूर्म, क्रिकल, देवदत्त, और धनजय) के रूप मे शरीर के मुख्य मुख्य अङ्गो मे कार्य करता रहता है, जिनके सामूहिक रूप को ही स्थूल प्राण कहते है । इस स्थूल प्राण की पुष्टि शुद्ध वायु से होती है । यदि प्राण को यथोचित रूप म विशुद्ध वायु मिलती रहे तो वह शरीर को नीरोग रखने मे समर्थ होता है अन्यथा नही ।

जीव, प्राण से भिन्न वस्तु है, जिसका निवास प्रधानत प्राण में होता है । प्राण से ही शरीर मे उष्णता, कम्पन, स्फूर्ति और चेतनता आदि प्रगट होती है, जीव से नही । साधारणत वायु को प्राण समझ बैठना भी गलत है । क्योकि यदि ऐसा हो तो मृतक शरीर के बाहर और भीतर वायु मौजूद होने पर भी उसे प्राणहीन क्यो कहा जाता ?

प्राणायाम का अर्थ एवं उद्देश्य

प्राणायाम का अर्थ है एकाग्रचित्त से श्वास का खीचना, रोकना और फिर छोड देना । यह योग के आठ अङ्गो मे से एक अङ्ग है । महर्षि पातजलि ने योग दर्शन मे प्राणायाम की परिभाषा यो लिखी है —

तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेद. प्राणायामः ।

अर्थात् आसनादि के अभ्यास हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति के विच्छेद का नाम प्राणायाम है ।

मनुष्य साधारण अवस्था मे जितनी वार श्वास लेता और छोडता है, प्राणायाम करते वक्त वह उतनी वार वैसा नही करता, अपितु प्राणायाम मे श्वास-प्रश्वास का विच्छेद या निरोध होता है । अर्थात् यदि कोई व्यक्ति साधारणत एक मिनट मे १८ वार सास लेता है तो प्राणायाम मे बहुत कम वार उसे सास लेना पडे।

प्राणायाम का सबसे बडा उद्देश्य है शरीर के प्रत्येक भाग अथवा अवयव मे प्राण को सचारित करके उसको विशुद्ध एव स्वस्थ बनाना। इस तरह हम देखते है कि प्राण, वायु और प्राणायाम इन तीनो का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है।

साधारण श्वास क्रिया

हम प्रतिपल १६ से १८ बार सास लेते है, अर्थात् दिन भर मे २६००० वार। सास लेने की प्रत्येक क्रिया का सम्बन्ध शरीर की एक सौ से अधिक मासपेशियो से होता है। एक बार सास लेने मे २५—३० घन इञ्च यानी एक दिन मे ३२ से ३४ पौण्ड (एक पौण्ड लगभग आध सेर का होता है) तक-अर्थात प्रतिदिन हम जितना भोजन करते और जल पीते है, उससे लगभग सात गुना वायु की जरूरत हमको पडती है।

हम साम के जरिये जो हवा भीतर खीचते हैं, वह फेफड़ो मे १५ वर्ग फीट से अधिक का चक्कर लगाती है अधिकतर खून की सफाई करने के काम में आती है। फेफडो मे लगभग ६० घन इञ्च हवा बराबर मौजूद रहती है, और २५ से ३२ घन इञ्च हवा नि श्वास के रूप मे वाहर निकल जाती है। सास खीचते ही कुछ क्षण तक वह भीतर रुकती है, और इसी प्रकार साम बाहर निकालने के बाद भी हम कुछ क्षण तक रुकते है। इस अवस्था का नाम 'कुम्भक' है। पहले कुम्भक का उद्देश्य फेफडे के वायु-कोषो और उनके चारो ओर फैली हुई रक्त-शिराओ के बीच बाहर से ली गयी स्वच्छ वायु का आदान-प्रदान करना है। जितना अधिक देर तक स्वच्छ वायु को भीतर रोका जायगा उतना ही अधिक श्वास-क्रिया से लाभ उठाया जा सकेगा। साम वाहर फेकने के बाद जो कुम्भक होता है, उसका उद्देश्य श्वास-क्रिया से सम्बन्धित शिराओ तथा मासपेशियो को आराम देना है।

श्वास को वाहर निकालने की क्रिया को 'रेचक' कहते हैं। आजकल अधिकाश मनुष्यो के फेफडे लचीले नही रहते और उनके विस्तार की परिधि भी बहुत कम होती है, इसलिये रेचक की क्रिया उनकी अधूरी ही रह जाती है। क्योकि हर बार साम लेने के समय कुछ न कुछ गदी वायु फेफडे के अन्दर रह जाती है, जिसे अधिक से अधिक मात्रा मे बाहर निकाल देना परमावश्यक है।

श्वास को भीतर खीचते हुये शरीर के वायु कोषों को स्वच्छ वायु मे भरने को 'पूरक' कहते हैं।

रेचक की क्रिया सफल होने पर ही हम पूरक तथा कुम्भक की क्रियाओ को पूर्ण करने के लिये तय्यार हो सकते है। क्योकि पूरक और कुम्भक के लिये फेफडो में स्वाभाविक लचीलापन और स्नायुओ तथा मासपेशियों में यथेष्ट शक्ति और स्वच्छता का आना केवल सफल रेचक पर ही निर्भर होता है।

इस प्रकार हम श्वास-क्रिया को चार भागो में विभाजित कर सकते है —

(१) सास को बाहर निकाल कर वायु कोषो को खाली करना (रेचक)

(२) स्नायुओ को आराम देने के लिये तथा पुन श्वास खीचने के लिये विराम (वाह्यकुम्भक)

(३) स्वच्छ वायु मे वायु कोषो को पुन भरना (पूरक)

(४) पुन विराम जिस बीच रक्त अपने विकार को निकालता और उसके स्थान पर जीवनदायक ओषजन ग्रहण करता है (आन्तरिक कुम्भक)

उपर्युक्त, श्वास लेने और निकालने की साधारण क्रिया है। प्राणायाम मे इसी क्रिया को उत्तम ढग से, पूर्ण रूपेण एव धीरे-धीरे करते है, जिससे आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त होता है।

यौगिक प्राणायाम की तय्यारी

निम्नलिखित सात प्रकार की तय्यारी कर लेने के बाद यदि यौगिक प्राणायाम का अभ्यास आरम्भ किया जाय तो सबसे अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है —

(१) यौगिक षट क्रियाए
(२) ब्रह्मचर्य व्रत
(३) आसन सिद्धि
(४) नियमितता
(५) चित्त की एकाग्रता
(६) भोजन की सात्विकता
(७) प्राणायाम के साथ मत्र सयुक्त ध्यान एव सध्या

(१) यौगिक षट् क्रियायें—हठयोग-प्रदीपिका के अनुसार धौति, वस्ति, नेति, नौलि, कपाल-भाति और

…, यौगिक षट्क्रियाये कहलाती हैं। इनके करने से …र के भीतर सचित मल दूर होते हैं, तथा उदर, …स, और नेत्र-विकारो के अतिरिक्त अन्य कितनी ही …रिया आश्चर्यजनक रूप से अच्छी हो जाती है।

… धौति तीन प्रकार की होती है—(१) वस्त्र-धौति, … जल-धौति, और (३) वायु-धौति।

(१) वस्त्र धौति—चार अगुल चौड़े और १५ हाथ … महीन और साफ बस्त्र की वस्त्र-धौति बनती है। …ा करते समय वस्त्र-धौति को गरम जल मे भिगोकर …ोड कर दातो के तले दबाकर चबाने का उपक्रम करते …उसे निगलने की कोशिश करनी चाहिए। प्रतिदिन …-धीरे एक एक हाथ कपडा निगलने का अभ्यास करते …कुछ दिनो मे वस्त्र धौति निगल लेनी चाहिए। पूरा … निगल लेने के बाद उसका अन्तिम भाग दातो के बीच …कर नौलि-क्रिया करनी चाहिए। बाद मे दातो के बीच … सिरा हाथ से पकड कर पूरी धौति शीघ्रता से बाहर … लेनी चाहिए। धौति को प्रतिदिन गरम जल से खूब … कर लेनी चाहिए। प्रातःकाल भोजन करने से पहले …क्रिया को करनी चाहिए। धौति के निकलने मे …ानी के लिए उसके सिरे पर थोडा सा शहद लगा … उत्तम होगा। बाहर निकालते समय धौति यदि …र फस जाय तो सावधानी के साथ थोडी धौति अन्दर …ल कर पुन उसे बाहर खीचना चाहिए। इस क्रिया …ाद यदि गले मे कुछ तकलीफ मालूम हो तो दुग्धपान … से वह दूर हो जायगी।

(२) जल धौति को वमन-धौति और गजकरणी भी … है। सेर-डेढ सेर गुनगुना पानी मे थोड़ा सा नमक …कर उसे नमकीन कर लेना चाहिए और तत्पश्चात् …का सब पीजाना चाहिए। वमन करने के लिए नीम की …सीक ले जिसके सिर पर दो पत्ते लगे हो और नोके … हुई हो। इस सीक से मुंह के भीतर कौवे के पास …ासपेशियो को उत्तेजित करे। ऐसा करने से वमन …गेगा। कोशिश यह होनी चाहिए कि पेट का अधिक …धिक पानी वमन द्वारा निकल जाय। वमन रोग, … की कमजोरी, तथा हृदय-दौर्बल्य आदि रोगो मे …क्रिया वर्जित है।

(३) वायु-धौति-क्रिया मे नाक के नथुनो को बद करके मुह से सास लेते हुए वायु को पेट में सचित किया जाता है। तत्पश्चात् उड्डियान और नौलि-क्रिया करके गुदा द्वारा उसे शरीर से निकाल दिया जाता है। इस क्रिया के करते समय वायु को जल की तरह धीरे धीरे कण्ठ से शब्द करते हुये पीना चाहिए। वमन, अतिसार, पेट की सूजन आदि रोगो मे यह क्रिया हानि करती है।

वस्ति दो प्रकार का होता है–(१) पवन-वस्ति (२) जल- वस्ति।

(१) पवन-वस्ति के करने मे नौलि कर्म की सहायता से अपान वायु ऊपर की ओर खीची जाती है। तत्पश्चात् वायु तथा मल को निकालने के लिये मयूरासन किया जाता है। मल वायु के दबाब से बाहर निकल पड़ता है।

(२) जल-वस्ति के लिये गुदा मार्ग मे एक बास की पतली एव पोली नली डाल कर साफ पानी से भरे टब मे वैठकर पानी को आंतो मे चढाना होता है और उसके बाद उसको नौलिकर्म द्वारा निकाल देना होता है, जिससे आते साफ होजाती है। यही क्रिया आजकल प्रचलित एनिमा द्वारा भी की जा सकती है और समान लाभ उठाया जा सकता है। तपेदिक, सग्रहणी, भगदर, आतो आदि के सूजन मे यह क्रिया नही करनी चाहिए।

नेति भी दो प्रकार की होती है–(१) जल-नेति (२) सूत-नेति। सूत-नेति करने वाले को पहले जल-नेति का अभ्यास जरूर कर लेना चाहिए। पाडु, कामला, पित्त-ज्वर, नाक के रोगो, नेत्र के रोगो मे यह क्रिया नही करनी चाहिये।

(१) जलनेति–प्रात. काल दातून-कुल्ला के समय एक गिलास गुनगुना पानी लेकर और उसको नाक से लगाकर पहले एक छिद्र से पानी ऊपर को खींचे और दूसरे छिद्र की सास वन्द करले। फिर दूसरे छिद्र से पानी खींचे और पहला वन्द करले। इस तरह करने से पानी कठ से होकर मुह मे आजायगा। पानी जोर से न खींचना चाहिए वरना सर मे दर्द होने लगेगा। एक समय मे एक सेर से अधिक पानी नाक के नथनो द्वारा खीचकर मुंह मे निकाला जा सकता है। इसे व्युत्क्रम जल-नेति कहते है। नाक के छिद्रो मे जमा श्लेष्मा इससे साफ हो जाती है जिससे प्राण-वायु शुद्ध रूप मे फेफडो मे …चने लगता है। इसके अलावा इस क्रिया से

श्लैष्मिक कला को बल प्राप्त होता है। वह तर रहती है जिससे दिमाग को तरावट मिलती है, नेत्रो की ज्योति बढ़ती है तथा जुकाम से बचाव होता है।

पहली क्रिया के विपरीत यदि मुंह से पानी लिया जाय और नाक के दोनो छिद्रो से फेक दिया जाय तो उसे "शीत क्रम जलनेति" कहेगे।

शीत क्रम जलनेति से नाक के छिद्र पूरी तौर से साफ हो जाते है, नेत्रो को अधिकाधिक लाभ होता है तथा कानों पर स्वास्थ्यप्रद प्रभाव पडता है।

एक टोटी वाला लोटा लेकर उसमे मामूली गुनगुना पानी भरिए। अब टोटी को एक नाक के छेद मे लगाइये और पानी गिराना शुरू कीजिए। दूसरी नाक के छेद को नीचे की ओर कीजिये। ऐसा करने से उससे होकर जल गिरने लगेगा। इसमे पानी मुंह मे पहुचने के पहले ही नाक के दूसरे छिद्र से फेक दिया जाता है। दोनो छिद्रो से बारी-बारी यह क्रिया की जाती है। जल नेति के इस ढङ्ग को 'सिद्ध जल-नेति' कहते है।
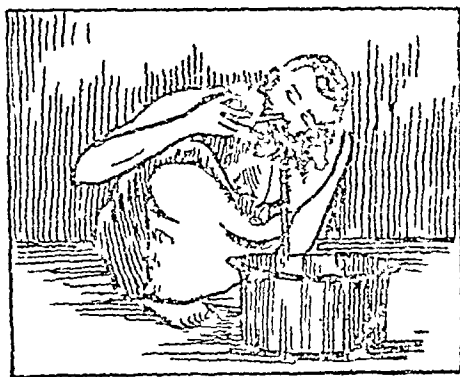
'सिद्ध जल-नेति' से नाक के छिद्रों का सङ्गम स्थल तो साफ होता ही है। साथ ही इसका उत्तम प्रभाव श्रवण शक्ति और दृष्टि-शक्ति पर असाधारण रूप से पड़ता है।

(२) सूत नेति

लगभग १५-१६ इन्च लम्बी होती है जिसका आधा भाग बटा हुआ होता है। बढा हुआ भाग पिघले हुये मोम से चिकना बना लिया जाता है। पहले इसे पानी मे भिगो ले और थोडा सा सिरे पर मोडकर जो स्वर चलता हो उस नथुने मे लगावें और दूसरा नथुना बन्द करले। तत्पश्चात् खूब जोर का पूरक करे। ऐसा करने से सूत का भाग कण्ठ के पास आ जायगा। तब उसे अगुलियो द्वारा बाहर खीच लेना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे नथुने

से भी करना चाहिए। यदि इस क्रिया के करने से... कुछ तकलीफ हो जाय तो गोघृत दिन मे दो तीन... सूघने से वह दूर हो जायगी। सूत नेति से कन्धे के... सारे रोग दूर हो जाते है और दिव्य दृष्टि की प्राप्ति... है।

नौलि

नौलि क्रिया करने के लिये पावो को एक या डेढ़... फासले पर रखते हुए खडे हो जायें और घुटनो को... आगे झुकाकर दोनो हाथो को दोनो पावो पर इस... रखे कि अंगुलिया भीतर की तरफ रहे तथा दृष्टि... पर। अब फेफडो से सब वायु नाक द्वारा निकाल दें... उड्डियान बन्ध करे अर्थात् पेट को अन्दर की ओर... जाये और अन्तडियो को भीतर पीछे की तरफ सटा... तत्पश्चात् दाये-बाय भाग को छोडकर मध्य भाग... ढीला करे। जिससे मासपेशिया नलाकार रूप में... बाहर उभड़ आवे। इसे मध्य-नौलि कहते हैं। इसी प्र... दाये भाग को सकुचित कर दक्षिण-नौलि तथा बायें... को ढीला करके बाम-नौलि करनी चाहिए। अभ्यास... जाने पर शीघ्रतापूर्वक पहले मध्य नौलि निकालें फि... दक्षिण-नौलि और तत्पश्चात् बाम-नौलि। यह क्रि... शौचादि से निवृत होकर भोजन से पूर्व करनी चाहि... अतिसार, पेचिस, आतो की सूजन आदि रोगो मे... वर्जित है।

कपालभाति करने के लिये पद्मासन या सिद्ध... पर बैठ जाये। आखे बन्द करले। पहले दाहिने न... से सास ले और बाये से निकाल दे। फिर बा... से सास ले और दाहिने से निकाल दे। लोहार... धौकनी की तरह शीघ्रतापूर्वक इस क्रिया को...

ये । परन्तु आरम्भ मे धीरे-धीरे ही करना चाहिए या लाभ के बदले हानि हो सकती है ।

त्राटक क्रिया - किसी वस्तु को एकाग्रचित्त होकर को कहते है । मन को एकाग्र करने के लिये इस को करने की जरूरत होती है । विधि इस प्रकार दीवार मे एक कील गाड कर उस पर दर्पण टांग दे । उसके बीचोबीच रुपये बराबर गोल एक कागज का टुकडा चिपका दें । अब दर्पण से २-३ फुट की दूरी पद्मासन लगाकर बैठ जाय । तत्पश्चात् बिना पलक ये उस गोल काले कागज की ओर टकटकी लगाकर देखें । श करे कि आपका चेहरा शीशे मे न दिखने पावे । पहले यह क्रिया केवल १-२ मिनट ही करनी चाहिए। बाद धीरे-धीरे समय बढाया जा सकता है । त्राटक करते- मे यदि आखो मे कुछ तकलीफ मालूम दे तो कुछ देर आराम करने के बाद क्रिया पुनः आरम्भ की जा ती है । अभ्यास के अन्त मे आखे बन्द करके उसी कागज का ध्यान कुछ देर तक करे । तत्पश्चात् खों को ठडे जल से धो डाले । काले कागज के टुकडे जगह कोई भी मूर्ति या वस्तु इस काम के लिये योग मे लाई जा सकती है ।

किसी प्रकार का नशा करने वालो को त्राटक नही ना चाहिए । विषम ज्वर, पित्ताशय-विकृति तथा मान- क रोगो से पीडितो को भी त्राटक वर्जित है ।

(२) ब्रह्मचर्य व्रत—प्राणायामी को निश्चय ही चर्य व्रत का पालन करना चाहिए अर्थात् वीर्य की ा करनी चाहिए और उसे पात होने से बचाना चाहिए—

(३) आसन सिद्धि—

प्राणायाम के उपर्युक्त चार ही पाच प्रमुख हैं, आसन नमे सिद्धासन और पद्मासन सर्वोत्तम हैं । इन दो आसनो रा कुण्डलिनी तक जाग्रत हो जाती है। प्राणायाम कर लेने उपरान्त शवासन करना न भूलना चाहिये । (आसनो विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिये आसन-प्रकरण खये ।)

(४) नियमितता—

प्राणायाम नियमपूर्वक प्रतिदिन ठीक समय पर रना चाहिये अन्यथा लाभ की आशा छोड देनी चाहिये ।

(५) चित्त की एकाग्रता—

प्राणायाम के साधक को मन को एकाग्र करना सीखना चाहिये । कारण, प्राण और मन का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है । मन के निरोध किये बिना प्राणायाम द्वारा प्राण का निरोध करना वैसे ही असम्भव है जैसे सूर्य के बिना प्रकाश । अनुभवी साधको का कहना है कि जो लोग मन के निरोध बिना ही प्राणायाम करने लग जाते है, वे योग की जगह रोग ही प्राप्त करते है ।

प्राणायाम करते समय जब हम त्रिकुटी पर ध्यान केन्द्रित करते है तो मानसिक शक्ति का सञ्चय होता है और चित्त एकाग्र होने लगता है । प्राणायाम करते समय यह सोचना चाहिये कि इस प्रकृति की अनत शक्ति को अपने भीतर ग्रहण कर रहे है जो हमारे मानसिक और शारीरिक विकारो को नष्ट करेगी । ऐसा सोचते रहने से विचार अनेक स्थानो से मुक्त होकर एकाग्र हो जायेंगे ।

(६) भोजन की सात्विकता—

प्राणायाम करने वाले का भोजन सादा और सात्विक होना नितान्त आवश्यक है । इसके बिना प्राणायाम से लाभ उठाया ही नही जा सकता, अपितु ऊपर से हानि की ही अधिक सम्भावना है ।

(७) प्राणायाम के साथ मंत्र संयुक्त ध्यान एव संध्या—

प्राणायाम करते समय गायत्री मन्त्र का जाप और सध्यावन्दन करने का अभिप्राय आगत प्राणशक्ति का जीवात्मा के साथ आत्मीकरण होता है, जो प्राणायाम की पूरी उपयोगिता के लिये अनिवार्य है ।

यौगिक प्राणायाम विधि--

(१) पद्मासन से बैठकर, वेग से प्राणवायु को फेफड़ो के बाहर निकाल दीजिये । कोशिश यह होनी चाहिये कि अधिक से अधिक वायु फेफडो से बाहर निकल जाय । इस क्रिया को 'रेचक' कहते है ।

(२) इसके बाद मूत्रेन्द्रिय को खीचकर वायु को पुन. भीतर जाने से रोके रहिये । जितने समय तक बिना घब- राहट के आप प्राणवायु को बाहर रोक सके रोक रखिये । इसे 'बाह्यकुम्भक' कहते हैं ।

(३) घबराहट मालूम होते ही प्राणवायु को धीरे- धीरे नासिका द्वारा फेफडो मे भरिये । इस समय यदि 'ओ३म' या गायत्री मन्त्र का जाप भी किया जाय तो उत्तम हो । इस क्रिया को 'पूरक' कहते है ।

(४) फेफड़ो मे पूरी तौर पर वायु भर जाने पर यथा शक्य उसे भीतर ही रोके रहिये। इसे 'अंतस्कुम्भक' कहते है।

(५) घबराहट होते ही श्वास को धीरे-धीरे छोड़िये ताकि फेफड़ो का अधिकाश वायु निकल जावे।

'पूरक' से 'रेचक' मे दूना समय लगाना चाहिये। इसके बाद क्रम से क्रिया न०२ और अन्य क्रियाये दोबारा करे और अभ्यास धीरे-धीरे बढाये। प्रात साय तथा दोपहर–तीन बार वैदिक सध्या के साथ यह प्राणायाम यदि किया जाय तो बडा लाभ होता है।

चेतावनी—

यह योगिक प्राणायाम सर्वसाधारण के लिये नहीं है, अत: इसे बिना किसी अनुभवी गुरु की देख-रेख के कदापि नही करना चाहिये।

सर्व साधारण के लिये प्राणायाम–

नीचे कुछ सीधी-साधी प्राणायाम–विधिया दी जाती है जो सबके लिये लाभदायक सिद्ध हो सकती है और जिनको नियमपूर्वक करने से हानि होने की सम्भावना बिलकुल नही है:—

पालती मारकर आसन पर सीधे बैठें। फिर धीरे–धीरे सास खीचते हुये दोनो कधो को आगे ले जायें। तत्पश्चात् सास छोड़ते हुये दूनी देर मे पहले स्थान पर हो जाये। फिर सास खीचते हुये पीछे ले जाये और उसके बाद सास छोडते हुये दूनी देर मे पहले स्थान पर लाये। फिर सास खीचते हुये कधो को उठाये और तत्पश्चात् सास छोडते हुये धीरे धीरे नीचे ले जायें। यह एक प्राणायाम हुआ। यथाशक्ति इसे कई बार भी किया जा सकता है।

(२) किसी साफ और हवादार स्थान पर चित लेट जाये। कमर के ऊपर का कपड़ा ढीला करदे। शरीर के प्रत्येक अवयव को शिथिल करदे। दोनो हाथो को दोनो तरफ लम्बा-लम्बा फैला दे। अब शात चित्त होकर नाक के दोनो नथुनो से भीतर की ओर श्वास खीचे और तब तक खीचते रहे जब तक कि छाती हवा से पूरी-पूरी भर न जाय। तत्पश्चात् नाक के नथनो द्वारा अन्दर की हवा धीरे-धीरे लगभग सब की सब बाहर निकाल दे। श्वास और निकालने की यह क्रिया ५ से १० मिनट तक करे। इस क्रिया का अभ्यास धीरे-धीरे बढाना चाहिये, जल्दी बाजी नही करनी चाहिये।

(३) प्रात. काल पूर्व दिशा की ओर मुह करके हो जाइए। दाहिने हाथ को दक्षिण, और बाए हाथ उत्तर की ओर फैला दीजिये। दोनो हाथ कधे से [illegible] तक सीधे रहे और हथेलिया फैली हो। अब धीरे श्वास को बाहर निकाल दीजिये और मुट्ठी [illegible] हुए कुहनियो के पास से हाथो को मोडकर श्वा[स] भीतर खीचिये। हाथो को धीरे धीरे खीचते चाहिये। हाथ मुडकर कधे के नीचे चले जायेंगे। [illegible] की मुट्ठी बधी होगी और उसका पृष्ठ भाग सामने पूर्व ओर होगा। इस अवस्था मे बाहुओ तथा छाती को रोक कर कडा करना तथा तानना चाहिये जिससे अपने आप रुक जायगा। शुरू मे श्वास रोकने का [illegible] ५-६ सेकिण्ड से अधिक न होना चाहिये। अब हाथों धीरे धीरे फैलाइये, साथ ही मुट्ठी को खोलते जाइये श्वास को भी धीरे-धीरे बाहर निकालते जाइए [illegible] पूर्व स्थिति मे आजाइए। इस प्राणायाम को १० बार तक किया जासकता है। मगर दो बार से आ[रम्भ] करके अभ्यास धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए।

प्राणायाम से लाभ—प्राणायाम द्वारा मनुष्य लगभग सभी शारीरिक तथा मानसिक व्यथाए नष्ट जाती है और साधक को सच्चा आनन्द प्राप्त होता है यदि कहना चाहे तो कह सकते है कि प्राणायाम से [illegible] रोगो का होना ही बद हो जाता है। प्राणायाम से [illegible] विशुद्ध हो जाता है। फलत साधक का शरीर तपाए [illegible] स्वर्ण जैसा कान्तियुक्त हो जाता है। उसका शरीर [illegible] सुडौल, मलविहीन, सुन्दर रोगहीन, तथा ओज एव तेज युक्त हो जाता है। उसे बुढापा और मृत्यु नही सता अपितु वह जीवन पर्यन्त शान्त और प्रसन्नवदन रह इच्छामृत्यु प्राप्त करता है।

प्राणायाम द्वारा रोगियो को सदैव लाभ पहुंचा जा सकता है। दमा और क्षय रोगो मे तो इससे [illegible] ही लाभ पहुँचता है।

अपानायाम

जिस प्रकार प्राणायाम द्वारा प्राण वायु को [illegible] करके उससे स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जाता है, [illegible]

प्रकार अपानायाम द्वारा अपान वायु को भी वश मे करके उससे स्वास्थ्योन्नति मे मदद ली जाती है ।

कण्ठ से लेकर हृदय तक प्राण वायु का नियन्त्रण रहता है, और नाभि से लेकर नीचे गुदा तक अपान वायु का। अपान वायु के कुपित होने से अनगिनित रोग सत्वर उठ खडे होते है और कभी कभी तो जान पर ही आ बनती है । उस वक्त जिस व्यक्ति को अपान वायु के शोधन की विधि मालूम होती है, वह उससे लाभ उठाता है ।

मल, मूत्र और गदी वायु के रूप मे शरीर के निरुपयोगी निस्सार भाग को अपान वायु ही शरीर के बाहर करके उसे स्वच्छ निर्मल, और नीरोग बनाता है । जब यही अपान वायु शरीर के भीतर अपनी ठीक गति नही करता तो शरीर के भीतर मल जमा हो जाता है जो विविध रोगो का कारण बनता है । कब्ज, शिरोवेदना, पेट की सारी गडबडिया, आदि विकृत अपान के ही कार्य होते हैं ।

शरीर की अपान वायु को शुद्ध करने को क्रिया का नाम अपानायाम है । ऐसी कुछ क्रियाये नीचे दी जाती हैं, जिनको विधिपूर्वक करके लाभ उठाया जा सकता है —

(१) प्रथम पेट को सामने की ओर जितना फुला सके फुलावे, फिर सिकोडे । नाभि को रीढ की हड्डी के साथ लगाने का प्रयत्न करे । इससे जहा अपान का अनुलोमन होता है उसके साथ वीर्य रक्षा भी होती है । अब दोनो हाथो को पेट पर रखे । अगूठा पीछे रहे और उगलिया सामने की ओर हो । अब पेट को पूर्ववत् फुलावे और बाए हाथ से दबाव डाले, दाई ओर । और दाये हाथ से दबाब डाले पीछे की ओर । अब पेट को पीछे से बाये दाए फुलावे । इसी प्रकार कई रोज तक अभ्यास करने से पेट स्वय बाए से दाई ओर होकर फिर पीछे होकर बाई ओर आयेगा । इसी प्रकार दाई ओर से चक्कर लगाने का अभ्यास करें । तत्पश्चात् पेट को ऊपर से नीचे गतिया देनी चाहिए और फिर नीचे से ऊपर को । इससे पेट की सफाई हो जाती है । और अपान वायु वश मे हो जाता है ।

(२) खडे होकर श्वास को बिलकुल बाहर फेक कर कोख के दोनो पार्श्वों को भीतर खीचने का पूर्ण यत्न करे । मध्य प्रदेश नाभि स्थल ऊपर रहे । इसका अभ्यास करने के लिए सामने कोई मेज हो या अन्य वस्तु जिसे खूब अच्छी तरह पकडा और उठाया जा सके । अब हाथो के बल सीधा ऊपर उठा जाय और वही क्रिया की जाय । नल स्वय बाहर निकलेगा । अब बिना मेज के दोनो हाथो को घुटनो पर रखकर श्वास बाहर फेक कर कुक्षि प्रदेश अन्दर खीचे जब नल निकलने लग जाय तब श्वास चाहे अन्दर हो या बाहर श्वास को बाहर रोक कर नल निकाला जा सकता है और उसे आगे पीछे खूब अच्छी तरह हिलाया जा सकता है । इस क्रिया से अपान वायु वश मे होता है व पेट की बहुत सी बीमारी दूर हो जाती है ।

(३) आपने बहुत बार कुत्ते या बिल्ली को अंगड़ाई लेते देखा होगा ठीक उसी प्रकार की स्थिति में होजाइए। हाथो को सीधा आगे पसारिये । जमीन पर ठोडी या गाल लगे और घुटने अलग करके रखे । कमर को जितना होसके झुकावे । अब अपान को बाहर करने का प्रयत्न करे । उसके बाद स्वय ही अपान अन्दर आने की कोशिश करेगा । इससे अफरा- सिर दर्द दूर होते हैं । अपानायाम मे सिर्फ पूरक व रेचक ही करना चाहिए कुम्भक नही । पेट को बिलकुल ढीला छोड देने से वायु बाहर हो जाता है ।

स्वर—साधन

वायु के बाह्य उपयोग के अतिरिक्त उसका आन्तरिक सूक्ष्म उपयोग भी है, जिसके विषय मे जान कर कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक तथा सासारिक सुख एव आरोग्य प्राप्त कर सकता है । प्राणायाम की तरह स्वर-विज्ञान भी वायु तत्त्व के सूक्ष्म उपयोग का विज्ञान है जिसके द्वारा हम अनेक व्याधियो से अपना बचाव कर सकते हैं, और रोगी होने पर स्वर-साधन की सहायता से उन व्याधियों का उन्मूलन भी कर सकते है ।

स्वर साधन या स्वरोदय-विज्ञान को योग का ही एक अङ्ग मानना चाहिए । यह मनुष्य को पग-पग पर प्रत्यक्ष फल देने वाला है । पर यह स्वर शास्त्र जितना दुर्लभ है, स्वरज्ञ गुरु का मिलना भी उतना ही दुर्लभ है ।

स्वर-साधन का आधार श्वास-प्रश्वास की गति—स्वरोदय-विज्ञान का आधार हमारे नथुनो से चलते हुए श्वास-प्रश्वास की गति पर ही है। हमारी प्रत्येक चेष्टायें तथा तज्जन्य लाभ-हानि, दुख-सुख आदि तमाम शारीरिक और मानसिक सुख तथा विपत्तिया आश्चर्यमयी श्वास-प्रश्वास की गति से ही प्रभावित है जिसकी सहायता से दुख दूर किये जा सकते हैं और मनोवाछित सुख की उपलब्धि हो सकती है।

जैसा कि प्राकृतिक नियम है, हमारे शरीर मे रात दिन अव्याहत गति से चलने वाला श्वास-प्रश्वास एक ही समय में नाक के दोनो नथुनो से साधारणत नही चला करता। अपितु वह बारी-बारी से एक निश्चित समय तक अलग-अलग दोनो नथुनो से चला करता है। एक नथुने का निश्चित समय पूरा हो जाने पर उससे श्वास-प्रश्वास का चलना बन्द हो जाता है और दूसरे नथुने से चलना आरम्भ हो जाता है। स्वर का आना जाना जब एक नथुने से बद होता है और दूसरे मे उदय होता है तो उसको 'स्वरोदय' कहते हैं।

प्रत्येक नथुने मे स्वरोदय होने के बाद वह साधारणतया ढाई घडी तक विद्यमान रहता है। उसके बाद दूसरे नथुने मे स्वरोदय होता है और वह भी ढाई घडी तक रहता है। यही क्रम रात-दिन चलता रहता है।

बाये नथुने से जब श्वास चलता है तब उसे इडा मे चलना या चन्द्रस्वर का चलना कहते है, और दाहिने वाले से चलने पर पिंगला मे चलना या सूर्य स्वर का चलना कहते है। और दोनो नथुनो से एक समय पर समान श्वास चलने पर उसे सुषुम्ना मे चलना कहते है।

वामस्वर—जिस समय बाया स्वर चलता हो उस समय स्थिर, सौम्य, एव शांति वाला कर्म करने से वह कार्य सिद्ध होता है। जैसे,मित्रता करना, भगवद्भजन, शृङ्गार करना, चिकित्सा-आरम्भ करना, विवाह, दान, यज्ञ मकानादि बनवाना, यात्रा आरम्भ करना, खरीद-फरोख्त, सेवा, बीज बोना, विद्यारम्भ आदि।

दक्षिण स्वर—जिस समय दाया स्वर चलता हो उस समय कठिन, क्रूर, और रुद्र कर्मो को करना चाहिये। इन कर्मो मे सूर्य-नाड़ी उत्तम सिद्धि दायिनी बताई गयी [illegible] न सवारी करना, समर मे जाना, व्यायाम, पहाड़ पर चढना, विषय-भोग, स्नान-भोजन, आदि।

सुषुम्ना—जिस समय दोनो नथुनो से समान स्वर चलता हो उस वक्त मुक्ति फल के देने वाले कार्यों को करने से शीघ्र सिद्धि मिलती है। जैसे भगवान का ध्यान और चिन्तन, तथा योगाभ्यास आदि। जो कार्य चन्द्र और सूर्य नाडी मे करने चाहिए उन्हे सुषुम्ना की उपस्थिति मे कदापि न करे, अन्यथा विपरीत फल होगा।

कौन स्वर चल रहा है, कैसे जाने ? कौन सा स्वर चल रहा है, इसका जानना बहुत आसान है। नाक के एक पुरवे को बद करके दूसरे से जरा जोर से दो-चार बार [illegible] लीजिये। फिर इसको बद करके उसी प्रकार दूसरे पुरवे से दो-चार बार सास लीजिए। जिस पुरवे से सास लेने और छोडने मे सरलता प्रतीत होती हो उसे खुला हुआ तथा जिससे रुकावट सी प्रतीत होती हो उसे बद समझना चाहिए।

इच्छानुसार श्वास की गति बदलना—इसकी निम्न लिखित तीन विधिया है—

(१) जिस नासिका छिद्र से श्वास चलता हो, उसके विपरीत दूसरे नासिकाछिद्र को अगूठे से दबा रखना चाहिये, और जिससे श्वास चलता हो उसके द्वारा वायु खीचना चाहिये। फिर उसको दबाकर दूसरे नासिका छिद्र से वायु को निकालना चाहिये। कुछ देर तक इसी प्रकार एक से सास लेकर दूसरे से निकालने से सास की गति अवश्य बदल जायगी।

(२) जिस नासिका छिद्र से श्वास चलता हो उसी करवट सोकर उपर्युक्त क्रिया करने से श्वास की गति अति शीघ्र बदल जाती है।

(३) जिस नासिका छिद्र से श्वास चलता हो [illegible] उस करवट कुछ समय तक लेटे रहने से भी श्वास की गति पलट जाती है।

यह तो हुई बाम को दक्षिण स्वर मे तथा दक्षिण को वाम स्वर मे बदलने की विधिया। अब प्राण वायु को सुषुम्ना मे सचारित करने की विधि नीचे लिखी जाती है।

किसी एक नथुने को बन्दकर के जरा जोर से दूसरे नथुने से श्वास लीजिये और फिर तुरन्त बन्द नथुने से [illegible] निकाल दीजिये। अब जिस नथुने से श्वास निकाला है उसीसे श्वास लेकर दूसरे नथुने से जिसे अगूठे से [illegible]

कर दिया था, श्वास निकालिये। इस प्रकार एक नथुने से श्वास लेकर और दूसरे से निकालने और फिर दूसरे से श्वास लेकर पहले से छोड़ने से लगभग ५० बार में प्राण-वायु का सञ्चार सुषुम्ना में अवश्य हो जायगा।

स्वर-साधन का पञ्चतत्वों से सम्बन्ध—स्वरोदय विज्ञान के जानकार यह जानते हैं कि स्वर के साथ-साथ हर समय पञ्चतत्वों में से कोई न कोई तत्व विद्यमान रहता है, और जब तक स्वर नाक के एक नथुने से चलता रहता है, तब तक पांचों तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी) क्रमश एक-एक बार उदय होकर अपनी अपनी अवधि तक विद्यमान रहने के बाद अस्त हो जाते हैं।

स्वर के साथ कौनसा तत्व विद्यमान है, कैसे जाने? पञ्चतत्वों का स्वरोदय के साथ कैसे उदय होता है और उन्हें कैसे जाना जा सकता है, इसके अनेक तरीके है। मगर वे तरीके इतने सूक्ष्म और कठिन है कि बिना अभ्यास के साधारण व्यक्ति उन्हें जान नहीं सकता। से —

नथुने से चलते हुये श्वास की ऊपर, नीचे, तिरछे बीच घूम-घूम कर बदलती हुई गति से तत्व विशेष की विद्यमानता का पता लगाया जाता है।

(२) प्रत्येक तत्व की अपनी एक विशेष आकृति होती है त निर्मल दर्पण पर श्वास के छोडने से जो विशेष आकृति बनती है, उस आकृति को देखकर उस वक्त जो तत्व विद्यमान होता है उसका पता लग जाता है।

(३) शरीर स्थित भिन्न भिन्न चक्रों द्वारा।

(४) प्रत्येक तत्व का अपना एक विशेष रंग होता है उसके द्वारा।

(५) प्रत्येक तत्व का अपना एक विशेष स्वाद होता है उसके द्वारा।

(६) तत्वों के उदय काल क्रम द्वारा जैसे जिस नथुने से श्वास का प्रवाह होता है उसमें साधारणतया पहले वायु, फिर अग्नि, फिर पृथ्वी, तत्पश्चात जल और अन्त में आकाश तत्व का क्रमश: ८, १२, २० १६, और ४ मिनट तक क्रम वार उदय होता है।

(७) तत्वों के परिमाण द्वारा भी किसी तत्व की स्वर के साथ विद्यमानता का पता लगाया जा सकता है। विधि इस प्रकार है —

बारीक हल्की रूई लेकर उसे जिस नथुने से सास चल रही हो उसके पास धीरे धीरे ले जाइये। जहा पर पहले पहल रूई हवा के वेग से हिलने लगे वहा ठहर जाइये और उस दूरी को नाप लीजिये। यदि वह दूरी १२ अंगुल है तो पृथ्वी तत्व, १६ अंगुल है तो जल तत्व, ४ अंगुल है तो अग्नि तत्व, ८ अंगुल है तो वायु तत्व तथा २० अंगुल है तो आकाश तत्व की उपस्थिति समझनी चाहिये।

स्वर-साधन के चमत्कार और उससे स्वास्थ्य-प्राप्ति—वास्तव में स्वर की महिमा अपूर्व और अपरम्पार है। इसके साधक चमत्कारों से भलीभांति परिचित होते हैं और वे इसका उपयोग अपने तथा दूसरों के ऊपर स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिए सफलतापूर्वक करते हैं। पाठकों के लाभार्थ नीचे कुछ प्रयोग दिये जाते है।

(१) सवेरे उठने के समय, बिस्तरे पर आंख खुलते ही जो स्वर चल रहा हो उस ओर के हाथ की हथेली का दर्शन करे और उसे चेहरे पर फेरते हुए ईश-स्मरण करे। तत्पश्चात् जिस ओर का स्वर प्रवाहित हो रहा हो उसी ओर का पैर पहले पहल बिस्तरे से नीचे जमीन पर रखे। ऐसा करने से वह दिन सुख और चैन से बीतेगा।

(२) कोई रोग हो जाय, लक्षण ज्ञात होते ही जो स्वर चलता हो उसको तुरन्त बन्द करदे, और जितनी देर अथवा जितने दिनों तक शरीर स्वस्थ न हो जाय उतनी देर अथवा उतने दिनों तक उस स्वर को बन्द ही रखना चाहिए। इससे शरीर शीघ्र स्वस्थ हो जायगा और दुख अधिक न भुगतना पडेगा।

(३) किसी प्रकार शारीरिक थकावट हो, दहिने करवट सो जाइये, जिससे चन्द्रस्वर चालू हो जायगा और थोडे ही समय में शरीर की सारी थकावट कपूर की तरह उड़ जायगी।

(४) स्नायु-विकार के कारण शरीर के किसी भाग में यदि किसी प्रकार की वेदना हो तो वेदना के आरम्भ होते ही जो स्वर चलता हो उसे बन्द कर देना चाहिए। दो-चार मिनट में ही वेदना बन्द हो जायगी।

(५) जब दमे का दौरा हो तो जो स्वर चलता हो उसे बन्द करके दूसरा स्वर चला देना चाहिए। मिनट में जोर कम हो जावेगा। प्रतिदिन इस प्र से महीने भर में पीडा शांत हो जायगी। दिन
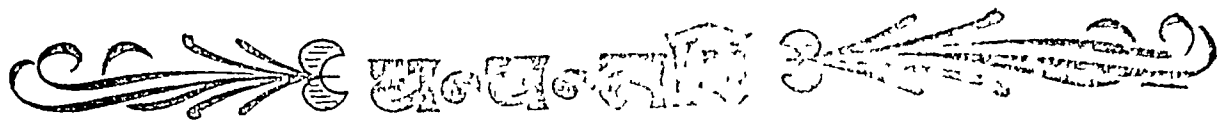
ही अधिक यह क्रिया की जायगी उतना ही शीघ्र यह रोग दूर होगा ।

(६) जिस व्यक्ति का दिन मे बाया स्वर और रात मे दाया स्वर चला करता है उसके शरीर मे कोई पीडा नही व्यापती । वह सदा आनन्द से विचरण करता रहता है। १०-१५ दिन इसी क्रम से स्वरो को चलाने का अभ्यास करने से स्वर अपने आप ही उपर्युक्त नियम से चलने लगता है ।

(७) भोजनादि उस समय करे जब दाया स्वर चलता हो । उसके बाद भी दस बारह मिनट तक दाया स्वर ही चलना चाहिए । इसीलिए खाने के बाद बाये करवट सोने का विधान है ताकि दाया स्वर चालू रहे । ऐसा करने से भोजन शीघ्र पचेगा और कब्ज कभी न होगा तो वह शीघ्र दूर हो जायगा ।

(८) रात्रि को गर्भाधान के समय स्त्री का बाया स्वर और पुरुष का यदि दाया स्वर चले तो निश्चय ही पुत्र होगा । तथा, स्त्री-पुरुष का उस उक्त सम स्वर चलते रहने से गर्भ रह ही नही सकता ।

(९) आग लगने पर जिस ओर उसकी गति हो उस दिशा मे खडा होकर जो स्वर चलता हो उससे वायु खीच कर नाक से जल पीना चाहिए । एक छोटी लुटिया मे चाहे जिससे जल मगाकर यह कार्य किया जा सकता है । ऐसे करने से या तो आग बुझ जायगी या उसका बढना रुक जायगा ।

मर्दन वा मालिश

जिस प्रकार प्राकृतिक खाद्य-पदार्थ हमारे सत स्वास्थ्य का योग-क्षेम भी करते हैं और अस्वस्थ दशाओ की औषधि भी है, उसी प्रकार मर्दन वा मालिश हमारे स्वास्थ्य सौन्दर्य की वृद्धि भी करता है और अनेक रोगों का सफल उपचार भी है । मालिश हमारी अनेक प्राकृतिक आवश्यकताओ मे से एक आवश्यकता है, जिसके अभाव मे हमारा स्वास्थ्य, सच्चे मानो मे उत्तम नही रह सकता । प्रकृति हमे, प्रत्येक अङ्ग की, किसी न किसी रूप मे मालिश करने की प्रवृत्ति देती रहती है । जब हमे कभी सर मे या शरीर के किसी भाग मे कडी चोट लग जाती है तो सर्व प्रथम ... य ही एक अनियन्त्रित शक्ति द्वारा सचालित होकर उस स्थान पर पहुच जाता है और उस चोट की प्रारम्भिक चिकित्सा (First Aid) शुरू कर देता है, जिसका अर्थ होता है मर्दन-क्रिया का प्रतिपादन, और जिसके फलस्वरूप तकलीफ बहुत कुछ कम भी हो जाती है। यह प्रकृति का मर्दन-क्रिया की उपयोगिता एव श्रेष्ठता तथा उसके रोगोपचार सम्बन्धी गुणो की तरफ मूक सकेत है । इसी प्रकार एक फ्रेंच-डाक्टर के कथनानुसार हमारा कभी-कभी जम्हाई लेना, इस बात का सूचक है कि हमारे गले की नसो और मासपेशियो को मालिश की जरूरत है और जिसकी पूर्ति प्रकृति हमे जम्हाई की प्रवृत्ति दिलाकर करती है । इसके अतिरिक्त मर्दन-क्रिया 'मसाज' वा अङ्ग स्पर्श नाम से रति-शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ अङ्ग माना गया है, जिसके बिना रति-क्रिया 'रति-क्रिया' रह ही नही जाती।

मालिश की प्राचीनता—

वैसे तो मालिश का प्रयोग, किसी न किसी रूप मे आदि काल से चला आता है, किन्तु उसके चिकित्सा सम्बन्धी गुणो का ज्ञान होने का समय भी अनिश्चित ही है । युनान व रोम के प्राचीन इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि किसी समय मे वहां की स्त्रियां मालिश द्वारा अपने शरीर को सुन्दर बनाती थी । आज भी उन देशो की औरते उस बात को भूली नही है और मालिश को स्वास्थ्य एव सौन्दर्य वृद्धि का प्रधान साधन समझती है । आज भी टर्की, इटली, ईरान, तथा अरब आदि देशो मे मालिश के लिए 'हम्माम की प्रथा प्रचलित है जहां शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की मालिश की जाती है । पुराने जमाने मे अफ्रीका देश के हबशियो मे यह चलन था कि विवाह से एक मास पूर्व वर-वधू की मालिश प्रति दिन की जाती थी । उनका विश्वास था कि इस क्रिया से शरीर मे सौन्दर्य और यौवन फूट पडता है, जो सर्वथा सत्य है । हमारे भारतवर्ष मे भी यह रिवाज पाया जाता है जिसका मन्तव्य भी वही है और जिसको 'हल्दी' की रस्म कहते है ।

मेडागास्कर (अफ्रीका) की जगली जातिया, आज से १००० वर्ष पूर्व रोगियो के शरीर मे रक्त-वृद्धि के लिए मालिश का प्रयोग किया करती थी ।

कहा जाता है कि कैप्टन कुक ने सर्व प्रथम पाश्चात्य

:को मालिश के अलौकिक गुणो का ज्ञान कराया था
श्चात् लगभग सन् १८६० ई० मे डाक्टर स्काट ने
ा क्रिया पर पेरिस नगर मे एक ओजस्वी भाषण
, चिकित्सको का ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया
: जर्मनी का एक विख्यात वैज्ञानिक सी० जी० डोर एक
ा पर लिखता है कि शरीर की त्वचा, एक आवरण
ाकृतिक चद्दर के सदृश है जिसकी स्वच्छता एव सुन्द-
के लिये मालिश धोबी के समान है, जिसका प्रयोग
ान्त आवश्यक है।

मालिश के गुण व कार्य

मालिश, वास्तव मे मासपेशियो की कसरत है।
पेशियो के लिये मालिश उतना ही आवश्यक है
ना रक्त को सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाडियो मे प्रवाहित
के लिए उसमे जल का यथेष्ठ मिश्रण। मालिश का
व्य होता है मासपेशियो मे गति उत्पन्न करना। हमारे
र का भाग, अनगिनित मासपेशियो से मिलकर बना
मासपेशियो के फूलने पर उनमे गति का अनुभव
ा है, और उनके नर्म एव कोमल पड़ जाने से, उसमे
प्रकार की सख्ती और शिथिलता आ जाती है। मास-
ाया हरकत चाहती हैं जिनसे उनको जीवनी-शक्ति
त होती है। मालिश से उन्हे स्वतन्त्र एव प्रबाधगति,
ा अपना कार्य सुचारु रूप से पालन करने के लिए
ाता और शक्ति प्राप्त होती है। मानव-शरीर मे, मास-
ायो और रक्त-प्रवाह का चोली व दामन का साथ है।
रे शब्दो मे, रक्त-धारा का रक्तवाहिनी नाडियो मे
ना रुकावट के प्रवाहित होते रहना शारीरिक मास-
शयो की स्वस्थावस्था पर ही निर्भर करता है। ये ही
महत् कार्य—मासपेशियो की गति शीलता, तथा नाड़ियो
उन्मुक्त रक्त प्रवाह—हमारे सत् स्वास्थ्य एव सुखमय-
वन की आधार शिलायें हैं। क्योकि पहली दशा में
ोर का अङ्ग-प्रत्यंग लचीला होकर शक्तिशाली वन
ाता है, और दूसरो मे, शरीर के अन्दर स्वाभाविक रूप
रक्त प्रवाह होने रहने से, शरीर की पाचन-क्रिया को
ायता मिलती है और जो खाया जाता है वह शरीर मे
गता है। इस तरह से शरीर का सारा कार्य स्वाभाविक
ा से और ठीक-ठीक होने लगता है।

मालिश से रक्त-प्रवाह मे रगड़ एव गर्मी पैदा होकर
तीव्रता उत्पन्न हो जाती है, जो रोगो की निवृत्ति मे सहा-
यक होती है। या यो कहिये कि मर्दन क्रिया से रक्त मे
मिले विषाक्त द्रव्य छटकर अलग हो जाते हैं और बहि-
ष्करणकारी मार्गो (पसीना, पेशाबादि के रास्तो) से होकर
शरीर के बाहर निकल जाते है, जिससे रक्त शुद्ध होकर
शरीर, नवजीवन, स्फूर्ति, तथा ओज से परिपूर्ण
हो जाता है। थकावट दूर करने के लिये मालिश से बढ
कर शायद ही कोई अन्य उत्तम प्रयोग स्वास्थ्य-मर्मज्ञो को
अब तक ज्ञात हुआ हो। महात्मा गाधी इसी कारण स्वास्थ्य
के सम्बन्ध मे नित्य ही अनूठे प्रयोग करते रहते थे, मालिश
की उपयोगिता मे विश्वास करते थे और मालिश को
अपनी दैनन्दिनी का एक आवश्यक अ ग बनाये हुए थे।

मालिस का प्रभाव मासपेशियो, स्नायुओ, रक्त की
नालियो तथा त्वचा पर समान रूप से पड़ता है, जिसकी
वजह से रक्त के सचार मे अतिशीघ्र नवीन शक्ति व स्फूर्ति
उत्पन्न हो जाती है। मालिश से मासपेशिया कम थकावट
के साथ कार्य करने योग्य हो जाती हैं, जोड़ लचीले और
सौत्रिक बन्धन ढीले हो जाते हैं। रक्त का एक स्थान पर
जमाव व चिपकाव दूर हो जाता है और रुकावट डालने
वाला दूषित द्रव्य रक्त सचालन युक्त हो कर वह जाता
है। इसके अतिरिक्त शरीर के स्नायु-जाल पर मालिश का
ऐसा आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है कि जिससे विविध
प्रकार की पीडाये बिल्कुल गायब हो जाती है।

मालिश से रोगो की चिकित्सा

मालिश से लगभग सभी रोगो का इलाज, आजकल
यूरोप व अमेरिका मे धड़ल्ले के साथ हो रहा है। वहा,
इस विषय के विशेषज्ञ मालिश के अनेक अस्पताल खोल
रखे हैं जिनमे हजारो की सख्या मे रोगियो का इलाज
केवल मालिश के विभिन्न वैज्ञानिक ढगो का प्रयोग करके
सफलतापूर्वक किया जाता है। उक्त देशो के कतिपय
शहरो मे ऐसी सस्थायें कायम की गयी हैं जहा मालिश-
कला का व्यवहारिक-ज्ञान कराया जाता है एवं उसकी
शिक्षा दी जाती है।

हमारे यहाँ भी आयुर्वेद मे मालिश पर काफी प्रकाश
डाला गया है। आयुर्वेद मे एक जगह आया है कि विष
खाये हुओ के शरीर से विष निकालने के लिये म[illegible]
अचूक चिकित्सा है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न [illegible]

मालिश का प्रयोग भिन्न-भिन्न तरीको से, शरीर के विभिन्न अंगो पर किया जाता है, जिसका प्रभाव रक्त, रगो, एव मासपेशियो पर आश्चर्यजनक रूप से पडकर रोगो से छुटकरा दिला देता है।

गठिया रोग—इस रोग मे मालिश से बहुत लाभ होता है। मालिश करते समय शुद्ध सरसो का या तिल का तेल प्रयोग मे लाना चाहिये, तथा धूप मे बैठकर मालिश करनी चाहिए। मालिश मे उतनी ही ताकत लगानी चाहिये जितनी कि रोगी आसानी से सह सके। मालिश करते समय रीढ़ और जोड़ो पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इन जगहो पर दोनो ओर से हल्की हल्की मालिश करते हुये हड्डी और जोड़ की तरफ हाथ ले जाना चाहिए। मालिश काफी देर तक होनी चाहिए जिससे रक्त मे यथेष्ठ गर्मी और उसकी गति मे तीव्रता उत्पन्न हो जाय। मालिश प्रतिदिन नियमित रूप से और कुछ दिनो तक करनी चाहिए। इस बीच प्राकृतिक-चिकित्सा सम्बन्धी अन्य आवश्यक नियमो को कडाई के साथ पालन करना नितात आवश्यक है।

गर्भाशय का स्थान-च्युत हो जाना—इस रोग मे बाज-बाज अनुभवी दाइया, मालिश का प्रयोग करके कमाल करती है। मालिश के उन विभिन्न तरीको को, जिनका प्रयोग वे दाइया इस रोग मे करती है, लिपिबद्ध करना जरा टेढी खीर है।

नाभि टलना या नाल उखड़ना—यह रोग प्राय शक्ति से अधिक काम करने पर वा कोई भारी वस्तु उठा लेने से हो जाता है। इस रोग मे कभी-कभी दस्त भी आने लगते है। इसकी चिकित्सा भी साधारण पेट की मालिश से गुणी व्यक्ति चुटकिया बजाते कर लेते है।

हड्डियो के जोड़ो का उखड़ना—पेड़ पर से गिरने पर या अन्य किसी प्रकार से जब हड्डियो के जोड़ उखड जाते हैं तो वड़े वड़े डाक्टरो की भी अक्ल हैरान हो जाती है। ऐसे अवसरो पर हड्डी बैठाने वाले गुणियो की ही खोज होती है जो हसते हसते केवल हल्की मालिश द्वारा उन्हे वात की वात मे ऐसा बैठा देते है जैसे हड्डियो के जोड कभी उखड़े ही न हो।

इसके अतिरिक्त, उचित मालिश द्वारा आत उतरने रोग, सिर का दर्द, मोच और किसी अंग की पीडा वडी सरलता से दूर की जासकती है। मासपेशियोमे रुधिर पहुचाने का जो गुण व शक्ति मालिश मे है उसके कारण बच्चो की लकवे की बीमारी मे भी यह लाभ करती है। मालिश से सिकुडे हुये घाव फैलाये सकते है, अकडे हुए जोडो मे गति उत्पन्न की जा सकती है, तथा उन जोडो मे जिनकी मासपेशियो को लकवा मार गया है, या दुर्वलता ने घेर रखा है, फिर से चेष्टाओ को जाग्रत किया जा सकता है।

ऊपर, मालिश द्वारा कुछ रोगो की चिकित्सा, ... रूप से दी गयी है। इसी प्रकार अन्य कितने ही रोगो की चिकित्सा, इस विषय के जानकार लोग, मालिश से बड़ी सफलतापूर्वक करते हैं। जिनको सब का सब इस स्थल पर लिपिबद्ध करना सम्भव नही है। मालिश करने कराने मे एक बात का ध्यान रखना चाहिए, ... कि रोग दूर करने के लिए जब किसी अंग की मालिश करानी हो तो किसी चतुर मालिश करने वाले ... इस विषय के किसी विशेषज्ञ से ही मालिश करानी चाहिए, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि होनी सम्भव है।

मालिश के प्रकार एवं लाभ

प्रथम इसके कि मालिश की विविध विधियो पर प्रकाश डाला जाय, यह उचित है कि उसके कुछ ... नियम जान लिये जाये।

दाबना
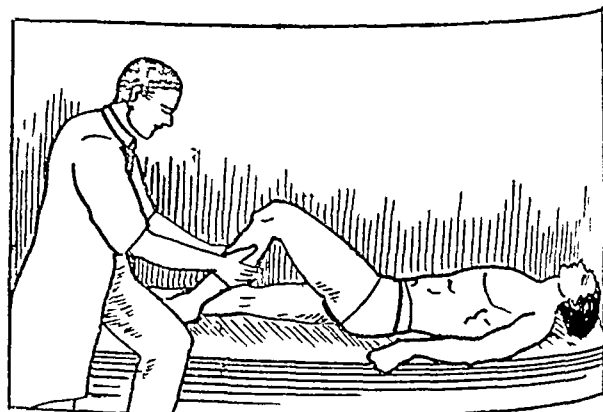
मालिश करते समय यह वात कभी न भूलनी चाहिए कि मलिश इस ढग से की जाय जिससे रक्त का प्रवाह हृदय की ओर ही होता रहे जिससे अशुद्ध रक्त की ... का कार्य जारी रहे। उस समय हृदय से नीचे की ... रक्त की गति को रोकना परम आवश्यक है। दूसरी
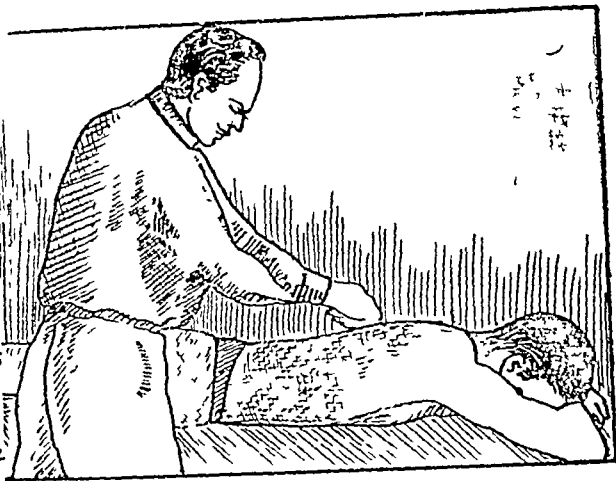
कम्पन देना

सम्बन्ध मे ध्यान देने की यह है कि मालिश मे ही उत्तम प्रकार से लाभकारी हो [स]क्ती है, रोगावस्था मे रोगी जितनी कडी धूप [आ]सानी से सह सके उतनी ही कडी धूप मे उसके
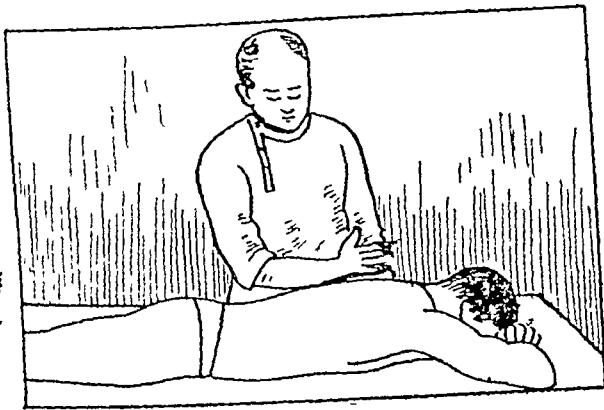
थपथपाना

[ब]दन की मालिश करनी चाहिए। यदि धूप कडी है तो [उ]सके सिर को अच्छी तरह ढक देना चाहिए। उन दशाओ [मे] जिनमे धूप-नहान मना है, धूप मे बैठाकर रोगी के [श]रीर की मालिश कदापि न करे और मालिश के उप[रा]न्त स्नान कर लेना या भीले कपडे से बदन को अच्छी [त]रह पोंछ लेना जरूरी है। ऐसा करने से मज्जातन्तुओ [(]Nerves) मे उत्तेजना एवं शक्ति उत्पन्न होकर मालिस [क]ा पूरा-पूरा लाभ प्राप्त होता है। सही मालिश केवल [अ]ङ्गो को साधारण रूप से मलना ही नही है, अपितु मलते समय मलने की क्रिया मे विविध ढगो से गतिया उत्पन्न करनी होती है।

इनके अतिरिक्त दीर्घ मर्दन, विस्तृत रूप से हाथ घुमाकर होता है, जैसाकि पीठ, हस्त, पादादि की मालिश मे किया जाता है। ह्रस्व मर्दन, दीर्घ से अल्प विस्तृत और पास पास हाथ घुमाकर होता है, जैसाकि स्नायुओ पर तथा मणको पर किया जाता है। मंडलमर्दन, मंडलाकार हाथ घुमाकर होता है, जैसाकि पेट पर किया जाता है। उपलेप-मर्दन, उपलेपन क्रिया की भाति यानी हाथ रुमाली घुमाकर, जैसे घुटने या मस्तक पर किया जाता है। बलय-मर्दन, बलयाकार हाथ घुमाकर जिस प्रकार 'स्क्रू' चलता है, पिडलियो पर किया जाता है। ताडन-मर्दन क्रिया मुक्का या हथेलियों के आघात से की जाती है। यह क्रिया पृष्ठ भाग तथा नितम्ब जैसे मासल भाग पर ही होती है। चालन-मर्दन, सधि के अन्दर के अवयवो के घुमाने से होती है।

हलके-हलके ठोकना, सहलाना, दाबना, कूटना, रगडना, चिकोटी काटना, थपथपाना, गूधना, बेलना, लुढकाना, कम्पन देना, चुटकी भरना, जोडो को मसलना, तथा एक खास ढग से मांस-पेशियो को सूतना, आदि मालिश के ही विविध रूप हैं। शरीर के जिस भाग की मालिश करनी हो, उसपर मालिश का प्रयोग उस समय तक होता रहना चाहिए जब तक कि उस स्थान की त्वचा हल्की रक्तवर्ण न हो जाय, जो इस बात का प्रमाण है कि उस विशेष भाग मे रक्त का प्रवाह, मालिश के प्रभाव से भली भाति होने लगा है।

पूरे शरीर की मालिश मे, मालिश का आरम्भ पैर से होना आवश्यक है, तथा प्रत्येक अङ्ग की मालिश करते समय हाथ की हरकतो को सदैव नीचे से ऊपर की ओर जाना चाहिये। जैसा भुजाओ की मालिश मे अगुलियो की मालिश सर्व प्रथम कर धीरे धीरे कधो की ओर बढना चाहिए। सिद्धान्त यह है कि मालिश की क्रियाए शरीर मे होने वाले रक्त सञ्चालन की विपरीत दशा में कदापि न की जाये।

भोजन करने के तुरन्त बाद कभी भी मालिश [illegible] चाहिए। इसके लिए सबसे अच्छा समय [illegible] करने के घटे दो घटे पूर्व का होना है।

कोई भी मालिश हो, १५-२० [illegible] तक न करनी चाहिए। पूरे [illegible] मिनट तक लगाये जा सकते है।

प्रत्येक मर्दन के बाद यदि रोगी कम से कम आध घंटे तक कपडा ओढकर विश्राम करले तो बडा लाभ होता है। नित्य के मर्दन से भूख खुल जाती है, नींद अच्छी आने लगती है, त्वचा कोमल लचीली और चमकीली हो जाती है, रक्त खुल जाता है, और ग्रन्थियो का पोषण बहुत तीव्र हो जाता है।

पाश्चात्य विद्वान जार्ज होडेन का कथन है कि सम्पूर्ण अङ्ग की उचित मालिश से कोई भी अपने को नवजात शिशु के सदृश अनुभव कर सकता है।

शुष्कघर्षण-स्नान—यह स्नान कुछ नही, सारे शरीर की साधारण सूखी मालिश है। मगर इसके लाभ अपरिमेय हैं। इसको अंग्रेजी मे Dry friction bath कहते है। त्वचा को स्वच्छ, सुन्दर एवं स्वस्थ रखने के लिये अङ्ग प्रत्यङ्ग की सूखी मालिश करनी चाहिये। इससे न केवल त्वचा की अपितु सारे बदन की कसरत हो जाती है, और चमडे के लिये तो इससे बढकर कोई कसरत ही नही है। इस क्रिया से रक्त की गति मे तीव्रता उत्पन्न होकर रक्त शुद्ध एव मल रहित हो जाता है। पहलवान लोग जो कसरत कर चुकने के बाद, सारे बदन की सूखी मालिश करते-करवाते है और उससे शत प्रतिशत लाभ उठाते है उसका यही रहस्य है। तैल वा उबटन से जो तर मालिश की जाती है उससे कही बढ कर यह सूखी मालिश, किसी दूसरे से न करवा कर यदि अपने ही हाथो की जाय तो दूना लाभ प्राप्त होता है।

शुष्क घर्षण स्नान के लिये अपनी हथेली से शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग को सिर से पैर तक अच्छी तरह और तेजी से इतना रगडना कि समूचे शरीर मे ललाई छा जाय। जाघ और टागो को रगडते समय, घुटनो को सीधा और तना रखना चाहिये, इससे पीठ, पेट, तथा समस्त स्नायु-मण्डल की हल्की कसरत हो जायगी। इस क्रिया से रक्त अधिक से अधिक मात्रा मे शरीर के ऊपरी भाग त्वचा की तरफ आकर शिराओ के फैलने मे कारण बनता है, जिससे उन शिराओ की भी कसरत अनिवार्य रूप से हो जाती है। साथ ही साथ त्वचा के असंख्य रोम कूप धुलधुला कर पूर्णत खुल जाते है, जिसके फलस्वरूप पसीना द्वारा शरीर का मल निकलने का काम उत्तम रीति मे होने [illegible]ा है। रक्त का प्रवाह त्वचा की ओर अधिक होने से, यह स्वाभाविक है कि त्वचा निर्विकार होकर [illegible] स्वस्थ हो जाय। यदि यह स्नान उचित ढग से [illegible] जाय तो इसका प्रभाव शरीर के ऊपरी भाग त्वचा [illegible] इतना अच्छा पडता है कि देख कर आश्चर्य होता[illegible] कुछ दिनो के बाद समूचा शरीर मखमल की भांति [illegible] यम और कोमल निकल आता है और त्वचा पर [illegible] प्रकार की आकर्षक ललाई लिये हुये लुनाई एव [illegible] छा जाता है जिसे देखते बनता ही है। याद रहे शुष्क [illegible] स्नान मे तेल या इसी प्रकार की किसी अन्य वस्तु [illegible] भूले से भी प्रयोग न करना चाहिये तथा इस स्नान के [illegible] शुद्ध एव ठडे जल से स्नान करना नितान्त प्रयोजनीय [illegible] डाक्टर हेरी बेन्जामिन इस शुष्क घर्षण स्नान को खुरदरे तौलिये वा ब्रुश से करने की राय देते है।

प्रात कालीन हल्की धूप मे बैठ कर शुष्क घर्षण[illegible] का अभ्यास निश्चय ही उत्तम है। इससे शरीर [illegible] होने के अतिरिक्त उसे विटामिन 'डी की' भी प्राप्ति [illegible] साथ हो जाती है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिये [illegible] उपयोगी है।

तैल मर्दन—शुष्क घर्षण स्नान से उतर कर [illegible] नम्बर तैल स्नान वा तैलमर्दन का है। इसका नाम मालिश भी है। इसमे शुद्ध सरसो का तेल काम मे [illegible] चाहिये। कहते है सेर भर मास वा आधसेर घी [illegible] शरीर को जो लाभ नही होता वह एक छटाक शुद्ध [illegible] के तेल को शरीर मे मालिश द्वारा सुखाने से सहज में हो जाता है। यथा—

मांसाद् अष्ट गुणं घृत घृताद् अष्ट गुणं तैल-
मर्दनात् नतु भक्षणात्।

तेल सर्व प्रथम पैरो मे मलना चाहिये, फिर सर [illegible] तत्पश्चात अन्य अङ्ग प्रत्यङ्गो मे नाभि, हाथ पैर के [illegible] दोनो कानो नासिका एव नेत्रों के पपोटो पर मालिश [illegible] समय तेल का प्रयोग करना न भूलना चाहिये। इससे [illegible] की वृद्धि होती है, अनिद्रा रोग या किसी प्रकार के रोग [illegible] आक्रमण शीघ्र नही होता बुढापा विलम्ब से आता [illegible] तथा सौन्दर्य एव अक्षय स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

कोई खाल की बीमारी होने से सरसो के तेल [illegible] जगह तिल, नारियल या जैतून का तेल काम मे लाया [illegible] सकता है। सिर मे सरसो के तेल के बदले तिल का[illegible]

दे सकते हैं। तेल की मालिश विशेष कर रोगियो के लिये अधिक उपयुक्त है। यह मालिश भी धूप में बैठकर ही कराने से अधिक लाभ करती है।

तैल मर्दन से त्वचा न केवल चिकनी और कोमल हो जाती है। अपितु उसे पुष्टता भी प्राप्त होती है। जिसका उत्तम प्रभाव स्वभावत शरीर के समस्त अङ्गो पर पड़ता है। यही कारण है कि पहलवान लोग अपने शरीर पर सरसो के तेल की मालिश बडे शौक से करवाते हैं। इस सिद्धात की पुष्टि में और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। मिट्टी के जिस बर्तन मे तेल रखा जाता है, वह अन्य उसी प्रकार के वर्तनो की अपेक्षा कितना सुदृढ, सुन्दर एवं चिकना हो जाता है, चमडे की बनी वस्तुएं तेल के योग से कितनी मुलायम तथा टिकाऊ हो जाती है। ये बाते ऐसी है जिन्हे हम रोज देखते और जानते है।

तैल मर्दन के बाद स्नान करना तो आवश्यक है ही साथ ही साथ मोटी तौलिया या अगोछा से सारे शरीर को रगड-रगड कर उस पर चिपके हुए तेल को तनिक तनिक सा पोछ डालना उससे भी अधिक आवश्यक है, अन्यथा शरीर के रोम कूपो के तैल मिश्रित मल से भर जाने से उनके स्वाभाविक एव स्वास्थ्यवर्द्धक मल बहिष्करण कार्य मे बाधा उपस्थित हो जायगी और इस तरह से तैलमर्दन से लाभ के बदले स्वास्थ्य को खतरे मे डालकर हानि ही उठानी पडेगी।

उत्तम स्वास्थ्य एव आयु वृद्धि के लिए तैलमर्दन के पश्चात् स्नान की उपयोगिता वाग्भट्ट मे भी स्वीकार की गई है। यदा—

अभ्यंगमाचरेन्नित्यं स जरा श्रम वात हा।
दृष्टिप्रसाद पुष्टचायुःस्वप्न सुत्वक्त्व दार्ढ्यकृत्।
शिरः श्रवण पादेषुत विशेषेण शीलयेत्॥

अर्थात् तैल मर्दन के बाद स्नान करने से बुढापे के लक्षण जल्द नही प्रकट होते, थकावट और वायु दूर होते हैं, नेत्र की ज्योति, बल, निद्रा तथा त्वचा की काति बढती है साथ ही अङ्ग पुष्ट होते है। सर, कान तथा पैरो मे तैल का प्रयोग विशेष रूप से करना चाहिए।

तथा, तैल-मर्दन के गुण के सम्बन्ध मे चरक ने कहा है—

जल सिक्तस्य वर्द्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुर स्तरोः।
तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेह सिक्तस्य जायते।

अर्थात् पेड की जड में जल-सिञ्चन से जिस प्रकार उसमे अधिकाधिक अकुर निकलते है, उसी प्रकार तेल की मालिश से शरीर की धातुए वृद्धि को प्राप्त होती हैं।

जीर्ण कोष्ठ-बद्धता के रोगियो को तैल-मर्दन बर्जित है। शास्त्रों मे रविवार वा पूर्णिमा, तथा अमावश्या को तेल लगाना मना है।

उबटन वा अभ्यञ्जन-स्नान—उबटन को यदि संयुक्त घर्षण और तैल-स्नान कहा जाय तो गलत न होगा। क्योकि उबटन मे तैल युक्त पदार्थ के मिश्रण से शरीर का तैल-स्नान भी हो जाता है और साथ ही साथ पूरे तौर से उसका घर्षण वा मालिश भी। उबटन से शरीर को वे सभी लाभ होते है जो उपर्युक्त अन्य दो मालिशो के सम्बन्ध में कहे गये है। पीली सरसो का उबटन उत्तम है। दोनो हल्दी, लालचन्दन, अगर तथा गौ-दुग्ध के मिश्रण से भी अच्छा उबटन बनता है। हमारे घरो में साधारणत. सरसो का तैल, वेसन और हल्दी के योग से जो उबटन बनता है, उसका चलन बहुत है। विशेषकर बच्चो के उबटने मे इसी उबटन का प्रयोग होता है। तेल कफ वा वायु-कोप को रोकता है और त्वचा को कोमलता एव बल प्रदान करता है, वेसन शरीर की दुर्गन्ध एव मल को काट कर त्वचा को मुलायम बनाता है, तथा हल्दी मे त्वचा के समस्त रोगो को दूर कर देने की शक्ति है। कदाचित इस उबटन के इन्ही गुणो पर मुग्ध होकर हमारे पूर्वजो ने विवाह पद्धति मे एक विधि "हल्दी–उबटन" वा "छरपुरिया मसाला" नाम की भी प्रचलित कर रखी है।

उद्वर्तन (उवटन) के उपर्युक्त स्वास्थ्य–वर्द्धक गुणो पर मुग्ध होकर पाश्चात्य देश की सम्भ्रान्त महिलाए भी अब भिन्न-भिन्न प्रकार के सुगन्धित पदार्थो से युक्त उबटन प्रतिदिन व्यवहार मे लाने लगी हैं। वहा के बाजारो मे सैंकडो प्रकार के दामी उबटनो के डब्बे हर वक्त बिकने के लिए तय्यार रहते हैं और यथेष्ट सख्या मे बिकते हैं।

वाग्भट के दूसरे अध्याय मे लिखा है—

उद्वर्तनं कफ हरं मेदसः प्रविलापनम्।
स्थिरी करणमंगानां त्वक प्रसादकरं परम्॥
उत्साद नाद भवेत स्त्रीणां विशेषात् कांतिमद्वपु.।
प्रहर्ष सौभाग्य मृजा लाघवादि गुणान्वितम्॥

अर्थात् उबटन से कफ और चर्बी कम हो जाती है। उबटन के प्रयोग से स्त्रियो को तो विशेष रूप से लाभ होता है। अर्थात्, उनके शरीर की कान्ति, प्रसन्नता, सौभाग्य, फुर्ती तथा हल्कापन आदि सभी बढते है।

बाजारी उबटनो का प्रयोग भूले से भी न करना चाहिए। उबटन के बाद भी स्नान तथा त्वचा पर तैल की चिकनाई को रगड़-रगड़ कर पौछ डालना उत्तम स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक है।

दुग्ध-स्नान—जब कभी लोग विशेषकर सौन्दर्य-प्रिय स्त्रिया मेरे पास सौन्दर्य वृद्धि का प्राकृतिक नुसखा पूछने आती हैं, तो मै उन्हे अन्य प्राकृतिक व्यवस्थाओ के साथ-साथ दुग्ध-स्नान करने की सलाह जरूर देता हू। दूध मे मैल काटने का असाधारण गुण है। यही कारण है जो हलवाई लोग चीनी, गुड की चाशनी बनाते वक्त उसमे दूध मिले पानी के छींटे अवश्य देते है, जिससे चाशनी की सारी गदगी और मैलापन छटकर अलग हो जाता है। यह मिथ्या नही है कि इस दुग्ध-स्नान को नियमपूर्वक और नित्य प्रति करते रहने से काले मनुष्य भी बहुत कुछ गोरे हो जाते है, साथ ही साथ उन्हे चर्म रोग, जैसे मुहासे, सेहुँआ, झाई आदि तो कभी होते ही नहो। स्नान की विधि यह है —

थोड़ा थोड़ा दूध लेकर अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर चुपड़े और मालिश करे उस वक्त तक जब तक कि दूध बदन के मैल के साथ मिलकर सूखा-सूखा होकर पृथ्वी पर झड़ न पडे। इसी भाति दूध की मालिश पूरे शरीर की हो लेने पर, शुद्ध ठडे जल मे खूब मल-मल कर अवगाहन करें और बदन को सूखे तौलिए से रगड-रगड कर पौछ लेने के बाद कपडे बदल लें। यही दुग्ध स्नान है। स्मरण रहे, दुग्ध-स्नान के बाद जल-स्नान करने पर दूध की चिकनाई अथवा गध शरीर पर शेष न रहे अन्यथा स्नान स्वास्थ्यकर सिद्ध न होगा और ऐसे त्रुटिपूर्ण स्नान से हानि भी हो सकती है।

दुग्ध-स्नान मे कच्चे और ताजे दूध का ही प्रयोग होना चाहिए। शरीर के बाल वाले भागो पर दूध का प्रयोग निरर्थक है। बालो का मल दूर करने के लिए सबसे उत्तम योग बेसन या घोल है।

छोटे बच्चों की कसरत—मालिस

छोटे बच्चो तथा बलहीनो, वृद्धो और अशक्तो के लिए मालिश ही एक ऐसी क्रिया है जो उन्हे कसरत का पूरा पूरा लाभ दे सकती है। छोटे बच्चे प्रकृतित अपना हाथ, पैर फेकते रहते है। इससे उनके आवश्यक अङ्गो-हाथ पैर, पेट तथा छाती की मासपेशियो की यथेष्ट कसरत हो जाती है। शहरो मे तो कम किन्तु हमारे ग्रामीण भाइयो के घरो मे आज भी नवजात शिशुओ की मालिश दिन में तीन-तीन बार होती है यह अति उत्तम है। इस सम्बन्ध मे एक ही गलती वे लोग करते है कि मालिश के बाद, चाहे वह तैल-मर्दन हो या उबटन, बच्चो को नहलाते या उनका सारा शरीर भीगे वस्त्र से खूब अच्छी तरह पौंछते नहीं, जो अत्यन्त आवश्यक है और यही कारण है कि उन बच्चो को जितना लाभ मालिश से होना चाहिए उतना होता नही है। यदि दिन मे तीन बार नही तो कम से कम प्रात. सायं अर्थात् दो बार बच्चो की मालिश जरूर होनी चाहिए, तत्पश्चात् गर्मियो मे ठडे पानी से और जाडो मे गुनगुने पानी से उन्हे नहला कर खूब अच्छी तरह से पौछ अवश्य देना चाहिए। कमजोर बच्चो के लिए गर्मियो मे भी उनके शरीर के ताप के बराबर गुनगुने पानी का इस्तेमाल किया जा सकता है। किन्तु प्रत्येक दशा मे इस बात का ध्यान रहे कि गर्म या गुनगुना पानी सर और आखो पर न पड़ने पावे।

बच्चो की मालिश के तरीके व ढग भी वे ही हैं जो ऊपर बताये जा चुके हैं। बच्चो की, नियमपूर्वक और विधिवत् मालिश से वे शीघ्र बढते एव पुष्ट होते हैं। साल भर तक के बच्चो के लिए दिन में केवल एक बार हल्की मालिश काफी है।

किन-किन दशाओं में मालिश वर्जित है। आयुर्वेद का मत है—

केवलं साम दोषेषु न कथ च न योजयेत्।
तरुण ज्वर जीर्णाच नाभ्याक्त कथंचन ॥
तथा विरिक्तो वांतश्च निरुढोयश्ग मानवः।
पवयोः कृच्छताव्या घेरसाध्यत्वमथा-वा ॥
शेषाणां तद्गः प्रोक्ता अग्निमांद्याद् यो गदाः।
संतर्पणं समुत्थानां रोगाणां नैव कारयेत ॥

अर्थात् जिसे आम सहित दोष हो, नवीन ज्वर हो,

अजीर्ण हो, जुलाब लिए हो, जिसको उल्टी (कै) आती हो, तथा जिसने एनिमा लिया हो [1] उसके लिए तैल की मालिश वर्जित है। क्योकि मालिश से नवीन ज्वर और अजीर्ण के रोगियो का रोग कष्टसाध्य और कभी-कभी असाध्य हो जाता है, और शेष अन्य रोगियो को मन्दाग्नि आदि कई विकार घेर लेते है।

जिस समय रक्त का टम्परेचर बढा हो उस समय भी मालिश न करनी चाहिए। इसी प्रकार मालिश के विशेषज्ञो ने किसी बडी बीमारी से तुरन्त उठने के बाद मालिश की राय नही दी है। उनका कहना है कि जिस प्रकार मुग्दर फेरना, डम्बल हिलाना' तथा डण्ड-बैठक आदि व्यायाम है, और सबल व्यक्तियो को ही उचित लाभ पहुँचाते हैं, उसी प्रकार मालिश भी एक प्रकार का व्यायाम है जिसका प्रयोग शरीर मे कुछ बल आने पर ही आरम्भ करना चाहिए।

व्यायाम या स्वेद स्नान

१- व्यायाम का अर्थ, उद्देश्य एवं आवश्यकता—व्यायाम का अर्थ है वह शारीरिक परिश्रम जिसके करने से शरीर को सुख प्राप्त हो, वह हर तरफ से सुडौल होजाय, कान्ति युक्त होजाय, वृद्धि को प्राप्त हो, उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग के सुन्दर विभाग हो जायें बलिष्ट और दोषो से मुक्त हो जाय तथा उसमे स्थिरता और हल्कापन आजाय। यथा -

"शरीरायासजननंक मंव्यायाम संज्ञितम्।
तत्कृत्वातु सुखं देह विमृन्दीयात्समततः॥
शरीरोपचयः कांतिर्गात्राणां सुवि भक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्य स्थिरत्वं लाववं मृजा॥

[1] एनिमा लेते समय जब पेट मे पानी चढने लगे तो पेट को बाई से दाहिनी ओर को हल्के-हल्के मलना चाहिए, और जब पानी पेट मे रुका रहे तो उस वक्त भी पेट को हल्की मालिश दाहिने से बाये करें ऐसा नियम है, जो एनिमा-विधान मे सम्मिलित है। क्योकि बिना इस क्रिया के एनिमा पूर्ण नहो कहा जा सकता। इसलिए आयुर्वेद का यह मत एनिमा या वस्ति के बाद तैल की मालिश करने का निषेध करता है, ऐसा समझना चाहिए।

—'नाहर'

इस न्याय से मानसिक परिश्रम को व्यायाम नही कह सकते और न उस शारीरिक परिश्रम को ही व्यायाम कह सकते है जो जीवका प्राप्ति करने के लिये अपना कर्तव्य समझकर हमे नित्यप्रति करना पडता है। ऐसे शरीर को सुख कहा ? उसे तो भार ही कहना चाहिये। लोहार का दिन भर हथौडे से जूझना तथा मजदूरो का दिन भर पैसे के लिये मेहनत मशक्कत करना व्यायाम कदापि नही कहला सकता। कारण दैनिक कार्य सम्बन्धी श्रम का उद्देश्य जीवकोपार्जन होता है परन्तु व्यायाम इस उद्देश्य से किया जाता है कि उससे हमारा शरीर बलिष्ट होगा, उसका विकास होगा और वह नीरोग होगा। यदि व्यायाम से यह भावना निकाल दीजाय तो यह मात्र शुष्क शारीरिक परिश्रम के अतिरिक्त और कुछ न रह जायगा। यही श्रम और व्यायाम मे अन्तर है और इसलिये व्यायाम मे शारीरिक क्रिया के साथ साथ उपर्युक्त मानसिक कल्पना या भावना का रहना अनिवार्य होता है।

व्यायाम का मुख्य उद्देश्य शरीर की सफाई करना एव उसके जीवाणुओ को सबल बनाना है। व्यायाम से होता यह है कि शरीर के भीतर हलचल मच कर गति उत्पन्न हो जाती है, जो उत्ताप को जन्म देती है और उत्ताप से शरीर के समस्त कोषाणु चैतन्य होकर अपना काम करने लगजाते है अर्थात् फेफडे अधिकाधिक आक्सीजन बाहर से खीच खीच कर शरीर के अशुद्ध रक्त को शुद्ध करने लगते है रक्त के तीव्र बहाव के कारण शरीर की नाडिया भी तेजीके साथ सक्रिय हो जाती है तथा शरीर की मासपेशिया आदि भी पुष्ट होकर अपना कार्य सुचारु रुप से सम्भालने लगती हैं।

मनुष्य के लिये यदि भोजन आवश्यक है तो व्यायाम भी उसके लिये उससे कम आवश्यक नही है इसी तथ्य को सामने रखकर महात्मा गाधी ने भी एक जगह लिखा है—'जिस प्रकार भूख लगने पर तुम कोई काम नही कर सकते उसी प्रकार हमे कसरत की ऐसी पक्की आदत डाल लेनी चाहिये कि उसके बिना किये हम और कोई काम ही न कर सकें।' हमारा भोजन हमारे शरीर रूपी इन्जिन को ईंधन पहुचाता है और व्यायाम उसके कल पुरजो को ठीक हालत मे रखता है और उनकी देखभाल करता है। यही भोजन और व्यायाम मे परस्पर सम्बन्ध है।

व्यायाम मनुष्य का ही नही प्राणि मात्र का एक

प्राकृतिक गुण है। बिल्ली, कुत्ते तक अपने अपने तरीके से व्यायाम करते देखे जासकते है। दूधपीता बच्चा जब पालने मे पडा पडा अपने हाथ पाव फैकता है व्यायाम करने का वह उसका अपना तरीका होता है जिससे वह व्यायाम का पूरा पूरा लाभ भी उठाता है। मगर काश व्यायाम करने की उसकी वह प्रवृत्ति आजन्म बनी रहती तो उसे उतना अधिक अस्वस्थ, रोगग्रस्त और अल्पायु न होना पडता जितना प्राय देखने मे आता है।

मनुष्य के शरीर का तापक्रम ९८ फा० होता है। शरीर का यह तापक्रम न रहे यदि हम उचित मात्रा मे सास द्वारा वायु से ओषजन खीच खीच कर उससे शरीर के भीतर के अनावश्यक पदार्थ अनवरत रूप से न जलाते रहे। शरीर के भीतर होते हुये इस जलन कार्य का ही यह परिणाम होता है कि हमारा शरीर गरम रहता है और हमे कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है। व्यायाम के पश्चात हमारी श्वास का वेग बढ जाता है और हम जल्दी जल्दी श्वास लेने लगते है। यही कारण है जो हमे व्यायाम से अधिक गरमी और शक्ति की प्राप्त होती है। क्योकि व्यायाम से श्वास प्रश्वास मे वेग होने के कारण शारीरिक पदार्थ अधिक मात्रा मे जलते है और उत्ताप उत्पन्न करते है जिसका नाम शक्ति है और शरीर मे उत्ताप के अभाव का नाम ही मृत्यु है।

व्यायाम उन परिश्रमी देहातियो के लिए, जिनका सारा जीवन ही श्रमशील होता है, अतीव आवश्यक भले ही न हो, परन्तु जो लोग व्यायाम भी नही करते, और शारीरिक परिश्रम का भी कोई काम नही करते, जैसाकि दफ्तर के बाबुओ तथा गद्दी-तकियो के सहारे बैठने वाले सेठ-साहूकारो के विषय मे कहा जा सकता है, ऐसे लोगो के लिए तो व्यायाम की अत्यन्त आवश्यकता है।

२—व्यायाम के प्रकार—व्यायाम की अनेक पद्धतियां हैं। वैसे ही उनके अलग-अलग नाम भी है। वे मूलत. दो प्रकार के होते है—देशी और विदेशी। इन व्यायामो मे से कुछ तो ऐसे हैं—

(१) जिनमे यन्त्रो की सहायता ली जाती है, जैसे डम्बल आदि की सहायता से व्यायाम।

(२) जिनमे यन्त्रो का प्रयोग नही होता और केवल शरीर का विविध प्रकार से सचालन ही होता है जैसे दड बैठक आदि।

(३) जिनमे दो व्यक्तियो की आवश्यकता होती है जैसे, कुश्ती।

(४) जिनमे अनेक व्यक्तियो की आवश्यकता होती है जैसे, कबड्डी आदि खेल।

(५) जिनमे अकेले ही व्यायाम करना सम्भव होता है जैसे टहलना, तैरना, आदि।

(६) जो बच्चो के लिए हानिकारक होते हैं, किन्तु प्रौढो के लिए लाभप्रद जैसे पत्थर की भारी नाल उठाना,

(७) जो सर्वाङ्ग पर प्रभाव डालते है जैसे सर्वाङ्गासन, दड बैठक आदि।

(८) जो अङ्ग विशेष पर प्रभाव डालते हैं जैसे पेट के व्यायाम।

(९) जो केवल स्त्रियो के लिए ही होते हैं जैसे गर्भाशय-दोष के लिए व्यायाम।

भिन्न-भिन्न देशो की जलवायु और सहूलियत के अनुसार ससार मे भिन्न भिन्न प्रकार के व्यायाम प्रचलित है। भारतीय जलवायु, आहार विहार तथा आर्थिक परिस्थिति आदि कुछ ऐसी है कि हम भारतवासियो के लिए हमारे देशी व्यायाम ही अनुकूल पड़ सकते है, विदेशी नही। अत हमे भारतीय व्यायामो को ही अपनाकर लाभ उठाना चाहिए। अग्रेजी ढग के व्यायाम खर्चीले होते है जो सर्वसाधारण के लिए सुलभ नही हो सकते और न उनसे हम गरम देश वाले उतना अधिक लाभ ही उठा सकते जितना अपने देशी व्यायामो को करके उठा सकते हैं।

नीचे सर्वप्रथम कुछ देशी व्यायामो की सूची उनकी सूक्ष्म व्याख्या सहित दी जाती है, जिससे पाठको को अपने लिए उपयोगी व्यायाम चुनने मे सहायता मिल सकती है—

टहलना—सभी व्यायाम-विशारदो ने एक स्वर से टहलने को सर्वोत्तम व्यायाम माना है। इस व्यायाम से बच्चे, जवान, बूढ़े, स्त्री, तथा रोगी आदि सभी समान रूप से लाभान्वित हो सकते है। किसी प्रकार की असुविधा या हानि की तो इससे सम्भावता है ही नही। ४० वर्ष से ऊपर

टहलते समय की स्वाभाविक आकृति

...या वालो के लिए तो टहलने से बढकर और कोई ...ा व्यायाम अधिक लाभकारी निश्चय ही नही है। ...विषय पर विशेष रूप से 'पवन-स्नान' शीर्षक से ऊपर ...ा ही जा चुका है।

...तैरना—लाभ के ख्याल से तैरना दूसरे नम्बर का ...याम है। यह एक सर्वाङ्गपूर्ण व्यायाम है। प्रसिद्ध ...यामाचार्य प्रो० राममूर्ति की सफलता का एक रहस्य ...भी था कि वह नित्य दो घण्टे तैरते भी थे। तैरने से ...र वीर्यवान तो बनता ही है, साथ ही साथ उसका ...न भी बढता है। तैरने से सीना खूब चौडा हो जाता ...और भुजाए तथा जङ्घो की मासपेशिया पुष्ट एवं ...ल बन जाती है। तैरते समय शरीर की त्वचा पर ...जल की निरन्तर थपकियां पडते रहने से शरीर की गरमी सुव्यवस्थित हो जाती है और अनावश्यक उष्णता के निकल जाने से शरीर मे ताजगी और शीतलता का अनुभव होने लगता है। हाथ, पैर तथा छाती के लिये तैरना एक उच्चकोटि का व्यायाम है। शरीर को बढाना हो, उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग मे सुडौलता लाकर उन्हे स्वस्थ और पुष्ट करना हो तथा शरीर को फुर्तीला और कान्तियुक्त बनाना हो तो बहती नदी मे नित्यप्रति डेढ-दो घन्टे जरूर तरिये। यही वह व्यायाम है जो कमजोर को शक्तिशाली और ताकतवरो को उत्तम स्वास्थ्य और सुडौलता प्रदान करके उन्हे कायम रखता है। यह मोटे आदमियो को पतला करता है और पतले लोगो के बदन को भरता है। यही वह कसरत है जो टहलने की भाति ही मर्द, औरत, बच्चा, बूढा, जवान सबके लिये समान रूप से लाभ पहुचाती है और जिसके करने से किसी प्रकार की हानि नही होती। पूरे बदन पर कडुवे तेल की अपने हाथो मालिश करके तैरना अधिक लाभकारी सिद्ध होता है। तैरना ही वह व्यायाम है जिससे व्यायाम और स्नान दोनो का लाभ साथ-साथ मिलता है।

किसी कुशल तैराक से तैरने की कला अच्छी तरह सीख लेने के बाद ही इस व्यायाम का अभ्यास करना चाहिए।

तैरना दो प्रकार का होता है। एक निष्क्रिय और दूसरा सक्रिय। निष्क्रिय तैरना वह है जिसमे तैरने वाला हाथ-पैर ढीला करके पानी पर चित लेटा उतराया करता है, या सिर्फ पैर के सहारे खडे होकर तैरता रहता है। सक्रिय वह है जिसमे हाथ-पैर की मदद लेनी पडती है। निष्क्रिय तैरना, सक्रिय तैराकी सीख लेने के बाद ही सीखनी चाहिए। व्यायाम के लिए सक्रिय तैराकी ही उत्तम है। इसमे सर ऊपर उठा रहता है। दोनो हाथ एक साथ सामने बढते हैं और दोनो तरफ हाथ के पंजो से पीछे की तरफ पानी काटते हुए आगे बढा जाता है। दोनो पैरो को मोड़ कर पेट तक ले जाना होता है फिर पैर को फैलाते हुए पीछे फेंकना होता है। उसी प्रकार जिस प्रकार मेढक करता है। इस प्रकार तैरने से पूरे शरीर का अच्छा व्यायाम हो जाता है।

सूर्य नमस्कार—यह एक उत्कृष्ट प्राचीन भारतीय

व्यायाम प्रणाली है। जिसका अभ्यास ८ वर्ष से कम अवस्था के बाल-बालिकाओ को छोडकर अन्य सभी स्त्री पुरुष लाभ के साथ कर सकते हैं। इस व्यायाम को सूर्योदय के समय ही सूर्य भगवान की ओर मुह करके करने का नियम है। इस व्यायाम के लाभ अनेक है। इसके करने से पेट और अन्तडियो के विकार, दिमाग की खराबी तथा दिल, फेफडे और स्नायु मण्डल के विकार जड से नष्ट हो जाते है। सूर्य नमस्कार से शरीर की मासपेशिया पुष्ट होती है तथा पेट और अन्तडियो के विकार से उत्पन्न होने वाले रोग जैसे अपच, कब्जियत, आमवात, बवासीर तथा बहुमूत्र आदि रोग आसानी से दूर हो जाते है। दिल और फेफड़ो को बल मिलने से खासी, दमा तथा क्षय रोग जैसी सहारक बीमारिया सदा के लिए दूर हो जाती है। इस व्यायाम के प्रताप से मेरुदन्ड या रीढ के विकार दूर हो जाने से लकवा, सूजन, फीलपाव आदि रोगो से छुटकारा मिल जाता है।

आरम्भ मे इस व्यायाम को थोडा ही करना चाहिए और धीरे-धीरे बढाना चाहिए। यह व्यायाय खाली पेट ही करना चाहिए और व्यायाम करते समय सास को रोकना चाहिए। उस वक्त भूल से भी मुह से सांस नही लेनी चाहिए। इस व्यायाम मे नागा करना भी ठीक नही, अपितु रोज-रोज करना चाहिए तभी इच्छित फल की सम्भावना हो सकती है। व्यायाम करते समय शरीर पर सिवा एक लंगोटी के और कोई कपड़ा रखना उचित नही। सर्दी के दिनो मे शरीर की हाथो से मालिश करके उसे गरम कर लिया जा सकता है और तब सूर्य-नमस्कार व्यायाम आरम्भ किया जा सकता है। इस व्यायाम के कर चुकने के बाद कुछ देर तक विश्राम कर लेना आवश्यक है।

स्त्रियो को चाहिए कि वे मासिक धर्म होने के समय ६ दिनो तक इस व्यायाम को न करे। इसी प्रकार चार महीने का गर्भ होने पर यह व्यायाम बन्द करदें। पर प्रसव हो जाने के चार महीने बाद फिर शुरू कर सकती हैं। बीमारी की हालत मे यह व्यायाम छोडा जासकता है। इस व्यायाम करने वाले को चाय, कहवा, कोको, तम्बाकू, शराब आदि मादक द्रव्यों एवं गोश्त आदि तामसिक खाद्यो से बचना चाहिए।

व्यायाम विधि—खुली और हवादार जगह, चटाई पर २२ वर्ग इन्च का कोई ऊनी या सूती डालकर और उस पर पूरब की ओर मुख करके होकर दोनो पैरो का मिलाइए और पैरो के अंगूठो को कपडे के किनारे से छुआइए। अब दोनो हाथो को सीने के सामने ले जाकर उमंग मे हुआ जोडि एक दूसरे को दबाइये। सीने को फैला लीजिये और पेट को अन्दर ले जाइये। खूब गहरी सास लीजिये और दण्डो के ऊपरी भाग को कडा कीजिए। सामने सर, गर्दन और रीढ को एक सीध मे रखिये। यह व्यायाम की पहली अवस्था है। देखिये चित्र।

सूर्य नमस्कार
पहली सूरत
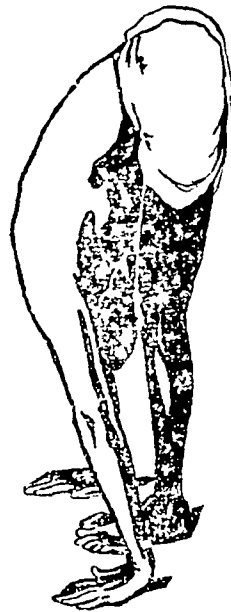
सूर्य नमस्कार
दूसरी सूरत

अब सामने झुकिये और हाथो की हथेलियां जमीन पर रख दीजिये। हाथो की उगलिया एक से सटी रहे और सिर को घुटने से छुमाइये या की कोशिश कीजिये, परन्तु ऐसा करने मे घुटने न पावे। हाथो को इस प्रकार रखिये कि वे या तो के इधर उधर के दोनो किनारो के समानान्तर अन्दर की ओर २२° का कोण बनावें जिससे अगूठे नीचे की गद्दिया पैरो के अगूठो के साथ एक हो। जिस समय आप झुकें और माथे को घुटने

...ी कोशिश करे, उस समय आपको थोड़ी सी सांस ...काल देनी चाहिए। यह व्यायाम की दूसरी सूरत ...ये चित्र।

... टाग पीछे ले जाइये, परन्तु ऐसा करने मे बाहे ...र से मुड़ने न पावे। पैर को इतना पीछे ले ...क बाहे कन्धे से कलाई तक ठीक लम्ब रूप मे ...ी बिलकुल सीधी रहे। शरीर को ऊचा करके ...क्ति पीछे देखने की कोशिश करे। देखिये इस ... सूरत का चित्र।

सूर्य नमस्कार
तीसरी सूरत

अब दूसरी टाग को भी पीछे ले जाइये। दोनो पैरो ...नो और अ गूठो को मिलाकर रखिये। बाहो ...धा रखिये। शरीर का सारा भार पैरो की उग- ... और हथेलियो पर सम्हालते हुए नितम्ब, कमर ...सिर के पिछले हिस्से को सीध मे उठाये रखिये और ...को भीतर खीचे रहिए। देखिए चौथी सूरत का चित्र। ...घुटनो को जमीन पर टेक दीजिए और ठुड्ढी को ...से छुआइए वा पहुँचाने की कोशिश कीजिए। नाक ... पूर्ण रूप से श्वास बाहर निकाल दीजिए और ...ना हो सके उतना पेट को अन्दर की तरफ खीचिए। ... को ऊपर की ओर उठाए रखे और माथे व सीने ...से छुआवे। देखिए पाचवी सूरत का चित्र।
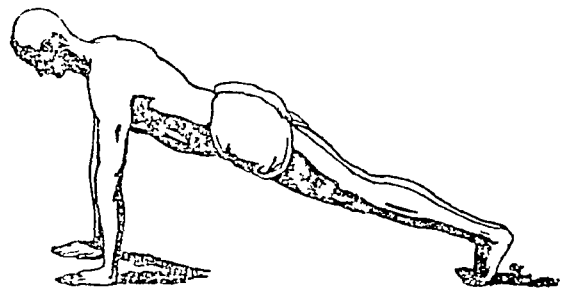
सूर्य नमस्कार
चौथी सूरत

सूर्य नमस्कार
पांचवी सूरत

हाथो को सीधा करते हुए सर को उठाइए और धीरे-धीरे गहरा सास लीजिए और सीने को आगे की ओर इधर उधर फैलाइए। इसके बाद गर्दन को पीछे की ओर झुकाकर (जितना हो सके) छत वा आकाश की ओर देखिए। घुटने कपड़े पर ही टिके रहे। छठी
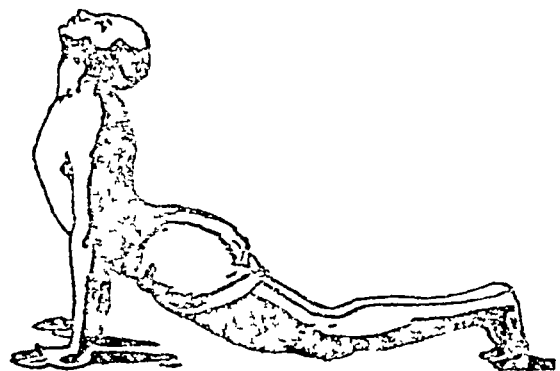
सूर्य नमस्कार
छठी सूरत

सूरत का चित्र देखिए।

अब चौथी सूरत मे आ जाइए। उसके बाद जमीन से एडियो को छुआइए। सर अन्दर की ओर झुका रहे और पेट अन्दर को खिचा रहे। देखिए सातवी सूरत का चित्र।

यह व्यायाम की नवी सूरत है। चित्र देखिए।

सूर्य नमस्कार
सातवी सूरत
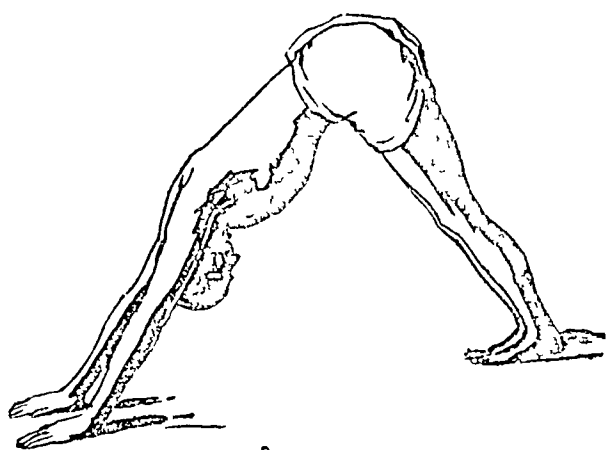
सूर्य नमस्कार
नवी सूरत

सूर्य नमस्कार
दसवी सूरत

आठवी सूरत मे तीसरी और दूसरी सूरतो को करते हुए पहली सूरत मे आ जाते हैं। पहली सूरत मे आने के लिए सबसे पहले एक पैर को एक झटके मे उठाकर दोनो हथेलियो की गद्दियो के साथ एक रेखा मे आगे रखे और तीसरी सूरत की भाति गर्दन को पीछे की ओर झुकाकर देखिए। ऐसा करते समय मुडे हुए पैर की जाघ पेट को दवाये और दूसरी टाग का घुटना जमीन पर टिक जावे। इसके बाद दूसरी सूरत मे आ जावे और फिर
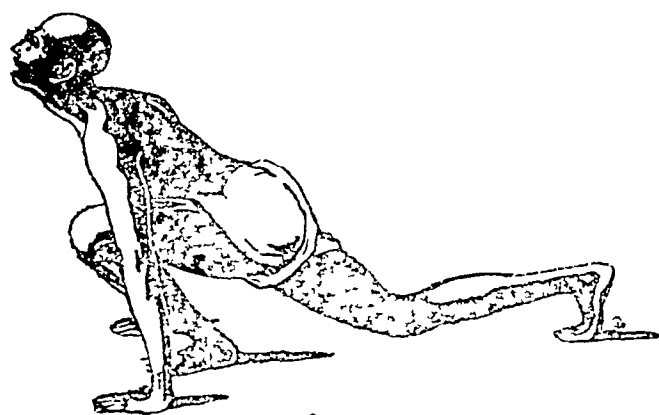
सूर्य नमस्कार
आठवीं सूरत

पहली सूरत मे। देखिए चित्र।

साम रोककर दूसरी सूरत मे आ जाइए और केवल नाक के रास्ते श्वास को बिलकुल बाहर निकाल दीजिए।

केवल नाक द्वारा गहरी सास खीचकर पहली मे आजाइए। इस बात का ध्यान रहे कि घुटने सीधे र यह व्यायाम की दसवी और अन्तिम सूरत है। इस इन दस सूरतो मे एक नमस्कार पूरा होता है।

दड-बैठक—दड-बैठक भी एक सर्वाङ्गपूर्ण व्या है। इस सरल और परमपयोगी व्यायाम का आवि करने वाला व्यायाम-शास्त्र का कोई धुरन्धर विद्वान होगा इसमे कोई शक नही। अंग्रेजी Floor dip व्यायाम की नकल है। दड से सीने, पीठ की रीढ, और गर्दन का व्यायाम, तथा बैठक से पेट और जाघों व्यायाम होता है। इसके अतिरिक्त इन व्यायामो से आन्तरिक अवयव, जैसे हृदय, फेफडे, यकृत, आमा आदि भी स्वस्थ होकर खूब काम करने लगते हैं। पर तो दड का बडा ही अच्छा प्रभाव पडता है। और कमर को भी दड उत्तम से उत्तम व्यायाम देता है

र यह गलत नही है कि ये ही दोनो अङ्ग शरीर के धार के साथ-साथ उसकी शक्ति के भी आधार है। ही अङ्गो का सम्पूर्ण विकास करके विश्वविजयी पहलन गामा ने आधे मिनट के अन्दर विश्व-विख्यात पहलन जेबिस्को को पछाडा था, जिससे भारतीय व्यायाम द्धति दड-बैठक की श्रेष्ठता सिद्ध होती है।

कुश्ती—मल्लयुद्ध या कुश्ती को भारतीय व्यायाम द्धति मे व्यायामो का सम्राट माना गया है। इसमे शरीर सब अङ्ग काम करते है, यहा तक कि मस्तिष्क भी, ौर दो व्यक्तियो के जोड़ तथा एक अखाडे के योग से यह ायाम सम्पन्न होता है।

मुग्दर हिलाना—इससे हाथ के पुट्ठो, बाजू, तथा ाती का समुचित व्यायाम होता है।

मल खम्भ की कसरत, लेजिम, गदा भाजना, साग, रेला पत्थर की नाल उठाना, गोला उठाना, चरस ीचना, लाठी भाजना, बन्देश, फिरग, लकड़ी, फरीतका, बिनौट, लकड़ी चीरना, पेड़ पर चढ़ना, जमीन ोदना, नाव खेना, कपडे धोना। ये सब भी भारतीयव्यायाम-पद्धतिया है जिनकी अपनी-अपनी विशेषतायें हैं।

घोडे की सवारी—यह एक उत्तम व्यायाम-पद्धति है, र सिर्फ अमीरो के लिए। कारण, सर्व साधारण के लिए इस व्यायाय के लिए घोड़ा रखना सम्भव नही है। घोडे की सवारी करने से सवार के शरीर मे एक प्रकार का कम्पन होता है जिससे रक्त स्वच्छन्द रूप से सारे शरीर मे फैलता है। घोडे की सवारी से मुख्यत जघो का अच्छा व्यायाम हो जाता है।

दौड़ना—दौडना भी एक अच्छी कसरत है। इसे पहलवान भी दम बढाने का अच्छा तरीका मानते है। दौड़ने से पैरो के पुट्ठो की पूरी कसरत हो जाती है। श्वास-प्रश्वास के चलने मे तेजी और गहराई आजाने से फेफडे विकाररहित होकर मजबूत बनते है।

खेलना—खुले मैदान मे मनोरजक खेल जिनसे व्यायाम के सारे लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं, बडे महत्त्वपूर्ण होते है। आनन्द स्वय एक बलदायक रसायन है। इसीलिए खेल वाले व्यायाम बडे उपयोगी सिद्ध होते है। कबड्डी, खोलहापाती, पटा-दनेठी, आटा-पाटा खोखो, [illegible], आदि देशी खेल तथा बैडमिन्टन, हाकी, फुटबाल, क्रिकेट, टेनिस, वेसवाल, वाली वाल, ड्रिल, जिम्नास्टिक, शिकार करना, रायफल चलाना और गाल्फ, आदि विदेशी खेल से व्यायाम के अधिकाश लाभ प्राप्त हो जाते है।

बगीचे मे काम करना—व्यायाम-विशारदो ने बगीचे मे विविध प्रकार के काम जैसे पेड के थालो को खोदना, उन मे पानी देना, आदि को भी व्यायाम माना है।

नाचना—उग्र व्यायामो की अपेक्षा सहज व मृदु साथ ही साथ रोचक और आनन्दप्रद व्यायाम अधिक निरापद और लाभदायक होते हैं। इस तरह के व्यायाम से हानि की सम्भावना रहती ही नही। नाचना इसी प्रकार का एक मृदु व्यायाम है, जो अन्य नीरस तथा कर्तव्य-पालन के रूप मे की जाने वाली कसरतो के विपरीत अपना एक विशेष महत्व रखता है। नृत्य मे जो शारीरिक अङ्ग-सचालन और दमदारी की आवश्यकता पडती है, वही शरीर के लिये एक अच्छे से अच्छा व्यायाम है।

उत्तर भारत मे प्रचलित प्रसिद्ध नृत्य कत्थक' को ही ले लीजिये। इसकी विशेषता है पद सचालन। यह नृत्य कम से कम घटे भर तक चलता रहता है। इसमें पैरो का व्यायाम सर्वाधिक होता है, फिर हाथो का और कमर का। गर्दन और आखो का व्यायाम भी कुछ कम नही होता। चारो तरफ गर्दन और पुतलियो को एक बार नही कई बार घुमाना, कमर तोडना, घुटने के बल बैठकर धीरे-धीरे ताल के इशारे पर उठना और फिर कहरवे की लय मे कमर और कूल्हो को आन्दोलित करते हुए कोई चक्करदार तिहाई लेकर सम पर खडे होना, किस व्यायाम से कम है? इन सब चेष्टाओ से शरीर की शायद ही कोई ऐसी मासपेशी हो जो उचित व्यायाम से वञ्चित रह जाती हो। पर नृत्य-व्यायाम से व्यायाम का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब उसे नित्य-क्रिया मे शामिल कर लिया जाय। यदा-कदा नाचने से व्यायाम का लाभ नही हो सकता।

गाना—सगीत गाना, वा गायन, दूसरे प्रकार का मृदु व्यायाम है। इसके अभ्यासियो को फेफडे का बडा सुन्दर व्यायाम हो जाता है, जिससे वे रोग-रहित बनते है। यो तो दौड, कुश्ती, आदि उग्र व्यायामो मे साम की गति तेज हो जाने से फेफडो की कसरत हो जाती है, पर गायन द्वारा जो फेफडो का मृदु व्यायाम देर तक है।

रहता है उसके गुण अनुपम होते है। उग्र व्यायामो से प्राय फेफडो का व्यायाम जरूरत से ज्यादा हो जाता है जो कभी कभी व्यायामी के असमय मे ही मृत्यु का कारण होता है। पर गायन-द्वारा जो फेफडो की हल्की-हल्की कसरत होती है, वह आवश्यकता से अधिक हो ही नही पाती।

डा० एडवर्ड पोडोलास्की न्युयार्क के एक प्रसिद्ध चिकित्सक और गायक है। उनका कहना है कि गाने से रक्त सञ्चालन बढ जाता है, शिराओं मे नवजीवन आजाता है, तथा शरीर के विजातीय तथा विषैले पदार्थ दूर हो जाते है। गाने वालो मे फुफ्फुस और कलेजे सम्बन्धी रोग बहुत कम पाये जाते है। पाश्चात्य देशो मे जिगर सम्बन्धी रोगो को दूर करने के लिए सगीत से मदद ली जाने लगी है।

डा० वाल्टर एच० वालसे का कथन है कि पाडु तथा यकृत सम्बन्धी शिकायतो और अपच मे सगीत का व्यायाम अधिक लाभप्रद सिद्ध होता है। सङ्गीत मे पौष्टिक भोजन पचाने को विचित्र शक्ति होती है। यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि सङ्गीत बच्चो के लिये विशेष रूप से क्षुधा बढाने वाला होता है। एक डाक्टर का कहना है कि गाने वाले लडको को घोड़ो की तरह बहुत भूख लगती है और सारस पक्षी की तरह खाया हुआ भोजन सहज ही मे पच जाता है।

डा० लीक का कहना है कि सगीत के समान शरीर के प्रत्येक अङ्ग पर अच्छा और शीघ्र प्रभाव डालने वाली ससार मे कोई दूसरी चीज नही है।

विदेशी व्यायाम—

जि जित्सू—यह जापानियो की मल्ल-विद्या है। यह टेनिस, क्रिकेट की भाति एक खेल नहीं है बल्कि, शरीर को स्वस्थ तथा पुष्ट बनाने की एक वैज्ञानिक विधि है। जापान के सिपाहियो एव नौसैनिको को इसका सीखना अनिवार्य है। कहा जाता है कि जितनी शक्ति और स्फूर्ति अन्य व्यायामो द्वारा एक वर्ष मे प्राप्त होती है, उतनी इस व्यायाम से केवल ६ सप्ताह मे ही प्राप्त होती है। जापानी सैनिको में कष्ट सहन करने की अद्भुत शक्ति होने का राज यही जिजित्सू-व्यायाम है। जब एक प्रतिद्वन्दी पीछे से किसी जापानी पर हमला करता है तो वह उसका मुकाबिला रना, बल्कि उसकी शक्ति को उसी की पराजय के लिए प्रयोग मे लाता है। यही सिद्धात जि जित्सू का मू मन्त्र है। इसके अतिरिक्त किसी आक्रमणकारी को एक घू मे मे गा थोडा सा ही बल प्रयोग करके मार डालना, अथवा किसी आहत व्यक्ति को स्वस्थ कर देना, आदि कौशल भी जि जित्सू के अङ्ग है। जापान मे जि जित्सू विद्या के जानकारो को यह प्रतिज्ञा करनी पडती है कि वे जि जित्सू के भेदो को सिवाय जापानियो के किसी अन्य व्यक्ति पर प्रगट न करेगे। जि जित्सू-व्यायाम करने के बाद ठडे पानी मे तैरना या उसमे स्नान करना आवश्यक होता है। उसके बाद सारे शरीर को तौलिये से खूब रगडा जाता है।

पैरेलेल बार्स—इसे डबल बार्स और हिन्दी मे झूले का दण्ड भी कहते हैं। इसमे दो डडे समानान्तर होते हैं जिनके ऊपर विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं का अभ्यास करके व्यायाम किया जाता है। इन व्यायामो को १६ वर्ष की आयु वाले लड़को को न करना चाहिए। पैरेलेल बार्स की दड की क्रिया के आरम्भ से लेकर अन्त तक दोनो पैर जाघ से लेकर पैरो की उगलियो तक मिलाये हुए रखना चाहिए। दृष्टि बिलकुल सामने रखते हुए गर्दन को भी कड़ी रखनी चाहिए। इन दडो के अभ्यास से कलाई मजबूत बनती है। साथ ही साथ भुजाये, कन्धे, छाती, कमर, गर्दन और पैरो के स्नायु मजबूत होकर कमर के ऊपर का शरीर भाग सुडौल हो जाता है।

झूले के दड इस प्रकार कीजिए—

प्रारम्भ मे पैरेलेल बार्स के दोनो डडो के ऊपर हाथो को सीधे रखकर व दोनो पैरो को मिलाकर हाथो के बल दोनो पैरो से आगे और पीछे झूलना चाहिए। हाथो को बिना मोडे झूलने का अभ्यास हो जाने पर जब चित्र न० १ के अनुसार पीछे जाते हैं, उस समय दोनो हाथो को कोहनी से मोड़कर पैरो को आगे लाना चाहिए। पैर आगे लाते समय जब नीचे आते है उस समय कोहनी से हाथ मुडे होने के कारण शरीर की स्थिति उसी प्रकार की होती है जैसाकि चित्र न० २ मे दिखाया गया है और उसी वेग से पैरो को आगे ले जाना पडता है। जब दोनो पैर आगे जाते है, उस समय दोनो हाथो को कोहनियो से सीधा कर लेना चाहिए, जिससे चित्र न० ३ की दशा मे शरीर
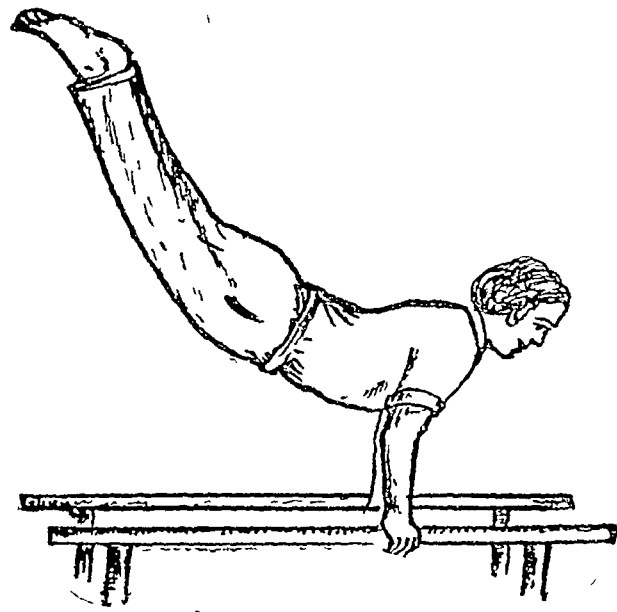
पैरेलल बार नं० १
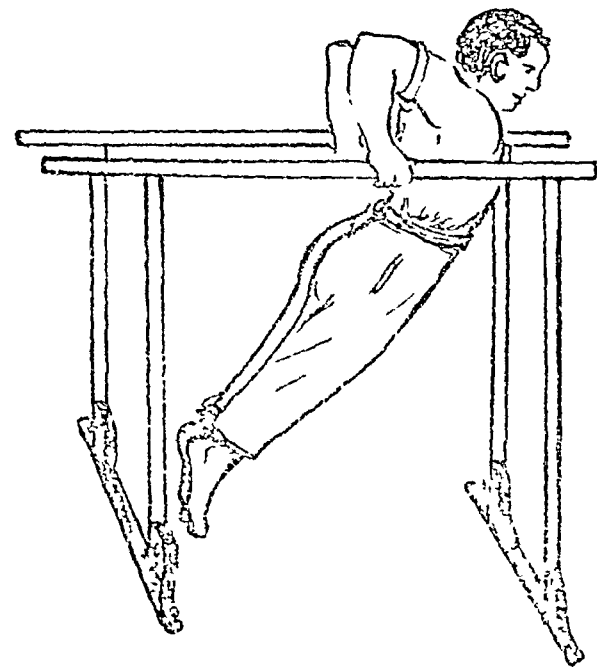
पैरेलल बार नं० २
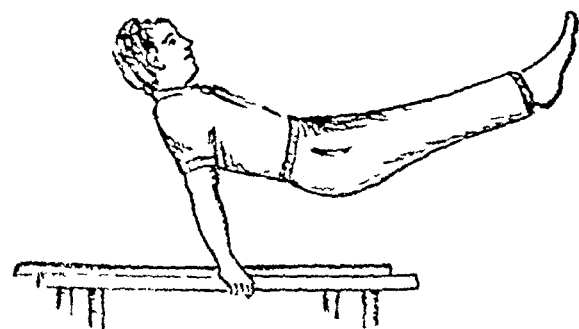
पैरेलल बार नं० ३

आ जाता है। इतनी क्रिया होने पर जब पैर आगे से पीछे जाते है, उस समय हाथो को कोहनी से बिना मोडे ही सीधे रख कर पैरो को पीछे लेजाना चाहिए। पैर पीछे आ जाने पर इस दड की क्रिया पूरी समझी जाती है। यह क्रिया लगातार कई बार करके अभ्यास बढाना चाहिए।

होरिजेन्टलबार, चेस्ट एक्सपैन्डर, बारवेल, टम्बल, बाक्सिग, साइक्लिग, स्केटिग, सैडो-व्यायाम, मलूरव्यायाम (स्वीडन की), एलिस ब्लोच-व्यायाम (जर्मनी का) आर्थर एवप्लैनेल्प-व्यायाम (स्विटजरलैड), रिग-व्यायाम, आदि अनेक अन्य विदेशी व्यायाम भी है जो जनता द्वारा पसन्द किए जाते है, और जिनमे से प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषता है।

मुख्य-मुख्य अङ्गो के विकास और स्वास्थ्योन्नति के लिए विभिन्न व्यायाम.—

गर्दन और वक्षस्थल का व्यायाम—सीधे खडे हो। ठोढी न नीची हो न ऊची। गर्दन सीधी रहे। सिर को भरसक आगे बढाओ। फिर उसी तरह सीधे पीछे बढाओ और फिर सीधा करलो। इसी प्रकार दाहिनी ओर बायी ओर भी करो। यह एक क्रिया हुई। इसी तरह इसको दस से बीस बार तक करो।

छाती और बाहुओ का व्यायाम—सीधे खडे होओ। कुहनिया बगल मे हो। दोनो हाथ छाती पर ऐसे रखो कि अगूठे भीतर की ओर रहे। अब तेजी से बाहो को सीधे सामने फैलाओ। फिर बगल मे फैलाओ। दोनो दशाओ मे बाहे धड से समकोण बनाती रहे। अब सीधे ऊपर ले जाओ धड की सीध में, फिर नीचे बगल मे बदन से छूते हुए सीधे लटकाओ, फिर पीछे लेजाकर हथेलियो को मिलाओ, फिर लौटाकर आरम्भ की तरह छाती पर रखो। इतनी एक क्रिया हुई। यही बार-बार करो।

हृदय, पेट और यकृत का व्यायाम—सीना आगे को निकाल कर, पेट और पेडू का भाग अन्दर को धंसा कर सीधे खडे हो जाओ। हाथ को ऊपर तान दो। अब पीछे की ओर धीरे-धीरे झुकते जाओ जब तक कि छाती और पेट के भाग सीधी रेखा मे न आजावें। प्रयत्न करना चाहिए। जल्दी और जोर की आवश्यकता नहीं है। घुटने किसी हालत मे न मुडें। हुडी सीने से लगी रखनी

चाहिए । शरीर कमर पर से ही झुकाना चाहिए । फिर धीरे-धीरे सीधे हो जाओ । और अब आगे की ओर धीरे-धीरे झुको और पृथ्वी को छूने का प्रयत्न करो । अगुलिया जमीन छूने लगे तो हथेली जमीन पर टेकने की कोशिश करो । घुटने न झुके । इस प्रकार १०-१५ बार करो, पर थकन और कष्ट का अनुभव न होने पावे । इस व्यायाम से हृदय, पेट, तथा यकृत के सभी दोष दूर हो जाते है । युवावस्था का बल-पौरुष वृद्धावस्था तक बना रहता है । शरीर पर झुरियां जल्दी नही पडती । शरीर पर अनावश्यक चर्बी नही बढती है । तथा आयु और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है ।

पीठ का व्यायाम—पैरो मे एक हाथ का फासला करते हुए हाथो को कूल्हे पर रखो फिर धड को बाए, दाये झटके के साथ घुमाओ । बाद को पूर्व स्थिति मे हो जाओ । इस क्रिया को बारम्बार करो ।

पैरों मे एक हाथ का फासला करके खडे हो जाओ । अब धीरे धीरे दोनो पैरो के टखनो को पकडो । फिर धीरे धीरे पहली हालत मे आजाओ । इसे दो चार बार करो ।

एडी मिली और पजे खुले रखकर सीधे खड़े हो जाओ । हाथो को कूल्हे पर रख लो । अब बाए पैर को आगे फेको । फिर दाये पैर को । यह क्रिया पहले धीरे धीरे बाद को तेजी के साथ करनी चाहिए । इसी प्रकार पैरो को दायें, बाए आगे और पीछे तेजी के साथ फेकना चाहिए ।

इन व्यायामो से रीढ की हड्डी लचीली बनती है और पीठ की मांसपेशियो का पूरा पूरा व्यायाम हो जाता है ।

कटि प्रदेश के अङ्गो के व्यायाम—(अ) दीवार की तरफ पीठ करके उससे १८ इञ्च दूर पैर फैलाकर खड़े हो जाओ । दोनो पैर एक दूसरे से २५ इञ्च दूर रहे । दोनो हाथ सिर के ऊपर सीधे तान दो । हाथो के पजे मिले रहे अब कमर से पीछे की ओर धीरे धीरे झुके और अगुलियो के सिरो से दीवार को छूए । कुछ क्षण इस स्थिति में ठहर कर धीरे धीरे पूर्व स्थि त मे आजाए और कुछ क्षण आराम कर फिर इसे दुहराये । शुरू मे १ वार करे और २० वार तक ले जायें ।

(ब) जमीन पर चित लेट जाये । दोनो हाथो को नितम्बो के नीचे रखो । हथेली जमीन को छूती रहे। पैरो के पजे व अगूठे तान दे और उन्हे धीरे धीरे उठाए । पैर घुटनो से मुडने न पावें शरीर से समकोण होने पर कुछ क्षण ठहरें और धीरे धीरे नीचे लाकर पूर्व स्थिति मे आजाय । कुछ क्षण आराम कर इसे दोहराये । पहले इस क्रिया को पाच बार करें फिर २० बार तक ले जायें ।
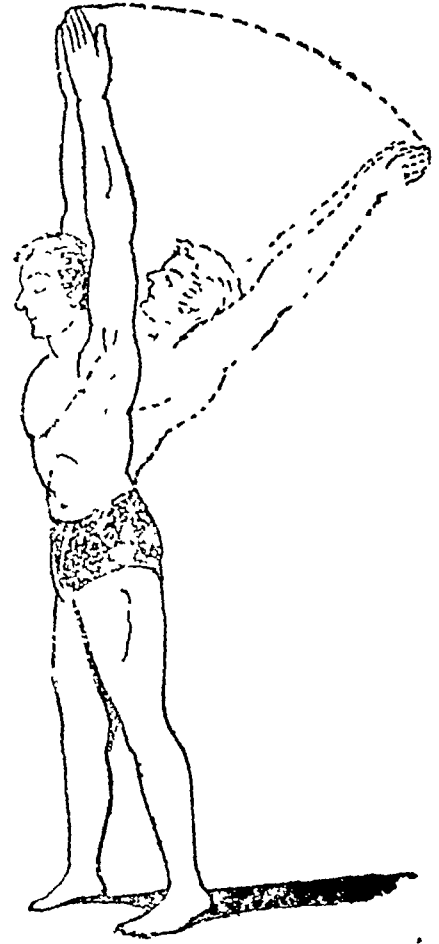
कटि प्रदेश के अंगो का व्यायाम नं० १
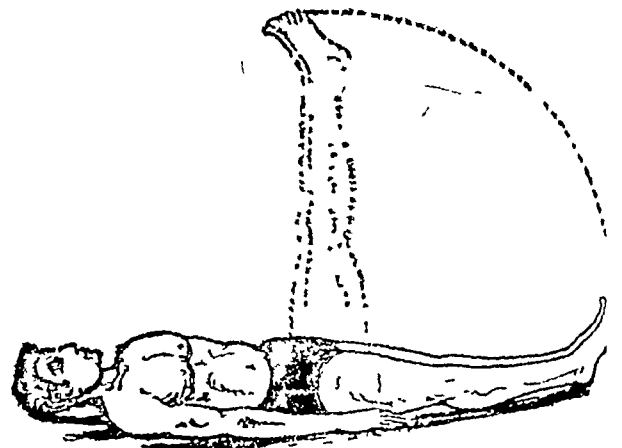
कटि प्रदेश अङ्गो का व्यायाम नं० २

ं इन कसरतो से शरीर के मध्य भाग मे स्थित मास-
ियो और नाडियो पर शक्तिवर्द्धक प्रभाव पड़ता है और
थ बनते है। देखे. चित्र।

ं पैरो और टागो का व्यायाम पहाड पर चढना पैरो
र टागो का सर्वोतम व्यायाम है। प्रतिदिन ४-५ मील
ी के साथ चलना भी बड़ा काम दे सकता है।

३-व्यायाम की सफलता मे सहायक

(अ) व्यायाम के लिये जो स्थान चुना जाय वह
ान हो या ऐसी एकान्त और खुली जगह हो जहां स्वच्छ
र शुद्ध हवा काफी मात्रा मे आती जाती हो। याद रहे
मती से कीमती यन्त्रो द्वारा कमरे मे की जाने वाली अच्छी
अच्छी कसरत भी उतनी लाभदायक नही होती जितनी
खुले मैदान मे की जाने वाली साधारण से साधारण
सरत। जिससे शरीर के प्रत्येक अवयव की कसरत हो
ती है। उदाहरणार्थ जब ९० वर्ष की अवस्था वाले
ाउन्ट फानमोलकी से पूछा गया आपने इतनी बड़ी उमर
क स्वास्थ्य और स्फूर्ति कैसे बनाए रखी ? तो उन्होने
तर दिया, 'प्रतिदिन हर ऋतु मे खुले स्थान मे निय-
मित रूप से व्यायाम करने से।' स्त्रियो के आने जाने
ी जगह पर कसरत नही करनी चाहिए।

(ब) प्राय बडे-बडे पहलवानो और कसरती
यक्तियो को ढलती उमर मे गठिया, बवासीर आदि रोगो
का शिकार बनते देखा जाता है। अधिकाश के तोद
निकल आती है और कइयो का शरीर बुरी तरह से फूल
जाता है जिससे वे भद्दे दिखने लगते है। इन सबकी खास
वजह व्यायामियो का गलत आहार-विहार और खासकर
भोजन सम्बन्धी उनकी मिथ्या धारणा है। अत व्यायामी
यदि ठूस-ठूस कर न खाय, बिना भूख लगे न खाय
तथा जो नही खाना चाहिए उसे न खाय तो वे जीवन
पर्यन्त नीरोग एव हट्टे-कट्टे रह सकते हैं। कसरत के साथ
लोग गरिष्ट भोजन जैसे रवडी, मलाई, खोआ, बादाम,
गोश्त, दूध आदि का सेवन करना आवश्यक समझते हैं,
जो बडी भारी भूल है। ऐसा करने से उन्हे लाभ के
बदले हानि ही अधिक होती है। ऐसे भोजनो से उनके
शरीर मे अजीरा और रोगवृद्धता का दीर्घारोगता हो
जाता है जो ससार की सारी बीमारियो की जड होती है।
अत व्यायामी को सदा सर्वदा सादा सात्विक एव प्राकृ-
तिक आहार करने का नियम बना लेना चाहिए जो
आसानी से पच जाया करे और शुद्ध रक्त की उत्पत्ति
करे। ऐसा भोजन मौसमी फल, शाक-सब्जी, अमृतान्न
एव दूध दही और मठा है।

(स) कसरत से पसीना आना स्वाभाविक ही नही
आवश्यक भी है और कसरत के बाद किसी बन्द कमरे
मे शरीर के पसीने को गीले कपडे से रगड़कर पोछ
डालना या ताकत रहने पर ठडे पानी से स्नान कर
डालना उससे कम आवश्यक नही है। कसरत के बाद
तुरन्त स्नान करने से किसी प्रकार की हानि पहुचने का
कोई डर नही है। हा, कसरत करने से यदि दम फूल
रहा हो तो उतनी देर अवश्य रुकना चाहिए जितनी देर
मे श्वास सम हो जाय।

जो दुर्बल है और बहुत थोड़ी कसरत करते है उन्हे
स्नान करके ही कसरत करनी चाहिए। जाडे के दिनो मे
तो उनके लिए यह आवश्यक सा है। स्नान से आई
ठन्डक इससे जायगी और शरीर की ताजगी बढ़ेगी।

(य) व्यायाम से पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए
चौथी आवश्यक बात जो है वह है व्यायाम का ठीक
ढङ्ग से और नित्य नियमित रूप से किया जाना। प्राय.
लोग जोश मे आकर व्यायाम करना तो शुरू कर देते
है, परन्तु उत्साह कम हो जाने पर उसे कुछ दिनों में छोड़
देते है। ऐसा करने से लाभ तो क्या होगा ? उल्टे हानि
ही होती है। अत जिस प्रकार पाखाने जाना, खाना और
सोना दैनिक जीवन के अङ्ग है और उन्हे अनायास ही
कर लिया जाता है, इसी प्रकार व्यायाम को भी दैनिक
कार्य-क्रम का एक अङ्ग मानना चाहिए। महीनो और
वर्षो जब एक ही तरह का व्यायाम करते करते जी
उकता जाय तो रुचि अनुसार चुने हुए कुछ दूसरे प्रकार
के व्यायामो मे पहला व्यायाम बदला जा सकता है।
पर व्यायाम में नागा करना स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित
नही है।

(र) जिस प्रकार की कसरत की जाय उसको करने
का समुचित ढङ्ग व्यायामी को सर्व प्रथम जानना अतीव
आवश्यक है। अच्छा हो यदि कसरत के जानकार या
उस्ताद की देख रेख मे अभ्यास करके पहले अभ्यास कर
लिया जाय। ऐसा करने पर लाभ अधिक होता है।

(ल) पूर्ण लाभ के लिए यह भी आवश्यक है कि शरीर को धीरे-धीरे व्यायाम का अभ्यासी बनाया जाय। एकाएक अधिक व्यायाम नही करने लगना चाहिए। गर्मी के दिनो मे व्यायाम की मात्रा कम कर देना और जाडे के दिनो में क्रमश बढा देना उत्तम है। कसरत हर हालत मे उतनी ही करनी चाहिए जिससे शरीर को थकावट न महसूस हो, अपितु उसके बदले आनन्द और ताजगी प्रतीत हो।

कसरत के सम्बन्ध मे 'Exercise in education and medicine' नामक पुस्तक मे मि. ट्रेट मेकेन्जी लिखते है कि शरीर के किसी एक अङ्ग की कसरत अगर ५ मिनट तक की जाय तो उससे लाभ पहुँचता है, लेकिन अगर ५ मिनट से अधिक समय तक की जाय तो उससे शरीर के उस अङ्ग मे थकान पैदा होती है जिस का वह व्यायाम होता है। उस वक्त शरीर के उस भाग मे एक प्रकार का अम्ल (Sclolactic acid) उत्पन्न होकर थकावट पैदा हो जाती है, जिस अम्ल को यदि बाहर न निकाल दिया जाय तो वह मनुष्य की देह मे विष का काम करता है। शरीर मे इसी विष की अधिकता होने पर कभी-कभी अधिक कसरत करने वाले व्यक्तियो की हृदय गति बन्द होजाने की वजह से मृत्यु हो जाने के भी उदाहरण मिले है। पहलवानो के आमतौर पर अल्पायु होने मे यही विष कारण होता है।

(व) व्यायाम समाप्त करते ही या व्यायाम करते समय भोजन नही करना चाहिए। व्यायाम करने के आध या पौन घटे बाद भोजन कर सकते है। भोजन करने के कम से कम तीन घटे बाद व्यायाम करना उचित है। क्योकि व्यायाम के समय पेट न तो भरा ही होना चाहिए और न एक दम खाली ही।

(श) व्यायामी को गाजा, भांग, शराव, ताड़ी, खैनी, तम्वाकू आदि दुर्व्यसन नही होना चाहिए और उसे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अवश्य करना चाहिए।

(ष) व्यायाम करते समय शरीर पर कोई वस्त्र नही रखना चाहिये। केवल जाघिया या लगोट धारण करना चाहिए। लगोट व्यायाम करने के बाद उतार देना चाहिए।

(स) व्यायाम का समय सबसे अच्छा प्रात काल है। सायकाल को भी व्यायाम किया जा सकता है। कोई-कोई व्यायाम-विशारद हल्की धूप मे कसरत करना ल... बताते है।

(ह) व्यायाम के समय व्यायामी का मन अत्यन्त शात और प्रसन्न होना चाहिए। साथ ही साथ शरीर के जिस भाग को व्यायाम द्वारा अधिक पुष्ट बनाना हो की ओर अपने मन की पूरी पूरी एकाग्रता रखनी चा... मन मे यदि उत्साह नही है तो जबर्दस्ती व्यायाम क... उतना लाभ नही हो सकता। व्यायाम का पूरा पूरा उठाने के लिये चित्त की दृढता, धैर्य, और सामर्थ्य दरकार हैं।

(क) व्यायामी को प्राणायामी भी अवश्य ... चाहिए। उसे २४ घटो मे दो वार प्राणाया... अभ्यास जरूर करना चाहिए। व्यायाम के समय भी गहरी सास लिए व्यायाम को सफल नही समझना च... व्यायाम करते समय केवल नाक से ही सास लें।

(ख) व्यायाम करने के बाद यह जरूरी है कि आराम कर लिया जाय तब कोई काम लिया जाय... याम के बाद फौरन लिखना-पढना या कोई दिमागी ... तो अवश्य ही नही करना चाहिये।

(ग) व्यायाम के बाद बदन की मालिश उसका ... है। अत. इसके बिना व्यायाम अधूरा ही रह जाता ...

कौनसा व्यायाम करें ?

यह तो स्पष्ट ही है कि जो व्यायाम ... के लिए लाभदायक है, वह युवको के ... नही और जो युवको के लिये ठीक है, वह वृद्धो ... स्त्रियो के लिए नही। इसी तरह जो व्यायाम युव... वृद्धो के लिऐ उपयुक्त है वह बच्चो या स्त्रियो के ... उपयोगी नही हो सकता है।

बच्चो और छोटे लड़को के लिए खेल-कूद वाले हल्के किस्म के व्यायाम निश्चय ही लाभप्रद हैं। बडे ... के लिये जरा उनसे कठिन व्यायाम उपयोगी होगे। सभी प्रकार के व्यायाम अपनी रुचि के अनुसार कर ... हैं। बूढो के लिए सबसे अच्छी कसरत टहलना है। खेना वागवानी आदि भी वे लाभ के साथ कर सक... जो बूढे शुरू से कसरती रहे हो, वे कसरतो की मात्रा मे आगे भी जारी रख सकते हैं। स्त्रियो के अलग ही व्यायाम हैं, जिनका जिक्र आगे किया गया ...

यक्ति विशेष के लिए उसके व्यवसाय और पेशा आदि ष्टि मे रखकर भी व्यायाम का चुनाव करना पड़ता षक-वर्ग, मजदूर वर्ग, दूकानदार-वर्ग, तथा आफिस म करने वालो के लिये अलग अलग एव विभिन्न के व्यायाम लाभकारी सिद्ध हो सकते है। मजदूरो किसानो को तो ऐसी कसरतें करनी चाहिये जिनसे शरीर का शिथिलीकरण अधिक हो और परिश्रम रण शरीर में उत्पन्न हुये विष को बाहर निकाल जा सके। इस तरह से यह बात स्पष्ट हो जाती है क मजदूर, एक दूकानदार (एक किसान), एक दफ्तर बाबू, एक बे काम का मनुष्य—सभी एक तरह की कसरके लाभ उठाना तो दूर, हानि भी उठा सकते है।

अपने लिये कसरत चुनते वक्त मनुष्य को यह भी ना चाहिये कि वह जो कसरत चुनता है उससे शरीर भी भागो पर जोर पड़ता है या नही। कारण प्रकृति यह नियम है कि जिस अ ग से हम अधिक काम लेते ह अधिक विकसित और पुष्ट हो जाता है अतः यदि ऐसी कसरत करेंगे जिससे कुछ खास अ गो पर ही पडता है तो हमारे बाकी अंग कमजोर ही रह गे और इस तरह से हमारा शरीर सुडौल बनने के य बेडौल हो जायगा।

कसरत चुनते वक्त हमे यह अवश्य विचार करना ये कि हमारे शरीर की गठन कैसी है ? हम क्या ते है ? किस अ ग को शक्तिशाली एव बलवान बनाना र उसके लिये कौन कौन से व्यामाम हितकारी होगे ? हम यह सब सोच विचारकर अपने लिये कसरत तो हमे निराशा न होगी और हमे व्यायाम का पूरा लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

यायाम का निषेध-

शरीर की आवश्यकता से अधिक व्यायाम प्रत्येक दशा में वर्जित है। अधिक ाम करने से शरीर मे खुश्की बढती है, तृषा का रोग ता है, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, ग्लानि, खासी आदि के य रोग हो जाते है। इसी प्रकार अत्यन्त कमजोर क्षयग्रस्त हृदय रोग से पीड़ित, मिर्गी वाला, आत उन्माला रोगी, हड्डी टूटा हुआ रोगी, जो हाल ही मे की र चुका है तथा जो वात रोग से आक्रान्त है ऐसे व्यक्तियो के लिए व्यायाम वर्जित है। गर्भवती को ऐसा व्यायाम नही करना चाहिये जिससे गर्भाशय को धक्का पहुँचे। बालक बालिकाओ को कठिन व्यायाम कदापि नही करना चाहिये। कहते है कि जो लड़के सर्कस आदि मे अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम के करतब दिखाया करते है उनकी आयु बहुत कम होती है।

६-स्त्रियों के व्यायाम-

व्यायाम स्त्रियो के लिये भी उतना ही आवश्यक है जितना कि पुरुषो के लिये। परन्तु पुरुषों के कतिपय व्यायाम स्त्रियो के लिये लाभप्रद नही हो सकते। कारण स्त्री और पुरुष के स्वभाव और शरीर की बनाबट मे बहुत अन्तर होता है। पुरुष शरीर की मासपेशिया स्त्री की अपेक्षा कुछ कडी होती है क्योकि कठोर कार्य के लिये प्रकृति द्वारा उनका वैसा निर्माण हुआ है। अत स्त्रियो को वे ही व्यायाम अपने लिये चुनने चाहिये जो अपेक्षाकृत आसान हो। व्यायाम जितना सरल तथा स्वाभाविक होगा और उसमें जितनी कम जटिलतायें होगी वह उतना-ही अधिक लाभप्रद होगा।

एक जमाना था जब हमारी स्त्रियो के पास घर मे ही इतना अधिक कार्य रहता था कि उनको करते हुए उनके सम्मुख किसी अन्य व्यायाम का प्रश्न ही नही उपस्थित होता था। घर का सभी काम—घर की सफाई से लेकर कुए से पानी भरने तक उन्हे अपने हाथो ही करना पडता था। किन्तु अब तो स्त्रियो का जीवन कुछ दूसरे ही प्रकार का है। पर गाव की स्त्रियो की दशा इस सम्बन्ध मे शहर की स्त्रियों से अब भी बहुत अच्छी है जो सर्व विदित है। यही कारण है जो उनका स्वास्थ्य बिना किसी प्रकार का व्यायाम किये ही शहर की स्त्रियों की अपेक्षा लाख दर्जे अच्छा है। अत स्त्रियो के लिए सर्वोत्तम व्यायाम तो अपने घर का सारा काम धाम करना, चक्की में आटा पीसना, ओखल मे धान कूटना, दही मथना, चर्खा कातना आदि ही है। पर जो स्त्रिया यह सब न कर सके उनके लिये कुछ व्यायाम नीचे दिये जाते हैं।

(क) सिर के नीचे दोनो हाथ रखकर चटाई पर चित लेटो। टागें सीधी पसरी हो। अब दाहिनी टाग

अत्यन्त धीरे धीरे जितनी ऊंची हो सके उठाओ। घुटने बिलकुल सीधे रहे। दाहिनी टांग धड़ से समकोण बनावे। फिर धीरे-धीरे दाहिनी टांग को अपनी पहली अवस्था मे लाओ। फिर बांयी टाग से यही क्रिया करो। यह एक क्रिया हुई। शक्ति के अनुसार इसे बार-बार करो।

(ख) जमीन पर चित लेटो। घुटने ऊपर उठे होगे और पैर जमीन पर होगे। बाहो को सीने पर एक दूसरे के ऊपर मोड लो। अब बीच मे धड को ऊपर उठाओ और फिर वापस ले जाओ। इस तरह ६से१२वार करो। कुछ अभ्यास के बाद धड को उठाते समय सास लो और जमीन पर वापस ले जाते हुए सास निकालो।

(ग) जमीन पर बैठो, हाथ पीछे जमीन पर होगे, दोनो पैर सामने एक साथ रहेगे। कमर और बीच की धड को, सिर पीछेकी ओर करते हुए पीछे के हाथो के सहारे उठाओ और सास लेनी जाओ। फिर सास छोड़ते हुए पहली अवस्था मे आजाओ। यह एक क्रिया हुई। इसे ३ से १२ वार धीरे-धीरे करो।

(घ) जिन स्त्रियो को सुविधा होवे प्रात साय दो-तीन मील तक बाहर मैदान मे शुद्ध वायु सेवन के लिए तेजी से टहल लिया करे। यह किसी भी अच्छे व्यायाम से कम नही है।

७—व्यायाम से रोग-निवारण—वायु चिकित्सा के अन्तर्गत व्यायाम रोग-निवारण का एक उपाय माना गया है। व्यायाम से शरीर के भीतर पहले से जमे मल और विष उभर कर पसीने आदि के रास्ते बाहर निकल जाते है। पुराने रोगो मे जब उपवास और फलाहार के बाद रोगी को काफी ताकत हो जाती है तो एक प्राकृतिक चिकित्सक उसे शक्ति भर कसरत करने की राय देता है जिससे उसके रोग जल्द अच्छे हो जाते है। नये रोगो मे तो प्रकृति आराम करने को विवश करती है, इसलिए उन हालतो मे रोगी को कसरत करने की राय नही दी जाती। जिन रोगो मे रोगी खाट पकड लेता है या अङ्ग सञ्चालन वर्जित हो जाता है, उनको छोड़कर प्राय सभी रोगो मे अन्य चिकित्सा-विधियो के साथ व्यायाम भी एक अनिवार्य चिकित्सा-विधि की भांति ही चलाई जाती है। पर यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि किस रोग मे किस तरह का व्यायाम उपयोगी हो सकता है। क्योकि एक ही तरह का व्यायाम सभी रोगो मे उपकारी नहीं हो सकता।

—०—

योगासन या योग-चिकित्सा

(१) आसन और उनकी रोग-निवारण-शक्ति योगाचार्यो के मत से चिरकाल तक निश्चित होकर एक स्थिति मे बैठने आदि का अभ्यास करना 'आसन' कहलाता है। यौगिक आसन वस्तुत हैं तो एक प्रकार के व्यायाम ही, किन्तु अन्य शारीरिक व्यायामो की अपेक्षा ये पूर्णतया वैज्ञानिक हैं जिनको भारतीय महर्षियो ने मानव-जाति को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिये हजारो वर्षो तक सपरिश्रम अन्वेषण और प्रयोग करके निकाला है। इन आसनो का उपयोग प्रायः अधिकतर रोगो को अच्छा करने के लिए ही किया जाता है जो अचूक बैठता है। वैसे तो ये आसन प्रत्येक अवस्था मे लाभ करते है और कमजोर से कमजोर तथा वृद्ध मनुष्य भी इनसे लाभ उठा सकते हैं, पर नौ वर्ष से कम उमर वाले बच्चे यदि आसनो का अभ्यास न करे तो ठीक है। कारण बच्चो के शारीरिक अवयव उस समय तक पूर्ण रूप से विकसित नही हुए रहते। साथ ही वे अत्यन्त कोमल होते है।

आसनो से असाध्य और पुराने से पुराने रोग तो दूर होते ही है, इसके उपरान्त यदि कोई इन आसनो को अन्य यौगिक क्रियाओ के साथ विधिपूर्वक करता रहे और उसकी मृत्यु किसी दुर्घटना के कारण यदि बीच में ही न हो जाय तो कोई कारण नही कि वह अमरत्व तक को न प्राप्त कर सके। क्योकि आसनो के प्रभाव से शरीर का मल वा विष जोकि मृत्यु का कारण होता है दूर हो जाता है और काया निर्मल और दिव्य बन जाती है।

यो तो आसनो की महिमा अवर्णनीय है और इनके गुण भी अनगिनत है। फिर भी उनके कुछ मुख्य-मुख्य गुणो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न नीचे किया जाता है—

(१) आसनो के करने से रीढ और रीढ की अस्थिया जो शरीर के समस्त ज्ञान तन्तुओ के क्रिया-कलाप पर नियन्त्रण रखती है, लचीली बनती हैं और स्थानच्युत या टेढी-मेढी नही होने पाती, जिसके

रूप आदमी जल्द बूढा नही होने पाता ।

(२) आसनो से शरीर स्थित अन्त स्रावी ग्रन्थियां जातीय द्रव्य वा विष से शून्य होकर अपना काम अच्छी तरह करने लगती है, जिससे उनकी रोग प्रतिरोध-शक्ति बढ जाती है, फलत मनुष्य सदा-सर्वदा नीरोग और स्वस्थ बना रहता है ।

(३) आसनो से फेफड़ो की सजीविता का ह्रास नही होने पाता, श्वास क्रिया का नियमन होता है, रक्त शुद्ध होता है, रक्त और बनता है, मन मे स्थिरता और शान्ति आती है तथा सकल्प शक्ति बढती है ।

(४) आसनो से शरीर की रक्त-वाहक धमनिया कडी नही होने पाती जिससे हृदय को बल मिलता है और जिसकी वजह से उसका कार्य अबाध गति से चिरकाल तक चलता रहता है ।

(५) आसन शारीरिक मास-पेशियो को बल प्रदान करते है और दुबले आदमी को स्वस्थ और मोटा तथा मोटे आदमी को स्वस्थ एव पतला बनाते हैं ।

(६) आसन से मेरुदन्ड स्थित कुन्डलिनी को जाग करने मे सहायता मिलती है, जिससे मस्तिष्क तरोताजा बना रहता है और धारणा शक्ति को स्फूर्ति मिलती तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तिया जागृत होती है और आत्मसुधार के साधन आपसे आप आ जुटते हैं ।

(७) आसनो से पाचन-सस्थान पुष्ट होते हैं और पेट की पूरी सफाई होती रहती है ।

(८) आसन मन और शरीर—दोनो को सम्पूर्ण एवं स्थायी स्वास्थ्य प्रदान करते है ।

(९) आसन विधि मे सरल, वास्तविक, प्रभावशाली, कम से कम समय मे अधिक से अधिक लाभ देने वाले तथा बिना किसी बाहरी सहायता एव खर्च आदि के अपने आप किये जाने वाले होते हैं ।

(१०) आसन स्त्रियो की शरीर-रचना के भी विशेष अनुकूल होते है । ये उनमे सुन्दरता, सम्यक विकास स्फूर्ति एव अन्य स्त्रियोपयोगी गुण उत्पन्न करते हैं ।

आसन चिकित्सा, वायु चिकित्सा के अन्तर्गत प्राकृतिक चिकित्सा का एक अग है । कहना चाहें तो कह सकते हैं कि बिना योग चिकित्सा के प्रयोग के प्राकृतिक चिकित्सा पूर्ण ही नही हो सकती । योग चिकित्सा मे जो सबसे बडी खूबी देखने मे आयी है वह यह कि इसमें रोगो का उभाड होने की कोई सम्भावना नही रहती । इसके अतिरिक्त इस चिकित्सा विधि से जो लाभ उठाया जाता है वह अन्य चिकित्सा प्रणालियो द्वारा प्राप्त लाभकी अपेक्षा अधिक स्थायी होता है ।

(२) आसन के प्रकार, विधि एव लाभ—योतो आसनो की सख्या उतनी है जितनी ससार मे योनिया है परन्तु हठ योग मे ८४ योगासनो का उल्लेख है जिसमे से चार आसन समासन, पद्मासन, सिद्धासन, तथा स्वस्तिकासन ध्यानात्मक है और शेष व्यायामात्मक । प्रत्येक आसन के करने के अलग अलग लाभ है और आसन कई प्रकार से किये जाते है । आसनो का प्रयोग केवल मनुष्य ही नही करते अपितु पशु पक्षी भी करते है और लाभ उठाते है । बिल्ली जब सोकर उठती है तो सर्व प्रथम चारो पैरो पर खडी हो कर पेट के भाग को ऊचा करके अपने पीठ को खीचती है, यह एक प्रकार का आसन है जिसे वह करके लाभ की आशा करती है । इसी प्रकार जब कुत्ता अपने अगले और पिछले पावो को आगे फैलाकर अपने शरीर को एक प्रकार से तानता है, तो वह एक प्रकार का आसन ही करता है जिससे उसकी सुस्ती दूर हो जाती है और वह चुस्त हो जाता है । कुत्ता बिल्ली के अतिरिक्त बन्दर रीछ, गिलहरी, तोता, साप, ऊट आदि सभी पशु पक्षी कोई न कोई आसन नित्य करते है । ऐसा लगता है कि भारत के प्राचीन आसन विशेषज्ञो को प्रचलित आसनो के अन्वेषण मे पशु पक्षियो के अग विक्षेपो से बहुत कुछ सहायता मिली है क्योकि आसनो मे अधिकाश आसनो के नाम किसी न किसी पशु पक्षी के नाम से ही आरम्भ होते है । जैसे सर्पासन, मत्स्यासन, मयूरासन, बकासन, शलभासन, वृश्चिकासन, हनुमानासन, गरुणासन, सिंहासन, आदि ।

नीचे प्रथम कुछ उपयोगी व्यायामात्मक आसनो की विधिया एव उनके लाभ सक्षेप मे लिखे जाते हैं ।

शीर्षासन

विधि—किसी दीवार के पास जमीन पर दो फीट लम्बी और दो फीट चौडी कम्बल आदि की मुलायम गद्दी बिछावे । मोटे कपडे की पांच सात तह की हुई गद्दी भी ठीक रहेगी । अब हाथो को कुहनियां तक अर्थात् बाह का अगला भाग गद्दी पर रखें और घुटने जमीन पर टेक

सामने दीवार होगी। अब एक हाथ की उगलिया दूसरे हाथ की उगलिया मे फसाकर दोनो हथेलिया को बाध लें और आगे को सर झुकाकर उसे गद्दी पर इस तरह ले आये कि सर का पिछला भाग हथेलियो मे आजाय। तत्पश्चात सर के बल शरीर का बोझ डालकर धड़ को ऊपर उठावे। धीरे धीरे टागो को ऊपर लेजाये यहा तक कि शरीर सीधा तन जाय और ऊपर से नीचे तक एक सरल रेखा सी बन जाय। ऐसा करने मे दीवार की सहायता ली जासकती है। अ त मे धीरे धीरे टागो को नीचे ले आकर पहली स्थिति मे आजाये फिर थोडी देर के लिये एक दम सीधे खडे रहे। तत्पश्चात जितनी देर तक शीर्षासन किया है उससे कुछ अधिक देर तक (परन्तु आधा घ टा से अधिक नही) शवासन करे। शवासन का विवरण आगे देखे।

शीर्षासन प्रति सप्ताह एक मिनट के हिसाब से बढा कर धीरे धीरे १५ मिनट तक किया जा सकता है। सर्व साधारण के लिये यही यथेष्ट है।
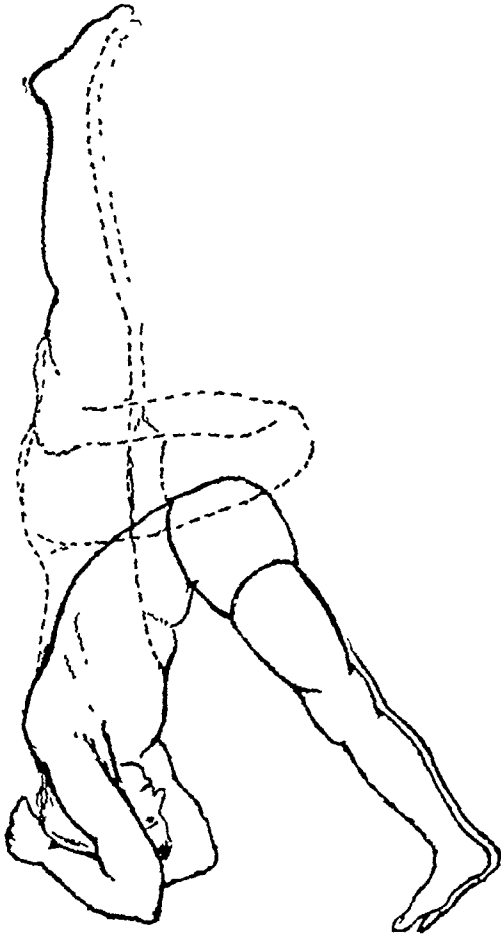
शीर्षासन नं २
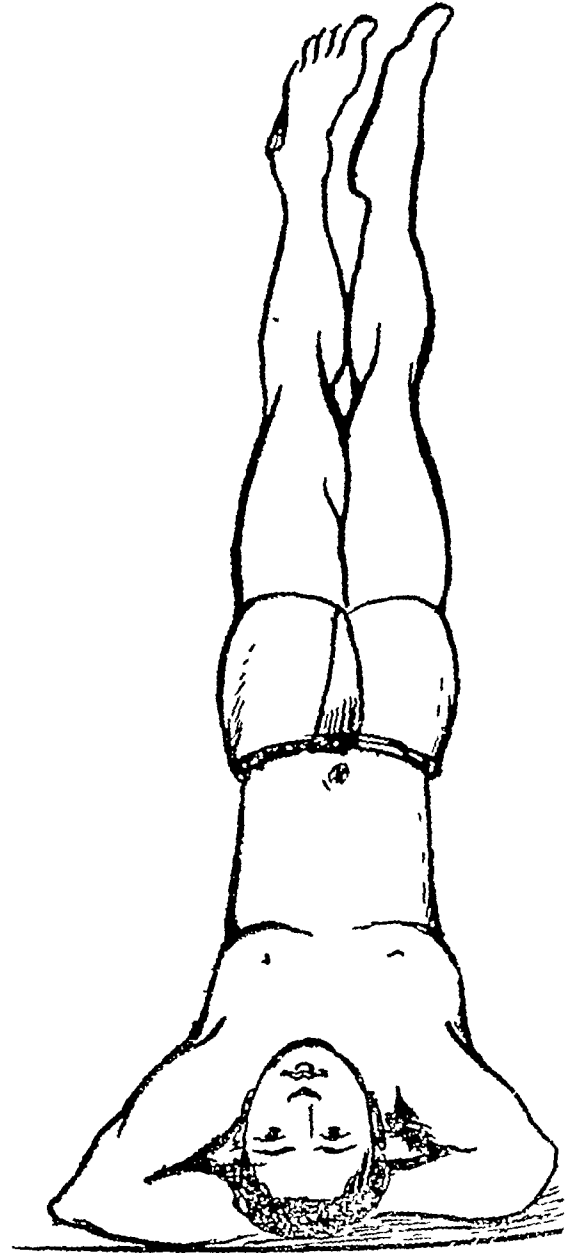
शीर्षासन नं० १

सावधानी—इस आसन के करने मे गलती हो जाने लाभ के बदले हानि हो जाने की बराबर सम्भावना है। कभी-कभी तो मनुष्य पागल तक होता देखा गया है आखो की रोशनी भी कम हो सकती है, तथा कई दोषो के हो जाने का बडा डर रहता है। मस्तिष्क, ना कान, आख तथा दिल के रोगियो को यह आसन वर्जित है। इस आसन के करने के आध घटा पहले बाद कोई और व्यायाम करना भी मना है। मलावरो मे भी यह आसन नही करना चाहिए। शौच जाने के और भोजन के तुरन्त बाद यह आसन कभी नही करना चाहिए। एक ही समय में लगातार दो बार यह।

मी न करे। इस आसन को करते समय सर को र बार उठाना या पैरो को हिलाना ठीक नही। यदि णायाम करना हो तो उससे पूर्व शीर्षासन कर लेना हिए। शीर्षासन के अभ्यासी को सादा-सात्विक आहार ना चाहिए। आसन के तुरन्त बाद हाथ मुह धोना ाना, तेज हवा मे घूमना हानिकारक होता है। स्नान रने के तुरत बाद भी शीर्षासन नही करना चाहिए। दे इस आसन के अभ्यास के कुछ दिनो मे लाभ के बदले सी प्रकार की हानि की अनुभूति हो तो अभ्यास बद रके केवल दूध, घी और फल का सेवन करते हुए कुछ नो तक आराम कुर्सी पर पड़ा रहना चाहिए। दोष र हो जावेगे।

लाभ—समस्त आसनो का शिरोमणि शीर्षासन यदि धिवत् किया जाय तो उससे इतने लाभ होगे कि उनको पिवद्ध नही किया जा सकता। मोटे-मोटे लाभ हैं—

भूख लगती है और पाचन ठीक होता है। सर दर्द या ई भी मस्तिष्क-विकार कभी नही होता। शरीर हल्का ीला, सुडौल, कातिमय, एव सुन्दर दिखने लगता है। ायु की वृद्धि होती है। धातुक्षीणता और स्वप्नदोष दूर ते है। रक्त शुद्ध होता है। बाल काले बने रहते हैं और दे वे सफेद हुए तो काले हो जा सकते है। अच्छी नीद ाती है। बुढापा जल्द नही आता। शीर्षासन से शरीर ा रक्त सर की ओर से तेजी से प्रवाहित होता है जिससे रीर का प्रत्येक अवयव शक्ति प्राप्त करता है। फलत. ायु दौर्बल्य, मन्दाग्नि, कब्ज, गले के रोग, यकृत और ीहा की दुर्बलता, आतो की कमजोरी एव उनका नरना तथा स्त्रियो का बाझपन आदि रोग पास फटकने ही पाते और यदि वे हुए तो दूर हो जाते है। इस ासन से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है। नाद ैरो से उठने लगता है, और मन को एकाग्रता प्राप्त ोती है।

सर्वांगासन

विधि—स्वच्छ बिस्तरे पर पीठ के बल लेट जाइये। ाथ बगल मे रहे और पैर सीधे। बदन को ढीला छोड़ । अब दोनों पैरो को धीरे-धीरे ऊपर उठाइये। जब पैर मीन से ३० का कोण बनाने लगे तब वहां पर पाच केण्ड के लिए रुकिये। अब पैरो को फिर उठाइए और जब ५०° का कोण बनने लगे तब फिर पांच सेकेण्ड के लिए रुकिए। इसी प्रकार जब ६० का कोण पैर बनने लगे तो फिर पाच सेकेण्ड के लिए रुकिये। अब पैरो को बिलकुल सीधा रखते हुए सिर की ओर उन्हे लाइए, यहा तक कि वे १२० का कोण बनाने लगे। इस अवस्था में पैरो को ऊपर की ओर ले जाये जहा तक सम्भव हो पैर और धड दोनो को एक सीध मे रखे और धड को दोनो हाथो से सहारा दे। यही सर्वाङ्गासन है। अब आप उसी क्रम से उन जगहों पर रुकते हुए वापस जाए, और अपनी पूर्वावस्था मे हो जाये। चित्र देखिये।

सर्वाङ्गासन के बाद उतनी ही देर तक शवासन करके शरीर को आराम देना चाहिये जितनी देर तक सर्वाङ्गासन किया गया है।

सर्वाङ्गासन को पहले दिन आधा मिनट से आरम्भ करके और प्रत्येक सप्ताह आधा-आधा मिनट बढाते हुए
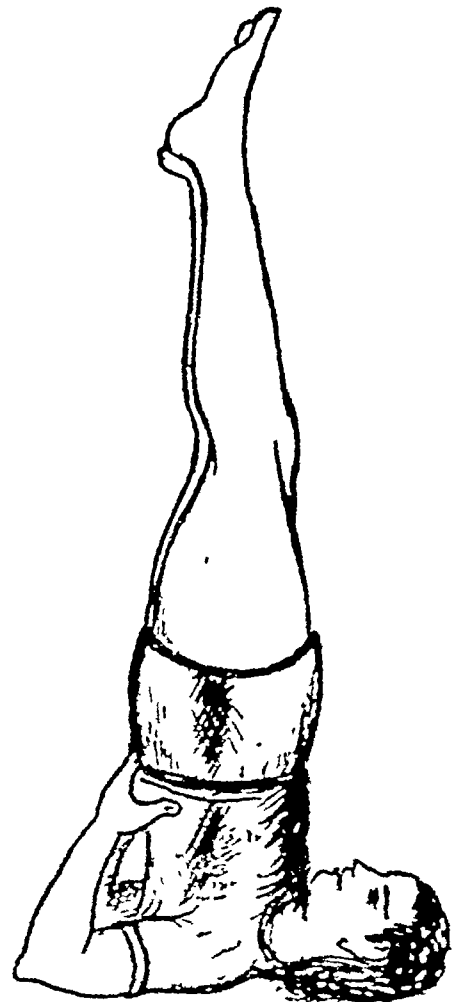
सर्वाङ्गासन

धीरे-धीरे ६ से १२ मिनट तक किया जा सकता है ।

जिन व्यक्तियो की आख, कान, वा हृदय का रोग हो, अथवा जिनका रक्तचाप अधिक रहता हो, उनको यह आसन नही करना चाहिए ।

लाभ—वीर्य-दोष को दूर करता है । गले के ऊपर के अवयवो को नीरोगता और पुष्टता प्राप्त कराता है । कब्ज, मन्दाग्नि, प्लीहा, और यकृत-दोष की एक ही दवा है । हृदय को विश्राम मिलता है, जिससे वह बलवान होता है । रक्त शुद्ध होता है । यह आसन चू कि कण्ठमणि (Thyroid Gland) को स्वस्थ बनाने का सर्वाधिक शक्तिशाली साधन है, इसलिए इससे शरीर के लगभग सभी अवयव लाभान्वित होते है । क्योकि शरीर मे कण्ठमणि के ठीक दशा मे रहने का अर्थ है शरीर के समस्त अङ्गो का शक्तिशाली बनना ।

मत्स्यासन

विधि—आसन पर पैरो को फैलाकर बैठ जाइए । दोनो हाथ जमीन पर बगल मे रहे फिर दोनो पैरों को मोड़कर पद्मासन लगाइये । दोनो जघे जमीन से सटे रहेगे । अब कोहनियो को पीछे की ओर जमीन पर बगल मे लाइए और शरीर को पीछे की ओर झुकाइये । भार कोहनी पर होगा । ऐसा करने से सारा धड़ जमीन पर आजायगा । अब दोनो तलहथियो को कान के पास जमीन पर लाइये । हाथ पर वजन देकर सिर को पीठ की तरफ जितना पीछे ले जा सके ले जाइये । अब समूचे धड का बोझ सिर पर होगा । अब दोनो हाथो से पैरो के अगूठो को पकडिये । कोहनी जमीन पर ही रखे । यह मत्स्यासन है । देखिये चित्र पूर्वावस्था मे आने के लिये धड़ का भार कोहनी पर देकर उठ जाइए और धीरे से सीधे बैठ जाइए ।
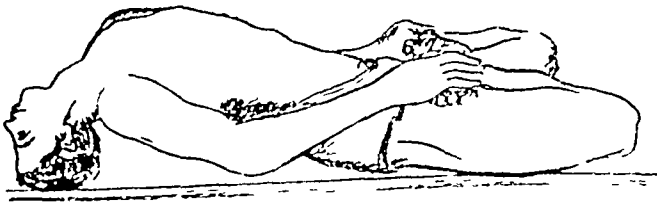
मत्स्यासन

यह आसन सर्वाङ्गासन का पूरक है। इसीलिए सर्वाङ्गासन करने के बाद इसे जरूर करना चाहिए । ऐसा करने से पूरा पूरा लाभ होता है । पर जितनी देर तक सर्वाङ्गासन किया जाय, उसका चौथाई समय इस आसन के करने मे देना चाहिये । इस आसन से मनुष्य जल पर मछली की तरह तैरता रह सकता है ।

लाभ—इसमे लगभग वे ही लाभ होते है जो सर्वाङ्गासन के करने से । पर पीठ और पेट की मासपेशियों के साथ साथ गर्दन और जघो का बढिया व्यायाम इस आसन की विशेषता है ।

पश्चिमोत्तानासन

विधि—आसन पर चित्त लेट जाइये । हाथो को सिर के पीछे ले जाइये । अब बिना सहारा लिये झटका दिये धीरे-धीरे धड को उठाइये साथ ही हाथो को भी उठाते हुये पैरो पर झुक जाइये । माथा घुटनो से लगा दीजिये । हाथो से पैरो के अगूठे पकड लीजिए । ध्यान रहे कि आगे झुकते समय घुटने जमीन से उठने न पाये । इस अवस्था मे यथासम्भव २–४ सेकेण्ड रहिए, फिर अगूठे को छोड़ कर पूर्ववत् चित्त लेट जाइए । ऐसा धीरे-धीरे करना चाहिए । आगे झुकते समय सास निकालना, तथा पीछे झुकते समय खीचना चाहिए । ऐसा तीन चार बार कीजिए । (देखिए चित्र)
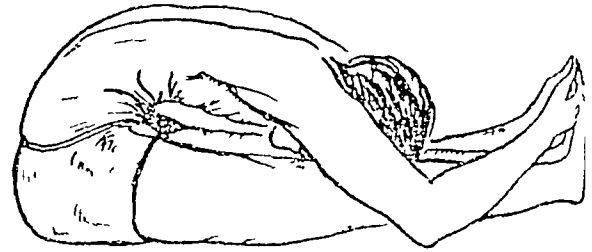
पश्चिमोत्तानासन

आसन के करने मे जबर्दस्ती हरगिज नही होनी चाहिए बल्कि धैर्य धारण करके अभ्यास जारी रखना चाहिए । इसी आसन को बजाय लेट कर करने के जब खडे होकर किया जाता है तो उसे पाद हस्तासन कहते है ।

लाभ—इस आसन से कोष्ठ की समस्त पेशियों का साधारणत और पीठ तथा छाती की पेशियो का विपरीत सकोचन होता है । अपान वायु की गति निम्न हो जाती है, अत शौच साफ होने लगता है और रोगों के घर कब्ज दूर हो जाता है, हृदय अपना काम ठीक और

लगता है। जोडो का दर्द, मधुमेह, तथा स्त्रियो के शय सम्बन्धी रोगो मे यह आसन बडा लाभ करता पीठ का मेरुदण्ड और सुषुम्ना नाडी जो कि शरीर नायु-जाल का केन्द्र है ठीक रहती है। तिल्ली यकृत गुदा निर्दोष होते है। शरीर पर अनावश्यक चर्बी नही होने पाती। कृमि विकार दूर होता है। जिनके पेट र निकल आए हो उनके लिए यह आसन बडा म करता है। नाभि टलने की हालत मे इस आसन से लाभ होता है।

हलासन

विधि-आसन पर पीठ के बल लेट जाइये। दोनों हाथ ल मे होगे। अब सर्वाङ्गासन की तरह दोनो पैरों को थ-साथ और सीधा रखते हुये ऊपर की ओर ३०,६०, ०, और १२० के कोणो पर रोकते हुये उठाइये और न्हे धीरे-धीरे पीछे सिर की ओर लेजाइये यहा तक कि पैर पजे जमीन को छूने लगें। तत्पश्चात पैरो को थोडा र आगे बढाइये। ऐसा करने से कमर का भाग ठीक र के ऊपर आजायगा। अन्तिम अवस्था मे दोनो हाथ सिर के ऊपर होगे और उ गलिया मिली होगी, तथा ठुड्डी कण्ठ के गढ्ढे मे अच्छी तरह जम जायगी। पूर्वावस्था मे आने के लिये पहले हाथो को सिर से हटाकर सीधे जमीन पर लाना चाहिये, और पैरो को जिस प्रकार धीरे धीरे रोकते हुये लाया गया था उसी प्रकार वापस ले जाना चाहिये।

आरम्भ मे इस आसन को उतना ही करना चाहिये जितना कि आसानी से किया जा सके। जबर्दस्ती भूल से नही करनी चाहिये। (चित्र देखिये) यकृत और प्लीहा
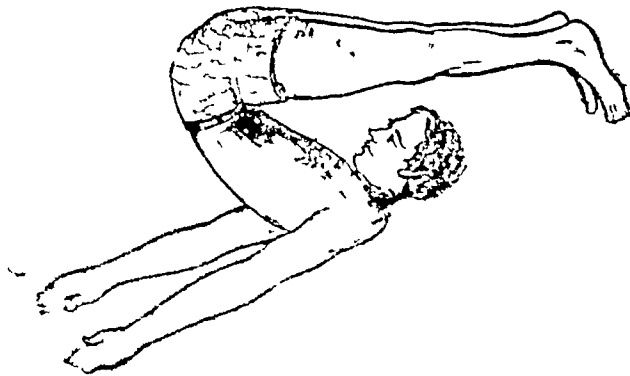
हलासन चित्र नं० १
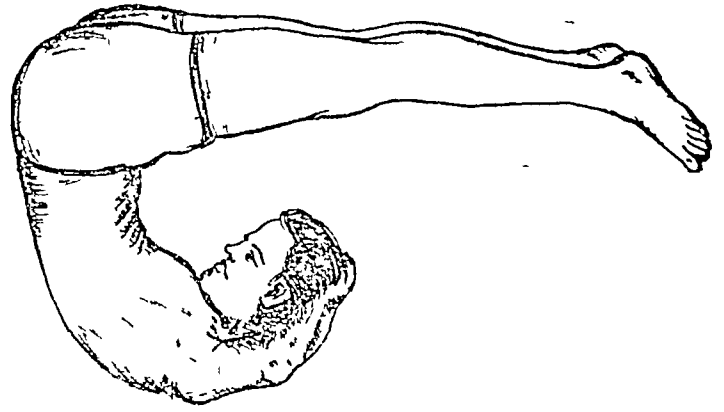
हलासन चित्र नं० २

की बढी हुई अवस्था मे यह आसन नही करना चाहिये।

लाभ—शरीर की सभी नाडिया और अंग-प्रत्यङ्ग सबल बनते है। पीठ और पेट की पेशिया मजबूत होती है कब्ज दूर होता है। यकृत और प्लीहा के सभी रोग चले जाते है।

भुजङ्गासन

विधि—पैर फैलाकर मुंह के बल पट लेट जाइए। शरीर ढीला छोड दीजिए। टागें सटी हो और तलवे बाहर की ओर दिखाई देते हो। घुटने और जांघें जमीन से भी सटी हो। हाथ कुहनी तक धड़ से सटा हो और हथेलिया कन्धों के नीचे जमीन से लगी हुई हो। अब ठुड्डी को उठाते हुए सिर को पीछे ले जाइये। ठुड्डी को इस तरह उठाइये कि उसका और नाक का सिरा दोनो जमीन से छूते हुए ऊपर उठें। सिर को काफी दूर पीछे ले जाने के बाद उसे उसी अवस्था मे रखते हुए पीठ की मास पेशियो को सिकोडते हुए सीने को ऊपर उठाइये। उस वक्त नाभि तक का भाग जमीन से लगा रहेगा और धड़ का शेष भाग हथेलियो के सहारे जमीन पर रहकर पीछे भी तना रहेगा। कुछ क्षणो तक सिर और पीठ
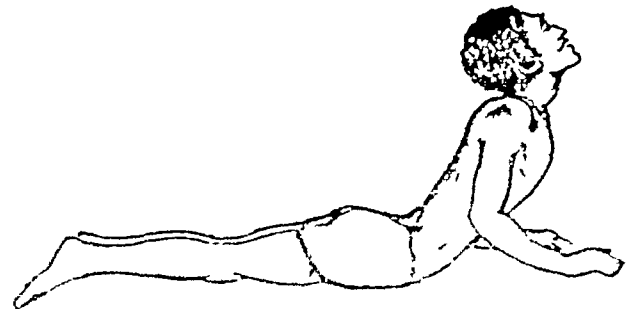
भुजंगासन

को पीछे की ओर तनी हुई अवस्था मे रखने के बाद रीढ को नीचे लाइये। पहले कमर के नीचे, फिर कमर और अन्त मे गर्दन की मास-पेशियो को धीरे-धीरे झुकाते हुए पूर्व की पट अवस्था मे आजाइए। आसन करते समय सास की गति स्वाभाविक रखनी चाहिए। इस आसन को ५ सेकेण्ड से १ मिनट या अधिक से अधिक ३ मिनट तक कर सकते है। तीन बार भी यह आसन किया जा सकता है। इस आसन को 'सर्पासन' भी कहते है। चित्र देखिए।

लाभ—भूख बढती है। जठराग्नि तीव्र होती है। कब्ज दूर होता है। स्वप्नदोष-रोग इससे सर्वथा मिट जाता है। यह आसन पीठ की हड्डी पर बड़ा प्रभाव डालता है। जिससे आदमी जल्द बूढा नही होता। इससे इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना—तीनो नाडियो को बल मिलता है। औरतो की बच्चेदानी पुष्ट होती है। प्रदर रोग की दवा है।

मयूरासन

विधि—आसन पर घुटने के बल लेट जाइये। दोनो बाहो को मिलाइये और हथेलियो को मजबूती से जमीन पर रखिये। उगलियो का रुख पैरो की तरफ रहे। सारे शरीर को बाहुओ से और आमाशय को कुहनियो से लगाइये। अब पैरो को धीरे-धीरे पीछे की तरफ फैलाकर अंगूठों को जमीन पर टेकिये। सास खीचकर दोनो पावों को एक साथ पृथ्वी से ऊपर उठाने की कोशिश कीजिये।
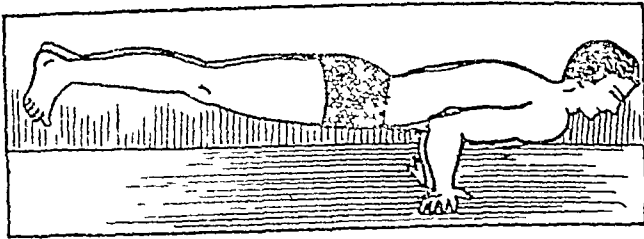
मयूरासन

सिर और पैर एक सतह मे रहने चाहिए और शरीर पृथ्वी के समानान्तर। इस अवस्था मे ५ सेकेण्ड तक रहने के बाद अंगूठो को पृथ्वी से लगाकर सास बाहर निकाल दीजिए। चित्र देखिए।

लाभ—पेट के सारे रोग इससे चले जाते है और भूख खुलकर लगती है। वात, पित्त, कफ के रोग दूर हो जाते है। गुल्म रोग को भी लाभ करता है।

शलभासन

विधि—शलभ कहते है टिड्डी या पतगे को। आसन में टिड्डी के आकार का बनना पडता है। पेट के बल सीधे लेट जाइये। हाथ शरीर के अगल-बगल रहें। दोनो पैर एक साथ जमीन से लगे रहेगे। ठुड्डी जमीन से सटी होगी। अब गहरी सास खीचते हुए मुट्ठियाँ बाधिए और दोनो हाथो पर जोर देकर दोनो पैरो को जितना हो सके साथ-साथ ऊपर उठाइये। घुटने न मुड़ें। जितनी देर तक सास रोके रह सके उतनी ही देर।
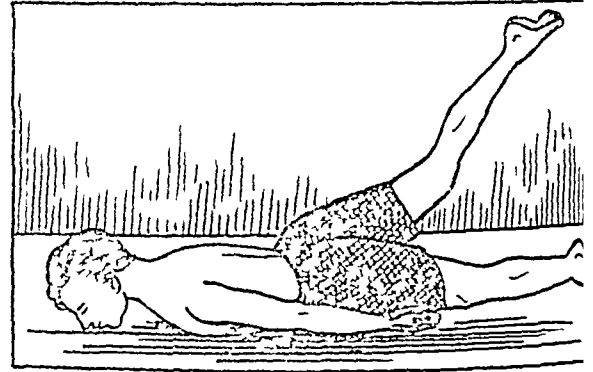
अर्ध शलभासन

इस अवस्था मे रहे। तत्पश्चात् पैरों को धीरे-धीरे जमीन पर रखे। दो तीन बार इसे कर सकते हैं। इस आसन को जब केवल एक पैर से करते हैं तो उसे 'अर्धशलभासन' कहते है। चित्र देखिए।

लाभ—छाती चौड़ी होती है और मेरुदण्ड के निचले हिस्से मे लोच आता है। पेट के सभी रोग कब्जादि दूर हो जाते है।

धनुरासन

विधि—भुजंग और शलभासन के योग से धनुरासन बनता है। पेट के बल आसन पर लेट जाइये। पैरों को घुटनो से मोडले। फिर दाये-बायें वाले पैरों को टखनों से क्रमशः दाये और बाये हाथ से पकड ले। अब धीरे-धीरे छाती को निकालते हुए सिर को ऊपर उठाइये। हाथो को ऊपर की तरफ उठाते हुए पैरो को तानिये। आगे और पीछे शरीर को तान कर इस प्रकार बनिये कि सारे शरीर का भार कमर और पेट पर आ जाये और शेष शरीर का भाग जमीन से उठा रहे। इस स्थिति मे ५ सेकेण्ड से १ मिनट तक रहना चाहिए। लगातार तीन बार यह आसन किया जा सकता है।
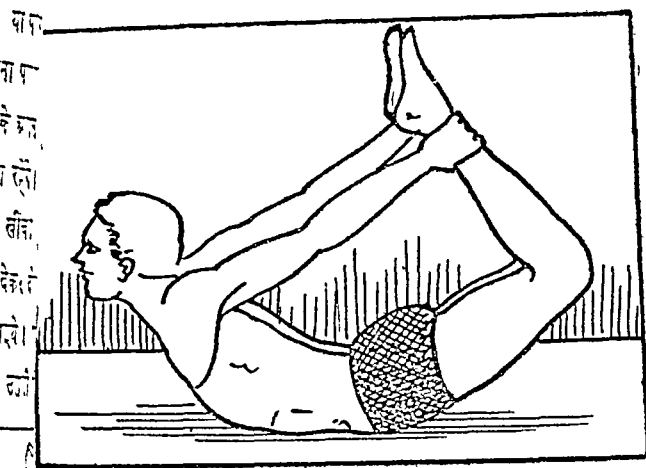
धनुरासन

खिए ।

लाभ—इस आसन को कमजोर से कमजोर व्यक्ति भी करके लाभ उठा सकता है। इस आसन के वे ही लाभ जो शलभासन और भुजगासन से होते है ।

चक्रासन

विधि—खडे होकर रीढ की मोटी हड्डी को थोड़ा २ झुकाते हुये धीरे-धीरे पीछे की ओर मुडिये। हाथो को नितम्ब के समानान्तर लाइये और घुटनो को मोड़िये। अब हथेलियो को जमीन की ओर ले जाइये । तत्पश्चात् पीछे की ओर धीरे-धीरे झुकिए । जब हथेलिया जमीन पर पहुँच जायं तब उन्हे धीरे-धीरे पैरो की ओर जहा तक मुमकिन हो ले जाइए । यही 'चक्रासन' है । तीन मिनट तक इस अवस्था मे रहकर फिर खडे हो जाइए । देखिए
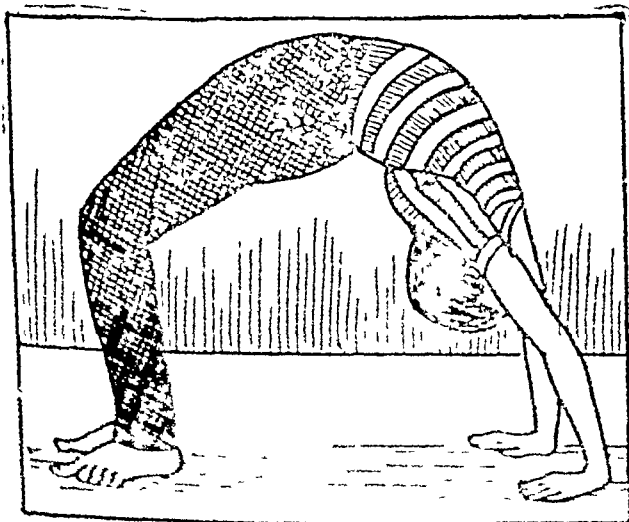
चक्रासन

चित्र ।

लाभ—स्त्रियो के लिए उत्तम आसन है । शरीर मे हल्कापन और ताजगी आती है । पाचन क्रिया को शक्तिशाली बनाता है । पेट को ढीला होने और बढने से रोकता है तथा ऊचाई बढाकर सुन्दरता बढ़ाता है ।

ऊर्ध्व-पद्मासन

विधि—शीर्षासन का अभ्यास हो जाने पर इस आसन को आसानी से किया जा सकता है । शीर्षासन की दशा मे पहले एक पैर को मोडकर जङ्घा पर लाइये । फिर दूसरे को मोडकर दूसरे जङ्घा पर लाइए तत्पश्चात् पैरो को मोडकर पेट के पास लाइये । उसके बाद दोनों घुटनो को इतना मोडिये कि वे दोनो हाथो के बगल मे आजायें । अब धीरे-धीरे फिर ऊपर ले जाइए । यह क्रिया ५ बार तक की जा सकती है । चित्र देखिए ।

ऊर्ध्व पद्मासन की प्रथम स्थिति

लाभ—मेरुदण्ड और उसकी मासपेशिया दृढ और लचीली होती हैं, जिससे मनुष्य सदा जवान बना रह सकता है । वीर्य सम्बन्धी सारे दोष दूर होते हैं । स्मरण शक्ति बढ़ती है तथा पाचन शक्ति बढ़ती है ।

[illegible]

विधि—आसन पर चित लेट जाइए । टांगो को एक
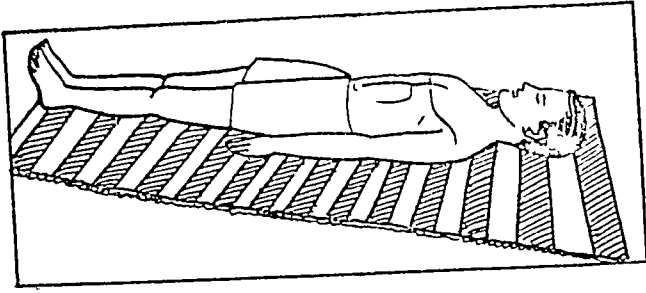
शवासन

दूसरे से मिलाकर सीधे फैलाइए। एड़िया मिली रहे और पजे खुले रहे। हाथ जमीन पर धड से सटे रहे। आखे बन्द या अधखुली रखिए। अब सिर से पैर तक की सारी मास-पेशियों और स्नायुओ को एकदम ढीला छोड़कर शव समान बन जाइए। सास स्वभावतः चलती रहेगी। देखिए चित्र।

लाभ—इस आसन को अन्य आसनो के अन्त मे किया जाता है। इससे शरीर के प्रत्येक अवयव को आराम एवं शक्ति मिलती है। थकावट दूर होती है और पुन: कार्य करने के लिए शरीर को स्फूर्ति और ताजगी प्राप्त होती है।

अर्ध मत्स्येन्द्रासन

विधि—आसन पर बैठकर बाए पैर को मोड दीजिये। उसकी एड़ी गुदा के पास होगी। फिर दाहिने पैर को गिरे हुए पैर के ऊपर से उठाते हुए उसके घुटने के
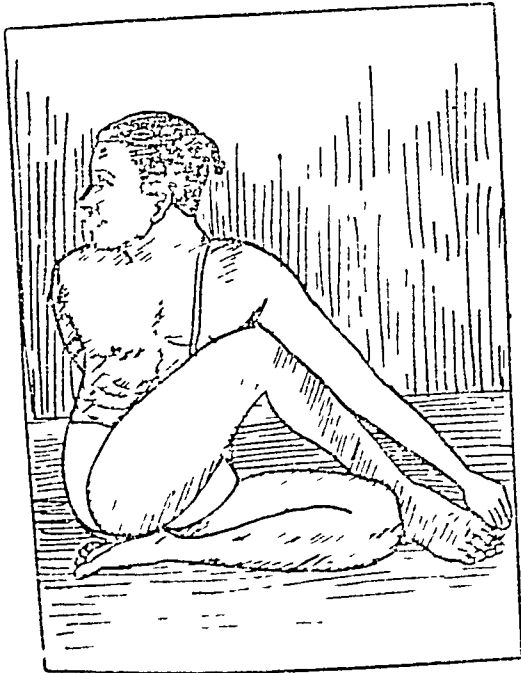
अर्धमत्स्येन्द्रासन

पास जमीन से सटाकर रखिए। अब बाए हाथ को पैर के घुटने से छुआते हुए दाहिने पैर के अगूठे को लीजिए। फिर दाहिने हाथ को पीठ के पीछे ले उसी तरफ सिर को घुमाइये। यही अर्ध मत्स्येन्द्रासन है इस आसन को दूसरे पैर को मोड़कर भी किया जा है। [चित्र देखिए]

रीढ की हड्डी पुष्ट और स्वस्थ होती है। आमाशय के विभिन्न अङ्गो की मालिश होती है। कमर की शक्ति मजबूत होती है।

वज्रासन

विधि—आसन पर सामने की ओर पैर फैलाकर बैठ जाइये। बाया पैर घुटने से मोड कर जघा के पास ले जाइये। ऐसा करने से पैर थोडा उठ जायगा। बा हाथ से उसे उठाकर बाए नितम्ब के नीचे ले जाइये घुटना जमीन पर आजायगा। एडी शरीर से सटी होगी पीछे पैर का पजा ऊपर की ओर हो जायगा। इसी त दूसरे पैर की भी स्थिति बनाइये। दोनो घुटने आपस सटे रहेगे, पर पैर के तलवे अलग-अलग रहेगे। अब व

वज्रासन

हाथो को घुटनो पर रखकर बैठ जाइये। यही व है। इस आसन पर बैठे हुए मत्स्यासन की भ जाने को सुप्त वज्रासन कहते है। [वज्रासन क देखिये]

लाभ—भोजन के बाद इस आसन पर बैठने से पाचन मे किसी प्रकार की गड़बडी नही होती सुप्त वज्रासन से कूबड दूर हो जाता है और मेरुदण्ड लचीला बनता है। पश्चिमोत्तानासन के बाद यह आसन करना चाहिए।

त्रिकोणासन

विधि—दोनो पावो को फैलाते हुए खड़े हो जाइए। फैले हुए पावो की दूरी दो-तीन फीट हो। अब बाहे सीधे फैलाइये जिसमे तलहथिया भूमि के समानान्तर हो और हथेलियां जमीन की ओर हो। बाईं ओर कमर को मोडिए और बाये हाथ से बाए पैर का अगूठा पकड़िये। इस हालत मे सिर भी भूमि की ओर थोड़ा झुक सकता है। पाच सेकेण्ड तक इस अवस्था मे रहने के बाद फि
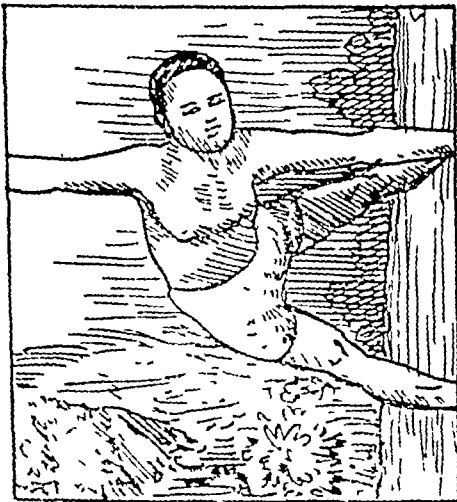
त्रिकोणासन

खडा हो जाइए। नीचे अथवा ऊपर जाते समय हाथ या पैर, कुहनी या घुटने के पास से न मुडने चाहिए। अब इसी क्रिया को दाहिनी ओर भी कीजिए। यह आसन दोनों ओर चार-चार बार तक किया जा सकता है। [चित्र देखिये]

लाभ—टेढ़े मेढे पैरो को इस आसन से बड़ा लाभ होता है। छाती भी चौडी होती है।

विपरीत करणी—आसन

विधि—आसन पर चित लेटिए। दोनो हाथ बगल मे रखिये। दोनो पैर जुटे हुये फैलेहोगे। अब उन्हे घुटनो को बिना मोड़े हुये आसन से ३०° ऊपर उठाइये। १० सेकेण्ड इस स्थिति मे रखकर फिर ऊपर ६०° तक उठाये।
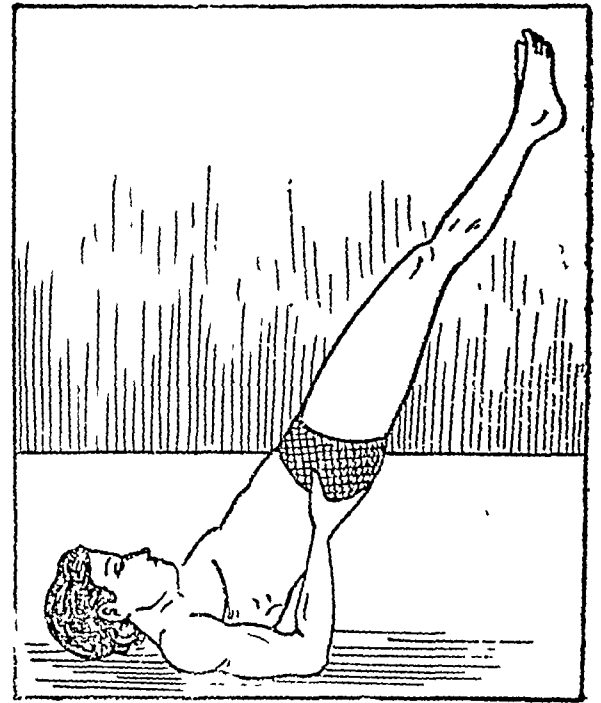
विपरीतकरणी-आसन

फिर ६०° का कोण बनाते हुये ऊपर उठाइये। दोनो हाथ बगल मे पट पड़े रहेगे और घुटने नही मुडेगे। अब पैरों को १२०° पर लेजाइये। तत्पश्चात् दोनो हाथो को पेट के दाए-बाये सहायता के लिए जमाइए। पैर बिलकुल सीधे रहेगे और सारा भार हाथो पर रहेगा। इसके बाद तने हुये पैरो को धड़ की सीध मे कर लीजिये। इस अवस्था मे आधा मिनट से बढाकर साधारणतः १० मिनट तक रहा जा सकता है। [देखिये चित्र]

लाभ—योगियो के कथनानुसार इस आसन के करने से मनुष्य अमर तक हो सकता है और पुनर्यौवन प्राप्त कर सकता है।

उपर्युक्त मुख्य व्यायामात्मक आसनो के अतिरिक्त और बहुत से आसन हैं, जैसे जानुशिरासन, वीरासन, उष्ट्रासन, चतुष्पाद आसन, वृश्चिकासन, ताडासन, हनुमानासन, उत्कटासन, गरुडासन, पादांगुष्ठासन, वृक्षासन, ऊर्ध्व धनुरासन उत्तानपादासन, उत्तान कूर्मासन, भद्रासन, सिंहासन, गर्भासन, प्रार्थनासन तथा बकासन आदि। स्थानाभाव के कारण उन सभी आसनो का वर्णन यहा सम्भव नही है।

चार ध्यानात्मक आसनो मे भी पद्मासन और सिद्धासन ही मुख्य है। जिनमे सिद्धासन करने के अधिकारी

केवल ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, तथा सन्यासी ही माने गए है, और पद्मासन के अधिकारी ग्रहस्थ लोग। अत यहा केवल पद्मासन करने की विधि ही लिखी जाती है.—

पद्मासन

विधि—बाया पैर दाहिनी जाघ पर और दाहिना पैर बायी जाघ पर रखिये इस तरह कि एडिया पेट से छुये। दोनो जाघें और दोनों घुटने पृथ्वी से लगे रहेगे पीठ एकदम सीधी रहेगी, ठोढी कण्ठ से लगी रहेगी। अब दृष्टि को नाक के अग्र भाग पर जमाइये, यही पद्मासन है। इसी आसन पर बैठे रहकर दोनों हाथ भूमि पर बगल में रखिये। अब तलहथियो पर भार देते हुये शरीर को ऊपर उठाइये कुछ सेकेण्ड तक इसीप्रकार उठे रहने के बाद धीरे धीरे जमीन पर आजाइये, यह उत्थित पद्मासन है। पद्मासन लगाने के बाद बाया हाथ पीछे से घुमाकर बाये अंगूठे को पकडिये और दाहिने हाथ से दाहिने अगूठे को पकडिये जो बाये पैर पर है यह बद्ध पद्मासन है। इस अवस्था मे ३ मिनट तक रहना चाहिये। पद्मासन की अवस्था मे हाथो को घुटनो पर रखे। श्वास बाहर निकालिये और सिर को आगे की ओर इतना झुकाइये कि वह जमीन से छूजाय। तत्पश्चात हाथो को पीछे की ओर ले जाइये। अब दाहिने हाथ से बाई कलाई पकड़ लीजिये। सिर नीचे ही झुका रहे। इस अवस्था मे ५ सेकेण्ड से १० सेकेण्ड तक रहा जासकता है और तीन से सात बार तक यह आसन किया जासकता है। इसे योगमुद्रा कहते हैं।

पद्मासन

लाभ—पद्मासन से अपान वायु को शक्ति मिलती है, सुषुम्ना नाडी सीधी रहती है तथा श्वास प्रश्वास नियमित रूप से होने लगती है। अतः जप और ध्यान के लिये यह आसन बहुत ही उपयोगी है। उत्थित पद्मासन से हाथ के स्नायुओं को बल मिलता है। बद्ध पद्मासन से पैरो की मास-पेशिया मुलायम और लचीली होती है, तथा मेरुदण्ड सीधी अवस्था मे रहता है। योग मुद्रा से पेट के सारे अवयव दुरुस्त, पुष्ट बनते है।

(३) आसन की सफलता में सहायक—

कोई भी आसन हो उसमे सफलता तभी मिल सकती है जब उस को समझ कर विधिवत किया जाय। अत इसके लिये यह जरूरी है कि आसन पहले पहल किसी अनुभवी व्यक्ति की निगरानी मे किया जाय और वह जो बताये उसका मनोयोगपूर्वक और लगन के साथ पालन किया जाय। मनमाने ढग से और केवल किताबी ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद आसनो का अभ्यास करने वाले कभी कभी हानि उठाते देखे गये है।

जो मनुष्य आसनो से उनके परम लाभ को प्राप्त करना चाहता है उसके लिये ब्रह्मचर्य का पालन करना नितान्त आवश्यक है। प्राणायाम करने वाले को आसनो से शीघ्र और अधिक लाभ होता है।

भोजन सुधार भी आसन के लिये बहुत प्रयोजनीय है। जो व्यक्ति भोजन मे बिना सुधार किये ही आसन करता है उसका परिश्रम व्यर्थ ही जाता है। इसलिए आसन करने वाले को सादा सप्राण, सात्विक एव पुष्टिकर भोजन करना चाहिये। जरूरत से अधिक भी भोजन नही करना चाहिये और कभी कभी उपवास अवश्य करना चाहिए। इससे शरीर शुद्ध और मल रहित होजाता है।

किसी रोग से पीडित होने पर मनमाना आसन करना ठीक नही। ऐसी अवस्था मे किसी अनुभवी से राय लेकर ही आसन करना उचित है। गरमी के दिनो मे अधिक देर तक आसन नही करना चाहिये।

आरम्भ मे बहुत कम समय तक आसन करे और फिर उसे क्रमश बढावे। आसन के करने में धैर्य, तत्परता एव नियमितता की बड़ी जरूरत होती है।

पांचवां अध्याय

अग्नि तत्व-चिकित्सा

अग्नि तत्व

अग्नि, सृष्टि के उपादान पञ्च तत्वो मे तीसरा उपयोगी तत्व है। परन्तु दृष्य तत्वो (अग्नि-जल तथा पृथ्वी) में प्रमुख दृश्य तत्व अग्नि ही है। आकाश और वायु तो महतत्व (सबका आदि कारण ईश्वर) की तरह ही अदृश्य तत्व हैं। अग्नि को अग्निदेव मानकर उनकी पूजा-अर्चना का विधान शास्त्र-कारो ने बताया है। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र 'अग्नि-मीडे पुरोहितम्' आदि मे ईश्वर के प्रत्यक्षरूप अग्नि की ही प्रार्थना की गयी है। गायत्री मन्त्र मे भी, जो भगवद् रूप महामन्त्र (मूल मन्त्र) है इस तत्व के अधिष्ठाता सूर्य की ही उपासना है। धार्मिक रुचि के हिन्दू और पारसी आज भी सूर्य को देवता मानते है और नियमपूर्वक उनकी पूजा करते है

सूर्य केवल प्रकाश और गर्मी ही नही देता बल्कि वह बुद्धि और दीर्घायुष्य भी देता है। यथा—

सवितान. सुवतु सर्वातीतं सवितानो रासतांदीर्घमायुः।

अर्थात्, यह श्रेष्ठ प्रकाश जो विश्वको प्रकाशित कर रहा है, हमे सुबुद्धि और दीर्घायुष्य प्रदान करे।

यह सत्य है कि जो व्यक्ति सूर्य-प्रकाश का जितना ही अधिक सेवन करेगा उसकी दिमागी शक्ति उतनी ही विकसित होगी। सूर्य प्रकाश के सेवन मे मस्तिष्क मे एक प्रकार की चुम्बकीय शक्ति आती है जो मनुष्य को बुद्धिमान बना देती है। हमारे पूर्वज मुनि-ऋषि इसी सूर्योपासना की बदौलत बुद्धिमान बने जिनकी जोड का एक भी बुद्धिमान व्यक्ति भविष्य मे अब पैदा होगा या नही, सदिग्ध ही है।

अग्नि तत्व से हमे धन-जन की प्राप्ति एव रक्षा होती है। यथा—

'सूर्यो नो दिवस्पातु'
"अग्नि पार्थिवेभ्य।"

—ऋग्वेद।

अर्थात्, सूर्य हमारे दिन की रक्षा करे और अग्नि हमारे धन-जन की रक्षा करे। और भी—

"नमः सूर्याय शांताय सर्व रोग विनाशिने।
आयुरारोग्यमैश्वर्यदेहिदेव नमोऽस्तुते॥"

—आ० हृ०

अर्थात् शान्तिप्रदान करने वाले, सर्व रोग नाश करने वाले सूर्य भगवान को नमस्कार है। हे! सूर्यदेव आयु-आरोग्य, और ऐश्वर्य हमे दो। आपको नमस्कार है।

विश्व के अन्य भागो के निवासी भले ही सूर्य के महत्व को भली प्रकार न समझे हो, पर भारतवर्ष मे तो आदि काल से ही सूर्य को समस्त जड, चेतन, तथा सुर आदि को उत्पन्न करने वाला माना गया है। भारतीयो की दृष्टि मे सूर्य ईश्वर का प्रमुख अङ्ग नेत्र है, क्योकि वह प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देता है और प्रत्येक प्राणी उसको देख सकता है, जबकि अन्य देवताओ के सम्बन्ध मे यह बात नही है।

तैत्तरीय ब्राह्मण मे लिखा है कि उदय तथा अस्त होते हुए सूर्य को ध्यान करता हुआ ब्राह्मण सभी सुखो को प्राप्त करता है।

यजुर्वेद मे आया है— 'चक्षो सूर्यारेजायत' अर्थात् सूर्य भगवान का नेत्र है। परन्तु वास्तव मे सूर्य हम सबो का ही नेत्र है। क्योकि सूर्य के ही प्रकाश से हम अपने नेत्रो का प्रयोग कर पाते हैं और उस प्रकाश के अभाव मे हम लगभग अधे ही रहते हैं।

सूर्य का मनोहर वर्णन पढिए—

एक चक्रो रथो यस्य दिव्यः कनक भूषित।
समे भवतु सुप्रीत पद्महस्तो दिवाकरः॥

अर्थात् जिस सूर्य का अकेला चलने वाला एक पहिये का अद्भुत सुवर्ण से अलङ्कृत रथ है वह हाथ मे कमल लिये हुये सूर्य मेरे ऊपर प्रसन्न हो। और देखिए—

"तामं आवह जात वेदो लक्ष्मी मन पगामिनीम्।
यस्या हिरण्यं विन्देय गामश्वं पुरुषान हम्॥"

—श्री सूक्त

अर्थात्, हे जात वेद अग्ने। नही जाने वाली लक्ष्मी हमे लादे जिनसे हम हिरण्य स्वर्णादि मूल्यवान पदार्थों को प्राप्त करें, तथा गायो और उत्तम पुरुषों को प्राप्त करें।

"स्वस्ति श्रद्धां यशः प्रज्ञान् विद्यांबुद्धिश्रियं बलम् ।
आयुष्यं तेज-आरोग्यं देहिमे हव्य वाहन ॥"
--ह० वि०

अर्थात् हे हव्य वाहन ! हवन ग्रहण करने वाले अग्निदेव ! कल्याण, यश, श्रद्धा, विद्या, बुद्धि, लक्ष्मी, बल, आयुष्य, तेत, एव आरोग्य प्रदान करो ।

इस तरह देखते है कि हमारे आदि ग्रन्थ वेद में सूर्य उपासना सम्बन्धी अनेक ऋचाए विद्यमान हैं जो इस बात का प्रमाण है कि हम भारतवासी अनादि काल से सूर्य की उपयोगिता मानते आ रहे है । हम आरम्भकाल से ही सूर्य एव अग्नि को देवता के रूप मे पूजते आ रहे हैं । क्योकि सूर्य के बिना जीवन की कल्पना भी नही की जा सकती । भारतवर्ष ही क्यो ? रोम, यूनान, मिश्र सभी जगह सूर्य को देवता माना गया है । जापान मे सूर्य के अनेक मन्दिर है । दक्षिण अमेरिका मे भी एक विशाल सूर्य मन्दिर है ।

'सूर्य नमस्कार' जो हमारी प्रात पूजा का एक अङ्ग है, पूजा के साथ-साथ एक उत्तम प्रकार का व्यायाम भी है जिसका वर्णन पहले हो चुका है । इसमे सूर्य नमस्कारासन से सूर्य के सामने जल गिराना होता है । यह एक अत्यन्त उपयोगी एव सर्वाङ्गपूर्ण और वैज्ञानिक स्वास्थ्य-वर्धक क्रिया है, जिसके करने से बडे लाभ होते है । वैज्ञानिको ने पता लगाया है कि प्रात. कालीन सूर्य रश्मियो मे नीलोत्तर किरणे (Ultra-violet rays) प्रचुर मात्रा मे पाई जाती है जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी होती हैं । किन्तु सूर्य को सभी रश्मिया तो 'नीलोत्तर रश्मिया' होती नही । इसलिए कुछ पदार्थ ऐसे होते है जिनमे से छनकर केवल 'नीलोत्तर किरणें' ही बहिर्गत होती हैं । उन पदार्थो में से एक पदार्थ 'जलसीकर पुञ्ज' भी है अर्थात् जिस समय प्रात.काल सूर्य के सामने हम खडे होकर ऊ चे से अपने ठीक सामने जल गिराना आरम्भ करते हैं तो सूर्य की किरणे जल कणो द्वारा इन्द्र धनुष के सात रङ्गो मे विभाजित होकर उनमे से नीलोत्तर किरणें हमारे शरीर पर पडकर हमे लाभ पहुंचाती हैं । यही कारण है कि सर्व साधारण के हित के लिए हमारे पूर्वजो ने इस कृत्य को अनादि काल से धर्म का रूप दे [illegible] ।

इसी प्रकार शास्त्रकारो ने रविवार के दिन को [illegible] का दिन माना है और लिखा है कि यदि कोई [illegible] शास्त्रोक्त रीति से रविवार का व्रत बारह वर्षो तक [illegible] तो वह पूर्ण काम होकर ब्रह्मरूप हो जायगा [illegible] सन्देह नही । रविवार को तैल, स्त्री-ससर्ग तथा नमक त्याग करना साधारण रवि व्रत कहलाता है । आस्था[illegible] हिन्दू लोग आदि काल से ही इस रवि-व्रत को करके [illegible] उठाते चले आ रहे है ।

एक प्रकार से देखा जाय तो सूर्य ही जगत का प्र[illegible] विता है । क्योकि सृष्टि के सभी पदार्थो का मूलबीज सूर्य-रश्मि माला के विभिन्न प्रकार के सयोग से ही उत्पन्न होता है । रश्मि-भेद और विभिन्न रश्मियो के मिश्रण भेद से जगत के नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते है । कहा गया है कि अपनी सतरंगी किरणो मे सूर्य अपना वीर्य और चन्द्रमा अपना रज डालकर ससार को उत्पन्न कर देता है । ससार की सभी वस्तुओ-सोना, चांदी, ताम्बा, जस्ता, लोहा आदि धातुओ, हीरा, माणिक नीलम आदि जवाहिरात आदि आदि का पैदा होना इन्ही रगीन सूर्य रश्मियो के करिश्मे है । प्राणधारियों एवं वनस्पति के जीवन का भी मात्र आधार सूर्य रश्मिया ही है । अतः प्रकाश और गरमी की हमे भोजन से अधिक आवश्यकता है । क्योकि प्रकाश का अभाव हुआ नही कि हमे डाक्टर की आवश्यकता पडी । एक जर्मन प्राकृतिक चिकित्सक आर्नाल्ड रिकली ने लिखा है कि जल जरूरी है वायु उससे भी जरूरी और प्रकाश इन दोनो से भी जरूरी है ।

अग्नितत्व से शेष चारो तत्व (आकाश, वायु, जल एवं पृथ्वी) तप्त होते हैं । इसीसे ससार मे सौन्दर्य है जीवन है । इसीसे फूल खिलते है, फल पकते हैं, औष[illegible] धियो मे पृथक पृथक गुण उत्पन्न होते है । इसीसे समुद्र [illegible] जल बादल बनकर पृथ्वी को सिचन करता है । इसी[illegible] हमारे सारे कल कारखाने चलते हैं । इसीसे हमारा भोज[illegible] सीझता है और पचता है ।

सुख, दुख, पाप, पुण्य, काम, क्रोध, लोभ, मो[illegible] प्रीति, भक्ति आदि सभी वृत्तिया और सस्कार भी सू[illegible] रश्मियो के सयोग से ही उत्पन्न होते है । सूर्य की रा[illegible]

...वा वर्णमाला का पडित सहज ही मे पदार्थों का सग-...वा विघटन कर सकता है। वस्तु परिबर्तन कर सकता उसका निर्माण कर सकता है और सहार भी कर ...रता हे। लोहे का सोना बनाना तथा मुर्दो का जिलाया ...ना तक, सूर्य विज्ञान से ही सम्भव है। इस विज्ञान के ...कार हिमालय और तिब्बत मे आज भी गुप्त रूप से ...मान है। पाश्चात्य देशो ने इसी विज्ञान के आधार मृत्यु किरण और एटमबम के आविष्कार किये है। ...र सूर्यरस्मियो के अनन्त शक्तियो एव गुणो के मुकाबिले आविष्कार कुछ भी नही हैं।

वेद या शब्द ब्रह्म की सीमा सूर्य मण्डल तक मानी ...गी है। उसके बाद सत्य या ब्रह्म लोक है। सूर्य से ही 'वेदशित्वम्' सभव है। सूर्य या अग्नितत्व से ही अन्य ...भी तत्वो के चैतन्य का उन्मेष और निमेष होता है। ...ग्नितत्व स्वय सूर्य है। सोम भी वही है। प्रणव या ...कार भी सूर्य ही है। सूर्य साक्षात् नाद ब्रह्म है। ...रन्तर रव करने के कारण सूर्य की सज्ञा 'रवि' भी है ...य ईश्वर का तेज प्रज्वलित होकर सूर्य बना है

अग्नि-तत्व के (शरीर मे) अभाव के कारण शरीर ...र्जीव हो जाता है, और कमी की वजह से शरीर मे ...सुस्ती, सिकुडन, सर्दी की सूजन, वायु जनित पीड़ाएं, ...क्षाघात गठिया, बुढ़ापे की कमजोरी, मन्दाग्नि विद्रा की अधिकता, कोष्ठबद्धता तथा ठड आदि के उपद्रव आरम्भ हो जाते है और आंख, नख जिह्वा, विष्टा, तथा पेशाव श्वेतवर्ण के हो जाते हैं। इस प्रकार इस तत्व की शरीर में अधिकता के कारण आख, नख, जिह्वा, विष्टा तथा पेशाब लाल पीले या लाल रग के हो जाते है, मुंह का जायका खट्टा-कडुआ हो जाता है, मिजाज तेज और क्रोधी हो जाता है, तथा दुबलापन, अग अंग मे खुश्की, और प्यास की अधिकता आदि रोग आघेरते है।

प्रकाश और तेज का उद्‌गम सूर्य और सौर मण्डल

सूर्य समस्त खगोल मण्डल मे सबसे अधिक प्रकाश पूर्ण एव आकार मे भी सबसे बडा है। ऋग्वेद के विष्णु सूक्त के विज्ञान रचयिता ने सूर्य की प्रशंसा उनको जगत-नियन्ता विष्णु के समकक्ष रख कर की है। सूर्य को एक दूसरी जगह विश्वात्मा कहा गया है। ज्योतिष शास्त्रा-नुसार सूर्य के आसपास शेप सब ग्रह घूमते हैं अपनी अपनी किरणें पृथ्वी पर फेंकते हैं। पुराण में सप्तरश्मियो को जो कि सूर्य भगवान की किरणो के ही सात रग है, सप्त मुखी घोडा बताया है। सात रग एकत्र होवे से श्वेत रग होता है, इसी कारण सूर्य की किरणें श्वेत दिखाई देती है। स्वय सूर्य का रग पारे के समान श्वेत है। सूर्य, प्रकाश या ताप का प्रभा नही बल्कि 'फोकस' है। वह एक लेन्स मात्र है जिसके प्रभाव से आदिम ज्योति का रश्मि समूह स्थूल बन जाता है, सौर जगत मे एकत्र होता है, और नाना प्रकार की शक्ति उत्पन्न करता है। सूर्य-रश्मिया अनन्त है, परन्तु मूल प्रभा एक ही है। जो शुक्ल वर्ण है शुक्ल से सर्व प्रथम सात रग मिश्रित प्रथम स्तर का आविर्भाव होता है। शुक्ल से अतीत जो वर्णातीत तत्व है, उसके साथ शुक्ल का संघर्ष होने से इस प्रथम भूमि का विकास होता है। यह अन्तः सघर्ष का फल है। यह वर्णातीत तत्व ही चिद्‌रूपा शक्ति है। इस प्रथम स्तर से पर-स्पर संयोग या ससर्ग होने के कारण द्वितीय स्तर का आवि-र्भाव होता है। आपेक्षिक दृष्टि से पहली शुद्ध सृष्टि है, और दूसरी मलिन सृष्टि वा मैथुनी-सृष्टि है। उपर्युक्त कथित शुक्ल वर्ण ही विशुद्ध तत्व है। इस सादे प्रकाश के ऊपर जो अनन्त वैचित्र्यमय रग का खेल निरन्तर हो रहा है, वही ससार है। यही शुक्ल वर्ण या शुद्ध तत्व आगम शास्त्र का विन्दु तत्व है। यह चन्द्रविन्दु ह। यही कुण्डलिनी और चिदाकाश है, यही शब्द मातृका है। इसके विक्षोभ से ही नाद और वर्ण उत्पन्न होते हैं:—

सौर मण्डल के नवो ग्रहो के वर्ण निम्नलिखित हैं:-

१-सूर्य-पारे के समान श्वेत है, पर उसमें सात रग मिश्रित हैं। यह उष्ण है।

२-चन्द्रमा—चादी के समान रुपहला। यह शीतल है।

३-मगल—तावे के समान लाल। यह गर्म है।

४-बुध—हरा। यह नपुंसक है।

५-बृहस्पति--सोने के समान सुनहला। यह मेदवान (चर्बीदार) है।

६-शुक्र—नीलवत् (INDIGO)। यह शक्ति वर्द्धक है

७-शनि-आसमानी, गहरा नीला। यह रूखा है।

८-राहु—हमारी पृथ्वी है। रंग काला है। यही

कारण है जो पृथ्वी मे दूसरे प्रकाशमान ग्रहो की प्रकाशित किरणो को आकर्षित करने की शक्ति है ।

९-केतु—यह हमारी पृथ्वी की छाया है । रग हल्का आसमानी ।

उपर्युक्त सभी ग्रह सूर्य के चारो तरफ घूमते हुये उससे अपने अपने रग प्राप्त करते हैं । जब इन ग्रहो की निजी रगीन किरणें सीधी या तिरछी होकर और सूर्य की किरणो से टकराकर पृथ्वी पर पडती है तब सूय-रश्मियो मे इन ग्रहो की अतिरिक्त रगीन किरणो के बढ जाने से पृथ्वी या उस पर के रहने वाले किसी मनुष्य आदि पर किसी ग्रह विशेष के अतिरिक्त रगीन किरणो के पड़ने का प्रभाव पडता है । जिसकी वजह से दुख सुख भोगना पड़ता है ।

लाल, हरा, सुनहला या पीला, आसमानी, गहरा नीला काला, तथा, हल्का नीला ऐसे सात रगो का एकीकरण जब होता है तो श्वेत रग बन जाता है ।

सूर्य के चारो तरफ अन्य सभी ग्रह चक्कर लगाया करते है, जिनकी किरणे भिन्न भिन्न रगो मे फैलती है । पर ग्रहो की गति मे विभिन्नता होने के कारण, प्रत्येक ग्रह की उसके रग की किरणे एक ही स्थान पर बहुत समय तक नही टिकती । अतः सभी ग्रह अपनी आवश्यकतानुसार रग के वीर्य को लेकर शेष चन्द्रमाग्रह को दे दिया करते हैं । परन्तु जिस समय ग्रहो की किरणों की गति सीधी या तिरछी होती है उस समय वे किरणे, सूर्य की किरणो को छेद कर पृथ्वी पर गिरती है जो पृथ्वी पर गिरने वाली सूर्य की किरणो से मिलकर भिन्न-भिन्न प्रकार के परिणाम उत्पन्न करती है । अर्थात् उनका प्रभाव उनकी किरणों के अनुसार ही पृथ्वी पर के पदार्थो पर होता है ।

सूर्य-रश्मियों के पृथ्वी पर आने मे जब किसी प्रकार की अड़चन पड़ती है तो ससार मे नाना प्रकार के उथल-पुथल होने की सम्भावना होजाती है । उदाहरणार्थ, सूर्य-प्रकाश के भूमि पर आते समय, उसकी किरणो के मार्ग मे यदि मगल ग्रह आजाय, तो पृथ्वी पर लाल किरणें पडेंगी, परिणामत. पृथ्वी के उस भाग मे रहने वाले प्राणी गरमी से उत्पन्न होने वाले रोगों—हैजा, चेचक, मूर्च्छा आदि मे आक्रान्त हो जाते है, अर्थात् महामारी फैल जाती है ।

इसी सिद्धातानुसार जब किसी समय सूर्य की लाल अधिक परिमाण मे एक ही स्थान पर एकत्र हो, तो भूकम्प आदि उत्पात होते है । और जब मिट्टी, कोयला, आदि के परमाणु वायु के साथ उडते हुए ग्रह या दो विभिन्न ग्रहो के पास पहुच जाते हैं, वस्तुए सूर्य की किरणो को पृथ्वी पर भरपूर आ देती तो अकाल पडता है, अतिवृष्टि होती है, या ... रोगो को पैदा करने वाले कीटाणुओ की ... होती है ।

चेतन या जड़ जो कुछ भी पृथ्वी पर है उन... शक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य द्वारा हो... होती है । जिन वस्तुओ पर सूर्य-रश्मिया पडती हैं, पर वे हितकर प्रभाव डालती है और जिन प... पड़ती, उन पर अहितकर । जो शाक सब्जी धूप मे ... होती है, वह अन्धकार मे पैदा होने वाली सब्जी से ... गुणकारी होती है । जो गायें धूप मे घूम कर चरा... मे नही चरती, उनका दूध गुणकारी नही होता ।

प्रकाश-विश्लेषण—

आलोक की किरणे आकाश मे विद्युत की ... द्वारा कपन को जन्म देती है । जिसका आभास नेत्रो ... हमारे शरीर की सूक्ष्म नाड़ियो को होता है । प्रकाश ... रूप मे भौतिक होते हुये भी सूक्ष्म ही है । प्रकाश को प्रकृति का उत्साह कहा जाय तो अधिक युक्ति... होगा ।

यदि सूर्य के प्रकाश पुज को हम त्रिपार्श्व ... (Prism) के अन्दर से गुजारे तो प्रकाश सात र... विभाजित दिखाई देगा । इस विश्लेपित सतरगी प्रकाश ... अग्रेजी मे 'स्पेक्ट्रम' कहते हैं । स्पेक्ट्रम के एक सिरे ... लाल और दूसरे पर बैंगनी रंग आखो को दिखेगे । ...क्ट्रम मे सात रग ही दीखेगे इससे यह माना नही ... सूर्य-प्रकाश केवल इन्ही सात रङ्ग की रश्मियो से बना ... नही बल्कि स्पेक्ट्रम के दोनो सिरो के बाहर भी किरणें होती है जिनका रङ्ग देखने मे हमारी आखें ...मर्थ हैं । बैंगनी सिरे से परे वाली अदृश्य किरणो ... नीलोत्तर किरणे (Ultraviolet Rays) और ... किरणो से आगे वाली अदृश्य किरणो को Infra Rays कहते है । इन दो अदृश्य किरणो के अतिरिक्त

ई अदृश्य किरणे होती है, जिनमे कुछ का पता
कों ने लगा लिया है और बाकी का लगा रहे है।
का पता अब तक लग चुका है। वे हैं–एक्सरे, एल्फारे
, तथा गामारे।
प्रकाश-विश्लेषण नीचे के चित्र से स्पष्ट हो जाता है–

प्रकाश-विश्लेषण
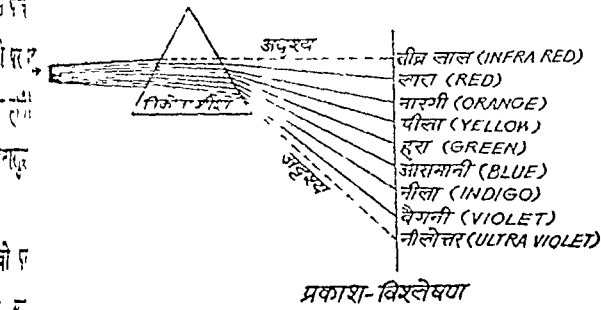
इन्फ्रारेड किरणे

वैज्ञानिक भाषा मे अदृश्य गरमी की किरणो को
ra red rays) अथवा तीव्र लाल किरण कहते है।
प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर बहुत कम पडता है।
रणें धरती मे बहुत दूर तक घुसती है और वनस्पति
र को जीवन प्रदान करती हैं। इन किरणो का
हमारे चर्म भाग पर भी पड़ता है। रक्त की कमी,
की सूजन, सक्रामक रोग, गठिया वात, रक्त की
तीय अधिकता आदि मे ये किरणे लाभ करती है। पर
किरणो को इनके अदृश्य होने के कारण, हम जब
तब प्राप्त नही कर सकते इसलिए रोग के निवारण
नका प्रयोग नही कर सकते। हालाकि कुछ चिकित्सक
द्वारा कृत्रिम इन्फारेड किरणो का प्रयोग रोगोप-
मे करते हैं पर असल असल ही है और नकल नकल

लाल किरणे

सूर्य-रश्मि पुज मे ८०% केवल लाल किरणे और
लाल किरणे होती है। ये गरमी की किरणे होती
जिनको हमारे चर्म भाग १००% सोख लेते हैं।
यु-मण्डल को उत्तेजित करना इनका विशेष कार्य है।
स रग के कमरे मे बैठकर खाने से पाचन बिगड जाता
और पेट के कितने ही रोग हो जाते है। लाल रग गर्मी
ता है। यही कारण है कि जाडों मे हम लाल रग के
... रोगो मे ... पहनना उपकारी

है। जिसका हृदय दुर्बल हो वह लाल रग का वस्त्र न
पहने। जिसके पाव सदैव ठण्डे रहते हो वह लाल रग
का मोजा लाभ के साथ पहन सकता है। यह रग चञ्चलता
उत्पन्न करता है और स्वभाव मे प्रखरता लाता है।
परन्तु गुलाबी रग प्रेम का प्रतीक है।

यह रग वायु से अकडी नसो, नसो का शैथिल्य
या उसमे गाठ पड जाना, सर्दी से आई हुई सूजन,
शीतांग आदि स्नायु मण्डल के सभी रोगो मे उपकारी
है। इससे लूले-लगडे मनुष्य तक अच्छे हो जाते है।
यह रग विद्युत गुण वाला भी होता है। शरीर के
निर्जीव भाग को चैतन्यता प्रदान करने मे अद्वितीय है।
शरीर के किसी भाग मे यदि गति न हो तो लाल प्रकाश
डालने से उस भाग मे चैतन्यता आ जाती है। विशेष-
विशेष रोगो मे ही लाल किरण तप्त जल पीने के काम
मे आता है। इस जल को बहुत सोच समझकर पीना
चाहिए। यह जल विशेषकर मालिश करने या शरीर
के बाहरी भाग मे लगाने या पट्टी देने के काम मे आता
हैं। यह जल एलोपैथी (Iodine) से भी अधिक गुण-
कारी होता है। यदि भूल से यह जल पी लिया जाय तो
खून के दस्त अथवा कै होने का भय रहता है।

यह रग प्राय. लगाने और मालिश करने के काम
मे आता है। कुछ रोगो मे अन्य रगो के साथ मिलाकर
पीने को भी दिया जाता है। यह रग आखो मे न पडना
चाहिए वरना वे फूट जा सकती है।

शरीर मे लाल रग की कमी से सुस्ती अधिक होती
है निद्रा अधिक सताती है, भूख घट जाती है तथा कब्ज
भी रहती है। नेत्र और नाखून नीले हो जाते हैं तथा
दस्त का रग चिकटा या नीला हो जाता है।

शरीर मे लाल रग की वृद्धि से त्वचा मे सूजन आ
जाती है और गरमी के विकार उभड आते है।

लाल रग बढाने से नीला रग या उसका प्रभाव
दबता है। सौर्य चिकित्सा मे पित्त का रंग लाल माना
गया है।

सन्निपात ज्वर, प्लेग ज्वर के आरम्भ मे आधा
लाल+आधा गहरा नीला तप्त जल जरूर देना चाहिए।
... की ... मे ... आधा ... किन्तु
... बार ... पिलाना पडता है। ... सन्निपातिक

अतिसार मे भी लाल २+गहरा नीला १+हल्का नीला १ प्रति आध घण्टे पर १॥ तोला पिलाना चाहिए । पेट मे कृमि पडना और शूल होना=लाल १+गहरा नीला ४, दिन मे चार बार खोराक ढाई तोला देनी चाहिए ।

इसी प्रकार लाल-किरण-तप्त तेल की मालिश किसी रोग के कारण कड़े पडे हुए अङ्ग को अथवा भीतरी स्नायु और मासपेशियो के कमजोर पड जाने पर उत्तेजना एव स्फूर्ति पैदा करने के लिए लाभकारी है । इससे भीतरी अवयव अपने-अपने स्थान पर ठीक आजावेंगे और सजीव हो उठेंगे ।

चिकित्सा के लिए 'सूर्यरश्मियो मे से किसी विशेष रग की रश्मि की शक्ति एवं प्रभाव को जल वा तेल मे कैसे उतारा जाता है अथवा उस रंग का प्रकाश रोगी को कैसे दिया जाता है, ये बात आगे बतायी जायेगी ।

नारंगी रंग की किरणें

यह रग भी गर्मी बढाता है । यह रग पुराने रोगो मे तीन दिन तक पहले पहल देकर पेट को साफ करने के काम मे लाया जाता है और तब असल रोग की दवा दी जाती है । यह रंग दमा रोग के लिए अक्सीर है। नसो की बीमारी और लकवा आदि वात-व्याधियो की एक ही औषधि है । तिल्ली के बढने, मूत्राशय और आतो की शिथिलता, उपदश आदि रोगो मे भी नारगी-किरण-तप्त जल काम मे आता है ।

पीली किरणें

वसन्त ऋतु मे पीला कपड़ा पहनना लाभकारी है । गर्मी के दिनो मे सफेद । क्योकि सफेद रङ्ग ठडा होता है । शीत मे काले रङ्ग का कपड़ा पहनना चाहिए, किन्तु उसके नीचे सफेद रङ्ग का एक कपड़ा जरूर पहनना चाहिए, अन्यथा हानिकारक है और बदन मे झुर्रिया शीघ्र डालता है । पीले रङ्ग का कपड़ा पहनने से ज्ञानतन्तु चैतन्य एवं नीरोग रहते है। मलावरोध, लकवा आदि नही होते । यह रङ्ग बुद्धि, विवेक एवं ज्ञान की वृद्धि करने वाला होता है । बौद्धों में इसी दृष्टि से पीत परिधान प्रचलित है ।

यह रङ्ग पेट, जिगर, तिल्ली, फेफड़ो, तथा हृदय के रोगो मे विशेष रूप से हितकर है । इससे पेट की गडगड़ाहट, पेट फूलना, पेट मे पीड़ा होना, कोष्ठवद्धता, अजीर्ण, कृमि रोग, गुदभ्रंश, मेदविकार आदि रोग दूर होते है । पीली किरण तप्त जल थोडा थोडा ... तक पीने से लाभ होता है । अधिक मात्रा मे सेवन से हानि की सम्भावना रहती है । अधिक मात्रा मे ... करने से कभी-कभी तो पेट मे इतनी गरमी बढ ... कि दस्त आने लगते हैं । यह जल युवक और युवति... अपना प्रभाव तुरन्त दिखलाता है । यह जल ... पीने के ही काम मे प्रयोग होता है ।मगर ... पडने पर इसे मालिश और अन्य रङ्ग के जलो ... मिलाकर पट्टी रखने के काम मे भी आता है ।

इस रङ्ग की कमी, तथा हल्के नीले रङ्ग ... से शरीर मे मेद रोग, गुल्मरोग, शूल, पसली ... मसूढो का दर्द, योनिजन्यशूल, कृमि, दिल का रोग, ... का रोग, कोष्ठवद्धता, तथा शोथ उत्पन्न हो जाता है।

इस रङ्ग की वृद्धि से शरीर में चीसें उठना, दर्द आदि उत्पन्न हो जाते है । इस रङ्ग के बढने ... और नीला रङ्ग मिश्रित के जो कुप्रभाव होते हैं, वे ... जाते है । वात तथा कफ जनित रोगो को यह रङ्ग ... दूर करता है ।

सौर्य-चिकित्सा मे वात का रङ्ग पीला ... गया है ।

हरी किरणें

यह रङ्ग आख और त्वचा के रोगो मे विशेष ... कारी है । यह रङ्ग भूख बढाता है । जिसको गर्मी, ... या नासूर आदि चर्म रोग हो, उन्हे हरे रङ्ग का ... पहनना चाहिए । चेचक रोग मे यह रङ्ग बडा लाभ का ... है । इससे हाथ-पाव का फटना, दर्द, खाज, फोड़ा, ... रक्तपित्त, अर्थात् छाती, नाक, मुह, गुदा द्वारा ... गिरना, स्त्रियो का रक्त प्रदर, बवासीर अच्छा हो जा... है । शरीर मे पकने वाले, सड़ने वाले, बहने वाले, ... युक्त और किसी भी दवा से न अच्छा होने वाले ... प्रकार के विकार निस्सन्देह दूर हो जाते हैं । यह ... ठड पहुंचाने वाला है । ज्ञानतन्तुओ और स्नायु मण्डल ... बल देता है । यह रङ्ग कटि व मेरुदण्ड के निचले ... के कष्टो को खासतौर पर दूर करने वाला है । स्वप्न... को भी नाश करता है ।

हरी किरण तप्त जल पीने,पट्टी रखने, तथा मालि... काम मे आता है, और तेल लगाने और मालिश करने ...

इस रग की कमी और लालरग की वृद्धि से शरीर मे फोडा, फुन्सी, खुजली, दाद आदि त्वचा के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

हरा रग वढाने से लाल रग के विकार दबाते है।

हरा रग मस्तिष्क की गरमी शात करने और आख के रोगो मे अचूक है। समय से पहले ही सफेद होने वाले बाल इस रग के प्रयोग से फिर काले हो जाते हैं। हरा तप्त जल सिर के पिछले भाग मे लगाने से स्वप्नदोष तथा धातु सम्बन्धी रोग मिट जाते है। सिर और पाव मे लगाने से नेत्ररोग नही होते और नीद अच्छी आती है, कर्ण रोगो मे इस तेल को कान मे डालते है।

आसमानी रङ्ग की किरणे

आसमानी रग को अग्रेजी मे Blue रग या गहरा नीला कहते हैं। शरीर की सूजन मे नीला और सफेद मिश्रित कपडा पहनना गुणकारी है। टोपी या पगडी के अन्दर का अस्तर नीले रग का गुण करता है। जिसकी प्रकृति गरम हो उसको सदा नीले रग का कपडा पहनना दवा का काम करेगा।

यह रग ठडक और शान्तिदायक है। इसमे विद्युत शक्ति होती है। यह पौष्टिक भी होता है इसीलिये कुछ कब्ज करने वाला होता है। जब शरीर का कोई भाग या समस्त शरीर गरम हो उस समय इस रग का प्रयोग करना चाहिये।

गरमी की अधिकता से होने वाले रोग जैसे ज्वर, श्वास, कास, सिर पीडा, पेचिश, अतिसार, सग्रहणी, मस्तिष्क के रोग, प्रमेह, पथरी, मूत्र विकार आदि इस रग से सरलता के साथ अच्छे हो जाते है।

यह रग सब रोगो मे श्रेष्ठ है। प्राणिमात्र का नैसर्गिक जीवन इसी रग पर निर्भर करता है। यही कारण है कि समस्त पृथ्वी पर फैले हुये आकाश का रग नीला है। इसी रग द्वारा जीवो को जीवन शक्ति की प्राप्ति होती है। यह रग भक्ति, अनुराग, एव प्रेम का जनक है। हिन्दू शास्त्र मे जो राम और कृष्ण के नील वर्ण विग्रह के ध्यान का विधान है। इसका एक अभिप्राय यह भी है कि नील वर्ण वास्तव मे ही शान्ति प्रदान करता है। यह रग जितना ही गहरा होगा उतना ही अधिक ठडक देने वाला होगा। और जितना अधिक गहरा होगा, उतनी ही उसमे गरमी होगी।

आसमानी किरण तप्त जल सब रोगो पर चलता है और गुण करता है किन्तु यदि गले मे छाले हो गये हो, काटे पड़ गये हो, पीव बहता हो रुधिर बहता हो तो इस पानी के प्रयोग से प्रथम छाले बढते मालूम होगे परन्तु इससे घबडाना नही चाहिये उपचार चलने देना चाहिये, अवश्य लाभ होगा।

यह रग पीने, पट्टी रखने-दोनोके काम मे आता है।

शरीर मे नीला रग कम होने से क्रोध अधिक आता है चुपचाप बैठा नही जाता, कभी कभी शरीर गरम होजाता है, और पतले दस्त भी आने लगते है। आखे गुलाबी, नाखून लाल, पेशाब लालिमा लिये हुए पीला और दस्त पीला या लाल होगा।

गहरे नीले रग की कमी और लाल रग की वृद्धि से शरीर के जोडो मे अकड, दर्द प्रमेह, पथरी, दाह, खट्टी और कडुई उबकाई का आना, गर्दन अकडना, बाल गिरना, और आखो के रोग उत्पन्न होते है।

नीले रग की अधिकता से वात जन्य रोग उत्पन्न होते है किन्तु नीला रग शरीर मे बढानेसे अन्य चारो रगो की अधिकता से बढने वाले रोग मिटते हैं।

यदि इस रग के जल से घाव धोना पड़े तो धोने मे इस जल का अधिक देर तक प्रयोग नही करना चाहिये, अन्यथा घाव मे पीडा होने लगेगी।

सौर्य-चिकित्सा मे कफ का रङ्ग नीला माना गया है।

यदि वर्र, बिच्छू, शहद की मक्खी आदि काट खायें तो यह जल उस स्थान पर मल देने से या उसकी पट्टी रख देने से आराम हो जाता है।

आसमानी-किरण-तप्त तेल की मालिश कुछ दिनो तक रोज आध घटे तक धूप मे बैठकर करने से शरीर गठ जाता है और बल की वृद्धि होती है।

आसमानी किरण तप्त जल पौष्टिक (Tonic) है और रोगमुक्ति के बाद ताकत लाने के लिए प्राय. व्यवहार होता है।

नीली किरणें

इस रङ्ग की कमी और लाल रङ्ग की अधिकता से, [illegible] आदि रोग हो

पीड़ित हो जाता है।

नीली किरण तप्त तेल के व्यवहार से कुसमय मे बालो का सफेद होना, कड़े होना, गिरना, सिर दर्द इत्यादि पीडाये समूल नष्ट हो जाती है। यह तेल बालो को बढा कर दिमाग को तर और शात रखता है, तथा ताकत पहुँचाता है।

बैंगनी किरणें

इस रङ्ग की प्रकृति भी नीले और हरे रङ्ग की भाति शीतल है। यह रङ्ग शरीर का ताप कम करने मे गुणकारी है। शरीर मे इसकी कमी हो जाने से हैजा, अतिसार, प्रलाप आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पागल कुत्ते के काटे, मस्तिष्क दौर्बल्य, तथा हृदय की धडकन मे बैंगनी किरण तप्त जल लाभ करता है। ये विद्युत किरणे भी कहलाती है, जिन पर पृथ्वी के सभी प्राणियो का जीवन निर्भर है।

'अलटरावायलेट' या 'नीलोत्तर किरणे'

इन किरणो को अदृश्य किरणे या अष्टम किरणे भी कहते है। हिन्दी मे इस किरण का एक नाम पराकासनी किरण भी है। जैसा कि ऊपर के चित्र से ज्ञात होगा, इस किरण का स्थान बैंगनी किरण के ठीक बाद है। इस किरण के गुण अनन्त है। इसके प्रभाव से भयङ्कर से भयङ्कर रोग कीटाणु तत्काल नष्ट हो जाते हैं। अंग्रेजी दवा 'Iodine' से कही अधिक विषनाशक शक्ति इस किरण मे विद्यमान है। यह किरण विटामिन का स्वाभाविक उत्स है। इस किरण मे जीवनशक्ति एवं स्वास्थ्य-बर्द्धक गुण तो अनन्त है ही, पर इसको प्राकृतिक रूप मे प्राप्त करना बडा कठिन है। कारण, नमी और धूल से भरे वातावरण को भेद कर ये किरणे हम तक बहुत कम पहुँच पाती है। ये किरणे केवल सूर्योदय के समय ही थोडी मात्रा मे प्राप्त की जा सकती है, वह भी नगे बदन रहने पर। क्योकि यह बात प्रयोगो से सिद्ध हो चुकी है कि ये किरणे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्त्रो को भी वेध नही पाती जिससे शरीर, हर समय वस्त्रो से लदा रहने के कारण उदार प्रकृति के इस महान वर को प्राप्त नही कर सकता। इसी अमृत का लाभ उठाने के लिए स्वास्थ्य-विशेषज्ञ सूरज निकलने के पहले उठने का आदेश देते है, नगे सर, नगे बदन स्वर्ग वेला मे वायु सेवन के लिये खुले मैदान मे निकल जाने का अनुरोध करते है, तथा नगे बदन ही के सामने खडे होकर उनको जल चढाने आदि धार्मिक कृत्यो की व्यवस्था देते है। पर हममे से कितने हैं जो उनके कहने को मानकर इन अमृत तुल्य नीलोत्तर किरणों से लाभ उठाते है ?

निरावृत खेत की फसलो पर जब सुबह-सुबह नीलोत्तर किरणे पडती है तो ये किरणे उनके द्वारा खीच या सोख ली जाती है जिनसे उनकी उपज मे खाद्योजों (Vitamins) की वृद्धि हो जाती है। उसी प्रकार जब ये किरणे मनुष्य के नगे बदन पर पडती हैं तो ये तत्काल त्वचा द्वारा खून मे प्रवेश कर जाती है और अन्दर पहुच कर विटामिन 'डी' की वृद्धि करती है, और जीवन शक्ति बढाती है, जिससे शरीर में काफी मात्रा मे लाल रक्त उत्पन्न होकर वह अधिकाधिक बलवान हो जाता है।

डा० बर्नर मैकफैडन के कथनानुसार, ये किरणें अपने आश्चर्यजनक गुणो के साथ ही रक्त मे कैलशियम की मात्रा बढा देती है, इसीसे ये काडलिवर आयल से कहीं अधिक गुणकारी है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि ये किरणे विटामिन 'ए' के प्रभाव को अधिक शक्तिशाली बना देती हैं। विश्व के समस्त सफल प्राकृतिक चिकित्सक जिनमे 'बर्नर मैकफैडन, बेनिडिक्ट लस्ट, तथा स्टेनली लीफ आदि हैं, इन किरणो का प्रयोग अपने स्वास्थ्य गृहो में सफलता के साथ कर रहे हैं। उनका कहना है कि ये किरणे, श्वेत और अरुण रक्त-कणो कैलशियम, फासफोरस, फास्फेट, आयोडीन और लोहा इत्यादि मे समता पैदा कर देती हैं।

डा० रोलियर, स्वीटजरलैन्ड के प्रसिद्ध सूर्य-रश्मि चिकित्सक के मतानुसार शहरो मे रहने वाले तथा अपने शरीर को वस्त्रो से पूरी तरह से ढककर रहने वाले आधुनिक युगी सभ्य लोगो के शरीर पर तो सूर्य की ये जीवन दायिनी किरणे कभी पड ही नही पाती, जिसका फल जो भी है वह किसी से छिपा नही है।

जब हम किसी स्थान पर की हरी घास को किसी चीज से ढक देते है तो उसकी हरियाली गायब होते होते वह एकदम सफेद हो जाती है और सूख जाती है। ऐसा क्यो ? यह इसलिए कि ढक देने से उस घास को जमीन से खुराक मिलते रहने पर भी सूर्य द्वारा जीवनदायिनी

लोत्तर किरणो की खोराक मिलनी बन्द होगयी, फलतः ह भूख के कारण निर्जीव होगयी। मनुष्य के सम्बन्ध मे ी यही बात है। अर्थात् पौधो की नसो मे हरे रंग का न दौड़ता रहता है जिसको अंग्रेजी मे Chlorophyl हते है, और मनुष्यो की नसो मे लाल रग का जिसको हीमोग्लोबिन' कहते है। इस लाल रग को भी सूर्य की न रश्मियो की उतनी ही जरूरत होती है जितनी कि ौधो को। कपडे लत्तो से सदैव लदे रह कर सूर्य की इन ाभदायक किरणो से हम अपने को अलग कर लेते है और ाभ के बदले हानि उठाते है। शहरो मे अधिक धुम्रा ौर गर्द से भरा आसमान भी शहरियो को इन जीवन-ायिनी किरणो से वचित रखता है। समुद्रतट और पर्वत ो दो ऐसे स्थान है जहा पर नीलोत्तर किरणे प्रचुर मात्रा े पायी जाती हैं। ये किरणे मनुष्य के वाह्य शरीर पर ो लाभदायक सिद्ध ही होती है, साथ ही साथ, आतरिक सचालन प्रणालियो पर भी अपना लाभदायक प्रभाव डाले बिना नही रहती।

रेशमी कपडे, चमकीले पदार्थ, स्फटिक मणियां वा ऐसे पदार्थ, जिन पर सूर्य की किरणे पडते ही वे इन्द्रधनुष के विविध रगो मे विभक्त हो जाती है, मानव-शरीर पर अपना अद्भुत प्रभाव दिखाती हैं। उपर्युक्त प्रकार से किरण विभक्ति के बाद जब उनमे से नीलोत्तर किरणें निकल कर शरीर के ऊपर पड़ती हैं तो स्वास्थ्य के लिए हित-कर होती हैं। ये किरणें काच के बाहर नही जा सकती, इसलिए काच के भीतर से निकली किरणे लाभदायक नही होती। प्रत्युत् ये गुणकारी किरणे बिल्लौर-स्फटिको मे से निकल जाती है और अच्छा स्वास्थ्यप्रद प्रभाव करती हैं। इसी सिद्धात पर कदाचित हमारे पूर्वजो ने रत्नो का शरीर पर धारण करना श्रेष्ठ बतलाया है और काच को अधम गिना है। बिल्लौरी झाड़-फानूस लटकाना शोभा-दायक होने के साथ रोगनाशक तथा स्वास्थ्य वर्द्धक भी होता है यह लाभ विलायती काच के बने पदार्थो से कदापि प्राप्त नही हो सकता।

सूर्यरश्मियो की रोगनाशक शक्ति के सम्बन्ध मे अनुसधान करने वाले सभी अन्वेषको का मत है कि इनमे से नीलोत्तर किरणे ही मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए विशेष लाभ की है, जिनको कृत्रिम रूप से प्राप्त करने के लिए कितनी ही मशीने बन गयी हैं, परन्तु मशीनो द्वारा ये किरणे प्राप्त कर हम उतना लाभ तो किसी हालत से नही उठा सकते जितना सीधे सूर्य की किरणो द्वारा प्राप्त करके उठा सकते है।

नीलोत्तर किरणो के रोगनाशक प्रभाव को वैज्ञानिक जगत ने एक स्वर से स्वीकार किया है। इन किरणो से त्वचा के रोग, व्रण, फोडे, फुन्सी, नासूर, सूखा तथा जीर्ण ज्वरादि रोग चमत्कार रूप से नष्ट हो जाते है। गहरे घावो मे, जहा औषधिया नही पहुच सकती, इन किरणो को प्रवेश कराकर रोग कीटाणुओ का अत किया जा सकता है। बच्चो की हड्डियो के टेढा होने के रोग मे नीलोत्तर किरणो के सेवन से बढ कर दूसरी गुणकारी औषधि है ही नही। माता द्वारा इन किरणो के सेवन से दूध पीते बच्चे भी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करते देखे गये हैं। मधुमेह, हिस्टीरिया, और स्त्रियो के मासिक धर्म सम्बन्धी रोगो मे भी ये किरणे हितकर हैं। क्षय के सभी रूपो मे ये किरणे लाभ करती है। पर अदृश्य इन्फ्रा रेड किरणो की भाँति ही इन नीलोत्तर किरणो का भी हम जब चाहे तब प्रयोग नहीं कर सकते। यत्रों (Quartz Mercury Vapour lamp) द्वारा प्राप्त कृत्रिम नीलोत्तर किरणो का प्रयोग रोगो मे हम इसीलिये अवसर करते है।

सूर्य-प्रकाश चिकित्सा का इतिहास

भारतवासी तो आदिकाल मे सूर्य-प्रकाश की स्वास्थ्य-वर्द्धक एव रोग नाशक शक्ति को जानते आरहे हैं जिसका प्रमाण उनके आदि ग्रन्थो से प्राप्त होता है यथा —

"आरोग्य भास्करा दिच्छेत्......." (श्रीमद् भागवत)

अन्तश्चरित रोचनास्य प्राणादपानती व्यख्यन्महिषो दिवम्। (ऋ० १०। १८९)

उपरोक्त मन्त्रो मे स्पष्ट कहा है कि भगवान सूर्य की रोचमाना दीप्ति अर्थात् सुन्दर प्रभा शरीर के मध्य मे मुख्य प्राणरूप होकर रहता है। इसीसे सिद्ध है कि शरीर का स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होना भगवान सूर्य की कृपा पर निर्भर है।

प्रश्नोपनिषद मे उल्लेख है :—

यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते।

अर्थात् जब आदित्य प्रकाशमान होता है तब वह समस्त प्राणो को अपनी किरणो मे रखता है।

पीड़ित हो जाता है।

नीली किरण तप्त तेल के व्यवहार से कुसमय मे बालो का सफेद होना, कड़े होना, गिरना, सिर दर्द इत्यादि पीडाये समूल नष्ट हो जाती है। यह तेल वालो को वढा कर दिमाग को तर और शात रखता है, तथा ताकत पहुँचाता है।

बैंगनी किरणे

इस रङ्ग की प्रकृति भी नीले और हरे रङ्ग की भाति शीतल है। यह रङ्ग शरीर का ताप कम करने मे गुणकारी है। शरीर मे इसकी कमी हो जाने से हैजा, अतिसार, प्रलाप आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पागल कुत्ते के काटे, मस्तिष्क दौर्बल्य, तथा हृदय की धडकन मे बैंगनी किरण तप्त जल लाभ करता है। ये विद्युत किरणे भी कहलाती हैं, जिन पर पृथ्वी के सभी प्राणियो का जीवन निर्भर है।

'अल्टरावायलेट' या 'नीलोत्तर किरणे'

इन किरणो को अदृश्य किरणे या अष्टम किरणे भी कहते है। हिन्दी मे इस किरण का एक नाम पराकासनी किरण भी है। जैसा कि ऊपर के चित्र से ज्ञात होगा, इस किरण का स्थान बैंगनी किरण के ठीक बाद है। इस किरण के गुण अनन्त है। इसके प्रभाव से भयङ्कर से भयङ्कर रोग कीटाणु तत्काल नष्ट हो जाते हैं। अंग्रेजी दवा 'Iodine' से कही अधिक विषनाशक शक्ति इस किरण मे विद्यमान है। यह किरण विटामिन का स्वाभाविक उत्स है। इस किरण मे जीवनशक्ति एवं स्वास्थ्य-बर्द्धक गुण तो अनन्त है ही, पर इसको प्राकृतिक रूप मे प्राप्त करना वडा कठिन है। कारण, नमी और धूल से भरे वातावरण को भेद कर ये किरणे हम तक बहुत कम पहुँच पाती है। ये किरणे केवल सूर्योदय के समय ही थोडी मात्रा मे प्राप्त की जा सकती है, वह भी नगे वदन रहने पर। क्योकि यह बात प्रयोगो से सिद्ध हो चुकी है कि ये किरणे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्त्रो को भी वेध नही पाती जिससे शरीर, हर समय वस्त्रो से लदा रहने के कारण उदार प्रकृति के इस महान वर को प्राप्त नही कर सकता। इसी अमृत का लाभ उठाने के लिए स्वास्थ्य-विशेषज्ञ सूरज निकलने के पहले उठने का आदेश देते है, नगे सर, नगे वदन स्वर्ण वेला मे वायु सेवन के लिये खुले मैदान मे निकल जाने का अनुरोध करते है, तथा नंगे बदन ही के सामने खडे होकर उनको जल चढाने आदि धार्मिक कृत्यो की व्यवस्था देते है। पर हममे से कितने हैं, उनके कहने को मानकर इन अमृत तुल्य नीलोत्तर किरणो से लाभ उठाते है?

निरावृत खेत की फसलो पर जब सुबह-सुबह नीलोत्तर किरणे पडती है तो ये किरणे उनके द्वारा खीच व सोख ली जाती हैं जिनसे उनकी उपज मे खाद्योज (Vitamins) की वृद्धि हो जाती है। उसी प्रकार जब किरणे मनुष्य के नगे वदन पर पडती हैं तो ये तत्काल त्वचा द्वारा खून मे प्रवेश कर जाती है और अन्दर पहुच कर विटामिन 'डी' की वृद्धि करती हैं, और जीवन शक्ति वढाती है, जिससे शरीर में काफी मात्रा मे लाल रक्त उत्पन्न होकर वह अधिकाधिक वलवान हो जाता है।

डा० वर्नर मैकफैडन के कथनानुसार, ये किरणें अपने आश्चर्यजनक गुणो के साथ ही रक्त मे कैलशियम की मात्रा वढा देती है, इसीसे ये काडलिवर आयल से कहीं अधिक गुणकारी हैं। यह भी सिद्ध हो चुका है कि ये किरणे विटामिन 'ए' के प्रभाव को अधिक शक्तिशाली बना देती हैं। विश्व के समस्त सफल प्राकृतिक चिकित्सक जिनमे 'बर्नर मैकफैडन, बेनिडिक्ट लस्ट, तथा स्टेनली लीफ आदि है, इन किरणो का प्रयोग अपने स्वास्थ्य गृहो में सफलता के साथ कर रहे है। उनका कहना है कि ये किरणे, श्वेत और अरुण रक्त-कणो कैलशियम, फासफोरस, फास्फेट, आयोडीन और लोहा इत्यादि मे समता पैदा कर देती है।

डा० रोलियर, स्वीटजरलैण्ड के प्रसिद्ध सूर्य-रश्मि चिकित्सक के मतानुसार शहरो मे रहने वाले तथा अपने शरीर को वस्त्रो से पूरी तरह से ढककर रहने वाले आधुनिक युगी सभ्य लोगो के शरीर पर तो सूर्य की ये जीवन दायिनी किरणे कभी पड़ ही नही पाती, जिसका फल जो भी है वह किसी से छिपा नही है।

जब हम किसी स्थान पर की हरी घास को किसी चीज से ढक देते है तो उसकी हरियाली गायब होते होते वह एकदम सफेद हो जाती है और सूख जाती है। ऐसा क्यो? यह इसलिए कि ढक देने से उस घास को जमीन से खुराक मिलते रहने पर भी सूर्य द्वारा जीवनदायिनी

लोत्तर किरणो की खोराक मिलनी बन्द होगयी, फलत: ह भूख के कारण निर्जीव होगयी । मनुष्य के सम्बन्ध मे ो यही बात है । अर्थात् पौधो की नसो मे हरे रग का न दौड़ता रहता है जिसको अंग्रेजी में Chlorophyl हते है, और मनुष्यो की नसो मे लाल रग का जिसको हीमोग्लोबिन' कहते है । इस लाल रग को भी सूर्य की न रश्मियो की उतनी ही जरूरत होती है जितनी कि धो को । कपडे लत्तो से सदैव लदे रह कर सूर्य की इन भदायक किरणो से हम अपने को अलग कर लेते है और ाभ के बदले हानि उठाते है । शहरो मे अधिक धुआ ौर गर्द से भरा आसमान भी शहरियो को इन जीवन-ायिनी किरणो से वचित रखता है । समुद्रतट और पर्वत दो ऐसे स्थान है जहा पर नीलोत्तर किरणे प्रचुर मात्रा पायी जाती हैं । ये किरणे मनुष्य के बाह्य शरीर पर ो लाभदायक सिद्ध ही होती है, साथ ही साथ, आतरिक चालन प्रणालियो पर भी अपना लाभदायक प्रभाव डाले बिना नही रहती ।

रेशमी कपडे, चमकीले पदार्थ, स्फटिक मणियां वा ऐसे पदार्थ, जिन पर सूर्य की किरणे पड़ते ही वे इन्द्रधनुष के विविध रगो मे विभक्त हो जाती है, मानव-शरीर पर अपना अद्भुत प्रभाव दिखाती हैं । उपर्युक्त प्रकार से किरण विभक्ति के बाद जब उनमे से नीलोत्तर किरणें निकल कर शरीर के ऊपर पड़ती हैं तो स्वास्थ्य के लिए हित-कर होती हैं । ये किरणें काच के बाहर नही जा सकती, इसलिए काच के भीतर से निकली किरणे लाभदायक नही होती । प्रत्युत् ये गुणकारी किरणे बिल्लौर-स्फटिको मे से निकल जाती है और अच्छा स्वास्थ्यप्रद प्रभाव करती हैं । इसी सिद्धात पर कदाचित हमारे पूर्वजो ने रत्नो का शरीर पर धारण करना श्रेष्ठ बतलाया है और काच को अधम गिना है । बिल्लौरी झाड़-फानूस लटकाना शोभा-दायक होने के साथ रोगनाशक तथा स्वास्थ्य वर्द्धक भी होता है यह लाभ विलायती काच के बने पदार्थो से कदापि प्राप्त नही हो सकता ।

सूर्यरश्मियो की रोगनाशक शक्ति के सम्बन्ध मे अनुसधान करने वाले सभी अन्वेषको का मत है कि उनमे से नीलोत्तर किरणे ही मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए विशेष लाभ की हैं, जिनको कृत्रिम रूप मे प्राप्त करने के लिए कितनी ही मशीने बन गयी हैं, परन्तु मशीनो द्वारा ये किरणे प्राप्त कर हम उतना लाभ तो किसी हालत से नही उठा सकते जितना सीधे सूर्य की किरणो द्वारा प्राप्त करके उठा सकते है ।

नीलोत्तर किरणो के रोगनाशक प्रभाव को वैज्ञानिक जगत ने एक स्वर से स्वीकार किया है । इन किरणो से त्वचा के रोग, व्रण, फोडे, फुन्सी, नासूर, सूखा तथा जीर्ण ज्वरादि रोग चमत्कार रूप से नष्ट हो जाते है । गहरे घावो मे, जहा औषधिया नहीं पहुच सकती, इन किरणो को प्रवेश कराकर रोग कीटाणुओं का अत किया जा सकता है । बच्चो की हड्डियो के टेढा होने के रोग मे नीलोत्तर किरणो के सेवन से बढ कर दूसरी गुणकारी औषधि है ही नही । माता द्वारा इन किरणो के सेवन से दूध पीते बच्चे भी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करते देखे गये हैं । मधुमेह, हिस्टीरिया, और स्त्रियो के मासिक धर्म सम्बन्धी रोगो मे भी ये किरणे हितकर हैं । क्षय के सभी रूपो मे ये किरणे लाभ करती है । पर अदृश्य इन्फ्रा रेड किरणो की भाँति ही इन नीलोत्तर किरणो का भी हम जब चाहे तब प्रयोग नहीं कर सकते । यत्रो (Quartz Mercury Vapour lamp) द्वारा प्राप्त कृत्रिम नीलोत्तर किरणो का प्रयोग रोगो मे हम इसीलिये अक्सर करते है ।

सूर्य-प्रकाश चिकित्सा का इतिहास

भारतवासी तो आदिकाल से सूर्य-प्रकाश की स्वास्थ्य-वर्द्धक एव रोगनाशक शक्ति को जानते आरहे हैं जिसका प्रमाण उनके आदि ग्रन्थो से प्राप्त होता है यथा —

"आरोग्य भास्करा दिच्छेत् ······ (श्रीमद् भागवत)

अन्तश्चरित रोचनास्य प्राणादपानती व्यख्यन्महिषो दिवम् । (ऋ ० १०। १८९)

उपरोक्त मन्त्रो मे स्पष्ट कहा है कि भगवान सूर्य की रोचमाना दीप्ति अर्थात् सुन्दर प्रभा शरीर के मध्य मे मुख्य प्राणरूप होकर रहता है । इससे सिद्ध है कि शरीर का स्वस्थ एव दीर्घजीवी होना भगवान सूर्य की कृपा पर निर्भर है ।

प्रश्नोपनिषद मे उल्लेख है :—

यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ।

अर्थात् जब आदित्य प्रकाशमान होता है तब वह समस्त प्राणो को अपनी किरणो मे रखता है ।

पीड़ित हो जाता है।

नीली किरण तप्त तेल के व्यवहार से कुसमय मे बालो का सफेद होना, कड़े होना, गिरना, सिर दर्द इत्यादि पीडाये समूल नष्ट हो जाती है। यह तेल बालो को बढा कर दिमाग को तर और शात रखता है, तथा ताकत पहुँचाता है।

बैगनी किरणें

इस रङ्ग की प्रकृति भी नीले और हरे रङ्ग की भाति शीतल है। यह रङ्ग शरीर का ताप कम करने मे गुणकारी है। शरीर मे इसकी कमी हो जाने से हैजा, अतिसार, प्रलाप आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पागल कुत्ते के काटे, मस्तिष्क दौर्बल्य, तथा हृदय की धडकन मे बैंगनी किरण तप्त जल लाभ करता है। ये विद्युत किरणे भी कहलाती है, जिन पर पृथ्वी के सभी प्राणियो का जीवन निर्भर है।

'अल्टरावायलेट' या 'नीलोत्तर किरणें'

इन किरणो को अदृश्य किरणे या अष्टम किरणे भी कहते है। हिन्दी मे इस किरण का एक नाम पराकासनी किरण भी है। जैसा कि ऊपर के चित्र से ज्ञात होगा, इस किरण का स्थान बैंगनी किरण के ठीक बाद है। इस किरण के गुण अनन्त है। इसके प्रभाव से भयङ्कर से भयङ्कर रोग कीटाणु तत्काल नष्ट हो जाते हैं। अंग्रेजी दवा 'Iodine' से कही अधिक विषनाशक शक्ति इस किरण मे विद्यमान है। यह किरण विटामिन का स्वाभाविक उत्स है। इस किरण मे जीवनशक्ति एवं स्वास्थ्य-बर्द्धक गुण तो अनन्त है ही, पर इसको प्राकृतिक रूप मे प्राप्त करना बडा कठिन है। कारण, नमी और धूल से भरे वातावरण को भेद कर ये किरणे हम तक बहुत कम पहुँच पाती है। ये किरणे केवल सूर्योदय के समय ही थोडी मात्रा मे प्राप्त की जा सकती है, वह भी नगे बदन रहने पर। क्योकि यह बात प्रयोगो से सिद्ध हो चुकी है कि ये किरणे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्त्रो को भी बेध नही पाती जिससे शरीर, हर समय वस्त्रो से लदा रहने के कारण उदार प्रकृति के इस महान वर को प्राप्त नही कर सकता। इसी अमृत का लाभ उठाने के लिए स्वास्थ्य-विशेषज्ञ सूरज निकलने के पहले उठने का आदेश देते है, नगे सर, नगे बदन स्वर्ग बेला मे वायु सेवन के लिये खुले मैदान मे निकल जाने का अनुरोध करते है, तथा नगे बदन ही … के सामने खडे होकर उनको जल चढाने आदि … कृत्यो की व्यवस्था देते है। पर हममे से कितने हैं … उनके कहने को मानकर इन अमृत तुल्य नीलोत्तर … से लाभ उठाते है?

निरावृत खेत की फसलो पर जब सुबह-सुबह नीलोत्तर किरणे पडती है तो ये किरणे उनके द्वारा सोख ली जाती हैं जिनसे उनकी उपज मे खाद्योजों (Vitamins) की वृद्धि हो जाती है। उसी प्रकार जब ये किरणे मनुष्य के नगे बदन पर पडती हैं तो ये तत्काल त्वचा द्वारा खून मे प्रवेश कर जाती है और अन्दर पहुच कर विटामिन 'डी' की वृद्धि करती है, और जीवन शक्ति बढाती है, जिससे शरीर में काफी मात्रा मे लाल रक्त उत्पन्न होकर वह अधिकाधिक बलवान हो जाता है।

डा० बर्नर मैकफैडन के कथनानुसार, ये किरणें अपने आश्चर्यजनक गुणो के साथ ही रक्त मे कैलशियम की मात्रा बढा देती है, इसीसे ये काडलिवर आयल से कहीं अधिक गुणकारी हैं। यह भी सिद्ध हो चुका है कि ये किरणे विटामिन 'ए' के प्रभाव को अधिक शक्तिशाली बना देती हैं। विश्व के समस्त सफल प्राकृतिक चिकित्सक जिनमे 'बर्नर मैकफैडन, बेनिडिक्ट लस्ट, तथा स्टेनली लीफ आदि है, इन किरणो का प्रयोग अपने स्वास्थ्य गृहो में सफलता के साथ कर रहे हैं। उनका कहना है कि ये किरणे, श्वेत और अरुण रक्त-कणो कैलशियम, फासफोरस, फास्फेट, आयोडीन और लोहा इत्यादि मे समता पैदा कर देती है।

डा० रोलियर, स्वीटजरलैन्ड के प्रसिद्ध सूर्य-रश्मि चिकित्सक के मतानुसार शहरो मे रहने वाले तथा अपने शरीर को वस्त्रो से पूरी तरह से ढककर रहने वाले आधुनिक युगी सभ्य लोगो के शरीर पर तो सूर्य की ये जीवन दायिनी किरणे कभी पड़ ही नही पाती, जिसका फल जो भी है वह किसी से छिपा नही है।

जब हम किसी स्थान पर की हरी घास को किसी चीज से ढक देते है तो उसकी हरियाली गायब होते होते वह एकदम सफेद हो जाती है और सूख जाती है। ऐसा क्यो? यह इसलिए कि ढक देने से उस घास को जमीन से खुराक मिलते रहने पर भी सूर्य द्वारा जीवनदायिनी

लोत्तर किरणो की खोराक मिलनी बन्द होगयी, फलत: ये भूख के कारण निर्जीव होगयी। मनुष्य के सम्बन्ध मे भी यही बात है। अर्थात् पौधो की नसो मे हरे रग का जो दौडता रहता है जिसको अग्रेजी मे Chlorophyl कहते है, और मनुष्यो की नसो मे लाल रग का जिसको हीमोग्लोबिन' कहते है। इस लाल रग को भी सूर्य की इन रश्मियो की उतनी ही जरूरत होती है जितनी कि पौधो को। कपडे लत्तो से सदैव लदे रह कर सूर्य की इन लाभदायक किरणो से हम अपने को अलग कर लेते है और लाभ के बदले हानि उठाते है। शहरो मे अधिक धुआ और गर्द से भरा आसमान भी शहरियो को इन जीवन-दायिनी किरणो से वचित रखता है। समुद्रतट और पर्वत दो ऐसे स्थान है जहा पर नीलोत्तर किरणे प्रचुर मात्रा मे पायी जाती हैं। ये किरणें मनुष्य के बाह्य शरीर पर जो लाभदायक सिद्ध ही होती है, साथ ही साथ, आतरिक सचालन प्रणालियो पर भी अपना लाभदायक प्रभाव डाले बिना नही रहती।

रेशमी कपडे, चमकीले पदार्थ, स्फटिक मणिया वा ऐसे पदार्थ, जिन पर सूर्य की किरणे पडते ही वे इन्द्रधनुष के विविध रगो मे विभक्त हो जाती है, मानव-शरीर पर अपना अद्भुत प्रभाव दिखाती हैं। उपर्युक्त प्रकार से किरण विभक्ति के बाद जब उनमे से नीलोत्तर किरणें निकल कर शरीर के ऊपर पड़ती हैं तो स्वास्थ्य के लिए हित-कर होती हैं। ये किरणें काच के बाहर नही जा सकती, इसलिए काच के भीतर से निकली किरणे लाभदायक नही होती। प्रत्युत् ये गुणकारी किरणे बिल्लौर-स्फटिको मे से निकल जाती है और अच्छा स्वास्थ्यप्रद प्रभाव करती है। इसी सिद्धात पर कदाचित हमारे पूर्वजो ने रत्नो का शरीर पर धारण करना श्रेष्ठ बतलाया है और काच को अधम गिना है। बिल्लौरी झाड़-फानूस लटकाना शोभा-दायक होने के साथ रोगनाशक तथा स्वास्थ्य वर्द्धक भी होता है यह लाभ विलायती काच के बने पदार्थों से कदापि प्राप्त नही हो सकता।

सूर्यरश्मियो की रोगनाशक शक्ति के सम्बन्ध मे अनुसधान करने वाले सभी अन्वेषकों का मत है कि उनमे से नीलोत्तर किरणे ही मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए विशेष काम की है, जिनको कृत्रिम रूप से प्राप्त करने के लिए कितनी ही मशीने बन गयी हैं, परन्तु मशीनो द्वारा ये किरणे प्राप्त कर हम उतना लाभ तो किसी हालत से नही उठा सकते जितना सीधे सूर्य की किरणो द्वारा प्राप्त करके उठा सकते है।

नीलोत्तर किरणो के रोगनाशक प्रभाव को वैज्ञानिक जगत ने एक स्वर से स्वीकार किया है। इन किरणो से त्वचा के रोग, व्रण, फोडे, फुन्सी, नासूर, सूखा तथा जीर्ण ज्वरादि रोग चमत्कार रूप से नष्ट हो जाते है। गहरे घावो मे, जहा औषधिया नही पहुच सकती, इन किरणो को प्रवेश कराकर रोग कीटाणुओं का अत किया जा सकता है। बच्चो की हड्डियो के टेढा होने के रोग मे नीलोत्तर किरणो के सेवन से बढ कर दूसरी गुणकारी औषधि है ही नही। माता द्वारा इन किरणो के सेवन से दूध पीते बच्चे भी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करते देखे गये हैं। मधुमेह, हिस्टीरिया, और स्त्रियो के मासिक धर्म सम्बन्धी रोगो मे भी ये किरणे हितकर हैं। क्षय के सभी रूपो मे ये किरणे लाभ करती है। पर अदृश्य इन्फ्रा रेड किरणो की भाँति ही इन नीलोत्तर किरणो का भी हम जब चाहे तब प्रयोग नहीं कर सकते। यत्रो (Quartz Mercury Vapour lamp) द्वारा प्राप्त कृत्रिम नीलोत्तर किरणो का प्रयोग रोगो मे हम इसीलिये अक्सर करते है।

सूर्य-प्रकाश चिकित्सा का इतिहास

भारतवासी तो आदिकाल से सूर्य-प्रकाश की स्वास्थ्य-वर्द्धक एव रोगनाशक शक्ति को जानते आरहे हैं जिसका प्रमाण उनके आदि ग्रन्थो से प्राप्त होता है यथा—

"आरोग्य भास्करा दिच्छेत् ······ (श्रीमद् भागवत)

अन्तश्चरित रोचनास्य प्राणादपानती व्यख्यन्महिषो दिवम्। (ऋ० १०। १८९)

उपरोक्त मन्त्रो मे स्पष्ट कहा है कि भगवान सूर्य की रोचमाना दीप्ति अर्थात् सुन्दर प्रभा शरीर के मध्य मे मुख्य प्राणरूप होकर रहता है। इससे सिद्ध है कि शरीर का स्वस्थ एव दीर्घजीवी होना भगवान सूर्य की कृपा पर निर्भर है।

प्रश्नोपनिषद मे उल्लेख है:—

यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते।

अर्थात् जब आदित्य प्रकाशमान होता है तब वह समस्त प्राणो को अपनी किरणो मे रखता है।

उपर्युक्त श्लोक मे एक रहस्य छिपा है । वह यह कि प्रातकाल की सूर्य किरणो (नीलोत्तर किरणो) मे अस्वस्थता का नाश करने की जो अद्भुत शक्ति है, वह दोपहर वा सायकाल की किरणो मे नही होती ।

'उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः ।'(अथर्व ६।८)

वेद भगवान कहते है कि प्रातःकाल की आदित्य-किरणो (नीलोत्तर किरणो) से अनेक व्याधियो का नाश होता है । सूर्य रश्मियो मे विष दूर करने की अपूर्व शक्ति है ।

सूर्यातपः स्वेदवंलह सर्व रोग विनाशकः ।
मेदच्छेद करश्चैव बलोत्साह विवर्धनः ॥

अर्थात्, सूर्य की किरणे शरीर से स्वेद प्रवाहित करती हैं और सभी रोगो को नाश करती है । वे शरीर से चर्बी को छांट कर शक्ति और आनन्द प्रदान करती है ।

दद्रु विस्फोट कुष्ठघ्नः कामला शोथ नाशकः ।
ज्वरातिसार शूलानां हार को नात्र संशयः ॥

अर्थात् सूर्यरश्मिया दाद, कष्ट पूर्ण दाने, कोढ, जल शोथ, ज्वर, अतिसार, तथा उदर शूल जैसे रोगो को नष्ट कर देती है । इसमे किञ्चित भी सन्देह नही है ।

कफ पित्तोद्भवा रोगा वात रोगास्तथैवच ।
तत्सेवनान्नरोजित्वा जीवेच्च शरदांशतम् ॥

अर्थात सूर्य रश्मियो के दैनिक प्रयोग से मनुष्य कफ, पित्त, एव वायु के दोष से उत्पन्न सभी रोगो से मुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रह सकता है ।

"सूय आत्मा जगतस्तस्थुषच ।" —ऋ०वे०

अर्थात सूर्यही स्थावर जङ्गम की आत्मा है। दूसरा सूत्रः-

"अनुसूर्य मुद यतां हृदद्योतो हरिमाचते ।
रोगी हितस्य वर्णेन तेनत्वा परिद ध्मसि ।"

अर्थात् तेरा हृदय रोग और पीलक रोग सूर्य किरणो के साथ सम्बन्ध करने से चला जायगा ।

द्वापर युग मे भगवान कृष्ण के पुत्र साब को कुष्ठ-रोग होगया था, वह सूर्योपासना से ही दूर हुआ था । तब साबने सूर्य की महिमा और उपासना सम्बन्धी एक पुराण की रचना की जो साब पुराण के नाम से प्रसिद्ध है ।

प्लीनी का कथन है कि रोम मे छ सौ वर्षों तक कोई चिकित्सकही नही था और रोम निवासी चिकित्सक का काम केवल सूर्य रश्मियो से लेते थे ।

इग्लैण्ड के सेन्ट ल्युकन अस्पताल के चर्म रोग चिकित्सालय के प्रमुख डाक्टर वेपर्ड लाग एम० डी० ने २ जुलाई १९३२ मे स्कीयर नामक पत्र के अक मे एक लेख लिखा था है, उसमे वे लिखते हैं—"लोगो की यह धारणा है कि सूर्य रश्मि मे शरीर को अनावृत रखने से जो लाभ प्राप्त है वह हाल का अन्वेषण है। पर सच बात यह है कि प्राचीन काल मे भी लोग सूर्य प्रकाश चिकित्सा से अनभिज्ञ न थे और ईसाई सन के प्रारम्भ के पूर्व मे भी यह उपाय काम मे लाया जाता था । प्राचीन महा पुरुषो के लेखो से और आधुनिक पुरातत्व सम्बन्धी खुदाई से यह बात सिद्ध हो जाती है । युनानी लोग धूपस्नान अपने भवनो की अट्टालिकाओ मे लेट कर करते थे युनानी देवता के मन्दिर के पास खुदाई से एक लम्बा छन्न पथ (Gallery) मिला है जो रोगियो के कमरे से लगाया हुआ है और जहा रोगी धूप स्नान करते थे । पोम्पीआइडे के खंडहरो से यह भलीभांति ज्ञात होता है कि प्रत्येक रोमन भवन मे धूप स्नान गृह होता था ।

ईसा से चार पाच सौ वर्ष पूर्व हिपोक्रेटीज जिसको प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का जनक कहते हैं अपने रोगियों को नियमित रूप से सूर्यस्नान करवाता था। मिश्र का सम्राट फिरऊन द्वितीय धूप स्नान का बड़ा प्रेमी था Gymnasium जो स्कूली कसरतो के अर्थ मे व्यवहृत होता है बहुत पुराना है। यह हमे प्राचीन ग्रीक सभ्यता के युग के प्रचलित व्यायाम शास्त्र की याद दिलाता है। Gymnos ग्रीक भाषा का एक शब्द है, जिसका अर्थ होता है 'नग्न' । ग्रीक निवासी घर के बाहर सूर्य प्रकाश मे लगभग नगे ही व्यायाम करते थे जिससे उनके शरीर पर वायु और प्रकाश का भरपूर प्रभाव पड़ता था । डिमोस्थनीज युनान का एक विख्यात व्यक्ति था प्रतिदिन नियमितरूप से एक घटा धूप तापता था और औरों को भी सलाह देता था ।

डाक्टर लोगो का कहना है कि ससार की विजय ईसाई मत द्वारा होने से अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धी वैज्ञानिक एव प्राकृतिक उपचारो का विनाश हो गया परन्तु अठारहवीं शताब्दि के मध्य से फिर उनमे प्राण आने लगे और तभी से हमारा यह ज्ञान नित्य प्रति बढता गया ।

सन १८४८ ई० मे आस्ट्रिया निवासी प्राकृतिक चिकित्सक आर्नल्ड रिकली ने फिर से नियमित रूप से सूर्य स्नान करने का पुनरुद्धार करने का प्रयत्न किया किन्तु जनमत ने उसका साथ नही दिया । यही हाल डा० फ्लोरेंस नाईटेंगल का भी हुआ। बाद को सन १८९०ई० म Palm

...म्भिक एक अंग्रेज डाक्टर ने पुन इसका प्रचार करना आरम्भ किया, मगर आशातीत सफलता फिर भी न मिली। इसके बाद सन १८९३ ई० मे सूर्य किरणो का प्रयोग रोग नाश के लिये डेनमार्क निवासी डा० एन०आर० फिनसेन ने किया और कुछ सफलता पायी। उसके दस वर्षो बाद यानी लगभग १९०० ई० मे स्विटजरलैंड मे डा० रोलियर ने यक्ष्मा के रोगियो के लिये पहली धूपशाला खोली जिसके प्रयोगो के आश्चर्यजनक परिणाम को देखकर तो धूप की रोगनाशक शक्ति का कायल सारा चिकित्सा ससार होगया।

कुछ लोग सूर्य किरण चिकित्सा विज्ञान का आदि आविष्करता जनरल पलिझनहोन साहब को मानते है। उसके बाद डाक्टर पेनस्कॉट साहब को, तत्पश्चात डा० रावर्ट वोह-लेण्ड साहब को। किन्तु इस विद्या का जितना बढ़िया विवरण डा० एडविन वेबिट साहब ने दिया है, वैसा किसी ने नही दिया।

सूर्यप्रकाश की स्वास्थ्यवर्द्धक एवं रोगनाशक शक्ति

एक अंग्रेजी कहावत है—'जिस मकान मे सूर्यप्रकाश का प्रवेश नही होता, डाक्टर का प्रवेश होता है' इस कहावत मे बहुत कुछ तथ्य है। क्योकि रोग के कीटाणु अन्धकार मे ही वृद्धि पाते है, और प्रकाश उनके लिए काल है। अतः जिस स्थल पर सूर्य की किरणे बरसती है, वहा रोग टिक ही नही सकते। पौधों के लिए ही सौर-किरण-विकरण नितान्त प्रयोजनीय नही है, प्रत्युत जीव-जीवन के लिए भी उसकी सर्व प्रथम आवश्यक्ता है। विज्ञान से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि सूर्य-किरणो के अभाव मे कोई भी प्राणी जी पनप नही सकता। संसार के जिस भाग मे प्रकृति की यह दैन बरस रही है, उसे बडा भाग्यवान भाग समझना चाहिए। नदियो और जलाशयों के जल सूर्य-प्रकाश के प्रताप मे ही शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल रहते है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी, जिन्हे सूर्य की विपुल शक्ति का पता नहीं है, वे उनके लाभ से वंचित ही रहते हैं।

सूर्य प्रकाश से शरीर में प्राणो का संचार होता है, जिसकी आवश्यकता हमें सदैव रहती है अतएव हमें रोज

बैठने, रहने तथा भोजन करने के स्थान को खूब हवादार और प्रकाशमय रखना चाहिए। घर इस प्रकार बनाना चाहिए जिसमे सूर्य-किरणो का प्रकाश बहुतायत से हो।

उत्तम स्वास्थ्य के जिज्ञासुओ को कभी-कभी नगे बदन धूप मे टहलना या बैठना चाहिए। इससे न केवल स्वास्थ्य सुधरेगा, अपितु नैसर्गिक सौन्दर्य-वृद्धि भी अवश्यम्भावी है। शरीर चर्म के लिए सूर्य-रश्मिया 'टानिक' का काम करती है। सूर्यकिरणो मे स्नान करने वाले बच्चे बली, पुष्ट और निरोग होते है। अब तो पाश्चात्य देशो मे एक नगा-सम्प्रदाय ही खुल गया है, जिसका मूल सिद्धात सूर्य किरणो की स्वास्थ्य सम्बन्धी असाधारण गुणकारिता पर ही निर्भर है।

सूर्य की किरणे सबसे अधिक प्रभावशाली विषघ्न है। ये किरणे दुर्गन्धित तथा गदगी को दूर करने मे अपना सानी नही रखती, तथा प्रबल रोगाणुनाशक तो है ही। Dr. Aufrecht ने एक बार नाना प्रकार के जीव जन्तुओ मे डिप्थीरिया और यक्ष्मा के भयानक रोगाणुओ को 'इन्जेक्ट' करके, उनमे से कुछ को तो प्रकाश मे तथा बाकी को अन्धकार मे रखा। जिन जन्तुओ को अन्धकार में रखा गया था वे दो दिन के भीतर ही खतम होगये, परन्तु जिनको प्रकाश मे रखा गया था वे सभी अच्छे होगये।

सूर्य-प्रकाश द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक नही है कि हर समय धूप मे ही रहा जाय। प्रतिदिन प्रात.काल कम से कम १०-२० मिनट नगे बदन सूर्य प्रकाश लेना यथेष्ट है। सर और आखो को धूप से बचाये रखना चाहिए तथा धूप स्नान के बाद जल से स्नान करना जरूरी है। शरीर को तग कपड़ो से कभी भी नही जकड़ना चाहिए। बल्कि इसके बदले स्वच्छ, हवादार, एव ढीला-ढाला वस्त्र पहिनना चाहिए जिससे सूर्य की किरणें शरीर की त्वचा तक पहुचकर लाभ पहुँचा सकें।

भोजन शास्त्री जब गरीबो के लिए भोजन व्यवस्था करने लगते हैं तो कभी-कभी चक्कर मे पड़ जाते हैं कि विटामिन 'डी' वाले कौन से खाद्य पदार्थ उनके भोजन मे शामिल किये जावें। दूध, मक्खन, क्रीम, अंडे आदि विटामिन 'डी' वाले पदार्थों के आगे उनकी नजर जाती ही नही। पर यह काम देहात की धूप से पूरे तौर से लिया जा सकता है। यह तो गरीबो का क्या सभी लोगो

का दूध, घी, मक्खन, क्रीम, और अण्डा समझना चाहिए। विटामिन 'डी' का मुख्य कार्य शरीर मे हड्डियो को मजबूत करना है। इसकी सहायता के बिना हड्डिया बन ही नही सकती। जो स्त्रिया और बच्चे धूप सेवन के आदी नही है उनकी हड्डिया मजबूत नही हो पाती। वे नरम और लचीली रह जाती है। ऐसी स्त्रियो से जो बच्चे पैदा होते है वे बहुधा सूखा रोग से मर जाया करते हैं। ऐसी स्त्रियो मे वह द्रव्य भी जो हड्डी बनाने के काम मे आता है, कमजोरी की वजह से शरीर के बाहर निकल जाता है। श्वेत प्रदर के रूप में वही द्रव्य बाहर निकल कर आज सहस्रो स्त्रियो को कमजोर बना रहा है।

सूर्य प्रकाश का मनीषियों द्वारा गुण-गान—

मिस्टर ए० बो० गारडेन—'आदि काल से मानव, पशु, पक्षी तथा वनस्पति, सभी सूर्य प्रकाश से लाभ उठा रहे है। धूप से ही उनमें सुन्दरता आती है और स्वास्थ्य भी। हिन्दुओ मे जो सूर्य को भगवान मानकर उसकी पूजा की जाती है, उसका यही रहस्य है।'

डा० जेम्स कुक—"सूर्य-प्रकाश मे निस्सन्देह स्वास्थ्य वर्द्धक शक्ति है।"

डा० फोर्ब्सविसलो—अपनी रचना Light, its Influence on life and health मे लिखते है-यह मानी हुई बात है कि जोलोग अधेरे मे रहते या काम करते है, उनके शरीर और मस्तिष्क दोनो की हालत बडी खराब रहती है...।

डा० बबिट—सूर्य प्रकृति की प्रयोगशाला मे विशेष स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तु है। हर प्रकार के रोग चाहे वे कितने ही पुराने और पेचोदा हो, सूर्य-किरणो की सहायता से अच्छे किये जा सकते है। विजातीय पदार्थ, जिसकी विद्यमानता रोग का कारण है, दूर करने मे सूर्य की शक्ति बड़ी कारगर है, सूर्य की किरणें रक्त को शुद्ध करती है तथा उसके प्रवाह और पाचन शक्ति को बढाती है।

डा० स्टीवेंस—"जब सूर्य-रश्मिया मनुष्य के नगे शरीर पर सीधी पडती है, तो वे शरीर के केवल ऊपरी भाग के रोगाणुओ को ही नाशनही करती अपितु शरीर के भीतरी भाग के रोगाणु भी उससे नष्ट हो जाते है। प्रकाश अपनी उष्णता एवं रोगनाशक शक्ति द्वारा केवल त्वचा के छिद्रो को ही नही खोलता, प्रत्युत मस्तिष्क को भी प्रकाशित करता है। वह केवल रक्त को ही नहीं [...] करता बल्कि शरीरकी नस-नस मे प्रवेश कर उसे स्फू[...] प्रदान करता है।

मि० फेड्रकेन—जब कभी सम्भव हो, सूर्य प्र[...] अपना अधिक से अधिक समय व्यतीत करो।

डा० रड्डोक-शारीरिक विकास एव सुन्दर स्वा[...] के बनाये रखने मे सूर्य-प्रकाश का महत्व कभी पूरा [...] नही समझा गया। खुले प्रकाश मे कुछ घटो तक [...] दिन रहना प्रत्येक नर-नारी को अपनी दिनचर्या का [...] अङ्ग बनाना चाहिये।

डा० एफ जी वेल्श—दक्षिण-पूर्वी अफ्रीका के [...]सियो की अद्भुत शक्ति का रहस्य केवल उनका खुली [...] और प्रकाश मे नगे शरीर रहना है।

डा० जेम्स सी० जैक्सन—सूर्य-प्रकाश सेव[...] मस्तिष्क मे चुम्बकीय शक्ति की वृद्धि होती है जो [...] अनूठी चीज है।

सूर्य प्रकाश द्वारा रोगों का इलाज

सूर्य-प्रकाश की अद्भुत रोगनाशक शक्ति प[...] ऊपर थोडा विचार कर चुके है। यहा पर उसके [...] रोगो के इलाज पर कुछ लिखा जायगा।

जिस सूर्य-प्रकाश से ससार का तम क्षणमात्र मे ना[...] प्राप्त हो जाता है, जिस सूर्य-प्रकाश से सृष्टि के कण[...] मे जीवन का, शक्ति का, सौन्दर्य का और ऐश्वर्य[...] सञ्चार एव प्राकाट्य होता है तथा जिस सूर्य-प्रका[...] सुनहरी किरणे सागर से ढेर का ढेर वारि-विन्दु खी[...] अमृत वर्षा करके ग्रीष्मताप से झुलसी हुई वसुन्धर[...] अपनी रगीनियो की माया बिखेर सकती है, उस [...] प्रकाश अथवा उसकी जीवनदायिनी स्वर्णिम र[...] के प्रति यदि यह कहा जाय कि वे सब कुछ कर सक[...] पर पृथ्वी पर के रोगी जीवो को रोग मुक्त नही कर [...] तो यह कितनी अटपटी और गलत बात होगी। यह [...] दूसरी है कि हम सृष्टि मे शक्ति के सबसे बडे [...] सूर्य की प्रबल रोगनाशक शक्ति को रोग निवा[...] प्रयोग करके उससे लाभ उठाना न जानें, पर इस[...] मानी तो नही है कि सूर्य, सूर्य-प्रकाश या सूर्य-कि[...] मे रोगो को दूर करने की शक्ति ही नही है अथवा [...] इस सत्य पर पर्दा तो नही पड़ जाता कि सूर्य-[...]

...र मे जहा अनेकानेक आश्चर्यजनक कार्य करने की ...ता रखता है वहा उसके लिए दुस्साध्य से भी दुस्साध्य ...ों को दूर कर देना कोई बडी बात नही है। हमारे कथन की पुष्टि अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त २२ मंत्र १, ३ से भी होती है जहा सूर्य किरण चिकित्सा का ...छा विवरण दिया हुआ है।

अत: मानव की रोग निवृति के लिये सूर्य-प्रकाश को ...वान का एक वरदान ही समझना चाहिए। कारण ...द्ध डाक्टर रिकली के अनुसार मानव जलचर न होकर ...ु और प्रकाश का प्राणी है। इसलिए वायु और प्रकाश ऊपर जहा हमारा विकास और जीवन अवलम्बित है, ...। उनमे हमारे रोगो को दूर करने के गुण भी विद्य-...न होने ही चाहिए। मानव-कल्याण के लिए तो उप-...क्त डाक्टर ने प्रकाश को सर्वोपरि बतलाया है। वह ...हता है—

"Water is good, but air is better and light best of all"

भूगोल का ज्ञान रखने वाले जानते है कि बोर्नियो एडमानद्वीप तथा वेकर द्वीप के आदि निवासी और ...क्षिण अमेरिका के फ्युजियन आदि मानव जातिया ...निके शरीर को काफी धूप मिलती रहती है। रोग क्या ...ता है नही जानती और शक्ति में भी उनकी बराबरी ...। अन्य मानव जाति ससार मे शायद ही कोई हो। इसके ...परीत ससार की जिन मानव-जातियो को यथेष्ट धूप नही ...लती, वे त्वचा सम्बन्धी, रक्त सम्बन्धी तथा अस्थि सम्बन्धी अनेक रोगो की शिकार सदैव बनी रहती हैं। ...योंकि सूर्य-प्रकाश विहीन स्थानो मे पेड-पौधे, घास-फूस ...क नही उगते पनपते, फिर मनुष्य कैसे स्वस्थ रह सकते ...। उदाहरणार्थ, आल्प्स पहाड की बहुत सी गहरी ...न्दराओं में सूर्य-प्रकाश का बडा अभाव रहता है, जिसका ...रिणाम यह होता है कि उन कन्दराओ मे जो ...नुष्य रहते है वे अनेक रोगो से पीडित ...हते है और उनमे अधिकाश तो पागल और ...[illegible] होते है। पर जब ये लोग उन अंधेरी कन्दराओ ...[illegible] प्रकाशित स्थानो पर रहने जाते ...[illegible]

सुधर जाता है। इससे सूर्य-प्रकाश की रोगनाशक शक्ति का प्रमाण सहज ही मे मिल जाता है। एक कहावत भी है—'धूप को अन्दर आने दो और डाक्टर को बाहर ही रोक रखो।" जो बिलकुल सही है।

आजकल रोग निवारण के लिए विविध उपाय प्रचलित है। किन्तु इस कार्य के लिए सबसे उपयोगी साधन प्राकृतिक शक्तिया ही है, जिनमे जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, सूर्य-प्रकाश का प्रमुख स्थान है।

कहना न होगा कि जिस प्रकार जल चिकित्सा (Hydro-pathy) प्राकृतिक चिकित्सा का एक मुख्य अग है, उसी प्रकार सौर जल चिकित्सा (Chromo-Hydropathy) सूर्य-किरण चिकित्सा या सूर्य-प्रकाश चिकित्सा भी उसका एक प्रमुख अंग है।

सूर्य-प्रकाश-चिकित्सा में धूप को प्रयोग मे लाने की कई वैज्ञानिक विधियां हैं, जिन्हे खूब समझकर विधिपूर्वक ही काम मे लानी चाहिए अन्यथा लाभ के बदले हानि हो सकती है।

सप्त किरण-स्नान या धूप स्नान (पूर्ण)

सूर्य को 'सप्त-किरण' या 'सप्त-रश्मि' भी कहते हैं। पुराण मे सप्त-रश्मियो को जो क्रमश लाल, नारगी, पीली, हरी, आसमानी, नीली एव बैंगनी होती हैं, सप्त मुखी घोडा बताया है। चू कि उपर्युक्त सात रगो के एकत्र होने से ही श्वेत रग की उत्पत्ति होती है, इसीसे धूप का रग श्वेत होता है और उसमे सातो रग की सूर्य किरणो के रोगनाशक गुणो का समावेश रहता है जिनकी प्राप्ति हमे धूप-स्नान, सूर्य-स्नान, सप्त-किरण स्नान, या अग्रेजी के Sun-Bath से, रोगावस्था मे विशेष रूप से और स्वस्थावस्था मे सामान्य रूप से होती है।

जाडे के दिनो मे यो तो सभी नगे बदन धूप मे बैठ-कर धूप-स्नान का थोडा बहुत आनन्द और लाभ प्राप्त करते हैं। किन्तु रोगावस्था मे इस स्नान का सेवन वैज्ञानिक ढग से करके ही रोग मुक्त हुआ जा सकता है जैसे-तैसे धूप मे टहलने या बैठने मात्र से धूप-स्नान का वास्तविक लाभ कदापि नही उठाया जा सकता है।

धूप स्नान करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

का दूध, घी, मक्खन, क्रीम, और अण्डा समझना चाहिए। विटामिन 'डी' का मुख्य कार्य शरीर मे हड्डियो को मजबूत करना है। इसकी सहायता के बिना हड्डिया बन ही नही सकती। जो स्त्रिया और बच्चे धूप सेवन के आदी नही है उनकी हड्डिया मजबूत नही हो पाती। वे नरम और लचीली रह जाती है। ऐसी स्त्रियो से जो बच्चे पैदा होते है वे बहुधा सूखा रोग से मर जाया करते हैं। ऐसी स्त्रियो मे वह द्रव्य भी जो हड्डी बनाने के काम मे आता है, कमजोरी की वजह से शरीर के बाहर निकल जाता है। श्वेत प्रदर के रूप में वही द्रव्य बाहर निकल कर आज सहस्रो स्त्रियो को कमजोर बना रहा है।

सूर्य प्रकाश का मनीषियों द्वारा गुण-गान—

मिस्टर ए० बो० गारडेन—'आदि काल से मानव, पशु, पक्षी तथा वनस्पति, सभी सूर्य प्रकाश से लाभ उठा रहे है। धूप से ही उनमें सुन्दरता आती है और स्वास्थ्य भी। हिन्दुओ मे जो सूर्य को भगवान मानकर उसकी पूजा की जाती है, उसका यही रहस्य है।'

डा० जेम्स कुक—"सूर्य-प्रकाश मे निस्सन्देह स्वास्थ्य वर्द्धक शक्ति है।"

डा० फोर्ब्सविसलो—अपनी रचना Light, its Influence on life and health मे लिखते है–यह मानी हुई बात है कि जोलोग अधेरे मे रहते या काम करते है, उनके शरीर और मस्तिष्क दोनो की हालत बडी खराब रहती है...।

डा० ववित—सूर्य प्रकृति की प्रयोगशाला मे विशेष स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तु है। हर प्रकार के रोग चाहे वे कितने ही पुराने और पेचीदा हो, सूर्य-किरणो की सहायता से अच्छे किये जा सकते है। विजातीय पदार्थ, जिसकी विद्यमानता रोग का कारण है, दूर करने मे सूर्य की शक्ति वड़ी कारगर है, सूर्य की किरणें रक्त को शुद्ध करती हैं तथा उसके प्रवाह और पाचन शक्ति को वढाती है।

डा० स्टीवेस—"जव सूर्य-रश्मिया मनुष्य के नगे शरीर पर सीधी पडती है, तो वे शरीर के केवल ऊपरी भाग के रोगाणुओ को ही नाशनही करती अपितु शरीर के भीतरी भाग के रोगाणु भी उससे नष्ट हो जाते है। प्रकाश अपनी उष्णता एव रोगनाशक शक्ति द्वारा केवल त्वचा के छिद्रो को ही नही खोलता, प्रत्युत मस्तिष्क को भी प्रकाशित करता है। वह केवल रक्त को ही नहीं करता वल्कि शरीरकी नस-नस मे प्रवेश कर उसे स्व... प्रदान करता है।

मि० फेङ्कक्रेन—जब कभी सम्भव हो, सूर्य प्रका... अपना अधिक से अधिक समय व्यतीत करो।

डा० रड्डीक–शारीरिक विकास एव सुन्दर स्वा... के वनाये रखने मे सूर्य-प्रकाश का महत्व कभी पूरी... नही समझा गया। खुले प्रकाश मे कुछ घटो तक ... दिन रहना प्रत्येक नर-नारी को अपनी दिनचर्या का... अङ्ग बनाना चाहिये।

डा० एफ. जी. वेल्श–दक्षिण-पूर्वी अफ्रीका के नि... सियो की अद्भुत शक्ति का रहस्य केवल उनका खुली ह... और प्रकाश मे नगे शरीर रहना है।

डा० जेम्स सी० जैक्सन—सूर्य-प्रकाश सेवन... मस्तिष्क मे चुम्बकीय शक्ति की वृद्धि होती है जो... अनूठी चीज है।

सूर्य प्रकाश द्वारा रोगों का इलाज

सूर्य-प्रकाश की अद्भुत रोगनाशक शक्ति पर ऊपर थोडा विचार कर चुके है। यहा पर उसके द्वा... रोगो के इलाज पर कुछ लिखा जायगा।

जिस सूर्य-प्रकाश से संसार का तम क्षणमात्र मे नाश प्राप्त हो जाता है, जिस सूर्य-प्रकाश से सृष्टि के कण... मे जीवन का, शक्ति का, सौन्दर्य का और ऐश्वर्य... सञ्चार एव प्राकाट्य होता है तथा जिस सूर्य-प्रकाश... सुनहरी किरणें सागर से ढेर का ढेर वारि-विन्दु खीच... अमृत वर्षा करके ग्रीष्मताप से झुलसी हुई वसुन्धरा... अपनी रगीनियो की माया बिखेर सकती है, उस ... प्रकाश अथवा उसकी जीवनदायिनी स्वर्णिम र... के प्रति यदि यह कहा जाय कि वे सब कुछ कर सक... पर पृथ्वी पर के रोगी जीवो को रोग मुक्त नहीकर स... तो यह कितनी अटपटी और गलत वात होगी। यह ... दूसरी है कि हम सृष्टि मे शक्ति के सबसे वडे ... सूर्य की प्रबल रोगनाशक शक्ति को रोग निवार... प्रयोग करके उससे लाभ उठाना न जाने, पर इसके... मानी तो नही है कि सूर्य, सूर्य-प्रकाश या सूर्य-कि... मे रोगो को दूर करने की शक्ति ही नही है अथवा ... इस सत्य पर पर्दा तो नही पड़ जाता कि सूर्य-प्र...

[illegible]र मे जहा अनेकानेक आश्चर्यजनक कार्य करने की [illegible]ता रखता है वहा उसके लिए दुस्साध्य से भी दुस्साध्य [illegible]ो को दूर कर देना कोई बडी बात नही है। हमारे कथन की पुष्टि अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त २२ मंत्र १, ३ से भी होती है जहा सूर्य किरण चिकित्सा का [illegible]छा विवरण दिया हुआ है।

अतः मानव की रोग निवृति के लिये सूर्य-प्रकाश को [illegible]वान का एक वरदान ही समझना चाहिए। कारण [illegible]द्ध डाक्टर रिकली के अनुसार मानव जलचर न होकर [illegible]ु और प्रकाश का प्राणी है। इसलिए वायु और प्रकाश [illegible] ऊपर जहा हमारा विकास और जीवन अवलम्बित है, [illegible] उनमे हमारे रोगो को दूर करने के गुण भी विद्य[illegible]न होने ही चाहिए। मानव-कल्याण के लिए तो उप[illegible]क्त डाक्टर ने प्रकाश को सर्वोपरि बतलाया है। वह [illegible]ता है—

"Water is good, but air is better and light best of all"

भूगोल का ज्ञान रखने वाले जानते है कि बोर्नियो [illegible]डमानद्वीप तथा वेकर द्वीप के आदि निवासी और [illegible]क्षण अमेरिका के पयुजियन आदि मानव जातिया [illegible]नके शरीर को काफी धूप मिलती रहती है। रोग क्या [illegible]ता है नही जानती और शक्ति में भी उनकी बराबरी [illegible] अन्य मानव जाति ससार मे शायद ही कोई हो। इसके [illegible]परीत ससार की जिन मानव-जातियो को यथेष्ट धूप नही [illegible]लती, वे त्वचा सम्बन्धी, रक्त सम्बन्धी तथा अस्थि [illegible]म्बन्धी अनेक रोगो की शिकार सदैव बनी रहती हैं। [illegible]योंकि सूर्य-प्रकाश विहीन स्थानो मे पेड-पौधे, घास-फूस [illegible]क नही उगते पनपते, फिर मनुष्य कैसे स्वस्थ रह सकते [illegible]। उदाहरणार्थ, आल्प्स पहाड की बहुत सी गहरी [illegible]न्दराओ में सूर्य-प्रकाश का बडा अभाव रहता है, जिसका [illegible]रिणाम यह होता है कि उन कन्दराओ मे जो [illegible] रहते है वे अनेक रोगो से पीडित [illegible] है और इनमे अधिकाश तो पागल और [illegible] होते है। पर जब वे लोग उन अंधेरी कन्दराओ [illegible] प्रकाशित स्थानो पर चले जाते [illegible]

सुधर जाता है। इससे सूर्य-प्रकाश की रोगनाशक शक्ति का प्रमाण सहज ही मे मिल जाता है। एक कहावत भी है—'धूप को अन्दर आने दो और डाक्टर को बाहर ही रोक रखो।" जो बिलकुल सही है।

आजकल रोग निवारण के लिए विविध उपाय प्रचलित है। किन्तु इस कार्य के लिए सबसे उपयोगी साधन प्राकृतिक शक्तिया ही है, जिनमे जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, सूर्य-प्रकाश का प्रमुख स्थान है।

कहना न होगा कि जिस प्रकार जल चिकित्सा (Hydro-pathy) प्राकृतिक चिकित्सा का एक मुख्य अ ग है, उसी प्रकार सौर जल चिकित्सा (Chromo-Hydropathy) सूर्य-किरण चिकित्सा या सूर्य-प्रकाश चिकित्सा भी उसका एक प्रमुख अ ग है।

सूर्य-प्रकाश-चिकित्सा में धूप को प्रयोग मे लाने की कई वैज्ञानिक विधिया हैं, जिन्हे खूब समझकर विधिपूर्वक ही काम मे लानी चाहिए अन्यथा लाभ के बदले हानि हो सकती है।

सप्त किरण-स्नान या धूप स्नान (पूर्ण)

सूर्य को 'सप्त-किरण' या 'सप्त-रश्मि' भी कहते है। पुराण मे सप्त-रश्मियों को जो क्रमश लाल, नारगी, पीली, हरी, आसमानी, नीली एव बैंगनी होती हैं, सप्त मुखी घोड़ा बताया है। चू कि उपर्युक्त सात रगो के एकत्र होने से ही श्वेत रग की उत्पत्ति होती है, इसीसे धूप का रग श्वेत होता है और उसमे सातो रग की सूर्य किरणो के रोगनाशक गुणो का समावेश रहता है जिनकी प्राप्ति हमे धूप-स्नान, सूर्य-स्नान, सप्त-किरण स्नान, या अ ग्रेजी के Sun-Bath से, रोगावस्था मे विशेष रूप से और स्वस्थावस्था मे सामान्य रूप से होती है।

जाडे के दिनो मे यो तो सभी नगे बदन धूप मे बैठकर धूप-स्नान का थोड़ा बहुत आनन्द और लाभ प्राप्त करते हैं। किन्तु रोगावस्था मे इस स्नान या सेवन वैज्ञानिक ढग से करके ही रोग मुक्त हुआ जा सकता है जैसे-तैसे धूप मे घूमने या बैठने मात्र से धूप-स्नान का वास्तविक लाभ कदापि नही उठाया जा सकता है।

धूप स्नान करते समय निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना चाहिए—

(१) सूर्य स्नान करते समय सिर को धूप से बचाये रखना चाहिए। इसके लिए सिर को सायेमे रखना चाहिए या भीगे रूमाल या हरे पत्तो (केले का पत्ता ठीक रहेगा) से ढके रखना चाहिए। धूप नहान लेने जाने के पहले सिर, मुंह, गर्दन को अच्छी तरह धो लेना भी जरूरी है।

(२) कडी धूप मे सूर्य-स्नान न ले। इसके लिए प्रातः काल और सायकाल की हल्की किरणे ही उत्तम होती है।

(३) धूप-स्नान का समय रोज-रोज धीरे-धीरे बढावे। एक बारगी ही अधिक देर तक धूप-स्नान न ले। एक घटा से अधिक देर तक धूप-स्नान कभी भी न ले। क्योकि जैसे अधिक भोजन चाहे वह कितना ही अच्छा एव लाभकारी क्यों न हो, शरीर को हानि पहुंचाता है,वैसे ही सूर्य-ताप को भी समझना चाहिये। उचित समय तक धूप-स्नान लेने से हमारे शरीर को अनेको प्रकार के लाभ होते है—शारीरिक जीवनी-शक्ति बढ़ती है, हड्डिया दृढ़ होती है, शरीर को विटामिन 'डी' मिलता है, तथा बहुत से रोग अच्छे होते है। किन्तु जब आवश्यकता से अधिक देर तक धूप-स्नान लिया जायगा तो शरीर झुलस जा सकता है, वह काला पड़ सकता है, भूख मर जा सकती है, तथा शरीर की हड्डियों मे आवश्यकता से अधिक विटामिन डी की वृद्धि हो जा सकती है, आदि। कम्जोरी की दशा मे सूर्य-स्नान जाड़ो मे ७ मिनट तथा गर्मियो मे तीन मिनट से ही शुरू करना चाहिये।

(४) धूप-स्नान लेते समय जितनी देर स्नान करना हो उसके चार भाग करके पीठ के बल, पेट के बल, दाहिनी करवट और वाई करवट लेट कर धूप का सेवन करे जिससे शरीर का कोई भी अ ग धूप-स्नान से वञ्चित न रह जाय।

(५) धूप-स्नान लेते समय शरीर निवस्त्र हो तो सर्वोत्तम अन्यथा केवल एक लगोटी धारण करे। स्त्रिया पतले कपडे का पेटीकोट या जाघिया तथा चोली पहनकर धूप-स्नान कर सकती है।

(६) खुले स्थान मे जहा जोर की हवा न आती हो सूर्य स्नान करे।

(७) भोजन के डेढ-दो घटे वाद सूर्य स्नान करना चाहिये। इसी तरह सूर्य-स्नान के तुरत बाद खाना भी ठीक नहीं।

( ) सूर्य-स्नान के वाद अच्छी तरह ठडे जल से वहाकर या भीगी तौलिया से शरीर के प्रत्येक अ… अच्छी तरह पोंछ कर थोडी देर तेजी से टहलना चा…

(९) सूर्य स्नान के वाद यदि शरीर में फुर्ती … आता जान पड़े तो स्नान को सफल समझे। परन्तु सर मे दर्द तथा अन्य किसी प्रकार के कष्ट का अनु… हो तो सूर्य-स्नान का समय दूसरे दिन कुछ कम कर…

(१०) सूर्य स्नान रोज नियमित रूप से लें।… नागा करना ठीक नही। ऐसा करनेसे लाभ कम होता है

(११) जाडो मे सूर्य स्नान के लिये भारत मे… और २ वजे के वीच तथा गर्मियो में ८ से १० वजे… सुवह और फिर ३ से ५ वजे तक शाम का समय… श्रेयस्कर है। किन्तु लू चलते समय यह स्नान कदा… नही लेना चाहिये।

(१२) दिल की वीमारी और ज्वरवाले रोगियो… सूर्य-स्नान नही करना चाहिये थोडी मात्रा मे ज्वर र… हो तो फुफ्फुस के रोग मे धूप-स्नान किया जा सकता है पर नियम यही है कि ज्वर वने रहने की हालत मे … स्नान नही करना चाहिये।

साधारण धूप—स्नान

साधारण धूप-स्नान के लिये जमीन पर तख्त, कम्बल, चटाई या दरी पर ऐसी जगह लेटना चाहिये जहा धूप तो काफी हो पर हवा तेज न हो। सिर को अच्छी तरह कपड़े से या छतरी से ढक लेना चाहिये, तथा जितनी देर इच्छा हो और अच्छा मालूम पड़े उतनी ही देर लेटना चाहिये। पसीना निकल जाय तो अच्छा है, पर शुरू में ही पसीना निकालने के लिये तकलीफ सहकर धूप में … रहना चाहिये।

सूर्य-स्नान द्वारा पसीना निकालना इस वजह से जरूरी होता है कि उस पसीने द्वारा अन्दर का विकार और गंदगी बाहर निकल जाती है।

इस स्नान से निरोग शरीर रोगो से वचा रहता है और रोगी शरीर प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अन्य उप… चारो के साथ धीरे-धीरे रोगमुक्त हो जाता है।

पसीना लाने के लिये धूप-स्नान

गरम पानी पीकर और निवस्त्र होकर धूप-स्नान २० से ३० मिनट तक लेने से पसीना वह चलेगा। किन्… किसी को पसीना नही भी आ सकता है। पर पसीना आवे या न आवे—दोनो हालतो मे आध घटा वाद उठ कर …

जल से स्नान कर लेना आवश्यक है। जिन लोगो को इस स्नान से आरम्भ मे पसीना न आवे उन्हे इस स्नान को ३-४ बार करने के बाद पसीना आने लगेगा।

इस स्नान को लेते समय सिर पर ठडे पानी से भीगी तौलिया रखना तथा बीच-बीच मे थोडा-थोड़ा गरम पानी पीते रहना जरूरी है।

रिकली का धूप स्नान

डाक्टर रिकली के नाम से जो धूप स्नान लेने की विधि प्रसिद्ध है उसमे धूप नगे शरीर पर ली जाती है और शरीर पर कोई कपडा या केले आदि का पत्ता नही रखा जाता। स्नान सूर्योदय के तुरत बाद लिया जाता है। इसमे एकदम से भी सारे शरीर पर धूप नही पडने दी जाती। वलिक पहले दिन रोगी के दोनो पैरो की पिण्डली मात्र को चारो तरफ धूप मे सेका जाता है दूसरे दिन सारे पैर को धूप मे रखा जाता है तीसरे दिन जघा तक समूचे पैर को। चौथे दिन नाभि और उसके नीचे के सारे अंग तक और पांचवे दिन से दसवे दिन के भीतर गले तक सारे शरीर को धूप मे रखकर सेका जाता है। इस तरह थोडा-थोडा करते हुए दसवे दिन कही जाकर रोगी के सारे शरीर को धूप में लाया जाता है।

रोगी को धूप मे रखने के समय को भी धीरे-धीरे बढाया जाता है। पहले दिन रोगी को ५-५ मिनट के बाद ३-३ मिनट के हिसाब से कुल ६ मिनट तक रखना चाहिए। दूसरे दिन इसी प्रकार ५ मिनट के बाद ६ मिनट, तीसरे दिन प्रति बार ६ मिनट, इसी प्रकार हर बार ३-३ मिनट करके कुल ६ मिनट तक बढाकर दसवे दिन से ३ बार आध-आध घण्टा करके प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार १५ दिन तक दिन मे ३ बार यह स्नान लिया जा सकता है। इसके बाद रोगी को बर्दाश्त होने पर और आराम मालूम देने पर यह स्नान दिन मे ४ बार किया जा सकता है।

प्रत्येक बार धूप लेने के बाद रोगी को ५ मिनट के लिए छाया मे रखना चाहिए। इसके बाद धूप लेते स्नान [illegible] पसीना होने पर सारे शरीर को ठंडे या [illegible] गरम जल मे भीगे तौलिया से अच्छी तरह से [illegible] [illegible] लेना चाहिए। फिर धूप [illegible] चाहिए।

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]

सूखा रोग, हरित्पाण्डु रोग (Chlorosis) रक्त हीनता, बच्चो की निर्बलता एव उनमे मानसिक और शारीरिक विकास का अभाव, यकृत की खराबी से बच्चो का चिड़-चिडापन आदि मे इस स्नान से बडा लाभ होता है।

कूने का धूप स्नान

रोगी को ऐसी जगह धूप में केवल लगोट पहनकर लेट जाना चाहिए जहा हवा का झोका न आता हो। चेहरा, सिर और नाभि को किरणो से बचाने के लिये केले या और किसी चीज को पत्ती से ढक लेना चाहिए अगर पत्ती न मिले तो गीला कपडा काम मे लाया जा सकता है। इस क्रिया से शरीर के छिद्र जल्द खुल जाते हैं, शरीर आर्द्र और गरम हो जाता है और पसीना निकलने लगता है।

स्नान ½ से १॥ घण्टे तक चल सकता है। अगर पसीना न निकले और थकान न मालूम हो तो रोगी और देर तक रह सकता है। धूप बहुत अधिक तेज होने पर स्नान का समय अधिक नही होना चाहिए। जिन लोगो को सिर मे दर्द हो जाय या सिर चकराने लगे वे आरम्भ मे देर तक धूप स्नान न करें। यह हालत प्राय उन्ही लोगो मे दीख पडती है जिन्हे पसीना नहीं निकलता या देर मे निकलता है। धूप स्नान के बाद उसमे ढीले पडे हुए विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने के लिये बन्द कमरे मे ठडे पानी मे सिर से जल्दी नहाकर बदन पोंछ लेना चाहिए। तत्पश्चात् कटि या मेहन स्नान आवश्यक होता है। कटि या मेहन स्नान के बाद जिनके शरीर मे जल्द गर्मी न आए वे सिर ढककर पुन. धूप मे थोडी देर बैठ जायें। चाहे तो धूप मे टहल भी सकते हैं या कोई हल्की कसरत कर सकते हैं। जिन लोगो का रोग भीषण होता है या जो नाजुक होते हैं उन्ही मे यह बात दीख पडती है। ऐसे लोगो को चिकित्सा के आरम्भ मे भरसक धूप स्नान नही करना चाहिए, क्योंकि उनके लिए यह बहुत कड़ा पडता है।

धूप-स्नान से शरीर के विकार उभडते हैं, साथ ही शरीर मे अधिक गर्मी भी आती है। इस गर्मी को शान्त करने और विकारो को पेट मे लाकर [illegible] [illegible] के लिए [illegible] धूप-स्नान के बाद [illegible] लेना [illegible] होता है और उनके

कूने का धूप स्नान

बाद शक्ति के अनुसार ७ से १५ मिनट का पेडू नहान या मेहन नहान भी। हा अगर रोगी बहुत कमजोर है तो उसे नहाने के बदले गीले कपडे से सिर और सारा बदन अच्छी तरह पौछ कर पेडू-नहान लेना चाहिए। यदि किसी कारणवश पेडू-नहान लेना सम्भव न हो तो गीले कपडे की ठडी पट्टी पेडू पर २०-२५ मिनट तक रखना चाहिए।

जीर्ण रोगो मे विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने के लिए इस स्नान से बढकर और कोई साधन नही है। शरीर के खुले मुंह वाले घाव, गाठे, शरीर के अन्दर पड जाने वाली गाठ, गुल्म, शरीर के जोडों का दर्द या अन्य पीड़ाये, राजयक्ष्मा, गठिया, पांडु, रक्तहीनता, वृक्क प्रदाह, जलन्धर तथा साएडलाल मूत्र (Albuminuria) आदि मे इस स्नान से बडा लाभ होता है।

भीगी चादर के माध्यम से धूप स्नान

इस स्नान को करने के लिये रोगी को नगा करके और उसके सारे शरीर को एक सूखे कपडे या अलवान से गले तक ढंककर चटाई पर धूप मे लिटा देते हैं थोडी देर बाद शरीर के गरम हो जाने पर सूखे कपडे को हटा कर एक दूसरे कपडे को ठडे जल मे भिगोकर और थोडा निचोड कर उससे कधो से लेकर जंघो तक ढक देते हैं या भीगे कपडे की जगह केले की पत्तिया रख देते हैं सिर हमेशा भीगी तौलिया से ढका रहता है और चेहरा साये में रहता है। जाघो के नीचे का हिस्सा सूखे कपडे मे ढका होना है। यदि मुंह और चेहरा भी धूप मे हो तो नाक को सास लेने के लिये बाहर रखकर भीगे कपडे से चेहरे को ढंक लेना चाहिये यदि धूप कडी हो और रोगी को गर्मी मालूम पडे तो एक भीगे कपडे के ऊपर एक और भीगा कपडा डाल देना चाहिये और इस कपडे के बार बार सूखने पर उसपर बार बार ठडे जल के छींटे डालकर उसे भिगोते रहना चाहिये यह स्नान २० से ४० मिनट तक लिया जासकता है। इस स्नान के बाद भी उदर या मेहन स्नान लेना जरूरी है।

जीवनी-शक्ति धूप-स्नान

अत्यन्त निर्बल रोगी इस स्नान से आशातीत लाभ उठा सकते है। तरकीब यह है:—

रोगी को सुबह और शाम दोनो वक्त हल्की धूप में हल्का और साफ कपडा पहनाकर बैठा या लिटा देना चाहिये सिर और चेहरेको प्रकाश और गर्मी से बचाकर साये में रखना चाहिये रोगी उस वक्त तक धूप मे रहे जबतक कि वह काफी गरम न हो जाय लेकिन पहले पहल रोगी को धूप मे देर तक रह कर पसीना निकलने का इन्तजार हरगिज नही करना चाहिये। बदन के गरम होते ही रोगी को साये मे चला जाना चाहिये और एक गीले कपडे से सारे बदन को रगड रगडकर पौछ डालना चाहिये ताकि बदनकी चमडी साफ और ठडी हो जाय। तब पुन उपर्युक्त रीति से धूपस्नान आरम्भ कर देना चाहिये। इस तरह से कई बार इच्छानुसार धूपस्नान ले लेकर शरीर को पौछना चाहिए।

ठंडी पट्टी के योग से धूप-स्नान

इस स्नान के लिये एक ऐसा टब लेना चाहिये जिसमे लेटकर स्नान लिया जासके। टबके सिर वाले सिरे को साये मे रखते हुये पूरे टब को धूपमें रखे। अब आधा इन्च मोटा और भीगा कपडा या तौलिया तह करके टब मे इस तरह बिछावे कि रोगी के उस पर लेटने पर उसकी पूरी पीठ—गर्दन मे चूतड तक भीगी पट्टी पर आजाय टब में गद्दी पर पीठ के बल जब रोगी नंगा होकर लेट जाय उसवक्त एक दूसरी भीगी चादर से उसका ऊपरी धड गले से जघों के ऊपर तक अच्छी तरह ढक देना चाहिये जिससे रोगी का पूरा धड भीगे कपडो से ढक जाय तत्पश्चात ऊपरसे उसका सारा शरीर गले से अंगूठो तक टब सहित एक ऊनी या सूनी शाल से ढंक देना चाहिये और रोगी को धूप स्नान

लेने देना चाहिए धूप की गरमी से जब भीगे कपडे सूख जाये उन्हे पुन पुन: ठडा पानी डाल डालकर भिगोते रहना चाहिए यह स्नान कब तक लिया जाय वह रोगी की इच्छा पर निर्भर करता है इसके लिए कोई समय निर्धारित करना बहुत मुश्किल है।

छोटे बच्चों के लिए धूप स्नान—

अगर कोई विशेष बाधा न हो तो डेढ मास की अवस्था हो जाने पर छोटे बच्चो को धूप-स्नान कराना आरम्भ कर दिया जा सकता है। आरम्भ मे स्नान का समय प्रत्येक अङ्ग के लिए आधे मिनट से अधिक नही होना चाहिये। धीरे-धीरे इसे बढाते जाना चाहिए जिसमे दो सप्ताह मे तीन मिनट आगे और तीन मिनट पीठ की ओर स्नान कराया जा सके। एक वर्ष से अधिक उम्र के बच्चो के धूप-स्नान का समय भी क्रमश: ही बढाकर ३० मिनट तक ले जाना चाहिए, क्योकि सूर्य-ताप मे अत्यधिक शक्ति होती है, इसलिए धूप स्नान मे यदि सावधानी न बरती जायगी तो लाभ के बदले हानि हो सकती है।

साधारणत छोटे छोटे लडके लडकियो को सिर पर भीगी तौलिया तथा शरीर मे भीगा कपडा पहनाकर धूप-स्नान करने के लिये उचित समय तक धूप मे बैठाया जा सकता है और जितनी बार कपडा सूखे उतनी बार पानी का छीटा दे-देकर कपडे को शीतल किया जा सकता है। तत्पश्चात् उन्हे छाये मे लाकर उनके शरीर को भीगी तौलिया से अच्छी तरह रगड पोछकर और गरम कपड़ा पहना कर धूप-स्नान का अन्त किया जा सकता है।

सप्त किरण स्नान या धूप स्नान (स्थानीय)—

पूर्ण धूप स्नान की भाति ही यह स्थानीय या आशिक धूप स्नान भी लिया जाता है, अन्तर केवल इतना ही है कि इसमे वह विशेष स्थान भी—जिसको धूप देना चाहते है, नगा करके एक बडे हरे पत्ते से ढक दिया जाता है। कभी कभी सारे शरीर को धूप मे रखने के बदले केवल रोगी के अंग को ही धूप मे रखकर उसे धूप स्नान देते है और धूप से हटाने के बाद उस अग को गीले कपडे से पोछ कर या पानी मे भिगोकर [illegible] स्नान लिए ही धूप स्नान समाप्त कर देते है।

[illegible]

आंख के रोगो मे इस आशिक धूप स्नान से बडा लाभ होता है।

आंख की कितनी ही बीमारियो मे हरी पत्ती के बीच से या नङ्गी आखो से सूर्य की ओर कुछ समय तक रोज ताकना बडा ही प्रभावकारी सिद्ध होता है। विधिया ये है–

१--आंख बंद करके सूर्य स्नान—

कुर्सी या जमीन पर सूर्य की ओर मुंह करके और नेत्र बन्द रखकर १० से २० मिनट तक आराम से बैठो। सुबह-शाम या किसी समय भी जबकि सूर्य मे तेजी न हो बैठ सकते हो। यदि चाहो तो सिर को एक तौलिया या रूमाल से ढक लो। यदि सूर्य नही चमकता है तो २०० से १००० पावर की बिजली की रोशनी के सामने ६ इञ्च की दूरी पर बैठ जाओ या जलती आग के सामने बैठो। सूरज, बिजली या आग के सामने बैठकर अपने बदन को इस प्रकार हिलाते रहो जिस प्रकार घडी का पेण्डुलम हिलता है, या साप बीन बाजे के सामने अपने फन को हिलाता है।

यदि सूर्य-स्नान लेते समय ध्यान-शक्ति भी ठीक रहे तो बडा लाभ होता है। अक्सर सूर्य के सामने बैठने समय दिमाग खामखाह की बाते सोचा करता है। अत उक्त ध्यान को एकाग्र करने के लिए यह साधन उपयोगी हो सकता है—

अपने अगूठे को अपनी गुरू की अंगुली पर धीरे से रखो और १/४ इच के चक्र मे अगूठे को उगली पर घुमाओ। एक चक्र मे एक बार ॐ कहो। अब अपने बदन को भी चक्र में घुमाना शुरू करो। बदन को अगूठे के साथ-साथ घुमाओ। अब बदन और अगूठा साथ-साथ चक्र में घूमे और मन मे हर चक्र पर ॐ कहते रहो। यदि ठीक प्रैक्टिस होगी तो १० या १५ मिनट मे नीद के झोके आने लगेगे या सिर मे बडा हल्कापन मालूम होगा। कुछ दिन के अभ्यास के बाद बदन का चक्र छोटा करते जाओ, धीरे-धीरे इतना छोटा हो जायेगा कि दूसरो को बदन स्थिर मालूम होगा परन्तु शरीर तेजी के साथ बिजली के पंखे की तरह चलता रहेगा। उस दम आप को अपनी सुध न रहेगी। दिमाग शान्ति मे होगा और आप को एक प्रकार का आनन्द प्राप्त होगा।

कूने का धूप स्नान

बाद शक्ति के अनुसार ७ से १५ मिनट का पेड़ू नहान या मेहन नहान भी। हा अगर रोगी बहुत कमजोर है तो उसे नहाने के बदले गीले कपडे से सिर और सारा बदन अच्छी तरह पौछ कर पेड़ू-नहान लेना चाहिए। यदि किसी कारणवश पेड़ू-नहान लेना सम्भव न हो तो गीले कपडे की ठडी पट्टी पेड़ू पर २०-२५ मिनट तक रखना चाहिए।

जीर्ण रोगो मे विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने के लिए इस स्नान से बढकर और कोई साधन नही है। शरीर के खुले मुंह वाले घाव, गाठे, शरीर के अन्दर पड जाने वाली गाठ, गुल्म, शरीर के जोडो का दर्द या अन्य पीडाये, राजयक्ष्मा, गठिया, पाडु, रक्तहीनता, वृक्क प्रदाह, जलन्धर तथा साण्डलाल मूत्र (Albuminuria) आदि मे इस स्नान से बडा लाभ होता है।

भीगी चादर के माध्यम से धूप स्नान

इस स्नान को करने के लिये रोगी को नगा करके और उसके सारे शरीर को एक सूखे कपडे या अलवान से गले तक ढंककर चटाई पर धूप मे लिटा देते हैं थोडी देर बाद शरीर के गरम हो जाने पर सूखे कपडे को हटा कर एक दूसरे कपडे को ठडे जल मे भिगोकर और थोडा निचोड कर उससे कधो से लेकर जंघो तक ढक देते हैं या भीगे कपडे की जगह केले की पत्तिया रख देते है सिर हमेशा भीगी तौलिया मे ढका रहता है और चेहरा साये में रहता है। जाघो के नीचे का हिस्सा सूखे कपडे से ढका होता है। यदि मुह और चेहरा भी धूप मे हो तो नाक को सास लेने के लिये बाहर रखकर भीगे कपडे से चेहरे को ढंक लेना चा[hiye] यदि धूप कडी हो और रोगी को गर्मी मालूम पडे तो भीगे कपडे के ऊपर एक और भीगा कपडा डाल[ना] चाहिये और इस कपडे के बार बार सूखने पर उसपर बा[र] बार ठडे जल के छीटे डालकर उसे भिगोते रहना चाहिये। यह स्नान २०से४० मिनट तक लिया जासकता है। [इ]स स्नान के बाद भी उदर या मेहन स्नान लेना जरूरी है।

जीवनी-शक्ति धूप-स्नान

अत्यन्त निर्बल रोगी इस स्नान से आशातीत ला[भ] उठा सकते है। तरकीब यह है:—

रोगी को सुबह और शाम दोनो वक्त हल्की धूप मे हल्का और साफ कपडा पहनाकर बैठा या लिटा देना चाहिये सिर और चेहरेको प्रकाश और गर्मी से बचाकर साये मे रखना चाहिये रोगी उस वक्त तक धूप मे रहे जबतक कि वह काफी गरम न हो जाय लेकिन पहले पहल रोगी को धूप मे देर तक रह कर पसीना निकलने का इन्तजार हरगिज नही करना चाहिये। बदन के गरम होते ही रोगी को साये मे चला जाना चाहिये और एक गीले कपडे से सारे बदन को रगड रगडकर पौछ डालना चाहिये ताकि बदनकी चमडी साफ और ठडी हो जाय। तब पुन उपर्युक्त रीति से धूपस्नान आरम्भ कर देना चाहिये। इस तरह से कई बार इच्छानुसार धूपस्नान ले लेकर शरीर को पौछना चाहिए।

ठडी पट्टी के योग से धूप-स्नान

इस स्नान के लिये एक ऐसा टब लेना चाहिये जिसमे लेटकर स्नान लिया जासके। टबके सिर वाले सिरे को साये मे रखते हुये पूरे टब को धूपमें रखे। अब आधा इन्च मोटा और भीगा कपडा या तौलिया तह करके टब मे इस तरह बिछावे कि रोगी के उस पर लेटने पर उसकी पूरी पीठ—गर्दन मे चूतड तक भीगी पट्टी पर आजाय टब में गद्दी पर पीठ के बल जब रोगी नंगा होकर लेट जाय उसवक्त एक दूसरी भीगी चादर से उसका ऊपरी धड गले से जघों के ऊपर तक अच्छी तरह ढक देना चाहिये जिससे रोगी का पूरा धड भीगे कपडो से ढक जाय तत्पश्चात ऊपरसे उसका सारा शरीर गले मे अंगूठो तक टब सहित एक ऊनी या सूनी शाल से ढक देना चाहिये और रोगी को धूप स्नान

लेने देना चाहिए धूप की गरमी से जब भीगे कपडे सूख जाये उन्हे पुन पुनः ठडा पानी डाल डालकर भिगोते रहनाचाहिए यह स्नान कब तक लिया जाय वह रोगी की इच्छा पर निर्भर करता है इसके लिए कोई समय निर्धारित करना वहुत मुश्किल है ।

छोटे बच्चो के लिए धूप स्नान—

अगर कोई विशेष बाधा न हो तो डेढ मास की अवस्था हो जाने पर छोटे बच्चो को धूप-स्नान कराना आरम्भ कर दिया जा सकता है । आरम्भ मे स्नान का समय प्रत्येक अङ्ग के लिए आधे मिनट से अधिक नही होना चाहिये । धीरे-धीरे इसे बढाते जाना चाहिए जिसमे दो सप्ताह मे तीन मिनट आगे और तीन मिनट पीठ की ओर स्नान कराया जा सके । एक वर्ष से अधिक उम्र के बच्चो के धूप-स्नान का समय भी क्रमश. ही बढाकर ३० मिनट तक ले जाना चाहिए, क्योकि सूर्य-ताप मे अत्यधिक शक्ति होती है, इसलिए धूप-स्नान मे यदि सावधानी न बरती जायगी तो लाभ के बदले हानि हो सकती है ।

साधारणत. छोटे छोटे लडके लडकियो को सिर पर भीगी तौलिया तथा शरीर मे भीगा कपड़ा पहनाकर धूप-स्नान करने के लिये उचित समय तक धूप मे बैठाया जा सकता है और जितनी बार कपडा सूखे उतनी बार पानी का छीटा दे-देकर कपडे को शीतल किया जा सकता है । तत्पश्चात् उन्हे छाये मे लाकर उनके शरीर को भीगी तौलिया से अच्छी तरह रगड पोछकर और गरम कपडा पहना कर धूप-स्नान का अन्त किया जा सकता है ।

सप्त किरण स्नान या धूप स्नान (स्थानीय)—

पूर्ण धूप स्नान को भाति ही यह स्थानीय या आशिक धूप स्नान भी लिया जाता है, अन्तर केवल इतना ही है कि उसमे वह विशेष स्थान भी—जिसको धूप देना चाहते है, नगा करके एक बड़े हरे पत्ते से ढक दिया जाता है । कभी कभी सारे शरीर को धूप मे रखने के बदले केवल रोगी के अंग को ही धूप मे रखकर उसे धूप स्नान देते है और धूप से उठने के बाद उस अंग को गीले कपडे से पोछ कर या पानी से धोकर बिना देर या मेहन-स्नान लिए ही स्नान समाप्त कर देते है ।

कान, फोडा, मसूडा दर्द, नासूर, कण्ठमाला, तथा आख के रोगो मे इस आशिक धूप स्नान से बडा लाभ होता है ।

आंख की कितनी ही बीमारियो मे हरी पत्ती के बीच से या नङ्गी आखो से सूर्य की ओर कुछ समय तक रोज ताकना बडा ही प्रभावकारी सिद्ध होता है । विधिया ये है—

१--आंख बंद करके सूर्य स्नान—

कुर्सी या जमीन पर सूर्य की ओर मुह करके और नेत्र वन्द रखकर १० से २० मिनट तक आराम से बैठो । सुबह-शाम या किसी समय भी जबकि सूर्य मे तेजी न हो बैठ सकते हो । यदि चाहो तो सिर को एक तौलिया या रूमाल से ढक लो । यदि सूर्य नही चमकता है तो २०० से १००० पावर की बिजली की रोशनी के सामने ६ इञ्च की दूरी पर बैठ जाओ या जलती आग के सामने बैठो । सूरज, बिजली या आग के सामने बैठकर अपने बदन को इस प्रकार हिलाते रहो जिस प्रकार घडी का पेण्डुलम हिलता है, या साप बीन बाजे के सामने अपने फन को हिलाता है ।

यदि सूर्य-स्नान लेते समय ध्यान-शक्ति भी ठीक रहे तो बडा लाभ होता है । अक्सर सूर्य के सामने बैठने समय दिमाग खामखाह की बाते सोचा करता है । अत उक्त ध्यान को एकाग्र करने के लिए यह साधन उपयोगी हो सकता है—

अपने अ गूठे को अपनी शुरू की अ गुली पर धीरे से रखो और १/४ इ च के चक्र मे अ गूठे को उगली पर घुमाओ । एक चक्र मे एक बार ॐ कहो । अब अपने बदन को भी चक्र मे घुमाना शुरू करो । बदन को अ गूठे के साथ-साथ घुमाओ । अब बदन और अ गूठा साथ-साथ चक्र में घूमे और मन मे हर चक्र पर ॐ कहते रहो । यदि ठीक प्रैक्टिस होगी तो १० या १५ मिनट मे नींद के झोके आने लगेंगे या सिर मे बडा हल्कापन मालूम होगा । कुछ दिन के अभ्यास के बाद बदन का चक्र छोटा करते जाओ, धीरे-धीरे इतना छोटा हो जावेगा कि दूसरो को बदन स्थिर मालूम होगा परन्तु शरीर तेजी के साथ बिजली के पंखे की तरह घूमता रहेगा । उस वक्त आप को अपनी सुध न रहेगी । दिमाग शान्त होगा और आप को एक प्रकार का अ

२–आंखें खोलकर सूर्य स्नान—

खुली आखो से सूर्य-स्नान और भी लाभदायक है परन्तु यह स्नान स्वस्थ नेत्र वालो को करना उचित है या जिन्होने कुछ समय तक नेत्र बन्द करके अभ्यास कर लिया है और जिनका चौंध नही सताती। खराब आख वालो को यह प्रयोग नही करना चाहिये। इस स्नान को सिर्फ सुबह शाम ही करना चाहिये जिस समय सूर्य मे लाली न रहे और उसमे अधिक तेजी भी न हो। स्नान के लिये आराम से बैठ जाओ, नेत्रो से जमीन की तरफ देखो फिर नेत्रो को इस प्रकार ऊपर करते ले जाओ कि पलक न उठे, केवल ठोढी ऊची होती जावे, सिर पीछे को झुकता जावे। ठोढी इतने ऊपर करके ले जाओ कि नेत्र सूर्य के लगभग एक गज नीचे आसमान को देखे। उस वक्त पलको को हल्के हल्के झपकाते रहो। अब साप के फन की तरह या घड़ी के पेण्डुलम की तरह धीरे धीरे हिलना शुरू करो। हिलने मे यह ध्यान रहे कि सामने की वस्तु मकान, पेड आदि चलते मालूम दे। जब आप दायी ओर को हिलेंगे तो चीजे बायी ओर को हिलेंगी और जब आप बायी ओर को हिलेगे तो चीजे दायी ओर को हिलेगी। इस प्रकार ध्यानपूर्वक सूर्य-स्नान करने से आखो से सूर्य दीखता भी रहेगा और सूर्य-प्रकाश से आंखों को किसी प्रकार की हानि भी न होगी।

इस स्नान को करते समय सूर्य की तरफ एकटक कदापि न देखना चाहिए, वरना सूर्यान्ध-रोग (Sun blind) होने की सम्भावना है। बीच बीच मे हर दो-चार मिनट के बाद एक-दो मिनट के लिए नेत्रो को बद कर लेना चाहिये। कुछ समय तक इस अभ्यास को करते रहने से नेत्रो की शक्ति बढ जाती है और तेज टपकने लगता है। सफल सूर्य-स्नान की पहचान यह है कि इस स्नान को लेने के बाद नेत्रो के सामने धुधलापन नही आता है, दृष्टि साफ रहती है। यदि स्नान के बाद धुंधलापन आजावे तो लगभग ५ मिनट तक नेत्रो को हथलियो से ढक रखना चाहिये।

इस सूर्य-स्नान को करते समय सूर्य मे अपने इष्टदेव का स्वरूप देखा जा सकता है या उसे देखने की कोशिश की जा सकती है। कुछ दिनो के अभ्यास से वह रूप प्रत्यक्ष चमकता प्रतीत होने लगेगा। साथ ही हृदय के स्थान पर जो सूर्य-चक्र है, उस चक्र मे जागृत होगी और हृदय के स्थान का वह सूर्य भी चमकने लगेगा। चमक धीरे धीरे बढेगी। किरणे फूटेगी और तत्पश्चात् इस सूर्य मे भी उसी इष्टदेव का स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगेगा। वह समय बडे आनन्द का होगा। हृदय दैवीज्योति से भर जायगा। शरीर पुलकायमान हो जायगा और उससे शरीर और मन दोनो पवित्र हो जायेगे। इस प्रकार ध्यानमय सूर्य स्नान के करने से मानसिक शक्तिओ का विकास होता है शरीर के दोष मिटते है और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

३—हरीपत्ती की ओट से सूर्य-स्नान—

सूर्य निकलने के थोडी देर बाद प्रात:काल तथा सूर्य डूबने के थोड़ी देर पहले सायकाल जबकि सूर्य-किरणों में प्रखरता कम रहती है, यह स्नान लेना चाहिये। सूर्य के सामने मुंह करके बैठ जाना चाहिए और चेहरे, विशेष कर आखो पर पुष्ट केले की गाढ़े रङ्ग की पत्ती का टुकड़ा रखकर उसके बीच से ५-७ मिनट तक सूर्य की ओर ताकना चाहिए। तत्पश्चात पत्ती को हटाकर आखो को मूंदकर सूर्य की ओर मुह किए हुए लगभग १५ मिनट तक बैठे रहना चाहिये। उसके बाद साये में आकर अपने दोनो हाथों की हथेलियो से दोनो मुंदी आंखो को ढंककर कुछ देर तक उन्हे आराम देना चाहिए। इस क्रिया को अंग्रेजी मे पामिंग (Palming) कहते है। सबके बाद आखो को ठंडे पानी से धो डालना चाहिए। इस क्रिया को प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अन्य प्रयोगो के साथ कुछ दिनों तक करने से नेत्र के सारे विकार निश्चित रूप से दूर हो जाते हैं।

सप्तकिरण या धूप-स्नानों से लाभ

सप्तकिरण-स्नान या धूप-स्नान एक प्रकार के गरम स्नान है, जिनसे शरीर के रोग पसीने के रूप मे बाहर निकल जाते हैं और फलत शरीर निरोग हो जाता है। सूर्य किरण-चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार सात प्रधान प्राकृतिक रगो—लाल, नारङ्गी, पीली, हरी, आसमानी, नीली, तथा बैंगनी, की शरीर मे, कमी या बेशी के कारण ही कोई रोग होता है, और उनकी उचित मात्रा और साम्यावस्था में शरीर मे उपस्थिति का नाम ही उत्तम

...ध्य है। सप्तकिरण या धूप-स्नानो से हमारे शरीर ...के साथ ही उपयुक्त सातो प्राकृतिक रङ्गो की ...दि हो जाती है यह दूसरा लाभ है जो धूप स्नानों ...। होता है।

...धूप-स्नानो के बाद जो ठंडे स्नान (उदर, मेहन, ...ादि आदि) लिये जाते हैं उनसे शरीर स्थित रहे-सहे ...(विजातीयद्रव्य) भी घुलकर बह जाते हैं। इन ...ो से दुर्गन्ध दूर होती है, शरीर के रोम-कूप खुल ...ह, घावो का दूषित रस और पीव सूखता है, तथा ...के कीटाणु सहजही मे नाश को प्राप्त हो जाते है।

...सूर्य की किरणे धूप स्नानो के समय शरीर के केवल ...भाग (चमड़े) पर ही प्रभाव नही डालती, अपितु ...ीर के भीतर काफी अन्दर तक घुसकर उसके सारे ...णुओ को सशक्त एव निरोग बनाती है, तथा शरीर ...द्ध खाद्योज 'डी' प्रदान करती है। पुराने और हठी ...मे जीवनी-शक्ति की बहुत कमी रहती है, इसी ...से ये स्नान उन रोगो मे बडे कारगर सिद्ध ...है।

...कमजोर शरीर, बच्चो की बाढ मे रुकावट, पैतृक ...ा, मेह तथा मधुमेहादि रोगो में जिनमे शरीर के ...न अङ्ग इतने बलहीन हो जाते है कि वे शरीर की ...-धारा रक्त से पुष्टि सुचारु रूप से नही ग्रहण कर ...ये धूप-स्नान मन्त्रवत लाभ पहुचाते है। इन स्नानों ...ायुविक कमजोरियां दूर होती हैं, विषाक्त रक्त शुद्ध ...ाता है, तथा शरीर मे नये और विशुद्ध रक्त की वृद्धि ...है। क्योंकि प्रत्येक धूप-स्नान के बाद शरीर के रक्त ...मोग्लोबिन (लौह) की मात्रा लगभग दो प्रतिशत ...ाती है। यह चमत्कार ससार की अन्य किसी चिकि-...प्रणाली के अन्तर्गत कोई दवा नही दिखा सकती।

...ससार के सभी प्रसिद्ध डाक्टर जैसे डेविट, लूक्स, ...न, रोलियर, लूई, स्टोक, टाइरन आदि तथा ...ओ ने इन सूर्य स्नानो की भूरि-भूरि प्रशंसा की ...र रोग निवारण मे रामबाण पाया है। महात्मा ...ने कहा है कि [illegible] के लिए धूप का सामना करने और ...[illegible] को शुद्ध करने के लिये रोज [illegible] स्नान ...[illegible]। [illegible] मे भी इन धूप-स्नानो का प्रचार ...[illegible] हुआ है। परन्तु [illegible] भी पुरा-

तन काल से ही नगे बदन सूर्य के सामने बैठकर प्रातः सायं और मध्याह्न संध्या का विधान है जिसका एक अर्थ सूर्य-स्नान या धूप स्नान रोज नियमित रूप से २४ घंटों मे तीन बार करना है। अत हमे बिलकुल मुफ्त मिलने वाली धूप का लाभ उठाकर अपने स्वास्थ्य को उत्तम बनाने मे काहिली नही करनी चाहिए।

रोग निवारण में सूर्य की सातों रङ्गीन किरणों के अलग-अलग प्रयोग या सूर्य किरण-चिकित्सा

सूर्य की दृश्य और अदृश्य दोनो प्रकार की किरणो के बारे मे पहले लिखा जा चुका है। अब यहा पर सूर्य-किरण चिकित्सा के मूल सिद्धान्तो के साथ-साथ रोग निवारण के लिये सूर्य की सातो रंगीन किरणो की विभिन्न प्रयोग विधियो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायगा।

सूर्य किरण चिकित्सा

सृष्टि रचना मे नाना प्रकार के रगो की उपस्थिति न केवल सौन्दर्य छटा के अभिप्राय से ही महत्वपूर्ण है, अपितु उसका सम्बन्ध-सूत्र, सृष्टि-प्राणियो के स्वास्थ्य के साथ भी एक अति रहस्यमय एव सूक्ष्म रीति से ग्रन्थित है। हमारी इस शरीर प्रणाली मे अनेक रग हैं और उन्ही मे से किसी की न्यूनता अथवा आधिक्य के कारण हम बीमार पडते हैं। रंगो द्वारा रोग निवारण की इस चिकित्सा प्रणाली को ही रग चिकित्सा विज्ञान या सूर्य किरण चिकित्सा कहते है।

जिस प्रकार सूर्य की सातो रंगों की संयुक्त किरणें धूप की शक्ल मे हमारे रोगो को दूर भगाने की ताकत रखती है उसी प्रकार उनमें से प्रत्येक रग की किरण भी भिन्न-भिन्न रोगो को दूर करने में बड़ी प्रभावशाली सिद्ध होती है। अतः सूर्य की किसी भी रग की किरण की शक्ति को उसी रग के पारदर्शक माध्यम द्वारा जल, तेल, मिश्री, शक्कर, वायु आदि में उतार कर, सम्पुटित कर या चार्जित (Charge) कर उसे दवा की तरह सेवन करके [illegible] असाध्य रोग भी बड़ी आसानी के साथ दूर किया जा सकता है।

मिट्टी, जल, वायु, आग तथा आकाश—इन पञ्च तत्वो से हमारा शरीर बना हुआ है। अत हमारे स्वास्थ्य का इन पाचो तत्वो से घनिष्ट सम्बन्ध होना अनिवार्य है। जब तक ये पाचो तत्व मनुष्य के शरीर मे उचित मात्रा मे विद्यमान रहते है तब तक शरीर स्वस्थ रहता है। इसके विपरीत शरीर मे किसी तत्व विशेष की कमी या वेशी हो जाने से शरीर नाना प्रकार के रोगो का अड्डा बन जाता है। अत- शरीर के अस्वस्थ हो जाने पर इस बात का पता लगाकर कि किस तत्व विशेष की कमी या वेशी हो जाने के कारण शरीर अस्वस्थ हुआ है उस तत्व को उसकी उचित मात्रा मे ला देना ही किसी रोग विशेष का उत्तम प्राकृतिक उपचार है।

रोगावस्था मे शरीर मे किस तत्व की कमी या वेशी है, इसको जानने के लिये हमे सर्व प्रथम पञ्च तत्वो के रग, आकार एव स्वाद को जानना होगा जो निम्नलिखित हैं—

नाम तत्व	तत्व का रग	तत्व का आकार	तत्व का स्वाद
आकाश	नीला	बूंद-बूंद जैसा	कड़वा
वायु	नीला	षट्कोण सदृश गोल	खट्टा
जल	नीला	अर्द्ध चन्द्राकार	कसैला
पृथ्वी	पीला	चौकोण	मीठा
अग्नि	लाल	त्रिकोण	चरपरा

(१) हाथ के दोनो अगूठो से कान के दोनो छिद्र, बीच की दोनों अगुलियो से नाक के नथुनों, दोनो अनामिका और दोनों कनिष्ठ अ गुलियो से मुंह तथा दोनों तर्जनियो से दोनों आखे बन्द करने पर जिस तत्व का रग दिखाई दे शरीर मे उसी तत्व अथवा रग की अधिकता समझनी चाहिए।

(२) किसी दर्पण पर जोर से श्वास मारने पर उसकी भाप से दर्पण पर जिस तत्व का आकार बन जाय,शरीर मे उसी तत्व की अधिकता समझनी चाहिये।

(३) मुह मे जिस समय जिस तत्व का स्वाद हो शरीर मे उस समय उसी तत्व की प्रधानता समझनी चाहिये।

(४) रोगी के सामने विविध प्रकार के रगो को रख कर वा अनेक रग की वस्तु को दिखा कर उससे [illegible] रगो मे से कौन सा रग उसे विशेष प्रिय है। [illegible] उसे विशेष प्रिय हो- उसी रग की कमी उसके [illegible] समझनी चाहिये। इसके विपरीत जिस रग को [illegible] बुरा बतावे उस रग की अधिकता।

उपर्युक्त रीतियो के अतिरिक्त रोगी के [illegible] किस तत्व विशेष की कमी या वेशी है, इसकी [illegible] रोगी की —

"आखो के रग, नाखूनो के रग। मूत्र के रग, दस्त के रग से भी होती है। इसका तात्पर्य [illegible] यदि किसी रोगी मे अग्नितत्व अर्थात् लाल [illegible] कमी है तो उसके नेत्र और नाखून नीले होगे, मूत्र [illegible] सफेद या नीला होगा और दस्त का रग भी [illegible] वर्ण या सफेद ही होगा। और यदि आकाश, [illegible] जल तत्वो अर्थात् नीले रग की कमी होगी तो आखे, नाखून लाल और मूत्र तथा दस्त भी लाल या पीला होगा।

रोगी की परीक्षा करते वक्त रोग का निदान [illegible] लिये यह जरूरी है कि रोग की परीक्षा उपर्युक्त सभी [illegible] से करके ही किसी निश्चय पर पहुचा जाय। [illegible] ही रीति से परीक्षा करके या केवल एक ही [illegible] देखकर रोग का निदान कर लेना बहुधा गलत [illegible] होता है। उदाहरणार्थ, एक दुर्वल व्यक्ति की [illegible] मस्तिष्क से अधिक काम लेता है, स्वभावत गुलाबी [illegible] जिनको देख कर यह समझ लेना कि उस [illegible] अग्नितत्व या लालरग की अधिकता है, [illegible] गलत है। कारण, उस हालत मे उसकी आखो [illegible] उसकी दुर्वलता की वजह से है न कि उसके [illegible] अग्नि तत्व या लालरग की अधिकता के कारण [illegible] प्रकार बच्चो की प्राकृतिक नीली आखें देखकर यह [illegible] करना कि उनमें लाल रग या अग्नि तत्व की [illegible] और इस तरह वे रोगी हैं सही नहीं है।

पञ्च तत्वो के विभिन्न रग जिस प्रकार तीन [illegible] नोला, पीला, और लाल, उसी प्रकार सूर्य की रश्मियो के रग भी प्रधानत तीन ही होते हैं—नीला [illegible] और लाल, जिनका प्रतिबिम्ब इन्द्रधनुष पर [illegible] देखा जा सकता है। सूर्य रश्मियो के चार [illegible]

आसमानी और बैंगनी उपर्युक्त तीन प्रधान रंग भिन्न-भिन्न अनुपात मे मिलने से बन जाते है। अत: इस बात का पता लग जाने पर कि किसी रोगी मे किस रंग की कमी या बेशी के कारण कोई रोग हो गया है, दूसरे शब्दो मे किस रंग विशेष की कमी या बेशी हो गई है जिसके कारण वह अस्वस्थ है, सूर्य-रश्मि. चिकित्सा द्वारा उस रोगी के शरीर में उस रंग विशेष की उचित मात्रा मे कर देने मात्र से उसका रोग निःसन्देह दूर हो जायगा। सूर्य किरण-चिकित्सा का यही मूल-सिद्धान्त है। साथ ही यह चिकित्सा प्रणाली इतनी सरल और सस्ती है और जल्द से जल्द लाभ पहुचाने वाली भी कि इससे गरीब-अमीर और अनपढ विद्वान आसानी से लाभ उठा सकते है।

सूर्य की रंगीन किरणों की प्रयोग विधियां

सूर्य की रंगीन किरणो को, रोगो को दूर करने के लिए हम निम्नलिखित सात तरीको से काम मे लाते है-

(१) रंगीन शीशो के बीच से गुजारकर,
(२) जल मे सम्पुटित करके,
(३) वायु के माध्यम से,
(४) तेल मे उतार कर,
(५) मिश्री या दुग्ध शर्करा आदि मे भावित करके,
(६) रंगीन किरण तप्त जल से भीगी कपडे की पट्टी लगा कर, तथा
(७) रंगीन किरण तप्त जल से सनी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करके।

(१) सूर्य की रंगीन किरणों को रंगीन शीशों से गुजार कर काम में लाना

इस काम के लिए विविध रंगो के (सूर्य के सात रंगो के) ... सूर्य की उस रंग की किरण पडने देना चाहिए। सूर्य की रंगीन रश्मियो का स्नान हमेशा नगे बदन करना अधिक लाभप्रद होता है।

सूर्य-किरणो मे से यदि किसी रंग विशेष की किरण से समूचे शरीर को नहलाना हो तो इसके लिए ऐसा कमरा चुनना चाहिए जिसमे सूर्य-प्रकाश खूब आता हो, तथा जिसकी खिडकी मे रंगीन शीशा आवश्यकतानुसार लगाने या निकालने की व्यवस्था हो। जिस रंग का सूर्य-प्रकाश शरीर पर डालने की जरूरत हो उस रंग के शीशे को सूर्य के सामने वाली खिडकी पर लगाकर बाकी सब खिड़किया और दरवाजे इस तरह सावधानी से बन्द कर देने चाहिए कि उस इच्छित रंग के प्रकाश के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार का प्रकाश कमरे मे बिलकुल न आवे। ऐसे कमरे मे रोगी को लिटाकर उसके समूचे शरीर को सूर्य की किसी भी रंगीन-रश्मि से नहलाया जा सकता है। अमेरिका के सूर्य किरण-चिकित्सालयो मे भिन्न-भिन्न रंग के शीशो के बडे बडे कमरे बने हुए है। वहा रोगी को जिस रंग की सूर्य-किरण से नहलाना होता है उसी रंग के शीशे के कमरे मे रोगी को नियत समय तक नग्न बैठा या लिटा दिया जाता है जिससे उसका उस रंग की किरण का स्नान बडी आसानी से हो जाता है। जैसे यदि कोई रोगी ज्वर से पीडित है तो उसे नीले शीशे की कोठरी मे रखकर सूर्य की नीली किरणो से कुछ देर तक नहलाने से उसके ज्वर का जोर बहुत कम पड जायगा और इस तरह कई बार करने से वह सदा के लिए चला जायगा।

रंगीन सूर्य रश्मियों से स्नान करने के लिए एक ताप-प्रकाश-यन्त्र भी आता है या बनाया जा सकता है जो नीचे सदृश होता है। इसे अंग्रेजी मे Thermolume कहते है। इस यन्त्र के भीतर सोकर रोगी आसानी से रंगीन प्रकाश स्नान ले सकता है। इस यन्त्र द्वारा रोगी के किसी अंग
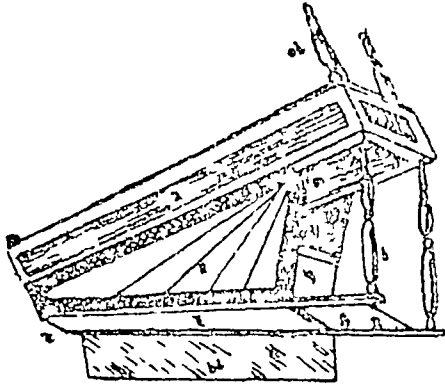
ताप-प्रकाश-यन्त्र

बरसात के दिनो मे जिस समय सूर्य प्रकाश उपलब्ध नही होता उस समय दीपक से रगीन शीशो द्वारा ही रगीन प्रकाश डालना सुलभ उपाय हो सकता है । इस काम के लिए एक लालटेन ऐसी बनवानी चाहिए जो तीन तरफ से बन्द हो और एक तरफ से खुली जिसमे रगीन शीशो को लगाने-निकालने की जगह बनी हो तथा जिसके बाह्य शीशे का ढक्कन साइकिल की लालटेन के शीशे की तरह गोल व उभरा हो । इस लालटेन मे जो दीपक रखा जाय उसमे तिल्ली या नारियल का तेल जलाया जाय। लालटेन मे बत्ती के पीछे रिफ्लेक्टर (Reflector) होना उत्तम है । जिस समय इस लालटेन से रोगी पर रगीन प्रकाश डाला जाय उस समय विशेष सावधानी इस बात की रखनी चाहिए कि दूसरा कोई भी प्रकाश उस स्थान पर न आने पावे अन्यथा लालटेन द्वारा प्रकाश-स्नान का प्रभाव रोगी पर बिलकुल न पडेगा और श्रम व्यर्थ जायगा। उल्टे मिश्रितरग का प्रकाश-स्नान हानिप्रद भी हो सकता है। अत लालटेन से प्रकाश स्नान लेना सदैव अधेरी कोठरी मे ही युक्ति-युक्त है। अधेरी कोठरी मे रोगी के सिरहाने एक छोटी मेज या स्टूल रखकर उस पर लालटेन रख देनी चाहिये और इच्छित रग का प्रकाश रोगी के ऊपर पडने देना चाहिये । इसी तरह किसी खास अग पर भी रगीन प्रकाश डाला जा सकता है। लालटेन में यदि रगीन शीशो को डालने निकालने की जगह न हो तो शीशों को लालटेन की लौ के सामने किसी चीज के सहारे खडा करके भी काम निकाला जा सकता है । लाल, हरा, पीला, गहरानीला, आसमानी तथा नारगी रग के शीशे ही इस काम के लिए विशेष रूप से लिये जाते है ।

(२) सूर्य की रंगीन किरणों का जल सम्पुटित करके काम में लाना

सूर्य की सातो रङ्गीन किरणो (लाल, नारङ्गी, हरी, आसमानी, गहरी नीली और बैगनी) को उन्हीं की बोतलो के माध्यम से जल मे सम्पुटित करके ... के लिये काम मे लाते है । अत इस काम के लि... रङ्गीन बोतले ली जायें उनके रङ्ग विशुद्ध होने चा...

नीली बोतल जितने गहरे रङ्ग की होगी उसमें ... हुआ जल उतना ही अधिक शान्तिप्रद, हल्का ... तथा कब्ज करने वाला होगा । वह जितने फीके ... होगी उसमे बनाया हुआ जल उतना ही सर्द प्रभाव... होगा । हरी बोतल जितने ही शुद्ध रङ्ग की होगी... जल मे उतनाही अधिक गुण होगा । पीली बोतल अधिक लाल वर्ण की होगी उसके जल मे ... ही अधिक गर्मी होगी और जितना अधिक पी... उसमे होगा उसका जल उतना ही कम गर्मी ... वाला होगा । लाल रङ्ग बहुत गर्म होता है।... इस रङ्ग की बोतल जितनी ही अधिक सुर्ख होगी ... जल उतना ही प्रभावकारी होगा । अगर किसी रङ्ग ... शुद्ध बोतल न मिल सके तो सफेद बोतल पर इच्छित ... का सिलोफाइन (Cellophine) कागज लपेट कर ... चलाया जा सकता है ।

जिस रङ्ग की बोतल मे जल तैयार करना हो... बाहर भीतर बिलकुल साफ कर लेना चाहिये । ... शुद्ध-स्वच्छ जल चौतह कपडे से छानकर उसमे इतना ... कि ऊपर से चार अंगुल तक वह खाली रहे । अब ... रङ्ग के शीशे का ढक्कन या कार्क लगाकर और बोतल ... साफ कपडे से खूब पौछ कर एक लकडी की पटिया, ... या तिपाई पर ऐसी जगह रख देना चाहिये जहा १० ... दिन से लेकर ५ बजे शाम तक उस पर लगातार ... पडती रहे । ५ बजे शाम को जब बोतल के खाली भाग ... भाप के विन्दु झलकने लगे तब समझना चाहिये कि पानी ... औषधि गुण आगया है । उस वक्त बोतल को ... किसी काठ की आलमारी या आले पर रख देना चाहिये ... और काम मे लाना चाहिये । सूर्यतप्त जल को कभी ... भी पृथ्वी पर नही रखना चाहिए वरना उसका ...

और गर्मी पृथ्वी मे उतर जायगी। इसी प्रकार चन्द्रमा, तारो, तथा दीपक आदि का प्रकाश भी इस जल पर पड़ने से यह अपना औषधि-गुण खो बैठता है। जब तक जल गर्म हो तब तक उसको चिकित्सा कार्य मे नही लेना चाहिये।

कई रङ्ग की बोतलो मे जल तय्यार करने के लिये धूप मे रखते वक्त और उसके बाद भी उन्हे पास-पास नही रखना चाहिये। इससे विरोधी रङ्गों की गड़बडी के कारण किसी एक रङ्ग की बोतल का जल गुणकारी नही भी हो सकता है। सिद्धान्त यह है कि किसी एक रङ्ग के शीशे के द्वारा सूर्य की केवल उसी रङ्ग की प्रकाश लहरिया ही छन सकती हैं और छननी चाहिए, शेष सभी रङ्गों की लहरियों का शोषण हो जाता है और होना चाहिए तभी सूर्य तप्त जल विशुद्ध बन सकेगा और दवा के काम मे आ सकेगा।

यह सूर्य तप्त जल, यदि तय्यार होने के बाद सफेद बोतल मे उंडेल कर रखा जायगा तो केवल २४ घंटों तक काम दे सकता है, और यदि उसी रङ्ग की बोतल में जिस मे वह तय्यार हुआ है तो ७२ घंटों तक।

यह जल पीने और मालिश करने—दोनो मे काम आता है। पीने की मात्रा निम्नलिखित है —

उमर	अन्तर से	मात्रा
१ दिन से १ मास तक	दो-दो घटे बाद	चाय के छोटे चम्मच का आधा जल
१ मास से ३ मास तक	,,	,, ,, पौन जल
३ मास से १ वर्ष तक	,,	,, ,, पूरा जल
१ वर्ष से ५ वर्ष तक	,,	,, ,, दूना जल
५ वर्ष से १० वर्ष तक	,,	, ,, चौगुना जल
१० वर्ष से १५ वर्ष तक	तीन-तीन घटे बाद	सवा तोला (आधा औंस या ¼ छटाक
१५ वर्ष से ऊपर	,,	ढाई तोला (१ औंस या ½ छटांक

यह औषधि जल ३, ४, ६, या ८ खुराक तक २४ घंटो में दिया जा सकता है जो रोग की दशा और जोर पर निर्भर करता है।

सूर्य तप्त जल से भीगे कपड़े की पट्टी मामूली जल से भीगे कपड़े की पट्टी से अधिक प्रभावकारी होती है। इसी तरह से जल से सनी गीली मिट्टी की पट्टी, मामूली जल से सनी गीली मिट्टी की पट्टी से [illegible] अधिक और [illegible] लाभ करती है।

(३) सूर्य की रङ्गीन किरणों को वायु के माध्यमसे काम में लाना

जल भरी रगीन बोतलो की भांति ही केवल खाली रङ्गीन बोतलो मे खूब कडी डांट लगाकर और उन्हे धूप में रख कर पानी की जगह उसमे उपस्थित हवा को, नासिका द्वारा रोगी के भीतर पहुँचाकर भी रोग दूर किया जा सकता है। हवा से भरी रङ्गीन बोतलो को केवल १२ वजे दिन से १ वजे दिन तक धूप मे रखने ही से बोतलों की हवा मे औषधि गुण आजाते है। इसके अतिरिक्त खाली बोतलों को धूप मे रखने के सारे नियम वे ही है जो जल से भरी बोतलो को रखने के है। रगीन बोतलों की हवा दवा के लिए तय्यार हो जाने पर उसे नाक या मुंह द्वारा रोगी के श्वास के साथ खिचवाकर उसका रोग दूर कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ पीले रग की ५-६ खुली बोतलो की हवा को उसे पीली सूर्य रश्मि तप्त करने के बाद बोतल को एक हाथ में लेकर और दूसरे से कार्क को हटाकर, जब रोगी का दाहिना स्वर चलता हो तभी उसकी नाक के दाहिने छिद्र से लगाकर उस हवा को गहरी सास के साथ खिचवावे और तत्पश्चात् कार्क बंद करदे। इस प्रकार प्रत्येक बोतल की हवा १-२ बार प्रति १०-१५ मिनट के अन्तर से २४ घंटो मे ४-६ बार खिंचवानी चाहिए। नाक के दाहिने छिद्र से हवा खींचनी चाहिए, फिर उसे भीतर रोक रखनी चाहिये, और बाद को बायें नथुने से धीरे-धीरे निकाल देना चाहिये। इस उपचार से रोगी के सब प्रकार के उदर रोग निश्चय ही दूर हो जायेंगे। इसी प्रकार प्रत्येक रङ्ग की खाली बोतल की वायु से उपचार किया जाता है।

[illegible]

डा० [illegible]

चाहिए और पेट के रोगो, जैसे उदरशूल, पेट की गडगडाहट, यकृत-वृद्धि, तथा पसली आदि मे केवल नाक से। तथा दमा, वायु गोला, मासिक धर्म की खराबी, और फफडे आदि के सडने मे नाक और मुह दोनो से हवा खीचनी चाहिए। इसी तरह खासी और हिचकी मे गहरी नीली बोतल की हवा मुह से खीचनी चाहिए, और सर्दी तथा निद्रादोष मे नाक से। लाल बोतल की हवा केवल सन्निपात के रोगी, जिसका शरीर ठडा पड गया हो, नाडी बन्द हो रही हो, को सुंघाना चाहिये, जिससे वह होश मे आजायगा। इसे ऐसे रोगी को भी अधिक नही सुघाना चाहिए।

(४) सूर्य की रंगीन किरणों को तेल में उतार कर काम लाना

जिस प्रकार सूर्य की रगीन किरणो को जल में भावित किया जाता है ठीक उसी प्रकार उन्हे तेल मे भी भावित किया जाता है। फर्क केवल यह है कि जल धूप मे रखने पर केवल ८ घटो मे ही तय्यार हो जाता है, पर तेल गर्मियों में ३० ४० दिनो मे और सर्दियो मे ६० दिनो मे तय्यार होता है। इस काम के लिये आमतौर पर सरसों या जैतून का तेल प्रयोग मे आता है, किन्तु वातादि रोगो मे तिल का तथा हरे रंग के प्रयोग मे तीसी का तेल अधिक लाभप्रद होता है।

हरी बोतल का तेल चर्म रोगो में उपकारी होता है तथा मस्तिष्क की गर्मी को शात करने मे भी अचूक होता है। इससे कुसमय मे सफेद होने वाले बाल फिर से काले हो जाते है। इस तेल को सिर के पिछले भाग मे लगाने से स्वप्नदोष तथा अन्य धातु सम्बन्धी रोग मिटते हैं। उपदश को भी यह तेज लाभ पहुँचाता है। इसी प्रकार अन्य रगो की बोतलो मे पकाये हुए तेलो मे उन रंगो के अनुसार भिन्न-भिन्न गुण आजाते है।

(५) सूर्य की रंगीन किरणों को मिश्री या दुग्ध शर्करा आदि में भावित कर काम में लाना

सूर्य तप्त मिश्री, शक्कर या दुग्ध-शर्करा की होमियोपैथी वाली गोलियाँ (Nonmedicated Pills) का प्रयोग विशेषकर वर्षात के दिनो मे जब सूर्य-किरणो द्वारा जल तैयार करना सम्भव नही होता, किया जाता है।

चैत्र से ज्येष्ठ मास तक मिश्री आदि मे सूर्य की रंगीन किरणो की शक्ति को भावित करने की अधिक सुविधा रहती है। अत. उन दिनो स[illegible] प्रकार की रगीन बोतलो को लेकर पहले लिखे अनुसार साफ करके उनमे पिसी हुई मिश्री, शक्कर या दुग्ध शर्करा की गोलिया भरकर उपर्युक्त विधि से धूप में रखना चाहिए। शक्कर या मिश्री को तीन महीनो तक और दुग्ध शर्करा की गोलियों को १५ दिनो तक रखने के बाद वे दवा के काम के योग्य बन जाती है। तब उन्हे [illegible] रगों की बोतलो मे रखकर और उन्ही रगो के काग़ज़ में लपेट कर रख छोड़ना चाहिए और आवश्यकतानुसार काम मे लाना चाहिए।

दवा के लिये गोलियो की मात्रा एक या दो गोली रोग की न्यूनाधिकतानुसार उपर्युक्त न० २ मे दर्शाये गये समयो पर देनी चाहिए। गोली मुह मे रखकर दो घूट पानी पी लेना चाहिए।

सूर्य तप्त शक्कर या मिश्री तीन माशा लेकर और आध सेर पानी मे मिलाकर उसी रग की बोतलों में या सफेद बोतल मे दवा बनाले और सूर्य तप्त जल की भांति ही प्रयोग मे लावे।

(६) रंगीन किरण तप्त जल से भीगे कपड़े की पट्टी लगाकर रोगों को दूर करना

शरीर मे किसी रग की कमी या अभाव के कारण रोग होने पर यदि कभी पूरे शरीर पर या किसी अङ्ग विशेष पर प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार भीगे कपडे की पट्टी लगाने की जरूरत हो, उस वक्त कपड़े की पट्टी को बजाय मामूली जल से भिगोने के उसी रंग की किरणो से तप्त जल से भिगोकर पट्टी देने से दोहरा लाभ होता है। उदाहरणार्थ, लगभग सभी प्रकार के ज्वरो मे पूरे शरीर की भीगी चादर को लपेट या केवल पेडू पर भीगे कपडे की पट्टी दी जाती है जो लाभ करती है। अत. चादर या पेडू पर लगाई जाने वाली कपडे की पट्टी को यदि मामूली पानी से न भिगोकर आसमानी बोतल मे तैयार किये गये जल से भिगोकर [illegible]

या पट्टी लगावे तो लाभ दूना और अति शीघ्र होगा।

(७) रंगीन किरण तप्त जल से सनी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करके रोगों को दूर करना

जिस प्रकार रगीन किरण तप्त जल से कपडे की पट्टी बनाने मे मामूली जल की जगह रगीन किरण तप्त मिट्टी का प्रयोग करते है जिससे अधिक और अति शीघ्र लाभ होता है।

सूर्य किरण चिकित्सा चार्ट

निम्नलिखित चार्ट मे सूर्य की रगीन रश्मियो से भावित जल, तेल आदि द्वारा रोग दूर करने के कुछ अनुभूत नुस्खे दिये जाते है जो लाभ के साथ प्रयोग किये जा सकते हैं। इस चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अन्य उपचारो के साथ चलाने से शतप्रतिशत लाभ होता है। इस चिकित्सा प्रणाली मे खाने पीने मे भी वे ही परहेज करने चाहिए जो प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी सिद्धान्तो पर आधारित है।

चार्ट मे प्रयुक्त नीला जल, नीला तेल, नीला प्रकाश आदि का अर्थ है नीली बोतल का सूर्य तप्त जल, नीली बोतल का सूर्य तप्त तेल तथा नीले शीशे द्वारा गुजरा प्रकाश आदि।

नारगी रग२ आसमानी रग२ + पीला रंग१ का अर्थ है—कुल औषधि-जल की मात्रा को पाच हिस्सो मे बाटने पर उसमे २ हिस्सा नारगी रग की बोतल का जल होना चाहिए २ हिस्सा आसमानी रग की बोतल का तथा १ हिस्सा पीले रग की बोतल का।

चार्ट मे जहा-जहा किसी रग को कपडे की पट्टी या मिट्टी की पट्टी लिखा है। उसका मतलब है शरीर के किसी स्थान विशेष पर आध इञ्च मोटी कपडे की पट्टी या मिट्टी की पट्टी को उस रंग की बोतल के जल में भिगोकर और निचोड या गूथ कर लगाना और ऊपर से ऊनी कपडे की सूखी पट्टी लपेट देना।

नाम रोग	रङ्गीन जल पीने के लिए	रङ्गीन तैल की मालिश	रङ्गीन प्रकाश डालना	रङ्गीन जल की पट्टी आदि
सभी प्रकार के ज्वर	आसमानी या गहरा नीला		आसमानी	आसमानी(कपड़े या मिट्टी की पट्टी पेड़ पर)
पेचिस	आसमानी			
हैजा	आसमानी। दस्त-कै बन्द हो जाने पर गहरा नीला			,, ,, ,, १०-१५ मिनट का बीच दे देकर
[illegible]सर	हरा		हरा कैंसर पर	
[illegible]त्ता, गीदड़, सांप [illegible] बिच्छू, मधुमक्खी [illegible] आदि	आसमानी	आसमानी	आसमानी और हरा जब सूजन हो	हरी पट्टी जब सूजन हो वरना आसमानी
[illegible]गठिया	नारङ्गी		दर्द की जगह पर लाल पहले १ घंटा फिर नीला २ घंटे	नारङ्गी (कपड़े या मिट्टी की पट्टी स्थान पर
[illegible]यक्ष्मा	गहरा नीला		गहरा नीला फेफड़ों पर	
[illegible]सिर दर्द	,,	,,	नीला (सर पर)	
[illegible]	गहरा नीला			आसमानी या गहरा नीला [illegible]
[illegible]	गहरा नीला			गहरा नीला (पट्टी [illegible])
[illegible]	गहरा नीला			
[illegible]	नारङ्गी			

नाम रोग	रगीन जल पीने के लिये	रगीन तेल की मालिश	रगीन प्रकाश डालना	रंगीन जल की पट्टी आदि
दमा के दौरे में	नारङ्गी हर दस मिनट बाद	श्वास सूखा हो तो लाल तेल छातीपर		
दमा के दौरा जब बन्द रहे	नारङ्गी भोजन के बाद			
दांत का दर्द, खून, पीप मसूढा फूल कर	गहरा नीला^{2} + हरा^{1} + पीला^{1}			गहरे नीले जलसे ऊपर से सेंक और उसी की पट्टीगहरानीला^{2} + हरा जल का कुल्ला ६-७ बार
दांत का दर्द बिना मसूढा फूले				नारङ्गी जल से कुल्ला करना ६-७ बार
बच्चो के दांत निकलने की तकलीफ			नीला	
मोटो का कब्ज	नारङ्गी			
पतलों का कब्ज	गहरा नीला			
गला जलना	नारङ्गी			
पेट में हवा बनना	नारङ्गी या गहरा नीला			
कै या मतली	आसमानी			
दर्द पेट	नारङ्गी या गहरा नीला			
पीलिया रोग	पीला^{1} + गहरा नीला^{3}	गहरा नीला सारे शरीर पर	मुंह छाती पर एक घंटा रोज गहरा नीला	
दस्त	आसमानी			
दौरे का दर्द (कालिन्द)	नीला हर दस मिनट बाद ३-४ बार			
बादी बवासीर	नारङ्गी या गहरा नीला^{2} + पीला^{2}		नीला मस्से पर	नीला (पट्टी मस्से पर) पीला (एनिमा)
खूनी बवासीर	आसमानी या हरा		आसमानी या हरा मस्सों पर	हरा एनिमा
मूत्र बंद	”			नीला जल (पट्टी पेडू पर)
आंव आना आदि				नीला चश्मा। नीला जल (पट्टी पेडूपर) दिनमें दो बार
कान का दर्द आदि	गहरानीला^{2} + पीला^{2}	हरा कान में डालना	पहले गहरा नीला आधा घंटा तक फिर हरा एक घंटा तक	गर्म हरा + पीला जल से कान धोना। आसमानी गर्म जल से सेंकना।
फोड़ा, घाव			हरा या आसमानी	हरा + आसमानी (मिट्टी की पट्टी) दिन में ४ बार ऊपरसे ऊनीवस्त्र लपेटना
दाद-खाज	आसमानी		हरा या नीला २ घंटा रोज	हरा या नीला जलसे धोना
	पीला^{2} + गहरानील^{1} + हरा^{1}			पीला + हरा से

नाम रोग	रंगीन जल पीने के लिये	रंगीन तेल की मालिश	रंगीन प्रकाश डालना	रंगीन जल की पट्टी आदि
				धोना,हराका नास लेना। हरा जल(बत्ती नाक में)
ृ की धड़कन	नीला			
ना,कटना,कुचलना				नीली(पट्टी दिनमें ३वार)
माहवारी	नारङ्गी सुबह-शाम		लाल १ घंटा रोज	
हवारी दर्द से	दर्द के साथ हो तो पीला		नीला	अधिक खूनमें नीलाजल (पट्टी पेडू पर)
र अधिक खून	अधिक खून जाय तो पीला माहवारी से कुछ दिन पहले से।			
क्वा (फालिज)	पीला		लाल अकड़ी नसों पर एक घंटा फिर नीला दो घंटा तक	लाल कपड़ा पहनना। २ घंटा रोज धूप में बैठना
गलपन	आसमानी		नीला मुंह पर	
ना जोकाम बदबूदार	नारङ्गी^{2}+गहरा नीला^{1}+हरा^{1}		हरा	नारङ्गी+हरा से नास,हरा बत्ती नाक में)
मिरोग	पीला^{3}+हरा^{1}		गहरानीला सिर और मुंह पर	हरा का एनिमा
र में जूं	आसमानी			लाल^{1}+हरा^{2} (सर पर मालिश)
जीर्ण से पेट फूलना	पीला			
,, खट्टी डकार	आसमानी			
णघातक हिचकी	गहरानीला^{3}+लाल^{1}	लाल पसलियोंपर		
की हिचकी	आसमानी			
न्दाग्नि (दस्त-साफ न हो)	पीला^{3}+आसमानी^{1}			
(भूख न लगे)	गहरानीला^{3}+पीला^{1}			
(पेट भारी हो)	गहरानीला			लाल (नाभी के आस पास मालिश)
त्मक (अत्यधिक भूख)	आसमानी			
षा	आसमानी^{3}+पीला^{1}			
दुर्गाजा(बालिक)	नारङ्गी^{2}+आसमानी^{2}		लाल	हरा (सेंक और पट्टी)
ांध (सूजन)	पीला^{2}+गहरानीला^{2}		आसमानी (सारे शरीर पर)	लाल (पेट तथा पांव पर मालिश)
ंदमाला	आसमानी^{2}+लाल^{1}		गहरानीला एक घंटे तक गांठों पर	आसमानी+लाल (पट्टी गले पर)
प्रकार के कुष्ठ	आसमानी^{1}+हरा^{1}+पीला^{1}	लाल और हरा+गहरा नीला (कुष्ठ भाग पर मालिश)	पीला (सारे शरीर पर १५ मिनट तक फिर नीला दो घंटा तक)	गहरानीला^{2}+हरा^{1}(कुष्ठ वाले भाग पर मालिश)

नाम रोग	रगीन जल पीने के लिये	रगीन तेल की मालिश	रंगीन प्रकाश डालना	रगीन जल की पट्टी आदि
श्वेत कुष्ठ	पीला	आसमानी (सफेद दागों पर)		
अंगुली के गहुये पानी से सड़ना	पीला^{२} + गहरानीला^{२}	हरा (पट्टी तेल की जख्म पर)	लाल आध घंटा तक फिर हरा २ घंटा तक	
कंखौरी	आसमानी^{२} + पीला^{१}		हरा (२ घंटा तक घाव पर)	आसमानी (पट्टी घाव पर। फूटनेपर हरी पट्टी)
रक्तमूत्र	हरा। जब साफ पेशाब होने लगे तब गहरानीला^{३}+पीला^{१}			हरा (पट्टी पेड़ू पर)
मुंह के छाले	गहरानीला^{२}+हरा^{१}+पीला^{१}			गहरानीला^{२} +हरा^{१} (गरम जल से ३-४ बार कुल्ली)
तालू में फुंसी आदि	गहरानीला^{१}+पीला^{१} +हरा^{१}+ आसमानी^{१}			गहरानीला^{२} +हरा^{१} (कुल्ली)
नामर्दी	आसमानी^{२} और गहरानीला^{१}	आतप स्नान के बाद आसमानी तेल से सारे शरीर पर मालिश	इन्द्रिय पर लाल आधा घण्टा	पीला (गुनगुना एनिमा) लाल (मालिश इन्द्रिय और कमर पर)
गर्भिणी की योनि से रक्त-स्राव	आसमानी जब तक रक्त-स्राव हो, बादको गहरानीला^{३}औरपीला^{१}		गहरानीला (मुंह-गर्दन पर)	हरा (डूश)। हरा (गुनगुना पानी का फाया योनि में)
गर्भिणी के पेट में शूल	पीला^{३}और गहरानीला^{१} (गर्म)			पीला+हरा (गर्मजल से पेट सेंकना तथा उसी की पट्टी पेड़ू पर)
४ मास में ही गर्भ पात (गर्भस्राव)	आसमानी		हरा (योनिपर १ घंटा)	हरा (पट्टी ३ घंटा तक पेड़ू पर) हरा (फाया योनि पर)
४ मास बाद गर्भ-गिरना (गर्भपात)	गहरानीला		,, ,,	,, ,, ,, खून जारहा हो तो तकिया रखकर चूतड ऊंचा करदे
औरतों की हिस्टीरिया (मूर्छा) मासिक के आधिक्य के कारण	गहरानीला	आसमानी (सर के पिछले भागमें)	आसमानी (सर पर १ घण्टे)	आसमानी (पेड़ू पर पट्टी)
औरतो की हिस्टीरिया (अनियमित या कमी मासिक के कारण)	नारङ्गी			नारङ्गी (पट्टी पेड़ू पर)
मिरगी	आसमानी			आसमानी (पट्टी सर पर) बेहोशी में चेहरे पर आसमानी जल के छींटे।

नाम रोग	रंगीन जल पीने के लिये	रंगीन तेल की मालिश	रंगीन प्रकाश डालना	रंगीन जल की पट्टी आदि
ासूत	पीला३+गहरा नीला १		पीला (मुंह को छोड़कर सारे शरीर पर) गहरा नीला (मुंह पर १ घंटा)	लाल(मालिश कमरपर) हरा+पीला (पट्टी पेड पर)
ाल सरदर्द(आंख ान्द करके सिसके)	पीला+आसमानी शक्कर दो रत्ती ४ ५ खोराक		हरा आधा घंटा	
ाल हृदय रोग जीभ ओठ चबाय, ुट्ठी बांध कर हाथ ारोड़े)	गहरा नीला शक्कर दो रत्ती प्रति घण्टे।		गहरा नीला (मुंह और छाती पर)	
ाल पेट रोग (मल-ूत्र रोके, स्तन काटे, ान्तड़ियों में कुर-ुर शब्द, पीठ ाकड़ा पड़ जाना, ाट ऊपर आना)	पीला शक्कर दो रत्ती प्रति घण्टे		पीला (सारे शरीर पर मुंह छोड़कर)	लाल (पेट और पीठ सेंकना
ेट के नीचे के वाल ोग (मल मूत्र एक ाथ हो, हरा ालीत हो)	पीला+हरा १ रत्ती शक्कर प्रति घण्टे	नाभी और गुदा पर पीला तेल चुपड़ें	नाभी से गुदा तक पीला प्रकाश	
ालक के मुंह में ाग आना	गहरा नीला२+हरा२		आसमानी (मुंह पर १ घंटा)	
ालक के मुंह में ार टपकना	पीला शक्कर २ रत्ती ३-४ बार		गहरा नीला (मुंह पर १ घंटा)	
ालक के मुंह में ालू पर गड्ढा ूध न पीना या ाए से पीना, पतला ान, प्यास, गर्दन ा ऐंठ जाना, दूध ी उलटी)	पीला शक्कर दो रत्ती २-२ घण्टे पर		गहरा नीला (मुंह पर)	आसमानी (पट्टी गले पर)
[illegible]	पीला२+गहरा नीला२ दो-दो घण्टा पर		गहरा नीला (मुंह पर २ घंटा)	
[illegible]	हरा		गहरा नीला (पेट पर)	
[illegible]	आसमानी२+पीला १	गहरा नीला (शरीर पर)	गहरा नीला [illegible] मुंह पर [illegible]) पीला (पेट पर)	

नाम रोग	रगीन जल पीने के लिये	रंगीन तेल की मालिश	रगीन प्रकाश डालना	रंगीन जल की पट्टी आदि
बालक के दांत निकलना और उसके उपद्रव	गहरा नीला (माता और बच्चा दोनों को)		गहरा नीला (शरीर पर)	
हुब्बा डब्बा	गहरा नीला	लाल (सीने पर भयानक दशा में)	गहरा नीला (पेट पर दो-तीन घंटा)	
बालक का चौंक उठना	गहरा नीला		नीला (सिर और मुंह पर)	
थनैली (स्तन पीड़ा)	आसमानी		हरा (फोड़े पर आध घंटा)	हरा (पट्टी फोड़े प
उंगली के नख का फोड़ा (गूंगी)	आसमानी		हरा (फोड़े पर आध घंटा)	हरा (पट्टी फोड़े पर
फेफड़े और दिल के रोग	पीला		लाल (फेफड़ों पर दिल बचाकर)	
गन्जा सर		हरा (सर पर मालिश रात में)	नीला	हरा (सर धोना)
स्वप्न दोष	आसमानी	आसमानी या हरा तेल से (सिर के पिछले हिस्से में मालिश)		
छाजन	पीला$_2$ + आसमानी^{2}			आसमानी–हरा (
मोटापा	नारंगी	लाल (शरीर पर)	लाल (पेट पर एक घंटा रोज)	
उपदंश (गरमी)	हरा$_2$ + आसमानी$_2$	हरा		हरा (जल पट्टी)
सर्व प्रकार के वात रोग	पीला	लाल या पीला (स्थानीय)	लाल या पीला (स्थानीय)	
पुरानी तिल्ली (वरवट)	आसमानी	आसमानी (तिल्ली पर)	आसमानी (तिल्ली पर)	
जलोदर	नारंगी		नारंगी	
बेवाई फटना		लाल (मालिश १५ मिनट तक दिन में ४-५ वार गरम पानी से धोकर)		
रतौंधी व रोहा				दायीं आंख में नारंगी या हरा टपकाना दिन में वार और बायीं आसमानी या
हाथों पैरों मे		आसमानी		

नाम रोग	रगीन जल पीने के लिये	रगीन तेल की मालिश	रगीन प्रकाश डालना	रगीन जल की पट्टी आदि
मधुमेह	नारगी² + आसमानी¹ (सुवह शाम खाने के बाद और सोते वक्त)			
सुजाक	गहरानीला³ + नारंगी¹	हरा (डंडी पर दिन मे १ बार)		
मोच		आसमानी		
नासूर	हरा² + आसमानी¹	हरा (मालिश धूप मे)	हरा	हरा (मिट्टी की पट्टी दो बार)
एकजिमा	आसमानी	हरा	हरा	हरा (जल से धोकर हरी ही मिट्टी की पट्टी)

रोग निवारण के लिये गरम वायु, गरम जल, तथा गरम पृथ्वी के प्रयोग

रोग निवारण के लिए हम अग्नि–तत्व का सफल प्रयोग शेष चारो तत्वो—आकाश,वायु, जल,तथा पृथ्वी के माध्यम से ही कर सकते हैं। आकाश तत्व के माध्यम से सूर्य प्रकाश का प्रयोग जिन जिन विधियो से रोग निवारणार्थ करते हैं उनपर थोडा प्रकाश ऊपर डाला जाचुका है। अब वायु, जल, तथा पृथ्वी तत्वो के माध्यम से अग्नि तत्व का प्रयोग जिस प्रकार होता है उसपर विचार किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के अन्तर्गत, रोगो को दूर करने के लिए गरम बोतलो,गरम बालू के थैलो,गरम ईंटो, गरम पत्थर तथा गरम पृथ्वी आदि के प्रयोग सूर्य स्नान की भांति ही सूखी गर्मी के प्रयोग और गरम भाप, गरम जल, गरम गीली मिट्टी तथा गीले कपडे की पट्टी आदि के प्रयोग गीली गर्मी के प्रयोग कहलाते हैं।

चिकित्सा के लिये १२०° से अधिक तापमान के जल

हल्कागरम (Warm) ·· ९४° से ९८° तक
गरम (Hot) · ·९८° से १०४°तक
अधिकगरम (Very hot) ···१०४°से १२०° तक

रोग निवारणार्थ अग्नि ताप के प्रयोग अन्य तत्वो के प्रयोग की भांति ही खूब समझ बूझकर और विधिवत करने चाहिए। सही ढग से किए गए प्रयोग निश्चय ही लाभ करते हैं और बेढगे तरीके से किए गए प्रयोगो से हानि होना भी स्वाभाविक है। आरम्भ मे तो ये रोगी की दशा के अनुसार हल्के और अल्पकालीन होने ही चाहिए।

हमारी त्वचा के प्रत्येक वर्ग इन्च मे १० लाख छिद्र होते है इन छिद्रो द्वारा शरीर वायुमण्डल से ओषजन को अन्दर खीचता रहता है जो जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है तथा उन्ही की राह से आधसेर तक मल (विजातीय दूषित द्रव्य) प्रतिदिन शरीर से बाहर निकलता रहता है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिए छिद्रो की ओषजन खीचने वाली प्रक्रिया से कम आवश्यक नही है कारण यदि ये छिद्र और
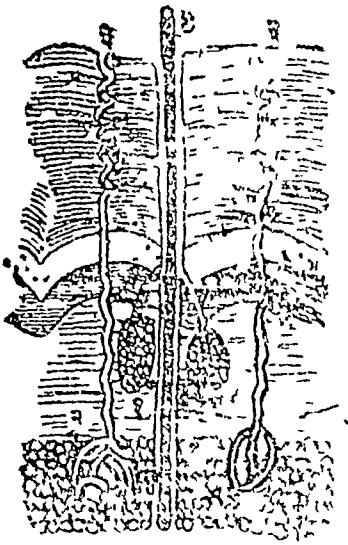
मनुष्य की खाल की बनावट

स्वास्थ्य सुधार के लिए अग्नि ताप के विभिन्न प्रयोग आदि काल से प्रचलित है। टर्की, रूस तथा स्वीडन आदि ससार के लगभग सभी देशो में किसी न किसी ढग से अग्नि ताप का व्यवहार स्वास्थ्य सुधारने के लिए होता है उदाहरणार्थ फिनलैंड में वाष्प स्नान की एक विचित्र राष्ट्रीय प्रणाली है जिसे वहा की भाषा मे साडना कहते है। साडन के लिए एक छोटे घर में बडा सा चूल्हा बनाया जाता है जिसके नीचे लकडी जलाई जाती है और ऊपर पत्थर के ढोके गाजे जाते हैं। जब पत्थर के ढोके गरम हो जाते है तो उन पर पानी छिडकते हैं जो तुरन्त भाप बन जाती है। घर के दरवजे और खिडकिया बदकर दी जाती है नहाने वाले घर मे नगे होकर बैठते हैं। जब वदन पर पसीना वह निकलता है तब वर्च नाम के एक पेड की पतली टहनियो और पत्तो का झाड़ू बनाकर उसी झाड़ू से बदन को पीटते है जिससे पसीना साफ होता रहता है। जब भाप की गर्मी असह्य होने लगती है तो सर पर ठंडा पानी डलते है। इस तरह २० मिनट तक घर में बैठने के बाद नहाने वाले बाहर निकल कर झील मे कूद पडते है या फौरन ठंडे पानी से नहा लेते है। जाडो में भाप से निकल कर वर्फ पर लोट लगाते है। वहा का प्रत्येक स्त्री पुरुष सप्ताह मे कम से कम एक बार अवश्य साडना करता है कभी तो एक दिन मे ही कई बार। पूरे साडन के शरीर हलका और मन पुलकित हो जाता है।

१—गरम वायु के प्रयोग

शरीर की त्वचा जब गरम वायु वा गरम भाप के सम्पर्क मे आती है तो उसके छिद्र खुल जाते हैं और उसके द्वारा शरीर का मल पसीने के रूप मे वह निकलता है। चिकित्सा मे गरम वायु के प्रयोग का यही मतलब होता है। चरक मे गरम वायु के प्रयोग से पसीना लाने की तेरह विधियो का उल्लेख है और बिना अग्नि की सहायता से पसीना लाने की दस विधियो का, जिनमें व्यायाम, भारी और गरम वस्त्र धारण करना, कुश्ती लडना, गरम घर मे रहना तथा उपवास मुख्य है।

नीचे कुछ व्यवहारिक गरम वायु के प्रयोग दिये जाते है जिनकी आवश्यकता चिकित्सा-काल मे अक्सर पडा करती है। यद्यपि इन प्रयोग विधियो मे परस्पर थोडी बहुत असमानता है तथापि इनमे से प्रत्येक प्रयोग का एक ही मतलब होता है अर्थात् शरीर से या उसके किसी हिस्से से पसीना निकालना।

गरम वायु-स्नान नं० १

रोगी को नगा करके किसी नगी कुर्सी या खाट पर बैठा कर उसके ऊपर एक बडा मोटा कम्बल सर छोडकर गले से इस प्रकार से ओढ़ाना चाहिये कि कम्बल से रोगी और कुर्सी वा खाट दोनो पूरी तरह से ढक जायें जिससे उसके अन्दर, बाहर से हवा न जा सके। अब रोगी के सर पर एक भीगी तौलिया और खाट या कुर्सी के नीचे जलता दिया या कम और बिना धुए के अग्नि का एक चूल्हा सावधानी से रक्खे। आवश्यकतानुसार इस प्रयोग को करते समय कभी-कभी रोगी के पैरों को गरम पानी में भी रख छोडते है। इससे रोगी के शरीर से पसीना निकल आता है। अधिक चरबी वाले रोगी को यह स्नान इतना अनुकूल पड़ता है कि दो चार दिनो मे ही उसकी चर्बी काफी घट जाती है। इसके अतिरिक्त सन्धि, श्वास तथा खासी आदि रोगो मे यह प्रयोग बडा लाभकारी सिद्ध होता है। इस स्नान के बाद बन्द कमरे मे गीली तौलिया से सारी देह पोंछवा या ठण्डे पानी से पूरा स्नान कर लेना निहायत जरूरी है।

गरम वायु स्नान नं० २

इसको अंग्रेजी मे Dry pack कहते हैं। इसमें रोगी का सारा शरीर कम्बलो से लपेट दिया जाता है और

[इ]सको कम से कम एक घण्टा तक यों ही पड़ा रहने दिया जाता है तथा बीच-बीच में गरम पानी पीने को दिया जाता है। ऐसा करने से थोडी ही देर में रोगी के शरीर [से] पसीना बह चलता है और रोग में सुधार होने लगता है। मलेरिया तथा मोटापा आदि रोगों में इस प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। इस स्नान को भी सारे शरीर को भीगी तौलिया से पोंछ कर ही खतम करना चाहिए।

टर्किश बाथ (स्नान)

टर्किश बाथ एक प्रकार का गरम वायु-स्नान ही है। इसमें रोगी को नंगा करके और उसके सर और चेहरे को ठंडे पानी से खूब धोकर एक चारों तरफ से बन्द छोटे कमरे (Cabinet) में एक स्टूल पर बैठा देते हैं। कमरे की हवा को धीरे-धीरे गरम करते-करते २००° तक ले जाते हैं। १४०° से १८०° फारेनहाइट का तापमान होने पर आमतौर पर पसीना बह चलता है।

इस स्नान में भी शरीर को ठण्डे जल से भीगी तौलिया से पोंछना या ठण्डे जल से स्नान कर लेना जरूरी है। ऐसा करने से शरीर के नाडी केन्द्र और रक्त कोष शक्ति-शाली बनते हैं।

टर्किश बाथ वात, कटिशूल, गठिया, फालिज, पुरानी मन्दाग्नि आदि में विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होता है।

रशियन बाथ (स्नान)

रशियन बाथ लेने के लिये रोगी को एक गरम भाप से भरे कमरे में १० से २० मिनट तक नङ्गा होकर बैठना पड़ता है। तदुपरांत शरीर के पसीने को ठण्डे जल से भीगी तौलिया से पोंछकर उसे हजारा करने के नीचे बैठकर ठण्डे जल से स्नान करना होता है। बिगड़े जोड़ाम और वात रोगों में यह स्नान बड़ा लाभ करता है। बहुत प्रकार के चर्म रोग भी इस स्नान से शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

जलते कोयलों के योग से गरम हुई वायु से स्नान

इस स्नान के लिए रोगी को नंगा होकर एक खाट के बीचो बीच दहकते कोयलों (बिना धुआँ वा) पीढ़ा पात्र रखना चाहिये। तत्पश्चात् रोगी एक कपड़े से अपने सारे शरीर को ढक ले और कोयले के पात्र को भी कपडे के भीतर ले ले। ओढने के कपड़े को दीवार से सटाये हुये पीढा से दबा कर ओढना हुआ बैठने के पीढ़े से दबादेने से कपडे के जलने की आशंका नहीं रहेगी। सबके बाद दो-एक ऊनी कम्बल ऊपर से ओढ लेना चाहिये। पर चेहरा हर हालत में खुला रखना चाहिए और इस स्नान के लेते समय सिर को ठंडे पानी से भीगी तौलिया से जरूर लपेट रखना चाहिए। और उसके गरम हो जाने पर बदलते रहना चाहिये। पांच-चार मिनट के बाद ही पसीना आना आरम्भ होगा। १५-२० मिनट बाद खूब पसीना आजाने पर ओढे हुये कपडे और कम्बल हटा दे। पर उस वक्त शरीर में हवा न लगने दे। कपडे आदि हटाकर सर्वप्रथम शरीर के पसीने को तौलिया से पोंछ डाले और फिर ठंडे जल से भलीभांति स्नान कर डाले। उसके बाद गरम कपडे पहिनकर लगभग एक घंटा तक लेटा रहे अथवा नींद से सोजाय। दहकते हुए कोयलों के पात्र को चारपाई के नीचे रखकर और ऊपर से कपडा ओढकर भी यह स्नान लिया जाता है। चरक में इस स्नान को कर्पू स्वेद कहते हैं।

डाक्टर स्टाकहोम की राय से यह स्नान निरोग मनुष्यों को भी, रोगों की रोक थाम के लिये, प्रतिसप्ताह की समाप्ति पर अवश्य लेना चाहिये। रोगी व्यक्ति, अपने रोग की न्यूनाधिक अवस्था के अनुसार प्रतिदिन, प्रति दूसरे दिन या तीसरे दिन यह स्नान ले सकते हैं। इस स्नान से दुर्बलता न आयेगी अपितु अशक्त रोगी भी इस स्नान से दिन-दिन सशक्त होते जायेंगे। पहली-दूसरी बार [illegible] रोगी को थोड़ी बहुत कमजोरी मालूम होने जैसी ही प्रतीत हो, परन्तु कुछ स्नानों के बाद शरीर में शक्ति आती मालूम होने लगती है।

इस स्नान से शरीर की [illegible] के विकार [illegible] है और उसको आरोग्य प्रदान करने वाली क्रिया [illegible], जिससे [illegible] निकालने वाली

होने लगता है और उसकी सारी रुकावट और गाठे खुल जाती हैं, साथ ही रुधिर शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल भी बन जाता है जिससे शरीर के ज्ञानतन्तु एव मस्तिष्क स्वस्थ और तरोताजा हो जाते हैं।

रक्त-विकार, सूजन, कुत्ते आदि का जहर चढने पर कंठमाला, मलेरिया, राजयक्ष्मा, चर्मरोग, गर्मी, विषम ज्वर, खासी-जुकाम, गठिया, कफ, जोडो के दर्द, सिर दर्द मोटापा, यकृत और मूत्राशय के रोग तथा पुराना अतिसार आदि मे यह स्नान बडा लाभकारी है। ठड देकर चढने वाले ज्वर मे जाडा लगने से पहले इस स्नान द्वारा शरीर का पसीना निकाल देना चाहिये। तीन-चार बार के प्रयोग से ही ज्वर भाग जायगा। गठिया रोग में यह स्नान प्रतिदिन लेना चाहिये। रोग की अवस्था मे गर्भिणी स्त्रिया भी इस स्नान को निर्भय होकर ले सकती है। उन्हे लाभ होगा और हानि जरा भी न होगी।

गरम पत्थर के योग से गरम हुई वायु से स्नान

इस स्नान के लिए एक बडी लम्बी शिला को आग मे तपाकर और धोकर तथा उस पर कम्बल आदि वस्त्र बिछाकर उसके ऊपर रोगी को नगा करके लिटा देते और कपड़ों से ढंक देते है। लिटाने से पहले रोगी के शरीर पर तेल की मालिश करदेते है। इस उपाय से रोगी के शरीर से पसीना निकलकर उसके सारे रोम कूप खुल जाते है। चरक मे इस स्नान को 'अश्मघन स्वेद' कहा गया है।

गरम पृथ्वी के योग से गरम हुई वायु से स्नान

इस स्नान को 'भूस्वेद' कहते हे। इसमे शिला की जगह पृथ्वी को ही गरम करके शरीर से पसीना निकाला जाता है।

काष्ठौषधियों से सुवासित गरम वायु से स्नान

एक ऐसे कमरे मे, जिसमे हवा आने जाने के लिये कोई खिडकी आदि न हो, पर प्रकाश आने के लिये शीशे आदि के झरोखे हो, दालचीनी सोठ आदि गरम औषधियां का लेपन करे। तत्पश्चात कमरे को अग्नि के योग गरम करके उसमे रोगी को प्रवेश कराकर उसके शरीर से पसीना निकाले। चरक-अनुसार इसको 'कुटीस्वेद' कहते है।

काष्ठौषधियों को जलाने से गर्म हुई वायु से स्नान नं०।

इस स्नान के लिये स्वच्छ, साफ और चारो ओर से बद कमरे में खैर आदि लकड़ियो की अग्नि प्रज्वलित करके कमरे को गरम कर लेना चाहिये। तत्पश्चात रोगी के शरीर पर तेल की मालिश करवा कर उसे उस कमरे मे प्रवेश करा देना चाहिये। भली प्रकार पसीना निकल चुकने पर रोगी को सावधानी से बाहर निकाल कर ठडे या गुन-गुने जल से स्नान करा देना चाहिये। चरक मे इस स्नान को 'जेंताक स्वेद' कहते है।

यह स्नान बहुत बढ़े हुये कफ रोगो मे दिया जाता है और लाभ करता है।

काष्ठौषधियों को जलाने से गरम हुई वायुसे स्नान नं०

इस स्नान को चरक में 'कूपस्वेद' कहते हैं। इसमें एक कुए मे जो रोगी के कद से दुगुना गहरा हो, घोड़े, गधे, हाथी और ऊट की लीद जलायी जाती है। जब लीद जल चुकती है और कुए मे धुआं नाम को भी नही होता तब कुएं के मुह पर रोगी की चारपाई रखवा कर उसको चारपाई के साथ कम्बलो से ढक देते है और उसके शरीर से पसीना निकालते है।

काष्ठौषधियो को जलाने से गरम हुई वायु से स्नान नं०

एक लम्बे पीतल के पात्र मे गोबर भर कर जलाना चाहिये। जब वह पात्र गरम हो जावे और सहने लायक थोडा ठडा हो जावे तब रोगी को नंगा करके उसमें लेटा दे और उसे कपडो से ढंक दे। इस प्रकार जो स्वेद दिया जाता है उसे चरक मे 'होलाकस्वेद' कहते हैं।

उष्ण वाष्प-स्नान (STEAM-BATH)

वाष्प-स्नान के लिये बेत से बुनी हुई एक बैञ्च, अथवा मूंज के बान या सुतली से दूर-दूर बुनी हुई एक नगी चारपाई और तीन बरतन जिनमे कोई दो-दो, तीन तीन सेर पानी आसके, दरकार होते है। डाक्टर कूने ने इस स्नान के लिये लकडी की एक खास किस्म की सफरी बैञ्च बनाई है जो काम हो चुकने पर तोड कर और लपेटकर रख दी जा सकती है।

पहले तीनों पानी भरे बरतनो को, थोड़ा-थोडा पानी से खाली रखते हुये चूल्हे पर चढा देना चाहिये। जब

…लने लगे और उससे भाप निकलने लगे तब रोगी को …बदन बेंच अथवा चारपाई पर कम्बल, रजाई, …ई, शाल या दोहर ओढकर लेट जाना चाहिए। इस …कार जिसमे ओढना के किनारे नीचे पृथ्वी तक लटकते …है। अर्थात् चारपाई के नीचे कोई जगह खुली न रहे …जिसमे से होकर भाप बजाय शरीरमे लगने के बाहर …निकल जाय। सिर भी पहले ढक लेना चाहिये फिर …खोल देना चाहिये। अब ओढ़ना को धीरे से उठा कर …खौलते हुए पानी का एक बर्तन रोगी की पीठ के नीचे …और दूसरा पैरो के नीचे रख देना चाहिए। बरतनो पर
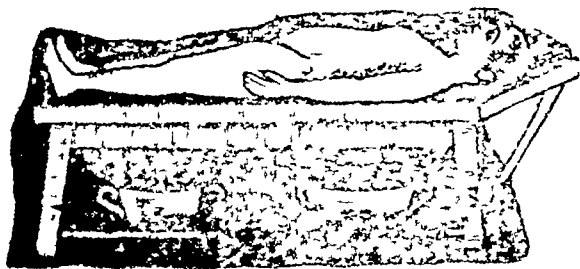
उष्ण वाष्प-स्नान के लिए कूने का यन्त्र

ढक्कन जरूर होने चाहिये जिन्हे इच्छानुसार कम अथवा अधिक भाप लगने के लिये उनको कम अथवा अधिक खोल देना चाहिए। कोई दस मिनट हो जाने पर भाप कम होने लगेगी। तब चूल्हे पर चढा हुआ तीसरा बर्तन उठाकर पीठ के नीचे रख देना चाहिए और पहले बर-तन को उठा कर आग पर चढा देना चाहिए और जब भाप फिर उसमे अच्छी तरह निकलने लगे तब पैरो के नीचे वाला बरतन भी बदल देना चाहिए। परन्तु बहुधा पैरो के नीचे के बरतन को बदलना नही पडता। कोई १०-१५ मिनट के बाद रोगी को पेट के बल लेट जाना चाहिए जिसमे पेट, पेडू और छाती पर खूब भाप लगे और पसीना निकले। यदि अब तक पसीना न निकला होगा [illegible] सिर तथा पैर तथा सिर दोनो [illegible] एक साथ ही निकलने लगेगा। जिनको पसीना शीघ्र [illegible] [illegible]

की जरूरत होती है। बच्चो के लिए एक ही बरतन से काम चल जाता है। स्नान का समय रोगी की अवस्था के अनुसार निर्धारित करना ठीक है।

पसीने को १५ से ३० मिनट तक निकलने देना चाहिए। शरीर के जिन भागों मे रोग के कारण विजातीय द्रव्य अधिक मात्रा मे एकत्र रहते है उन भागो मे देर से पसीना निकलता है। उन पर भाप का अधिक प्रयोग करना चाहिए और जहा तक गरम भाप सहन हो सके उन पर लगने देना चाहिए। स्नान की समाप्ति पर ओढ़ा हुआ वस्त्र बन्द कमरे मे ही उतारना चाहिए और सहसा खुली हवा मे नही चले जाना चाहिये।

वाष्प-स्नान के लिए यदि किसी को पूर्वोक्त प्रकार की बेञ्च या चारपाई समय पर न मिल सके तो बेंत से बुनी हुई कुरसी से ही उसका काम निकाला जा सकता है। कुरसी पर बैठकर नीचे गरम पानी का बरतन रख देना चाहिए और कुरसी समेत शरीर को ओढने से ढंककर बैठना चाहिये।
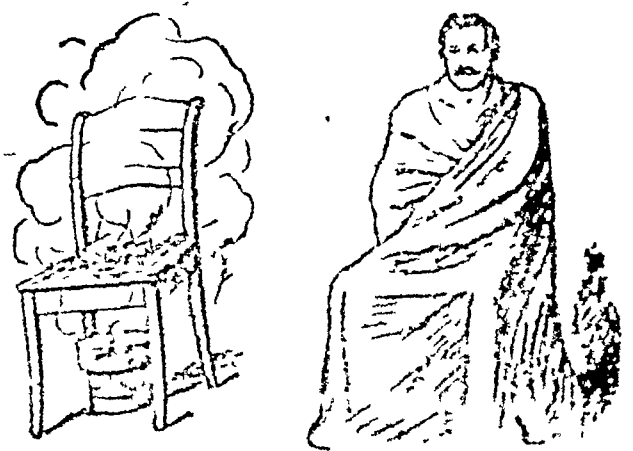
कुरसी पर उष्ण वाष्प-स्नान

भाप-नहान के लिए लकडी अथवा लोहे आदि का एक ऐसे [illegible] का होना जरूरी है जिसमे स्नान पर बैठने पर सर तो बाहर निकला रहे और बाकी शरीर उसके अन्दर [illegible]। [illegible]

[illegible]
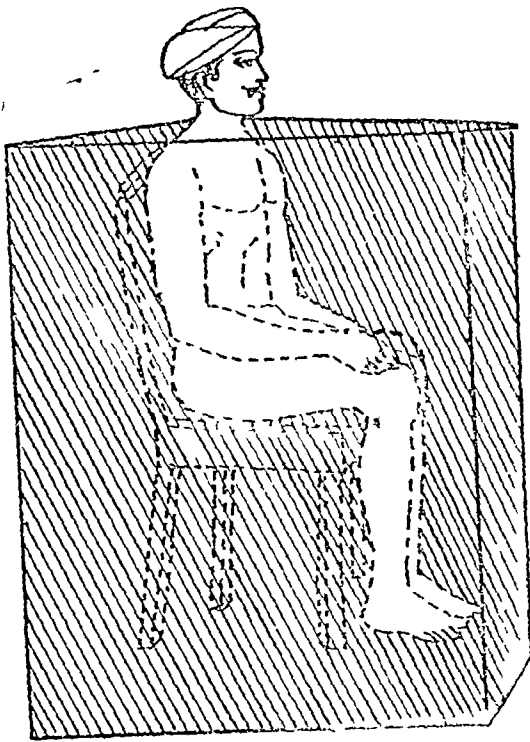
उष्ण वाष्प-स्नान के लिए मसहरीनुमा बाक्स

तौलिया से शीघ्रता से पोंछ डाले जिससे उदर के सिवा शरीर के अन्य अवयव भी शीतल हो जाये। गरम किये हुए लोहे को पानी मे बुझाकर जैसे उसे शीतल और मजबूत बनाते हैं वैसे ही भाप-नहान के अनन्तर ठंडे पानी से शरीर को शीतल करने से वह सशक्त और निरोग बनता है।

वाष्प-स्नान के बाद ठंडा स्नान करने के उपरांत सशक्त मनुष्य को स्वच्छ हवा मे घूमने चले जाना चाहिए जिसमे थोडे परिश्रम से शरीर पुन. गरमा उठे। परन्तु जो निर्बल हैं अथवा जो अधिक बीमार है और बाहर नही जा सकते, उनको किसी हवादार कमरे मे गरम कपडे ओढ कर थोडी देर तक लेटकर शरीर को गरम कर लेना बहुत ही आवश्यक है।

आयुर्वेदानुसार तेल की मालिश करवाकर भाप-नहान लेना चाहिए, परन्तु पाश्चात्य विद्वान इससे सहमत नही हैं।

गर्मियो मे २०-३० मिनट तथा जाड़ो मे ३० से ४५ मिनट तक भाप-नहान लेना काफी होता है। साधारणत सप्ताह मे दो बार से अधिक भाप-नहान नही लेना चाहिए। यदि अधिक बार लेना ही हो तो किसी अनुभवी डाक्टर से राय लेनी चाहिए। क्योंकि भाप-नहान मे कमजोरी बढ़ जाती है। शरीर के किसी खास स्थान का भाप-नहान और दिन मे दो-तीन बार भी लिया जा सकता है।

भाप-नहान लेते समय बीच-बीच मे यदि थोडा गरम पानी भी पिया जाय तो लाभ अधिक हो। नहान हमेशा बन्द कमरे मे लेना चाहिए जहा हवा झोका न आता हो।

भाप-नहान लेने तक यदि रोगी बेहोश होने लग हो जाय तो नहान बन्द करके उसके चेहरे पर ठंडे के छीटे देना चाहिये और होश मे आने पर उसे उस मेहन स्नान दिलवाना चाहिए।

भाप-नहान लेने के पहले मुंह और शरीर को पानी से अच्छी तरह धो लेना चाहिये। तत्पश्चात् गिलास गरम पानी पीकर तब भाप-नहान लेने के कम्बल ओढना चाहिए और कम्बल ओढ़े ही ओढ़े का सारा कपडा उतारकर नगा हो जाना चाहिए।

भाप-स्नान लेते समय सर पर ठंडे जल से तौलिया का रहना जरूरी है जिसे पानी छिडक-छिडक स्नान के पूरा होने तक तर रखना चाहिए। मगर जरूरत से ज्यादा पानी नही छिडकना चाहिए। वरना पसीने बहाव रुक सकता है। मतलब इससे केवल भाप-स्नान लेते सर को ठण्डा रखने से है। बदन के गरम हो जाने पर और रूमाल भिगोकर एक को हृदय के तथा दूसरे जननेन्द्रिय के ऊपर रख देना चाहिए और उन्हे रहना चाहिए। जाडे के दिनो मे चाहे भीगा जननेन्द्रिय पर न रखा जाय, मगर गर्मियो मे उसे रखना चाहिए। भाप बन्द कर देने के ५ मिनट सर से भीगी तौलिया तथा अन्य अङ्गो से भीगे हटा देने चाहिए। जाडो में भाप बन्द करते ही इन्हे दे। भाप बन्द करने के बाद १० मिनट तक रोगी उसी प्रकार पडा रहना चाहिये और एक सूखे रोगी के चेहरे के पसीने को पोंछकर उस भीगे को रोगी के हाथ मे देना चाहिये जिससे वह अपने शरीर को बार-बार रगड-रगड़ कर ठंडा करे। कपड़ो के गरम हो जाने पर उसे पुन भिगोकर को दे देना चाहिए। इस तरह जब तक सारा शरीर न होजाय तब तक कम्बल के भीतर ही रहकर पोंछते रहना चाहिए। यह पोंछने का काम रो

ावा कोई दूसरा भी कर सकता है। शरीर पोंछ लेने १० से ३० मिनट तक उदर स्नान लेना चाहिए। के बाद कोई-कोई डाक्टर बन्द कमरे में ठंडे पानी से स्नान करने की भी राय देते हैं। सबके बाद व न पुनः गर्माई लाने का उपाय करना जरूरी है। स्नान १ घंटा बाद एक गिलास ठंडा पानी नीबू का रस लाकर पीना बड़ा लाभ करता है तथा स्नान के पहले ीमा से पेट साफ कर लेना भी मुफीद है। भाप-नहान ४-५ घंटा पहले और बाद भोजन करना ठीक नहीं।

त्वचा को नियमित रूप से अपना स्वाभाविक कार्य रने योग्य बनाने के लिये वाष्प-स्नान सर्वाधिक विश्व-नीय उपाय है। इस तथ्य को एक विद्वान डाक्टर ने स प्रकार समझाया है—

'हमारे पहनने-ओढ़ने के कपड़ो में हजारों-लाखों टे-छोटे छिद्र होते हैं, जिनमें जब मैल भर जाता है तो मैले कपड़ों को सर्व प्रथम भट्टी में चढ़ाकर उन्हें गरम रते हैं जिससे छिद्रों में भरा मैल फूल जाता है। तत्प-ात् उन कपड़ों को ठंडे पानी में खूब कचारते और धोते जिससे छिद्र खुल जाते हैं और कपड़े बिलकुल साफ ो जाते हैं। उसके बाद भीगे कपड़ों को धूप में डालकर ुखा लेते हैं जिससे कपड़े एकदम नये से दीखने हैं। ठीक सी प्रकार हमारे शरीर का अस्वस्थ और मैला चमड़ा ा जो शरीर के भीतरी मलों को करने में कपड़े का ाम करता है, भाप-नहान से धुलकर स्वस्थ, स्वच्छ, तेज और नया बन जाता है। भाप-नहान देकर त्वचा के [illegible] के मैल को फुलाना, मैले कपड़ों को भट्टी में देने के [illegible] है। भाप-नहान के बाद सारे शरीर को ठंडे [illegible] भीगी तौलिया से रगड़ रगड़ कर पोंछना या [illegible] स्नान लेना मानो भीगे हुये मैले कपड़ों को ठंडे पानी को गलाकर एवं घुलाकर रोम कूपों तथा शरीर के विभिन्न मल निष्कासक मार्गों से बाहर कर सकने में सफ-लीभूत होते हैं। मोटे और उनके लिये जिन्हें पसीना कम आता है यह स्नान अधिक हितकर है।

चरक, स्वेदाध्याय में लिखा है—

'शुष्काण्यपीहि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः।
नमयन्ति यथान्यायं किं पुनर्जीवितोनरान्॥'

अर्थात् सूखी लकड़ियां भी तैलादि चिकने पदार्थों के योग और वाष्प प्रयोग से सुन्दर, सुडौल और नरम हो जाती हैं, फिर भला सजीव मनुष्य शरीर पर उसका उत्तम प्रभाव क्यों न पड़ेगा?

सब प्रकार के वात रोग, पेट का बढ़ना, पुरानी सर्दी, सब प्रकार का अजीर्ण रोग, खाज-खुजली आदि चर्म रोग, अम्लरोग, सब प्रकार की शूलवेदना, गर्मी, सुजाक, पित्त-पथरी, पसली की पीड़ा, श्वास-रोग, ज्वर, श्लेश्म, गठिया, जोड़ों की सूजन तथा यकृत और मूत्राशय आदि के रोग उष्ण वाष्प-स्नान से शीघ्र दूर हो जाते हैं।

जो लोग अधिक कमजोर हों वा अधिक बीमार हों गर्भवती स्त्री, जिसे रक्त-पित्त हो, जिसे पित्त का अतिसार हो, मधुमेह वाले रोगी को, जो आग से जल गया हो, जिसने जहर खा लिया हो, जिसे मूर्च्छा आती हो, पीलिया के रोगी को, नये ज्वर में, सूजन वाले रोगी को, ज्ञान तन्तु सम्बन्धी रोग वाले को, जिसका यकृत बहुत बढ़ा हो, जिसे आंख की बीमारी हो, हृदय के रोगियों को, क्षय के रोगी को, फेफड़ों के रोगी को, लू लगने पर, बच्चों को, तथा मृगी के रोगी को उष्ण-वाष्प-स्नान नहीं देना चाहिए।

वाष्प-स्नान (VAPOUR BATH)

किसी बन्द कमरे में दोनों पैरों को अलग-अलग गरम पानी से भरे बरतनों में रखकर एक [illegible]

पौछ कर कपड़े पहन लो। (देखो चित्र)

यह स्नान उन लोगो के लिए लाभकारी नही है जिनकी त्वचा सदैव नम रहती है। उष्ण स्नान-की भाति ही इस स्नान को भी अल्प समय तक ही तथा नियमपूर्वक

वाष्प स्नान साधारण

करना चाहिए अन्यथा लाभ के बदले हानि-की ही सम्भावना अधिक रहती है।

काष्ठौषधियो के योग से उत्पन्न हुई वाष्प से स्नान नं० १

बिस्तरे पर नीम, मदार वा एरण्ड के पत्ते बिछाइये। तत्पश्चात रोगी के अग-प्रत्यग पर भी इन पसीना लाने वाली औषधियो मे से किसी एक के पत्ते लपेटिये और उसे बिस्तरे पर लेटाकर कपडा ओढा दीजिये। थोडी ही देर मे सारा शरीर पसीने से तरबतर हो जायगा। उस वक्त अन्दर ही अन्दर पत्ते हटाते हुये रोगी के शरीर पर का पसीना पौछकर उसकी देह ठंडे जल से भीगी तौलिया से अगोछ देना चाहिए। इस क्रिया से ज्वर मे विशेष लाभ होता है। इस स्नान को अग्रेजी मे Sweating pack तथा चरक मे 'प्रस्तर-स्वेद' कहते हैं।

काष्ठौषधियो के योग से उत्पन्न हुई वाष्प मे स्नान नं० २

किसी घडे मे पसीना लाने वाली औषधियो का क्वाथ भर कर और उसे मुंह तक पृथ्वी मे गाडकर उसमें [illegible] का जलता हुआ लाल गोला घुमावे और घडे के ऊपर रोगी की कुर्सी (बेत से बुनी) अथवा चारपाई रखवा दे तथा रोगी को कम्बल ओढा दें। ऐसा करने से रोगी को पसीना अवश्य आ जाता है। चरक ने इस स्नान को कुम्भी स्वेद नाम दिया है।

आंशिक उष्ण वाष्प-स्नान (Partial or local steam bath)

कई रोग ऐसे होते है जिनमे रोग के स्थान विशेष पर ही भाप पहुंचाई जानी है, जैसे फोडा, प्लेग की गिल्टी, दर्द आदि में। अत सम्पूर्ण शरीर के उष्ण वाष्प स्नान की भाति ही भाप निकलते हुये वर्तन के ऊपर [illegible] अङ्ग को वर्तन समेत कम्बल आदि से ढक देने से यह स्नान पूरा हो जाता है। स्नान के बाद उस स्नान [illegible] ठंडे पानी की भीगी पट्टी थोडी देर तक रखना जरूरी है। इस स्नान से रोग के कारण विजातीय द्रव्य [illegible] होकर इधर-उधर फैल जाते हैं और फोड़े [illegible] आदि की हालतो मे यदि व्रण मे पीव पड गयी हो तो यह स्नान उसको पकाने के लिये पुल्टिस का [illegible] करेगा। मुह, आख आदि मे इसे १० मिनट तक तथा देह के निम्न भागो को १५ से २५ मिनट तक यह स्नान देना चाहिए।

मासिक स्राव तथा स्त्री सम्बन्धी अन्य रोगो मे, पेशाब बन्द होने पर और पेचिश आदि मे नाभि प्रदेश या पेडू का वाष्प-स्नान विशेष रूप से लाभदायक होता है। इसके लिये केवल एक बर्तन की आवश्यकता होती है और जरूरत पड़ने पर बरतन बदला जा सकता है। इस स्नान के बाद उस स्नान को ठंडे जल से भीगे तौलिया से पौछ कर ठंडक लाने के लिये मेहन [illegible]

पेडू का वाष्प स्नान

सबसे अच्छा होता है। स्नान तब तक जारी रखना चाहिये जब तक ठंड न मालूम होने लगे। सावधानी से चलाने पर यह वाष्प-स्नान आश्चर्यजनक लाभ दिखलाता है। देखिये चित्र।

सिर, कंठ या गले के रोगों मे गर्दन का वाष्प स्नान कराने के लिए बर्तन बेंच पर रख कर गर्दन को तब तक वाष्प देते है जबतक पसीना न निकलने लगे। पसीना निकलने पर दर्द विशेषकर दातका दर्द गायब हो जाता है। गर्दन का वाष्प स्नान देते समय यदि सिर और सीना गरम हो गये हो तो उन्हे ठंडे पानी से फौरन धो डालना चाहिए। और मेहन या उदर स्नान भी करना चाहिए, अगर दर्द फिर वापस आजाय तो बारी बारी से सारे शरीर और गर्दन का वाष्प स्नान लेना चाहिए। देखिए चित्र.-

गर्दन का वाष्प स्नान
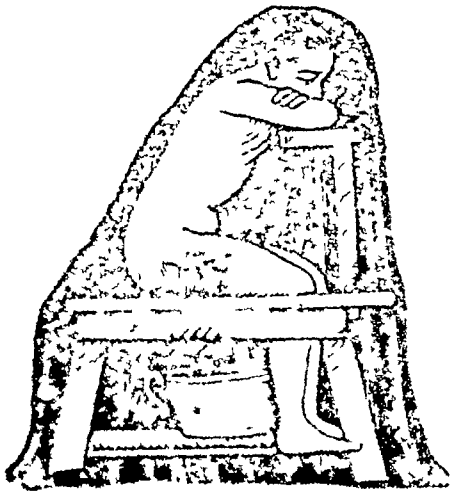
नाक कान तथा मुख गह्वर आदि की पीड़ाओं एवं शरीर के किसी अन्य स्थान के घावों मे भाप को रबड आदि की नली से गुजार कर रोग ग्रस्त स्थान को उष्ण वाष्प स्नान [illegible] जैसा कि नीचे के चित्र में दर्शाया गया है मुख, गले आदि अङ्गो का स्नान देते समय बीच बीच मे भाप देना रोक कर दो तीन बार ठंडे पानी से कुल्ली करनी चाहिए और यदि सारे शरीर मे पसीना आगया हो तो सारे शरीर को गीली तौलिया से पोंछना चाहिए।
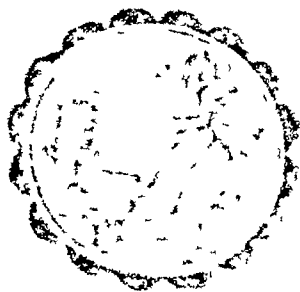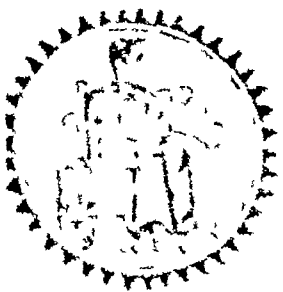
[illegible]

इसी प्रकार डिफ्थीरिया, कुक्कुर खासी, फालिज, जोड़ो का दर्द, लगड़ी का दर्द, लगभग सब प्रकार के ज्वर, सभी प्रकार की भीतरी बाहरी सूजन, जहरीली कीडो के काटने, पागल कुत्तो के काटने, मोच, एग्जेमाजख्म, बवासीर, भगदर, छाती कादर्द, तथा ग्लोकोमा आदि रोगो मे यह आंशिक उष्ण वाष्प स्नान बडा लाभ करता है।

सिर, अण्डकोष, हृदय और नेत्रो को भरसक वाष्प स्नान नही देना चाहिए, यदि किसी कारण से इन अङ्गों को वाष्प स्नान देना ही पडे तो बहुत हल्का वाष्प स्नान दे और बाद मे उन्हे ठंडे जल से अवश्य धोए और पोंछे। यथा —

> वृषणौ हृदय दृष्टी स्वेदयेन्मृदुनैव वा।
> मध्यमं वंक्षणौ शेषमंगावयव मिष्टत.॥
> संशुद्ध नक्तकैः पिण्ड्या गोधूमानामथापिवा।
> पद्मोत्पल पलाशैर्वा स्वेद्यः संवृत्य चक्षुषी॥
>
> —चरक स्वेदाध्याय

काष्ठौषधियों के योग से उत्पन्न हुई वाष्प से आंशिक स्नान

किसी बर्तन मे वात, कफ को दूर करने वाली काष्ठौषधियों, जैसे एरण्ड, मदारादि के पत्तो, जड़ो, एव फलो को जल, नमक, तेल आदि के साथ अग्नि पर पकावे। जब बर्तन मे भाप बनने लगे तो एक नली के जरिए उस भाप से रुग्ण स्थान को स्नान दे। ऐसा करने से उस स्थान पर पसीना आकर रोग का जोर कम हो जायगा। चरक मे इस स्नान को नाडी स्वेद कहते है।

२—गरम जल के प्रयोग

[illegible]

[illegible]

से भरे टब मे लेटने बैठने से जहा एक तरफ गर्मियो मे गरमी कम लगती है वहा दूसरी तरफ उसके प्रवाह से शरीर का पूर्णरूप से बिना कुछ प्रयत्न किये शिथिलीकरण भी हो जाता है, इसलिए सुषम जल मे लेटना अनिद्रा और स्नायु दौर्बल्य का अमोघ उपचार माना जाता है। सुषम जल के प्रयोग से शरीर की त्वचा मे भी असाधारण रूप से निखार आजाता है। यही वजह है कि बीमारी से उठे कमजोर रोगियो को सुसम जल का स्नान बडा लाभ करता है।

हल्का गरम (६४ से ६८ फारनहाइट) और गरम जल (६८ से १०४ फारनहाइट) का बारम्बार प्रयोग त्वचा के लिये बहुत बुरा है। इससे उसकी स्वाभाविक स्वास्थ्यवर्द्धक क्रिया मे बाधा उपस्थित हो जाती है। जिससे शरीर की जीवनी शक्ति क्षीण हो जाती है।

त्वचा पर गरम जल का प्रयोग करने से वह फैल जाती है साथ ही रक्त नीचे से ऊपर यानी त्वचा की सतह पर दौड आता है शरीर की भीतरी गदगी को साथ लेकर—पर शरीर को उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करने के लिये ऊपर आए रक्त को पुन. शरीर के भीतर लौट जाना चाहिए शरीर के भीतर से लायी हुई गदगी को ऊपर सतह पर ही छोडकर, जो त्वचा पर बारम्बार गरम जल के प्रयोग से सम्भव नही है। इसके लिए गरम जल के प्रयोग के बाद ठडे जल के प्रयोग का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। यही कारण है जो रोग निवारण मे गरम जल के स्नानो के बाद ठडे जल के स्नानो का विधान है। गरम जल के प्रयोग के फौरन बाद ठडे जल के प्रयोग से ही:—

१—विजायतीय द्रव्य की उपस्थिति के कारण शरीर की भीतरी जकडन दूर होती है।

२—रक्त-चाप मे कमी होकर हृदय को थोड़ा आराम मिलता है, और

३- रक्त के नीचे ऊपर आने जाने से रोग के कारण विजातीय द्रव्य छूटते हैं और शरीर से निकल जाते हैं।

अमेरिकन प्राकृतिक चिकित्सक बेनेडिक्ट लस्ट एम० डी० के कथनानुसार गरम जल के स्नान के प्रभाव मे चर्मछिद्रो मे स्थित लवणादि पदार्थो से युक्त पसीने तथा लवण आदि रहित स्वच्छ गरम जल के बीच द्रवाभिसारक दाब उत्पन्न हो जाता हे जिसकी वजह से पसीने मे घुले मिले पदार्थो का विनिमय स्नान के लिये प्रयुक्त गरम जल मे होने लगता है। जल जितना ही स्वच्छ अधिक मात्रा मे एवं अधिक गरम होगा, यह द्रवाभिसारक दाब उतना ही अधिक होगा और तदनुसार द्रव्यों में परस्पर विनिमय भी उतना ही तीव्र और वेगयुक्त होगा।

गरम पानी का अधिक समय तक का स्नान (२ से १ मिनट तक का) शरीर के तापमान और त्वचा की कार्यशीलता को बढाता है, स्नायु-सस्थान को थोडी शिथिलता प्रदान करता है, हृदय की गति को तेज करके उसे कमजोर बनाता है, मासपेशियो को फैलाता है, पोषण शक्ति को सतेज करता है, तथा श्वास-क्रिया को बढाता है।

अधिक गरम पानी का थोडे समय तक का स्नान (१ से ५ सेकेण्ड तक का) शरीर के तापमान और चमडे की कार्यशीलता को कम करता है, मांसपेशियों और रक्त कोषो को सिकोडता है, स्नायु सस्थान मे स्फूर्ति उत्पन्न करता है, हृदय की गति को सतेज करता है, पोषण शक्ति पर कोई विशेष प्रभाव नही डालता, तथा श्वास-क्रिया को उत्तेजित करता है।

बूढो और कमजोर रोगियो को अधिक गरम जल से स्नान नही देने चाहिए और न हृदय रोग के रोगियो को भोजन के दो घटे बाद और डेढ घटे पहले ही कोई गरम स्नान लेना चाहिये।

गरम जल पिलाकर इलाज

केवल गरम जल के पीने से कितने ही छोटे-मोटे रोग दूर हो जाते है, जैसे.—

१—यदि भोजन करने के एकाध घटा पहले गरम जल पी लिया जाय तो भूख लगने लगती है और पाचन शक्ति भी बढ जाती है। कारण, गरम जल के प्रभाव से आमाशय अन्न ग्रहण करने के लिए ताजा, स्वच्छ और सशक्त हो जाता है।

२—गरम-जल-पान शरीर की ग्रन्थियो के स्राव को उत्तेजित करता है। इसलिये जुकाम खासी मे यदि रात को सोने जाने से पहले और सुबह को जागने के बाद केवल गरम पानी एक गिलास दो-तीन दिन तक पी लिया जाय तो बलगम छूटकर जुकाम-खासी जरूर अच्छी हो जायगी।

३—गरम जल पीने से पेट का दर्द और मरोड़ ठीक होती है।

४—सिर दर्द मे गरम जल-पान के साथ-साथ यदि इसका प्रयोग एक साथ ही पैर और गले के पीछे किया जाय तो वह तत्काल दूर हो जाता है।

५—गरम जल पीने से पेट की वायु शात होती है।

६—गरम जल-पान मलोत्सर्ग मे सुधार करता है। जिससे शुद्ध रक्त बनता है जो रोगो के शमन का कारण होता है।

७—गरम जल पीकर रोगग्रस्त मूत्राशय को रोग रहित एव स्वस्थ बनाया जा सकता है।

८—गरम जल पीने से शरीर का वजन बढ़ता है।

९—गरम जल-पान से त्वचा की रङ्गत निखरती है, तथा वह लचीली बनती है।

१०—पेट के लगभग सभी अवयव जैसे यकृत, गुर्दे, आदि गरम जल पीने से शुद्ध और साफ हो जाते हैं और उनकी स्वाभाविक क्रियायें सतेज हो उठती हैं।

११—गरम जल-पान खून को तरल करके उसकी गति को बढ़ाता एवं सुधारता है, तथा रक्त वाहिनी नस-नाड़ियो को धो-धा कर स्वच्छ और साफ करता है।

१२—स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये जितने तरल पदार्थ की शरीर को जरूरत होती है, गरम जल-पान उसकी भी पूर्ति करता है।

गरम जल का एनिमा

आंतो मे पाखाना सूखजाने तथा पेट मे हवा भरजाने से जो परेशानियां पैदा हो जाती हैं उनके उपचार के

गरम और ठंडा एनीमा

जब गरम और ठडा एनिमा साथ-साथ लिए जाते हैं एक के बाद दूसरा तो उसे गरम और ठडा एनिमा कहते हैं। पहले सहने योग्य गुनगुने पानी का एनिमा लेना चाहिए, तत्पश्चात् ठडे पानी का। पानी की मात्रा दोनो मे मिलाकर एक पाइन्ट से अधिक नही होनी चाहिए। दोनो एनिमाओ द्वारा आंतो मे चढ़ाया हुआ पानी थोड़ी देर रोके रहने के बाद एक साथ ही निकालना चाहिए। गरम पानी के एनिमा से आंतो की दीवारो से चिपके बडे सुद्दे ढीले हो जाते हैं और उसके बाद के ठडे पानी के एनिमा से आंतो की अनावश्यक गर्मी शात होती है और उसको शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार का एनिमा नये रोगियो को तथा कमजोर और असाध्य रोगो से पीडित व्यक्तियो को बड़ा लाभ करता है।

गरम जल-स्नान (पूर्ण)

इसको 'उष्ण निमज्जन स्नान' भी कहते है। यह स्नान १०० डिग्री से ११० डिग्री फारनहाइट तक के गरम जल से ५ से २० मिनट तक कराया जाता है। स्नान के लिए पहले १०० डिग्री का पानी लेना चाहिए, फिर उसमे अधिकाधिक गरम पानी मिलाते हुए स्नान के जल का तापमान धीरे-धीरे १०१° तक कर लेना चाहिए। स्नान के टब मे प्रवेश करने के पहले सिर पर ठडे पानी से भीगी और निचोड़ी तौलिया अवश्य लपेट लेना चाहिए। कुण्ड या टब मे प्रवेश करने के बाद अङ्ग-प्रत्यङ्ग को खुरदुरे तौलिया या मञ्जनादि से रगड़ रगड़ कर धोना चाहिए। साबुन का इस्तेमाल स्नान करने मे भूले से भी नहीं करना

से भरे टब मे लेटने बैठने से जहा एक तरफ गर्मियो मे गरमी कम लगती है वहा दूसरी तरफ उसके प्रवाह से शरीर का पूर्णरूप से बिना कुछ प्रयत्न किये शिथिलीकरण भी हो जाता है, इसलिए सुसम जल मे लेटना अनिद्रा और स्नायु दौर्बल्य का अमोघ उपचार माना जाता है। सुषम जल के प्रयोग से शरीर की त्वचा मे भी असाधारण रूप से निखार आजाता है। यही वजह है कि बीमारी से उठे कमजोर रोगियो को सुसम जल का स्नान बड़ा लाभ करता है।

हल्का गरम (९४° से ९८ फारनहाइट) और गरम जल (९८° से १०४ फारनहाइट) का बारम्बार प्रयोग त्वचा के लिये बहुत बुरा है। इससे उसकी स्वाभाविक स्वास्थ्यवर्द्धक क्रिया मे बाधा उपस्थित हो जाती है। जिससे शरीर की जीवनी शक्ति क्षीण हो जाती है।

त्वचा पर गरम जल का प्रयोग करने से वह फैल जाती है साथ ही रक्त नीचे से ऊपर यानी त्वचा की सतह पर दौड़ आता है शरीर की भीतरी गदगी को साथ लेकर— पर शरीर को उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करने के लिये ऊपर आए रक्त को पुनः शरीर के भीतर लौट जाना चाहिए शरीर के भीतर से लायी हुई गदगी को ऊपर सतह पर ही छोड़कर, जो त्वचा पर बारम्बार गरम जल के प्रयोग से सम्भव नही है। इसके लिए गरम जल के प्रयोग के बाद ठडे जल के प्रयोग का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। यही कारण है जो रोग निवारण मे गरम जल के स्नानो के बाद ठडे जल के स्नानो का विधान है। गरम जल के प्रयोग के फौरन बाद ठडे जल के प्रयोग से ही:—

१—विजायतीय द्रव्य की उपस्थिति के कारण शरीर की भीतरी जकड़न दूर होती है।

२—रक्त-चाप मे कमी होकर हृदय को थोड़ा आराम मिलता है, और

३-रक्त के नीचे ऊपर आने जाने मे रोग के कारण विजातीय द्रव्य छूटते हैं और शरीर मे निकल जाते है।

अमेरिकन प्राकृतिक चिकित्सक बेनेडिक्ट लस्ट एम० डी० के कथनानुसार गरम जल के स्नान के प्रभाव मे चर्मछिद्रों मे स्थित लवणादि पदार्थो से युक्त पसीने तथा लवण आदि रहित स्वच्छ गरम जल के बीच द्रवाभिसारक दाव उत्पन्न हो जाता है जिसकी वजह से पसीने मे घुले मिले पदार्थो का विनिमय स्नान के लिये प्रयुक्त गरम जल मे होने लगता है। जल जितना ही स्वच्छ अधिक मात्रा मे एवं अधिक गरम होगा, यह द्रवाभिसारक दाव उतना ही अधिक होगा और तदनुसार द्रव्यो के परस्पर विनिमय भी उतना ही तीव्र और वेगयुक्त होगा।

गरम पानी का अधिक समय तक का स्नान (२ से ३ मिनट तक का) शरीर के तापमान और त्वचा की कार्यशीलता को बढाता है, स्नायु-संस्थान को थोड़ी शिथिलता प्रदान करता है, हृदय की गति को तेज करके उसे कमजोर बनाता है, मासपेशियो को फैलाता है, पोषण शक्ति को सतेज करता है, तथा श्वास-क्रिया को बढाता है।

अधिक गरम पानी का थोड़े समय तक का स्नान (१ से ५ सेकेण्ड तक का) शरीर के तापमान और चर्म की कार्यशीलता को कम करता है, मांसपेशियो और रक्त कोषो को सिकोड़ता है, स्नायु सस्थान मे स्फूर्ति उत्पन्न करता है, हृदय की गति को सतेज करता है, पोषण-शक्ति पर कोई विशेष प्रभाव नही डालता, तथा श्वास-क्रिया को उत्तेजित करता है।

बूढो और कमजोर रोगियो को अधिक गरम जल के स्नान नही देने चाहिए और न हृदय रोग के रोगियो को। भोजन के दो घटे बाद और डेढ घटे पहले ही कोई गरम स्नान लेना चाहिये।

गरम जल पिलाकर इलाज

केवल गरम जल के पीने से कितने ही छोटे-मोटे रोग दूर हो जाते है, जैसे:—

१—यदि भोजन करने के एकाध घटा पहले गरम जल पी लिया जाय तो भूख लगने लगती है और पाचन शक्ति भी बढ जाती है। कारण, गरम जल के प्रभाव से आमाशय अन्न ग्रहण करने के लिए ताजा, स्वच्छ और सशक्त हो जाता है।

२—गरम-जल-पान शरीर की ग्रन्थियो के स्राव को उत्तेजित करता है। इसलिये जुकाम खासी मे यदि रात को सोने जाने से पहले और सुबह को जागने के बाद केवल गरम पानी एक गिलास दो-तीन दिन तक पी लिया जाए तो बलगम छूटकर जुकाम-खासी जरूर अच्छी हो जायगी।

३–गरम जल पीने से पेट का दर्द और मरोड ठीक होती है।

४–सिर दर्द मे गरम जल-पान के साथ-साथ यदि उसका प्रयोग एक साथ ही पैर और गले के पीछे किया जाय तो वह तत्काल दूर हो जाता है।

५–गरम जल पीने से पेट की वायु शात होती है।

६–गरम जल-पान मलोत्सर्ग मे सुधार करता है। जिससे शुद्ध रक्त बनता है जो रोगो के शमन का कारण होता है।

७–गरम जल पीकर रोगग्रस्त मूत्राशय को रोग रहित एव स्वस्थ बनाया जा सकता है।

८–गरम जल पीने से शरीर का वजन बढता है।

९–गरम जल-पान से त्वचा की रङ्गत निखरती है, तथा वह लचीली बनती है।

१०–पेट के लगभग सभी अवयव जैसे यकृत, गुर्दे, आदि गरम जल पीने से शुद्ध और साफ हो जाते है और उनकी स्वाभाविक क्रियायें सतेज हो उठती हैं।

११–गरम जल-पान खून को तरल करके उसकी गति को बढाता एवं सुधारता है, तथा रक्त वाहिनी नस-नाडियो को धो-धा कर स्वच्छ और साफ करता है।

१२–स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये जितने तरल पदार्थ की शरीर को जरूरत होती है, गरम जल-पान उसकी भी पूर्ति करता है।

गरम जल का एनिमा

आतो मे पाखाना सूखजाने तथा पेट मे हवा भरजाने से जो परेशानियां पैदा हो जाती हैं उनके उपचार के प्रथम सहने योग्य गरम पानी का पहला एनिमा एक पाइट जल का देना चाहिये। तत्पश्चात् अगर जरूरत हो तो दूसरा ऐसा ही एनिमा दो पाइंट या इससे भी अधिक जल का देना चाहिए। इससे आतो और पेट की सारी रुकावटें दूर हो जाती हैं। गरम जल का एनिमा साधारणत. पेट के दर्द को दूर करने में काम आता है। ठंडे जल के एनिमा की भाति पेट और अतडियो को यह उतनी शक्ति और स्फूर्ति नही प्रदान करता।

एनिमा लेने का ढग आगे 'जल तत्व चिकित्सा' प्रकरण मे दिया गया है।

गरम और ठंडा एनीमा

जब गरम और ठडा एनिमा साथ-साथ लिए जाते हैं एक के बाद दूसरा तो उसे गरम और ठडा एनिमा कहते है। पहले सहने योग्य गुनगुने पानी का एनिमा लेना चाहिए, तत्पश्चात् ठडे पानी का। पानी की मात्रा दोनो मे मिलाकर एक पाइन्ट से अधिक नही होनी चाहिए। दोनो एनिमाओ द्वारा आतो मे चढ़ाया हुआ पानी थोडी देर रोके रहने के बाद एक साथ ही निकालना चाहिए। गरम पानी के एनिमा से आतो की दीवारो से चिपके बडे सुद्दे ढीले हो जाते है और उसके बाद के ठडे पानी के एनिमा से आतो की अनावश्यक गर्मी शात होती है और उसको शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार का एनिमा नये रोगियो को तथा कमजोर और असाध्य रोगो से पीडित व्यक्तियो को बड़ा लाभ करता है।

गरम जल-स्नान (पूर्ण)

इसको 'उष्ण निमज्जन स्नान' भी कहते है। यह स्नान १०० डिग्री से ११० डिग्री फारनहाइट तक के गरम जल से ५ से २० मिनट तक कराया जाता है। स्नान के लिए पहले १०० डिग्री का पानी लेना चाहिए, फिर उसमे अधिकाधिक गरम पानी मिलाते हुए स्नान के जल का तापमान धीरे-धीरे १०१ तक कर लेना चाहिए। स्नान के टब मे प्रवेश करने के पहले सिर पर ठडे पानी से भीगी और निचोड़ी तौलिया अवश्य लपेटलेना चाहिए। कुण्ड या टब मे प्रवेश करने के बाद अङ्ग-प्रत्यङ्ग को खुरदुरे तौलिया या स्पञ्जादि से रगड रगड कर धोना चाहिए। साबुन का इस्तेमाल स्नान करने मे भूले से भी नही करना चाहिए। स्नानोपरात बाहर निकल कर समूचे शरीर को तुरन्त ठडे जल से धो लेना चाहिए या ठडे जल से पूरा स्नान ही कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् बदन को पोछ कर स्वच्छ कपडे पहन लेने चाहिए। इस स्नान मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्नान करते समय गरम जल गले के ऊपर के अंगो को न छूने पावे अन्यथा मस्तिष्क मे रक्त के अधिक तेजी से दौड जाने के कारण हानि हो सकती है। सिर से गरम पानी से स्नान करने से दृष्टि मद हो जाती है, तथा बाल गिरने और सफेद होने लगते हैं। यह स्नान भोजन के एक घटा पहले और

तीन घटे बाद लेना चाहिए ।

स्वस्थावस्था मे गरमजल का स्नान न करना ही उत्तम है । शरीर की त्वचा पर गरम जल का बार-बार प्रयोग त्वचा के लिए हानिप्रद है । गरम जल के सम्पर्क मे आते रहने से त्वचा की शक्ति क्षीण हो जाती है और शरीर की जीवनी-शक्ति भी मद पड़ जाती है। इसलिए गरम जल का स्नान कभी-कभी और अल्प समय तक ही करना चाहिए, वरना स्नान से लाभ के बदले हानि ही अधिक होगी और कमजोरी बढ़ेगी । सप्ताह मे एक या दो बार यह स्नान लेना काफी है । हृदय रोग और मस्तिष्क के कितने ही रोगो मे यह स्नान निषिद्ध है ।

दिन भर की थकावट के बाद शाम को सोने से पहले यह स्नान अधिक लाभप्रद होता है । नीद अच्छी आती है । जिन लोगो की खाल सूखी सूखी सी रहती है, पसीना ठीक से नही निकलता है तथा खाल पर मैल अधिक जमा होता है, ऐसे लोगो के लिए गरम जल का स्नान विशेष रूप से लाभदायक है । शरीर की सफाई के लिए यदि यह स्नान किया जाय तो स्नान के जल मे कागजी नीबू का थोड़ा सा रस मिला लेने से सफाई अच्छी होती है । जुकाम के लिए यह स्नान अक्सीर है । इस स्नान से शरीर का समस्त मल निकलने लगता है । विष दूर हो जाते है । जलोदर तथा अन्य जलीय रोगो मे यह स्नान, एक विशेष अवस्था तक, अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है । सन्निपात, खासी, नष्टार्तव, दमा, वात व्याधियाँ, मोटापा, कामला, पेट और आतो का शूल, वृक्कशूल, पित्ताश्मरी, मूत्राशय, शोथ, पागलपन चित्तभ्रम, मसूरिका, शीतला, लालबुखार, मथरज्वर, मोनीझरा, उत्क्षेप तथा अधिकार्तव आदि रोगो मे यह स्नान बडा लाभकारी सिद्ध होता है ।

काष्ठौषधि मिश्रित गरम जल स्नान (पूर्ण)

इस स्नान को चरक मे 'अवगाहन स्वेद' कहते हैं । इसमें वायु को दूर करने वाली औषधियो का क्वाथ करके और उसमे आवश्यकतानुसार घी, तेल, या दूध आदि मिलाकर एक लम्बे टब मे रखा जाता है जिसमे रोगी को लिटा या बैठा कर उससे सारे शरीर का स्नान कराया जाता है । इस स्नान से भी शरीर के मल घुलकर निकल जाते हैं और रोमकूप खुल जाते हैं ।

गरम जल-स्नान (अर्द्ध)—

इसमे टब मे ६ से १२ इच तक गरम पानी भरकर रोगी उसमे बैठता है और एक आदमी रोगी का सर बचा कर उसके शरीर पर गरम पानी का तरेरा छोडता है तथा दूसरा शरीर का अंग-प्रत्यग मलता है । स्नान के बाद रोगी के शरीर को ठडे जल से भीगी और निचोडी तौलिया से पोछ कर और उसे गरम कपड़ा पहना कर बिस्तर पर लिटा दिया जाता है । फुन्सी या छोटी माता के निकलने मे यह स्नान बडा लाभप्रद होता है ।

गरम जल-स्नान (मध्यम) वा

Neutral Full Bath

इसे सुसम जल-स्नान भी कहते हैं । आदमी के कद के बराबर लम्बे टब मे गरम पानी भर कर उसमें रोगी को सिर पर ठडे पानी से भीगा गमछा बाध कर लेटना होता है । स्नान बद कमरे मे करना चाहिये । यह स्नान ९२ तापमान के जल से आरम्भ कर धीरे-धीरे ९७° या १००° तक ले जाना चाहिए, तथा स्नान को समाप्त करने से पहले जल के तापमान को धीरे-धीरे कम करते करते ९२° तक लाना चाहिए । इस स्नान मे शरीर को रगड़ने की आवश्यकता नही होती । यह स्नान साधारणतः आधा या एक घंटा तक किया जाता है, पर कभी-कभी तीन घटा या इससे भी अधिक समय तक किया जाता है। देर तक करना हो तो एक चादर या कम्बल टब के ऊपर इस प्रकार तान देना चाहिए कि रोगी उससे ढक जाय । स्नान की समाप्ति पर जब रोगी टब से बाहर आवे तो उसके शरीर पर के पानी को किसी सूखी चादर से पोंछ देना चाहिये । उस वक्त चादर से शरीर को रगडना चाहिए ।

इस स्नान मे प्रयुक्त जल का तापमान सर्व... चू कि शरीर के तापमान से थोडा कम होता है ... शरीर मे अपेक्षाकृत अधिक गर्मी पैदा होने की ... सतेज हो उठती है । इस स्नान से त्वचा की स्वाभावि... क्रिया को भी सहायता मिलती है जिससे शरीर की ... वहिष्करण-क्रिया सुचारु रूप से होने लगती है । ... स्नान स्नायुओ को पूर्ण विश्राम देने मे अद्वितीय है ... स्नायुओ को शक्ति-सचय का अवसर भी इस स्नान...

प्राप्त होता है जिससे स्नायु-केन्द्र सतेज एवं सक्रिय हो उठते हैं। इससे त्वचा सम्बन्धी स्नायुओं की उत्तेजना शान्त हो जाती है।

नाड़ी संस्थान या स्नायु सम्बन्धी रोग जैसे हिस्टीरिया, मृगी, अनिद्रा आदि, पक्षाघात, पृष्ठवंश की स्तब्धता, क्षय तथा प्रदाह, मस्तिष्क-प्रदाह, शीर्षावरणप्रदाह, आमवात हृदय,और गुदा के जलोदर रोग, दस्त, मन्दाग्नि, तथा बढ़े हुए रक्त-चाप आदि मे इस स्नान से बडा लाभ होता है।

गरम जल-स्नान (सतत)

मध्यम गरम जल स्नान जब महीनो और वर्षों लगातार चलता है तो उसे सतत स्नान कहते है। बीच मे पाखाना पेशाब के लिये ही रोगी को उठने दिया जाता है। शरीर का अधिकांश भाग यदि आग मे जल जाय तो सतत स्नान के सिवा दुनिया मे और कोई ऐसा उपाय नही है जिससे कि रोगी के बचने की आशा की जाय। वियना के सरकारी अस्पताल मे कई बुरी तरह से जले रोगी २-२ वर्ष के सतत-स्नान के बाद पूर्ण स्वस्थ हुए हैं, जिनके शरीर पर जलने का चिन्ह मात्र भी शेष नही रहा। इसी प्रकार बुरी तरह से लगी हुई सर्वाङ्ग चोटो पर भी यह स्नान रोगी की जान बचाने मे अमृत सा काम करता है। इनके अतिरिक्त हिस्टीरिया, उन्माद, पक्षाघात, गृध्रसी, त्वचा की अति सवेदनशीलता, जलोदर तथा अतिसार आदि रोगो पर भी इस स्नान का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है।

काक स्नान(Shallow Bath)

काक-स्नान को स्वल्प स्नान या छिछला स्नान भी कहते हैं। यद्यपि इसका नाम स्वल्प स्नान है तथापि इसमे जल कम खर्च नही होता। इस स्नान के लिए थोडी स्वच्छ साफ चिकनी मिट्टी, एक खुरदरा अगोछा, स्पञ्ज, अथवा सूखी तोरई की झोझ, दो बडे तौलिये या खद्दर के मोटे साफ अगोछे, एक बाल्टी, सहने योग्य गरम पानी (९५ से ८५ तक), एक बाल्टी ठडा पानी, तथा नहाने का टब या लोह कुण्ड आवश्यक होते है। पहले गरम पानी को नहाने के टब मे उडेलें और उसमे निवस्त्र बैठकर अङ्ग प्रत्यङ्ग को बारी बारी से भिगोदे। इस वक्त सर पर ठंडे पानी से भीगी तौलिया जरूर रहना
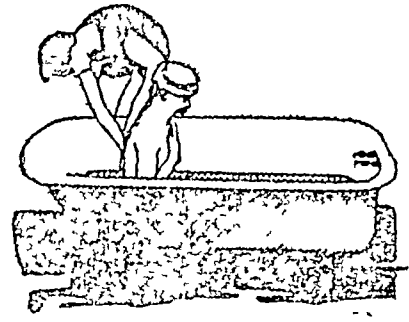
काक-स्नान

चाहिये। तत्पश्चात समूचे बदन मे मिट्टी मल ले और स्पञ्ज से रगड रगड़ कर शरीर का मैल छुडाने का या तो खुद प्रयत्न करे या किसी दूसरे से करावे। यह क्रिया उस वक्त तक करनी चाहिए जब तक समूचे शरीर का मल रगड रगड़ कर साफ़ न कर लिया जाय अथवा ३० सेकेण्ड तक। अब गरम पानी से शरीर पर की मिट्टी को छुडाले। इसके बाद टब से निकल कर टब के गदे जल को गिरादे और उसे एक बार स्वच्छ जल से धोकर उसमे ठडे जल से भरी बाल्टी उडेल दे और उस ठंडे जल मे बैठकर उसमें तौलिया भिगो भिगोकर समूचे शरीर को धोये। जब शरीर खूब साफ हो जाय तो सूखे तौलिया से बदन पोछ कर स्वच्छ वस्त्र धारण करलें। यही काक स्नान है।

गरम पानी से भीगे हुये शरीर पर ठंडा पानी डालने से डरने का कोई कारण नही है। ऐसा करने से हानि की तनिक भी सम्भावना नही है अपितु लाभ बहुत अधिक है। शरीर पर गरम जल डालने के तुरन्त बाद ठडा जल डालने से एक विशेष प्रकार की स्वास्थ्यवर्द्धक प्रतिक्रिया होती है जिसकी बजह से सुन्दरता से शरीर खिल तो उठता ही है साथ ही शरीर की छोटी मोटी बीमारिया भी दूर हो जाती है जैसे रक्ताल्पता, मधुमेह तथा बवासीर आदि। जुकाम का तो यह स्नान एक ही दवा है जो लोग शीतल जल से स्नान करने से डरते है,उन्हे पहले यह स्नान करना चाहिये। इसके अभ्यास से वे शीतल जल से स्नान करने के योग्य बन जायेगे।

काक-स्नान के बाद स्नान मे प्रयुक्त स्पञ्ज, तौलिया, अगोछा आदि को खूब अच्छी तरह से साफ कर लेने के बाद ही उन्हे पुन प्रयोग करना चाहिए अन्यथा वे शरीर को साफ करने के बदले गन्दा ही अधिक करेंगे और स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध होंगे।

गुनगुना जल-स्नान (पूर्ण)

इसको आयुर्वेद में मन्दोष्ण निमज्जन स्नान तथा अंग्रेजी में Tepid full bath कहते है । यह स्नान ५५° से ६०° फारनहाइट तापमान के जल मे ५ से १० मिनट तक दिया जाता है । परन्तु यदि साथ-साथ शरीर को रगडना भी जारी रखा जाय तो घण्टो दिया जा सकता है ।

तेज ज्वर, फुफ्फुस, सन्निपात, मन्थर ज्वर तथा टाइफाइड मे इस स्नान का उपयोग शरीर के तापमान की वृद्धि को रोकने के लिये होता है । उस हालत मे रोगी के शरीर का तापमान ज्योही १०१° से ऊपर पहुचे त्योही उसे यह स्नान देना चाहिए । स्नान के प्रारम्भ करते ही शरीर का तापमान घटने लगता है और जब तक यह स्नान बन्द नही किया जाता, तापमान भी नही बढने पाता ।

कभी-कभी रोगो की तीव्रता के समय यह स्नान कई दिनो तक लगातार देने की आवश्यकता होती है ।

इस स्नान के करते वक्त रोगी का सिर हमेशा ठंडे पानी से भीगे गमछे से बधा रहना चाहिए और उसके गरम होने पर उसे बार बार भिगोते रहना चाहिए ।

यदि किसी रोगी को १५-२० घटे यह स्नान देना हो तो स्नान के टब के ऊपर एक चादर इस प्रकार टाग देना चाहिए कि रोगी उससे ढक जाय ।

इस स्नान की प्रतिक्रिया शरीर की रगड़ पर ही अवलम्बित है । यह स्नान बडी सावधानी से करना चाहिए । असावधानी से रोगी को ठड लग सकती है ।

इस स्नान मे जब पानी शरीर के तापमान के बराबर लिया जाता है और स्नान गरम जल के स्नान की भाति ही किया जाता है तो स्नान के बाद ठडे जल से शरीर को धोने की आवश्यकता नही होती ।

इस स्नान को स्वस्थ व्यक्ति शरीर की थकावट दूर करने के लिये लाभ के साथ ले सकते है ।

क्रमवर्धमान स्नान (Graduated bath)

इस स्नान के लिये आदमी के लेटने लायक एक बडे टब की जरूरत होती है जिसमे रोगी के शरीर के तापमान से ३-४ डिग्री कम तापमान का जल भरा जाता है । उदाहरणार्थ रोगी के शरीर का तापमान १०४° है तो नहाने के पानी का तापमान १००° होना चाहिए । इससे रोगी को नहाने में किसी प्रकार की असुविधा न होगी। रोगी जब निवस्त्र होकर टब मे लेट जाय तब ठडा जल डाल डालकर टब के जल के तापमान को एक डिग्री प्रति दो या तीन मिनट के हिसाब से लगातार कम करते जाना चाहिए जब तक कि जल का तापमान ८६ डिग्री न हो जाय । इसके बाद जल का तापमान और कम नहीं करना चाहिए । टब मे रोगी के शरीर को बराबर मलते रहना चाहिये ताकि उसे सर्दी और ठिठुरन न मालूम हो । ज्वर के जोर को कम करने के लिये यह क्रम वर्धमान स्नान अद्वितीय है । अनभ्यस्त और कमजोर रोगियो को ठंडा स्नान देने के प्रथम स्पञ्ज-स्नान की भाति यह स्नान देना ठीक रहता है ।

गरम डूस या गरमजल-धार

शरीर के किसी बाहरी अंश पर धक्के और दबाव के साथ पानी की पतली या मोटी धार छोड़कर उसे स्नान देना डूस देना कहलाता है । यह काम रबर के पाइप द्वारा, फुलवारी सीचने के झरना बरतन द्वारा या टीन के बने किसी टोंटीदार बरतन द्वारा जिसमे रबर की नली लगी हो भलीभाति हो सकता है । डूस के जल का तापमान, दबाव, एवं मोटी-पतली धार को रोग एवं रोगी की दशा देखकर निर्धारित करना पडता है । डूस के जल का तापमान जितना ही कम हो, डूस के समय को भी उतना ही कम रखना चाहिये । रोग के प्रकार के मुताबिक डूस की धार बाल से भी पतली हो सकती है और एक से डेढ इञ्च मोटी भी ।

गरम डूस देने के लिये डूस के जल का तापमान साधारणत. १०४ से १०८° तक होता है । मगर कभी कभी १२०° से १३०° फारनहाइट के तापमान का जल भी इस काम के लिये व्यवहृत होता है । डूस देना १०१ से तापमान के जल से प्रारम्भ करके धीरे-धीरे बढाना चाहिए और १५ सेकेण्ड से ५ मिनट तक डूस देना चाहिए । गरम डूस खासकर दर्द को दूर करने के लिये प्रयोग किया जाता है इसलिए इसमे पानी के दबाव की उतनी अधिक आवश्यकता नही पड़ती । जब मोटी धार के शरीर के किसी अग पर डूस दिया जाय तो डूस

ोटी को घुमाते या हिलाते रहना चाहिये अन्यथा चमडे के छिल और जल जाने का डर रहता है। वात सस्थान और रक्त सञ्चरण पर गरम डूस का प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है।

न्युट्रल या सुसम डूस (सुषमजल-धार)

सुषम डूस मे ९२° से ९७° तक के तापमान का जल प्रयोग मे लाया जाता है और समय २० से ३० मिनट तक रखा जाता है। यह डूस विशेषकर गुर्दों की बीमारियो तथा वीर्य दोष जनित दुर्बलता में बडा लाभ करता है। योनि सम्बन्धी रोगों तथा वात व्याधियों मे भी इस डूस से लाभ होता है।

गरम जल का तरेरा (Affusion) पूर्ण

इसको आयुर्विज्ञान मे अभिषेक स्नान भी कहते हैं। इस स्नान के लिए एक लम्बा टब, कई बाल्टी पानी, दो ... लिए, तथा एक साफ चद्दर की जरूरत होती है। स्नान के लिए काम आने वाले जल का तापमान १०५ से ११०° फारनहाइट तक होना चाहिए। स्नान के लिये रोगी को लम्बे टब मे बैठने के पूर्व अपने सिर, चेहरे और गर्दन को ठडे पानी से धोकर ठडे जल मे भीगे गमछे को चौड कर उसे सिर पर बाध लेना चाहिये। टब मे पैरो को पसार कर तथा भुजाओ को छाती पर पाशबद्ध करके बैठना चाहिये। अब किसी दूसरे आदमी को चाहिए कि वह पहली बाल्टी को उठाकर ४ से ६ फीट की ऊँचाई से रोगी के पाशबद्ध भुजाओ पर और उसके बाद पीठ पर झोके से छोडे। इसी प्रकार बाकी बाल्टियो के पानी को भी बारी-बारी से छोडे। उसके बाद रोगी के शरीर को खूब रगड कर साफ चद्दर मे लपेट देना चाहिये और कुछ देर उसे आराम करने देना चाहिये।

आयुर्वेदानुसार इस स्नान के लिये टब में थोडा सा गरम पानी भरकर और उसमे पैरो को पसार कर बैठना चाहिये। तत्पश्चात् पहले गरम पानी से भरी बाल्टी को पीठ पर झोके से उडेलना चाहिये और उसके बाद तत्काल ठडे पानी से भरी बाल्टिया उड़ेलना शुरू कर देना चाहिये। ठडे पानी से भरी बाल्टियां एक पीठ पर और एक छाती पर इस क्रम से उडेली जानी चाहिए।

रोगी को, जिसका सारा शरीर ठडा पड़ गया हो, पुन: जीवन प्रदान करने की सामर्थ्य रखता है। निमोनिया, मोतीझरा, लाल बुखार, टाइफस आदि सक्रामक व्याधियो की उन्मादयुक्त अवस्था मे इस स्नान से फिर चैतन्यता आ जाती है। सर्पदश से तुरन्त के मरे आदमी पर यदि स्नान का प्रयोग २४ घटे तक किया जाय तो वह जीवित हो सकता है।

हृदयरोग, दमा, यक्ष्मा, वृक्कशोथ, आत मे छेद तथा उदरावरण कलाप्रदाह आदि रोगो मे यह स्नान वर्जित है।

गरम जल का तरेरा (Affusion) आंशिक

गरम जल का तरेरा जब केवल सिर, मेरुदण्ड, छाती अथवा शरीर के किसी अन्य अग विशेष पर ही दिया जाता है तो उसे आशिक गरम जल का तरेरा कहते है। पानी से भरी बाल्टियो की सख्या, जल का तापमान तथा तरेरा देने का समय आदि रोगी की हालत देख कर निर्धारित कर लेना चाहिए। इस प्रयोग को किसी कमजोर रोगी पर करते समय उसके पैरो को गरम जल से भरे दो छोटे छोटे बर्तनो मे रख छोड़ना चाहिए। आशिक गरम जल का तरेरा गरम जल के डूस की जगह प्रयोग किया जा सकता है। इसे कई अन्य प्रकार के स्नानो के साथ भी जोड़ा जा सकता है। इस तरेरा को सेक, ठडी चादर, गरम स्नान अथवा गरम लपेट के बाद देने से शरीर की जीवनी-शक्ति को ताकत देते है।
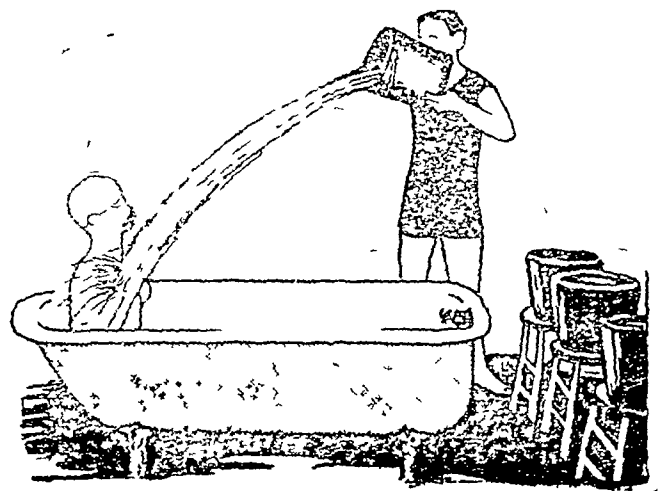
गरम जल का तरेरा

काष्ठौषधि मिश्रित गरम जल का तरेरा

चरक वात नाशक काष्ठौषधियों के साथ उबाले हुए गरम जल की धार डालकर स्वेदन करने की आज्ञा

देते हैं जिसको वह परिषेक कहते है । जहा-जहा पीड़ा हो वही-वही परिषेक करना चाहिए ।

गरम बैठक स्नान

सहने योग्य गरम जल (१०४°) एक नहाने के टब मे इतना भरना चाहिए कि उसमे बैठने से पानी नाभी के कुछ ऊपर और आधे जाघो तक आ जावे । टब मे नगे बैठने पर दोनो पैर बाहर होगे जिनके पजे टखने तक एक सामने रखे अन्य बर्तनो मे जिसमे भी गरम जल होगा, होगे । शरीर के अन्य सूखे भाग का कम्बल ओढकर ढक लेना चाहिए और सर पर ठडे पानी से भीगी तौलिया लपेट लेनी चाहिए । पैर रखने वाले वर्तन का पानी, टब वाले पानी से थोड़ा अधिक गरम होना चाहिए । टब मे इस तरह ५ से १५ मिनट तक केवल बैठे रहना चाहिए । तत्पश्चात् उठकर ठडे पानी से पीठ और शरीर के निचले भाग को धो डालना चाहिये । उसके बाद सारे शरीर को ठडे जल से भीगी और निचोड़ी तौलिया से रगड कर सूखी तौलिया से पोंछकर खूब सुखा देना चाहिए और कपडे पहन लेना चाहिए । शरीर की अधिक कमजोरी की हालत मे गरम बैठक स्नान की समाप्ति पर पीठ और शरीर के निचले भाग को धोने के बजाय, टब में बैठे ही बैठे रोगी का किसी दूसरे आदमी द्वारा केवल पीठ पर पानी के छीटे मरवाना चाहिए ।
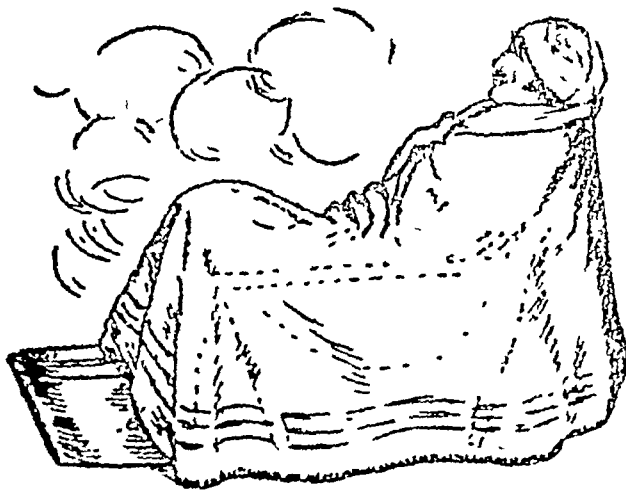
गरम बैठक स्नान

गरम बैठक स्नान मे अनेको रोग मन्त्रवत् दूर हो जाते हैं । जैसे रक्तपित्त, पेशाब का रुकना, कमर की नस का दर्द, साइटिका, कटिशूल, यकृत के दोष, स्त्रियों के मासिक धर्म की खराबिया, गठिया, पैरों का सुन्न पड जाना, मोटी जाघों का दर्द कमर के नीचे के जोड़ों में दर्द होना, मूत्राशय की सूजन से पेड़ू में पीडा होना, रज:स्राव मे प्रथम होने वाली पीडा तथा कूल्हे की पीडा आदि । क्योंकि इस स्नान से शरीर के भीतरी भाग मे जमा हुआ रक्त बाहर की ओर निकलता है और खाल की तह तक आ जाता है जहा से वह अपने साथ लाया हुआ मल, रोम कूपों द्वारा बाहर निकाल देता है जिसके फलस्वरूप पीडाएं अपने आप शात हो जाती हैं।

गरम ठंडा बैठक स्नान

इस स्नान के लिये दो मामूली नहाने के टबों की जरूरत होती है जिनमें ४-५ इञ्च गहरा पानी आ सके । एक मे गरम पानी रखना चाहिए और दूसरे में ठंडा । स्नान बन्द कमरे में नंगा होकर करना चाहिए। पहले गरम पानी वाले टब में इस प्रकार बैठना चाहिए कि चूतड और जननेन्द्रिय पानी मे रहे और घुटने पानी के बाहर ऊपर उठे रहें । गरम टब के पानी मे २-३ मिनट तक बैठने के बाद उठकर फौरन बगल मे रखे छंडे पानी वाले टब में एक मिनट तक बैठना चाहिए। इस तरह बारी-बारी से गरम और ठडे जल में दो तीन बार बैठना चाहिये ।

यह स्नान रात को सोने से पहले परन्तु भोजन करने के कम से कम एक घटा बाद लेना चाहिए । प्रदर स्त्री रोगो, दर्द, पेट तथा गुर्दे और मसानो की तकलीफों में इस स्नान से बड़ा लाभ होता है ।

गर्म उदर नहान

१०२° फारनहाइट के तापमान वाले जल में इस स्नान को आरम्भ करना चाहिए । तत्पश्चात् धीरे धीरे गरम पानी डाल-डालकर स्नान के टब के जल के ... का तापमान १०८° कर देना चाहिए । स्नान के पूर्व रोगी को अपना सिर ठडे जल से धोकर उस पर ठडे जल से भीगी और निचोडी तोलिया लपेट देना चाहिये । यह स्नान कुर्सीनुमा टब या बडी नांद में लिया जाना चाहिए। टब मे इतना पानी भरना चाहिए कि उसमे बैठने पर नाभि ... और जाघो तक ही पहुँचे । टब के बाहर दोनों पावों को भी गरम पानी (१००° से १०२ तक) से भरे एक ...

बर्तन में रखना चाहिए। टब मे पीठ की तरफ सहारा लेकर बैठते हुए रोगी को चाहिए कि वह बिना रुके तेजी से अपने दाहिने हाथ में एक मोटी और छोटी तौलिया लेकर नाभी के नीचे पेट को मलने के साथ-साथ कमर के उस भाग को भी जो जल के अन्दर होता है दस-पन्द्रह मिनट तक मले। गरम जल के इस स्नान को समाप्त करके तुरन्त ठंडे जल से भरे टब मे पाच से दस सेकेण्ड तक बैठना चाहिए या रोगी के कमर के निचले भाग को ठडे जल से धो डालना चाहिए। यह स्नान सदैव गरम कमरे मे लेना चाहिए।

स्त्रियो के गुप्तेन्द्रियो के रोगो, बवासीर एव सुजाक की पीड़ाओ, मसाने और गुर्दो की पथरी के दर्द, बन्द पेशाब, अण्डकोष-दाह तथा लगडी (साइटिका) आदि के दर्द मे इस स्नान से बडा लाभ होता है।

गर्भवती स्त्रियो को यह स्नान बहुत सोच समझकर देना चाहिए।

गरम तौलिया स्नान (Sponge bath)

रोगी की अच्छी बुरी दशा को ध्यान मे रखकर विविध तापमान के जल मे तौलिया या स्पन्ज भिगो भिगोकर यह स्नान दिया जाता है। जो रोगी खडे रहकर यह स्नान ले सके उन्हे नगे होकर एक गरम जल से भरे बर्तन में पैर रखकर खड़ा होना चाहिए, और स्नान किसी बद जगह मे लेना चाहिये। स्नान आरम्भ करने के प्रथम सर पर ठडे जल से भीगी और निचोडी तौलिया लपेट लेना चाहिए अब एक दूसरी तौलिया को गरम पानी मे भिगो कर और थोडा निचोड़कर उससे सर्व प्रथम छाती और पेट पौछना चाहिए। तत्पश्चात बाहो और पैरो को। भीगी तौलिया या स्पन्ज को स्नान देते वक्त शरीर पर जोर जोर से रगड़ने की जरूरत नही है जब एक बार भिगोई तौलिया या स्पन्ज सूख जाय तो उसे फिर भिगो लेना चाहिए। यह स्नान जहा तक मुमकिन हो सके जल्दी ही खतम कर देना चाहिए और उसके बाद गरम जल से भरे बर्तन से-बाहर आकर पैरो पर उडेल लेना चाहिए। यह हो लेने पर रोगी के शरीर को सूखी चादर मे लपेट कर उसपर सूखी मालिश करके थोडा गरम कर देना चाहिए।

उन रोगियो को जिनके शरीर में रक्त ठीक से नही दौड़-ता है अथवा जो अधिक दुर्बल है, १०४° से ११०° फारनहाइट तक के तापमान वाले जल मे खडे होकर स्पन्ज बाथ लेना चाहिए। साथ ही पानी मे खडे होकर उन्हे अपने सर और गर्दन को इस प्रकार आगे को झुकाए रखना चाहिये कि उन को बारम्बार ठडे पानी से अच्छी तरह से धोया जा सके।

जो रोगी तौलिया स्नान खडे होकर नही ले सकते है उन्हे बिस्तर पर लिटाये रखकर ही यह स्नान देना चाहिए। ऐसे रोगियो के दोनो पैर और समूचे शरीर की खाल को स्नान के पहले गरम कर लेना चाहिए। तब गर्दन को ठंडे पानी से अच्छी तरह धोकर रोगी के नगे शरीर को एक चादर से ढंक देना चाहिए और चादर के भीतर रोगी के प्रत्येक अङ्ग को बारी बारी से तौलिया स्नान देना चाहिए। नगे शरीर पर सम्भवत हवा नही लगने देना चाहिए। पहले एक बाहु को स्नान देना चाहिये, फिर दूसरी को। तत्पश्चात छाती, पेट और पीठ को और सबके बाद पावो को स्नान देकर समाप्त कर देना चाहिए।

टाईफाइड ज्वर मे गरम तौलिया स्नान से बडा लाभ होता है नाडी दौर्बल्य तथा राजयक्ष्मा के मरीज को रातमें पसीना आने की हालत मे भी इस स्नान से लाभ होते देखा गया है।

ठंडा गरम तौलिया स्नान

बारी बारी से ठडा और गरम तौलिया स्नान किसी अङ्ग विशेष को देने को उस अङ्ग का ठडा गरम तौलिया स्नान कहते है पृष्ठवश (पीठ) पर इस स्नान का प्रयोग श्वास सस्थान एव हृदय की रुकावटो को आश्चर्य जनक रूप से खोलता है तथा शरीर का रक्त विषाक्त होने पर जब हृदय अधिक दुर्बल हो जाता है तो उस दुर्बलता को मिटाने की यह स्नान पूरी-पूरी ताकत रखता है।

क्षारयुक्त गरम जल से तौलिया स्नान

इस स्नान के लिए १२०° से १३०° फारनहाइट तक का पानी लेना चाहिये और उसमे डेढ सेर पानी पीछे चौथाई छटाक के हिसाब से सोडाबाई कार्ब घोल देना चाहिए तत्पश्चात् उसी घोल से स्पञ्ज बाथ देना चाहिए यही क्षार युक्त गरम तौलिया स्नान है विषैले कीडो के डक मारने के स्थान पर इस स्नान को देने से बड़ा उपकार होता है।

तौलिया स्नान

शक्ति वर्द्धक गरम स्नान

इसमे शरीर के ऊपरी और निचले भाग को बारी बारी स्नान देना होता है। सर्व प्रथम पैरो और पैर के पजो को पहले गरम पानी मे ५ से १० मिनट तक फिर अधिक गरम पानी मे स्नान देना चाहिए और तत्पश्चात् उन्हे सुखा देना चाहिए। उसके बाद एक नहाने के टब मे गरम पानी भरकर उसमे १० मिनट तक ऐसे लेटना चाहिए कि सूखे पैर टव के बाहर रहे और धड़ टव के पानी मे। लेटने के बाद टव के गरम पानी को उसमे ठडा पानी मिलाकर धीरे धीरे ठंडा कर लेना चाहिए। स्नान लेते वक्त निर्वल रोगियो को जिनके पैर सदैव ठडे रहते है चाहिए कि वे टव के बाहर लटके अपने सूखे पैरों पर कम्वल डाललें। स्नान की समाप्ति पर हल्की कसरत द्वारा अथवा कम्वल आदि ओढ कर शरीर को पुन गरम कर लेना बहुत जरूरी है। त्वचा सम्बन्धी रोगो मे यह स्नान रोज लिया जासकता है।

जापानी गरम स्नान

एक नहाने का टव या कोई दूसरा वर्तन ऐसा लेना चाहिए जो इतना बड़ा हो कि स्नान करने वाला उसमे अच्छी तरह बैठ सके। उसके कधे भी उसमे समाजायें पर [illegible] रहे। वर्तन मे सुहाना सुहाता जल भरकर उसमे रोगी को वैठा देना चाहिए और सरपर ठडे जल [illegible] भीगी और निचोड़ी एक तौलिया रख देना चाहिए। [illegible] का समय १५ से ४५ मिनट तक यथेष्ट है। यह [illegible] आरम्भ मे प्रति सप्ताह तथा दो मास बाद प्रति तीसरे [illegible] देना चाहिए। स्नानार्थी को जल मे बिना हिले डुले केवल [illegible] चाप वैठे रहना चाहिए कारण हिलने डुलने से बेचैनी [illegible] होने की सम्भावना रहती है। स्नान के जल के ठडा होने पर उसमे से थोड़ा जल निकालकर उसकी जगह [illegible] जल मिला देना चाहिए। स्नान के समय घवराहट या [illegible] अनुभव होने पर शरीर के ऊपरी भाग को जल [illegible] से ऊचा उठाना और सिर पर दो चार लोटा ठंडा [illegible] डाल लेना चाहिए। इससे वेचैनी शान्त हो जायगी। यदि [illegible] उपचार से न शान्त हो तो १०, १५ मिनट गरम [illegible] वैठने के बाद उठ जाना चाहिए और १०-१५ मिनट इधर उधर टहलने के वाद पुन जल मे स्नान के [illegible] प्रवेश करना चाहिए। ऐसा करने से शरीर की नाड़ियाँ [illegible] स्वाभाविक दशा में आजाती है और इस तरह बेचैनी [illegible] हो जाती है। स्नान के अन्त मे समूचे शरीर को एक [illegible] स्नान देकर उसपर एक कम्वल लपेट देना चाहिए। [illegible] रोगी को लिटा देना चाहिये ताकि उसे पसीना आ [illegible] शरीर हल्का और रोग मुक्त हो जाय।

हृदय रोग से पीडित रोगियो को गरम जल पे [illegible] रखना चाहिये और हृदय को गरम जल के स्पर्श से बचा [illegible] चाहिए। बच्चो वृद्धो और निर्बलो के लिए अधिक [illegible] जल न लेना चाहिए। गुर्दो, पेट तथा बवासीर आदि बी[illegible] रियो मे जल नाभी तक ही रखना चाहिए। गठिया तथा [illegible] के रोगियो के रोगी अङ्गो को कम से कम ४ घटा गरम जल मे रखना चाहिए।

यह स्नान थोडी दुर्वलता लाता है सही पर उससे [illegible] का जीर्ण रोग भी दूर हो जाता है। पीलिया, [illegible] ज्वर, पेट के रोग, दमा, बवासीर, चर्म रोग तथा [illegible] आदि रोगो मे इस स्नानसे बड़ा लाभ होता है।

बच्चों का गरम और ठडा स्नान नं० १

यह और नीचे का स्नान ज्वर मे पीडित बच्[illegible] उनकी जीवनी शक्ति बढाने के लिए दिया जाता है। [illegible] किसी चौकी या चारपाई पर बैठाकर पहले उनके [illegible]

[ब]ाहो को गुनगुने पानी का स्नान दिया जाता है। फिर धीरे-धीरे बढाकर उनको अधिकाधिक पर बर्दाश्त के भीतर गरम पानी का स्नान दिया जाता है। इसी बीच धड पर एक साफ कपड़ा लपेट कर उस पर गरम और ठडे पानी का तरेरा बारी बारी से बच्चे की उम्र के लेहाज से ३ से १० मिनट तक देना चाहिए। तत्पश्चात् पैरो और बाहो को स्नान देने वाले पानी को, उसमे थोडा-थोडा ठडा पानी मिला-मिला कर धीरे-धीरे ठडा कर देना चाहिए। स्नान की समाप्ति पर बच्चे के शरीर को पोछ कर और उसे सूखे कपडे मे लपेट कर बिस्तरपर लेटा देना चाहिए ताकि शरीर थोडा गरम हो जाय। पैरो तथा उसके पञ्जो को खास तौर से कपड़े मे लपेट रखना चाहिए। थोडी देर बाद बच्चे को सूखे कपडे मे से निकाल कर ठडे जल से भीगी और निचोडी चादर की लपेट देनी चाहिए। उसके बाद गरम कपडा लपेट कर फिर बिस्तर पर लेटा देना चाहिए।

नये रोगो मे यह तथा नीचे का स्नान दिन मे ४ से ८ बार तक दिया जा सकता है जब तक कि खतरा टल न जाय।

बच्चों का गरम और ठंडा स्नान नं० २

यह स्नान भी ऊपर के स्नान की भाति ही बच्चो के नये रोगो मे दिया जाता है जिसमे मौत का खतरा अधिक रहता है। इसमे एक बडे छिछले बर्तन या नहाने के टब मे गुनगुना पानी भरकर रोगी बच्चे को उसमे बैठा दिया जाता है। फिर उस बर्तन के पानी को उसमे थोडा-थोड़ा अधिक गरम पानी मिला-मिलाकर धीरे-धीरे और अधिक गरम कर दिया जाता है। मगर इतना गरम नही कि बच्चो के बर्दास्त के बाहर होजाय। बर्तन का पानी बच्चे की नाभी या उससे थोड़ा ऊपर तक आना चाहिये। ५ से १५ मिनट बाद बच्चे के सर और कधो पर ठडे जल का तरेरा कई बार देना चाहिए। तत्पश्चात् बच्चे को टब में से निकाल कर और उसके शरीर को पोछकर उसे गरम कपडो मे लपेट कर बिस्तर पर सुला देना चाहिए ताकि उसका बदन थोडा गरम हो जाय।

पावों का गरम स्नान (Hot Foot Bath)

इस स्नान को आरम्भ करने से पहले रोगी के सिर को ठडे पानी से धोकर उस पर गीली तौलिया लपेट देना चाहिए। उसके बाद उसको नगे बदन एक बन्द कमरे मे एक कुर्सी पर इस तरह बैठाना चाहिए कि उसके दोनो पाव सामने रखी एक चौडे पेंदे की छोटी बाल्टी मे हो जिसमे ८-९ इच गहरा गरम पानी भरा हो। बाल्टी मे दोनो पावो के रखने पर पानी टखुनो के थोड़ा ऊपर आजायगा। बाल्टी के जल का तापमान पहले १०२ फारनहाइट रखना चाहिए, परन्तु उसमे से क्रमश. पानी निकाल निकाल कर और उसकी जगह अधिकाधिक गरम पानी डाल-डालकर उसके तापमान को ११०° से ११५° तक ले जाना चाहिए। स्नान के लिए जितना गरम पानी धीरे-धीरे लिया जायगा, लाभ भी उतना ही अधिक होगा। स्नान ५ से ३० मिनट तक लिया जा सकता है। गर्मियो मे १५ से २५ मिनट मे खूब पसीना आजाता है। जाडो मे उतना पसीना लाने के लिये कुछ अधिक समय लग सकता है। कुछ डाक्टरो के मतानुसार पावो को गरम पानी मे केवल रखना ही काफी नही होता, अपितु उनको किसी दूसरे आदमी के हाथो या स्वय ही बारी-बारी एक को दूसरे पाव से, पानी के भीतर भीतर ही मलना होता है।

स्नान की समाप्ति पर पावो को गरम जल से निकाल कर आधा मिनट से एक मिनट ठडे जल मे रखना चाहिये, उन्हे भीगी तौलिया से अच्छी तरह पोछ देना चाहिए। तत्पश्चात् १०-१५ मिनट तक उन्हे थोडा जोर लगाकर मलना चाहिए। फिर जी चाहे तो चमडे को मुलायम बनाने के लिये उन पर कोई-सा तेल मल देना चाहिये।

जब इस स्नान से पसीना लाना अभीष्ट हो तो रोगी के शरीर को बाल्टी सहित कम्बलो से पूरी तौर से ढक देना चाहिए, सर की ठडी तौलिया को बीच-बीच मे ठडे पानी से तर करते रहना चाहिये या भीगी तौलिये को ही बदलते रहना चाहिए, तथा स्नान के शुरू मे थोड़ा गरम पानी पीना चाहिए और बीच-बीच मे भी थोड़ा थोडा गरम पानी पीते रहना चाहिए। शरीर पर पसीना आने पर स्नान के बाद उसे भीगे कपडे से पोछ देना चाहिए या साधारण ठडा स्नान कर लेना चाहिए।

रोगी को आधा या पूरा लिटाकर अथवा बैठाकर भी यह स्नान दिया जा सकता है। इस स्नान के पहले आतो को साफ कर लेना अच्छा रहता है।

भाप नहान के लगभग सभी लाभ इस स्नान से प्राप्त
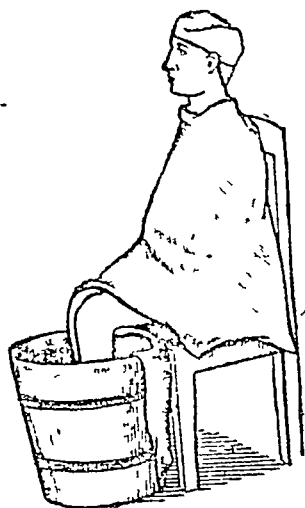
पांवो का गरम स्नान

हो जाते है। सोने से पहले यह स्नान लेने से नीद अच्छी आकर अनिद्रा रोग दूर हो जाता है। इस स्नान के करने से आते और मूत्राशय सबल होते है। ज्वर के आरम्भ मे इस स्नान के करने से ज्वर बिगडने का खतरा बिलकुल नहीं रहता। इस स्नान से शरीर मे रक्त सञ्चालन की क्रिया सन्तुलित रूप से होने लगती है। जननेन्द्रिय के अवयवो की सूजन, पेड्ू की सूजन, फेफडो, मस्तिष्क और गर्भाशय का रक्ताधिक्य एव कमजोरी और थकावट, वढा हुआ रक्तचाप, गठिया का दर्द, मासिक धर्म की खराबिया, जुकाम, नाक से खून गिरना, पैरो का ठडा रहना, कठिन सर दर्द, शीत लगना, पैर की पीडा तथा वेवाई आदि को यह स्नान पूर्णरूप से ठीक करता है।

जांघों का गरम स्नान (Leg bath)

पावो के गरम स्नान की तरह ही जांघो को भी गरम स्नान दिया जाता है। अन्तर केवल इतना होता है कि जिस जल मे जाघो को स्नान दिया जाता है उसका तापमान आरम्भ से अन्त तक एकसा यानी १००° फारनहाइट रहता है। पानी का तापमान सम रखने के लिये उसी तापमान का जल बाहर से बराबर मिलाते रहना चाहिये। जघा स्नान करते वक्त भी सर पर ठडे पानी से भीगी तौलिया रखना न भूलना चाहिए। गरम पानी मे पैरो को जाघो तक १०-१५ मिनट तक रखना चाहिए। इसके बाद निकालकर पैरो पर जाघो तक ठडा पानी डालना चाहिए। तत्पश्चात् तौलिया से खूब पोंछ कर उन पर कोई सा तेल मल देना चाहिए।

सर का भारीपन, गले और सीने का दर्द तथा गठिया रोग मे इस स्नान से वडा लाभ होता है।

सर का गरम स्नान (Head Bath)

इस स्नान मे वडी सावधानी वरतनी चाहिए और स्नान की समाप्ति पर सर को ठडे पानी से धोकर पोंछना न भूलना चाहिए। इस स्नान को रोज नही करना चाहिए। अपितु आवश्यकतानुसार प्रति सातवे या दसवे दिन करना चाहिए। इस स्नान से वाल वढते हैं, सर की खाल सशक्त एव स्वच्छ हो जाती है, सर हल्का हो जाता है, वाल मुलायम और चमकीले हो जाते हैं तथा उनका झडना रुक जाता है।

एक वर्तन मे सुहाता-सुहाता गरम जल लेकर पहले काली मिट्टी की घोल से सर को खूब घिस-घिस कर मलना चाहिए। फिर गरम पानी से सर पर लगी मिट्टी को धो डालना चाहिए। तत्पश्चात् आवले को पीस कर उसकी लुगदी या खट्टे दही को मिट्टी की घोल की तरह ही सर पर खूब मलना चाहिए और उसके बाद उसे भी गरम पानी से धो डालना चाहिए। फिर ठडे पानी से सर को अच्छी तरह से धोकर और पोंछकर बालो को सुखा लेना चाहिए। उसके बाद जी चाहे तो कोई अच्छा तेल भी सर पर डाला जा सकता है।

सर का गरम स्नान

नमकीन गरम जल स्नान (Epsom salts Bath)

लम्बा टब स्नान के लिये ठीक रहता है। टब मे इतना पानी भरना चाहिये कि जब रोगी उसमे नगा होकर लेटे तो उनका सारा शरीर पानी मे डूब जाय और केवल सर पानी के बाहर रहे। जल का तापमान १००° से ११०° फार्न० चाहिये और उसमे एक या डेढ सेर एप्सम साल्ट या मामूली खाने का नमक घुला रहना चाहिए। स्नान का समय ५ से २० मिनट तक रखना चाहिए। शाम को सोने से पहले यह स्नान लेना विशेष लाभप्रद है। इस स्नान के बाद शरीर मे सर्दी नही लगने देना चाहिए।

इस स्नान से त्वचा मे उत्तेजना उत्पन्न होती है जिससे चर्म रोग मिटते है तथा नस, नाडियो एव मास-पेशियो का तनाव दूर होता है। नया सर्दी-जुकाम, गठिया, गुर्दो के रोग, पुरानी खाँसी, जलोदर, साइटिका, लम्बेगो तथा मासिक धर्म की खराबिया आदि को यह स्नान ठीक करता है।

कमजोर, बुड्ढो एव हृदय रोग से पीडित रोगियो को यह स्नान नही देना चाहिए।

नमकीन गरमजल-स्नान (आंशिक)

उपर्युक्त नमकीन गरम पानी मे शरीर के किसी दर्द वाले अङ्ग विशेष को ५ से १५ मिनट तक रखकर उसे स्नान देना चाहिए। बाद को उस स्थान को किसी गीली खुरदुरी तौलिया से खूब रगड़ पौछकर उस पर ऊनी कपडा लपेट देना चाहिए। यही आशिक नमकीन गरम जल-स्नान है। नये रोगो मे इस स्नान से विशेष लाभ होता है।

सूखा नमक स्नान

इस स्नान मे मामूली खाने के नमक को पीसकर और गरम जल से गीला करके सारे शरीर पर मला जाता है। इस काम के लिये लगभग सेर डेढ सेर नमक की जरूरत होती है। रोगी के शरीर के प्रत्येक हिस्से पर बारी-बारी से नमक का सफूफ रगडना चाहिए। हर हिस्से पर नमक रगड चुकने के बाद उसे कपडे से ढक देना चाहिये और तब शरीर के दूसरे हिस्से पर से कपड़ा हटाकर उसपर नमक रगड़ना आरम्भ करना चाहिए। इस तरह से जब सारा शरीर नमक से रगड़ जाय तो पानी के गरम या सर्द तरेरा से शरीर पर के नमक को धो डालना चाहिये या तौलिया-स्नान द्वारा ही उसे साफ करलेना चाहिये।

जब त्वचा रूखी रहे और उससे उसकी स्वाभाविक क्रिया सम्पन्न न हो सके जैसे मधुमेहादि रोगो मे होता है तो इस स्नान से बडा लाभ होता है। साथ ही साथ इस स्नान से रक्त भी शरीर मे सुचारू रूप से दौडने लगता है जिससे वात रोगो और लकवा आदि मे बडा उपकार होता है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि जब त्वचा पर किसी प्रकार के छाले आदि घाव फूटे हों तब यह नमक-स्नान कदापि नही देना चाहिये।

सोडा मिश्रित गरम जल-स्नान

लगभग ३० गैलन सुसम जल मे ६ औंस धोने वाला सोडा (Bicarbonate of soda) मिलाकर उस जल मे १० से २० मिनट तक रहकर स्नान करना, सोडा मिश्रित गरम जल-स्नान कहलाता है। इसी को अंग्रेजी मे Alkaline Bath भी कहते है इससे चर्म-रोगो, विशेष कर एकजेमा मे लाभ होता है।

ओषजन स्नान

यह एक प्रकार का खनिज स्नान है। इसमे स्नान के पानी को निम्नलिखित ढग से ओषजनयुक्त बनाते हैं जिससे पानी मे से ओषजन वायु निकलने लगती है। ऐसे जल मे घुसकर स्नान करना ओषजन-स्नान कहलाता है। ओषजन वायु ही जीवन का आधार प्राण वायु है। अतः ओषजन युक्त जल से स्नान करने से रोगी के शरीर मे अपूर्व ताजगी का आना स्वाभाविक है। रक्त के दबाव की वृद्धि मे यह स्नान अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध होता है। दमा, नाड़ी दौर्बल्य, जलोदर, मूत्र से अल्बुमिन निकलना, तथा हृदय रोगो मे भी यह स्नान लाभकारी सिद्ध होता है। रक्त के कम दबाव के रोगो मे यह स्नान नही देना चाहिये।

जल बनाने की विधि यह है:—

सोडियम क्लोराइड एक पाउण्ड तथा कैलशियम क्लोराइड एक पाउण्ड को ९२ से ९५ फा० हा० के तापमान के जल से भरे टब मे घुलाइए। तत्पश्चात् उसमे हाइड्रोजन प्रोक्साइड एक पाउण्ड मिलाइए। अब दो औंस पोटाशियम परमागनेट लेकर उसका अलग घोल बनाइए

और अन्तत. उसे भी टब के जल मे डाल दीजिए। बस नहाने का ओषजन युक्त जल तय्यार हो जायगा।

भूसी स्नान

चार सेर के लगभग गेहूँ आदि की ताजी भूसी लेकर उसे गरम पानी मे मिलाइए जिससे उसका एक गाढा घोल वन जाय। उसके बाद उस घोल को स्नान के टब मे जिसमे १०२° से १०५ फा० हा० के तापमान का ४० गैलन जल भरा हो, डालकर मिलाए। अब उस भूसी मिले जल मे रोगी को नगे बदन १५ से ४५ मिनट तक रखिए। स्नान को विशेप प्रभावकारी बनाने के लिए टब के जल मे थोडी-थोडी देर पर गरम जल मिला-मिलाकर उसके तापमान को सम रखना चाहिए।

यह स्नान भी चर्मरोगो के लिए बड़ा उपयोगी होता है, विशेपकर उन हालतो मे जब खुजली और जलन भी साथ-साथ हो।

नीम-स्नान

चार-पाच सेर नीम की ताजी पत्तियो को लेकर पानी उबाले। फिर उसके रस को ३०-४० गैलन सुसम जल से भरे टब मे डालकर नीम-स्नान के काबिल जल बनाले और स्नान करे।

यह स्नान भी चर्मरोगो के लिए अक्सीर है विशेपकर फीलपाव के लिए।

गरम जल से सेंक (Fomentation)

किसी भी तापमान के जल को वस्त्र, स्पञ्ज, गरम पानी की बोतल, रवर की थैली आदि किसी भी वस्तु द्वारा शरीर के किसी भी हिस्से पर लगाने को सेक देना या आसेक प्रयोग कहते है। इस काम के लिये साधारण तौर पर ३-४ तह किया हुआ मोटे फलालैन का या अन्य नरम कपड़ा अथवा चिकना ऊनी कपड़ा काम मे लाया जाता है। आवश्यकतानुसार सेंकने का कपड़ा काफी लम्बा चौडा होना चाहिए। साधारणत सेंकने की जगह जितनी वडी हो उससे आठ या दस गुनी जगह पर सेंक करनी चाहिए। वड के किसी स्थान पर सेक देने के पहले यह देख लेना चाहिये कि रोगी के हाथ पैर ठडे तो नही है या उसके सर मे रक्त की अधिकता तो नही है। यदि इनमे से कोई अलामत हो तो रोगी के सर अच्छी तरह ठडे पानी से धोकर और उस पर ठडे पानी से भीगी तौलिया लपेट कर जब सेक देना आरम्भ करना चाहिए। जिस जगह यह सेक देना होता है कभी कभी उस जगह पर नारियल का जरा सा तेल या अच्छी किस्म की वेसलीन रगड देते है तथा उस स्थान की त्वचा पर पतला कपडा रखकर तब सेक देते है। ऐसा करने से अधिक गरम सेक से त्वचा को किसी प्रकार की क्षति पहुचने की सम्भावना बिलकुल नही रहती। गरम पानी मे भीगे कपडे को अच्छी तरह निचोड़कर सेक के स्थान पर फैलाना चाहिए नही तो त्वचा पर छाले पड जाने का भय रहता है।

सेक देने का समय, रोगी की हालत देखकर निर्धारित करना चाहिए। आवश्यकतानुसार सेक २४ घंटों मे २-३ बार भी दिया जा सकता है। सेक का प्रयोग लगातार बीच मे बिना रुके होना चाहिए वरना इच्छित लाभ नही हो सकता।

गरम जल मे भीगे और निचोड़े कपडे से जो सेंक दिया जाता है उसे गीला सेक कहते है। यह सेंक बहुत अशो मे वाष्प स्नान का काम करता है। गरम जल से भरी बोतल अथवा रबर के थैले आदि से जो सेक दिया जाता है, वह सूखा सेंक कहलाता है। दोनो ही प्रकार के सेको से मतलब त्वचा को उष्णता पहुँचाना होता है। ताप के अन्य प्रयोगों की भाति सेक का भी प्राथमिक प्रभाव उत्तेजना देने वाला होता है। अधिक देर तक सेक के प्रयोग का प्रभाव वेदना रोधक, जलन निवारक एव शान्तिदायक होता है।

जब देर तक सेक देना अभीष्ट हो जैसा कि जोड़ के दर्द की हालत मे जरूरी होता है तो हर आध घंटा सेक के वाद १-२ मिनट तक सेक की जगह को ठंडे जल से पौछकर या उस स्थान पर ठडी पट्टी देकर पुन सेक आरम्भ करना चाहिए। कारण सेक के लगातार अधिक प्रयोग से उस स्थान के अवयव निर्बल पड जाते हैं जिनको ठडक देकर पुन. सबल बनाना जरूरी होता है।

सेक की समाप्ति पर यदि रोगी को पसीना आ जाय तो ठडे पानी से भीगी तौलिया से उसका सारा बदन जल्दी से पौछ कर शरीर में पुन गरमी लाने के लिए कम्बल आदि ओढाकर लेटा देना चाहिए।

सेंक के वाद सेक की जगह को ठडे गीले कपड़े

पोछकर और वही कपडा उस स्थान पर रख कर उसे सूखे फलालैन के एक टुकडे से ढक कर थोड़ी देर के लिये बाध देने से बडा लाभ होता है, विशेषकर निमोनिया तथा प्लूरिसी आदि रोगो मे।

सूखी रुई, सूखे कपडे या तलहत्थी को आग पर गरम करके उससे सेक देना बहुत खराब है।

लाभ

डा० ए० सी० सेलमन एम० डी० के अनुभवानुसार सेक पीडा वाली लगभग सब व्याधियो में दवा का काम करता है और ससार मे प्रचलित सब प्रकार के लेप व मरहमो से कही श्रेष्ठ है।

डा० जे० एच० केलाग सेक के विषय मे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रेशनल हाइड्रोथिरैपी' मे लिखते है— जब किसी स्थान की सूजन को कम करना हो, स्नान व स्वेद के अवरोध मे उत्तेजना लाना हो, नसो या मांस-पेशियों को उत्तेजित करना हो, किसी अङ्ग विशेष मे रक्त बदलना या बढाना हो अथवा शरीर के किसी शक्तिहीन अवयव को शक्तिशाली एव क्रियाशील बनाना हो तो सेक का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

भीतरी चोट, छाती मे सर्दी के कारण दर्द, दुखती आखे, दर्द पेट, लीवर की सूजन, स्त्री या पुरुष के गुप्ताङ्ग की सूजन, रगो और पुट्ठो की सूजनयुक्त व्याधिया, आत उतरना, दात की पीडा, मसूढो की सूजन, टासिल, तालू की सूजन, पथरी की पीडाए, ग्रन्थि-रोग, नसो का दर्द व सूजन, वायु नली की सूजन, दमा, गला बैठना, मोच, साइटिका, लम्बेगो, कान की पीड़ा, फोडे फुन्सी की पहली दशा, प्लीहा की वृद्धि, जीर्ण श्लेष्मा, सिर दर्द, आधा शीशी, डिफ्थीरिया, मन्थर ज्वर, खूनी बवासीर, अण्डशोथ, अपच, मूत्र निरोध, कष्टार्तव, दाद-खुजली, मुहासे आदि असख्य रोगो मे गरम जल से सेक लाभ पहुचाता है।

प्रकार

रोग निवारण के लिये तीन प्रकार से सेक दिये जाते हैं। उनको क्रम से गरम सेक, गरम ठण्डी सेक तथा प्रावाहिक सेक कहते है। इनके अतिरिक्त गरम जल भरी बोतलो, रबर के थैलो एवं छलनी तथा काष्ठौषधिमिश्रित गरम जल से भी सेक दिये जाते है जो गरम सेक के अन्तर्गत ही माने जाते है।

गरम सेंक (सम्पूर्ण शरीर का)

इसको उष्ण या गरम लपेट, तथा अग्रेजी मे Hot-pack भी कहते है। इसके लिये निम्नलिखित वस्तुओ की जरूरत होती है।—

१-मोमजामे का एक बडा टुकड़ा। २-दो बडे कम्बल। ३-एक बहुत बडा कम्बल जिसे शरीर पर तीन-चार बार लपेटा जा सके। ४-आधी बाल्टी खौलता पानी। ५-आधी बाल्टी ठडा पानी। ६-एक बड़ी तौलिया। ७-तीन-चार लोहे आदि किसी धातु की चद्दर के टुकड़े जो आग मे खूब गरम कर लिये गये हो।

सर्व प्रथम किसी कमरे मे मोमजामे को बिस्तर पर बिछा दो, उसके ऊपर पहले बहुत बड़ा कम्बल फिर एक उससे छोटा कम्बल बिछा दो। अब रोगी को कम्बलो पर नगा करके लिटा दो। उसके बाद दूसरे छोटे कम्बल को गरम पानी मे खूब भिगो कर और निचोड कर रोगी के शरीर के चारो तरफ शीघ्रता से लपेट दो। तत्पश्चात् नीचे के दोनो बिछे कम्बलो मे से ऊपर वाले छोटे कम्बल को तुरन्त भीगे कम्बलो मे से ऊपर लौटा दो साथ ही जिस स्थान पर दर्द या सूजन हो उस स्थान पर गरम-गरम लोह की चद्दर के टुकडे रखदो और ऊपर से दूसरा नीचे बिछा हुआ बडा कम्बल भी लौट दो ये सब क्रियाये इतनी जल्दी होनी चाहिये कि शरीर से लिपटा गरम भीगा कम्बल ठडा न होने पावे। इस लपेट मे रोगी को १५ मिनट से ३० मिनट तक पड़े रहना चाहिये। बाद को रोगी के शरीर पर से कम्बलो आदि को हटा कर एक ठडा स्पन्ज स्नान दे देना चाहिये। इस क्रिया के समय शरीरको ठडी हवा के झोके से बचाना चाहिये

इस स्नान से शरीर के विकार निकल जाते है और अनेक अवसरो पर इससे हृदय की दुर्बलता दूर करने मे भी मदद मिलती है।

गरम सेंक (स्थानीय)

इसको अंग्रेजी मे Hot fomentation for local pain कहते है। यह क्रिया में चरक मे वर्णित शकर-स्वेद का ही एक रूप है। विधि इस प्रकार है —

किसी चौड़े मुह के बर्तन मे २-३ सेर उबलता हुआ जल रखिये। जल को देर तक उबलता रखने के लिये उसे जलते हुये कोयले की अ गीठी आदि पर रखना चाहिये। मोटे फलालैन या ऊनी कपडे का टुकडा या नरम तौलिया लेकर और उसके दोनो सिरो को पकड कर उबलते जल मे डुबो दे। जब वह गरम जल में पूरी तौर से भीग जावे तो उसे किसी दूसरे बडे कपड़े मे रखकर और उसे उमेठ कर भीगे तौलिये का जल निचोड दे। तत्पश्चात् उसे खोल कर शरीर के उस भाग पर फैलादे जिस पर सेक देना अभीष्ट हो। यही बार-बार करे और सेक की समाप्ति पर उस स्थान को ठडी भीगी तौलिया से रगड़ कर पोछ दे।

इस सेंक से लगभग सभी प्रकार के दर्दो मे लाभ होता है, लगभग सभी प्रकार की सूजन मिटती है, नस नाड़ियो मे तेजी आती है, तथा रक्त प्रवाह मे गति उत्पन्न होती है। इस प्रयोग से रोम-कूप फैल जाते है और शरीर मे किसी स्थान पर जमा हुआ रक्त पिघल जाता है जिससे उस स्थान का दर्द शान्त हो जाता है।
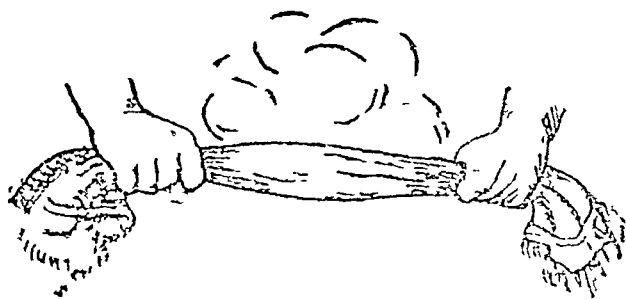
गरम सेक करने की विधि

गरम जल भरी बोतलों से सेंक

तीन बोतलो मे बर्दाश्त के काबिल गरम जल भरकर उनका मुह कार्क लगाकर अच्छी तरह ब द कर दीजिये। दो को छाती या पेट के दोनो तरफ तीसरी को दोनो टागो के बीच रखकर ऊपर से कम्बल आदि ओढ लीजिये। ऐसे करने से शरीर की काफी सेंक हो जायगी और पसीना निकलने लगेगा मलेरिया और पेट के दर्द मे इस सेक से विशेष लाभ होता है। बोतलो के अधिक गर्म होने पर उन्हे फलालैन के कपडे मे लपेटकर तब बदन से सटाकर [illegible] चाहिये।

[illegible] के ऊपर के अङ्गो के रोगो मे निम्नलिखित पावो का लपेट (Foot Pack) बडा लाभकारी [illegible] होता है—

जानु सन्धि तक दोनो पैरो पर अलग-अलग ठडे [illegible] मे भिगोया और अच्छी तरह से निचोडा कपडा लपेटिये। तत्पश्चात् उन्हे सूखे फलालैन से ढक दीजिये। उसके [illegible] पावो के नीचे और चारो तरफ गरम जल भरी बोतलें रखकर रोगी के समूचे शरीर को गले तक कम्बल [illegible] दीजिये और सर पर ठडे पानी से भीगा और निचोड़ा तौलिया रख दीजिये। इस योग से कमर के [illegible] रोगी अङ्गो का दूषित रक्त नीचे पैर की [illegible] उतर आता है और बदले में नया स्वस्थ रक्त [illegible] अङ्गो में चढ जाता है जिससे वे अङ्ग रोग मुक्त [illegible] स्वस्थ होजाते है।

यह सब होते हुए भी कतिपय डाक्टरो के [illegible] गरम जल भरी बोतलो से सेंक तथा नीचे की गरम [illegible] भरे रबर के थैले या छल्ले से सेक, रोगो को दूर करने [illegible] गीली गरम सेको और लपेटो का मुकाबिला नहीं [illegible] सकती और कभी कभी तो बेकार और हानिकारक [illegible] सिद्ध होती है।

गरम जल भरे रबर के थैले या छल्ले से सेंक

यह सेक उसी तरह दिया जाता है जिस तरह [illegible] भरी बोतलो से दिया जाता है।

गरम ठंडी सेंक (Alternate Fomentation)

किसी रोगी अङ्ग को समान काल का बारी बारी [illegible] अधिक गरम सर्द सेंक देना उस अङ्ग को गरम-ठंडी [illegible] देना कहलाता है। समान काल से यहा मतलब है [illegible] मिनट तक गरम पट्टी से लगातार सेंक देने के बाद [illegible] मिनट तक ठडी पट्टी से सेक देना, तत्पश्चात् पुन ५ [illegible] तक गरम पट्टी से सेक देना आदि साधारणत: गरम [illegible] ठडी दोनो सेके बारी बारी से आधा घटे मे तीन तीन [illegible] दी जानी चाहिए। इस सेंक को गरम सेक से [illegible] करके ठडी सेक पर समाप्त करना चाहिए। सेंक देने [illegible] तरीका ऊपर लिखा जा चुका है।

इस सेक मे गरम और ठडा के प्रयोग से रोगी [illegible] की रक्त वाहिनी नस नाडिया बारी-बारी से फैलती [illegible] सुकड़ती है जिसकी वजह से उनके द्वारा शरीर [illegible] कर शरीर के उस रोगी भाग का जिस पर [illegible]

जाता है दूषित पदार्थ बाहर निकल जाता है और उसकी जगह नया स्वस्थ रक्त रोगी अंग की मरम्मत करने वाला मसाला लेकर बार-बार उस स्थान पर आता है और अन्ततः उसे रोगमुक्त करके ही दम लेता है।

यह सेक स्थानीय दर्द व सूजन के लिए सर्वोत्तम और रामबाण है। पके फोड़ा पक्षाघात, सुन्न अंग, छाती और पेडू का शोथ, पुरानी प्लूरिसी, शराब की बेहोशी, विषैले गैस की बेहोशी, विष खाने से बेहोशी (मेरुदण्ड पर सेक देने से) पानी मे डूबा रोगी, (मेरुदण्ड पर), स्नायुशूल प्लीहा तथा पेट का फोड़ा (ट्यूमर) आदि इस सेक से बहुत जल्द आराम होते हैं।

आग्राहिक सेंक (Revulsive Fomentation)

यह वस्तुतः गरम-ठंडी सेक ही है अन्तर केवल इतना है कि इसमे ठंडी सेंक सदैव बहुत कम समय तक अर्थात् आधा से एक मिनट तक ही दी जाती है और गरम सेक अधिक समय तक अर्थात् ४ से ५ मिनट तक। इस प्रकार एक साथ कम से कम तीन बार सेक देना जरूरी है। इस सेंक को भी गरम से आरम्भ करना चाहिए और ठंडे पर समाप्त।

इस सेंक से भी वे ही लाभ होते है जो गरम ठंडी सेक से होते हैं।

नासिका छिद्र-स्नान (जल-नेति)

प्रात.काल दन्तधावन के बाद जो स्वर चलताहो उसी नासिका रन्ध्र से किसी साफ बर्तन, बोतल, ओस गिलास या टोंटी वाले पात्र मे रखे हुये योग-जल (साफ पानी को साफ बर्तन मे रखकर, उसमे अन्दाज से थोडा सेधा नमक मिलाकर और आग पर रखकर शरीर के ताप के बराबर गरम कर लीजिये तत्पश्चात् छानकर किसी साफ बर्तन मे रख लीजिये यही योग-जल है) को पूरक के साथ सुडकिये। पानी सुड़कते समय नाक का दूसरा छेद बद कर देना चाहिए। इससे जल के सुडकने मे कोई अड़चन न पड़ेगी, शायद कुछ दिनो तक सिर के पिछले भाग मे थोडी सी गुदगुदाहट व सनसनाहट हो पर कुछ दिनो के अभ्यास से यह बात दूर होजाती है। नाक के पहले छिद्रके बाद दूसरे छिद्र से पानी सुडकना चाहिये। ध्यान रहे सुड़का हुआ पानी पी न लेना चाहिये अपितु मुह से निकाल देना चाहिए। पानी को जोर से सुड़कना भी ठीक नहीं है सिर मे दर्द हो जासकता है इसलिए धीरे धीरे पानी को नाक के नथुने द्वारा सुड़कना चाहिए। एक समय मे एक सेर सेअधिक पानी मुंह से निकाल सकते है पर प्रति सप्ताह एक-एक छटाक जल बढ़ाते हुए एक सेर तक ले जाना ठीक रहता है।

जल नेति से नेत्र ज्योति बलवान होती है और उसके समस्त रोग दूर हो जाते है, मस्तिष्क ठंडा होजाता है प्यास की अधिकता कम हो जाती है जुकाम, सर्दी आदि कफ के रोग कभी होते ही नही गले के ऊपर के सभी अङ्गों के रोग इससे शान्त हो जाते है।

पाण्डु, कामला, अम्लपित्त, पित्तज्वर, पित्तप्रकोप, तथा नासिका दाह आदि रोगो मे जल-नेति-कर्म नही करना चाहिए।

पेट नहान (जल धौति)

पेट नहान, जल धोति, वमनधौति, बाघी, ब्रह्मदातुन, कंजलक्रिया तथा गजकरणी, एक ही क्रिया के सात नाम है। जलधौति कर्म करने के लिए जल नेति की तरह पहले योग जल तय्यार कर लीजिये। फिर नीम के पेड़ से एक नीम को पत्ती लगी टहनी तोड लाइए। अब एक सीक मे सिर्फ सिरे पर लगी दो पत्तियो को तोड़कर शेष पत्तियो को साफ कर लीजिए। इसी प्रकार चार पाच सीके रखले। यह सब तय्यार होलेने पर एक आसन पर निश्चिन्त होकर बैठ जाइये और तय्यार किये हुये योग जल को धीरे २ पीना शुरू कीजिये। पानी की मात्रा धीरे धीरे बढ़ा कर दो ढाई सेर तक लाना चाहिये। सब पानी पी चुकने पर आगे की ओर झुक कर बैठ जाइए और सीको का मुह के अन्दर हलक तक लेजाइए और उनसे हलक को सहलाइए। ऐसा करने से कै मालूम होगी और पेट का पानी पेट की गदगी के साथ बाहर आजायगा। कोशिश करके पेट का सब पानी बाहर निकाल देना चाहिए। नीम की सीको की जगह नाखून रहित अंगुली से भी कै लाने का काम लिया जा सकता है। यदि सब का सब पानी पेट से न निकल सके तो चिन्तित नहोना चाहिए क्योंकि वह पानी पचकर किसी न किसी तरह पाखाना पेशाब के रास्ते देर या सवेर अवश्य बाहर आजावेगा।

धौति कर्म के लिए बसन्त और ग्रीष्म ऋतुएं ठीक होती है। प्रात काल शौचादि से निवृत होकर यह क्रिया

करनी चाहिए। जल धौति कर्म करने का एक और भी तरीका है। वह यह कि योगजल पी लेने के बाद रबड़ का एक पतला ट्यूब जिसे अंग्रेजी मे स्टमक ट्यूब कहते है (एक डेढ हाथ लम्बी होती है इसका एक सिरा खुला रहता है और दूसरे छोर के ४ अंगुल पर बगल में सूराख होता है। आगे के भाग का मुंह बद रहता है। इस मुंह बद और बगल वाले छेद के सिरे को निगल लेने से उसके मुंह खुले हुए सिरे से पेट का पानी निकल आता है।) मुंह के द्वारा इसे धीरे से पेट के कुछ भाग मे डाल दीजिये। पेट का पानी उस ट्यूब द्वारा धीरे धीरे बाहर आजायेगा। धौति कर्म के इस तरीके मे काफी आसानी होती हैं

अजीर्ण, धूप मे भ्रमण, पित्त वृद्धि, जीर्ण कफ व्याधि, रक्त विकार, आमवात,त्वचा रोग, दमा आदि मे यह क्रिया अधिक लाभदायक है। हफ्ते मे या दो हफ्ते मे एक बार इस क्रिया को कर लेने से पेट की कोई शिकायत नही हो सकती और न कब्ज ही रह सकता है।

तीक्ष्ण कफप्रकोप, वमन रोग, कण्ठ और श्वास नली की सूजन, हृदय की निर्बलता आदि रोगो मे यह क्रिया नही करनी चाहिये।

पेट और आँत नहान (शखप्रचालन)

तैयारी मे पहले योग-जल शरीर तापमान करीब २॥ सेर स्वच्छ वर्तन मे रख लेना चाहिए। साथ मे गिलास का रहना जरूरी है। जितना पानी एक बार पिया जा सके पी लेना चाहिए, फिर पेट की कसरत या नौलि करनी चाहिए ताकि वह पिया हुआ पानी पच जाय और शीघ्र ही गुदा द्वार से बाहर होजाय—

कसरत न० १—सीधे खडे होकर हाथो को ऊपर नीचे करना चाहिए। साथ ही पंजे भी उठाये जायेगे। इसी क्रम से ३-४ वार करना चाहिए।

कसरतन०२—सीधे खडे होजाइये फिर घुटनो को आगे की ओर मोड़ कर थोडा झुक जाइये। अब दोनो हाथो को पीछे की ओर ले जाकर दोनो रानो को बीच कर एक दूसरे को पकड लीजिये। तत्पश्चात पेट पर जोर देते हुये उठने की कोशिश कीजिये। फिर छोड कर अपनी असली हालत मे आजाइये। इसक्रम को पांच बार करे।

यदि अबतक पिया हुआ पानी पच गया तो थोडा सा पानी गिलास मे रखकर और पी लेना चाहिए। फिर कसरत शुरू करनी चाहिए।

कसरत न० ३—सीधे खडे हो जाइये। अब बारी बारी से पैरो को मोड़कर छाती के पास लाइये और दोनो हाथो से पकडकर दवाइये। एक के वाद दूसरा, दूसरे के वाद पहला पैर वदलते रहना चाहिए। इस क्रम से चार वार करना चाहिये।

कसरत न० ४—पैरों मे फासला रखते हुए खड़े हो जाइये। अव हाथों को कंधो की सीध मे उठाइये। फिर सिर से लगे हुये हाथो से झुककर पैरों के अंगूठो को छूना चाहिये। ध्यान रहे पैरो के घुटने मुडें नही। इसी क्रम से ४-४ वार करना चाहिए।

अब भी यदि पानी की थोड़ी बहुत गुंजायश रह गई हो तो एक गिलास पानी और पीलेना चाहिये। कसरत शुरू करने पर एक जगह खडे होकर कसरत नहीं करनी चाहिए वल्कि शीघ्रता के साथ ४-५ वार तेजी से
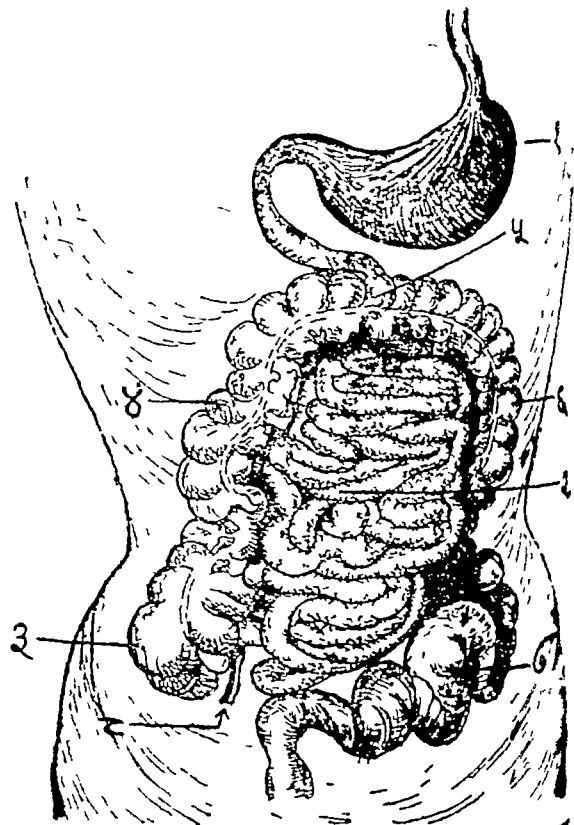
शंख प्रचालन-क्रिया से पेट और आंतो की पूरी सफाई
१-आमाशय, २-छोटी आंत, ३-वड़ी आंत का प्रारम्भिक भाग, ४-बड़ी आंत का ऊर्ध्वगामी भाग, ५-बड़ी आंत का आडा भाग, ६-वडी आंत का नीचे जाने वाला भाग, ७-वडी आंत का अन्तिम भाग।

...रना ज्यादा अच्छा होगा। इसी बीच अगर शौच मालूम ...ने जाय तो टट्टी से निवृत हो लेना चाहिये। यदि टट्टी ...फ नही होती है अथवा देर मे लगती है अथवा नहीं भी ...गती तो घवडाना नही चाहिये। पानी किसी न किसी ...प मे बाहर निकल ही आवेगा।

पेट की समस्त बीमारियो को दूर करने के लिए यह ...्या रामबाण है। इससे कब्ज, मन्दाग्नि, पेचिश तथा ...च आदि सब चुटकी बजाते ठीक होजाते हैं।

इस क्रिया को अधिक अस्वस्थ व्यक्तियोको छोडकर कोई ... कर सकता है। इससे मुंह से गुदा द्वार तक की सफाई ...जाती है। इसे सप्ताह मे एक या दो बार करना चाहिए।

...नि-स्नान (गर्म)—

बाजार मे एनिमा-यन्त्र के साथ योनि-स्नान की नली ...आती है। उसको एनिमा के ट्यूब मे फिट करके और ...नमा के डिब्बे मे सुहाता हुआ गरम जल भर करके ...नमा लेने की भाति ही उस गरम जल से योनि-मार्ग को ...ते है। यही गरम पानी का योनि स्नान है।

इस स्नान से योनिमार्ग के सारे सञ्चित मल धुलकर साफ ...ाते है और जितनी चाहिए उतनी सेक भी हो जाती है, जिससे ...न-सम्बन्धी कितनी ही बीमारिया अच्छी हो जाती हैं।

...-स्नान (गर्म)—

पुरुष जननेन्द्रिय के भीतरी भाग को जब गरम पानी ...पिचकारी आदि द्वारा धोया जाता है तो उसे पानी का ...-स्नान कहते है। इस स्नान से पुरुष-जननेन्द्रिय और ...शय की समस्त व्याधिया दूर की जासकती हैं।

...—गरम पृथ्वी के योग

कई रोग ऐसे होते है जिनमे रोग के स्थान पर ही सेक ...जाती है, जैसे फोडा, फुन्सी, प्लेग की गिल्टी, सूजन ... दर्द आदि। ऐसा करने से रोग का रूप धारण करने ...ा उस स्थान का मल पतला होकर इधर उधर फैल ...ा है और अन्तत पसीना या पीव की शकल मे बाहर ...ल जाता है। इस कार्य के लिए गरम पृथ्वी के निम्न-...वत विभिन्न प्रयोग बडे उपयोगी सिद्ध होते हैं—

सूखी मिट्टी से सेक—

...चरक मे भूस्वेद का यह दूसरा रूप है। इसमे पृथ्वी को ...रम करके तत्पश्चात् धोकर और उसके ऊपर कम्बल ... बिछाकर रोगी के पूरे शरीर को सेक देने के लिए उस पर लिटाते है या स्थानीय सेक देने के लिए रोग ग्रस्त अङ्ग को उसपर रखकर सेक देते है। ऐसा करने से भली प्रकार स्वेद आजाता है और रोम कूप खुल जाते हैं।

गरम बालू भरे थैले से सेक—

इसे चरक मे रूक्ष शकर-स्वेद कहते हैं। इसमे बालू या भुरभुरी मिट्टी की पोटली बनाकर और उसे गरम करके उससे कफ वाले रोगो मे सेक करते है जिससे पसीना आजाता है।

गरम ईंट से सेक—

ईंट को गरम करके और उसे कपडे मे लपेट कर उससे रोगी अङ्ग पर सेंक करते है।

गरम गीली मिट्टी से सेंक—

शुद्ध साफ मिट्टी को जल मे सान कर, उसकी पुल्टिस बना तथा उसे गरम करके सेक का काम लिया जाता है।

औषधियो की पुल्टिस से सेंक—

इसे चरक मे स्निग्ध शंकर-स्वेद कहते हैं। इसमे तीसी, तिल, प्याज, माष, कुल्थी, गोमूत्र तथा तेल आदि को पकाकर और उसकी पुल्टिस बनाकर रोगग्रस्त स्थान पर बाधते है जिससे बडा लाभ होता है।

विद्युत चिकित्सा
(Electro-Culture)

कुछ प्राकृतिक चिकित्सक, विद्युत-चिकित्सा को, प्राकृतिक-चिकित्सा का एक अङ्ग मानकर इसे अग्नि-चिकित्सा के अन्तर्गत मानते है, और कुछ विद्युत-चिकित्सा को प्राकृतिक व स्वाभाविक चिकित्सा मानते ही नही। क्योकि एक तो विद्युत्-चिकित्सा का माध्यम बिजली, पञ्चतत्वो [आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी] की तरह, सब जगह, सब दशाओ मे आसानी से पैदा करके उपलब्ध नही की जा सकती, दूसरे यन्त्रो द्वारा इसकी प्रयोग-विधि कठिन होने के कारण सर्व साधरण, बिना पूर्णरूप से शिक्षा प्राप्त किये, इससे लाभ नही उठा सकते, और तीसरे असावधानता के कारण बिजली द्वारा इलाज में अनिष्ट की सम्भावना रहती है। फिर भी इस तथ्य से इन्कार करने को जी नहीं चाहता कि विद्युत-चिकित्सा, एक पूर्ण वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली है जिसमे विद्युत् के

उचित ढग के प्रयोग से हजारों प्रकार के रोग अच्छे किये जा सकते है और अच्छे किये जाते है। यह बात दूसरी है कि सर्व साधारण इस विद्या को सीखकर किसी कारण वश उसका उपयोग रोगों के निवारण मे कर सकते है अथवा नहीं।

विद्युत्-चिकित्सा सर्व साधारण के लिए सुलभ और सभव न होने के कारण ही महात्मागाधी इस चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत नही मानते थे। वस्तुत: ससार मे विद्युत विहीन कुछ भी नही है। सभी पदार्थो, प्राणियो, एव वनस्पतियों मे विद्युत-शक्ति विद्यमान होती है। किसी वस्तु के विद्युतशक्ति से विहीन होने का मतलब है उस वस्तु का नाश, उसके अस्तित्व का मिट जाना। इसी प्रकार मानव, पशु, पक्षी या पेड-पौधे आदि किसी मे विद्युत-शक्ति की कमी होने का अर्थ है उसका कमजोर रोगी होना। इसके विपरीत जिसमे विद्युत-शक्ति पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान रहती है वह सशक्त और निरोग रहता है। मानव शरीर मे इसी विद्युत्-शक्ति की कमी के कारण नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते है। अतः जिस प्राणी से किसी मनुष्य के शरीर मे विद्युत्-शक्ति की कमी की पूर्ति करके ह्रास से होने वाले रोग दूर किये जाते हैं, उसे ही विद्युत-चिकित्सा-प्रणाली, विद्युत द्वारा उपचार, अथवा इलेक्ट्रोकलचर कहते है।

विद्युत-चिकित्सा का सिद्धान्त वृक्ष, पशु, और मनुष्य पर एकसा लागू होता है। वैज्ञानिको ने प्रयोगो से सिद्ध कर दिया है कि वृक्षो में जो पानी और गैस पहुँचती है वे उनके प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग मे ले जायी जाती हैं जिससे उनमे हरकत पैदा होती है जो वृक्षो के शरीर मे विजली के सचार का कारण होता है। अतः मुरझाये और कमजोर वृक्षो के भीतरी कोपो पर वैज्ञानिक ढंग से वाहरी विजली का प्रभाव डालकर उन्हे निश्चय ही हरा भरा और मोटा ताजा वनाया जा सकता है।

पशुओं को अधिक वलिष्ठ और निरोग वनाने के लिए विद्युत चिकित्सा-प्रणाली मे तीन तरकीवें मुख्य हैं। पहली यह कि उनका चारा सुवह की निकलती हुई सूर्य-रश्मियों के सामने रखा जाय जिससे उसमे स्थित हानिकर कीटाणु नष्ट हो जायें और उसमे किरणों के समावेश से स्वास्थ्य-गुण पैदा हो जायें। दूसरी, उनको विजली का पानी पिलाया जाय। तीसरी, उनके गले मे विजली के तार से कभी-कभी 'स्पार्किग' किया जाय (विद्युत स्फुलिंग का स्पर्श कराया जाय)। विजली का पानी पशुओ की सानी मे मिलने से उसको पाचक वना देता है। उससे नहलाने से पशु स्वस्थ्य रहते है। गले पर मैगनेट का तार लगाकर हैंडिल चलाने से विजली की जो चिनगारिया पशु के शरीर मे प्रवेश करती है, उनसे उसके सारे शरीर मे स्फूर्ति सी आ जाती है। पशुओ के घावों पर विजली का पानी डालने से वे जल्दी भरते है लेकिन साथ-साथ 'स्पार्किंग' भी जरूर करना चाहिये।

अमेरिका के 'Reedley-Exparent' नामक अखबार में एक वार एक रिपोर्ट छपी थी जो एक वीमार मुर्गी के बारे मे थी जिसका इलाज उपर्युक्त डाक्टर नेहरू ने केवल बिजली का पानी पिलाकर किया था। उन्होंने एक प्याला विजली का पानी लेकर उस वीमार मुर्गी के गले मे डाल दिया जिसको वह विना तकलीफ के पी गयी थोड़ी ही देर में देखा गया कि मुर्गी की चोटी का रंग पीले से एकदम लाल रंग का हो गया और वह अन्य मुर्गियो की तरह चारा चुगने लगी। बाद को वह इतनी तन्दुरुस्त हो गयी कि आसानी से पहचान मे न आती थी।

हाथी जैसे डील डौल के जानवर पर भी प्रयोग किये गये हैं। एक राजा के हाथी की आख बिल्कुल वेकार हो गयी थी उस पर बड़े बडे प्लास्टर लगाये जा चुके थे और बहुतेरी दवाइया हो चुकी थी, लेकिन किसी से कुछ लाभ नहीं हुआ। हाथी की वह आंख बद रहती थी। एक डाक्टर ने पहले कपडे को विजली के पानी मे भिगोकर उसकी आख धुलवाई, फिर धार बांधकर उस पर वही पानी डाला गया, इससे हाथी को बहुत आराम मिला और थोडी देर में उसने आंख खोल दी, लेकिन आख का धोना इसी तरह जारी रखा गया। उसकी आख मे जाला सा पड गया था जो बिजली के पानी से कट गया और वह भला चगा हो गया।

एक दूसरे हाथी के सिर पर एक वहुत वडा आवला पड़ गया था, जिसका कारण महावत दिमागी खुश्की वतलाता था। उस पर भी वहुत सी दवाइया लगाई जा चुकी थी। आखिरकार उस आंवले पर विजली के तार से स्पार्किङ्ग किया गया और वह वहुत जल्दी फूट

अच्छा हो गया। घोड़ा, बकरी, गाय, बैल, ऊंट आदि जानवरो पर उनकी तरह-तरह की बीमारियो मे बिजली के तरीके इस्तेमाल किये गये और उनसे बहुत जल्द फायदा हुआ। एक खास बात और है। दूध देने वाले जानवरों को बिजली का पानी पिलाने से देखा गया है कि उनका दूध सवाया हो जाता है। कलकत्ता मे उस दूध का बना घी 'बिजली मार्का घी' के नाम से बिकता है और उसका दाम भी अच्छा मिलता है।

वनस्पति और पशु शरीरो की भांति ही मनुष्य शरीर भी विद्युन्मय होता है। जिस मनुष्य मे यह विद्युत् पर्याप्त मात्रा मे नहीं होती वह निश्चय ही रोगी है। कारण, शरीर स्थित विद्युत् का ही दूसरा नाम जीवनी-शक्ति है।

प्रोफेसर जैकोज लोयब का कहना है कि भोजन से मनुष्य को जो शक्ति प्राप्त होती है उसका एक भाग शरीर स्थित बिजली के रूप मे परिणित हो जाता है जिससे बाद शरीर के स्नायु मण्डल, मासपेशियो, एवं अवयवो को शक्ति तथा स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। शरीर की गर्मी ही अपितु उसमे स्थित बिजली मनुष्य को जिन्दा रखती है।

मनुष्येतर पदार्थो की भांति ही मानव शरीर पर भी बिजली का प्रभाव दोहरा पड़ता है। एक तो उससे शरीर दोष दूर होते है, दूसरे शरीर शक्तिशाली और तगड़ा बनता है। जब बाहर से बिजली उचित ढग से और उचित परिमाण मे शरीर के सम्पर्क में लाई जाती है, तो उससे नाडी मण्डल उत्तेजित होता है, शुद्ध रक्त प्रवाहित होने लगता है, तथा जिस स्थान पर बिजली का प्रयोग किया जाता है उस स्थान मे वह शक्ति का सञ्चार कर देती है। उससे शरीर के शिथिल और दुर्बल अङ्ग जीवन और शक्ति प्राप्त करते हैं तथा पूरे शरीर को रोगो और रोग के कीटाणुओ से लड़ने के लिए बल मिलता है।

पुराने रोगों मे विद्युत-चिकित्सा से विशेषतया लाभ होता है।

रोग-निवारण के लिये रोगी के शरीर पर विद्युत् प्रयोग के कई तरीके हैं, जिनमे से निम्नलिखित पाच मुख्य हैं —

१–गैलवैनिक विद्युद्वाह द्वारा—यह एक मशीन होती है जिसके दो सिरे होते हैं। एक को उद्-द्युत् (Positive) और दूसरे को निद्युत् (Negative) कहते है जो शरीर पर अलग-अलग प्रभाव डालते है।
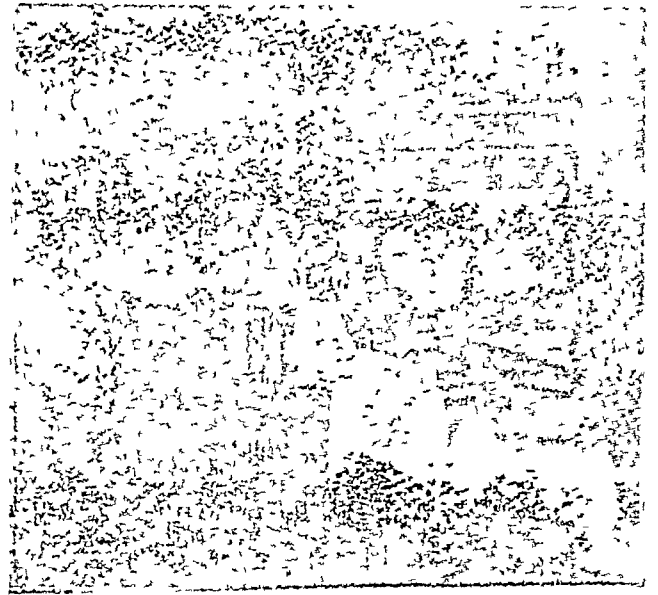
'पेन्टोस्टेट' मशीन द्वारा गालवैनिक धारा ली जा रही है

२–फैराडिक विद्युद्वाह द्वारा—इससे निर्बल मांस-पेशियां सुदृढ़ एवं सुसञ्चालित होती हैं।

३–सिनूस्वैडल विद्युद्वाह द्वारा—इससे भी विशेषतया मासपेशियो के रोग जैसे लकवा आदि दूर किये जाते हैं।
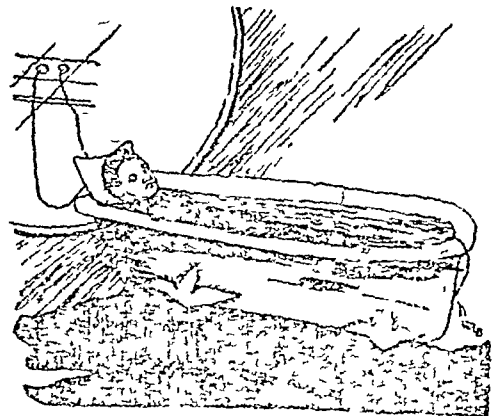
सीनोसाइडिल बाथ

४–हाई फ्रीक्वेन्सी (उच्च वारं वारता) विद्युद्वाह द्वारा—इसमे उच्चद्युद्धमता (Voltage) की बिजली प्रयुक्त होती है जिससे रोगी अङ्ग मे अधिकाधिक र...

हाई फ्रीक्वेन्सी धारा के प्रयोग करने की रीति

पहुचाया जाना सम्भव होता है ।

५–स्टैटिक विद्युद्वाह द्वारा- यह प्रयोग भी स्टैटिक मशीन द्वारा किया जाता है ।

विद्युत् स्फुलिङ्ग (Electric spark) का प्रयोग

शरीर पर विद्युत्-स्फुलिङ्ग के प्रयोग को अंग्रेजी में स्पार्किङ्ग (sparking) कहते है । यह स्पार्किङ्ग बिजली की उपर्युक्त पांच मशीनो द्वारा, खूब सीख-पढ लेने के बाद ही करना चाहिए । साधारणत यह काम गुदड़ी बाजारो में मिलने वाले मामूली 'मैगनेटो' से भी लिया जा सकता है जिसका जिक्र ऊपर हो चुका है । स्पार्किङ्ग करने के लिए हाथ मे तार के हैडल को लेकर तार के सिरे को सबसे पहले रोगी के गले की ग्रन्थियो (Thyroid Glands) से दो मिनट तक स्पर्श करावे । इसके बाद नाभि पर दो मिनट तक रखे । फिर पीठ की पूरी रीढ (गुदामार्ग से लेकर गले के नीचे तक) पर नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तार के सिरे को दस बार चलावे । बाद मे पीठ के अगल बगल पसलियो के गड्ढो को एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक-एक बार स्पर्श करे । अंत मे शरीर के जिस स्थान पर रोग का विशेष रूप से आक्रमण हुआ है अथवा दर्द आदि है, उस स्थान पर ५ मिनट तक तार को स्पर्श कराकर स्पार्किङ्ग दे ।

यदि स्पार्किङ्ग देते समय किसी को बिजली का करेंट अधिक महसूस हो तो तार को शरीर के मासल भाग तक भीतर की तरफ थोड़ा गड़ा कर स्पार्किङ्ग देना चाहिये ।

छोटे बच्चो को केवल नाभि मे ही स्पार्किङ्ग करने से काम चल जाता है, या फिर तार के सिरे को शरीर के रोगी भाग पर बहुत जल्दी जल्दी स्पर्श करते हुये स्पार्किंग करना चाहिये ।

[illegible] की गिल्टियो का शरीर के बाकी अवयवो विशेष कर पाचन-संस्थान से सीधा सम्बन्ध होता है, इसलिये उन पर स्पार्किंग करने से जल्दी लाभ होता है ।

उपर्युक्त रीति से बिजली का प्रयोग करने से शरीर मे खून का दौरा ठीक प्रकार से होने लगता है और सुस्त पड़ी हुई नस-नाड़ियो, मांसपेशियों तथा कोषो को शक्ति मिलती है जिससे रोगी शरीर को निरोग होने में देर नही लगती ।

हजारो आदमियो पर तरह तरह की बीमारियों में बिजली आजमाई जा चुकी है । रेडियम के मुकाबिले में भी यह अधिक लाभकारी सिद्ध हुई है । अभी हाल की बात है कि जिला फरुखाबाद की एक ठकुरानी जिसकी उमर ३५ वर्ष की थी, अपने एक बच्चे की मौत के बाद से पागल हो गई थी । वह न खाती थी और न पीती थी । सिवा चीखने चिल्लाने के उसे दूसरा कोई काम न था । चिकित्सा स्वरूप उनकी चारपाई के पायो के नीचे रबर के टुकड़े रखे गये, सूर्य की किरणो के सामने रखी हुई भोजन-सामग्री मे बना हुआ भोजन खिलाया गया, बिजली का ही पानी पीने व नहाने को दिया गया और उसकी थायरायड ग्लाण्ड्स पर स्पार्किङ्ग किया गया । २४ घंटे के अन्दर उसका चिल्लाना बंद होगया । उसे नींद आ गयी और वह खाने-पीने भी लगी । कुछ दिन बाद वह बिल्कुल भलीचंगी हो गयी ।

विद्युत्–प्रकाश का प्रयोग

विद्युत्-प्रकाश का प्रयोग, विद्युत्-प्रकाश-स्नान के रूप में होता है जो बदली आदि के दिनो में या किसी वजह से सूर्य-किरण-स्नान न कर सकने की हालत मे सूर्य-किरण स्नान की जगह प्रयुक्त होता है । विद्युत्-प्रकाश स्नान के लिये एक यन्त्र की आवश्यकता होती है जिसमें श्वेत प्रकाश फेकने वाली आर्क-लैम्प लगा होता है और जो सूर्य-किरण को विकीर्ण करने वाले यन्त्र के समान ही गुणकारी होता है । इस यन्त्र मे कार्बन लैम्प या रंगीन लैम्प भी आवश्यकतानुसार लगाये जा सकते है । इस यन्त्र के अभाव मे विद्युत् प्रकाश-स्नान के लिये एक ऐसा बक्स बनाकर काम में लाया जा सकता है जिसमे रोगी लेटकर या बैठकर पर गर्दन बाहर किये हुए आसानी से प्रकाश स्नान ले सकता है । इस बक्स मे बिजली के कई बल्ब लगे होते हैं । (देखे चित्र)
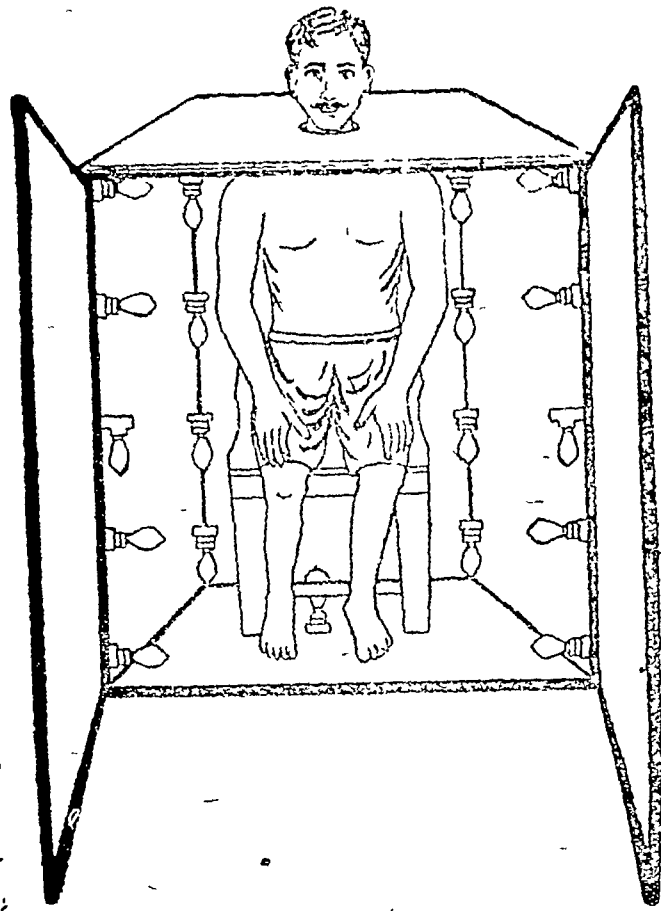
विद्युत प्रकाश-स्नान-बक्स

विद्युत्-प्रकाश-स्नान लेते वक्त सर के ऊपर ठडे पानी भीगी और निचोडी तौलिया अवश्य रखना चाहिये, और जो रोगी कमजोर दिल के हो उनके दिल पर भी ऐसी ठडी पट्टी रखनी जरूरी है। स्नान लेते वक्त विद्युत-प्रकाश की किरणे समूचे शरीर पर या उसके किसी भाग पर पड़ते ही शरीर के भीतर की तरफ रक्त कोषों तक प्रविष्ट हो जाती हैं जिसकी वजह से त्वचा के छिद्र खुल और फैल जाते है जिन से होकर शरीर का विजातीय द्रव्य पसीने के साथ वह निकलता है।

पुरानी गठिया, वात, लम्बेगो, साइटिका, मधुमेह मोटापा गर्मी, जिगर की खराबिया, मूत्राशय के रोग, तथा पेट और आंतो की बीमारियो मे विद्युत-प्रकाश-स्नान से बड़ा लाभ होता है।

इसी प्रकार सूर्य की किरणो के बजाय हम विद्युत-प्रकाश द्वारा जिस यन्त्र के जरिये अल्ट्रावायलेट किरणें लेकर शरीर मे ले[illegible]
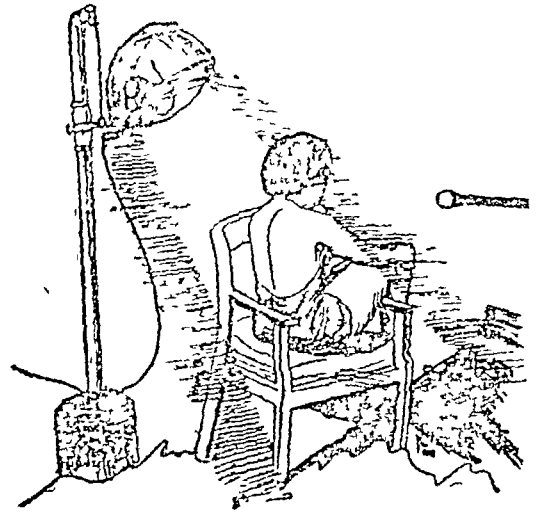
अल्टावायलेट किरण लेने का यन्त्र और रीति
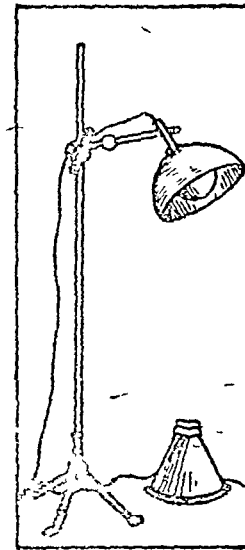
इन्फ्रा बिजली द्वारा सेक देने का यन्त्र

है उसे अल्ट्रावायलेट रेज-यन्त्र कहते है, और इन्फा-विद्युत यन्त्र द्वारा हम सेक देते हैं। देखे चित्र।

विद्युन्मय-वायु का प्रयोग

प्रात.काल की वायु विद्युत से भरपूर होती है। उस समय रबर के जूते पहन कर या सूखी घास के आसन (कुशासन या चटाई) पर सूर्य की ओर मुह करके खडे होकर धीरे-धीरे श्वास लेनी और निकालनी चाहिये और सुखपूर्वक जितनी देर तक भीतर उसे रोका जा सके रोकनी चाहिये। यह एक प्रकार का प्राणायाम है जिसके द्वारा प्राण विद्युत-युक्त होता है। इस सम्बन्ध मे एक बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि श्वास लेने, रोकने तथा [illegible]

न होने पावे।

विद्युन्मय जल का प्रयोग—

इस बात को मामूली से मामूली आदमी जानता है कि वर्षा का जल, विशेषकर उस समय की वर्षा का जल जब वर्षा होने के साथ साथ बिजली की कडक भी होती है, पेड पौधो, तथा संसार के समस्त प्राणियो के लिये विशेष लाभप्रद सिद्ध होता है। इसका रहस्य यही है कि उस जल मे विद्युत-शक्ति का प्रभाव रहता है जो सबको जीवन देती है। प्रकृतित. जल मे विद्युत की गति बड़ी तीव्र हो जाती है। इसी वजह से जिस वस्तु मे जल का अंश होगा उसमे बिजली की रफ्तार तेज होती है।

बिजली की कड़क के साथ होने वाली वर्षा का जल विद्युन्मय होता है सही, परन्तु ऐसा जल सदा और सर्वत्र उपलब्ध नही होता इसलिए जल को विद्युन्मय बनाने की आसान तरकीब नीचे दी जाती है —

ऊपर मेगनेटो द्वारा स्पार्किंग करने का उल्लेख हो चुका है। उसी मैगनेटो को चालू करके उसके तार को जल से भरे शीशे के गिलास, घड़े, हौज और तालाब मे डालकर क्रम से ५, १०, १५ और ६० मिनट तक चलाते रहने से उनमे का जल विद्युन्मय हो जायगा जो जड़-चेतन सबके लिए सञ्जीवनी का काम करेगा। स्वास्थ्य बनाये रखने या रोग निवारण के लिए इस जल को प्रतिदिन पीना, एव इसीसे नहाना और भोजन बनाकर खाना चाहिए।

विद्युन्मय जल से स्नान करने के लिए एक छ फीट लम्बा नहाने का टब जिसमे एक आदमी लम्बे-लम्बे लेट-कर वहा सके लेना चाहिए सुहाता-सुहाता उपर्युक्त विद्यु-न्मय जल (९८ फा० हा०) उसमे भर लेने के बाद नहाने वाले को नगा होकर उसमें इस तरह लेटना चाहिए कि उसका सारा शरीर गर्दन तक तो जल मे डूबा रहे, पर सिर जल के बाहर रहे। १० से १५ मिनट तक जल मे पडे रहने के बाद बदन को पोछना चाहिए। तत्पश्चात कपड़े पहिन लेना चाहिए।

अन्य रोगो के अतिरिक्त सूखारोग से पीडित बच्चो को यह स्नान बड़ा लाभ पहुचाता है। इस स्नान मे स्नायु-मण्डल को शान्ति मिलती है और शरीर की थकावट मिटकर उसमे तत्काल स्फूर्ति आती है। विद्युन्मय जल से फोडे फुन्सियों को धोने या उससे तर की हुई ... लगाने से विशेष लाभ होता है। इसी प्रकार आख ... जलन, कान के दर्द, दांत के दर्द या पायरिया आदि ... मे बिजली के जल से धोना लाभकारी सिद्ध होता है।

विद्युन्मय जल को पीने से भूख खुलकर लगने ... है, पाचन-क्रिया ठीक हो जाती है और सुखकर नींद ... लगती है।

विद्युन्मय जल द्वारा औषधिया तय्यार करने ... औषधि के गुणो मे वृद्धि हो जाती है और अपेक्षाकृत ... औषधियों से रोग जल्द दूर हो जाते है।

प्याज से विद्युन्मय जल बनाना—

मैगनेटो न मिल सकने की हालत मे विद्युन्मय ... एक दूसरी विधि से भी तय्यार किया जा सकता है। जमीन से तुरन्त का उखड़ा हुआ प्याज लेकर उसे ... १०० गुने पानी मे पांच मिनट तक छोड़ रखने से ... सारा का सारा पानी विद्युन्मय हो जाता है। इस से भी वे ही सब लाभ होते है जो मैग्नेटो द्वारा बनाये जल से होते है।

विद्युन्मय भोजन का प्रयोग—

जल के अतिरिक्त भोज्य सामग्री को भी विद्यु... बनाकर उससे लाभ उठाया जा सकता है। विधि ... सरल है। अर्थात् भोज्य पदार्थ जिसे विद्युन्मय ... हो, को प्रात काल तक आधे घटे तक केवल धूप मे ... मात्र से भोज्य पदार्थ विद्युन्मय हो जाता है। इसी सि... न्तानुसार यह स्वीकार किया जाता है कि ताजी सब्जिया, जैसे प्याज, गाजर, मूली, शलजम, ... पालक, करमकल्ला आदि जो धूप से नहाये खेत से ... लायी जाकर और उनका सलाद बनाकर कच्ची ही ... खाती है, स्वभावत: विद्युन्मय होने के कारण शरीर ... विशेष रूप से जीवनी शक्ति प्रदान करती है और ... को दूर भगाने मे सहायता करती है।

विद्युन्मय माला का प्रयोग—

विभिन्न धातुओ के तारो मे विभिन्न रग के काच ... छेददार दानो को पिरोकर क्रमश: तीन चार लड़ी ... मालाये सोते समय पहनने से विद्युत प्रवाह उत्पन्न ... कर शरीर पर अपना प्रभाव डालने लगता है। ... पुरानी से पुरानी नीद की शिकायत मत्रवत् दूर ... जाती है।

लखनऊ के शीशमहल के नवाब सादिकअली खा को नीद आने की बड़ी पुरानी शिकायत थी। उनकी वह शिकायत [उप]युक्त प्रकार की माला द्वारा ही दूर हुई बतायी जाती है।

[पृथ्वी तत्व]मय रबर का प्रयोग

चारपाई के चारो पायो के नीचे पाये की चौड़ाई के बराबर या ३-३ वर्ग इञ्च रबर के टुकडे रखकर सोने से रात को बडी गाढी नीद आती है और स्वास्थ्य पर भी बडा असर पड़ता है। रबर के टुकडे पुराने टायर में से काट कर बनाये जा सकते है।

छठा अध्याय

जल तत्व-चिकित्सा

जल तत्व

प्रलय-काल मे सृष्टि जल मे निमग्न होती है। सर्ग-[काल] मे फिर जल से ही उसका उदय होता है। अर्थात्, [सृष्टि] के आरम्भ मे भगवान की चेतना-शक्ति की प्रेरणा [से क्र]मश आकाश, वायु तथा तेज (अग्नि) के प्रादुर्भाव के बाद रूप तन्मात्रमय तेज के विकृत होने पर उससे [रस] तन्मात्र होता है जिसमें जल तत्व की उत्पत्ति होती [है।] रस वा जल तत्व अपने शुद्ध स्वरूप मे एक ही है, [किन्]तु अन्य भौतिक पदार्थों के सयोग से वह कसैला, [मीठा], तीखा, कड़ुआ, खट्टा, नमकीन तथा गदला आदि [हो ज]ाता है।

[सब] वस्तुओ को गीला करना मिट्टी आदि को पिण्डा-[कार] बना देना, तृप्त करना, प्राणियो को जीवित रखना, [आग क]ो बुझाना, पदार्थों को मृदु कर देना, ताप की निवृत्ति [करन]ा, सब प्रकार की स्वच्छता प्रदान करना और कूपादि [से] निकाल लिये जाने पर उन्हे पुन· भर देना—ये जल [की प्रव]ृत्तिया हैं।

[श्]रम, क्लान्ति, मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन, विबध निद्रा को दूर करना, शरीर को बल देना, उसे तृप्त [करन]ा, हृदय को प्रफुल्लित रखना, शरीर के दोषो को दूर [करन]ा छ· प्रकार के रसो का कारण बनना तथा प्राणियो [के लि]ए सर्वदा अमृत तुल्य सिद्ध होना आदि जल के साधा-[रण] कार्य है तथा शीतलता, सरलता, हल्कापन, स्वच्छता, [...]रता, मेद्यता (Permeability) अस्थिरता (Mobi-[lity]) तथा निर्गु णता इसके प्राकृत गुण है।

जल के अनेक नाम है जैसे, पानीय, सलिल, नीर, [...]न, जल, अम्बु, आप, वारि, वारिक, तोय, पय, पाथ, [...], जीवन, वन, अम्भ·, अर्ण, अमृत और धन रस आदि। इन नामो मे जल का नाम जीवन अमृत होना इस बात की ओर सकेत करता है कि प्राणियो का जीवन धारण करना जल पर ही अवलम्बित है अथवा जल प्राणियो का प्राण है।

वेदो मे जल के गुणो की प्रशसा और जल द्वार रोग-निवृति के वर्णन स्वरूप कितनी ही ऋचायें हैं। उनमे से कुछ नीचे दी जाती है—

जलाषणाभिषिचत जलाषेणोपसिंचत।
जलाषमुग्रं भेषजं तेननोमृड जीवसे॥
ऋ० मं० ६ अ० ५७ मं०२

अर्थात्, भगवान आदेश देते है कि जल से अभिसिंचन करो, जल से उपसिंचन करो। जल सर्व प्रधान औषधि है। इसके सेवन से जीवन सुखमय बनता है और शरीर की अग्नि भी आरोग्यवर्द्धक होती है।

आप इद्वा उ भेषजीरापो अभीव चातनीः।
आपस सर्वस्य भेषजीस्तास्तु कृण्वन्तु भेषजम्॥
ऋ० १०।१३७।६

अर्थात् जल ही औषधि है, जल रोगो का दुश्मन है, यह सभी रोगो को नाश करता है, इसलिए यह तुम्हारा भी रोग दूर करे।

"अमृतं वै आपः"
तै० आ० १।२६

अर्थात् अमृत का देने वाला जल ही है।

आप इद्वा उ भेषजीरापो अभीव चातनी।
आपस सर्वस्य भेषजी स्तास्ते सुञ्चन्तु चेत्रियात्॥
अथर्व० ३।७।५

अर्थात् जल ही औषधि है, जल रोग को दूर करता है, जल सब रोगो का सहार करता है। अतएव यह जल तुम्हे भी कठिन रोग के पजे से छुड़ाले।

इसी तरह अथर्व० ६।५७।१ से ३ तक मे जल-

चिकित्सा पर बहुत कहा गया है।

शन्नो देवी रभिष्टये आपो भवन्तु
पीतये शंयोरभिस्रवन्तुनः।
ऋ० १०।९।४

अर्थात्, हे ईश्वर! दिव्य गुणो वाला जल हमारे लिये सुखकारी हो, अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति कराये, हमारे पीने के लिए हो, सम्पूर्ण रोगो का नाश करे, तथा रोगो से पैदा होने वाले भय को न पैदा होने दे और हमारे सामने बहे।

इदमापः प्रवहत यत् किंच दुरितं मयि।
यद्वा अहम्अभिदुद्रोह, यद्वा शेपे उतानृतम्॥

अर्थात् हे परमात्मा! मुझ मे जो पाप (भीतर-बाहर का अशौच) है मैंने जो द्रोह, विश्वासघात किया या मैंने जो अपशब्द कहे है या मैं जो झूठ बोला हूँ उन सबको जल वहा ले जाय।

मनु जी ने भी लिखा है—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यानी, मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥
मनु० अ० ५। श्लोक १०९

अर्थात् जल से शरीर शुद्ध होता है, सत्य से मन, विद्या और तप से आत्मा तथा बुद्धि से ज्ञान शुद्ध होता है।

जल, प्राण-रक्षा के लिए प्रसिद्ध पञ्च तत्वो मे चौथा तत्व है। यह जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना श्वास लेने के लिये वायु। हमारे शरीर के वजन के १०० भागो मे ७० भाग केवल जल है, अर्थात् हमारी आंखो मे ९८ ७%, फेफडो मे ७९%, हृदय मे ७९ ५% रक्त मे ८०%, हड्डियो मे २५% और मस्तिष्क मे ९०% जल होता है।

सासारिक जीवन का तो आरम्भ ही जल से हुआ है जो वैज्ञानिक विकासवाद पौराणिक अवतारवाद तथा औपनिषादिक सृष्टिवाद तीनो से सिद्ध है अत. इसी जल से हमारा पालन पोपण भी सम्भव है विना जल के हम जी नही सकते। अत. जल ही विष्णु है, हमारा पालनहार और रक्षक है वायु मण्डल वास्तव मे वाष्प मण्डल है थोडी देर के लिए भी यदि जल का अंश वायु से खिच जाय वायु, जल शून्य होजाय तो यह भूमण्डल भी जीव शून्य होजाय जल मे सभी कुछ घुल जाता है नितान्त विशुद्ध जल में कांच तक घुल जाता है और तेल भी। लगभग २००० अंश पर तो जल प्रायः सभी धातुओ को इस तरह घुला देता है जैसे हलका गंधक का तेजाव। यदि लोहा लाल करके जल मे छौंक दिया जाय तो जल मे औषधि का विशेष गुण आजाता है इस सम्बन्ध मे महर्षि सायणाचार्य का एक सूक्त याद आगया, अर्थात् लोहे के कुठार को अग्नि मे गरम करके पानी मे बुझावे और उससे शीत ज्वर के रोगी का सिंचन करे। यथा—

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्ययत्राकृावन धर्मधृतो नमांसि।
तत्र त आहुःपरमं जनित्रं सनःसंविद्वान्परिवृडग्धितक्मन्॥
(१।१।२५।१)

अर्थात् जो अग्नि जल मे प्रवेश करके उसे जलाता है धर्मात्मा जिसमे हवन-करता हुआ नमस्कार करता है हे ज्वर उस अग्नि को तेरा उत्पन्न करने वाला कहते है इसे जान कर तू हमारे शरीर से दूर हो जा।

जल मे उत्ताप को ग्रहण कर लेने की शक्ति है जिससे रोगोपचार मे वड़ी मदद मिलती है। जल अधिक गर्मी पाकर भाप बन सकता है और आकाश मे विलीन हो जा सकता है तथा पुन. वर्षा के रूप मे पृथ्वी पर गिर कर प्राणियो की जीवन रक्षा का कारण बन सकता है जल शीतलता के अधिक होने पर पत्थर सा हिम बन जाता है। जल में आग बुझाने की विशेष शक्ति होती है इसलिए जल का प्रयोग ज्वर मे सफल होता है। मिट्टी भी आग को बुझा देती है यही कारण है जो जल और मिट्टी का सयुक्त प्रयोग, गीली मिट्टी की पट्टी के रूपमे शरीर की बढी हुई गरमी (ज्वर फोड़े आदि रोगो मे) को शान्त करने मे जादू का काम करता है

जल तीन प्रकार का होता है—मृदु, स्थाई कठोर, तथा अस्थाई कठोर।

मृदु जल—खादको का गदला पानी, बहती दरिया का पानी वर्षा का पानी तथा उथले कूओं का जल मृदु होता है एसा स्वास्थ्य के लिए अहितकर है पर ऐसे जल मे वस्त्र घुलते है और ऐसा ही जल एंजिन चलाने के काम में आता है। मृदुजल की सबसे आसान पहिचान यह है कि जल मे तनिक सा साबुन मलने से ही भाग उठने लगे और धोने पर भी साबुन शीघ्र नही छूटता नलका पानी गहरे कूये का पानी कठोर होता है। ऐसे पानी washing soda मिलादेने से वह मृदु हो जाता है उसमे साबुन मिलाने से खूब भाग उठने लगता है।

स्थाई कठोर जल—जो जल हम सदा पीने के काम मे लाते है वह साधारण कठोर होता है। जिस जल की कठोरता उसको उबालने से नही दूर होती और उसको दूर करने के लिए अर्थात् उसे मृदु बनाने के लिए उसमे खनिज पदार्थों को मिलाने की आवश्यकता पडती है ऐसे जल को स्थाई कठोर जल कहते है। स्रोतो, गहरे कूओ एव नल का पानी कठोर होता है। चूना आदि खनिज जो जल मे घुल जाते हैं वे जल को कठोर बना देते है। ऐसे जल मे साबुन मलने से अधिक झाग नहीं उठ सकता। कठोर जल स्वास्थ्यवर्द्धक होता है।

अस्थाई कठोर जल—ऐसे जल को उबालने से उसकी कठोरता दूर होकर वह मृदु हो जाता है। वर्षा का संग्रहीत जल तथा जुती भूमि पर एकत्र जल प्राय अस्थाई कठोर होता है जो स्वास्थ्य के लिए कम हितकर है।

ठण्डे जल के बाह्य प्रयोग

प्रथम इसके कि ठडे जल के बाह्य वा आन्तरिक प्रयोगो पर कुछ प्रकाश डाला जाय, ठडे जल का हमारे शरीर पर क्या प्रभाव होता है, यह जान लेना अति आवश्यक है।

किसी व्यक्ति के शरीर पर यदि एक बाल्टी ठडा पानी उडेल दिया जाय तो सर्व प्रथम उसको अपने भीतर एक तरह का धक्का सा लगना प्रतीत होगा जिससे वह विचलित होता दिखाई देगा। यह स्थिति शरीर के रक्त को अन्दर की तरफ भेजने वाले रक्तकोषो मे सकुचन के कारण उत्पन्न होती है। धक्का-सा लगता प्रतीत होने के साथ ही उस व्यक्ति को ठंडक मालूम होने लगेगी क्योकि त्वचा पर जल के प्रयोग के कारण पहले ऊपरी भाग के ठडा होते ही, तथा रक्त के भी भीतर दूर चले जाने की वजह से वहा की गरमी घट जाती है। फलत शारीरिक विद्युत् की क्रिया मद पड़ जाती है और ठंड लगने लगती है। मगर ये सब लक्षण क्षणिक, तात्कालिक एव अस्थाई ही होते हैं। क्योकि इन लक्षणो के प्रगट होने के दूसरे ही क्षण इस क्रिया की प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अर्थात् नीचे गया हुआ रक्त पुन. तेजी से या धीरे धीरे त्वचा की सतह की ओर वापस होता है। ऊपरी ठडी जगह को गरम करने, सकुचित शिराए और कोष फैल जाते है, विद्युत स्फूर्ति बढ जाती है, नीले रक्तहीन चमडे पर ललाई छा जाती है तथा पसीना होने लगता है जिसके जरिये शरीर का विष उखड कर बाहर निकलने लगता है। ठडे जल प्रयोग के प्रतिक्रिया वाले ये लक्षण सुदृढ, अधिक टिकाऊ और स्थायी होते है। शरीर पर ठडे जल का प्रयोग प्रथम के कुछ क्षणो मे ठडक पैदा करने वाला, बुरा एव असुविधाजनक प्रतीत होता है, परन्तु बाद को वह सदा ही शरीर को गरम करने वाला, सुखदाई एव अत्यन्त लाभदायक होता है। डाक्टर दिलकश ने अपनी पुस्तक 'प्राकृतिक चिकित्सा' मे लिखा है कि रोग निवारण मे जल-चिकित्सा का व्यवहार ठडे जल के स्थायी अथवा प्रतिक्रियात्मक प्रभाव के लिये ही किया जाता है। इस सम्बन्ध मे यह बात याद रखने की है कि जल तथा शरीर के तापमान मे जितना ही अधिक अन्तर होगा उतनी ही अधिक प्रतिक्रिया भी होगी जिसके परिणामस्वरूप प्रभाव स्थायी होगा।

ठडे पानी का शरीर पर अल्पकालीन प्रयोग:—

१—शारीरिक तापमान को बढ़ाता है।
२—त्वचा की कार्यशीलता मे वृद्धि करता है।
३—रक्त चाप को बढ़ाता है।
४—शरीर की नाड़ियों को उत्तेजित करता है।
५—हृदय की क्रियाशीलता को तीव्र एवं दृढ करता है।
६—मासपेशियो को सकुचित करता है।
७—त्वचा के पास के रक्त कोषो को अल्प समय के लिए सकुचित करता है।
८—पोषण शक्ति को बलवती करता है।
९—श्वास-क्रिया को मद्धिम करता है।

ठडे पानी का शरीर पर दीर्घकालीन प्रयोग.—

१—शारीरिक तापमान को घटाता है।
२—त्वचा की क्रियाशीलता ह्रास उत्पन्न करता है।
३—रक्तचाप को घटाता है।
४—शरीर की नाड़ियो पर मृदु प्रभाव डालता है।
५—हृदय गति को कमजोर करता है।
६—त्वचा के पास के रक्तकोषो को सकुचित करता है।
७—पोषण शक्ति को बहुत कम प्रभावित करता है।
८—श्वास-क्रिया को मद्धिम करता है।

६—मांसपेशियों को संकुचित करता है ।

इस तरह हम देखते हैं कि ठंडे जल का असर जो शरीर की त्वचा पर होता है वह वहीं तक सीमित नहीं होता, अपितु उसका असर शरीर के अन्दर की मांसपेशियों नाड़ियों एवं रक्त शिराओं पर भी पड़ता है। क्योंकि शरीर का ऊपरी भाग अपने नाड़ी मंडल एवं रक्त शिराओं के विचित्र सहयोग द्वारा शरीर के भीतरी भाग से जुटा होता है। यही कारण है जो ठंडे पानी के बाहर प्रयोग से पाचन-संस्थान आदि के रोग दूर हो जाते हैं और भूख बढ़ जाती है। यहां तक कि ठंडे पानी के साधारण दैनिक स्नान के बाद भूख तेजी से लगने का अनुभव सब को रोज होता है।

अधिक ठंडे जल या बरफ का शरीर की त्वचा पर प्रयोग बड़ा अनिष्टकारी होता है। अतः रोगी के शरीर पर बरफ की थैली या बरफ के पानी का प्रयोग खतरे से खाली नहीं होता। अत्यन्त ठंडक शरीर के लिए उतनी ही हानिकारक है जितनी विषैली औषधियां। अत्यन्त ठंडा जल या बरफ का प्रयोग रोग के उभार को दबा देता है। उससे रोग बजाय अच्छा होने के और जीर्ण हो जाता है। बूढे, कमजोर, रोगी, तथा छोटे बच्चों को तो भूले से भी कभी बहुत अधिक ठंडे जल से स्नान करना ही नहीं चाहिए। ऐसा करने से उनकी जान पर बन आ सकती है।

ठंडे जल का प्रयोग कब और कितनी देर तक करना चाहिये, यह भी बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है। सिद्धान्त की बात तो यह है कि जब शरीर गरम हो तभी स्नान करना उत्तम और लाभदायक है। जैसे यदि इतनी कसरत करली जाय कि शरीर गरम हो जाय तो उसके तुरन्त बाद किये गये जल के प्रयोग लाभकारी सिद्ध होंगे। कारण, तब जल-प्रयोग की प्रतिक्रिया शरीर के गरम होने के कारण शीघ्रता से होगी। पर यदि शरीर थका हो तो उसपर जल-प्रयोग की प्रतिक्रिया धीमी होती है। फलत. लाभ के बदले हानि होती है। इसीलिये बहुत थकान की हालत में ठंडे जल का कोई प्रयोग नहीं करना चाहिये। बहुत परिश्रम करने के बाद अगर थकावट मालूम दे तो पूरा विश्राम करके थकावट मिटा लेने के बाद ही स्नान करना ठीक है, पहले नहीं। और अगर किसी वजह से स्नान करना ही पड़े तो पहले गरम जल से स्नान करके ठंडे जल से स्नान करें तो हानि न होकर लाभ ही होगा। थकावट की दशा में ही नहीं, अन्य दशाओं में भी, शरीर की त्वचा गरम नहीं है और ठंडे जल का प्रयोग करना है तो उसके पहले गरम जल का प्रयोग अत्यावश्यक है ताकि रक्त त्वचा के निकट आ जाय। चिकित्सा में शीघ्र और अच्छे लाभ के लिये ठंडे जल का प्रयोग करने के पहले पैरों को भी इसीलिये गरम कर लेते हैं।

ठंडे जल का प्रयोग कितनी देर तक करना चाहिए यह तो उम्र, जीवनी-शक्ति, रोग कितना पुराना है, मौसम कैसा है ? आदि कितनी ही बातों पर विचार कर लेने के बाद ही निश्चय किया जा सकता है, पर साधारणतः ठण्डे जल का प्रयोग उतनी ही देर तक करना चाहिए जितनी देर तक उससे आराम मालूम हो। अधिक देर तक ठण्डे जल के प्रयोग से स्फूर्ति की अनुभूति तो होती है, पर उसके बाद आलस्य, अवसाद, एवं थकान का अनुभव होने लगता है जो बुरा है। इसलिये किसी को ठण्डे जल का प्रयोग बहुत अधिक देर तक नहीं करना चाहिए। जल चिकित्सा में इसी कारण उदर या कटि स्नान आधा घंटा से अधिक देर तक न दिये जाने का विधान है इसी सिद्धान्तानुसार निर्बल रोगियों, बूढ़ों और छोटे बच्चों, जिनकी प्रतिक्रियात्मक-शक्ति क्षीण होती है, पर ठण्डे जल का प्रयोग अधिक देर तक करना खतरे से खाली नहीं है।

ठण्डे जल के वैज्ञानिक ढंग के प्रयोगों से रोग क्यों और कैसे अच्छे होते हैं ? अब इसे समझना चाहिये।

जो लोग जल चिकित्सा-विज्ञान को भलीभांति नहीं जानते वे प्रायः सोचते हैं कि भला मामूली पानी के प्रयोग से कोई रोग कैसे अच्छा हो सकता है ? ऐसे लोगों को जानना चाहिये कि जल और उसके प्रयोग यद्यपि देखने में बहुत मामूली और सीधे-सादे प्रतीत होते हैं, पर वे रोगों को दूर करने के लिये बड़े ही शक्तिपूर्ण एवं अचूक होते है। शर्त सिर्फ इतनी ही है कि प्रयोग विधिवत् और सावधानी के साथ होने चाहिये, साथ ही साथ प्रयोग निर्धारण के समय रोगी के बलाबल, स्थिति, एवं अवस्था का भी ध्यान अवश्य रखना चाहिए, अन्यथा लाभ के

हानि हो सकती है। जैसे जो प्रयोग एक सशक्त व्यक्ति को उसके किसी रोग को दूर करने मे सहायक हो सकता है, वही प्रयोग उसी रोग से पीडित बूढे व्यक्ति के लिये सहायक सिद्ध हो सकता है।

ठण्डे जल के उपचार वस्तुत शरीर को रोगो से लड़ने के लिये शक्ति प्रदान करते है, अथवा रोगो के मूल कारण शरीर स्थित विष को बाहर निकाल फेकने मे शरीर की सहायता करते है, अथवा शरीर के लिये 'टानिक' का काम करते है जिससे शरीर की जीवनी-शक्ति अधिकाधिक बलवती होकर रोगो को दूर करने मे सफलता प्राप्त करती है। प्राकृतिक चिकित्सा का यह भी एक सिद्धान्त है कि जिस समय शरीर की जीवनी शक्ति, वा उसमे रोग का मुकाबिला करने की शक्ति का ह्रास होता है उसी समय हम रोगी होते है। ठण्डे जल के वैज्ञानिक प्रयोगो से वह शक्ति बहुत बढ़ जाती है जिससे यदि शरीर रोगी रहा तो वह रोग मुक्त हो जाता है और यदि न रहा तो उसे रोग के आक्रमण का भय नही रहता, और स्वास्थ्य स्थाई रूप से चमक उठता है। इग्लैड के प्रसिद्ध डाक्टर क्यूरी (Dr. James Currie) कहते है कि यदि कोई व्यक्ति प्लेग के रोगियो के बीच रहे और विधिवत ठण्डे जल के वैज्ञानिक स्नान करता रहे तो उसे प्लेग की बीमारी नही हो सकती है। इसी प्रकार एक दूसरे डाक्टर Alfred Martinet, M. D. का कथन है कि अगर आसपास हैजा फैला हो तो दिन मे दो तीन बार ठण्डे पानी का वैज्ञानिक स्नान करने से कोई भी हैजे के रोग से बचा रह सकता है। अर्थात् उस पर हैजे के कीटाणुओं का कुछ भी असर नहीं हो सकता।

ठण्डे जल के वाह्य प्रयोग से न केवल शरीर की ऊपरी त्वचा ही प्रभावित होती है अपितु उनका सीधा असर शरीर के भीतरी अवयव—आमाशय, यकृत, स्नायु-मण्डल, तथा रक्त शिराओ आदि पर भी पड़ता है जिसकी वजह से उनके रोग उखड़कर सदा के लिये दूर हो जाते है। ठण्डे जल के प्रयोगो से पाकस्थली मजबूत होती है, आते अपना काम सुचारु रूप से करने लगती हैं गुर्दे और जिगर अपना अपना स्वाभाविक कार्य करने लगते है, हृदय ताकतवर बनता है, खून मे खरापन आकर वह शुद्ध हो जाता है मानसिक शक्तिया बलवती होती हैं, तथा शरीर का विजातीय द्रव्य, जो रोगों का मात्र कारण होता है, छंट जाता है।

जल के प्रयोग से रोग क्यो दूर होते है? इसका कारण जल मे अपनी कुछ विशेषताओ का होना है। उसमे उन आरोग्यकारक गुणो (Remedial Powers) की विद्यमानता है जो चिकित्सा के क्षेत्र मे अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाते है। जल की वे विशेषताये अथवा गुण निम्न लिखित हैं—

१—जल किसी वस्तु के सम्पर्क मे आने पर अपनी गरमी या ठडक उसे बड़ी शीघ्रता से दे सकता है और उसकी गरमी या ठडक ले सकता है।

२—जल किसी भी अन्य वस्तु की अपेक्षा अधिक गरमी या ठंडक रोके रह सकता है।

३—जल तरल होने के कारण चिकित्सा विधियों में आसानी से काम आ सकता है।

४—जल अन्य चीजों को घुला कर वहा सकता है जिसकी वजह से ही वह स्नान, एनिमा, डूश के लिए प्रयुक्त होता है।

५—शरीर मे ताप सम्बन्धी तीन यन्त्र है। पहले को उष्ण-उत्पादक, दूसरे को उष्णप्रसारक, और तीसरे को उष्णवाहक कहते है। इन्ही के द्वारा शरीर मे गरमी का उत्पादन, प्रसारण और बहिष्करण होता है। जल इन तीनों को प्रभावित करता है, विशेषकर पिछले दो यन्त्रो को।

जल के प्रयोग से रोग कैसे दूर होते है? अब इस पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

ठंडा जल जब शरीर के सम्पर्क मे आता है। तो उसका महत्वपूर्ण प्रभाव शरीर की सूक्ष्म शक्तियो पर पड़ता है जिससे शरीर मे विद्युत-शक्ति की वृद्धि होजाती है, जिससे शारीरिक जीवनी-शक्ति को स्फूर्ति और बल मिलता है जो रोगो को दूर करने मे काम आता है। मतलब यह कि जीवनी-शक्ति, जो रोगो को दूर करती है, केवल गरमी या सर्दी के निरन्तर ससर्ग से प्रभावित नहीं होती। वह तो उत्तेजित होती है गरमी और सर्दी के क्रमिक प्रयोग से। शरीर स्वभावत गरम होता है, अत. जब उस पर ठंडे जल का प्रयोग किया जाता है तो वि[illegible] शक्ति का प्रवाह होने लगता है जिससे जीवनी शक्ति वती हो जाती है और तब वह कठिन से कठिन [illegible]

भी जड़-मूल से उखाड़ फेंकती है। ठंडे जल के प्रयोग के फलस्वरूप शरीर मे जो विद्युत-शक्ति का प्रवाह होने लगता है, उससे शरीर मे कई अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगते है जो रोगो को दूर करने मे बडे सहायक सिद्ध होते है। जैसे, उस विद्युति शक्ति द्वारा जल के परमाणु अपने मूल तत्वो मे विभक्त हो जाते है जिससे शरीर मे आक्सीजन, हाइड्रोजन, तथा ओजोन गैस की वृद्धि हो जाती है। आक्सीजन और ओजोन से शरीर के विजातीय द्रव्य (विष) जल जाते है और शरीर निरोग और निर्मल हो जाता है।

ठंडे जल का शरीर पर प्रयोग करने पर रोग-निवारण के निमित्त विद्युत-शक्ति उचित मात्रा मे तभी उत्पन्न होगी जब—

१—ठडे जल का प्रयोग शरीर की त्वचा के एक छोटे से हिस्से पर होगा जैसे मेहन-स्नान मे होता है।

२—शरीर का भाग, जो ठंडे जल के प्रयोग के लिए चुना जाय, शरीर के बीचोबीच या लगभग बीचोबीच मे हो जैसे उदर-स्नान मे उदर को चुना गया है।

३—प्रयोग में आने वाले ठडे जल की मात्रा इतनी कम हो कि जिससे जरूरत भर, रफा हो जाय, जैसाकि ए० जुस्ट के प्राकृतिक-स्नान मे जल की मात्रा होती है। नदी या तालाब के अधिक जल मे वैज्ञानिक ढग के स्नान उतना लाभ नही करते।

४—ठडे जल का दवाव या रगड शरीर की त्वचा पर हो, जैसा उदर स्नान मे होता है, तथा—

५—प्रयोग मे आने वाला जल अधिक ठडा न हो जिसको कि रोगी आसानी से बर्दाश्त न कर सके।

जल-चिकित्सा के अन्तर्गत ठडे जल के बाह्य प्रयोगो के लिये साधन बहुत थोडे होते है—स्नानो के लिए टब तथा साधारण जल और भीगी पट्टियों के लिये कपड़े की कुछ पट्टियां और चादरे, बस। जल जो इन प्रयोगो मे प्रयुक्त होता है, वह यदि बरसात का हो तो सर्वोत्तम, या फिर नदी या तालाब का हो। बरसात अथवा नदी या तालाब का जल न मिलने पर कूंये का ताजा जल लाभ के साथ काम मे लाया जा सकता है। मतलब यह कि प्रयोग के लिए साधारण तापमान का जल ही लेना चाहिए। जल न अधिक ठडा हो और न कम ठडा हो। ३२ से ५५ डिग्री तक तापमान वाला जल बहुत ठडा जल कहलाता है, ५५ से ६७ डिग्री तक वाला ठडा तथा ७० से ८५ डिग्री तक वाला जल कम ठडा जल कहलाता है।

अब नीचे ठडे जल के प्रयोग की विविध विधियों का वर्णन किया जायगा और यह भी बताया जायगा और यह भी बताया जायगा कि रोग की किन किन दशाओं में वे क्यों उपयोगी सिद्ध होते है?

१—साधारण दैनिक स्नान

साधारण स्नान जो हम-आप रोज करते हैं उसके करने का भी एक वैज्ञानिक ढंग है। केवल दो चार लोटे पानी शरीर पर डाल लेने को ही स्नान नही कहते जैसे कि अधिकाश लोग समझते और करते हैं।

स्वस्थ जीवन के लिये प्रतिदिन भोजन और व्यायाम जितने जरूरी हैं, दैनिक स्नान उनसे कम जरूरी नही है। भारत मे, इसी कारण यह स्नान प्रत्येक व्यक्ति के लिये नित्य की एक आवश्यक क्रिया है और लोग सदा से इसको सदाचार का एक अग मानते आरहे हैं।

स्नान का जल ताजा निर्मल और ठडा अर्थात् ६५ से ... के दरम्यान का होना चाहिए। साधारणतः ऐसे जल का तापमान शरीर के तापमान से थोडा कम होता है। जल दो प्रकार का होता है—एक मृदु और दूसरा कठोर। मृदु जल जिसमे तनिक सा साबुन मलते ही झाग उठने लगता है, स्नान के लिये ठीक होता है। कठोर जल जिसमें ... आदि खनिज पदार्थों का मिश्रण होता है स्नान के लिये ठीक नही होता। दैनिक साधारण स्नान के लिये कूएं का जल जो अधिक व्यवहार मे आता है अच्छा है क्योंकि उसका तापमान आप से आप ऋतु और समयानुसार बदलता रहता है जो यथेष्ट सुखप्रद साथ ही साथ लाभकारी भी होता है।

स्नान करते वक्त साबुन का व्यवहार भूलेहु नही करना चाहिये। कारण, साबुन को पानी के साथ से बदन पर मलने से उसके सूक्ष्म कण रोम कूपों में घुसकर वही सट जाते है जिससे रोम कूप बन्द हो जाते है विशेषकर उस दशा मे जब स्नान का जल मृदु नही होता। दुख का विषय है कि आधुनिक वातावरण मे रहने वाले अधिकाश व्यक्तियों का स्नान साबुन बिना पूरा ही नही होता। उनकी समझ से जो ...

, शरीर को मल एव दुर्गन्धरहित बनाये रखने का सबसे सहल साधन साबुन ही है। वे भूल जाते हैं कि साबुन त्वचा के लिए कितना हानिकारक होता है। वह रोमकूपो मे प्रविष्ट हो कर रक्तवाहिनी नलिकाओ को कमजोर बना देता है। चमड़ी को शुष्क कर देता है। सोडियम सिलिकेट, तेल, ओलेइक एसिड, स्टेरिक येसिड, नैप्था तथा रेजिन मुख्य वस्तुए है जिनके मेल से अच्छे से अच्छा और घटिया से घटिया साबुन बनता है। परन्तु इनमे तेल को छोड़कर अन्य सभी वस्तुए ऐसी है जो शरीर की त्वचा को शत-प्रतिशत हानि पहुंचाती है यहा तक कि अगर इनका प्रयोग त्वचा पर देर तक किया जाय तो इक्जेमा की बीमारी अवश्य हो जाय। साबुन का व्यवहार करने वाले सभी व्यक्तियो को फिर त्वचा की बीमारी क्यो नही हो जाती, इसका कारण यही है कि स्नान के वक्त केवल अल्प काल के लिए ही साबुन का व्यवहार करके वे उसे पानी से धोकर वहा देते है।

वदन के एलावा आजकल वालो को भी साबुन से धोने का रिवाज और फैसन चल पड़ा है, जिसका परिणाम यह है कि क्या जवान क्या बूढ़े, प्राय. सभी के बाल समय के पहले ही सफेद नजर आते है जिसकी वजह प्रतिदिन साबुन के व्यवहार के कारण वालों की जडों का कमजोर होना ही है। साबुन के प्रयोग से बाल बेतरह झड़ने भी लगते है। अत सौन्दर्य की अभिलाषिणी स्त्रियो को तो अपने वालो पर भूले से भी साबुन का प्रयोग नही करना चाहिए। इसकी जगह वे आवला, वेसन, दही, नीबू, या काली मिट्टी का प्रयोग शौक से कर सकती हैं। इनसे वाल मुलायम रहते है, उनकी जडे मजबूत बनी रहती हैं, तथा वे शीघ्र सफेद नही होते, साथ ही साथ सफाई के लिए इन चीजो के प्रयोग से सिर मे कोई रोग नही होता।

स्नान के पहले आवले का चूर्ण नीवू के रस मे मिला कर कुछ देर तक सिर पर रगडने से बाल अधिक काले, नर्म, और मजबूत हो जाते हैं। इसी प्रकार नीबू के रस और वेर की पत्ती के रस को मिलाकर वालो पर रगड़ने से गजे स्थान पर भी वाल उग आते है। वालो को दही से मजने से वालो की जड़े फटने नही पाती। वथुए का साग उवालकर वालो मे लगाने और उसके पानी से धोने से वाल बेहद नर्म हो जाते है। तिल के फूल और गाजर को एक साथ पीस कर वालो पर रगड़ने से वाल लम्बे और सघन उत्पन्न होते हे।

त्वचा की मैल को छोडाने के लिये साबुन की जगह निम्नलिखित निर्दोष वस्तुओ को लाभ के साथ काम मे लाया जा सकता है—

(१) स्नानोपरान्त अङ्ग प्रत्यङ्ग को हथेलियो से शुष्क घर्षण करके।

(२) खुरदरे तोलिया से रगड़ कर।

(३) महीन बालू मिली हुई गीली मिट्टी को साबुन की तरह इस्तेमाल करके।

(४) वेसन और पानी के घोल से शरीर को मल कर।

(५) भुने हुए और ठडा किये हुए खट्टा नीबी के रस को पानी के साथ वदन पर मल कर।

(६) एक-दो चम्मच गेहू का आटा एक कटोरी मे घोले। तत्पश्चात् उसमे दो चम्मच नारियल या जैतून का तेल तथा नीबू की १५-२० बूंदे निचोड़ कर सबको एक रस करे और नहाने के पहले प्रतिदिन शरीर पर इसकी मालिश करे, त्वचा स्वच्छ और कोमल हो जायगी।

शरीर ठण्डा रहते साधारण स्नान नही करना चाहिए, अपितु स्नान से पहले शरीर को किसी विधि से थोड़ा गरम कर लेना उचित है। ऐसा करने के लिए शुष्क घर्षण स्नान सर्वोत्तम है। विधि है —

हाथ की हथेलियो, खुरदुरे तौलिया, स्पञ्ज या बहुत नरम और मुलायम ब्रुश लेकर उससे शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को चोटी से लेकर एडी तक बारी-बारी से इतना इस प्रकार रगडिए कि वे गरम हो जाय और उनपर ललाई छा जाय। सिर से शुरु कीजिए, उसके बाद माथा, फिर चेहरा और गर्दन। फिर एक एक करके दोनो हाथो को कलाई की ओर से रगड़ना शुरु करके कधो की ओर रगडिए। हाथो के बाद कधो सीना, बगल पेट और पीठ को रगडिए। सबके अन्त मे पैरो को इस प्रकार रगडिए कि रगडते समय वह सीधे रहें साथ ही झुककर पजो की ओर से रगडते हुए टांगो को जाघो की ओर लाइये। शुरू मे यह मालिश धीरे धीरे ही होनी चाहिए

पड़ने पर इसे कड़े हाथो और अधिक देर तक करना चाहिए। एक-एक अङ्ग को ५-५, ६-६ बार रगडना काफी होता है।

साधारण स्नान के प्रथम इस शुष्क घर्षण-स्नान (Dry Friction Bath) का बडा महत्व है। इससे रक्त अधिकाधिक त्वचा की ओर पहुँचता है जिससे रक्त शिराए फैलती है और शरीर के रोमकूप खुल जाते है। परिणाम यह होता है त्वचा निरोग और निर्मल हो जाती है और खुले हुए रोम कूपो द्वारा शरीर का भीतरी मल जो पसीने के रूप मे भी निकलता रहता है, बाहर निकल जाता है। इस क्रिया से समूचे शरीर मे एक प्रकार की बिजली दौड़ने लगती है और शरीर चमक उठता है। मानव-शरीर के चारो तरफ जो अदृश्य तेज होता है उसमे वृद्धि होने लगती है। इस क्रिया से सारे शरीर की गर्मी समानता को प्राप्त होती है, शरीर मे स्फूर्ति जान पड़ती है और मनुष्य सर्दी गर्मी की अनेक बीमारियो से बचा रहता है। शुष्क घर्षण-स्नान से शरीर की उतनी ही सफाई होती है, उसे उतनी ही गर्माहट मिलती है जितनी कि गरम जल के स्नान से, साथ ही साथ गरम जल के स्नान से शरीर को जो हानिया होती है वे शुष्क घर्षण-स्नान से बिलकुल ही नही होती। रोज रोज गरम जल से स्नान करने की सलाह किसी को भी नही दी जा सकती क्योकि ऐसा करने से शरीर को बड़ी क्षति पहुचती है। परन्तु शुष्क घर्षण-स्नान कोई भी रोज-रोज करके लाभ उठा सकता है। बर्नर मैकफेडन ने एक स्थान पर लिखा है कि एक नवयुवक ने इस घर्षण स्नान से ही अपने को यक्ष्मा रोग के विकराल पजे से मुक्त कर लिया, खासी और जुकाम तो इससे होते ही-नही।

दैनिक स्नान के प्रथम किया गया उपर्युक्त शुष्क घर्षण स्नान यदि प्रातः काल की हल्की धूप मे किया जाय तो वह निश्चय ही अधिक लाभकारी होता है। क्योकि उस हालत मे शरीर की पुष्टि के साथ-साथ उसे विटामिन 'डी' की भी प्राप्ति होती है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिए एक बहुत आवश्यक वस्तु है।

शुष्क घर्षण-स्नान के स्थान पर साधारण स्नान के प्रथम शरीर मे थोड़ी गर्माहट लाने के लिये धूप-स्नान गुनगुने पानी का स्नान, अथवा हल्की कसरत करली जा सकती है।

साधारण स्नान के प्रथम शुष्क घर्षण-स्नान करके शरीर मे थोड़ी गरमी लाने के बाद क्रमिक शीत-घर्षण स्नान (The piece meal cold friction Bath) कर लिया जाय तो साधारण स्नान का लाभ शरीर को अधिक होता है। क्रमिक शीत घर्षण-स्नान की विधि वही है जो शुष्क घर्षण-स्नान की। अन्तर केवल इतना है कि शुष्क घर्षण स्नान हाथ की सूखी हथेलियों, सूखी तौलिया, सूखे ब्रुश से किया जाता है, पर क्रमिक शीत घर्षण-स्नान केवल हाथ की हथेलियो से उन्हे ठडे जल मे भिगो भिगो कर लिया जाता है। अर्थात्, पहले दोनो हाथो को ठडे जल मे भिगो कर उस वक्त तक उनको परस्पर रगडा जाता है जब तक उन पर की जमी मैल छूट कर झड नही जाती और उन पर का पानी सूख नही जाता। उसके बाद दोनों हाथो को सूखी तौलिया से पोंछ कर फिर उन्हे ठण्डे पानी मे भिगो भिगो कर उनसे सर से लेकर एड़ी तक के सभी अङ्गो को बारी बारी से मलमलकर और रगड रगड कर उन पर की जमीमैल छुड़ायी जाती है और सूखी तौलिया से पौछी जाती है। यही शरीर का क्रमिक शीत घर्षण-स्नान है।

शुष्क घर्षण-स्नान और शीत घर्षण-स्नान के बाद तुरत विपुल ठण्डे जल से साधारण दैनिक स्नान आरम्भ करना चाहिए। पहले सिर को धोना चाहिये तत्पश्चात् क्रमशः अन्य अङ्गो को। ऐसा करने से शरीर की आवश्यक उष्णता सिर से होती हुई पैरो की तरफ से निकल जाती है और शरीर तरोताजा हो जाता है। स्नान पैरों की तरफ से आरम्भ करने से आखो और सिर मे गर्मी चढ़ जाने का भय रहता है जिससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है। सिर धोने के बाद नेत्रों और चेहरे को धोना चाहिये, फिर छाती, पेट, तब पैर। तत्पश्चात् दुबारा सिर और अन्त में सर्वाङ्ग पर एक साथ पानी डालकर प्रत्येक अङ्ग को मलमलकर नहाना चाहिए। विशेषकर जोड़ वाले स्थानो, जैसे बगल, जाघो के ऊपरी हिस्से आदि को जिनमे प्रायः पसीना आया करता है हाथो, खुरदुरी तौलिया, या खद्दर के गमछा से खूब रगडना और मलना चाहिए। उस वक्त मूत्रेन्द्रिय का ऊपरी चमडा (आवरण) खीचकर उसे धीरे-धीरे धोना और साफ करना

ये।

यदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग को तौलिया से रगड़-रगड कर त करने की सुविधा न हो और स्नान के जल की भी हो तो पहले गुदा और मूत्रेन्द्रिय के बीच के भाग पेड पर थोडा सा पानी डालकर उसे हाथ से ही खूब डना चाहिए। तत्पश्चात् बाकी पानी को फुर्ती के साथ शरीर पर डालकर पौछ लेना चाहिए और शरीर के कुल सूख जाने तक शरीर को हाथ की हथेलियों रगडते रहना चाहिये। बाद को कपड़े पहन कर वदन गरम कर लेना चाहिए।

स्नान करते समय यह दृढ़ भावना रखनी चाहिए कि शुद्ध जल तत्व मलिन शरीर को विशुद्ध बना रहा है, र उसके अधिष्ठातृ देवता वरुण तथा जलशायी भगवान ष्णु अपनी शुद्धि करने वाली शक्ति से मन शुद्ध और र्मल कर रहे है। इस प्रकार की भावना के साथ-साथ द हो सके तो ईश्वर-प्रार्थना सम्बन्धी किसी मन्त्र या लोक का उच्चारण भी करते रहना चाहिये।

स्नान के बाद शरीर और बालो को सूखी तौलिया सुखा लेना चाहिये। पर अधिक लाभ के लिये स्नान के शरीर को सूखी तौलिया से न सुखाकर हाथ की लियो से उपर्युक्त विधि से शुष्क घर्षण स्नान करके सुखा लेना चाहिए। मतलब यह कि साधारण स्नान हले और बाद—दोनो दफा शुष्क घर्षण स्नान करने ही स्नान का पूरा पूरा लाभ उठाया जा सकता है। न के वाद घर्षण-स्नान करने से शरीर का व्यायाम भी जाता है और उसमे गरमी भी आ जाती है जो किसी ठण्डे स्नान के वाद अत्यन्त आवश्यक है।

यदि स्नान करने के बाद शरीर को तुरत अच्छी तरह छा न जायगा और उसमें किसी प्रकार गर्माहट न जायगी तो स्नान का कोई लाभ न होगा, उल्टे हानि अधिक होगी। अर्थात् शरीर भीगा रहने पर दाद, और खुजली आदि त्वचा के रोग होजावेगे। सिर रह जाने पर नेत्रो को हानि पहुँचेगी आदि।

स्नान कर चुकने के एक घटा वाद तक भोजन करना चाहिये। क्योकि ऐसा करने से पाचन-क्रिया जाती है।

दि नल पर स्नान किया जाय, अथवा किसी पर्वतीय लघुनिर्झर मे स्नान करना हो तो शुष्क घर्षण स्नान के बाद उसके नीचे बैठकर प्रथम सिर पर उसकी धारा को लेना चाहिये। तदुपरात गहरी सांस लेकर फेफड़ो पर और पेट पर २-२ मिनट तक लेना चाहिए। अन्त मे पुनः शुष्क घर्षण-स्नान द्वारा शरीर पर का जल सुखाकर कपडे पहन लेना चाहिये। इस प्रकार सिर से स्नान करने से मस्तिष्क ठडा एवं शक्तिशाली बनता है, नेत्र ज्योति बढ़ती है, फेफडे सशक्त होते है, तथा पाचन क्रिया ठीक होती है। यथाः—

'शीतेन शिरश. स्नान चक्षुष्यमिति निर्दिशेत्।,

अर्थात्, ठण्डा जल सिर पर लेने से नेत्रो की शक्ति खूब बढती है।

साधारण दैनिक स्नान के पहले तैल-स्नान अथवा उबटन करने का भी आयुर्विज्ञान में विधान है। जैसा कि जाड़ो मे बहुधा किया जाता है। उसके करने की विधि यह है—

सर्व प्रथम घर्षण-स्नानादि द्वारा शरीर को थोड़ा गरम कर लीजिए साथ ही साथ शरीर पर शुद्ध सरसो के के तेल की मालिश भी करते जाइए। अच्छा तो यह हो कि हल्की धूप मे बैठकर आधा घटा तक अङ्ग प्रत्यङ्ग की मालिश शुद्ध सरसो के तेल या किसी अच्छे उबटन से की जाय। उसके बाद उपर्युक्त रीति से ठण्डे जल से मल-मलकर स्नान कर लिया जाय। बाद को शरीर पर लगे तेल अथवा मैल युक्त उबटन को खुरदरी तौलिया, महीन बालू मिली गीली मिट्टी, बेसन या नीबू के रस की मालिश करके धो-पौछ डाला जाय। तदोपरात शरीर को पुनः गरम करके कपड़े पहन लिये जाय। इस तेल की मालिश वा उबटन के भी बडे लाभ है।

चरकाचार्य की आज्ञानुसार दिन मे दो बार सुबह-शाम यह स्नान करना चाहिए। यथा.—

"द्वौकालौ उपस्पृशेत्"

—च सू अ. ८

अत जाडो मे नही तो गर्मियो मे तो अवश्य ही दोनो वक्त स्नान करना चाहिए। इस स्नान के लिए सुबह सूर्योदय के लगभग और शाम सूर्यास्त के ठीक बाद का समय ठीक रहता है।

भोजन करने के तुरन्त बाद या पहले यह या कोई स्नान कभी नही करना चाहिए। सुबह के नाश्ता के एक

पड़ने पर इसे कड़े हाथो और अधिक देर तक करना चाहिए। एक-एक अङ्ग को ५-५, ६-६ बार रगड़ना काफी होता है।

साधारण स्नान के प्रथम इस शुष्क घर्षण-स्नान (Dry Friction Bath) का बड़ा महत्व है। इससे रक्त अधिकाधिक त्वचा की ओर पहुँचता है जिससे रक्त शिराए फैलती है और शरीर के रोमकूप खुल जाते हैं। परिणाम यह होता है त्वचा निरोग और निर्मल हो जाती है और खुले हुए रोम कूपो द्वारा शरीर का भीतरी मल जो पसीने के रूप मे भी निकलता रहता है, बाहर निकल जाता है। इस क्रिया से समूचे शरीर मे एक प्रकार की बिजली दौड़ने लगती है और शरीर चमक उठता है। मानव-शरीर के चारो तरफ जो अदृश्य तेज होता है उसमे वृद्धि होने लगती है। इस क्रिया से सारे शरीर की गर्मी समानता को प्राप्त होती है, शरीर मे स्फूर्ति जान पड़ती है और मनुष्य सर्दी गर्मी की अनेक बीमारियो से बचा रहता है। शुष्क घर्षण-स्नान से शरीर की उतनी ही सफाई होती है, उसे उतनी ही गर्माहट मिलती है जितनी कि गरम जल के स्नान से, साथ ही साथ गरम जल के स्नान से शरीर को जो हानिया होती है वे शुष्क घर्षण-स्नान से बिलकुल ही नही होती। रोज रोज गरम जल से स्नान करने की सलाह किसी को भी नही दी जा सकती क्योकि ऐसा करने से शरीर को बड़ी क्षति पहुचती है। परन्तु शुष्क घर्षण-स्नान कोई भी रोज-रोज करके लाभ उठा सकता है। बर्नर मैकफेडन ने एक स्थान पर लिखा है कि एक नवयुवक ने इस घर्षण स्नान से ही अपने को यक्ष्मा रोग के विकराल पजे से मुक्त कर लिया, खासी और जुकाम तो इससे होते ही-नही।

दैनिक स्नान के प्रथम किया गया उपर्युक्त शुष्क घर्षण स्नान यदि प्रात. काल की हल्की धूप मे किया जाय तो वह निश्चय ही अधिक लाभकारी होता है। क्योकि उस हालत मे शरीर की पुष्टि के साथ-साथ उसे विटामिन 'डी' की भी प्राप्ति होती है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिए एक बहुत आवश्यक वस्तु है।

शुष्क घर्षण-स्नान के स्थान पर साधारण स्नान के प्रथम शरीर मे थोड़ी गर्माहट लाने के लिये धूप-स्नान गुनगुने पानी का स्नान, अथवा हल्की कसरत करली जा सकती है।

साधारण स्नान के प्रथम शुष्क घर्षण-स्नान करके शरीर मे थोड़ी गरमी लाने के बाद क्रमिक शीत-घर्षण स्नान (The piece meal cold friction Bath) कर लिया जाय तो साधारण स्नान का लाभ शरीर को अधिक होता है। क्रमिक शीत घर्षण-स्नान की विधि वही है जो शुष्क घर्षण-स्नान की। अन्तर केवल इतना है कि शुष्क घर्षण स्नान हाथ की सूखी हथेलियों, सूखी तौलिया, सूखे ब्रुश से किया जाता है, पर क्रमिक शीत घर्षण-स्नान केवल हाथ की हथेलियो से उन्हे ठडे जल मे भिगो भिगो कर किया जाता है। अर्थात्, पहले दोनो हाथो को ठडे जल मे भिगो कर उस वक्त तक उनको परस्पर रगडा जाता है जब तक उन पर की जमी मैल छूट कर झड नही जाती और उन पर का पानी सूख नही जाता। उसके बाद दोनों हाथो को सूखी तौलिया से पोछ कर फिर उन्हे ठण्डे पानी मे भिगो भिगो कर उनसे सर से लेकर एडी तक के सभी अङ्गों को बारी बारी से मलमलकर और रगड रगड कर उन पर की जमीमैल छुड़ायी जाती है और सूखी तौलिया से पोछी जाती है। यही शरीर का क्रमिक शीत घर्षण-स्नान है।

शुष्क घर्षण-स्नान और शीत घर्षण-स्नान के बाद तुरत विपुल ठण्डे जल से साधारण दैनिक स्नान आरम्भ करना चाहिए। पहले सिर को धोना चाहिये तत्पश्चात् क्रमशः अन्य अङ्गो को। ऐसा करने से शरीर की आवश्यक उष्णता सिर से होती हुई पैरो की तरफ से निकल जाती है और शरीर तरोताजा हो जाता है। स्नान पैरो की तरफ से आरम्भ करने से आखो और सिर में गर्मी चढ़ जाने का भय रहता है जिससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है। सिर धोने के बाद नेत्रो और चेहरे को धोना चाहिये, फिर छाती, पेट, तब पैर। तत्पश्चात् दुबारा सिर और अन्त मे सर्वाङ्ग पर एक साथ पानी डालकर प्रत्येक अङ्ग को मलमलकर नहाना चाहिए। विशेषकर गुप्त वाले स्थानो, जैसे बगल, जाघो के ऊपरी हिस्से आदि को जिनमे प्रायः पसीना आया करता है हाथो, सूखी तौलिया, या खद्दर के गमछा से खूब रगडना और मलना चाहिए। उस वक्त मूत्रेन्द्रिय का ऊपरी चमड़ा (आवरण) खीचकर उसे धीरे-धीरे धोना और साफ करना

चाहिये।

यदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग को तौलिया से रगड़-रगड़ कर स्नान करने की सुविधा न हो और स्नान के जल की भी कमी हो तो पहले गुदा और मूत्रेन्द्रिय के बीच के भाग और पेड पर थोड़ा-सा पानी डालकर उसे हाथ से ही खूब रगडना चाहिए। तत्पश्चात् बाकी पानी को फुर्ती के साथ सारे शरीर पर डालकर पौछ लेना चाहिए और शरीर के बिलकुल सूख जाने तक शरीर को हाथ की हथेलियो से रगड़ते रहना चाहिये। बाद को कपड़े पहन कर बदन को गरम कर लेना चाहिए।

स्नान करते समय यह दृढ़ भावना रखनी चाहिए कि शुद्ध जल तत्व मलिन शरीर को विशुद्ध बना रहा है, और उसके अधिष्ठातृ देवता वरुण तथा जलशायी भगवान विष्णु अपनी शुद्धि करने वाली शक्ति से मन शुद्ध और निर्मल कर रहे है। इस प्रकार की भावना के साथ-साथ यदि हो सके तो ईश्वर-प्रार्थना सम्बन्धी किसी मन्त्र या श्लोक का उच्चारण भी करते रहना चाहिये।

स्नान के बाद शरीर और बालो को सूखी तौलिया से सुखा लेना चाहिये। पर अधिक लाभ के लिये स्नान के बाद शरीर को सूखी तौलिया से न सुखाकर हाथ की हथेलियो से उपर्युक्त विधि से शुष्क घर्षण स्नान करके सुखा लेना चाहिए। मतलब यह कि साधारण स्नान के पहले और बाद—दोनो दफा शुष्क घर्षण स्नान करने से ही स्नान का पूरा पूरा लाभ उठाया जा सकता है। स्नान के बाद घर्षण-स्नान करने से शरीर का व्यायाम भी हो जाता है और उसमें गरमी भी आ जाती है जो किसी भी ठण्डे स्नान के बाद अत्यन्त आवश्यक है।

यदि स्नान करने के बाद शरीर को तुरत अच्छी तरह पोंछा न जायगा और उसमें किसी प्रकार गर्माहट न आ जायगी तो स्नान का कोई लाभ न होगा, उल्टे हानि अधिक होगी। अर्थात् शरीर भीगा रहने पर दाद, खाज और खुजली आदि त्वचा के रोग होजावेंगे। सिर गीला रह जाने पर नेत्रो को हानि पहुँचेगी आदि।

स्नान कर चुकने के एक घटा बाद तक भोजन नहीं करना चाहिये। क्योकि ऐसा करने से पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है।

यदि नल पर स्नान किया जाय, अथवा किसी पर्वतीय लघुनिर्झर मे स्नान करना हो तो शुष्क घर्षण स्नान के बाद उसके नीचे बैठकर प्रथम सिर पर उसकी धारा को लेना चाहिये। तदुपरात गहरी सास लेकर फेफडो पर और पेट पर २-१ मिनट तक लेना चाहिए। अन्त मे पुनः शुष्क घर्षण-स्नान द्वारा शरीर पर का जल सुखाकर कपड़े पहन लेना चाहिये। इस प्रकार सिर से स्नान करने से मस्तिष्क ठंडा एवं शक्तिशाली बनता है, नेत्र ज्योति बढ़ती है, फेफडे सशक्त होते है, तथा पाचन क्रिया ठीक होती है। यथा:—

'शीतेन शिरश स्नान चक्षुष्यमिति निर्दिशेत्',

अर्थात्, ठण्डा जल सिर पर लेने से नेत्रो की शक्ति खूब बढती है।

साधारण दैनिक स्नान के पहले तैल-स्नान अथवा उबटन करने का भी आयुर्विज्ञान मे विधान है। जैसा कि जाड़ो मे बहुधा किया जाता है। उसके करने की विधि यह है—

सर्व प्रथम घर्षण-स्नानादि द्वारा शरीर को थोड़ा गरम कर लीजिए साथ ही साथ शरीर पर शुद्ध सरसो के के तेल की मालिश भी करते जाइए। अच्छा तो यह हो कि हल्की धूप मे बैठकर आधा घटा तक अङ्ग प्रत्यङ्ग की मालिश शुद्ध सरसो के तेल या किसी अच्छे उबटन से की जाय। उसके बाद उपर्युक्त रीति से ठण्डे जल से मल-मलकर स्नान कर लिया जाय। बाद को शरीर पर लगे तेल अथवा मैल युक्त उबटन को खुरदरी तौलिया, महीन बालू मिली गीली मिट्टी, बेसन या नीबू के रस की मालिश करके धो-पौछ डाला जाय। तदोपरात शरीर को पुनः गरम करके कपडे पहन लिये जाय। इस तेल की मालिश वा उबटन के भी बड़े लाभ है।

चरकाचार्य की आज्ञानुसार दिन मे दो बार सुबह-शाम यह स्नान करना चाहिए। यथा.—

'द्वौकालौ उपस्पृशेत्'

—च सू. अ. ८

अत जाड़ो मे नही तो गर्मियो मे तो अवश्य ही दोनो वक्त स्नान करना चाहिए। इस स्नान के लिए सुबह सूर्योदय के लगभग और शाम सूर्यास्त के ठीक बाद का समय ठीक रहता है।

भोजन करने के तुरन्त बाद या पहले यह या कोई स्नान कभी नही करना चाहिए। सुबह के नाश्ता के एक

घटा बाद या आध घटा पहले और भोजन के तीन चार घटा बाद स्नान किया जाना चाहिए। स्नान बहुत देर तक भी नहीं करना चाहिए और २० मिनट से अधिक देर तक जल मे भीगते रहना तो खतरनाक भी होता है। गर्मियो मे बहुत से लोग देर तक जल मे घुसे रहना पसंद करते है या घटो सिर पर घड़ो पानी डालते रहने चाहते हैं, और जाड़ों मे एक मिनट मे ही स्नान समाप्त कर देते है। ये दोनो ही तरीके हानिकारक हैं। सिद्धान्त यह है कि शरीर मे कपकपी लगने लगे अथवा हाथ-पैरो मे ठिठरन होने लगे तो स्नान बद कर देना चाहिए। इस सिद्धांतानुसार गर्मियो मे २० मिनट तक, वर्षा ऋतु मे १० मिनट तक तथा जाड़ो में ३ से ५ मिनट तक स्नान करना काफी होता है।

दैनिक स्नान हमेशा बंद कमरे में विवस्त्र होकर करना चाहिए। क्योकि स्नान करते वक्त शरीर पर हवा के झोके नही लगने चाहिए।—इससे हानि होती है। गर्मी के दिनो मे लू मे बैठकर और सर्दी के दिनो मे खुली हवा में स्नान करना खतरे से खाली नही होता।

उपर्युक्त विधि से दैनिक स्नान करने के अनेक लाभ है। इससे कितने ही रोगो जैसे फोडा, फुन्सी, दाद-खाज, मुहासा झायी, दमा, गठिया, तथा बवासीर आदि से अनायास छुटकारा मिल जाता है।

तैत्तरीय संहिता ६/१/१ मे उल्लेख है कि जो जल मे स्नान करता है वह सीधे दीक्षा और तप को अपनाता है। क्योंकि वह जल मे स्नान करता हुआ तीर्थ में नहाता है, इसलिये अवश्य स्नान करे। यथा—

'यो अप्सुस्नाति, साक्षादेवदीक्षा तपसी अवरुन्धे, तीर्थेस्नाति। (तस्मात् स्नायात),

वशिष्ठ स्मृति मे कहा गया है—

'अत्यन्त मलिनः कायः नवछिद्र समन्वितः।
स्रवत्येव दिवारात्रौ प्रातः स्नाने शुध्यति॥

अर्थात् मलपूर्ण शरीर के नव छिद्रों से रात दिन मल निकलता है और पसीना भी रोमकूपो से निकल कर चमड़े के अन्दर का मैल बाहर लाता रहता है, इसलिए नित्य प्रात. स्नान से शरीर की शुद्धि होती है।

इस सम्बन्ध मे आयुर्वेद मे भी एक वाक्य है—

'बाह्यैश्च सेकैः शीताद्यैरूष्मान्तर्याति पीडितः।
नरस्य स्नानमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः॥,

वाग्भट सूत्र स्थान अ० २ मे आया है:—

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजो बलप्रदम्।
कंडूमल श्रमस्वेद तन्द्रातृड्दाह पुत्॥
रक्तप्रसादनं चापि सर्वेन्द्रिय विशोधनम्।

अर्थात् स्नान भूख, बल, आयु और जीवनी-शक्ति बढाता है। चर्मरोग, मल, थकावट, पसीना और उस दुर्गन्ध, तन्द्रा-आलस्य, प्यास, जलन, तथा पाप को न करता है, साथ ही रक्त को विशुद्ध करता है, एव समू इन्द्रियो को स्वच्छ और निर्मल बना देता है।

साधारण स्नान से दो विशेष लाभ होते है। पह शरीर की सफाई और दूसरा ठण्डे पानी के स्फूर्तिदा प्रभाव से स्नायु मण्डल का सशक्त बनना एव शरीर रक्त सञ्चालन का ठीक ठीक होना।

हमारी त्वचा की बनावट ही कुछ इस प्रकार की कि यदि उसे स्नान द्वारा नित्य प्रति साफ न किया ज तो स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य की बात तो अलग छोडिये, हम जीवन ही खतरे में पड़ जायेगा। यह मिथ्या नहं कि हम केवल नाक से ही सास नही लेते बल्कि त्वचा उन सभी छिद्रो द्वारा भी लेते हैं जिनकी गिनती नहं सकती। अतः जिस प्रकार हम अपनी नाक के छिद्र बद करते ही दम घुटकर मरने की अवस्था मे जाते है उसी प्रकार यदि हम स्नान न करके त्वचा उन असंख्य छिद्रो को बद हो जाने का मौका देंगे तो हम जीवित रह सकते है? इसके अतिरिक्त शरी विषैले एवं दूषित पदार्थो को अनवरत रूप से निकालते रहना त्वचा का ही कार्य है। स्नान न कर फल स्वरूप चर्म-छिद्रो के अवरुद्ध हो जाने से त्वचा के काम मे निश्चय ही बाधा उपस्थित होसकती है। न यह होगा कि शरीर की गंदगी शरीर के भीतर पडी पडी सड़ा करेगी और आये दिन भांति भांति रोगो का कारण बना करेगी।

स्नान के समय जब हम बदन पर ठंडा पानी ड तो शरीर का रक्त स्वभावत त्वचा की ओर दौड़ता है जो उसमे एक प्रकार की विशेषगति का परिणाम फलतः रक्त सञ्चालन शुद्ध एव तीव्र होजाता है अ

यौवन को अधिक स्थायी बनाने में सहायक होता है। जिस प्रकार एनिमा या जलपान से जल शरीर के भीतर पहुँचकर शरीर को लाभ पहुचाता है,उसी प्रकार बाह्य स्नान से जल का शरीर के रोमकूपो द्वारा चोपण होकर शरीर को लाभ पहुँचता है अर्थात जल की ठंडक का प्रभाव शरीर के भीतरी अवयवो पर दूर तक पडता है जो नाडी मण्डल के सम्बन्ध से सम्भव होता है। स्नान करते वक्त जो घर्षण किया जाता है उससे शरीर का नाडी जाल उत्तेजित होता है और परिणामत सशक्त बनता है। ठडे जल से स्नान के उपरान्त जो अच्छी और गाढी नीद आती है उसका कारण स्नान का शरीर के नाडी मण्डल पर स्वास्थ्य-प्रद प्रभाव डालना ही है।

ठडे जल के विधिवत साधारण स्नान से जहा लाभ ही लाभ है वहा अनुचित ढग से इस स्नान को करके कितने ही मनुष्य हानि भी उठाते हैं। साधारण स्वस्थ्य वालो को ठढे पानी का यह स्नान मुआफिक आता है परन्तु बूढो, अत्यन्त दुर्बल व्यक्तियो को ठडे पानी का स्नान नही करना चाहिये। यह उनके अनुकूल नही पड सकता। ऐसों को क्रमिक शीत घर्षण स्नान अथवा गुनगुने या गरम जल का स्नान केवल कमर के ऊपर के हिस्से तक ही करके तुरन्त ठंडे जल का स्नान कर डालना चाहिए। शरीर जब अत्यधिक गरम हो अथवा थका हो तो उस वक्त ठडे पानी से नहा डालना मौत के मुह मे प्रवेश करना है। आयुर्वेद के आचार्यो ने स्थान स्थान पर लिखा है —

'नाऽविगतक्लमः उपस्पृशेत',

अर्थात् कडी मेहनत करने के बाद जब तक थकावट मिट न जाय, स्नान नही करना चाहिये। और भी —

'स्नानं ज्वरातिसारे च नेत्र कर्णानिलार्तिषु।
आध्मान पीनसाजीर्ण भुक्त वत्सु च गर्हितम्'॥

अर्थात जो नेत्र के रोगी हो कान के दर्द वाले, वात रोगी, पेट मे अफारा वा अध्मान वाले को,पीनस रोग वाले को अथवा जो तुरत भोजन करके उठा हो उसको साधारण स्नान नहीं करना चाहिए।

२-नदी में तैरकर स्नान

गगा, यमुना जैसी बड़ी नदियो के बहते हुये जल में तैर कर स्नान करने को हृष्ट पुष्ट व्यक्तियो के लिये सर्वोत्तम स्नान मानाजाता है। विधि वही है जो साधारण स्नान करने की है अर्थात स्नान से प्रथम सारे शरीर की सूखी मालिश कर लेनी चाहिये जिससे रक्त की गति थोडी तीव्र होकर बदन गरम होजाय। उसके बाद सिर और चेहरे को पहले नदी के जल से धो लेना चाहिए तत्पश्चात नीचे के अङ्गो को अत मे नदी मे उतर कर खूब मलमल कर नहाना चाहिये। तदोपरान्त कुछ देर तक तैरना चाहिये पर इतना ही तैरना चाहिये कि थकावट न मालूम हो अपितु तैर कर निकलने पर शरीर मे ताजगी और स्फूर्ति मालूम दे। इस स्नान मे भी २० मिनट से अधिक समय लगना ठीक नही है। स्नान के बाद शुष्क घर्षण स्नान द्वारा शरीर को सुखाकर कपडे पहन लेना चाहिये।

इस स्नान से सभी लाभ उठा सकते है कमजोर आदमी भी तैरने का स्नान करके लाभान्वित हो सकता है। बशर्ते कि वह अधिक देर तक यह स्नान न करे और पानी मे उतरना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल न हो।

तैरने मे स्नान के साथ साथ व्यायाम भी होता रहता है। इसलिए तैरने का स्नान अधिक गुणकारी होता है। इस स्नान से शरीर के समस्त नाडीजाल का स्नान होजाता है। जिससे शरीर मे ओज, स्फूर्ति और अद्भुत शक्ति का सञ्चार होता है। यह स्नान स्वास्थ्यवर्द्धक भी है। हमारे शास्त्रों मे जो गतिकाल मे समय समय पर गगाजी आदि पवित्र सरिताओ के शीतल जल मे स्नान करने की व्यवस्था है वह इसी प्रयोजन से दी गयी है ताकि इस स्नान के असाधारण गुणो से एक भी व्यक्ति वञ्चित न रह जाय और सभी इसे अपने धर्म का एक अङ्ग समझकर करे। इस स्नान को नियमित रूप से करने वाले मनुष्य काफी बड़ी आयु पाते है और मरने दम तक शक्तिशाली तेजस्वी एव स्वस्थ बने रहते हैं।

तैरने का स्नान यदि गगा-जल मे किया जाय तो शत प्रतिशत् लाभ हो। कारण, गंगाजल अपने खनिज गुणो के कारण इतना गुणकारी, स्वास्थ्यवर्द्धक, रोग नाशक, एव पवित्र होता है कि उसकी समता कोई भी अन्य जल नही कर सकता। हमारे धर्म शास्त्रो मे गगा-जल की महत्ता पर जितना लेख मिलता है यदि उन सब का साराश भी दिया जाय तो गगा पुराण बन सकता है। भारत ही नही दुनिया के अन्य भागो से भी कुष्ठ जैसे असाध्य रोग से जर्जरित देह धारी कितने ही रोगी हरिद्वार

ओर ऋषिकेश आकर कुछ ही दिनों मे केवल गगाजल के स्नान और पान से ही पूर्ण स्वस्थ होगये है और रोज हो रहे है। कई विदेशी विद्वानो ने गगा के पवित्र जल की महिमा और गुणो के गान मे बडे-बड़े और सुन्दर निबन्ध लिखे है। भौतिक विज्ञान के कई आचार्यो ने भी गगा जल की अद्भुत शक्ति और प्रभाव की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। कहा जाता है कि हैजा, प्लेग, मलेरिया, तथ क्षय आदि रोगों के कीटाणु गंगा-जल के स्पर्श से नष्ट हो जाते है। इस बात की छान बीन के लिए डाक्टर हैकिन्स वृटिश सरकार की ओर से एक बार नियुक्त किये गये थे। उन्होने परीक्षा करने के लिए जब हैजे के कीटाणु गगाजल मे डाले तो वे छ घटो में मर गये परन्तु वे ही कीटाणु जब साधारण पानी मे डाले गए तो थोडी ही देर मे वे सहस्रो की सख्या मे बढ गए। इसी से गगा-जल को साधारण जल न मानकर भारतीय हिन्दू उसे ब्रह्मद्रव और अमृत मानते है। और यदि गगा जल को असाधारण जल न भी माना जाय तो भी इस तथ्य से तो इनकार नही किया जा सकता कि हिमालय पर्वत औषधियो की खान है और गंगाजी उसी पर्वतराज की एक चोटी गंगोत्री से निकल कर सब जड़ी बूटी, खनिज पदार्थों और लवणों के सत्त्व को अपने मे बहाती हुई मैदान मे उतरती है। तब फिर गगा जल में आरोग्य लाभ कराने वा स्वास्थ्य प्रदान कराने का कौन सा गुण न होगा ! गगा जल की एक विलक्षण विशेषता यह भी है कि उसमे कभी भी कीड़ नही पड़ते चाहे वह कितने दिन क्यो न रखा रहे और न उसमे किसी प्रकार की दुर्गन्धि ही आवेगी। भला ऐसे जल का उपयोग दैनिक जीवन मे मनुष्य को क्या कुछ लाभ न पहुँचावेगा ! अनुभव से जाना गया है कि गंगाजल मे तैर कर नित्य स्नान करने से अजीर्ण, जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, दमा, कुष्ठ, तथा अन्य चर्म रोग आदि सहज ही मे अच्छे हो जाते है।

३—वर्षा जल से स्नान

वर्षा–जल स्रवित (Distilled) होने के कारण अत्यन्त शुद्ध और हर काम के योग्य होता है। अत यह स्नान के लिए भी निश्चय ही उत्तम और लाभकारी हैं। पर बरसात के शुरू के कुछ दिनो के वर्षा-जल में स्नान करना ठीक नही। कारण, ऐसे जल मे मार्ग के धूलकण आदि अशुद्ध पदार्थ मिले होते है, विशेष कर जब वारिश आंधी अधड़ के बाद होती है। वर्षा-जल मे सूक्ष्मांशो मे ओषजन, नत्रजन, कर्बनद्विओषिद, अमोनिया, एव अमोनिया नाइट्रेट आदि भी मिले रहते है। वर्षा जल से स्नान केवल वर्षा ऋतु मे ही सम्भव हो सकता है [illegible] झरना-स्नान (Shower Bath) की भांति ही ताजगी लाने वाला और गुणकारी होता है। इस स्नान के [illegible] पहले और बाद मे शुष्क घर्षण-स्नान या अन्य प्रकार द्वारा शरीर को थोडा गरम कर लेना जरूरी है। [illegible] ऋतु मे वर्षा-जल से, मौका मिलने पर स्नान कर लेने [illegible] साल भर तक त्वचा के रोग नही होते, ऐसा कहा जाता है।

४–समुद्र—स्नान

किसी नदी मे स्नान करने के समान ही समुद्र में [illegible] स्नान किया जाता है। पर समुद्र-स्नान मे दो बातें करनी जरूरी है। प्रथम यह कि समुद्र मे स्नान करने के लिए प्रवेश करने से पहले कानो के छिद्रो में रूई [illegible] लेनी चाहिए, दूसरे यह कि समुद्र-स्नानोपरान्त एक बार मीठे जल से भी स्नान कर लेना चाहिए ताकि शरीर पर का खारापन धुल जाय। गठिया आदि रोगो में [illegible] से लाभ होता है। चर्म रोगी को यह स्नान अधिक लाभकारी नही होता। किसी-किसी दशा मे तो समुद्र का खारा पानी हानि भी पहुंचाता है।

कहा भी है-"सामुद्रमुदक विस्र लवण सर्वदोषकृत"

समुद्र-जल मे ३॥ प्रतिशत विभिन्न लवण होते है। उनमे साधारण नमक, मैग्नेशियम क्लोराइट, पोटाशियम क्लोराइट कैलशियम, तथा मैग्नेशियम सल्फेट स मुख्य है।

५—खनिज जल-स्नान

वर्षा–जल जब पृथ्वी द्वारा शोषित होकर भूमि के अन्दर उतरता है तो वह मार्ग मे पड़ने वाले घुलनशील खनिज को घोलता हुआ अभेद्य स्तरों पर पहुंच कर एकत्र हो जाता है। इस जल को आभ्यन्तरिक (Underground) जल कहते है। मार्ग मिलने पर जब यही जल स्रोत [illegible] मे धरातल के ऊपर आजाता है तो वह खनिज जल के [illegible] से पुकारा जाता है। ऐसे खनिज जल के [illegible] इन्गलैण्ड, फ्रांस, अमेरिका, तथा इटली आदि मे पाये [illegible] है। भारत मे भी मुंगेर तथा विन्ध्याचल मे खनिज [illegible] स्रोत है जिनका जल लोग बडी श्रद्धा और भक्ति [illegible]

व्यवहार मे लाते है। अश्रुवापन मे भैरवकुण्ड और देहरादून मे गंधक के स्रोत प्रसिद्ध है। राजगिरि मे भी इस प्रकार के खनिज जल के झरने पाये जाते है जिनका जल बहुत ही मीठा और स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। ऐसे खनिज जल के स्रोतों के जल का व्यवहार करने से भोजन शीघ्र और भलीभाति पच जाता है जिससे भूख अच्छी लगने लगती है। परन्तु इस प्रकार के जल का आवश्यकता से अधिक आन्तरिक प्रयोग हानिकारक सिद्ध होता है।

खनिज जल से स्नान करना लाभकारी होता है। नदी-तालाब के पानी मे जिस प्रकार स्नान किया जाता है उसी प्रकार खनिज जल के स्रोत मे भी स्नान करना चाहिए। इस स्नान से त्वचा निखरती और निरोग बनती है जिससे शरीर के दोषो के निष्कासन मे सहायता मिलती है। गठिया आदि के रोगियो को खनिज के स्नान से यथेष्ट आराम मिलता है।

६ लम्बा स्नान

रोगी की पूरी लम्बाई से कुछ बड़ा टब लेकर उसमें कुए या नदी का ताजा जल इतना भरना चाहिये कि जब रोगी उसमे नगा होकर लेटे तो पानी उसके समूचे शरीर को ढक ले। टब मे रोगी को केवल लेटे भर रहना चाहिए। यही लम्बा स्नान है। लम्बा इसलिए कि यह स्नान देर तक किया जाता है तब लाभ करता है। रोगी को पानी से भरे टब मे कम से कम दो घटा और अधिक से अधिक दस घटा तक पड़े रहना पड़ता है। यह समय रोगी के बलाबल एव रोग की भयङ्करता अभयकरता के अनुसार निर्धारित करना चाहिये।

मस्तिष्क सम्बन्धी रोगो, जैसे इन्सोम्निया तथा पागलपन आदि मे लम्बे स्नान की अधिक जरूरत पड़ती है। पेशाब बन्द हो तो इस स्नान से वह खुल जाता है।

अंग्रेजी मे इसे Continous bath कहते हैं।

७-झरना स्नान

झरना-स्नान या अग्रेजी का 'शावर बाथ' लेने के लिये किसी ऊंचे पानी के नल की टोटी में चलनी जैसे छिद्रो वाला झरना लगा लेना चाहिए ताकि उसके नीचे बैठकर या खड़े होकर नहाते समय उससे जल की फुहारे गिरें। रोगी को झरना के नीचे नंगा बैठकर उन फुहारो को पहले सिर पर और तत्पश्चात समस्त शरीर पर लेते हुये ५-७ मिनट तक नहाना चाहिये। बाद को हाथ की हथेलियो से रगड रगड़ कर शरीर को सुखा देना चाहिये। यह सम्पूर्ण शरीर का झरना-स्नान है। इससे शरीर तरोताजा होजाता है और मन को बड़ी शान्ति प्राप्त होती है।

सम्पूर्ण शरीर के झरना-स्नान को तरह ही स्थानीय (local) झरना-स्नान भी लिया जाता है। अर्थात् यदि शरीर के *किसी स्थान विशेष पर किसी प्रकार की सूजन या अकड़न* हो तो उस स्थान पर यह स्नान ५ मिनट तक देने के बाद उस स्थान को अच्छी तरह रगड़ कर सुखा देना चाहिये ताकि वहा थोडी गरमी आजाय या कोई गरम कपड़ा थोडी देर के लिए वहां लपेट देना चाहिए या समूचे शरीर पर रजाई लपेट कर गरमाहट लानी चाहिये।

इस स्नान के लिये पानी साधारण कुए या नल का हो सकता है

८-गीली चादर से स्नान

जिस रोगी को गीली चादर का स्नान लेना हो पहले उसे अपने शरीर पर कोई पसीना लाने वाला प्रयोग जैसे शुष्क घर्षण-स्नान, अथवा हल्की कसरत आदि कर लेनी चाहिये। तत्पश्चात् एक बडी चादर (खादी की सबसे अच्छी रहती है) को सहने योग्य काफी ठडे पानी मे खूब अच्छी तरह से तर करके निचोड़ लेना चाहिये। अब रोगी को टब मे या किसी चौडे बर्तन मे जिसमे ३-४ इञ्च गहरा ठंडा पानी हो खडा कर देना चाहिये। उसके बाद कोई दूसरा आदमी रोगी के दोनों हाथो को थोडा ऊपर उठवाकर गीली चादर को उसके बांए बगल से [illegible] आरम्भ करके समूचे शरीर पर लपेट दें। [illegible] वक्त रोगी को उस चादर को मजबूती से [illegible] रहना चाहिये ताकि चादर शरीर पर [illegible] रहे और खिसके नही। यह [illegible] को रोगी के शरीर को [illegible] गरम होने पर और [illegible] चाहिये। ५-१० [illegible] हटाकर [illegible] और [illegible]

गीली चादर से स्नान

लेने चाहिये। यही गीली चादर से स्नान या 'ड्रिपिङ्ग शीट-बाथ, कहलाता है।

दुर्बल रोगियों को यह स्नान खाट पर लिटा कर या स्टूल आदि पर बैठाकर भी दिया जासकता है। ठडे पानी के प्रयोग के अनभ्यासी रोगी को यह स्नान देते समय पहले पहल थोड़ा गरम पानी का प्रयोग करना चाहिये। इस स्नान से शरीर की जीवनी शक्ति को बल मिलता है।

९—झंप स्नान

इस स्नान के भी पहले गरम पानी के स्नान से, शुष्कघर्षण स्नान से, कसरत से अथवा धूप से शरीर को गरम कर लेना चाहिये, साथ ही ठडे पानी से भीगी तौलिया सिर पर बांध लेना चाहिये। अब रोगी को एक मोटी और मजबूत चादर पर लिटाकर उस चादर को रोगीसहित दोनों तरफ से दो आदमियों द्वारा उठवाकर ६०° फा० तापमान के ठडे पानी से भरे हौज में बराबर डुबाना और निकालना चाहिए। प्रत्येक बार रोगी को ५ सेकेण्ड तक पानी मे रखकर निकालना चाहिए और शरीर मे जैसे ही खून दौड़ आवे वैसे ही फिर डुबा देना चाहिए। इस तरह ४-५ बार करना चाहिए और अंत मे रोगी को सूखी तौलिया से रगड़ रगड़ कर पोंछ देना चाहिए और फिर शरीर पर सूखी मालिश कर देनी चाहिए।

यह स्नान बजाय हौज के बडे टब तथा नदी और तलावो मे भी किया जासकता है। साथ ही स्नान करते वक्त तैरा और शरीर को मला भी जा सकता है। परन्तु हर हालत मे ठड अधिक मालूम होने से पहले ही स्नान कर देना चाहिए और शरीर को पुन गरम करके [illegible] करना चाहिए। उपर्युक्त गीली चादर से स्नान की भांति यह स्नान शरीर को अत्यन्त बल देता है और जी[illegible] की वृद्धि करता है।

सूजन की बीमारियो मे तथा अत्यन्त दुर्बलता [illegible] हालत मे इस को नही करना चाहिये।

१०—सम्पूर्ण स्नान

पहले रोगी का सिर, चेहरा, पेडू और शरीर के [illegible] को ठडे पानी से धोकर उसके सिर पर गीली तौ[illegible] लपेट देना चाहिए। तत्पश्चात उसे कमरे के अन्दर बैठा[illegible] पहली वार एक लोटा पानी उसकी छाती पर उडेल[illegible] दूसरा उसकी पीठ पर उडेलना चाहिए। इसी प्रकार [illegible] वार छाती और पीठ पर वारी वारी से पानी उडेल [illegible] ५-७ मिनट मे स्नान खतम कर देना चाहिए।

बालको और बूढ़ो अथवा जो रोगी एकाएक ठडे का उपर्युक्त पूर्ण स्नान न लेसके उसे पहले गरम पानी [illegible] स्नान कराकर बाद में थोड़ी थोड़ी देर बाद उसमें [illegible] पानी मिलाकर स्नान के पानी को धीरे धीरे ठडा [illegible] जाना चाहिए। रोगी को पहले थोड़ी देर स्नान [illegible] धीरे धीरे स्नान के समय को बढ़ाते जाना चाहिए। [illegible] पहले पहल रोगी को तीन चार मिनट तक पूर्ण [illegible] करने के बाद धीरे धीरे समय बढाकर १०-१२ मिनट [illegible] यह स्नान कराया जा सकता है। इस तरह से रोगी [illegible] धीरे ठडे पानी के स्नान का अभ्यासी हो जाता है। [illegible] स्नान से किसी प्रकार की हानि न होकर लाभ होता है।

स्नान के बाद तुरत रोगी शरीर को सूखी तौलि[illegible] पौछ कर समूचे शरीर की सूखी मालिश हाथ की ह[illegible] द्वारा आरम्भ कर देनी चाहिये ताकि शरीर में [illegible] गर्माहट आजाय। अंत मे रोगी को थोडी देर [illegible] कपड़े पहना रखना चाहिए या रजाई ओढ कर [illegible] देना चाहिये। इन स्नान से छाती और पीठ के [illegible] मजबूत होते हैं, और हृदय और फेफड़े [illegible] बनते है।

११-पूर्ण डूब का ठंडा स्नान

इस स्नान को अग्रेजी मे Full immersion Cold ath कहते हैं। शरीर की लम्बाई के बराबर टब इस ान के लिये दरकार होता है। टब को ताजे पानी से र दिया जाता है। उसके बाद रोगी के सिर को ठडे नी से धाकर पीठ के बल पानी से भरे उस टब मे इस ार लिटाया जाता है कि उसका समूचा शरीर पानी मे । जाय और केवल उसका सर पानी के बाहर टब के सिरे पर रबड आदि के तकिये के सहारे टिका रहे। नी मे पडे रह कर रोगी को चाहिए कि वह उस समय ने अंग-प्रत्यग को मल-मल कर धोता रहे। यह स्नान से १० सेकेण्ड तक काफी है। स्नानोपरान्त शरीर खुरदरी तौलिया से रगड़ कर उस पर का पानी सुखा । चाहिए। और तब कसरत आदि से शरीर को गरम लेना चाहिये।

इस स्नान से जीवनी शक्ति प्रबल होती है। इस ान के लेने का ठीक समय प्रात काल है।

१२-ब्रैंड-स्नान

इस स्नान की खोज करने वाले का नाम 'ब्रैंड' था : उसी के नाम पर इसे 'ब्रैंड स्नान' कहते हैं। रोगी चेहरा और सिर ठडे पानी से धोकर उसके सिर पर पानी से भीगी और निचोडी तौलिया लपेट दी जाती । इसके बाद नगा करके उपर्युक्त पूर्ण डूब के ठडे स्नान तरह ही ठडे पानी से भरे टब मे पीठ के बल लेटा ा जाता है। सिर बाहर रहता है। एक दूसरा दमी उनके शरीर को पानी के अन्दर ही अन्दर तेजी २-३ मिनट तक रगड़ता है। उसके बाद रोगी टब मे ४ सेकण्ड के लिये उठ कर बैठ जाता है और तब उसके र और गर्दन पर एक बाल्टी ठडा पानी डाला जाता । उसके बाद रोगी पुन पानी मे लेट जाता है और के शरीर को मलना व रगड़ना पुन. आरम्भ कर दिया ता है। ५ मिनट के बाद रोगी पुन टब मे बैठ जाता जब कि उसके सिर पर दूसरी बाल्टी ठडे पानी की ली जाती है। यही क्रम १० से २० मिनट तक चलता ता है। मगर जब भी रोगी ठंड अधिक महसूस करने । और उसे कप कपी आने लगे तो उसे पानी से तुरन्त निकाल लेना चाहिये और उसके शरीर को पोंछकर और रजाई या कम्बल ओढाकर उसे बिस्तर पर लेटा देना चाहिये।
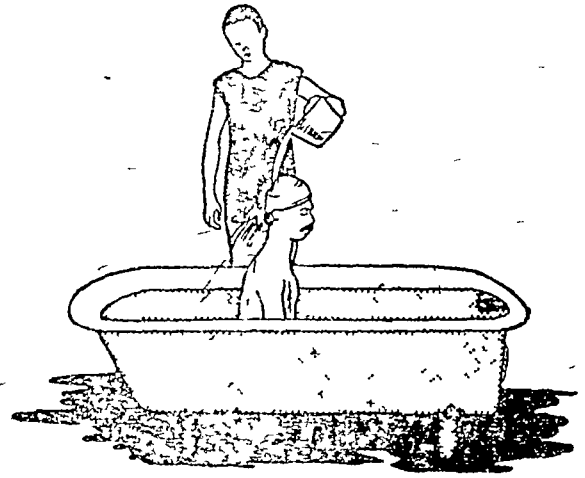
ब्रैंड-स्नान

इस स्नान से नाड़ी केन्द्रो को शक्ति मिलती है, तथा गुर्दे, जिगर आदि अपना-अपना काम सुचारु रूप से करने लगते है। टाइफाइड मे इस स्नान से बड़ा लाभ होता है।

१३—ठंडा तौलिया स्नान

इस स्नान को अग्रेजी में Towel-Bath और आम बोल चाल मे 'अगोछा स्नान' कहते है। इसके लिये अधिक पानी की जरूरत नही होती। लोटा-दो लोटा पानी से भी अगोछा-स्नान बड़े मजे मे हो सकता है। ढग शुष्क घर्षण-स्नान की तरह ही इस प्रकार है:—

बदन पर के कपड़े उतार ठंडे जल से भीगी और निचोड़ी तौलिया या अंगोछा से पहले चेहरे को रगड़े। बाद को पोंछ कर सुखा डालें। फिर उसी तरह बाहो को रगड़े और सुखाए। फिर दोनो टागो को तौलिया स्नान देकर स्नान खतम करना चाहिये। गीली तौलिया से बदन को रगड़ते समय यदि वह सूख जाय तो उसे पुन ठडे पानी मे भिगो कर और निचोड़ कर आर्द्र और ठड़ी कर लेनी चाहिये। पीठ को तौलिया-स्नान देने के लिये तौलिया का एक-एक सिरा एक-एक हाथ से पकडना चाहिए और कंधो के ऊपर से पीठ पर लेजा कर दोनो हाथो से खींच-खींच कर रगडना चाहिये। सुखाने के लिये भी सूखी तौलिया से इसी प्रकार पीठ को पोंछ डालना चाहिये।
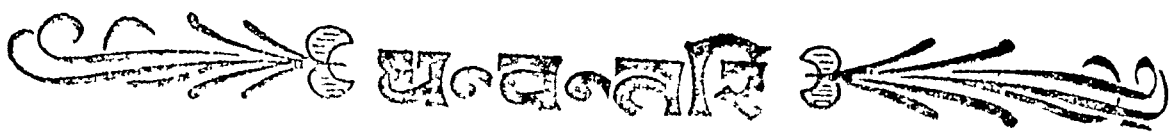
स्नान समाप्त कर चुकने के वाद शुष्क घर्पण-स्नान अथवा हल्की कसरत आदि द्वारा शरीर को पुन. गर्म कर लेना अति आवश्यक है।

इस स्नान से शरीर की जीवनी-शक्ति वलवती हो जाती है। जो लोग प्रसिद्ध मेहन स्नान किसी वजह से नही कर सकते या मेहन-स्नान नही करना चाहते, वे उसकी जगह इस स्नान को लाभ के साथ ले सकते है।

हृदय के रोगियो और वूढो को यह स्नान वड़ी सावधानी के साथ लेना चाहिए।

१४—क्रमिकशीत घर्पण स्नान

क्रमिक शीत घर्पण स्नान को अग्रेजी मे 'The piece meal cold friction bath' अथवा 'Partial cold bath' कहते है।

इस स्नान मे खास बात यह होती है कि एक वक्त मे शरीर के केवल एक भाग का ही स्नान होता है और शेष भाग विलकुल सूखा और गर्म रहता है। दूसरी खास बात यह है कि इस स्नान से ठंड और मालिश दोनो का लाभ साथ-साथ होता है।

यह स्नान गरम कमरे मे अगीठी के पास यदि लिया जाय तो ठीक रहता है और लाभ भी अधिक होता है। स्नान की विधि यह है:—

पहले दोनो हाथो को पानी मे भिगो कर परस्पर इतना रगड़े कि उन पर की मैल छूटकर झड़ जाय। तब हाथो को धोकर सूखी तौलिया से पोछ डाले। जब हाथों की हथेलिया पुन. गरम हो जावे तो उन्हे पानी मे फिर भिगोकर उनसे चेहरे को मलिये और रगड़िये ताकि उस पर की मैल छूटकर झड़ जाय। तब चेहरे को पानी से धोकर सूखी तौलिया से रगड़ कर पोछ डाले। उसी प्रकार छाती, फिर एक वाह, उसके वाद दूसरी बाह तत्पश्चात् पीठ, फिर पेट, अन्त मे प्रत्येक टाग को बारी-बारी से यह स्नान देना चाहिए। मर्दो को चाहिए कि वे अपनी गुप्त इन्द्रियो के आगे के ऊपरी आवरण को हटाकर उसके अन्दर वैठी मैल को भी अवश्य साफ करले।

जो दुर्वल है अथवा जिन के हाथ और पैर सदैव ठण्डे रहा करते है ऐसे लोग इस स्नान को पहलेपहल केवल घुटने के ऊपरी हिस्से तक ही सीमित रखे और उस वक्त तक निचले हिस्से को स्नान दे जव तक कि ऊपरी भाग पुनः गरम न हो जाय पर यदि शरीर के सभी भागों को एक सा ही क्रमशः स्नान दे दिया जाय तो स्नान के बाद यह जरूरी है कि समूचे शरीर को कसरत द्वारा, रजाई मे ओढ कर लेटकर, या किसी अन्य विधि से गरम अवश्य कर लिया जाय।

इस स्नान से सारे शरीर में खून तेजी से दौड़ने लगता है जिससे सभी अङ्ग ताजे हो जाते हैं। समस्त नाडी-मण्डल, हृदय, शरीर की शिराओ आदि पर इस प्रयोग का वहुत ही वलकारक एव सुन्दर प्रभाव पड़ता है।

पाडुरोग, क्षय, हृदयरोग, ज्वर, मोतीझरा, मलेरिया, आमवात आदि कितने ही रोगो मे इस स्नान से बड़ा लाभ होता है।

दमा और हृदय-दौर्वल्य के रोगो मे इस स्नान का प्रयोग वड़ी सावधानी के साथ करना चाहिए।

१५—तलवा-स्नान

ओस से ओतप्रोत हरी घास या भीगी जमीन, फर्श या पत्थर पर शक्ति के अनुसार ५ से २० मिनट तक रोज दिन मे कई वार नगे पैर टहले और प्रत्येक वार टहलने के वाद तलवों को सूखी खुरदुरी तौलिया से खूब रगड़े तथा हथेलियो से थपथपावे। यही तलवो का स्नान है। इस स्नान से तलवो की जलन दूर होती है और आंखो की रोशनी बढ़ती है।

१६—पैर स्नान

टब या किसी अन्य चौड़े मुंह के वर्तन मे पैर के टखने तक ठण्डे पानी मे १ या २ मिनट तक खडे रहें। फिर पानी मे से निकलकर खुरदरी तौलिया से उस स्थान को खूब रगड़-रगड़ कर पौछें, वाद मे ५-७ मिनट तक तेजी से टहले। इस प्रकार रोज दो-तीन वार पैर स्नान लें और उसके बाद टहले। इससे पैरो की कमजोरी और उनका ठण्डा रहना दूर होता है। क्योकि उपर्युक्त ठडे प्रयोग मे पैरो का भीतरी खून ऊपर आकर उनकी ऊपरी नस-नाड़ियों में तेजी से दौरा करने लगता है जिससे पैरो की कमजोरी और ठण्ड दूर होकर उनमे ताकत और गर्मी का सञ्चार हो जाता है।

करना चाहिए, और सफाई की दृष्टि से स्नान के बाद ो और मलद्वार को साफ पानी से भली भांति धो डा- ा भी अति आवश्यक है ।

डाक्टर जुस्ट का यह प्राकृतिक स्नान अत्यन्त सुखदायी, सान, सब जगह पर सम्भव, प्राकृतिक एव लाभकारी । इस स्नान को यदि और भी सरल बनाना हो तो पीढे के ऊपर एक गीली तौलिया फैलाकर उस पर जाइये । दोनो पैरो को सामने किसी ऊंची चीज रखलीजिए । अब एक बाल्टी मे ठडा पानी लेकर से कटि स्नान की तरह पेड़ू और जोड आदि के स्थानों १०-१५ मिनट तक रगड़िए । बस प्राकृतिक स्नान जायगा । अगर कोई रोगी इतना कमजोर है कि वह रपाई से उठ नही सकता तो उपर्युक्त रीति से स्नान बदले उसके पेडू, मलद्वार और जननेन्द्रिय के ऊपर एक गी तौलिया या गमछा रख दीजिए और गरम हो ने पर बदल दिया करें, तब भी यह स्नान हो जायगा । पानी से भरी चिलमची या छोटी थाली पर बैठकर द्वार को धोने, जननेन्द्रिय पर हाथ से कुछ मिनट तक ी डाल-डाल कर ठडा करते रहने, उसके बाद क्रम से और सारे शरीर को धोकर हथेलियो से रगड़-रगड़ सुखा देने से भी प्राकृतिक स्नान सम्पन्न हो जाता है । स्नान नदी मे तट के निकट, झरनो एव छोटे तालाबों भी किया जा सकता है ।

प्राकृतिक स्नान से शिरोविकार नही होते । इससे वनी शक्ति बलवती होती है । भूख बढ जाती है । वा ठीक तौर से काम करने लगता है । पैर और नित- ो के पानी के भीतर रहने से रक्त सञ्चालन सम हो- है, तथा पेडू की बढी हुई गर्मी के शान्त होते ही रीर के अन्य सभी रोग धीरे-धीरे चले जाते है । एक कृतिक स्नान से नगे पांव टहलने, पानी में खड़े रहने, द्वार को गरम होने से बचाने, एनिमा, वायु, धूप स्नान की ठडी पट्टी, कूने का उदर-स्नान' साधारण दैनिक ान, कूने का मेहनस्नान, मालिश, तथा फादरनीप के रा के सभी लाभ एक साथ ही प्राप्त हो जाते है । अत स्नान सभी अन्य प्रकार के स्नानों से अधिक प्रभाव- ली एव मनुष्य जगत के लिए कल्याणकारी है। इस ार से रोगो का जोरदार उभाड़ भी अतितीव्र होता है जो इसके उत्तम और प्राकृतिक होने का सबसे बडा प्रमाण है । प्राकृतिक सिद्धान्त भी यही है कि जो उप- चार जितना ही अधिक प्राकृतिक होता है उससे रोगो का उभाड़ भी उतना ही शीघ्र और जोरदार होता है, और इस तरह उससे रोग भी शीघ्र और स्थाई रूप से अच्छे होते है।

स्त्रियो को मासिक धर्म के समय इस स्नान को बंद रखना चाहिये ।

सवेरे कुछ भी खाने के पहले, तथा तीसरे पहर का भोजन पच जाने के बाद इस स्नान के करने का सबसे अच्छा समय है।

२१—घर्षण मेहन-स्नान (कूने)

इस स्नान को लिङ्ग स्नान, शिश्न स्नान वा इन्द्रिय स्नान भी कहते है । इसके आविष्कार कर्त्ता भी डाक्टर लूई कूने साहब ही है । यह स्नान स्त्री रोगो मे विशेष लाभदायक होता है । स्नान के लिए उपर्युक्त घर्षण कटि- स्नान वाले टब मे एक पाटा, तिपाई, नम्बरी ईट, या स्टूल —जो लगभग एक बालिश्त ऊंचा हो रखकर उसकी सतह के पास तक ठंडा पानी भर देते है । टब मे जो तिपाई आदि रखी जाय वह इतनी ऊंची हो कि टब मे मन-डेढ़ मन ठडा पानी भरने पर उसकी सतह जिस पर स्नान करने के लिये बैठा जाय सूखी रहे क्योकि टब मे यदि थोड़ा-सा ही पानी भरा जायगा तो वह बहुत जल्द गरम हो जायगा जिससे मेहन-का यथेष्ट लाभ न होगा । तिपाई के ऊपरी सूखे तल पर नगी बैठकर और पैरो को टब के बाहर सामने रखी एक दूसरी तिपाई या चौकी पर रखकर स्त्री, छोटे गमछे, मोटे कपड़े या मोटी रूमाल से जितना पानी उठ सकता है, उठाकर बच्चा पैदा होने के रास्ते के मुंह के ऊपरी हिस्से को बार-बार और हौले-हौले पर मुलायमियत के साथ और बिना रुके धोती है । इसमें जननेन्द्रिय के बाहर का अगला चमडा ही धोया जाता है, भीतर का भाग नही । चमडे को रगड़ना भी नहीं चाहिये । यह कार्य साधारणत पाच मिनट से लेकर बीस मिनट तक किया जाता है । इसके बाद गर्दन से नितम्ब तक के हिस्से को ऊपर-नीचे धीरे धीरे २-३ मिनट तक गीले और निचोड़े कपड़े से रगड़ना या मलवाना चाहिये । पैर और शरीर के ऊपर वाला हिस्सा सूखे रहेंगे । परन्तु यदि

नितम्ब भीग जावे तो इस स्नान के प्रभाव मे कोई अन्तर नही पड़ता। सूखे हिस्से मे स्नानोपरान्त व्यायामादि द्वारा या रजाई आदि ओढकर शीघ्र गर्मी लाने की कोशिश होनी चाहिये।

मासिक स्राव के समय मेहन स्नान बंद रखना चाहिये। मगर स्राव यदि असाधारण हो तो किसी कुशल प्राकृतिक चिकित्सक की राय लेकर उस हालत मे भी यह स्नान आवश्यकतानुसार लिया जा सकता है। मासिक स्राव अधिक से अधिक चार दिनों तक होता रहता है। अगर इससे अधिक रहे तो ऐसे स्राव को असाधारण समझकर उसका इलाज करना चाहिये।

कुंए का साधारण ताजा ठडा जल इस स्नान के लिए लेना चाहिये। रोगी की उम्र एव दशा के अनुसार यह स्नान १० मिनट से एक घटा तक लिया जा सकता है। जाड़ो मे कमरा,-जिसमे स्नान लिया जाय, भरसक ठंडा न रहे ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। उसे उतना गरम कर लेना चाहिए जितने से कि स्नान अच्छा और आरामदेह मालूम हो। बिना धुये की गरम अगीठी या हीटर से कमरे को गरम कर लेना ठीक रेहता है।

मेहन-स्नान का पानी यदि अधिक ठडा हुआ तो वह लाभ ही करता है। पर बर्दाश्त के बाहर नही होना चाहिये। जाड़ों में जैसा ठडा जल मिलता है वैसा ही काफी है। गर्मियों में घड़े या सुराही का जल, या वर्फ से ठडा किया हुआ जल लिया जा सकता है। पर बरफ का पानी या बर्फ जैसा ठडा पानी मेहन स्नान के लिये नही लेना चाहिये।

मेहन-स्नान के लिये पुरुषो को भी टब में उसी तरह नगा होकर बैठना पड़ता है जैसे स्त्रियो को। उसके बाद जननेन्द्रिय के मुंह के ऊपर की चमडी के अन्तिम सिरे को या शिश्न के अग्रभाग की चमडी को जिसको अंग्रेजी मे Fore skin कहते है बाये हाथ की दो अंगुलियो से पकड़ कर थोड़ा आगे खीचे रहना चाहिए और कपडे से पानी उठा-उठा कर उसे धोना चाहिये।

मुसलमानो की जननेन्द्रियो मे खतना हो जाने के कारण यह चमड़ी नही होती। कुछ हिन्दू पुरुषो के जननेन्द्रिय की यह चमड़ी (सुपारी का आवरण) नाम मात्र की ही होती है या किसी रोग के कारण काट दी गयी होती है। ऐसे मनुष्यो को चाहिये कि जननेन्द्रिय और [illegible] की जगह पर [illegible], जो [illegible] और अण्डकोष बीच मे है और जिसे सीवन कहते हैं, भीगे कपडे से और कमर के नीचे के भाग को भी बैठक के ऊपर अगुल ऊचे तक जल मे डुबो रखें। ऐसा करने से [illegible] तीन अंगुल भीग जावेगे। परन्तु शेष शरीर और सूखी रहेगी। इस अवस्था मे अण्डकोष का कुछ भाग भी भीगेगा। मगर अण्डकोष का अधिक भाग [illegible] न भीगने देना चाहिय।

एक दो वार मेहन स्नान कर लेने के वाद ही [illegible] शरीर का विकार घर्षण के स्थान पर या उसके [illegible] आकर प्रकट हो जाता है जो अच्छा चिन्ह है। अत [illegible] पर, उसके कारण, जलन आदि मालूम होने पर [illegible] प्रकार की चिन्ता या भय न कर स्नान को जारी [illegible] चाहिये। कितने ही रक्तविकार वाले रोगो मे इस [illegible] के कुछ ही दिनो वाद स्नान के स्थान से कुछ दूर छोटे-वड़े पीवयुक्त खुले मुंह वाले फोडे हो जाते हैं। वास्तव में उग्र अथवा उद्विग्न विजातीय द्रव्य के सिवा [illegible] नही होते जो रोग के कारण होते हैं और जो [illegible] प्रभावित होकर वाहर निकल जाना चाहते हैं। ऐसी [illegible] में रोगी को चहिये कि स्नान के समय के अलावा [illegible] घावो पर जल मे भीगी हुई कपडे की पट्टी लपेटे रहे [illegible] उसे यथा सम्भव हर समय तर रखे, साथ ही स्नान [illegible] वत् जारी रखे। हा, यदि आवश्यकता जान पडे तो [illegible] की अपेक्षा अधिक मुलायम वस्त्र से मेहन स्नान ले।

अनुभव से जाना गया है कि यदि मेहन स्नान [illegible] लिये टब का पानी उसमे पडी तिपाई के दो-तीन [illegible] ऊपर तक रहे जिसमे नितम्ब का कुछ हिस्सा पानी मे [illegible] तो स्नान का प्रभाव जल्द दीख पडता है।

स्नान के बाद कपड़ा पहन कर रोगी को २० [illegible] मिनट तक खुले मैदान मे टहलना चाहिये ताकि शरीर [illegible] थोड़ी गर्मी आ जाय। पर यदि रोगी निर्वल है तो [illegible] के वदले उसे कम्वल या रजाई ओढकर शरीर में [illegible] लानी चाहिये।

मेहन स्नान के लिये जननेन्द्रिय के अग्र भाग [illegible] क्यो चुना गया, इसका एक प्रवल कारण है। वह है शरीर की अधिकाश प्रमुख स्नायुओ का, जिनका [illegible]

...दण्ड और मस्तिष्क से होता है, अंत जननेन्द्रिय के अग्र भाग पर ही होता है। फलत इस स्थान को ही वैज्ञानिक रीति से स्नान देकर स्नायुओ द्वारा शरीर के कोने-कोने मे प्रभाव डाला जा सकता है। शरीर रूपी वृक्ष के अग्रभाग रूपी मूल के अलावा शरीर का अन्य कोई भाग इतना उपर्युक्त है ही नही जिसको मेहन-स्नान के जल से सींचकर इच्छित फल की आशा की जाय। जैसे मशीन एक ही बिन्दु से चालित, द्रुततर, और मंदतर की जा सकती है, वैसे ही मनुष्य की शक्ति भी एक ही स्थल मेहन अग्रभाग से सञ्चालित होती है। अत मेहन स्नान के लिये यही स्थल उपयुक्त समझा गया और चुना गया।

मेहन स्नान से शरीर स्थित दुर्द्रव्यो की गरमी शान्त हो जाती है, स्नायु सशक्त हो जाते हैं तथा जीवन शक्ति बलवती हो जाती है जिससे रोग धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं। इस स्नान के असर से सारे शरीर की शक्ति बढ़ जाती है। तथा शरीर के अवयवो को मल बाहर निकालने की भारी शक्ति प्राप्त हो जाती है जिसमें सभी रोग (विजातीय द्रव्य) शरीर के मलमार्गो द्वारा स्वाभाविक रूप से बाहर निकल जाते हैं।

मेहन स्नान शान्ति का भी देने वाला होता है, इसलिए यदि इसे सोने जाने से पहले लिया जाय तो अधिक लाभकारी होता है। उग्र रोगो मे उदर और मेहन-दोनो का प्रभाव तात्कालिक होता है और जीर्ण रोगों मे धीरे-धीरे। इन स्नानो के प्रभाव से जीर्ण रोग तीव्र मे बदल सकते हैं जो क्राइसिस कहलाता है। उसके बाद वे धीरे धीरे अच्छे हो जाते है।

मेहन स्नान रोगियो के लिये ही लाभकारी है, स्वस्थ व्यक्तियो के लिये इसका कोई उपयोग नही।

उपर्युक्त घर्षण कटि-स्नान के अंत मे जो स्नान के सम्बन्ध मे जानने योग्य कुछ जरूरी बातें लिखी गयी हैं, उन्हे इस मेहन-स्नान के सम्बन्ध मे भी ठीक वैसी ही समझना चाहिए।

बाल्टी या एनिमा-पाट से मेहन स्नान

जहा जल की कमी हो वहा किसी बाल्टी में जिसमें लगभग दस सेर जल भरा हो, नीचे की सतह से टोटी लगाकर रबर की नली लगा ले जैसा एनिमा-पाट मे लगी होती है। फिर उसे ३-४ फुट की ऊंचाई पर रखकर नीचे टब मे बैठकर या कही बंद स्थान मे बैठकर नली के द्वारा पानी से मेहन स्नान लेवे। यह भी सम्भव न हो तो एनिमा-पाट से ही यह स्नान ले और पाट का पानी खतम होने पर उसमे बार-बार पानी डालता जाय।

२२—पीठ या रीढ़ स्नान

इसको अंग्रेजी मे Spinal bath कहते हैं। यह स्नान सुविधानुसार पांच प्रकार से लिया जा सकता है:—

पहला प्रकार

एक लम्बी तौलिया को ठडे जल से भिगोकर निचोड़ लीजिए। उसके बाद उसके दोनो सिरो को दोनों हाथों से पकड़ कर और पीछे की तरफ ले जाकर अपनी रीढ़ की हड्डी को उससे रगड़िए। हर एक या दो मिनट बाद तौलिए को गीला कर लिया करे। इस तरह पांच मिनट तक कर चुकने के बाद अन्त मे सिर को ठडे पानी से धोकर क्रमिक शीत घर्षण स्नान करने के बाद यह स्नान खतम करे।

दूसरा प्रकार

एक धोती या चद्दर को एक फुट चौड़ी, दो फुट लम्बी और कम से कम आध इञ्च मोटी गद्दी सी बनाकर साफ (जमीन सिमेन्टेड फर्श हो तो और अच्छा) या लकड़ी के तख्ने पर बिछावे और उसे ठंडे पानी से खूब तर कर दे। तत्पश्चात् उस पर पीठ के बल नगा होकर लेट जाए ताकि भीगी गद्दी पूरे पीठ के नीचे पड़े तथा सिर और पैर गद्दी से अलग रहे। अब समूचे बदन को सिर के अलावा एक कम्बल से ढक ले। चाहे तो एक पतले गीले कपड़े से छाती और पेट को भी ढंककर तब कम्बल ओढे। ५ मिनट तक या जब तक गरमी न महसूस करे कम्बल के नीचे पड़े रहे। अन्त मे सिर को ठडे जल से धोकर क्रमिक शीत घर्षण स्नान करने के बाद यह स्नान समाप्त करें। यदि इस स्नान के करते वक्त नींद आजाय तो जगने तक स्नान जारी रखें।

तीसरा प्रकार

एक पीढे पर नगे होकर उकड़ू बैठ जाइये और किसी दूसरे आदमी से कहिये कि वह लोटे मे ठडा पानी भर-भर कर पतली धार से और बिना रुके आपकी रीढ पर ५ मिनट तक डाले और अन्त मे उसस्थान को सूखे कपडे से रगड़े। यह हो जाने पर सिर को ठडे पानी से धोकर क्रमिक शीत घर्षण स्नान ले ले।

चौथा प्रकार

६×३ फुट लम्बे-चौडे और ६ इन्च ऊचे टब मे ३ इन्च ठडा पानी डालकर उसमे पीठ के बल नगे लेट जाइए और टब के साथ पूरे शरीर पर कम्बल डाल दीजिए। पैरो को टब के बाहर किसी तिपाई पर रखिए। छाती और पेट पर भी एक भीगा कपडा डाल लीजिए। तत्पश्चात् हर दो एक मिनट बाद उठ-उठकर टब मे बैठते हुए एक सूखी तौलिया से पीठ पर के पानी को रगड़ रगड कर सुखाते रहे पुनः पुन. टब मे लेट जाया करे। १० मिनट तक ऐसा करते रहने के बाद अन्त मे सिर को ठडे पानी से धोकर क्रमिक शीत घर्षण-स्नान ले ले।

पांचवां प्रकार

एक खाली टब मे कपडे की एक भीगी गद्दी इतनी बड़ी बिछाइए जिस पर पीठ रख कर लेटने से वह पूरी पीठ को ढक ले। अब उस गद्दी को ठडे पानी से एक बार और अच्छी तरह तर कर दीजिए। अगर आप एक व एक अधिक भीगी और अधिक ठंडी गद्दी पर लेटना न पसद करे तो गद्दी को पहले मामूली तौर से ही भिगोवे परन्तु उस पर लेटने के २-१ मिनट बाद उसे थोड़ा-थोडा पानी डालकर, पूरी तौर से अवश्य तर कर देना चाहिए। टब मे गद्दी पर नगे लेट कर और पैरो को टब के बाहर किसी तिपाई पर रखकर अपने समूचे शरीर पर पूरे टब को ढकते हुए एक कम्बल डाल ले पर चेहरे को सास लेने के लिए खुला रखे। अच्छा हो यदि कम्बल मे चेहरे के बराबर एक चीरा लगाकर उसके द्वारा चेहरे को तो खुला रखे पर सिर को ढके रहे। चाहे तो हर २-१ मिनट बाद पीठ के नीचे की गद्दी को थोड़ा-थोड़ा पानी डाल-डाल कर और अधिक तर कर सकते है। पर किसी भी हालत मे पेट और छाती पर गद्दी का पानी नही चढने देना चाहिए। अलबत्ता एक दूसरी भीगी तौलिया पेट और छाती (ऊपरी धड) पर कम्बल के नीचे डाल रखनी चाहिए। टब मे इस तरह से १० मिनट तक पड़े रहने के बाद उठ कर एक सूखी तौलिया से पीठ को अच्छी तरह से रगड कर पोछ डालना चाहिए (यह काम दूसरा आदमी भी कर सकता है) उसके बाद सिर को ठंडे पानी से धोकर क्रमिक घर्षण-स्नान कर डालना चाहिए। यदि टब मे लेटे- लेटे नीद आजाय तो १० मिनट के बाद भी उसी मे पडा रहना चाहिए और खुलने के बाद ही उसके बाद की क्रियाये करनी चाहिए।

रीढ-स्नान से शारीरिक जीवनीशक्ति बलवती होती है, रीढ की हड्डियो की अनावश्यक गर्मी दूर होती है तथा बिगडा स्वास्थ्य सुधरता है।

२३—धड़-स्नान

इसको अग्रेजी मे Trunk bath कहते हैं। कूने के घर्षण कटि-स्नान और इस स्नान मे लाभ के लेहाज से बहुत कम अन्तर है। कूने के घर्षण कटि-स्नान से रोग जो पेट से सम्बन्धित होते है शीघ्र अच्छे होते हैं और इस स्नान से अन्य रोग। यह स्नान भी दो प्रकार से किया जा सकता है—

पहला प्रकार

एक लकडी का तख्ता दीवार के सहारे खड़ा करके उस पर नगे पीठ टेक कर बैठिए। पैरो को किसी छोटी तिपाई आदि पर रखलीजिए। अपनी दाहिनी ओर किसी चौड़े मुह के बर्तन मे थोडा ठडा जल रखिये। तत्पश्चात् कमर से ऊपर (धड) के अङ्गों को बारी-बारी से बाये हाथ से बर्तन से पानी ले लेकर भिगोते जाइए और दाहिने हाथ से एक मोटे खद्दर के टुकड़े से उन अङ्गो को रगड़ते जाइए। पहले ३-४ मिनट तक केवल पेडू को रगड़े, उसके बाद दूसरे ५ मिनट तक समूचे पेट को, तब छाती को, उसके बाद धड के अगल बगल के हिस्सो को फिर पीठ को जहा तक हाथ पहुच सके, तत्पश्चात् दोनों जाघो, उनकी संधियो, तथा धड के अन्य भागों को उस वक्त तक रगड़ें जब तक कि ठडक मालूम होने लगे और शरीर मे ताजगी न आजाय। फिर चेहरे, और सम्भवत: सिर को भी रगडना चाहिए। १५-२० मिनट मे पूरा स्नान खतम कर देना चाहिए। भोजन के आधा घटा पहले तथा उसके दो घटा बाद यह स्नान किया जाना चाहिए। मगर जब पेट की कोई तकलीफ हो तो उस हालत मे यह स्नान किसी वक्त भी किया जा सकता है।

दूसरा प्रकार

नहाने के टब मे तीन इन्च गहरा पानी भरकर उसमे उपर्युक्त रीति मे पैरो को बाहर निकालकर बैठिए और खद्दर के टुकडे को टब के पानी मे डुबो-डुबो कर

१७—टांग स्नान

पैर स्नान की तरह इस स्नान के लिए पेडुली या टनो तक पानी मे खडा रहना चाहिये। तत्पश्चात् ष क्रियाये ऊपर बताई हुई रीति से ही करनी चाहिये। स स्नान से टागो की कमजोरी दूर होती है।

१८—घर्षण कटि-स्नान (कूने)

घर्षण कटि-स्नान को सिर्फ कटि-स्नान, पेडू नहान, द१-स्नान, तथा अंग्रेजी मे Friction Hip bath, वा वल Hip bath भी कहते है। इसके आविष्कारकर्त्ता र्मनी के लिपजिग नगर के निवासी डाक्टर लूई कूने ाहव है। पेडू का यह स्नान चूकि घर्षण युक्त होना ावश्यक है इसलिये इस स्नान का नाम 'घर्षण कटि-नान' ही ठीक है। इस स्नान के लिये लकड़ी या मिट्टी की ाद अथवा पृष्ठ २५० के चित्र की आकृति का एक कुर्सी-ार टब लेकर उसमे इतना पानी डालिये कि उसमे बैठने र वह जघो और नाभि तक पहुँच जाय। पानी का ापमान ६४ से ६८ फा० तक हो, या साधारण कुए ा ताजा जल हो जो अभीष्ट तापक्रम के अन्दर ही अन्दर ोता है। इस जल को यदि अधिक ठडा करना हो तो से मिट्टी के घडे मे रखकर कर सकते है। इस स्नान का ानी यदि मृदु (Soft) हो तो ठीक रहता है। मतलब ह कि उस पानी से क्षारीयतत्व जितना ही कम होगा तना ही अधिक लाभकारी होगा। इसीलिये शहरों मे ल का पानी इस स्नान के लिये ठीक नही समझा जाता। योकि उस पानी मे बहुधा फिटकरी तथा क्लोरीन आदि ारीय वस्तुयें मिलाई जाती है। बर्फ के जल या बर्फ के मान शीतल जल का व्यवहार इस स्नान में कभी नही रना चाहिये। केवल स्नान के जल की गर्मी, शरीर की पेक्षा थोड़ी कम होनी चाहिये। पहले पहल अधिक ठडे ल मे कटि-स्नान करना कभी-कभी ठीक नहीं होता और ो-तीन दिन मामूली ठडे जल या सम शीतोष्ण जल मे ्नान करने के बाद ही क्रमश. अभ्यास के मुताबिक ठडे ल का प्रयोग करना ठीक रहता है। परन्तु ज्वर की ालत मे हमेशा पहले दिन से ही ठडे जल का व्यवहार रना आवश्यक है।

स्नान करने के लिये टब मे बिलकुल नगा होकर और एकाएक बैठ जाइये। पीछे की ओर टब के कुर्सीदार सिरे से पीठ को टेक दीजिये। ऐसा करने से कटि-स्नान के साथ साथ मेरुदण्ड का भी थोडा सा स्नान हो जाता है, जिससे कटि-स्नान से रोगनिवारण की क्रिया दुगुनी हो जाती है। पैरो को टब के बाहर आगे रखी हुई किसी छोटी तिपाई, चौकी, अथवा ईंट पर आराम से रखले। टब के पानी मे बैठने पर शरीर का जो भाग पानी से अछूता रहे उसे, सिर और मुह को छोड़कर, अच्छी तरह कपड़ो से ढंकलें। साधारणत. एक बड़े कम्बल से शरीर के सूखे स्थानो को ढक लेना काफी होता है। कम्बल न हो तो एक कमीज या कुर्ता पहनकर, उसके नीचे के हिस्से को पानी मे भीगने से बचाने के लिये मोडकर सेफ्टीपिन से पीठ के ऊपर खोस लेना चाहिये। पैरो मे पैताबा पहन लेना चाहिये। गर्मी के दिनो मे सबल रोगी इस स्नान को किसी बन्द कमरे में नगे बदन भी ले सकता है। ज्वर से आक्रात रोगी भी जो अधिक कमजोर न हो गर्मी के दिनो मे बिना कम्बल ओढ़े अथवा शरीर के सूखे स्थान को बिना कपड़ो से ढके यह स्नान ले सकता है। परन्तु जाडो मे रोगी और निरोगी—दोनो को कम्बल आदि से शरीर के सूखे स्थानो को ढककर ही कटि-स्नान लेना चाहिए। क्योकि टब के पानी मे बैठकर स्नान करते वक्त इन सूखेथानो से रक्त खिच आता है जिससे वहा रक्त की कमी हो जाती है। किसी किसी कमजोर रोगी के पैर सदैव ठडे रहा करते है। उन्हे पैरों मे गरम मोजे पहनकर या उन पर गरम कपडे डाल कर ही कटि-स्नान लेना चाहिये। अधिक कमजोर रोगी के जिसमे जीवनी शक्ति की अत्यधिक कमी हो और जिसकी स्वाभाविक गर्मी मे न्यूनता आगयी हो, पैर दो अलग-अलग वर्तनो या एक ही बडे वर्तन मे जिसमे गुनगुना पानी भरा हो रखे, और पानी को स्नान के अन्त तक एकसा बनाये रखने के लिये आवश्यकतानुसार ऊपर से गरम पानी बार बार मिलाते जाये। यह जरूरी है कि जिस समय तक पैर गरम पानी मे रहे उस समय तक रोगी के सिर को ठडे जल से खूब अच्छी तरह धोने के बाद उस पर ठडे जल से भीगी और निचोड़ी तौलिया भी लिपटी रहे, जिसे सूख जाने पर, तर कर दी जाया करे।

टब मे नंगा होकर बैठने के पहिले यह भी जरूरी है कि नाभि के निचले भाग (पेडू) को थोड़ा गरम कर लिया

जाय। यह काम पेड़ू की सूखी मालिश करके आसानी से हो सकता है।

यह सब तय्यारी करके स्नान के लिये टब में आराम से बैठने के बाद अपने दाहिने हाथ मे एक छोटी तौलिया, खद्दर का अगोछा, या नरम जूट का एक टुकडा चौपत करके लीजिये और उसे पानी से तर करके पेड़ू के ऊपर दाहिनी ओर एकदम नीचे रखते हुए वही से पेड़ू को, यानि नाभि के सारे निचले भाग को अर्द्ध चन्द्राकार मे दाई से बाई ओर ऊपर से नीचे की ओर फौरन और जल्दी-जल्दी, बिना रुके एक कोख से दूसरी कोख तक रगडना आरम्भ कर दीजिये। पेड़ू की दाहिनी ओर एकदम नीचे से रगड़ना आरम्भ करते हुए नाभि के कुछ ऊपर तक लेजाकर दूसरी ओर से फिर नीचे रगडना चाहिये। साथ ही साथ दोनो पुट्ठो को गुदा द्वार तक और जननेन्द्रिय के बाहरी भाग को भी रगड़ना न भूलना चाहिये। घर्षण या रगड़ जरा दबा कर करना चाहिये मगर इतना नही दबाना चाहिये कि चमड़ी छिल जाये।
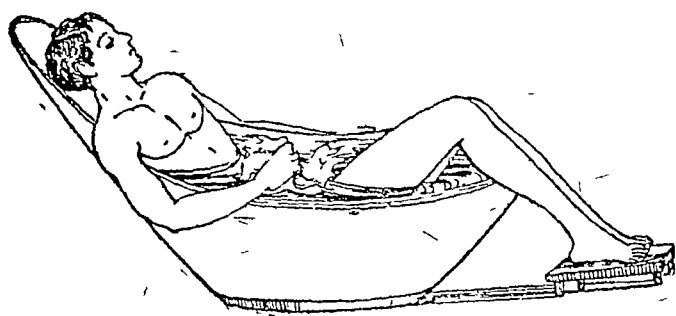
घर्षण कटि-स्नान

इस घर्षण कटि-स्नान के लिये पेड़ू को इसलिए चुना गया है, क्योंकि पेट के इसी भाग मे हमारी आते स्थित होती हैं जिनमे समस्त शरीर का मल निचुड कर सञ्चित होता रहता है जिसका वहिष्करण प्रतिदिन शीघ्रातिशीघ्र हो जाना अत्यावश्यक है। उस मल बहिष्करण के कार्य को आसान और सरल बनाकर आतो और गुर्दो को निर्दोष और निर्मल बनाने के लिए पेड़ू के घर्षण स्नान से बढकर कोई दूसरा साधन नही हैं। शरीर को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुचाए पेड़ू का यह घर्षण स्नान बड़ी आसानी से कोष्ठ साफ कर देता है जिससे लगभग सभी प्रकार के रोगो की जड कट जाती है।

जब तक शरीर ठडा न हो जाय, अथवा जब तक स्नान से आराम मिलता रहे तब तक स्नान जारी रख[ना] चाहिए। स्नान को लेते समय यदि रोगी को नींद आ जाय तो नीद खुलने तक उसे उसी प्रकार टब मे पड़ा रहने देना चाहिए। आरम्भ में ५ से १० मिनट तक का कटि-स्नान काफी होता है। फिर हर दो तीन दिनों के बाद एक एक या दो-दो मिनट बढाते जाना चाहिए। १[५] मिनट तक पहुचकर कम से कम १० दिन आगे न बढना चाहिए। उसके बाद समय को बढाकर १५ मि[नट] कर सकते है। अधिक से अधिक ३० मिनट का कटि-स्नान काफी होता है। बहुत कम हालतो में २० मिनट से अधिक देर तक कटि-स्नान करने की इजाजत दी जाती है। गरमी के दिनो मे और रोगी सबल है तो आरम्भ से ही १० मिनट तक यह स्नान किया जाता है, लेकिन तब भी २० मिनट से आगे नही बढना चाहिये। अधिक बूढो, निर्बलो और छोटे बच्चो को यह स्नान कुछ ही मिनटो, अर्थात् एक से ५ मिनट तक ही देना चाहिये अथवा साधारण रोगियो की अपेक्षा आधे समय तक ही देना चाहिये। जीर्ण रोगो मे इस स्नान से उभार हो सकता है जो अच्छा चिन्ह है। परन्तु यदि तीन चार सप्ताह स्नान चलाने पर भी रोगो का उभार न हो तो पाचवे सप्ताह मे स्नान को बिलकुल बद रखना चाहिये। छटवे सप्ताह से पथ्यादि मे कडाई करके यह स्नान पुनः आरम्भ कर देना चाहिए।

स्नान कर चुकने पर टब से निकलने के पहले रोगी को कण्ठ से कमर तक ठडे जल से धो डालना चाहिए। फिर क्रमश. दोनो बाहो, सिर और अत मे टब से निकल कर पैरो को धोना चाहिये। इस प्रकार शरीर के प्रत्येक सूखे अग को धो चुकने के बाद सबल रोगी, इच्छा हो पर पूर्ण विश्राम भी कर सकता है। दुर्बल रोगी, बच्चो और अधिक बूढो को केवल शरीर को ठडे जल से भीगे कपड़े से पोछना चाहिये।

कटि स्नान के बाद पूर्ण स्नान या बदन अगोछना हो जाने पर समस्त शरीर को किसी सूखा तौलिया से पोंछ कर कपडे पहन लेना चाहिये और शरीर को तत्काल गरम करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये धुप मे हलका व्यायाम, टहलना, या हलकी सूखी मालिश करना चाहिये। जो कमजोर या अधिक रोगी है

बिस्तर पर लेटकर रजाई आदि ओढकर शरीर को गर्म कर सकता है। अगर शरीर जल्द गर्म न हो तो पेट और सारे शरीर पर लपेटने वाली ऊनी पट्टी बाध लेनी चाहिये।

कटि-स्नान के सम्बन्ध मे कुछ आम जानने योग्य बाते नीचे दी जाती हैं –

१–यह स्नान प्रतिदिन तीन बार तक किया जा सकता है।

२–इस स्नान के ३ ४ घटा पहले तथा १ घटा बाद तक भोजन नही करना चाहिये।

३–जाड़ो मे इस स्नान के दो घंटा बाद या पहले या गर्मियो मे १ घटा बाद या पहले साधारण दैनिक स्नान करना चाहिये।

४–ऋतुमती स्त्री को साधारणत ४ दिनो तक यह स्नान बद रखना चाहिये।

५–कटि-स्नान करने के तुरन्त बाद एनिमा लिया जा सकता है, पर उसके कम से कम दो घटे बाद यदि लिया जाय तो ठीक रहता है।

६–रोज बधे समय पर ही कटि-स्नान लेना चाहिये और रोग की न्यूनाधिकता के अनुसार इसे थोडे या अधिक समय तक जारी रखना चाहिये। केवल दो चार दिन करने के बाद ही प्रभाव शीघ्र न दिखाई पड़ने के कारण स्नान छोड बैठना ठीक नही है।

७–स्नान के दिनों मे प्राकृतिक आहार पर रहना और खान-पान, रहन-सहन आदि सम्बन्धी अन्य प्राकृतिक नियमो का पालन करना नितान्त आवश्यक है।

८–स्नान के दिनो मे ब्रह्मचर्य का पालन करना भी कम जरूरी नही है।

९—जाडो मे आराम के ख्याल से अगर कमरे के अन्दर एक या दो बिलकुल जलते कोयलो (निर्धूम) की अंगीठिया टब के पास रखली जायें तो कोई हर्ज नही है।

१०—पेडू पर मिट्टी की पट्टी बाधने के बाद कटि-स्नान लेना अधिक लाभ करता है।

११–रोगो की कुछ अवस्था मे कटि स्नान के बदले मेहन स्नान करना ठीक रहता है और कुछ मे दोनो स्नान।

१२— उपवास के दिनो में यह स्नान लेना यानी शरीर की सफाई का दोहरा काम चलना ठीक नही, पर जहा रोग की जड बहुत गहराई तक पहुँच चुकी है इस स्नान के साथ साथ बीचबीच मे छोटे उपवासो की सहायता से शरीर के मल को निकालने तथा अभीष्ट फल की प्राप्ति मे सहायता मिलती है।

१३—एक माह तक नियमित रूप से नियत समय पर यह स्नान लेने पर, स्नान की प्रतिक्रिया लाने के लिये, ६-७ दिनो के लिये स्नान बद रखना जरूरी होता है। तदोपरान्त फिर जारी कर देना चाहिये। यह क्रम रोग-निवृति तक चलाते रहना चाहिये।

१४—तीव्र रोगो मे यह स्नान जल्दी जल्दी और कई बार, तथा जीर्ण रोगो मे १-२ बार ही देना चाहिए, कटि स्नान से लगभग सभी रोगो मे लाभ पहुचता है। क्योकि प्राय सभी रोग पेडू की गरमी से ही उत्पन्न होते है। और कटि स्नान पेडू की बढी हुई गरमी को कम करता है तथा कटि प्रदेश मे रक्त सञ्चालन की क्रिया को तेज करता है। डाक्टर लूई कूने का कहना है कि दूषित द्रव्य पहले पेडू में सञ्चित होकर तब चारो तरफ फैलता है और भिन्न भिन्न नामो से सम्बोधित होता है। आयुर्वेद के सिद्धान्त 'सर्वेषा रोगाणा निदानं कुपिता मला' और 'वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत' से भी इसका बहुत कुछ साम्य है। कटि स्नान करते समय जो पेडू को रगडा जाता है उससे वहा की मासपेशिया बलवान हो जाती है जिससे आतो मे भरा और चिपका मल खिसक कर बाहर हो जाता है। पेडू मे स्नान की ठडक पहुचने से वहा की स्नायु पेशिया कुछ सिकुडती है बाद मे उनमे नये रक्त के आजाने से वे इतनी बलवान और सतेज हो उठती है कि आतो मे मल देरी तक टिकने नही पाता। आतो की दशा कितनी ही खराब क्यो न हो उनमे का सञ्चित मल कितना ही कडा क्यो न पड गया हो कुछ दिनो तक दोनो वक्त कटि स्नान लेने से निश्चय ही रोज दो बार टट्टी होने लगती है।

कटि स्नान, पेट को साफ करने के साथ साथ जिगर, तिल्ली एव अतडियो के रस स्राव को भी बढाता है जिससे रोगी की पाचन शक्ति मे असाधारण वृद्धि हो जाती है।

कटि स्नान यद्यपि केवल पेडू पर ही लिया जाता है पर शारीरिक स्नायुमण्डल द्वारा उसका प्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है जिनसे शरीर के प्राय सभी रोगों मे इस

स्नान से लाभ होता है ।

संक्षेप मे हम डाक्टर लूई कूने के शब्दो मे बडे जोर दार शब्दो मे कहते है कि कोई भी ऐसा रोग नही है जिस मे कटि स्नान लाभ नही पहुचाता ।

१६—कटि स्नान की दूसरी विधि

कटि स्नान की इस दूसरी विधि तथा उपर्युक्त पहली विधि मे नाम मात्र का ही अन्तर है । वह अन्तर यह है कि इस स्नान मे रोगी अपने पेडू को तो रगडता ही है साथही साथ एक दूसरा आदमी पेडू के पिछले वाले हिस्से तथा उसके अगल बगल के हिस्सो को भी रगडता जाता है इस दूसरी विधि से कटिस्नान लेने वाले को स्नान करते वक्त अपने सिर पर ठडे जल से भीगी और निचोडी तौलिया भी रखना पडती है जबकि पहली विधि से स्नान करने मे ऐसा करना आवश्यक नही है । इन दो के एलावा दोनो प्रकार के कटि स्नानो मे और कोई फर्क नही है ।

इस दूसरी विधि से किये जाने वाले कटि स्नान को कुछ पाश्चात्य प्राकृतिक चिकित्सक ठंडा मेहन स्नान [the cold sitz Bath] कहते है ।

२०—प्राकृतिक स्नान(ए० जुस्ट)

यह भी एक प्रकार का कटि स्नान ही है जिसमे थोड़े पानी से काम चल जाता है । इस स्नान के लिये कोई भी पात्र या टब होसकता है, जो इतना वड़ा जरूर होना चाहिये कि उसमे पैर मोडकर घुटने ऊचा किये हुये आसानी से बैठा जासके ।

प्राकृतिक स्नान के लिए टब आदि मे साढे तीन इन्च गहरा पानी जो स्वाभाविक ठंडा हो भर कर उस मे इस तरह बैठिये कि जल आपके पैर, नितम्ब, और जननेद्रिय के अधिकतर भाग पर आजाय । नितम्ब और पैर के तलवे टब के पेंदे मे लगे रहे और घुटने हमेशा ऊपर रहे । टब मे इस तरह बैठने के वाद सटे हुए घुटनो को फैला दीजिए और पानी को हाथ मे लेकर उससे पेडू पर जोर से मारिये । तत्पश्चात् तुरत समूचे पेडू को एक या दोनो हाथो से तेजी से मलिए । पानी से मारने और पेडू को मलने की क्रियाओ को थोडी ही देर तक चलाइये । उसके बाद यदि आप स्त्री है तो अपनी दोनो जांघो के वीच के भाग और जननेद्रिय के ऊपरी भाग को जो जल के अन्दर होगे, खुले हाथ से जल के अन्दर ही रगडिए, और यदि आप पुरुष है तो अपनी दोनो जांघो के बीच के भाग के चारो ओर, अण्डकोप, मलद्वार और जननेन्द्रिय के बीच के सीवन के चारो ओर पानी के अन्दर ही खुले हाथ से रगडें । यह होने पर हाथों में पानी ले ले कर समूचे शरीर को शीघ्रता के साथ धो डालिए । शरीर को शीघ्रता के साथ धोने का काम किसी अन्य व्यक्ति से भी कराया जा सकता है । इस मे सारे शरीर को हाथ की हथेलियो से सूखी मालिश कर के शरीर पर के पानी को सुखा ले और शरीर को थोड़ा गरम कर दें । इस काम के लिए तौलिया या अंगोछा व्यवहार मे नही लाना चाहिए ।

स्नान कर चुकने के वाद सुविधानुसार किसी खुले स्थान मे नगे बदन टहलना या थोड़ी देर धूप में बैठना अच्छा है । नही तो हल्की कसरत, या अन्य किसी श्रम साध्य कार्य से ही शरीर को गरम करले । कुछ न बन पड़े तो रजाई या कम्बल ओढ़कर बिस्तर पर ही थोड़ी देर तक लेटे रहे ताकि वदन मे थोड़ी गरमी आजाय ।

जाडो मे दो से पाच मिनट तक यह स्नान करना काफी होता है और गर्मियो मे १०–१५ मिनट तक । इन समयो मे स्नान के बाद शरीर को धोने और उसे रगड़ कर सुखाने मे लगने वाला समय सम्मिलित नही है । जितना समय प्राकृतिक स्नान मे लगाया जाय उसका आधा समय पेडू और जननेन्द्रिय आदि को मलने में लगाना चाहिए ।

गर्मी के दिनो मे यह स्नान रोज किया जा सकता है और दिन मे दो वार भी । यदि स्नान खुली जगह में धूप मे या प्रकाशित कमरे में किया जायतो अच्छा । पर जाडो में इसे दो–तीन दिन मे एक वार करना काफी होता है । कभी कभी कुछ समय के लिए इस स्नान को एकदम बंद भी रखा जा सकता है । ज्वर के रोगी और सवल व्यक्ति इस स्नान को कई वार कर सकते हैं, पर कमजोर व्यक्ति को यह स्नान अधिक वार नही करना चाहिए ।

प्राकृतिक स्नान यदि खुले स्थान मे किया जाय तो अच्छा लाभ करता है । यदि यह स्नान कमरे में किया जाय तो उसकी खिडकिया खुली रहनी चाहिए ताकि कमरा ठडा रहे ।

इस स्नान के लिए गरम पानी का व्यवहार नहीं

ऊपर बताए हुए तरीके से कमर के ऊपर के अङ्गो को बारी-बारी से रगड़िए। इस प्रकार के धड-स्नान को छिछला कटि स्नान या Shallow Hip bath भी कहते है।

२४—नेत्र-स्नान

शरीर के अन्य अंगो के स्नानो की भाति नेत्र-स्नान भी आवश्यक है। इससे आखो के रोग दूर होते है और उनकी ज्योति बढती है। नेत्र-स्नान दो प्रकार से लिया जाता है—

पहला प्रकार

एक साफ तामचीनी या शीशे के तसले मे साफ पानी भरकर एक तिपाई, मेज या किसी ऊचे स्थान पर रखिये और उसमे दोनो आखो को डुबोइये। पानी मे डुबोते समय आंखों को खोले रहना चाहिये, और जल के भीतर उन्हे बराबर खोलते और बद करते रहना चाहिये। यह क्रिया ५ से ७ मिनट तक करते रहना चाहिये। नेत्र-स्नान के बाद आध घंटा तक कडी धूप और हवा के झोंके आदि से नेत्रो को बचाये रखना और उन्हे आराम देना आवश्यक है। नेत्र-स्नान की इस विधि से नेत्रों को बल मिलने के साथ-साथ सिर की गर्मी भी शान्त होती है।

नेत्र-स्नान का जल साफ, साधारण ठडा, एव ताजा होना चाहिये। नदी, तालाब आदि के जल मे नेत्र स्नान नही करना चाहिये।

दूसरा प्रकार

बाजार से नेत्र-स्नान करने वाला शीशे का गिलास लाइये। इसे अंग्रेजी मे Eye Glass कहते है। इसमे साफ जल भरकर और उसमें एक-एक आख बारी-बारी से डालकर ५-७ मिनट तक आखो को जल के अन्दर खोलिये और बद कीजिये। एक आख के स्नान करा चुकने पर नया पानी भरकर दूसरी आख का स्नान कराइये। गुलाबजल, त्रिफला जल, अथवा फिटकरी का घोल भी नेत्र-स्नान के काम मे लाया जाता है।

२५—सिर-स्नान

यह अंग्रेजी का Head-Bath है। इसे प्रतिसप्ताह या प्रति दसवे दिन करना चाहिये। इसमे सिर पर ठडा जल छोडते हुए अपने हाथो की उगलियो को सिर की खाल के साथ घिसिए। ५-७ मिनट तक यह स्नान करना चाहिये। इस स्नान से सिर सम्बन्धी समस्त रोगो जैसे बालो का झडना, सिर दर्द, बालो का असमय में पकना बहरापन, पागलपन, तथा नेत्रो की कमजोरी आदि मे लाभ होता है। क्योकि ठडा पानी सिर और बालो के लिए अमृत का गुण रखता है।

गरम पानी और साबुन का प्रयोग सिर पर कभी नही करना चाहिए। बालो को यदि साफ करना हो तो साबुन के बजाय आंवले का पानी, बेसन का घोल, कालीमिट्टी, या खट्टे दही का इस्तेमाल करना चाहिए।

सिर पर तेल लगाना, शरीर की तेल-मालिश के समयो के अलावा जरूरी नही है। पर सिर के बालो के रूखापन को दूर करने के लिए कभी-कभी शुद्ध सरसो का तेल उनमे मला जा सकता है। बाजारू तेलो का प्रयोग इस काम के लिए नही होना चाहिए अन्यथा बालो को हानि पहुचेगी। अर्थात् वे समय से पहले ही पकने और झडने लगेगे और उनकी चमक मारी जायगी।

जो उपर्युक्त रीति से सिर स्नान करते रहते है, उनके सिर के बाल न तो रूखे होते है और न समय से पहले पकते और नष्ट होते हैं।

शुक्लपक्ष के प्रथम सप्ताह मे हजामत बनवाने या बाल छोटे करवाने से बालो की वृद्धि अधिक होती है और वे स्वस्थ भी रहते है।

२६-ठंडा तरेरा (नीप)

तरेरा या Douche देने के लिए यन्त्र मिलता है। पर यन्त्र के अभाव मे घर के नलो, हौजो, अथवा साधारण टीन के बर्तन भी जिसमे रबर की नली लगी हो, काम मे लाया जा सकता है। लोटे या अंजुली मे पानी भरकर भी तरेरा दिया जा सकता है। साधारणत तरेरा के लिए आधा इन्च मोटी धार नल, हौज, या टीन के बर्तन से निकलनी चाहिए। आवश्यकतानुसार कभी-कभी बाल जैसी बारीक धार भी काम मे लायी जाती है। तरेरा का प्रभाव व गुण उसकी मोटी-पतली धार द्वारा दबाव पर निर्भर होता है। सदैव साधारण ठडे पानी से ही तरेरा देना चाहिए। कमजोर और अशक्त रोगी के अंग पर यदि तरेरा देना हो तो कम ऊंचाई से देना चाहिए और कम समय तक भी। प्राय. दो से चार मिनट तक एक अंग पर

ठंडा तरेरा

लगातार तरेरा देना काफी होता है ।

सिर, बाह, छाती, आदि जिस किसी अ ग पर तरेरा देना हो उसको थोड़ी देर तक मलने के बाद तरेरा देना चाहिए और तरेरा दे चुकने के बाद उस स्थान को पौछकर पुन मलना चाहिए। बहुत देर तक तरेरा देना हानिकारक है। शरीर के जिस भाग पर अपना हाथ न पहुंचे वहा किसी दूसर आदमी से तरेरा दिलवाना चाहिए।

लगभग सभी पुराने रोगों मे तरेरा लाभकारी सिद्ध होता है। सक्रामक रोगो मे यह विशेष रूप से फलप्रद है ।

भीगी पट्टियां और लपेट

जल चिकित्सा मे ठडे जल से भीगी कपडे की पट्टियो और लपेट का बहुत बडा महत्व है। कितने ही रोगो में तो इन पट्टियो के प्रयोग से जादू का सा असर होता है। देहाती भाषा मे इन्ही पट्टियों को पनकपडा (पानी कपड़ा) और जल पट्टी भी कहते है ।

पट्टियो और लपेट के लिये खादी सर्वोत्तम होती है क्योंकि वह जल को आसानी से और जल्दी सोखती है और उसे काफी देरतक पकडे रहती हैपुराने साफ कपडे जैसे धोतियां, साडिया, बिस्तर पर बिछाने-वाली चादरे, आदि भी अच्छा काम देती है। पट्टिया सफेद कपडो की ही बनानी चाहिये और उन्हे सदैव साफ रखनी चाहिये। पर उन्हे साबुन से धोकर साफ रखना ठीक नही । उन्हे साफ करने के लिये पीट पीटकर पानी से धोना चाहिये जैसे धोबी लोग कपड़ो को पाटे पर पीट-पीट कर धोते हैं, या लकडी की मु गरी से पीटते है । अगर साबुन लगाये बिना काम न चले तो पट्टिया को धोने के लिये साबुन की जगह धोने वाले सोडा का इस्तेमाल किया जा सकता है।

पानी जो पट्टीयो और लपेटो को भिगोने के काम मे लाया जाय वह जैसा कि एक बार ऊपर बताया जा चुका है, साधारण पीने वाले कुये का ताजा हो। वर्षा का जल सर्वोत्तम होता है । इन दोनो के प्रकार जलो के न मिलने पर ही नदी तालाब या शहर की म्युनिसपाल्टी के नल का पानी काम में लाना चाहिये ।

भीगी बडी चादरें पूरे शरीर पर लपेटने के काम मे आती है और पट्टिया शरीर के किसी भाग या अग, जैसे सिर, गर्दन, छाती,पीठ, तथा टाग आदि पर लगाई जाती है ।

ठंडी जल पट्टी

पट्टिया दो प्रकार की होती है। एक को ठडी जल पट्टी कहते है, और दूसरे को गरम जलपट्टीया Stimulating wet bandage ठडी जल पट्टी लगाने के बाद खुली रखी जाती है । अर्थात् उसके ऊपर कोई दूसरा सूखा कपडा नही लपेटा जाता, और जिसको २ से ५ मिनट मे गरम होने के बाद यातो दूसरी ठडी जल पट्टी से बदल दिया जाता है या उसपर ठडा जल छोड़कर उसे पुन ठडी कर दिया जाता है। ठडी पट्टी की जरूरत हो और यदि वह अग ठडे पानी से भरे बर्तन आदि मे डुबाया जा सके तो उसे ऐसा करने से ठडी जल पट्टी का काम चल जाता है और उस रोगी अंग को उतना ही लाभ होता है जितना उस पर ठडी जल पट्टी के प्रयोग करने का ।

ठडी जल पट्टी या cooling wet bandage सभी प्रकार की पीडा, दर्द, टपकन, जलन, चोट तथा सूजन की राम बाण औषधि है। आग से जलने, जहरीले जानवरों के काटने अथवा डक मारने, हड्डी आदि के टूटने, मोच, जखम, कुचलन, हथियार से किसी अग के कटने, चोट एवं फोडे आदि के दर्द मे इसी पट्टी से लाभ होताहै। दर्द जितना ही जोरदार हो ठडी जल पट्टी उतनी मोटी लगानी चाहिये । हड्डी के टूटने मे यदि दर्द शिद्दत का होता हो

इस पट्टी द्वारा पहले दर्द को दूर करना चाहिए, तत्पश्चात उसे बैठाकर लकड़ी की तख्ती (splint) के साथ पुन: जल पट्टी का प्रयोग करना चाहिये ।

बहुत सख्त दर्द की हालत मे जल पट्टी लगे अंग को, यदि सम्भव हो तो ठंडे पानी से भरे बर्तन मे डुबोकर उसी मे हिलाते रहना चाहिये, साथ साथ थोडी थोड़ी देर बाद हाथ से पट्टी लगे स्थान को दबा दबा कर पट्टी के पानी को निचोडते रहना चाहिए । ताकि पट्टी मे हर वक्त नया और ठंडा पानी भरा रह कर दर्द को जल्दी दूर करने मे मदद कर सके । सख्त दर्द की हालत मे जल पट्टी के लिए ठंडे से ठंडा जल व्यवहार मे लाना ठीक रहता है मगर बरफ का व्यवहार इसके लिए हरगिज नही करना चाहिए । ठंडी जल पट्टी के लिए-ठंडे से ठंडा जल व्यवहार करने पर भी यदि दर्द मे कमी न हो तो पट्टी को खोलकर उस समूचे अंग पर दूर तक पट्टी लगाना चाहिये, और उसे हर आधा घंटे के बाद बार बार तर करते रहना चाहिये । बहुत हालतो मे कसकर पट्टी बाधने से दर्द कम होने के बजाय और बढ जाता है उस हालत मे पट्टी को निश्चय ही ढीला कर देना चाहिए । यदि समूचे अङ्ग पर लगी पट्टी को हर आध घण्टे के बाद तर करते रहने के बाद भी दर्द मे कमी न हो तो उसके ऊपर धीरे धीरे और लगातार ठंडे पानी की धार डालना आरम्भ कर देना चाहिए और उसे उस वक्त तक जारी रखना चाहिए जब तक कि दर्द दूर न हो जाय । पट्टी खोल कर और उसकी जगह केवल दो चार तह किया हुआ कपडा रखकर भी लाभ के साथ उस पर जल की धार डाली जा सकती है इस प्रयोग से असह्य दर्द भी दूर हो जाता है बशर्ते कि धार केवल दर्द वाले स्थान पर न पड कर समूचे अंग पर पडे और लगातार पड़े। कदाचित कोई दर्द इस उपचार से भी न जाय तो उस हालत मे गरम और ठंडा—दोनो प्रकार का जल बारी बारी से एक के बाद दूसरा काम मे लाना चाहिए अवश्य लाभ होगा ।

ठंडी जल पट्टी के अधिक लाभदायक होने पर भी इसको लगातार और बहुत समय तक लगाना उचित नही कारण ऐसा करने से खून के दौरे मे फर्क पड सकता है वह रुक भी जा सकता है जिससे वह अङ्ग ही सुन्न पड सकता है पर यदि इस पट्टी का अधिक समय तक प्रयोग करना ही हो तो प्रत्येक आध घंटा के बाद बीच मे ३से६ मिनट के लिए पट्टी को हटाकर और उस स्थान को सुखाकर रगड रगड कर लाल और गरम कर देना चाहिए अथवा उसे २-३ मिनट तक सेंक देना चाहिए ताकि खून का दौरा चालू रहे ।

साधारण दर्द की हालत मे भी जलपट्टी केवल दर्द की जगह पर ही नही लगाना चाहिये, अपितु उसके आसपास भी काफी दूर तक लगानी चाहिए । पट्टी की मोटाई कम से कम आध इञ्च अवश्य होनी चाहिए । दर्द के स्थान पर पट्टी लगाकर उसे कपडे की धज्जियो से भलीभाति बाध देना चाहिए ताकि पट्टी अपनी जगह से खिसके नही पट्टी को हमेशा सहने योग्य कसकर बांधना चाहिए ।

खुले मुंह के जख्म पर जरूरत मुताबिक ताजे नारियल अथवा किसी अन्य मीठे तेल से भीगा साफ कपडे का एक छोटा टुकडा रखकर ऊपर से ठंडी जल पट्टी बाधी जा सकती है ।

रोगी यदि किसी वजह से ठंडी जल पट्टी सहन न कर सकता हो अथवा उसके शरीर की गर्मी घट गयी हो और वह अस्वाभाविक रूप से सर्द पड गया हो उस हालत मे शीतल जल पट्टी की जगह गुनगुने जल की पट्टी लगानी चाहिए ।

चोट लगकर खून न बन्द होने की दशा मे ठंडे पानी की पट्टिया बडा लाभ पहुचाती है । इनसे खून बहुत जल्द बन्द हो जाता है और टपकन तुरन्त शात हो जाती है ।

गर्म जल-पट्टी के द्वारा जो गर्मी निकलती है वह ताप विकीरण (Heat Radiation) के सिद्धांत पर अवलम्बित है। पट्टी के नीचे जो नम गर्मी बनती रहती है वह रक्त को अन्दर से बाहर की ओर खीचती है जिसके फलस्वरूप न्यूनतम रक्त नलिकाय और रोमकूप फैल जाते है और शरीर की बढी हुई गर्मी को बाहर निकालने मे समर्थ होते है । ज्वर की दशा मे रक्त नलिकाये और रोमकूप संकुचित हुये रहते है जिसकी वजह से ज्वर जनित बढी हुई गरमी निकल नही पाती, फलत त्वचा गर्म और रूखी हो जाती है और शरीर के भीतर दबी वह गर्मी शरीर के भीतरी अवयवो को जलाया करती है। ठंडी पट्टी देने से त्वचा फैल जाती है तथा रोमकूप खुल जाते है जिनके रास्ते शरीर की बढी गरमी और पसीने के रूप मे मल शरीर

के बाहर होने लगता है। परिणामतः ज्वर धीरे धीरे शांत हो जाता है।

गरम जल-पट्टी

ठडी जल पट्टी लगाने के बाद उसके ऊपर जब सूखे फलालैन या किसी अन्य ऊनी कपडे की एक दूसरी पट्टी लपेट दी जाती है तो उसे गरम जल पट्टी कहते है। कारण ऊनी कपडे आदि की सूखी पट्टी के प्रयोग से नीचे की ठडी जल पट्टी थोडी ही देर मे आप से आप गरम हो उठती है। गरम जल पट्टी का यह अर्थ लगाना कि पट्टी बजाय ठडे जल से तर करने के गरम जल से तर की जाती है सरासर गलत है।

गरम जल पट्टी भी ठडी जल पट्टी की तरह ही लगाई जाती है। मगर इसे ठडे पानी से इतना तर नही किया जाता कि लगाने के बाद उससे पानी टपकता रहे, अपितु पट्टी को तर कर लेने के बाद उसे निचोड़कर तब इस्तेमाल किया जाता है। इस निचोडी ठडी जल पट्टी को लगाने के बाद उसके ऊपर फलालैन या ऊनी कपडे की दूसरी पट्टी की २-३ तह इस प्रकार लगाई जाती है कि गीली पट्टी से सूखी पट्टी १-१ अगुल चारो तरफ बढी रहे। फलालैन या ऊनी कपडे की सूखी पट्टी की तरह कभी-कभी आवश्यकतानुसार मोमजामे या रबर की चादर का भी व्यवहार किया जाता है।

नीचे की ठडी पट्टी जब कुछ देर के बाद गरम हो जाती है तो ऊपर के ऊनी कपड़े का आवरण हटा कर और उसे ठडे पानी से तर करके पुन. उसे गरम आवरण से आवृत कर दिया जाता है।

तीन से छ: घटे तक यह गरम पट्टी रखी जाती है। उसके बाद उसे बदल दिया जाता है।

रोगी की दशा, देश तथा काल के अनुसार ही यह पट्टी मोटी या पतली लगायी जाती है, तथा उसके ऊपर की सूखी गरम पट्टी एक तह या कई तह की हो सकती है, या एक दम निकाल ही दी जा सकती है। रोगी जितना ही सबल होता है, तथा ज्वर जितना ही तेज होता है, तर पट्टी की आवश्यकता उतनी ही अधिक एव उस पर की सूखी गरम पट्टी उतनी ही कम मोटी होने की आवश्यकता होती है। निर्बल रोगियो की चिकित्सा करना हो, पुराने रोगो मे रोगी को नीद लाना हो, शरीर के विजातीय द्रव्य को ढीला करके निकालना हो एव रोग को उभाड़ना हो तो एक तह की ठडी जल पट्टी के ऊपर दो तीन तह किसी सूखे कपडे की पट्टी या केवल एक तह ऊनी कपड़े की पट्टी लगानी ही प्रतिक्रिया के लिए काफी होता है।

चेचक तथा तेज ज्वर आदि अधिक तापवाले रोगो मे नीचे की ठडी जल पट्टी ज्यो ही सूख जाय या गरम हो जाय त्यो ही उसे बदल देना जरूरी होता है।

एक बार की लगी पट्टी को हर बार साफ करना और धूप मे सुखा लेना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अलावा जब-जब शरीर से पट्टी अलग की जाय उस स्थान को तुरन्त ठडे पानी से भीगे और निचोडे अगोछे से रगड-रगड़ कर अवश्य साफ कर लिया जाय। ऐसा करने से त्वचा के ऊपरी तल तक आया हुआ शरीर का विष और मल आदि साफ होजाते है, ऊपर आयी हुई अनावश्यक गरमी दूर हो जाती है, शरीर की चुम्बकीय शक्ति एव जीवनी शक्ति बढ़ जाती है तथा त्वचा की स्वाभाविक क्रिया स्वाभाविक रूप से होने लगती है।

गरम जल–पट्टिया पुराने रोगों तथा बिना दर्द की हालतो मे विशेष रूप से लाभ करती है।

वस्तुतः ये दोनो प्रकार की पट्टिया शरीर की भीतरी गरमी को शात करने के लिए अद्वितीय हैं। बढी हुई गर्मी के साथ साथ ये शरीर के जकडे हुए स्थानों की रुकावटो को भी दूर करती है तथा रक्त के जमाव को खोलती हैं। ज्वर के बेहद ताप को दूर करने तथा रोगी की घबराहट को कम करने के लिए इन पट्टियो के समान दूसरा कोई उपाय नही है।

पूरे शरीर पर गीली चादर की लपेट

यह पूरे शरीर की गरम लपेट या पट्टी है। इसको अग्रेजी मे Wet sheet pack, Whole body compress, Whole body pack, Stimulating wet pack तथा Sweating wet sheet pack भी कहते हैं।

आज से बहुत पहले अठारहवीं शताब्दि के मध्य मे लूकस नाम के एक डाक्टर ने सर्व प्रथम गीली चादर की इस लपेट का प्रयोग किया था। तत्पश्चात् जर्मन निवासी डाक्टर वी० प्रिस्नेज ने कितने ही रोगो मे इस लपेट का प्रयोग करके बहुत से रोगियो को रोगमुक्त किया। गुल्ले-

...क वैज्ञानिक ने इस लपेट का प्रयोग एक बार ...किया था। उसने लिखा है कि गीली चादर की ...तिक्रिया ज्यों ही चूहों पर आरम्भ हुई, उनके ...की वे रक्त-नलिकायें जो पहले फैली हुई थी, ...लगी और थोड़ी ही देर में सारे मस्तिष्क में सिकु... गयी जैसा कि स्वाभाविक निद्रावस्था में होता है। ...द्रावस्था के सदृश ही इस लपेट से रोगी के मस्तिष्क ...की खराबी और विकृति दूर हो जाती है।

...ारे राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी इस लपेट की सराहना ...ही अघाते थे। उन्होंने एक बार 'यंग इण्डिया' में ...र बताया था कि उन्होंने किस तरह अपने बड़े ...श्री मणिलाल गांधी को केवल इस लपेट से काला-...से भयंकर रोग से मुक्त किया।

...रे शरीर की इस लपेट को किसी साफ जगह पर किसी ...र हवादार कमरे में लेना चाहिए दोपहर का खाना ...दो घंटे बाद यह लपेट ली जा सकती है। लपेट ...की विधि यह है—

...क ६ फुट लम्बी और २ फुट चौड़ी चौकी पर ...ने पर एक रूईदार पतली तकिया रखकर उस पर ...फुट चौडी और ३ फुट लम्बी सूती चादर को ...की तरफ से इस प्रकार बिछावे कि तकिया उससे ...हाई ढक जाय।

...उसके ऊपर एक के ऊपर एक, कम्बलों के वजन के अनुसार ...न कम्बल डाले। ये कम्बल चौकी के तीन तरफ दो-दो ...टकती रहेगी और तकिये की तरफ रखी हुई चादर के ...च नीचे खिसकाकर बिछाई जायेगी। अर्थात् कम्बलों ...छा देने पर नीचे की चादर सिर की तरफ दो इंच ...ई देगी।

...अब एक छ फुट लम्बी और उतनी ही चौड़ी सूती ...को ठंडे पानी में भिगोकर और निचोड़ कर उसे ...लों पर बिछा दें। सिरहाने की तरफ का किनारा ...की कम्बलों से एक इन्च नीचे की ओर हट कर रहे। ...कभी पतले कपड़े का एक और टुकड़ा ठंडे पानी से ...कर और निचोड़ कर इस बड़ी भीगी चादर पर ...देना जरूरी होता है, जिसे सर्व प्रथम छाती पर डाल ...नीचे वाली बड़ी भीगी चादर से रोगी का समूचा ...र पैर से गले तक ढंका जाता है।

इस गीली चादर पर रोगी इस प्रकार नंगा होकर सोए कि गीली चादर का सिरा उसके कंधों से तीन इन्च ऊपर की ओर रहे। रोगी अपने दोनों हाथ ऊपर को करले और उपचारक चादर को एक ओर से उठाकर उसके बगल से लेजाते हुए उसके शरीर को अच्छी तरह से ढंक दे। ढकने में चादर को अच्छी तरह बगल, पेट तथा छाती पर चिपका दी जानी चाहिए। इसी से एक पैर को भी अच्छी तरह इस प्रकार ढका जाय कि वह पूरे पैर को पुरुष पाणि की तरह पकड़ ले। ध्यान रहे कि चादर पैर के तलवे से अच्छी तरह सट जाय। दूसरा पैर खुला रहेगा।

गीली चादर पर सोने से पहले रोगी का सिर, चेहरा, और गर्दन ठंडे पानी से अच्छी तरह धो देना चाहिए, तथा एक गिलास गरम पानी उसमें ८-१० बूंद नीबू का रस डाल कर पिला देना चाहिए। यदि रोगी के शरीर से अधिक पसीना निकालना हो तो हर १० मिनट बाद आधा-आधा गिलास गरम पानी पिलाना चाहिए। इसके अलावा बाहर के कम्बलों की तादाद बढ़ा देने से भी पसीना निकलता है। कम्बलों के ऊपर मोमजामा (Oil cloth) अथवा रबर की चादर और नीचे गरम पानी से भरी काफी बोतलें रख देने से जाड़े के दिनों में भी शरीर से पसीना बह चलता है। यदि इनका व्यवहार करना हो तो इन्हें नीचे की सूखी सूती चादर के ऊपर बिछाना चाहिए तत्पश्चात् कम्बलों के ऊपर लौटकर डाल देना चाहिये।

अब रोगी दोनों हाथों को नीचे लाकर बगल से सटा दे और उपचारक दूसरी ओर जाकर पहले की तरह चादर से दूसरे पैर को ढंकते हुए छाती, पेट, बगल आदि से अच्छी तरह चिपकाते हुए ढक दे। ऊपर की ओर गले पर चादर को इस प्रकार लगावें जैसे नाई बाल काटते वक्त तौलिया या चादर फसा देता है। यह इस लिए कि चादर की फांक से होकर बाहर की हवा लपेट के भीतर न जाय। इस प्रकार लपेट देने से भीगी चादर रोगी के सारे शरीर को अच्छी तरह पकड लेती है जिससे भीतर वायु नहीं घुस पाती।

तत्पश्चात् ... की चादर पैरों के भीतर खोसकर, तथा ... की ओर की चादर का अग्र हाथ
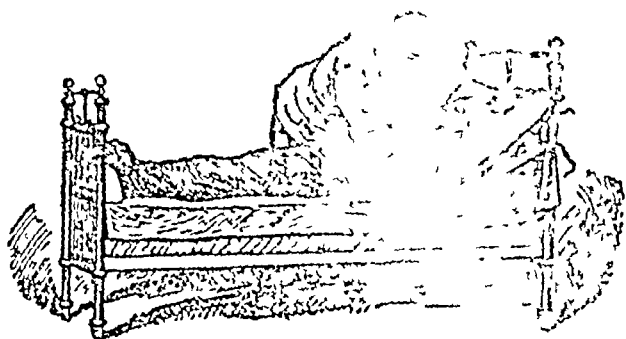
पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट

और बगल में खोसकर सबसे ऊपर वाले कम्बल को दोनो तरफ से बारी-बारी उठाकर जरा मजबूती से रोगी के चादर लिपटे हुए शरीर पर लपेटते हुए उसे उढा देना चाहिये। इसी प्रकार दूसरे और तीसरे कम्बल से भी रोगी के शरीर को ढक देना चाहिए और उनके सिरे कंधे, बगल और पैरो के नीचे बड़ी सावधानी से दबा देने चाहिए। कंधे को ढकते वक्त यह देख लेना चाहिए कि कम्बल गले के नीचे की चादर को भलीभांति ढक रही है।

अंत मे पैर की ओर लटकता कम्बल का सिरा पलट कर पैरो पर लावे और सिर की ओर की सूती सूखी चादर को उठाकर ढंग से रोगी की छाती, कंधों और गले पर इस प्रकार लपेटे कि रोगी की गर्दन और गाल आदि कम्बल पर रगड़ खाने से बचे रहे और हवा किसी तरह अन्दर न प्रवेश कर सके।

लपेट कर चुकने के बाद रोगी के सिर को ठंडे पानी से भीगे एक गमछे से ढंक देना चाहिए जिसे अन्त तक पड़े रहने देना चाहिए और बीच-बीच मे गरम हो जाने पर बदलते रहना चाहिए। साथ ही उसके पैरो के नीचे एक एक गरम पानी की थैली या गरम पानी की बोतल या दोनो जरूर रखदेनी चाहिए।

विधिपूर्वक लपेट देने के ५-१० मिनट के भीतर ही रोगी को साधारणतः पसीना होने लगता है और उसके भीतर रोगी को एक प्रकार की सुखदायक गर्मी मालूम होने लगती है और उसे प्राय गहरी नींद आ जाती है। यदि रोगी बहुत देर तक ठंडी अवस्था मे पड़ा रहे और उसे पसीना न आवे अथवा गर्मी न मालूम हो तो जानना चाहिए कि भीतर गीली चादर कहीं शरीर से अच्छी तरह चिपकने से रह गयी है और ठंडी चादर के बदन पर लगने की प्रतिक्रिया स्वरूप उसमे जो तेज गर्मी पैदा होनी चाहिये थी उसके बजाय बदन की गर्मी, कारण चादर की नमी, भाप बनकर बदन को ठंडा कर रही है। लपेट के भीतर एक जगह पर पैदा हुई ठंडक सारे शरीर मे फैल जाती है, रोगी को बहुत कष्ट होता है। ऐसी हालत में दोनो बगल मे दो दो तीन-तीन बोतलें गरम पानी रख देना चाहिये अथवा ईंट गरम कर उसे लपेट कर दोनो बगल मे रख देना चाहिये तथा ऊपर जरूरत के मुताबिक दो एक कम्बल और चाहिये।

यदि रोगी बहुत कमजोर हो और उसे के कठिन रोग से बहुत परेशानी हो तो उसके हाथ चादर के बाहर रखे जा सकते हैं पर तब भी वे के नीचे ही रहेगे ताकि उनमे ठंडक न लगे। के शरीर से देर तक पसीना चलने देना भी ठीक

जब तक लपेट के भीतर रोगी को सुख मिले तब तक उसके भीतर उसे रहना चाहिये। वैसे से लेकर आधा घंटा, और कभी-कभी एक घंटा तक को लपेट के भीतर रखा जा सकता है। किन्तु से या एक घंटा से अधिक रोगी को लपेट के भीतर से हानि भी हो सकती है।

१-शक्ति वर्द्धक चादर-स्नान (शीतक आर्द्र चादर-स्नान)

इस प्रयोग मे चार अवस्थाये होती हैं।

पहली अवस्था मे भीगी चादर से प्रथम मिनट तक कपकपी सी लगती है। यह अवस्था और शक्तिवर्द्धक होती है। इसलिये इसको 'शक्तिवर्द्धक चादर-स्नान' भी कहते हैं। भीगी बदलकर यह अवस्था बढाई जा सकती है। के खतम होने से पहले ही जब भीगी चादर बदल है, तब उसे शीतक-आर्द्र चादर-स्नान कहते हैं शरीर के तापमान की वृद्धि को रोकने मे उपयोगी है स्नान के लिए चादर ६०°–७० तापमान के ठंडे भिगोनी चाहिए। कम्बल के नीचे भीगी चादर पानी छिडकने वा बर्फ का टुकडा फेरते रहने बदलने की जरूरत नही रहती। पाण्डु रोग, के बिगाड, कमजोरी, मोतीझरा, टाइफस, टाइफ

...और प्लेग आदि मे यह चादर-स्नान यदि दूसरी ...के प्रारम्भ तक ले जाया जाय, तो बड़ा उपकारी ...ता है।

...तक आर्द्र चादर-स्नान के प्रयोग मे एक कम्बल के ...क ही गीली चादर बिछा देते है और उसे गले ...बाद दूसरी लपेट देदेते है। इसमे चादर को काफी ...खते हैं और उसे हर १० या १५ मिनट बाद बद-...ते है। चाहे तो दो भीगी चादरे भी इस्तेमाल कर ...। गीली चादर को गले के पास लगाने से पहले ...पर कोई ऊनी कपडे का टुकड़ा अवश्य रख देना ...अन्यथा वहा सर्दी लगकर न्युमोनियां तक हो ...है। ठडे पानी के वैज्ञानिक स्नान से जो लाभ होते ...क आर्द्र चादर-स्नान या The cooling wet-pack से भी वेही लाभ होते है।

२—मध्यम चादर स्नान

...योग की दूसरी अवस्था मे कपकंपी बंद हो जाती ...यी उष्णता के कारण आराम मिलने लगता है, ...क कि रोगी, को नीद आ जाती है। इस अवस्था ...की गर्मी ९२ होती है। प्रयोग की इस अवस्था ...ध्यम चादर-स्नान' कहते है। यह अवस्था प्रतिक्रिया ... होते ही ऊपर के कम्बलो की सख्या कम करके बढाई ...ती है। परन्तु ऐसा करते समय इस बात की ...नी रखनी चाहिए कि भीतर की गीली चादर ढीली ...जाय अन्यथा शरीर मे सर्दी लगकर हानि हो ...है। लपेटकी इस अवस्था से अनिद्रा, उन्माद, उदासीनता, ...निया, मोतीझरा, फुफ्फुस प्रदाह, धनुर्वात, आदि ...मे अच्छा लाभ होता है।

३—उष्ण चादर-स्नान

...लपेट की दूसरी अवस्था मे जब गर्मी ९२ से बढने ... है तब उसे लपेट की तीसरी अवस्था समझनी ...। इस अवस्था मे शरीर से पसीना छूटना आरम्भ ...ता है जिससे कमजोरी मालूम होने लगती है। ... ...रा कम करके तथा सिर तथा चेहरे को लगा-... ... पानी मे धोते रहकर यह अवस्था बढाई जा ... है और उसके बाद आने वाली चौथी अवस्था को ...देर के लिए रोका जा सकता है। इस अवस्था को 'उष्ण चादर-स्नान' कहतेहै। यह मस्तक मे रक्त एकत्र होने, यकृत और प्लीहा मे रक्त जमा होने तथा उनकी वृद्धि, कब्ज, एवं जलोदर रोग मे विशेष उपयोगी है।

४—स्वेदक चादर-स्नान

गीली चादर की लपेट की अन्तिम और चौथी अवस्था को 'स्वेदक चादर-स्नान' कहते है जो तीसरी अवस्था के बाद पसीना आते ही आरम्भ हो जाती है। इस अवस्था को, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, हर आध घंटा के बाद गरम (गर्म की जगह ठडा भी लिया जा सकता है) पानी पीकर, गरम पानी की बोतले, कम्बल के नीचे रखकर एव कम्बलो की तादाद बढाकर काफी समय तक बढाया जा सकता है।

इस चौथी अवस्था के अन्त में शरीर से लपेट बडी सावधानी से और धीरे-धीरे हटाना चाहिए, और उसके हट जाने पर तुरन्त, यदि रोगी सबल हो तो ठडे पानी से, दुर्बल हो तो गुनगुने पानी से भिगोये हुए गमछे या तौलिया से उसका समूचा शरीर बारी-बारी से पर शीघ्रता के साथ पोछ देना जरूरी है जिसका अर्थ होता है.—

(१) पसीने के साथ चर्म के ऊपरी भाग पर आये हुए शरीर स्थित विष को अलग कर देना,

(२) शरीर की अनावश्यक गर्मी को कम कर देना, तथा

(३) शरीर स्थित चुम्बकीय-शक्ति (Electro magnetic) अथवा जीवनी शक्ति मे वृद्धि कर देना।

इस तरह भीगे गमछे से बदन पोछ कर (स्पञ्ज बाथ देकर) रोगी को १० से १५ मिनट तक उदर स्नान देने के बाद, रोगी की अवस्था के अनुसार उसे ठडे पानी का पूरा स्नान दे देना चाहिए या उसके पेडू पर १० से १२ मिनट तक ठडे पानी मे भिगोया और निचोड़ा गमछा रख उसे बार-बार बदलते रहना चाहिए। यह सब काम करते हुए इस बात का ध्यान बराबर रखना चाहिए कि स्पञ्ज बाथ आदि किसी ऐसे घर मे दिये जाए जहा हवा के झोके रोगी के शरीर पर न लगने पावे। लपेट से पसीना निकल चुकने के बाद यदि ये ठडे प्रयोग न किये जायेगे तो रोगी के सिर मे चक्कर आने लगेगे और कमजोरी अधिक बढ जायगी।
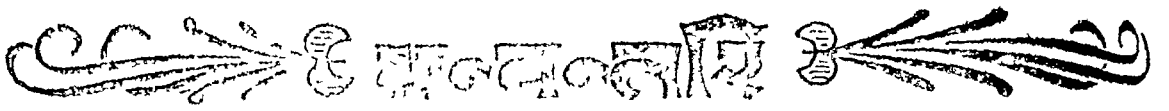
स्पञ्जबाथ या पूर्ण स्नान के बाद रोगी का बदन खूब अच्छी तरह से पोछ कर उसे बिस्तर पर रजाई या कम्बल मे लगभग एक घटे तक लपेटे रखना चाहिए ताकि उसका शरीर थोड़ा गरम हो जाय। सबल रोगी लेटने के बजाय अपनी हथेलियो से सारे शरीर की सूखी मालिश कर सकता है, या हल्की धूप मे थोडी दूर टहल सकता है।

भाप-नहान से जो फायदे होते हे। गीली चादर की लपेट से भी वे ही फायदे होते हे। यह लपेट शरीर से रोग विष को ही नही निकालती वरन् स्नायुश्रो के केन्द्र को भी शीतल करती है और जीवनी-शक्ति को भी बढ़ाती है। यह लपेट निमोनिया के रोगी के लिए विशेष रूप से लाभदायक है। इससे हृदय की गति रुकने की बीमारी भी शान्त हो जाती है।

जल-चिकित्सा सम्बन्धी ठडे पानी के नहानो से गीली चादर की लपेट अधिक लाभकारी है। क्योंकि इसमे ठंडक का असर धीरे-धीरे होने के कारण तज्जनित लाभ भी देर तक रहता है। जैसे, ठंडे पानी के वैज्ञानिक स्नान भी ज्वर को कम करते है, पर गीली चादर के प्रयोग से कम हुआ ज्वर देर तक कम रहता है, और ठडे पानी के मुकाबिले मे इससे ज्वर का कम होना अधिक निश्चित रहता है।

गीली-चादर की ठडी लपेट वास्तव मे गीली चादर की गरम लपेट है। कारण, यह बदन पर लिपटने के बाद चंद मिनट ही ठडी रहती है किन्तु उसके बाद शरीर की गर्मी से वह इतनी गरम हो उठती है कि रोगी के शरीर से पसीना बह चलता है ठीक उस प्रकार जिस प्रकार भाप-स्नान में होता है। परन्तु चूकि भाप-नहान की भांति इस लपेट से शरीर को अत्यन्त गरम न करके लपेट देकर ही पसीना निकालने का कार्य सम्पन्न किया जाता है, इसलिए लपेट का प्रयोग भाप-नहान के प्रयोग से कहीं अच्छा माना जाता है। क्योंकि इससे सबल और निर्बल—दोनो प्रकार के रोगी समान रूप से लाभ उठा सकते है।

जब किसी रोग के होने की आशका हो तो उस वक्त एक या दो एनिमा से आतो को साफ करके पूरे शरीर पर गीली चादर की लपेट लेने से रोग का जोर या तो बहुत ही कम हो जाता है या वह रोग होता ही नहीं। कारण, आतो की सफाई और लपेट की वजह से द्वारा शरीर का विष पसीने के रूप मे निकल जाने से रोग की जड़ ही कट जाती है। प्रयोग के बाद खोलते समय उसके भीतर की तेज बदबू तथा सफेद चादर का बदल कर पीला हो जाना इस बात का प्रमाण है कि लपेट से शरीर का विष अवश्य निकलता है। तम्बाकू आदि सेवन करने वाले रोगियों के शरीर पर लिपटी चादर जब खोली जाती है तो उसमें साफ तम्बाकू की गंध कोई भी अनुभव कर सकता है।

पुराना कब्ज, छाती के सभी प्रकार के रोग, सभी प्रकार के जुकाम, चेचक, खारिश, कोढ, दमा, घबराहट, उदरामय, पांडुरोग, स्वप्नदोष, पेट की गड़बड़ी, भयानक फोड़े तथा लगभग सभी पुरानी और नई बीमारिया इस लपेट से दूर हो जाती है।

छोटे-छोटे और मामूली रोग साधारणतः एक दो लपेट लेने से आराम हो जाते है, पर पुराने रोगों में प्रयोग बार-बार करना जरूरी होता है। पुराने रोग में मास मे तीन बार लपेट लेना काफी होता है, पर नये और प्राण लेवा रोग मे सप्ताह मे दो बार भी ये ली जा सकती है।

लपेट के प्रयोग में सावधानी

१—रोगी जब भीगी चादर पर लिटाया जाय, तो उसका शरीर गरम हो या किसी तरह गरम कर लिया जाय ताकि ठण्डी चादर पर लेटने मे उसे कष्ट न मालूम हो।

२—बच्चे, बूढे, और निर्बल रोगियो के लिए उनके जिस्म को एक बार गरम करके ही, यानी दस मिनट तक गरम सेक देकर या कुर्सी पर नंगे बैठाकर और समूचे शरीर को ढककर छ-सात मिनट तक भाप नहान देकर या सिर पर भीगी तौलिया रख कर कुछ देर टहल कर या सूखी मालिश करके गीली चादर की लपेट देना चाहिए। हा, ज्वर होने पर ऐसा प्रयोग करने की जरूरत नही होती। क्योंकि ज्वर में तो शरीर यो ही गरम रहता है।

३—रोगी के सूजन के स्थान पर, या अन्य किसी रोग के स्थान पर बड़ी गीली चादर के नीचे एक

पट्टी उस स्थान के बराबर अवश्य देदेनी चाहिए ।

४—रोगी की जीवनीशक्ति बहुत क्षीण हो जाने की हालत मे, तथा दाने उभाड़ने वाले ज्वरो मे इस लपेट के लगाने मे बडी सावधानी चाहिए ।

५—दमा आदि रोगो मे जब ठण्डी लपेट लगानी हो तब छाती के ऊपर एक ऊनी या मोटी खादी का एक टुकडा रखने के बाद ही पूरे शरीर की ठण्डी लपेट लगानी चाहिए ।

६—रोगी की जीवनी-शक्ति के परिमाण के अनुसार लपेटो की सख्या का निर्णय करना होता है । जब ज्वर तेज हो और रोगी सबल हो तो ठण्डे पानी मे भीगे कपड़े का परिमाण अधिक और उसके ऊपर गर्म कम्बलों की संख्या कम रखनी पडती है पर यदि रोगी कमजोर है तो उस हालत मे गीले कपड़े का परिमाण कम और गर्म कम्वलो की संख्या अधिक करदेनी चाहिए ।

७—शरीर पर अत्यधिक फोड़े-फुन्सिया हो तो पूरे शरीर की गीली पट्टी नही लगानी चाहिए ।

सिर की गीली पट्टी

एक साफ मोटे खद्दर के एक तह के कपडे को ताजे और ठण्डे पानी में भिगो तथा निचोड़कर उससे गले के पीछे के ऊपर से लेकर कानो को ढकते हुए आखो और
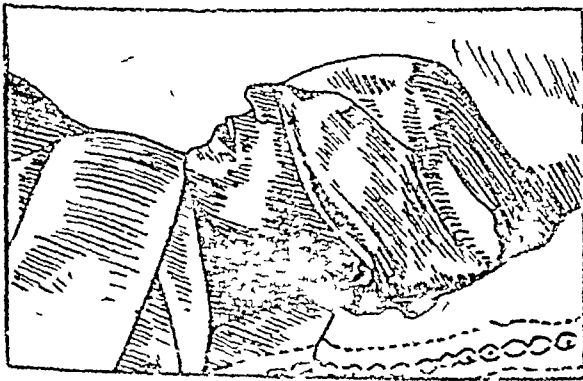
सिर की गीली पट्टी

मस्तक को पूरा-पूरा ढक दे और ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेट दें ताकि उसके भीतर हवा का प्रवेश न हो सके । आवश्यकतानुसार सेफ्टीपिन से पट्टी और ऊनी कपडे को अटका दें । यही सिर की गीली पट्टी है ।

इस पट्टी से सिर की पीड़ा और जकड़न तथा कान की पीड़ा दूर होती है । [देखिये चित्र]

गले की गीली पट्टी

गले की चौडाई के माप की ४×३२ इञ्च की पट्टी को ठंडे पानी मे भिगो निचोड़ कर गले के चारो तरफ कई तह लपेट दे । ऊपर से ऊनी मफलर या कोई गरम कपड़ा लपेट दें ।

इस पट्टी का सारे शरीर पर असर पडता है ।इस पट्टी द्वारा गले के ऊपर और नीचे–दोनो ओर की अनावश्यक गर्मी सहज ही मे खीची जा सकती है । इससे गले और उसके आसपास की सूजन, टासिल, कुकरखासी, जुकाम, सर्दी, खांसी तथा सिर दर्द दूर होता है । ज्वर के साथ जब सिर मे जोरो का दर्द हो और बेचैनी भी हो तो पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट के साथ गले की इस पट्टी के प्रयोग से बडा लाभ होता है । यह पट्टी ३ घटे या इससे भी अधिक देर तक प्रयोग मे लायी जा सकती है और बीच-बीच मे गरम हो जाने पर बदली जा सकती है ।

छाती की गीली पट्टी

खद्दर का एक टुकड़ा इतना बड़ा ले जो छाती की चौड़ाई के बराबर चौड़ा और इतना लम्बा हो कि सीने के इर्द
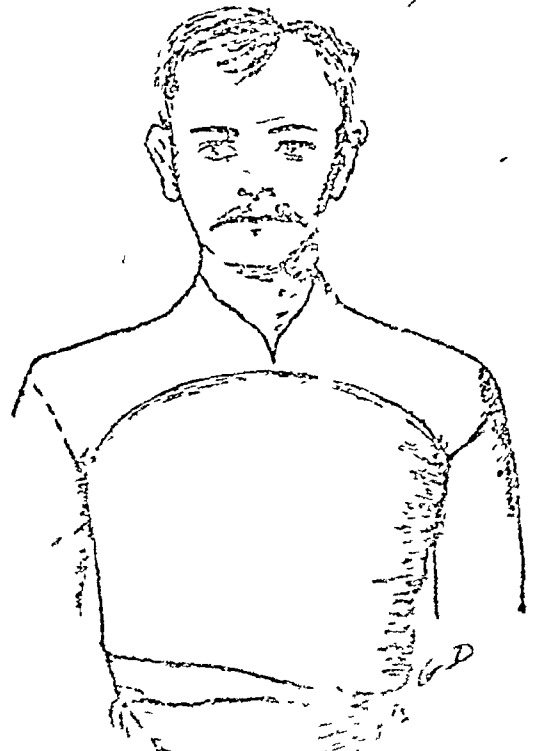
छाती की गीली पट्टी

गिर्द लिपट सके । इस कपडे को ठडे पानी मे भिगो निचोड कर पूरी छाती पर पसलियो के नीचे तक ३–४ तह लपेट दे । ऊपर से ऊनी कपडा लपेट दे । यह पट्टी १ से ४ घटे तक रखी जा सकती है ।

छाती के सभी रोगो जैसे निमोनिया, तेज खांसी, फेफड़ों का दिक आदि मे यह पट्टी बडा लाभ करती है । इसके लगाने से छाती मे जमा हुआ कफ उखडता है, इस लिये यह पुरानी खासी और दमे के रोगियो के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।

अत्यन्त निर्बल रोगी को जब यह पट्टी लगानी हो तो पट्टी लगाने से पहले छाती पर, हृदय बचाकर पहले गरम पानी से हल्की सेंक कर लेना चाहिए या पट्टी के भिगोने मे गुनगुने पानी का प्रयोग करना चाहिए । ऐसा करने से ठडक लगने का भय नही रहेगा ।

फेफडो से खून गिरना यदि रोकना होतो इस पट्टी को थोडे समय तक ही छाती पर लगाना चाहिये । परन्तु यदि फेफडों की कैविटी अर्थात् गह्वर भरना अभीष्ट हो जैसा कि राजयक्ष्मा मे होता है तो इस पट्टी को छाती पर लम्बे समय तक लगानी चाहिए ।

धड़ की गीली पट्टी

छाती की पट्टी बढाकर जब हसुलो से जघो तक दी जाती है, तब उसे धड़ की पट्टी कहते है । पेट, पेडू, आदि की पीडा एव सूजन, योनि में सूजन तथा यकृत, प्लीहा एव आमाशय आदि के रोगो मे यह पट्टी लाभ के साथ लगायी जाती है । पट्टी के सूख जाने पर उसे बदल देना चाहिये ।
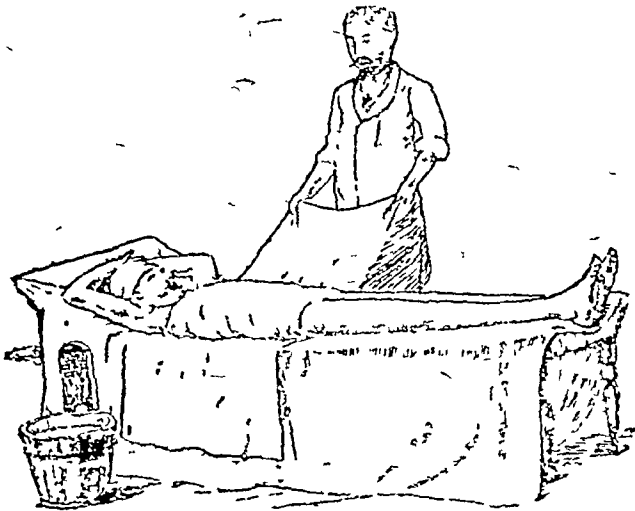
धड़ की गीली पट्टी

धड़ की गीली पट्टी लगाने के बाद समूचे शरीर को कम्बल में लपेटना आवश्यक है ।

पेडू की गीली पट्टी

पूरे पेडू पर तथा नाभि के दो अगुल ऊपर तक कपडे की भीगी पट्टी लगा कर उसके ऊपर ऊनी कपड़ा लपेट देने को पेडू की पट्टी देना कहते हैं । जर्मनी के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डा० एफ ० ई० बिल्ज के कथनानुसार यह पट्टी लगभग सभी रोगो के लिए राम बाण औषधि है । स्त्रियो के गुप्त रोगो मे तो यह जादू का सा असर दिखाती है । इसके अतिरिक्त पेट की सभी प्रकार की खराबिया, भीतर की नयी-पुरानी सूजन,पुरानी पेचिश, अजीर्ण, तथा अनिद्रा आदि मे इससे लाभ होता है ।
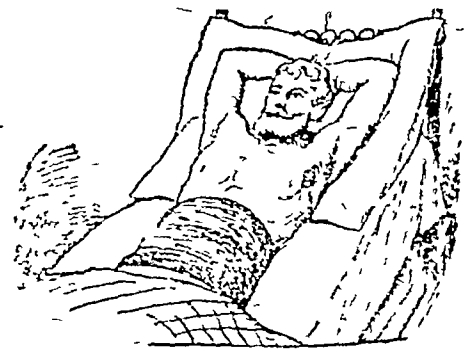
पेडू की गीली पट्टी

ज्वर के रोगो को इस पट्टी से आशातीत लाभ पहुचता है । ज्वर की हालत मे दिन मे ३-४ वार इस पट्टी का प्रयोग करना चाहिये । ज्वर, जब तक चला न जाय इस पट्टी को जारी रखना चाहिये ।

पेडू पर पट्टी देने के पूर्व, यदि वह गरम न हो तो उसे रगड कर गरम कर लेना चाहिए, तब गीली पट्टी लगानी चाहिये ।

कमर की गीली पट्टी

आठ-नौ इञ्च चौड़े और आवश्यकतानुसार लम्बे एक कपडे की पट्टी को ठडे पानी मे भिगो निचोड़ कर नाभि के चार पाच अंगुल ऊपर से नीचे सारे पेडू और कमर के चारो ओर लपेट देना चाहिए । पट्टी को २ वार घुमा कर लपेटना काफी होता है । वैसे नियम यह है कि रोगी के शरीर का तापमान जितना ही अधिक

हो उतनी ही अधिक बार पट्टी को कमर के चारो तरफ लपेटकर लपेट को मोटी कर देनी चाहिए। गीली पट्टी लपेटने के बाद उसके ऊपर एक दूसरा ऊनी कपड़ा लपेटना जरूरी है जिससे खून का दौरा न रुके और बाहर की हवा भीतर न प्रवेश कर जाय। फिर पट्टी और ऊनी कपडे को सेफ्टीपिन से अटका दे या ऊपर से कोई अगोछा लपेट कर उसमे गाठ दे दे ताकि पट्टी सरकने न पावे।

इस पट्टी को अंग्रेजी मे The wet Girdle 'Neptune's girdle या The Tonic Abdominal Wet Bandage कहते है। यह पट्टी लगभग सभी पुरानी और नयी बीमारियो मे लाभ करती है, पुविशेषकरराने कब्ज और दस्त आदि पेट की बीमारियों में कब्ज दूर करने के लिये इस पट्टी को खाली पेट या भोजन के दो घटे बाद दिन मे दो बार सुबह-शाम दो-दो घटे के लिये लगानी चाहिए। रात को सोने से पहले इस पट्टी को तीसरी बार लगा लेना चाहिए जिसे रात भर लगी रहने देना चाहिए और सुबह होने पर ही खोलना चाहिए। जब पट्टी खोली जाय तो जो स्थान पट्टी से ढका रहता है उसे खूब अच्छी तरह निचोडे हुए एक गीले गमछे से रगड़कर पोंछ देना चाहिए। तत्पश्चात् कपड़े आदि पहनकर उस स्थान को गरम कर देना अत्यन्त आवश्यक है।

पेडू से ऊपर के पेट तथा पेड़ू के नीचे के अवयवो के रोगो मे इस पट्टी को ऊपर या नीचे आवश्यकतानुसार बाधना चाहिये। पाकस्थली और लीवर के रोगों मे पट्टी से इन दोनो स्थानो को ढककर कुछ ऊपर की ओर बढा देना चाहिए। औरतो के जरायु आदि के रोगो मे नाभि से नीचे सारे पेड़ू के ऊपर यह पट्टी बाधनी चाहिये।

जो कमजोर रोगी उदर स्नान न ले सकता हो या उसके लेने की सुविधा न हो उसके लिये यह कमर पट्टी बड़ी लाभप्रद सिद्ध होती है, और उदर स्नान के समान ही फायदा पहुँचाती है।

पाकस्थली के बढ जाने या झूलने लगने मे, अजीर्ण मे, आंतों के घाव एवं सूजन मे तथा मेरुदण्ड के दर्द मे यह पट्टी बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है।

ज्वर की हालत मे इस पट्टी को नहीं लगाते। ज्वर दूर करने के लिये पेड़ू की पट्टी ही ठीक रहती है।
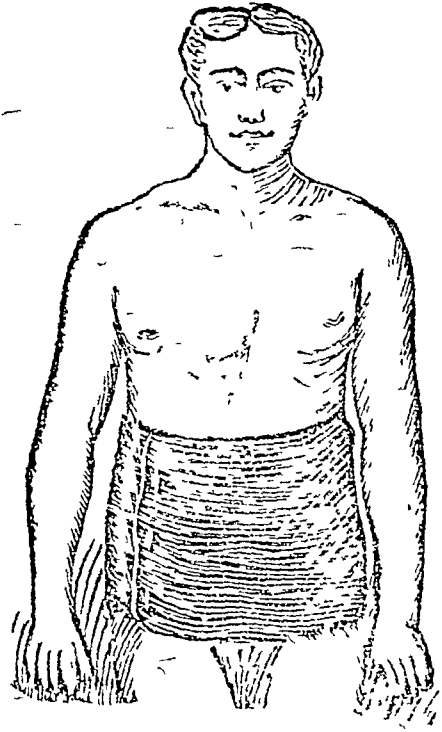
कमर की गीली पट्टी

इस पट्टी को लगाकर और ऊपर से कपड़ा वगैरह पहनकर अपना रोज का काम भी आसानी से किया जा सकता है। यह सहूलियत इस उपचार मे विशेपरूप से है।

जोड़ की गीली पट्टी

शरीर के जिस जोड मे दर्द हो अथवा सूजन हो वहां पर एक कपडे के टुकडे को ठडे पानी से भिगो, निचोड़कर तथा उसकी कई तहे करके रखदें और ऊपर से कोई ऊनी कपडा रखकर बाध दें। इससे पीड़ा, सूजन, गठिया आदि सभी धीरे धीरे दूर हो जायेंगे। सूजन मे तो यह पट्टी जादू का असर दिखाती है।
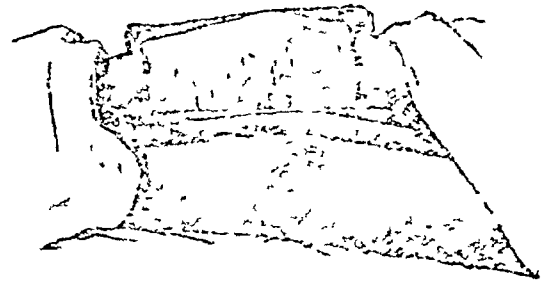
जोड़ की गीली पट्टी

उपर्युक्त की भाति ही शरीर के अन्य सभी स्थानीय

विकारों में ये गीली पट्टियां बडी लाभप्रद सिद्ध होती है। जैसे, आख के हर प्रकार के रोगो मे आख के ऊपर पट्टी बाधिए, पैरो पर के रोगो मे पैरो पर, हाथों के रोगो मे हाथों पर। गीली पट्टी के ऊपर हर हालत मे ऊनी कपडा लपेट देना जरूरी है। हृदय की धड़कन मे दिल के ऊपर दिन मे दो बार आध-आध घटा के लिए ठडी पट्टी रखने से बडा लाभ होता है। पहले ५ मिनट तक ही यह पट्टी रखनी चाहिए। फिर धीरे-धीरे समय बढ़ाकर आध घटा तक ले जाना चाहिए। पट्टी हटाने के बाद उस स्थान को रगड़-रगड़ कर लाल और गरम कर देना चाहिए, या गरम पानी मे भिगोये कपड़े से उस स्थान को पोंछ-कर कपडा पहन लेना चाहिए ताकि वह स्थान गरम हो जाय।

ठण्डे जल के आन्तरिक प्रयोग

ठडे जल के विभिन्न वाह्य प्रयोगों से जिस प्रकार रोग दूर हो जाते है। उसी प्रकार उसके आन्तरिक प्रयोगो से भी कितने ही रोग आसानी से दूर किये जा सकते हैं।

ठडे जल के आन्तरिक प्रयोग से शरीर के भीतरी सभी अवयव सुदृढ, स्वस्थ, एव निर्मल बनते है। तथा अपना अपना स्वाभाविक कार्य सुचारु रूप से करने लगते है, जिस की वजह से शरीर मे रोग टिकने ही नही पाते।

हमारे शरीर से गुदा, जननेन्द्रिय नाक, मुख, नेत्र तथा त्वचा के असंख्य छिद्रों द्वारा दूषित मल,जो रोगों का कारण होता है, सदैव और अनवरत रूप से निकलता रहता है, जिससे हमारा शरीर निर्मल, स्वस्थ एव सुन्दर बना रहता है। यदि, दैव न करे किसी वक्त उपर्युक्त सभी या कुछेक मलोत्सर्ग द्वारो से शरीर के दूषित मल का बहिष्करण बंद हो जावे तो उस वक्त स्वास्थ्य सौन्दर्य के योग क्षेम की बात तो दूर रखिये, स्वयं शरीर का अस्तित्व ही खतरे मे पड़ जावेगा। जलके आन्तरिक प्रयोग से ही शरीर के भीतरी दूषित मल का बहिष्करण सम्भव होता, और जल के वाह्य प्रयोग यदि सच पूछा जाय, तो उसके आन्तरिक प्रयोग पर ही निर्भर होते है। शरीर के ऊपरी भाग को लाख मल मल कर धोया जाय पर यदि मलाशय मे मल, मूत्राशय मे मूत्र, कानो मे कर्ण मैल, नेत्रो में नेत्र मैल, तथा नाक गले और पेट मे कफ भरा है तो शरीर कभी भी स्वस्थ नही रह सकता।

शरीर के उपर्युक्त मलोत्सर्ग द्वारा मात्र जल के माध्यम से ही जो उन्हे उसके आन्तरिक प्रयोगो द्वारा प्राप्त होते हैं शरीर के दूषित मल को नित्यप्रति सुचारु रूप से निकाल कर शरीर को निर्मल स्वस्थ एवं सुन्दर बनाये रहते है। पर जब उन्हे यह जल भीतरी प्रयोगो द्वारा प्राप्त नहीं होता तो वे शरीर के मल को रोज का रोज भली भांति निकाल फेंकने से अक्षम रह जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि शरीर का भीतरी मल शरीर मे ही पड़ा सड़ा करता है और भांति भाति के रोगो का कारण बनता है।

आन्तरिक प्रयोगो द्वारा जल जब शरीर मे प्रवेश करता है तब वह भीतर जाते ही शरीर के रग-रग, कोष कोष में व्याप्त होकर उनकी शुद्धि एव सफाई आरम्भ कर देता है। हमारे शरीर मे बहुत सी पोली जगहें—आंते, आमाशय गुर्दे आदि है, जहा जल सीधे पहुंच जाता है और वहां पहुँच कर अपना सफाई का कार्य आनन फानन मे कर डालता है। नाक के द्वारा मुंह तक, मुख से गले द्वारा आमाशय और आंत तक पहुंचता है, गुदा द्वारा सम्पूर्ण बडी आंत मे फैल जाता है और बज्रौली क्रिया द्वारा ब्लैंडर तक में पहुँचाया जा सकता है। कान मे भी जल बडी सुगमता से चला जाता है और उसके मल को बड़ी सुगमता से निकाल देना जल का ही काम है। श्वासप्रणाली और भोजन प्रणाली को पूर्ण रीति से शुद्ध और साफ करने की क्षमता जल के सिवा और किसी मे नही है। धौति, नेति, वस्ति आदि यौगिक क्रियाओ द्वारा जल का यह काम अति सुगम बनाया जा सकता है।

हमारा जीवन मूलतः शरीर की तीन अत्यन्त आवश्यक क्रियाओ—पाचन, समीकरण और विसर्जन पर निर्भर है। उत्तम स्वास्थ्य के लिये यह आवश्यक है कि ये तीनों क्रियायें शरीर मे सदैव सुचारु रूप से होती रहें। साथ ही साथ इन तीन क्रियाओ मे परस्पर सामंजस्य भी हो। क्योंकि इन तीनो मे से किसी एक में त्रुटि हो जाने से स्वास्थ्य सन्तुलन ठीक रह ही नहीं सकता। शरीर की ये अत्यावश्यक क्रियायें जल के बिना किसी भी हालत से सम्भव नही है।

जिस प्रकार ठडे जल का वाह्य प्रयोग शरीर की द

अनावश्यक गरमी को शान्त करता है । उसी प्रकार का आन्तरिक प्रयोग भी करता है ज्वर में 'आचमन' का प्रभाव इस बात का एक प्रमाण है ।

जल के आन्तरिक प्रयोग का उत्तम प्रभाव न केवल रे शारीरिक स्वास्थ्य पर ही पड़ता है । अपितु उससे रा मानसिक स्वास्थ्य भी उत्तम बन जाता है । अर्थात् को शान्ति, स्फूर्ति एवं प्रफुल्लता प्राप्त होती है । वह एव पाशविक प्रवृतियो से दूर हटकर दैवी प्रवृतियो ओर जाने लगता है तथा दुराचार को त्यागकर सदा- को अपनाने लगता है ।

जिस प्रकार जल के वाह्य प्रयोगों मे बच्चो, बूढो एव जोर रोगियो के सम्बन्ध मे सावधानी बर्ती जाती है प्रकार आन्तरिक प्रयोगो में भी उनके साथ सावधानी श्य बर्तनी चाहिए । कमजोरी की दशा मे अधिक जल से शरीर के रस पतले पड़ जाते है जिससे उनकी रोग्यकारक शक्ति थोड़ी क्षीण हो जाती है ।

जलोदर आदि कुछ रोगो मे जल का आन्तरिक प्रयोग त सोच समझकर करना होता है ।

जल–पान

जलपान, साधारणत नाश्ते के अर्थ मे व्यवहृत होता किन्तु यहां पर लेखक का अभिप्राय उस जलपान से ो, अपितु साधारण जल से है । जल-पान के सम्बन्ध मे ी स्वास्थ्य-विशेषज्ञ एक मत नही हैं । कोई कहता है, ास्थ्य के लिए अधिक से अधिक जल पीना उत्तम है, कोई कहता हे, आवश्यकता से अधिक जल-पान अस्वा- यकर है । किसी विद्वान की धारणा है कि भोजन समय जल पीना ही नही चाहिए, तो कोई कहता है जन करते समय, बीच बीच मे जल पीना अनिवार्य है, दि । मगर इस तथ्य से तो कोई इन्कार नही कर कता कि प्रकृति, प्यास की अनुभूति कराकर हमसे जल नव करती है, और तब पानी न पीने से अथवा पानी स्थान पर कोई अन्य वस्तु लेने मे हानि हो सकती है । दि हमे पानी के बदले किसी अन्य पेय पदार्थ, जैसे चाय फी, ताजे, शराब आदि की इच्छा होती है, तो उसे ास नही कहना चाहिए । प्यास तो केवल पानी की चाह ो कहते है, और प्यास लगने पर हमें पानी पीना ही चाहिए ।

शरीर के भीतर जल के कार्य

मनुष्य के शरीर मे ८० प्रतिशत जल का भाग होता है । हमारे दांत जो शरीर के अन्दर सबसे सख्त और ठोस अङ्ग गिने ..., ४ प्रतिशत जल धारण करते है । हड्डियों मे ... १४ प्रतिशत तक जल होता है । मांशपेशियों मे ७... प्रतिशत, तथा रक्त मे ८० से ८७ प्रतिशत जल विद्यमान रहता है । ९८ प्रतिशत जल पसीना बन जाता है और ९९ प्रतिशत राल वा थूक ।

जल, भोजन का एक बहुत बड़ा आवश्यक अङ्ग होता है । जल के योग से ही शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवों मे रुधिर दौड़कर उनका पोषण करता है । पाचन, रक्त सचालन, एकीकरण, तथा शारीरिक विषो का वहिष्क- रण आदि सब क्रियाएं जल के शरीर में उपस्थित रहने पर ही सम्भव हो सकती है । जो जल, त्वचा से स्वेद के रूप मे, फेफड़ों से वाष्प के रूप मे, तथा पेट से मल–मूत्र के रूप मे निकलता है, वह शरीर के विषो के बोझ से लदा होता है, क्योंकि एक वैज्ञानिक के कथनानुसार शरीर जहर बनाने का कारखाना है । ऐसी दशा मे त्वचा, फेफड़े, आते, और गुर्दे अपना अपना काम बद कर दें तो जीवन- रक्षा एक क्षण के लिये भी असम्भव हो जाय । उदाहरणार्थ, मनुष्य के पसीने मे, ... अन्य विषो के अतिरिक्त एक प्रति- शत का आधा केवल 'यूरिया' जहर होता है । इसी प्रकार मूत्र मे लगभग २ प्रतिशत 'यूरिया' और बहुत से अन्य प्रकार के विषैले ... रहता है । त्वचा के छिद्र और मूत्रेन्द्रिय इन विषो ... निकाल फेकने मे तनिक भी ढिलाई कर दे तो ... सकट मे पड़ जाय और परिणाम स्वरूप कुछ ही ... मनुष्य की मृत्यु भी अवश्य हो जाय । ...

जल, शरीर ... वही कार्य करता है, जो वह ससार मे ... पर करता है, अर्थात वह शरीर ... दूषित द्रव्यो को घुलाकर ढीला ... उन्हे अपने साथ लेकर शरीर के ... देता है । जल शरीर में प्रवेश करता ... परन्तु उनमे से निकलता है वह ... । यही कारण है जो जल-पान को एक ... 'आन्तरिक-स्नान' कहा गया है ।

उचित रीति से और यथेष्ट मात्रा मे जल पीने से जीवन-धारा (रक्त-प्रभाव) विशुद्ध होकर, अबाध गति से अपना कार्य करने लगती है, अतएव स्वस्थ शरीर के लिये नितान्त आवश्यक है।

जल केवल भोजन को शरीर के भीतर लेजाने तथा शरीर स्थित मल को बाहर ले आने का ही काम नही करता, अपितु वह स्वय भी प्रधान और अत्यावश्यक जीवन तत्व है, जिसके बिना शरीर टिक नही सकता। शरीर मे जल की स्थिति, शरीर को अधिक गर्म होने से भी बचाती है।

भोजन के मध्य में जल-पान

भोजन करते समय पानी पीना चाहिए या नही, इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर देने के पूर्व हमे इस बात पर विचार कर लेना चाहिये कि हमारा भोजन कैसा है, अथवा हम कैसा भोजन करते है। अगर हमारे भोजन में नमक-मसाला, मिर्च-खटाई, तेलादि प्यास उत्पन्न करने वाली वस्तुओ की अधिकता होगी तो अवश्य भोजन के बीच में हमें पानी पीने की जरूरत पड़ेगी, और तब हमे स्वभावत. उन अखाद्य एव अप्राकृतिक वस्तुओ के दूषित प्रभाव को नष्ट करने के लिए, पानी का सेवन करना भी चाहिए, अन्यथा, उस समय हठ करके पानी न पीने से हानि की बराबर आशका है। इसके विपरीत यदि हमारा भोजन उक्त सभी अखाद्य वस्तुओ से रहित, सात्विक, एव प्राकृतिक है, साथ ही साथ हम प्रत्येक ग्रास को खूब चबाकर खाना भी जानते है तो भोजन के बीच मे हमे पानी पीने की इच्छा उत्पन्न ही न होगी। पहली दशा मे भी भोजन के साथ लोटे दो लोटे पानी पीना अत्यन्त बुरा है क्योकि ऐसा करने से पेट मे कीचड़ सा बन जाता है, जिससे पेट के अन्दर प्राकृतिक रूप से निकलने वाले पाचक रसो का प्रभाव खाए हुए भोजन पर नही पड पाता, जिसके परि-णाम स्वरूप बदहज्मी, कोष्ठवद्धता आदि बहुत सी पेट की बीमारियां आ घेरती है। इसलिए जब ऐसे खाद्य पदार्थ खाये जाये जिनके खाने से खाते समय जल पीने की आवश्यकता पडे तो उस समय न तो इतना अधिक पानी पीले कि हजम ही न हो, और न यही कर कि पानी बिलकुल पीये ही नही। बल्कि भोजन के बीच, आवश्यकतानुसार, थोड़ा-थोड़ा करके कई बार पानी पीना चाहिए। आयुर्वेद के आचार्यों की भी यही आज्ञा है यथा —

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः। तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय, मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद ...

खाते समय जिसको गुस्की सताती हो और बीच मे पानी पीने की प्रवृत्ति विशेष हो, वह ... के बजाय दूध, मठा, तक्र या दही का सेवन करे ... से अधिक लाभ उठा सकता है।

इस सम्बन्ध मे एक बात और भी न भूलनी ... वह यह कि जो कुछ हम खाते हैं, उसमे ... लेकर तीन चौथाई तक जल का भाग पहले ही ... रहता है, इसलिए खाते समय ऊपर से ... जल पीना ... चाहिए। और अगर खाने के ... बीच, पानी पीने मे पूरी आजादी बरती जायगी तो ... मे पाचक-रस (Salive) की उत्पत्ति मे कमी ... चर्वण-क्रिया को बाधा पहुचेगी, जिससे प्रत्येक ... बिना भलीभाति चबाये ही निगल जाने की आदत ... जायगी, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

प्रकृति का नियम है कि भोजन करने और ... पीने का समय अलग-अलग होना चाहिए। पशु पक्षी ... इस नियम की अवहेलना नही करते। मगर ... सम्भव है जब हमारा भोजन सात्विक, सादा, एव प्राकृतिक ... हो। प्रकृति के इस सुनहरे नियम से इस तथ्य पर ... रूप से प्रकाश पडता है कि वास्तव मे मनुष्य का ... कैसा होना चाहिए। अप्राकृतिक भोजन के हिमायती ... को प्रकृति के इस इशारे को समझने की कोशिश ... चाहिए।

भोजन के आदि और अन्त में जल ...

वैद्यक ग्रन्थो मे उल्लेख है:—

'भुक्तस्यादौ जलं पीतं कार्श्यं मंदाग्नि दोष कृत्।'

अर्थात् भोजन करने के लिए बैठते ही पहले जल ... से कमजोरी और मदाग्नि उत्पन्न होती है। और ...

'आदावन्ते विषं वारि मध्येयामृतोपमम्,'

अर्थात् भोजन के आदि और अन्त, दोनो मे ... पीना, विष पीने के समान है और बीच-बीच मे ... तुल्य।

इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने प्रयोग ... देखा है कि भोजन के तुरत पहले, और तुरत ...

किन्तु भोजन के कम-से-कम आधा या एक घंटा एक गिलास, तथा भोजन के लगभग दो घटा बाद लास पानी पीना अति उत्तम है। इस नियम का करने वाला व्यक्ति, पेट के रोगों का शिकार ोता है, साथ-ही-साथ उसे भोजन के बीच मे पानी की प्रवृत्ति भी नही होती।

: रूप से, प्राकृतिक आहार करने की आदत डालकर के आदि, अन्त, तथा मध्य में स्वाभाविक रूप से न पीना सर्वोत्तम है। मगर फिर भी यदि भोजन व मे पानी पीने की इच्छा हो तो थोड़ा पानी अवश्य ले। भोजन से आधा या एक घटा पहले, भोजनके दो घंटा बाद दो-एक गिलास अवश्य पीये। प्यास लगने पर पानी न पीना य के लिए हर हालत मे हानिकारक है। प्यासे को नही करना चाहिए। इसी तरह भूखे को जल-पान है। पहले से गुल्मादि पेट की अनेक भयानक या उत्पन्न हो जाती है, और दूसरे से जलोदर opsy) रोग होने का भय रहता है। यथा —

पितस्तु न चाश्नीयात्क्षुधितो न पिबेज्जलम्।
पितस्तु भवेद्गुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी॥

उषःपान

ान—

ात काल, सूर्यादय के प्रथम, शय्या त्यागते ही, बिना दि गये, पाव भर से लेकर तीन पाव तक या इससे धिक, स्वच्छ बासा जल, नासिका द्वारा या मुह से, स कर नित्य पीने से शरीर सम्पूर्ण रूप से विकार हो जाता है। यही उष:पान है।

पूर्यास्त के बाद, भीतर-बाहर साफ किये हुए विशुद्ध के पात्र मे (पात्र इतना बड़ा होना चाहिये जिसमे कम एक सेर पानी आ जावे। तावे का ही पात्र से कि रात भर तावे के पात्र मे जल रहने से उसमे कि कुछ स्वास्थ्यवर्द्धक गुण आ जाते हे। तावे के मे रखा हुआ जल १२ घंटो मे विशुद्ध हो जाता है। के पात्र मे रखा हुआ जल और भी विशुद्ध होता र उष:पान के लिये तावे का ही पात्र उत्तम होता ि, रखा हुआ कूपोदक, नदीोदक, झीलोदक भरकर और तावे के ही ढक्कन से ढककर, किसी साफ ऊंची, और खुली हुई जगह पर रख दे, जहां कीड़े-मकोडे का बास न हो, और जहा केवल आकाश का ही साया हो। ऐसी हालत मे यदि जल पात्र ढका न जाय तो और भी अच्छा है, क्योंकि जल खुला रहने से उस पर रात मे आकाश के विभिन्न नक्षत्रों का प्राकृतिक तथा रासायनिक प्रभाव पड़ता है। सवेरे सूर्योदय से १ घटा पूर्व, ईशस्तवन, शुभ-दर्शन, आदि क्रियाओं से निवृत्ति और निरालस्य हो, अपनी नाक के दाहिने स्वर को देखे, वह चलता है या नही। यदि वह चलता होवे तो उस तरफ की नाक के छिद्र को अच्छी तरह से साफ करके उस छिद्र से वह पानी धीरे-धीरे पीना चाहिये। और यदि उस समय दाहिना स्वर न चलता हो तो उसी समय थोडी देर के लिये बाये करवट लेट जाना चाहिये। ऐसा करने से दाया स्वर चालू हो जायगा, और तब उसी दाहिने नथुने से उस पानी को पीना चाहिये। अगर नाक द्वारा पानी पीने का अभ्यास न हो तो मुख द्वारा ही धीरे धीरे, स्वाद लेते हुए, उस पानी को पी जाना चाहिए; किंतु प्रत्येक दशा में दाहिने स्वर का चलते रहना जरूरी है। मुख की अपेक्षा नाक द्वारा उष:पान विशेष लाभदायक होता है। नासिका द्वारा उष:पान करने का अभ्यास पहले एक तोला पानी से प्रारम्भ करना चाहिए। बाद मे धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। और जब तक नाक द्वारा पानी पीने का अभ्यास न हो जाय, तब तक मुह द्वारा ही पीकर लाभ उठाया जा सकता है।

उष:पान करने के प्रथम नाक और मुँह को खूब साफ कर लेना चाहिए, और तब तक शीशे के गिलास को जिसके किनारे पतले हों, उष:जल से भरकर नाक या मुह द्वारा धीरे-धीरे पीना चाहिये। उष:पान से अधिक लाभ की आकांक्षा हो तो उष:जल मे कभी-कभी थोड़ा नमक भी मिलावे। पाव भर पानी मे दो रत्ती नमक काफी है। नमकीन उष:पान से शरीर की उष्णता सम रहती है।

प्रारम्भ मे [illegible] उष:पान मुह से ही करे, उसके बाद [illegible] नाक से करने का अभ्यास करे। नाक से उष:पान करते समय आराम से बैठकर मुह को जरा [illegible] फिर गिलास के किनारे को
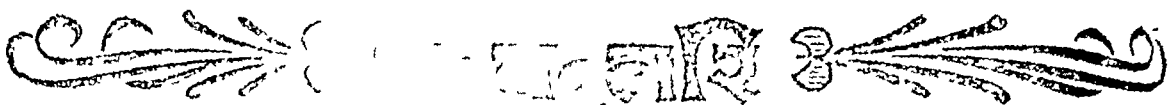
दाहिने नथुने से, जिसका स्वर चालू हो, लगावे। अब पानी को शनैः शनैः नाक की राह निकल जाने दे। पहली बार के गये पानी को पेट मे न जाने दे, बल्कि मुह के रास्ते उसे बाहर निकाल दें। इससे मुह और नाक की अन्दरूनी सफाई हो जायगी। फिर सिर को जरा पीछे की ओर झुकाकर दाहिने नथुने से पानी धीरे धीरे गले मे जाने दें और वहा से घूंट-घूंट खीचकर पेट मे उतारा जाय। इस प्रकार कुछ दिनो के अभ्यास से ही पानी अपने आप भीतर जाने लगेगा। नाक से पानी पीने मे जल्दीबाजी न करनी चाहिए, और न पानी को श्वास की सहायता से ही भीतर खीचना या सुडकना चाहिए। हल्का जुकाम होने पर भीतर, गले के आसपास जैसा लगता है, वैसे ही बेचैनी पहले पहल नाक द्वारा पानी पीने पर कुछ घटो तक बनी रहती है। नाक से पानी पीते वक्त कभी-कभी आखो मे आसू भर आते है, कुछ अन्दर झनझनाहटसी भी होती है, किंतु इनसे घबराना नही चाहिए। अभ्यास हो जाने पर ये परेशानियां आप-से-आप दूर हो जाती हैं।

उष:जल कितना पिया जाय, इसके लिए कोई मात्रा निर्धारित नही की जा सकती। इसकी ठीक मात्रा उतनी ही समझनी चाहिए, जितनी पीने वाले की प्रकृति के अनुकूल पड़े। स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तको मे इसकी मात्रा १ सेर तक दिखायी है। भावप्रकाश मे २४ तोले लिखा है।

उष:पान करने के बाद फिर सोना ठीक नही। उष:पान करने के थोड़ी देर बाद शौच जाना चाहिए, फिर दातुन कुल्ला करके बाहर खुली हवा मे टहलने निकल जाय तो बहुत लाभ होगा। उष:पान के प्रभाव से शरीर मे उत्पन्न हुई शीतल लहर शरीर मे समरूप से कार्य करे इसके लिये १५-२० मिनट तक निश्चल लेटे रहना लाभदायक सिद्ध हो सकता है। इस हालत मे भी नीद से न सोना चाहिये, कुछ लोगो का कहना है कि रोगियो को विशेषकर सर दर्द वालो तथा पेट के रोगियो को उष:पान के बाद एक नीद ले लेना लाभ करता है। किन्तु सर्व साधारण को ऐसा करने की आवश्यकता नही।

बहुत से लोग उष:पान करना इस डर से शुरू नही करते कि किसी दिन नागा हो जाने से कदाचित कोई हानि हो। मगर बात ऐसी नही है। उष:पान करने वाला बीच मे यदि एकाध दिन नागा करदे तो इससे किसी हानि की आशका उसे न होनी चाहिए। कोई यदि इस क्रिया को छोड़ना चाहे तो एका एक छोड बैठे, बल्कि जल की मात्रा थोडी थोडी रोज घटाते नागा करने लग जाय और फिर एक दिन उस को पूर्णतया छोड़ दे।

उष:पान का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिये यह है कि उष:पान का करने वाला नित्य प्रति कुछ व्यायाम जरूर करे और सात्विक भोजन रखे नियम रखे।

भारत जैसे गरम मुल्क वालो को उष:पान लाभदायक है। ग्रीष्म-काल मे किया गया अमृत का काम करता है। इस क्रिया को आरम्भ वाले यदि इसे फाल्गुन से आरम्भ करें तो अच्छा होगा।

लाभ—वैद्यक ग्रन्थो मे उष:पान को अमृत पान गया है। इससे कोठा साफ होता है, पित्तजनित रोग सताते, और रक्त शुद्ध होकर, उससे हृदय, मस्तिष्क स्नायु मण्डल को बल प्राप्त होता है।

वैद्यक की किताबो मे लिखा है:—

> सवितुरुदय काले प्रसृतीः सलिलस्य पिबेदष्टौ।
> रोग जरा परि मुक्तो जीवेद्वत्सर शतं साग्रम्॥

अर्थात्, सूर्य निकलने के समय, आठ अंजुलि से मनुष्य कभी बीमार नही पड़ता। बुढापा नही और सौ वर्षो से पहले मरता नही। तथा—

> अर्शः शोथग्रहण्यो ज्वर जठर जरा कोष्ठ मेदो विकार
> मूत्राघाता सृपित्त श्रवण गल शिरःश्रोणि शूलाक्षि रोगाः
> ये चान्ये वात पित्त क्षतज कफकृता व्याधयःसंताऽन्ये
> स्तांस्तानभ्यास योगादप हरति पयः पतिमंते निशान्ते

अर्थात् बवासीर, सूजन, सग्रहणी, ज्वर, पेट बीमारिया, कोष्ठबद्धता, कोठे की खराबिया, चर्बी जाना, मूत्र सम्बन्धी पीडाएं, रक्त-पित्त के विकार, आदि से रक्त-स्राव, कान, शिर, नितम्ब, वा पीड़ा, नेत्र दोष आदि अनेक व्याधिया, निशा अभ्यासपूर्वक जल-पान करने से अच्छी हो जाती हैं।

और भी.—

> विगत घन निशीथे प्रात रुत्थाय नित्यं,
> पिबति खलु नरो यो घ्राण रन्ध्रेण वारि
> स भवति मति पूर्णश्च क्षुषा तार्क्ष्य तुल्यो,
> वलि पलित विहीनः सर्व रोगैर्विमुक्तः

अर्थात् रात बीत जाने के बाद, तड़के उठते ही, जो व्यक्ति नासिका द्वारा जल पीता है, उसकी बुद्धि-निर्मल होती है, आखों की ज्योति बढती है। सर के बाल अकाल मे ही श्वेत नही होते,तथा वह सब रोगो से बचा रहता है

उप.पान का जल गुर्दो मे जाकर, उसे शक्तिशाली बनाता है, और आतो को पुष्ट करता हुआ उसमें सञ्चित् मल को वाहर निकालने मे सहायक होता है। मूत्रपिण्डो द्वारा शोषित होकर, तथा वहा पर रहने वाले दूषित पदार्थो मे मिलकर यह जल मूत्र रूप से बाहर निकल जाता है। इसका कुछ अश प्रस्वेद और प्रश्वास के रूप में भी निकलता है, और जो बच रहता है वह शरीर के पाचक रसो से मिलकर शरीर के विभिन्न अङ्गोमे प्रवाहित होता है, जिसके परिणामस्वरूप पाचक रस परिपुष्ट एव परिपक्व होकर खाये हुये अन्न को सरलता पूर्वक पचाने मे समर्थ होता है। यह जल रक्त की बढी हुई उष्णता को शमन करके शरीर की आन्तरिक गर्मी को कम करता है, और उसे पसीने के रूप मे बाहर निकाल देता है। तथा उदर या आमाशय मे सचित लार आदि पदार्थो को धोकर, पाकाशय वा अंतड़ियो मे पहुचा देता है। इस जल से अधपचे अन्न, मल के टुकडे आदि वहकर गुदामार्ग द्वारा बाहर निकल जाते है। उप.पान नित्य करने से आख आना, रतौधी आदि सभी नेत्र विकार दूर होकर दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है। बुद्धि तीव्र होती है। तथा शरीर सर्व प्रकार से निर्मल और निर्विकार हो जाता है।

जिन की प्रकृति गरम है, जिन्हे नाक से खून गिरने की बीमारी है, जिन्हे लू जल्दी असर कर जाती है, तथा जिनका मस्तिष्क थोड़ा सा भी दिमागी काम करने से थक जाता है, गरम हो जाता है, ऐसे लोगो के लिए उप.-पान ही एक ऐसी क्रिया है जो स्थायी लाभ पहुँचा सकती है।

उप जल पेट में जाकर पचता नही, उसका काम अंतड़ियाँ आदि भीतरी अवयव समूह को धो-धाकर साफ कर देना एव उन्हे शक्ति और उत्तेजना प्रदान करके स्वयं उन धोये हुए मलो के साथ पेशाब, पसीना और मल के रास्ते शरीर से बाहर निकल जाना है। उप पान का सब से अधिक लाभ यही होता है कि मलाशय और मूत्राशय पर इसका प्रभाव बहुत अच्छा और शीघ्र पड़ता है, जिससे पेट के प्रायः सभी विकार धीरे-धीरे शान्त हो जाते है और उनकी पुनरावृत्ति नही होने पाती।

कहावत है—

निन्ने पानी जो पिये, हर्र भूजि जो खाय।
दूध बियारी जो करे, तेहि घर वैद्य न जाय ॥

यहा निन्ने पानी से मतलब उषपान से ही है। और भी:—

अजीर्णे भेषज वारि जीर्णे वारि बल-प्रदम्

अर्थात् उष.पान से जीर्ण और अजीर्ण दोनो अवस्थाओं मे समान लाभ होता है। मतलब यह कि उषपान करने वालो को यदि अजीर्ण की बीमारी है तो उसकी दवा तो उषपान है ही, पर यदि किसी को अजीर्ण नही है तथा भोजन खूब हजम हो गया है, फिर भी वह उष-पान करता है तो उस दशा मे भी उष.पान से उसके कोष्ठ की खुश्की दूर होकर उसमे तरावट आयेगी, जिसकी वजह से उसके आमाशय और सारे शरीर मे अधिकाधिक बल-वृद्धि होगी। घाघ ने भी कहा है:—

प्रातकाल खटिया ते उठिके,पीवे तुरतै पानी।
कबहूँ घर मे वैद न अइहै, बात घाघ की जानी ॥

आयुर्वेद मे कहा गया है—

दिवस्यान्ते पिवेत् दुग्ध, निशान्ते शीतल जलम्

अर्थात् दिवस के अत मे-शाम को दूध और रात्रि के अ त मे-(प्रात.काल) शीतलजल पीना चाहिए। इसी श्लोक मे आगे यह भी कहा गया है कि भोजन के अ त में मठा पीना चाहिए, जल नही।

उषपान मे इतने गुण होते हुए भी कुछ लोगो को यह मुआफिक नहीं आता। और जिनकी प्रकृति के अनुकूल यह न पडे इसे उन्हे करना भी नहीं चाहिए। उषपान आरम्भ कर देने पर शौच की शिकायत मिट जाती है पेशाब खुलकर आने लगता है, भूख खूब बढती है, तथा गहरी नीद आने लगती है। यदि उषपान आरम्भ करने के बाद, दस पन्द्रह दिन मे ही ये लक्षण न प्रकट हो, तो समझना चाहिए उष.पान अनुकूल नहीं पड़ रहा रहा है, और तब उसे छोड ही देना अच्छा है। उष-पान से शरीर मे शीतलता उत्पन्न होती है, अत शीतकाल मे इस क्रिया का उपयोग समझ बूझकर करना चाहिए। सर्द प्रकृति वाले व्यक्तियो, एव उन लोगों को

जिनके फेफड़े कमजोर है, उष.पान कम लाभकारी सिद्ध हो सकता है। यह देखा गया है कि ग्रीष्म-ऋतु के समाप्त हो जाने के बाद यह क्रिया सभी को लाभदाक सिद्ध नही होती। कफ प्रकृति वाले व्यक्तियो को गर्मी के दिनों मे भी उष.पान सोच समझकर करना चाहिए। पित्तकी कमी वाले व्यक्तियो को भी उष पान अनुकूल नही पड़ता। जुलाब लेने की हालत मे, आंव की बीमारी मे, घाव पकने की दशा मे तथा हिचकी, वात, न्युमोनिया, एवं क्षय के रोगियो को उष पान नही करना चाहिये।

ज्वरादिक तृषाकारक रोगों में जल-पान

ज्वर मे अधिक प्यास लगने पर, रोगी को पानी न देना एक भयङ्कर भूल है। ज्वर में प्यास लगनी स्वाभाविक है। इसलिये ज्वर के रोगी को जब-जब वह जल की इच्छा प्रकट करे, थोड़ा थोडा पानी अवश्य देना चाहिये। ज्वर के रोगीके शरीर मे जो जल का अ श होता है, वह ज्वर की ज्वाला को शान्त करने, तथा तज्जनित विषो को पसीना,पेशाब आदि के रूप मे बाहर निकालने मे अधिकाधिक व्यय होता रहता है, इसीलिये ज्वर मे अधिक प्यास लगती है। उस वक्त रोगी को पानी न देने से उसका रक्त गाढ़ा हो जाता है और उसमे उष्णता अधिक बढ जाती है, जो ज्वर के उत्तरोत्तर बढने देने मे सहायक होती है।

इसी प्रकार, छूत छूत की बीमारियो जैसे हैजा, प्लेग, चेचक, कालाजार आदि मे रोगी को यथेष्ठ पानी पीने की सलाह देना अत्यन्त आवश्यक है।लकवा के रोगी को भी पानी पीने से रोकना भूल है।

जुकाम ही हालत मे खूब पानी पीना चाहिये अन्यथा विजातीय द्रव्य जो जुकाम के रास्ते ही निकलता है, पानी पीना बद कर देने से उसके भीतर दब जाने का खौफ रहता है, जिससे ज्वरादि अन्यान्य व्याधियों का सूत्रपात होना अनिवार्य हो जाता है। लेखक ने जुकाम के सैंकड़ो मरीजो को केवल पानी पिलाकर चगा किया है। कड़े से कड़ा जुकाम हो, कफ न छूटता हो, सर भारी बना हो अथवा जुकाम सूख गया हो,उपवास के साथ तीन दिन तक रात को सोने जाने के प्रथम केवल एक गिलास सहने योग्य गर्म पानी पी लिया करे, जुकाम के सारे दोष तीन ही दिन मे छूमन्तर हो जावगे। परीक्षित है।

पुरानी कोष्ठबद्धता, मोटापा, वातरोग, पीलिया तथा पथरी रोग मे दिन मे १० से १२ गिलास तक पानी पीना आश्चर्यजनक लाभ पहुचाता है। क्योंकि ये रोग आतों और गुर्दे की खराबी से उत्पन्न होते हैं और आत तथा गुर्दे तभी खराब होते हैं जब उनमें विसदृष द्रव्य जमा होकर सड़ने लगता है- और निकलने का कोई मार्ग नही पाता। पानी के यथेष्ठ सेवन से वह दूषित द्रव्य तरल होकर उत्सर्ग मार्गो द्वारा बाहर निकल जाता है और रोगी चगा हो जाता है। एक डाक्टर का कहना है कि अगर ससार का हरएक मनुष्य रोज ८ आउन्स गिलास के ८ गिलास पानी पिये, मास खाना छोड़ दे तो दो पीढियो के अन्दर दुनिया मे बहुमूत्ररोग का कही भी नामोनिशान नही रह जायगा।

यदि अफीम, गाजा, भाग, तम्बाकू, शराब आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करने वाला व्यक्ति अधिक मात्रा मे जल पीये तो कुछ काल मे उसकी ये आदतें छूट जायेगी।

उपवास-काल मे जल-पान—उपवास काल मे जितना महत्व एनिमा का है, उससे कही अधिक महत्व, उस समय जल पीने को देना चाहिए। कारण, एनिमा से केवल एक अङ्ग आत की-सफाई होती है, किन्तु पिये हुए जल से शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शुद्धि हो जाती है। यदि यह कहा जाय कि उपवास बिना यथेष्ठ जल पिये सफल नही होता, तो यह मिथ्या न होगा। उपवास करने वाले को दिन मे कई बार थोडा-थोड़ा करके खूब जल पीना चाहिए। चौबीस घंटे मे आठ सेर से दस सेर तक पानी लिया जा सकता है। जल मे यदि नीबू का रस डालकर पिया जाय तो और भी उत्तम है।

काम के समय जल-पान—कोई भी कार्य हो-मानसिक वा शारीरिक, शक्ति का ह्रास तो होता ही है। अत: उस खोई हुई शक्ति को पुन: प्राप्त करने के लिये, और [illegible] हुए कार्य को दूने उत्साह से करने के लिये, काम के [illegible] मे हमे कई बार पानी पीना चाहिये। इससे शरीर के [illegible] पुर्जे जो काम करते-करते गर्म हो उठते हैं, तरोताजा हो जाते है, और उनमे नवशक्ति का सञ्चार हो जाता है। हमारे वेदो की भी यही आज्ञा है—'अपोऽशान [illegible]' अर्थात्, जब कार्य मे सलग्न होओ तो जल पान करो

कौन सा, और कैसा जल पीयें ?

जल-पान की उपयोगिता जान लेने पर, यह जान लेना भी जरूरी है कि हमे कौनसा, और कैसा पानी पीने के काम मे लाना चाहिए। साधारणत. बिना औटाया हुआ, शुद्ध, एव ताजा जल ही पीने के काम मे लाना उत्तम है किन्तु जिस कुए या जलाशय का पानी व्यवहार मे लाया जाय, उसमे या उसके आस-पास किसी प्रकार की गदगी नही होनी चाहिये, तथा उस जल मे किसी अनैन्द्रिक खनिज पदार्थ का समावेश न होना भी अत्यन्त आवश्यक है। और यदि तनिक भी सन्देह हो कि अमुक कुए वा जलाशय के जल मे एक वा अनेक अनैन्द्रिक खनिज पदार्थ, जैसे चूना, खडिया मिट्टी, या फिटकिरी मिले है, वा जल, जो पीने के काम मे आता है, विकार युक्त है तो उसे अच्छी तरह उबाल कर, छान ले और तब ठडा करके काम मे लावे।

जल के विषय मे महर्षि यम का कथन है—

'दिवार्करश्मि संस्पृष्टं रात्रौ नक्षत्रभाषितैः।
सन्ध्ययोश्च तथोभाभ्यां पवित्रं जलमुच्यते ॥

अर्थात्, दिन मे सूर्य-किरण, रात्रि को चन्द्र-नक्षत्र किरण, और सन्ध्या मे दोनो किरणो से युक्त वायु-प्रवाहमय जल ही उत्तम है। जिस जल पर सूर्य-किरण नही पडती अथवा जिस जल को वायु नही सोखता, वह अति स्वच्छ रहने पर भी कफ उत्पन्न करता है। ऐसे जल को गरम करके ठंडा होने पर ही पीना अच्छा है। गर्म करके ठडा किया हुआ जल कास, श्वास, ज्वर, कफ, वात, आम, और अजीर्ण का नाश करता है।

नारियल (डाभ) का जल मधुर, पाचक और पित्तनाशक होता है। यह लाभ के साथ पिया जा सकता है।

अन्य कृत्रिमजल जैसे सोडा, लेमोनेड, आदि पीना शरीर के भीतर रोग को निमन्त्रण देना है।

पीने के लिये वर्षा का जल जिसमे किसी प्रकार के दोषयुक्त पदार्थ न मिले हो सर्वोत्तम है। परिस्रुत जल (Distilled water) मे जो रोगनाशक गुण होते हैं, वे ही, बल्कि उनसे भी अधिक गुण, बरसात के जल में होते है। इसी वर्षा जल के लिये ही वेदो मे— 'शिवान. सन्त्वापो...' शब्द आया है, जिसका अर्थ है—हमको वर्षा का जल सुखकारी हो शिशिर और बसत ऋतुओ मे विशेषतया नदियो का जल लाभकारी होता है, यथा—

'नादेयम् नादेयम् शिशिर वसन्ते च नादेयम् ।'

तथा,

हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौसम हसंगमः ।
आपे हम ह्यह तवीर्ददत् हृद्योत भेषजम् ॥
—अथर्ववेद ।

अर्थात्, जल हिमालय से बहकर गगा आदि नदियो द्वारा समुद्र मे मिलता है। ऐसी नदियो का जल मेरे हृदय की ताप को शान्त करने के लिये औषधि रूप हो।

गर्म जल का प्रयोग कितने ही रोगो मे रामबाण का काम करता है। यथा—

कोर्ध्वजत्रुगदश्वास कासोरः क्षत पीनसे ।
गतिभाव्य प्रसंगेच, स्वर भेदेच तद्धितम् ॥

अर्थात् जुकाम, कोष्ठबद्धता, यकृत सम्बन्धी रोग, गठिया, गले के रोग, उर क्षत, फेफडे के रोग, खांसी, सास फूलना, पीनस, एव गला बैठना आदि रोग केवल गर्म पानी के इस्तेमाल से दूर हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त साधारण शिरपीड़ा तथा स्त्रियो के मासिक धर्म के समय होने वाली पीडा को निवारण करने के लिये गर्म जल का पीना बड़ा लाभ करता है। सवेरे उठते ही एक गिलास गर्म पानी पीने से ये रोग अपने आप नष्ट हो जाते है।

बर्फ मिला हुआ पानी भूल से भी नहीं पीना चाहिए। ऐसा जल तृषाकारक एव अनेक अवगुणो से युक्त होता है।

जल कितना और कैसे पीएं ?

यह तो सत्य ही है कि जितनी प्यास हो उतना पानी अवश्य ही पीना चाहिये, किन्तु एक साथ मे लोटा, दो लोटा पानी पी जाना अतीव हानिकारक है क्योकि अधिक और एक साथ मे पानी पीने से जठराग्नि शान्त प्रायः हो जाती है, जिससे खाया हुआ अन्न उत्तमता से नहीं पचता। जिस प्रकार भूख से अधिक खाना बुरा है, उसी प्रकार प्यास से अधिक पानी पीना भी। पानी या कोई भी पेय वस्तु घूट घूट चूसने की तरह तथा स्वाद ले लेकर पीना चाहिये जिससे उसके प्रत्येक घूंट मे मुख

का प्राकृतिक पाचक रस मिश्रित होकर उसे पचने योग्य एवं गुणकारी बना दे ।

एक विद्वान के मत से—

'द्विगुणंच पिवेत्तोयं सुखं सम्यकप्रजीर्यति ।

अर्थात्, भोजन मे जितना अंश ठोस हो उससे दोगुना जल पीना चाहिये ।

दूसरे आचार्य का मत है कि कुक्षि का दो भाग भोजन से, तथा एक भाग जल से भर कर चौथा भाग वायु के ठीक ठीक सचरण के लिए खाली छोड देना चाहिए यथा:—

कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीये वारि पूरयेत् ।
वायोःसंचारणार्थाय चतुर्थमवशेष येत् ॥

प्रयोगो से पता लगा है कि प्रत्येक मनुष्य की त्वचा द्वारा पसीने के रूप मे, फेफड़ो के श्वास प्रश्वास द्वारा वाष्प बनकर मूत्राशय के रूप में तथा मलाशय द्वारा मल के साथ कुल मिलाकर लगभग तीन सेर जल शरीर से प्रतिदिन निकलता है । इसलिए यह युक्तियुक्त है कि जिस परिमाण मे पानी नष्ट होता है, उसी परिमाण मे पानी ग्रहण भी करना चाहिये । किन्तु यदि दैनिक खाद्य पदार्थों मे जल धारण करने वाले खाद्य पदार्थों की अधिकता हो तो उसी अनुपात से जल भी कम वा अधिक पीना युक्तिसंगत है ।

पाश्चात्य विख्यात प्राकृतिक चिकित्सक प्रिसनिज नेअपने बहुत से रोगियों को दिन रात मे २० से ४० गिलास तक पानी पिलाकर इस बात की परीक्षा की थी कि अधिक पानी पीने से लाभ होता है या हानि जिसके परिणामस्वरूप यह बात मालूम हुई कि इतनी अधिक मात्रा मे पानी पीना शरीर के लिये अनावश्यक एव भारस्वरूप होता है । जिसका बहुत कम अंश शरीर को लाभ पहुंचाता है । शेष सब शरीर के उत्सर्ग मार्गो द्वारा व्यर्थ बाहर निकल जाता है । साधारणतः प्रतिदिन ४ से १० गिलास पानी पीना एक मनुष्य के लिये काफी होना चाहिये जिसमे से चार गिलास पानी जाड़ो के लिए तथा १० गिलास ग्रीष्म ऋतु के लिए समझना चाहिए । हां जलवायु एव अन्य परिस्थितियो के अनुसार इस नियम में व्यतिक्रम भी हो सकता है । जैसे एक दफ्तर का बाबू जिसका काम पखे के नीचे बैठकर केवल लिखना होता है प्रतिदिन चार या पाच गिलास पानी से अधिक नही पी सकता परन्तु एक मजदूर जो जेठ वैसाख की कड़ी धूप मे बाहर खेतो मे काम करते हुये लोहूपसीना एक करता रहता है, यदि एक दिन में २५-३० गिलास या इससे भी अधिक पानी पी जाय तो इसमे आश्चर्य की कौनसी बात है ?

हलक-नहान (कुल्ली करना)

हलक-नहान के लिए मुंह मे पानी लेकर उसे तबतक रखिये और हिलाते-डुलाते रहिये जब तक वह गरम न हो जाय । तत्पश्चात् कुल्ली कर दीजिये, और फिर मुंह में नया पानी ले लीजिये । हर समय एक या डेढ मिनट तक मुंह मे पानी रखकर उसे हिलाते-डुलाते रहने से वह गरम हो जाता है, और तब उसे निकालकर नया पानी मुंह मे लेने की जरूरत पड़ती है । मुंह मे ठण्डा पानी ले-लेकर उसे हिलाते डुलाते रहने और गरम होने पर निकाल फेकने की यह क्रिया उस वक्त तक जारी रखनी चाहिए जब तक कि तकलीफ दूर न हो जाय या बहुत कम न हो जाय । अगर मुंह के अन्दर घाव आदि होने के कारण मुंह मे लिए हुए पानी के हलन चलन (Gargling) मे कष्ट या असुविधा हो तो पानी को मुंह मे हिलने-डुलने न देकर केवल कुछ देर तक रखने के बाद मुंह से निकाल देने से भी काम चल सकता है ।

इस क्रिया से गले के ऊपर की पीडा—जैसे सिर पीड़ा, कान की पीड़ा, दांत की पीडा, मुख या जीभ के छाले या घाव, तथा नेत्र-पीड़ा आदि शात होती है ।

आचमन

आचमन क्रिया का व्यवहार विशेषतः तेज ज्वर की हालत मे किया जाता है । इससे शरीर के भीतर की जलन शान्त होती है । इसमे रोगी को ठण्डा जल बहुत कम मात्रा मे कई बार दिया जाता है ताकि उसका समीकरण शरीर मे पूरी तरह से हो जाय । यह ठण्डे जल के सभी प्रयोगो मे सबसे सहज और सरल प्रयोग है । नये मिट्टी के घडे आदि मे रखने से जल जितना ठण्डा होता है उतना ही ठण्डा जल आचमन के लिए लेना चाहिए, इस जल को रोगी थोडा-थोड़ा हर दस सेकेण्ड के बाद या तो सुड़के या चम्मच से पिये । ये

...मे दस बूंद से कम ही जल सुडकना या चम्मच से ...चाहिये एक वक्त मे ठण्डे पानी की ऐसी-ऐसी दस ...के ली जा सकती है। एक वक्त में दो या तीन ...ड के अन्तर से ठण्डे पानी की दस बूंद की दस ...कें लेने पर एक आचमन पूरा होता है। पर ज्वर ...क आचमन मे कम से कम बीस खुराके देनी ...हए। रोगी के चाहने पर इससे भी अधिक खुराके ...जा सकती है। हर पाच मिनट के बाद आचमन की इस ...या को उस वक्त तक दुहराते रहना चाहिए जब तक ...ज्वर की तेजी कम न हो जाय।

... भोजन के पहले आचमन का प्रयोग वाड़ी केन्द्रो को ...ताजा करता है और भोजन के बाद पाचन-क्रिया मे ...यता प्रदान करता है।

कर्ण-स्नान

कान के भीतर यदि किसी प्रकार का दर्द आदि हो पिचकारी से या एनिमा-पाट और रबर-ट्यूब द्वारा ...डे पानी की धार उसके भीतर डाल-कर धोने से वह ...हो जाता है। टोटी से धार भीतर छोडते वक्त टोटी ...कान के छेद के बिलकुल पास रखकर धार छोड़नी ...हिए और गिरते पानी को रोकने के लिए कान से ...कर कोई वर्तन थामे रहना चाहिए।

गुदा-स्नान

गुदा-स्नान को अंग्रेजी मे The Anal Bath कहते ...। रोगी एक वर्तन मे ठण्डा जल लेता है और उसमे से ...ड़ा-सा जल हाथ से उठाकर ठीक पाखाना करने के ...ाम पर फेंकता है। तत्पश्चात् उस जगह को हाथ से ...र रगड़ता है। इस क्रिया को वह दो से पांच मिनट ...वार-वार दोहराता है। उसके वाद वह अपनी एक ...गुली को ठण्डे पानी मे भिगो-भिगोकर वार-वार ...खाना के मोकाम के भीतर घुसेड़ता और निकालता है। ... क्रिया एक मिनट या इससे कम समय तक की ...ती है।

...स प्रयोग से पाखाना खुलासा होने लगता है और ... दूर्ता है। ...जो लोग एनिमा लेना पसद नही करते ...स क्रिया को ... एनिमा का नाम उठा ... है।

... स्नान

बाजार ... यन्त्र के साथ योनि-वस्ति की नली भी मिलती है ... द्वारा ठण्डा पानी एनिमा यन्त्र से योनि मे ... जाता है। इस क्रिया से स्त्रियो की ... बढती है, तथा गर्भाशय की स्थिति सुधारी ... योनि सम्बन्धी समस्त बीमारियों मे इस ... लाभ होता है।

...-स्नान

योनि-स्नान की ... ही जब पुरुष जननेन्द्रिय के छिद्र मे ठण्डे जल ... डाल कर उसे धोया जाता है तो उसे मेढ्-स्नान ... -वस्ति कहते है। इस प्रयोग से पुरुष जननेन्द्रिय ... मूत्राशय की समस्त व्याधिया दूर की जा सकती है।

... (एनिमा)

इस को जल-... या आभ्यन्तर स्नान भी कहते है। इस प्रयोग से ... बिना किसी प्रकार की उत्तेजना और जलन के ... शुद्ध की जाती है, जिसका वास्तविक ... का साफ और शुद्ध हो जाना। विजातीय द्रव्य ... के साथ-साथ अंतडियो को एनिमा से ... लगभग सभी लाभ प्राप्त होते हैं जिससे वे पुष्ट और सबल बनती हैं। इसीलिये प्रायः सभी नयी बीमारियो मे ... पहल दो एक बार या इससे भी अधिक वार एनिमा ... पेट को साफ कर देने से रोग का जोर ५० प्रतिशत ... होजाता है। एनिमा के इसी गुण से प्रभावित ... रिका के डाक्टर विलसन ने एनिमा को सब रोग ... नाशक कहा है।

डा० हाल, ... टी० एल० एल० डी० इस प्रयोग के वर्तमान ... कारक माने जाते हैं। परन्तु हमारे भारत मे ... प्रचलन वस्ति-क्रिया' के नाम से बहुत पहले से ... एनिमा को उस प्रसिद्ध यौगिक-क्रिया 'वस्ति' ... कहा जासकता है।

बाजार मे ... पात्र रुपये से लेकर दो हजार ... । लेकिन दीवार पर कील के ... जिसका चित्र नीचे दिया ... रुपये तक मे मिल जाता है ... के कई नाम है, जैसे
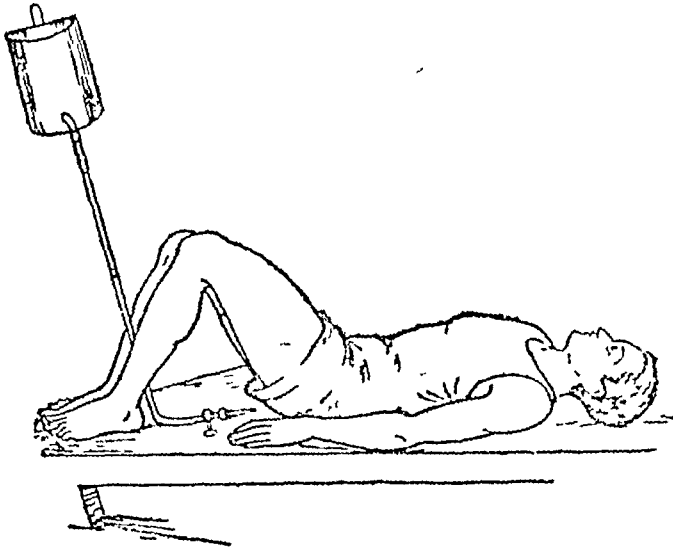
एनिमा लेना नं० १

Fountain Syringe, The Gravlty Douche, वृहत अन्त्र-स्नान-यन्त्र,हुस,दवाउल मुबारक, तथा युनानी जवान मे हुकना आदि ।

एनिमा लेने की विधि

ऊपर के चित्र से मालूम होगा कि एनिमा-यन्त्र एक डिव्वे की शकल का होता है, जिसके साथ चार पाच फुट लम्बी रवर की एक नली लगी होती है । डिव्वे के बीचो-बीच बाहर की ओर एक सूराखदार सिरा निकला होता है जिस पर रबर की नली एक तरफ से फिट की जाती है। रबर की नली के दूसरे सिरे पर लगाने के लिए दो सीग की छोटी-छोटी और लम्बी नलियां मिलती हैं । एक बटनदार होती है, दूसरी सीधी सादी । पहले बटनदार नली को रबर की नली के दूसरे सिरे पर फिट करते हैं । उसके बाद सादी नली को बटनदार नली के ऊपर लगा देते है। एक छेद वाली सादी नली के साथ एक फुहारेदार नली और मिलती है । काम दोनो से चल सकता है, पर फुहारे वाली ठीक रहती है वैसे फुहारे वाली नली स्त्रियो के योनि-स्नान मे अधिक काम आती है। एक एनिमा यन्त्र छः महीने के वच्चे से लेकर १०० वर्प के वूढ़े तक के काम आसकता है ।

पूरे एनिमा-यन्त्र को गरम पानी से अच्छी तरह साफ कर लीजिये । एनिमा के डिव्वे मे अन्दाज से पानी डालकर जिस जगह जमीन या तख्त पर लेटकर एनिमा लेना है उसके पैताने चार फुट ऊचे उसको दीवार से एक कील के सहारे लटका दीजिए । अगर वेच या तख्त पर लेटकर एनि मा लेना हो तो उसका पैताना, जिस तरफ एनि डिव्वा टगा है, आधा फुट ऊचा कर दीजिए। वह पैताने की तरफ तख्त के गोड़ो के नीचे दो-दो ईंटे र से चल जाता है । एनिमा लगाने के पहले रबर की से दो-चार वूद पानी बाहर निकाल दीजिये ताकि यदि हवा हो तो वह बाहर निकल जाए और यह जाना जा सके कि जल का प्रवाह ठीक है या नहीं। नली के मुंह को वद कर उस पर जरा सा घी या मल दीजिए ताकि उसके गुदामार्ग मे प्रवेश करते मे तकलीफ न हो । अव रोगी को उसका चूतड खोलकर पर लिटा दीजिये । लेटने पर उसका सिर नीचा और पैर एनिमा-पाट की ओर ऊंचा । रोगी के पैर मोड रखिए । तत्पश्चात् रवर की लटकी हुई अग्र भाग को पाखाने के रास्ते मे लगभग दो इ रख दीजिये और वटन को खोलकर पानी को चढने दीजिये । पानी वड़ी आसानी से आत मे चढ़ है पर कभी कभी कुछ कठिनाई होती है। कभी पानी चढने के वाद ही पेट में दर्द शुरू हो जाता ऐसा मालूम होता है कि अब पानी पेट मे नही रु सकता । उस दशा मे पानी का चढाना थोडी देर वद कर देना चाहिये । कुछ देर मे पेट का दर्द जाने पर पानी को फिर आत मे चढने दीजिये चढते समय पेड़ू को वाई से दाहिनी ओर को जव सब पानी चढ़ चुके तो नली को अलग कर ही लेटे उसे १५-२० मिनट तक रोक रखिये । उस पेड़ू की मालिश दाहिनी से वाई ओर को होनी पहले पहल पेट में पानी रोक रखना कठिन होता अभ्यास से यह काम आसान हो जाता है। पानी रोक रखने से आंत का मल फूलकर बाहर निकल है। और अधिक एनिमा लेने की जरूरत नहीं पानी चढ़ाने के वाद तुरन्त ही पाखाना जाने से मल लगभग नही के बराबर ही निकलता है और की आदत पड जाने का डर रहता है। ८-१० म इस तरह वे तरीके एनिमा लेने पर एनिमा की आ जाना स्वाभाविक है । एनिमा के वाद शौच कर पानी मिले मल को अपने आप निकलने देना चाहि निकालने के लिए जोर नही लगाना चाहिये । जोर
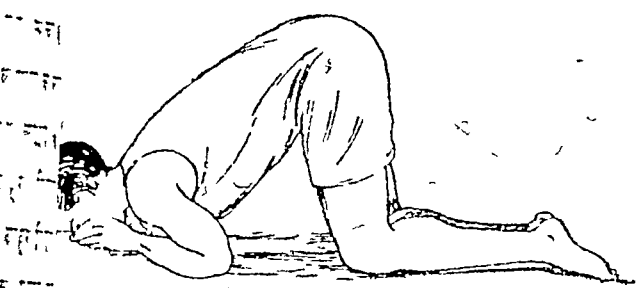
एनिमा लेने के लिए लेटने का तरीका नं० २

...ई अच्छी नही होती। आरम्भ मे शौचालय मे एनिमा ...बाद १५ से ३० मिनट तक बैठे रहने की जरूरत होती ...तब कही जाकर आत का पूरा मल निकल पाता है।

अगर बेच या तख्त न हो तो जमीन पर दरी आदि ...आकर और रोगी की कमर के नीचे तकिया रखकर एनिमा दिया जा सकता है।

एनिमा लेने के लिए लेटने का तरीका नं० ३

एनिमा बगैर किसी की मदद के खुद भी लिया जा ...ता है। अगर किसी कारण से चित्त न लेटा जा सके दाहिनी करवट लेटकर भी एनिमा ले सकते हे। इसी ...कार पट्ट होकर और शरीर का भार घुटनो और बाजुओ रखकर एनिमा लेना भी एक अच्छा ढङ्ग है।

हाई एनिमा

यह भी एक प्रकार का एनिमा है। इसकी रवड़ की ...ी ३२ इञ्च लम्बी होती है। एनिमा लेते वक्त ...सकी ३० इञ्च लम्बी नली पूरी की पूरी बडी आत्र मे ...वेश कर जाती है और केवल २ इञ्च नली बाहर रहती। इस एनिमा का चलन अभी भारत मे नही हुआ है। ...मेरिका मे इसका प्रयोग काफी होता है।

एनिमा लेने के सम्बन्ध मे अन्य जरूरी बातें

१—कुछ खाने के तीन घंटे बाद तक एनिमा नही देना चाहिये। क्योंकि उस समय पेट मे पाचन होता रहता है।

२—एनिमा लेने के बाद कम से कम १५ मिनट तक ...टे रहकर आतो को पूरा आराम देना चाहिए।

३—एनिमा लेने के तुरन्त बाद कुछ भी खाना-पीना नही चाहिए।

४—एनिमा के पानी मे कुछ नही मिलाना चाहिए। पर यदि रोगी को जोर का कब्ज हो तो एक या दो कागजी नीबुओं का रस छानकर या थोडा शहद मिला देने से मल काफी निकलता है।

५—एनिमा का पानी शरीर के ताप के बराबर गरम होना चाहिए, अधिक नही। तन्दुरुस्ती की हालत मे और गर्मियो मे मामूली ताजा ठडा पानी भी ले सकते हैं। ज्वर मे पानी हल्का गुनगुना होना चाहिये। ठडा पानी बल बढाता है, मरी नसो मे जान लाता है और सोई नसो को जगाता है।

६—एनिमा के पानी का लगभग परिमाण नीचे के आयु-कोष्टक से मालूम हो सकता है।

६ मास से १ वर्ष तक···आध पाव से पाव भर पानी
१ वर्ष से ६ वर्ष तक ·पाव भर से आध सेर पानी
६ वर्ष से १२ वर्ष तक·· आध सेर से एक सेर पानी
१२ वर्ष से २५ वर्ष तक···एक सेर से दो सेर पानी
२५ वर्ष से ऊपर की उम्र के लिये· ·दो सेर से ढ़ाई-तीन सेर पानी

साधारणत. डेढ सेर से अधिक पानी आत मे चढाना ठीक नही, हालाकि ५ सेर पानी की जगह आतो मे होती हे।

७ जोरदार कब्ज मे, उपवास, फलाहार, एव रसाहार के दिनो मे हर रोज एनिमा लेना चाहिए।

८ नये रोगो मे उपवास के साथ एनिमा का इस्तेमाल करने से ९० फीसदी रोग जरूर अच्छे हो जाते हैं।

९ पुराने रोगो मे फलाहार और बीच-बीच मे उपवास के साथ एनिमा लेते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

१०. एनिमा लेने के आध घंटा पहले या बाद उदर स्नान या मेहन-स्नान करना चाहिये।

११ एनिमा के पानी का परिमाण धीरे-धीरे बढाना चाहिए। जब लगातार बहुत दिनो तक एनिमा लेना हो तो कुछ दिनो तक कम, फिर कुछ दिनो तक बेशी, फिर थोड़े दिनो तक कम पानी चढाना चाहिए।
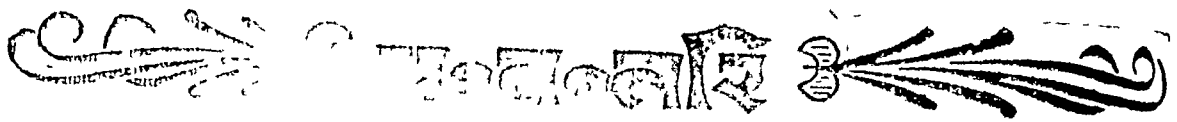
१२. कुछ दिन एनिमा लेकर छोड़ देने से एक-दो दिन पाखाना नहीं आता। इससे घबराना नहीं चाहिए एक दिन बाद एक बार फिर एनिमा लेकर छोड़ देना चाहिए।

१३ शुरू-शुरू मे और कमजोर रोगियों के लिए एनिमा लेने की जगह के पास ही पाखाना करने का इन्तजाम होना चाहिए, अन्यथा रास्ते मे कपड़े मे ही पाखाना हो जा सकता है।

१४. आंतों के घाव की हालत में एनिमा के डिब्बे को बहुत नीचे रखकर पतली रबर की नली द्वारा धीरे-धीरे एनिमा का पानी आतो मे पहुंचाना चाहिए ताकि घाव को ठेस न पहुंचे।

१५. सुबह-शाम शौच से लौटने के बाद एनिमा लेना ठीक रहता है।

१६. एनिमा लेने के पहले पाव, आध सेर गरम या ताजा ठण्डा पानी पीना लाभदायक है।

१७. एनिमा ले चुकने के बाद पूरे एनिमा-यन्त्र को साबुन और गरम पानी से धोकर रखना चाहिए।

१८. यदि एनिमा लेते ही जोर का पाखाना मालूम हो जो बर्दाश्त के बाहर हो तो पाखाना हो आना चाहिए और वहा से लौटने के बाद आवश्यकतानुसार, दुबारा एनिमा लेना चाहिए।

१९. एनिमा लेने के बाद १० मिनट तक आराम करके पूर्णस्नान किया जा सकता है।

२०. पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी लेनी हो तो एनिमा लेने से पहले लेनी चाहिए।

२१. जब पेट साफ रहने लगे तो एनिमा लेना बन्द कर देना चाहिए।

शक्तिदायक एनिमा

साधारण ठण्डा और ताजा पानी या हलका गुनगुना पानी पाव-डेढ पाव के करीब लेकर एनिमा लीजिए और उसे कम से कम २० मिनट तक रोके रखिए और तब पाखाना जाइए। अगर बहुत दिनों तक एनिमा लेना है तो इसी तरह का एनिमा प्रतिदिन लीजिए। इसमें बहुत ठण्डा पानी नहीं लेना चाहिए। ठण्डे पानी से पेट में ऐंठन होती है। बहुत गरम पानी भी नहीं लेना चाहिए इससे आतें कमजोर होती हैं।

इस तरह एनिमा लेने के दिनों मे सप्ताह में एक बार पानी की पूरी मात्रा का एनिमा भी लेना चाहिए।

शक्तिदायक एनिमा से आतों को बल मिलता है और कुछ ही दिनों मे कब्ज दूर हो जाता है। यह एनिमा दिन में दो बार भी लिया जा सकता है।

इस एनिमा के लेने मे एनिमा की वह नली काम मे लानी चाहिए जो स्त्रियों की योनि-वस्ति के काम आती है। इस नली के छेद बहुत बारीक होते हैं जिनके द्वारा पानी अन्दर इस प्रकार प्रवेश करता है कि वह एक जगह मे एकत्र नहीं हो पाता और आतों द्वारा सोख लिया जाता है धीरे-धीरे रक्त मे मिलकर सारे शरीर मे घूमता हुआ मूत्र के रूप मे बाहर निकल जाता है।

इस एनिमा से कब्ज, गर्मी, सुजाक, मधुमेह, मूत्र के रोग आदि मे बड़ा लाभ होता है।

इस एनिमा को संस्कृत मे 'रक्त-प्रक्षालिका-वस्ति' और अंग्रेजी मे The Tonic Enema' कहते हैं।

पानी को रोक रखने वाला एनिमा

पूरा एनिमा ले चुकने के बाद लगभग आधा पाव गुनगुना या ठण्डा पानी आंत मे चढाकर वहीं रोक रखना चाहिए। इस एनिमा के पानी मे कागजी नीबू का रस छानकर जरूर मिला लेना चाहिए। बवासीर में इस तरह काफी ठण्डे पानी को आत मे चढा कर रोक रहने देने से बहुत लाभ करता है

वनस्पतियों की पत्तियों के काढ़े या रसों को रोक रखने वाला एनिमा

'प्राकृतिक चिकित्सक' पुस्तक के लेखक श्री नारायण दुबे के अनुभव एवं लेखानुसार विविध रोगों में पानी को रोक रखने वाले एनिमा की तरह ही निम्न वनस्पतियों की पत्तियों के काढे या रसों को रोक रखने वाला एनिमा लेकर लाभ उठाया जा सकता है। ये नीचे दी जाती है।

नाम वनस्पति	नाम रोग जिसमें लाभकारी है
१—पेड पर मिट्टी की पट्टी के साथ नीम की पत्तियो के उबाले हुये पानी को हरी बोतल मे सूर्य तप्त करके एनिमा लेना और रोक रखना ।	गर्भ धारण न होता हो ।
२—मेहदी की पत्तियो का एक पाव काढ़ा हरी बोतल मे सूर्य तप्त करके उससे एक सप्ताह तक रोकने वाला एनिमा लें ।	बवासीर आदि खून जाने की बीमारियां ।
३—गूलर की पत्तियो और जड़ की छाल का एक पाव काढ़ा हरी बोतल मे सूर्य तप्त करके एनिमा ले और रोक रखे	गर्मी, सुजाक, घाव, फोडे आदि मे
४—अरड के पत्तो का काढा हरी बोतल मे सूर्य तप्त करके अरड के बीजो का एक पाव तेल मिलाकर एनिमा ले और रोक रखे ।	पुराना कब्ज, मन्दाग्नि, सग्रहणी, हर्निया, अपेन्डिसाइटिस, कालिक पेन ।
५—अशोक की पत्तियो और छाल को समान भाग लेकर पानी में उबालकर हरी और पीली बोतलो मे सूर्य तप्त कर दोनों जल समान लेकर एनिमा ले और रोक रखे।	स्त्रियो के समस्त रोग, जैसे रक्तप्रदर तथा गर्भाशय से खून बहना आदि।
६—निर्गुण्डी की पत्तियो का काढ़ा पीली बोतल मे सूर्य तप्त करके एक पाव काढ़े का एनिमा ले और रोक रखे ।	शरीर की हर प्रकार की सूजन ।
७—पालक के पञ्चाङ्ग का एक पाव काढ़ा हरी बोतल मे सूर्य तप्त करके एनिमा ले और रोक रखे ।	गुर्दे और मसाने की पथरी, कब्ज, कमर का दर्द, पेशाब की जलन।

एनिमा का पुरातन रूप 'वस्ति'

वस्ति क्रिया योगियो का एनिमा है जिसे किसी विशेषज्ञ द्वारा प्रत्यक्ष सीखकर ही करना चाहिए। पानी से मलान्त्र को धोने की क्रिया को वस्ति कहते है।

आयुर्वेद के प्रधान ग्रन्थ चरक और सुश्रुत मे वस्ति का उल्लेख विस्तार रूप से मिलता है। हठ-योग के प्रसिद्ध षटकर्मों मे वस्ति एक प्रधान कर्म है। आयुर्वेद काल के वस्ति-कर्म और हठ-योग काल के वस्ति कर्म मे थोड़ी भिन्नता पायी जाती है। हठ-योग काल आयुर्वेद काल के बाद का है।

वस्ति कर्म के लिए नौलि कर्म सिद्ध होना चाहिए [illegible] किया जाता है —

नौलि—क्रिया

आमन्दावर्त वेगेन तुन्दं सव्यापसव्यत. ।
नतांसो नौलिरामयं देपा सिद्धैं प्रयच्छते ॥

—हठयोग प्रदीपका

अर्थात् कंधो को झुकाकर, अतिवेग से पेट को गोलाई मे घुमाने की क्रिया को नौलि कहा गया है। पावो को एक दूसरे से एक या डेढ फुट पर रखते हुये खडे हो जावे और घुटनो को थोडा आगे झुकाकर तथा दोनो हाथो को दोनो पावो पर इस प्रकार रखे कि अंगुलिया भीतर की तरफ रहें तथा दृष्टि [illegible]। फेफडों से वायु नाक द्वारा निकाल दे और [illegible] पेट को अन्दर की ओर ले जावें। [illegible] भीतर पीठ की
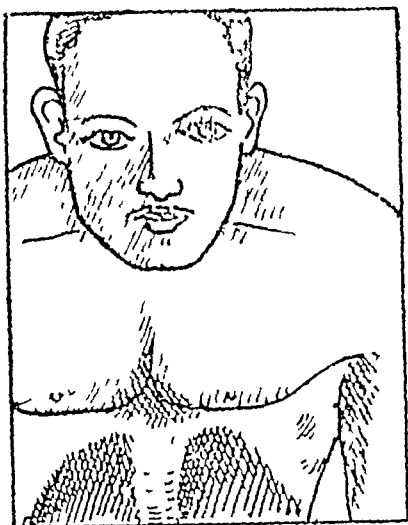
नौलि-क्रिया

तरफ हटादे। तत्पश्चात् वायें वाले भाग को छोड कर मध्य भाग को ढीला करे जिससे मासपेशिया नलाकार रूप मे वाहर आकर दिखाई देने लगे इस क्रिया को मध्य नौलि कहते हैं।

इसी प्रकार दायें भाग को सकुचित कर दक्षिण नौलि और बाये भाग को ढीलाकर बामनौलि की जाती है।

इतना अभ्यास होजाने पर शीघ्रतापूर्वक पहले मध्य-नौलि निकालने के बाद दक्षिण नौलि और अन्त मे बाम-नौलि करे। शीघ्रतापूर्वक करने से नौलि चक्राकार घूमने लगती है और उस समय ऐसा मालूम पड़ता है जैसे कोई मशीन चल रही हो। पर ऐसा केवल तभी सम्भव होगा जब पूरा-पूरा अभ्यास होजाय।

इस क्रिया को शौचादि से निवृत्त होकर तथा भोजन करने के पहले करना चाहिये।

नौलि-क्रिया पेट के लिये एक अच्छा व्यायाम है जिसके द्वारा भयंकर से भयकर रोग भी नष्ट किये जा सकते हैं। इसके करने से शौच खुलकर आने लगता है और कब्ज दूर हो जाता है, साथ ही यकृत अपना काम सुचारु रूप से करने लगता है। यथा—

"मन्दाग्नि सन्दीपन पाचनादि —
सन्धापिकानन्द करी सदैव।
अशेष दोषा मय शोचर्णा च
हठ क्रिया मौलिरियं च नौलि॥

अर्थात् नौलि-क्रिया मन्दाग्नि को उत्तेजित करने ली तथा आनन्द देने वाली है। यह सम्पूर्ण वात, पित्त, कफादि दोषो तथा अन्य रोगों का नाश करने वाली है। यह क्रिया, हठ योग की सब क्रियाओ मे सर्वोत्तम क्रिया है।

नौलि-क्रिया को शान्तिपूर्वक करना चाहिये। अन्त-ड़ियो मे क्षतादि दोष, तथा पित्त प्रकोप जनित अतिसार, प्रवाहिका (पेचिश), एव सग्रहणी आदि रोगो मे यह क्रिया नही करनी चाहिये।

वस्ति कर्म

वस्ति-कर्म के लिए छः अंगुल लम्बी वास की लकड़ी या रवड की एक नली जो कई दिन तक तेल या घी में भिगोई गई हो, चाहिये। वह इतनी पोली हो कि छोटी पतली अंगुली उसके छेद मे आसानी से आ जा सके। इस क्रिया के लिए पेट का खाली रहना जरूरी है। सुबह नित्य क्रिया के बाद इस क्रिया को करना चाहिए। जिस दिन सुबह वस्ति-क्रिया करनी हो उससे पिछली रात को हल्का भोजन करना ठीक रहता है।

वस्ति-कर्म दो प्रकार से किया जाता है। तीन या चार दिन पवन वस्ति करने के बाद जल-वस्ति-कर्म किया जाता है।

पहले खड़ा होकर दोनो घुटनो पर दोनो हाथो का पंजा रखे और बाम-नौलि तथा दक्षिण-नौलि को घुमावे। तत्पश्चात् मध्य-नौलि को घुमावे। इस प्रकार एक मिनट तक नौलि करने के बाद बास की नली के दो अंगुल स्थान पर गाय का घी या तेल लगाकर गुदा के भीतर दो अंगुल तक नली को प्रवेश करावे और मध्य-नौलि को ऊपर-नीचे तथा चारो ओर घुमावे। नौलि को ऊपर नीचे ले जाने के समय यदि पवन उदर मे आवे तो उसे चारो ओर घुमाने की जरूरत नही है। मध्य नौलि जब उदर के मध्य मे ठीक तौर से दिखाई देवे तब पवन उदर मे प्रवेश करेगा और जब नौलि को नीचे की ओर और बाम-नौलि न उठावे तब पवन, उदर से बाहर निकल जायगा। यही 'पवन-वस्ति-कर्म' है।

पवन-वस्ति के सिद्ध होने के बाद तालाव या नदी, जिसका जल स्वच्छ और निर्मल हो, में जाकर कमर तक पानी मे आगे झुककर घुटनो पर दोनों हाथ रखकर खड़े होकर या किसी टब आदि मे ताजा ठडा या गुनगुना जल भर कर नाभि तक पानी

से उत्कट आसन (दोनो पैरो की एड़ियों को मिलाकर और ऊपर को उठाकर उसी पर चूतड़ रखकर पंजों के बल बैठना) से बैठकर नौलि को एक मिनट तक घुमाने के बाद घी या तेल लगी हुई नलिका के दो अंगुल भाग को गुदा मे सावधानी के साथ प्रवेश कर मध्यम नौलि को ऊपर की ओर फिर नीचे को ओर ले जाना तथा ले आना चाहिए। नलिका के नीचे के मुह पर पतला कपड़ा लगा हो ताकि पानी के सिवा अन्य चीज अन्दर न घुसे। जब नौलि ऊपर नीचे आवेगी तो गुदा मे आकुञ्चन होने से पानी पेट मे आजायगा, और नौलि नीचे की तरफ चली जायगी और आत से गुदा द्वारा मल बाहर निकल जायगा। जिनको आत मे पानी को कुछ देर टिकाना है उन्हे चाहिए कि वे पानी के आत मे प्रवेश करते ही और ढाई तीन सेर के लगभग आतो मे पानी भर जाने के बाद नलिका को बाहर निकाल दें। नलिका निकाल देने के बाद दो या तीन मिनट नौलि-कर्म कर पानी को वही या बाहर जाकर निकाल देना चाहिए। उसके बाद मयूर आसन करके जो थोडा बहुत जल आत मे अटका हो उसे भी निकाल देना चाहिए। (मयूर-आसन के लिए इस ग्रंथ का आसन-प्रकरण देखना चाहिए)

इस बस्ति-क्रिया से आतो की सफाई जितनी होती है उतनी एनिमा से नही हो पाती। एनिमा के जरिये हफ्तो मे होने वाला काम इससे एक दिन मे ही हो सकता है। क्योकि बस्ति मे पानी मलान्त्र की जड तक पहुंचता है और नौलि से आतडी मे खूब मथा जाता है और इस प्रकार आतो का सारा मल लेकर ही वह बाहर निकलता है, जिससे पेट एकदम निर्मल हो जाता है। फलत शरीर की जीवनीशक्ति बलवती हो जाती है। जिसकी वजह से शरीर के सारे रोगो के दूर होने मे देर नही लगती।

बस्ति के लाभ के बारे मे 'हठयोग-प्रदीपिका' मे लिखा है —

'गुल्मप्लीहोदरं चापि वात पित्त कफोद्भवा।
बस्तिकर्म प्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः।'

अर्थात् बस्ति-कर्म से वायुगोला, तिल्ली, उदर और वात-पित्त-कफ से पैदा हुए सम्पूर्ण रोग नष्ट होते है।

'धात्विन्द्रियान्तःकरणप्रसादं दद्याच्च कान्ति' दहनप्रदीप्तिम्
अशेषदोषोपचयं निहन्याद् अभ्यस्यमानं जल बस्ति कर्म।'

अर्थात्, बस्ति-कर्म सात धातुओ, इन्द्रियो और अंतःकरण को प्रसन्न करने वाला, मुख पर सात्विक कांति लाने वाला, जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला, वात, पित्त, कफ आदि दोषो की वृद्धि और कमी को मिटाकर समता रूपी आरोग्य देने वाला है।

बारह वर्ष से सौ वर्ष तक की आयु वाले स्त्री पुरुष सभी वस्तिक्रिया को करके लाभ उठा सकते है। परन्तु कास, सग्रहणी, श्वास रोग, गर्भवती स्त्री, भगन्दर, सन्निपात, गुदा-शोथ, अन्त्रव्रण आदि रोग वालो को बस्ति-कर्म नही करना चाहिए।

एनिमा से लाभ

वस्तुतः एनिमा किसी रोग की दवा नही है, पर इससे शरीर के लगभग सभी रोगो के आश्चर्यजनक रूप से दूर होने मे मदद मिलती है। एनिमा बड़ी आत में जल पहुँचाकर उसे साफ कर देने का उपाय मात्र है। परन्तु आत की सफाई का यह नतीजा होता है कि उससे शरीर निर्मल, रोग रहित, और सुन्दर दिखने लगता है। एनिमा लेने से अतड़ियो की सफाई के साथ-साथ शरीर का खून भी साफ होता है जिससे खाल कोमल हो जाती है और चेहरा चमकने लगता है। सबसे अधिक लाभ एनिमा से यह है कि कब्ज से जो सारे रोगो की जड है छुटकारा मिल जाता है और उससे उत्पन्न अतड़ियो के भीतरी भागो की गर्मी और खुश्की दूर हो जाती है। जुलाब या रेचक दवाइयो से इस प्रकार के कुछ भी लाभ नही होते, उल्टे वे पेट के लिए हलाहल जहर साबित होती है और आतो को और खून मे मिलकर सारे शरीर को बहुत ही हानि पहुँचाती हैं।

बड़ी आत के भीतरी हिस्से के समतल न होने के कारण उसमे मल सूखकर कभी-कभी साल भर से अधिक समय तक चिपटा रहता है जिसमे कई तरह के जीवाणु और कृमि, मय अपने अण्डे-बच्चो के डेरा जमा लेते हैं। एनिमा लेने से ये सब के सब साफ हो जाते है।

जब कभी ज्वर आदि किसी भी बीमारी के आने की सम्भावना हो उस समय केवल एक एनिमा ले लेने से ही भय टल जाता है। फिर या तो वह रोग आता ही नही या आता है तो शीघ्र चला जाता है।

प्रसव से पहले एक एनिमा गर्भवती स्त्री को दे देने से

प्रसव बड़ा सुखदायक होता है। गर्भावस्था के अनेक उपद्रव, जैसे कै होना, खाना ठीक से न पचना, आदि एनिमा लेने से दूर हो जाते है।

पीलिया या कवरू रोग मे गरम पानी के एनिमा के बाद ठण्डे पानी का एनिमा देने से बड़ा लाभ होता है।

गठिया, बवासीर, पुरानी कोष्ठबद्धता, मन्दाग्नि, खून की खराबी, श्वास की बीमारी, सिरदर्द, मूर्छा, चक्कर आना, अफरा, खासी, मुंह से दुर्गन्ध आना, यकृत-विकार, शरीर का फीका पड़ जाना और निस्तेज हो जाना, फोड़ा-फुन्सी, दाद-खाज आदि चर्म रोगो का होना, जीभ में लाल छाले पड़ जाना, तथा स्नायु विकार आदि लगभग सभी शारीरिक और मानसिक रोग एनिमा के प्रयोग से कुछ ही दिनो मे अच्छे हो जाते है।

एनिमा के इसी सर्व रोगनाशक गुण के कारण इसका एक नाम 'दवाउलमुबारक, भी है जिसका मतलब है सबरोगो की दवा।

एनिमा कभी हानि भी करता है ?

एनिमा को यदि विधिवत् काम मे लाया जाय तो सदैव लाभ करता है और कभी भी हानि नही करता, पर यदि उसका दुरुपयोग किया जायगा अथवा उसको नियमपूर्वक काम मे न लाया जायगा तो वह अवश्य हानि करेगा। उदाहरणार्थः—

(१) जिस रोग मे पतले दस्त आते हो, साथ ही कमजोरी भी हो, उसमे एनिमा देना हानिकारक है।

(२) एनिमा के जल मे साबुन, ग्लीसरिन, या अन्य दवाए मिलाकर एनिमा देने से वह अवश्य हानि करता है, और एनिमा की आदत पड़ जाती है।

(३) लगातार महीनो या वर्षों बिना जरूरत एनिमा लेते रहना निश्चय ही बुरा है। ऐसा करने से आंत को बड़ी क्षति पहुँचती है और वे हमेशा के लिए कमजोर हो जाती है।

(४) छोटे बच्चों को अधिक ठण्डे जल का एनिमा नुंकसान करता है।

(५) गरम पानी का एनिमा लगातार बहुत दिन लेते रहने से आंतें कमजोर पड़ जाती हैं।

कुछ लोग एनिमा लेने से इस वास्ते डरते हैं वे सोचते है कि एनिमा लेने से उन्हे एनिमा लेने की आदत पड़ जायगी और फिर बिना एनिमा लिए शौच होयेगा ही नही। पर यह उनका निरा वहम है। कारण जरूरत के मुताबिक विधिवत् एनिमा लेने और जरूरत रफा हो जाने पर उसे छोड़ देने से कभी एनिमा लेने की आदत नही पड़ती और बिना एनिमा लिए ही शौच हो जाता है।

कुछ लोगो का कहना है कि एनिमा लेना अप्राकृतिक है। ऊपरी दृष्टि से बात तो अवश्य सच्ची मालूम देती है पर अगर आंत मे पानी चढ़ाकर आत का धोना-करना अप्राकृतिक है तो मुह मे पानी भरकर कुल्ला करना और मुंह को साफ करना भी अप्राकृतिक माना जाय। इसके अतिरिक्त जहरीली दस्तावर दवा खिलाकर पाखाना कराना तो एनिमा से कही बढ़ कर अप्राकृतिक, अस्वाभाविक एवं हानिकारक प्रयोग है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि एनिमा लेने से कमजोरी आ जाती है। ऐसे लोगो को जानना चाहिए कि एनिमा का पानी शरीर के खून को बाहर नही निकाल फेकता, बल्कि शरीर के मल को—उस मल को जो सब रोगो की जड़ है, शरीर से बिना उसे किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये निकालकर उसे निर्मल, निरोग और हल्का-फुल्का बना देता है। ऐसी हालत मे एनिमा से कमजोरी आने का कोई कारण ही नही हो सकता।

नोट—जलनेति, जलधौति, शंखप्रक्षालन, गजकरणी, योनि वस्ति (गरम) भी जल के आन्तरिक प्रयोग है, पर वे गरम जल के आन्तरिक प्रयोग हैं। इसलिए इन्हे यहा न देकर 'अग्नि तत्व चिकित्सा, वाले प्रकरण मे दिया गया है। कृपालु पाठको को इनके विषय मे वहीं जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

सातवां अध्याय

पृथ्वीतत्व--चिकित्सा

पृथ्वी तत्व

पृथ्वी, पञ्चतत्वो मे पांचवां और अन्तिम तत्व है। अन्य चार तत्वो–आकाश, वायु, अग्नि तथा जल का है। यथा:—

" एषां भूतानां पृथ्वी रसः "

-छांदोग्य उपनिषद्.

श्रुति मे पृथ्वी को अन्न भी कहा है।

हमारी पृथ्वी, आकाश में अपने रास्ते पर सूर्य के रो तरफ एक सेकेण्ड मे १८½ मील की चाल से चक्कर गाती रहती है, पर यह कितने आश्चर्य की बात है कि को इस तेज चाल का भान तक नही होता। दूसरी श्चर्य की बात है पृथ्वी का वजन गणित द्वारा ठीक-ठीक कालना। क्या यह असम्भव नही है! फिर भी गणि-ज्ञो ने कोशिश की और उनका अनुमान है कि इस पृथ्वी ा वजन छ: ट्रिलियन टन एवरडो पाइज वा ६० टन है।

पृथ्वी, नौ ग्रहों में एक ग्रह है जो इतनी बड़ी होते ये भी सूर्य एव बड़े नक्षत्रो के मुकाबिले मे एक अणु के मान भी नही है।

पृथ्वी के सम्बन्ध में एक तीसरी आश्चर्यजनक बात ो है, वह है उससे पृथ्वी पर रहने वाले जीवो की उत्प-त्ति। तैत्तरीय उपनिषद मे लिखा है कि आत्मा से आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की, जल से पृथ्वी की, पृथ्वी से औषधि-वनस्पतियों की, औषधि से अन्न की और अन्न से मनुष्य की उत्पत्ति हुई। अतः मानवी सृष्टि का उत्पादक पृथ्वी (अन्न) ही है। गीता मे कहा है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः

अर्थात्, सम्पूर्ण प्राणी अन्न (पृथ्वी) से उत्पन्न होते है और अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है।

शुद्ध शुक्रार्तव होने पर जब माता पिता के युक्तिपूर्वक संयोग से बालक गर्भ मे आता है, तब पूर्व जन्मो के शुभा-शुभ कर्मों से प्रेरित जीवात्मा, उस गर्भ मे प्रवेश करता है। जैसे अन्न-बीज मे उसका वृक्ष सन्निहित रहता है, अरणी-काष्ठ मे अग्नि रहती है, किन्तु युक्तिपूर्वक बीज वपन करने पर ही समय आकर वृक्ष उगता है, युक्तिपूर्वक घर्षण करने से ही अरणी से अग्नि निकलता है इसी तरह शुक्रार्तव से गर्भ स्थिर होता है और जिस प्रकार स्फटिक मणि, बिल्लौर पत्थर को सूर्य रश्मि पार करती है, किन्तु पार करते समय उसका पार करना दिखता नही, उसी तरह स्त्री के गर्भाशयस्थ गर्भ मे जीव प्रविष्ट होता है, फिर वह गर्भ माता के आहार रूपी अन्न-रस (पृथ्वी-तत्व) द्वारा क्रमश बढ़कर भूमिष्ट होता है। यही कारण है जो पृथ्वी को हम माता कहते है। क्योकि हम सबकी उत्पत्ति धरती से ही हुई है। शास्त्रो मे पृथ्वी (मिट्टी) गगाजल की भाति ही पवित्र इसीलिये मानी गयी है।

पृथ्वी (मिट्टी) की शक्ति एवं गुण

मिट्टी, जितनी सर्व सुलभ एव नगण्य समझी जाती है, उसकी गुण गरिमा उतनी ही महान है। नीचे मिट्टी के कुछ गुण दिये जाते है–

(१) सब प्रकार की दुर्गन्ध को मिटाने के लिये मिट्टी से बढ कर ससार मे और कोई वस्तु नही है। यही कारण है जो जनता मिट्टी से अपने घरो को लीपती है और दुर्गन्ध की जगह पर मिट्टी का प्रयोग करती है। सड़ी चीजो पर मिट्टी डालने सेही उसकी दुर्गन्ध जाती है। अप-वित्र हाथो को मिट्टी से ही धोकर हम उन्हे पवित्र करते है। गुदा भाग की अपवित्रता भी मिट्टी के ही योग से मिटाई जाती है। मुर्दे सडकर दुर्गन्ध न फैलावे इसलिये उन्हे मिट्टी मे गाड़ देने की प्रथा है। लोग मैदान मे पृथ्वी पर मल त्याग कर देते है पृथ्वी कुछ ही घटों मे उसका रंग रूप बदल कर सुन्दर साफ और गन्धहीन मिट्टी मे उस मल को परिणित करके रख देती है।

(२) मिट्टी मे सर्दी और गर्मी रोकने की शक्ति होती है यही कारण है कि योगी लोग अपने शरीर पर मिट्टी लगाये रहते हैं जिससे गर्मी मे [illegible] लू और जाड़े की सर्दी—दोनों से उनके तन बदन की रक्षा स्वत. होती रहे।

(३) जल को निर्मल कर देने की अद्भुत शक्ति मिट्टी मे होती है। कूपो, सरिताओं और स्रोतो का जल इसी कारण सदैव निर्मल रहता है। वैसे भी गदे पानी को साफ करने के लिये बालू या मिट्टी मे से उसे छानते है।

(४) मिट्टी मे विलक्षण विद्रावक (Dissolving) शक्ति होती है। बडे से बड़े फोडे पर मिट्टी की पट्टी चढाने से अपनी विद्रावण शक्ति से ही वह उसे पका देती है वहा देती है और घाव को भर भी देती है।

(५) मिट्टी मे विषादि को शोषण करने की विचित्र शक्ति होती है। साप, बिच्छू आदि के काटने पर मिट्टी का युक्तिपूर्वक लेप आश्चर्यजनक रूप से काम करता है। कार्वंकल जैसे भयानक फोडे का विष चूसकर मिट्टी उसे कुछ ही दिनो मे ठीक कर देती है-जो उसकी विष शोषण शक्ति का प्रभाव होता है।

(६) मिट्टी मे जल तथा सब प्रकार की धातुएं अर्थात् खनिज पदार्थो को धारण करने की शक्ति है। समुद्र, नदियां, तड़ागादि पृथ्वी पर ही तो टिके हुये है।

(७) मिट्टी मे ही सभी प्राणियो के जीवन-निर्वाह के लिये खाद्य पदार्थोंको उनमे भिन्न भिन्न रसो की प्रधानता के साथ उत्पन्न करने की शक्ति होती है।

(८) मिट्टी जल के वेग को रोक सकती है। इसी से मिट्टी का बांध बांधकर बाढ़ का पानी रोका जाता है।

(९) मिट्टी अग्नि की उष्णता का शोषण करके उसे शान्त कर सकती है इसी से आग लगने पर मिट्टी डालकर उसे बुझाते है।

(१०) मिट्टी वायु के वेग को भी रोकने की क्षमता रखती है यही कारण है जो मजबूत मकान आधी मे नही गिरते और सुरक्षित रहते है।

(११) मिट्टी जल के योग से तरह तरह के आकार धारण कर सकती है। मिट्टी के मकान, खेल के सामान तथा बर्तन भाडे इसके उदाहरण हैं।

(१२) मिट्टी, वायु के योग से आकाश मे उड़ सकती है। वातावरण मे असख्य धूल के कण हरदम विद्यमान रहते ही हैं।

(१३) जिस प्रकार सारी सृष्टि की रचना मिट्टी से हुई है उसी प्रकार अंत मे सब को आत्मसात कर लेने की शक्ति भी पृथ्वी मे निहित है कहा भी है—

"Dust thou art to dust thau shalt retur

(१४) मिट्टी मे रोगो को दूर करने की अपूर्व . होती है क्योंकि मिट्टी मे जगत की सभी वस्तुओं । का रासायनिक सम्मिश्रण (Chemical com' सर्वाधिक विद्यमान होता है जबकि किसी एक दवा कई दवाओं के मिक्स्चर मे उतना रासायनिक सम्मि कदापि सम्भव नही हो सकता।

मिट्टी के प्रकार

मिट्टी कई प्रकार की होती है, और प्रत्येक प्रका मिट्टी का उपयोग उसके गुण-अनुसार अलग अलग काली मिट्टी अधिकतर कछार मे पायी जाती है। यह वालो की रक्षा करने और उनको साफ और स्वच्छ मे अद्वितीय है।

लाल मिट्टी विन्ध्यप्रदेश और चुनार जैसी जगहो में पायी जाती है। गेरू भी इसी किस्म की प्रकार की मिट्टी है जो मकान की पुताई में विशेष आती है।

पीली और सफेद मिट्टी खेतो, तालाबो और नदि के किनारे पायी जाती है। रोगो के उपचार मे इसी की मिट्टी से काम लाभ के साथ लिया जाता है।

सज्जी, एक प्रकार की मिट्टी ही होती है, कपडा खूब साफ होता है।

मुलतानी मिट्टी एक और खास किस्म की मिट्टी है जिसे स्त्रिया उबटन की तरह शरीर पर मलती है, जिससे उनकी त्वचा सुन्दर एव कान्तिमय हो जाती है।

बालू, मिट्टी ही है जो मनुष्य शरीर के लिए वैसे ही आवश्यक है जैसे भोजन और जल। परन्तु इसके स्वास्थ्य वर्द्धक गुणो को केवल प्राकृतिक चिकित्सक ही भली भांति जानते है। हिन्दू ग्रन्थो मे बालुका वा रेणु फांकना एक धार्मिक कृत्य माना जाता है, जो इस तथ्य का जबरदस्त प्रमाण है। प्राकृतिक दशा मे खाई जाने वाली सब वस्तुओ, जैसे साग-भाजी, खीरा-ककड़ी आदि के साथ सदैव बालू का अंश कुछ न कुछ जरूर रहता है, पर हम अज्ञानता के कारण धोकर बहा देते है। ये बालू के कण हमारी-पाचन-शक्ति को ठीक रखने मे बड़ा काम करते

ो चश्मो का पानी क्यो स्वास्थ्यवर्द्धक होता है ? इस
र का पानी पीने से भूख अधिक क्यो लगती है ?
द क्यो ठीक रहता है ? इसीलिए कि स्रोतो के पानी मे
की कुछ न कुछ मात्रा मिली होती है जिसे हम
 के साथ पीजाते है। लोग कहते है, ' अमुक कुए का
 पीने से अन्न पच जाता हे । इसका अर्थ यही है कि
कुए के पानी मे बालू मिली हुई हे अथवा उसका
 बालू के ढेर से गुजरता है और थोड़ी-बहुत बालू
 साथ लाता है, जिसे पीकर हम लाभ उठाते है । यही
रण है कि उन नदियो (जो पहाड़ों से बहकर आती है
अपने साथ बालू का ढेर लाती है,) का पानी असा-
रण रूप से पाचक सिद्ध होता है । बालू मे छुतैले जहर
मारने की भी शक्ति होती है । बालू प्रकृति की ओर
ानो छूत और जहर मारनेवाली दवा का काम करती
प्रयोगो से सिद्ध हो चुका है कि बालू मानव स्वास्थ्य
लिये बडे लाभ की चीज हे ।

जिसको पेट की बीमारी हो, कोष्ठबद्धता हो, पाखाना
ासा न होता हो, वह अगर खाना खाने के बाद ही
चुटकी समुद्री महीन बालू दिन मे दो-तीन बार
ाल लें तो दूसरे ही दिन पेट की आतें ढीली पड़ जायेंगी
र मल आसानी से निकलने लगेगा और अंत मे कब्ज
हो जायगी ।

पृथ्वी से सीधा संसर्ग और उससे लाभ

माटी ओढना माटी बिछौना, माटी दाना-पानीरे ।'
ीरदास जी ने अपनी इस वानीमे इस बात की ओर सकेत
या है कि मनुष्य थलचर प्राणी है। अर्थात् पृथ्वी पर विच-
ा वाला जीव है अत. उसका कल्याण इसी मे है कि वह
दा-सर्वदा पृथ्वी से ही ससर्ग रखे । यहा तक कि मिट्टी ही
रीर पर धारण करके (जैसा योगी लोग करते है) उससे
ढना का काम ले और मिट्टी के ही बिस्तर अर्थात्
थ्वी पर सोवे ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वह मिट्टी
उपजे फल-अन्नादि का भोजन करके जीवित रहता है ।
ोंकि मनुष्य की उत्पत्ति मिट्टी से ही हुई है और उसे
क दिन मिट्टी मे ही मिलना है । अतएव [illegible] और
रोग मे [illegible] मे भी [illegible], उसे मिट्टी से
[illegible] बनाये रखना चाहिए [illegible]
[illegible]

खूब कहा है—

खाक का पुतला बना है खाक की तसवीर है ।
खाक मे मिल जायगा फिर खाक दामनगीर है ॥

मनुष्य के अतिरिक्त इस पृथ्वी पर और बहुत से थल-चन प्राणी है, जैसे पशु, सापादि । ये सभी जीव जीवन पर्यन्त अपना सम्पर्क धरती माता से बनाये रखते हैं जिसके फलस्वरूप वे आनन्दपूर्वक जीवन-यापन करते है । इनमे मनुष्य की भाति सभी बातों मे कृत्रिमता नही होती । इनके लिये ओढने पहनने को न तो अलग से वस्त्र की जरूरत होती है और न बिछाने को अलग से नरम बिस्तरे की । जिसका फल यह होता है कि वे स्वस्थ और बलशाली जीवन भर बने रहते है ।

प्रकृति का यह नियम है कि उसने जिस जीव को जिस जगह के लिए, जिस ढग से रहने के लिये रचा है, उसे उस जगह, उसी ढग से रहना युक्तिसंगत है । संसार मे तीन प्रकार के जीव वास करते है नभचर, जलचर, तथा थलचर । जिनमे नभचर, तथा जलचर तो इस प्राकृतिक नियम का पालन करते है, और मनुष्य के अतिरिक्त सभी थलचर जीव भी । परन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी इच्छा से या विवश होकर पर अवश्य ही अज्ञानवश, प्रकृति के इस लाभदायक नियम को भग करके अपने को अपनी स्नेहमयी माता से—धरती माता से दूर-दूर—बहुत दूर रहता है । ऐसी दशा मे अपनी माता की गोद से बिछुड कर, उसके आशीर्वाद से वञ्चित रह कर, कौन सी सन्तान दंड की भागी न होगी ! कौन सी सतान जीवन पर्यंत कमजोर और रोगी रह कर समय से पहले ही काल कवलित न हो जायगी ?

मछली, जल का जीव है जल ही उसका निवास स्थान जल ही ओढना जल ही बिछौना है, जल के ही ससर्ग मे उसका सुख चैन है । उसे जल से अलग कर दीजिये उस दशा वह बेचैन ही नही होगी, अपितु तड़प-तड़प कर मर भी जायगी । इसी प्रकार पक्षी आकाशचारी होता है । आकाश ही उसका निवास स्थान एव [illegible] है । [illegible] आकाश के ही संसर्ग से उसे आनन्द प्राप्त होता है । [illegible] उसके लिये उपयुक्त एवं स्वास्थ्यवर्द्धक नही [illegible] । [illegible] पृथ्वी के जीव पृथ्वी [illegible]

ससर्ग से नीरोग रह कर लम्बी आयु प्राप्त कर सकते हैं।

प्राचीन काल मे जब वर्तमान कथित सभ्यता का नामोनिशान न था उस समय मनुष्य जूतो से अपने पैरो को तथा कपड़ो से अङ्ग प्रत्यङ्ग को कसे रहना जानता तक न था। वह सीधे, पृथ्वी के सम्पर्क मे रह कर नगे पैर चलता था पृथ्वी पर सोता बैठता था, और पृथ्वी से ही जीवन की अपनी अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति करता फलत. वह दीर्घजीवी, बली और निरोग होता था। लेकिन आज का मानव प्राचीन काल के मानव से भिन्न है। वह पृथ्वी पर विना जूता पहने पाव रखना पसद नही करता। कपड़ो मे धूल लग जाने के डर से पृथ्वी पर लेटने या बैठने से घोर घृणा करता है। इसके लिये उसे उम्दा-उम्दा कोच सोफे और गद्देदार पलंग चाहिये। एक वाक्य मे, आज का मानव यह भूल चुका है कि वह पृथ्वी के संसर्ग मे सीधे रह कर, उसकी आरोग्यदायक शक्ति का उपयोग करके ही प्राचीन काल के मानव के सदृश बलवान, मेधावी एवं दीर्घजीवी हो सकता है।

वर्तमानसमय मे श्री ए०जुस्ट तथा श्री रिकली प्रभृति सभी प्राकृतिक चिकित्सक एक स्वर से प्रकृति की ओर पुनः लौटने की सलाह दे रहे है, जिसमे वे मानव का कल्याण समझते है। भगवान हमे सुबुद्धि दे कि हम उनकी नेक सलाह पर अमल कर सके।

नंगे पांव पृथ्वी पर चलने से लाभ

यह प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है कि खुली पृथ्वी पर नगे पाव स्वच्छन्दता से चलने फिरने मे जितनी शान्ति और सुख मिलता है, वह आनन्द पक्के आगन मे लकड़ी या पत्थर पर नगे या जूता पहन चलने से नही मिल सकता है। यह भी अनुभव किया जा सकता है कि नगे पाव सूखी पृथ्वी या सूखी दूब पर चलने की अपेक्षा गीली धरती या ओस मे भीगी घास पर चलना विशेष सुखप्रद एव लाभप्रद होता है। हमारे छोटे बच्चे जो प्रकृति के अति निकट रहते है, यदि उनका वस चले, और यदि हम अपनी कम अक्ली की टाग उनके बीच मे न अड़ावे तो वे न तो कभी जूते पहने और न कपड़े वल्कि मस्ती से मिट्टी मे लोटें, पोटें खेले और दौड़ें, तथा प्रसन्न रहे।

पृथ्वी मे एक विलक्षण विद्युत शक्ति होती है जो नगे पैर चलने वालों के शरीर मे ताजगी एवं जीवनशक्ति सञ्चार करती है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ... मे वह शक्ति और जीवन भरती है जो उस पर स्थिर से स्थिर होते हैं। इस मानी मे मानव को एक ... चलता हुआ सजीव वृक्ष ही मानना चाहिये और यह समझना चाहिये कि जिस प्रकार एक वृक्ष, पृथ्वी से ... होकर जी-पनप नही सकता उसी प्रकार मानव भी पृथ्वी से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके सुख शान्ति का ... नही हो सकता। जिस प्रकार वृक्ष और पौधो को ... से पोषण मिलता है उसी प्रकार मनुष्य भी नगे पृथ्वी पर चलकर, पृथ्वी से आरोग्य, बल एव दीर्घ ... प्राप्त करता है। नगे पांव चलने वाले को नेत्र रोग कभी ... ही नही। आज जो छोटे-छोटे बच्चो की आखो पर ... देखा जाता है उसकी एक खास वजह यह भी है कि ... री आजकल की सभ्यता ने हमे नगे पैरो चलना ... कर रखा है, जिससे हम अर्द्ध अधे बने बने फिरने को मजबूर हो रहे है।

नगे पैरो पृथ्वी पर चलने से पैर मजबूत, सुडौल और रुधिराभिसरण बरावर होने के कारण ... लाल निकल आते हैं, साथ ही साथ उनमे गदगी ... दुर्गन्ध नाम को नही पायी जाती जैसा कि पैरो को ... से निकालने के बाद पायी जाती है। शहरो के ... वाले मजे से बाहर मैदानो, पगडडियो, जगलो, नदी किनारे तथा पार्को मे नगे पाव टहलकर लाभ उठा ... है जाड़ो मे नगे पैरो घूमने से सर्दी लगने का डर ... भ्रम और वहम मात्र है जिसमे सत्यता लेश मात्र नही है।

धार्मिक दृष्टि से नगे पैर चलने का रिवाज ... यहां साधु सन्यासियों मे है ही। ये लोग अपने शिष्यों को नगे पैरो चलने की शिक्षा भी देते है।

नगे पैरो चलने से शरीर के बहुत से रोग आश्चर्य-जनक रूप से दूर हो जाते है।

नंगे शरीर पृथ्वी पर बैठने, लेटने अथवा सोने मे ...

नगे पांव चलने की अपेक्षा, पृथ्वी पर नगे ... अधिक लाभदायक है, और बैठने की अपेक्षा उस पर लेटना और सोना और भी अधिक गुणकारी है।

इन हालतो मे पृथ्वी से हमारा ससर्ग बहुत अधिक रहता है। पृथ्वी के स्पर्श एवं सयोग से ही प्राणियो मे जीवन-शक्ति की यथेष्ठ उपलब्धि होती है। अतः उत्तम स्वास्थ्य के चाहने वालों को पृथ्वी से सीधा संसर्ग रखने के लिए, उस पर बैठना, लेटना और सोना होगा ही। प्रकृति-पुत्र कृषक या बाग का माली जब खेत मे खुली धरती पर बिना कुछ बिछाये बैठता या सोता है तो उस समय जिस सुख-शाति की अनुभूति उसे होती है उसका अन्दाजा कुछ भुक्त भोगी ही लगा सकता है।

हमारे पूर्वज पृथ्वी की अद्भुत शक्ति से परिचित थे। तभी तो वे लोग पूर्णरूप से पृथ्वी की अमोघ शक्ति का उपयोग करके ससार में ऐसे-ऐसे कार्य कर गए है जिनका आज हमे विश्वास नही होता।

योग-साधन के लिए बिना कुछ बिछाए भूमि पर सोना एक आवश्यक नियम है। जिसका पालन प्राचीन भारत के योगी लोग करते थे और आश्चर्यजनक शारीरिक व आध्यात्मिक शक्तिया प्राप्त करके ससार को चकाचौंध कर देते थे। प्रसिद्ध योगी भर्तृहरि व गोपीचन्द भूमिपर ही सोकर बड़ी-बड़ी सिद्धियो के मालिक हुए थे। भगवान राम १४ वर्षो तक पृथ्वी पर नगे पैरो चले और उसी पर बैठे-सोये जिससे उन्हे वह अपार शक्ति प्राप्त हुई जिससे वह रावण जैसे शक्तिशाली राक्षसराज पर काबू पासके। मेघनाद न मरता यदि लक्ष्मण १४ वर्षो तक खुली धरती पर शयन करके योगसाधन न किये होते। इसी तरह अन्यान्य महान आत्माएं भी जिनसे बडे-बडे कार्य आज तक सम्भव हुए है, सब पृथ्वी की अपारशक्ति को जानते थे और उससे लाभ उठाते थे।

प्राचीन भारत के गुरुकुलो मे विद्यार्थीगण भूमि पर ही सोकर ज्ञान प्राप्त करते थे। वानप्रस्थियो एवं सन्यासियो को भी पृथ्वी पर ही सोने की व्यवस्था थी।

नंगे बदन खुली पृथ्वी पर खुले आसमान के नीचे सोना-बैठना सर्वोत्तम है। क्योंकि मनुष्य के शरीर पर नाचने वाले [illegible] से नीलमण्डल की विशालता और सौन्दर्य [illegible] और स्फूर्तिदायक प्रभाव पड़ता है [illegible] खुली पृथ्वी पर सोना बैठना चाहिए। सर्दियों मे [illegible] उपयोग ऊपर से किया जा सकता है।

खुली धरती के बजाय घास पर बिना बिस्तर के सोना बैठना मध्यम है। रेत (बालू) का बिस्तरा बनाकर उस पर सोना-बैठना भी उपयोगी है। यदि पहले-पहल पृथ्वी पर बिना कुछ बिछाए नीद न आवे तो चटाई या पतली चद्दर बिछाकर अभ्यास कर लेना चाहिए।

जिन लोगो की रात्रि कष्ट से बीतती है— चिन्ता, बेचैनी, तथा घबराहट घेरे रहती है, और जो आत्महत्या करना चाहते है, ऐसे लोगो को खुली पृथ्वी पर सोने से बड़ी शान्ति मिलती है। पेट के रोगो को दूर करने मे पृथ्वी पर का सोना अद्वितीय है। पृथ्वी पर उपर्युक्त रीति से सोने से उदर, आते, हृदय आदि सभी अङ्गोपाङ्ग अपना-अपना काम जोरो के साथ करने लगते है, और शरीर का विजातीय द्रव बड़ी आसानी से पसीना, मूत्र एव मल के रूप मे बाहर फेक दिये जाते है जिससे शरीर निर्मल और नवीन हो जाता है और उसमें एक नयी सजीवनी शक्ति भर उठती है।

जाड़ो मे ही सही, सूर्यप्रकाश मे बैठकर धूप तापना हमे सुखकर होता है और उससे हमारे स्वास्थ्य की उन्नति होती है। फिर पृथ्वी पर उठने-बैठने, तथा सोने-बैठने से हमे चिढ और झिझक क्यो हो? सूर्य की भाति पृथ्वी भी तो हमारे शरीर पर स्वास्थ्य-रस की वर्षा करती है। पृथ्वी, अन्य चारो तत्वो का रस है, ऐसा ऊपर उल्लेख हो चुका है।

आपने कभी सोचा है कि हिन्दुओ मे मरणोन्मुख प्राणियो को मृत्यु के कुछ समय पूर्व जमीन पर लिटा देने की प्रथा क्यो है? यह इसलिए कि धरती माता की पावन गोद ही उनकी वास्तविक सुख-सेज थी जिसको वे जीवन पर्यन्त भूले हुए थे। कम से कम मरते वक्त तो एक बार उन्हे इस बात का मौका दे दिया जाय ताकि वे उसका उपभोग करके शान्ति का अनुभव करलें। परन्तु उस वक्त देर हो चुकी होती है।

प्राकृतिक चिकित्सकों के आदेशानुसार [illegible] रोगी रात को नंगे बदन खुली पृथ्वी पर या घास वाली भूमि पर सोकर पूर्णरूप से [illegible] निरोग हो गये हैं। [illegible] है।

पृथ्वी पर [illegible]
विश्राम [illegible]

हमे मिलता है, वह पृथ्वी पर सोने से उसके आधे या चौथाई समय मे ही आसानी से प्राप्त हो जाता है और शरीर निरोग भी रहने लगता है, और रात का बाकी समय हमे भगवद्भजन करने या अन्य आवश्यक कार्य करने के लिये मुफ्त मे मिल जाता है।

पहलवान और मल्ल लोग जो मिट्टी से अपने बदन को आच्छादित रखते है अनेक लाभो के अधिकारी होते है।

बिजली के मारे हुये व्यक्ति या साप के काटे हुये व्यक्ति को यदि जमीन मे करीब दो हाथ गहरा गढा खोद कर उसमे बैठा दिया जावे और गीली मिट्टी से गर्दन और शिर खुला रख कर उसे भर दिया जावे तो १ से २४ घंटो तक मे रोगी के शरीर से जहर बिलकुल निकल जायगा और वह मरने से बच जायगा।

यह देखा जा सकता है कि जब कोई जानवर बीमार होता है तो सदा की अपेक्षा रोग की दशा मे पृथ्वी की शक्ति का वह खास तौर से उपयोग करता है। वह बिना कुछ खाये रोग अच्छा होने तक पृथ्वी पर बैठ कर या लेट कर आराम करेगा। घायल हुये जानवर तालाब या पोखरे के कीचड़ मे जा लेटते है। एक बार एक पालतू सूअर बहुत बीमार हो गया। उसके मालिक ने उसे पिंजरे से बाहर निकल जाने दिया ताकि मरने के पहले वह थोड़ी आजादी की जिन्दगी बसर कर ले। सूअर पिंजरे से निकल कर सीधे एक गोभी-शाक के खेत मे चला गया और वहा एक गड्ढा खोद कर उसकी मिट्टी मे शान्तिसे लेट कर पड़ा रहा और सात दिनो तक लगातार बिना, कुछ खाये-पिये उसी तरह पडा रहा। आठवें दिन पूरा स्वस्थ होकर ही वह वापस हुआ। यह है मामूली मिट्टी का प्रताप जिसका ज्ञान सूअर तक को है पर हम मनुष्य उससे अनभिज्ञ है। हालाकि हम रातदिन देखते हैं कि चूहा, सांप, खरगोश, लोमडी, हिरण, गाय भैंस, घोड़ा ऊंट, बकरी आदि जानवर पृथ्वी पर सोना-बैठना कितना अधिक पसंद करते है और ऐसा करके वे कितना लाभान्वित होते है लेकिन हम हैं कि इस मानी मे पशुओ से भी सबक नही लेते।

जगल के जानवर साफ की हुई या कुछ खोदी हुई जमीन पर बैठते है। और लेटते है। लोमड़ी आदि पशु अपनी अपनी गुफाएं रखते अवश्य है पर सोने के समय वे [illegible] खुली जमीन का ही उपयोग करते हैं ताकि विश्राम का[illegible] समय उनके शरीर का सम्बन्ध पृथ्वी से सीधा बना र[illegible] और उसकी अलौकिक शक्ति उन्हे प्राप्त हो सके। [illegible] जानवर सोने के लिये पृथ्वी पर पत्ते आदि कुछ [illegible] बिछाते। ऊंट, खच्चर, तथा घोडे जब जब मंजिल तै[illegible] के आते हैं तो थकान मिटाने के लिये धूल भरी ज[illegible] खूब लोटते-पोटते है, जिससे वे पृथ्वी से नयी शक्ति प्रा[illegible] करते हैं। इसी प्रकार शेर, भालू, तथा गधा आदि जान[illegible]वर भी पृथ्वी से शक्ति अर्जन करना भलीभाति जानते है।

सूखी और गीली मिट्टी से स्नान और उससे लाभ

शुद्ध साफ मिट्टी को कपडछान कर लीजिये, [illegible] कर कोठली की मिट्टी को, और उससे अंग-प्रत्यंग को रगड़िये। जब सारा बदन मिट्टी से रगडा जा चुके तो १०-२० मिनट तक धूप में बैठ जाइये। तत्पश्चात् ठं[illegible] पानी से स्नान कर डालिये। यही सूखी मिट्टी का स्नान है। इस स्नान से त्वचा नरम, लचीली एव कोमल तो [illegible] ही जाती हैं, साथ ही साथ त्वचा के छिद्रो के खु[illegible] जाने से शरीर का विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में भरपूर बहिर्गत होने लगता है और त्वचा के छिद्र भ[illegible] पूर सास लेने के काबिल हो जाते है जिससे त्वचा [illegible] अनगिनत रोग दूर हो जाते है। बरसाती फोडे-फुन्सि[illegible] इस स्नान से मन्त्रवत दूर हो जाती हैं।

आयुर्विज्ञान मे इस स्नान को रज स्नान कहते हैं और इसे गौओ के खुरो से उड़ती हुई मिट्टी से करने की व्यवस्था है। अखाडे की मिट्टी मे बार-बार गिर शरीर को मिट्टीसे घिसना, व्यायाम द्वारा पसीना निकाल और रोम कूपों को खोल कर मिट्टी से निकली हुई एक प्रकार की गैस को कूपो द्वारा शरीर के अन्दर खीचकर मास, अस्थि, [illegible] त्वचा को सुगठित करना भी रज स्नान कहलाता है।

घना और पक्का रङ्ग, पुष्टता, सुगठित शरीर, [illegible] प्राकृतिक सौन्दर्य रज स्नान से प्राप्त होते है। इस [illegible] स्नान से सन्तान न होने वालो को सन्तानोत्पत्ति [illegible] सम्भव है। श्रीमद्भागवत पुराण मे एक कथा आती है कि श्री कश्यप जी को जब सन्तान की कामना हुई [illegible]

तो उन्होने बारह दिन तक केवल दूध पीकर और मिट्टी से अपना समस्त शरीर मल कर नदी मे स्नान किया था।

शरीर मे मिट्टी मलते समय उन्होने धरती माता की निम्नलिखित वन्दना भी नियमित रूप से की थी जिसके फलस्वरूप उन्हे सन्तान हुई :—

त्वं देव्यादि वराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥

अर्थात्, हे देवि मृत्तिके! प्राणियो को स्थान देने की इच्छा से वराह भगवान ने रसातल से तुम्हारा उद्धार किया था। तुम्हे मेरा नमस्कार है। तुम मेरे पापो को नष्ट कर दो।

महीन पिसी हुई और कपडछान की हुई मिट्टी को जब पानी के साथ घोलकर उसे लेई या कीचड़ सदृश बना लेते हैं, तब इस प्रकार की गीली मिट्टी से किया हुआ स्नान गीली मिट्टी का स्नान कहलाता है। सूखी मिट्टी के स्नान की भाति ही यह गीली मिट्टी का स्नान किया जाता है। फर्क केवल इतना है कि इसमे बालो को मलने के लिये एक खास किस्म की काली मिट्टी काम मे लायी जाती है जिससे बाल मुलायम और चमकीले हो जाते हैं।

यह स्नान बहने वाले फोड़े-फुन्सियो वाले शरीर के लिये अत्यन्त उपयोगी है। त्वचा की गदगी और सफेदी के लिए भी यह स्नान कारामद है।

इस स्नान के बाद जब तक गीली मिट्टी थोडी सूख न जाय, जल से स्नान न करना चाहिए। इस स्नान के भी लाभ अनेक हैं।

यह कीचड़ स्नान भी नया नही है। अमेरिका के आदि निवासियो मे यह स्नान बहुत पहले से प्रचलित है। वहा पर प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति भी महीने मे एक बार कीचड स्नान जरूर करता है। वे लोग इस स्नान को करने के लिए एक छोटी कोठरी मे पत्थर की शय्या बनाते है जिस पर स्नानार्थी कम्बल मे अपना सारा शरीर ढककर बैठ जाता है और कोठरी का एक मात्र दरवाजा बंद कर दिया जाता है। तत्पश्चात् कोठरी के अन्दर पत्थर के [illegible] हुए घास के गरम [illegible] के पानी में डुबोये जाते है। (यह स्टीम बाथ है) जिसके फलस्वरूप कोठरी [illegible] गरम हो जाती है और स्नानार्थी पसीने-पसीने हो जाता है। इसके बाद उसी पसीने की दशा मे दो तगड़े जवान, स्नानार्थी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की एक घटे तक मालिश करते है। और तब स्नानार्थी उस कोठरी से निकलकर किसी निकट के जलाशय पर जाकर गीली मिट्टी से अपने सारे बदन को मलता है और सबके बाद स्वच्छ शीतल जल से स्नान कर डालता है। जिसका फल यह होता है कि चमडा चिकना, कोमल, दृढ और उज्ज्वल हो जाता है, पर्याप्त पसीना निकलता है, और शरीर हल्का, सबल, तथा निरोग बन जाता है। इस प्रकार से नियमित रूप से स्नान करने वाला कभी बीमार नही पड़ता।

फ्रास और अमेरिका की शौकीन महिलाए भी एक प्रकार की कीचड़ मिट्टी, सादा जल-स्नान के पहले, अपने बदन पर नित्य मलती है, जिससे उनकी चमड़ी मुलायम और चमकीली हो जाती है। हमारे देश मे पजाब की स्त्रिया मुलतानी मिट्टी के उबटन का प्रयोग करती हैं, जो गीली मिट्टी के स्नान के सिवा और क्या है।

मिट्टी का नित्य के कामो मे लाभकारी उपयोग—

ऊपर लिखा जा चुका है कि मिट्टी से सब प्रकार की दुर्गन्ध आसानी से दूर हो जाती है इसलिए इससे अच्छे से अच्छा साबुन का काम लिया जा सकता है।

बालू मिली हुई मिट्टी से दात खूब साफ होता है। इसलिए मिट्टी सबसे बढ़िया दन्त-मञ्जन है।

मिट्टी के घर बनिस्बत पक्के घरो के अधिक स्वास्थ्य-वर्द्धक होते हैं और सस्ते भी। मिट्टी के घर गर्मियो मे ठडे और सर्दियो मे गर्म रहते हैं। परन्तु पक्के मकान गर्मियो मे तपते है और बिना पखो के उनमे रहना असम्भव है। इसी तरह सर्दियो मे बिना अगीठी जलाए पक्के मकानो मे रहना मुश्किल होता है।

सफाई के लिए मिट्टी से घरो को पोतना हमारी पुरानी प्रथा है ही।

यह मानी हुई बात है कि मिट्टी के बर्तनो मे किसी प्रकार का भी भोजन खराब नहीं होता जबकि धातु के बने बर्तनो मे हर एक [illegible] भी भोजन रखना या पकाना [illegible] खाली नहीं। ऐसी दशा में यदि कहा जाय कि

हमारे घरों मे मिट्टी के वर्तनो का ही चलन स्वास्थ्य की दृष्टि से अति उत्तम है तो इसे साधारण से साधारण बुद्धि भी मान लेने को तय्यार हो जायगी। इतना ही नहीं, मिट्टी की हाडियो मे पकाया हुआ भोजन जितना स्वादिष्ट और मीठा होता है, धातु के वर्तनो मे पकाया हुआ भोजन, उसका दशाश भी स्वादिष्ट नही होता। साथ ही साथ हाडी मे पकाया हुआ भोजन लाभदायक भी अधिक होता है।

मृत्तिका—चिकित्सा

वैसे जल से भीगी कपड़े की पट्टी और गीली मिट्टी की पट्टी—दोनो का प्रभाव रोग-निवृत्ति के लिये समान होता है, परन्तु अनुभव से जाना गया है कि चिकित्सा-काल मे जब किसी समय आर्द्र वस्त्र-पट्टी द्वारा पूरा-पूरा लाभ नही होता है, उस वक्त गीली मिट्टी की पट्टी अधिक उपकारी सिद्ध होती है। कारण, शरीर में रोग जनित बढी हुई गर्मी और विषको खीचकर अपने मे जज्ब कर लेने की असाधारण शक्ति और अद्भुत क्षमता मिट्टी मे सर्वाधिक होती है। यही वजह है जो मिट्टी के विभिन्न प्रकार के प्रयोगो द्वारा शरीर के लगभग सभी रोगों को अच्छा करना सम्भव ही नही, अति सरल भी है।

मिट्टी एक ऐसी घरेलू दवाई है जो सर्वत्र सुलभ है, या सुरक्षित रखकर सुलभ की जा सकती है, और जिसके सडने, बिगड़ने, या खराव होने का सवाल ही नही उठ सकता। रोग निवारणार्थ इसके प्रयोग मे कोई खटराग भी नही होता। मिट्टी को पानी में साना और रोग की जगह या पेडू पर ढंग से रख दिया, बस। सिर्फ इतना ही करने से सदा ही और हर हालत मे वह अच्छा और आश्चर्यजनक प्रभाव दिखावेगी। अर्थात् रोग को अच्छा कर देगी। मिट्टी के प्रयोग से तो हानि कभी होती ही नही, पर लाभ सोलह आने होता है, जबकि अन्य दवाओ से हानि और लाभ—दोनो की सभावनाएं बराबर बनी रहती है।

शरीर की बहुत सी पीड़ायें तो मिट्टी के प्रयोग के कुछ ही क्षणो बाद 'छूमन्तर' हो जाती है जिसे देखकर ताज्जुब होता है। कठिन रोग भी धैर्य धारणकर मिट्टी के प्रयोग करने से निश्चय ही चले जाते है। रोगोपचार मे ससार की सभी दामी दवाइया वे पैसे की मिट्टी की बराबरी हरगिज नही कर सकती।

चाहे रोग शरीर के भीतर हो या बाहर या कहीं भी मिट्टी उसके विष और गर्मी को धीरे धीरे चूसकर उसे जड-मूल से नष्ट करके ही दम लेगी, यह मिट्टी की खासियत है।

रोगो मे मिट्टी का सफल प्रयोग आज का आविष्कार नही है जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, अपितु भारत मे यह प्रयोग अति प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। कितने ही वैद्य और जर्राह आज भी बडे-से बडे घाव को जिसे आधुनिक डाक्टर असाध्य बताकर छोड देते हैं, गीली मिट्टी के प्रयोग से ही अच्छा कर देते हैं।

रोगों में मिट्टी के प्रयोग

रोग होने पर, आवश्यकतानुसार मिट्टी के निम्नलिखित छः प्रयोग उपचार रूप से किये जाते है—

(१) मिट्टी की गरम पट्टी।
(२) मिट्टी की ठडी पट्टी।
(३) गरम मिट्टी की पट्टी।
(४) रज—स्नान।
(५) पङ्क—स्नान।
(६) बालू भक्षण।

(१) मिट्टी की गरम पट्टी और उसकी प्रयोग—विधि

मिट्टी की पट्टिया बनाने के लिये जिस प्रदेश मे जहां जैसी मिट्टी मिले वैसी ही काम मे लायी जा सकती है, पर शर्त यह है कि वह शुद्ध, साफ, और कंकड़-पत्थर से हीन हो। बलुही मिट्टी इस काम के लिये अच्छी समझी जाती है, और नदी के कछार की ताजी मिट्टी बहुत ही अच्छी। पट्टी के लिये आधी चिकनी मिट्टी का सफूफ (चूर्ण) और आधा महीन समुद्री बालू का मिश्रण सर्वोत्तम समझा जाता है। कच्ची ईंट को पानी में घुलाकर उसकी गीली मिट्टी से भी पट्टिया बनायी जा सकती है। खेत की मिट्टी लेनी हो तो एक फुट नीचे की मिट्टी लें और ध्यान रखें कि उसमे खाद आदि सड़ी गली चीजे बिलकुल न मिली हो। घावो पर पट्टी के लिये विशेष रूप से और अन्य स्थानो के लिये सामान्य रूप से चूल्हे की जली मिट्टी सर्वोत्कृष्ट होती है। कारण अग्नि के प्रभाव से उसमें जो कुछ दोष होते है वे नष्ट हुये

र वह सम्यकरूप से विशुद्ध होती है । यदि उपचार ये मिट्टी को कही से लाकर जमा करके कुछ दिनों ये रख छोड़ना हो तो धूप मे खूब सुखाकर तब काम ना चाहिये, वरन् एक वार की लायी हुई मिट्टी सात से अधिक पुरानी बिना धूप मे सुखाये अच्छा प्रभाव कर सकती । कुछ प्राकृतिक चिकित्सक पीली और रग की मिट्टी को अन्य किस्मो और रंगो की मिट्टी रजीह देते है ।

शुद्ध सूखी मिट्टी को कूट पीस कर कपडे या चलनी न ले । फिर किसी लकड़ी के टुकडे या छोटे चम्मच नाते हुये उसे ठंडा पानी डाल डाल कर गीला करे ी मिट्टी मे हाथ लगाना या मिट्टी मे बरफ नी डाल कर उसे गीला करना ठीक नही ।] गीली ी न बहुत कड़ी हो और न बहुत पतली ही बल्कि के लिये गुन्धे आटे से थोड़ी ढीली हो । गीली मिट्टी को चम्मच से ही एक मोटे कपडे रीक टाट के टुकडे [मिट्टी की पट्टी लगाने की जगह ाप से थोड़ा बड़ा] पर दो अगुल या आध इन्च की ई मे फैलावे । [इससे अधिक मोटी मिट्टी की तह ाने से भी कोई हानि न होगी] तत्पश्चात उसको ी की ओर से मय कपड़े के जिस पर मिट्टी फैलाई है कोई ऊनी कपड़ा रखकर किसी अन्य कपड़े से ो इस प्रकार वाध देना, अटका देना, सी देना या पिन से टाक देना चाहिये कि मिट्टी की पट्टी अपने र पर टिकी रहे और खिसके नही। पेड पर मिट्टी की ी देने के बाद उस पर फलालैन या ऊनी कपड़ा रख उन सबको किसी प गोछे या अन्य लम्बे वडे कपड़े काटे से ऊतर के चारो तरफ से वाध देना चाहिये । ा बाद रोगी को आराम से लेटने देना चाहिये । १० से मिनट या इससे भी अधिक देर तक और कभी कभी र भी जैसी आवश्यकता हो यह पट्टी लगाई जा ी है । समय हो जाने पर या उस स्थान की त्वचा में ी मालूम होने पर पट्टी को अलग कर उस जगह ीगे कपड़े से पोछ देना चाहिये और उसके बाद उस [illegible] दो तीन मिनट तक सूखी मालिश कर देनी [illegible] ताकि [illegible] थोड़ी गर्माहट आ जाय । [illegible] रोगो [illegible] भी गरम पट्टी देना [illegible] है । कारण, मिट्टी

की पट्टी को फलालैन या ऊनी कपडे से ढंक देने से वह शरीर की भीतरी गर्मी से गरम हो जाता है और उसके जल का अ श भाप बनकर कपड़े के सूराखो द्वारा धीरे धीरे उड जाता है । इस पट्टी का असर सर्द नही अपितु गर्म होता है। इससे शरीर के भीतर अगो की गीली सेक होती है ।

अन्य जगहो पर तो नही परन्तु पेडू पर भोजन करने के दो घटे बाद ही इस पट्टी को बाधना चाहिये । और प्रयोग के एक दो घंटे बाद खाना चाहिये। कभी-कभी ऐसा होता है कि मिट्टी की पट्टी लगाने के बाद उस स्थान पर सूजन आ जाती है और खुजली आदि रोग कुछ बढ़े हुये प्रतीत होते है, जिनका कारण है कि मिट्टी शरीर की भीतरी खराबियो को बाहर सतह पर खीच लाती है । जिससे सूजन या खुजली पैदा हो जाती है । अत. इन उपद्रवो से घबड़ाना नही चाहिये और प्रयोग जारी रखना चाहिये । विशेष कष्ट होने पर उस स्थान पर थोडा भाप स्नान देकर तब मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए ।

जो मिट्टी एक बार प्रयोग में आ चुकी हो उसे दोबारा काम मे भूल से ही नही लाना चाहिए । क्योकि उसमे रोग के जहरीले पदार्थ व्याप्त हो जाते है । यदि पट्टी वाले कपड़े पर पीब आदि न लगा हो तो उसे साफ करके और सुखाकर फिर-फिर काम मे लाया जा सकता है ।

यह पट्टी सभी प्रकार के खतरनाक और बेखतरनाक तथा पुराने और नए रोगो मे बडी ही उपयोगी सिद्ध होती है । विशेषकर पुराने कोष्ठबद्धता, अपच, दस्त, तथा अन्य पेट के रोगो मे और ज्वरादि मे भी यह पट्टी जादू का असर दिखाती है । रोग के कारण शरीर की बढी हुई अनावश्यक उष्णता को दूर करने के लिए मिट्टी की यह पट्टी जल-स्नानो की अपेक्षा अधिक उपकारी सिद्ध होती है । कारण, मिट्टी की गीली पट्टी मे उष्णता के दो-दो शत्रु—मिट्टी और पानी मौजूद होते है, जबकि जल स्नानो मे केवल जल की ही [illegible] रहती है । मिट्टी की यह पट्टी [illegible] और दर्द दोनो को एक साथ शीघ्र दूर करने मे [illegible] नही रखती ।

पुरानी बीमारियो मे [illegible] दिन मे दो बार इस पट्टी को देना चाहिए । [illegible] बीमारियो मे पट्टी के

बाद उदर स्नान भी लेना अच्छा है, पर यदि एनिमा और उदर स्नान, पट्टी के बाद दोनों लेना हो तो एनिमा के करीब आध घंटा बाद उदर-स्नान लेना उचित है।

अधिकतर रोग पेट की खराबी से ही होते है, इसलिए तकलीफ के स्थान पर मिट्टी की पट्टी देने के साथ-साथ दिन मे दो बार यदि आध-आध घंटे के लिए पेडू पर भी पट्टी लगायी जाय तो पेट साफ होकर रोग जल्द दूर हो जाय। बहुत से रोग तो केवल पेडू पर मिट्टी की पट्टी देने से ही मिट जाते है। रोगावस्था मे मिट्टी की पट्टियो के प्रयोग के साथ-साथ यदि उपवास का भी सहारा लिया जाय, या फल-रस, फल, अथवा फल और दूध पर रहा जाय तो क्या कहना ? यदि उपवास का सहारा लिया जाय तो उपवास-काल में एनिमा लेना नहीं भूलना चाहिए।

जब किसी रोग का ठीक-ठीक पता न चलता हो अथवा रोगी की हालत ऐसी हो कि वह अपनी तकलीफो को बता न सकता हो तो आंख मूंदकर सुबह-शाम उसके पेडू पर आध-आध घंटे के लिए मिट्टी की गरम पट्टी बाधिए, और आवश्कयता पड़ने पर तीसरी बार भी। साथ मे हर पट्टी के बाद, या एक ही पट्टी के बाद एनिमा दीजिये, रोग निश्चय ही काबू मे आजायगा और आश्चर्य नही कि इसी चिकित्सा से रोगी का रोग जड़ मूल से ही चला जाय। उसकी वजह यह है कि शरीर पर मिट्टी के प्रयोग का प्रभाव ही ऐसा पड़ता है कि मिट्टी की पट्टियो से रोग उखड़ जाता है और उखडकर एकदम चला ही जाता है। क्योंकि मिट्टी की पट्टी जब किसी रोगग्रस्त स्थान पर लगाई जाती है तो सर्व प्रथम वह उस रोग के कारण स्वरूप शरीर स्थित सञ्चित मल को उखाडती है, फिर उसे घुलाती है, तत्पश्चात् बाहर की तरफ खीचकर निकाल फेकती है। साथ ही उस आक्रान्त स्थान की सूजन, जलन और दर्द को भी मिटाती है, और सबके अन्त मे शरीर के भीतर आवश्यक ठडक और शान्ति पहुँचाकर रोग का नामोनिशान तक मिटा देती है।

शरीर के किसी भी अङ्ग के रोगी होने पर उस स्थान पर मिट्टी की पट्टी लाभ के साथ लगाई जा सकती है। जैसे, गले की खराबी मे गले पर, छाती के रोगो मे छाती पर, स्नायुविक रोगो मे पीठ की [illegible] जोडो के दर्द मे जोडो पर, आख के रोगो म [illegible] चारो किनारो पर, जननेन्द्रिय रोगो मे जननेन्द्रिय पर, सारे शरीर मे विष व्याप्त हो जाने पर सारे [illegible] मिट्टी का लेप चढाया जाना चाहिए।

(२) मिट्टी की ठंडी पट्टी

जब मिट्टी की पट्टी को रोगाक्रान्त स्था[illegible] रखने के बाद उसको गर्म करने के हेतु उसके [illegible] फलालैन या ऊनी कपड़ा फैलाकर नही बाधते [illegible] खुला ही रखते है तो उसे मिट्टी की ठडी पट्टी [illegible] हैं। क्योंकि तब वह ठडी पट्टी का काम करती [illegible] बिच्छू, भिड़, तथा साप आदि के काटने पर इसी का प्रयोग किया जाता है।

(३) गरम मिट्टी की पट्टी

जब मिट्टी को गीली करने के बाद उसे गरम [illegible] कर गर्म-गर्म घावो पर चढाते है तो वह गरम मि[illegible] पट्टी कहलाती है। बेत जैसी वस्तुओ के घावों [illegible] मोचादि मे इसी पट्टी का व्यवहार होता है। [illegible] गर्भाशय सम्बन्धी अनेक रोगों मे पेडू पर गरम [illegible] की पट्टी से बड़ा लाभ होता है। परन्तु गर्भ स्थिर [illegible] आशका के समय गरम पट्टी का इस्तेमाल कभी [illegible] करना चाहिये।

मिट्टी की गरम पट्टी की भाति इस गरम [illegible] की पट्टी को लगाने के बाद ऊपर से फलालैन [illegible] कपडा बाधना जरूरी है।

(४) रज—स्नान

इसके बारे मे ऊपर 'पृथ्वी तत्व' प्रकरण में [illegible] से लिखा जा चुका है। इस स्नान से त्वचा को [illegible] बड़ा लाभ होता है।

(५) पङ्क—स्नान

जैसाकि 'पृथ्वीतत्व'-प्रकरण मे लिखा जा [illegible] शुद्ध, साफ और कंकड-पत्थर विहीन पिसी मिट्[illegible] ठडे जल को एक रस करने पर जो टीली-[illegible] तय्यार होती है, उसी को आवश्यकतानुसार [illegible] मे या उसके किसी भाग विशेष पर लेप [illegible] करना पङ्क-स्नान कहलाता है। इसे ही अंग्रेजी मे [illegible]

Bath कहा जाता है जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा [illegible] एo जुस्ट तथा डाक्टर फेल्के ने की है । किसी [illegible] या अन्य जलाशय के किनारे की साफ कीचड़ जो [illegible] घट जाने पर दृष्टिगोचर होती है, पङ्क स्नान के अधिक उपयोगी होती है । ऐसी कीचड मे यदि बालू [illegible] ली हो तो और भी अच्छा रहता है । बालूदार चिकनी [illegible] ी या दो फसली मिट्टी का पङ्क भी इस स्नान के बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है । पङ्क मे रोग की गर्मी [illegible] न्त करके उसे मिटाने की अद्भुत शक्ति हो- । क्योकि मिट्टी में स्थित रेडियमतत्व जब जल [illegible] लता है तो उसकी रोगनाशक शक्ति बढ जाती है । पङ्क-स्नान के लिये पङ्क का सारे शरीर पर लेप [illegible] धूप मे वैठ जाना चाहिये । जब एक लेप सूख जावे [illegible] सरा लेप चढा लेना चाहिये । ऐसा १५ से ६० [illegible] तक करते रहना चाहिये । तत्पश्चात मिट्टी के [illegible] र पर सूख जाने पर ठडे पानी से मल-मल कर स्नान [illegible] लेना चाहिये । खाज, खुजली, कोढ, दाग सभी चर्म तथा खून की खरावी के रोगों मे इस स्नान से वड़ा [illegible] होता है ।

पङ्क-स्नान लेने का एक दूसरा भी तरीका है । कद-[illegible] म वरावर या केवल छाती तक गहरा एक गड्ढा खोदा [illegible] है और उसको कीचड़ से भर दिया जाया है । [illegible] श्चात् रोगी को नंगा करके उसमे धसाकर खड़ा कर [illegible] जाता है । मजबूत रोगियो को आधा से एक घंटा तथा कमजोर रोगियो को ५ से १५ मिनट तक उस गढ़े मे रखा जाता है । एक मास तक ऐसा स्नान लेने से गठिया,, चर्मरोग, कमर दर्द, सिरदर्द, पेटदर्द, [illegible] न, [illegible], तथा नस नाडियो के दर्द निश्चय ही दूर हो जाते है । विषैले सर्प का विष इसी प्रकार के अङ्ग स्नान [illegible] दूर किया जाता है ।

बालू भक्षण

इसके बारे मे भी पृथ्वी तत्व प्रकरण मे लिखा जा चुका है

खाद्य-चिकित्सा

खाद्य-तत्व

[illegible]

[illegible] ने परीक्षण किया, जिसके फलस्वरूप उन लोगो को उस मिट्टी के ढेले मे निम्नलिखित मूल तत्वो का पता लगा.—

१. ओषजन (Oxygen), २ कर्वन, ३ उद्जन (Hydrogen), ४. नोषजन (Nitrogen) ५. खटिकम्, ६. स्फुर, ७ लोहम्, ८. नैलिन, ९ मागनीज १०. शैलम, ११. पाशुजन, १२. सेधकम्, १३ प्लवित्, १४. गंधक, १५. मगनीसम, १६ हरिन्, १७ ताम्रम्, १८. जस्ता, १९. अल्युमीनियम, २०. निकेल, २१. संखिया, २२. ब्रोमाइड, २३. लिथियम, २४. कोबाल्ट—

खाद्य के मूल तत्व

जो कुछ हम खाते-पीते, अथवा आहार के रूप मे ग्रहण करते है, वे सभी वस्तुएं मूलतः हमे पृथ्वी से ही प्राप्त होती हैं । उसी से उपजती है । अत. पृथ्वी से उपजने वाले लगभग सभी खाद्य-पदार्थो का जब वैज्ञानिको ने विश्लेषण किया तो पृथ्वी के उपर्युक्त मूलतत्व ही उनमे भी पाये गये । अर्थात् —

१. प्रत्यामिन-ओषजन + उद्जन + नोषजन + कर्वन से बनता है ।
२. कार्बोज-कर्वन + ओषजन + उद्जन के मेल से बनता है ।
३. स्फोक-कर्वन + ओपजन + उद्जन के मेल से बनता है ।
४. वसा-ओपजन + उद्जन + कर्वन के मेल से बनता है ।
५ जल-ओषजन + उद्जन + कर्वन, नोषजन के मेल से इसकी उत्पत्ति होती है ।
६. खाद्योज-ओपजन + उद्जन + कर्वन + नोपजन के मेल से इनकी उत्पत्ति होती है ।
७ खनिज लवण-इनमे उपरोक्त मूल तत्वो मे से खटिक से कोबाल्ट पर्यन्त सभी तत्व आते हैं ।

खाद्य विनिर्मित हमारे शरीर के मूल तत्व

मिट्टी और खाद्यपदार्थों की भांति ही जब वैज्ञानिको ने एक जीवित मनुष्य के पार्थिव शरीर का परीक्षण किया तो [illegible] ही मूलतत्व उनमे भी पाये गये जो सामान्यत मिट्टी और उसमे उत्पन्न खाद्यपदार्थो मे पाये जाते है । अर्थात् —

१ ओषजन, [illegible] १००० [illegible] बनाई जा सकती है ।

२. कर्बन, इतना कि उससे ९००० पेंसिलें तय्यार हो जायें।

३. उद्जन, इतनी कि उसे गुब्बारे मे भरकर अल्प्स पर्वत की सबसे ऊंची चोटी के ऊपर से उड़ा जा सकता है।

४ नोषजन—७ पौंड।

ओषजन और उदजन के मेल से जो जल बनकर एकत्र रहता है वह इतना होता है कि १० गेलन का पीपा भर जाय।

ओषजन, उदजन और कर्बन के मेल से जो चर्बी (वसा) बनती है, वह इतनी होती है कि साबुन की ७ बट्टियां तैयार हो सकती है।

५. खटिकम्—इतना कि उससे चिड़ियों केबच्चो के एक दर्बे की सफेदी होजाय।

६. स्फुर—इतना कि दियासलाई की २२०० तीलियो पर मसाला लगाया जा सकता है।

७. लोहम—इतना कि मझोले आकार की एक कील बनाई जा सके।

८. नैलिन—थोड़ी मात्रा में।

९. मागनीज— ,, ,,

१०. शैलम्— ,, ,,

११. पांशुजन ,, ,,

१२. सैंधकम्— ,, ,,

१३. प्लविन्— ,, ,,

१४. गंधक—इतना कि एक कुत्ते को किलनियों से मुक्त किया जा सकता है।

१५. मगनीसम,—इतना कि एक परिवार के लिए एक वक्त के भोजन के लिए नमक का काम दे सके।

१६. हरिन—थोड़ी मात्रा में।

१७. ताम्रम—थोड़ी मात्रा मे।

१८. जस्ता ,, ,,

१९. अल्युमीनियम ,, ,,

२०. निकेल ,, ,,

२१. संखिया ,, ,,

२२. ब्रोमाइड ,, ,,

२३. लिथियम् ,, ,,

२४. कोबाल्ट ,, ,,

उपर्युक्त तत्व विश्लेषणों को देखने से आसानी से पता चल जाता है कि हमारा शरीर, भोजन, एवं पृथ्वी जिससे हमारे खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते है—तीनों एक ही प्रकार के २४ रासायनिक तत्वों से बने हुए है और यह भी कि ये चौबीसों तत्व मूल अर्थात्:—

१. प्रत्यामिन
२. कार्बोज
३. वसा
४. स्फोक
५ जल
६. खनिज लवण
७ खाद्योज

जिनसे हमारा शरीर बना है और जो हमारे खाद्य मे भी विद्यमान होते है, जिन पर हम पलते हैं। ये तत्व प्रायः सभी खाद्यपदार्थों मे पाये जाते हैं—किसी में कोई कम और किसी मे कोई अधिक रहता है। इन मूलतत्वो को, अपनी अज्ञानता या असावधानी से, हम खाद्यपदार्थों के माध्यम से शरीर की आवश्यकतानुसार, उसको दे नही पाते तो हम बीमार पड़ जाते हैं। दूसरे शब्दो मे उपर्युक्त सात मूलतत्वों पर आधारित हमारा शरीर, जब उनमे से एक या कई तत्वों की मात्रा मे अभाव या कमीवेशी अनुभव करने लगता है तो शरीर की उस अवस्था को हम रोगावस्था कहते हैं। अतः शरीर मे इन सात तत्वों की सतुलित उपस्थिति का नाम 'आरोग्य' एव कमी-वेशी या अभाव का नाम 'रोग' है।

हम सतुलित आहार द्वारा इन तत्वो को उचित मात्रा मे ग्रहण करने की कला नही जानते, यही वजह है कि हम आये दिन बीमार पड़ते रहते है और अन्त में एड़ियां रगड़ते हुए अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं। प्रायः इसी कारण से ससार मे एक भी ऐसे व्यक्ति को खोज निकालना असम्भव हो गया है जो शत प्रतिशत एवं पूर्ण स्वस्थ हो। अतः यदि हम कहे कि "मनुष्य मरता नहीं बल्कि अपने को जहर देकर मार डालता है" तो गलत न होगा, क्योंकि जिस खाद्य की जरूरत नहीं उनको शरीर में, तथा जिनकी उसको कम आवश्यकता है उन्हें

अत्यधिक उसमे भरना, शरीर को विष देकर उसका अंत कर देना नही तो क्या है ?

दिन भर शारीरिक और मानसिक परिश्रम करते रहने के कारण स्वभावतः हमारे शरीर के तत्वो का, जिनपर वह स्थित है ह्रास होता रहता है, जिनकी पूर्ति होकर यदि शरीर पोषण न होता रहे तो हमारा शरीर बहुत दिनो तक हरगिज टिका नही रह सकता । अतः शरीर की यह क्षति पूर्ति प्रतिदिन आहार निद्रा, तथा विश्राम द्वारा हुआ करती हे, जिससे हम दीर्घायु और निरोग होते है । इस सम्बन्ध मे यह बात भी याद रखने कीहै कि शरीर पोषण के लिये जितने आहार, जितने विश्राम और जितनी निद्रा की आवश्यकता होती है, उसमे अधिकता या अति होने से भी शरीर के रोगी हो जाने का भय रहता है । उदाहरण स्वरूप हम अधिक खाकर रोगी तो क्या मर तक सकते है । इसी प्रकार हमारे प्रतिदिन के भोजन में किसी खाद्य तत्व की कमीव बेशी हो जाने से हमारा रोगी होना सम्भव है। जैसे कार्बोज वाले खाद्य पदार्थ अधिकखातेरहने से बहुमूत्र रोग हो सकता है । भोजन मे खाद्योजो की कमी होने से नाड़ी—विकार, रक्त-विकार, तथा त्वचा के रोग आ घेरते है । अतः यदि हम चाहते है कि हमे रोग न हो, साथ ही साथ दीर्घजीवी भी हो तो नित्यप्रति संतुलित भोजन करना होगा जिससे हमारे शरीर के प्रतिक्षण व्यय होने वाले तत्वो की क्षति पूर्ति होती रहे ।

अब हम ऊपर दर्शाये गये आहार के सात मूल तत्वो- प्रत्यामिन, कार्बोज, वसा, स्फोक, जल, खनिज लवण एव खाद्योज पर थोड़ा विस्तार से लिखने का प्रयत्न करेंगे ।

१—पुत्तनक या, प्रत्यामिन

इसको अंग्रेजी मे प्रोटीन कहते है, जो एक ग्रीक शब्द से बना है जिसका अर्थ 'मै प्रथम हू' होता है । और वस्तुतः यह एक अत्यन्त आवश्यक तत्व शरीर के लिये है भी । यदि यह न हो तो हमारा शरीर न हो यानी हमारे शरीर का नाम न हो । इस तत्व का मुख्य कार्य शरीर [illegible] और [illegible] का बनाना है । सभी शारी-रिक [illegible] और पुष्टि [illegible] प्रत्यामिन से [illegible] (Flesh former) भी है । [illegible]

होता है और नोपजन शरीर का पोषण करने एवं भीतरी बाहरी शक्ति उत्पन्न करने मे मुख्य है । मज्जातन्तु, स्नायु, मासपिड, पेशी, रसादि धातुए नोषजन ही तो है । अतः यदि आहार द्वारा शरीर मे नोषजन न पहुंचे तो शरीर का सारा व्यापार ही ठप हो जाय और वह समय से पहले ही नष्ट हो जाय । इसके अतिरिक्त यदि शरीर मे नोपजन न हो तो उसमे ओषजन का अभिशोषण बद हो जाय ।

प्रत्यामिन युक्त आहार से शरीर मे नोपजनमय स्वस्थ त्वचा का निर्माण होता है उनका पुनरुज्जीवन होता है, तथा शरीर के भीतर नोपजनमय एक द्रव पदार्थ की उत्पत्ति होती है, जिसके ऊपर हमारे शरीर का सारा कार्य निर्भर करता है । उस द्रव पदार्थ की ही एक प्रकार की चर्बी बनकर शरीर मे सचित होती रहती है, जिसका व्यय शरीर द्वारा शक्ति प्रयोग के समय होता है

प्रत्यामिन तत्व—ओषजन, उदजन, नोषजन, कर्बन, गधक, तथा स्फुर के सयोग से बनता है, और प्राणीजन्य इसकी दो मुख्य किस्मे होती ह । प्राणिज प्रत्यामिन मे अलब्यूमन केविन, सिटोमिन, मायोसिन, ग्लोब्यूमिन, केसीन आदि आमिष जातीय द्रव्य होते है, तथा वनस्पति वर्गीय प्रत्यामिन मे ग्लूटेन, लेग्युमिन, और जिलेटिन भी होते है। दाल मे लेग्युमिन, मैदा मे ग्लूटेन, जौ के आटा मे केविन रहता है । मास का प्रत्यामिन जिसको मासज कहते हैं, दूध के प्रत्यामिन जिसको दुग्धज कहते है, से भिन्न होता है । गाय तथा भैंस के दूध के प्रत्यामिनो तक मे भिन्नता होती है । गेहूँ के प्रत्यामिन जिसको गोधूमज कहते है, और दानो के प्रत्यामिन जिन को चणकज कहते है एक नहीं होते । और इसी तरह अण्डा मे पाया जाने वाला प्रत्यामिन जिसको डिम्बज कहते है, पनीर मे पाये जाने वाले प्रत्यामिन जिसको [illegible] कहते है, से सर्वथा भिन्न होता है । मगर यह भिन्नता होते हुए भी इन सबमे नोषजन है [illegible] और [illegible] उदजन और ओषजन होता है ।

प्रत्यामिन हमारे शरीर के [illegible] तन्तुओं का मूलाधार है । [illegible] शरीर को [illegible] और शक्ति [illegible], पर प्रत्यामिन जो

खुद शरीर का ही निर्माण करता है। इसलिये यह तत्व, अन्य तत्वो से अग्रगण्य होना ही चाहिये ।

बच्चो की बाढ़ एव गर्भवती स्त्रियो के लिए प्रत्यामिन वाले खाद्य पदार्थों की अधिक आवश्यकता होती है । यों तो इस काल मे और भी बहुत से तत्वो की आवश्यकता होती है पर सबसे अधिक आवश्यकता प्रत्यामिन की ही होती है । क्योकि प्रत्यामिन शरीर निर्माण करने वाला तत्व है और गर्भ नये शरीर के निर्माण की ही प्रक्रिया है। छोटे बच्चो के लिए भी उनकी बाढ़ के लिए प्रत्यमिन की आवश्यकता स्वाभाविक है ।

बहुत से मोटे और भद्दे व्यक्तियो मे प्रत्यामिन की बहुत कमी होती है इसलिए यह आवश्यक है कि वे वसा बढाने वाले खाद्य पदार्थो मे कमी करके प्रत्यामिन वाले पदार्थो का अधिक सेवन करें । इसी प्रकार दुबले पतले और कम वजन वाले व्यक्ति भी प्रत्यामिन युक्त आहार का अधिक सेवन कर मोटे और वजनदार हो सकते हैं ।

प्रत्यामिनकी कमीसे शरीर दुबला हो जाता है। शक्ति क्षीण हो जाती है । बच्चो की बाढ रुक जाती है । तथा शरीर मे यदि कोई घाव आदि हुआ तो भरने मे देर लगती है ।

जिस प्रकार प्रत्यामिन की कमी से शरीर को हानि होती है, उसी प्रकार इस तत्व के अधिक सेवन से भी शरीर को क्षति पहुंचती है। उदाहरणार्थ इसकी अधिकता से यकृत और गुर्दे कमजोर हो जाते है और आयु कम हो जाती है।

एक बड़े डाक्टर का कहना है कि कम मात्रा मे प्रत्यामिन युक्त आहार सेवन करने वाले की सहन शक्ति अधिक बलवती होती है। वह लिखता है कि उसने किसी ऐसे अधिक मास खाने वाले को नही सुना कि वह किसी प्रकार की लम्बी दौड़ मे कामयाब हुआ हो ।

अमेरिकन विद्वान चिटेनडेन के कथनानुसार आज का मानव प्रत्यामिनयुक्त आहार का सेवन आवश्यकता से अधिक करता है जबकि उससे बहुत कम मात्रा द्वारा शरीर को स्वस्थ एव आरोग्य रखा जा सकता है । मास एक ऐसा ही प्रत्यामिन प्रधान खाद्य है जिसको आजकल के लोग जान छोड कर खाते है ।

प्रत्यामिन का पाचन मुख्यतया पेट मे होता है और उसकी मात्रा १ जवान के लिए प्रति दिन आधपाव काफी है।

यह द्विदल अन्नों जैसे चना, मटर, मूंग, अरहर, [illegible] सोयाबीन आदि तथा मास मछली अण्डा मे अधिक [illegible] अन्य खाद्य पदार्थों जैसे शाक सब्जी फल मेवा दूध [illegible] चीजें तथा गेहूं चावल आदि में कम होता है।

२—कार्बोज

इस तत्व को विनअजन, कार्बोदेत और कार्बोहाइड्रे[illegible] भी कहते है। यह कर्बन, ओषजन तथा उदजन के योग [illegible] बनता है। इसकी दो किस्मे हैं शर्करा प्रधान और स्वेत[illegible] (starch)प्रधान । ये दोनो प्रकार के कार्बोज देखने में [illegible] भिन्न होते हैं पर शरीर के लिए दोनो का कार्य एक ही है अर्थात् शरीर को ताप एव शक्ति की उपलब्धि तथा शरीर[illegible] चर्बी का निर्माण। कार्बोज मे जो उदजन और क[illegible] होता है वह शरीर मे जठराग्नि से जलकर गर्मी पै[illegible] करता है जिससे शरीर मे कार्य करने की शक्ति उत्पन्न होती है । इस दहन कार्य मे जो शरीर के भीतर कार्बोनि[illegible] एसिड गैस पैदा होती हैं वही सास द्वारा अनवरत बाहर निकलती रहती है।

कार्बोज वाले पदार्थो से वसा वाले पदार्थों की अपे[illegible] चर्बी कम बनती है और इसका ओषजन के साथ मे[illegible] होने के कारण यह अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा शीघ्र पचता है इससे पाचन संस्थान की त्वचा को अधिक श[illegible] प्राप्त होती है अतएव कार्बोज वाले पदार्थों से शरीर पु[illegible] तो नही होता हा उसे कार्य शक्ति और ताप की प्राप्ति जरूर होती है ।

चीनी, गुड, मधु, मिश्री आदि मीठी चीजे शर्करा प्रधान कार्बोज कहलाती है। इनसे चर्बी भी बनती है। जो इन पदार्थोको अधिक खाते है वे जल्द मोटे होजाते है। शर्करा की उत्पत्ति कर्बन और हाइड्रोजन के मेल मे हो[illegible] है । यह शर्करा कई प्रकार की होती है जैसे गन्ने की शर्करा दुग्ध शर्करा मीठे फलो मे पायी जानेवाली शर्करा तथा मी[illegible] सब्जियो मे पायी जाने वाली शर्करा । मगर शरीर [illegible] जाकर ये सभी प्रकार की शर्कराएँ, रासायनिक क्रि[illegible] से द्राक्षशर्करा (ग्लूकोज) मे परिणित हो जाती हैं।

शर्करा प्रधान खाद्यो के पाचन के लिये शरीर [illegible] यथेष्ट ओषजन का व्यवहार करना पड़ता है, जो ओष[illegible]

[illegible] शरीर के अन्य उपयोगी और आवश्यक कार्यो मे [illegible] लगने मे अड़चन पैदा करता है जिसका परिणाम शरीर [illegible] के लिये स्वभावत. घातक सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त अधिक शर्करा के सेवन करने से शरीर मे अधिक ताप की उत्पत्ति होती है जो साधारणत. शरीर की आवश्यकता से अधिक होती है जो बेकार ही जाती है और शरीर के किसी काम नही आती। शर्करा शरीर के भीतर सञ्चित नही रह सकती, पर यह दूसरी शकल मे अर्थात् चर्बी के रूप मे बदल जाती है, और तब वह शरीर के भीतर बहुत दिनो तक रह सकती है, और जब इस तत्व की शरीर मे कभी कमी होती है, तो इसी सञ्चित चर्बी से शरीर को शक्ति और ताप प्राप्त होती है।

कहना चाहे तो कह सकते हैं कि शर्कराप्रधान खाद्य ही मनुष्य का प्रधान खाद्य है। क्योकि हमारे भोजन मे यह लगभग ६०% होता है। जब इस तत्व की शरीर में कमी हो जाती है तो प्रकृति उपर्युक्त सञ्चित चर्बी से काम चलाती है। और यदि उस सञ्चित चर्बी की भी शरीर मे कमी हुई तो फिर शरीर की मास-पेशियो को निचोड़कर प्रकृति शरीर मे ताप और शक्ति उपलब्ध करने के लिये बाध्य होती है। पर इसका यह अर्थ नही है कि हम केवल शर्करा प्रधान खाद्य का ही सेवन करने लगें। नही ऐसा करना तो अतीव भयानक है। इससे क्लोम ग्रन्थि, यकृत और गुर्दे सब बेकार हो जावेंगे और मनुष्य को महा भयङ्कर रोग मधुमेह सताने लगेगा।

श्वेतसार को सत, गोधूम, मड, और पिष्ठसत्व भी कहते हैं। आलू मे श्वेतसार अधिक होता है। इसके अतिरिक्त गेहूं, चावल, जौ, बाजरा, ज्वार, सिंघाड़ा, अरारोट, आदि अन्नों, मटर की छीमी, बोडा, चुकन्दर, शकरकन्द, सूरन, अरुई, बंडा आदि तरकारियो, नारियल, केला, [illegible], खजूर, ईख, अमरूद, आम, खरबूजा, आदि फलो, तथा छुहारा, मुनक्का, किशमिश आदि सूखे मेवो और दूध मे यह तत्व काफी होता है। ये श्वेतसार प्रधान खाद्य भी शरीर के भीतर जाकर पाचन प्रणाली की [illegible] मे शर्करा का ही रूप धारण कर लेते [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]श्वेतसार प्रधान खाद्य बहुत जरूरी होते है हालाकि इनके पाचन के लिये शरीर को अधिक जीवनी शक्ति व्यय करनी पड़ती है जिसमे ये श्वेतसारीय खाद्य पदार्थ सर्वप्रथम शर्करा के रूप मे परिवर्तित हो जांय ताकि उनका अभिषोशोषण शरीर द्वारा हो सके। क्योकि ये पदार्थ बिना शर्करा के रूप मे बदले, सीधे शरीर मे लगकर लाभ नही कर सकते। यह भी जरूरी है कि इस प्रकार के खाद्यो को खाते समय दातो से खूब चबाया जाय और उनमे मुह का लार मिश्रित किया जाय अन्यथा वे पचेंगे ही नही या देर से पचेंगे। इसीलिये कहा गया है कि श्वेतसारीय खाद्य पदार्थो का पाचन मुंह मे ही होता है, आमाशय मे उसकी परीक्षा होती है, और छोटी आंत मे जाकर उसके अभिशोषण-क्रिया की समाप्ति होती है।

वसा वाले खाद्यपदार्थों की भाति ही श्वेतसार वर्गीय खाद्य पदार्थो मे भी नोषजन नही होता। इन पदार्थो मे ओषजन एक भाग तथा उद्जन दो भाग रहता है, जिनके मेल से प्रकृतित शरीर मे जल की उत्पत्ति होती है। सभी श्वेतसारीय पदार्थ अम्लप्रधान होते है। अत. इनका अधिक इस्तेमाल रक्त के क्षारत्व को कम करके शरीर मे अनेक रोग पैदा कर देता है। बहुत दिनो तक केवल भात रोटी खाकर रहने से शरीर मे रक्त-अम्लता का पैदा हो जाना स्वाभाविक है जिससे शरीर रोगी होकर जल्द नष्ट हो जाता है। इसीलिये भात-रोटी श्वेतसारीय खाद्यो के साथ हरी साग सब्जी—कच्ची व पकी हुई, अधिक परिमाण मे खाना नितान्त आवश्यक है, अन्यथा कोष्ठबद्धता की विशेष सम्भावना रहती है जो सभी रोगो की जड़ है।

एक साधारण आदमी के लिये प्रतिदिन आधसेर कार्बोज वाले खाद्य पदार्थो की जरूरत होती है।

३-वसा या चिकनाई

इन तत्व वाले पदार्थ, कार्बन, उदजन, और ओषजन से मिलकर बनते हैं। इनमे कार्बन ७६ %, उदजन १२ %, तथा ओषजन १० % होता है। यह दो प्रकार का होता है—प्राणीजन्य और वनस्पतिजन्य। दूध, घी, दही, मक्खन पनीर, [illegible] [illegible]

जन नही होता ।

वसा वाले पदार्थो से भी शरीर को ताप और शक्ति की ही उपलब्धि होती है। इनसे ही शरीर सुडौल, चिकना और सुन्दर भी होता है। इन पदार्थों मे जितना ओपजन होता है, उससे कही अधिक ओपजन शर्कराजातीय पदार्थो मे होता है। इसलिये भोजन में दोनो प्रकार के पदार्थो का मेल रहने से वे शरीर मे अधिक उत्ताप और शक्ति का कारण बनते हैं। वसा वाले उस वक्त भी अधिक शक्ति उत्पन्न करते हैं जब उनका सेवन करने वाला नियमितरूप से व्यायाम करे। उस हालत मे ये पदार्थ पचते भी खूब हैं। यह इसलिये होता है कि व्यायाम करने से ओपजन का ग्रहण शरीर मे अधिक होता है, जिससे कार्वोनिक-एसिड गैस अधिक तय्यार होती है जो वसा वाले पदार्थो द्वारा अधिक शक्ति उत्पन्न करने मे कारण बनती है।

वसा वाले पदार्थो से मल कम बनता है, पर शरीर मे चर्बी अधिक बढ जाती है। जो अपना वजन बढ़ाना या मोटा होना चाहे, वह प्रत्यामिन वाले आहार–अर्थात् दालो मांस आदि के साथ इन पदार्थो का व्यवहार करे उनकी आशा अवश्य पूर्ण होगी।

परिश्रमी को वसावाले पदार्थ अवश्य खाने चाहिये। इसी सिद्धान्तानुसार युद्ध में सैनिको को चर्बी वाले खाद्य पदार्थो को अधिक दिये जाने का नियम है।

वसा में पामिटीन, स्टिरीन तथा ओलीन नामक पदार्थ विशेष रूप से पाए जाते है। तैलादि चिकनी वस्तुओ मे ओलीन तत्व अधिक होता है, और चर्बी मे स्टिरीन और पामिटीन अधिक। वनस्पतिजन्य वसा प्राणी जन्य वसा की अपेक्षा जल्दी पच जाती है।

वसा, पानी मे नही घुलती। परन्तु क्लोरोफार्म, ईथर तथा मद्यसार मे घुलजाती है। शरीर मे इसका पाचन पक्वाशय मे आरम्भ होकर छोटी आत मे पूरा होता है।

इस तत्व की कमी या अभाव से शरीर असुन्दर, बेडौल, रूक्ष, कृष, एव निर्बल हो जाता है। साथ ही साथ इसकी अधिकता से भी शरीर मोटा, भद्दा, रोगी तथा वेडौल हुये बिना नही रहता। एक साधारण व्यक्ति के लिये प्रतिदिन चार-छ तोले ऐसा पदार्थ बहुत है।

४-स्फोक

हमारे प्राकृतिक खाद्य पदार्थो—शाक-सब्जी, अन्न तथा फलादि मे काष्ठ निर्मित नसो का एक जाला सा बिछा होता है जिसके आश्रय खाद्योजादि आवश्यक पोषक तत्व उनमें स्थित होते है। उनकी बाह्य रक्षा के निमित्त प्रकृति उनके ऊपर भी एक दूसरा आवरण चढ़ाये रहती है जिसे छिल्का या Skin कहते है। खाद्य पदार्थो की ये नसें अथवा छिल्के अधिकाश मे स्फोक के बने होते हैं या स्वयं स्फोक होते है। इस तरह चावल का स्फोक-भाग उसका कना गेहू का उसका चोकर तथा फल-सब्जी आदि का स्फोक भाग उनका भीतरी खुज्भा एव ऊपरी छिल्का होता है। प्राकृतिक आहार शास्त्र मे यह स्फोक एक अलग तत्व तो माना गया है जिसका महत्व विटामिनो से किसी भी हालत मे कम नही है। स्फोक का दूसरा नाम काष्ठोज है। अग्रेजी मे इस को Cellulose या Roughage कहते है।

यह सत्य है कि स्फोक पेट मे जाकर स्वय नही पचता किन्तु यह भी असत्य नही है कि बिना इस तत्व के हमारा खाया हुआ भोजन उत्तमता के साथ किसी भी तरह पच नही सकता। घोडे आदि जानवर भी जई की भूसी तथा अन्नो के छिल्के पचा नही सकते और उन्हे लीद के साथ निकाल देते है।

हमारी बड़ी आत की बनावट इस प्रकार की है कि उसमें वे पदार्थ जिनका रस निकल गया होता है, जमा हो जावें। अत रसहीन तथा अनावश्यक पदार्थो को निकाल फेकने के लिये ऐसा भोजन जरूरी है जिसमें स्फोक काफी हो। भोजन मे स्फोक की उपस्थिति से वह हल्का हो जाता है, जिससे पेट उसे आसानी से और शीघ्र पचा सकता है। इसकी अधिकता से आतो से मल का बाहर निकालना सरल हो जाता है। यह धारणा कि जब काष्ठोज हमारी पाक प्रणाली मे अपचनशील है तो उसे ग्रहण ही क्यो किया जाय, सर्वथा मिथ्या एवं भ्रम पूर्ण है। वास्तव में हमारे प्रतिदिन के भोजन मे यह काष्ठोज ही वह पदार्थ है जिसके कारण भोजन के आवश्यक तत्व आसानी से पचते है। स्फोकरहित खाद्य पदार्थ पाकस्थली मे जाकर परस्पर चिमट कर चिकनी मिट्टी के लोदे या पिण्ड के समान निश्चेष्ट पड जाते है जिनके बीच पाचन के समय घुसने अथवा उनमे जज्ब होने में पाचक रस (Digestive Tissues), चाहे उनकी मात्रा

…ही अधिक क्यों न हो, असफल सिद्ध होते हैं। इसके विपरीत स्फोकयुक्त खाद्य पदार्थ पाकाशय मे …र फुलफुले और फैले फैले रहते है, जिससे पाचन के समय … रस उनमे पूर्णत जज्ब होकर उन्हे शीघ्रातिशीघ्र …डालते है। भोज्य पदार्थों का स्फोक वाला भाग शुद्ध …नियमित रूप से शौच लाने मे भी अद्वितीय है। …आवश्यक दवाव बड़ी आत मे एकत्र मल के ऊपर …, शरीर के उस भाग वाले अवयवो एवं आतो की …शियो को क्रियाशील कर देता है, जिससे कोष्ठब… कभी होती ही नही। बोझ डालने की यह स्वाभा…क्रिया चिकनी, चुपडी एवं स्फोकहीन खाद्य पदार्थोको …र नही उत्पन्न की जा सकती। ऐसे पदार्थ तो पाकस्थ… जाकर पड़े पडे केवल सड़न ही पैदा करते हैं जो …र मे अनेकानेक रोगो का कारण वनती हैं।

प्राकृतिक चिकित्सक केलाग ने स्फोक को कोष्ठवद्धता …रामवाण औषधि कहा है। उनके पास जव कोई …का रोगी जाता तो वह उससे केवल गेहूँ के चोकर …रोटी खाने को कहते, जिससे उसको आशा से अधिक …भ होता।

उपर्युक्त नियम के आधार पर ही कहा जाता है कि … अन्न तथा कची साग-सब्जी आदि स्वास्थ्य की दृष्टि …त्यन्त हितकर होती है। क्योकि इस प्रकार के खाद्यो …मे प्राकृतिक स्वाद तथा पूरी पूरी मात्रा मे खाद्योज …र खनिज लवण तो मिलते ही हैं। स…ही स्फोक पूरे …माण मे एव विना नष्ट हुये मिल जाते है, जिससे सब …ी का मूल मलावरोध सदैव के लिये दूर रहता है। … खराव रहता हो, अपच हो, कब्ज हो, तो उस दिन …का भोजन वद करके केवल मूली, सरसो अथवा किसी …शाक के हरे पत्ते साफ करके पेट भर खालें, चार …वाद खुलकर शौच हो जायगा। जिन्हे कच्चा शाक …ा पसद न हो वे इसे उवालकर खा सकते है, किन्तु …का पानी हरगिज न फेके। करमकल्ला के पत्ते विना …से खाने से शरीर के कोषाणु बहुत शीघ्र बनते हैं। … नारियल मे स्फोक काफी मात्रा मे होता है … [illegible] … यदि … [illegible] … [illegible] … पड़ जायगी।

यदि यह कहा जाय कि काष्ठोज खाद्योज 'वी' का घर है तो गलत न होगा। खाद्योज 'वी' का दूसरा नाम 'स्वाद-खाद्योज' (Appetite vitamin) है। इस तरह हम देखते हैं कि कोष्ठोज तत्व से ही हमे भोज्य पदार्थों मे प्राकृतिक स्वाद की प्राप्ति होती है। और इस तथ्य से तो कोई इन्कार ही नही कर सकता कि काष्ठोज, भोजन के साथ पाचन-प्रणाली मे पहुंचकर, पाचन यन्त्रो को उचित व्यायाम देता है और उनको पुष्ट एवं स्वस्थ वनाता है। डाक्टर अल्वर्ट ब्रडनिट का कथन है कि स्फोकहीन भोजन से वदहजमी, निर्वलता, कठिया, कमर का दर्द, हृदय-विकार आदि रोग हो जाते है। सिलविस्टर एक स्थान पर लिखता है कि अठारहवी शताब्दी मे जव ब्रिटेन और फ्रान्स मे युद्ध हुआ तो गेहू की कमी के कारण पालिया-मेन्ट ने फौज के सिपाहियो को चोकर समेत आटे की रोटी देने के लिए आज्ञा निकाली, जिसका आश्चर्यजनक फल यह हुआ कि उन सिपाहियो का स्वास्थ्य पहले से कही अधिक सुधर गया। यह प्रताप गेहू के चोकर (स्फोक) का ही था। प्रसिद्ध विद्वान सुकरात ने भी वेछने आटे की बड़ी प्रशंसा की है और उसे आमाशय के लिये हितकर वताया है।

गत महायुद्ध के अन्तिम समय मे अर्थात् १९१७ ई० मे जव जर्मनो ने डेनमार्क की वडी कड़ी नाकावदी कर रखी थी तो वहा के निवासी खाद्य पदार्थों की कमी के कारण भूखो मरने लगे। उस वक्त सरकार ने डेनमार्क के प्रसिद्ध आहार शास्त्री डाक्टर मिकेल हिण्डहीड (Dr.mi-kkel hindhcde) को जो कोपिन्हेगन मे भोजन सम्बन्धी खोज करने वाली प्रयोगशाला के डाईरेक्टर थे भोजन नियामक (food controller) के पद पर नियुक्त किया उस वक्त डाक्टर महोदय ने सर्व साधारण को वही भोजन देना आरम्भ किया जो उनकी नियुक्ति से पूर्व वहा जान-वरो को दिया जाता था। … साल के लगभग उन्होने … डेनमार्क वासियो को चोकर समेत आटे की रोटी, … [illegible] … पशुओं को … [illegible] … [illegible] … [illegible] … [illegible]

है। उदाहरणस्वरूप केवल एक वर्ष मे ही मृत्यु का अनुपात १२३६ से घटकर ६८५ होगया। कहा जाता है कि इतनी कम मृत्यु संख्या डेनमार्क मे पिछले वर्षो में कभी नहीं हुई थी।

अनाजो और तरकारियो मे क्षार का भाग अधिकतर उनके छिलकों वा स्फोक मे ही रहता है जो शरीर के लिए अत्यन्त उपयोगी होते हे। विशुद्ध रक्त क्षारमय होता है। प्राकृतिक चिकित्सा का यह स्वर्णसूत्र प्रसिद्ध ही हैं। इस सिद्धान्तानुसार स्फोक का महत्व और भी वढ जाता है और यह रक्त शोधक सिद्ध होता है।

स्फोक मे कई प्रकार के प्राकृतिक लवण भी अधिकता से पाये जाते है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिये कम आवश्यक नहीं होते। शरीर मे इन लवणो की कमी के कारण भांति भाति के रोग उत्पन्न हो जाते है।

भारत प्राण महात्मा गांधी ने भी अपने प्रयोगों के आधार पर एकबार हरिजन मे लिखा था-" युक्ताहार के विषय मे इस पत्र हरिजन में समय समय पर जो लेख निकलते रहते है उन्हे नियमित रूप से पढ़ने वाले पाठक समझते होगे कि हम जो गेहूं का चोकर और चावल की भूसी फेंक देते है वे हमारे आहार के लिये कितनी उपयोगी वस्तुऐं है।........"

५—जल

उद्जन और ओषजन के संयोग से हमारे शरीर में लगभग २६८ ग्राम जल की उत्पत्ति प्रतिदिन हुआ करती है। शरीर में ७० प्रतिशत केवल जल होता है। रक्त को तरल रखकर उसे सारेशरीर मे दौडाकर पोषण देने योग्य बनाये रखना इसका प्रधान कार्य है। भोजन रस बनकर जल के माध्यम से शरीरमे अभिशोषित होता है और शरीर मे अनवरत उत्पन्न होने वाले विष का वहिष्करण जल द्वारा मल मूत्र पसीना आदि के रूप मे नित्यप्रति होता रहता है।

हमारे अधिकाश खाद्य पदार्थो में जल की अधिकता रहती है। फलों, साग-सब्जियों, दूध आदि मे जल की मात्रा वहुत अधिक होती है। जब इन जल वाले खाद्य-पदार्थो को आग पर रखकर पकाया जाता है तो उनमे स्थित उपयोगी जल अन्य लाभदायक तत्वों के साथ जल जाता है। परिणामतः जल की उस कमी को पूरा करने के लिए हमे कुए या नल का जल ऊपर से पीना है जो शरीर के लिए उतना उपकारी और ... नही सिद्ध होता जितना फल एवं साग-सब्जियों ... पाया जाने वाला जल। जल की उपयोगिता के ... मे विशेष जानकारी के लिए 'जल तत्व-चिकित्सा' ... देखना चाहिये।

६—खनिज लवण

इन लवणों को 'रक्तशोधक खाद्य' (Pо... Food) भी कहते है। इनमें कुछ विशेष उद्भि... भी शामिल है। जैसे, इमली में पाये जाने वाले ... और टार्ट्रेट लवण, नीबू में पाया जाने वाला ... लवण, तथा कुछ सब्जियों में पाया जाने वाला ... नामक लवण।

प्रकृति ने ऐसे वहुत से खनिजपदार्थो को पृथ्वी में ... रखा है जो जीवन के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। ... स्पितिया उन्ही से खनिज-लवण जीवन-रस के ... प्राप्त करती है जो अनाजो, तरकारियों और फलों ... हमारे शरीर मे पहुँचकर हमे लाभ पहुँचाते है। ... शरीर के लिए आवश्यक लवण, खाद्य-पदार्थो से ... है। ये लवण, खाद्य-द्रव्यों के माध्यम से ही आसानी ... शरीर मे पहुँचाये जा सकते है। दवा के रूप में ... यो ही नमक खा लेने से इन खनिज लवणो का कोई ... योग हमारा शरीर नही कर पाता। कारण, ... लगने वाला लोहा और पान में खाया जाने वाला ... दोनों लवण तो हैं पर निर्जीव लवण हैंजो जीवित शरीर ... कभी मेल नही खा सकते। अत. इनका प्रयोग लोहम् ... खटिकम् केवदले बेकार है। इनके खानेसे वे शरीरके ... पडे रहते हैं और विजातीय द्रव्य सावित होते हैं। शरीर ... वे आत्मसात नही होते। उल्टे शरीर को ... बाहर निकाल फेंकने मे बड़ा कठिन श्रम ... पड़ता है।

खाद्यपदार्थ जब प्राकृतिक दशा में खाए जाते हैं ... उनमे स्थित लवणो का पूरा पूरा लाभ शरीर उठा ... है। क्योकि अधिक पकाने से ये लवण नष्ट हो जाते हैं। ये लवण पानी में घुलनशील भी होते है। अत ... पदार्थो को उबालकर, उनका पानी फेक देने मे ... को इन लवणो के लाभ से वञ्चित रह जाना पड़ता है।

ये खनिज लवण, बिना पकाये भोजनो, या प्राकृतिक
ो, जैसे कच्ची साग-सब्जियो, फलों, आदि मे अधिक
मात्रा में रहते है, इसलिए लवणो का पूरा-पूरा लाभ
ने के लिए ऐसे ही भोजन करने चाहिए ।

हमारे शरीर की त्वचा, रक्त, तथा अस्थि आदि में
व लवण ओतप्रोत होता है । रक्त मे ही सैंधकम,
ुजन, क्लोराइड, तथा फासफेट—चार प्रकार के लवण
जाते हैं । हमारी केवल पेशाब से नित्य लगभग १००
ो लवण निकल जाता है, जिसमे अधिकाश नित्य का
या हुआ, खाने वाला नमक ही होता है ।

इन खनिज लवणो की संख्या लगभग २४ है । उनके
म हैं—खटिकम्, स्फुर, लोहम्, नैलिन, मागनीज, शैलम्,
ुजन, सैंधकम, प्लविन, गधक, मगनीसम, हरिन, तथा
म्रम् आदि । इनमे से खटिकम्, लोहम्, मगनीसम, पायुजन
ा, सैंधकम् क्षारोत्पादक होते है ।

वस्तुतः हमारा शरीर उपर्युक्त थोड़े से लवणो का
हमात्र है । शरीर के अगणित कोषाणुओ मे से प्रत्येक
निर्माण इन्ही लवणो द्वारा होता है । हमारे शरीर मे
चे लिखे खनिज लवण लगभग निम्नलिखित अनुपात से
मान होते हैं:—

१. खटिकम् २२ %
२ स्फुर १ %
३. लोहम् ० ००४ %
४ पायुजन ० ३५ %
५. सैंधकम् ०.१५ %
६ गधक ०.२५ %
७ मगनीसम् ० ०५ %
८. हरिन ०.२२ %
९ नैलिन
१०. मागनीज
११ शैलम्
१२. प्लविन्
१३. ताम्रम्
१४. [illegible]
१५. [illegible]
१६. [illegible]
१७. [illegible]
१८. ब्रोमाईल
१९. लिथियम
२०. कोबाल्ट

—नम्बर ९ से २० तक अल्प-अल्प मात्रा मे होते है ।

उपर्युक्त लवणो के अलावा निम्नलिखित चार और लवण शरीर मे पाये जाते हैं, जो हमारे शरीर मे नाक द्वारा तथा भोजन के तत्वो प्रत्यामिन, कार्बोज एवं वसा मे मिश्रित होकर पहुंचते है—

२१. ओषजन ६५ %
२२. कर्बन १८ %
२३. उद्जन १० %
२४. नत्रजन या नोषजन ३ %

जब खाया हुआ भोजन पचता है तो ये लवण उसमे परिवर्तित रूप से पाये जाते है । इन लवणो मे से कइयो का या किसी एक का कुछ अर्से तक अभाव या कमी होने का अर्थ है शरीर का रोगी और अस्वस्थ होना । उदाहरणार्थ, नैलिन (Iodine) की कमी से घेघा रोग, तथा लोहे की कमी से रक्त-अल्पता रोग हो जाता हे ।

ऊपर कहा जा चुका है कि इन लवणो मे कुछ तो क्षारोत्पादक होते है और कुछ अम्लोत्पादक । अत. इनका एक महत्वपूर्ण काम यह भी है कि ये हमारे शरीर के रक्त मे अम्लत्व और क्षारत्व का अनुपात सम रखें । जैसे सैंधकम क्षारोत्पादक होता है, और स्फुर अम्लोत्पादक । अब ये दोनो जिस घोल मे प्रस्तुत रहेगे उसमे अम्ल या क्षार की काफी मात्रा डाली जाने पर उसका प्रभाव न अधिक क्षारीय होगा और न अधिक अम्लीय, अपितु सम रहेगा । इस तरह हम देखते है कि इन सभी लवणो के सतुलित परिमाण मे रहने से ही हमारे खाये हुए अन्न का पाचन एवं [illegible] का पोषण ठीक से होगा अन्यथा नही ।

ये लवण, [illegible] के [illegible], चावल के [illegible], एव तरकारियो के छिलको के ठीक नीचे विशेष रूप से पाये जाते है । अतः भोजन बनाते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि [illegible] लवण [illegible] और उपयोगी [illegible] नष्ट न होने पावें ।

इन [illegible] पाचन की [illegible], [illegible] मे [illegible] [illegible] [illegible], एवं [illegible]

का गठन करना, रक्त-कणिकाओं की सृष्टि एवं पुष्टि करना, भोजन को स्वादिष्ट बनाना, शारीरिक शक्ति को बढाना, मुख की लाला ग्रन्थियों से लार उत्पन्न करके आहार के चर्वण मे सहायता देना तथा आमाशय के पाचन-रस (Gastric Juice) मे अम्लांश (Hydrochloric acid) को उत्पन्न करना, आदि है।

इन्ही लवणो के प्रभाव से शरीर स्थित कफादि द्रव होकर निकल जाते है। मल, मूत्र, तथा पसीना आदि के निकलने मे ये ही लवण सहायक होते है। वायु-विकार से भी ये हमारी रक्षा करते है। परन्तु अन्य तत्वो की भाति लवणों का भी अधिक सेवन खतरे से खाली नही है। इनका अधिक प्रयोग कफ और पित्त के विकार को बढ़ाने वाला होता है।

खटिकम्

यह लवण चुकन्दर, सहजन, तिल, चोकर, तीसी की खली, शलजम, गाजर, टमाटर, पालक, नारगी, सतरा, नीबू, दुग्ध, नीरा तथा गुड़ मे अधिक; तथा दालो, अन्य अनाजो, अन्य शाक-भाजियों, फलो और मेवो मे कुछ कम होता है। डा० मिलयर्ड कैथान दक्षिण भारत मे भोजन सम्बन्धी अन्वेषण वर्षो से कर रही है। उनका कहना कि खटिकम् की प्राप्ति के लिये प्रत्येक व्यक्ति को आध सेर दूध नित्य पीना चाहिये सही तो है पर यदि पत्तीदार भाजियां अधिक खाई जाये तो बहुत थोड़ा दूध लेने से भी काम चल सकता है। हिन्दुस्तान मे शाको मे जितना खटिकम् होता है उतना दुनिया की किसी भाजी में नही होता।

खटिकम् अस्थियों का सत्व है। शरीर की इमारत हड्डियो के ढाचे पर खडी न रह सके, यदि यह तत्व शरीर मे उपस्थित न हो। शरीर के बीज—कोषो के निर्माण एवं क्षतिपूर्ति मे भी इस तत्व से बडी सहायता मिलती है। शरीर स्थित सभी प्रकार के खनिज लवणो मे खटिकम् लगभग आधा होता है। अत शरीर मे इसकी अनिवार्यता एव ५०% आवश्यकता इसी एक बात से साबित हो जाती है।

वैसे एक साधारण व्यक्ति के लिये प्रतिदिन दस ग्रेन खटिकम काफी होता है, परन्तु बच्चो, गर्भवती स्त्रियों, दूध पिलाने वाली माताओ और किसी भी कठिन रोग से उठे हुए मनुष्य के लिए तो इस तत्व की आवश्यकता कही अधिक बढ जाती है। उन्हे १० ग्रेन खटिकम तो जरूर चाहिए। साधारणत ... के रसमे १० ग्रेन खटिकम होता है। कैलशियम या खटिकम वह तत्व है जो चूने का आधार है। यह ...सी सफेद और मुलायम धातु ९२ तत्वों में से एक तत्व है। इसके कई रूप होते है जिनमें खड़िया (Calcium Carbonate)' खाने का चूना (Calcium Hydroxide) तथा चूना भस्म (Calcium oxide) ... शरीर के ढाचे और दातो की बनावट में इसका प्रयोग होता है। फेफडों को शक्ति प्रदान करना ... का एक प्रधान काम है। शरीर मे खटिकम की कमी से कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है, फेफडे के रोग, दातो के पायरिया आदि रोग, बाढ़ मे रुकावट एवं अस्थि-विकृति रोग, शरीर मे ... का बढ़ना, निर्बलता, तथा खून की खराबी आदि है। क्षय जैसा भयानक रोग भी इस तत्व की कमी से पनपता है।

खटिकम तत्व की कमी के कारण बीमार पड़े रोगी का शरीर स्वाभावत अपनी खटिकम की कमी को खटिकम निर्मित नख, बाल, दांतो आदि से सार अंश ग्रहण करके पूरा करता है। परिणाम यह होता है कि रोगी के नाखून ... हीन और पतले पड़ जाते हैं, दात कमजोर हो जाते है, बाल झड़ने लगते हैं। गर्भिणी स्त्री को भी जब गर्भ मे उसके शरीर की आवश्यकतानुसार यथेष्ठ ... नहीं मिलता तो उसके भी बाल झडने लगते है, ... कमजोर हो जाते है, और नाखून अपुष्ट निकलते ... तथा हम यह भी देखते हैं कि प्राय. ऐसी ही गर्भिणी स्त्रियो को, अपने खटिकम तत्व की कमी को पूरा करने के लिये प्राय. सोधी मिट्टी या ठीकरा खाने को प्रकृति मजबूर करती है और वे मिट्टी या ठीकरा ... देखी जाती है। इसी प्रकार बढ़ते हुए बालकों का ... चूसना, नाखून चबाना, तथा मिट्टी खाना, प्रकृति की ओर से इस बात का सकेत है कि बालक कैलशियम का ... है, उसकी शरीर वृद्धि के लिए यथेष्ट खटिकम ... की आवश्यकता है जिसे वह नही पारहा है, अत मिट्टी खाता है, नाखून चबाता है, और अंगूठा चूसता ...

यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि खटिकम शरीर [अ]पना काम तभी सुचारुरूप से कर सकता है जब उस स्फुर तथा खाद्योज 'डी' का पूरा-पूरा सहयोग मिलता अत: भोजन के चुनाव मे यह ख्याल रखना चाहिए [उ]समे खटिकम की मात्रा, स्फुर की मात्रा से अधिक और साथ-साथ खाद्योज 'डी' की भी कमी न रहे। [इसी] प्रकार 'स्कर्वी' रोग खटिकम की वजह से ही है परन्तु उसका इलाज केवल भोजन के माध्यम [श]रीर मे यथेष्ट खटिकम, पहुँचा देना ही नहीं है, [प]रन्तु यह भी कि साथ-साथ रोगी को खाद्योज 'सी' भी [यथे]ष्ट मात्रा मे दिया जाना जरूरी है, तभी अभीष्ट की [सिद्धि] हो सकती है अन्यथा नही। क्योकि शरीर विज्ञान-[वेत्ता]ओ का मत है कि शरीर के खटिकम का अधिकाश [...] के साथ मिश्रित रहता है, और वह मिश्रण खाद्योज [...] की सहायता से ही चूना बनकर शरीर मे लगने [...]क और अस्थियो के निर्माण आदि करने लायक होता [...] खटिकम का ९०% खड़ियामिट्टी के रूप मे शरीर [...]न्तुओ, हड्डियो, तथा दातो मे रहता है। इसीसे खूनमे [...]पन आता है।

मनुष्य के शरीर मे खटिकम की मात्रा जितनी अधिक [हो]ती है, उतना ही अधिक वह शक्तिशाली कर्मवीर, [...]र, शान्त एवं दीर्घायु होता है। यदि आप जानना चाहते है [कि आ]पके शरीर मे खटिकम की आवश्यकता है या नही [तो इ]स बात को आसानी से जान सकते है। क्योकि जिस [व्य]क्ति मे इस तत्व की कमी होती है वह खाता तो [अधि]क है पर पचाता बहुत कम है। वह कोई मेहनत का काम [कर]ते वक्त जल्द ही पसीना-पसीना होजाता है। उसकी त्वचा [...]च गीली और चिपचिपी रहती है, उसे रात के सोने [...] भी पसीना आया करता है, पाखाना मे कीड़े आने [लग]ते है, मौसम के बदलने का असर ऐसे व्यक्ति पर [...] होता [...] समय के पूर्व ही उसके शरीर पर [...] होने लगते है। हमारे शरीर [illegible] होने से [illegible] [illegible] [illegible]

यह भी न भूलना चाहिये कि हमारे शरीर मे थाइराई ग्लै-ण्ड्स द्वारा ही खटिकम का सञ्चालन होता है। अत जिस व्यक्ति के ये ग्लैण्ड्स अस्वस्थ होते है वे चाहे कितना ही खटि-कम युक्त आहार सेवन करे उन्हे अपने उत्तम स्वास्थ्य के लिये यथेष्ट खटिकम की प्राप्ति नही हो सकती। इसलिए अस्वस्थ थाइराई ग्लैण्डस को सर्वाङ्गासन आदि द्वारा स्वस्थ करलेने के बाद ही खटिकमयुक्त भोजन अपनाना चाहिये। शरीर स्थित खटिकम मे सबसे बड़ी विशेपता यह है कि वह हर छ साल के बाद बदल जाती है।

स्फुर

उपादेयता के लेहाज से यह तत्व खटिकम का साथी है। इसकी कमी से शरीर को मानसिक थका-वट की अनुभूति होने लगती है। मस्तिष्क कमजोर होजाता है याददाश्त खतम होजाती है। बाल झड़ने और सफेद होने लगते है तथा अनिद्रा और पागलपन तक धर दबोचता है। इसकी कमी से या अभाव मे शरीर की अस्थिया भी परिपुष्ट नही हो पाती तथा स्नायुओ की दुर्बलता और शरीर की तेजहीनता तो मामूली बाते है।

प्याज और मछली मे यह तत्व अधिकता से पाया जाता है, तथा अन्य खाद्य पदार्थो जैसे नीबू, टमाटर, गाजर, रसभरी, जामुन, चकन्द, अनार, सेब, पपीता, पका कटहल, इमली, पालू, कमरख, [...], [...], बेर, लहसुन, [...], खजूर बादाम, अखरोट, किशमिश, पिस्ता, गड़ी, आलू, [...], [...], [...], [...], बदगोभी, फूलगोभी, [...], [...], [...], [...], [...], दालें, गेहू, जौ, बाजरा, [...], [...] और [...] आदि मे वह काफी होता है।

फास्फोरस (Phosphorus) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

लोहम

शरीर में यह तत्व बहुत कम मात्रा मे—अर्थात् पूरे शरीर के वजन का २५०१०० भाग होता है फिर भी यह शरीर के लिये इतना आवश्यक तत्व है कि इसके अभाव मे हम एक मिनट भी जी नही सकते। शुद्ध रक्त एवं उसमे पाये जाने वाले रजक तत्व का उत्पादन लोहम पर ही निर्भर करता है। रक्त मे स्थित रजक तत्व ही प्राणद अम्लजन को वहन करके रक्त प्रवाह मे ले जाता है जिससे हमे शारीरिक सारी क्रियाये करने की शक्ति प्राप्त होती है। लोहम ही वह तत्व है जो मासपेशियो मे जीवनदायनी ओषजन गैस पहुंचा कर विष तुल्य कर्वन द्वयोषिद गैस को निकाल फेकने मे शरीर की सहायता करता है। शरीर मे लोहम की कमी से शरीर के कोषाणुओं मे काफी ओपजन नही पहुच पाती। परिणाम यह होता है कि विपैली कर्वन द्वयोपिद गैस पूरी तरह से न निकल जाने के कारण शरीर को हानि पहुंचती है। रक्तहीनता (एनीमिया) रोग मे यही होता है। इस रोग मे शरीर पीला पड़ जाता है रोगी सदैव थकान एवं निर्बलता का अनुभव किया करता है तथा उसका मस्तिष्क ठीक से काम नही करता।

यह तत्व ताम्रम-तत्व के साथ रक्त बनाने मे अच्छा काम करता है। खाद्य पदार्थो मे जो लोहा होता है वह सारा का सारा हमारे रक्त मे नही मिल पाता इस सिद्धान्तानुसार हमारे आहार मे यथेष्ठ मात्रा मे लोहम होने पर भी यदि वह रक्त तक नही पहुँच पाता है तो लोहम की कमी से होने वाले रोग सता सकते है अत. हमारे भोजन मे लोहम प्रधान खाद्य द्रव्यो का होना उतना महत्व नही रखता जितना कि शरीर द्वारा उन खाद्य द्रव्यो से लोहम तत्व का अभिशोपित होना।

शरीर मे लोहम का पाचन और शरीर द्वारा उसका अभिशोषण तनिक कठिनता से होता है। बात यह है कि जबतक इस तत्व के साथ यथेष्ठ क्षार (एसिड) का सयोग न हो तब तक यह घुलता नही और जब तक यह घुले नही तब तक अतड़ियों की दीवारे उसे चूसकर मिला नही सकती। जो लोग श्वेतसार खाद्योजयुक्त आहार अधिक करते हैं और रक्त मे अम्लता उत्पन्न करने वाले खाद्य कम खाते हैं उनके आमाशय में जो इन तत्वों के योग से हाइड्रोक्लोरिक एसिड तय्यार होती है उस एसिड मे लोहम बहुत घुल जाता है, अत शरीर मे खूब लगता है।

पालक, खूबानी, खजूर, किशमिश, गुड, राब, सोयाबीन तथा सूखे बेर मे लोहम अधिक होता है और अन्य साग, सब्जियों, मेवा तथा अनाजो मे अपेक्षाकृत कम।

लोहम प्रधान खाद्य द्रव्यो के सेवन से शरीर की जीवनी शक्ति बढती है, जिससे भूख खूब लगती है, रक्त शुद्ध बनता है जिससे गालों, नखो, ओठो मे ललाई आ जाती है एवं शरीर की कान्त बढती है।

एक साधारण व्यक्ति के लिये प्रतिदिन लगभग १२ मिलीग्राम लोहे की आवश्यकता होती है, स्त्रियों को ३ मिलीग्राम अधिक, तथा गर्भावस्था मे उन्हे २० मिलीग्राम तक लोहे की आवश्यकता पड सकती है।

नैलिन

इसे अ ग्रेजी मे Iodine कहते है। यह तरकारियों और फलो के छिलको के ठीक नीचे के हिस्से, तथा अनाज मे अधिक पाया जाता है। पालक, टमाटर, आलू, चुकन्दर, चुक्का, हाथीचक, गाजर, प्याज, जीरा, लेटिस, पातगोभी, मटर की छीमी, सेब, केला, नाशपाती, दूध, मक्खन, मछली, तथा जल मे उत्पन्न होने वाले खाद्यों जैसे कमल गट्टा, सिघाड़ा आदि मे भी यह काफी पाया जाता है।

यह तत्व शरीर मे उत्पन्न होने वाले विषों से मस्तिष्क को आक्रान्त होने से बचाता है। शरीर की विविध ग्रन्थियो का पोषण करता है, तथा शरीर को स्थूल होने से भी बचाता है। इसकी कमी से मनुष्य बौना हो जाता है। घेघा और गलगड रोग भी इसी तत्व के अभाव या कमी से सताता है। यह तत्व शरीर में यदि न हो तो बाल पकने और झड़ने लगते है, तथा शरीर का वजन भी कम हो जाता है।

मांगनीज

लवण, जौ, गेहूँ, जई, सरसो का साग, नीबू, नारंगी, टमाटर, बादाम, तथा अण्डे की जर्दी मे अधिक पाया जाता है। यह लवण शरीर स्थित अन्य तत्वों मे सन्तुलन रखता है, तथा स्नायुओ को पुष्ट एव उन्हे स्वस्थावस्था में रखता है।

हिस्टीरिया रोग (गुल्म वायु) इसी लवण की कमी या अभाव का परिणाम होता है।

शैलम्

यह लवण, पूरे जौ, तथा छिलका सहित खीरा मे अधिक पाया जाता है। पूरा गेहू, पालक, नया लालचावल, सलाद, करमकल्ला, ताजेफल, तथा अञ्जीर आदि मे भी यह विद्यमान होता है।

यह सुनने और देखने की शक्ति बढानेवाला लवण है। त्वचा को लचीला और बालो, दांतो तथा शारीरिक-तन्तुओ को पुष्ट करता है।

इस लवण की जब शरीर मे कमी हो जाती है तो बाल झड़ने लगते हैं, सुनाई कम देने लगता है, आखो के रोग आ घेरते है, तथा त्वचा, दात और शरीर के तन्तु अस्वस्थ हो जाते है। शैलम् को अंग्रेजी मे सिलिकन कहते है।

पांशुजन या पोटाशियम

यह लवण- शरीर के तन्तुओं, यकृत, तथा हृदय को शक्ति प्रदान करता है। यदि यह लवण शरीर मे उचित मात्रा मे हो तो शरीर के घाव बहुत जल्द भरकर अच्छे हो जाते है। इसकी कमी या अभाव का ही नतीजा होता है कि शरीर मे अम्लता बढकर कब्ज सताने लगता है जिसके फलस्वरूप चेहरे पर झाई, सेहुआ, दाग आदि पड़ जाते हैं, शरीर में जगह–जगह दर्द होने लगता है, हड्डियां निर्बल और अपुष्ट रहजाती हैं, तिल्ली बढजाती है, तथा स्नायु दौर्बल्य रोग सताने लगता है।

खीरा, ककडी मे यह लवण पाया जाता है, और सेब, अगूर, टमाटर, नाशपाती, नीबू, नारियल, आलू का छिलका, गाजर, करमकल्ला, बैंगन, सेम, अनन्नास, चुकन्दर, सतरा, दूध, बोग, शफतालू अञ्जीर, आलूबोखारा, बादाम, खजूर, [illegible], आलू, नेटिम, अजवाइन की पत्ती, जैतून, [illegible], आड़ू, खुबानी, तथा पेशी के मास मे भी काफी रहता है।

सैन्धकम या सोडियम

[illegible] पाचक [illegible] और रक्त शोधक है और इसी से हमारे शरीर मे [illegible] अपना कार्य करता है। [illegible] शरीर मे न हो तो [illegible] और [illegible] घुलकर शरीर को लाभ न पहुचा सके। यही लवण हमारे रक्त में उपस्थित रहकर कार्बोनिक एसिड गैस के परित्याग मे मदद करता है। इसकी कमी से गुर्दे और मेदे के रोग, मधुमेह, अपच, पेट फूलना, पित्त की कमी, पेशियो की कठोरता, बहरापन तथा मोतियाबिन्दु, आदि रोग हो सकते है।

सभी ताजे फल और साग सब्जियो, जैसे सेब, अगूर, तरबूज आदि, खीरा ककडी, गाजर, नारियल, टमाटर, भिण्डी, आलू, अजवाइन की पत्ती, मूली, फूल गोभी, शलजम, बदगोभी, प्याज को पत्ती, पालक, तथा चुकन्दर, आदि, अञ्जीर, खजूर, किशमिश, दूध, पनीर, अण्डा जई मे सैधकम लवण अधिक पाया जाता है। खाने वाला नमक तो सैंधकम् लवण है ही।

प्लविन

यह खाद्य-गैस यौवन को स्थिर रखने और उसकी रक्षा करने मे काम आता है, पेशियों को इस लवण से बल मिलता है। प्लविन को अग्रेजी में फ्लोरिन (Flourine) कहते है।

इसकी कमी से दांत और आख के रोग हो जाते है, छूत के रोग बहुत जल्द लग जाते हैं, तथा अस्थियो की बीमारी सताने लगती है।

यह लवण चुकन्दर, लहसुन, करमकल्ला, पालक, फूल और गाठगोभी, पनीर, बकरी के दूध, पूरे अनाज एव अण्डा मे अधिक पाया जाता है।

गंधक

टमाटर, मूली, प्याज, फूलगोभी, नेटिम, अजवायन की पत्ती, करमकल्ला, गाजर, शलजम, सोयाबीन, आलू, शफतालू, मूंगफली, अनन्नास, सेब, पनीर, अण्डा, मछली मांस, छिल्केदारमेवे, खमीर, अनाज, [illegible], अंजीर, दूध एवं सनरा में गधक अधिक रहता है।

बाल, नख, तन्तु, तथा पेशिया इसी लवण की सहायता से निर्मित होती है। शरीर के भीतरी अवयव इसके प्रभाव से मलरहित बनते है। तथा यह आयु की वृद्धि मे भी सहायक होता है।

इसकी कमी या अभाव से त्वचा के रोग [illegible] होते है जो अशुद्ध रक्त का परिणाम है। [illegible], [illegible]

तथा यकृत के रोग भी इस लवण की कमी की वजह से होते देखे गये है।

मगनीसम्

यह शरीर मे ताजगी और फुर्ती लाने वाला लवण कहलाता है। त्वचा मे निखार और स्नायुओ मे कार्यशीलता इसीकी बदौलत होती है। यदि यह लवण शरीर मे न हो तो आदमी उदास, काहिल, सुस्त तथा बेकार हो जाय। इसकी कमी से चर्मरोग और अस्थि-रोग भी होते है।

गेहू, बाजरा, जौ, जई, गाजर, हरी मटर, बकरी का दूध, जीरा, चोकर, बादाम, लेटिस, पालक, चुकन्दर, बंदगोभी, संतरा, नारियल, नीबू, टमाटर, खजूर, अञ्जीर सभी बीज, अण्डा की जर्दी, आलूबोखारा, किशमिश, सेव, बेर, तथा नारगी मे मगनीसम अधिक पाया जाता है।

हरिन या क्लोरिन

यह खाद्य–गैस 'शरीर का धोबी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह शरीर के जोडो और पेशियों को मलरहित कर उन्हें साफ-सुथरा रखता है। आतों की भी गदगी साफ करके उनकी सदैव रक्षा करना हरिन लवण का ही काम है। यह शरीर के वजन को भी सतुलित अवस्था मे रखता है।

इस लवण की कमी से शरीर मे मल और चर्बी की वृद्धि हो जाती है, तथा अपच, पायरिया, एवं नाड़ी-विकार आदि रोग सताने लगते हैं।

मूली, टमाटर, गाजर, गाय-बकरी का दूध, पनीर, नारियल, पालक, अण्डे की सफेदी, केला, पूरा गेहूं, पातगोभी, नींबू, अनन्नास, खीरा, प्याज, अनार और खजूर मे यह लवण अधिक होता है।

ताम्रम्

यह लोहम लवण से मिलकर रक्त के लाल कणो का पोषण करता है। इसकी कमी से रक्तहीनता, रक्तविकार तथा पाचन की खराबी आदि रोग हो जाते है।

सेव, अगूर, हरी मटर, अजवायन की पत्ती, हरी तरकारिया, दालो, मेवो, गाजर, तथा करमकल्ला मे यह विशेषरूप से पाया जाता है।

कोबाल्ट लिथियम ब्रोमाइन जस्ता अल्मूनियम निकेल संखिया

ये भी शरीर के लिये बडे आवश्यक खनिज है, कि इनकी आवश्यकता उसको अत्यन्त अल्प मात्रा मे है। फल-सब्जियो से ये उचित मात्रा मे प्राप्त हो [illegible]

७–खाद्योज (Vitamin) का इतिहास

प्रारम्भ मे जब खाद्य पदार्थो मे विटामिन का पता ही लगा था परन्तु उसके विषय मे विशेष खोज हुई थी और न उसका नामकरण ही हुआ था [illegible] विशेषज्ञो का ख्याल था कि विटामिन 'एमाइन' (विशेष रासायनिक समूह) वर्ग का एक पदार्थ है, चूंकि 'एमाइन' वर्ग के पदार्थ जीवन के लिये (Vital) समझे जाते थे, इसीलिये सन् १९१२ ई० केसीमिट फंक नामक एक पोलिश वैज्ञानिक ने [illegible] (आवश्यक) के अन्तिम दो अक्षरो (Al) को हटाकर उसमें (एमाइन) Amine जोड़कर Vitamine (विटामिन) नाम की उत्पत्ति की। पर उसके आठ वर्ष बाद सन् १९२० ई० में ब्रिटिश खाद्यविभाग के [illegible] सलाहकार सर जैक डूमड के सुझाव पेश करने पर [illegible] अंग्रेजी शब्द (Vitamine) का अन्तिम अक्षर (E) [illegible] देना ही ठीक होगा, क्योकि उन दिनो जितने प्रकार [illegible] विटामिन विद्वानो को ज्ञात थे, उनमें से कोई भी रासायनिक तत्वों की श्रेणी मे नही था। डूमड साहब यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ और तभी से अंग्रेजी [illegible] (Vitamine को Vitamin कहा और लिखा जाने [illegible] कुछ विद्वानो के मत से अंग्रेजी शब्द 'Vitamin' [illegible] शब्द 'Vita' से बना है जिसका अर्थ Life या [illegible] होता है।

हिन्दी भाषा–भाषी Vitamin को कोई नामों से पुकारते हैं, जैसे, खाद्योज, जीवन, जीवनतत्व, प्राणपोषक पदार्थ, प्राणसरक्षणीतत्व, जीवरसायन, खाद्यप्राण, [illegible] जीवोज, सहयोगीतत्व, तथा जीवनीय-तत्व, खाद्यमल [illegible] आयुर्वेदिक कालेज के डाक्टर घाणेकर ने विटामिन के लिए 'जीव-तिक्ति' शब्द का प्रयोग किया है। [illegible] विटामिन के लिए 'खाद्योज' शब्द ही सबसे उत्तम [illegible] है जो स्व० डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्मा का [illegible]

...गा है।

...उपर्युक्त सात खाद्य-तत्वो—प्रत्यामिन, कार्बोज, जल, ...क, खनिज लवरा, तथा खाद्योज—मे से इस सातवे— ...व खाद्योज का अनुसन्धान एवं आविष्कार सबसे बाद हुआ है और वह अभी भी जारी है। अभी तक ...ानिको को लगभग १५ प्रकार के खाद्योजों का पता ...ग चुका है, मगर कौन कह सकता है कि आगे इस ...ख्या में वृद्धि न होगी ?

...खाद्यपदार्थों मे प्रभावशाली खाद्य-प्राण या खाद्योज (विटामिन) की विद्यमानता का सर्वप्रथम पता अठारहवी ...ताब्दि के आरम्भ मे अंग्रेज जहाजियों को लगा हालाकि ...स समय इस तत्व का नाम खाद्योज (विटामिन) वे ...ोग न रख सके थे। उन दिनो जहाज से यात्रा करने ...लो के लिए आज की-सी सुविधाएं न थी, और लम्बी ...ात्रा में भोजन सम्बन्धी अनेक गड़बड़िओं के कारण वे ...हाज पर ही रोगग्रस्त हो जाया करते थे। विशेषकर ...न्हे मसूढों से खून आने लगता था, शरीर की मांसपेशियों ...में ढीलापन आकर वे बेकाम हो जाती थीं, तथा हृदय- ...ति बन्द होकर उनकी मृत्यु हो जाती थी। इस जहाजी ...ोग को उन्ही दिनो 'स्कर्वी' नाम दिया गया था जो आज ...भी प्रचलित है। उस जमाने मे जहाज पर फैले इस ...भयंकर रोग को एक प्रसिद्ध जहाजी कप्तान श्री कुक ने केवल ताजे फल और सब्जियो, विशेषतया नीबू के रस के प्रयोग से रोक दिया। प्राणिमात्र की उनकी इस महान सेवा की स्वीकृतिस्वरूप ही रायल सोसाइटी ने इनको विख्यात कोपले पदक प्रदान किया था।

उपर्युक्त कप्तान के प्रयास से उन दिनो यह पता तो लग ही गया कि ताजे फलो और सब्जियों मे कोई ऐसा प्रभावशाली तत्व जरूर होता है जो स्कर्वी जैसे घातक रोग से भी लोहा लेकर उसको परास्त कर सकता है।

इसके बाद १७४७ ई० के लगभग इंगलैंड के कुछ [illegible] सर्जन, ब्रिटिश सर्जन [illegible] लिण्ड तथा नार्वेजियन सर्जन [illegible] और [illegible] आदि ने भी इस दशा में महत्वपूर्ण प्रयोग किये, जिनका फल यह हुआ कि [illegible] जहाजियों के दिल से स्कर्वी-महारोग का आतंक [illegible]

जाता रहा और स्कर्वी-रोग के होजाने पर केवल ताजे फल और ताजी साग-सब्जियो का व्यवहार करके ही वे अच्छे होने लगे। फिर तो १७९५ ई० में सर गिलबर्ट ब्लेन के प्रयत्न से एक नौ-सेना सम्बन्धी कानून ही पास होगया जिसके अनुसार समुद्र मे काम करने वाले नौ सैनिको के लिए नीबू का रस पीना अनिवार्य होता है।

उन्नीसवी शताब्दि मे १८८० ई० के लगभग एक दूसरा रोग 'बेरीबेरी' जहाजी नौसैनिको मे फिर प्रकाश मे आया। इसमे शरीर की कुछ नाड़ियो मे सूजन आ जाती है और पेशियो मे पक्षाघात हो जाता है। इस रोग का भी मूलच्छेदन जापानी नौसेना के एडमिरल तकाई ने रोगियो को केवल चोकरदार अनाज, छिल्केदार दाल एव फलादि का सेवन कराकर अच्छा कर दिया, जिससे इस तथ्य की और भी पुष्टि होगई कि हमारे प्राकृतिक खाद्य पदार्थों मे कोई ऐसा तत्व जरूर पाया जाता है जिसका प्रयोग स्वास्थ्य-रक्षा एव रोग-निवारण मे रामबाण सिद्ध होता है।

उन्नीसवी शताब्दि के अन्त मे अर्थात् १८९७ के लगभग उपर्युक्त 'बेरीबेरी' रोग जावा द्वीप के एक अस्पताल मे भी बड़ी बुरी तरह से फूट पड़ा। उस अस्पताल के एक डच डाक्टर ईकमैन एव उनके सहकारी श्री ग्रीन्स ने कुछ मुर्गियो जो उसी रोग बेरीबेरी से आक्रांत थी के खाद्य में आकस्मिक परिवर्तन करके यह पता लगा लिया कि बेरीबेरी रोग केवल खोराक मे गड़बड़ी के कारण होता है, साथ ही साथ यह भी कि यह रोग भोजन मे किसी पदार्थ के अभाव से होता है अत उन्होने छिल्केदार फल-सब्जी और दाल, चोकरदार अनाज, एवं कना सहित चावल अपने रोगियो को देना शुरू किया, जिससे उनको आशातीत सफलता मिली। इस खोज के लिये डाक्टर ईकमैन को [illegible] ई० मे संसार विख्यात नोबेल पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया था।

बीसवीं शताब्दि के आरम्भ में अर्थात् [illegible] के करीब, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

तथा यकृत के रोग भी इस लवण की कमी की वजह से होते देखे गये है।

मगनीसम्

यह शरीर मे ताजगी और फुर्ती लाने वाला लवण कहलाता है। त्वचा मे निखार और स्नायुओं मे कार्यशीलता इसीकी बदौलत होती है। यदि यह लवण शरीर मे न हो तो आदमी उदास, काहिल, सुस्त तथा बेकार हो जाय। इसकी कमी से चर्मरोग और अस्थि-रोग भी होते है।

गेहूं, बाजरा, जौ, जई, गाजर, हरी मटर, बकरी का दूध, जीरा, चोकर, बादाम, लेटिस, पालक, चुकन्दर, बंदगोभी, संतरा, नारियल, नीबू, टमाटर, खजूर, अञ्जीर सभी बीज, अण्डा की जर्दी, आलूबोखारा, किशमिश, सेव, बेर, तथा नारंगी मे मगनीसम अधिक पाया जाता है।

हरिन या क्लोरिन

यह खाद्य-गैस 'शरीर का धोबी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह शरीर के जोडो और पेशियों को मलरहित कर उन्हें साफ-सुथरा रखता है। आतो की भी गदगी साफ करके उनकी सदैव रक्षा करना हरिन लवण का ही काम है। यह शरीर के वजन को भी संतुलित अवस्था मे रखता है।

इस लवण की कमी से शरीर मे मल और चर्बी की वृद्धि हो जाती है, तथा अपच, पायरिया, एवं नाड़ी-विकार आदि रोग सताने लगते हैं।

मूली, टमाटर, गाजर, गाय-बकरी का दूध, पनीर, नारियल, पालक, अण्डे की सफेदी, केला, पूरा गेहूं, पातगोभी, नींबू, अनन्नास, खीरा, प्याज, अनार और खजूर मे यह लवण अधिक होता है।

ताम्रम्

यह लोहम लवण से मिलकर रक्त के लाल कणो का पोषण करता है। इसकी कमी से रक्तहीनता, रक्तविकार तथा पाचन की खराबी आदि रोग हो जाते है।

सेव, अंगूर, हरी मटर, अजवायन की पत्ती, हरी तरकारिया, दालो, मेवो, गाजर, तथा करमकल्ला मे यह विशेषरूप से पाया जाता है।

कोबाल्ट लिथियम् ब्रोमाइड तथा अल्मूनियम निकेल संखिया

ये भी शरीर के लिये बड़े आवश्यक खनिज है, कि इनकी आवश्यकता उसको अत्यन्त अल्प मात्रा मे है। फल-सब्जियो से ये उचित मात्रा मे प्राप्त हो जा

७-खाद्योज (Vitamin) का इतिहास

प्रारम्भ मे जब खाद्य पदार्थों मे विटामिन का पता ही लगा था परन्तु उसके विषय मे विशेष खोज हुई थी और न उसका नामकरण ही हुआ था विशेषज्ञो का ख्याल था कि विटामिन 'एमाइन' (विशेष रासायनिक समूह) वर्ग का एक पदार्थ है चूंकि 'एमाइन' वर्ग के पदार्थ जीवन के लिये (Vital) समझे जाते थे, इसीलिये सन् १९१२ केसीमिट फंक नामक एक पोलिश वैज्ञानिक ने (आवश्यक) के अन्तिम दो अक्षरो (Al) को उसमे (एमाइन) Amine जोड़कर Vitamine नाम की उत्पत्ति की। पर उसके आठ वर्ष बाद सन् १९२० ई० में ब्रिटिश खाद्यविभाग के सलाहकार सर जैक ड्रमड के सुझाव पेश करने अंग्रेजी शब्द (Vitamine) का अन्तिम अक्षर देना ही ठीक होगा, क्योकि उन दिनो जितने प्रकार विटामिन विद्वानो को ज्ञात थे, उनमे से कोई भी यनिक तत्वों की श्रेणी मे नही था। ड्रमड यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ और तभी से अंग्रेजी (Vitamine को Vitamin कहा और लिखा जाने कुछ विद्वानो के मत से अंग्रेजी शब्द 'Vitamin' शब्द 'Vita' से बना है जिसका अर्थ Life या होता है।

हिन्दी भाषा-भाषी Vitamin को कोई नाम पुकारते हैं, जैसे, खाद्योज, जीवन, जीवनतत्व, पदार्थ, प्राणसरक्षणीतत्व, जीवरसायन, खाद्यप्राण, जीवोज, सहयोगीतत्व, तथा जीवनीय-तत्व, आयुर्वेदिक कालेज के डाक्टर घाणेकर ने विटामिन लिए 'जीव-तिक्ति' शब्द का प्रयोग किया है। विटामिन के लिए 'खाद्योज' शब्द ही सबसे उत्तम है जो स्व० डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्मा का

ा है।

उपर्युक्त सात खाद्य-तत्वो—प्रत्यामिन, कार्वोज, जल, ोक, खनिज लवण, तथा खाद्योज—मे से इस सातवे-त्र खाद्योज का अनुसन्धान एवं आविष्कार सबसे बाद हुआ है और वह अभी भी जारी है। अभी तक ानिको को लगभग १५ प्रकार के खाद्योजों का पता ग चुका है, मगर कौन कह सकता है कि आगे इस ख्या में वृद्धि न होगी ?

खाद्यपदार्थों मे प्रभावशाली खाद्य-प्राण या खाद्योज विटामिन) की विद्यमानता का सर्वप्रथम पता अठारहवी ताब्दि के आरम्भ में अंग्रेज जहाजियो को लगा हालाकि स समय इस तत्व का नाम खाद्योज (विटामिन) वे ोग न रख सके थे। उन दिनो जहाज से यात्रा करने ालो के लिए आज की-सी सुविधाए न थी, और लम्बी ात्रा में भोजन सम्बन्धी अनेक गड़बड़िओं के कारण वे हाज पर ही रोगग्रस्त हो जाया करते थे। विशेपकर न्हे मसूढों से खून आने लगता था, शरीर की मासपेशियों ं ढीलापन आकर वे बेकाम हो जाती थीं, तथा हृदय-ति बन्द होकर उनकी मृत्यु ही जाती थी। इस जहाजी ोग को उन्ही दिनों 'स्कर्वी' नाम दिया गया था जो आज ी प्रचलित है। उस जमाने मे जहाज पर फैले इस यङ्कर रोग को एक प्रसिद्ध जहाजी कप्तान श्री कुक ने केवल ताजे फल और सब्जियों, विशेषतया नीबू के रस के प्रयोग से रोक दिया। प्राणिमात्र की उनकी इस महान सेवा की स्वीकृतिस्वरूप ही रायल सोसाइटी ने इनको विख्यात कोपले पदक प्रदान किया था।

उपर्युक्त कप्तान के प्रयास से उन दिनो यह पता तो लग ही गया कि ताजे फलो और सब्जियो मे कोई ऐसा प्रभावशाली तत्व जरूर होता है जो स्कर्वी जैसे घातक रोग से भी लोहा लेकर उसको परास्त कर सकता है।

उसके बाद १७४७ ई० के लगभग हंगरी के कुछ सैनिक सर्जन, ब्रिटिश सर्जन जेम्स लिन्ड तथा नार्वेजियन सर्जन होल्स्ट और फोलिश आदि ने भी इस दशा मे सराहनीय प्रयोग किये, जिसका फल यह हुआ कि जहाजियो के दिल से स्कर्वी-महामारी का आतङ्क एकदम जाता रहा और स्कर्वी-रोग के होजाने पर केवल ताजे फल और ताजी साग-सब्जियो का व्यवहार करके ही वे अच्छे होने लगे। फिर तो १७९५ ई० में सर गिलवर्ट व्लेन के प्रयत्न से एक नौ-सेना सम्बन्धी कानून ही पास होगया जिसके अनुसार समुद्र मे काम करने वाले नौ सैनिको के लिए नीबू का रस पीना अनिवार्य होता है।

उन्नीसवी शताब्दि मे १८८० ई० के लगभग एक दूसरा रोग 'वेरीवेरी' जहाजी नौसैनिको मे फिर प्रकाश मे आया। इसमे शरीर की कुछ नाड़ियो मे सूजन आ जाती है और पेशियो मे पक्षाघात हो जाता है। इस रोग का भी मूलच्छेदन जापानी नौसेना के एडमिरल तकाई ने रोगियो को केवल चोकरदार अनाज, छिल्केदार दाल एव फलादि का सेवन कराकर अच्छा कर दिया, जिससे इस तथ्य की ओर भी पुष्टि होगई कि हमारे प्राकृतिक खाद्य पदार्थो में कोई ऐसा तत्व जरूर पाया जाता है जिसका प्रयोग स्वास्थ्य-रक्षा एव रोग-निवारण मे रामबाण सिद्ध होता है।

उन्नीसवी शताब्दि के अन्त मे अर्थात् १८९७ के लगभग उपर्युक्त 'वेरीवेरी' रोग जावा द्वीप के एक अस्पताल मे भी बड़ी बुरी तरह से फूट पड़ा। उस अस्पताल के एक डच डाक्टर ईकमैन एवं उनके सहकारी श्री ग्रीन्स ने कुछ मुर्गियों जो उसी रोग बेरीबेरी से आक्रात थी के खाद्य मे आकस्मिक परिवर्तन करके यह पता लगा लिया कि वेरीवेरी रोग केवल खोराक मे गड़बड़ी के कारण होता है, साथ ही साथ यह भी कि यह रोग भोजन मे किसी पदार्थ के अभाव से होता है अतः उन्होने छिल्केदार फल-सब्जी और दाल, चोकरदार अनाज, एवं कना सहित चावल अपने रोगियो को देना शुरू किया, जिससे उनको आशातीत सफलता मिली। इस खोज के लिये डाक्टर ईकमैन को १९३० ई० मे ससार विख्यात नोवेल पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया था।

बीसवी शताब्दि के आरम्भ मे अर्थात् १९०६ के करीव, विस्कान्सिन मे खाद्यतत्व 'खाद्योज' पर खाद्य-शास्त्री श्री बैबकाल, तथा दो अमेरिकन विद्वान—श्री मैक्कालम और स्टीनबाक के कई महत्वपूर्ण सयुक्त

तथा यकृत के रोग भी उस लवण की कमी की वजह से होते देखे गये है।

मगनीसम्

यह शरीर मे ताजगी और फुर्ती लाने वाला लवण कहलाता है। त्वचा मे निखार और स्नायुओ मे कार्यशीलता इसीकी बदौलत होती है। यदि यह लवण शरीर मे न हो तो आदमी उदास, काहिल, सुस्त तथा बेकार हो जाय। इसकी कमी से चर्मरोग और अस्थि-रोग भी होते है।

गेहू, बाजरा, जौ, जई, गाजर, हरी मटर, बकरी का दूध, जीरा, चोकर, बादाम, लेटिस, पालक, चुकन्दर, बंदगोभी, सतरा, नारियल, नीबू, टमाटर, खजूर, अञ्जीर सभी बीज, अण्डा की जर्दी, आलूबोखारा, किशमिश, सेव, बेर, तथा नारगी मे मगनीसम अधिक पाया जाता है।

हरिन या क्लोरिन

यह खाद्य–गैस 'शरीर का धोबी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह शरीर के जोडो और पेशियो को मलरहित कर उन्हे साफ-सुथरा रखता है। आतो की भी गदगी साफ करके उनकी सदैव रक्षा करना हरिन लवण का ही काम हैं। यह शरीर के वजन को भी सतुलित अवस्था मे रखता है।

इस लवण की कमी से शरीर मे मल और चर्बी की वृद्धि हो जाती है, तथा अपच, पायरिया, एवं नाड़ी-विकार आदि रोग सताने लगते हैं।

मूली, टमाटर, गाजर, गाय-बकरी का दूध, पनीर, नारियल, पालक, अण्डे की सफेदी, केला, पूरा गेहूं, पातगोभी, नींबू, अनन्नास, खीरा, प्याज, अनार और खजूर मे यह लवण अधिक होता है।

ताम्रम्

यह लोहम लवण से मिलकर रक्त के लाल कणो का पोषण करता है। इसकी कमी से रक्तहीनता, रक्तविकार तथा पाचन की खराबी आदि रोग हो जाते है।

सेव, अगूर, हरी मटर, अजवायन की पत्ती, हरी तरकारिया, दालो, मेवो, गाजर, तथा करमकल्ला मे यह विशेषरूप से पाया जाता है।

कोबाल्ट लिथियम् ब्रोमाइड जस्ता अल्मूनियम निकेल संखिया

ये भी शरीर के लिये बडे आवश्यक खनिज है, कि इनकी आवश्यकता उसको अत्यन्त अल्प मात्रा मे है। फल-सब्जियों से ये उचित मात्रा मे प्राप्त हो।

७–खाद्योज (Vitamin) का इतिहास

प्रारम्भ मे जब खाद्य पदार्थो में विटामिन का पता ही लगा था परन्तु उसके विषय मे विशेष खोज हुई थी और न उसका नामकरण ही हुआ था। विशेषज्ञो का ख्याल था कि विटामिन 'एमाइन' (विशेष रासायनिक समूह) वर्ग का एक पदार्थ है। चू कि 'एमाइन' वर्ग के पदार्थ जीवन के लिये (Vital) समझे जाते थे, इसीलिये सन् १९१२ केसीमिट फंक नामक एक पोलिश वैज्ञानिक ने (आवश्यक) के अन्तिम दो अक्षरो (Al) को हटाकर उसमे (एमाइन) Amine जोडकर Vitamine (विटामिन) नाम की उत्पत्ति की। पर उसके आठ वर्ष बाद सन् १९२० ई० में ब्रिटिश खाद्यविभाग के सलाहकार सर जैक ड्रमड के सुझाव पेश करने पर अंग्रेजी शब्द (Vitamine) का अन्तिम अक्षर (E) देना ही ठीक होगा, क्योकि उन दिनो जितने प्रकार विटामिन विद्वानो को ज्ञात थे, उनमे से कोई भी यनिक तत्वो की श्रेणी मे नहीं था। ड्रमड साहब यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ और तभी से अंग्रेजी (Vitamine को Vitamin कहा और लिखा जाने लगा। कुछ विद्वानो के मत से अंग्रेजी शब्द 'Vitamin' शब्द 'Vita' से बना है जिसका अर्थ Life या होता है।

हिन्दी भाषा–भाषी Vitamin को कोई नामों पुकारते हैं, जैसे, खाद्योज, जीवन, जीवनतत्व, प्राणप्रद पदार्थ, प्राणसरक्षणीतत्व, जीवरसायन, खाद्यप्राण, जीवोज, सहयोगीतत्व, तथा जीवनीय-तत्व, खाद्यतत्व आयुर्वेदिक कालेज के डाक्टर घाणेकर ने विटामिन लिए 'जीव-तिक्ति' शब्द का प्रयोग किया है। विटामिन के लिए 'खाद्योज' शब्द ही सबसे उत्तम है जो स्व० डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्मा का

जि वसा स्फोक जल तथा खनिज लवणो के एलावा तोजो का रहना भी अतीव आवश्यक है।

अण्डे और मछली से प्राप्त खाद्योज अधिक मात्रा ने पर हम गाजर पालक मे पाये जाने वाले सप्राण टीन तत्व के ही सेवन किये जाने के पक्षमे हैं कि अण्डे मछली खाकर केवल एक बार में थोड़ा सा खाद्योज ए प्राप्त कर सकेगे जबकि कैरोटिन न खाद्यों के सेवन से शरीर प्राकृतिक ढग से खाद्योज बनाने की स्वय एक मशीन ही हो जाता है जिससे योज 'ए' बनताही रहता है। प्राकृतिक चिकित्सक मांस मछली तथा अण्डा खाने के पक्ष मे अधिक नही उसका यही कारण और रहस्य है। पोषण सम्वन्धी एक अटल सिद्धान्त है कि अपनी स्वाभाविक प्रक्रिया हमारा शरीर जो कुछ ग्रहण करता है शरीर मे लगता है और उसका मूल्य उससे कही धक होता है जो उसे रासायनिक ढग पर तय्यार करके र से दिया जाता हैऔर जिसको अंगीकरण करने लिये रीर के पास कोई प्राकृतिक साधन नही होता उदाहरण लिये शरीर मे चूने (कैलाशियम) की कमी को पान ला चूना खाकर या कैलशियम का इ जेक्शन लेकर उतनी दरता से पूरा नही किया जासकता जितना कि कैलशियम (लशियम) प्रधान खाद्यपदार्थो का समावेश अपने प्रतिन के भोजन मे यथेष्ट मात्रा करके कियाजासकता है।

विभिन्न खाद्य पदार्थो की चार औस (¼ पौड) की मात्रामे कितना कितना युनिट खाद्योज'ए' होता है यह निम्न लिखित तालिका से जाना जा सकता है —

४ औस दूध मे		...	११८	युनिट
,, पनीर	,,	...	२७३	,,
,, मछलीकातेल	,,	...	२०००	,,
,, मास	,,	...	१३००	,,
,, पके पपीते	,,	...	२०२०	,,
,, पके आम	,,	...	४२००	,,
,, कच्चे आम	,,	...	१८६०	,,
,, खजूर	,,	...	६००	,,
,, हरीमर्च	,,	...	४५४	,,
,, फूलगोभी	,,	...	३३०	,,
,, धनियां	,,	...	१५७०	,,
४ औस गाजर मे	,,	...	२०००से४०००	,,
,, पालक	,,	...	२६००	,,
,, वदगोभी	,,	...	२०००	,,
,, चौलाई का साग	,,	...	१४००	,,
,, पोदीना	,,	...	२७००	,,
,, टमाटर	,,	...	३२०	,,

छोटा बच्चा जब जीवन आरम्भ करता है तो पोषण के लिये उसके शरीर मे खाद्योज 'ए' उचित मात्रा मे सञ्चित नही होता। कारण मा के दूध मे साधारणत. इतना खाद्योज 'ए' नही होता कि वच्चे के शरीर मे वह यथेष्ठ मात्रा मेसञ्चित रह सके। इसलिये यह आवश्यक है कि मा के दूध के अतिरिक्त वच्चे को आरम्भ मे ३००० से ७००० युनिट तक खाद्योज 'ए' अलग से दिया जाय। इसी प्रकार एक गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन ६००० और एक वयस्क को ८००० युनिट खाद्योज 'ए' की आवश्यकता कम से कम होती है।

भोजन मे खाद्योज ए के कम होने या बिलकुल ही न होने से शरीर मे अनेक रोगो उठ खडे होते है। उनमे से आख के रोग सर्व प्रधान है। शरीर मे खाद्योज ए की कमी से आखो के पलको के अन्दर की झिल्ली सूख कर दरदरी हो जाती है, अश्रु नलिकाए अपना कार्य करना बन्द कर देती है, पुतलिया सजल होजाती है, रतौधी, मोतियाबिंद तथा अंधापन तक होजाता है। आखो के रोग के अलावा खाद्योज 'ए' की कमी से गुर्दे और मूत्राशय के रोग, बालको मे बाढ़ की रुकावट एव दातो का देर से निकलना और अपुष्ट निकलना गलगंडरोग, वजन घट जाना, खासी, क्षय, निमोनिया शोथ सग्रहणी प्रसूत त्वचाकी खुश्की रक्त की कमी बहरापन लाल ज्वर जुकाम श्वास रोग दात के रोग हृदय रोग तथा स्नायु दौर्वल्य आदि अनेकानेक रोग आ घेरते है जिनसे मुक्ति पाना कठिन हो जाता है।

जिस खाद्य-पदार्थ मे उसका प्राण-खाद्योज नही, वह निर्जीव एवं निस्सार होता है। वह हमारे शरीर के लिए किसी काम का नही हो सकता। ऐसे-निर्जीव खाद्य पदार्थ काफी मात्रा मे खाने पर भी हम वस्तुतः भूखे रह जाते हैं, और भूखो मर सकते है।

जैसा कि ऊपर इंगित किया जा चुका है, खाद्योज, खाद्य पदार्थों मे सूक्ष्म मात्रा में ही पाये जाते है। उदाहर-

प्रयोग गायो और चूहो पर हुये जिनमे उन्हे बडी सफलता मिली। अतः कुछ विद्वान विटामिन के आविष्कारक इन्ही लोगो को, विशेषकर डाक्टर मेक्कालम को मानते है।

यह भी कहा जाता है कि सबसे पहले १९१२ ई० मे कैम्ब्रिज के प्रोफेसर सर फ्रेडरिक गाउलैण्ड हापकिन्स ने कुछ विटामिनो की खोज करके, मनुष्य-शरीर के लिये उनकी उपयोगिता सिद्ध की थी। लेकिन उस समय उन विटामिनो के नाम वह कुछ और रख गये थे।

उसके बाद विटामिन सम्बन्धी अनुसन्धान मे बड़ी तेजी से उन्नति होने लगी। १९१३ ई० मे पोलैण्ड के बायोकेमिस्ट मि० केसीमिर फक ने मुर्गियों और कबूतरो को मशीनी चावल खिलाकर जावा वाले डच डाक्टर ईकमैन के प्रयोगों को दोहराया और परिणामस्वरूप ससार के सम्मुख यह प्रमाणित कर दिया कि हमारे अधिकतर रोगो का कारण मात्र विटामिनो की कमी है।

गत १५ वर्षो में खाद्य बिशेषज्ञो ने लगभग आधे दर्जन विटामिनों का आविष्कार किया है। परन्तु अभी तक उनको किसीने देखा नही है कि वे किस रूप और रग के होते है। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के गर डब्लू० एच० एडी जिनका चित्र नीचे दिया गया है आज भी इस दिशा मे सराहनीय कार्य कर रहे, कहा जाता है सिर्फ इन्ही को विटामिनो के देखने का ...ग्य प्राप्त हुआ है क्योकि वह प्रयोगो द्वारा विटामिनों खाद्य पदार्थो से एकदम अलग कर लेने मे सफलीभूत गये है। ये विटामिन बरफ के टुकडो के समान ... है, ऐसा बताया गया है।
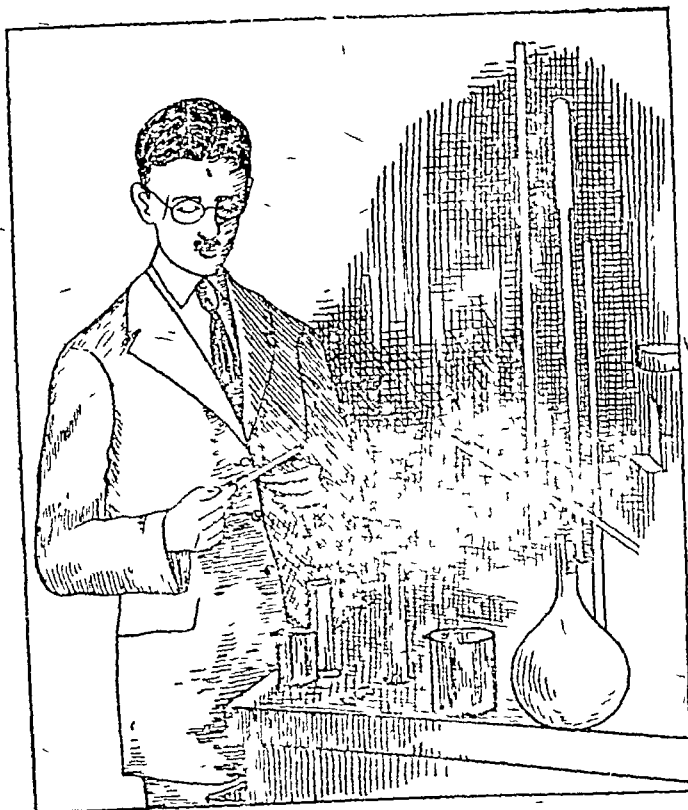
प्रो० डब्लू० एच० एडी, विटामिन विशेषज्ञ

खाद्योज या विटामिन वस्तुतः हैं क्या!

पाश्चात्य विद्वान श्री डीओन विघन के शब्दों "If we compare the human body with an ...ternal combustion engine then ... are like the sparks" अर्थात् यदि हम ... भीतरी कल पुरजो को एक जलता हुआ चालू ... मानले तो उसमे खाद्योजो को चिनगारिया ... चाहिये।

ये खाद्योज, खाद्य पदार्थो मे उनके प्राण रूप से होते है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हमारे शरीर में शक्ति। इनको खाद्य पदार्थों से बिलग करके पैकटो मे बाधकर रखना तथा बोतलो मे सुरक्षित एक प्रकार से असम्भव ही है। क्योकि ये तो खाद्योज खाद्यपदार्थों के सेवन से ही मिलते और लाभ करते हैं खाद्यपदार्थों को प्राकृतिक रूप मे लेने से इनकी उपलब्धि होती है। ये खाद्योज बहुत सूक्ष्म पर अधिक शाली रासायनिक तत्व हैं। खाद्यों में इनके न होने कम होने से आदमी तन्दुरुस्त रह ही नही सकता। ... तरह यदि किसी रोगी को उसके रोग के अनुकूल ... युक्त भोजन उचित मात्रा मे मिले तो उसका रोग ... हो जाता है। कारण खाद्योज ही वे तत्व है जो हमारे ... की वृद्धि और पुष्टि करते हैं तथा उसे निरोग ... रखते हैं। ये हमारे शरीर के भीतरी अवयवो की ... मे भी सहायता करते है तथा छूत के रोगों से हमारी रक्षा करते रहते है। अत खाद्य विशेषज्ञो एव वैज्ञानिक अन्वेषणो से यह निष्कर्ष निकला है कि मनुष्य को ... रहने के लिये तथा आये दिन के रोगो का मुकाबिला ... की शक्ति के लिये उसमे प्रतिदिन के भोजन मे ...

खाद्योज एं', रसदार मीठे फलो और ताजी साग-ब्जियो, जैसे नारङ्गी, बेल, पालक, हरीधनिया, करकंद, गाजर, सहजन, आदि मे अधिक पाया जाता। दूध, मक्खन, मलाई, मछली के तेल मे भी यह अधिक ता है। इनके अलावा सतरा, अनन्नास, अगूर, आम, टर, नीबू, नासपाती, अमरूद, पका कटहल, अलूचा, ची, कमरख, बेर, सेब, पपीता, केला, खजूर, आड़ू, कुरित चना, गेहूं, चावल, बाजरा, मटर, हरीमिर्च, रेला, तरोई, अरवी, कद्दू, बैंगन, लहसुन, भिण्डी, दीना, चौलाई, लालसाग, गोभी, अजवाइन की पत्ती, टिस, हरी मटर, करमकल्ला, नरमबास, पान, सोया-न, आलू, शलजम, मूली, प्याज, ककडी, खीरा कन्दर, सिंघाड़ा, भुट्टा, चने का साग, अदरक, नीम की नी, दही, मठा, घी, पनीर, क्रीम, गुड, चर्बी, अण्डा जर्दी, चिडिया का गोस्त, कलेजी, भेड़ का जिगर, र्य की किरण, कुम्हड़ा, खेसारी, बथुआ, चिचिडा, राई, रहर, मसूर, अञ्जीर, पिस्ता, तथा खूबानी से भी द्योज 'ए' प्राप्त किया जाता है।

खाद्योज 'बी' या 'एफ'

इसे स्वाद-खाद्योज (Appetite Vitamin) भी कहते। यह खाद्योज पानी मे घुलनशील है यही वजह है जो ह रसदार फलो और तरकारियो, जिनमे पानी का अश धिक होता है, अधिक पाया जाता है। खाद्य पदार्थो को धिक पकाने से उनमे स्थित खाद्योज 'बी१' नष्ट हो ता है। पर धूप मे सुखाने या वायु मे रखने से कम नष्ट ता है। इस खाद्योज को सुरक्षित और जीवित रखने के ये खाद्य पदार्थो को बहुत कम या नही पकाना चाहिए। यह खाद्योज, चर्बी या चिकनाई मे नही पाया जाता। न के डिब्बो मे भरकर जो खाद्य-सामग्रिया दूर देशों आती हैं, उनमें भी यह नही पाया जाता। खाद्य पदार्थों वेकिंग पाउडर, तथा तेल-मसाला मिलाने से भी यह ष्ट हो जाता है।

खाद्योज 'बी१' मे एक अत्यन्त आवश्यक तत्व थियामिन' नाम का होता है, जिसकी शरीर में कमी होने बेरीबेरी रोग हो जाता है, जिसमे नाड़ी मण्डल की र्बलता से शरीर को आशिक या पूरा लकवा मार जाता , तथा हृदय की मासपेशियो की कमजोरी से हृदय-गति रुक कर मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है। 'थियामिन' तत्व केला, बिना छंटे और छने अनाजो एव उनकी अकुरियो, कडे छिलका वाले फलो, जैसे मूंगफली आदि मे अधिक मिलता है।

इस खाद्योज का प्रभाव शरीर के स्नायुओ, ज्ञान तन्तुओ, पाचनेन्द्रियो, तथा दिलोजिगर पर विशेषरूप से पड़ता है, जिससे उनका विकास होता है और उन्हे शक्ति मिलती है। शरीर मे इस खाद्योज की कमी या अभाव हो जाने से अपच, स्नायु-विकार, पेट के रोग, बेरीबेरी, नेत्र रोग, बालो का झड़ना, नक्सीर, जननेन्द्रिय से रक्त जाना, निर्बलता, घबड़ाहट, मधुमेह, दमा, गठिया, श्वेतकुष्ठ पागलपन, तपेदिक, जच्चा को दूध होना, तथा मोतियाबिंद आदि रोग सताने लगते है।

पौधो के बीज, अनाजो, विशेषकर गेहू की अकुरी, चोकर, छिलका समेत आलू, पालक, गाजर, प्याज, कना-युक्त चावल कूट, सोयाबीन, मसूर, ज्वार, जौ, मटर, अरहर, अरवी, ककडी, गहरी हरी पत्तियो वाले साग, जैसे अजवाइन की पत्ती, लेटिस, चौलाई, लालसाग, पातगोभी, पोदीना, हरीमटर, शलजम, मेथी का साग, कुम्हड़ा, गोभी, टमाटर, नारङ्गी, अगूर, अनार, आम, नाशपाती, आड़ू, केला, खीरा, अमरूद, लीची, चकोतरा, इमली, नीबू, सेब, कमाना नीबू, हरा चना, पपीता, शकरकद, करेला, भिण्डी, सूरन, तरोई, मूग, अखरोट, मुनक्का, आलूबालू, अजीर, खजूर, मूंगफली, गोद, दूध, मलाई, अण्डा, किशमिश, मास, भेड़ का भेजा, बादाम, तालमखाना, मक्खन तथा पनीर मे खाद्योज 'बी१' पाया जाता है।

खाद्योज 'बी२' या 'जी'

यह अधिक गर्मी सह सकता है, और अधिक देर तक आग पर रखने से भी नष्ट नही होता। क्षारो का प्रभाव भी इस पर नही पडता। यह भी पानी मे घुलनशील है। अत पानी की अधिकता वाले खाद्यपदार्थों मे अधिक पाया जाता है। इस खाद्योज को श्री गोल्ड बर्जर (Gold Berger) ने १९२६ ई० मे खोजा था।

खाद्योज 'बी१' की जितनी खासियते हैं, वे सब कमोवेश इस खाद्योज मे भी विद्यमान होतीं हैं। उनके

णार्थ, काड लिवर-ग्रायल की गिनती खाद्योज डी के सबसे बड़े स्रोतों मे होती है, पर ग्रापको यह जानकर ग्राश्चर्य होगा कि काड लिवर ग्रायल मे यह खाद्योज ४ लाख मे केवल एक भाग के ही ग्रनुपात मे रहता है। ग्रौर यह भी प्रकृति का एक नियम है कि हमारे शरीर निर्वाहार्थ भी हमे बहुत थोड़ी मात्रा में खाद्योजो की ग्रावश्यकता होती है, पर उतने के बिना भी हमारा काम नही चल सकता ।

एक बात ग्रौर भी बड़ी विचित्र है । वह यह कि जो थोड़ा बहुत खाद्योज सूक्ष्म मात्रा मे हमारे प्रतिदिन के खाद्य पदार्थों मे विद्यमान होते है, उन्हे भी हम ग्रपनी मूर्खता से नष्ट कर देते है, ग्रौर ऊपर से उस सर्वथा निष्प्राण भोजन का उपयोग करके हम ग्रक्षय स्वास्थ्य एव दीर्घायु की ग्राशा करते है ।

खाद्य पदार्थों के ग्रावश्यक ग्रौर उपयोगी खाद्योज निम्नलिखित कारणो से नष्ट हो जाते हैः—

(ग्र) खाद्यपदार्थों को ग्राग पर देर तक रखने से ।

(ब) उनमे ग्रधिक मिर्च-मसाला मिलाने से ।

(स) उनको घी या तेल मे तलने से । तथा,

(ह) ग्रनाजो को बिजली की चक्की मे पीसने से ।

(त्र) खाद्यपदार्थों को ग्रधूरा खाने से ।

वैसे तो ग्रबतक १५ प्रकार के विटामिनो (खाद्योजों) का पता लगाया जा चुका है । परन्तु उनमे ६ प्रकार के खाद्योज ही प्रधान है । उसके नाम है—ए, 'ब१' या 'एफ', 'बी२' या 'जी', 'बी३' 'बी४' 'बी'५, 'सी' 'डी' तथा 'ई' ।

रासायानिक ग्रनुसन्धान से यह पता चला है कि पौधो मे एक ऐसा पदार्थ पाया जाता है जिसको यदि भोजन के माध्यम से ग्रहण किया जाय तो हमारा शरीर उस से स्वय तो खाद्योज 'ए' बना सकता है । यह पदार्थ खाद्योज 'ए' से काफी मिलता-जुलता है । उसको वैज्ञानिको ने कैरोटीन नाम दिया है । गाजर, चुकन्दर ग्रौर करमकल्ला मे कैरोटीन बहुतायत से पाया जाता है। ग्राम, पपीता, टमाटर तथा हरे ग्रौर पीले फलो एवं तरकारियो मे भी यह पाया जाता है । शरीर मे कैरोटीनकी उपस्थिति यदि न हो या कम हो तो उसकी खाद्योज 'ए' -दन-शक्ति क्षीण हो जाती है, फलत. शरीर मे खाद्योज 'ए' की कमी हो जाती है, ग्रौर ग्रनेक रोग सताने लगते है । इसलिये हमे कैरोटीन प्रधान खाद्य ग्रधिक मात्रा मे प्रतिदिन खाते रहना चाहिये ताकि उससे खाद्योज 'ए' की कमी शरीर मे पूरी होती रहे ।

खाद्योज ए तेल, घी, ग्रादि वसा वाले पदार्थों मे ग्रासानीसे घुल जाता है इसीलिये घी,दूध ग्रादि वसा वाले पदार्थों मे यह ग्रधिक पाया जाता है । हरे-भरे पौधे सूर्य-रश्मियों के माध्यम से उसे ग्रपने मे ग्रहण करके सुरक्षित रखते है, यही कारण है जो करमकल्ला, लेटिस ग्रादि के बाहरी हरे पत्ते जिधर सूर्य-रश्मिया सीधी पडती है, खाद्योज 'ए' के खजाने होते हैं, ग्रौर यही वजह है जो दूध देने वाले जानवर (गाय, भैस, बकरी) ग्राजादी के साथ खुली चरागाहो, जिनपर सूरज की किरणें पूरी पड़ती हैं, मे घास चरते हैं, ऐसा दूध देते हैं जो खाद्योज 'ए' से भरपूर होता है ।

ग्राग पर देर तक रखने से खाद्यपदार्थों का खाद्योज ए नष्ट हो जाता है । उदाहरणार्थ, किसी बडे कड़ाह या खुले बर्तन मे यदि घी को गरम किया जायगा तो घी मे स्थित खाद्योज ए नष्ट हुये बिना नही रहेगा यही कारण है जो घी या तेल मे तला या तय्यार किया हुग्रा पूर्ण पक्वान हमारे स्वास्थ्य को गिराने वाला है । यह खाद्योज खाद्य पदार्थों को थोड़ी देर तक ग्राग पर रखने से कम नष्ट होता है मगर यह शर्त है कि उस वक्त उसमें हवा न लगने पावे ।

साधारणत. एक व्यक्ति के लिये खाद्योज ए की कितनी ग्रावश्यकता है इसे हम मिलीग्राम या युनिट में नापते हैं । मोटे तौर पर एक व्यक्ति के लिये जरूरी खाद्योज ए प्रतिदिन तीन ग्रौंस कच्ची पत्तीदार शाक-भाजियां खाने से प्राप्त हो सकता है ।

एक स्वस्थ व्यक्ति के लिये १ से २ मिलीग्राम खाद्योज ए या ३ से ६ मिलीग्राम कैरोटीन रोज चाहिये। लगभग ग्राधा सेर मछली के तेल मे ५ से लेकर १५० मिलीग्राम, व ग्रण्डे की जर्दी मे ५ से लेकर २५ मिलीग्राम खाद्योज ए पाया जाता है । ग्राधसेर गाजर मे ३० मिलीग्राम कैरोटीन जिससे शरीर मे १० मिलीग्राम खाद्योज 'ए' उत्पन्न होता है । ग्राधा सेर पालक मे १५ से लेकर ३० मिलीग्राम खाद्योज 'ए' पाया जाता है ।

खाद्योज 'डी'

इसे अंग्रेजी मे Growth-vitamin भी कहते हैं। ो शरीर विकसित और सुडौल बनता है।

वर्षों की खोज के बाद वैज्ञानिको ने पता लगाया है कुछ चिकनाइयो और अन्य खाद्यपदार्थों में अर्गोस्टे- (Argosterol) नाम का एक पदार्थ पाया जाता ो सूर्य की अल्ट्रावायोलेट किरणो के पड़ने से उन ाइयो म खाद्योज 'डी' पैदा करता है। काडलिवर ल, मक्खन, अण्डे, टमाटो, पीली गाजर, दूध, मक्का, गेहू, चोकर तथा पत्तीदार हरी तरकारियो मे इसी विधि ाद्योज डी उत्पन्न होता हैं।

हमारे शरीर की चमड़ी के ठीक नीचे भी चिकनाई एक तह पायी जाती है जो सूर्य-रश्मियो के प्रभाव से रासायनिक द्रव्य पैदा करती है जिसे भारतीय शास्त्रो ाण' कहा गया है। खाद्योज 'डी' इसी प्राण का ा नाम है। अत. इस खाद्योज की प्राप्ति का उचित ा मे धूप-सेवन ही सर्वोत्तम साधन है। सूर्य-ताप मे र शरीर मे तेल की मालिश करने से यह आसानी ाप्त किया जा सकता है। भोजन को कुछ देर तक मे रख छोड़ने से भी उसमे खाद्योज 'डी' की उत्पत्ति जाती है। इस क्रिया को अंग्रेजी मे Irradiation ते है। २० मिनट इस क्रिया के लिये काफी होता है। खाद्योज 'डी' आग पर अधिक देर तक रखने से नष्ट होता। पर पकी हुई चीजें बहुत देर तक बंद करके ने से वह धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। यह चिकनाई ुलनशील होता है। इसीलिये यह दूध, घी, आदि चिक- वाले पदार्थो मे अधिक पाया जाता है।

खाद्योज 'डी' के अभाव मे अपुष्ट अस्थियो के अतिरिक्त भी अनेक रोग हो जाते हैं। उनमे से श्वेतप्रदर, वात, मधुमेह, क्षय, निमोनिया, हृदयरोग, मृगी, डब्बा, तोंद, तथा हिस्टीरिया मुख्य हैं।

सूर्य-किरण, मृगमास, चर्वी, मछली का तेल, चिड़िया गोश्त, अण्डा की जर्दी, गरी का तेल, सरसो का तेल, पक्व फल, नीबू, टमाटर, सन्तरा, पका कटहल, आम, ा, पपीता, गोभी काहू, दूध, पनीर, मलाई, मक्खन, मधु, क्रीम, सोयाबीन, करमकल्ला, गाजर, लेटिस, ज, पुदीना, सहदेवी, वनकपास, विदारीकद, खरेटी, विधारा, गड़ी, मक्का और गेहू के चोकर मे खाद्योज 'डी' पाया जाता है।
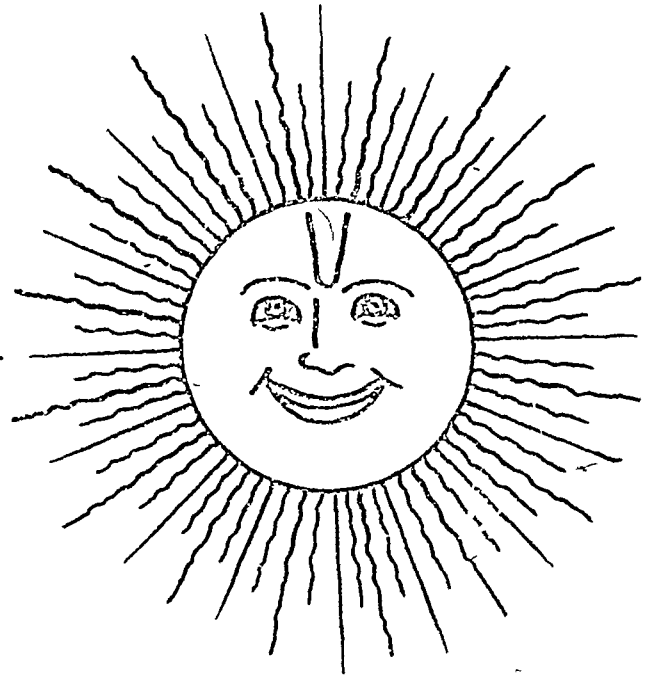
खाद्योज 'डी' का खजाना सूर्य-किरण

खाद्योज 'ई'

इसकी उपस्थिति से ही पुरुषो और स्त्रियो मे बच्चा उत्पन्न करने की क्षमता और शक्ति का आविर्भाव होता है। वीर्य-क्षय से इस खाद्योज का ह्रास होता है। इसके अभाव मे जननेन्द्रिय-सम्बन्धी सभी रोग, बाझपन, नपु- सकता, मा को दूध न होना, पुरुषो मे वीर्य-विकार, शक्ति- हीनता, तथा फोड़े-फुन्सी आदि रोग हो जाते है।

इस खाद्योज पर हवा, क्षार, खटाई, धूप, या आंच का बहुत कम प्रभाव पडता है। वस्तुओ मे सड़न उत्पन्न हो जाने पर ही यह नष्ट होता है। इसीलिये बासी खाद्य- पदार्थ उनके महक जाने पर खाने की मनाही है। खाद्योज 'ई' चिकनाई मे घुल जाता है। इसीलिये दूध, घी, आदि वसा वाले पदार्थो मे यह अधिक पाया जाता है।

चर्बी, जैतून का तेल, बिनौले का तेल, नारियल का तेल, खमीर, अण्डा की जर्दी, अकुरित मक्का, चना, गेहूँ, हर प्रकार का बीज, सोयाबीन, शहद, गुड, तीसी, मक्खन, दूध, नारियल, गाजर, काहू, लहेसुन, पालक, करेमू का साग, हरा पत्तीदार शाक, करमकल्ला, प्याज, सलाद, चुकन्दर की पत्ती, केला आदि ताजे फलो मे यह खाद्योज यथेष्ट मिलता है।

अलावा शरीर की त्वचा तथा नसो की सुन्दरता और स्वास्थ्य को यह विशेषरूप से कायम रखता है।

इस खाद्योज की कमी या अभाव से, सभी प्रकार के रक्त-विकार जैसे, सफेद दाग, ओठो का कटना, जीभ का खुश्क रहना, Pellagara disease अर्थात् त्वचा का चटकना, मुह मे छाला पडना, पेट के रोग, रक्तहीनता, तिल्ली, जननेन्द्रिय रोग, पेट का तपेदिक, दमा, बहुमूत्र, बेरीबेरी, स्नायुरोग, गर्भवती की कै, जच्चा को दूध न होना या कम होना, थकावट, अरुचि, पक्षाघात, तथा मोतियाबिन्द आदि रोग हो जाते हैं।

यह खाद्योज, समूची दाल, अनाज और आलू, फूलगोभी, टमाटर, भटवास, पालक, पातगोभी तथा सूजी मे अधिक पाया जाता है। गेहू की अंकुरी, चोकर, तिन्नी का चावल, सोयाबीन, चना, उर्द, अरहर, मटर, जौ, हरी भाजिया, गाजर, बौडा, कच्चा केला, शकरकंद, जमीकद, शलजम और चुकन्दर की पत्ती, सभी ताजे फलों, दूध, दही, मठा, पनीर, मखाने या दूध मक्खन, खमीर, गोश्त, मछली तथा अण्डा मे भी यह मिलता है।

खाद्योज 'बी' ३

डा. विलियम और वार मैन ने इस खाद्योज को १९२७ ई० मे मालूम किया। इसके विषय मे अभी बहुत कम जाना जा सका है। कहते है, शरीर का वजन बढाने मे यह खाद्योज विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध हुआ है।

खाद्योज बी'४'

१९२९ ई० मे डा० रीडर ने इस खाद्योज को मालूम किया। यह गरमी और क्षारो मे नष्ट हो जाता है। इसके विषय मे भी अभी अनुसन्धान जारी हैं।

खाद्योज 'बी' ५

डा० चिक और कपिंग ने १९३० ई० मे इस खाद्योज का आविष्कार किया। यह गरमी और क्षार मे नष्ट नहीं होता। इसके विषय मे भी अभी बहुत कुछ मालूम होना बाकी है।

खाद्योज 'सी'

एडवर्ड मैलनेबी ने इस खाद्योज का सर्व प्रथम [illegible] किया। उन्होने देखा कि समुद्र यात्रा के समय [स]मुद्री-वायु के फेफड़ो मे पहुँचने से जो कई रोग होते थे वे ताजे फलों और ताजी साग-सब्जियो में पाये जाने [वाले] खाद्योज 'सी' से आराम होजाते थे।

यह खाद्योज क्षारो के साथ मिलाने, धूप में [illegible] तथा आग पर अधिक देर तक रखकर पकाने या [illegible] से नष्ट हो जाता है। हां, अम्ल पदार्थों के साथ [illegible] दिनो तक टिका रहता है। यह जल में घुलनशील [है।] तरकारी उबालकर यदि उसका पानी फेंक दिया [जाय] तो तरकारियो मे स्थित यह खाद्योज भी उसी पा[नी के] साथ बह जायगा और इस तरह से इसके गुणो से [हम] वञ्चित रह जायगा। सब्जियो और तरकारियो में [सूर्य] रश्मियो के प्रभाव से इस खाद्योज की उत्पत्ति होती [है।]

इस खाद्योज का प्रभाव शरीर की पाचन क्रिया [पर] विशेष रूप से पड़ता है। अतः इनकी कमी या अभाव [से] पाचन संस्थान में सबसे पहले गड़बडी होती है, यहां [तक] कि इसके अभाव में पाकस्थली एव आंतो मे छाले पड़ जाते हैं। रक्तविकार, अस्थिगतरोग, गठिया [illegible] दंत रोग, मसूढों का फूलना, और उनसे रक्त [illegible] चर्मरोग, मुख से दुर्गन्धि आना, निर्बलता, रक्तचाप [illegible] बढना, लकवा, गर्भवती की कै, जोडो की जकडन, सूजन, स्कर्वी, सुस्ती, पीलिया, मोतियाबिन्दु तथा [illegible] आदि उपद्रव भी इस खाद्योज की कमी से प्रकाश में आते [हैं।]

नारगी, नीबू, टमाटर, अनन्नास, संतरा, आंवला, मोसम्मी, करमकल्ला, पालक, सोआ, हरीमिर्च, मू[ली की] पत्ती, काहू की पत्ती, आदि खाद्योज 'सी' के खजाने [हैं।]

अंगूर, सेब, केला, अनार, आड़ू, रसभरी, [illegible] नाशपाती, जामुन, पका कटहल, चकोतरा, इमली, [illegible] आम, पपीता, शकरकद, अमरूद, बेंगन, अदरक, [illegible] यल, ककड़ी, तरबूजा, शलजम, गाजर, आलू, [illegible] प्याज, हरी मटर, अजवायन की पत्ती, खीरा, [illegible] हरीधनियां, पुदीना, बंदगोभी, करेला, सहजन, [illegible] सभी अंकुरित अन्न, सोयाबीन, अंजीर, खजूर, [illegible] दूध, तथा मांस मे भी यह खाद्योज मिलता है।

शरीर मे खाद्योज सी की उपस्थिति से तन्तु [illegible] शाली बनते है खून साफ पैदा होता और [illegible] पाचन ठीक-ठीक होता है, शरीर की बाढ में [illegible] की रुकावट नही होने पाती तथा बुढापा [illegible] आने पाता।

अवच्युमन वाले पदार्थ भी कहते हैं। वढते हुए वच्चों के लिये जरूरी है। अधिक लेने से हानि करता है। पचने के वाद वचा अंश विषवत प्रभाव करता है, रोग पैदा करता है विशेषकर गुर्दों और पेट के रोग। इसके साथ फल और तरकारियां जरूर खाई जायें जिससे इसके दोष हानि न पहुचावे। ४० वर्ष की आयु के वाद इसका खाना विलकुल वंद कर देना चाहिये।	जन्य इसके दो प्रकार हैं।		शोथ, और जलोदर।	पत्ती वाले साग और टमाटर। (अरहर)
२—कार्बोज (Carbohydrate) इसे कार्बोदेत और विनत्रजन प्रधान खाद्य भी कहते हैं। श्वेतसार का पाचन मुंह की लार से होता है, अतः इसे	ओषजन, कर्बन, और उदजन के मेल से वनता है। शर्करा प्रधान (Sugary food) तथा श्वेतसार, मांडवाले अथवा पिष्ट तत्व वाले खाद्य (Starchy food) दो प्रकार का होता है।	शक्ति एवं ताप का कारण है। आदमी को मोटा करता है।	निर्बलता, कृषता आदि।	गेहूं※, जौ, राई, चावल※, वाजरा, ज्वार, सावूदाना, कूठ का आटा, सिंवाडा, अरारोट, मक्का, आलू※, मटर की छीमी, वोडा, चुकन्दर, शकरकद※, सूरन, अरुई, वडा। नारियल, केला, संतरा, अंगूर, खजूर, ईख, अमरुद, मुसम्मी, आम, खरवूजा, छुहारा, अंजीर, काजू, आलूवोखारा, मुनक्का, किशमिश आदि मीठे सूखे मेवे। दूध, शहद, गुड※, लालशकर, मिश्री, चीनी, आदि मीठी चीजें। (आलू)

खाद्य-चिकित्सा-चार्ट

इस चार्ट के बनाने में काफी छान बीन करनी पड़ी है, काफी सोचना पड़ा है, तथा सैकड़ों देशी-विदेशी खाद्य सम्बन्धी पुस्तकों का गम्भीर अध्ययन-अनुशीलन करना पडा है कोशिश इस बात की कीगयी है कि चार्ट अपने विषय मे पूर्ण हो और पाठकों को इसे देखने के बाद फिर इस विषय की किसी अन्य प्रकार की खाद्य-सम्बन्धी पुस्तक को उलटने-पलटने का कष्ट न उठाना पड़े।

यह चार्ट डाक्टर और जनता—दोनो के लिए बड़े काम का सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। एक डाक्टर इस चार्ट को देखकर अपने मरीज के लिये अनुपान क्षणमात्र मे निर्धारित कर सकता है, और साधारण जनता इस चार्ट मे दर्शाये गये खाद्य तत्वो को समझकर और तदुनसार अपने भोजन मे सुधार करके अपने स्वास्थ्य को अक्षुण्ण रखसकती है,तथा छोटे-मोटे रोगो से,केवल अपने दैनिक भोजनमें थोडासा परिवर्तन-करके आसानीसे छुटकारा पासकती है।

आयुर्वेद मे एक जगह आया है—'विनापि भेषजै व्याधिं.पथ्यादेव निवर्तते। न तु पथ्य विहीनाना भेषजाना शतैरपि॥' अर्थात् बिना दवा के केवल पथ्य द्वारा ही रोगो से छुटकारा पाया जा सकता है, किन्तु बिना पथ्य के सैकड़ो दवाइयो से भी रोग अच्छा नही होता। इसी बात को अंग्रेजी मे भी कहा गया है—'Diet cures more than Doctors'

हमारे शरीर का निर्माण सात मुख्य तत्वो–प्रत्यामिन, कार्बोज, वसा, स्फोक, जल, खाद्योज तथा खनिज लवण से हुआ है, जिनकी व्याख्या इस चार्ट मे की गयी है। ये ही सात तत्व हमारे खाद्य पदार्थों, जिनसे हमे शक्ति मिलती है, में पाये जाते हैं। किसी मे कोई कम और किसी में कोई अधिक रहता है उपर्युक्त सात मूल तत्वो से निर्मित हमारा शरीर, जब खाद्य पदार्थों के माध्यम से उनमे से एक या कई तत्वो को अपने मे ला नही पाता या कमी-वेशी का अनुभव करता है तो वह रोगी होजाता है। इस तरह हम देखते हैं कि शरीर मे इन सात तत्वों की संतुलित उपस्थिति का ही नाम 'आरोग्य' और कमी-वेशी या अभाव का नाम 'रोग' है।

प्रत्येक व्यक्ति को इस चार्ट का सूक्ष्म अध्ययन करके अपने-अपने अनुकूल आहार का निश्चय करना चाहिये। विशेषकर हमारी गृह देवियो को तो इस विषय का ज्ञान होना अनिवार्य-सा है। क्योकि भोजन तय्यार करने या करवाने का सारा भार प्राय: उन्ही के ऊपर रहता है।

खाद्य तत्व	विश्लेषण और प्रकार	शरीर के भीतर कार्य	रोग जिनमें गुणकारी हैं	खाद्य पदार्थों के नाम जिनमे पाया जाता है जिस खाद्य पदार्थ के सामने यह (*) निशान है उ[illegible] अत्यधिक होता है तथा वह खाद्य पदार्थ जिनमे यह खा[illegible] तत्व सबसे अधिक पाया जाता है अन्त में कोष्ठक [illegible] दिया गया है।
१-प्रत्यामिन (Protien) [illegible]	ओषजन, उदजन, नोषजन, कर्बन, गंधक, [illegible] के संयोग से [illegible] ... [illegible] और [illegible] इसके दो प्रकार हैं।	मांस, बल, एवं ओज बढाता है। शरीर का निर्माण करता है। उसे बढ़ाता है। शरीर के भीतर नष्ट हुए [illegible] ... [illegible] बनते हैं।	दुबलापन, शक्तिहीनता, बच्चों की बाढ का रुकना, घाव भरने में देर [illegible] तथा शरीर के ... [illegible], [illegible]-विकार, रक्ताल्पता, शोथ, और [illegible]	द्विदल अन्न— जैसे चना, मूंग, मटर उर्द, अर[illegible] मसूर, सित, सोयाबीन, सेम, बोका, लोबिया आदि [illegible] ... गेहूं, चावल, बाजरा, जौ। पत्ती वाले साग और टमाटर। (अरहर)

...वेदोल है। रोगों से रक्षा करते हैं। १९ प्रकार के होते हैं, जिनमें 'ए' 'बी'१, 'बी'२ 'डी' 'सी' 'ई' प्रधान हैं।				राई, अरहर, मसूर, गेहू, चावल, बाजरा, मटर, सोयाबीन, मछली का तेल +, अंडा की जर्दी, भेड़ का जिगर, चिड़िया का मांस, धूप (संतरा)
	'बी'१ या 'एफ' वसा मे नही, पानी मे घुलनशील। इसलिए बी१ और बी२ उन चीजो मे पाया जाता है जिनमे पानी अधिक होता है।	स्नायुओं, ज्ञान तन्तुओं, ग्रन्थियों पेशियों, पाचनेन्द्रियों, गुर्दों, दिल व जिगर को शक्ति देता है। शरीर का विकास और पुष्टि करता है।	अपच, घोड़नस के रोग, भूख न लगना, नाड़ी विकार, बाढ की रुकावट, पेट के रोग, बेरीबेरी, नेत्र रोग, बाल झड़ना, नकसीर, जननेन्द्रिय से रक्त जाना दमा. निर्बलता, घबराहट, मधुमेह, गठिया, श्वेत कुष्ट, पेचिश, पागलपन, तपेदिक, संग्रहणी, मां को दूध न होना, चिड़चिड़ापन, मोतीयाबिन्द, आलस।	पौधों के बीज, गेहूं की अंकुरी ❀ चोकर, ❀ पूरा गेहूं, जौ और ज्वार, कना सहित चावल ❀, पूरा आलू ❀, कुट, सोया बीन, मसूर, अरहर, मूंग। गहरी हरी पत्तियों वाले साग, अजवाइन की पत्ती, लेटिस, चौलाई साग, हरी मटर, पालक ❀ पोदीना, कुम्हड़ा, फूलगोभी, शलजम, मेथी का साग, नारंगी, टमाटर, गाजर ❀ अंगूर, अनार, आम, नाशपाती, आड़ू, केला, खीरा, अलूचा, लीची, चकोतरा, इमली, नीबू, सेब, हरा चना, पपीता ❀ प्याज, शकरकंद, करेला, भिंडी, सूरन, तरोई, अखरोट, मुनक्का, आलूबालू, अजीर, खजूर, मूंगफली, गोंद, दूध, मलाई, अण्डा, किशमिश, मांस, मछली, भेड का भेजा, बादाम, तालमखाना, मक्खन, पनीर, खमीर, ताजी ताडी (गाजर)
	'बी'२ या 'जी' पानी मे घुलन शील। आग के संसर्ग से नष्ट।	'बी'१ के सभी कार्य करता है। उसके अतिरिक्त त्वचा और नखों को स्वस्थ और सुन्दर बनाता है।	'बी'१ वाले रोगों के अलावा रक्तहीनता, तिल्ली, स्नायुरोग, गर्भिणी की कै, थकावट, दस्त।	'बी'१ वाले खाद्यों के अतिरिक्त तिन्नी का चावल, भटबांस ❀ कोमल हरी भाजियां, कच्चा केला, जमींकंद, सूजी गोश्त, पूरा द्विदल अन्न (पातगोभी)
	'सी' जल में घुलनशील। आग (ताप) के संसर्ग से नष्ट होजाने वाला। नाजुक विटामिन। पानी की अधिकता वाले खाद्यों में विद्यमान रहने वाला।	रक्त शोधक तन्तुओं को शक्ति देता है। मेदा साफ रखता है। छूत के रोगों से बचाता है। बाढ रुकने नहीं देता। यकृत और पित्ताशय को स्वस्थ रखता है। जीवनीशक्ति को बढाता है। बुढापा जल्द नही आने देता। दांतों को मजबूत करता है।	रक्तचाप बढना, लकवा, गठिया, पायरिया, जोडों की जकड़न, गर्भवती की कै, पेट और आंतों के छाले, पाचन की खराबी, सिरदर्द, बेचैनी, स्कर्वी, पक्षाघात, अस्थिभंग दुर्बलपेशिया, मोतियाबिन्द, पीलिया, चर्मरोग, नकसीर, सुस्ती, गले के रोग, चिड़चिड़ापन, संक्रामक रोग, घाव का न भरना, पस्तहिम्मत होना, दुर्गन्धित सांस, भूख न लगना।	रसदार ताजे मौसिमी फल जैसे नीबू ❀ नारंगी ❀ टमाटर ❀ अंगूर, अनन्नास ❀ संतरा ❀ मुसम्मी ❀ आंवला ❀ सेब, केला अनार. बेल ❀ आड़ू, रसभरी, आलूबालू, नाशपाती, जामुन, पका कटहल, चकोतरा, इमली, लीची. आम, पपीता, अमरूद शकरकंद. बैंगन, अदरक, ककड़ी, नारियल, तरबूजा, हरी और कच्ची साग-सब्जियां, शलजम, गाजर, आलू, करमकल्ला, लेटिस, प्याज, हरीमटर, पालक ❀ अजवाइन की पत्ती, खीरा, लहसुन, हराधनियां, पोदीना, सोया ❀ हरीमिर्च, ❀ मूली की पत्ती, करैला, सहजन, चुकंदर काहू ❀; सभी अंकुरित अन्न, अंजीर, खजूर, मुनक्का, दूध और मांस। (कागजी नीबू)
	'डी' इसे Sun shine vitamin भी कहते हैं।	हड्डियों को बनाता और पुष्ट करता है। दांतों और नसों को सुदृढ	सूखा रोग, अस्थि रोग संधि वात, श्वेतप्रदर, मधुमेह, फेफड़ा	सूर्यकिरण ❀ मछली का तेल ❀ मृगमांस, चर्बी, चिड़िया का गोश्त, ❀ अंडाकी जर्दी ❀ गरीका तेल, दूध ❀ मक्खन ❀

खूब चबाकर ही निगलना चाहिये। इसके साथ पानी पीना ठीक नहीं। इसे छिल्के समेत ही खाना चाहिये।				
३-वसा (Fats) इसे चिकनाई, चर्बी वाले, स्नेहन, अथवा स्निग्ध पदार्थ भी कहते हैं। अधिक वसा लेना हानिकारक है।	ओषजन, उदजन, और कवन के मेल से बनता है। प्राणिजन्य और वनस्पति जन्य-दो प्रकार का होता है।	ताप एवं शक्ति बढ़ाता है। शरीर को सुडौल, मोटा, चिकना और सुन्दर बनाता है।	निर्बलता, कृपता, रुक्षता, शरीर का बेडौलपन, असुन्दरता	काला तिल, सरसों, सोयाबीन महुआ, जैतून, नारियल, अखरोट, मूंगफली, चिलगोजा, गडी, बादाम, सभी प्रकार के तेल और चर्बी। दूध*, घी *, दही, पनीर, मक्खन, गोश्त, मछली, चर्बी, अण्डा। (दूध)
४ स्फोक (C llulose)	कार्बोज से निर्मित वनस्पति जन्य।	मल को आंतों में चिपकने नहीं देता और बाहर निकाल देता है। पाचन में मदद करता है।	कब्ज, मलावरोध।	फलों और तरकारियों के छिल्के और खुज्के (Roughage), अन्नों के कना और छिल्के जैसे गेहूं का चोकर। (तरोई का स्फोक)
५-जल (Water)	उदजन और ओषजन के मेल से बनता है। मृदु (Soft) और कठोर (Hard)—दो प्रकार का होता है।	शरीर की प्रत्येक क्रिया के सम्पादन में योग देता है। शरीर में ६०% इसकी स्थिति आवश्यक है। शरीर को जीवन और शांति प्रदान करता है। शरीर के ताप को सम रखता है।	न्यूनाधिक सभी खाद्य द्रव्यों में विद्यमान रहता है। सभी रोगों में गुणकारी है। इसके बिना जीवन टिक नहीं सकता।	फल, तरकारी, सभी अनाज आदि और जल। (जल)
६-खाद्योज (Vitamin) ये खाद्य द्रव्यों के प्राण होते हैं। इन्हीं की विद्यमानता से खाद्यों में वह शक्ति आती जिससे शरीर ...	'ए' कच्ची चीजों में विशेष होता है। आग पर पकाने से नष्ट हो जाता है। वसा में घुलनशील है, इसलिए वसा वाले पदार्थों में अधिक पाया जाता है। इसे वृद्धि-कारक विटामिन भी ...	आंख, त्वचा, एवं छूत के रोगों से रक्षा करता है। शरीर की वृद्धि तथा ज्ञान तन्तुओं का पुनर्निर्माण एवं उनकी रक्षा करता है। बालकों और नेत्र रोगियों के लिए अत्यावश्यक।	नेत्र रोग, रक्त विकार, फेफड़ों, पाकाशय, गुर्दों, आंतों के रोग, दन्त रोग, बाढ और वजन की कमी, कर्ण-रोग, त्वचा के रोग, नासिका-रोग, हृदय-रोग छूत के रोग, हड्डियों के रोग, स्नायु-रोग।	रसदार मीठे फल*जैसे सन्तरा, नारंगी, अनन्नास, अंगूर, आम, टमाटर, नीबू, नाशपाती, बेल, अमरूद, पका कटहल, अलूचा, इमली, कमरख, बेर, सेब, पपीता, केला, खजूर, आड़ू, आदि। दूध और उसकी चीजें, गुड, अंजीर, पिस्ता, खुबानी, हरी साग-सब्जियां जैसे— पालक* हरी धनियां* पुदीना, चौलाई, लालसाग, गोभी, अजवायन की पत्ती, लेटिस, करमकल्ला, हरीमटर, नरम बांस, पान, गाजर* ...

और फलों मे विशेष रूप मे पाये जाते हैं जो सीधे हमारे शरीरो मे पहुँचकर स्वास्थ्य को उन्नत करते हैं, जबकि खाने वाला नमक हमारे रक्त मे अधिकांश नही मिलता और व्यर्थ ही शरीर के वाहर हो जाता है। अधिक खा लेने से यह नमक हानि करता है।

खनिज लवण शरीर स्थित जलीयअंश जैसे कफ और रक्तादि को गाढ़ा होने से वचाते हैं। इनकी गति शरीर के सभी स्रोतों में होती है। ये शरीर से पसीना, कफ, मल तथा मूत्र को निकालने में सहायता करते हैं। ये भोजन मे रुचि

नैलिन् (Iodine) गल ग्रन्थि चुल्लिका का मुख्य तत्व। गल ग्रन्थि, वृद्धि, कार्यक्षमता एवं विभिन्न रासायनिक क्रियायें सम्पादन करती है।	शरीर मे उत्पन्न होने वाले विषो से मस्तिष्क की रक्षा करता है। गले की और अन्य गिल्टियो को शक्तिदेता है और उन्हें स्वस्थ रखता है। स्थूलता को रोकता है।	वालो का झडना, पकना आदि घेघा, गलगण्ड. वजन की कमी, वोदापन, शरीर के कोषो की अचैतन्यता।	फलो के छिल्को के ठीक नीचे का हरा हिस्सा॰अनन्नास॰तरकारियो के छिल्को के ठीक नीचे का हिस्सा॰ पानी में पैदा होने वाले खाद्य जैसे सिवाडा, कमलगट्टा, दूध, मक्खन, मछली, अण्डे की जर्दी, समुद्रीपदार्थ, सेवार झीगा मछली, समुद्री मछली का तेल, समुद्रजल, लहसुन, (अनन्नास)
मांगनीज (Mangenese)	स्नायुओ को पुष्ट और स्वस्थ रखता है। शरीर मे संतुलन वनाये रखता है।	हिस्टीरिया (गुल्म वायु)	जौ, गेहूं, जई, सरसो का साग, नीवू, नारंगी, टमाटर, वादाम, अण्डे की जर्दी, (सरसो)
शैलम् (Silicon)	सुनने और देखने की शक्ति वढाता है। त्वचा को लचीला वनाता है। तन्तुओ को पुष्ट करता है।	दत, नेत्र, कर्ण, त्वचा तन्तु तथा वालो के रोग।	पूरा जव॰ पूरा गेहूं, लाल नया चावल, छिलका सहित-खीरा॰ सलाद, ताजे फल और साग-सब्जियां, अंजीर (जौ)
पांशुजन (Potassium)	तन्तुओ, हृदय तथा यकृत को शक्ति देता है। घाव जल्द भरता है। स्नायुओं और अस्थियो को पुष्ट करता है	दर्द, चेहरे की झाईं, मुहांसा, दाग आदि कब्ज, शरीर की अम्लता, तिल्ली का वढना।	सेव॰ खीरा॰ आलू का छिल्का, हरीमटर, जैतून, पेशी का मांस तथा अन्य ताजे फल और सब्जियां एवं सूखे मेवे। (सेव)
सैंधकम् (Sodium) पाचक रसायन।	रक्त शोधक इसीके सहारे शरीर में लोहम पहुँचता है, पेशियां लचीली वनती है।	गुर्दे और मेदे के रोग, मधुमेह. अपच, पेट फूलना, पित्त की कमी, वहरापन, मोतियाविन्द।	ककडी॰ सभी ताजे फल और तरकारियां एवं हरे साग, दूध, पनीर, अंडा। (ककडी)
प्लविन् (Flourine) यौवन रक्षिका खाद्य-गैस	पेशियो को पुष्ठ करता है।	आंख और दांत के रोग। छूत के रोग। अस्थियो की वीमारी।	चुकन्दर॰, लहसुन, वन्दगोभी, पालक, फूल और गांठ गोभी, प्याज, काडलिवर आयल, अंडे की जर्दी, वकरी का दूध, पूरे अन्न, पनीर। (चुकन्दर)
गंधक (Sulphur)	वाल, नख, पेशियों एवं तन्तुओं का निर्माण करता है, उम्र बढाता है। अवयवों को साफ रखता है!	त्वचा के रोग, नाडी दौर्वल्य यकृत के रोग, रक्त विकार अम्लता, मधुमेह।	॰टमाटर, मूली, प्याज, फूलगोभी, लेटिस, अजवाइन, की पत्ती, पातगोभी, गाजर, शलजम, सोयावीन, आलू, शफ्तालू, मूंगफली, अनन्नास, सेव, पनीर, अण्डा, मछली, मांस, छिल्कादार मेवा, खमीर, अनाज, छुहारा, अंजीर, दूध, संतरा। (टमाटर)
मगनीसम् (Magnisium)	त्वचा और स्नायुओं को स्वस्थ रखता है। शरीर को ताजगी देता है।	अनिन्द्रा, उदासी, काहिली, सुस्ती, चर्म रोग, नरमअस्थि,	गेहूं, वाजरा, जौ, जई, गाजर, हरी मटर, वकरी का दूध, जीरा, चोकर, वादाम, लेटिस, पालक, चुकन्दर, वन्द-

—खनिज लवण (Mineral salts) ये लवण रक्त [...]धिक, पाचक [...]ौर रोग निवा- [...]क होते हैं। [...]म्लता के असर [...]ो दूर करते हैं [...]ौर अम्लता को [...]ाहर निकालते हैं। इनको खान से निकलने वाला नमक न समझना चाहिये, अपितु हमारे प्रतिदिन के [illegible]

वसा में घुलनशील अतः वसा वाले खाद्यों से प्राप्य। गर्भवती स्त्रियों, दूधपिलाने वालियों, बढ़ते हुए बच्चों, ऊपरी दूध पीने वाले बच्चों तथा अंधेरे मे रहने वालों को यह Vitamin अधिक मात्रा में चाहिए।	और स्वस्थ रखता है। शरीर को चय से बचाता है। अंगों को कुरूप और बेडौल होने से बचाता है। बुढ़ापे को रोकता है। शरीर के कोषों मे खटिकम और स्फुर को उचित मात्रा में पहुचाता है।	के रोग, हृदय रोग, मृगी, कब्ज, हब्बा-डब्बा, शरीर का एंठना, पेट निकल आना, हिस्टीरिया मिट्टी कोयला खाने की आदत, दांतो से नाखून काटना, बाढ रुकना, जुकाम।	वनपक्कफल, नीबू टमाटर, संतरा, पका कटहल, आम, केला, पपीता, गोभी, काहू ꙮ पनीर, मलाई, घी, मधु, क्रीम, सोयाबीन, करमकल्ला, गाजर, लेटिस, हरी सागसब्जी, प्याज, पुदीना, सदहेवी, वनकपास, विदारीकन्द, खिरेटी, विधारा, गडी, सक्रा, चोकर। (सूर्य किरण)
ई (Antisterility or sex Vitamin) वसा में घुलनशील।	जननेन्द्रियों को शक्तिशाली बना कर उन्हें सन्तान उत्पन्न करने के योग्य बनाता है। बुढापा जल्द नही आने देता।	बांझपन नपुंसकता आदि जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग, मां को दूध न होना, अपने को हीन समझने का भाव, फोडा, फुंसी का होते रहना, गर्भपात की बीमारी, वीर्य विकार आदि।	चर्बी, जैतून, बिनौले, नारियल का तेल, खमीर, अंडे की जर्दी, लालगोश्त, अंकुरित अन्न ꙮ अन्नके बीज, शहद गुड, तीसी, दाल, सूखे फल व मेवे मक्खन, दूध, गाजर, काहू ꙮ लहसुन, पालक, करेमू का साग, प्याज, चुकंदर की पत्ती ꙮ ताजेफल, साग(अंकुरित चना)
खटिकम् (Calcium) यह चूना और खड़िया में पाया जाता है, चूना और खडिया को खटिकम नहीं समझना चाहिये। और न शरीर में खटिकम की पूर्ति के लिए चूना और खडिया को काम में लाना चाहिये। बच्चों, गर्भिणी और दूध पिलाने वालियों को इस लवण की अधिक आवश्यकता होती है।	दांत और शरीर की अन्य अस्थियों का पोषण करता है। घावों और अन्य रोगों को अच्छा होने में मदद देता है। हृदय को बल देता है। रक्त को पैदा करता है। और जमाता है। पेशियों को पुष्ट तथा नाड़ियों को सशक्त बनाता है। चय, स्वप्नदोष श्वास रोग से बचाता है। गर्भ की रक्षा करता है। सुन्दर बनाता है।	शरीर में अम्लता का बढना अस्थि-रोग, निर्बलता, कृषता, रक्तदोष, स्नायु दौर्बल्य।	दालें, तिल ꙮ गेहूं का चोकर ꙮ तीसीकी खली ꙮ सोयाबीन, शलजम ꙮ, पालक ꙮ, गरमा, चौलाई, मेथी, अजवाइन, चना के साथ भिण्डी, बंद और फूल गोभी, लेटिस, सहजन, आलू, प्याज, मूली, सेम, गन्ना, पका कटहल, इमली, अलूचा, आड़ू, कमरख, कैथ, चकोतरा, बेर, पपीता रसभरी, जामुन, अमरूद, नारंगी ꙮ टमाटर, गाजर, नीबू ꙮ खीरा, नाशपाती, अंजीर, ताजी ताडी, बादाम, किशमिश, खजूर, मूंगफली, मुनक्का, अखरोट, अंगूर, खूबानी, पिस्ता, दूध ꙮ पनीर, मखनिया दूध, मठा, गुड ꙮ दही, अरण्डा (तिल)
लोहम् (Iron)	जीवन-शक्ति और भूख बढ़ाता है। शरीर की अम्लता को नाश करता है। रक्त, गालों, नसों, ओठों को लाली देता है। स्त्रियों को गर्भ वहन की [illegible]	रक्त हीनता, निर्बलता, पांडुरोग, पाचन और गर्भावस्था की गड़बड़ियां, रक्त का पतला पड़ जाना।	सभी ताजे, पके मौसमी फल विशेष कर खूबानी और गन्ना ꙮ, सभी हरी और ताजी साग-सब्जियां विशेषकर पालक ꙮ, सभी सूखे मेवे विशेषकर किशमिश और खजूर ꙮ, [illegible], अण्डा, दूध, सोयाबीन, पूरी दालें और चोकर

हितकर भोजन

हितकर भोजन के सम्बन्ध मे कुछ लिखने के प्रथम यह यक जान पड़ता है कि हम यह जान लें कि भोजन का हमारा उद्देश्य क्या होता है ?

भोजन का उद्देश्य क्षुधा को जैसे तैसे शान्त करदेना । जिह्वा की परितृप्ति ही नही है, भोजन का यह भी य नहीं है कि उससे केवल हमारा स्थूल शरीर ही या बलवान हो । अपितु भोजन ग्रहण करते हैं हम ये कि उससे हमारे स्थूल शरीर-पोषण के साथ साथ मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य मे भी वृद्धि शरीर मन और आत्मा तीनो के स्वस्थ रहने पर ही र्ण रूपसे स्वस्थरहसकते है इनमे से किसी एक के अस्वस्थ पर हम अपने को पूर्णत. स्वस्थ नही कह सकते । इसी को ध्यान मे रखकर हमारे यहा भोजन को तीन गुणो सात्विक, राजसिक और तामसिक मे विभाजित । गया है जिसमे हमे अपने लिये अच्छे बुरे स्वास्थ्य के उत्तम मध्यम भोजनो के चुनने मेसुविधा हो अर्थात् जो यामिक, मानसिक एव शारीरिक तीनों प्रकार के उत्तम स्थ्य के अभिलाषी हों वे सात्विक भोजन करे जो सिक और शारीरिक स्वास्थ्य के ही इच्छुक हो वे राज- भोजन को चुनें तथा जिनका उद्देश्य केवल शरीर ही बलवान् बनाना है वे तामसिक भोजन से प्रीति करें। र शास्त्रियो का मत है कि बहुत से भोज्य पदार्थ ऐसे ो किसी दृष्टि से शरीर के लिये भले ही लाभदायक त होते हो किन्तु मानसिक वा आध्यात्मिक दृष्टि से गार उत्पन्न करने वाले ही होते है । प्याज को ही लेली- । यह शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से चाहे कितना ही भदायक और गुणकारी हो किन्तु मानसिक और यात्मिक दृष्टियो से वह एक महान उत्तेजक और निम्न- टे का तामसिक भोज्य पदार्थ ही है इसी प्रकार मांस नेसे शरीर मासल भले ही हो जाय परन्तु उससे मान- क वा आध्यात्मिक स्वास्थ्योन्नति की आशा करना शा मात्र ही है ।

स्वामी विवेकानन्द लिखित 'भक्ति-रहस्य' नामक पुस्तक ने से पता चलता है कि ईश्वरकी भक्ति प्राप्त करने अनेक उपायो मे सात्विक वा प्राकृतिक खाद्य का सेवन करना सर्व प्रथम है कारण जिस शक्ति से देह और मन गठित होताहै वह शक्ति खाद्य पदार्थों मे विद्यमान होती है और हमारे पेट मे जाकर जिसका केवल आकार बदलता है प्रत्येक खाद्य का हमारे मन और शरीर दोनो पर अलग अलग प्रबल प्रभाव पडता है कितने खाद्य पदार्थ उत्तेजक होते है जिनके खाने का निग्रह नही होसकता। एक शराबी क्या अपने मन को संयत रख सकता है इसी प्रकार एक मास भक्षक अहिंसा व्रत धारण कर ही नही सकता । अतः यह एक आध्यात्मिक रहस्य है कि मन तब तक शुद्ध नही हो सकता जब तक कि आहार शुद्ध नही होता और ईश्वर की स्मृति तब तक नही बनी रह सकती जब तक कि मन शुद्ध नही होता । आहार शुद्धि के होने से सत्व शुद्धि होती है अर्थात् उस समय मन इन्द्रिय विषय समूह को ग्रहण करके राग, द्वेष, मोह वर्जित होकर शुद्ध हो जाता है और इस रूप से सत्व शुद्धि हो जाने पर मन मे ईश्वर की स्मृति विराजमान होती है ।

उपर्युक्त विचार से यह स्पष्ट हो जाता कि सभी दृष्टियों से हितकर भोजन या सद्आहार का अर्थ सात्विक भोजन ही है सात्विक भोजन करने वाले का शरीर, मन और आत्मा तीनों शुद्ध और पवित्र होते हैं

हितकर भोजन की कसौटी यह है कि वह —

(१) शरीर की शक्ति क्षय का निवारण करने वाला हो
(२) शरीर की वृद्धि करने वाला हो ।
(३) शरीर को उचित ताप प्रदान करने वाला हो
(४) बलकारक हो ।
(५) जल्दी से जल्दी पच कर शरीर मे लगने वाला हो
(६) अनुत्तेजक हो ।
(७) तथा स्मृति, आयु, वर्ण ओज, सत्व एव शोभा का बढ़ाने वाला हो । यथा:—

आहार प्रीणनः सद्योबलकृद्देहधारणः ।
स्मृत्यायु: शक्ति वर्णोजः सत्वशोभा विवर्द्धनः ॥

अब हितकर भोजन का विश्लेषण करके इस विषय पर विशेष प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है ।

१—असंयुक्त आहार

असंयुक्त आहार को अंग्रेजी मे Mono diet कहते

करते हैं, त्वचा के निखार को कायम रखते हैं, तथा वात को नष्ट करते हैं।		शक्ति या साहस प्रदान करता है। आदमी को निर्भीक बनाता है।	अपुष्ट पेशियां निरुत्साहसता।	गोभी, संतरा, नारियल, नीबू, टमाटर, खजूर, अंजीर ❀ सभी बीज, अण्डा की जर्दी, आलूबोखारा, किशमिश, सेव, बेर, नारंगी। (अंजीर)
हमारे शरीर का १।२० भाग खनिज लवणों से बना है। ये प्राणि जन्य और वनस्पती जन्य दो प्रकार के होते हैं।	हरिन् (Chlorine) खाद्य-गैस। शरीर का धोबी।	जोड़ो और पेशियों को ठीक रखता है आंतो का रक्षक। वजन घटाने वाला पाचन का सहायक	अपच। शरीर में मल की वृद्धि। चर्बी की बढती। पायरिया। नाड़ी विकार।	❀ मूली, टमाटर, गाजर, खाने वाला नमक, गाय-बकरी का दूध, पनीर, नारियल, पालक, अंडे की सफेदी, केला, पूरा गेहूँ, पातगोभी, नीबू, अनन्नास, खीरा, प्याज, अनार, खजूर। (मूली)
	ताम्रम् (Copper)	रक्त के लाल कणों का पोषण करता है।	रक्तविकार। रक्तहीनता। पाचन की खराबी।	अंगूर ❀ सेव, हरी मटर, अजवाइन की पत्ती, हरी, साग-सब्जियां, दालें, मेवे, चना, गाजर, टमाटर, पातगोभी। (अंगूर)

(ब) श्वेतसार प्रधान, खाद्यपदार्थो जैसे, गेहूं, जौ, मक्का, बाजरा, चावल, तथा आलू आदि के साथ कच्ची साग सब्जियो (सलाद), ताजे मीठे फलो, मेवों, तथा शर्करा का मेल बहुत ठीक बैठता है। इस सिद्धान्तानुसार नीचे लिखे कुछ नमूने स्वास्थ्यर्द्धक मेल वाले भोजन बनते है।

(१) रोटी और सलाद।
(२) रोटी और शहद या खाड या मधु।
(३) भात और मीठा आम रस।
(४) रोटी और पिण्ड खजूर।
(५) भात और किशमिश।

(स) वसा प्रधान खाद्य पदार्थ आमाशय मे बिलकुल नही पचते। उनका पाचन केवल आतो मे होता है। इस लिये यदि ये पदार्थ, प्रत्यामिन प्रधान वा श्वेतसार प्रधान खाद्य पदार्थों के साथ खाये जाये तो हितकर साबित होगे इस तरह :—

(१) मक्खन के साथ रोटी,
(२) दालो के साथ घी, या मक्खन,
(३) मांस के साथ नारियल या मूंगफली
(४) भात के साथ मलाई या क्रीम, तथा
(५) रोटी के साथ घी, आदि के मेल बहुत लाभकारी सिद्ध होते है और पचकर शरीर मे आसानी से लगते हैं।

(व) श्वेतसार प्रधान और वसा प्रधान खाद्य द्रव्यो के साथ शर्करा प्रधान खाद्य द्रव्यों एवं हरी साग-सब्जियों का मेल खूब बैठता है क्योंकि ये क्षार—मय होती है। जैसे :—

(१) रोटी और मक्खन के साथ सलाद और मुनक्का,
(२) रोटी और घी के साथ सलाद और गुड
(३) भात और मलाई के साथ हरे साग और शहद,
(४) आलू के साथ तेल, गुड, और हरी साग सब्जी
(५) रोटी के साथ, क्रीम, शहद, और साग-सब्जी

(ह) प्रत्यामिन प्रधान खाद्य द्रव्यो के साथ खट्टे फलो या हरी साग-सब्जियों का मेल गुणकारी होता है। जैसे —

(१) दही के साथ सलाद, और दाल,
(२) दही के साथ मास और साग-सब्जी,
(३) दाल के साथ घी और सेव,
(४) आग के साथ मलाई और अण्डा,
(५) दाल के साथ पकी साग-सब्जी और घी।

(र) प्रत्यामिन प्रधान चीजो का एक साथ सेवन करना उत्तम है। परन्तु ऐसे पदार्थ अधिक नही खाने चाहिये। क्योकि प्रत्यामिन वाले भोजनो का अधिक सेवन कभी—कभी विष के समान हानिकारक होता है। नीचे लिखे मेल वाले भोजन गुणकारी होते है यदि वे थोडी मात्रा मे खाये जाये—

(१) चने की रोटी और गाढी दाल,
(२) चने की रोटी और दही,
(३) मास और दाल,
(४) मास और मछली, तथा
(५) अण्डा और चने की रोटी।

३—समुतल भोजन

समुतल भोजन को अंग्रेजी मे Balanced diet कहते है। समुतल भोजन वही है जिसमे आहार-विज्ञान और शरीर-विज्ञान के अनुसार वे सभी चीजे उचित मात्रा में मौजूद हो जो शरीर-निर्वाह के लिये आवश्यक हैं। ऐसे ही भोजन से शरीर का भलीभाति पोषण होता है, उसे पर्याप्त शक्ति और ताप की उपलब्धि होती है, एवं स्वास्थ्य और आयु की वृद्धि होती है। समुतल भोजन मे प्रत्यामिन, कार्बोज, वसा, खनिज लवण, स्फोक, जल, तथा सभी प्रकार के खाद्योज उचित मात्रा मे होते है, जिनसे शरीर की सभी आवश्यकताये पूरी हो जाती है। यदि उपर्युक्त खाद्यतत्वो मे से किसी एक ही खाद्यतत्व का सेवन किया जायगा तो स्वाभाविक है कि उससे शरीर की अनेको अन्य आवश्यकतायें पूरी न हो सकेगी और फलत. शरीर धीरे धीरे गिरकर नष्ट हो जायगा।

समुतल भोजन क्या है? अथवा साधारणत एक मनुष्य प्रतिदिन कौन-कौन वस्तु कितनी-कितनी मात्रा मे खावे जिससे उसकी सभी शारीरिक आवश्यकतायें पूरी हो जायें और वह रोगो से बचा रह. [illegible] स्वास्थ्य और लम्बी आयु प्राप्त करे, अब इस पर विचार किया जाता है।

हैं। इसका मतलब है, एक समय केवल एक ही खाद्य-वस्तु खाना। जैसे एक वक्त कोई एक किस्म का फल खाना और दूसरे वक्त केवल दूध, तथा तीसरे वक्त कोई और खाद्य वस्तु। यह आदर्श असंयुक्त भोजन है। पर यदि किसी कारणवश ऐसा भोजन लेना सम्भव न हो तो एक समय में दो प्रकार के परन्तु मेल वाले भोज्य पदार्थ साथ-साथ खाये जा सकते है। जैसे, फल और दूध, रोटी और गुड़ तथा दाल और दही।

प्रसिद्ध विचारक ह्लीनी ने बडे जोरदार शब्दों में एक बार कहा था कि सबसे अच्छा और लाभप्रद तो यही है कि मनुष्य एक समय मे केवल एक ही चीज खाय अधिक नही।

हम क्यों एक वक्त मे केवल एक ही चीज खाये? इसका भी कारण है। वह यह कि हमारे शरीर के भीतर पहुंचने पर प्रत्येक खाद्य वस्तु की जो हम खाते हैं उनके गुणानुसार, अलग-अलग प्रतिक्रिया होती है। और पचने में वे अलग-अलग समय भी लेते है। अतः यदि हम चाहते है कि हम जो भोजन करते है उसका हमारे शरीर पर अच्छा प्रभाव पड़े, और वह पूर्ण रूप से पचकर हमारे शरीर मे लगे। यह केवल तभी सम्भव है जब कि हम एक समय में केवल एक ही चीज खावे और उसे पूरी तरह पचने का मौका दें। इसके विपरीत यदि एक बार के भोजन में कई तरह की चीजें खायी जायेगी तो पाचन मे गड़बड़ी होनी स्वाभाविक है। कारण शरीर की जीवनी शक्ति को यदि एक ही वक्त मे दो या कई विभिन्न गुण और प्रभाव वाले खाद्य पदार्थो को पचाने का काम सौपा जायगा तो यह बिलकुल निश्चित है कि उनमें से किसी भी खाद्य पदार्थ को वह पूरा-पूरा न पचा सकेगी, और फल उसका रोगोत्पत्ति या बुरा स्वास्थ्य ही होगा। तात्पर्य यह कि हमारे एक वक्त के भोजन मे जितनी विविधता होगी उतनी वे हमारे उत्तम स्वास्थ्य के लिये अहित कर साबित होगे।

२—मेल वाले खाद्य पदार्थ

किन खाद्य पदार्थो का एक साथ खाना उचित और उपयोगी है, इसकी जानकारी प्रत्येक व्यक्ति को होनी चाहिये ससार के आहार-विशेषज्ञो ने आहार शास्त्र का [illegible] करके तथा गम्भीर अन्वेषणों द्वारा आहार सम्बन्धी सिद्धान्त निर्धारित किये हैं जिनका ज्ञान सर्व[illegible] को होना चाहिये। उनमे से मेल वाले खाद्य [illegible] सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्तो को समझ[illegible]सार उनका पालन करना चाहिये.—

(अ) प्रत्यामिन प्रधान चीजों, जैसे मास, मछ[illegible], तथा वेसन आदि के साथ खट्टे फल तथा [illegible] खाना हितकर है। क्योकि प्रत्यामिन खाद्य पदार्थ [illegible]शय मे पाये जाने वाले खट्टे रस से ही पचते है। खट्टी चीजे को खटास, आमाशय के खट्टे पाचक [illegible] मेल खाने की वजह से प्रत्यामिन प्रधान भोज्य प[illegible] पचने मे विघ्न नही डालती अपितु उल्टी सहायता [illegible] है। इस सिद्धान्तानुसार दूध, दही साथ खाना [illegible] हालाकि वहुत से लोग इस मेल को भ्रम से हानि[illegible] वैठे है। इसी सिद्धान्त को सामने रखते हुये [illegible] ताजे फल—विशेषकर खट्टे फलों, जैसे संतरा, [illegible] अंगूर, नीवू, टमाटो, आदि का सयोग सर्वोत्त[illegible] जाता है। यह अनुभव से जाना गया है कि [illegible] नही पचता है, वह यदि दूध पीने के प्रथम [illegible] चूस ले या दो-एक संतरे का रस पी ले तो उसे दू[illegible] पचने लगेगा। क्योकि आमाशय मे दूध के पचने [illegible] यह आवश्यक है कि वह पेट मे जाते ही फट जा[illegible] कार्य के लिये मुंह की लार मे पर्याप्त क्षार [illegible] अत्यन्त आवश्यक है जिससे दूध मुंह मे जाते ही [illegible] आप फट जाता है और इस काविल वन जाता है [illegible] के उत्तम पाचन के लिये उसपर रासायनिक प्रक्रि[illegible] होने लगे। दूध के साथ खट्टे फलो का सेवन इ[illegible] को आसान बना देता है। इसी तरह नीचे लि[illegible] संयोग साध्य आहार कहलायेगे :—

(१) चने की रोटी के साथ टमाटर [illegible] खट्टे फल।

(२) दही के साथ फल।

(३) दाल या मास के साथ खट्टे फल।

(४) मछली या अण्डा के साथ खट्टे फल।

(५) दूध के साथ कागजी लेमू।

क्षारधर्मी खाद्य पदार्थ	अम्लधर्मी खाद्य पदार्थ
सभी ताजे, पके और खट्टे फल (विशेषकर नीबू-जाति के)	मास
धारोष्णदूध	मछली
मठा	अण्डा
हरे साग	पनीर
हरी तरकारियां सम्भवत. छिल्को समेत	गेहूँ, चावल, मकाई आदि अनाज
हरी मटर	रोटी
आलू छिलका समेत	दाले
मूली पत्ती समेत	सूखा मेवा
प्याज	सफेद चीनी और मिश्री आदि
शहद	मिठाइयां
गुड	चाय, काफी, तथा सभी नशे की चीजे
मक्खन	मुरब्बे, अचार, चटनी, खटाई, सिरका आदि
कच्ची गरी	तली हुई चीजे
किशमिश	उबला हुआ दूध
दही मीठा	खीर
गन्ना	मसाले
गाजर	चटपटे
सलाद	डब्बों म बन्द भोजन
हरा चना	तेल
	नमक

...जन के चुनाव में क्षारधर्मी और अम्लधर्मी खाद्यो के ...श ४ और १ के अनुपात की कितनी वडी महत्ता ...र उपयोगिता है।

क्षारधर्मी और अम्लधर्मी खाद्यपदार्थों की सक्षिप्त ...लिका ऊपर दी गई है.—

(व) मोटे हिसाव से सतुलित भोजन—मोटे हिसाब से ...दि हम अपने भोजन में कार्वोज ३/५ भाग, वसा १/५ भाग ...था प्रत्यामिन + खनिज लवण + खाद्योज १/५ रखते हैं, ...ो यह एक साधारण मनुष्य के लिये समतुल भोजन ...मझा जा सकता है। परन्तु मनुष्य की आयु, डीलडौल, ...धा, मौसिम, एव देश वा स्थान के विचार से इस प्रकार ... भोजन मे कमी-वेशी का होना स्वाभाविक है।

(स) सबसे सस्ता समतुल भोजन—हमारे प्रतिदिन के भोजन मे निम्न लिखित खाद्य-तत्व उचित परिमाण मे जरूर मौजूद रहने चाहियें—

कार्वोज	४०८ ग्राम
चर्वी	७३ ग्राम
प्रत्योमिन	७४ ग्राम
खटिकम्	१.०२ ग्राम
स्फुर	१.४७ ग्राम
लोहम्	४४ मिलीग्राम

खाद्योज 'ए'	७०००	पौने दो छटांक मे खाद्योजकी मात्रा (अ० युनिट मे)
खाद्योज 'वी'१	४००	
खाद्योज वी२	काफी	
खाद्योज 'सी'	१७०	

(अ) रक्त में क्षारत्व और अम्लत्व की उपस्थिति की दृष्टि से संतुलित भोजन —

किसी के शरीर का रक्त तभी शुद्ध समझा जाता है जब उसमे रासायनिक प्रक्रिया के फलस्वरूप ८० प्रतिशत क्षारमय और २० प्रतिशत अम्लतत्व हो। अर्थात् यदि हमारे प्रतिदिन के भोजन मे एक हिस्सा अम्लधर्मी खाद्य-पदार्थ हो तो उसमे उसका चौगुना क्षारधर्मी पदार्थ होने चाहिये, तभी हमारे आरोग्य की रक्षा सम्भव हो सकती है, अन्यथा नही। जब शरीर के रक्त मे क्षारत्व और अम्लत्व के इस ४ और १ के अनुपात मे कमी वा वेशी हो जाती है, अथवा जब रुधिर मे, क्षारधर्मी खाद्यपदार्थो के कम उपयोग के कारण, क्षारत्व की कमी और अम्लत्व की बढती हो जाती है तो प्रकृति रुधिर और शरीर के अन्य तन्तुओ मे से क्षारत्व को खीचकर शरीर के पोषण के काम में उसे लगाने के लिये वाध्य होती है, नतीजा यह होता है कि शरीर का रुधिर और अन्य तन्तु जिनसे क्षारत्व खीचलिया जाता है नि.सत्व, निर्बल, और रोगी हो जाते है। स्नायु और मज्जा की रचना के लिये रक्त में अम्लत्व की बहुत थोड़ी मात्रा होनी चाहिये। इससे अधिक अम्लत्व का रुधिर में होना तो उसका विपाक्त बनना और अत्यन्त भयावह है। एक प्रसिद्ध डाक्टर का कथन है कि प्राकृतिक नाम की कोई चीज ही नही है, और प्राकृतिक कारणों से होने वाली जो मौते बताई जाती है वे सभी शरीर मे अम्लता की अधिकता से ही होती है। इसके विपरीत रुधिर मे क्षारत्व वह वस्तु होती है जो छीजे हुये तन्तुओं की मरम्मत करती है, बीज कोषो (Cells) को नवजीवन प्रदान करती है, तथा हमे रोगो से लड़ने की शक्ति देती है। एक वाक्य मे कहना चाहे तो कह सकते हैं कि शरीर मे क्षारत्व के बिना हम एक क्षण भी जीवित नही रह सकते। इसकी वजह यह है कि खून मे क्षारत्व की कमी या अभाव हो जाने से उसमे स्थित श्वेत-कणों की हमारे उत्तम स्वास्थ्य के लिये काम करने की शक्ति क्षीण हो जाती है, तथा शरीर-यन्त्र को सुचारु रूप से परिचालित करने वाली सारी व्यवस्था ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। मधुमेह, नेत्ररोग, सभी प्रकार के ज्वर, दा[illegible] व्याधिया, पेट के रोग, तथा हर प्रकार की पाचन की [illegible] आदि सभी रोग केवल खून मे क्षार की कमी हो जाने से ही उत्पन्न होते हैं। कुछ चोटी के [illegible] मत से मृत्यु की परिभाषा है—अम्ल-विष के [illegible] द्वारा शरीर [illegible] का अन्तिम परिणाम और क्षारत्व का शरीर मे अभाव।

शरीर में जाकर भोजन क्षार अथवा अम्ल [illegible] पदार्थ मे बदल जाता है। भोजन पहले ओपजन की [illegible] से पकता है और तत्पश्चात् जलकर राख बनता है। [illegible] राख मे जो खनिज लवण विद्यमान होते हैं, वे ही शरीर के भीतर गलकर अम्लत्व अथवा क्षारत्व की वृद्धि करते है। कई प्रकार के खनिज-लवण खाद्य पदार्थों में पाये जाते है। उनमे से कुछ जैसे सोडियम, पोटाशियम, कै[illegible]शियम तथा लोहम् आदि शरीर मे क्षारत्व उत्पन्न करते हैं, और आयोडीन, क्लोरीन, सल्फर, तथा फासफोरस आदि अम्लत्व।

किसी खाद्य-वस्तु के स्वाद मे खटास मालूम करके ही उसे अम्लजातीय खाद्य वस्तु वा खटाई नही मान लेना चाहिए। क्योकि किसी भी खाद्य वस्तु की प्रक्रिया [illegible] के बाद आमाशय मे क्या होती है? उसके स्वाद द्वारा निश्चित करना मुश्किल है। उदाहरणार्थ लेमू को ही ले लीजिये यह शत प्रतिशत क्षार धर्मी खाद्य-वस्तु है परन्तु स्वाद मे इससे खट्टा शायद ही कोई अन्य खाद्य-पदार्थ हो। लेमू ही क्यो, लगभग जितने भी ताजे [illegible] फल होते है, सभी क्षारधर्मी होते हैं। क्योकि आमाशय में पहुंचकर ये सभी क्षारधर्मी तत्व के रूप में बदल जाते है और उनका खट्टा अंश उसी मे विलुप्त हो जाता है। क्षारधर्मी खाद्य पदार्थों मे केवल तीन ही प्रकार की खटास पायी जाती है—मैलिक एसिड, टारटरिक एसिड तथा साइट्रिक एसिड, और ये तीनो ही शरीर के लिये अत्यन्त लाभप्रद है। अन्य सभी प्रकार की खटाइया अम्ल-कारक होती है और शरीर को हानि पहुंचाती है। नीबू जातीय सभी फल साइट्रिक एसिड के घर होते है। वेदाना, कालीकिशमिश, तथा टमाटर में भी यह एसिड पाया जाता है। नाशपाती, सेव, अंगूर, और टमाटर मे मैलिक एसिड की प्रचुरता होती है। [illegible] अंगूर केवल उसमे स्थित टारटरिक एसिड के कारण ही एक गुणकारी एव क्षारधर्मी खाद्य पदार्थ प्रसिद्ध है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे

४—सादा और सात्विक भोजन

सरस, स्निग्ध, सारवान, और हृदय ग्राही आहार ात्विक होता है। अधिक कटु, अम्ल, लवण, उष्ण, क्षण, रूक्ष और उग्र आहार राजसिक है, तथा वासी, हीन, दुर्गन्धयुक्त, जूठा, और अपवित्र आहार, तामसिक ़लाता है। सात्विक आहार से आयु, बल, उत्साह, रोग्य, सुख, और प्रीति की वृद्धि होती है, और चित्त सत्वगुण की वृद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है। जसिक आहार से दुःख, शोक, और रोग उत्पन्न होते है र तामसिक आहार से जडता, अज्ञान, कुरोग, तथा ुभाव बढता है। इसलिये विचारवान व्यक्ति सात्विक ाजन से प्रेम और राजसिक एव तामसिक भोजनो से णा करता है।

हम सादा और सात्विक भोजन ही क्यो करे ? इस र छान्दोग्य-श्रुति मे भी विशद रूप से वर्णन मिलता । लिखा है—आमाशय मे पचने के वाद हमारा भोजन ान भागो मे विभक्त हो जाता है। स्थूल निस्सार अ ंश ल बनता है, सार अ ंश से मांसादि वनते है, तथा सूक्ष्म ंश से मन की पुष्टि होती है। जिस प्रकार दधि के थने पर उसका सूक्ष्म अ ंश ऊपर आकर घृत बनता है, उसी कार अन्न के सूक्ष्मांश से मन बनता है। मन अन्नमय ा है। आहार शुद्धि से सत्वशुद्धि, सत्वशुद्धि से ध्रुवा-मृति, और स्मृतिशुद्धि से ससार-ग्रन्थियो का मोचन होता । 'यादृश भक्ष्यते अन्नं बुद्धिर्भवतितादृगी' अर्थात्, हम ैसा भोजन, करते है, बुद्धि वैसी ही हो जाती है। अत. ादि भोजन तामसिक होगा तो हमारा मन, बुद्धि, प्राण व-शरीर तामसिक होगा जिससे ब्रह्मचर्य धारण और ाधना आदि शुभ कर्म असम्भव हो जायगे। और यदि ह राजसिक हुआ तब भी मन और बुद्धि चञ्चल हुये बिना ा रहेगे। इसलिये बुद्धिमानी इसी मे है कि सादा और सात्विक भोजन ही ग्रहण किया जाय।

डाक्टर शाहू कहते है कि यदि सात्विक भोजन न मिले तो केवल खजूर पर रह जाओ मगर तामसिक भोजनो की तरफ आख उठाकर भी न देखो। जब मन चिन्तित, और उदास होवे अन्न छोडकर केवल दूध का सेवन करो, मन प्रफुल्लित हो उठेगा।

५—प्राकृतिक या सप्राण भोजन

जो प्राण से भरपूर है, अथवा सप्राण है, केवल वही हमे प्राण-शक्ति प्रदान कर सकता है, यह प्राकृतिक एक अटल सिद्धान्त है जो भोजन के सम्बन्ध मे भी समान रूप से लागू होता है। निर्वल से बल प्राप्ति की आशा करना निरी मूर्खता है। विश्लेषणात्मक प्रयोगो से यह सिद्ध किया जा चुका है कि ससार की अधिकाश जनता जो भोजन करती है वह ९० प्रतिशत से अधिक निष्प्राण और १० प्रतिशत से कम ही सप्राण होता है। यही कारण है कि सभ्यता के इस विकास के युग मे भी हमारे स्वास्थ्य का विकास नहीं हो पारहा है, और दिन दिन रोगो की संख्या बढती जा रही है।

प्रकृति चाहती है कि खाद्य पदार्थों को हम उनके प्रकृत रूप मे ही खाय और लाभ उठावे। तात्पर्य यह कि फल, मूल, साग सब्जी, अन्न आदि जो भी खाद्य वस्तुएं हमे प्रकृति से जिस रूप मे प्राप्त होती है, उन्हे उसी रूप मे ग्रहण करने से उनके प्राणतत्व खाद्योज, खनिज लवणादि हमारे शरीर को सहज ही मे प्राप्त हो सकते है। पर हम है कि प्रकृति के इस कल्याण आदेश को न मान-कर अपनी निर्बुद्धि से खाद्य-वस्तुओ को, आग के ससर्ग से तल, भुन, एवं उवाल कर, निष्प्राण करके तब खाते है और लाभ के बदले हानि उठाते है। प्रकृति किसी को माफ नहीं करती, यह भी उसका एक नियम है। और प्रकृति के नियमों को भग करना या न मानना रोग तथा उसके नियमो का पालन करना या मानना ही आरोग्य है। आयुर्वेद मे कहा भी है—'प्रकृति स्मामिक्ष् स्मरेत' अर्थात्, प्रकृति का सदैव अनुसरण करो।

इतिहास इस बात का गवाह है कि जब से मनुष्य ने आग पर खाना पकाने की विद्या सीखी तभी से उसका स्वास्थ्य सम्बन्धी पतन आरम्भ हुआ। एक नहीं, बत्तीस वज्र जैसे दांतो को मुंह मे सदैव धारण करने वाले मनुष्य के लिए भोज्य वस्तुओ को आग पर नरम करके खाने की क्रिया प्राकृतिक कदापि नही कही जा सकती।

हर्ष की बात है कि आजकल के कतिपय देशी और विदेशी डाक्टर और वैज्ञानिक अब प्राकृतिक और सप्राण

उपर्युक्त सभी खाद्य तत्व लगभग उचित परिमाण में नीचे लिखे सबसे सस्ते भोजन से प्राप्त किये जासकते है-

खाद्य	मात्रा	खटिकम	स्फुट	लोहम्	'ए'	'बी'1	'बी'2	'सी'	कार्बोज	चर्बी	[illegible]
भुना चना	२ छटाक	.०८	३५	१९.१	*	*	*	*	६७.३ ग्राम	५ ९ ग्राम	२५७
पालक कच्चा	४ छटाक	१४	०२	११.४	६१३०	१६०	*	११०	९.० ग्राम	२.० ग्राम	४२
चोकरसहित आटा	६ छटाक	.१६	१००	१८.०	३६४	६१५	कुछ	*	२४४.२ग्राम	२.१ ग्राम	४०१
उर्द	१ छटाक	.१२	२००	५६	३६,	८०	काफी	*	३४.४ ग्राम	०.८ ग्राम	१३[illegible]
तिल या गुड	२ छटाक	.५१	.२०	७३	१४६	*	*	*	४.३ ग्राम	१४ ४ग्राम	६१
धनिया	१/८ छटाक	०७	.०४	२०	१७४	*	*	*	२.४ ग्राम	१.८ ग्राम	१.६

इस भोजन मे हेर-फेर कर गेहूं की जगह पर जो बाजरा आदि लिया जा सकता है। पालक की जगह अन्य साग,-जैसे चने का साग, सहजन, चौराई तथा लेटिस आदि ले सकते है। भोजन के दो-चार घंटे बाद नाश्ता के तौर पर कोई भी मौसिमी फल खाया जा सकता है।

(ह) एक जवान मजदूर का समतुल भोजन—एक साधारण परिश्रमी युवक के लिए प्रतिदिन ९० ग्राम प्रत्यामिन, ४७५ ग्राम कार्बोज, ६० ग्राम वसा तथा पर्याप्त मात्रा मे खाद्योज और खनिज लवणो की आवश्यकता होती है, जो उसे नीचे लिखे भोजन से प्राप्त हो सकता है।

प्रत्यामिन (दाल या मास) २ छटांक
वसा (घी, मक्खन आदि) आध छटाक
कार्बोज (आटा, कभी-कभी चावल) ८ छटाक
दूध (बदले मे दही, मठा) ८ छटाक
साग-सब्जी ७ छटाक
गुड आध छटाक
जोड़ १ सेर १० छटांक

(र) एक प्रौढ़ व्यक्ति के लिए सतुलित दैनिक [illegible]

रोटी या भात	...	१४ औंस
दाल	...	३ "
हरे पत्तीदार साग	...	४ "
कंद भाजिया (गाजरादि)	...	३ "
अन्य तरकारिया	...	३ "
फल	...	३ "
गुड़	...	२ "
घी, तेल या मक्खन	...	२ "
मछली-मास (बदले मे दूध)	...	३ "
अण्डा (बदले मे मठा या दही)		१ "
दूध	...	१० "

(ल) ससार के किसी भी व्यक्ति के लिये [illegible] दैनिक भोजन—ससार के सुप्रसिद्ध आहार-विशेषज्ञ मिलकर निम्न लिखित एक सर्वाङ्गपूर्ण भोजन [illegible] का निर्माण किया है, और उनका यह दावा है कि [illegible] भोजन ससार के किसी देश के किसी भी व्यक्ति [illegible] एक उत्तम सतुलित दैनिक भोजन का काम करेगा—

	अन्य देशो के किसी भी व्यक्ति के लिये सतुलित भोजन	भारतीय शाकाहारियों के लिये सतुलित भोजन	भारतीय मासाहारियों के लिये संतुलित भोजन
अनाज, साथ में गेहूँ उचित अ श में ...	१० औंस	२० औंस	२० औंस
दाल	×	३ औंस	३ औंस
कद और ठोस भाजी ...	८ औंस	१२ औंस (कद और ठोस भाजी तथा हरे साग, दोनों)	८ औंस
हरे साग ...	८ औंस		
फल	५ औंस	२ औंस	२ औंस
तेल, घी, (वसा) ...	२ औंस	२ औंस	१ औंस
दूध	२१ औंस	८ औंस	८ औंस
मठा	२ औंस	२ औंस	२ औंस
मांस, मछली, अण्डा ...	५ औंस	×	४ औंस

[ग]र्मियो मे मास-मछली की प्रोटीन टिक नही सकती। [क]ारण, मांस मे जो रोगाणु, यूरिया, तथा यूरिक एसिड [आ]दि विषो का बाहुल्य होता है, उससे ये प्राकृतिक मेवे [स]र्वथा मुक्त होते है।

मीठा-मिठाइयो का स्थान खूब पके मीठे फल तथा [श]हद आसानी से ले सकते है। शहद तो एक पचापचाया [भ]ोजन स्वय होता है जो हमारे आमाशय मे जाते ही [प]च जाता है इसमें सैकड़ा ४२ भाग ग्लूकोज होता है। [पि]ड खजूर तथा किशमिश आदि का मीठापन किस चीनी [से] कम होता है? इनमे जो चीनी होती है वह सफेद [च]ीनी से हजार गुना बढ़िया और उपयोगी होती है।

नारियल, दूध, तथा मेवो से हमारे शरीर के लिये [उ]चित चर्बी भी मिल जाती है। खाद्योज और खनिज [ल]वणो के भण्डार ताजे फल होते ही है। फिर हमे चाहिये [ह]ी क्या?

कम लाभकारी भोजन—बे छने आटे की रोटी, कना-[र]ार चावलो का भात, छिल्को सहित और मिर्च मसाला [र]हित आग पर पकी साग-सब्जी, साथ मे कच्ची साग-[स]ब्जियो का थोड़ा सलाद, फल, धारोष्ण दूध, तथा मेवे, [स]र्वोत्कृष्ट भोजन तो नही, पर उससे थोडा कम लाभकारी भोजन जरूर है, और केवल ऐसे ही भोजनो पर रहकर कोई भी अपना जीवन सुखमय बना सकता है।

सबसे कम लाभकारी भोजन—छने आटे की रोटी [प]ालिश किए हुए चावलो का भात, बे छिलके की और मिर्च मसालो सहित आग पर पकी साग-सब्जी, मास-मछली अण्डे, उबाला दूध, छिल्कारहित दाले, तथा अन्य चटपटे भोजन लाभ तो कम पर हानि ही अधिक करते है। ऐसे भोजनो से जहातक हो सके बचना चाहिए।

बहुत से लोग यह समझते हुए भी कि कच्चे, प्राकृतिक, एव सप्राण भोजन परम उपकारी होते हैं, उनका सेवन केवल इसलिए नही करते कि उनमे चटपटे भोजनो की तरह स्वाद नही होता। ऐसे लोगो से लेखक का नम्र निवेदन है कि यदि वे सूक्ष्म दृष्टि से देखे और विचार करे तो पता लगेगा कि असल और सच्चा स्वाद तो खाद्य वस्तुओ की प्राकृतिक-अवस्था मे ही होता है, उनकी विकृत अवस्था मे कदापि नही। चटपटे भोजनो मे जो स्वाद अनुभव होता है वह अपना पैदा किया हुआ और अप्राकृतिक होता है जबकि प्राकृतिक भोजनो का स्वाद नैसर्गिक और स्वाभाविक होता है। यही दोनो स्वादो मे अन्तर है। फिर पुश्तदर पुश्त से बिगड़ी हुई हमारी जीभ भी तो प्राकृतिक खाद्यों के प्राकृतिक स्वाद को भूल चुकी होती है, जिसको याद करके उसमे पुन रसानुभूति के लिए उसे समय और अभ्यास की जरूरत पड़नी स्वाभाविक है।

लेकिन इन पक्तियो को पढ लेने के बाद कोई ऐसा व्यक्ति, जो पुश्तदरपुश्त से अप्राकृतिक और निष्प्राण भोजन करने का आदी है एकाएक कच्चा और सप्राण भोजन करना आरम्भ करदेगा तो वह लाभ के बदले हानि उठा सकता है। कारण, भोजन मे अकस्मात आमूल परिवर्तन उसका निर्बल पाचन-यन्त्र सम्भाल न सकेगा। नतीजा यह होगा कि लाभ के बदले उल्टे हानि हो जायगी। दूसरी वजह यह है कि बरसो से निष्प्राण भोजनो का आदी होने के कारण आमाशय इतना कमजोर बन गया होता है कि वह सप्राण भोजनो को पचा ही नही सकता। यही कारण है जो हमेशा उबला हुआ दूध पीने वाले को कच्चा दूध नही पचता, हमेशा आग पर पकाया हुआ भोजन करने वाले को भीगा और अकुरित चना कब्ज करता है, तथा पुराना अन्न खाने वाले को नयी फसल के जानदार अनाज माफिक नही पडते और दस्त लाते है। इसीलिए ऐसे व्यक्तियो को और उन जीर्ण रोग के रोगियो को जिनकी प्राणशक्ति तेजी से घटने लगती है, आमतौर से एकाएक कच्चा और सप्राण भोजन करने की सलाह नही दी जाती बल्कि धीरे-धीरे अभ्यास बढाते हुए उन्हे निष्प्राण भोजन से सप्राण भोजन पर लाया जाता है।

६—निरामिश भोजन

भारत मे निरामिश भोजन आदि काल से सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। भारत में जितने महान पुरुष हुये है लगभग सभी निरामिष भोजन के पक्ष मे थे और हैं। पर अब तो इस भोजन की उपयोगिता को पाश्चात्य देशो के लोग भी स्वीकार करने लगे हैं। वहा के डाक्टर तक अब अपने रोगियो को सलाह देने लगे हैं कि यदि वे निरोग होना चाहते हैं तो निरामिष आहार करें और मासादि

भोजन के लाभो को समझकर उस पर अधिक जोर देने लगे है।

दातो को रखते हुए वनपक्व खाद्य-वस्तुओ को उनके प्रकृत रूप मे चबा-चबाकर न खाना, दातो की सबसे बडी अनुपयोगिता है। आजकल लोगों मे दांतो की बीमारियां बहुत फैली हुई है, जिसका मुख्य कारण दातो की ठीक कसरत का न होना है और जिन्हे हम वनपक्व आहार आसानी से दूर कर सकते है।

गाधी जी ने 'नवजीवन' पत्र मे एक जगह लिखा है—'वनपक्व अनाज खाकर अगर जीवन निर्वाह किया जा सके तो कृत्रिम अग्नि के ससर्ग से तय्यार की गयी खुराक न ले अथवा बहुत थोड़ी ले। फल और बहुत सी हरी भाजी जो बिना राधे भी खाई जा सकती है, खानी चाहिए। लेकिन कच्ची हरी भाजी की खुराक का परिमाण बहुत थोड़ा रखना चाहिए। दो तीन तोला कच्ची हरी भाजी से काफी पोषण मिल जाता है। मिठाई-मसालो वगैरः का एकदम खाकर त्याग करना चाहिए।"

एक खास बात कच्चे खाद्यो के सम्बन्ध मे ऐसी है जिसका अनुभव लगभग सभी को हुआ होगा। वह यह कि जिस परिमाण मे पका हुआ खाद्य खाया जाना सम्भव होता है, उसके केवल आधे या इससे भी कम परिमाण में उसी खाद्य को कच्चा खाकर जीवन की आवश्यकताए पूरी की जा सकती है। अर्थात् आग पर पके हुए खाद्य पदार्थ खा तो जाते है अधिक, पर लाभ करते है कम। और कच्चे खाद्य द्रव्यो को थोड़े परिमाण मे ही खाने से पेट भर जाता है, पर लाभ कही अधिक होता है। उदाहरण के लिए आध सेर पालक का पका साग कोई भी खा सकता है, मगर उतना ही कच्चा साग कदाचित ही कोई खा सके। और उतने कच्चे साग खाने की किसी को जरूरत भी नही है। क्योंकि जितना लाभ आधसेर पका साग खाने से हो सकता है, उससे कही अधिक लाभ छटाक, डेढ़ छटाक कच्चे साग खाकर ही आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह कम खाद्य से अधिक लाभ की प्राप्ति, प्रकृति भोजन की सबसे बडी विशेषता है।

दूसरी बडी विशेषता प्राकृतिक खाद्य पदार्थो की जो है, वह है उनका निर्दोष होना। केवल इतना ही नही, प्राकृतिक खाद्य स्वय तो निर्दोष होते ही है, साथ ही साथ जो व्यक्ति उसका सेवन करता है उसके शरीर का कायाकल्प करके उसे निर्दोष बना देते हैं। ऐसे न अन्तड़ियो मे जाकर वहा सडन नही पैदा करते, वहा जाकर अन्तड़ियो मे रहने वाले घातक रोगाणुओं नष्ट करके शरीर के लिये उपकारी जीवाणुओं को करते हैं। इसके उपरात प्राकृतिक खाद्य पूर्णतया क्षार होने की वजह से, उसका क्षार रक्त के अम्लत्व को करके शरीर को शुद्ध और रोगमुक्त करता है। अत: होने पर तो सप्राण भोजन जरूर ही करने चाहिये रोग से जल्दी निवृत्ति हो जाय।

परम लाभकारी भोजन—खाद्य सम्बन्धी वैज्ञानिक विवेचन के पश्चात हम बिना शक व सन्देह कह सकते है कि हमारा परम लाभकारी भोजन कोई हो सकता है तो वह सप्राण और प्राकृतिक भोजन ही है। अर्थात् वे भोजन जो ताजे फलो, कच्ची सब्जियो, तुरत के दुहे हुए दूध, एव शहद और मेवों रूप मे हमें सीधे प्रकृति से प्राप्त होते है। ये ही भोजन अमृतखाद्य कहलाते हैं। अर्थात ऐसे खाद्य अग्नि के ससर्ग में आकर एव मिर्च-मसालों से मिश्रित होकर मर नही गये होते। सभी अन्न जो हरे ताजे पानी मे भिगोकर अंकुरित किये हुए होते हैं, भोजनो की कोटि में आते हैं। जैसे फसल के जमने का ताजा हरा गेहूं, जौ, चना, मटर, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि अमृतान्न, तथा भिगोकर नर्म और अंकुरित हुए सभी प्रकार के अन्न-बीज कच्चा, और धारोष्ण तो अमृत ही है, जिसके सम्बन्ध मे दो राये हो ही नहीं सकती। डाक्टर केलाग ने एक जगह लिखा है कि बार कुछ बछड़ों को उबाला हुआ दूध पिलाकर रखा उनमें से ९० प्रतिशत बछडे मर गये, इसी एक बात अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उबला दूध कितना हानिकारक होता है और कच्चा दूध कितना कारक।

दूध से हमे प्रोटीन की उपलब्धि होती है। इसी प्रकार बादाम, अखरोट, तथा मूगफली आदि मेवो से भी हम अच्छी किस्म की प्रोटीन ग्रहण कर सकते है। अखरोट में प्रोटीन की मात्रा सैकड़े १६, व दाम मे २१, तथा फली मे २७ भाग होती है। इन मेवो की प्रोटीन

रण से साधारण व्यक्तियो द्वारा भी असम्भव हो ी। ऋतु अनुसार भोजन सर्वोत्कृष्ट और पूर्णरूपेण, ित भोजन होता है जो हमे प्रत्येक साल प्रत्येक ऋतु ाप्त होता रहता है।

कौन सी वस्तु किस ऋतु मे किस प्रकार के शरीर ाए किस प्रकार से सेवन की जाय जिससे शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य सुधरे इससे पश्चिमी चिकित्सा ो अनभिज्ञ है। युरोप आदि शीत प्रधान देशो मे अधिक होने के कारण एक सी ही खाद्य वस्तुओं के हों-मास सेवन करने से तद्देशवासियो का काम बन ा है, परन्तु भारत जैसे गरम देश मे न तो यह नियम लागू हो सकता और न वैसे भोजन कारामद ही सिद्ध कते है। यहा तो एक नही साल मे छ-छ ऋतुए होती और सब एक से एक बलवान और सभी का असर के रहने वाले मनुष्यो, पशु-पक्षियो, जल वायु, बन-ते, वृक्ष, अन्न, फल, तथा साग सब्जी पर पडता है। की वजह से अपने आहार बिहार मे समय समय पर रिवर्तन करते रहने के लिए प्रकृति हमें एक तरह से य करती है। और यदि हम ऐसा नही करते है तो र हमे अस्वस्थ रहने की शिकायत भी नही करनी हिए।

कुछ विशेष हितकर भोजन

दूध ही एक ऐसा भोजन है, जिसमें प्रत्या-न, कार्बोज दुग्ध शर्करा, खनिज लवण, वसा तथा ाद्योज आदि मनुष्य-शरीर पोषणोपयोगी सभी खाद्य-त्व आवश्यकतानुसार विद्यमान होने के कारण उससे रीर का निर्माण, संरक्षण, एवं पोषण तीनो होते है। ध सचमुच मनुष्य का एक सर्वाङ्गपूर्ण एव पौष्टिक ोजन है जिस पर एक नवजात शिशु सालो रहकर बढता, नपता तथा पुष्ट होता है,

दूध मे दो प्रकार से प्रत्यामिन पाये जाते है। एक वलेय प्रत्यामिन जिसको अलव्युमिन भी कहते है और सरा अविलेय प्रत्यामिन जिसका दूसरा नाम दधिन है ये दोनो अच्छी किस्म के प्रत्यामिन होते है। दूध की प्रत्यामिन मे स्फुर-तत्व पाया जाता है यही दूध की प्रत्यामिन की विशेपता है। इससे शरीर असाधारण रूप से पुष्ट हो जाता है।

दूध एक वसा खाद्य प्रधान है जो शरीर को ताप और शक्ति देता है। दूध के वसा अणु इतने सूक्ष्म होते है कि आसानी से और शीघ्रातिशीघ्र शरीर की रक्त--प्रदायनी प्रणालियों मे घुसकर उन्हे पोषण देने मे सफलीभूत हो जाते हैं। वसा-अणुओ का यह नैसर्गिक गुण, दूध को गरम करने से नष्ट हो जाता है क्योकि दूध को गरम करते ही ये अणु पिघल और सिमिट कर दूध की सतह पर खिच आते है और फिर सिवा स्वाद के और किसी काम के नही रह जाते। इसी वजह से दूध को गरम कर के पीना व्यर्थ है। और इसी वजह से बच्चे को दूध पीने के लिए मा के स्तन मे दूध की ऐसी व्यवस्था है कि वह बिना आग पर रखे ही बच्चे के मुह मे सीधे चला जाय और वहा से पेट में पहुच कर पूरा-पूरा लाभ पहु चावे।

दूध मे पायी जाने वाली शक्कर, दुग्ध या लेक्टोज कहलाती है। दुग्ध शर्करा सफेदी मे तो मिल की चीनी जसी ही होती है परन्तु मिठास में साधारण चीनी से कुछ कम होती है। यही कारण है कि अधिक दिनो तक दूध पर रहने पर भी दूध से जी नही ऊबता। यह पाचक भी होता है और शीघ्र पचनशील भी।

दूध में सोडियम, लोहा, कैल्शियम, पोटाशियम, मैग्नीशियम, सल्फर, फास्फो स, क्लोरीन, तथा आयोडीन आदि कई प्रकार के उपयोगी खनिज लवणो की भरमार होती है, जो शरीर-रक्षा के लिए बडे जरूरी होते है। इन्ही से शरीर मे मज्जा की उत्पत्ति होती है, मासपेशियो का निर्माण होता है, शरीर मे बल आता है, मस्तिष्क तथा रक्तवाहिनी नलिकाओ का गठन होता है और शरीर की अस्थियः बनती और पुष्ट होती है।

दूध मे एक साथ ही पाच-पाच खाद्योज-'ए' 'बी' 'सी' 'डी' तथा 'ई' विद्यमान होते है, जिनकी उपयोगिता के बारे मे कहना ही क्या।

इसके अतिरिक्त दूध मे हारमोन और एन्जाइन आदि तत्व तथा डायस्टोस और गेलेक्टोस नाम के दो खमीर भी पाये जाते है जिनसे दूध की उपादेयता और बढ जाती है और वह इस पृथ्वी का अमृत सचमुच बन जाता है।

आयुर्वेदानुसार दूध स्निग्ध, ओजवर्द्धक, धातुवर्द्धक, वृष्य, स्फूर्तिदायक, रसायन, बुद्धिवर्द्धक तथा बल-कारक

खाना बिलकुल छोड़ दें। डाक्टरों की इस सलाह को मान कर वहा कितने ही रोगियो ने आशातीत लाभ उठाया है और उठा रहे है। 'इण्डियन डेलीमेल' के सस्थापक फ्रेडरीक होल सिगर का बहुत पुराना गठिया रोग केवल निरामिष आहार से ही सदा के लिए जाता रहा। संसार का प्रसिद्ध साहित्यिक बर्नार्ड शा, विश्वविचारक रोमारोलां, सर स्टफोर्ड क्रिप्स. तथा हमारे राष्ट्रपिता महात्मागाधी—सभी निरामिष भोजी थे।

"गत युरोपीय महायुद्ध के अन्त में जब डेनमार्क पर षड़ी कड़ी नाकाबन्दी थी और वहा के निवासी भूखो मरने के खतरे मे थे तो, डाक्टर हिन्डहीड लिखता है—"मुझे खाद्य नियन्त्रण करने को कहा गया। मैने लोगो को मुख्यतः निरामिष आहार पर रखा।······बारह महीने, अर्थात् अक्टूबर १९१७ से अक्टूबर १९१८ तक डेनमार्क वासी इस आहार पर रहे। उसका परिणाम यह हुआ कि कोपेनहेगन का मृत्यु अनुपात नीचे लिखे अनुसार घट गया:—

औसत	
१८९०—१८९१	१५८२
१९००—१९०४	१४५०
१९०५—१९०९	१४६१
१९१०—१९१४	१३७१
१९१५—१९१६	१३८६
१९१७	१२३६
अक्टूबर १९१७ से अक्टूबर १९१८	९८५

मृत्यु अनुपात मे यह कमी आश्चर्यजनक कही जा सकती है।············मै खुद निरामिषाहारी और शाकाहार का पक्षपाती भी केवल इसलिए नही कि मुझे यह अच्छा लगता है वर इसलिए कि मै शाकाहार को ठीक मानता हू।···········आहार शास्त्रियों का एक समूह (और मै उसी समूह मे हूं) जो मानता है कि मासप्रोटीन और अण्डे का प्रोटीन बहुत अधिक परिमाण मे खाना पाचन यन्त्र, अंतड़ी, जिगर, गुर्दे शिराओ और धमनियो और धमनियो में विष फैलाने वाला होता है।··· ·····,,

७—ऋतु अनुसार भोजन

जिस ऋतु मे जो खाद्य-वस्तु उत्पन्न हो उसीको व्यवहार लाना, ऋतु अनुसार भोजन कहलाता है जो स्वास्थ्य के लिए हितकर और कल्याणकारी होता है। यथा आम गर्मी और बरसात मे उत्पन्न हो पक कर खाने योग्य होता है। अत. आमख कर भरपूर लाभ उठाया जा सकता है। लोग आम तरकीबो से सुरक्षित रखकर अकसर जाडो मे जो एक फजूल-सी बात है। कारण, उन सुरक्षित उतने दिनों स्वाद न खुश्बू रह जाती है, न स्वाद, वे कुछ लाभ ही करते है। इसलिए बुद्धिमानी कि प्रत्येक ऋतु मे पैदा होने वाले खाद्य-पदार्थों का किया जाय।

खाद्य वस्तुओ का ऋतु विशेष से बड़ा गहरा होता है। जिस ऋतु मे जिन रोगो के उत्पन्न हो सम्भावना रहती है उस ऋतु मे प्रकृति बहुधा खाद्य वस्तुये उत्पन्न करती है जिनसे उन रोगो को होने मे मदद मिले। यह प्रकृति की हमारे कल्याण लिए दूरदर्शिता है। इसमें तनिक भी सदेह नहीं कि यदि हम ऋतु अनुसार भोजन प्रतिवर्ष कड़ाई से करने लगे तो हमे १०० वर्ष की आयु और उत्तम दोनो सहज ही मे प्राप्त हो जाएगे।

जिस देश मे जो खाद्य वस्तुएं जिस मौसम मे होती है, उस देशमे वे उसी मौसममे खाये जानेसे अनुकूल पड़ती और उनमे प्रकृतित उन्हे रसो और खाद्य तत्वो की प्राप्ति होती है जिन रसो और खाद्य तत्वो की उस मौसम आवश्यकता होती है। सभी रस या सभी उन खाद्यतत्व किसी मौसम में उपजने वाले किसी एक वस्तु में ही नहीं उपलब्ध हो सकते इसीलिये प्रकृति मौसिम मे केवल एक ही नही अपितु अनेक [illegible] विविध रसो और खाद्य तत्वो से परिपूरित उत्पन्न यह उसकी महती कृपा है। और इसी लिये हम मौसम मे उपजने वाली प्रत्येक खाद्य वस्तु [illegible] भोजन में हेर फेर करके स्थान देकर सभी रसो [illegible] लेते हुए उनमें स्थित सभी खाद्य तत्वो से लाभ [illegible] चाहिए। अतः यह एक मानी हुई बात है कि [illegible] प्रत्येक मौसम मे उपजने वाले खाद्य पदार्थो [illegible] उस मौसम मे समझदारी के साथ करने [illegible] भोजन के गलत चुनावों के कारण जो [illegible] बड़े बड़े आहार शास्त्रियो तक से हो जाया करती

ध चिकित्सा किसी अनुभवी दुग्ध-चिकित्सक की निग-
रे ही होनी चाहिये ।

ागुन चैत वा क्वार, कातिक के महीने इस चिकि-
लिये अधिक उपयुक्त होते है चिकित्सा स्थान किसी
जगह मे जैसे वाटिका,उपवन आदि मे होना चाहिये ।
ो चाहिये कि दुग्ध-चिकित्सा आरम्भ करने के कुछ
हले से ही अपने अन्नादि के भोजन मे धीरे धीरे
रते करते केवल दूध और फलपर आजावे और वाद
को भी छोड़कर केवल दूध लेने लग जाना चाहिये
ात् नियमपूर्वक दुग्ध-चिकित्सा आरम्भ कर देनी
।

ध चिकित्सा से लाभ का क्रम जानने के लिये दुग्ध-
सा करने के पहले रोगी का वजन ,ऊचाई, गर्दन,
ड,एवं जंघा आदि का नाप लेना चाहिये। उसी वक्त देश
रोगी की प्रकृति, दूध की मात्रा एव उसके समय
रे तौर से विचार कर लेना चाहिये ।

वच्छन्द रूप से जगल और चारगाहो मे चरने वाली
ा बकरी का दूध कल्प के लिये लेना चाहिये। उसका
धारोष्ण होना भी जरूरी है ऐसा न हो सके तो सवेरे
ा हुआ दूध भी दिनभर काम मे लाया जा सकता है
। सुबह और शाम दोनों वक्त ताजा दूध दुहाकर काम
े,गरम किया हुआ दूध, दूध कल्प के काम का नही
। कल्प वाले दूध मे मिश्री आदि भी मिलाना मना है ।
दूध-कल्प जव तक चलता रहे तव तक सिवा दूध के
भी खाना पीना नही चाहिये । जल पीना भी वर्जित है।
देवो एक दुध मु ह बच्चे के सदृश आनन्द मग्न रहना
ये और पूर्ण विश्राम करना चाहिये । प्रतिदिन प्रात.
नियमपूर्वक गुनगुने जल से स्नान करना भी कल्प के
अत्यन्त ावश्यक है ।

एक अमेरिकन दुग्धचिकित्सक के मतानुसार रोगी
ने फुट लम्बा हो उसे उतने ही सेर दूध २४घटो मे पी
ा चाहिये और जितने सेर दूध उसे २४ घटो मे पीना
सके दो तिहाई को दिन मे तथा एक तिहाई को रात
ेना चाहिये और जितने सेर दूध उसे २४ घटो मे पीना
तने ही औंस दूध प्रतिबार आध आध घटे के अन्तर
ेना चाहिये परन्तु दुग्ध-कल्प का करनेवाला अपनी
ति के अनुकूल अपनी आवश्यकता स्वय समझकर भी
दूध का परिमाण निर्धारित कर सकता है और बाद मे
जैसे जैसे आवश्यकता पड़ती जाय उसके अनुसार उसमे
वृद्धि भी की जा सकती है । हर हालत मे आधे घटे बाद
आधा आधा सेर दूध जरूर पीना चाहिये रात्रि मे दूध
वंद रखे ।

दूध को शुद्ध वर्तन मे लेकर उसे चम्मच से थोड़ा थोड़ा
मुह मे डालकर और भोजन के ग्रास की तरह चवाकर
तव निगलना चाहिये ताकि मुंह का राल भलीभाति उस
मे मिल सके । कल्प मे दूध को पचाने के लिये औषधियों
का व्यवहार भूल से भी नही करना चाहिये ।

कल्प के दिनो मे दूध कल्प के असर से दवे रोग
उभड़ते है और उभड़कर सदा के लिये चले जाते है ।
अतः उनसे डरने के बजाय खुश होना चाहिये फिरभी यदि
दूध अरुचि या वायु उत्पन्न करे और गुड गुड बोले तो
प्रातः काल दूध का सेवन करने से एक घटा पहले दो
चम्मच ठडे जलमे एक या आधे कागजी नीवू का रस निचो-
ड़कर पी जाय गुडगुड़ाहट अधिक होनेपर जब जब दूधपीवे
उसमे पाच या सात वूंद नीवू का रस मिलाकर पीवे लाभ
होगा । यदि इन उपचारो से पेट की गुडगुडाहट शान्त न ही
तो दूध का पीना एक दम बन्द करके दो तीन दिनो का उपवास
कर डाले और तत्पश्चात् दूध का पीना पुन आरम्भ कर
यही उपचार कल्प के दिन मे कब्ज,दस्त, ज्वर, मतली तथा
सर दर्द आदि उपद्रवो के होने पर भी करे और तकलीफ
अधिक बढने पर किसी अनुभवी दुग्ध-चिकित्सक से सलाह
अवश्य करे ।

जब तक रोग दूर न हो जाय दूध-कल्प जारी रखना
चाहिए । इसके लिए साधारणत कम से कम ४५ दिन और
अधिक से अधिक दो-तीन महीने लग सकते है । कितने ही
पुराने रोगो में चार-छ. महीनो तक कल्प चलाना
पड़ता है ।

कल्प हठात् बंद करके ठोस पदार्थ हरगिज खाने न
लग जाना चाहिए । अपितु कल्प समाप्ति के पहले और
दूसरे दिन कल्प के दिनो के तरह ही दिन के दो वजे तक
दूध पीये । उसके बाद जितनी मात्रा में दूध लिया जाता
हो, उतना लेता रहे, पर अब आधा-आधा घंटा पर लेने के
वजाय दो-दो घटा बाद लें ।

आदि गुणो वाला है। इससे शरीर की जीवनीशक्ति सदा जागत और सशक्त रहती है। दूध मे, शरीर मे शीघ्र बुढापा न आने देने का भी गुण है।

दूध एक पूर्ण भोजन है सही, पर वह शिशुओ के लिए बनाया गया है, जवानो और बूढो के लिये नही। 'Milk is only for infants' अर्थात् दूध शिशुओ का ही भोजन है। दूध का भोजन जितना बच्चो के अनुकूल पडता है, जितना वह उनके लिए गुणकारी सिद्ध होता है, उतना वह न तो बड़ो के मुआफिक आता है और न उस से लाभ ही पहुंचता है। इसका एक प्रधान कारण यह है कि बच्चे दूध को मा से स्तन मे मुह लगाकर उसमे बिना हवा लगे प्राकृतिक रूप मे ग्रहण करते है और कर सकते है और बडे न तो उसको उस तरह और उस रूप मे ग्रहण करते है और न कर ही सकते है। इसी से उन्हे दूध का पूरा-पूरा लाभ नही मिलता। इस सम्बन्ध मे यह नही भूलना चाहिये कि दूध अपना अधिकाश गुण, वायु के स्पर्श से पृथ्वी के स्पर्श से, वाह्य अग्नि के स्पर्श से, वाह्य आकाश के स्पर्श से, थोड़ी-थोड़ी मात्रा मे चूस-चूस कर न पीने से अपनी माता का न होने से तथा उसका तापमान पीने वाले तथा पिलाने वाली दोनो के शरीर के तापमान के बराबर न होने से खोदेता है। इन बातो को बच्चो के दूध पीने के ढग से मिलाने कर देखिये बात स्पष्ट हो जायगी कि दूध सही अर्थ मे केवल बच्चो का ही भोजन है, बड़ों को नही।

पर यदि वयस्क भी दूध पीकर अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहते है तो उन्हे (१) दूध को गरम करके नही पीना चाहिये, बल्कि धारोष्ण पीना चाहिये। क्योकि 'पीयूषमभिनव पयः' लोकोक्ति के अनुसार दूध, स्तन से निकल कर सीधे हमारे शरीर मे प्रवेश कर जाना चाहिये, तभी वह अमृत का कार्य करेगा। (२) दूध को दुहने के बाद पृथ्वी पर न रखना चाहिये। (३) दूध को घूंट-घूंट मुंह की लार से मिलाकर धीरे धीरे पीना चाहिये। (४) दूध मे चीनी आदि मिलाकर नही पीना चाहिये (५) दूध जितना पच सके उतना ही पीना चाहिये।

दूध से बने घी, मक्खन, मठा, दही, दुधी वा पनीर, मलाई, रबडी खावा, जमादूध, दूध-चूर्ण, छेना, तथा [illegible] शकरा आदि पदार्थो मे मक्खन, मठा, दही, दूधी एवं दुग्धशर्करा विशेष गुणकारी होते है [illegible] करते है अत उनके स्थान पर दूध का [illegible] करना उचित है। अन्वेषणो और प्रयोगो से [illegible] है कि कहीं गुण मे दूध से कही उत्तम होता है। गुणकारी प्रेय है। वैद्यक शास्त्रो मे तक्र या मठा लोक का अमृत माना गया है। तक्र का यदि [illegible] हो तो मनुष्य कभी बीमार न पडे और बुढापा आवे। आयुर्वेद मे उल्लेख है —

> 'न तक्र सेवी व्यथते कदाचित्
> न तक्र दग्धा प्रभवन्ति रोगाः।
> यथा सुराणाममृतं सुपेयम्
> तथा नराणाम् भुवि तक्र माहुः॥

अर्थात्, तक्र सेवी कभी रोगी नही होता। [illegible] तक्र के सेवन से एक बार नष्ट हो जाते है, कभी उत्पन्न नही होते। जिस प्रकार देवलोक मे सर्वोत्तम पेय पदार्थ माना जाता है उसी प्रकार [illegible] लिये पृथ्वी पर तक्र है।

दुग्ध-चिकित्सा वा दुग्ध-कल्प

दुग्ध- चिकित्सा, एक स्वतन्त्र चिकित्सा पद्धति [illegible] रोगियो को केवल दूध पिलाकर उन्हे रोगो से मुक्त [illegible] जाता है। अनुभवी दुग्ध-चिकित्सको का कहना है कि [illegible] से सम्बन्धित रोगो को छोड़कर कोई भी शारीरिक [illegible] ऐसी नहीं है जो दुग्ध चिकित्सा से न मिट सके। पर [illegible] का उपचार ज्वर रोग मे अनुकूल नही पड सकता। ज्वर मे कुछ भी खाना जान को जोखू मे डालना है। दुग्ध-चिकित्सकों का यह भी अनुभव है कि दुग्ध [illegible] से रोग जड़ से नही जाता इसलिये पहले रसाहार [illegible] था और अनेक क्रियाओ द्वारा जब रोग जड से [illegible] तब वजन बढाने के लिये दूध का कल्प काम मे [illegible] चाहिये। दुग्ध-चिकित्सा से मानसिक रोग, सग्रहणी, शूल, उन्माद, मूर्च्छा, भ्रम, वायुगोला, वस्तिरोग, रक्तपित्त, अतिसार, योनिरोग, ग्लानि, गर्भस्राव, कास, प्रमेह, सुजाक, वातपित्त, रक्तविकार, तथा [illegible] मे लाभ हो सकता है।

दुग्ध-चिकित्सा करते वक्त उसके नियमो को [illegible] साथ पालन करना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा [illegible] मानी करने से लाभ के बदले हानि हो सकती है।

श नही है और शरीर विज्ञानानुसार यह साबित किया जा कता है कि आज भी उसका शरीर फलों द्वारा पोषण प्राप्त करने मे समर्थ है। मेरा तो यह भी विश्वास है कि फलाहार उसे पूर्णतया स्वस्थ, सुन्दर एवं सशक्त रखता है और रोग, शोक, कष्ट से मुक्त। मनुष्य के पोषण के लिये आवश्यक कौनसी ऐसी चीज है जो फल और मेवों में नही मिलती ?.........यदि किसी को बचपन से ही फल खिलाये जाये तो इसमें कोई सन्देह नही है कि न तो वह कभी बीमार पड़ेगा, न कभी बूढा होगा।......यदि मनुष्य अपने स्वाभाविक भोजन पर आजाय तो वह किसी भी रोग से अपने को मुक्त कर सकता है।

किसी प्राणी का स्वाभाविक भोजन क्या होना चाहिए, इस बात को जाच करने के लिये दो कसौटियाँ काम में लायी जासकती है। पहली कसौटी तो यह है कि उस प्राणी के शरीर की विशेषतया उसकी अन्न-प्रणाली की बनावट पर गौर किया जाय। और दूसरी यह कि उस प्राणी की स्वाभाविक रुचि किस प्रकार के खाद्य को स्वीकार करने की प्रेरणा देती है, इस बात को जाना जाय।

एडमण्ड जेकेली, कूने, जुस्ट आदि चोटी के आहार शास्त्रियो ने एक स्वर से कहा है कि मनुष्य आजकल जो कुछ खाता है, वह उसका भोजन नही है। मनुष्य के दातो और आतो का अध्ययन करके और उनका मुकाबिला मनुष्येतर जीवों की आतो और दातो से करके उन्होंने यह मत प्रगट किया है कि मनुष्यो की आंते और दात, मासाहारी पशुओ की आतो और दातो से भिन्न होते है और फल खाने वाले पशुओ की आतो और दातो से अभिन्न। मनुष्य के दात, जबडे, पेट की आते, पाचन वा लाला-ग्रंथियां सभी अधिकतर गुरीला जाति के वानरो से मिलती है जो केवल फल खाकर असाधारण शक्ति प्राप्त करते है। मनुष्य के आगे के आठ दातो की बनावट इस प्रकार की है जो फलो को काटने मे उपयुक्त होने लायक होते है और जबड़ो सहित शेष दांत उन्हे कुचलने और पीसने के काम मे आते है।

स्वाभाविक भोजन की दृष्टि से ससार के समस्त जीव चार श्रेणियो मे विभाजित किये जा सकते है—मलभक्षी, जैसे खटमल एवं कीटाणु; मासभक्षी, जैसे सिंह, चीता आदि हिंस्रजीव, घास-पातभक्षी, जैसे गाय, बैल आदि। तथा फलभक्षी, जैसे मनुष्य, बन्दर आदि। मांसभक्षी जीवो के दांत लम्बे, नुकीले और दूर दूर होते है जिनसे वे जीवो का मांस फाड़कर निगल जाते हैं। उनका आमाशय छोटा और गोल होता है, और अतडियां उनके शरीर से ३ से ५ गुना अधिक लम्बी होती है। घास भक्षी जीवों के दात भी ऐसे होते है जिनसे वे घास को नोचकर खा सके। इन जीवो का आमाशय बहुत बड़ा होता है, क्योकि वे घास-पात अधिक मात्रा मे खाते हैं, और इनकी अंतड़ियाँ इनके शरीर से २० से २८ गुना अधिक लम्बी होती हैं। इसी प्रकार फल भक्षी जीवो के दांतो की बनावट भी ठीक वैसी ही होती है जैसी कि फल खाने के लिये जरूरत पड़ती है। और उनका आमाशय चौड़ा होता है, तथा अतडियां उनके शरीर से १० से १२ गुना अधिक लम्बी होती है। अब इन अंतिम तीन प्रकार के जीवों से मनुष्य का मिलान करने पर ज्ञात होगा कि मनुष्य के दात न तो मांस भक्षी जीवो से मिलते है और न घास भक्षी जीवों से। उसके अंतडियो की लम्बाई भी अन्य फलभक्षी जीवों की भाति ही उसके शरीर से १०-१२ गुना ही अर्थात् १६ से २८ फुट लम्बी होती है। (मनुष्य शरीर सिर से लेकर रीढ की हड्डी के अन्तिम छोर तक ही माना जाता है, जिसकी लम्बाई लगभग ढाई फुट होती है।) अत. यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य फल भक्षी जीव है और उसका स्वाभाविक भोजन मात्र फल है।

किसी जीव के स्वाभाविक भोजन जाचने की दूसरी कसौटी है खाद्य वस्तु विशेष को उसकी स्वाभाविक दशा मे खाने को उस जीव विशेष का जी चाहना। उसकी ओर आकर्षित होना। सो डाक्टर एडोल्फ जुस्ट के शब्दो मे पशु का शिशु जब पहले पहल अपनी माद छोड़ता और मैदान मे निकलता है तो क्या उसे इस सम्बन्ध मे जरा भी शक रहती है कि उसे क्या खाना है ? नैसर्गिक बुद्धि उसका पथ प्रदर्शन करती है और बिना किसी कठिनाई के वह अपना भोजन चुन लेता है। मृगशावक दूब ढूंढता है। गिलहरी का बच्चा फल खाता है। और लोमड़ी का बच्चा चूहे आदि का शिकार करता है। आरम्भ से ही प्रत्येक पशु का बच्चा उन सभी चीजो—जहरीली घासादि से जो उसके लिये हानिकारक होती हैं, बचता है। आरम्भ मे

तीसरे दिन आधा दिन दूध और आधा दिन फल का रस ले। चौथे दिन सवेरे दूध और दो वक्त केवल फल और दूध ले। पाचवे दिन सवेरे फल और दूध तथा शाम वाले भोजन मे दूध फल के बजाय कोई पकी हुई सब्जी और सलाद ले सकते है। छठवे, सातवे और आठवे दिन सवेरे दूध और फल और शाम को सब्जी के साथ एक या दो फुल्का रोटी। नवे दिन से सवेरे नाश्ते मे फल और दूध, दोपहर के भोजन मे सब्जी, रोटी ताजे मीठे फल और मेवे दूध के साथ लेना आरम्भ कर दे और कुछ दिनो तक यह क्रम चलावे। बाद को समझदारी के साथ साधारण भोजन करना आरम्भ कर दे।

मठा-कल्प—कोष्ठबद्धता, दस्त, सग्रहणी, खाज खुजली, उकवत्, यक्ष्मा, ज्वर, चौथिया ज्वर, बवासीर, जलोदर, रक्तचाप की कमी-बेशी, दमा, गठिया, वात, मधुमेह, पेचिश, स्नायु-दौर्वल्य, अम्ल रोग, स्त्रियो के गर्भाशय सम्बन्धी रोग, यकृत दोष, तथा मूत्राशय की पथरी आदि रोगो मे मठा कल्प उपकारी होता है। दूध-कल्प अनुकूल न पड़ने पर मठा कल्प से वही लाभ उठाया जा सकता है। यह कल्प प्राय. ४० दिनो तक चलाया जाता है। कल्प मे घृतहीन मठा काम मे लाना चाहिए। वह अधिक खट्टा भी न हो। प्राकृतिक चिकित्सा से रोग के पूर्णत. अथवा किसी किसी दशा मे अशत. ठीक हो जाने पर, मठा कल्प शुरू करना चाहिए। रोगी को शुरू मे कुछ दिनो तक फल और साग सब्जियों पर रहना चाहिए, उसके बाद दो से चार दिनो का उपवास करना चाहिए। उपवास के दिनो मे केवल नीबू का रस जल मे मिलाकर लेना चाहिये और प्रतिदिन गुनगुने पानी का एनिमा लेकर पेट को साफ कर लेना चाहिये।

पाचवे दिन प्रात काल से मठा कल्प आरम्भ कर देना चाहिये। दो-दो घटे पर नीचे दी हुई तालिका के अनुसार मठा पीना चाहिए—

पहले दिन आधी-आधी छटाक, दूसरे दिन १-१ छटाक, तीसरे दिन डेढ-डेढ छटाक, चौथे दिन २-२ छटाक, पाचवे दिन २॥-२॥ छटाक तथा छठे दिन ३-३ छटाक ७ बार।

७ वे दिन से दो-दो घटे के बजाय १॥-१॥ घटे पर मठा पीवे। सातवे दिन ३-३ छटाक, आठवे दिन ३॥-३॥ छटाक, नवे व दसवे दिन ४-४ छटाक ९ बार।

११ वे दिन से १-१ घण्टे पर मठा ले।

११ वे दिन ४-४ छटांक, बारहवें दिन ५॥...

तेरहवे दिन ६-६ छटाक १२ बार।

१४ वे दिन से ४५-४५ मिनट के अन्तर... छटाक मठा १६ बार पीना चाहिये। इस तरह... तक या इससे भी अधिक दिनो तक मठा-कल्प... जा सकता है। सुविधा, आयु, शक्ति के अनुसार उपर्युक्त मात्राओ मे कमी-बेशी भी की जा सक... मठा मे कुछ मिलाना नही चाहिये।

जिसदिन मठा-कल्प की समाप्ति करनी हो... मठा पीने की बारियो को आधा कर देना चाहि... केवल आधे दिन मठा और दोपहर बाद फल या... लेना चाहिये। दूसरे दिन मठा उतना ही रखे और... हर बाद फल और शाम को उबली साग-सब्जी लें।... समय उबली तरकारी और बीच मे फल।... धीरे धीरे साधारण सादे भोजन पर आजाना चाहि...

कल्प के दिनो में यदि अरुचि होजाय तो बीच... मे दस-बीस बूंद नीबू का रस चूस लेना चाहिये। कल्प के दिनो मे ज्वर आजाय तो कल्प बन्द कर... करना चाहिये और ज्वर के दूर हो जाने पर... आरम्भ कर देना चाहिए। कब्ज टूटने तक एनिमा... रहना चाहिये। यदि कल्प के दिनो मे दस्त आवे तो... मठा की मात्रा आधी कर देनी चाहिये।

फल

मनुष्य जब तक बच्चा रहता है, उसका... भोजन दूध के सिवा और कुछ नही होता।... मनुष्य जब बढकर बडा हो जाता है और दात... निकल आते है तो निश्चय ही उसका स्वाभाविक... बदलकर दूध से भिन्न हो जाता है। उस वक्त तक... के स्तनो का दूध भी सूख चुका होता है और... स्वभावत: रग-बिरगे, सुगन्धित एव सुस्वादु फल... और आकर्षित होता है, जो इस बात का ज्वलन्त... है कि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन फल और केवल...

मनुष्य का स्वाभाविक भोजन फल

प्रोफेसर इहरिट के मत से फल मनुष्य का ... भोजन है। उन्होने लिखा है—'मनुष्य किसी समय... फल ही खाता था इसमे सदेह करने की जरा...

का वरदान स्वरूप सिद्ध होता है। भोजन के बाद फल लेने से तृप्ति, ताजगी, एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है, मुंह और दांत साफ और शुद्ध हो जाते है तथा उनसे एक प्रकार की सुमधुर सुगन्ध निकलने लगती है, भोजन आसानी से पच जाता है, तथा शरीर को विषों एव विजातीय द्रव्यो से निजात मिल जाती है। यह सब केवल फलो मे स्थित विविध प्रकार के खाद्योजो के प्रताप से ही सम्भव होता है। 'सी' खाद्योज का प्रधान आधार ताजे फल ही है। 'बी' खाद्योज मुख्यतया फल के बीजो में होता है। उसके रस मे यह खाद्योज बहुत कम होता है।

फलो मे पाये जाने वाले खनिज लवण शरीर धारण के लिये बडे आवश्यक होते हैं। इनसे फलो के पाचन-गुण मे चार चाद लग जाते है। फलो में प्रत्यामिन और खनिज लवण—दोनो मिलकर लगभग एक प्रतिशत होते है। इन प्राकृतिक लवणो की उपस्थिति के कारण ही फलो में स्वाद आता है जो उनके प्रति हमारी रुचि का प्रधान कारण है।

फलो का प्रधान गुण उनका क्षारधर्मी होना है। फलो का क्षार शरीर के रोगो को जो अम्ल-विष के परिणाम होते है, दूर भगाता है। फलाहार से हमारे शरीर मे क्षार का संचय बढ जाता है जिससे रोग होने ही नही पाते और यदि कोई रोग पहले से मौजूद हुआ तो वह शीघ्र ही जड मूल से नष्ट हो जाता है। फलाहार के परिणाम स्वरूप शरीर मे क्षार की मात्रा मे जितनी वृद्धि होती है, फुफ्फुस, गुर्दों और जिगर की मेहनत उतनी ही कम हो जाती है और इन महत्वपूर्ण अंगो को विभिन्न विषो के सम्पर्क मे उतना ही कम आना पड़ता है। इससे ये यन्त्र काफी शक्तिशाली बनते है। यही वजह है जो दमा पुराना ब्राकाइटिस, पुरानी प्लूरिसी, पुराना जुकाम तथा यकृत और गुर्दों के अन्यान्य रोगो मे फलाहार से असाधारण लाभ होता है।

फलो की खटाई और उनके क्षार मे रोगाणुओ को नाश करने की अनुपम शक्ति होती है, जिसकी वजह से फलाहारी के जीभ और दात स्वस्थ और साफ बने रहते हैं मुह, जीभ और दात ही क्यो फलो की खटाई और क्षार से तो शरीर का सारा पाचन यन्त्र, उसका रक्त, तथा सारा शरीर ही विकाररहित एवं निर्मल बन जाता है।

खट्टे फलो की खटाई से बढकर शरीर के अम्ल-विषो को नष्ट करने वाली अन्य कोई वस्तु अभी तक नही जानी जा सकी है। जिस प्रकार फल—शर्करा और मिल की चीनी दो विरोधी और भिन्न वस्तुए होती हैं, उसी प्रकार फलो की प्राकृतिक खटाई (नीबू सतरा, चकोतरा, जभीरी आदि खट्टे फलो की खटाई) और अचार, चटनी आदि कृत्रिम खटाइयो मे आकाश—पाताल का अन्तर होता है। कारण फलो की खटाई खट्टी होते हुए भी पाचन के अंत मे क्षार के रूप मे बदलकर गुणकारक बन जाती है जबकि अचार-खटाई-चटनी की खटाई सदैव और हर हालत में अम्लकारक एव हानिप्रद होती है। इसीलिए अम्लता के कारण उत्पन्न हुए रोगो वात, गठिया, पथरी आदि में फलो की खटाई विशेष रूप से दवा और पथ्य दोनो का काम करती है और अचार-चटनी विष का काम। ज्वरादि मे देह की ज्वाला दूर करने तथा शरीर की उसके विष से रक्षा करने मे नीबू जाति के खट्टे फल अद्वितीय होते हैं।

मुख्यत चार प्रकार की खटाइयां फलो मे पायी जाती है— टैनिक एसिड, टारटरिक एसिड, साइट्रिक एसिड तथा मैलिक एसिड। टैनिक एसिड साधारणतः कच्चे और हरे फलो मे पाया जाता है। टारटरिक एसिड इमली और अंगूर आदि फलो मे अधिक पाया जाता है। तथा साइट्रिक एसिड सतरा और नीबू जाति के फलो मे विद्यमान होता है। इसी प्रकार मैलिक एसिड की खान सेब और नाशपाती जाति के फल होते हैं। खटाइयो के कारण फल और भी अधिक रुचिकारक एव स्वादिष्ट बन जाते है। ऐसे खट्टे फलो को देखने मात्र से मुंह और आंतो से विभिन्न प्रकार के पाचक-रस झरझर झरने लगते हैं।

फलो मे प्रत्यामिन का अश बहुत कम होता है जिसकी वजह से उन्हे आमाशय मे पचने के लिए बहुत कम ठहरना पड़ता है और पाचक रस की भी उनको पचाने के लिए कम ही जरूरत पडती है। पके फलो मे श्वेतसार की मात्रा भी नही के बराबर ही होती है। क्योंकि पकने की क्रिया का दूसरा नाम वास्तव में पाचन क्रिया है अतः पके फलो (पके भोजन) मे श्वेतसार का अभाव स्वाभाविक ही है। प्रत्यामिन और श्वेतसार की

जब मनुष्य बिना चूके प्रकृति की आवाज का अनुशरण करता था, नैसर्गिक बुद्धि और स्वाद से पथ प्रदर्शन लेता था, तब वह भी शाक-जगत के सुन्दर एव मधुरतम खाद्य-फल को ही अपने भोजन के लिये चुनता था । मनुष्य सम्भवतः घास नही खा सकता और उसे पशु को पकड़कर काट खाने की जरूरत नही थी । आरम्भ मे जहा कही भी मनुष्य रहता था, प्रकृति उसके लिये अपने पास बहुतायत से फल उपजाती थी । मनुष्य को उनकी उपज के सम्बन्ध मे किसी प्रयास की जरूरत नही होती थी । और आज इस कृत्रिमता के जमाने मे भी एक फल के वृक्ष को फलो से लदा देखकर किस मनुष्य के मुह मे पानी नही भर आता ? बालक वृद जो अस्वाभाविक भोजन करने के प्रेमी नही बन चुके होते है, फलो पर जान देते है और उन्हे बहुत ही पसद करते हैं ।

फलो के गुण

डाक्टरो ने प्रयोगो से सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के जीवन-निर्वाह के लिये जिन-जिन खाद्य-तत्वो की आवश्यकता होती है, वे सभी फलो में प्रकृतितः और उचित परिमाण मे विद्यमान होते है, जो शरीर को सच्चा स्वास्थ्य प्रदान करते है और उसके भीतर एकत्र हुये दूषित पदार्थों के विकारो को बाहर निकालते है । डाक्टर जे० एच० केलाग के कथनानुसार फलो के रसमे खाद्योज (Vitamins) और उत्तम स्वास्थ्य के लिये आवश्यक खनिज लवण विशेषकर लोहा और चूना प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते है जिनका विभिन्न प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाओ से अविभाज्य सम्बन्ध है, तथा जिन्हें किसी रोग के होने पर अधिकता से दी जाने की आवश्यकता होती है ।

फलो मे शुद्ध जल, शर्करा, खाद्योज, खनिजलवण, अम्ल क्षार, थोड़ा प्रत्यामिन, और वसा, रफोक तथा कुछ अन्य तत्व भी होते है जिनके कारण उनमे स्वाद और सुगन्ध पर्याप्त मात्रा मे पायी जाती है ।

फलो मे ८५ से ९५ / जल होता है जो शत प्रतिशत विशुद्ध होता है क्योकि वह दोहरा छना होता है । पहले वर्षा के रूप मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म और दूसरे-पेड़ो की जड़ो द्वारा । यही कारण है जो फल स्थित जल को शरीर के कोषाणु बहुत शीघ्र ग्रहण करके उनका उपयोग रक्त को तरल बनाने आदि मे आसानी से कर सकने मे सफल होते है । इसलिये जि[तना] ही इस फल-जल का प्रयोग किया जायगा उतना बढिया स्वास्थ्य होगा ।

शर्करा, फलो का मुख्य ठोस भाग है जो उनमें १[०] १५ / तक पायी जाती है । जिन फलो के छिल्के पी[त] वर्ण के होते हैं उनमें फल-शर्करा अधिक मात्रा में वि[द्य]मान होती है । ऐसे फल सुगन्धित भी खूब होते है । लाल छिल्को वाले फलो मे पीत छिल्का वाले फलो [से] कुछ कम मात्रा मे शर्करा होती है, और उनमे अच्छी हल्की सुगन्ध होती है । साधारणत. भूरे रग वाले फलों [मे] भी अधिक मात्रा मे शर्करा पायी जाती है, ऐसे रग [के] फल उतने सुगन्धित नही होते जितने अन्य रङ्गो [के] फल । फल शर्करा हृदय के लिये सर्वोत्तम खाद्य पदा[र्थ है] और इसीलिये यह हृदय को शक्तिवान बनाने की अ[द्भुत] धारण क्षमता रखती है । यह शरीर के भीतर पहुं[च कर] शरीर द्वारा कुल का कुल अभिशोषित हो जाती है और तनिक भी मल नही छोडती जिससे आतो को व्यर्थ [का] कष्ट उठाने का मौका मिल सके । यह फल-शर्करा की सबसे बडी विशेषता है । फल-शर्करा और मिल की चीनी [मे] जमीन-आसमान का फर्क होता है । फलो से जो चीनी हमे मिलती है वह प्राकृतिक होती है और गुण कर[ती] है, परन्तु मिल की चीनी कृत्रिम होने के कारण उसके स्वाभाविक गुण नष्ट हुये रहते है, इसलिये वह बजाय [गुण] करने के विष का काम करती है ।

फलो मे कार्बोज भी होता है पर वह सूर्य-रश्मियों के प्रभाव से शर्करा के रूप मे बदला हुआ होता है । इस उत्तम रूप से पके फल को खाने के बाद उसे शरीर को पचाने की जरूरत नही पड़ती, अपितु वह मुह और पाक-स्थली के रस की सहायता के बिना ही हजम होजाता है । इसीलिये सुपक्व फलो को पचा हुआ भोजन कहा जाता है और इसीसे उन रोगियो को जिनकी पाचन शक्ति क्षी[ण] हुई रहती है, फल वा फल-रस का भोजन अनुकूल पड़ता है और लाभ करता है ।

फलो में लगभग सभी प्रकार के खाद्योजो की बहु[ता]यत होती है । इसी कारण एक प्रसिद्ध डाक्टर को कह[ना] पडा था कि फल, प्रात काल सोना, दोपहर [को चा]न्दी तथा रात मे भी सोना ही रहता है, और सदैव ही ...

का वरदान स्वरूप सिद्ध होता है। भोजन के बाद फल लेने से तृप्ति, ताजगी, एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है, मुह और दांत साफ और शुद्ध हो जाते है तथा उनसे एक प्रकार की सुमधुर सुगन्ध निकलने लगती है, भोजन आसानी से पच जाता है, तथा शरीर को विषों एव विजातीय द्रव्यो से निजात मिल जाती है। यह सब केवल फलो मे स्थित विविध प्रकार के खाद्योजो के प्रताप से ही सम्भव होता है। 'सी' खाद्योज का प्रधान आधार ताजे फल ही है। 'बी' खाद्योज मुख्यतया फल के बीजो में होता है। उसके रस मे यह खाद्योज बहुत कम होता है।

फलों मे पाये जाने वाले खनिज लवण शरीर धारण के लिये बडे आवश्यक होते हैं। इनसे फलो के पाचन-गुण मे चार चाद लग जाते है। फ़लो में प्रत्यामिन और खनिज लवण—दोनो मिलकर लगभग एक प्रतिशत होते हैं। इन प्राकृतिक लवणो की उपस्थिति के कारण ही फलो मे स्वाद आता है जो उनके प्रति हमारी रुचि का प्रधान कारण है।

फलो का प्रधान गुण उनका क्षारधर्मी होना है। फलो का क्षार शरीर के रोगो को जो अम्ल-विष के परिणाम होते हैं, दूर भगाता है। फलाहार से हमारे शरीर मे क्षार का सचय बढ जाता है जिससे रोग होने ही नही पाते और यदि कोई रोग पहले से मौजूद हुआ तो वह शीघ्र ही जड मूल से नष्ट हो जाता है। फलाहार के परिणाम स्वरूप शरीर मे क्षार की मात्रा मे जितनी वृद्धि होती है, फुफ्फुस, गुर्दो और जिगर की मेहनत उतनी ही कम हो जाती है और इन महत्वपूर्ण अंगो को विभिन्न विषो के सम्पर्क मे उतना ही कम आना पड़ता है। इससे ये यन्त्र काफी शक्तिशाली बनते है। यही वजह है जो दमा पुराना ब्राकाइटिस, पुरानी प्लूरिसी, पुराना जुकाम तथा यकृत और गुर्दों के अन्यान्य रोगो मे फलाहार से असाधारण लाभ होता है।

फलो की खटाई और उनके क्षार मे रोगाणुओ को नाश करने की अनुपम शक्ति होती है, जिसकी वजह से फलाहारी के जीभ और दात स्वस्थ और साफ बने रहते हैं मुह, जीभ और दात ही क्यो फलो की खटाई और क्षार से तो शरीर का सारा पाचन यन्त्र, उसका रक्त, तथा समग्र शरीर ही विकाररहित एव निर्मल बन जाता है।

खट्टे फलो की खटाई से बढकर शरीर के अम्ल-विषो को नष्ट करने वाली अन्य कोई वस्तु अभी तक नही जानी जा सकी है। जिस प्रकार फल–शर्करा और मिल की चीनी दो विरोधी और भिन्न वस्तुए होती हैं, उसी प्रकार फलो की प्राकृतिक खटाई(नीबू सतरा, चकोतरा, जभीरी आदि खट्टे फलो की खटाई) और अचार, चटनी आदि कृत्रिम खटाइयो मे आकाश–पाताल का अन्तर होता है। कारण फलो की खटाई खट्टी होते हुए भी पाचन के अंत मे क्षार के रूप मे बदलकर गुणकारक बन जाती है जबकि अचार-खटाई-चटनी की खटाई सदैव और हर हालत में अम्लकारक एव हानिप्रद होती है। इसीलिए अम्लता के कारण उत्पन्न हुए रोगो वात, गठिया, पथरी आदि में फलो की खटाई विशेष रूप से दवा और पथ्य दोनो का काम करती है और अचार-चटनी विष का काम। ज्वरादि मे देह की ज्वाला दूर करने तथा शरीर की उसके विष से रक्षा करने मे नीबू जाति के खट्टे फल अद्वितीय होते हैं।

मुख्यत. चार प्रकार की खटाइयां फलो मे पायी जाती है– टैनिक एसिड, टारटरिक एसिड, साइट्रिक एसिड तथा मैलिक एसिड। टैनिक एसिड साधारणत. कच्चे और हरे फलो मे पाया जाता है। टारटरिक एसिड इमली और अगूर आदि फलो मे अधिक पाया जाता है। तथा साइट्रिक एसिड सतरा और नीबू जाति के फलो मे विद्यमान होता है। इसी प्रकार मैलिक एसिड की खान सेब और नाशपाती जाति के फल होते हैं। खटाइयों के कारण फल और भी अधिक रुचिकारक एव स्वादिष्ट बन जाते है। ऐसे खट्टे फलो को देखने मात्र से मुंह और आतो से विभिन्न प्रकार के पाचक-रस झरझर झरने लगते हैं।

फलो मे प्रत्यामिन का अश बहुत कम होता है जिसकी वजह से उन्हे आमाशय मे पचने के लिए बहुत कम ठहरना पडता है और पाचक रस की भी उनको पचाने के लिए कम ही जरूरत पडती है। पके फलो मे श्वेतसार की मात्रा भी नही के बराबर ही होती है। क्योकि पकने की क्रिया का दूसरा नाम वास्तव में पाचन क्रिया है अत. पके फलो (पके भोजन) मे श्वेतसार का अभाव स्वाभाविक ही है। प्रत्यामिन और श्वेतसार की

भाति ही फलो मे वसा की मात्रा भी बहुत थोड़ी होतीहै। यही कारण है जो फलो को पचाने मे पेट को भी बहुत थोड़ी मेहनत करनी पड़ती है, और उनके पाचन का काम मिनटो में हो जाता है।

सभी फलो के छिलके साधारणतः स्फोक से निर्मित होते है। स्फोक या खुज्झा वह खाद्यांश है जो पाचन क्रिया मे मददगार होते हुये भी स्वयं पाचन यन्त्रो से बिना प्रभावित हुये बाहर निकल जाता है। फलों में खुज्झे का अंश अधिक होने से मलावरोध या कब्ज की शिकायत से आदमी सदैव बचा रहता है। फलो के स्फोक आंतो को साफ करने मे रेचक दवाइयों का काम करते है।

वे लोग जो फलोका सेवन कम या नही करते किसी न किसी रोग के पंजे मे आजन्म फंसे रहते है वे बदसूरत भी होते है। क्योंकि ताजे फलो जैसे संतरा, अंगूर, अनन्नास, टमाटो आदि मे ही वे गुण विद्यमान होते है जिनसे रक्त शुद्ध और निर्मल बनकर शरीर की सुन्दरता और गठन को उभारता और उनमे निखार पैदा करता है। सुन्दर बच्चों की उत्पत्ति के लिये माताओ विशेषकर गर्भिणी स्त्रियो को फलो का सेवन खूब करना चाहिये ऐसा करने से प्रसव मे भी आसानी होती है। फलाहारी कभी मोटा और भद्दा हो ही नही सकता। इस की गारन्टी है।

फलो से शरीर की जीवनी शक्ति बलवती होती है और दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है। फलाहार से मस्तिष्क शक्तिशाली बनता है, बुढापा जल्दी नही आता, तथा रोगों से छुटकारा मिला रहता है। प्राचीन काल के भारतीय मुनि-ऋषि फलाहार के प्रताप से ही सैकड़ो वर्षों का स्वस्थ-जीवन प्राप्त करते थे और असाधारण से असाधारण कार्य कर दिखाते थे।

फलाहार के नियम

लगभग सभी फलो की सात अवस्थाएं होती है। पहली फूल मे कोढी लगने वाली अवस्था, दूसरी हरी और कच्ची अवस्था, तीसरी पूर्णावस्था, चौथी पकी अवस्था, पाचवी सूखी अवस्था, छटी नाशोन्मुख अवस्था, तथा [illegible] सड़ी अवस्था। इनमे से चौथी और पाचवी अवस्था वाले फल खाने योग्य होते है, शेष अयोग्य, [illegible] और पाचवी अवस्था वाले फलो मे भी चौथी अवस्था वाले अर्थात् ताजे पके फल खाने के लिये सर्वोत्तम होते हैं; और पाचवी अवस्थावाले फलों यानी सूखे मेवो का नम्बर उसके बाद आता है।

कृत्रिम रूप से भुसा आदि मे पका हुआ फल [illegible] मे वनपक्व फलों से घट कर होता है। जो फल छिलका समेत खाया जा सके, उनको छिलको सहित खाने से ही पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है, और जिन फलों के छिलके जरा सख्त हो, उनके छिलको के ठीक नीचे के गूदे को दातो से खरोचकर अवश्य खाया जाय, क्योंकि फलो का पौष्टिक प्राकृतिक लवण और प्रत्यामिन उनके छिलको के ठीक नीचे सञ्चित होते है। फलो को भूनकर खाना तो उनको मिट्टी करके खाना है। इसीतरह फलों का रस निकाल कर पीना भी प्रकृति-सम्मत नहीं है। परन्तु यदि फलो का रस लेना हो तो फलो को निचोड़ने के बाद उनसे निकले हुए रस को हवा मे अधिक देर तक खुला न रखना चाहिये, अपितु उसे जितनी जल्दी हो सके पी जाना चाहिए, अन्यथा पूरा लाभ न हो सकेगा।

फलो का छिलका उतार कर और उनमे नमक, मिर्च, मसाला तथा खटाई आदि मिलाकर खाना बहुत बुरा है। ऐसा करने से भी फल खाने का पूरा-पूरा लाभ नही उठाया जा सकता।

फलाहार की मात्रा के विषय मे एक अमेरिकन आहार शास्त्री का मत है कि एक व्यक्ति के लिये छः छटाक सूखे मेवे और डेढ सेर फल की खुराक जिसमे पानी न मिला हो एक दिन के लिये काफी है। फलो की मात्रा कुछ अधिक बढ़ाकर सूखे मेवो की मात्रा थोड़ी कम की जा सकती है।

हाल के अन्वेषणों से पता चला है कि भोजन करने के तुरन्त बाद फल खाने के बजाय, भोजन करने से एक घंटा पहले थोडा फल खाना अधिक लाभदायक होता है पर अनेक डाक्टरो का कहना है कि फल अकेले ही खाना अच्छा होता है और अधिक से अधिक दूध के साथ। मिश्रित भोजन के साथ, पहले या बाद मे खाये जाने पर फल अपना पूरा-पूरा लाभ नही दे पाता। फल खाने के बाद दूध पीना भी ठीक नही।

फलो को उनके बीज सहित चबा चबाकर खाना
। क्योकि फल के बीजो मे भी कई आवश्यक और
गी तत्व विद्यमान होते है जिनको निकाल देने से हम
त्वो के लाभो से वञ्चित रह जायेगे। बहुत से फलो
खाने योग्य बीजो से परहेज किया जा सकता है।
एक बार मे एक ही तरह का फल खाकर उसका पूरा
उठाना चाहिये, और दूसरी बार मे दूसरे तरह का
ाकर।

प्रात. काल खाली पेट का फल सेवन अधिक लाभदायक
है। रोग निवारण मे भी इससे अच्छी सहायता मिलती
ात काल फल खाना सोने के समान, दोपहर को
के समान, तथा रात को तावे के समान, कहने का
यही है कि फल खाना प्रात.काल अधिक गुण करता
र अन्य समयो मे कम।

यदि ताजे फलो के साथ सूखे मेवे भी खाये जाये तो
मेवो की मात्रा, ताजे फलो की मात्रा से चौथाई होनी
ये।

कच्चे, अत्यधिक पके, उबाले या भुने हुए, सड़े, गदे
नासाफ, तथा बेमौसिम वाले फल खाने से वे लाभ
म पर हानि अधिक करते है। पाल के पके फल
श्यकता से अधिक खालिये जाते है, इसलिये त्याज्य
र पेड़ के पके फलो के सम्बन्ध में यह बात नही
।

कुछ फलो को अधिक मात्रा मे खाने से अजीर्ण भी
कता है। अत उसके कुछ उपचार नीचे दिये
है।

कटहल के अजीर्ण मे पके केले की फली लाभ करती
केले के अजीर्ण मे घी हितकारी है। नारियल के
र्ण में चावल लाभदायक है आम के अजीर्ण को दूध
करता है बेल और फालसे के अजीर्ण मे नीम की
ोरी घोटकर पीना चाहिये। आदि

फलाहार-चिकित्सा

एडमण्ड जेकेली नामक एक डाक्टर ने अपनी एक
क मे लिखा है कि डाक्टरो और दवाओ की जो
ली आज प्रचलित है, वह कुछ दिनो बाद मध्ययुगीय
ता का मात्र चिन्ह समझी जायगी। क्योकि भविष्य
यह व्यवस्था कर दी जायगी कि लोग जो भोजन करे,
उसमे ५० प्रतिशत फल, ३५ प्रतिशत शाक-भाजी तथा
१५ प्रतिशत अन्न हो। और यही खाद्य भविष्य मे समस्त
रोगो की औषधि भी होगी। आजकल प्रचलित जहरीली
दवाइयो और विषैले इन्जेक्शनो से परेशान होकर डाक्टर
ए० जुस्ट ने भी अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक मे लिखा है–
'दवा के कड़ुवे घू टो मे लोग राहत खोजते है जबकि
मनुष्य के रोगो और कष्टो की दवा फलो मे बन्द मौजूद है।
प्रकृति मनुष्य को ऐसी बनी बनाई दवा प्रदान करती है
जो खाने मे अति स्वादिष्ट भी लगती है और उसके कष्टो
और रोगो को निश्चयात्मक रूप से हरती भी है। फलो मे
स्वर्गीय अमृत भरा होता है। मनुष्य ऐसे सुस्वादु अमृत
का त्याग क्यो करता है? और उसके बजाय जहरीली
दवाइयो को अपने गले के नीचे क्यो उतारता है?'

ऊपर कहा जा चुका है कि फल भोजन और दवा दोनो
है फल खाकर जिस प्रकार मनुष्य दीर्घकाल तक पूर्ण
स्वस्थ रहकर जीवित रह सकता है उसी प्रकार रोग पर
वह फलो के उचित प्रयोग से उससे छुटकारा भी पा
सकता है। यदि किसी समझदार प्राकृतिक चिकित्सक की
देख-रेख मे फलाहार-चिकित्सा चलाई जाय तो असाध्य
से असाध्य रोग भी बडी आसानी से और थोड़े ही काल
मे अच्छा किया जा सकता है।

फलाहार चिकित्सा के लिये जो फल काम मे लाये
जावे वे ताजे और पके होने चाहिये तथा उनका चुनाव
रोगी की हालत और रोग को दृष्टि मे रखकर किया गया
होना चाहिए उदाहरणार्थ गुर्दे और जिगर की बीमारियोमे
काफी मात्रा मे अगूर का रस या सतरे का रस शरीर के भीतर
पहुँचाने से वह लाभ दिखाई देता है जो बहुत सी अकसीर
दवाइयो के सेवन से भी नही होता इसी प्रकार कमर के दर्द
(lumbago) से परेशान रोगियो को केवल नारगी के रस पर
ही रखकर अच्छा किया जाता है फलाहार स्नायु रोगियो
तथा चर्म रोगियो के लिए बडा हितकर है इग्लैण्ड के एक
प्रसिद्ध डाक्टर का मत है कि कैन्सर-नासूर के रोग मे
केवल ताजे फल एक अचूक इलाज है ऐसे रोगियो को
केवल फल और फल रस पर रखा जाता है और पानी
बिलकुल नही पिलाया जाता। वैसे भी फलो मे इतना
पानी होता है कि यदि अन्न और नमक छोड़कर सिर्फ फल
पर ही रहा जाय तो ऊपर से पानी पीने की दर-
असल जरूरत न रहेगी अंगूर और अनार का रस

ज्वर मे बड़ा उपकारी होता है टाइफाइड ज्वर मे फलो के रस से विशेष लाभ होता है शरीरमे खूनकी कमी होजाने पर गाजर, टमाटर व नीबू का रस लाभकर है क्योकि इन फलो के रस रक्त के लालकणो की वृद्धि करनेकी असाधारण शक्ति होती है अगूर मे भी यह गुण पाया जाता है शरीर का रक्त निर्माण प्राकृतिक लोहा से होता है किशमिश,टमाटर, खजूर छुहारा, मुनक्का, अंजीर आदि लोहवाले फल खाने चाहिए गठिया रोग मे गरी का मुफीद होता है बहुमूत्र और मूत्रा रोग टमाटर के सेवन से जा सकता है। रक्त विकार से उत्पन्न हुए सभी चर्म रोगो कीएक मात्र औषधि गाजर वा कागजी लेमू है यकृति विकार तथा कब्ज किशमिश से दूर किये जासकते है इसके लिये रात मे किशमिश को पानी मे भिगोदेने चाहिए और सुबह उसके रस को पीना चाहिए। आम, खरबूजा दुबले को मोटा करने वाले फल है इसके लिए आम के साथ दूध का इस्तेमाल जरूर करना चाहिए पायरिया दात मे चूने की कमी के कारण होता है। जिसकी कमीको संतरा, नीबू तथा कटहल आदि से आसानी के साथ पूरी करके इस रोग से मुक्ति पायी जा सकती है मधुमेह के रोगी को तो फल-शर्करा के अतिरिक्त और कुछ पचता ही नही। चेहरे के मुहासे–दाग नीबू के रस से ही जाते है टान्सिल बढ़ने में अनन्नास और नीबू का रस गुणकारी होता है।

जीर्ण रोगो में फलाहार चिकित्सा से आशातीत सफलता मिलती है। ९० प्रतिशत जीर्णरोग तो फलाहार चिकित्सा से जरूर ही अच्छे होते है इसमे धीरे धीरे अन्न त्यागकर पहले तीन,चार दिन फलरस पर ही रहना चाहिए इन दिनो सुबह शाम एनिमा जरूर लेना चाहिए। कुछ कमजोरी हो तो उसे स्वाभाविक समझकर बरदाश्त कर लेना चाहिए। उसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार पाच से दस दिन तक दिनो मे तीन बार केवल फल खाकर रहना चाहिए इन दिनो भी हररोज एक बार एनिमा जरूर लेना चाहिए तत्पश्चात् दस दिनो तक सिर्फ फल दूध पर रहना चाहिए दूध गायका और धारोष्ण होना चाहिए हर बार फल खाने के बाद पाव भर दूध पीना काफी होगा दूध मे मीठा आदि कुछ नही मिलाना चाहिए अगर चिकित्सा के लिए ताजे फल न मिल सके तो उसकी जगह भीगी-ई किशमिश और उसका मीठा पानी ही काम मे लाना चाहिए। किशमिश को पानी में रात भर पानी मे भिगो रखने से उसका रस में खिंच आता है और किशमिश भी फूलकर मजा देने लगती है दूध और फल का भोजन करते एनिमा लेना छोड दिया जा सकता है फल और भोजन अनुकूल न पडने पर रोगी को फल और दिया जासकता है फल,दूध या मठा के भोजन के बाद सुबह शाम फल और दूध तथा दोपहर को सब्जी खायी जानी चाहिए, बस। पुराने रोगो की चिकित्सा मे इतना ही करने से बडा लाभ होता है हठीले रोगो के लिए प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अन्य प्रयोगो की भी साथ मे जरूरत पड सकती है बहुधा उपर्युक्त फलाहार चिकित्सा क्रम के चलाते लगभग सभी पुराने रोग अच्छे हो जाते हैं।

(३) मेवे या सूखे फल—सूखे फल (मेवे) फलो के समान ही गुणकारी होते हैं। क्योकि ... भग सारे उपयोगी तत्व उन्ही के भीतर सुरक्षित... कुछ मानो में तो मेवे, ताजे फलो से भी अधिक ... जनक और गुणकारी सिद्ध होते है। अर्थात् ताजे ... मे विभिन्न खनिज लवण काफी होने पर भी उनमें क्रम, लोहा और स्फुर प्राय नही होते। किन्तु ... फलो (मेवो) में ये तीनो भी अच्छी मात्रा मे ... कोई भी फल अधिक दिनो तक ताजा नही रह ... लेकिन मेवे अधिक दिनो तक रखे जा सकते हैं। ताजे फलो की अपेक्षा सूखे फलो मे विशेष ... है। प्रोटीन, खनिज लवण और शर्करा मेवो में ... है। उदाहरणार्थ, अगूर मे शर्करा १५% तक ... पर वही सूखकर जब किशमिश हो जाती है तो ... शर्करा बढकर ७३% तक हो जाती है। ... खजूर मे भी शर्करा का भाग क्रमश लगभग ७... ६८% होता है।

मेवो को खाने के पहले कुछ देर तक पानी में रखना चाहिए, जिससे वे फूल जाये और नरम हो मगर सेवन करते समय उन्हे जल सहित ... चाहिए। मेवो को उबालना हरगिज नही ... फल जब सूख जाते है तो मेवे बन जाते हैं ...

ताजे फलो वाले प्राकृतिक जल का अभाव हो जाता है इसलिए वे गरिष्ठ और गुरुपाक हो जाते है और गरमी पैदा करते है। इसीलिए मेवो से पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए तथा हानियो से बचने के लिए मेवो को ताजे फलो के साथ ही खाना उत्तम है।

ताजे फलों मे खाद्योज 'सी' की कमी होती है। फलों के सूख जाने से यह खाद्योज नष्ट हो जाता है। शर्करा और स्वाद बढ जाता है। इसीलिए किशमिश, खजूर, अजीर, तथा खूबानी आदि सूखे फल चीनी की तरह इस्तेमाल किए जा सकते है, जिनसे अच्छी किस्म की चीनी मिल सकती है। सफेद चीनी को पचाने में जो वक्त लगता है तब भी वह हानि ही करती है, मेवो की चीनी खाते-खाते ही शरीर मे ताप और शक्ति उत्पत्ति करती है। चीनी मे खनिज लवण होता ही नहीं और वह अम्लधर्मी आहार भी होता है। लेकिन मेवे क्षारधर्मी खाद्य होते है और उनसे शरीर को यथेष्ट खनिज लवण भी प्राप्त होता है।

सभी मेवे स्वादिष्ट, तृप्तिकर एवं स्वास्थ्यकर होते है। दूध की अपेक्षा आठ-नौ गुनी अधिक शक्ति प्राप्त होती है। वे पूर्ण भोजन होते है। मगर उन्हे ताजे फलो या तरकारियो के साथ ही खाना चाहिए, अन्यथा ठीक हजम नही होते।

मेवो के सम्बन्ध मे एक भ्रम फैला हुआ है कि उनका सेवन जाड़ो ही मे करना चाहिये, गरमी और बरसात मे नहीं, जो बिलकुल बे बुनियाद है - फलो और तरकारियो के साथ एक वक्त सिर्फ मेवा खाकर कोईभी असाधारण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है कारण, मेवों के सेवन से रक्त गाढा और शुद्ध होता है। उनसे पेट साफ रहता है मांस और बल की वृद्धि होती है। मेवो, खासकर बादाम और मूंगफली प्रत्यामिन के घर होते हैं। उनमें कार्बोज, चूना, लोहा, तथा खाद्योज ए और बी की भी अधिकता होती है पर भरपेट खाना खाने के बाद मेवो का खाना लाभकारी नही हो सकता। इसी तरह मेवो को आवश्यकता से अधिक खाकर भी लाभ नही उठाया जा सकता। मेवो का मेल ताजे फलो या सादी तरकारियो या दूध के साथ खूब बैठता है।

मेवो की अनेक किस्मे होती है जैसे किशमिश, मुनक्का, अन्जीर, बादाम, अखरोट, मूंगफली, चिलगोजा, पिस्ता, काजू, चिरोंजी, ता मखाना, गड़ी, खूबानी आदि।

(४) पत्र–पाक

(५) पुष्प–शाक

(६) फल–शाक

(७) डांठी–शाक

(८) कन्दमूल–शाक

(९) बीज–शाक

जिन शाको की पत्तिया खायी जाती हैं उन्हे पत्र शाक कहते हैं, जैसे पालक बथुआ आदि। जिनके पुष्प खाए जाते है उन्हे पुष्प-शाक कहते है, जैसे कचनार आदि जिनके फल खाए जातेहै उन्हे फल शाक कहते है जैसे कटहल टमाटर आदि। जिनकी डाढी खाई जाती है उन्हे डाढी शाक कहते है जैसे—अस्परागस आदि। और जिन शाकों की जडे खाने के काम आती है उन्हे कन्दमूल शाक कहते है। बीज शाको मे कटहल और सेमादि के बीज अधिक प्रसिद्ध है।

फल के बाद शाक भाजिया ही मनुष्य के स्वाभाविक भोजन है।ये क्षारमय होती है साथ ही खनिज-लवण प्रधान भी। अहितकर भोजन करने से रक्त मे जो खटाई (Acidity) की मात्रा बहुत बढ जाती है उसका दोष शाक भाजियो जैसे क्षारमय खाद्य द्रव्यों से मिट जाता है

सभी शाक भाजिया अपने मूल रूप मे क्षारमय होती है। लेकिन जब उनको आग पर रखकर पकाया जाता है और उनमे मिर्च-मसालो तथा तेल-खटाई का मिश्रण किया जाता है तो वे खटाई प्रधान और कम गुणकारी बन जाती है। इसीलिए शाको के खाने का उत्कृष्ट ढग उनका सलाद बनाकर कच्चा ही खाना है। सलाद का नियमित रूप से सेवन करने से चर्म-रोग और रक्त-विकार कभी नही होते तृष्णा नहीं सताती, शरीर की अनावश्यक गर्मी शात होती है, और मलावरोध कभी नही होता।

(१०) अन्न

अन्न भी वस्तुतः फल ही होते है। दोनों मे अन्तर केवल इतना है कि अगूर, अनार आदि ताजे फल जल्दी ही खराब हो जाते हैं जबकि अन्नो को सुखाकर रख लेने से वे बहुत दिनो तक खराब नही होते। विभिन्न

ऋतुओ से विभिन्नप्रकार के अन्न, प्रकृति प्रतिवर्ष उपजाती है। जिसका मतलब यह है कि प्रत्येक ऋतु में उत्पन्न होने वाले अन्न ही हमे उस ऋतु विशेष मे सेवन करना हमारे स्वास्थ्य के लिए उत्तम और लाभकारी है। इसी प्रकार सूखे अन्नो की अपेक्षा ताजे और हरे अन्न जैसे हरे चना, हरी मटर आदि तथा अकुरित अन्न कहलाते हैं। फलतः ये उत्तम स्वास्थ्य के लिए परमोपयोगी सिद्ध होते है।

जो अन्न उनके छिलको समेत पूरे-पूरे खाये जा सकते है उन्हे पूरे-पूरे ही खाना चाहिए जैसे छिलको समेत उड़द की दाल और चोकर समेत गेहू का आटा, आदि। ऐसा करने से अन्न-भोजन का पूरा पूरा लाभ उठाया जा सकता है क्योकि अन्न के छिलको मे ही प्रोटीन आदि पौष्टिक तत्व अधिक मात्रा मे विद्यमान होते है जो हमारे स्वास्थ्य के लिए उपयोगी ही नही आवश्यक भी होते है। अधिक पुराने एव सड़े-गले अन्नो को खाकर इसीलिए उनसे पूरापूरा लाभ नही उठाया जा सकता।

अन्न-भोजनो मे अधिक नमक, मसाला, खटाई, तिताई, मिठाई आदि का समावेश कर देने से उनकी पचने की शक्ति क्षीण हो जाती है, तथा वे गरिष्ट भी बन जाते हैं। उन्हे तेल, घी मे छानना-बघारना अथवा तलना भी बुरा है।

(११) गुड

गन्ना-गुड़ और खजूर-गुड़ मे गन्ने और खजूर के उपयोगी एवं स्वास्थ्यवर्द्धक तत्व पूरी-पूरी मात्रा मे विद्यमान होते है। अत इन्हे ही भोजन के काम मे लाना चाहिए।

(१२) शहद

ससार के सभी वैज्ञानिको एवं आहार शास्त्रियो का मत है कि शुद्ध शहद मनुष्य के लिए एक उपयोगी और उत्कृष्ट खाद्य द्रव्य है। यह शरीर मे जाते ही पच जाता है और अधिक से अधिक शक्ति उत्पन्न करता है। यह हल्का रेचक भी होता है जिससे पेट सदा साफ रहता है। दुर्बलता को दूर करने के लिये शहद के समान गुणकारी अन्य कोई वस्तु नहीं है। एक छोटी चम्मच भर शहद से मनुष्य को सौ कैलोरी की शक्ति प्राप्त होती है जो लगभग पावभर ताजे फलो से प्राप्त शक्ति के बराबर है। शहद, मोटापा आदि कितने ही रोगो की अचूक औषधि भी है। हृदय को शक्ति देने वाले खाद्य पदार्थों में शहद का प्रयोग चरक के जमाने से होता रहा है।

अहितकर भोजन—

उपर्युक्त हितकर भोजनो के अतिरिक्त अन्य भोजन स्वास्थ्य के लिए अहितकर होते हैं। उनसे रोगो की उत्पत्ति होती है और मनुष्य [illegible] प्राप्त करता।

सक्षेप में अहितकर भोजन निम्नलिखित है—

१. सयुक्त भोजन—एक वक्त के भोजन में [illegible] अपितु अनेक प्रकार के खाद्य-द्रव्यो का समावेश [illegible] आहार कहलाता है। अर्थात् एक साथ रोटी, भात, मास, खीर, दूध, घी, अचार, फल तथा मेवे आदि ठीक नही।

२. वेमेल भोजन—वे मेल खाद्य द्रव्यो के [illegible] भोजन, भोजन नही रह जाता, अपितु विष बन [illegible] है। जैसे घी और शहद बराबर-बराबर मात्रा में खाने से आदमी मर तक जा सकता है, और दूध के [illegible] नमक सेवन करने से सफेद कोढ हो जाता है, आदि।

३—आमिष भोजन—मास, मछली, या अण्डा [illegible] भोजन कहलाता है, इसका सेवन शारीरिक और [illegible] दोनो दृष्टियो से उचित नही है। आमिष भोजन [illegible] का आहार है ही नही, इसलिये उसके लिये [illegible] कर है।

४. अति भोजन—ठूसठूस कर भोजन करना [illegible] भोजन कहलाता है। इससे स्वास्थ्य बनने के बदले [illegible] डता ही अधिक है।

५—मिर्च-मसाले-तेल—ये उत्तेजिक पदार्थ हैं। [illegible] खून में खटाई की मात्रा अत्यधिक हो जाती है और [illegible] भांति के रोगो का कारण होती है।

६ वाहरी नमक—वे सभी प्रकार के बाहरी [illegible] (Inorganic) नमक जो खाद्यो में स्थित [illegible] ऐन्द्रिक खनिज लवणो के अतिरिक्त उनमें [illegible] वश्यक रूप से मिलाये जाते है, वाहरी नमक [illegible]

। ये नमक भी मसालों की ही भांति औषधि हो सकते पर मनुष्य के खाद्य, नहीं। इसलिए उत्तम स्वास्थ्य के लिए इनका कम से कम व्यवहार करना या बिल्कुल ही व्यवहार न करना बुद्धिमानी का काम है।

७ निष्प्राण भोजन—जिस भोजन से शरीर को प्राण कम या बिल्कुल ही न मिले अथवा जो तत्वहीन, निस्सार, और मृत हो, वह निष्प्राण भोजन कहलाता है। मिष्ठान्न, मसालेदार खाद्य बासी खाद्य, सड़ी-गली खाद्य-वस्तुए, तली भुनी चीजे, चाय, सभी तैल, सिरका, अचार, मिठाई, पावरोटी, बिस्कुट, केक, सफेद चीनी, मिठाइया, मुरब्बे, आइसक्रीम, तथा नशीली, विषैली और उत्तेजक खाद्य वस्तुए निष्प्राण भोजन कहलाती है। इनके सेवन से लाभ कम और हानि अधिक होती है।

काष्ठौषधि-चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा का यह एक स्वर्ण सिद्धान्त है कि शरीर मे विजातीय द्रव्य की उपस्थिति के कारण ही हम रोगो से आक्रान्त होते है और प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोगो के उस मूल कारण, विजातीय द्रव्य को दूर करके रोग मुक्त हुआ जाता है साथही प्राकृतिक चिकित्सा का एक यह भी सिद्धान्त है कि जिन तत्वो से हमारे शरीर का निर्माण हुआ है, उनमे से एक या कई तत्वो की जब शरीर मे कमी हो जाती है तब ही शरीर रोगी हुये बिना नहीं रहता उस दशा मे शरीर मे तत्व विशेष की कमी को पूर्ण कर देने पर ही रोग मिट सकता है अन्यथा नहीं। इसी काम के लिये चतुर प्राकृतिक चिकित्सक रोगी के लिये विशेष विशेष प्रकार के खाद्यो की सूची तय्यार करते है। कुछ निरोत्तेजक जडी बूटियो की व्यवस्था करते है तथा किन्ही किन्ही हालतो मे समझ बूझकर कुछ अनुत्तेजक और विशेषकर काष्ठौषधियो का भी व्यवहार करते है जो रोगी की भलाई के लिये ही होता है अत प्राकृतिक चिकित्सको की इस कृति [illegible] को प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान मान्यता देता है और [illegible] चिकित्सा की भांति ही काष्ठौषधि चिकित्सा को भी [illegible] चिकित्सा के अन्तर्गत प्राकृतिक चिकित्सा का एक अग मानता है और उसे मानना भी चाहिये।

इस विषय मे मैं अपने रोगी का हाल लिखता हू वह रोगी तीन चार वर्षो से विविध प्रकार के नेत्र रोगो मे फसा हुआ था बावजूद कई प्रकार के इलाज कराने के अच्छा न होता था मैने उसे देखा उसके रोग का इतिहास सुना सोचा कि उसके शरीर मे अथवा आखो मे विजातीय द्रव्य का भार तो उतना नही है पर उसका शरीर खाद्योज 'ए' का निश्चित रूप से भूखा है। अर्थात् उसके शरीर मे खाद्योज ए की बहुत कमी है जिससे उसकी आखे खराब हो रही है फिर क्या था? खाद्योज ए प्रधान खाद्य तथा कुछ जड़ी बूटिया प्रचुर मात्रा मे उसे दी गयी जिसके फलस्वरूप उसकी आखे धीरे धीरे बिल्कुल ठीक हो गयी।

दूसरा दृष्टान्त एक रोगिणी का है उसे २५-३० वर्षो से सफेद कोढ का रोग था सारे बदन पर सफेद-सफेद दाग छाये हुये थे उसके इस रोग को मैंने प्राकृतिक चिकित्सा के साथ साथ दो एक निर्दोष जड़ी बूटियो का प्रयोग करके इन पक्तियो को लिखने के वक्त तक ९१ प्रतिशत दूर कर दिया है चिकित्सा अभी चालू है जिन सज्जनो को मेरे इस कथन की सचाई मे सन्देश हो वे रोगिणी सम्पर्क स्थापित करके इस बात की जाच कर सकते है। रोगिणी का पता है श्रीमती सरयूदेवी लोया पत्नी श्री सत्यनारायण लोया एडवोकेट श्री निकेतन ३५० बेगम पेठ हैदराबाद दक्षिण न० १६ आन्ध्र प्रदेश।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा मे उन जडी बूटियो, उन औषधियो तथा उन खाद्य पदार्थों का समावेश सिद्धान्त के विरुद्ध है जो उत्तेजक होते है उग्र होते है, और जिनके प्रयोग से रोग जडी दूर होने के बजाय दबकर और जड पकड लेते है पर इसके विपरीत जो जड़ी बूटिया, जो औषधिया तथा जो खाद्य पदार्थ अनुत्तेजक है सात्विक है विषैले नही हैं और जिनके प्रयोग से रोग दबते नही अपितु उखड़कर दूर हो जाते है ऐसी जड़ी बूटियो, ऐसी औषधियो तथा ऐसे खाद्यपदार्थो को हम प्राकृतिक चिकित्सा के उपचारो के साथ साथ रोगियो को दे सकते है और उनसे उन्हे लाभान्वित कर सकते हैं। अर्थात् ऐसा करके हम रोग को जल्दी भगा सकते हैं मगर इस सम्बन्ध मे एक बात का हमेशा ख्याल रखना चाहिए वह यह कि हमारा भोजन ही हमारे रोगो की औषधि हो सकता है पर जो हमारा भोजन नही है अर्थात् जिसे हम स्वस्थावस्था मे भोजन की तरह इस्तेमाल करके लाभ नही उठा सकते

यह शरीरके रोगीहोने पर रोग की औषधि नही होसकता इस प्रकार जो जडी बूटिया अथवा औषधि भोजन का काम दे सकती है रोग होने पर रोगोपचार स्वरूप उन्हे काम मे लाना प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तो के प्रतिकूल नही है। पर कुचला भिलावा, धतूरा आदि सैकडो जड़ी-बूटियो ऐसी है जो विष की गाठे होती है और जो हमारा भोजन नही है अत ये किसी भी रूप मे शरीर के लिए लाभदायक नही होसकती। इनके प्रयोग से रोग केवल दब सा गया दीखता है पर परिणाम उसका रक्त की विकृति ही होताहै।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुकूल जड़ी बूटियां कौन ?

जो जड़ी बूटिया सर्वत्र सुलभ नही होती अथवा कठिनाई से प्राप्त की जाती है केवल वेही जडी बूटिया नही कहलाती अपितु जो सर्वत्र बहुतायत से प्राप्त होती है और सब को आसानी से मिल जाती है उन्हे भी जड़ी बूटिया ही कहना चाहिए इस तरह पालक, बथुआ आदि साग, टमाटर, लौकी और सलजम तरकारिया तथा सेव, अमरूद एव अगूर आदि फल सब जडी बूटिया ही है जो विविध रोगो मे दवा के रूप मे व्यवहृत की जा सकती है तथा की जाती है।

एक और बात जो इस सम्बन्ध मे ध्यान देने की है, वह यह है कि जडी-बूटिया या औषधिया शरीर मे पहुँचकर रोग को दूर नही करती और न कर सकती है। वे केवल रोग के दूर होने मे सहायता करती है। रोग से मुक्ति देती है स्वयं प्रकृति, और औषधिया उस सामग्री का काम देती है जो प्रकृति द्वारा रोगी के शरीर की मरम्मत के काम मे लगती है। क्यो कि वह शरीर द्वारा ग्राह्य होती है-शरीर मे लगती है और वहा लगकर शारीरिक अवयवो के गठन मे अथवा आन्तरिक क्रियाओं मे जैसे रोग के कारण विजातीय द्रव्य को निकालने आदि में सहायक सिद्ध होती है। इस तरह सभी सप्राण खाद्य, औषधिया है और सभी अमृतान्न, जडी बूटिया। आकाश वायु, अग्नि, जल से लेकर दूध, फल, सब्जी अमृतान्न (प्राकृतिक खाद्यान्न) और बहुतसी विषहीन, सात्विक और निर्दोष औषधियो और जडी बूटियो तक जो हमारी खाद्य वस्तुओ की भाति ही काम मे आसकती है और है, प्राकृतिक चिकित्सा के अनुकूल है। वे सारी काष्ठौषधिया जो जहरीली और उत्तेजक नहीं हैं, जो भोजन के काम आसकती हैं, जो ताजी होती है मात्रा अधिक नही होती, तथा जो रोगी के स्वभाव, दशा, और बलाबल का पूरा विचार करके दी जाती है, प्राकृ चिकित्सा के अन्तर्गत है। तुलसी, लहसुन, प्या आवला, पेठा, नीम, इमली, आदि हमारे उत्तम खाद्य पदा भी है और रोग होने पर रोगो की औषधिया भी। उदाहरणार्थ, प्याज का रस हैजा मे और लहसुन तपेदिक मे एक प्राकृतिक चिकित्सक निसर्गोपचार के सा साथ देकर अपने रोगी का भला कर सकता है।

प्राकृतिक रूप मे सात्विक गुणवाली अमृतोप वनस्पतियो का उपभोग प्राकृतिक चिकित्सा का विशिष्ट अङ्ग है। ऐसी कुछ वनस्पतियो का तो आहार और औपधि के रूप मे प्रयोग करना सीख है। लेकिन बहुत सी अमृतमयी वनस्पतिया ऐसी भी अनजानी पड़ी है जिनके महत्व एव उपादेयता हम अपरिचित ही बने हुए हैं। अतएव पृथ्वी प उत्पन्न असख्य जड़ी-बूटियो, वनस्पतियो, अथवा काष्ठौ पधियो मे से जितनी जड़ी-बूटियों आदि के सम्बन्ध मनुष्य अबतक जान सका है उनकी सख्या नगण्य ही स मझनी चाहिए। आज के जमाने मे परिजात और कल्प वृक्ष को कितने लोगो ने देखा है? मेघनाद के शक्ति प्रहार के फलस्वरूप निर्जीव लक्ष्मण को पुनर्जीवित करने वाली, रावण के राजवैद्य सुखेन की बनाई हुई अ तुल्य सञ्जीवनी बूटी कहा है, कौन जानता है? निश्चय ही आजका मानव कृत्रिमता तथा अस्वाभाविकता के सुदृढ़ जाल मे फसकर अप्राकृतिक एव मनुष्यकृत हानि प्रद औषधियो, जैसे जहरीली गोलियो, आसवो, तथा इन्जेक्शनो आदि का आवश्यक रूपते व्यवहार कर करते अपने पूर्वजों द्वारा ज्ञान कराई हुई प्राकृतिक लाभप्रद एवं निरापद जडी बूटियो को भूल चुका है और भूलता जा रहा है।

जिन वनस्पतियो वा जडी-बूटियो को हम औ रूप में प्रयोग करना जानते हैं उनको समझदार प्राकृति चिकित्सक आज भी रोग निवारणार्थ, प्राकृतिक उ के साथ-साथ व्यवहार मे लाते है और लाभ उठाते हैं।

ब्रिटिश कालेज आफ नेचुरोपैथी के प्राकृतिक चि

नक थामस जी० डमर एन० डॉ० डो० ओ०से इन्लैण्ड कर जब डाक्टर विट्ठलदास मोदी ने इस विषय पर तचीत की तो पता चला कि वह अपने रोगियो को कृतिक उपचारो के साथ-साथ जडी-बूटियां भी देने के क्ष मे है। उनका कहना है—परमात्मा ने इस पृथ्वी र जहा भाति-भाति के खाद्य पदार्थ पैदा करके उनमें मारे लाभार्थ जीवन एव स्वास्थ्य के धारण तथा पोषण लिये औषधि गुण उत्पन्न किये वहा ही उसने खाद्य दार्थों के साथ-साथ अनेकानेक अमृतमयी जड़ी बूटिया उत्पन्न की है जो निरर्थक नही, अपितु हमारे लाभ लिये ही है। उनमे से प्रत्येक का हमारे लिये कोई न ई उपयोग जरूर है और होना चाहिये। क्योकि यह क कठोर सत्य है कि परमात्मा ने ससार मे किसी भी तु का सृजन निरर्थक नही किया है। आखिर जडी टिया क्या है? उनमे भी सूरज की शक्ति और पृथ्वी शक्ति एकत्र रहती है। अनेक बूटिया नाड़ियों को न्त करती है जिससे शरीर को विश्राम मिलता है ससे चिकित्सा सम्बन्धी अन्य उपचार ठीक काम करते । उन्होने बतायाकि वह १२० प्रकार की विषहीन डी बूटियो का प्रयोग अपने रोगियो पर करते हैं।

श्री बालकोवा भावे ने भी एक जगह लिखा है—मारे चतुर्विध कार्यक्रम मे वनस्पति सशोधन को स्थान या गया है। कडुवी नीम या लहसुन जैसी वनस्पतियो ा उपयोग निसर्गोपचार को मदद देने की दृष्टि से रोगी विशिष्ट अवस्था मे किया जाय तो इसमे कोई दोष ही है। 'गाधीजी ने इसे मान्यता दी है।'

भारत के अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक वयोवृद्ध डा० र्मा के० लक्ष्मण ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रैक्टिकल नेचर क्योर' मे इस बात को स्वीकार किया है और लिखा है हमारे प्राचीन भारतीय रोगोपचारक जो विषहीन नस्पतियो का प्रयोग औषधि रूप मे करते थे, वह बिल्कुल क करते थे, और उनका वैसा करना हमारे प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धातो के अनुकूल था और आज भी । औषधि शब्द जो आजकल गलती से सभी प्रकार की औषधियो के लिये प्रयुक्त होता है, का अर्थ ही है नस्पति' वा 'वानस्पतिक औषधि' जिसका प्रयोग प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के विरुद्ध बिल्कुल नही है, यदि वह प्राकृत रूप मे प्रयोग की जाती है तथा उत्तेजक और विषैली नही है। उपनिषदो मे भी इस बात का सकेत मिलता है कि मनुष्यो के लिये भोजन और औषधि दोनो वनस्पति-ससार से प्राप्त होती है। इसीलिए केवल एन्द्रिक द्रव्य ही, अर्थात् औषधि रूप मे केवल वनस्पतिक योग ही हमे प्राकृतिक रूप मे काम मे लाने चाहिए और अनैन्द्रिक द्रव्य, जैसे भस्म, धातु की बनी दवायें, तथा अफीम और कोकीनादि उत्तेजक और विषले पदार्थ नही।

पाश्चात्य प्राकृतिक चिकित्सक श्री मती एम० ग्रीव, जो ब्रिटेन मे प्रस्तुत विषय की उच्च कोटि की अधिकारिणी मानी जाती है, का भी मत है कि परमात्मा ने ससार मे जो जड़ी-बूटिया पैदा की हैं वह किसी न किसी मतलब से और मनुष्यो के लाभ के लिये ही की है। हमे उनसे अवश्य लाभ उठाना चाहिए। उन्होने अपने देश मे पैदा होने वाली जड़ी-बूटियो का उदाहरण देते हुए लिखा है कि —

Dandelion–जिगर और मूत्राशय के रोगो मे गुणकारी है।

Groundsel–रेचक है।

Chick wood-शाति प्रदान करता है।

Dock–कैसर की दवा है।

Colts foot–इससे खांसी अच्छी हो जाती है।

Aurduck–रक्त को शुद्ध करता है तथा,

Daisy–दमा और कुकुर खासी की औषधि है।

श्रीमती ग्रीव ने आगे चलकर यह भी लिखा है कि व्यवहारिकता के लिहाज से सर्वाङ्ग पूर्ण प्राकृतिक-चिकित्सा वही है जिसमे विषहीन वनस्पतियो का भी औषधि रूप मे सेवन कराया जाता है।

वनस्पतियो से ही अमृत की उत्पत्ति हुई है। इस सम्बन्ध में पुराणो मे बड़ी सुन्दर कल्पना की गयी है। कहा गया है कि देव दानवो द्वारा समुद्र-मन्थन करते समय परिश्रम करने से (अर्थात् शेषनाग को पहाड़ से बाधकर मन्थन के समय रस्से के रूप मे खीचने से) जो थकान हुई, उसके निवारण के लिए तथा देव-दानवो को ताजगी पहुंचाने के लिए रसपूर्ण औषधिया पर्वतो से ८... उखाड कर भारी परिमाण मे समुद्र मे फेंकी

उन्ही सब के एकीकरण से अमृत-घट उत्पन्न तथा जिसको लिए हुये सब के अन्त मे भगवान धन्वन्तरि प्रगट हुए।

कुछ प्राकृतिक चिकित्सक जिनमे डा० हेनरी लिण्ड-लहार, स्व० डा० जानकी शरण वर्मा, डा० के० एल० शर्मा, डा० खुशीराम दिलकश मुख्य है, प्राकृतोपचार और होमियोपैथी तथा बायोकेमिक चिकित्सा-पद्धतियो मे अधिकाश साम्य बताते हुए, यदाकदा प्राकृतिक चिकित्सा के साथसाथ होमियोपैथिक की गोलियो को भी रोगी को देने की सिफारिश करते है। उनका कहना है कि जो कुछ भी शरीर के भीतर के रक्त को ठीक अवस्था मे रखे और प्राकृतिक विधि से परिष्कृत और स्वस्थ्य बनाये, वही प्राकृतोपचार है। इसलिए इस प्राकृतिक चिकित्सको ने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली मे जड़ी-बूटियो के साथ-साथ होमियोपैथिक औषधियों को भी सम्मिलित किया है, और करते है। यह सही है कि होमियोपैथी की बहुत सी औषधियां विषैले पदार्थों की बनी होती हैं, पर लिन्डलहार के अनुसार उनकी मात्रा कभी कभी १ के हजारवे-लाखवे भाग के बराबर भी नही रहती, अत. उनके द्वारा शरीर मे कोई अप्राकृतिक प्रतिक्रिया नही होती। हालाकि डा० लिन्डलहार सभी रोगों में बायोकेमिक एव इलेक्ट्रो होमियोपैथी दवाओ के दिए जाने के पक्ष में नहीं है, [illegible] जिन जीर्ण या कठिन तीव्र रोगो मे अन्य उपचारों [illegible] अनुकूल प्रतिक्रया नही हो पाती केवल उन्ही मे इन द[illegible]ओ के व्यवहार का परामर्श डा० लिन्डलहार दिया है।

शायद किसी को पता हो या न हो स्वय [illegible] गाधी ने जिनके विषय मे यह प्रसिद्धि है कि वह [illegible] जीवन भर औषधियो से दूर रहे, बीमार पडने पर [illegible] दो बार सर्पगंधा जडी तथा कुनैन की गोलिया ली [illegible] (देखिए पुस्तक 'बापू की कारावास-कहानी' लेखक सुशीला नैयर, पृ० ३७७,४४१,४४२, तथा ४४४). एक बार जब वह जेल मे थे तो उनके अपेंडिक्स [illegible] डाक्टरो ने आपरेशन भी किया था। (देखिए, [illegible] साहित्य' जुलाई-अगस्त १९६४ अङ्क पृ० ३३६)

पर फिर भी हम जोर देकर कहेगे कि प्रा[illegible] चिकित्सा अपने मे पूर्ण एव अत्यन्त प्रभावशाली चि[illegible] प्रणाली है। अतः उसके प्रयोगो के साथ साथ [illegible] प्रकार की औषधियां, जो मनुष्य की स्वस्थावस्था [illegible] उसकी खाद्य-वस्तु नही हो सकती, का प्रयोग प्रा[illegible] चिकित्सा के सिद्धातो के विरुद्ध होने के कारण [illegible] नही।

—✿✿✿✿✿—

प्राकृतिक-चिकित्सांक

(तृतीय खण्ड)

पहला अध्याय

रो ग मी मां सा

रोग क्या है ?

यह सभी जानते है कि किसी प्रकार की तकलीफ का नाम रोग है। रोग के कई नाम है, जैसे बीमारी, व्यथा, बेरामी, असुख, आदि। हमारे शरीर की गदगी फेफड़ो और सास द्वारा, शरीर के अन्य अवयवो की गदगी त्वचा के असख्य छिद्रो द्वारा, पसीने के रूप में तथा पेट की गदगी पेशाब व पाखाना के रास्ते सदा निकला करती है। यदि कभी इन साधारण ढंगो और मार्गो से शरीर का मल भलीभाति नही निकल पाता है, तो प्रकृति मजबूर होकर उस काम के लिये असाधारण ढग काम मे लाती है। उन्ही असाधारण ढगो को साधारण भाषा मे रोग कहते हैं, और प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान की भाषा मे मूल रोग के लक्षण कहते है। क्योकि रोग तो असल मे वह मल होता है जो शरीर के भीतर बहुत पहले से सचित हुआ करता है, जिसको निकालने के लिए प्रकृति ज्वर, दस्त, फोड़ा आदि असाधारण ढंग काम मे लाती है। इस तरह शरीर रक्षा के लिये, शरीर से मल निकालने के लिये, प्रकृति के प्रयत्न और प्रबन्ध को रोग या रोग के लक्षण कह सकते है। प्रत्येक रोग शरीर मे सचित विष को सहन की सीमा के अतिक्रमण का दूसरा नाम है (William howard hay M. D.) 'लालात रोग.' (योग सूत्र) अर्थात् कफ ही रोग है। (Mucus is dis ease) दूसरे शब्दों मे विजातीय द्रव्यो का शरीर मे एकत्र होना ही रोग है। रोग चिन्ह है जो हमे चेतावनी देते हैं कि विजातीय द्रव्य रूपी शत्रु ने हमारे शरीर मे अड्डा जमा लिया है, जिससे हमे सजग और सावधान होना चाहिये। रोग का एक और नाम शरीर की अस्वाभाविक अवस्था है।

डा० जेस्सीमसर गेहमन के अनुसार स्वास्थ्य की परिवर्तित अवस्था को रोग कहते है। कारण, रोगकालीन-अवस्था उस अवस्था से भिन्न हो जाती है जिसमे न तो कोई पीड़ा होती है, न कोई परेशानी, और न अङ्गो की क्रियाओं मे कोई अन्तर होता है। गलत रहन सहन के कारण रक्त के दूषित होने पर स्वास्थ्य की अवस्था मे परिवर्तन होकर रोग का प्रादुर्भाव होता है। [illegible] जा सकता है कि स्वास्थ्य और रोग एक ही चो[illegible] अवस्थायें हैं।

बुनियादी हालत मे, यानी जब रोग सुप्त[illegible] विजातीय द्रव्य के रूप मे शरीर के किसी अ[illegible] अथवा समस्त शरीर मे व्याप्त रहता है, रोग [illegible] कोई नाम होता है और न उसकी कोई शकल [illegible] है पर ज्यों ही वह बाहर निकलने के लिये [illegible] आता है, तो विविध नामों और शकलो मे विद[illegible] है। फोड़ा निकलने के बहुत पहले फोडे का बीज [illegible] मल (विजातीय द्रव्य) के रूप मे आरोपित हो चु[illegible] है, जो बेनाम, बेशकल, तथा बिना हमारे जाने [illegible] पड़ा-पड़ा वृद्धि को प्राप्त होता है। पर समय पा[illegible] वही बीज रूपी जल फोड़े की शकल अख्तियार [illegible] है, तब उसके कई रूप और नाम जैसे लहरबाद, [illegible] कल, चेचक, साइन, गलका, गू गी आदि लोगो [illegible] और सुनने मे आते हैं। इसी तरह शरीर का सचि[illegible] समय और परिस्थिति के अनुसार कभी ज्वर [illegible] प्रकट होता है, कभी दस्त के और कभी किसी [illegible] के। कारण हर हालत मे एक ही होता है, परन्[illegible] णाम भिन्न-भिन्न रूपो मे और भिन्न-भिन्न [illegible] दृष्टिगोचर होता है।

यह समझ लेने के बाद कि रोग शरीर में दोनं[illegible] मे विद्यमान रह सकता है। अर्थात्, निराकार रू[illegible] और साकार रूप से भी, यह कहना अति कठि[illegible] अमुक शरीर सर्वथा रोगहीन है। क्यो कि ऊपर से [illegible] मे वह शरीर भले ही स्वस्थ प्रतीत होता है, किन्तु [illegible] अन्तर में कोई-न-कोई रोग सुषुप्तावस्था में अथवा [illegible] कार रूप से विद्यमान रह सकता है जो परिस्थिति के [illegible] कूल होने पर साकाररूप धारण कर सकता है [illegible] तभी हम अपनी इन्द्रियों द्वारा उसे समझकर [illegible] व्यवस्था दे सकेंगे कि शरीर को अमुक रोग [illegible]

यह भलीभाति जान लेना चाहिये कि किसी भी [illegible]

अपना साकार रूप अचानक नही धारण कर लेता, ऐसा करने में उसे कभी-कभी काफी दिन लग जाते रोग की सुषुप्तावस्था वाली परिस्थिति, जागृतवाली से अधिक भयानक और प्राणघातक सिद्ध होती है। के रोग प्रगट होने से शरीर का आन्तरिक दूषित जो रोग का कारण है, आसानी से बाहर निकल है, और शरीर कुछ ही दिनों मे रोगमुक्त हो जाता किन्तु जब रोग वा रोग का कारण शरीर के भीतर भार अथवा सुषुप्तावस्था मे होता है, तो वह भीतर तर शरीर के स्वस्थ अवयवों को घुन की भांति रहता है, जिसका परिणाम यह होता है कि शरीर स-नस में उसका दूषित विकार व्याप्त हो जाता है शरीर हीन होने लगता है। रोग की यह स्थिति भयानक होती है।

यदि कहा जाय कि मनुष्य के शरीर मे रोग आते से स्वास्थ्य प्रदान करने के लिये तो यह एक अटपटी-त मालूम पडती है किन्तु बात है सोलह आने हम रोज देखते है कि एक व्यक्ति जो बीमार के प्रथम काफी हट्टा-कट्टा रहता है, दो माह रोग रहने पर क्षीण हो जाता है और अपने को हल्का-अनुभव करने लगता है। इस सम्बन्ध मे सबसे प्रथम खना है कि वह व्यक्ति बीमार ही क्यो पडा ? और यह कि वह एक खास वक्त पर ही क्यों बीमार वह व्यक्ति वास्तव मे वर्षों पहले से बीमार था, भले उसके शरीर मे सुषुप्तावस्था मे विद्यमान रहने के उसे अथवा दूसरो को ज्ञान न हुआ था। रोग का जो बहुत पहले पड चुका था, उसका उचित उपायो निर्मूल न होने के कारण उसने शरीर के भीतर तो से जड पकड ली और फलत. बढना आरम्भ देया। अन्त में अनुकूल जलवायु मिलते रहने के अर्थात् मिथ्या आहार-विहार होते रहने से वही पी छोटा-सा पौधा बढकर एक विशाल काय भयङ्कर विटप के रूप मे परिणित हो गया और सर्वसाधारण आंखो के सामने आ गया। इसी अवस्था को हम की रोगावस्था कहते हैं। हालाकि यह अवस्था बहुत से थी, और अब तो उसका केवल प्रगट और साकार ही कहा जायगा। दूसरे शब्दो मे इसे यो कहा जा सकता है कि वर्षों के अनियमित जीवन-यापन से बूंद-बूंद विष भरते रहने के कारण अन्त मे शरीर रूपी घट, रोग रूपी विष से लबालब भर गया। इतना कि अब और अधिक विष उसमे अट नही सकता, फलत. उसको बाहर निकलने का रास्ता शरीर के स्वभाव को मिलना ही चाहिए। क्यो कि प्रकृति अपने नियमानुसार, उस सञ्चित विष को, जिसकी आवश्यकता शरीर को बिल्कुल नही होती, और जो विजातीय द्रव्य है, उस रोगी-शरीर के कल्याणार्थ शरीर मे रहने तो देगी नही। अत उसे निकालने के लिये प्रकृति जिन अनेको तरीकों को अपनाती है, उन्ही को हम रोग का नाम देते है।

जब हम प्रकृति से दूर जा पड़ते हैं। विचारने, सास लेने, भोजन करने, कपडा पहनने, आराम करने, विहार करने आदि सभी मामलो मे उसके नियमो के विरुद्ध आचरण करते हे उसकी अपेक्षाओं का उल्लंघन करते है। उस समय प्रकृति एक सुयोग्य और अच्छी माता की भाति हमे अपना अबोध शिशु समझकर, हमारे कल्याणार्थ, कभी-कभी मीठी फटकार दे बैठती है। उसी प्राकृतिक मीठी फटकार को रोग का नाम दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से रोग हमारी भूलो और बेवकूफियो का परिणाम सिद्ध होते है।

रोग के कारण

ससार मे कोई बात अकारण नही हुआ करती प्रत्येक कार्य का कारण होता ही है। अत रोगोत्पत्ति का भी कारण होना अनिवार्य है। ज्योतिषी लोग रोग का कारण ग्रहो का फेर मानते है। ओझा-सोखा-प्रेत बाधा को रोग का कारण समझते हे। वैद्य, त्रिदोष, (वात पित्त, कफ) चतुर्दोष की विषमावस्था को रोग कहते हैं। डाक्टर लोग प्रत्येक रोग के लिये उस रोग के कीटाणु विशेष को ही दोषी ठहराते हैं। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सको का सिद्धात इस सम्बन्ध मे इन सबो से भिन्न है। वे न तो ग्रहो को रोग का कारण मानते, न भूत-प्रेत को और न त्रिदोष और कीटाणु-जीवाणुओं को ही। वे रोग का कारण मूलत स्वयं उस रोगी को ही मानते हैं जिसको कोई रोग होता है।

रोग के मुख्यत दो कारण होते हैं—बाह्य (Objective) तथा आन्तरिक (Subjective)। शारीरिक धर्म

पहला अध्याय

रो ग मी मां सा

रोग क्या है ?

यह सभी जानते है कि किसी प्रकार की तकलीफ का नाम रोग है। रोग के कई नाम है, जैसे बीमारी, व्यथा, बेरामी, असुख, आदि। हमारे शरीर की गदगी फेफडो और सास द्वारा, शरीर के अन्य अवयवो की गदगी त्वचा के असंख्य छिद्रों द्वारा, पसीने के रूप मे तथा पेट की गदगी पेशाब व पाखाना के रास्ते सदा निकला करती है। यदि कभी इन साधारण ढगो और मार्गों से शरीर का मल भलीभाति नही निकल पाता है, तो प्रकृति मजबूर होकर उस काम के लिये असाधारण ढग काम मे लाती है। उन्ही असाधारण ढगों को साधारण भाषा मे रोग कहते है, और प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान की भाषा मे मूल रोग के लक्षण कहते है। क्योकि रोग तो असल मे वह मल होता है जो शरीर के भीतर बहुत पहले से सचित हुआ करता है, जिसको निकालने के लिए प्रकृति ज्वर, दस्त, फोड़ा आदि असाधारण ढंग काम मे लाती है। इस तरह शरीर रक्षा के लिये, शरीर से मल निकालने के लिये, प्रकृति के प्रयत्न और प्रबन्ध को रोग या रोग के लक्षण कह सकते है। प्रत्येक रोग शरीर मे सचित विष को सहन की सीमा के अतिक्रमण का दूसरा नाम है (William howard hay M. D.) 'लालात रोगः' (योग सूत्र) अर्थात् कफ ही रोग है। (Mucus is dis ease) दूसरे शब्दों मे विजातीय द्रव्यो का शरीर मे एकत्र होना ही रोग है। रोग चिन्ह है जो हमे चेतावनी देते हैं कि विजातीय द्रव्य रूपी शत्रु ने हमारे शरीर मे अड्डा जमा लिया है, जिससे हमे सजग और सावधान होना चाहिये। रोग का एक और नाम शरीर की अस्वाभाविक अवस्था है।

डा० जेस्सीमसर गेहमन के अनुसार स्वास्थ्य की परिवर्तित अवस्था को रोग कहते है। कारण, रोगकालीन-अवस्था उस अवस्था से भिन्न हो जाती है जिसमे न तो कोई पीड़ा होती है, न कोई परेशानी, और न अङ्गो की क्रियाओं मे कोई अन्तर होता है। गलत रहन सहन के कारण रक्त के दूषित होने पर स्वास्थ्य की अवस्था मे परिवर्तन होकर रोग का प्रादुर्भाव होता है। अत कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य और रोग एक ही चीज की दो अवस्थायें है।

बुनियादी हालत मे, यानी जब रोग सुपुप्तावस्था मे विजातीय द्रव्य के रूप मे शरीर के किसी अङ्ग विशेष अथवा समस्त शरीर मे व्याप्त रहता है, रोग का न तो कोई नाम होता है और न उसकी कोई शकल ही होती है पर ज्यो ही वह बाहर निकलने के लिये प्राकट्य मे आता है, तो विविध नामो और शकलो मे विख्यात होता है। फोड़ा निकलने के बहुत पहले फोडे का बीज शरीर मे मल (विजातीय द्रव्य) के रूप मे आरोपित हो चुका रहता है, जो बेनाम, बेशकल, तथा बिना हमारे जाने शरीर मे पड़ा-पड़ा वृद्धि को प्राप्त होता है। पर समय पाकर जब वही बीज रूपी जल फोड़े की शकल अखतियार कर लेता है, तब उसके कई रूप और नाम जैसे लहरवाद, कारबकल, चेचक, सइन, गलका, गूगी आदि लोगो को देखने और सुनने में आते हैं। इसी तरह शरीर का सचित मल, समय और परिस्थिति के अनुसार कभी ज्वर के रूप मे प्रकट होता है, कभी दस्त के और कभी किसी अन्य रोग के। कारण हर हालत मे एक ही होता है, परन्तु परिणाम भिन्न-भिन्न रूपो मे और भिन्न-भिन्न नामों मे दृष्टिगोचर होता है।

यह समझ लेने के बाद कि रोग शरीर में दोनों रूपो मे विद्यमान रह सकता है। अर्थात्, निराकार रूप से भी और साकार रूप से भी, यह कहना अति कठिन है कि अमुक शरीर सर्वथा रोगहीन है। क्योंकि ऊपर से देखने मे वह शरीर भले ही स्वस्थ प्रतीत होगा है, किन्तु उसके अन्तर में कोई-न-कोई रोग सुपुप्तावस्था में अथवा निराकार रूप से विद्यमान रह सकता है जो परिस्थिति के अनुकूल होने पर साकाररूप धारण कर सकता है। और तभी हम अपनी इन्द्रियो द्वारा उसे समझ-बूझकर यह व्यवस्था दे सकेंगे कि शरीर को अमुक रोग लगा है।

यह भलीभाति जान लेना चाहिये कि किसी भी शरीर मे

रोग अपना साकार रूप अचानक नही धारण कर लेता, बल्कि ऐसा करने मे उसे कभी-कभी काफी दिन लग जाते है। रोग की सुपुप्तावस्था वाली परिस्थिति, जागृतवाली से कही अधिक भयानक और प्राणघातक सिद्ध होती है। क्योकि रोग प्रगट होने से शरीर का आन्तरिक दूषित द्रव्य जो रोग का कारण है, आसानी से बाहर निकल जाता है, और शरीर कुछ ही दिनो मे रोगमुक्त हो जाता है। किंतु जब रोग वा रोग का कारण शरीर के भीतर निराकार अथवा सुपुप्तावस्था मे होता है, तो वह भीतर ही भीतर शरीर के स्वस्थ अवयवो को घुन की भाति चाटता रहता है, जिसका परिणाम यह होता है कि शरीर की नस-नस मे उसका दूषित विकार व्याप्त हो जाता है और शरीर हीन होने लगता है। रोग की यह स्थिति अतीव भयानक होती है।

यदि कहा जाय कि मनुष्य के शरीर मे रोग आते है उसे स्वास्थ्य प्रदान करने के लिये तो यह एक अटपटी-सी बात मालूम पडती है किन्तु बात है सोलह आने सच। हम रोज देखते है कि एक व्यक्ति जो बीमार पड़ने के प्रथम काफी हट्टा-कट्टा रहता है, दो माह रोग ग्रसित रहने पर क्षीण हो जाता है और अपने को हल्का-पन का अनुभव करने लगता है। इस सम्बन्ध मे सबसे प्रथम यह उठता है कि वह व्यक्ति बीमार ही क्यो पड़ा? और सकता है कि वर्षों के अनियमित जीवन-यापन से बूंद-बूंद विष भरते रहने के कारण अन्त मे शरीर रूपी घट, रोग रूपी विष से लबालब भर गया। इतना कि अब और अधिक विष उसमे अट नही सकता, फलत उसको बाहर निकलने का रास्ता शरीर के स्वभाव को मिलना ही चाहिए। क्योंकि प्रकृति अपने नियमानुसार, उस सञ्चित विष को, जिसकी आवश्यकता शरीर को बिल्कुल नही होती, और जो विजातीय द्रव्य है, उस रोगी-शरीर के कल्याणार्थ शरीर मे रहने तो देगी नही। अत उसे निकालने के लिये प्रकृति जिन अनेकों तरीकों को अपनाती है, उन्ही को हम रोग का नाम देते है।

जब हम प्रकृति से दूर जा पडते हैं। विचारने, सास लेने, भोजन करने, कपडा पहनने, आराम करने, विहारकरने आदि सभी मामलो मे उसके नियमो के विरुद्ध आचरण करते हैं उसकी अपेक्षाओं का उल्लंघन करते है। उस समय प्रकृति एक सुयोग्य और अच्छी माता की भाति हमे अपना अबोध शिशु समझकर, हमारे कल्याणार्थ, कभी-कभी मीठी फट-कार दे बैठती है। उसी प्राकृतिक मीठी फटकार को रोग का नाम दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से रोग हमारी भूलो और बेवकूफियो का परिणाम सिद्ध होते है।

रोग के कारण

अथवा स्वास्थ्य सिद्धांत के विरुद्ध आचरण करना रोग का बाह्य कारण और अनिष्टकारी मनोवृत्तियो का असगत प्रयोग तथा अहितकर चिन्ता, कल्पना भय आदि उसके आतरिक कारण होते है। शरीर और मन के सभी रोग इन्ही कारणों से होते है कि निरोग रहने के लिये सप्राण भोजन, व्यायाम, परिमित परिश्रम, समुचित निद्रा, संयम तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमो की आवश्यकता होती है और इन नियमो का भग करना क्या है? मानों रोगो को निमन्त्रण देना। उसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ, हिसा, द्वेष, ईर्ष्या आदि मलिन मनोवृत्तियो के व्यवहार से देह और मन मे तरह-तरह के रोग उत्पन्न होते है। रोगो के वाह्य कारण स्थूल भाव से शरीर पर और आंतरिक कारण सूक्ष्मरूप से मन पर प्रभाव डालते है। सभी रोग पहले मन मे उपजते हैं फिर शरीर पर प्रगट होते हैं।

महात्मागाधी ने एक जगह लिखा है कि अन्ग्रेज कवि मिल्टन के कथनानुसार मनुष्य का मन ही उसके लिए स्वर्ग या नर्क है। स्वर्ग कही बादलो मे और नर्क कही पृथ्वी के भीतर नही है। मन ही बन्धन (नर्क) और मोक्ष का कारण है। इसके अनुसार कहा जा सकता है कि मनुष्य अपने रोगी या निरोगी रहने का आप ही कारण है। हम जैसे अपने कार्यो से रोगी होते है वैसे ही विचारो से भी रोगी हो जाते है। इसके कई उदाहरण है—जैसे बेटे को हैजा हुआ देख बाप को भी भय के कारण हैजा हो गया। एक प्रसिद्ध वैद्य का कथन है कि महामारी, हैजा, प्लेग आदि रोगो से जितने रोगी नही मरते उससे अधिक उन रोगो के भय से मरते है। कायर बिना मौत मरता है। यह कहावत झूठी नही।

चरक के अनुसार भी काल, बुद्धि, इन्द्रिय, विषय इनका मिथ्या योग, अयोग और अतियोग—यह तीन प्रकार का व्यापार होना ही शारीरिक तथा मानसिक व्याधियो का कारण है। शरीर और मन—दोनों ही रोग के अधिष्ठान है अर्थात् रोग, शरीर और मन—दोनो मे होते है और काल, बुद्धि, इन्द्रियो के विषय उनका उचित योग रहने से रोग न होकर सुख प्राप्त होता है। यथा—

कालबुद्धीन्द्रियार्थानां योगो मिथ्या न चाति च।
द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतु संग्रहः॥
शरीरं सत्त्व संज्ञञ्च व्याधीनामाश्रयो मतः।
तथा सुखानां योगस्तु सुखानां कारणं शमः॥

वास्तव में हम अपनी नासमझी के कारण ही रोगी होते है। वरना स्वस्थ रहना तो हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। स्वाभाविक है। हम यदि स्वस्थ रहना न जाने या जानकर तदनुसार आचरण न करें तो रोगी तो हम होगे ही। जैसा बोयेगे वैसा ही तो काटेगे। रोग की विभीषिका जितनी हम मनुष्यो को त्रस्त करती है। उतना पशु-पक्षियो को नही। मनुष्यो मे इस काम के लिये लाखो करोड़ो डाक्टर-वैद्य होते हैं। अस्पताल होते है। लाखो किस्म की औषधिया होती हैं। पर पशु-पक्षियों के लिये ऐसा कुछ भी नही होता। वे रोग ग्रस्त भी कम ही होते देखे जाते हैं और जब वे रोगी होते है तो वे अपनी दवा आप करके अच्छे भी हो जाते है। उन्हे अपने रोगो की दवाये मालूम होती है, प्रकृति की गोद मे रहने के कारण। प्रकृति से सदैव सम्पर्क बनाये रखने के कारण तथा प्रकृति के सकेतों के समझने की क्षमता रखने के कारण। हम अपने को मनुष्य कहते है पर इस सम्बन्ध में हम उन पशु पक्षियों से भी गये बीते हैं। हम प्रतिपल रोग से डरते रहते है। हम शतप्रतिशत रोगी हैं इसका कारण क्या है? यही कि हम प्रकृति से दूर-दूर र है। यही कि हम प्राकृतिक जीवन नहीं बिताते। अ रोग होने का सर्व प्रथम कारण है—

(१) अप्राकृतिक जीवन-यापन—डाक्टर ए० जुस्ट एक जगह लिखा है—"बहुतों की धारणा है कि रोग और अकाल मृत्यु भगवान की दया और प्रेम के परिणाम है ऐसी धारणा को स्थान देना एक तरह से भगवान को मुह चिढाना है। क्योकि हम मे जो सासारिक रोग आदि हैं। उनका मुख्य कारण है हम लोगो का प्रकृति के नियमों के विरुद्ध जीवन यात्रा का निर्वाह करना।"

एक डाक्टर जुस्ट ही नही, अपितु पश्चिमी और पूर्वी देशो के लगभग सभी विचारवान विद्वानों और डाक्टरो को हमारा आधुनिक कृत्रिम जीवन-यापन खटकने लगा है और वे सभी प्राकृतिक जीवन यापन किये जाने पर बहुत जोर देने लगे है। उनका कहना है कि प्राकृतिक जीवन ही आजकल फैली हुई अगणित

रिया और स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त दोषों की एक मात्र दवा है।

यदि दुख पर शासन करना चाहते हो तो सुख को मिटा दो, यदि अपमान पर शासन करना चाहते हो तो सम्मान को मिटा दो। यदि शोक पर शासन करना चाहते हो तो हर्ष को मिटा दो। इसी तरह यदि रोग पर शासन करना चाहते हो तो भोग (अप्राकृतिक जीवन) को मिटाना ही पड़ेगा। यही नीति है। वास्तव मे हम मे कुछ आदतें ऐसी है जो स्वस्थ रहने ही नही देती। उनमें से मुख्य ये है—

१—भोजन सम्बन्धी बुरी आदतें।
२—आलस्य।
३—पञ्चतत्वों का कम से कम उपयोग।
४—कृत्रिमता से अनुराग।
५—अनियमित भोग-विलास।
६—मिथ्योपचार।
७—मानसिक कुविचार।

प्राकृतिक जीवन सयम का जीवन है। उसे ही सदाचार भी कहते हैं। सयम, सदाचार, सच्चरित्रता एक ही चीज के तीन नाम है। असयम या कदाचार ही वस्तुत. समस्त रोगो की जड है।

(२) विजातीय द्रव्य—रोग के होने का दूसरा कारण है अप्राकृतिक जीवन यापन के फल स्वरूप हमारे शरीरो मे विजातीय द्रव्य का बढ जाना और उसका शरीर के मल मार्गों द्वारा साधारणतः न निकल सकना। विजातीय द्रव्य के कई नाम है। जैसे रोग मल, विकार, विष, क्लेद, [illegible] दुर्गन्ध, विसदृश द्रव्य Foreign matter वादीपन [illegible] Morbid matter जहर, विकृति, Toxins [illegible] आदि। वैद्यक मे विजातीय द्रव्य को [illegible] और वैद्यो के यहाँ भी इस दोष को ही रोग का उल्टे उसके विनाश का कारण बन सकती है उसी को दोष या विजातीय द्रव्य कहते है। विजातीय द्रव्य, ठोस हो सकता है, तथा तरल और वायव्य भी।

वैद्यक ग्रन्थो मे यह भी मिलता है—'जायन्ते विविधा रोगा. प्रायशोमल सञ्चयात्।' तथा 'मलिनो करणान्मल.' इनकाभी अर्थ यही है कि हमारे शरीर के समस्त सस्थान अन्नपान आदि से निकले हुये मलो को एव शरीर के मृत कोषो को दूर करने का बराबर प्रयत्न करते रहते हैं। नासिका और अ शतः रोम कूपो द्वारा सांस के रूप मे, रोम कूपो द्वारा पूर्णत पसीना के रूप मे, गुदा द्वारा विष्ठा के रूप मे, मूत्रेन्द्रिय द्वारा मूत्र के रूप मे, नाक मुंह द्वारा कफ और थूक के रूप मे, नेत्रो द्वारा कीचड और अश्रु के रूप में, कान द्वारा कर्ण-मल के रूप मे, नख के रूप में बालो के रूप मे तथा स्त्रियों मे आर्त्तव के रूप मे। और ये ही मल जब शरीर मे सञ्चित हो जाते है और पडे पडे सडा करते है तो कालान्तर मे विविध रोगो को उत्पन्न करने मे कारण बनते है।

विजातीय द्रव्य क्या है? इसको समझने के लिये मोटर गाडी, घड़ी या रेलवे इञ्जिन मे होने वाली कार्यवाइयो पर उदाहरण रूप से दृष्टिपात करने की सिफारिश की जा सकती है। ज्यों-ज्यो मोटर गाडी चलती है, उसमें कार्बन इकट्ठा होता रहता है। यह सञ्चित कार्बन यदि समय समय पर साफ न होता रहे तो मोटर खराब होकर किसी काम की न रह जायगी। ठीक यही हाल हमारे शरीर का भी है। शारीरिक मानसिक किसी भी [illegible] करने या शरीर के भीतर [illegible] हमारे शरीर मे एसिड पैदा होता रहता है। [illegible] होती रहती है। [illegible] या विष [illegible] [illegible] मोटर [illegible] मोटर मे [illegible]

विजातीय द्रव्य का सर्वप्रथम शरीर के मल निकालने वाले मार्गों मे या उनके आस पास–विशेष कर पेड़ू और उदर मे सञ्चय होना प्रारम्भ होता है और धीरे–धीरे समस्त शरीर में व्याप जाता है। 'उदरम् व्याधि मन्दिरम्' कहने का यही तात्पर्य है। विजातीय द्रव्य से भरे हुए अवयवों की पूर्ण वृद्धि नहीं हो सकती क्योंकि शरीर मे जहा कही विजातीय द्रव्य होता है वहा पोषक द्रव्यों (रक्तादि) के लिए जगह घिर जाती है जिससे पोषण के कार्य मे रुकावट पड़ जाने से वे अवयव अपूर्ण और छोटे ही रह जाते है जिनमें विजातीय द्रव्य भरा होता है।

विजातीय द्रव्य में अपने रूप को बदलते रहने की सहज शक्ति होती है। इसका निर्माण विशेषत. उन कणों से होता है जो घुलनशील और अलग–अलग हो जाने वाले होते हैं, अथवा पिस जा सकते है। यह उन तत्वों से बना होता है जिनमे उद्वेग हो सकता है। उद्वेग की दशा मे विजातीय द्रव्य मे वहुत बारीक बारीक जीवाणु--कीटाणु उत्पन्न होजाते है जो आक्रान्त स्थान पर बड़ा परिवर्तन कर देते है और विजातीय द्रव्य की मात्रा मे वृद्धि कर देते है। उद्वेग से गरमी उत्पन्न होती है - जितना अधिक उद्वेग होगा उतनी ही अधिक गरमी होगी। दो या अधिक वस्तुओं की रगड़ और मन्थन से गरमी की उत्पत्ति होती है। इसी उद्वेगजनित गरमी के कारणस्वरूप सारे तीव्र रोग, ज्वर, जुकाम, सिर दर्द, पेट दर्द, बदन-दर्द, अजीर्ण, अरुचि, तृषा, वमन, अतिसार, शरीर मे मलोपस्थिति के आरम्भिक चिन्ह होते है। वे सभी ज्वर है। यथा :—

दोषोऽजीर्णज्ज्वरं कुर्यात्

विजातीय द्रव्य मे उद्वेग के कारण हमारे रक्त मे गरमी बढ़ जाती है। इसी दशा का नाम ज्वर है। ज्वर तभी होता है जब शरीर मे विजातीय द्रव्य मौजूद हो और उसके निकलने के सब मार्ग करीब-करीब रुक गये हों। अतः शरीर स्थित विजातीय द्रव्य में चालू उद्वेग-क्रिया को ज्वर कहेगे।

ऋतु परिवर्तन, बाह्याघात, मानसिक उद्वेग आदि कारणो से शरीर स्थित विजातीय द्रव्य मे हरकत होती है और तव वह ज्वर का रूप धारण करता है। ज्वर के माने यहां रोग के है। उस समय यदि उचित उपचार द्वारा उसे निकल जाने का मार्ग नही दिया जाय तो वह उस अवयव विशेष मे ताप उत्पन्न करके उसका नाश कर देता है। शरीर के जिस अवयव पर विजातीय द्रव्य का आघात होता है वह आघात उस अवयव के रोग के नाम से पुकारा जाता है।

केवल खानपान की गलतियो से ही विजातीय द्रव्य हमारे शरीर मे एकत्र नही होता बल्कि अन्य मार्गों से भी वह शरीर मे प्रवेश करता है। जैसे–

१–सांस के साथ हवा मे उड़ते रहने वाले छोटे-छोटे कीटाणु, धूल-कण, धुंआ तथा अन्य विजातीय द्रव्य शरीर में चले जाते है।

२–मुह के द्वारा जल मे मिश्रित कीटाणु और गंदगी आदि शरीर मे पहुँच जाती है।

३–विषैले जन्तुओं (सांप, बिच्छू आदि) के काट खाने से उनका विष शरीर मे प्रवेश कर जाता है।

४–विषैली दवाइयो और सुइयो द्वारा विजातीय द्रव्य को ही शरीर मे प्रवेश कराया जाता है।

५–तम्बाकू, गांजा, चरस, सिग्रेट आदि से भी हम शरीर मे विजातीय द्रव्य की वृद्धि करते हैं।

(३) जीवन-शक्ति का ह्रास—शरीर मे रोगों से लड़ने वाली जीवन-शक्ति की कमी रोगोत्पत्ति का तीसरा कारण है। यह सर्वविदित है कि साधारणतः दुर्बल अङ्गो और दुर्बल व्यक्तियो मे ही रोग पैदा होते है और पनपते हैं। शक्तिहीन शरीर मे उसमे पड़े हुए कूड़े-कचरे को बाहर निकालकर निर्मल बनाने की ताकत नही होती। इस तरह बोझ बराबर बढ़ते जाने से वह निस्तेज होजाता है उसका सारा सौन्दर्य और आकर्षण धूल में मिल जाता है, स्वभाव चिडचिडा हो जाता है। भूख मर जाती है, नीद हराम हो जाती है। शरीर का विकास रुक जाता है और शरीर मे हमेशा एक न एक रोग डेरा डाले रहता है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि शरीर की सभी प्रकार की रुग्णावस्था का मूल कारण उसमे जीवन-शक्ति का ह्रास ही है जो स्वयं एक रोग माना जाता है और जिसकी चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति मे सर्व प्रथम की जाती है। कारण शरीर की जीवन शक्ति बिना बढ़ाये मूल रोग के निवारण करने की आशा करना दुराशा मात्र है।

जीवन-शक्ति के ह्रास के प्रधान कारण ये हैं—

१—शक्ति से अधिक श्रम करना।

२—रात्रि मे कार्य करना।

३—चिन्ता आदि मानसिक व्याधियां।

४—अप्राकृतिक औषधियों का सेवन आदि मिथ्योपचार।

(४) वंश परम्परा संस्कार—रोगी और कमजोर माता पिता की संतान भी रोगी और कमजोर होती है यह एक प्राकृतिक नियम है। जैसा बीज वैसा फल कहा ही है। मगर इस हालत मे भी रोग का मुख्य कारण रोगी के शरीर मे वंश परम्परा जन्य वही विजातीय द्रव्य की उपस्थिति ही होता है। क्योंकि विकार द्वारा गम्भीर रूप से आक्रांत माता पिता से संतान मे खून के असर से विकार आना स्वाभाविक है। भले ही वह सूक्ष्माति सूक्ष्म रूप मे हो या जहर के रूप मे हो वह अपना असर संतान के ऊपर डालता ही है।

गर्भाधान के समय से ही रज और वीर्य में माता-पिता के दोषो का बीज पनपने लगता है और जो नया शरीर बनने लगता है उसमें कर्मानुसार ऐसे जीव का प्रवेश होता है जो अपने पूर्व संस्कारो के कारण उस विशेष देश काल और निमित्त के लिए उपयुक्त होता है। इस तरह से माता-पिता के अथवा उनके पूर्वजो के बहुतेरे रोग और शारीरिक दोष संतान मे आ जाते हैं।

(५) मिथ्योपचार—हम ऊपर कह आये हैं कि शरीर मे जमा अनावश्यक मल ही असल रोग है - इस सिद्धांत का मानने वाला कभी न चाहेगा कि उसके शरीर मे बाहर से कोई विजातीय द्रव्य पहुँचकर रोग का रूप धारण करे। टीका और ताऊन के बचाव के लिए स्वस्थ शरीर धियों का सेवन मिथ्योपचार का तीसरा उदाहरण है जिससे विविध प्रकार के बाहरी विष शरीर मे प्रवेश कर विष की मात्रा (रोग) को बढ़ा देते है। रोग को पुराना बनाने मे मदद करते है।

(६) बाह्य प्रहार वा आकस्मिक दुर्घटना—स्वस्थ व्यक्ति को अकस्मात चोट लगने से या उसके पेड आदि पर से गिरने से—त्वचा, मास, नस, अस्थि आदि के टूटने-फूटने से अभिघातज रोगो की उत्पत्ति होती है। शल्य-क्रिया भी इसी श्रेणी मे आती है क्योंकि चीड़-फाड़ भी तो सीधा बाह्य प्रहार ही है।

(७) रोगोत्पादक जीवाणु—ऊपर 'तत्व चिकित्सा-सिद्धांत' प्रकरण मे स्पष्ट रूप से कहा जा चुका है कि कीटाणु, रोग के कारण नही होते। इसी बात को और स्पष्ट रूप से इस प्रकार कहा जा सकता है कि कीटाणु, रोग के प्रारम्भिक कारण नही होते। पर गौण कारण हो सकते हैं। अर्थात् एक स्वस्थ और निर्मल शरीर मे संसार भर के कीटाणु भी किसी रोग को प्रारम्भ नही कर सकते। पर एक मल भरे शरीर मे कोई भी रोगाणु उद्रेक पैदा करके रोग के लक्षण उत्पन्न कर सकता है। क्योंकि रोगाणु मल (रोग) से ही जीते हैं और निर्मलता मे वे नष्ट हो जाते है। इसलिए जब जीवाणु रोगी शरीर मे रोग को उभार करने वाले सिद्ध होते हैं, तो उन्हे रोगोत्पादक जीवाणु कहा जाता है। फिर भी किसी विशेष प्रकार का रोग उत्पन्न करने के लिए उत्तेजना देना केवल रोगोत्पादक जीवाणुओ तक ही सीमित समझना भूल होगी। ये रोगोत्पादक जीवाणु, मल से भरे शरीर में रोग के लक्षण कम, और गम्भीर या प्रेरकाणु ([illegible]) अधिक पैदा करते है।

में अधिकाश के शरीर मे मल भरा रहता है जिसमें उस रोग के कीटाणु शीघ्र उद्रेक पैदा करके उसी रोग के लक्षण उत्पन्न कर देते है जिस रोग के कीटाणु वे होते हैं।

रोग के प्रकार और इनका वर्गीकरण

रोग के प्रकार—स्वास्थ्य की दृष्टि से मानव-शरीर के तीन पहलू बताये गये है—आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक। पूर्ण स्वस्थ शरीर वही समझा जाता है जो आत्मा, मन, और शरीर—तीनो से स्वस्थ हो। इनमे से किसी एक की उपेक्षा करके पूर्ण स्वस्थ नही रह सकता। इन्हीं तीनो पहलुओ के अनुसार ही रोग भी तीन प्रकार के होते है। अर्थात् आध्यात्मिक, मानसिक, तथा शारीरिक। आध्यात्मिक दुर्बलताओ से मानसिक रोगो की उत्पत्ति होती हैं। इसी प्रकार मानसिक कमजोरियो से शारीरिक रोग उत्पन्न होते है। तीनों प्रकार के रोगों में परस्पर यही सम्बन्ध है। भारतीय शास्त्रकारों के मत से भी तीन ही प्रकार की व्याधिया होती हैं। भाग्य से उत्पन्न व्याधिया आधिदैविक कहलाती है, शारीरिक व्याधियों को आधिदैहिक कहते है; तथा भूतों या तत्वों के सम्बन्ध से उत्पन्न रोग, अथवा व्याघ्र, सर्पादि जीवो कृत पीड़ाये आधिभौतिक के नाम से विख्यात है।

(१) आध्यात्मिक रोग—महात्मागाधी ने एक जगह पर लिखा है—मनुष्य केवल शरीर तो नहीं है, शरीर तो उसके रहने की जगह है। शरीर, मन, और आत्मा का ऐसा घना सम्बन्ध है कि इनमे से किसी एक के बिगड़ने पर बाकी के बिगड़ने मे जरा भी देर नहीं लगती। शरीर की उपमा गुलाब के फूल के साथ दीगयी है। गुलाब के फूल का ऊपरी भाग तो उसका शरीर है, और सुगन्धि उसकी आत्मा। कागज के गुलाब को कोई पसद नहीं करता। जैसे गुलाब के समान दिखाई पडने वाले गन्धहीन फूलों को लोग फेंक देते है, वैसे ही ऐसे शरीर पर किसी का प्रेम नही हो सकता जो ऊपर से देखने मे अच्छा लगता है, पर उसके अन्दर रहने वाली आत्मा के व्यवहार ठीक नही होते। बुरे चरित्र के लोग नीरोग नही गिने जाते। शरीर और आत्मा का ऐसा गहरा सम्बन्ध है कि जिसका शरीर नीरोग होगा उसकी आत्मा अवश्य ही बलवती होती है।

जगत के उत्पन्न करने वाले भगवान मे अविश्वास सबसे बड़ा आध्यात्मिक रोग है। असत्य, अज्ञान तथा आत्म-निग्रह का अभाव दूसरे नम्बर के रोग है और दुश्चरित्रता तीसरे नम्बर का। महात्मा गाधी ने रामनाम को सभी रोगो की साधारणत और आध्यात्मिक रोगो की मुख्यत. रामबाण-औषधि बताई है। जिसका प्रयोग वह अपने जीवन मे सदा करते रहे और लाभ उठाते रहे।

(२) मानसिक रोग— मानसिक व्याधिया, शारीरिक व्याधियों से अधिक भयानक एवं अनिष्टकारी होती हैं। आश्चर्य तो यह है कि ये मानसिक व्याधिया इतनी मामूली-मामूली बातों को लेकर उत्पन्न हो जाती है जिनका हम थोडी सी भी विवेक-बुद्धि से काम लेकर आसानी से प्रतिकार कर सकते है। इन व्याधियो में कुछ के नाम है—घृणा, प्रतिहिंसा, लोभ, चिन्ता, आलस्य, निराशा, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, भय, अज्ञान, असहिष्णुता, काम-लिप्सा, स्वार्थ-परता, अविश्वास, वहम, उन्माद आदि।

मानसिक रोग के कारण—यद्यपि मानसिक रोग देखने मे शारीरिक रोग से भिन्न प्रतीत होते हैं पर उनके कारणो में भिन्नता नही होती। उनकी उत्पत्ति भी एक मात्र शरीर मे विजातीय द्रव्य के भार से ही होती है जो वर्षों से एकत्र होता रहता है। लूई कूने के मतानुसार ये रोग तभी होते है जब विजातीय द्रव्य शरीर में बहुत बढ जाता है और पीठ की ओर से रीढ की हड्डियो को आक्रान्त करता हुआ मस्तिष्क की कोमल ज्ञानेन्द्रियो आदि को छाप लेता है। जीवन शक्ति के ह्रास एवं अप्राकृतिक जीवन के परिणामस्वरूप पाचन के खराब होने से विजातीय द्रव्य अज्ञान रूप से धीरे-धीरे एकत्र होकर मानसिक रोग पैदा कर देते है। इन रोगो का होना या न होना विजातीय द्रव्य की वृद्धि और मात्रा पर निर्भर करता है। पृष्ठ-भाग में विजातीय द्रव्य का भार बढ जाने पर आमाशय की नाड़ियों-सुषुम्ना आदि पर प्रभाव पडता है जो मानसिक रोग का मुख्य कारण हुआ करता है।

सयमी और सात्विक विचार वाले व्यक्तियों को मानसिक रोग कम होते है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों

ों भी ये रोग कम होते देखे गये है। क्योकि स्त्रिया पुरुषों से अधिक सयमी होती है और मादक द्रव्यो जैसे शराब, सिगरेट, तम्बाकू आदि का व्यवहार कम करती है। इनमे जो उन्माद के रोग अधिक देखने मे आते है उनका कारण बहुत कुछ माता पिता से प्राप्त विजातीय द्रव्य ही होता है।

इसके अतिरिक्त बचपन से ही जीवन मे नीरसता का प्रभाव, उदास वातावरण, अनमेल विवाह, अरमानों का पूरा न होना, आर्थिक सकट, मनोरथ सिद्धि मे बाधाए, शारीरिक अस्वस्थता आदि अनेक बाते है जो मानसिक रोग के कारण हो सकते है और होते है। अधिक परिश्रम से भी मानसिक स्वास्थ्य को धक्का लगता है। शिशुओ मे माता-पिता के प्रेम के अभाव मे मानसिक अशान्ति बढ़ती है। इस दशा मे वे बदमिजाज, क्रोधी, चोर, असत्यवादी आदि आसानी से हो जाते है।

मनोजनित रोगों की उत्पत्ति का एक मनोवैज्ञानिक कारण और भी है। वह यह कि जब मनुष्य अपनी बुरी इच्छाओं पर अंकुश रखकर इन्हे दबाता है तो ये मरती नही अपितु गुप्त रूप से तिरोहित हो जाती है, छिप जाती है और वही कालान्तर मे मनुष्य को दुर्बल पाकर पुन मानसिक रोगों के रूप मे प्रकट हो जाती है।

मानसिक रोगों से हानियां और उनसे शारीरिक रोगों की उत्पत्ति—अमेरिका के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक

जिस प्रकार शुभ मनोभावो से रोग को अच्छा होने मे मदद मिलती है, उसी प्रकार अशुभ मनोभावो वा मनोविकारो से रोग उत्पन्न भी होते है। फ्रायड तथा जुङ्ग-पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको ने यह सिद्ध किया है कि रक्ताल्पता, हृदय-रोग, हिस्टीरिया, स्नायुदौर्बल्य, वीर्य दोष, यहा तक कि लकवा और क्षय जैसे नर सहारक रोगों के मूल मे मनोविकार का सबसे बड़ा हाथ होता है। अत यह मिथ्या नही है कि मनुष्य के ९० प्रतिशत रोग केवल मन स्थिति से प्रारम्भ होते है। शरीर की रोग, व्याधि हमारे मन की ही देन है।

भय एक मानसिक रोग है। इसका आघात बड़ा भयङ्कर होता है। भय के कारण लोग मरते तक देखे गये है। इसका आक्रमण जब होता है तो शरीर विष से भर जाता है और हृदय की गति अति तीव्र हो जाती है। नेत्रो की ज्योति मद पड़ जाती है, और कभी-कभी गायब तक हो जाती है। भूख हवा हो जाती है। दस्त या अन्य शारीरिक व्याधिया आ दबोचती है और रोगी थर-थर कापते हुये निर्जीव-सा हो जाता है। भय के अनेक रूप होते है पर सभी जीवन की जड़े हिला देने मे समर्थ होते है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको ने भय के २७ रूप बताये है।

अभी अभी जबकि मैं इन पक्तियो को लिख रहा हूँ मेरी स्त्री पड़ोस की भय सम्बन्धी एक नयी घटना का जिक्र कर रही है। घटना इस प्रकार घटी —

क्रोध, दूसरा भयानक मानसिक रोग है। इसके भी विविध रूप होते है। इस रोग से भी रोगी के शरीर में तीव्र विष की उत्पत्ति होती है, जो खून को जला डालता है। क्रोधावस्था मे मनुष्य--शरीर की ग्रन्थियो से निकलने वाले रसो के रासायनिक तत्वो मे एकदम परिवर्तन हो जाता है, और सब ग्रन्थिया एड्रिनलीन नामक एक रासायविक विषैला द्रव एक व एक रुधिर के अन्दर छोड़ने लगती है जिससे वह विषाक्त हो उठता है। क्रोध से पाचन की क्रिया दूषित हो जाती है, और पेट का पाचक-रस विष में बदल जाता है।

चिन्ता, तीसरा प्रसिद्ध मानसिक रोग है, जिसकी विभीषिका चिता से भी बढी चढी बताई जाती है। यह स्वास्थ्य और सौन्दर्य की सबसे बड़ी दुश्मन है। भय चिन्ता की जननी है। चिन्ता से क्रोध की ही भाति रक्त मे रासायनिक परिवर्तन होता है जिससे रक्त अशुद्ध होकर सूखने लगता है जिसके परिणामस्वरूप शरीर सूखकर काटा हो जाता है, त्वचा बदरंग हो जाती है, होठ फीके पड़ जाते है। नाक नीली हो जाती है, तथा गाल पिचक जाते है। ऐसे रोगियो को, पाचन बिगड़कर यक्ष्मा, शीघ्र पकड़ता है। चिन्तित मनुष्य को नीद नही आती और जीवन भारस्वरूप लगने लगता है।

प्रसिद्ध विद्वान आर्नेल्ड वन्नट के कथनानुसार यह निश्चित है कि हमारी ८० प्रतिशत चिन्ताएं बिलकुल निरर्थक होती है और हानिकारक तो होती ही है। चिन्ता वह कीड़ा है जो सुख रूपी पेड़ की जड़ को खोखला बना डालता है। यदि इस बिलकुल नि सार, मूर्खतापूर्ण, एवं घातक चिन्ता से सर्वथा दूर रहना सम्भव हो जाय तो स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आये।

ईर्ष्या द्वेष वह चौथा मानसिक रोग है जिसके सम्बन्ध मे मनोविश्लेषको ने ही नही आधुनिक औषधि विज्ञान ने भी कई अनुसंधानो से यह साबित करदिया है कि यह स्वास्थ्य के लिये उतना ही घातक सिद्ध हो सकता है जितना तपेदिक या हृदय रोग। इन व्याधियो के प्रहार से केवल मानसिक संतुलन मे ही विकृति नही आती वरन् लकवा, अंधापन और कैन्सर तक के होने के प्रमाण मिले है। ईर्ष्या से भी हमारे रक्त मे विष का सञ्चार हो जाता है। लगभग ५६ प्रतिशत वातरोग ईर्ष्या के ही परिणाम होते है, ऐसा अमेरिका के प्रसिद्ध मानसोपचार विशेषज्ञ जोजेफ क्राइल ने लिखा है।

ईर्ष्या से मानसिक तन्तुओ एव स्नायु प्रणाली में सिकुड़न होने लगती है। अन्तर्मन के आदेशो पर ईर्ष्या के आदेशो की प्रधानता हो जाती है। शरीर के जोड़-जोड़ जकड़ जाते है। तथा रक्त की गति में बाधा उपस्थित हो जाती है, परिणामत. शरीर के विभिन्न अवयव सुन्न पड़ने लगते हैं।

डाक्टर गिलर्ड ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि पाचन सम्बन्धी अनेक विकार ईर्ष्या से ही होते हैं। पराकाष्ठा पर पहुंची ईर्ष्या, पागलपन उत्पन्न करने में सफल होती है।

इसी प्रकार मोह वा वासना, जिसको आज का समाज गलती से प्रेम कहता है, हीनता, चिड़चिड़ापन, प्रतिहिंसा, आदि सभी मानसिक व्याधियां हैं जो मनुष्य-शरीर को घुन की तरह चाट-चाटकर खोखली करती रहती है।

मानसिक रोगों को कैसे रोका जाय?—मानसिक रोग बड़े हठीले और दुःसाध्य होते हैं, पर असाध्य नही। हा, यदि आत्मबल कम हुआ, जीवन शक्ति मर-सी गयी है, और शरीर मे विजातीय द्रव्य का स्थान ऐसा हो कि प्राकृतिक उपचारो द्वारा उसका निकाला जाना सम्भव न हो तो ऐसे रोगो को असाध्य समझना ही होगा। मानसिक रोगों को मिटाने मे मानसोपचार से बडी सहायता मिलती है। मानसिक रोगों को रोकने मे नीचे दिये हुए नियमो से मदद मिल सकती है:—

(१) मन के अशान्त होने पर, अशान्ति के कारण की तरफ से मन को हटा लेने का प्रयत्न कर लेना चाहिये। उसके विषय मे सोचना एकदम बंद कर देना चाहिये।

(२) सदा दूसरो के हकों का सम्मान करना चाहिये। क्योंकि हम किसी से अपने हक का सम्मान तभी करा सकते हैं जब उसके हक का सम्मान हम स्वय करें।

(३) हमें दूसरो पर उपकार पर-उपकार करते जाना चाहिये। परन्तु यदि उन उपकारो का बदला हमें न मिले तो दुखी कदापि नही होना चाहिये।

(४) उत्तेजित होना, उग्रता दिखाना, वहम करना, किसी को डराना-धमकाना, अपनी बात को ही ऊपर रखना, तथा अपनी ही इच्छा की पूर्ति की आशा करना,

[illegible] मानसिक कमजोरियां हैं, उन्हे भुला देना होगा।

(५) संसार के सभी कामों को भगवदेच्छा समझते, [illegible] अपने को निमित्त मात्र समझो। भगवान में आत्म-समर्पण की भावना को अपना रक्षा-कवच समझो।

(६) मन चञ्चल हो जाय तो जोर-जोर से पढ़ना [illegible] 'राम-राम' आदि भगवन्नामों का जप-करना आरम्भ [illegible] दो, या एक गिलास ठंडा पानी पीलो, या उस स्थान [illegible] जाओ।

(७) अपने में आत्मनिर्भरता, आत्म सम्मान, और [illegible] सदा भरते और अनुभव करते रहो।

(८) मन के विकृत होने पर उससे लड़ना मत आरम्भ [illegible] दो अपितु उसे अपना दास बनाने का यत्न करो, जो [illegible] वास्तविक स्वरूप है।

(९) इस बात का स्मरण सदैव रखना चाहिये कि मानसिक दिक्कतें, अड़चनें, तथा बाधाये उपस्थित होती हैं, वे सबके साथ हो सकती हैं, हमारे लिये ही नही होती। ऐसे विचार से आत्मसन्तोष की उपलब्धि होती है।

शारीरिक रोग

शारीरिक रोगों का वर्गीकरण—व्याधियो के रूप और लक्षण अगणित और अनेक होते है, जिनका विभाजन आयुर्वेद में चार श्रेणियो मे हुआ है:—

(१) शरीर मे विजातीय द्रव्य (दोष) के कारण जो रोग होते हैं, उन्हे शारीरिक कहते हैं। जैसे ज्वरादि।

(२) अभिघात आदि से जो पीड़ायें होती है, उन्हे आगन्तुक कहते है। जैसे पेड़ से गिरना, आदि।

(३) क्रोध, शोक, भय आदि रोगो को निमित्तक मानसिक कहते हैं।

(४) क्षुधा, प्यास, जरा, एव मृत्युजन्य क्लेश स्वाभाविक व्याधियां कहलाती है।

शरीर मे विजातीय द्रव्य की उपस्थिति के फलस्वरूप जितनी व्याधियां होती हैं, उनको दो भागो मे बांटा जा सकता है। एक भाग मे तीव्र रोग तथा दूसरे मे मंद [illegible] रोग रखे जायेंगे।

[illegible]—तीव्र रोग को अंग्रेजी [illegible] कहते हैं। तीव्र का अर्थ है 'तेज'। [illegible] हो उसे तीव्र रोग कहेंगे। जैसे हैजा, चेचक, दस्तादि। ये रोग जितनी तेजी से आते है, उचित उपचार से उतनी ही जल्दी चले भी जाते हैं। तीव्र-रोग अपना उपचार स्वयं होते है। जब शरीर में या उसके किसी विशेष भाग मे अधिक मल एकत्र हो जाता है तो उसका निष्कासन तीव्र रोगों के रूप मे होने लगता है, जो कुछ ही दिनों तक रह कर, अर्थात् उस सञ्चित मल को शरीर से निकालकर आपसे आप चले जाते है, और शरीर को भलाचंगा और निर्मल छोड़ जाते है। तीव्ररोग बच्चा या जवानों को अर्थात् जिनकी जीवन-शक्ति प्रबल होती है, विशेष रूप से होते है। तीव्र रोग हठीले उस वक्त जरूर हो जाते है जब शरीर से मल-निष्कासन के प्रयत्न मे उनके सामने रोड़े डालने की कोशिशें की जाती है। तीव्र रोग के विभिन्न लक्षण तो इस बात की सूचना देते है कि शरीर अपने को शुद्ध करने के लिये, रोग को निर्मूल करने के लिये क्या और कैसा प्रयत्न कर रहा है? उन लक्षणो का स्वागत करना चाहिए, न कि उन्हे दवाओ, सूइयो, तथा शस्त्रोपचार से दबाना चाहिए। तीव्र रोगो मे उपवास और पूर्ण विश्राम बड़े लाभदायक सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि तीव्र रोग के रोगी को चारपाई पर पड़ जाने के लिये प्रकृति विवश करती है, साथ ही साथ भूख को भी हर लेती है। तीव्र रोग का होना इस बात का सबूत है कि शरीर मे जीवनी-शक्ति सजग और सतेज है।

डाक्टर लिण्डल्हार ने अपनी किताब 'नेचर क्योर' मे तीव्र रोगो की साधारणत' पांच अवस्थाये लिखी है।

पहली अवस्था को रोग की तय्यारी की अवस्था कह सकते हैं। शरीर भर मे या उसके किसी भाग मे मल के भर जाने से उत्तेजना होती है। फिर सञ्चित मल मे उद्रेक की क्रियायें धीरे-धीरे और कभी-कभी जल्दी-जल्दी भी होने लगती है, जिनसे रोग अपना एक खास रूप धारण करता है। यह अवस्था कुछ मिनटो से लेकर कई वर्षो मे पूरी हो सकती है। इस अवधि मे रोग पैदा करने मे सहायक मल, विष, अथवा रोगाणु आदि पैदा और एकत्र होते रहते है।

दूसरी अवस्था मे रोग का रूप अधिक भयंकर हो उठता है। इस अवस्था में तकलीफ बढ़ जाती है। तनाव, सूजन, सुर्खी, ज्वर बढ जाते है, और रोगी चारपाई पर पड़कर कमजोरी और पीड़ा का अनुभव करने

लगता है।

तीसरी अवस्था मे रोगाक्रान्त स्थान के कण नष्ट होने लगते है, जिनसे राह बन जाती है। घाव हो जाता है। पीव और लोहू बहने लगता है जैसाकि फोड़ा होने की दशा मे होता है। मवाद भी बहता है। पसीना-पेशाब से विष निकलने लगता है। सास से दुर्गन्ध आने लगती है। दस्त होते है। वमन भी हो सकता है। मल के निष्कासन के इस घोर प्रयत्न मे शरीर के कुछ उपयोगी तत्वो का भी मल के साथ निकल जाना स्वाभाविक ही होता है जिससे शरीर दुर्बल और शिथिल हो जाता है, दिमाग काम नही करता। रोग की यही सबसे उग्र दशा है। जोखिम की घड़ी होती है। जीवन-शक्ति के इम्तेहान का समय होता है। यदि जीवन-शक्ति इस अवस्था पर आकर हार गयी तो रोगी का प्राणांत होजाता है, और यदि वह प्रबल हुई तो सञ्चित मल को निष्कासित करने मे सफल होकर संकट की इस घड़ी को पार कर जाती है और रोगी को रोग-मुक्त कर देती है। कुशल चिकित्सक इसी अवस्था मे जीवन शक्ति को सत्योपचार द्वारा सहायता पहुंचाकर यश का भागी बनता है।

चौथी अवस्था रोग के शमन की शुरुआत है। इसमे रोग के लक्षण एक-एक करके जाने लगते है। सूजन, तनाव, सुर्खी आदि सब कम होने लगती है। ज्वर कम हो जाता है। सास की दुर्गन्ध घट जाती है। दस्त मामूली हो जाते है। वमन बन्द हो जाता है। पसीना स्वाभाविक रूप से आने लगता है। तथा शरीर को थोड़ा बल का अनुभव होने लगता है।

पांचवी और अन्तिम अवस्था रोग के पूरे तौर से शमन की होती है। शरीर मल से सर्वथा मुक्त हो जाता है और जो उपयोगी तत्व शरीर के नष्ट हुए रहते है, वे धीरे-धीरे बनने लगते है, थोड़े ही दिनो मे शरीर तगड़ा हो जाता है।

जीर्ण रोग—शरीरस्थित मल मे उद्वेग होकर निकलने की उग्र दशा का नाम जिस तरह तीव्र या उग्र रोग है, उसी तरह उसके दबकर भीतर प्रवेश करने, अनिष्ट दशा उत्पन्न करने और धीरे-धीरे थोड़े कष्ट के साथ बहुत काल तक शरीर मे पड़े रहने की दशा का नाम जीर्ण रोग है।

शरीर के तीव्र रोगों के रूप में सफाई के प्रयत्न में बारम्बार बाधा उपस्थित होने के फलस्वरूप ही जीर्ण रोग होते है। जुकाम को दवा के सहारे बार बार दबाते से दमा हो सकता है उसी तरह ज्वर को दबाते रहने से यक्ष्मा का होना असम्भव नही है। तीव्र रोग के लक्षणों को दबा देने से जाहिर तो सब कुछ ठीक-सा प्रतीत होता है, पर शरीर के भीतर से निकलती हुई गंदगी शरीर मे ही रुक जाती है और जीर्ण रोगों को जन्म देती है।

जीर्ण रोग से आक्रान्त क्षीण जीवन-शक्ति वाले माता-पिता से उत्पन्न सन्तान मे उनके रोग बीज रूप मे आ जाते है।

तीव्र रोगो मे कष्ट अधिक सहन करना पड़ता है लेकिन जीर्ण रोगो मे तीव्र लक्षणों के न होते हुए भी जीवन अत्यन्त दु:खमय और नीरस बन जाता है।

जीर्ण रोगो को दूर करने के लिए विचारों की शुद्धता धैर्य और अपने चिकित्सक मे विश्वास की बड़ी जरूरत होती है। प्राकृतिक चिकित्सा से जीर्ण रोग जरा कठिनता से जाते है पर जाते जरूर है और जड़ मूल से जाते है। वर्षों की बिगड़ी हालत ठीक होने मे समय तो लगेगा ही। ऐसी हालत मे यदि रोगी घबड़ा गया तो उसका मनोरथ पूरा नही हो सकता। जीर्ण रोगो के उपचार में सर्वप्रथम रोगी की जीवन-शक्ति को बढ़ाना चाहिए। फिर धीरे धीरे उनको तीव्र रोगो मे परिणित करना चाहिए। जीर्ण रोग की इस अवस्था को उभार कहते है। इस दशा मे काफी सावधानी बरतनी पड़ती है। वरना स्थिति भयानक होकर खतरा उत्पन्न हो सकता है। सावधानी और धैर्य से काम लेने पर हर उभार के बाद अच्छी हालत आती है और धीरे-धीरे रोगी जीर्ण रोग से छुटकारा पा जाता है।

निरोग शरीर के लक्षण

आजकल का मानव प्रकृति से इतनी दूर जा पड़ा है और उसका परिणाम इतना सर्व व्यापी हुआ है कि आज सारे संसार मे एक भी पूर्ण आदर्श निरोग व्यक्ति का मिलना यदि असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य हो गया है। आदर्श निरोग व्यक्ति की जो बात डा० जे० एच० टिल्डन ने स्वस्थ मनुष्यों के अनुभव के बल पर बताया है कि इतनी बड़ी लम्बी और चौड़ी

दुनिया मे हजार मे एक भी स्वस्थ व्यक्ति नही है । अत. यह निर्णय करना कि एक सच्चे अर्थो मे आदर्श निरोग मनुष्य कैसा होना चाहिये अत्यन्त कठिन है । इस तथ्य को ही दृष्टि के सामने रखकर डा० फ्रायड ने एक जगह लिखा है कि मनुष्य शरीर मे साधारण बीमारी का होना ही उसके निरोग होने का प्रमाण है । जब कि प्राकृतिक चिकित्सको के मन से वही व्यक्ति निरोग कहलावेगा जिसका शरीर विकार अथवा विजातीय द्रव्य से सर्वथा रहित है और जिसकी समस्त इन्द्रिया और अंग प्रत्यग सुचारु ढग से अपना-अपना कार्य सम्पादन करते हैं साथ ही साथ जो शरीर, मन और आत्मा—तीनो से एक साथ ही स्वस्थ है। डा० लूईकूने के अनुसार पूर्ण निरोग मनुष्य वह है जिसके सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग साम्यावस्था मे हों और बिना किसी कष्ट, भार या प्रयास के अपना-अपना कार्य करते हो तथा अवयवो का रग-रूप अपने कार्य-सञ्चालन के योग्य और सुन्दर हो । एक स्वस्थ मनुष्य के नेत्रो मे निर्मलता और शान्ति विराजमान रहती है और उसकी मुखाकृति की रेखाओ मे तोड-मरोड़ या खींचातानी नही होती । उत्तम पाचन स्वास्थ्य का प्रधान लक्षण है । मल का त्याग इस प्रकार होना चाहिए कि वह गुदा में न लगे और वह अंग बिलकुल साफ रहे । निरोग मनुष्य सदैव प्रसन्न रहता है और अपने शरीर का उसे भय नही रहता ।

नीचे निरोग शरीर के कुछ लक्षण दिये जाते हैं जिनसे किसी व्यक्ति के उत्तम-मध्यम स्वास्थ्य की जाच आसानी से की जा सकती है—

(१) दिल गवाही दे कि शरीर मे कोई रोग नही है और वह शत प्रतिशत निरोग है ।

(२) कष्ट या व्याधि के सम्बन्ध मे कोई जानकारी या [illegible] न हो ।

(३) [illegible] समझने की आवश्यकता न हो कि उसके पास शरीर नाम की भी कोई चीज है ।

(४) [illegible] काम के समय काम में और विश्राम के समय [illegible] और आनन्द से रहता है ।

(५) [illegible] हो, [illegible] मे न पदनाता हो, [illegible] विचार वाला, निर्भीक, [illegible], [illegible], [illegible]-विश्वासी, हंसमुख, दयावान, सुन्दर, आत्मोल्लास से भरा पूरा, मेधावी, बलवान, विनयी, दीर्घ जीवी हो । एक शब्द में जो दैवी सम्पदाओ जैसे सत्य, अहिंसा तथा प्रेम आदि का भण्डार हो ।

(६) त्वचा मुलायम, लचीली, चिकनी, स्वच्छ और गर्म हो, तर न हो तथा खुजलाने से उसमे चिन्ह और लकीरें न बने । रोमकूपो के स्थान सघन, सुन्दर और मुलायम बालो से भरे हो । पसीने मे किसी प्रकार की बदबू न हो । जाडे, गर्मी तथा बरसात आदि ऋतुओ को बरदाश्त करने की सहज काबलियत हो ।

(७) मुख मण्डल पर झुर्रियां, शुष्कता और होठो पर पपड़िया न पडे ।

(८) आखे चमकीली, स्वच्छ, बड़ी और नाक की ओर कोनो मे कुछ ललाई हो । आखे पीली, डबडबाई और लाल न हो ।

(९) जबान चिकनी, गुलाबी,समतल, साफ और आर्द्र हो ।

(१०) दात पूरे मजबूत और मोती के समान साफ और चमकदार हों ।

(११) प्रत्येक अ ग प्रकृतितः सुडौल और अपना कार्य सुचारु रूप से करने वाला हो । नाखून गुलाबी और पैर के तलवे त्वचा के रग से मिलते हो ।

(१२) कमर पतली छाती चौडी और पेट से ५-७ इंच ऊची हो । सिर शरीर की ऊचाई का आठवा भाग हो तथा मुलायम और घने बालों से पूर्ण हो ।

(१३) ग्रीवा गोल सीधी न बहुत लम्बी और न धड मे घुसी हुई हो ।

(१४) सांस की गति साधारण और बिना किसी स्पष्ट शब्द के निर्गन्ध हो । सोते मे मुंह खुला न रहता हो ।

(१५) निद्रा अटूट, गहरी, लम्बी, और बिना किसी स्वप्न के हो ।

(१६) शरीर की नसें उभरी न हो ।

(१७) मुख का स्वाद अच्छा रहे । बार-बार थूकना या गला साफ करना न पडे ।

(१८) सवेरे सोकर उठने पर शरीर मे पर्याप्त स्फूर्ति, उत्साह, और ताजगी हो ।

(१९) भोजन के बाद पेट मे गुडगुडाहट न हो न पेट भारी होकर आनन्द का अनुभव हो । पाचन

ठीक हो।

(२०) मल त्याग २४ घटो मे दो बार साफ हो जो गुदा मे न लगे। रंग गेहुँआ हो। न बहुत कडा और न दस्त की तरह हो। निर्गन्ध भी हो।

(२१) मूत्र त्याग मे कष्ट-बेचैनी न हो वह हल्की गर्मी लिये हुये, हल्के पीले रग का निर्गन्ध हो। धार बांधकर बाहर निकले।

(२२) निश्चित समय पर सच्ची और खुलकर भूख लगे जो प्राकृतिक आहार से शान्त हो जाय और सन्तोष प्राप्त हो।

(२३) प्यास न अधिक न कम लगे। शुद्धजल से प्यास बुझ जाय और शान्ति प्राप्त हो।

(२४) प्राकृतिक आहार जैसे फल, दूध, हरी साग सब्जी, सप्राण भोजन आदि मे अभिरुचि हो।

(२५) आहार विहार मे उत्तेजना के वशीभूत न हो।

(२६) सात्विक विचार तथा सात्विक भोजन करने वाला हो।

(२७) चित्त सयमित हो। मन चञ्चल न हो अर्थात तन और मन दोनों से निर्मल हो।

(२८) आशावादी हो विपत्ति पडने पर घबराने वाला न हो।

(२९) प्रकृति के इशारो को समझता हो और तदनुसार आचरण करता हो।

(३०) आदि शक्ति भगवान मे विश्वास हो जिससे प्रत्येक कण को शक्ति मिलती है।

रोग से लाभ

ससार में एक बहुत बडी सख्या ऐसे मनुष्यो की है जिनकी धारणा ही नही अपितु विश्वास भी है कि रोग उनके मित्र नही शत्रु है। यही तक नही, कुछ लोगो का ख्याल तो यहा तक है कि रोग मौत का पेशखेमा है। किन्तु वास्तव मे बात ऐसी नही है। बल्कि प्रकृति माता का शुभ आशीर्वाद एव वरदान है। बीमार पडना परमात्मा की बडी भारी देन है। वे असंयमी व्यक्ति बड़े भाग्यवान हैं जिनके शरीर में कभी-रोग का प्राकाट्य हुआ करता है। क्योंकि ऐसा होते रहने से उनके शरीर का मलिन। दूषित मल जो हलाहल विष होता है, और जो उन असयमी जीवन की बुरी कमाई होती है-शीघ्र से शीघ्र निकल जाता है, और काया एक बार फिर चमकने लगती है।

मानना पडेगा कि जो लोग अनियमित जीवन व्यतीत करते है, अप्राकृतिक ढग से जीवन-यापन करते हैं, दुष्ट इन्द्रियो के मिथ्या प्रलोभनो मे पडकर अपनी निर्मल काया की जड खोद रहे है और अप्राकृतिक खान-पान, दवा दारू से अपने सुन्दर-शरीर रूपी मन्दिर को मलागार बना रहे है, उनके लिये बीमार पड़ते रहना प मावश्यक है। और यदि वे कभी बीमार न पडें तो समझना चाहिये कि उनके ऊपर परमात्मा का बडा भारी कोप है। किन्तु इसके विपरीत यदि हम प्रकृति के वास्तविक भक्त है, और उसके आदेशो पर चलते हुए उसके सहज-सरल मातृवत् व्यवहारो के अनुसार अपना जीवन बनाते हैं, तो कोई आवश्यक नही है कि हम खाहमखाह बीमार पडे ही, और ऐसी दशा मे यदि सच पूछिये तो हम कभी बीमार पडेंगे भी नही।

सर फ्रेडरिक ट्रेव्स—सप्तम एडवर्ड बादशाह के विश्वासपात्र प्रसिद्ध सर्जन ने एक बार एडिम्बरा के फिलासिफिकल इन्स्टीट्यूट मे भाषण देते हुए कहा था कि साधारण तौर पर लोग समझते है कि बीमारी एक प्रकार की आपत्ति है, उसका परिणाम नाशकारी है, वह निष्प्रयाजन ही आती है और दुख पंहुचाती है। वह एक गरजते हुए सिंह के समान है, तथा एक धधकती हुई अग्नि-शिखा है। फलत. अज्ञानवश बीमारी को रोकने और उसे दबादेने की जी तोड कोशिश होती है। भूख नही लगती तो रोगी को जबरदस्ती खाना खिलाते है आदि। उनकी समझ से यह सब इसलिये होना चाहिये कि रोग दब जाय। यह वे नहीं समझते कि रोगो का आक्रमण अचानक नहीं होता, बल्कि उसके चिन्ह हमारी भलाई और लाभ के लिये ही होते है इसलिए उनको दबाने की कोशिश कदापि नही करना चाहिये। दर असल बीमारी एक न्यामत है। उसकी मंशा हमारी भलाई और जीवन रक्षा करना है। यदि बीमारी नाम की चीज संसार में न हो तो पृथ्वी पर मानव-जाति का नामोनिशान न रहे। रोग, आरोग्य लाभ के लिए कुशल वैद्यो का काम करते है। जब वे शरीर मे पैदा होते है तो उसकी सारी [illegible] साफ करके ही जाते है। स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए [illegible]

साधन है। शरीर के विषैले पदार्थों को निकाल बाहर करने के लिये तथा शरीर को स्वस्थावस्था में रखने के लिए उनका उत्पन्न होना श्रेयष्कर और जरूरी है। यदि किसी के शरीर में कोई फोड़ा हो जाय तो यह कभी नहीं हो सकता कि रोगी की इच्छा यह हो कि उस फोड़े का विषैला मवाद उसके शरीर में ही रहे। प्राय सभी बीमारियां इस फोड़े के सदृश ही शरीर में कल्याणकारी कार्य का सम्पादन करती है। जो लोग रोग के इस आवश्यक प्राकृतिक कार्य के सम्बन्ध में ज्ञान रखते है, वे बीमारी से तनिक भी नहीं डरते और न विचलित होते। क्योंकि वे समझते हैं कि रोग हमारी की गई गलतियों को सुधारने आता है, स्वस्थ बनाने आता है तथा हमें मृत्यु से बचाने आता है। रोग वस्तुत सुधारक और मित्र होता है, विनाशक और शत्रु नहीं।

रोग शरीर मे उत्पन्न होकर हमे चैतन्य करता है कि शरीर का अमुक भाग या अङ्ग कमजोर और शिथिल हो गया है। उसमे विष जमा हो गया है उसकी सफाई होनी चाहिये। जितनी ही जल्दी हम उसकी इस चेतावनी पर ध्यान देगे, उतनी ही जल्दी हमारा शरीर निरोग होगा। जिस शरीर मे यह चेतावनी नही मिलती, उस शरीर की जीवनी शक्ति क्षीण हुई रहती है। इसलिये आयु भी उसकी कम ही होती है। पत्थर को जोकाम नही होता और न मुर्दे को ज्वर सताता। अत. जिस रोगी की जीवनी-शक्ति कमजोर होती है उसके शरीर-स्थित मल की सफाई होने मे देर लगती है। प्रायः ऐसे ही रोगी, रोग के बोझ को न सम्हाल सकने के कारण मरते देखे गये हैं।

दूसरा अध्याय

रोग और उनकी चिकित्सा

किसी रोग की प्राकृतिक चिकित्सा करने-कराने के पूर्व प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्ति को यदि उसके तत्सम्बन्धी कर्तव्य का ज्ञान हो जिसे वह ईमानदारी से निबाहे भी तो रोग के दूर होने मे देर नहीं लगती। किसी रोग की चिकित्सा को उत्तमता से चलाने के लिए स्वयं रोगी, चिकित्सक, नर्स या तीमारदार, तथा रोगी के इष्ट मित्रों एवं परिवार के अन्य व्यक्तियों के लिये अलग-अलग कुछ कर्तव्य निर्धारित है जिनका ज्ञान उन्हें होना चाहिए। संक्षेप मे उन कर्तव्यों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

रोगी के कर्तव्य यदि वह समझदार है

[illegible] चिकित्सा आरम्भ करने के पूर्व रोगी को [illegible] चाहिए कि वह इस चिकित्सा को [illegible] [illegible] निरोग [illegible] [illegible]

इस विशेषांक को पढ़कर चिकित्सा करने वाले रोगियों को चाहिए कि अपने रोग के अनुकूल समझदारी के साथ सर्व प्रथम वे एक चिकित्सा-क्रम बना लें जिसे रोग निवृत्ति तक कड़ाई के साथ चलावे। यह ध्यान रहे कि इस विशेषांक मे रोगों की चिकित्सा लिखते समय केवल इतना लिखा गया है कि अमुक रोग मे 'उष्णपाद स्नान दो' अमुक मे 'कमर की भीगी लपेट' आदि। परन्तु उन स्थानों पर उनकी प्रयोग विधियाँ नहीं लिखी गयी है। अत यह आवश्यक है कि उन उपचार विधियों को जहां वे दी गयी है पढ़कर [illegible] ही काम में [illegible]

[illegible]

प्राकृतिक चिकित्सा जीवन-विज्ञान है—जीने की कला, जिसके जानने वालों को यह चिकित्सा बहुत जल्द असर करती है, और जो इस कला को वरते बिना इस चिकित्सा से लाभ उठाना चाहते है उन्हे प्राय निराशा ही हाथ लगती हैं। सयम, सदाचरण, मन: शक्ति का प्रयोग, पर्याप्त विश्राम, प्रसन्नता, मनोरञ्जन, तथा गाढ़ी नींद लिए बिना कोई रोग तो क्या दूर होगा, जीना दूभर हो जाता है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली द्वारा अपने रोगो को दूर करने की इच्छा रखने वाले रोगियों को चिकित्सा-काल में और उसके बाद भी उत्तम जीवन-यापन के उपर्युक्त नियमो को भी उन्हे चिकित्सा का ही अङ्ग समझकर, पालन अवश्य करना चाहिए, अन्यथा प्राकृतिक चिकित्सा से पूरा-पूरा लाभ होने की आशा त्याग देनी चाहिए।

ईश-प्रार्थना—पञ्च तत्व समन्वित प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान का मूलाधार 'राम नाम तत्व' है। प्राकृतिक चिकित्सा के मूल साधन पञ्चतत्व, अर्थात् प्रकाश, वायु, जल, अग्नि तथा पृथ्वी हैं, जिनकी 'राम-नाम' के बिना कोई सत्ता नही होती। इसलिये रामनाम के बिना उनका कोई असर नही होता। क्योकि प्राकृतिक चिकित्सा के साधनों—आकाश, वायु, जल, अग्नि, एवं मिट्टी मे जो रोग-निवारण की शक्ति है, वह प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान के केन्द्र विन्दु राम नाम की शक्ति है। उनसे 'राम-नाम' को अलग कर दीजिये वे शक्तिहीन हो जायेंगे—निष्प्राण हो जायगे। अतः राम-नाम, अर्थात् आत्मतत्व में जीवित श्रद्धा के बिना रोगरहित जीवन असम्भव है।

प्रत्येक प्राणी के भीतर आरोग्य प्रदान करने वाली एक शक्ति होती है जो उसे स्वस्थ तथा निरोग रखती है, आवश्यकता पड़ने पर शरीर को स्वच्छ और निरोग करने के लिए रोगोकी उत्पत्ति करती है, तथा वही फिर उन रोगों से मुक्तिभी देती है। उसी शक्ति को कोई-प्रकृति, कोई जीवन-शक्ति, कोई परमात्मा, कोई अन्तरात्मा तथा कोई राम कह कर पुकारता है। उस राम की सच्चे हृदय से भक्ति करना, उपासना करना, एवं प्रार्थना करना रोगी का परम और सर्व प्रथम कर्तव्य है। भगवान से प्रेम करना या प्रार्थना करना वह अमोघ आध्यात्मिक अस्त्र है जिससे मनुष्य अपना भाग्य तक बदल सकता है, फिर रोग-शोक किस लेखे में है। प्रार्थना से वस्तुओ और परिस्थितियो मे आमूल परिवर्तन होजाता है। जब रोगी स्वय या उसका अभिभावक रोग निवृत्ति के लिए ईश-प्रार्थना करता है तो उस समय प्रार्थना के अति सूक्ष्म अणु रोगी के शरीर के कोषाओ को बदलकर उसे स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। इसमे सर्व प्रथम प्रार्थना के सूक्ष्म अणुओ का प्रभाव मस्तिष्क पर पडता है जिससे शरीर के कोष निर्मित होते है, तत्पश्चात् सीधे शरीर के कोषो पर और सबके अन्त मे रोगी के मूल रोग पर। और इस तरह प्रार्थना द्वारा कठिन से कठिन रोग को बडी आसानी से दूर किया जा सकता है। पूज्य बापू ईश-प्रार्थना के महत्व को भलीभाति जानते थे, इसीलिये वह उसे शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक सभी प्रकार की व्याधि की रामबाण औषधि मानते थे और तदनुसार उसका प्रयोग करते-कराते थे।

संयम—रोग को दूर करने में संयम और परहेज का बड़ा हाथ होता है। असंयम से जिस प्रकार रोग और क्लेश हमे धर दबाते है, रोगी होने पर उसी प्रकार सयम से रहकर हम स्वास्थ्य लाभ बड़ी शीघ्रता से कर सकते हैं। इसलिए रोगियो के लिये रोगावस्था मे शीघ्र-रोग-मुक्ति के लिए संयम का कड़ाई के साथ पालन करना नितान्त आवश्यक है। इससे शरीर की जीवन-शक्ति को बल मिलता है जिससे वह शरीर को जल्दी से जल्दी रोग मुक्त करने मे सफल होती है। मसल मशहूर है 'एक परहेज (सयम) न सौ दवा' अर्थात् चिकित्सक का बढिया से बढिया उपचार उस वक्त तक अपना उत्तम प्रभाव नही दिखा सकता जब तक कि रोगी उसके बताये हुए परहेजों को नही करता। ९५ प्रतिशत रोग केवल असंयम से असाध्य बन जाते है।

महात्मा गांधी ने कहा है—"संयमहीन जीवन बिना नीव का घर है।" और डाक्टर मौन रेगाजा ने लिखा है—"संयम—मानसिक, शारीरिक, और अन्य सभी प्रकार के रोगो की सर्वोत्तम औषधि है।"

सदाचरण—सदाचरण से तन और मन दोनों पवित्र होते है निर्मल होते है। सदाचार का बीजारोपण मन: विचार के क्षेत्र मे होता है। सदाचारी व्यक्ति बहुत कम रोगी होते देखा गया है। इसके विपरीत जो रोगी सदा-चार से नाता जोड़े रहता है उसे ससार की कोई शक्ति

स्वास्थ्य लाभ नही करा सकती। कारण कदाचार शरीर का नाश कर देता है। जो सदाचार से गिरा, उसने अपने शरीर को मिट्टी मे मिलाया। इन्द्रियो के वश मे हो जाना शरीर के भीतर भयानक शत्रु को पालना है जो घुन की तरह भीतर ही भीतर शरीर को खाकर उसे जर्जर बनाता रहता है जिससे शरीर शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है। अत' एक रोगी को तो खास तौर से सदाचरण का पालन करना चाहिये। क्योंकि सदाचरण से जीवन के सच्चे सुख को भोगने की योग्यता और शक्ति प्राप्त होती है जो अस्वस्थ व्यक्ति को अस्वस्थ रहने नही देती।

मन. शक्ति का प्रयोग–यह असत्य नही है कि रोगावस्था मे रोगी की जैसी मनोभावना होती है उसी के अनुसार उसका रोग दूर होता है या बिगड़ता है। क्योंकि मन की अपरम्पार शक्ति होती है। हमारे मनोभाव शरीर में रोगोत्पत्ति के प्रधान कारण होते हैं, और वे ही एक रोगी के लिए औषधि का काम करते हैं।

विशुद्ध शारीरिक कारणों पर आधारित रोगो के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी रोग होते हैं जिनकी जड़ें, भय क्रोध, घृणा, तथा चिन्ता आदि मानसिक उद्वेगों मे होती हैं जिनका सफल उपचार उन मनोवेगों को शान्त और ठीक करना ही है, केवल शरीर की ही चिकित्सा ऐसे रोगों में करना बिल्कुल फजूल होगा। कारण मन, [illegible] का स्थूल रूप है और शरीर मन का। अत. जब

अत' रोज सवेरे और सायंकाल सोने के प्रथम रोगी को चाहिए कि वह विश्वास के साथ और सच्चे मन से यह भावना करे कि वह रोग मुक्त हो रहा है, तो वह कुछ ही दिनो मे अवश्य रोग मुक्त हो जायगा।

पर्याप्त विश्राम–रोगावस्था मे पर्याप्त विश्राम या पूर्ण विश्राम तन और मन दोनो का बड़ा उपकारी सिद्ध होता है। रोग होने पर जिस वक्त शरीर की जीवनी शक्ति शरीर के विकार निकालने मे लगी हो, उस वक्त उससे अन्य कोई काम लेना और उसे इस बात का मौका न देना कि वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर विकार निकालने मे शीघ्रता करे अपने पाव कुल्हाड़ी मारना है। इसलिए रोगी को चाहिए कि वह सब काम बद करके केवल आराम करे ताकि शरीरकी जीवनी-शक्ति को रोग-निवारण जैसे कठिन काम को अजाम देने के लिए फुर्सत मिल जाय।

प्रसन्नता—रोगी यदि खिन्नता को छोड़कर प्रसन्नता का आश्रय लेने लगे तो उसी क्षण से उसकी दशा मे सुधार होने लगेगा। इस तथ्य का एक प्रबल वैज्ञानिक कारण है। वह यह कि हमारे शरीर मे अनेक [illegible]ग्रन्थियां होती हैं जिनके स्राव शरीर के कार्य-सञ्चालन पर बहुत बड़ा प्रभाव डालते रहते हैं। साधारण अवस्था मे इन ग्रन्थियों से जो स्राव होते हैं उनसे शरीर की साधारण क्रियाएं सञ्चालित होती रहती हैं, पर जब हम प्रसन्न होते हैं तो उनके स्राव मे एक ऐसी अलौकिक विद्यु-

जिससे रोग आप से आप चला जाता है।

मनोरञ्जन—स्वस्थ व्यक्तियों की अपेक्षा रोगियों को, उनके रोग निवारणार्थ, मनोरञ्जन अथवा मनोविनोद के साधनों की अधिक जरूरत होती है। अत: रोगी अपने लिए दिलबहलाव और मनोरञ्जन की सामग्री जुटाकर अपने रोग की विभीषिका को बहुत कुछ कमकर सकते है।

गाढी नीद—जिस रोगी को अच्छी और गाढी नीद आती है उसके रोग के जाने मे देर नही लगती। क्योंकि निद्रा मे अनेक आरोग्यदायक गुण होते है। इसी कारण उसे समस्त रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा कहा जाता है। रोगी को आहार की बिल्कुल जरूरत नही होती, पर नीद की उसको केवल जरूरत ही नही होती बल्कि वह उसके लिए दवा भी है। इसलिए रोगी व्यक्ति को यथा-शक्ति यत्न करना चाहिए कि उसे अच्छी और गाढी नीद कम से कम ८-१० घंटे रोज जरूर आये।

चिकित्सक के कर्तव्य

(१) एक चिकित्सक को लालच और स्वार्थपरता को ताक मे रखकर ही किसी रोगी के 'केस' को हाथ में लेना चाहिए। क्योंकि ये दोनों चीजे चिकित्सा के पवित्र कार्य मे बिलकुल असगत है। ये डाक्टरी के पवित्र एव धवल कार्य पर कलंक की कालिमाये है। स्वार्थ-परता और लालच हृदय को मैला कर देते है। इनसे मानसिक वृत्तियो की पवित्रता नष्ट हो जाती है। अत ऐसा व्यक्ति धन उपार्जक हो सकता है पर अच्छा चिकित्सक नही। एक अच्छा डाक्टर—आदर्श चिकित्सक, मानव को पीड़ा और कष्ट से मुक्ति देता है और उसके दुखी जीवन पर शान्ति का हाथ फेरता है। वह उदार और आजीवन दयालुता का दानी होता है। वह रोगी के पास दिव्य पुरुष बन जाता है। उस वक्त वह मानव रूप मे ईश्वर होता है। ऐसा मानव धन को अपना लक्ष्य नही बना सकता और न उसे बनाना चाहिए। उसका तो एक पवित्र एवं महत् कर्तव्य की पूर्ति का सन्तोष और दुखियो की निर्मल प्रसन्नता और सहानुभूति ही सबसे बडा पुरस्कार है। वैसे भी धर्म-गुरु, अध्यापक और चिकित्सक से मानवता पूर्ण होने की आशा की जाती है। वे व्यक्ति के जीवन के तीन प्रधान अगो—के रक्षक है। धर्म-गुरू मनुष्य की आत्मा को प्रकाशित करता है। अध्यापक मस्तिष्क मे ज्योति भरता है और चिकित्सक उसके शरीर को सुगठित, स्वस्थ एव जीवनी शक्ति से परिपूरन करता है। इन तीनों को बदले मे धन प्राप्ति के बारे मे सोचना, अपने धर्म से च्युत होना है। इन्हे तो केवल जीवन निर्वाह के लिए आशा और अपने कर्तव्य के पालन का ही ध्यान होना चाहिए। विशेषतया एक योग्य और आदर्श चिकित्सक को अपने रोगी से अनुचित ढगसे दवा की फीस मागना जीतेजी मर जाना है। यही हमारी प्राचीन भारतीय चिकित्सकों का सिद्धान्त था जिस पर चलकर और अटल रहकर चिकित्सक संसार के दुखी जनो का और साथ ही अपना भी कल्याण करता था।

(२) एक चिकित्सक को आदर्श चरित्र वाला विशुद्ध हृदय वाला, चिकित्सा-ज्ञान से पूरित मस्तिष्क वाला, सहानुभूति प्रदर्शित करने वाला, अपने रोगी को अपनी सन्तान के सदृश समझने वाला, शान्ति-सुधा से भरी वाणी वाला तथा सद्व्यवहार वाला होना भी नितान्त आवश्यक है अन्यथा वह न तो अपने रोगी का भला कर सकेगा और न खुद अपना।

(३) चिकित्सक को रोगी का रोग-वृत्तान्त पहले उसकी जवानी पूरे तौर से मनोयोग द्वारा सुन लेना चाहिए। तत्पश्चात् उसके समस्त शरीर का निरीक्षण करके यह पता लगाना चाहिए कि रोग का कारण क्या है? तथा उसमें कितना, किस तरफ और कितना पुराना या नया विजातीय द्रव्य विद्यमान है?

(४) चिकित्सक का यह भी कर्तव्य है कि वह नये और पुराने रोगो के भेद को अच्छी तरह जाने। समझदारी के साथ उपचार चलाकर एक होशियार प्राकृतिक चिकित्सक, कोई भी पुराना रोग दूर कर सकता है। अर्थात् वह अपने रोगी के शरीर मे तीव्र रोगों के आने की शक्ति उत्पन्न कर सकता है जिसे वह 'उभाड' नाम से पुकारता है। और तीव्र रोगो के आने पर वह उनका उपचार नये रोगो के उपचार की भाति करके रोगी को एकदम भला चंगा कर देता है। नया जन्म देता है।

(५) रोग नया हो या पुराना उसका कारण एक ही होता है, अर्थात् शरीर मे दूषित द्रव्य की उपस्थि-

इन रोग के नामकरण की परवाह एक कुशल प्राकृतिक चिकित्सक को नही होनी चाहिये । उसे तो सिर्फ यह चिन्ता होनी चाहिये कि—

(अ) रोगी के पेट और शरीर के विकार किस प्रकार निकलें ?

(ब) सुषुप्त स्नायु-संस्थान किस प्रकार जगे ?

(स) स्थानीय तकलीफ किस प्रकार कम हो,

(द) शरीर की जीवनी शक्ति कैसे बलवती हो, तथा

(ह) रोगी प्रसन्न और आशावादी कैसे बने ?

पर उपर्युक्त पाचो बातो के सम्बन्ध में सोचने-विचारने के लिये, एव सोच-विचार कर चिकित्सा आरम्भ करने के पूर्व चिकित्सक को रोगी के सम्बन्ध मे नीचे लिखी बातें जाने बिना काम नही चलेगा —

(क) रोगी की जीवनी-शक्ति बलवती है या निर्बल ?

(ख) विषैली दवाओ, सुइयो, तथा आपरेशन का व्यवहार तो नही हुआ है ? यदि हा, तो किस हद तक ?

(ग) रोगी की उमर क्या है ?

(घ) वजन क्या है ?

(ङ) मानसिक अवस्था क्या है ?

(च) प्राकृतिक चिकित्सा मे विश्वास है या नही । जीवनयापन कैसा है ।

(छ) व्यवसाय क्या है ?

(ज) रोगी विवाहित है या अविवाहित ?

धुंवा या सडक की धूल ही उड़कर पहुँच सके । कमरे मे रोगी का पलंग ऐसी जगह होना चाहिये जहा वह खिड़की तथा द्वार से आने वाले वायु के झोके के सीधे सम्पर्क मे न पड़ जाय । रोगी को खुले कमरे मे ठड लगने पर खिड़की-दरवाजों को बद करने के बजाय कम्बल आदि से ढककर ठड को रोकना चाहिये । रोगी के कमरे का परिमाण १५०० घनफुट से कम नही होना चाहिये । उस कमरे मे अधिक सामान की भी आवश्यकता नही है । रोगी के बिस्तर के अलावा छोटी सी अलमारी, तीमारदार और रोगी को देखने आने वालो के लिये एक दो कुर्सियां तथा थूकने के लिए कीटाणुनाशक पदार्थो सहित विशेष पात्र यथेष्ट है । कमरे मे रोगी की रुचि के अनुसार उसके मन बहलाने के कुछ साधन प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।

रोगी के कमरे की सफाई रोज होनी चाहिये । यदि फर्श पक्का हो तो धो देना चाहिये और यदि कच्चा हो तो गोबर से लीप देना चाहिये । कमरे की दीवारो पर जाला आदि न लगने देना चाहिये, तथा मक्खी और मच्छरो से रक्षा के लिये रोगी के लिये मच्छरदानी का प्रबन्ध होना चाहिये । रोगी के उपयोग मे आने वाले बर्तन तथा वस्त्र बिना उबाले कमरे के बाहर नही ले जाना चाहिये ।

रोगी के बिस्तर को रोज धूप मे सुखाना आवश्यक है चादरो और अन्य वस्त्रों को उतार कर सुखाना चाहिये और इस भेद को जानकर ही रोगी [illegible] [illegible] करें ।

रसाहार, फलाहार, फल—दूध एवं फल—मठा का आहार, स्वच्छ वायु में वास, प्रचुर-जल पान तथा विविध प्राकृतिक उपचार भी प्रकृति को एक प्रकार की हमारी मदद ही है ।

कुशल प्राकृतिक चिकित्सक यह जानता है कि यदि कभी किसी नये रोग से रोगी का जीवन खतरे मे पड़ जाता है तो वह रोग के कारण नही, अपितु उस रोग के प्राकृतिक रास्ते मे बाधा उपस्थित करने के कारण होता है ।

नये रोग जब गलत उपचार अथवा औषधियो आदि से दबा दिये जाते है तो वे पुराने हो जाते है। और शरीर मे बीज रूप से विद्यमान रहते है। यक्ष्मा, कोढ़, कब्ज,दमा,मधुमेह तथा बवासीर आदि रोगो की गिनती ऐसे ही रोगोमें होतीहै। एक प्राकृतिक चिकित्सक को ऐसे दबे रोगो की चिकित्सा करने के लिये सर्व प्रथम उन्हे तरकीब से उखाड़ना पड़ता है और तब प्राकृतिक उपायो से उन्हे धीरे-धीरे मिटा देना होता है ।

पुराने रोगो के उपचारके सिलसिले मे उपचारके साधनो भोजन, जल, वायु, कसरत आदि की सहायता बड़ी समझदारी के साथ लेनी चाहिये । कभी यह न समझना चाहिये कि इनका प्रयोग जितना ही अधिक किया जायगा लाभ उतना ही अधिक होगा । अपितु रोग और रोगी की शक्ति के अनुसार इनका प्रयोग न्यूनाधिक मात्रा में किया जाना चाहिये । उपचारो के प्रयोग आरम्भ करने के प्रथम रोगी से उसके औषधि प्रयोग का इतिहास और उसके दैनिक रहन-सहन और भोजन-क्रम को अच्छी तरह जान लेना चाहिये । यदि रोगी मासाहारी है, अथवा वह औषधियो का अधिक सेवन कर चुका है तो ऐसे रोगी का उपचार करते समय बहुत सजग रहना चाहिये और उपचार के साधनो का प्रयोग बहुत अल्प मात्रा से आरम्भ करना चाहिये । अच्छा यह होगा कि पुराने रोगो से पीड़ित सभी रोगियो का उपचार भोजन सुधार से आरम्भ किया जाय। यदि समझदारी के साथ भोजन सुधार किया जायगा तो परिणाम निश्चय ही अच्छा होगा ।

उदर स्नान शरीर की बढी हुई गर्मी को पेडू मे लाकर शान्त करता है और मेहन स्नान—स्नायुओ को ताकत पहुंचाता है और शरीर की जीवनी-शक्ति को बढ़ाता है। अतः पहले कुछ दिनो तक रोगी को उदर स्नान उसके शरीर की बढ़ी हुई गर्मी को शान्त करने के ही शक्ति बढ़ाने वाले उपचार मेहन-स्नान का प्र करना चाहिये । इन स्नानो को आवश्यकता से अधिक तक लेते रहने से जीवनी शक्ति का अपव्यय होने के साथ कमजोरी बजाय घटने के और बढती है और वाछित फल भी दूर होता जाता है । अत यदि नहानो की आवश्यकता अधिक प्रतीत हो तो दिन मे बार के बदले तीन बार दे, पर एक बार मे अधिक तक कदापि न दे । उचित यह होगा रोगी का बल देखकर इन नहानों को पाच-सात मिनट से शुरु क एक बार मे दस-पन्द्रह मिनट तक देना चाहिये । प्रकार रोग निवारण के लिये अन्य उपचारो जैसे भ स्नान, धूप-स्नान, तथा गीली चादर आदि का भी प्र समझदारी के साथ करना चाहिये ।

जिन दिनो भोजन सुधार का क्रम चल रहा और कफ विहीन भोजन ग्रहण किया जा रहा हो, स्न बद रखने चाहिये । क्योंकि शरीर की सफाई का दोहरा क चलाना अधिकतर रोगियो के लिये बहुत उग्र प्रमाणि होता है ।

उपवास और रसाहार के दिनो में एनिमा दि दिया जा सकता है पर फलाहार और साधार भोजन के दिनो मे भी यदि पेट की सफाई अपने आ न हो तो एनिमा बेझिझक देना चाहिये ।

रोगी का बिस्तर साफ, न सिमटने वाला और सुख यम होना चाहिए ।

रोगी के कमरे में बाहरी लोगो को अधिक देर त नही टिकने देना चाहिये । वहा भीड नहीं लगाने दे चाहिए । उस कमरे मे अनावश्यक व्यक्तियों एव ब को एकदम न जाने देना चाहिए ।

(७) रोगी के प्राकृतिक चिकित्सा कराने के लि तैयार हो जाने पर, रोग का निदान हो जाने पर त रोगी का कमरा और बिस्तर ठीक हो जाने पर चि त्सक को समझदारी के साथ चिकित्सा-विधि निर्धारि करके उसे कार्यान्वित करना चाहिए । इस सम्बन्ध मे उसके जानने योग्य कुछ आवश्यक बातें नीचे दी जा है—

(क) चिकित्सा के आरम्भ मे अधिकांश रोगो में १, ३, ७ या अधिक दिनो के उपवास, रसाहार या फलाहार की जरूरत पड़ती है जिस के साथ मे एनिमा प्रयोग भी जरूरी होता है।

(ख) दो तीन सप्ताह चिकित्सा क्रम चलाने के बाद उसे ४, ५ या ७ दिनो के लिये वन्द कर देना उचित होगा। परन्तु उस समय भी अन्य प्राकृतिक प्रयोग जारी रहेगे।

(ग) स्त्रियो के मासिक धर्म के अवसरो पर चिकित्सा सम्बन्धी स्नान वन्द कर देने चाहिए।

(घ) यदि रोगी को पूरे शरीर का वाष्प-स्नान देना है तो उसे यह स्नान सप्ताह मे एक बार से अधिक नही देना चाहिए। स्थानीय वाष्प-स्नान आवश्यकतानुसार प्रतिदिन दिये जा सकते है।

(ङ) कोशिश यह होनी चाहिए कि रोगी पर उभाड की क्रिया अति तीव्र न होने पाये।

(च) रोगी के मलोत्सर्ग मार्गों, त्वचा, फेफड़े, आतें, वृक्क की क्रियायें सुचारु रूप से होती रहें, इसका बडा ध्यान रखना चाहिए।

(छ) रोगी को चिकित्सा काल मे आशावादी और धैर्यवान बनाये रखने का यत्न करते रहना चाहिए। चिकित्सक के अनुभव और आहार सम्वन्धी ज्ञान का परिचय इसी स्थल पर मिलता है अर्थात् रोगी के लिये सतुलित आहार का कम निर्धारित करने में ही प्राकृतिक आहारोपचार की सफलता निहित है।

(झ) ज्वर की दशा मे तो ठडे स्नानो से ही काम चल जाता अर्थात् ज्वर अच्छा हो जाता है। यदि ज्वर मे दो तीन उदर स्नान या मेहन स्नान से भी कमी न हो या कम हो-हो कर फिर कुछ देर वाद बढ-बढ जाय तो समूचे शरीर का वाष्प–स्नान देना जरूरी होता है।

(ञ) एक दिन मे तीन वार से अधिक कोई भी प्राकृतिक स्नान रोगी को नही देना चाहिए और न कोई स्नान ३० मिनट से अधिक लेने देना चाहिए जब तक कि काई विशेष अवस्था न उत्पन्न हो जाय।

(ट) जाडे का मौसम और वसन्त ऋतु चिकित्सा के लिए अच्छे समय समझे जाते है।

(ठ) रोग अच्छा हो जाने पर रोगी को प्राकृतिक जीवन-यापन की शिक्षा देने के वाद छुट्टी देनी चाहिए।

नर्स या तीमारदार के कर्तव्य

रोगी की आवश्यकतायें समझना और उनकी पूर्ति करने का सही तरीका जानना एक तीमारदार के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

तीमारदार को इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि रोगी सदैव पीठ के बल ही न लेटा रहे। क्योंकि ऐसा होने से मेरुदण्ड की त्वचा मे घाव हो जाने का डर रहता है। अत तीमारदार का कर्तव्य है कि उचित समय पर रोगी को करवट बदलने मे सहायता देता रहे।

यदि रोगी के लिये रेडियो एवं पत्र-पत्रिकाओ आदि की व्यवस्था हो तो तीमारदार को चाहिए कि वह केवल आनन्ददायक कार्यक्रम या लेखादि रोगी को सुनाये।

एक तीमारदार को रोगी के चिकित्सक का आदेश अक्षरश: पालन करना चाहिए।

रोगी के इष्ट मित्र एवं परिवार के लोगों के कर्तव्य

रोगी के स्नेहियों को चिकित्सक की आज्ञाओ के विरुद्ध सहानुभूति दिखाने के लिये कोई ऐसी बात नही करनी चाहिए जो चिकित्सा क्रम मे बाधा डाले। जैसे रोगी को भोजन देने की मनाई होने पर उसे भोजन दे देना अथवा गरम पानी पीने की व्यवस्था रहने पर ठण्डा पानी पिला देना आदि। ऐसा करने से कभी-कभी रोगी बेमौत मर जाता है।

परिवार के लोगों को चाहिए कि वह रोगी को ऐसा कभी भान न होने दे कि उसका रोगी होना किसी कारण-वश उनको भार प्रतीत हो रहा है या उससे उन्हे भय है।

परिवार के किसी व्यक्ति द्वारा पारिवारिक समस्याये और परेशानिया रोगी के पास कभी भी नही पहुंचनी चाहिए और न उन पर उसके सामने कभी विचार ही किया जाना चाहिए। अपितु ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि केवल अच्छी खबरे तथा अच्छे और खुशदिल आदमी ही रोगी के पास पहुचने पावे।

तीसरा अध्याय

गले और उसके ऊपर के अङ्गों के रोग

सिर दर्द

सिर दर्द बहुत परेशान करने वाला होता है, पर यह स्वय रोग नहीं होता, अपितु किसी रोग का लक्षण मात्र होता है। सिर दर्द इस बात की चेतावनी देता है कि शरीर मे कही कोई खराबी है। वह खराबी शारीरिक क्रियाओ की हो सकती है मानसिक हो सकती है, और किसी अङ्ग विशेष की भी हो सकती है। किसी अङ्ग की क्रिया मे गड़बड़ी होने पर प्रकृति दर्द, चर्म रोग, सूजन, जलन, जुकाम तथा अन्य कितने ही लक्षणो द्वारा हमें चेतावनी दिया करती है। ये सारे लक्षण अङ्गविशेष के विकार के होते हैं। लेकिन सिर दर्द सामान्य रूप से सभी अङ्गो के सम्बन्ध मे खतरे की घंटी के रूप मे प्रस्तुत हुआ करता है।

कारण और लक्षण—सिरदर्द के कारण एक नही अनेक होते हैं, पर मूल कारण पाचन और मल का निष्कासन उचित रूप मे न होना और विषाक्त रक्तप्रवाह है। हमारे शरीर के अङ्गो पर परिश्रम का जोर पड़ने के कारण शरीर के भीतर एक प्रकार के मल की सृष्टि होती रहती है। यह मल विश्राम के समय रक्त में मिलकर प्रवाहित होने लगता है और प्रवाह के साथ शरीर के ऊपरी चर्म के बिलकुल पास आकर पसीना, पेशाव, आदि के रास्ते बाहर निकल जाता है। पर जब अधिक परिश्रम के कारण अथवा रोगावस्था मे यह मल अधिक बनने लगता है उसी को हमारी शारीरिक जीवनी शक्ति शीघ्रातिशीघ्र निकाल फेकने के लिए अस्वाभाविक वेग से प्रवाहित करती है। यही अस्वाभाविक रक्तप्रवाह जब मस्तक की ओर पहुंचकर धक्का देता है तो हम वहा दर्द का अनुभव करते है। उस वक्त एस्पिरिन जैसी दवाओ से रक्तप्रवाह शिथिल होजाता है और मल निष्कासन का कार्य प्राय धीरे धीरे होने लगता है। फलत सिर दर्द शात हुआ जान पड़ता है, मगर दर असल यह स्थिति भयावह होती है। कारण रोग का कारण दवाओ से दूर तो होता नही उल्टे उनके असर से हृत्पिण्ड के स्वाभाविक एवं आवश्यक कार्य मे बाधा पहुँचती है जिससे तात्कालिक लाभ तो हो जाता है, परन्तु उसके बाद औषधि का प्रभाव नष्ट

ही या तो पीडा पुन आरम्भ हो जाती है, या रोग दब-कर कुछ कालोपरान्त दूसरी शकल मे पुन. फूटता है ।

कब्ज, अधिक भोजन, अपच, तथा पेट की अन्य खराबियो से भी सिर दर्द की उत्पत्ति होती है । उत्तेजक और अखाद्य वस्तुओ, जैसे चाय, काफी, तम्बाकू आदि का सेवन भी सिर दर्द का कारण होता है । ललाट और कनपटी मे दर्द हो तो समझना चाहिए कि कारण पेट वा आतो की खराबी है । इसमे सिर फटता सा जान पडता है ।

भूख, जुकाम, नाड़ी दौर्बल्य, दिल को चोट पहुंचाने वाली बात, कान के रोग, शरीर मे ओषजन की कमी, रक्ताल्पता, मस्तक मे रक्ताधिक्य, यकृत की शिथिलता, अल्प निद्रा, अधिक श्रम, चाय-कहवा का अधिक इस्तेमाल, अत्यधिक परेशानी, शोक, अथवा भयातिरेक, सर पर साफा आदि कसकर बाधना, सर पर गरम पानी डालना, मासिक स्राव के समय ठड लग जाने से स्राव का बद हो जाना, आखो पर अस्वाभाविक ढङ्ग से जोर देना अर्थात् महीन अक्षर पढना, कम उजाले मे पढना, नजदीक से लिखा आदि देखना, चलती ट्रेन, बस आदि मे पढना, या पैदल चलते पढना आदि एव नेत्र के रोग इत्यादि तरह तरह के विकार सिर दर्द की उत्पत्ति के कारण होते है ।

ब्लड प्रेशर के कारण होने वाला सिर दर्द बडा भयकर होता है । इसका आरम्भ सामान्यत भेजे के मूल

हैं । परिणामत सिर गर्म और पीडा युक्त हो उठता है ।

यकृत की शिथिलता और अस्वस्थता के फलस्वरूप जब उससे होने वाले पित्त का स्राव सुस्त हो जाता है तब आतो के स्वाभाविक कार्य मे भी शिथिलता आजाती है जिसकी वजह से प्राय सिर दर्द की सृष्टि होती है ।

गर्दन के पिछले भाग मे मस्तक की जड मे यदि दर्द हो तो उसका कारण नाडी दौर्बल्य, नाक-आंख के रोग अथवा मस्तिष्क के निम्न भाग का रुग्ण होना होता है ।

सर्दी, जुकाम जन्य सिर दर्द ललाट और कनपटियो मे होता है ।

बहुत दिनो से चलने वाला पुराना सिरदर्द शरीर के रक्त का विषाक्त होना, हाईब्लडप्रेशर (रक्त चाप का बढना) तथा मस्तिष्क में अर्बुद आदि का होना साबित करता है ।

पेट की खराबी, ओषजन की कमी, अल्पनिद्रा, अत्यधिक श्रम, तथा चाय-कहवा के अधिक इस्तेमाल से होने-वाले सिर दर्द मे सिर फटता हुआ प्रतीत होता है ।

नाडी-सस्थान की खराबी से हुये सिर दर्द मे सिर कसा सा जान पडता है, मानो रबर की पट्टी खीचकर सिर पर जमा दी गई हो ।

सिर के ऊपरी भाग मे तनाव मालूम हो तो समझना चाहिये कि शरीर को यथेष्ट ताजी हवा नही प्राप्त नही हो रही है ।

चिकित्सा–

तीमारदार को इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि रोगी सदैव पीठ के बल ही न लेटा रहे। क्योकि ऐसा होने से मेरुदण्ड की त्वचा मे घाव हो जाने का डर रहता है। अत तीमारदार का कर्तव्य है कि उचित समय पर रोगी को करवट बदलने मे सहायता देता रहे।

यदि रोगी के लिये रेडियो एवं पत्र-पत्रिकाओ आदि की व्यवस्था हो तो तीमारदार को चाहिए कि वह केवल आनन्ददायक कार्यक्रम या लेखादि रोगी को सुनाये।

एक तीमारदार को रोगी के चिकित्सक का आदेश अक्षरशः पालन करना चाहिए।

रोगी के इष्ट मित्र एवं परिवार के लोगों के कर्तव्य

रोगी के स्नेहियो को चिकित्सक की आज्ञाओ के विरुद्ध सहानुभूति दिखाने के लिये कोई ऐसी बात नही करनी चाहिए जो चिकित्सा क्रम मे बाधा डाले। जैसे रोगी को भोजन देने की मनाई होने पर उसे भोजन दे देना अथवा गरम पानी पीने की व्यवस्था रहने पर ठण्डा पानी पिला देना आदि। ऐसा करने से कभी-कभी रोगी बेमौत मर जाता है।

परिवार के लोगों को चाहिए कि वह रोगी को ऐसा कभी भान न होने दे कि उसका रोगी होना किसी कारण-वश उनको भार प्रतीत हो रहा है या उससे उन्हे भय है।

परिवार के किसी व्यक्ति द्वारा पारिवारिक समस्याये और परेशानिया रोगी के पास कभी भी नही पहुंचनी चाहिए और न उन पर उसके सामने कभी विचार ही किया जाना चाहिए। अपितु ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि केवल अच्छी खबरे तथा अच्छे और खुशदिल आदमी ही रोगी के पास पहुचने पावे।

तीसरा अध्याय

गले और उसके ऊपर के अङ्गों के रोग

सिर दर्द

सिर दर्द बहुत परेशान करने वाला होता है, पर यह स्वय रोग नहीं होता, अपितु किसी रोग का लक्षण मात्र होता है। सिर दर्द इस बात की चेतावनी देता है कि शरीर मे कही कोई खराबी है। वह खराबी शारीरिक क्रियाओ की हो सकती है मानसिक हो सकती है, और किसी अङ्ग विशेष की भी हो सकती है। किसी अङ्ग की क्रिया मे गड़बड़ी होने पर प्रकृति दर्द, चर्म रोग, सूजन, जलन, जुकाम तथा अन्य कितने ही लक्षणो द्वारा हमें चेतावनी दिया करती है। ये सारे लक्षण अङ्गविशेष के विकार के होते हैं। लेकिन सिर दर्द सामान्य रूप से सभी अङ्गो के सम्बन्ध मे खतरे की घटी के रूप मे प्रस्तुत हुआ करता है।

कारण और लक्षण—सिरदर्द के कारण एक नही अनेक होते हैं, पर मूल कारण पाचन और मल का निष्कासन उचित रूप मे न होना और विषाक्त रक्तप्रवाह है। हमारे शरीर के अङ्गो पर परिश्रम का जोर पड़ने के कारण शरीर के भीतर एक प्रकार के मल की सृष्टि होती रहती है। यह मल विश्राम के समय रक्त में मिलकर प्रवाहित होने लगता है और प्रवाह के साथ शरीर के ऊपरी चर्म के बिलकुल पास आकर पसीना, पेशाब, आदि के रास्ते बाहर निकल जाता है। पर जब अधिक परिश्रम के कारण अथवा रोगावस्था मे यह मल अधिक बनने लगता है उसी को हमारी शारीरिक जीवनी शक्ति शीघ्राति शीघ्र निकाल फेकने के लिए अस्वाभाविक वेग से प्रवाहित करती है। यही अस्वाभाविक रक्तप्रवाह जब मस्तक की ओर पहुंचकर धक्का देता है तो हम वहा दर्द का अनुभव करते है। उस वक्त एस्पिरिन जैसी दवाओ मे हृत्पिण्ड शिथिल होजाता है और मल निष्कासन का कार्य प्राय धीरे धीरे होने लगता है। फलत सिर दर्द शात हुआ जान पड़ता है, मगर दर असल यह स्थिति भयावह होती है। कारण रोग का कारण दवाओ से दूर तो होता नही उलटे उनके असर से हृत्पिण्ड के स्वाभाविक एवं [illegible] कार्य मे बाधा पहुँचती है जिससे तात्कालिक लाभ तो [illegible] जाता है, परन्तु उसके बाद औषधि का प्रभाव [illegible]

ही या तो पीडा पुन. आरम्भ हो जाती है, या रोग दबकर कुछ कालोपरान्त दूसरी शकल मे पुन. फूटता है।

कब्ज, अधिक भोजन, अपच, तथा पेट की अन्य खराबियो से भी सिर दर्द की उत्पत्ति होती है। उत्तेजक और अखाद्य वस्तुओ, जैसे चाय, काफी, तम्बाकू आदि का सेवन भी सिर दर्द का कारण होता है। ललाट और कनपटी मे दर्द हो तो समझना चाहिए कि कारण पेट वा आंतो की खराबी है। इसमे सिर फटता सा जान पडता है।

भूख, जुकाम, नाड़ी दौर्बल्य, दिल को चोट पहुंचाने वाली वात, कान के रोग, शरीर मे ओषजन की कमी, रक्ताल्पता, मस्तक मे रक्ताधिक्य, यकृत की शिथिलता, अल्प निन्द्रा, अधिक श्रम, चाय-कहवा का अधिक इस्तेमाल, अत्यधिक परेशानी, शोक, अथवा भयातिरेक, सर पर साफा आदि कसकर बाधना, सर पर गरम पानी डालना, मासिक स्राव के समय ठड लग जाने से स्राव का बद हो जाना, आखो पर अस्वाभाविक ढङ्ग से जोर देना अर्थात् महीन अक्षर पढ़ना, कम उजाले मे पढ़ना, नजदीक से सिनेमा आदि देखना, चलती ट्रेन, बस आदि मे पढ़ना, तथा पैदल चलते पढना आदि एव नेत्र के रोग इत्यादि तरह-तरह के विकार सिर दर्द [illegible] उत्पत्ति के कारण होते हैं।

ब्लड प्रेशर के कारण होने वाला सिर दर्द बडा भयकर होता है। इसका आरम्भ सामान्यत. भेजे के मूल मे होता है जो वाद को धीरे-धीरे समूचे मस्तिष्क मे फैल जाता है और तब ऐसा जान पड़ता है कि सिर अब फटा। यह दर्द छीकने, खासने, तथा शरीर को एकाएक मोड़ने आदि से बढ जाता है। इस दर्द के फलस्वरूप कभी-कभी आखो से कम दिखाई देने लगता है।

नेत्र-रोग अथवा नेत्रो पर अस्वाभाविक ढङ्ग से जोर डालने के कारण जो सिर दर्द होता है वह भी प्रायः धीरे-धीरे ही बढता है। यह दर्द आखो के पिछले भाग मे होता जान पडता है।

मस्तिष्क मे रक्ताधिक्य के कारण जो सिर दर्द होता [illegible] किसी कारण वश रक्त [illegible] मे सवहन होने मे बाधा उपस्थित हो जाती [illegible] सिर के भीतर की रक्त नलिकाए फूल जाती हैं। परिणामत सिर गर्म और पीडा युक्त हो उठता है।

यकृत की शिथिलता और अस्वस्थता के फलस्वरूप जब उससे होने वाले पित्त का स्राव सुस्त हो जाता है तब आंतो के स्वाभाविक कार्य मे भी शिथिलता आजाती है जिसकी वजह से प्राय सिर दर्द की सृष्टि होती है।

गर्दन के पिछले भाग मे मस्तक की जड मे यदि दर्द हो तो उसका कारण नाड़ी दौर्बल्य, नाक-आंख के रोग अथवा मस्तिष्क के निम्न भाग का रुग्ण होना होता है।

सर्दी, जुकाम जन्य सिर दर्द ललाट और कनपटियो मे होता है।

बहुत दिनो से चलने वाला पुराना सिरदर्द शरीर के रक्त का विषाक्त होना, हाईब्लडप्रेशर (रक्त चाप का बढना) तथा मस्तिष्क में अर्बुद आदि का होना साबित करता है।

पेट की खराबी, ओषजन की कमी, अल्पनिद्रा, अत्यधिक श्रम, तथा चाय-कहवा के अधिक इस्तेमाल से होनेवाले सिर दर्द मे सिर फटता हुआ प्रतीत होता है।

नाड़ी-सस्थान की खराबी से हुये सिर दर्द मे सिर कसा सा जान पडता है, मानो रबर की पट्टी फैलाकर सिर पर जमा दी गई हो।

सिर के ऊपरी भाग मे तनाव मालूम हो तो समझना चाहिये कि शरीर को यथेष्ट ताजी हवा की प्राप्ति नही हो रही है।

चिकित्सा—

रक्तभाराधिक्य दो सौ से ऊपर होने पर प्राय तज्जनित सिर दर्द भयङ्कर हो उठता है। उस वक्त सिरदर्द से छुटकारा पाने के लिये रक्तभार तत्काल कम करने की कोशिश होनी चाहिये। इसके लिये आहार मे सुधार श्रम कम करना, द्रव्योषधियो से दूर रहना, तथा सादे तरीके से रहना आवश्यक है। परेशानियों से दूर रहकर ध्वंसात्मक विचारो के बदले रचनात्मक विचारो को मन में स्थान देना चाहिये। नशीली वस्तुओ का सेवन बंद कर देना चाहिये, और कम से कम एक सप्ताह तक मौसमी, रसदार फलो जैसे आम, सतरा, सेब, अगूर, टमाटर, आदि पर रहना चाहिये। इन दिनो प्रतिदिन एक बार या प्रति दूसरे दिन, जैसी आवश्यकता हो, एनिमा ले लेना चाहिये। उसके बाद एनिमा [illegible] मे लेना चाहिये

जब डेढ़-दो दिन पाखाना की हाजत न मालूम हो । एक सप्ताह तक फलों पर रहने के बाद आहार मे कच्ची तरकारी (सलाद) और दूध भी शामिल कर लेना चाहिये; अर्थात् दोपहर को मठा और तरकारी का सलाद ले, तथा शाम को दूध और फल । इस आहार को दो सप्ताह तक जरूर चलाना चाहिये । उसके बाद आहार मे दो-एक चोकरदार रोटी भी जोड़ दीजिये और धीरे-धीरे उसे बढाकर दूध लेना छोड़ दीजिये और उसके स्थान पर मठा के साथ उबली सब्जी लेना आरम्भ कर दीजिये । शरीर और मस्तिष्क को आराम दीजिये । समय पर गाढ़ी नींद लीजिये और सोते वक्त तकिये का इस्तेमाल छोड़ दीजिये । इस उपचार से रक्तभार घटकर साधारण हो जायगा, परिणामतः उसका लक्षण सिर दर्द भी हवा हो जायगा ।

शरीर में अम्लता बहुत बढ़ जाने के कारण रक्त दूषित हो जाता है जिससे ज्वर और सिर दर्द की उत्पत्ति प्रायः होती है । इसके लिए खान-पान में सयम से काम लेना चाहिए । सादा, सात्विक और सप्राण भोजन ग्रहण करना चाहिए । आवश्यकतानुसार उपवास और एनिमा द्वारा पेट साफ कर लेना चाहिए । साफ हवादार जगह मे रहना चाहिए । स्वच्छ ताजा जल प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए। तथा कुछ दिनो तक सुबह-शाम गीली मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर आध-आध घटे तक रखनी चाहिए, या उसके स्थान पर १५-१५ मिनट का उदर-स्नान लेना चाहिए । इससे शरीर की अम्लता दूर हो जायगी और साथ-साथ ज्वर और सिर दर्द भी ।

मस्तक मे रक्ताधिक्य के कारण जो सिरदर्द होता है उसको दूर करने का सरल उपाय है ६-७ मिनट पैरों का गरम स्नान । इससे रक्त का अधिक भाग पैरो की ओर खिच आता है जिससे सिर हल्का हो जाता है । मामूली हालतों मे केवल ठंडे पानी से भीगे और निचोड़े कपड़े को सिर और गर्दन के चारों तरफ लपेट देने ही से सिर दर्द चला जाता है । इसमें रोगी को विश्राम करते समय सिर ऊचे और पैरो को नीचे रखना चाहिए । रोग की बढ़ी हुई दशा मे रोज उदर स्नान भी लेना चाहिए ।

मस्तक में कम रक्त होने के कारण जो सिरदर्द होता है उसको गर्दन के पीछे गरम जल की थैली लगाकर या गीली गरम सेक देकर दूर किया जा सकता है । इस रोग के रोगी को पैरो के मुकाबिले मे सिर को पूर्ण विश्राम देना चाहिए ।

पाचन सम्बन्धी विकारों से होने वाले सिरदर्द से छुटकारा पाने के लिये उपवास, एनिमा, और सादे भोजन का प्रयोग करना चाहिए । यकृत-दोष जन्य सिरदर्द में धड़ के झुकाव वाले व्यायाम एव पेट अंदर की ओर खीचकर और सीना फैलाकर गहरी सास लेने के व्यायाम अधिक लाभ करते है ।

नेत्र विकार जन्य सिर दर्द के लिए दर्द के कारणों को दूर करके कुछ हल्के नेत्र व्यायाम करने चाहिये । नेत्र-व्यायाम के तरीके 'नेत्र-रोग' प्रकरण मे दिये गये हैं ।

अधिक श्रम के कारण हुआ सिरदर्द, शुद्ध वायु सेवन एव पूर्ण विश्राम द्वारा दूर किया जा सकता है ।

सर्दी-जुकाम होने पर नासिका रन्ध्र के ऊपर के भाग मे श्लेषमा जमा हो जाती हैं जिसका दबाव पड़ने के कारण सिर दर्द होता है । इस तरह का दर्द प्रायः नाक की सफाई हो जाने पर आपसे आप अच्छा हो जाता है ।

किसी किस्म का सिर दर्द हो उसमें उपवास, एनिमा द्वारा पेट साफ कर लेना, सिर पर देर तक ठंडे पानी का तरेरा देना, सिर मे ठडी हवा लगने देना, गर्दन और सिर पर गीली मिट्टी का लेप, सादा और हल्का भोजन, सिर की मालिश, पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी या उदर स्नान, शुद्ध वायु सेवन, पूर्ण विश्राम, तथा सिर के ऊपर हरा नीला प्रकाश डालना अवश्य लाभ करते है ।

अर्द्ध कपाली

'अर्द्ध कपाली' को 'अधकपारी' और 'आधा सीसी' भी कहते है । यह दर्द सिर के एक ही भाग मे—आख के ऊपर, ललाट मे, कनपटी मे या सिर के पिछले हिस्से मे सीमित रहता है । इस दर्द के दौरे आते है । दौरा आरम्भ होने के प्रथम आखो की रोशनी में दोष उत्पन्न हो जाते हैं—धुंधलापन, द्विदृष्टि, आदि । जम्भाई आना कब्ज, थकान की अनुभूति, प्रकाश न देख सकना, मतली और वमन भी इस दर्द के लक्षण है । इसका दौरा प्रायः दो सप्ताह या दो मास के निश्चित अन्तर पर हुआ करता है । यह दर्द साधारण सिर दर्द से अधिक तेज और उग्र होता है ।

अर्द्ध कपाली स्नायुविक रोग है जिसका कारण मस्तिष्क के चारों ओर और गर्दन की नाडियो मे विजातीय द्रव्य का एकत्र होना है।

चिकित्सा—इस रोग के रोगी को घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, चिन्ता आदि भावात्मक अस्थिरता से बचते रहना चाहिए। हल्का व्यायाम और वायु सेवन प्रतिदिन करना चाहिए। सादा, सात्विक, और सप्राण भोजन ग्रहण करना चाहिये। चिकित्सा के आरम्भ मे तीन दिनो का उपवास या रसाहार करना चाहिए और एनिमा द्वारा पेट को साफ कर लेना चाहिये। उसके बाद सप्ताह मे एक बार गरम जल का स्नान व उपवास तथा रोज कटि या मेहन स्नान करते रहना चाहिये जब तक कि रोग एक बारगी चला न जाय। दौरा आने के पहले गरम पानी का एक एनिमा ले लेना चाहिए और गरम पानी मे नमक डालकर पीना चाहिए, उसके बाद मुंह में उंगली डालकर कै कर देना चाहिए। थोड़ी देर बाद पैरो का एक गरम नहान भी ले लेना चाहिए।

गंजा सिर

सिर के प्रत्येक बाल की आयु अधिक से अधिक ६ वर्ष की होती है। ६ वर्ष के भीतर-ही भीतर सिर के सभी बाल बारी बारी से कमजोर होकर झड जाते हैं, और उनके स्थान पर धीरे-धीरे नये बाल उग आते है। यही क्रम जीवन भर चलता रहता है। पर जब अस्वस्थता के कारण सिर के बाल बहुत जल्दी-जल्दी और एकसाथ अधिक संख्या मे झडने लगते है तो या तो उनकी जगह फिर नव बाल उगते ही नहीं या अत्यधिक पतले-पतले उगते हैं। किसी-किसी दशा मे जब सिर के समस्त केश-कोष मृतप्राय: हो जाते है और उनकी केशोत्पादन की क्षमता एक बारगी ही लुप्त हो जाती है तो सारा का सारा सिर गंजा और सपाचट हो जाता है।

कारण—समस्त शरीर का दोषयुक्त होना अस्वाभाविक रूप से तेजी के साथ सिर के बालो के झडने का कारण है। गर्मी, रक्ताल्पता, तथा भयानक ज्वर आदि रोगो के फलस्वरूप सिर के चर्म के निष्क्रिय हो जाने से सिर के बाल कमजोर झड़ जाते है। सिर मे किसी चर्म-रोग के पुराना पड़ने पर भी बहुधा सिर के बाल झड़ने लगते है। जो लोग अधिक समय तक कस-कर साफा बाधे रहते है या टोपी दिये रहते है उनके सिर मे रक्त प्रवाह मे व्याघात उत्पन्न हो जाता है जिससे बालो को उचित मात्रा मे खुराक नही मिल पाती। फलत: वे कमजोर होकर गिरने लगते है। अशान्ति, चिन्ता, भय तथा क्रोधादि मानसिक उद्वेगो के कारण भी सिर के बाल झड़ते और पकते देखे गए है।

चिकित्सा—जिन कारणो से सिर के बाल कमजोर होकर झड़ने लगते है, सर्व प्रथम उन कारणो को दूर कर देना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिये कि सर की चमड़ी पर मैल न जमने पाये और उनपर उगे बालो को अधिकाधिक साफ हवा मिलती रहे: सफाई के ख्याल से सिर को धोने के लिए बेसन, दही, काली मिट्टी या रीठा ठीक रहता है।

गंजापन आरम्भ होते ही प्रतिदिन चार बार सिर के बालो को हरे बोतल के सूर्यतप्त जल मे भिगोकर दोनो हाथो की उंगलियो से लगभग १५-२० मिनट तक बालो की जड़ो की मालिश करनी चाहिये साथ ही बालो को हल्के ऊपरी तरफ खीचना भी चाहिये। खीचने से यदि कुछ कमजोर बाल उखड़ जायें तो चिन्ता नही करनी चाहिये। क्योकि वे देर या सवेर उखड़ने वाले ही होते है। ऐसे कमजोर बालो का शीघ्रातिशीघ्र गिर जाना ही ठीक होता है, वरना वे अपने पास वाले बालो को भी कमजोर कर देते है।

रात मे सोने से पहले सूर्यतप्त नारियल के तेल मे कागजी नीबू का रस मिलाकर उससे बालो की जड़ो की हल्की मालिश करनी चाहिये। प्रतिदिन साधारण स्नान के वक्त नीबू के आधे टुकड़े से सिर को रगड़ना भी बड़ा लाभ करता है। भोजन के बाद सिर के बालो पर कन्घी इस प्रकार फेरे कि उसके दात सिर की चमड़ी को स्पर्श करे, उसके बाद बालो पर [illegible] का प्रयोग करना चाहिए।

गंजे सर वाले को सिवा शुद्ध सरसों या नारियल के तेल के और कोई तेल इस्तेमाल नहीं करना चाहिये। इस रोग में [illegible] है।

जिन के सिर पर [illegible] बाल न हो उन [illegible] को रोज-रोज दिन मे दो बार सिर स्नान और गर्दन की [illegible] भी करना चाहिये [illegible]

रखना चाहिये कि उसे कोष्ठबद्धता का रोग कभी न होने पाये। ऐसे-व्यक्ति को सप्राण एव सात्विक खान-पान पर रह कर सादे तौर पर जीवन यापन करना चाहिए।

ऐसा रोगी दिन मे एक बार यदि अपने गंजे सिर को ३-३ मिनट की बारी से सहने योग्य गरम जल और ठडे जल से धोया करे, और उसके बाद सिर के ऊपर नीला प्रकाश १५ मिनट तक डाले तो लाभ अच्छा होता है। उपर्युक्त धोनेवाला गर्म और ठडा जल यदि नीली बोतल का सूर्यतप्त हो तो बहुत लाभ दायक होता है। गजे सर पर मालिश करने के लिए जो तेल हो वह नारियल का हो और नीली बोतल का सूर्य तप्त भी हो।

असमय में बाल सफेद होना

इस रोग के भी वे ही उपचार है जो गजे सिर के है। उनके अतिरिक्त खुली हवा मे कसरत, ठडे जल से स्नान, सूर्य तप्त आंवला जल जो गहरी नीली बोतल में तय्यार किया गया हो से सिर को धोना, गहरे नीले बोतल मे तय्यार किये गए सूर्य तप्त आंवले के तेल की सिर मे मालिश, शिर पर गहरा नीला प्रकाश डालना, तथा सर्वाङ्गासन के अलावा शीर्षासन और मत्स्यासन भी इस रोग मे बड़े लाभ कारी सिद्ध होते है।

शिर की खुश्की

एक सेर पानी मे एक चम्मच चोकर और साबूदाना मिलाकर खौलावे, फिर उस पानी से दिन में दो बार सिर को मल-मल कर धोवे और रगड़ कर सुखाले। उसके बाद गहरी नीली बोतल के सूर्य तप्त तेल की मालिश करे, तो सिर की खुश्की दूर हो मगर इस उपचार का स्थायी लाभ तभी हो सकता है जब पेट साफ कर लिया जाय और कुछ दिनो तक फल-दूध, चोकर-दार रोटी सब्जी, और सलाद पर रह कर शरीर के रक्त को दोष-हीन कर लिया जाय।

शिर में जूं का पड़ना

शिर को दिन मे दो बार अच्छी तरह से साफ करके, लाल बोतल का सूर्य तप्त तेल एक भाग और हरी बोतल का सूर्य तप्त तेल दो भाग लेकर और मिलाकर उससे शिर की मालिश करनी चाहिये और हलकी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल ढाई तोले की खुराक से दिन मे ६ बार पीना चाहिए। इससे सिर के जू साफ हो जायेंगे। परन्तु स्थायी-लाभ के लिए पेट का साफ रखना और सादा, सप्राण और सात्विक भोजन करना नितान्त आवश्यक है।

मुहांसा

इस रोग को 'यौवन पिडिका' एवं कीले निकलना भी कहते है। मुहासा युवक और युवतियो का रोग है जो लगभग १३ वर्ष की उम्र से लेकर २४-२५ वर्ष की उम्र तक होता है। मुहासा प्राय: मुह पर ही होते हैं, परन्तु कभी-कभी छाती कधो और पीठ पर भी होते देखे गये है। मुहांसे निकल कर चेहरे को बदशकल बना देते और कभी-कभी तो ये इतनी सख्या मे निकलते है सारा चेहरा इनसे ढक जाता है।

मुहासे एक प्रकार की फुन्सिया है जो प्राय: दो प्रकार की होती है। पहले प्रकार की वे होती हैं जो छोटी-छोटी फुन्सियों के रूप मे प्रकट होकर दुखती है, पकती और सूख जाने पर जब उनके आसपास की खाल दबाकर उनमें की कीले निकाल दी जाती है तो उनमे छेद हो जाता है जो बाद को भर जाता है। दूसरे प्रकार के मुहासो की फुन्सियां वे होती है जो बिना पके ही काली कील निकलने वाली होती है। इस प्रकार के मुहांसों का कारण कफ, वायु, या रक्त विकार होता है।

इस रोग का मूल कारण सदोष भोजन एव असयमी जीवन है। सदोष भोजन से चेहरे की खाल आवश्यकता से चर्बीदार हो जाती है जिससे वहा की तैलीय ग्रंथियां वृद्धि पाकर फुन्सियो का रूप धारण कर लेती हैं, जिन्हें मुहासे कहते है। अधिक चिकनाई, शक्कर, मास, शराब, चाय, काफी, सिगरेट आदि मादक द्रव्य, तेल की चीजे, लाल मिर्च, सफेद चीनी, खटाई तथा मसाला आदि प्रकार वस्तुओ का अधिक प्रयोग करने वाले एव वासनामय जीवन बिताने वाले युवक-युवतियो मे यह रोग विशेष रूप से पाया जाता है।

कब्ज और अजीर्ण से यह रोग पनपता है। स्त्रियों मे यह रोग मासिक धर्म की खराबी से भी हो जाता है। कफ, वायु एव रक्त-विकार से भी मुहासे होते हैं। जो बच्चे दीर्घ-काल तक माता का स्तन पान करते है, उन्हे उनकी कौमारावस्था में प्राय यह रोग हो जाता है।

चिकित्सा—चूंकि इस रोग की उत्पत्ति पेट से है, इसलिए इस रोग के रोगी को हलका, सादा, सुपच और प्राण भोजन जिसमें चिकनाई का भाग कम हो, सेवन करना चाहिए। भोजन मे शाक भाजी, उबली तरकारी, नीबू, सन्तरा, अंगूर, अनार, सेव, नासपाती व टमाटर, गाजर, अमरूद तथा पपीता आदि मौसम के फल, बिना छने आटे की रोटी, दही और मठा आदि रहना ठीक रहेगा। दिन मे दो बार फल और दो बार साधारण भोजन (मात्रा आधी ताकि फल अधिक लिया जा सके) लेना चाहिए।

इस बात का सदैव ध्यान रहना चाहिए कि पेशाब साफ होता रहे, त्वचा से पसीना निकलता रहे, फेफडे ठीक काम करते रहे तथा कब्ज कभी न होने पाये। इसके लिये सप्ताह मे एक दिन अर्थात् २४ घण्टे का उपवास करना चाहिए, प्रतिदिन उषपान करना चाहिए, रोज हल्की कसरत करनी चाहिए, कुछ दिनो तक दिन में दो या एक बार पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी ३०-३० मिनट तक रखनी चाहिए तथा कब्ज की दशा मे जब तक कब्ज दूर न हो जाय २४ घटे में एक बार रोज एनिमा लेना चाहिए।

स्थानीय चिकित्सा—बहुत से लोग मुंह के मुंहासों को दूर करने के लिये 'स्नो' या 'क्रीम' का व्यवहार करते हैं जो गलत है। कारण देखा गया है कि इन चीजों को लगाने से मुंहासे नष्ट होने के बजाय विशेष वृद्धि पाते हैं। यह अलग बात है कि स्नो वा क्रीम मे किसी चर्म रोगनाशक दवा का सम्मिश्रण होने से प्रारम्भ मे ये योग मुहासो पर कुछ लाभप्रद सिद्ध हो, किन्तु वास्तव मे उनसे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है।

मुंहासो के लिये निम्नलिखित स्थानीय प्रयोग लाभदायक होते हैं—

(१) किसी चौड़े मुंह वाले बर्तन मे पानी भरकर आग पर रखदे जब भाप निकलने लगे तो उसे [illegible] पर से उतार कर १०-१५ मिनट तक चेहरे पर [illegible]। [illegible] मुलायम तौलिया से चेहरे को धीरे-[illegible] साफ करे फिर शीतल जल से चेहरे को [illegible]। [illegible] प्रयोग प्रति दूसरे दिन करना चाहिए।

(२) अल्ट्रावायलेट किरणे इस रोग के लिये अत्यन्त लाभप्रद है। प्रातकालीन सूर्य की किरणे अल्ट्रावायलेट होती है। नित्य नियमपूर्वक सूर्योदय के समय पूर्वाभिमुख बैठकर सूर्य की किरणें अपने चेहरे पर लेनी चाहिए। कुछ दिनो तक इस प्रयोग के करने से अवश्य लाभ होगा। जो लोग किसी कारण से प्रात. कालीन सूर्य की रश्मियो से लाभ नही उठा सकते, उन्हे अपने घर मे बैठे-बैठे अपने चेहरे पर नीले शीशे के बीच से गुजार कर नीली रोशनी लेनी चाहिए।

(३) मुंहासे जब सूख जाये और उनकी काली कीले दिखाई देने लगे तो उन्हे धीरे-धीरे हाथ से या किसी बड़ी चाभी के सिरे से दबाकर निकाल दे और उसके बाद चेहरे पर दूध की मलाई मल दें।

(४) रात को कागजी नीबू के रस मे छुहारे की गुठली घिसकर चेहरे पर लेप करे और थोड़ी देर बाद धोकर मलाई मल दे।

(५) रात को कच्चा दूध चेहरे पर मले और सवेरे उठ कर उसे धो डाले।

(६) अच्छा दही लेकर उसमे कपड़छन की हुई काली चिकनी मिट्टी मिलावें और रात को सोते समय चेहरे पर पोत कर सोये। सुबह उठकर धो डालें।

(७) सन्तरे का छिलका पानी मे पीसकर दिन मे तीन बार चेहरे पर मले।

(८) मुलहठी पानी मे पीस कर चेहरे पर मलें।

(९) मसूर के आटे को घी और दूध मे मिलाकर चेहरे पर उबटन करे।

(१०) धनियां, पठानी लोध, सफेद बच, पीली सरसों, लाल चन्दन, मजीठ, कूठ कड़वी, मालकागनी, बड़ के अंकुर, सेधा नमक, कालीमिर्च एक-एक तोला, हल्दी आधा तोला और मसूर की दाल चार तोला। इनसबको खूब महीन पीसकर और चमेली के तेल मे घोटकर रख लेवें। स्नान [illegible] इनमे से लगभग [illegible] तोला लेकर आधा तोला [illegible] मिट्टी मिलाव और चेहरे पर लेप करे। थोडी देर [illegible] सूख जाने और स्नान करले। स्नान के बाद चेहरे [illegible] मलले।

छाजन की सिट्ठली

यह एक प्रकार का चर्म रोग है। इसमे चेहरे पर

काले या भूरे धब्बे-से पड़ जाते है। कभी-कभी यह बढ़कर सारे शरीर पर या उसके किसी भाग पर भी फैल जाती है। यह अन्य चर्म रोगो की भाति ही गलत खान-पान व रहन-सहन से रक्त के दूषित होने से होता है।

चिकित्सा—

तीन दिन तक उपवास या रसाहार। उपवास के दिनो के अलावा कुछ दिनों तक शौच के बाद प्रात.काल एक बार एनिमा लेना; प्रतिदिन १५ मिनट से ३० मिनट तक प्रात काल धूप-नहान, सप्ताह मे एक बार भाप नहान समूचे शरीर का, महीने-दो महीने पेड़ू नहान शाम-सुबह १०-१५ मिनट तक, रात मे सोने से पूर्व मिट्टी की गीली पट्टी पेड़ू पर रखकर सोना तथा एक गिलास गुनगुने पानी मे एक या दो कागजी नींबू का रस निचोड कर पीना, आसमानी और पीली बोतलो का सूर्यतप्त जल बराबर-बराबर लेकर ढाई तोला की खुराक से छ खुराके दिन मे पीना, तथा आसमानी और हरी बोतलो का सूर्यतप्त तेल बराबर-बराबर लेकर और मिलाकर, उससे छाजन की जगह पर मालिश करना, अम्लोत्पादक खाद्य वर्जित; उनकी जगह शुद्ध, सादा, सप्राण, तथा ताजा खाद्य लेना; यही इस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा है।

शीतला के दाग

शीतला के दाग यदि गहरे हुये तो पुराना पड़ने पर जरा मुश्किल से दूर होते हैं। अत. जब ये दाग हरे रहे, अर्थात् आरम्भ मे ही जब दाने सूखने लगे तो उन पर शुद्ध गीली मिट्टी का प्रलेप अच्छी तरह से कुछ दिनो तक करने से दाग बिलकुल ही न रह जायेगे। पके नारियल का पानी दिन मे कई बार दागो पर मलने से भी शीतला दाग दूर हो जाते है। कुछ और नुस्खे नीचे दिये जाते है—

(१) हाथी दांत का चूर्ण, बुरादा अर्मनी, और 'पामालिव'-साबुन—तीनो को पानी में मिलाकर रात को सोते समय चेचक के दागों पर लेप करे और सुबह उठकर धो डाले।

(२) अङ्कोल का तेल, आटे और हल्दी के उबटन के के साथ मिलाकर उबटन करे।

(३) बनफसा की जड़, मुर्दासग, कूट, जलाया हुआ बारासिंगा, अर्मनी का बुरादा और उशुक-सब एक-एक माशे लेकर और मक्खन निकले दूध में पीस कर दागों पर लगाव।

दाढ़ी में फुन्सियां

दाढ़ी मे फुन्सिया किसी भी कारण से निकले, पर उनका निकलना इस बात का सूचक है कि रक्त मे विजातीय द्रव्य विद्यमान है। इसके लिये ३-४ दिनों तक फलाहार पर रहना चाहिये, साथ ही एनिमा लेना चाहिये और धूप-सेवन भी करना चाहिये। दिन मे कई बार फुन्सियो को गरम पानी से भीगे कपडे से सेकना चाहिये और बीच-बीच मे ठडे पानी से धोना चाहिए। रात को फुन्सियों पर मिट्टी या कपड़े की ठडी पट्टी लगाकर सोना चाहिए।

नेत्र रोग

ससार में सात प्रकार के नेत्र देखे जाते है—

१—सूरी वा अन्धी आंखे। इनमे चेचकान्धता एव गर्मी और सुजाकजन्य अन्धता भी शामिल है। भारत मे अन्धो की सख्या अपेक्षाकृत ससार के अन्य सब देशों से अधिक है। अमेरिका के ११४,००० अन्धों के मुकाबिले मे हमारे देश मे यह सख्या ६०१,३७० है।

२—कानी आखे।

३—भेड़ी आखे।

४—कंजी या बिल्ली जैसी आखे।

५—छोटी और धसी आखे।

६—बड़ी आंखे।

७—छोटी-बडी आखे।

इनमे से नं० ६ को छोडकर और सभी जाति की आखे असुन्दर तथा मुखाकृति की शोभा को घटानेवाली होती हैं। इनमे सुधार असम्भव है।

नेत्र रोग लगभग १०० प्रकार के होते हैं। इनमे से २४ पलको और नेत्र सन्धियो के, १३ नेत्र के श्वेत भाग के, ५ कृष्ण भाग के, ५ काच-बिंदु के, ६ तिमिर के, ७ लिङ्ग नाश के, ८ दृष्टि-रोग, ४ अभिष्यन्द, ४ अधिमन्थ और शेष सर्वाक्षि रोग होते है। इन रोगों मे प्रधान रोग निम्नलिखित है—

१—चक्षु-प्रदाह या आख का आना।

२—दृष्टि क्षीणता।

३—जाला।

४—माडा।
५—फुल्ली।
६—धुन्द।
७—गुहाजनी, अञ्जनियां या बिलनी।
८—मोतियाबिंदु, सफेद पानी या 'कैटरैक्ट'।
९—नेत्रो की खुजली।
१०—रोहा।
११—नक्तान्ध्य, अन्धराता या रतौधी।
१२—नाखूना।
१३—पीलिया।
१४—बरौनियों का झड़ना।
१५—पैनस।
१६—काला मोतियाबिंदु, नीलापानी, धूसरमथ या 'ग्लोकोमा'।
१७—निकट दृष्टि, समीप दृष्टि, दूर की चीजे न देख सकना, 'मायोपिया' या 'शार्ट साइट'।
१८—दूर दृष्टि, नजदीक की चीजे न देख सकना, हाइपरमेट्रोपिया या 'लागसाइट'।
१९—अर्द्ध दृष्टि, आंशिक दृष्टि या 'पार्शल ब्लाइण्डनेस'।
२०—वक्र दृष्टि।
२१—दिनौधी।
२२—द्विदृष्टि, भेगापन या 'डबल विजन'।
२३—वर्ण-दृष्टि या कलर ब्लाइण्डनेस।
२४—धूम दृष्टि।
२५—क्लान्त दृष्टि।

चिकित्सा

उपर्युक्त सभी नेत्र-रोगो मे नीचे के उपचार जादू का काम करते है :—

[१] नेत्र-रोग के कारणों को दूर करना—

जिन कारणो से नेत्र रोग हो जाते है, वे निम्नलिखित है। सर्व प्रथम इन कारणो को दूर करना चाहिए.-

(१) सिर मे चोट लगना। (२) विष या उत्तेजक वस्तुओ का सेवन। (३) नेत्रों मे धुआ लगना। (४) नेत्रो मे धूल आदि पडना। (५) तेज गर्मी या सूर्य की ओर देखना। (६) बार-बार महीन वस्तु का अवलोकन करना। (७) वीर्य के वेग को रोकना। (८) अति स्त्री प्रसंग (९) धातु विकार। (१०) दर्द दुखदाना। (११) दन्त रोग। (१२) दात उखड़वाना। (१३) तेज बिजली की रोशनी मे काम--काज (१४) चलती गाड़ी मे पढना-लिखना। (१५) अपर्याप्त भोजन। (१६) अनिद्रा। (१७) तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओ का सेवन (१८) अति परिश्रम। (१९) पलके बार-बार न मारना। (२०) किसी वस्तु को एक टक देखना। (२१) चित्त लेट कर पढ़ना। (२२) मिट्टी के तेल वाली ज्योति मे पढ़ना। (२३) रास्ता चलते पढ़ना। (२४) दिन मे कृत्रिम ज्योति का प्रयोग। (२५) अधिक जागरण। (२६) अविहित त्राटक। (२७) धूप मे पढ़ना लिखना। (२८) तप्त भूमि पर नगे पाव चलना। (२९) न देखने योग्य या अनिच्छित वस्तु को देखना। (३०) किसी अजनबी स्थान पर जाकर वहा की बहुत सी वस्तुओ को एक साथ ही देखने की कोशिश करना। (३१) आवश्यकता न रहने पर भी चश्मे का प्रयोग करना। (३२) बुरे-बुरे स्वप्नो का देखना। (३३) अधिक सिनेमा देखना। (३४) अपने सोने का स्थान खिड़की के ठीक सामने रखना (३५) आखो को अधिक खोल कर घूरकर देखना। (३६) सीते-पिरोते समय पलको को अधिक न मारना, तथा सुई की चाल के साथ नजर को न घुमाना (३७) भीड़ भक्कड़ की जगहो मे अधिक समय व्यतीत करना। (३८) ठडे चश्मे या धूप के चश्मे लगाना। (३९) करवट सोते वक्त नेत्रो को भी उसी तरफ न झुकाए रखना। (४०) पेट की खराबी। (४१) घटते-बढ़ते रहने वाले प्रकाश मे लिखना पढना। (४२) दुखती आखो से लिखना पढना। (४३) रोगी नेत्रो की ओर देखना। (४४) डर, चिन्ता, क्रोध आदि मानसिक उद्वेग। (४५) दोष युक्त कल्पना और अशुद्ध विचार भावना। (४६) जब मन और नेत्र आराम करना चाहते हैं उस वक्त उनसे जबर्दस्ती काम लेना।

उपर्युक्त कारणों से जब शरीर स्थित विजातीय द्रव्य नेत्रो के भीतर स्थित तरल पदार्थ मे पहुंचकर उसमें कोई उपद्रव कर देता है तब दृष्टि-शक्ति कमजोर हो जाती है। इसी तरह जब दूषित द्रव्य नेत्रो की भीतरी भित्तियों मे चला जाता है जिससे दृष्टिमंडल के मध्य का बिन्दु तथा उसकी नाड़िया नाकारा हो जाती है, अथवा उनपर पर्दा पड़ जाता है, तब मोतियाबिन्दु आदि अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

काले या भूरे धब्बे-से पड़ जाते है। कभी-कभी यह बढ-कर सारे शरीर पर या उसके किसी भाग पर भी फैल जाती है। यह अन्य चर्म रोगो की भांति ही गलत खान-पान व रहन-सहन से रक्त के दूषित होने से होता है।

चिकित्सा–

तीन दिन तक उपवास या रसाहार। उपवास के दिनो के अलावा कुछ दिनों तक शौच के बाद प्रात.काल एक बार एनिमा लेना, प्रतिदिन १५ मिनट से ३० मिनट तक प्रात काल धूप-नहान, सप्ताह मे एक बार भाप नहान समूचे शरीर का, महीने-दो महीने पेडू नहान शाम-सुबह १०-१५ मिनट तक, रात मे सोने से पूर्व मिट्टी की गीली पट्टी पेडू पर रखकर सोना तथा एक गिलास गुनगुने पानी में एक या दो कागजी नीबू का रस निचोड़ कर पीना, आसमानी और पीली बोतलो का सूर्यतप्त जल बराबर-बराबर लेकर ढाई तोला की खुराक से छ. खुराके दिन मे पीना, तथा आसमानी और हरी बोतलों का सूर्यतप्त तेल बराबर-बराबर लेकर और मिलाकर, उससे छाजन की जगह पर मालिश करना, अम्लोत्पादक खाद्य बर्जित; उनकी जगह शुद्ध, सादा, सप्राण, तथा ताजा खाद्य लेना, यही इस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा है।

शीतला के दाग

शीतला के दाग यदि गहरे हुये तो पुराना पड़ने पर जरा मुश्किल से दूर होते है। अत. जब ये दाग हरे रहे, अर्थात् आरम्भ मे ही जब दाने सूखने लगे तो उन पर शुद्ध गीली मिट्टी का प्रलेप अच्छी तरह से कुछ दिनो तक करने से दाग बिलकुल ही न रह जायेगे। पके नारियल का पानी दिन मे कई बार दागों पर मलने से भी शीतला दाग दूर हो जाते है। कुछ और नुस्खे नीचे दिये जाते है–

(१) हाथी दात का चूर्ण, बुरादा अर्मनी, और 'पामालिव'-साबुन–तीनो को पानी में मिलाकर रात को सोते समय चेचक के दागों पर लेप करे और सुबह उठ-कर धो डाले।

(२) अङ्कोल का तेल, आटे और हल्दी के उबटन के के साथ मिलाकर उबटन करे।

(३) बनफसा की जड़, मुर्दासंग, कूट, जलाया हुआ बारासिंगा, अर्मनी का बुरादा और उशुक-मव एक-एक माशे लेकर और मक्खन निकले दूध मे पीस कर दागों पर लगाव।

दाढ़ी में फुन्सियां

दाढ़ी मे फुन्सिया किसी भी कारण से निकलें, परन्तु उनका निकलना इस बात का सूचक है कि रक्त मे विजातीय द्रव्य विद्यमान है। इसके लिये ३-४ दिनो फलाहार पर रहना चाहिये, साथ ही एनिम चाहिये और धूप-सेवन भी करना चाहिये। दिन बार फुन्सियो को गरम पानी से भीगे कपडे से चाहिये और बीच-बीच मे ठडे पानी से धोना च रात को फुन्सियों पर मिट्टी या कपड़े की ठंड लगाकर सोना चाहिए।

नेत्र रोग

ससार में सात प्रकार के नेत्र देखे जाते है–

१—सूरी वा अन्धी आंखे। इनमे चेचकान्धता एव और सुजाकजन्य अन्धता भी शामिल है। मे अन्धो की सख्या अपेक्षाकृत ससार के अन्य देशों से अधिक है। अमेरिका के ११४,००० के मुकाबिले मे हमारे देश मे यह सख्या ६०१, है।

२—कानी आखे।

३—भेड़ी आखे।

४—कजी या बिल्ली जैसी आखे।

५—छोटी और धसी आखे।

६—बडी आखे।

७—छोटी-बडी आखे।

इनमे से न० ६ को छोडकर और सभी जाति आखे असुन्दर तथा मुखाकृति की शोभा को घटानेवा होती हैं। इनमे सुधार असम्भव है।

नेत्र रोग लगभग १०० प्रकार के होते हैं। इनमें २४ पलको और नेत्र सन्धियो के, १३ नेत्र के श्वेत भा के, ५ कृष्ण भाग के, ५ काच-बिंदु के, ६ तिमिर ७ लिङ्ग नाश के, ८ दृष्टि-रोग, ४ अभिष्यन्द, ८ अधि मन्थ और शेष सर्वाक्षि रोग होते है। इन रोगों में प्र रोग निम्नलिखित है–

१—चक्षु-प्रदाह या आख का आना।

२—दृष्टि क्षीणता।

३—जाला।

४—माड़ा।

५—फुली।

६—धुन्द।

७—गुहाजनी, अञ्जनियां या बिलनी।

८—मोतियाबिंदु, सफेद पानी या 'कैटरैक्ट'।

९—नेत्रो की खुजली।

१०—रोहा।

११—नक्तान्ध्य, अन्धराता या रतौंधी।

१२—नाखूना।

१३—पीलिया।

१४—बरौनियो का झड़ना।

१५—पैनस।

१६—काला मोतियाबिंदु, नीलापानी, धूसरमय या 'ग्लोकोमा'।

१७—निकट दृष्टि, समीप दृष्टि, दूर की चीजे न देख सकना, 'मायोपिया' या 'शार्ट साइट'।

१८—दूर दृष्टि, नजदीक की चीजे न देख सकना, हाइ-परमेट्रोपिया या 'लागसाइट'।

१९—अर्द्ध दृष्टि, आंशिक दृष्टि या 'पार्शल ब्लाइण्डनेस'।

२०—वक्र दृष्टि।

२१—दिनौंधी।

२२—द्विदृष्टि, भेंगापन या 'डबल विजन'।

२३—वर्ण-दृष्टि या कलर ब्लाइण्डनेस।

२४—धूम दृष्टि।

२५—क्लान्त दृष्टि।

चिकित्सा

उपर्युक्त सभी नेत्र-रोगो में नीचे के उपचार जादू का काम करते है :—

[१] नेत्र-रोग के कारणो को दूर करना—

जिन कारणो से नेत्र रोग हो जाते है, वे निम्नलिखित है। सर्व प्रथम इन कारणो को दूर करना चाहिए -

(१) शिर मे चोट लगना। (२) विष वा उत्तेजक वस्तुओ का सेवन। (३) नेत्रो मे धुआ लगना। (४) नेत्रो में धूल आदि पड़ना। (५) तेज गर्मी या सूर्य की ओर देखना। (६) वार-बार महीन वस्तु का अवलोकन करना। (७) वीर्य के वेग को रोकना। (८) अति स्त्री प्रसङ्ग (९) धातु विकार। (१०) फस्द खुलवाना। (११) रक्त रोग। (१२) दात उखड़वाना। (१३) तेज बिजली की रोशनी में काम-काज (१४) चलती गाड़ी मे पढ़ना-लिखना। (१५) अपर्याप्त भोजन। (१६) अनिद्रा। (१७) तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओ का सेवन (१८) अति परिश्रम। (१९) पलके बार-बार न मारना। (२०) किसी वस्तु को एक टक देखना। (२१) चित्त लेट कर पढ़ना। (२२) मिट्टी के तेल वाली ज्योति मे पढ़ना। (२३) रास्ता चलते पढ़ना। (२४) दिन मे कृत्रिम ज्योति का प्रयोग। (२५) अधिक जागरण। (२६) अविहित नाटक। (२७) धूप मे पढ़ना लिखना। (२८) तप्त भूमि पर नंगे पाव चलना। (२९) न देखने योग्य या अनिश्चित वस्तु को देखना। (३०) किसी अजनबी स्थान पर जाकर वहा की बहुत सी वस्तुओ को एक साथ ही देखने की कोशिश करना। (३१) आवश्यकता न रहने पर भी चश्मे का प्रयोग करना। (३२) बुरे-बुरे स्वप्नों का देखना। (३३) अधिक सिनेमा देखना। (३४) अपने सोने का स्थान खिड़की के ठीक सामने रखना (३५) आखो को अधिक खोल कर घूरकर देखना। (३६) सीते-पिरोते समय पलको को अधिक न मारना, तथा सुई की चाल के साथ नजर को न घुमाना (३७) भीड़ भक्कड़ की जगहो मे अधिक समय व्यतीत करना। (३८) ठडे चश्मे या धूप के चश्मे लगाना। (३९) करवट सोते वक्त नेत्रो को भी उसी तरफ न झुकाए रखना। (४०) पेट की खराबी। (४१) घटते-बढ़ते रहने वाले प्रकाश मे लिखना पढना। (४२) दुखती आखो से लिखना पढना। (४३) रोगी नेत्रो की ओर देखना। (४४) डर, चिन्ता, क्रोध आदि मानसिक उद्वेग। (४५) दोष युक्त कल्पना और अशुद्ध विचार भावना। (४६) जब मन और नेत्र आराम करना चाहते हैं उस वक्त उनसे जबर्दस्ती काम लेना।

उपर्युक्त कारणों से जब शरीर स्थित विजातीय द्रव्य नेत्रो के भीतर स्थित तरल पदार्थ में पहुचकर उसमे कोई उपद्रव कर देता है तब दृष्टि-शक्ति कमजोर हो जाती है। इसी तरह जब दूषित द्रव्य नेत्रों की भीतरी झिल्लियो मे चला जाता है जिससे कनीनिका के मध्य का विन्दु तथा उसकी नाड़िया स्थानच्युत हो जाती है, अथवा उनपर पर्दा आजाता है, तब मोतियाविन्दु आदि अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

जटिल नेत्र रोग के कारण जब दृष्टि-स्नायु बिलकुल मुर्दा हो जाता है अथवा सूख जाता है, तो आदमी अंधा हो जाता है जो असाध्य समझा जाता है। किन्तु यदि तनिक भी दृष्टि शक्ति बची हो और केवल दृष्टि हीनता की ही शिकायत हो तो उसे साध्य समझना चाहिये। इस अवस्था मे प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा नेत्र विकार इस आसानी से दूर कर दिया जा सकता है कि फिर चश्मा लगाने की कोई आवश्यकता ही नही रह जाती, और यदि चश्मा लगता हो तो वह छूट जाता है।

साधारण तौर पर नेत्रो मे जरा भी खराबी होते ही लोग चश्मा लगाते है यह बुरा है। क्योंकि चश्मा लगाना दृष्टि क्षीणता की चिकित्सा कदापि नही है। चश्मा लगाने से दृष्टि क्षीणता मे लाभ कभी नही होता, उलटे दृष्टि क्षीणता से शरीर मे जो दोष युक्त अवस्था उत्पन्न हो जाती है उसकी तरफ से रोगी अपना ध्यान हटा लेता है जिससे उसको अन्त मे बड़ी हानि उठानी पड़ती है। इसी वजह से प्राय यह देखने मे आता है कि कुछ दिनो तक चश्मा लगाने के बाद उस शक्ति वाले चश्मे से फिर साफ नहीं दीखता और दूसरा और उससे अधिक शक्तिवाला चश्मा लगाना पड़ता है। इसी तरह पुनःपुनः अधिक-अधिक शक्तिवाला चश्मा व्यवहार मे लाने के लिये रोगी मजबूर होता है। बाद मे दशा यह हो जाती है कि फिर किसी भी शक्तिवाले चश्मे के व्यवहार से रोगी को दिखाई नही देता और वह प्राय अंधा हो जाता है।

चश्मा लगाने की आदत पडना एक महारोग होता है। इससे निजात पाने की कोशिश करना बुद्धिमानी का काम है। पुराने जमाने मे सैकड़ो मनुष्यो मे कही एक-दो बूढ़े आदमी ही चश्मा लगाये पाये जाते थे पर आजकल तो छोटे-छोटे बच्चे और स्त्रिया सभी चश्मा के गुलाम देखे जाते हैं। यह देश का अभाग्य है और आधुनिक सभ्यता का सबसे बड़ा अभिशाप। यह असत्य नही है कि चश्मा के प्रसार से चश्मा बेचने वालो तथा डाक्टरो की तो जेबे खूब भरती हैं पर चश्मा लगाने वाले बेचारे अपनी आखो से हाथ धो बैठते है।

एलोपैथी डाक्टर समझते ही नहीं अपितु उनका विश्वास भी है कि दृष्टि दोष असाध्य होता है और उसकी यदि कोई चिकित्सा है तो केवल चश्मा लगाना ही। उनको क्या पता कि प्राकृतिक चिकित्सा से सभी नेत्र विकार मन्त्रवत दूर किये जा सकते हैं तथा चश्मा लगाना भी छुड़ाया जा सकता है। एक दूसरी गलती जो एलोपैथी डाक्टर नेत्र-रोगो की चिकित्सा मे करते हैं वह है केवल नेत्र ही की चिकित्सा करना, जब कि होना यह चाहिए कि नेत्र की चिकित्सा के साथ-साथ समूचे शरीर की चिकित्सा हो। प्राकृतिक चिकित्सक यही करते है और शतप्रतिशत यश प्राप्त करते है। उदाहरणार्थ आख आने पर पेडू पर मिट्टी की गीली पट्टी दो-तीन बार रखने से ही पेट की गर्मी शान्त होकर आख की तकलीफ जाती रहती है। इस सम्बन्ध मे यह न भूलना चाहिए कि आख वह आइना है जिसमे झाककर शरीर के लगभग सभी रोग प्रत्यक्ष देखे जा सकते है। अगर आपकी आखे खराब हैं और तकलीफ दे रही हैं तो यह निश्चित है कि आप किसी न किसी पुरातन रोग से अवश्य पीड़ित है अत. यह जरूरी है कि पहले उस पुरातन रोग को समूल नष्ट कर दिया जाय फिर तो आखें आप से आप निर्मल हो जायेगी।

(२) चक्षु-व्यायाम—शरीर के समस्त अवयवो मे हमारी आखे सबसे अधिक कोमल होती है। ये शरीर के सूक्ष्मतम स्नायुओ द्वारा निर्मित होकर हड्डी के दो सुदृढ गोलको में पड़ी फिरती रहती है। इनके भीतर उचित मात्रा मे केवल पानी भरा होता है। नेत्रो से एक ही प्रकार का कार्य अधिक समय तक न लेना चाहिए। ऐसा करने से आंखे बहुत जल्द खराब हो जाती है।

शीघ्र-शीघ्र पलक गिराना, स्वस्थ नेत्रो का एक स्वाभाविक गुण है। पलक मारने से नेत्रो को सुख मिलता है। जो वस्तुयें देखते हैं वे साफ दिखाई देती हैं। जिनके नेत्र अस्वस्थ होते हैं वे देर से और अस्वाभाविक रूप से पलके मारते है। ऐसा मालूम होता है मानो वे बड़े प्रयास और कष्ट से पलक मार रहे हैं। छोटे बच्चे बडे ही स्वाभाविक ढङ्ग से और जल्दी-जल्दी पलक मारते हैं। पलक मारने की औसत प्रति सेकेण्ड एक बार होनी चाहिए।

कोई भी काम क्यो न किया जाय हमे पलक मारना न भूलना चाहिये। यह मिथ्या नहीं है कि जिन बच्चे

प्रकार पलक गिराना था [illegible] बनाने का काफी लम्बा मार्ग तय कर लिया।

यों तो नेत्रों के लिये अब तक अनेक उपयोगी व्यायामों का आविष्कार हो चुका है। [illegible] प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक डाक्टर बेट्स के [illegible] व्यायाम सर्वाधिक फलदायक सिद्ध हुये, जिनका प्रचार और प्रसार बुलन्दशहर और [illegible] नेत्र चिकित्सक श्री आर० एम० अग्रवाल द्वारा आजकल भारत मे भी हो रहा है। डाक्टर अग्रवाल के ही [illegible] नीचे के कुछ उपयोगी चक्षु-व्यायाम उद्धृत किये जाते हैं। इनसे लाखो की संख्या मे नेत्र रोगी अब तक लाभान्वित हो चुके हैं। इन व्यायामो को आरम्भ करने के साथ ही आखो पर चश्मा लगाना त्याग देना चाहिए। क्योंकि बिना चश्मा छोडे इन व्यायामो से विशेष लाभ नही होता।

१–पलक मारने की कसरत

गिनती गिनो और हर एक गिनती पर पलक मारो, अथवा दर्पण के सामने बैठ कर पलक का अभ्यास करो अथवा एक जेब घडी को कान के पास लगाकर उसके प्रत्येक 'टिक-टिक' पर पलक मारो अथवा चलते समय प्रत्येक-कदम पर पलक मारते चलो।

२–दृष्टिपट पर चक्षु व्यायाम

दृष्टि पट से १० फीट की दूरी पर खडे हो जाओ, अपने एक हाथ की हथेली को गाय के कान जैसा बनाओ और उससे एक आख को हल्के से ढको। अब दूसरी आख जो खुली है उससे पलक मार-मार कर सब लकीरो के अक्षर पढ जाओ। जिनके नेत्र कमजोर हो वे भी यदि नित्य नियमानुसार यह दृष्टि-पट पढ लिया करें तो कुछ समय बाद उनकी दृष्टि तीव्र हो जायगी।

३–ॐ परिक्रमा चक्र व्यायाम–

सिद्धासन लगाकर बैठ जाओ। शरीर की स्थिति ऐसी हो जैसी महर्षि दयानन्द सरस्वती के चित्रो मे उन्हे पद्मासन से बैठा देखते हो। आलथी-पालथी मारकर अपने हाथो के अगूठो को अगूठो के पास की दूसरी अगुली के ऊपर रखो। कमर, रीढ की हड्डी और गर्दन एक सीध मे हो। अब अगूठे को तर्जनी पर गोल चक्र में घुमाओ। [illegible] की ओर [illegible] करो। एक चक्र को एक [illegible] पूरा करो। ॐ की जगह जो चाहो [illegible] जप सकते हो। चक्र को छोटे से छोटा बनाओ और अंगूठा तर्जनी पर ॐ कहने पर रखो। [illegible] बार आनन्द की हिलोर उठने लगेगी। एक घंटा भी यदि ध्यानावस्थित दशा मे व्यतीत हो जायगा तो भी ऐसा ही भान होगा कि पाच मिनट ही व्यतीत हुये हैं।

प्रथम-प्रथम बडा चक्र लगाना पड़ता है। फिर ज्यो-ज्यो अभ्यास बढता जाता है चक्र छोटा होता जाता है। अन्त मे ऐसी अवस्था आ पहुंचती है कि शरीर तो स्थिर मालूम देता है, परन्तु शरीर के अन्दर एक चक्र सा घूमता मालूम पडता है। बाहर से देखने वाले इस अंतर्चक्र को नही देख सकते। यह तो केवल अनुभव द्वारा ही जाना जाता है। नेत्र भी चक्र मे घूमते से प्रतीत होते हैं। यह साधना बडी दिव्य है। इससे मस्तिष्क स्वस्थ रहता है और नेत्रो की ज्योति बढ़ती है। यदि यह साधना सूर्य की ओर मुख करके की जाय तो नेत्र दृष्टि शीघ्र तीव्र होती है। दृष्टि-पट पर अपनी ज्योति की जाच करके इस दिव्य साधना की परीक्षा स्वय कर सकते हो। ज्योति बढी हुई मालूम पडेगी, साथ ही नेत्रो मे चद्रमा जैसी शीतलता, मस्तिष्क मे अपार शान्ति और समूचे शरीर मे अनिर्वचनीय सुख का अनुभव होगा - इस क्रिया से नेत्र, मस्तिष्क और शरीर सम्बन्धी अनेक पीडाये शात होती है।

४–पामिंग या आंखें ढंकना

दृष्टि-पट को दीवार मे अच्छे प्रकाश मे लगाओ। उससे १० फीट की दूरी पर कुर्सी पर बैठ जाओ। दृष्टि-पट की ऊचाई उतनी होनी चाहिये जितनी कि आपकी आखें। अब अपनी दायी हथेली और अंगुलियो को गाय के कान की आकृति का बनाओ और उसे दायी आख पर इस प्रकार रखो कि हथेली का गड्ढा आख के ऊपर रहे और अगुलिया कुछ तिरछी होकर बायी भौंह के ऊपर होकर बाये कपाल को ढक लें। बायी हथेली को भी ऐसा ही बनाकर बायी आख पर रखो। इसी अवस्था मे ढकी आखो को खोलकर देखो कि अगुलियो के छिद्रो मे से

किसी से प्रकाश तो नही आता है । यदि आता हो तो उसे बंद करो और आखे मूंद लो। अब किसी प्रियवस्तु की मानसिक प्रतिमा देखो। घूमती चीजे, जैसे झूला, चकई, लट्टू अथवा वृक्षो का हिलना आदि देखना चाहिये। ५ से १५ मिनट तक इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त हथेली को हटाओ और आहिस्ते से आंख खोलो और उससे पलक मार-मार कर दृष्टि-पट के अक्षर पढ़ो। पहले तो अक्षर साफ और काफी काले दिखाई देगे, पर कुछ देर बाद फिर धुंधले होगे। ज्योंही धुंधले अक्षर दिखने लगे, त्योही उस आंख को हथेली से ढककर दूसरी आंख खोलो और उससे पलक मार-मार कर पढना आरम्भ करो, फिर 'पार्मिग' करना शुरू कर दो और १०-१५ मिनट बाद पुनः उस आंख से भी अक्षर को पढो। खड़े-खड़े 'पार्मिग' नही करना चाहिये। लेटकर 'पार्मिग' किया जा सकता है। क्षीणदृष्टि वाले को दिन मे कम से कम चार पांच बार 'पार्मिग' करना चाहिये। उसे चाहिये कि 'पार्मिग' करते-करते ही नीद से सो जाय और प्रात.काल उठते ही फिर 'पार्मिग' करे। यदि दोनों नेत्र एक समान कमजोर हो तो दोनो आखो को खोलकर अक्षर पढने का अभ्यास करना चाहिये।

(५) सूर्यमुखी व्यायाम

प्रातःकाल सूर्य की ओर मुख करके बैठ जाओ। नेत्रों को बद करलो। अब अपनी गर्दन, मस्तक और मुदे हुये नेत्रो को दाहिनी तरफ से बायी तरफ और 'बायी' तरफ से दायी तरफ धीरे-धीरे घुमाओ जिस प्रकार सांप अपने फन को तुम्बी की आवाज पर हिलाता है। नेत्र सिर के साथ घूमते रहें। नेत्र स्वय न घूमे और यदि घूमे तो विपरीत दिशा में। इस प्रयोग को १० से ३० मिनट तक करना चाहिये। फिर पीठ सूर्य की ओर करके ऊपर के प्रयोग नं० ४ की भाति 'पार्मिग' करना चाहिये। इस प्रयोग को प्रतिदिन दो बार करना चाहिए। इससे नेत्र-पीड़ा दूर होती है, दृष्टि तीव्र होती है, आखों की चकाचौध दूर होती है, तथा आंखे निर्मल और निर्विकार हो जाती है।

(६) सूर्यमुखी व्यायाम का दूसरा ढंग

प्रात.काल सूर्य की ओर मुंह करके आराम कुर्सी पर लेट जाओ ताकि सूर्य की किरणे आप के चेहरे पर पडे। अब केले के पत्ते के एक टुकडे के बीच से सूरज की ओर ताको ५ मिनट तक हरा-हरा दिखाई देगा। सूरज को नही ताकना चाहिए। ५ मिनट बाद केले के पत्ते के टुकड़े को फेक दो और आंखो को मूंद लो। मुंदी हुई आंखों को सूरज की ओर किये १५ मिनट तक यों ही बैठे रहो। फिर साये मे जाकर प्रयोग नं० ४ करो ५ मिनट तक। बाद को आखे खोलकर उन्हे ठडे पानी से छीटा मार-मार कर धोओ। इस प्रयोग से भी सारे नेत्र विकार कुछ ही दिनों में दूर हो जाते हैं।

(३) उदर स्नान—सुबह-शाम दिन मे दो बार १५-२० मिनट तक विधिवत उदर-स्नान।

(४) मेहन स्नान—उदर स्नान की जगह पर मेहन स्नान या एक उदर और एक मेहन स्नान।

(५) स्थानीय वाष्प-स्नान—सप्ताह मे एक बार या चिकित्सक के आदेशानुसार कई बार रोगी आख पर १० मिनट तक यह स्नान प्रतिदिन देना चाहिए, तथा उसके तुरत बाद उदर या मेहन स्नान करना नितान्त आवश्यक है।

(६) आखों और गर्दन के पीछे के हिस्से पर भीगी गद्दी का प्रयोग—आखो की दर्द वाली या वे दर्द वाली बीमारियों मे भीगी गद्दी का विधिपूर्वक कई बार प्रयोग आश्चर्यजनक लाभ करता है। एक बार की वधी यह पट्टी तीन से चार घंटो तक काम दे सकती है। अतएव जब गद्दी सूखजाय तो उसे बदल देना चाहिए या उसी को पुनः साफ करके और भिगोकर काम मे लाना चाहिए। आख आने में इस पट्टी को १०-१५ मिनट के अन्तर से बदलते रहना चाहिए, साथ ही तीन-तीन घटा बाद आखो को १५-२० मिनट तक गरम पानी से भीगे कपडे से सेंकते रहना भी चाहिए। आंख आने की दशा मे आखो की पलकें यदि सट जाय तो उनपर उस वक्त तक पानी डालते रहना चाहिए जबतक कि सटी पलके खुल न जायें। ऐसी बद पलको को खोलने मे उतावली और जोर-जबर्दस्ती मे कभी काम लेना न चाहिए। आख आने मे अन्धे नीले चश्मे का व्यवहार और नीली बोतल के सूर्यतप्त जल मे सनी मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर दिन मे दो बार लगाने मे बड़ा लाभ होता है।

(७) आखो और गर्दन के पीछे के हिस्से पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग—आख की बीमारियों मे कपड़े की

कोसी मट्टी की जगह यदि साफ [illegible] मिट्टी [illegible] का प्रयोग किया जाय तो [illegible]। कोसी मिट्टी का लेप [illegible] ही चारों तरफ लगानी चाहिए।

(८) पीट की पट्टी—[illegible] बरले या उसके साथ [illegible] पट्टी का प्रयोग [illegible] होता है।

(९) नेत्र-स्नान—जिस प्रकार हमारे शरीर [illegible] स्नान की जरूरत होती है, [illegible] भी आवश्यक है। आंखों को [illegible] कि सर्वाङ्ग स्नान के समय भी [illegible] पाता। जल का शरीर पर गिरना [illegible] उसके पुतलियों को ढक लेती है और पानी [illegible] से साफ निकल जाता है। इस तरह [illegible] की सफाई बिलकुल नही हो पाती। इसका [illegible] नेत्रों का प्रकाश दिनोदिन कम होता जाता है और वे धीरे-धीरे तेजहीन, आभाहीन और मटमैले से दिखाई पाते हैं। अतएव हम सबको नेत्रो की सुन्दरता एवं स्वास्थ्य कायम रखने के लिये निम्नलिखित विधि से प्रति दिन नेत्र-स्नान करते रहना चाहिए —

शीशे या चीनी के किसी साफ और चौड़े बर्तन मे स्वच्छ शीतल जल भर लीजिये और उसमे अपनी आंखो को डुबाइये। पहले तो आपकी पलकें स्वभावत बन्द होने लगेंगी और जब आप पुतलियों को खोलना चाहेंगे तो जब कुछ गडता-सा प्रतीत होगा, पर घबराने की कोई बात नही। आप खुले हुए नेत्रों को जल के भीतर दो-चार बार इधर-उधर घुमाइये, तत्काल लाभ जान पडेगा, आंखें शीतल हो जायेंगी, भीतर की गदगी धुल जायगी, और मटमैलापन दूर हो जायगा।

कभी कभी नेत्र स्नान वाले जल मे चाय के एक छोटे चम्मच भर खूब साफ किया हुआ सेंधा नमक (उसमे मिर्च आदि न मिली हो) मिलाकर उसमें आंख धोने से विशेष लाभ उठाया जा सकता है। नेत्र-स्नान की सुविधा के लिए बाजारो मे शीशे के नेत्र-स्नान-यन्त्र भी मिलते है, जिनमें जल भरकर आखों पर रख देने से उनमे से एक बूद भी जल बाहर नही गिरने पाता और नेत्रो का स्नान [illegible] सुचारु रूप और [illegible] जितने ही [illegible]।

[illegible] और [illegible] साफ पानी [illegible] करना सर्वोत्तम [illegible] सुव्यवस्थित रीति से [illegible]।

[illegible] नेत्र-रोग अथवा किसी भी [illegible] प्राकृतिक भोजन [illegible] होती है, अन्यथा [illegible] मे होना चाहिए। [illegible], तेल, खटाई, विशेष [illegible] से रहित हो और जिसके [illegible] (विटामिन आदि) आग पर रखकर और [illegible] नष्ट न कर दिये गये हों। मौसिमी फल, [illegible], अपनी असली हालत मे, तथा धारोष्ण कच्चा [illegible] उत्तम प्रकार के प्राकृतिक भोजन हैं।

नेत्र-रोगों मे भोजन के लिये जिन खाद्य पदार्थों मे खाद्योज 'ए' होते हैं वे बड़े लाभप्रद होते है, जैसे धारोष्ण दूध, मक्खन, अण्डे की जर्दी, गोभी, शलजम, मेथी का साग, गाजर, टमाटर, सोयाबीन, हरी धनिया, और लहसन की हरी फलिया आदि। खाद्योज 'बी' 'सी' और 'डी' वाले पदार्थ भी नेत्र रोगो में लाभकारी होते है।

नेत्र रोगियो को बेर और आलूबोखारे को छोडकर सब तरह के फल और मटर, सेम, तथा लोनिया को छोड कर सब तरह की हरी तरकारिया हितकर हे।

(११) उष: पान—उष पान केवल नेत्रो के लिये ही नही, अपितु समस्त शारीरिक रोगो के लिये अमृत तुल्य है। इसका नित्य प्रयोग करने से नेत्र-विकार दूर होकर दृष्टि तीव्र हो जाती है, बुद्धि बढती है, पेट साफ रहता है, तथा अगणित अन्य रोग आपसे आप दूर हो जाते है। उष पान के सम्बन्ध में जल-चिकित्सा-खण्ड देखिये।

(१२) जल नेति—नेत्र, कान और नाक के रोगो के लिए जल-नेति की क्रिया भी लाभदायक है। इसके करने की विधि जल चिकित्सा खण्ड मे लिखी गयी है।

(१३) नीली बोतल का सूर्य तप्त का जल—नेत्र रोगो मे नीली बोतल का सूर्यतप्त जल २½ तोले की

६ खोराके रोज पीना बड़ा लाभ करता है, साथ ही नेत्रों और चेहरे पर नीला प्रकाश भी १५ मिनट तक सुबह-शाम रोज डालना चाहिये ।

(१४) कमल मधु -शुद्ध कमल-मधु का अंजन नेत्रों मे नियमित रूप से प्रतिदिन करने से नेत्रो का कोई रोग नही होता और यदि कोई रोग हुआ तो वह शीघ्र ही ठीक हो जाता है । रात को सोते वक्त आंखों को धोकर शीशे की सलाई से अंजन करना चाहिये

चिकित्सा-क्रम के कुछ उदाहरण

किसी भी रोग की चिकित्सा आरम्भ करने से पहले उसके लिये एक चिकित्सा-क्रम बना लेना चाहिए और उसी के अनुसार प्रतिदिन ठीक समय पर चिकित्सा चलानी चाहिए । दो उदाहरण नीचे दिये जाते है :—

कमजोर आंख या चश्मा छुडाने के लिये चिकित्सा क्रम

(अ) आंख की कसरतें-रोज सुबह शाम बैठकर या खड़े होकर पर किसी दीवार से सटकर मेरुदण्ड सीधी रहे, नीचे की कसरते करें :— (१) पहले बाएं तरफ जितनी दूर देखा जासके, देखे, फिर दायी तरफ । इसे जल्दी--जल्दी १२ बार करें । (२) फिर उसी प्रकार ऊपर की तरफ तथा उसके बाद नीचे की तरफ १२ बार देखे । (३) फिर आंखो को बाएं तरफ से घुमाते हुये ऊपर को लेजाये और पुनः दाये तरफ ले जाये । इसे १२ बार करके तुरत उसी को उसके विपरीत दिशा मे १२ बार दोहरावे । (४) उसके बाद बाये, नीचे, दायें तथा ऊपर की तरफ गोलाकार सम आंखों को १२ बार घुमावे तथा उतनी ही बार उसके विपरीत दिशा मे भी । (५) अंत मे १२ बार आखो को जोर से बंद करे और खोले ।

(ब) प्रातःकाल रोज १० से ३० मिनट तक सूर्य की ओर मुख करके और आखो को बद करके बैठे । ऐसा करने से पहले सिर को ठडे पानी से धोते या यदि देर तक बैठना हो तो सिर पर ठंडे पानी से भीगी तौलिया रख ले । उसके बाद आंखो को ठडे पानी के छींटे देकर धो डालें या उपर्युक्त ढग से नेत्र स्नान करले । तत्पश्चात् ५ मिनट तक पामिंग करे ।

(स) दातून- कुल्ला करने के बाद सवेरे केवल एक गिलास गरम पानी कागजी नीबू का रस मिलाकर पीवे । फिर दोपहर को खाना खाने तक कुछ न खाये । दोपहर के खाने मे चोकर समेत आटे की रोटी, उबली शाक-सब्जी, सलाद, दही । तीसरे पहर के नास्ते में मठा या फलों का रस, हरी सब्जी का रस या कच्चा धारोष्ण दूध या कोई एक फल-दूध । रात मे मीठा फल, तथा सोते वक्त एक गिलास गरम पानी मे एक कागजी नीबू का रस ।

प्रातःकाल आखो के सामने केले की हरी पत्ती रखकर उसके बीच से सूरज की ओर कुछ मिनटों तक ताकना। फिर १५ मिनट तक बिना पत्तों के, पर आखो को मूंदे हुए सूरज की ओर मुंह करके बैठे रहना। तत्पश्चात् साये में आकर पामिंग करना । अंत मे नेत्र स्नान और उदर या मेहन स्नान इस प्रयोग को सायकाल भी करें।

प्रतिदिन रात भर आंखों पर गीली मिट्टी या कपड़े की पट्टी रखे । रात को कमर की गीली पट्टी लगावें। यदि कब्ज हो तो पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाने के बाद एनिमा ले लें । दिन में प्रचुर मात्रा मे कागजी नीबू का रस मिला हुआ जल पीवे ।

सप्ताह मे एक या दो दिन का उपवास करे केवल जल पीकर ।

उपर्युक्त चिकित्सा क्रम चलाने से द्विदृष्टि (Double vision) दूर दृष्टि (long sight)निकट दृष्टि (Short Sight) वर्ण दृष्टि (Colour Sight) रतौंधी (Night-blindness) तथा आंशिक दृष्टि (Partial blindness) आदि नेत्र विकार भी दूर हो जाते हैं ।

आंखों का मांडा दूर करने के लिये चिकित्सा क्रम—

नित्य उष पान प्रातःसायं केले की हरी पत्ती के बीच से सूर्य की ओर ५ मिनट तक ताकना, फिर आंखो को बद करके बिना पत्ती के सूर्य की ओर मुख करके १५ मिनट तक बैठना, उसके बाद साये मे जाकर ५ मिनट तक पामिंग करना । अत मे नेत्र स्नान और उदर स्नान। नेत्र स्नान के बाद सुबह को उदर स्नान और शाम को मेहन स्नान लेना चाहिये । दिन मे दो बार अर्थात् सुबह और शाम आखो मे हरी बोतल के सूर्य तप्त जल की दो दो बूंद टपकाना चाहिये तथा रात को सोते वक्त माडा वाली आंख में उसी जल की दो बूंदे टपका कर और उस आख पर भीगी पट्टी विधि-पूर्वक बांध कर सोजाना चाहिये। सप्ताह में एक दिन सवेरे माडा वाली आख को खोलकर

उसपर सुहाता सुहाता भाप स्नान ५ मिनट तक लेना चाहिये उसके बाद उदर स्नान लेना चाहिए। सवेरे नाश्ता नहीं करना चाहिए। दिन के भोजन में चोकरदार रोटी, उबली तरकारी और सलाद लें। तीसरे पहर एक गिलास मट्ठा और मेवे। रात मे एक उफान का दूध और थोड़े से ताजे फल। सप्ताह में एक दिन जल पीकर उपवास और दोनों वक्त एनिमा।

निश्चित चिकित्सा-क्रम चलाने के उपरान्त इस प्रकरण मे दिये गये सभी स्वास्थ्यवर्द्धक नियमों का कड़ाई के साथ पालन करना आवश्यक है।

चिकित्सा की जो बाते समझ मे न आवे उन्हें किसी योग्य प्राकृतिक चिकित्सक से समझ लेनी चाहिये।

१—प्रात.काल हरी घास पर नगे पाव चलने और भोजन करने के बाद अपनी गीली हथेलियो को आखो पर रगड़ने से आखो की ज्योति बढ़ती है।

२—प्रातःकाल बिस्तर त्यागते ही सर्व प्रथम मुह में जितना पानी भरा जा सके उतना भरकर दूसरे जल से आखो को २० बार झपट्टा मार कर धोना चाहिए। ऐसा करने से नेत्रो की ज्योति वृद्धावस्था तक कम न होगी।

३—चादनी रात मे चाद की तरफ कुछ देर तक देखने से भी दृष्टि ठीक रहती है।

४—'शर्यातिश्च सुकन्याच च्यवनम् शक्रमाश्विनो। भोजनान्ते स्मरे नित्यं चक्षुस्तस्य नहीयते।' यह नेत्र-रक्षक मन्त्र है। इसको भोजन के बाद अर्थ समझते हुये पढ़ने से सकल नेत्र रोग दूर हो जाते है।

५—पढते-लिखते समय रोशनी बायी ओर से आनी चाहिये। पुस्तक आंख से १२–१४ इञ्च के अन्तर पर रहना चाहिये। पुस्तक जितनी ही नजदीक रख कर पढी जायगी, आखो पर उतना ही अधिक जोर पड़ेगा। पढते समय झुकना या हिलना आखो के लिये अत्यन्त हानिकारक है। पढते समय बार-बार पलकें मारते रहना नितान्त आवश्यक है। लिखने-पढने या सीने-पिरोने के समम यदि सामने की कोई वस्तु देखनी हो तो पहले एक पल के लिये आखे वन्द करले फिर उस वस्तु को देखे।

६—जब कोई वस्तु ऊपर नीचे या दाये-बाये हो और उसे देखना हो तो वैसे ही देखो अर्थात् दृष्टि को बांकी-तिरछी या ऊंची-नीची करके मत देखो। अपितु जब ऊपर देखना हो तो ठुड्डी को ऊपर उठाकर देखो। दाहिने देखना हो तो ठुड्डी को दाहिनी ओर घुमाकर देखना चाहिए।

७—रात्रि को जल्दी सो जाना चाहिये और गाढी एव पूरी नींद लेना चाहिये। सोते समय नेत्रों को हथेलियो से ढंक ले और किसी नीली वस्तु का ध्यान करते-करते सो जायें। प्रातःकाल उठते ही ५ मिनट तक इसी प्रकार पुन. ध्यान करें और तत्पश्चात् आंखें खोलदें। इस प्रकार का ध्यान करने के लिये कोई अन्य प्रिय वस्तु भी चुनी जा सकती है।

८—कमजोर दृष्टि वालों के लिये दिन मे दो बार ५-६ मिनट तक केवल आख मूदकर बैठे रहना लाभदायक होता है।

९—यदि नित्य प्राय काल आखे वन्द किये हुये ८-१० मिनट तक सूर्य की ओर मुह करके बैठा जाय तो नेत्र ज्योति कभी कम न हो। आखें खोलकर सूर्य की ओर देखते हुये व्यायाम, खराब आंख वालो को नहीं करना चाहिये। सूर्य की ओर टकटकी लगाकर देखने से कभी-कभी सूर्यान्धता (Sun blindness) हो जाती है। स्वस्थ नेत्र वाले या जो पहले कुछ समय तक नेत्र वन्द किये हुये सूर्य की ओर ताकने का अभ्यास किये हो जिससे चौध लगने का उसे डर न हो, ऐसे व्यक्ति नीचे लिखा त्राटक-व्यायाम लाभ के साथ कर सकते हैं—

सूर्य के सामने बैठ जाये। नेत्रो से भूमि की ओर देखे और इस प्रकार नेत्रो को ऊपर करते जाये कि पलके न उठे, केवल ठुड्डी ऊची होती जावे और सिर पीछे को झुकता जावे। ठुड्डी इतनी उठनी चाहिये कि नेत्र सूर्य के निकट एक अंगुल नीचे का आकाश देख सके। पलक मारते रहे। अब घडी के पेण्डुलम की तरह धीरे-धीरे हिलना आरम्भ करे। बीच मे हर दो चार मिनट बाद १-२ मिनट के लिये नेत्र वन्द करलें। इस सूर्य-व्यायाम के बाद नेत्रो के सामने धुंधलापन नही आना चाहिये। यदि ऐसा होता है तो व्यायाम मे कही गलती हुई है ऐसा समझना चाहिए। इस धुंधलापन को दूर

करने के लिये नेत्र स्नान और 'पामिंग' करना चाहिये।

१०—सूर्य प्रकाश मे टहले, खेले और दृष्टि दोलन (Songswing)) करे।

११—प्रति दिन दोनो समय भोजन के बाद हाथ-मुंह धोते समय कम से कम ६ बार आंखो पर जल का झपट्टा मारे।

१२—विचित्र वा अनजाने पदार्थो की तरफ (जैसे अजायबघर की चीजे) अधिक देरतक न देखे तथा अरुचिकारक एवं अप्रिय साहित्य न पढे।

१३—कभी-कभी शुद्ध सरसो का तेल कानों मे डालना नेत्रो के लिये हितकर है।

१४—केवल जल पीकर सप्ताह मे एक दिन उपवास जरूर करे और कब्ज हो तो उस दिन एनिमा लेकर पेट साफ कर डाले।

१५—मिर्च, मसाले आदि उत्तेजक पदार्थो का सेवन न करे।

नाक अथवा श्वास यन्त्र के रोग

सर्दी—जुकाम

कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति मिले जिसे कभी सर्दी न हुई हो। बहुत लोगो को जाड़ो मे सर्दी अवश्य हो जाया करती है। सर्दी, जिसको नाक बहना या जुकाम भी कहते है, बहुत व्यापक, कष्टदायक, एव असुविधाजनक रोगो मे से एक रोग है, जिसको अगर समझदारी के साथ तत्काल उपचार करके दूर न कर दिया जाय तो वही निमोनिया, ब्रोंकाइटिस, इन्फ्लुएञ्जा, पीनस तथा यक्ष्मा जैसे भयानक और प्राणलेवा रोगों का जन्मदाता बन जाता है।

सर्दी, शारीरिक जीवनी-शक्ति के उस प्रयत्न का परिणाम है जो वह आहार-विहार की बुरी आदतो, व्यायाम और शुद्ध वायु के अभाव, तथा रहन-सहन की अन्य अस्वास्थ्यकर कुटेवो के कारण शरीर के तन्तुओं मे बराबर एकत्र होते रहने वाले मल को बाहर निकाल फेंकने के लिये करती हैं।

सर्दी आरम्भ होते ही यदि रोगी सबल है तो उसे हल्की धूप में थोड़ी दूर टहलकर शरीर मे पसीना लेना चाहिए। फिर तुरन्त एक मिनट तक स्पंज-स्नान लेकर बदनको गरम कर लेना चाहिए। परन्तु जो रोगी दु[illegible] उसे बजाय टहलने के आराम से बिस्तर पर लेट[illegible] चाहिए और आध-आध घंटा पर एक एक गिलास पानी नीबू का रस डालकर या सादा ही पीते चाहिए। ऐसा करने से नाक खुलकर बहने लगेगी सर्दी का जोर बहुत कुछ कम हो जायगा।

सर्दी मे उपवास बडा गुण करता है। इसलि[illegible] या दो दिन पूर्ण उपवास, केवल नीबू का रस मिला जल लेकर करना चाहिए, या सिर्फ सतरे के र[illegible] रहना चाहिए और इन दिनो रोज शाम को कुनकुने का एनिमा लेकर आंतो की सफाई कर डालना चा[illegible] तत्पश्चात् सात दिनो तक सिर्फ रसदार ताजे फ[illegible] रहकर पूर्ण विश्राम करना चाहिए। इस उपचार से बिलकुल आराम हो जायगी और उसका रूप भय[illegible] होने पावेगा। सर्दी का रूप भयङ्कर तभी होता उसे दवा आदि के जरिए दबाने की कोशिश की ज[illegible] और इस तरह से शरीर स्थित मल को जो सर्दी [illegible] कारण होता है बाहर निकल जाने से रोक जाता है।

पुराने और बिगड़े हुए जुकाम की चिकित्सा—

पहले एक या दो दिनों का उपवास नीबू के र[illegible] जल पर करे। फिर ७ से १४ दिनो तक रसदार [illegible] पर रहे। एनिमा का प्रयोग एक वक्त या दोन[illegible] कब्ज रहने तक करे। रोज प्रातःकाल उदर [illegible] रोज हल्की कसरत, साथ ही गहरी सास भी [illegible] २४ घंटो मे एक बार पैरो का गरम-नहान ले[illegible] विश्राम, साथ-साथ १-१ घंटे पर प्रचुर गरम जल[illegible] ज्वर हो तो १ या १½ घंटा तक छाती और कंधो [illegible] लगावे जिसके बाद ही पैरो का गरम नहान ले। और हवादार जगह मे वास हो। नाक मे गरम भा[illegible] तथा नमक मिले गुनगुने पानी में नाक डुबो[illegible] सू घना भी लाभ करता है। रोज १५-२० मिनट त[illegible] शरीर पर हल्की धूप ले। 'एप्सम् साल्ट बाथ' [illegible] दो बार लगभग एक मास तक लेना चाहिये। [illegible] रग की बोतल का सूर्य तप्त जल दो भाग, [illegible] रग की बोतल का एक भाग और हरे रग [illegible]

जल एक भाग मिलाकर दो-दो तोले की खुराक से दिन में ६ खुराक पीना, हरी बोतल के सूर्यतप्त जल में रुई की बत्ती भिगोकर उसे नाक के नथुनों में रखना, आधा नारंगी रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल तथा आधा हरे रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल मिलाकर उसी से नास लेना, एव नाक पर हरे रङ्ग का प्रकाश ७ से १० मिनट तक रोज डालना पुराने से पुराने जुकाम को भी दूर कर देता है।

सर्दी मे कभी-कभी गले में खराश हो जाती है। उसके लिये गुनगुने पानी मे थोड़ा सा कागजी नीबू का रस और जरा सा नमक मिलाकर दिन मे दो तीन बार गरारा करना चाहिये, या गर्दन की उष्णकर भीगे कपडे की पट्टी १-२ घटे तक आवश्यकतानुसार बाधनी चाहिये।

सर्दी लगकर नाक बंद हो जाने पर साम लेने मे कष्ट होने पर अथवा नाक मे जलन होने पर सिर पर निचोडा हुआ भीगा कपडा रखकर चेहरे पर १५-२० मिनट तक भाप-नहान देना चाहिये, तथा श्वास के साथ भाप को भीतर खीचना चाहिये, उसके बाद कधो और छाती पर भीगे कपड़े की पट्टी डेढ-दो घटे तक बाधनी चाहिये। पावो का गरम स्नान और मेहन स्नान भी लाभ करता है।

सीने मे कफ की रुकावट मालूम होने पर गरम पानी में तौलिया भिगो भिगोकर दिन मे दो बार सेकना चाहिये। तत्पश्चात् सीने की उष्णकर कपडे की गीली पट्टी का प्रयोग करना चाहिये, या रात को सोने से पहले कडवे तेल मे थोडा कपूर डालकर और गर्म करके उसे सीने पर मलकर ऊपर से एक मोटा कपड़ा बाध देना चाहिये।

ब्रान्काइटिस

जीर्ण जुकाम को ब्रान्काइटिस कहते है। हिन्दी मे कण्ठ-नलिका की प्रशाखाओ मे प्रदाह या श्वास-नली प्रदाह कहते हैं। इसमे स्वर-नली की झिल्ली मे विजातीय द्रव्य की उपस्थिति के कारण जलन होने लगती है। इस रोग का आरम्भ साधारण सर्दी-ज्वर से होता है। वेदना-युक्त सूखी खासी, स्वरभङ्ग, श्वास-कष्ट, छाती व गले मे दर्द, गाढा-गाढा कफ निकलना, तथा गला घर-घर करना आदि इस रोग के अन्य लक्षण है। ब्रान्काइटिस के रोगी को कभी-कभी तेज ज्वर भी आता है जो १०४ तक हो जाता है। ब्रान्काइटिस दो प्रकार की होती है—एक नयी और दूसरी पुरानी। पुरानी ब्रान्काइटिस मे नये ब्रान्काइटिस की भाति गर्मी एव कफ आदि के लक्षण तो विद्यमान होते है, किन्तु ज्वर और वेदना उतनी नही होती। इसमे विशेषतया प्रातःकाल खासी अधिक उठती है जिसके जरिये फेनयुक्त कफ अधिक निकलता है। नयी ब्रान्काइटिस जाड़ो मे अधिक और गर्मियो मे कम जोर करती है, परन्तु जब वह पुरानी पड़ जाती है तब खासी गर्मी जाड़े-दोनो मे एकसी रहने लगती है।

नयी ब्रान्काइटिस दो-एक दिनो के उपवास, फिर रसाहार, तत्पश्चात् फलाहार, साथ मे दिन मे दो बार एनिमा, तथा छाती पर उष्णकर गीली पट्टी के प्रयोग से अवश्य चली जाती है। गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल आधी छटाक की खुराक से ६ खुराकें दिन मे पिलाने और उसी जल से भीगी कपडे की उष्णकर पट्टी गले पर लपेटने मे नयी ब्रान्काइटिस बहुत जल्द आराम होती है।

पुरानी ब्रान्काइटिस कभी-कभी बड़ी कठिनाई से जाती है, पर यह कठिनाई उन्ही रोगियो मे पड़ती है जो बहुत अनियमित जीवन-यापन के आदी होते हैं या बहुत बूढे होते है जो अपना जीवन-क्रम किसी प्रकार भी बदलने को तय्यार नही होते। इस रोग के साथ प्रायः इम्फाइ-सेमा रोग भी होता है जिसमे फेफड़ो के वायु कोष फैल जाते है जिससे वे कमजोर और सुस्त हो जाते है।

पुरानी ब्रान्काइटिस को दूर करने के लिए क्षारधर्मी आहार तथा उचित व्यायाम की बड़ी आवश्यकता होती है। सर्व प्रथम रोगी को २-३ या अधिक दिनो तक फलों के रस पर रहना चाहिये और कब्ज टूटने तक एनिमा लेना चाहिए। तत्पश्चात् सादे भोजन पर रहते हुए निम्नलिखित चिकित्सा-क्रम चलाना चाहिये। मौसिमी फल, शाक सब्जी (आलू, केला, कटहल छोड़कर), सूखे मेवे, धारोष्ण दूध, चोकर समेत आटे की रोटी, छिलकेदार दाल, मठा, तथा सलाद आदि क्षारधर्मी और सादे खाद्य पदार्थ कहलाते है। शाक-तरकारियो को न अधिक भूनना चाहिए और न उनमे अधिक मिर्च मसाले ही मिलाने चाहिए। भोजन के साथ प्रतिदिन हरी एव कच्ची शाक-सब्जियो को काटकर और उसमे कागजी नीबू का रस या मीठा दही मिलाकर सलाद के रूप मे लेना चाहिए।

करने के लिये नेत्र स्नान और 'पामिंग' करना चाहिये ।

१०—सूर्य प्रकाश मे टहले, खेले और दृष्टि दोलन (Songswing)) करें ।

११—प्रति दिन दोनो समय भोजन के बाद हाथ-मुंह धोते समय कम से कम ६ बार आखो पर जल का झपट्टा मारे ।

१२—विचित्र वा अनजाने पदार्थो की तरफ (जैसे अजायबघर की चीजे) अधिक देर तक न देखे तथा अरुचिकारक एवं अप्रिय साहित्य न पढ़ें ।

१३—कभी-कभी शुद्ध सरसो का तेल कानों मे डालना नेत्रो के लिये हितकर है ।

१४—केवल जल पीकर सप्ताह मे एक दिन उपवास जरूर करे और कब्ज हो तो उस दिन एनिमा लेकर पेट साफ कर डाले ।

१५—मिर्च, मसाले आदि उत्तेजक पदार्थो का सेवन न करे ।

नाक अथवा श्वास यन्त्र के रोग

सर्दी—जुकाम

कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति मिले जिसे कभी सर्दी न हुई हो । बहुत लोगो को जाड़ो मे सर्दी अवश्य हो जाया करती है । सर्दी, जिसको नाक बहना या जुकाम भी कहते है, बहुत व्यापक, कष्टदायक, एव असुविधाजनक रोगो मे से एक रोग है, जिसको अगर समझदारी के साथ तत्काल उपचार करके दूर न कर दिया जाय तो वही निमोनिया, ब्रोकाइटिस, इन्फलोएञ्जा, पीनस तथा यक्ष्मा जैसे भयानक और प्राणलेवा रोगो का जन्मदाता बन जाता है ।

सर्दी, शारीरिक जीवनी-शक्ति के उस प्रयत्न का परिणाम है जो वह आहार-विहार की बुरी आदतो, व्यायाम और शुद्ध वायु के अभाव, तथा रहन-सहन की अन्य अस्वास्थ्यकर कुटेवो के कारण शरीर के तन्तुओ में बराबर एकत्र होते रहने वाले मल को बाहर निकाल फेंकने के लिये करती है ।

सर्दी आरम्भ होते ही यदि रोगी सबल है तो उसे हल्की धूप में थोड़ी दूर टहलकर शरीर मे पसीना लेना चाहिए। फिर तुरन्त एक मिनट तक स्पंज-स्नान लेकर बदनको गरम कर लेना चाहिए । परन्तु जो रोगी दुर्ब[illegible] उसे बजाय टहलने के आराम से बिस्तर पर लेट [illegible] चाहिए और आध-आध घंटा पर एक एक गिलास [illegible] पानी नीबू का रस डालकर या सादा ही पीते [illegible] चाहिए । ऐसा करने से नाक खुलकर बहने लगेगी [illegible] सर्दी का जोर बहुत कुछ कम हो जायगा ।

सर्दी में उपवास बडा गुण करता है । इसलिए [illegible] या दो दिन पूर्ण उपवास, केवल नीबू का रस मिला [illegible] जल लेकर करना चाहिए, या सिर्फ सतरे के रस [illegible] रहना चाहिए और इन दिनो रोज शाम को कुनकुने [illegible] का एनिमा लेकर आतो की सफाई कर डालना चाहि[illegible] तत्पश्चात् सात दिनो तक सिर्फ रसदार ताजे फलो [illegible] रहकर पूर्ण विश्राम करना चाहिए । इस उपचार से [illegible] बिलकुल आराम हो जायगी और उसका रुप भयङ्कर [illegible] होने पावेगा । सर्दी का रूप भयङ्कर तभी होता है [illegible] उसे दवा आदि के जरिए दबाने की कोशिश की जाती [illegible] और इस तरह से शरीर स्थित मल को जो सर्दी का [illegible] कारण होता है बाहर निकल जाने से रोक दि[illegible] जाता है ।

पुराने और बिगड़े हुए जुकाम की चिकित्सा—

पहले एक या दो दिनों का उपवास नीबू के रस मि[illegible] जल पर करे । फिर ७ से १४ दिनों तक रसदार फलो [illegible] पर रहे । एनिमा का प्रयोग एक वक्त या दोनो वक्त [illegible] कब्ज रहने तक करे । रोज प्रात काल उदर स्नान [illegible] रोज हल्की कसरत, साथ ही गहरी सास की भी कसरत [illegible] २४ घटो मे एक बार पैरो का गरम-नहान ले । [illegible] विश्राम, साथ-साथ १-१ घटे पर प्रचुर गरम जल-पान [illegible] ज्वर हो तो १ या १½ घटा तक छाती और कधों की पट्टी [illegible] लगावे जिसके बाद ही पैरो का गरम नहान ले । [illegible] और हवादार जगह मे वास हो । नाक मे गरम भाप देना [illegible] तथा नमक मिले गुनगुने पानी मे नाक डुबाकर [illegible] सूघना भी लाभ करता है । रोज १५-२० मिनट तक [illegible] शरीर पर हल्की धूप ले । 'एप्सम् साल्ट बाथ' सप्ताह में [illegible] दो बार लगभग एक मास तक लेना चाहिये । [illegible] रग की बोतल का सूर्य तप्त जल दो भाग, [illegible] रंग की बोतल का एक भाग और हरे रग की [illegible]

जल एक भाग मिलाकर ढाई तोले की खुराक से दिन मे ६ खुराक पीना, हरी बोतल के सूर्यतप्त जल मे रुई की बत्ती भिगोकर उसे नाक के पुटों मे रखना, आधा नारंगी रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल तथा आधा हरे रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल मिलाकर उसी से नास लेना, एव नाक पर हरे रङ्ग का प्रकाश ८ से १० मिनट तक रोज डालना पुराने से पुराने जुकाम को भी दूर कर देता है।

सर्दी मे कभी-कभी गले मे खराश हो जाती है। इसके लिये गुनगुने पानी मे थोड़ा सा कागजी नीबू का रस और जरा सा नमक मिलाकर दिन मे दो तीन बार गरारा करना चाहिये, या गर्दन की उष्णकर भीगे कपड़े की पट्टी १-२ घंटे तक आवश्यकतानुसार बांधनी चाहिये।

सर्दी लगकर नाक बंद हो जाने पर सांस लेने मे कष्ट होने पर अथवा नाक में जलन होने पर सिर पर निचोड़ा हुआ भीगा कपडा रखकर चेहरे पर १५-२० मिनट तक भाप-नहान देना चाहिये, तथा श्वास के साथ भाप को भीतर खीचना चाहिये, उसके बाद कंधो और छाती पर भीगे कपडे की पट्टी डेढ-दो घंटे तक बांधनी चाहिये। पांवो का गरम स्नान और मेहन स्नान भी लाभ करता है।

सीने मे कफ की रुकावट मालूम होने पर गरम पानी में तौलिया भिगो भिगोकर दिन में दो बार सेंकना चाहिये। तत्पश्चात् सीने की उष्णकर कपड़े की गीली पट्टी का प्रयोग करना चाहिये, या रात को सोने से पहले कडवे तेल मे थोडा कपूर डालकर और गर्म करके उसे सीने पर मलकर ऊपर से एक मोटा कपड़ा बांध देना चाहिये।

ब्रान्काइटिस

जीर्ण जुकाम को ब्रान्काइटिस कहते है। हिन्दी मे कण्ठ-नलिका की प्रशाखाओ मे प्रदाह या श्वास-नली प्रदाह कहते हैं। इसमे स्वर-नली की झिल्ली मे विजातीय द्रव्य की उपस्थिति के कारण जलन होने लगती है। इस रोग का आरम्भ साधारण सर्दी-ज्वर से होता है। वेदना-युक्त सूखी खासी, स्वरभङ्ग, श्वास-कष्ट, छाती व गले मे दर्द, गाढा-गाढा कफ निकलना, तथा गला घर-घर करना आदि इस रोग के अन्य लक्षण है। ब्रान्काइटिस के रोगी को कभी-कभी तेज ज्वर भी आता है जो १०४ तक हो जाता है। ब्रान्काइटिस दो प्रकार की होती है—एक नयी और दूसरी पुरानी। पुरानी ब्रान्काइटिस मे नये ब्रान्काइटिस की भांति खासी एव कफ आदि के लक्षण तो विद्यमान होते है, किन्तु ज्वर और वेदना उतनी नही होती। इसमे विशेषतया प्रात काल खासी अधिक उठती है जिसके जरिये फेनयुक्त कफ अधिक निकलता है। नयी ब्रान्काइटिस जाड़ो मे अधिक और गर्मियो मे कम जोर करती है, परन्तु जब वह पुरानी पड जाती है तब खासी गर्मी जाड़े दोनो मे एकसी रहने लगती है।

नयी ब्रान्काइटिस दो-एक दिनो के उपवास, फिर रसाहार, तत्पश्चात् फलाहार, साथ मे दिन मे दो बार एनिमा, तथा छाती पर उष्णकर गीली पट्टी के प्रयोग से आराम हो जाती है। गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल आधी छटाक की खुराक से ६ खुराकें दिन मे पिलाने और इसी जल मे भीगी कपडे की उष्णकर पट्टी गले पर लपेटने से नयी ब्रान्काइटिस बहुत जल्द आराम होती है।

पुरानी ब्रान्काइटिस कभी-कभी बड़ी कठिनाई से जाती है, पर यह कठिनाई उन्हीं रोगियो मे पड़ती है जो बहुत अनियमित जीवन-यापन के आदी होते हैं या बहुत बूढ़े होते है जो अपना जीवन-क्रम किसी प्रकार भी बदलने को तय्यार नही होते। इस रोग के साथ प्राय. इम्फाइ-सेमा रोग भी होता है जिसमे फेफड़ो के वायु कोष फैल जाते है जिससे वे कमजोर और सुस्त हो जाते है।

पुरानी ब्रान्काइटिस को दूर करने के लिए क्षारधर्मी आहार तथा उचित व्यायाम की बड़ी आवश्यकता होती है। सर्व प्रथम रोगी को २-३ या अधिक दिनो तक फलों के रस पर रहना चाहिये और कब्ज टूटने तक एनिमा लेना चाहिए। तत्पश्चात् सादे भोजन पर रहते हुए निम्नलिखित चिकित्सा-क्रम चलाना चाहिये। मौसिमी फल, शाक सब्जी (आलू, केला, कटहल छोड़कर), सूखे मेवे, धारोष्ण दूध, चोकर समेत आटे की रोटी, छिल्केदार दाल, मठा, तथा सलाद आदि क्षारधर्मी और सादे खाद्य पदार्थ कहलाते है। शाक-तरकारियो को न अधिक भूनना चाहिए और न उनमे अधिक मिर्च मसाले ही मिलाने चाहिए। भोजन के साथ प्रतिदिन हरी एव कच्ची शाक-सब्जियो को काटकर और उसमे कागजी नीबू का रस या मीठा दही मिलाकर सलाद के रूप मे लेना चाहिए।

नित्य कोई हल्का शारीरिक व्यायाम, जैसे स्वच्छ वायु मे प्रात. काल टहलना आदि तथा गहरी सास लेने की कसरते अवश्य करनी चाहिए। पर शारीरिक व्यायाम और श्वास की कसरते एक साथ नही करनी चाहिए। अच्छा यह होगा कि एक समय शारीरिक व्यायाम किया जाय और दूसरे समय श्वास की कसरते।

पुरानी ब्रान्काइटिस की चिकित्सा—गर्म पानी रोगी को पिलाकर तथा सिर पर ठंडे पानी से भीगी एक तौलिया रखकर उसे पैरो का गरम-नहान दो। उसके बाद उदर-स्नान या गीली चादर की लपेट दो। तत्पश्चात गरमाई लाने के लिए कम्बल ओढ़कर पूर्ण विश्राम। यह प्रयोग दिन मे दो बार होना चाहिए। रोग की बढी हुई दशा में छाती पर वाष्प-स्नान देकर उसपर और दोनों कधों पर कपड़े की गीली उष्णकर पट्टी दिन मे दो बार तीन-तीन घटे के लिए लगाना भी जरूरी होता है। साथ में सूखी खासी होने पर या कफ जकड़ने की हालत मे दिन मे कई बार गरम पानी पीना चाहिए और गरम पानी की भाप को नाक और मुंह द्वारा खीचना चाहिए। नीबू-रस मिला जल अधिकाधिक पीना चाहिए और खुली हवा में रहना और सोना चाहिए। सप्ताह मे दो बार एप्सम्-साल्ट-बाथ लेना भी पुराने ब्रान्काइटिस मे बडा लाभ करता है।

नारङ्गी रङ्ग की बोतल के सूर्य तप्त जल की, आधी-आधी छटाक की प्रतिदिन ४ खुराकें इस रोग मे राम-बाण सिद्ध हुई हैं।

साईनोसाइटिस

इस रोग मे नाक की जड के पास की हड्डियो के ढाचे मे जो छिद्र होते है और जो साइनस कहलाते है, उनमे से किसी एक या अधिक छिद्रो में सूजन उत्पन्न हो जाती है जिससे कालान्तर में बडा कष्ट होता है अर्थात् आवाज भारी हो जाती है, स्वाद और गन्ध को ग्रहण करने की शक्ति मे फर्क पड जाता है, नाक के पिछले भाग में भारीपन तथा थोडे तनाव की अनुभूति होती है, सिर मे दर्द रहने लगता है, सर्दी और जुकाम जल्द-जल्द होने लगते है, ज्वर हो आता है तथा सिर की पीडा असह्य हो उठती है।

इस रोग का कारण भी अन्य रोगो के कारणो की भाति ही विजातीय द्रव्य या मल का नासिका की अस्थियो के ढाचे के छिद्रो मे एकत्र होना है।

यह रोग धीरे-धीरे बढकर पुराना पड़ जाता और बड़ी कठिनाई से जाता है। क्योकि इस रोग छुटकारा पाने के लिये नाक के आक्रान्त स्थल की नही अपितु समूचे शरीर एवं उसके रक्त की शुद्धि करनी पड़ती है।

इस रोग के रोगी को अपना इलाज एक या दो दिन के उपवास से आरम्भ करना चाहिये और यदि कब्ज हो तो कब्ज टूटने तक एनिमा लेना चाहिए। तत्पश्चात ७ से १४ दिनो तक उबली हुई शाक-सब्जी, मौसिमी फल, शहद तथा सूखे मेवो पर रहना चाहिए। गहरी सास लेने तथा गर्दन की कसरते प्रतिदिन करनी चाहिये। पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी प्रतिदिन १ घटा तक लगानी चाहिये। दोनो वक्त उदर स्नान ७ से १० मिनट तक करना चाहिये। प्रतिदिन दो बार चेहरे पर १ मिनट तक भाप देना चाहिये। उसके बाद उसे भीगी और निचोडी तौलिया से पोछना चाहिये। रात को सोते समय पावो को १५ मिनट तक गरम पानी में रखना चाहिये। सिर पर ठण्डे पानी से भीगी तौलिया रख कर गरम पानी मे से पैरो को निकालने के तुरत बाद उन्हे एक मिनट तक ठण्डे पानी मे डालना चाहिये। सिर को प्रतिदिन या दूसरे, तीसरे दिन बेसन, रीठा आदि से मलकर साफ कर डालना चाहिये। नाक और मस्तक को गरम और ठण्डी सेक बारी-बारी से १५-२० मिनट तक दिन मे दो बार देना चाहिये।

नकसीर (Epistaxis)

नकसीर फूटना या नाक से रक्तस्राव होना स्वत कोई रोग नही है अपितु रोग का लक्षण है। नकसीर फूटने के कई कारण हो सकते है जैसे नाकडा-रोग के कारण, नाक के पिछले भाग की एक ग्रन्थि (एडीनायडस) मे सूजन हो जाने के कारण, प्लेथोरा अर्थात शरीर के रक्त कोषो मे रक्ताधिक्य के कारण, हैमोफीलिया या परपुरा के कारण जिसमे त्वचा के नीचे रक्त पड़ पडता है और बहने लगता है, रक्तचाप के बढ जाने के कारण तथा स्कर्वी रोग मे मसूड़ो के फूट जाने के कारण।

यदि नकसीर फूटने पर रक्त [illegible] मे बन्द हो जाय या [illegible] के बन्द होने की [illegible] चिकित्सा करनी चाहिये। [illegible] होने लगे और परेशानी [illegible] किसी ठण्डी जगह पर आराम से [illegible] के सहारे इस तरह लिटाना चाहिए कि [illegible] ओर झुकी रहे। उसके बाद गर्दन के [illegible] नीचे ठण्डे पानी की पट्टी या [illegible] चाहिये और पावो मे सूखी गरम [illegible] या ५,६ मिनट तक पैरो का गरम स्नान देना चाहिये। यदि इससे रक्त का वहना बन्द न हो तो [illegible], गर्दन तथा ऊपरी मेरुदण्ड पर वर्फ जल की पट्टी [illegible] चाहिये।

दोनों हाथो मे वर्फ के टुकडे रखने या [illegible] जल से डुवोये रखने या दोनो को वर्फ जल मे रखने से भी रक्त का वहना बन्द हो जाता है।

चौथी अगुली और अंगूठे के बीच मे नाक को पकड कर दवाने से भी रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

बार-बार नकसीर फूटती रहे तो शाम सुबह उदर-स्नान करने तथा रोज रात भर के लिए पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखने से कुछ ही दिनो मे इस रोग से सदा के लिए छुटकारा पाया जा सकता है।

सिर पर चोट लगने से यदि नाक से रक्तस्राव होने लगे तो उसे रोकने का प्रयत्न नही करना चाहिए।

पीली बोतल का सूर्य तप्त जल दो भाग, गहरी नीली बोतल का वैसा ही जल १ भाग तथा हरी बोतल का वैसा ही जल १ भाग मिलाकर आधी-आधी छटाक दिन मे ४ से ६ बार पीने तथा हरी बोतल के सूर्य तप्त जल में कपडे की वत्ती को तर करके उसे नाक के नथुनो मे रखने या उस जल का केवल नस्य लेने से भी रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

नाकड़ा

नाक की [illegible] जब उसमे प्रदाह उत्पन्न [illegible] पोलिपस रोग होना [illegible] भी—कभी रक्त [illegible] ती है।

[illegible] दिनो का [illegible] करने के बाद कुछ दिनों [illegible] पर रहने से ही नया नाकडा अच्छा हो जाता है। परन्तु पुराना नाकडा यदि अच्छा करना हो तो [illegible] पेट को साफ करने के लिये [illegible] एनिमा लेना चाहिए। दोनो वक्त उदर स्नान भी करना चाहिए। [illegible] प्रात काल जलनेति के [illegible] दिनो तक करना चाहिए।

नाक में फुड़िया

[illegible] ४, ५ मिनट तक भाप देने, उसके वाद [illegible] कपडे या मिट्टी की [illegible] लगाने से नाक की फुड़िया अच्छी हो जाती है। [illegible] फुड़िया मे केवल सुगन्धित फूल [illegible] लाभ होता देखा गया है।

[illegible] अधिक कष्टदायक फुड़िया का इलाज फोडे [illegible] तरह करना चाहिए।

कान के रोग

रक्त मे गर्मी बढ जाने के कारण कर्ण—रोग उत्पन्न होते है। अतः किसी प्रकार का कर्ण रोग होने पर मूलत रक्त को शुद्ध करने का उपाय करना चाहिए। इसके लिए नीचे का उपचार—क्रम ठीक रहेगा:—

सर्व प्रथम दो—एक रोज तक नीबू का रस मिला जल पीकर उपवास करना चाहिए। तत्पश्चात दो हफ्तो तक रसाहार, फलाहार, या फल और धारोष्ण दूध पर चाहिए, एवं कब्ज टूटने तक वरावर एनिमा लेना चाहिए धूप-स्नान और एप्सम साल्ट वाथ भी सप्ताह में दो बार ले आवश्यक है। शुष्क घर्षण-स्नान, श्वास की कसरतें, हल्का व्यायाम या वायु सेवन प्रतिदिन करना चाहिए। तरकारिया और फल अधिक खाने चाहिए। उदर—स्नान दिन मे दो वार लेना चाहिए।

उपर्युक्त के अतिरिक्त सप्ताह मे दो—तीन दिन कान और उसके आस पास एव गर्दन पर भाप देकर उसके वाद उदर—स्नान लेना चाहिए। कान मे एक बार गरम पानी की पिचकारी देकर धोना चाहिए। उसके तुरत वाद ठडे पानी की पिचकारी से धोना चाहिए। तत्पश्चात आक्रान्त स्थान पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाना चाहिए।

नित्य कोई हलका शारीरिक व्यायाम, जैसे स्वच्छ वायु मे प्रात काल टहलना आदि तथा गहरी सास लेने की कसरते अवश्य करनी चाहिए। पर शारीरिक व्यायाम और श्वास की कसरते एक साथ नही करनी चाहिए। अच्छा यह होगा कि एक समय शारीरिक व्यायाम किया जाय और दूसरे समय श्वास की कसरते।

पुरानी ब्रान्काइटिस की चिकित्सा—गर्म पानी रोगी को पिलाकर तथा सिर पर ठडे पानी से भीगी एक तौलिया रखकर उसे पैरो का गरम-नहान दो। उसके बाद उदर-स्नान या गीली चादर की लपेट दो। तत्पश्चात गरमाई लाने के लिए कम्बल ओढकर पूर्ण विश्राम। यह प्रयोग दिन मे दो बार होना चाहिए। रोग की बढी हुई दशा में छाती पर वाष्प-स्नान देकर उसपर और दोनो कधो पर कपड़े की गीली उष्णकर पट्टी दिन मे दो बार तीन-तीन घटे के लिए लगाना भी जरूरी होता है। साथ मे सूखी खांसी होने पर या कफ जकड़ने की हालत मे दिन मे कई बार गरम पानी पीना चाहिए और गरम पानी की भाप को नाक और मुंह द्वारा खीचना चाहिए। नीबू-रस मिला जल अधिकाधिक पीना चाहिए और खुली हवा में रहना और सोना चाहिए। सप्ताह मे दो बार एप्सम्-साल्ट-बाथ लेना भी पुराने ब्रान्काइटिस मे बड़ा लाभ करता है।

नारङ्गी रङ्ग की बोतल के सूर्य तप्त जल की, आधी-आधी छटाक की प्रतिदिन ४ खुराकें इस रोग मे राम-बाण सिद्ध हुई है।

साईनोसाइटिस

इस रोग मे नाक की जड के पास की हड्डियो के ढाचे मे जो छिद्र होते हैं और जो साइनस कहलाते है, उनमे से किसी एक या अधिक छिद्रो में सूजन उत्पन्न हो जाती है जिससे कालान्तर में बड़ा कष्ट होता है अर्थात् आवाज भारी हो जाती है, स्वाद और गन्ध को ग्रहण करने की शक्ति मे फर्क पड जाता है, नाक के पिछले भाग मे भारीपन तथा थोडे तनाव की अनुभूति होती है, सिर मे दर्द रहने लगता है, सर्दी और जुकाम जल्द-जल्द होने लगते है, ज्वर हो आता है तथा सिर की पीड़ा असह्य हो उठती है।

इस रोग का कारण भी अन्य रोगो के कारणो की भाति ही विजातीय द्रव्य या मल का नासिका की अस्थियो के ढाचे के छिद्रों मे एकत्र होना है।

यह रोग धीरे-धीरे बढ़कर पुराना पड जाता है और बडी कठिनाई से जाता है। क्योकि इस रोग से छुटकारा पाने के लिये नाक के आक्रान्त स्थल की ही नही अपितु समूचे शरीर एवं उसके रक्त की शुद्धि करनी पड़ती है।

इस रोग के रोगी को अपना इलाज एक या दो दिनों के उपवास से आरम्भ करना चाहिये और यदि कब्ज हो तो कब्ज टूटने तक एनिमा लेना चाहिए। तत्पश्चात् ७ से १४ दिनो तक उबली हुई शाक-सब्जी, मौसिमी फल, शहद तथा सूखे मेवो पर रहना चाहिए। गहरी सास लेने तथा गरदन की कसरते प्रतिदिन करनी चाहिये। पेडू पर मिट्टी की पट्टी प्रतिदिन १ घंटा तक लगानी चाहिये। दोनो वक्त उदर स्नान ७ से १० मिनट तक करना चाहिये। प्रतिदिन दो बार चेहरे पर १५ मिनट तक भाप देना चाहिये। उसके बाद उसे भीगी और निचोड़ी तौलिया से पोछना चाहिये। रात को सोते समय पावो को १५ मिनट तक गरम पानी मे रखना चाहिये। सिर पर ठण्डे पानी से भीगी तौलिया रख कर गरम पानी मे से पैरो को निकालने के तुरत बाद उन्हे एक मिनट तक ठण्डे पानी मे डालना चाहिये। सिर को प्रतिदिन या दूसरे, तीसरे दिन बेसन, रीठा आदि से मलकर साफ कर डालना चाहिये। नाक और मस्तक को गरम और ठण्डी सेक बारी-बारी से १५-२० मिनट तक दिन मे दो बार देना चाहिये।

नकसीर (Epistaxis)

नकसीर फूटना या नाक से रक्तस्राव होना स्वयं कोई रोग नही है अपितु रोग का लक्षण है। नकसीर फूटने के कई कारण हो सकते है जैसे नाकड़ा-रोग के कारण, नाक के पिछले भाग की एक ग्रन्थि (एडी-नायडस) मे सूजन हो जाने के कारण, प्लेथोरा अर्थात् शरीर के रक्त कोषो मे रक्ताधिक्य के कारण, हैमोफीलिया या परपुरा के कारण जिसमे त्वचा के नीचे रक्त छूट पडता है और बहने लगता है, रक्तचाप के बढ़ जाने के कारण तथा स्कर्वी रोग मे मसूढ़ो के फूट जाने के कारण।

यदि नकसीर फूटने पर [illegible] में बन्द हो जाय या [illegible] के बन्द होने की [illegible] चिकित्सा करनी चाहिये। पर यदि [illegible] होने लगे और परेशानी [illegible] किसी ठण्डी जगह पर आराम से [illegible] के सहारे इस तरह लिटाना चाहिये [illegible] ओर झुकी रहे। उसके बाद गर्दन [illegible] नीचे ठण्डे पानी की पट्टी या [illegible] चाहिये और पावो मे सूखी गरम [illegible] या ५,६ मिनट तक पैरो का गरम स्नान [illegible]। यदि इससे रक्त का बहना बन्द न हो [illegible], गर्दन तथा ऊपरी मेरुदण्ड पर बर्फ [illegible] चाहिये।

दोनों हाथो मे बर्फ के टुकड़े [illegible] जल से डुबोये रखने या दोनो [illegible] से भी रक्त का बहना बन्द हो जाता है।

चौथी अगुली और अगूठे के बीच मे नाक को पकड कर दबाने से भी रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

बार-बार नकसीर फूटती रहे तो शाम सुबह उदर-स्नान करने तथा रोज रात भर के लिए पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखने से कुछ ही दिनो मे इस रोग से सदा के लिए छुटकारा पाया जा सकता है।

सिर पर चोट लगने से यदि नाक से रक्तस्राव होने लगे तो उसे रोकने का प्रयत्न नही करना चाहिए।

पीली बोतल का सूर्य तप्त जल दो भाग, गहरी नीली बोतल का वैसा ही जल १ भाग तथा हरी बोतल का वैसा ही जल १ भाग मिलाकर आधी-आधी छटाक दिन मे ४ से ६ बार पीने तथा हरी बोतल के सूर्य तप्त जल में कपडे की बत्ती को तर करके उसे नाक के नथुनो मे रखने या उस जल का केवल नस्य लेने से भी रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

नाकड़ा

नाक की श्लैष्मिक झिल्ली में सूजन हो कर जब उसमे प्रदाह उत्पन्न हो जाता है तो उसे नाकडा या पोलिपस रोग होना कहते है। इस सूजन के फटने से कभी-कभी रक्त स्राव होने लगता हे अथवा नकसीर फूट जाती है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कान के रोग

[illegible] होते है। [illegible] प्रकार [illegible] रोग होने पर [illegible] को शुद्ध करने का उपाय करना चाहिए। इसके लिए [illegible] उपचार [illegible]—

सर्व प्रथम दो-एक रोज तक नीबू का रस मिला जल पीकर उपवास करना चाहिए। तत्पश्चात दो हफ्तों तक रसाहार, फलाहार, या फल और भाजी [illegible] दूध पर रहना चाहिए, एवं [illegible] तक बराबर एनिमा लेना चाहिए। धूप-स्नान और गरम [illegible] बाथ भी सप्ताह में दो बार लेना आवश्यक है। सूखा घर्षण-स्नान, श्वास की कसरतें, तथा हल्का व्यायाम या वायु सेवन प्रतिदिन करना चाहिए। तरकारिया और फल अधिक खाने चाहिए। उदर-स्नान दिन मे दो बार लेना चाहिए।

उपर्युक्त के अतिरिक्त सप्ताह मे दो-तीन दिन कान और उसके आस पास एव गर्दन पर भाप देकर उसके बाद उदर-स्नान लेना चाहिए। कान मे एक बार गरम पानी की पिचकारी देकर धोना चाहिए। उसके तुरत बाद ठडे पानी की पिचकारी से धोना चाहिए। तत्पश्चात आक्रान्त स्थान पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाना चाहि

यह क्रिया दिन मे दो बार करनी चाहिए। नीली रोशनी सिर के पिछले भाग और कान पर देना भी कान के रोगों म बड़ी लाभ करता है।

कान से कम सुनाई देना या बहरापन

कान से कम सुनाई देने या बहरापन के अनेक कारणो मे, सर्दी या जुकाम का दवाओ द्वारा दबा दिया जाना तथा बचपन का गलत खान-पान मुख्य कारण है। बचपन में इस रोग को ठीक कर देना आसान होता है, परन्तु बड़ा होने पर जब यह रोग पुराना पड़ जाता है तो जरा मुश्किल से जाता है।

बहरेपन के रोगी को प्रत्यामिन और श्वेतसार वाले खाद्य पदार्थ कम खाने चाहिये। अण्डा, मास, दाल और चीनी ऐसे रोगियों को बिलकुल ही नही खानी चाहिए। चीनी की जगह पर थोड़ा-सा गुड़ या शहद लिया जा सकता है। सादा भोजन और क्षार-धर्मी खाद्य पदार्थ ही ऐसे रोगियो को लाभकारी सिद्ध हो सकते है।

दिन मे दो बार १५-२० मिनट तक कानों और उसके आसपास के स्थल पर भाप दे, साथ ही कानों के इर्द गिर्द अंगुलियों से मालिश करते रहें। बाद को उस स्थान को ठंडे पानी से भीगे और निचोड़े कपडे से पोंछ दे। फिर नीम की पत्ती युक्त गरम किये हुये पानी की पिचकारी से कानों को धोवे। तत्पश्चात हरी बोतल के सूर्य तप्त जल से पुन: पिचकारी करें। बाद को रुई से कानों को भीतर बाहर अच्छी तरह पोछ कर मदार के पत्ते का तेल दो बूंद कानो मे टपकाकर सूखी रुई की डाट लगादे। सब के अंत में कानो की गहराइयो और उनके बाहरी तरफ चारो ओर गीली मिट्टी की पट्टी लगाकर ऊपर से ऊनी कपड़ा एकाध घंटे के लिए बाध दे।

मदार के पत्तो का तेल निकालने की तरकीब यह है:- मदार के पके हुए पीले पत्तो को लेकर उन पर सरसों का तेल चुपड़िए। फिर उन्हे आग पर गरम करके उनका रस निचोड लीजिए और शीशी मे भरकर रख लीजिए।

प्रतिदिन प्रात:काल १०-१५ मिनट तक उदर स्नान भी करना जरूरी है, तथा सप्ताह मे एक बार रात को सोते समय पावों का गरम स्नान।

कब्ज रहता हो तो शुरू मे दो-एक दिनो का उपवास या रसाहार करके एनिमा द्वारा पेट साफ कर लेना चाहिये। बहरों को नीचे के व्यायाम विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हुए हैं—

(१) दोनों पाँव मिलाकर खडे हो जाइये। सिर सीधा रहे। अब सिर को दाये से बायें और बायें से दायें वृत्ताकार घुमाइए।

(२) सिर सीधा रखिए। अब उसे दायी ओर इतना झुकाइए कि कान दाहिने कधो से छू जाय। सिर को सीधा कीजिए, और अब उसी प्रकार उसे बायी ओर झुकाइए। इसे कई बार कीजिए।

(३) सीधे खड़े हो जाइए। अंगुलियो से नासिका-रन्ध्रो को दबाइए। मुंह से गहरी सांस लीजिए। कुछ समय तक सांस को भीतर ही रोक रखिए, फिर एक हलके धक्के के साथ कानो पर उसका दबाव पड़ने दीजिए। जोर जबर्दस्ती मत कीजिए।

(४) सिर सीधा रखिए। सीना तना रहे। मध्यमा अंगुलियो से नासिका-रन्ध्रों को और अंगूठो से कर्णछिद्रो को बद कीजिए। मुंह के जरिए गहरी सास लीजिए और ठोढ़ी को छाती पर दबाइए। कुछ क्षण इसी स्थिति में रहने के बाद ठोढी उठाइए और मुंह से सास निकाल दीजिए। इस क्रिया को ५ से १० बार कीजिए।

कर्ण-नाद

इस रोग मे कानो में सनसनाहट तथा जोरो की आवाज मालूम पड़ती है। कान की नली के बाहरी हिस्से मे मैल का जमा हो जाना इस रोग का एक खास कारण है। किसी विजातीय द्रव्य अथवा फोड़े आदि से कर्णनाली के बाहरी द्वार का बंद हो जाना, नाक या गले का पुराना जुकाम, कुनैन आदि कुछ औषधियो का अधिक मात्रा में सेवन, रुग्ण तुंडिकाएं, मध्यकर्ण का प्रदाह, तथा साधारण सर्दी का प्रदाह आदि भी इस रोग के कारण हो सकते हैं।

इस रोग को दूर करने के लिए प्रतिदिन दो बार हरी बोतल के सूर्यतप्त जल से पिचकारी द्वारा कानो को धोना चाहिए। तत्पश्चात् उन्हे भीतर-बाहर मे पोंछकर उनमें २-४ बूंद उपर्युक्त रीति से तैयार किया हुआ मदार के पत्तो का तेल डालना चाहिए। निम्नलिखित व्यायाम भी इस रोग मे बड़ा लाभ करता है—

नाक के नथुने से धीरे-धीरे [illegible] साँस खींचिए। फिर जिस प्रकार नाक साफ करते हैं उसी प्रकार दोनों नथुनों से हवा छोड़िए। सुबह-शाम यह कसरत नियमित रूप से करनी चाहिए और उसका अभ्यास [illegible] तक बढ़ाना चाहिए।

कान का बहना

कान बहना और उसके द्वारा पीब आदि निकलना इस बात का सबूत है कि शरीर का खून शुद्ध नहीं है। अत. सबसे प्रथम ऐसे उपचार चलाना चाहिए जिनसे रक्त शुद्ध होकर शरीर निर्मल हो जाय, फिर तो कान का बहना आप से आप बंद हो जायगा। उसके लिए एक या दो दिन तक उपवास करना चाहिए या रसाहार पर रहना चाहिए। फिर मौसिमी फलों और उबली और कच्ची साग सब्जियों पर। उसके बाद फल और दूध तत्पश्चात् सादा भोजन लेने लग जाना चाहिए। उदर-स्नान प्रति-दिन १०–१५ मिनट तक करना चाहिए। प्रति दूसरे दिन पैरों का गरम-स्नान लेना चाहिए। कब्ज हो तो कब्ज टूटने तक एनिमा लेना चाहिए। प्रतिदिन दो बार जो कान बहता हो उस पर ५–७ मिनट तक भाप देने के बाद उस स्थान को ठंडे जल से भीगे कपडे से पोंछ देना चाहिए और नीम के गरम पानी और पिचकारी द्वारा अन्दर का मल साफ कर देना चाहिए। तत्पश्चात् उसमे दो बूंद बकरी का ताजा मूत्र, या हरी बोतल का सूर्य तप्त तेल डालकर डाट लगा देना चाहिए।

कान की फुड़िया अथवा दर्द

दिन मे ३–४ बार कान के ऊपर तथा उसके आस-पास भाप-नहान देकर बदल–बदल कर मिट्टी की उष्णकर पट्टी लगानी चाहिए। फूट जाने पर कान को दिन मे दो बार नीम के पानी से धोना भी चाहिए। और रात भर के लिए उस पर मिट्टी की वही पट्टी रखनी चाहिए। कब्ज रहता हो तो उपवास करके या रसाहार पर रहकर एनिमा के जरिए पेट को साफ कर लेना चाहिऐ। प्रतिदिन कटि-स्नान या रातभर के लिए कमर की गीली पट्टी लगानी चाहिए।

पीली और गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल बराबर आधी छटाक की मात्रा से दिन मे ४ से ६ बार [illegible] [illegible] [illegible] कान में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहिए। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सिद्ध होता है।

दांत के रोग

मसूढ़ा फूलना, उनसे खून आना, दांत हिलना, दांत गिरना, दांत में दर्द होना तथा पायरिया आदि दांतों के रोग कहलाते हैं। ये रोग उन्हीं लोगों को सताते हैं जो अपने दांतों को साफ नहीं रखते, उनका उचित व्यायाम नहीं होने देते तथा गन्दे खाद्यों का व्यवहार करते हैं। जिनका खान-पान अनियमित एवं अप्राकृतिक होता है। जो बहुत गर्म या बहुत सर्द चीजों के खाने के आदी होते हैं, तथा जिनका पेट साफ नहीं रहता ऐसे लोगों का रक्त दूषित हो जाता है और शरीर मल से परिपूरित। इसीलिए, डा० मैकफेडन के कथनानुसार, दन्त-रोग केवल स्थानीय चिकित्सा (Local treatment) से नहीं जाते अपितु समूचे शरीर को निर्मल बनाने से ही जाते हैं। जो लोग प्राकृतिक सादा भोजन करते है, प्रत्येक ग्रास को खूब चबाते है, सुबह-शाम—दोनो वक्त नीम या बबूल की दातून, बलुई मिट्टी, नमक-तेल या लेमू-रस से दांतो की मालिश करके उनको साफ रखते हैं, तथा कैलशियम फास्फोरस, एव विटामिन 'सी' वाले खाद्य पदार्थों अर्थात्, कच्चा दूध, अंकुरित गेहूं, अण्डे की जर्दी, सेम जाति के बीज, फूल और पातगोभी, करैला, पपीता, आमला, बैगन, परवल, लालशाक, पोईशाक, लेटिस, मूली, पालक, टमाटर, किशमिश, खूबानी, खजूर, बादाम, नीबूजातीय फल, प्याज, लहसुन, अनन्नास, तथा अगूर आदि को अपने भोजन मे स्थान देते है, उन्हे दातो का कोई भी रोग कभी भी नही सताता।

पायरिया

पायरिया, दातो का एक महाभयानक रोग है जो आजकल कथित सभ्य समाज मे बहुत फैला हुआ है। इस रोग मे मुह खारा-खारा लगता है, मसूढ़े फूले रहते है, तथा उनसे पीव और खून निकला करता है विशेषकर सबेरे सोकर उठने के वक्त, दातो मे पानी लगता है, तथा

मुंह से बदबू निकलती रहती है। एलोपैथ डाक्टर इस रोग का कारण एक प्रकार का कीटाणु मानते हैं, तथा चिकित्सा दातो को उखाड़-फेंकना। परन्तु एक प्राकृतिक चिकित्सक इन दोनो बातो में से एक को भी नही मानता और निम्नलिखित उपचार से इस रोग को सदा के लिए अच्छा कर देने मे विश्वास करता है.—

आरम्भ मे रोगी को-२-३ दिनों तक रसाहार करना चाहिए और कब्ज टूटने तक एनिमा लेना चाहिए। तत्पश्चात दो सप्ताह तक अत्यन्त सादे भोजन पर रहना चाहिए। साधारण स्नान के पूर्व और अन्त मे शुष्कघर्षण स्नान करना चाहिए, तथा लेमू-रस मिला जल प्रचुर मात्रा में पीना चाहिए। मसूढो पर रोज दो-तीन बार १०-१५ मिनट तक भाप देना चाहिए तथा बीच-बीच मे २–३ बार ठडे पानी से कुल्ला भी करना चाहिए। दिन मे दो बार उदर-स्नान तथा रात भर के लिए कमर की गीले कपड़े की लपेट देना चाहिए। सप्ताह मे दो दिन 'एप्समसाल्ट बाथ' लेना भी जरूरी है। तथा रोज हल्का व्यायाम और सांस की कुछ कसरते भी नियमित रूप से करनी चाहिए।

दांत दर्द

दांत मे दर्द आरम्भ होते ही सबसे पहले सिर धोकर तथा उसपर भीगा हुआ गमछा रखकर दो मिनट तक सहने लायक गरम जल मे नमक मिलाकर कुल्ली करनी चाहिए, तत्पश्चात-तुरत ठंडे जल से कुल्ली करनी चाहिए। इस क्रिया को सुबह–शाम या दिन मे तीन बार करना चाहिए। जब तक दर्द न मिटे इस क्रिया को जारी रखना चाहिए। अवश्य लाभ होगा। अगर दर्द के साथ मसूढो में गर्मी और जलन भी हो तो मुह मे मामूली ठडा पानी लेकर उसे कुछ देर तक रखना चाहिए। जब पानी गरम हो जाय तो उसे फेंककर फिर से ठडा पानी मुह मे ले लेना चाहिए।

पुराने दर्द–दात मे तीन दिनो तक उपवास या रसाहार करना चाहिए तथा जब तक पेट न साफ हो जाय तब तक एनिमा लेना चाहिए। उसके बाद फल और दूध या मठा और दूध या मठा और शाक-सब्जी पर रहना चाहिए। तत्पश्चात् नितान्त सादे भोजन पर रहकर नीचे लिखे चिकित्सा क्रम को नियमपूर्वक चलाना चाहिए—

दुखते दातो पर भीतर १०-१५ मिनट तक सिरको ठडे जल से धोकर और उसपर ठडे जल से भीगा गमछा रखकर, भाप दीजिए। उसके बाद आम और महुए की छाल को पानी मे उबालकर उस गरम पानी से, या नारङ्गी रङ्ग की बोतल के सूर्य तप्त गरम जल से, या केवल साधारण नमक मिले गरम जल से, दिन मे दो-तीन बार, ६-७ दफा कुल्ली कीजिये। फिर गरम जल से कुल्ली करने के तुरत बाद ठडे जल से कुल्ली कीजिए। उसके बाद उदर-स्नान। सप्ताह मे तीन दिन उष्णपाद-स्नान भी लेना चाहिए।

मसूढ़ा फूलना

दिन मे दो बार भीतर मसूढो पर १० मिनट तक भाप देना चाहिए सिर पर ठडे पानी से भीगा गमछा रखकर, फिर तुरत ही एक मिनट तक ठंडे पानी से कुल्ली करनी चाहिए। इस क्रिया के दो घटे बाद दर्द वाले मसूढ़े की तरफ के गाल के ऊपर १० मिनट तक भाप देने के बाद ४५ मिनट के लिये गीली मिट्टी या कपड़े की ठडी पट्टी बाधकर उसपर ऊनी कपडा लपेट देना चाहिए। इस क्रिया को भी दिन मे दो बार करना चाहिए। दिन मे दो बार उदर या मेहन स्नान भी करना जरूरी है। कब्ज रहता हो तो उपवास या रसाहार करके एनिमा द्वारा पेट साफ कर लेना चाहिए।

गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल दो भाग, हरी का एक भाग, तथा पीली का एक भाग मिलाकर आधी छटाक की ४ खुराक से ६ खुराके दिन मे पीना, तथा गहरी नीली बोतल के सूर्यतप्त जल से भीगी कपडे की पट्टी दुखते मसूढ़े के तरफ के गाल पर बाधकर उसपर ऊनी कपड़ा लपेट रखना भी इस रोग मे बडा लाभकारी सिद्ध होता है।

जीभ, मुंह, हलक और गर्दन के रोग

मुंह का छाला

इस रोग मे मुह के भीतर जीभ लिये हुए हलक तक लल ई छा जाती है और उसमे घाव या छाले पड़ जाते है जो बहुत तकलीफ देते है। इस रोग के अंग्रेजी

लिये छाती और कन्धो पर भीगी पट्टी पुनः बाधे। नीबू का रस मिला हुआ जल प्रचुरता के साथ पीवें, गहरी सांस लेने की कसरते करे, प्रात. सायं स्वच्छ वायु मे टहले, सादा और सुपाच्य भोजन ग्रहण करे तथा साधारण स्नान के पूर्व और पश्चात शुष्क घर्षण स्नान जरूर करे।

लहसुन के रस को रुई मे डालकर सूंघना तथा तीन चाय के चम्मच भर प्याज के अर्क मे दो चम्मच शुद्ध शहद मिला कर चाटना इस रोग मे बड़ा उपकारी सिद्ध होता है।

नारगी रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल की आधी आधी छटाक की ६ खुराकें रोज पीना पुरानी तर खांसी को तथा गहरी नीली बोतल की उतनी ही खुराक प्रति दिन पीवा पुरानी सूखी खांसी को जल्दी ठीक कर देता है।

तुण्डिका (टांसिल) वृद्धि

खासी, सिरदर्द आदि की तरह तुंडिका वृद्धि भी स्वयं कोई रोग नही है, बल्कि सब रोगो की जड़ कब्ज या पेट की खराबी का लक्षण विशेष है। टासिलो के बढने और फूलने का मुख्य कारण शरीर मे विषैले पदार्थो का अधिक मात्रा मे एकत्र होना है। अतः स्पष्ट है कि इसका इलाज आपरेशन कराना नही है, अपितु कब्ज को दूर करना और शरीर को निर्विकार निर्मल बनाना है। जब शरीर मे दूषित द्रव्य इकट्ठा होजाता है तो वह टासिल वृद्धि, घेघा, फोड़ा-फुन्सी आदि विविध रूपो को धारण कर बाहर निकालने की कोशिश प्रकृतित करता है जिससे तकलीफ का होना स्वाभाविक है।

टासिल बढ़ने के कुछ अन्य कारण भी है, जैसे समय समय पर ठड लग जाना, जल मे भीगना, अत्यधिक परिश्रम, बन्द हवा मे सांस लेना, तथा स्वरयन्त्र को अधिकाधिक काम मे लाना, आदि।

टासिल मल निस्सारक ग्रन्थियां है, और वे देह के निस्सरण-संस्थान के बहुमूल्य अङ्ग है। प्रकृति ने उनकी रचना इसी प्रयोजन से की है कि वे देह को मल से रहित करके उसे निर्मल बनाये रखे। ऐसी हालत मे टासिल को काटकर फेक देना तो मरम्मत होती हुई सड़क पर सम्हल कर चलने के लिये लगाई गई लालटेनो को हटा देना

टांसिल, घांटी, जिह्वा

है। इसीलिये प्राकृतिक चिकित्सक टासिल की तकलीफ होने पर उनको कटवा देने के पक्ष मे बिल्कुल नही होते, अपितु उसके कारण पेट की खराबी अथवा शरीर स्थित विजातीय द्रव्य को दूर करने की कोशिश करते हैं जिससे आक्रांत टासिल आपसे आप अपनी स्वाभाविक दशा मे आजाते है और अपना काम सभालने लगते हैं।

टासिल की तकलीफ शुरू होते ही यदि उपचार आरम्भ कर दिया जाय तो तकलीफ आगे हरगिज न बढे और तकलीफ जल्दी ही दूर होजाय। पर टासिलो मे पीव पड़ जाने पर उनको ठीक होने मे थोडा समय लगता है। अतः धैर्यपूर्वक उपचार चलाते रहना चाहिए सफलता जरूर मिलेगी।

चिकित्सा—

जब तक तकलीफ मे कमी न हो जाय तब तक दो-दो घंटे बाद केवल फलो का रस या शाक, तरकारी, सूप (रस) ही लेना चाहिए। फल खाकर रहा जाय दिन मे ३-४बार। फिर फल और दूध पर रहा जाय। तत्पश्चात् सुबह को फल-दूध, दोपहर को चोकरदार रोटी और उबली सब्जी, मीठा दही या मठा और सलाद (कच्ची साग सब्जी), शाम को दूध और फल या सूखे मेवे। जब तक तकलीफ पूरे तौर से कम न हो जाय तब तक २४ घटो मे कम से कम

दो ढाई सेर जल जरूर लिया जाय। [illegible]
सब्जियो के रस पर रहा जाय [illegible]
के बाद पेडू पर पाव घंटा भीगी मिट्टी की पट्टी [illegible]
बाद सेर-१॥सेर गुनगुने पानी का एनिमा [illegible]
एनिमा के पानी मे ८-१० [illegible]
चिकित्सा काल मे उपर्युक्त प्रकार [illegible]
से थोडा वजन घटेगा, पर उसका [illegible]
जरूरत नही है। रोग दूर हो जाने के बाद [illegible]
आपसे आप ठीक हो जायगा और [illegible]
दूनी हो जायगी।

प्रतिदिन सायकाल, भोजन करने के [illegible] और सोने से पहले कमर की गीली पट्टी लगा लेनी चाहिए जिसे, सुबह तक न खोलनी चाहिए।

सप्ताह मे एक दिन शाम को सोने से ठीक पहले 'हाट एप्सम साल्ट्स बाथ' लेना भी जरूरी है। जिस दिन यह स्नान न लिया जाय उस दिन कमर की गीली पट्टी न लगाई जाय।

दिन मे दो बार टासिल, हलक, गला और गर्दन पर १०-१५ मिनट तक भाप देना चाहिए। उसके बाद गरम पानी मे कागजी नीबू का रस मिलाकर उससे गरारा-कुल्ली करना चाहिए। तत्पश्चात् एक से लेकर दो घटे तक गले के चारो तरफ टॉसिल को ढंकते हुए गीले कपडे की लपेट या मिट्टी की पट्टी लगावे। यह पट्टी रात को, सोते समय भी लगाई जा सकती है। उस समय इसे रात भर लगे रहने देना चाहिए।

कागजी नीबू का रस और शुद्ध शहद मिलाकर उसे अंगुली से अन्दर की तरफ टासिलो पर सुबह शाम लगाकर मालिश करना चाहिए। इस क्रिया को स्वय करे अथवा किसी अन्य व्यक्ति से करावे। यदि मालिश करते समय रक्त या पीव निकले तो निकलने दे। भय न करे। इस अन्दरूनी मालिश के बाद ताजे मक्खन से कंठ और ग्रीवा पर १५-२० मिनट तक ऊपरी मालिश भी जरूर करना चाहिए। अन्दरूनी मालिश के लिये कागजी नीबू के रस और शहद की जगह साधारण नमक और गोबर की राख भी इस्तेमाल की जाती है। किंतु इस काम के लिये नीबू का रस और शहद विशेष लाभकारी है।

[illegible] टासिल [illegible] साधारण [illegible]
[illegible]

[illegible] कम से कम [illegible] दिन तक [illegible]

[illegible], [illegible], मिठाई, [illegible], तली हुई [illegible], गरिष्ठ [illegible] आदि, अति [illegible] कुछ दिनो तक परहेज करना चाहिए।

सादा और सुपाच्य भोजन, मठा, दही, नारियल का पानी, फल और ताजी साग-सब्जिया टासिल के रोगी को मुफीद पडती है।

कण्ठमाला

कण्ठमाला, गलगण्ड या गर्दन की गाठे भी इस बात को सूचित करती है कि शरीर मे मल का विष अधिक बढ गया है जिसकी सफाई अति शीघ्र होनी चाहिए। अत इसके लिए दो एक दिन उपवास या रसाहार करके और एनिमा लेकर सर्व प्रथम पेट को साफ कर लेना चाहिए। उसके बाद प्रति दिन उदर या मेहन स्नान लेना चाहिए। गाठो पर भाप नहान देकर दिन मे तीन बार मिट्टी की पट्टी बाधनी चाहिए। रात मे गाठो पर हरी बोतल का सूर्य तप्त तेल लगाना चाहिए।

अगर गर्दन पर बद (गाठ) उभरना अभी आरम्भ ही हुआ हो तो तुलसी और रेड की पत्ती समभाग लेकर और उन्हे पीसकर तथा जरा सा नमक मिलाकर गरम-गरम गाठ पर बाध देने से वह अधिक तकलीफ नही देती है और अच्छा हो जाती है।

कठमाला के रोगी को आसमानी रङ्ग की बोतल का सूर्यतप्त जल दो भाग तथा लाल रङ्ग की बोतल का वैसा ही जल एक भाग मिलाकर आधी-आधी छटांक की तीन खुराके प्रतिदिन पीनी चाहिए और गाठों पर

लिये छाती और कन्धो पर भीगी पट्टी पुनः बाधे। नीबू का रस मिला हुआ जल प्रचुरता के साथ पीवें, गहरी सांस लेने की कसरते करे, प्रात. साय स्वच्छ वायु मे टहले, सादा और सुपाच्य भोजन ग्रहण करे तथा साधारण स्नान के पूर्व और पश्चात शुष्क घर्षण स्नान जरूर करे।

लहसुन के रस को रुई में डालकर सूंघना तथा तीन चाय के चम्मच भर प्याज के अर्क मे दो चम्मच शुद्ध शहद मिला कर चाटना इस रोग मे बड़ा उपकारी सिद्ध होता है।

नारगी रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल की आधी आधी छटाक की ६ खुराकें रोज पीना पुरानी तर खांसी को तथा गहरी नीली बोतल की उतनी ही खुराक प्रति दिन पीना पुरानी सूखी खासी को जल्दी ठीक कर देता है।

तुण्डिका (टांसिल) वृद्धि

खासी, सिरदर्द आदि की तरह तुंडिका वृद्धि भी स्वयं कोई रोग नही है, बल्कि सब रोगो की जड़ कब्ज या पेट की खराबी का लक्षण विशेष है। टासिलो के बढ़ने और फूलने का मुख्य कारण शरीर मे विषैले पदार्थो का अधिक मात्रा मे एकत्र होना है। अतः स्पष्ट है कि इसका इलाज आपरेशन कराना नही है, अपितु कब्ज को दूर करना और शरीर को निर्विकार निर्मल बनाना है। जब शरीर मे दूषित द्रव्य इकट्ठा होजाता है तो वह टासिल वृद्धि, घेघा, फोड़ा-फुन्सी आदि विविध रूपो को धारण कर बाहर निकालने की कोशिश प्रकृतितः करता है जिससे तकलीफ का होना स्वाभाविक है।

टांसिल बढ़ने के कुछ अन्य कारण भी है, जैसे समय समय पर ठड लग जाना, जल मे भीगना, अत्यधिक परिश्रम, बन्द हवा मे सास लेना, तथा स्वरयन्त्र को अधिकाधिक काम मे लाना, आदि।

टासिल मल निस्सारक ग्रन्थिया है, और वे देह के निस्सरण-सस्थान के बहुमूल्य अङ्ग है। प्रकृति ने उनकी रचना इसी प्रयोजन से की है कि वे देह को मल से रहित करके उसे निर्मल बनाये रखे। ऐसी हालत मे टासिल को काटकर फेक देना तो मरम्मत होती हुई सड़क पर सम्हल कर चलने के लिये लगाई गई लालटेनो को हटा देना

टांसिल, घांटी, जिह्वा

है। इसीलिये प्राकृतिक चिकित्सक टासिल की तकली होने पर उनको कटवा देने के पक्ष मे बिल्कुल नही हो अपितु उसके कारण पेट की खराबी अथवा शरीर स्थि विजातीय द्रव्य को दूर करने की कोशिश करते हैं जिस आक्रात टासिल आपसे आप अपनी स्वाभाविक दशा आजाते है और अपना काम सभालने लगते है।

टासिल की तकलीफ शुरू होते ही यदि उपचार आर कर दिया जाय तो तकलीफ आगे हरगिज न बढ़े और तक लीफ जल्दी ही दूर होजाय। पर टासिलो मे पीव पड जा पर उनको ठीक होने मे थोड़ा समय लगता है। धैर्यपूर्वक उपचार चलाते रहना चाहिए सफलता अ मिलेगी।

चिकित्सा—

जब तक तकलीफ मे कमी न हो जाय तब तक दो घटे बाद केवल फलो का रस या शाक, तरकारी, सूप (र ही लेना चाहिए। फल खाकर रहा जाय दिन मे ३-४ फिर फल और दूध पर रहा जाय। तत्पश्चात् सुबह को फल-दूध, दोपहर को चोकरदार रोटी और उबली सब्जी मोठा दही या मठा और सलाद (कच्ची साग सब्जी), शा को दूध और फल या सूखे मेवे। जब तक तकलीफ पूर्ण तौर से कम न हो जाय तब तक २४ घटो मे कम से कम

दो ढाई सेर जल जरूर पिया जाय। जब तक फलो या सब्जियो के रस पर रहा जाय तब तक सुबह-शौच से लौटने के बाद पेड़ू पर आध घटा गीली मिट्टी की पट्टी रखने के बाद सेर-१॥सेर गुनगुने पानी का एनिमा जरूर लिया जाय, एनिमा के पानी में ८-१० बूंद नीबू का रस निचोड कर। चिकित्सा काल में उपर्युक्त प्रकार के भोजन पर रहने से थोडा वजन घटेगा, पर उससे घबराने की बिलकुल जरूरत नही है। रोग दूर हो जाने के बाद सब कुछ आपसे आप ठीक हो जायगा और वजन तथा ताकत दूनी हो जायगी।

प्रतिदिन सायकाल, भोजन करने के दो घटा बाद और सोने से पहले कमर की गीली पट्टी लगा लेनी चाहिए जिसे सुबह तक न खोलनी चाहिए।

सप्ताह मे एक दिन शाम को सोने से ठीक पहले 'हाट एप्सम साल्ट्स बाथ' लेना भी जरूरी है। जिस दिन यह स्नान न लिया जाय उस दिन कमर की गीली पट्टी न लगाई जाय।

दिन मे दो बार टासिल, हलक, गला और गर्दन पर १०-१५ मिनट तक भाप देना चाहिए। उसके बाद गरम पानी मे कागजी नीबू का रस मिलाकर उससे गरारा-कुल्ली करना चाहिए। तत्पश्चात् एक से लेकर दो घटे तक गले के चारो तरफ टॉसिल को ढंकते हुए गीले कपडे की लपेट या मिट्टी की पट्टी लगावे। यह पट्टी रात को सोते समय भी लगाई जा सकती है। उस समय इसे रात भर लगे रहने देना चाहिए।

कागजी नीबू का रस और शुद्ध शहद मिलाकर उसे अगुली से अन्दर की तरफ टासिलो पर सुबह शाम लगाकर मालिश करना चाहिए। इस क्रिया को स्वयं करे अथवा किसी अन्य व्यक्ति से करावे। यदि मालिश करते समय रक्त या पीव निकले तो निकलने दे। भय न करे। इस अन्दरूनी मालिश के बाद ताजे मक्खन से कठ और ग्रीवा पर १५-२० मिनट तक ऊपरी मालिश भी जरूर करना चाहिए। अन्दरूनी मालिश के लिये कागजी नीबू के रस और शहद की जगह साधारण नमक और गोबर की राख भी इस्तेमाल की जाती है। किन्तु इस काम के लिये नीबू का रस और शहद विशेष लाभकारी है।

रोगी को चाहिये कि वह प्रतिदिन सुबह ८-९ बजे के लगभग अपने मुह को खोलकर सूरज के सामने बैठे और एक नीले शीशे के टुकडे से छानकर सूरज की नीली रोशनी टासिलो पर ५-७ मिनट तक पड़ने दे।

रोगी को प्रतिदिन आधी-आधी छटाक की ६ खुराक नीली बोतल के सूर्य तप्त जल की पीनी चाहिए ८-१० दिनो तक फिर पीली बोतल के जल की उतनी ही खुराके।

मिर्च-मसाला अधिक नमक, तेल, सफेद चीनी, खटाई. मास मछली, अचार, मैदा, चाय-काफी, पालिश किया हुआ चावल, रबड़ी-मलाई, नशे की चीजे, तली भुनी चीजे, श्वेत सारीय पदार्थ जैसे—चावल, गेहूँ आदि, अति परिश्रम तथा बहुत बोलने से कुछ दिनो तक परहेज करना चाहिए।

सादा और सुपाच्य भोजन, मठा, दही, नारियल का पानी, फल और ताजी साग-सब्जिया टासिल के रोगी को मुफीद पड़ती है।

कण्ठमाला

कण्ठमाला, गलगण्ड या गर्दन की गाठे भी इस बात को सूचित करती है कि शरीर मे मल का विष अधिक बढ़ गया है जिसकी सफाई अति शीघ्र होनी चाहिए। अत. इसके लिए दो एक दिन उपवास या रसाहार करके और एनिमा लेकर सर्व प्रथम पेट को साफ कर लेना चाहिए। उसके बाद प्रति दिन उदर या मेहन स्नान लेना चाहिए। गाठो पर भाप नहान देकर दिन मे तीन बार मिट्टी की पट्टी बाधनी चाहिए। रात मे गाठो पर हरी बोतल का सूर्य तप्त तेल लगाना चाहिए।

अगर गर्दन पर बद (गाठ) उभरना अभी आरम्भ ही हुआ हो तो तुलसी और रेड की पत्ती समभाग लेकर और उन्हे पीसकर तथा जरा सा नमक मिलाकर गरम-गरम गाठ पर बाध देने से वह अधिक तकलीफ नही देती है और अच्छा हो जाती है।

कंठमाला के रोगी को आसमानी रङ्ग की बोतल का सूर्यतप्त जल दो भाग तथा लाल रङ्ग की बोतल का वैसा ही जल एक भाग मिलाकर आधी-आधी छटांक की तीन खुराके प्रतिदिन पीनी चाहिए और गाठो पर

१०-१५ मिनट तक नीला प्रकाश डालना चाहिए। सप्ताह में दो एक बार 'एप्सम साल्ट बाथ' भी लेना चाहिए तथा प्रतिदिन शरीर और सांस की हल्की कसरतें भी करनी चाहिए।

घेघा (Goitre)

घेघे का इलाज उपर्युक्त कंठमाला के इलाज की भांति ही करना चाहिए। समय दो से तीन मास तक लग सकता है।

तालु में फुंसी व खुश्की

इसका इलाज मुंह के छाले के इलाज की तरह ही करना चाहिए।

गहरी नीली, पीली, हरी तथा आसमानी बोतलों का सूर्य तप्त जल समभाग लेकर उसकी आधी-आधी छटांक की ६ खुराकें प्रतिदिन पीने से तथा गहरी नीली और हरी बोतलों का वैसा ही जल समभाग लेकर और गरम करके उससे कुल्ली करने से यह रोग कुछ ही दिनों में आसानी से दूर हो जाता है।

गला बैठना (Hoarseness)

जोर से भाषण देने, अधिक गाना गाने, चिल्लाने, ठंड लगने, सीलन की जगह पर रहने तथा शरीर स्थित विजातीय द्रव्य के किसी तरह हलक तक पहुँचने से कभी-कभी गला बैठ जाता है, आवाज भायं-भायं निकलने लगती है या बिलकुल ही नहीं निकलती। यह इस वजह से होता है कि स्वर नली के स्नायुओं पर अनावश्यक जोर पड़ने के कारण वे निर्बल पड़ जाती हैं। फलतः आवाज का भारी होना, गले की खुश्की, कभी-कभी सूखी खासी तथा सांस लेने में कष्ट आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं।

सर्व प्रथम दो तीन दिनों तक पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी देकर और उसके बाद एनिमा लेकर पेट को साफ कर लेना चाहिए, साथ ही नीचे का चिकित्सा क्रम चलाना चाहिए।

सुबह शाम १॥ घंटे तक गले के चारों तरफ कपड़े की या मिट्टी की गीली पट्टी लगानी चाहिए गले छाती और कन्धा तक ठंडा और गरम सेक बारी-बारी से देने के बाद।

हर दूसरे दिन उष्णपाद-स्नान भी देना चाहिए। रोज नमक मिले गरम पानी से गरारा करना चाहिए तथा सुबह-शाम एक-एक गिलास नमकीन गरम पानी फूंक फूंक कर पीना भी चाहिए। एक सप्ताह तक केवल चोकरदार रोटी और उबली सब्जी पर रहना चाहिए या फल और दूध पर। रोज नीबू का रस मिला हुआ पानी कई बार पीना चाहिए।

गहरी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल दिन में छ बार पीना चाहिए, आधी छटांक की मात्रा से।

स्वर यन्त्र प्रदाह (Laryngitis)

इस रोग में गला खुश्क हो जाता है, बात करने और भोजन करने में तकलीफ होती है, तर खांसी आती है तथा गले में जलन भी होती है। इस रोग के भी वे ही कारण हैं जो गला बैठने के हैं।

इस रोग की चिकित्सा भी वही है जो गला बैठने की है।

चौथा अध्याय

पाचन-संस्थान के रोग

पाचन-संस्थान में शरीर के वे सभी अवयव आते हैं जो होंठ से लेकर गुदा द्वार और मूत्र-द्वार तक स्थित हैं। अर्थात् मुख-गह्वर, अन्न-नलिका, आमाशय, यकृत, पित्ताशय, बड़ी आंत, छोटी आंत, मूत्राशय, मलाशय, तथा गुदा। देखिये आगे पृष्ठ पर का चित्रः—

पाचन-संस्थान के जितने भी रोग हैं, सबके सब असंयम और आहार-विहार की गड़बड़ी से ही उत्पन्न होते हैं, विशेषकर अनियमित मल-मूत्र त्यागने, अनियमित भोजन-पान करने, पूरी नींद न लेने, पानी कम पीने, मानसिक चिन्ता करने, अप्राकृतिक और अधिक तली भुनी चीजें खाने, भूख में अधिक खाने, बिना भूख के खाने, भूख से कम खाने, बिना चबाये खाने, उत्तेजक दवाइयों के सेवन

पाचन-संस्थान

करने, नियमितरूप से कोई व्यायाम न करने तथा कभी-कभी उपवास न करने से शरीर मे पाचन-संस्थान का कोई न कोई रोग अवश्य हो जाता है ।
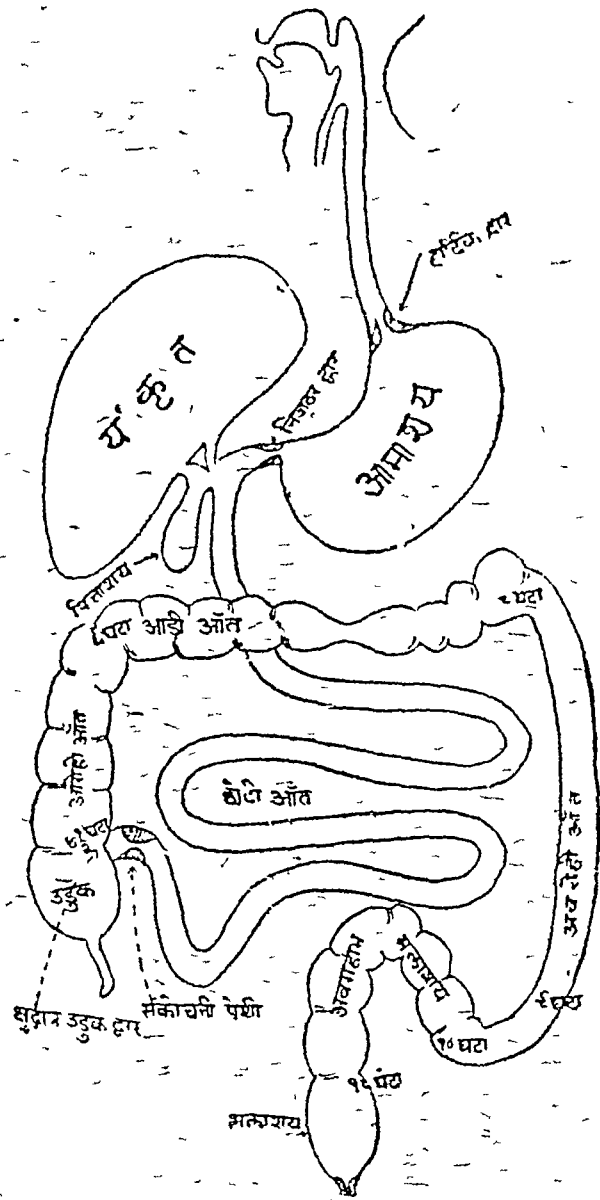
पाचन-सस्थान का जब भी कोई रोग हो भोजन करना तब तक छोड़ रखना चाहिए जब तक कि रोग का जोर कम से कम दो तिहाई कम न हो जाय । इन दिनो एनिमा लेकर पेट साफ कर डालना तथा रोज प्रचुर मात्रा मे जल पीना भी नितान्त आवश्यक है। रोग की आरम्भावस्था मे तो इतने ही से बहुत कुछ सुधार हो जाता है और रोग बढ़ने नही पाता, अपितु खतरा टलकर रोग कुछ ही दिनो मे बिलकुल दूर भी हो जाता है। पाचन-सस्थान सम्बन्धी रोग अनेक हैं। उदाहरणार्थ कुछ लोगों को भोजन के बाद पेट में हलका-हलका दर्द होने लगता है जो एक गिलास पानी पी लेने से ही शान्त हो जाता है । पाचन-क्रिया स्वाभाविक रूप से न होने के कारण किसी-किसी को अफरा हो जाता है जिसकी बढी हुई अवस्था में पेट मे व्रण हो जाने की स्थिति प्रस्तुत हो जाती है जिसमे दर्द असाध्य होता है । यह दर्द भी भोजन के बाद ही एक नियत समय पर होता है जो कै हो जाने और कोई क्षारमय पदार्थ जैसे कागजी नीबू का रस आदि सेवन कर लेने पर शान्त हो जाता है। पर इन प्रारम्भिक क्रियाओ और उपचारो मे रोग के मूल कारण को दूर करने की कोई बात नही होती ।

यह गलत नही है कि पाचन सम्बन्धी अधिकाश रोग भावनात्मक जीवन की अस्तव्यस्तता के कारण होते है। इन रोगो मे आहार के प्रकार और भोजन-सम्बन्धी नियमो का महत्व स्वीकार करते हुये भी प्रमुखता भावनात्मक जीवन की ही मानी गई है । ऐसा देखा जाता है कि पाचन सम्बन्धी रोग विशेषकर उन्ही लोगो को होते हैं जो स्वभावत. असंतोषी, निराश, परेशान, कुढने वाले, क्रोधी, अस्थिर, या अशान्त होते है। उनकी ये मानसिक उत्तेजनाएं अंततः पाचन सम्बन्धी अगो पर बडा बुरा असर डालती है जिससे उनके काम मे व्याघात पड़कर उनमें रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशा मे केवल आहार के सुधार और अन्य प्राकृतिक उपचार से इन रोगों से छुटकारा नही मिल सकता, अपितु सर्वप्रथम उपर्युक्त मानसिक तनावों को ही दूर करने की कोशिश होनी चाहिये। अन्यथा इन तनावो के रहते हुए आहार सुधार तथा उपचार से कोई लाभ न होगा।

मानसिक तनावों को दूर करने के लिए रोगी को अपने अवकाश के क्षणो में सगीत, चित्रकारी, बागवानी, अथवा किसी अन्य मनोरंजक कार्य में योग देना चाहिये, साथ ही संतुलित आहार और भोजन सम्बन्धी नियमो को भी कड़ाई के साथ पालन करना चाहिए। पाचन के बहुत खराब होने पर केवल दूध या मठा पर कुछ दिनों तक रहना ठीक रहता है । अगर दूध से कब्ज होता हो तो दो भोजनो के बीच मे किशमिश या किसी रसदार फल का थोड़ा सा रस भी लेना चाहिए। इससे कब्ज न रहेगा। दूध मे थोड़ा पानी मिलाकर फेट देने से भी वह जल्द

पच जाता है। इस कार्य के लिये दुग्धाहार ६ मास तक मजे में चलाया जा सकता है।

कब्ज

कब्ज को कोष्ठबद्धता, विबंध, मलबंध, मलावरोध, आनाह, तथा विष्टब्धता आदि कई नामो से पुकारते है। अंग्रेजी मे इसको कान्स्टीपेशन कहते है।

मल जब बड़ी आंत मे जमा हो जाता है और किसी कारण से अपने रास्ते से बाहर नही निकलता बल्कि वही पड़ा-पड़ा सड़ा करता है तो उसे कब्ज होना कहते है। कुछ लोगो का रोज दस्त होते रहने पर भी कब्ज बना रहता है, और कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जिन्हे दो-दो दिन के बाद मे एक बार पाखाना होने पर भी कब्ज नही रहता। इसलिये हम मे से बहुतो को यह मालूम नही रहता कि कब कब्ज रहता है और कब नही ? परन्तु यह सत्य है कि आज कल ९९ प्रतिशत व्यक्ति इस रोग के शिकार है।

कब्ज के रोगी को पाखाना साफ नही होता, हमेशा सुस्ती छाई रहती है, पेडू कठोर और पेट भारी रहता है, सिर में दर्द रहा करता है, नीद ठीक से नही आती, मस्तिष्क खाली सा जान पड़ता है, भूख खुल कर नही लगती, तथा उसे अन्य कई रोग रहते है। कोष्ठबद्धता को सब रोगों का जन्म-दाता कहा जाता है। इसमे तनिक भी अतिशयोक्ति नही है।

मनुष्य-शरीर मे दो प्रधान कार्य अनवरत रूप से जीवन-पर्यन्त होते है। प्रथम जो कुछ भी हम खाते या पीते है वह जठराग्नि के संयोग से अनियन्त्रित जीवनी शक्ति द्वारा हमारे शरीर से मिलकर एकाकार होता रहता है। शरीर की इस क्रिया को हम एकीकरण (Assimilation) कहते है। द्वितीय, जो शरीर के भीतर पहुंची हुई वस्तु शरीर से मिलकर तद्रूप नही बन सकती, अर्थात विजातीय द्रव्य अथवा शरीर के लिए विकार रूप हैं, विष है, शरीर उनको बाहर निकाल फैंकने का प्रयत्न सदा-सर्वदा किया करता है। शरीर की यह क्रिया बहिष्करण (Elimination) कहलाती है। इसी क्रिया के लिए पाखाना पेशाब होते हैं, और नाक, कान, आंख तथा खाल आदि से सदैव मल वा पसीना निकला करता है। स्पष्ट है कि शरीर मे होने वाले दोनो कार्यो में बहिष्करण की क्रिया, एकीकरण की क्रिया से अधिक आवश्यक और उत्तम स्वास्थ्य के लिये परमोपयोगी है। कारण यदि दो, चार दस दिन या दो-एक महीनो तक मनुष्य भोजन न करे तो वह मर नही जायगा, किन्तु एक दिन के लिए मनुष्य का पाखाना पेशाब रुक जाय तो वह कदापि जीवित नही रह सकता है। शरीर की इसी परमावश्यक क्रिया में अड़चन पडने का नाम मलावरोध, कोष्ठबद्धता, या कब्ज है।

यदि हम अपने शरीर को एक बडे शहर से उपमा दे तो कोष्ठ-प्रदेश को उसका सबसे बड़ा कूड़ाखाना मानना पडेगा। यह कूड़ाखाना यदि प्रतिदिन नियमित रूप से साफ न होता रहेगा तो निश्चय ही शरीर रूपी शहर में रहने वाले अगणित अङ्गोपाङ्ग रूपी नगर-वासियो का स्वास्थ्य खतरे मे पड़ जायेगा और वे बीमार हो जायेगे इसलिये यदि हम पूर्ण स्वस्थ रहना चाहते है तो हमे कब्ज कभी नही होने देना चाहिये।

खान-पान का असयम कब्ज का मूल कारण है। अनाप-शनाप खाते रहने, ठूस-ठूस कर खाने, बिना भूख के खाने, तथा भोजन सम्बन्धी अन्य नियमो के पालन न करने से कोष्ठबद्धता की शिकायत अवश्यम्भावी है।

कोष्ठबद्धता के दुष्परिणाम

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, शरीर के लगभग सभी रोगो के मूल मे कोष्ठबद्धता अवश्य होती है, जिसके कारण रोगो की तीव्रता बढ जाती है। डा० हाव कहते है—"शरीर से विजातीय द्रव्य का बाहर निकलना जब बन्द हो जाता है तब टाइफाइड तथा हृदय और मूत्राशय के रोग उत्पन्न होते है।"

"हैंडबुक आफ फिजियालोजी" के पृष्ठ ४०७ पर W. A Halliburton, M D. लिखते हैं—"हमारी आंतो मे खाद्य पदार्थो का रस चूसने का कार्य अविराम गति से चलता रहता है। पर जब उन्ही आंतो मे मल जमा होकर सड़ने लगता है तब हमारी आंतें उस जमा हुये मल से उसके विष को भी चूसती हैं और चूसकर उस विष को रक्त मे मिला देती है जिससे रक्त विषाक्त हो जाता है जो नाना प्रकार के रोगो का कारण होता है।

Sir William Arbuthnot Lane का कथन है—"Constipation is the Root cause of all the diseases of civilization."

चिकित्सा

कब्ज होने पर बहुधा लोग जुलाब लेते है। किन्तु अनुभव से जाना गया है कि यह प्रयोग अंतडियो के लिये अत्यन्त हानिकारक है। चिकित्सकों की राय मे सदैव जुलाब लेना भी कब्ज पैदा करता है। इसलिए कब्ज मे जुलाब न लेकर यदि पहले गुनगुने पानी का तत्पश्चात ठडे पानी का एनिमा कुछ दिनो तक लिया जाय तो बहुत लाभकारी सिद्ध होता है। यह ख्याल गलत है कि एनिमा लेने से एनिमा की आदत पड जाती है।

नीचे कब्ज दूर करने के लिये कुछ अनुभूत उपचार दिये जाते है जिनको विधिवत चलाने से पुराने से पुराना कब्ज भी कुछ ही दिनो मे दूर किया जा सकता है—

१—जिन कारणो से कब्ज होता है उनको सर्वप्रथम दूर करना चाहिए।

२—एकदिन केवल जल पीकर उपवास करना चाहिए फिर दो दिन तक रसाहार। रसाहार के लिए गाजर और पालक के रस उत्तम रहेगे। तत्पश्चात ७ से १५ दिनों तक फलाहार। इन दिनो दोनो वक्त एनिमा लेना चाहिए। फलाहार के बाद एक वक्त दूध फल और दूसरे वक्त रोटी, सब्जी, दही और सलाद। भोजन मे फल और सब्जी की मात्रा अन्न से हर हालत मे दूनी रहनी चाहिए। जब कब्ज दूर हो जाय तो सादे और सात्विक भोजन पर आ जाना चाहिए। चोकरसमेत आटा, गदरे फल, धारोष्ण दूध, ताजी साग सब्जिया उबली और कच्ची, सादे और सात्विक भोजन वाले खाद्य पदार्थ है। घी, तेल, अचार, खटाई और मिठाइया गुरुपाक होने से उनका सेवन कदापि युक्तिसगत नही है और मिर्च-मसाले आदि का मोह तो सबसे पहले त्यागना होगा।

३—सुबह सोकर उठते ही परन्तु सूर्योदय के प्रथम सायकाल का रखा हुआ शुद्ध जल लगभग आधसेर या जितना आसानी से पिया जा सके, धीरे धीरे पीकर उसके थोडी देर बाद शौच जाना कब्ज को अति शीघ्र दूर करना है। इसी प्रयोग को वैद्यक शास्त्रो मे 'उषापान' कहा गया है। इसके अनेक गुण है।

४—सप्ताह मे एक दिन उपवास करने का नियम बना लेना चाहिए उस दिन ताजे जल मे कागजी नीबू का रस मिला कर काफी मात्रा में पीना चाहिए।

५—प्रतिदिन नियमित रूप से कोई हल्का व्यायाम और गहरी सास लेने की कसरत अवश्य करनी चाहिए। सुबह-शाम ३ से ५ मील तक शुद्ध वायु मे तेजी के साथ टहलना एक अच्छा व्यायाम है।

६—प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञ लूईकूने ने बालू को कब्ज की अचूक दवा कहा है। एक चुटकी समुद्री साफ बालू भोजन के बाद दिन मे दो तीन बार पानी के सहारे निगल लेना चाहिए। ऐसा करने से दूसरे ही दिन आँतें ढीली पड जाती है और उनमे का पुराना जमा मल निकलना आरम्भ हो जाता है, जिससे कुछ ही दिनो मे कब्ज से निजात मिल जाती है।

७—१ छटाक गेहूँ का साफ चोकर सवेरे शाम भोजन मे मिलाकर खाने से भी कब्ज दूर होती है। चोकर को चाहे जैसे खाया जा सकता है—रोटी मे मिलाकर, तरकारी मे मिलाकर वा दाल मे डालकर।

८—आधे गिलास ठडे पानी मे एक कागजी नीबू का रस डालकर दिन मे ४ से ६ बार तक पीना इस रोग में लाभ करता है।

९—एनिमा द्वारा प्रातःकाल गुनगुने पानी से जिसमे दो-तीन बूंद कागजी नीबू का रस मिला हो, पेट साफ कर लेना चहिये। इस प्रयोग को जब भी पेट भारी हो, करना चाहिये।

१०—भोजन करने के आध घटा पहले थोड़ा गुनगुना पानी पीना लाभ करता है।

११—भोजन के साथ जल बहुत कम या बिलकुल ही न पिया जाय। भोजन करने के दो घण्टा बाद इच्छानुसार जल पीना चाहिये।

१२—प्रात साय शक्ति अनुसार ५ से २० मिनट तक उदर स्नान करना, या पेडू पर एक घटे तक मिट्टी की पट्टी बाधना लाभ करती है।

१३—डा० कैलाग के मतानुसार कब्ज के रोगी और निरोगी—दोनो को टट्टी की हाजत पाच मिनट भी न रोकनी चाहिये। इस सम्बन्ध मे बगला में एक कहावत है—

जाई कि ना जाई जाओयाइ उचित।
खाई कि ना खाई ना खाओइ उचित॥

अर्थात् शौच जाय कि न जाय, इस द्विविधा के मन में उत्पन्न होने पर शौच जाना ही उचित है। और खाये या न खाये, यह द्विविधा पैदा हो तो भोजन न करना ही न्यायसगत है।

१४—सवेरे नाश्ता करने की आदत छोड देने से कोष्टबद्धता के रोगी को बड़ा लाभ होता है।

१५—नारंगी या पीली बोतल मे बनाया हुआ सूर्य-तप्त जल २॥ तोला, दिन मे तीन बार पीना चाहिये।

१६—'सूर्य नमस्कार' कसरत यदि विधिपूर्वक कर ली जाय तो कब्ज बहुत जल्दी दूर हो जाता है। प्रति-दिन प्रातःकाल उठते ही १०—१५ मिनट पेट की सूखी मालिश करना भी लाभ करता है। नाभि के चारों ओर हथेलियो से मर्दन करने और हाथों को दाहिनी ओर से बाई ओर को लाने से कब्ज दूर हो जाता है।

१७—कब्ज पुराना होने पर पहले ७ दिन तक सवेरे पाखाना से आने के बाद ३० मिनट के लिये Wet girdle (कमर की भीगी पट्टी) का प्रयोग करे। पर यदि कब्ज पुराना होने के कारण न जाय तो इस पट्टी को रात को लगाकर सोना चाहिये और सुबह को खोलना चाहिये। पट्टी इस तरह बाधियेः—

मामूली आठ-नौ इञ्च चौडे एक कपडे को पानी मे भिगो-कर इस प्रकार निचोडे कि उससे बूद-बूद पानी न टपके। नाभि के चार-पांच अगुल ऊपर से सारा पेड और कमर के चारो ओर लपेट देना चाहिये। इस कपड़े को दो से चार बार घुमाकर लपेट लेना काफी है। इस कपडे को लपेट कर एक बड़े फलालैन का टुकडा या शाल तह करके उसे उसके ऊपर इस तरह लपेट देना चाहिए कि भीगे कपडे मे हवा न लगने पावे और न खून का दौरा ही बंद हो, इसके बाद फलालैन को भीगे कपड़े के साथ एक सेफ्टी-पिन द्वारा अटका दे।

१८—सप्ताह मे १ दिन 'एप्समसाल्ट बाथ' भी देना चाहिए।

१९—पाद-हस्तासन वा पश्चिमोत्तान आसन से कब्ज बहुत जल्द दूर हो जाता है। इन आसनों को इस प्रकार करियेः—

दोनो पैरों को जोड़कर, दोनो हाथ ऊपर उठाकर सीधे खडे हो जाइये। धीरे-धीरे झुकिये और साथ ही हाथो को झुकाइये। पेट को जहा तक हो सके अन्दर खीचिये। पेट और पीठ को एक बनाने का प्रयत्न कीजि[ये।] दोनो हाथो की उगलियो से दोनो पैरो के अगूठे पकडि[ये।] इस बात का विशेष ध्यान रखिये कि हाथ, पैर और घु[टने] सीधे रहे, झुकने न पावे। धीरे-धीरे सिर को दो[नों] घुटनों के बीच मे लाने का प्रयत्न कीजिये। इस स्थि[ति] का अभ्यास कर लेने के बाद दोनो हथेलियो को पृ[थ्वी] पर टेक दीजिए, पैर की दोनो एडियो को भी पृथ्वी [पर] जमी रहने दे। यह आसन दोनो समय कम से कम [...] मिनट तक करना चाहिए। यही पादहस्तासन है। इस आसन को बैठकर किया जाता है तो इसका [नाम] पश्चिमोत्तान हो जाता है।

२०—कुछ दिनो तक रात मे एक-दो तोला त्रिफ[ला] चूर्ण या केवल छोटी हरड का मोटा चूर्ण सेवन कर[ने से] कब्ज के टूटने मे आसानी होती है।

अजीर्ण

अजीर्ण को बदहजमी, अपच मन्दाग्नि, तथा अ[ग्नि]मान्द्य भी कहते है। अग्रेजी मे इस रोग का [नाम] Dyspepsia है, इस रोग के कारण वे ही हैं जो [कब्ज] के है।

भोजन ठीक से न पचना, खट्टी डकारे आना, फूलना, उसमे मीठा-मीठा दर्द होना, गले व कले[जे में] जलन होना, मुंह में भीतर से पानी आना, जी मचला[ना,] दिल की धड़कन, घबराहट, दिमागी परेशानी, पाख[ाना] न होना या पतला पाखाना होना, तथा भूख न ल[गना] आदि अजीर्ण के लक्षण है।

चिकित्सा—प्रथम-प्रथम तीन दिनो का उप[वास] कागजी नीबू के रस मिले जल पर रहकर करना चा[हिए] या फलो के रस पर रहना चाहिए। गाजर, सतरा, टम[ाटर] आदि के रस ठीक रहेगे। उसके बाद चार-पाच दिनों [तक] अल्पाहार करना चाहिए। सुबह एक मीठा मेव या दो पके टमाटर, दोपहर को कोई उबली हुई हरी तरकारी और थोडा मठा, तीसरे पहर गाजर, टमाटर या अननास का रस, तथा रात मे थोडी सी उबली हुई तरकारी या उसका केवल रस लेना चाहिए। इन दिनों गुनगुने पानी का एनिमा भी एक वक्त या दोनो वक्त लेना जरूरी है।

उपवास और अल्पाहार के बाद भूख और पाचनशक्ति

के अनुसार सादा और सात्विक आहार करना आरम्भ करना चाहिए।

हलका व्यायाम, शुष्क घर्षण-स्नान, खुली हवा मे वास तथा मानसिक शांति इस रोग को दूर भगाने मे बडी सहायता करते है। मामूली अजीर्ण तो इतने ही उपचार से ठीक हो जाता है परन्तु प्रबल और पुराने अजीर्ण मे नीचे के उपचार आवश्यकतानुसार और जोड़ देने चाहिए।

(१) सप्ताह मे एक दिन 'एप्सम-साल्ट बाथ' ले या प्रतिदिन दो बार पेट को गरम पानी मे तौलिया भिगो-भिगोकर १५ मिनट तक सेके। बीच-बीच मे ३-४ मिनट पर ठंडे पानी से भीगी तौलिया से भी एक मिनट तक सेके। या भोजन के बाद एक-डेढ घंटा तक पाक स्थली के ऊपर गरम जल की बोतल या थैली रखकर फेरें या पेड़ू, पेट, और पीछे की तरफ मेरुदण्ड के निचले हिस्से पर गरम-ठंडी सेक दे।

(२) रात भर के लिए पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी रखे या कमर की भीगी लपेट लगावे।

(३) भोजन के एक घण्टा पहले एक गिलास ठंडे जल में एक कागजी नीबू का रस डालकर पीवे।

(४) आवश्यकता होने पर सबल रोगी को समूचे शरीर की भीगी चादर की लपेट, वाष्पस्नान या आतप-स्नान भी कराया जा सकता है जिससे जल्दी लाभ होता है।

(५) उदर और मेहन-स्नान विशेषकर गरम और ठंडा उदर-स्नान इस रोग मे बड़ा लाभ करता है। ५ मिनट तक गरम पानी में उदर-स्नान करने के बाद ३ मिनट तक ठंडे पानी मे वही स्नान लेना चाहिए और इस क्रिया को ३-४ बार दोहराना चाहिये।

(६) धनुरासन और उत्थानपादासन इस रोग मे उपकारी होते है।

(७) नीली बोतल के सूर्यतप्त जल की ४ खुराके आधी छटाक की रोज पीनी चाहिए।

दस्त और संग्रहणी

गरिष्ट भोजन करने, भोजन के अन्य आवश्यक नियमो के पालन न करने, मौसम के बदलने, ठंड लगने तथा शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र होने के फलस्वरूप दस्त और संग्रहणी रोगों की उत्पत्ति होती है। संग्रहणी को दस्त का उग्र और पुराना रूप समझना चाहिये। दस्त को अतिसार और डायरिया भी कहते हैं।

इन रोगो मे बार-बार पतले दस्त आते है जिनमे कभी-कभी असह्य बदबू होती है। रोगी की श्वास भी दुर्गन्धयुक्त होती है। पेट मे दर्द और कभी कभी मतली और कै की भी शिकायत होती है। सिर दर्द और थोड़ा ज्वर भी हो जाता है।

चिकित्सा

इन रोगो मे दस्त को शीघ्र बन्द करने की कोशिश भूल से भी नही करनी चाहिए। पेट गरम होकर पतला दस्त आरम्भ होते ही पेट के ऊपर मिट्टी की गीली पट्टी का प्रयोग करना चाहिए और दो-दो घंटे के अन्तर से उसे बदलते रहना चाहिए। साथ ही दिन मे दो बार पेट के ऊपर गरम पानी से भरी थैली से सेंक देना चाहिए या गरम पानी मे तौलिया भिगो-भिगोकर और निचोड़कर उससे सेकना चाहिए। एक दिन का उपवास केवल पानी पीकर करना चाहिए। फिर मठा, छेना का पानी, बार्ली या अरारोट आदि तरल खाद्य पदार्थ लेने चाहिए। इससे दस्त की बीमारी धीरे-धीरे अच्छी हो जाती है। दस्त मे गुनगुने पानी का एनिमा भी लेने से पेट जल्दी साफ हो जाता है।

पुराने दस्त या संग्रहणी में नीचे के उपचार चलाने चाहिए—

१—जब तक रोग का जोर कम न हो जाय केवल मठा का सेवन करना चाहिए। रोज पाव-पाव भर मठा आठ बार मे पीना चाहिए। कुछ दिनो बाद मठे के साथ थोडी किशमिश भी लेने लग जाना चाहिए सुबह, शाम और दोपहर को तीन बार। भूख बढ़ने पर किशमिश की मात्रा ३ छटाक तक की जा सकती है। संग्रहणी का जोर कम हो जाने पर या दो मास बाद सुबह और शाम मठा और किशमिश तथा दोपहर को दलिया और उबली तरकारी लेना चाहिए।

२—पेट आदि गरम हो तो एक-एक घंटा बाद मिट्टी की गीली पट्टी देना चाहिए। यदि गरम न हो तो पेट पर १५-२० मिनट तक भाप देने के बाद २ घंटा के लिये मिट्टी की पट्टी देना चाहिए और

चिकित्सा:—

(१) हैजे के लक्षण दृष्टिगोचर होने से लेकर जब तक रोग मुक्त न हो जाय, उसे किसी प्रकार का ठोस भोजन न दे ।

(२) किसी प्रकार की दवा इस्तेमाल न करे ।

(३) रोगी को स्वच्छ स्थान मे रखे जहा ताजी हवा और मृदुल सूर्य-रश्मियां उसे प्राप्त हो सके ।

(४) प्यास लगने पर औटाकर ठंडा किया हुआ केवल शुद्ध जल या उसमें नींबू का रस भी मिलाकर थोड़ी-थोडी मात्रा में अवश्य दे ।

(५) हैजा शुरू होते ही, अर्थात् प्रथम दस्त के बाद ही रोगी को गरम जल का एक डूस दे देना परमावश्यक होता है, इससे डूश के जल के साथ-साथ शरीर का यथेष्ट विष एव हैजा के अनगिनित जीवाणु बाहर निकल जायेंगे और शरीर बहुत हल्का और मलरहित हो जायगा। सूखे हैजे मे रोगी को थोड़ी-थोड़ी देर के अन्तर से २-३ बार एनिमा देना बड़ा लाभ करता है। डूश या एनिमा देने के थोड़ी देर बाद रोगी को गरम जल पिलाकर एक वाष्प-स्नान देना चाहिए। यदि वाष्प-स्नान न दिया जा सके तो रोगी को कम्बल आदि ओढ़कर ही पसीना लाने की कोशिश होनी चाहिए। तत्पश्चात् शक्ति के अनुसार १० से २० मिनट तक का उदर-स्नान. पैरों को बाहर मामूली गरम पानी से भरे बर्तन मे रखकर देना चाहिए। उसके बाद रोगी को गरम कपड़ा उढाकर आराम से लिटा देना चाहिए ताकि उसे फिर कुछ गर्मी आजाय। यह क्रिया तीन-चार बार दोहरावें। यदि इस क्रिया के करने मे जल्दी की गयी तो दो-तीन उदर-स्नान मे ही लक्षण सुधर जायेगे। बहुत बार तो एक स्नान मे रोग वश मे आकर खतरा टल जाता है। लेकिन जब-जब दस्त आये तब-तब शक्ति के अनुसार ७ या १० मिनट के लिए उदर-स्नान दे। यह न हो सके तो १०-१० मिनट पर पेडू पर पिंडोल मिट्टी की पट्टी २०-२० मिनट के लिये बांधें। अक्सर पहली पट्टी देते ही पेशाब उतर आता है। इन स्नानो के देने के बाद या बीच मे रोगी को हल्का ज्वर आजाय तो समझना चाहिये कि खतरा टला। कुछ हालतो मे ज्वर नही भी आता है।

दस्त बन्द न होते हो तो पेड़ को ५-७ मिनट तक गरम जल मे कपड़ा भिगोकर उसी से सेकना चाहिए। फिर तुरन्त ८-१० मिनटो का उदर या मेहन स्नान देना चाहिये या मिट्टी की गीली पट्टी बाधकर रोगी को गरम कपड़ो मे लपेटकर बिस्तर पर लिटा देना चाहिए। यह न हो सके तो एक नम्बरी ईंट को आग मे तपाकर उसे ऊनी कपड़े मे लपेटकर रोगी की गुदा के नीचे रख देना चाहिए। थोडी देर के बाद रोगी को आध घंटा तक एक मेहन स्नान देकर पुन: उसे गरम कपडे ओढाकर उसके शरीर मे गरमी लाना चाहिए। इस क्रिया को आवश्यकतानुसार कई बार दोहराना चाहिए।

(६) नीली बोतल का सूर्य तप्त जल १-१ औंस आधे-आधे नीबू का रस मिलाकर ५-५ या १०-१० मिनट पर रोग की तेजी और कमी के अनुसार रोगी को तब तक पिलाना चाहिए जब तक कै-दस्त बन्द न हो जायें।

(७) हाथों-पावों की ऐंठन मे उन्हे थोड़े समय के लिये गरम जल मे डुबो रखें फिर निकालकर सहने योग्य गरम जल मे भीगा कपडा उन पर लपेटकर उसके ऊपर से गरम सूखा कपडा लपेट दे या उन पर शुष्क घर्षण करे।

हाथ-पांव ठडा हो जाने पर उनको फलालैन के टुकड़े से रगड़ कर गरम करना चाहिए।

(८) जहा पर उपर्युक्त उपचारो मे से कुछ भी करना सम्भव न हो वहा रोगी को किसी जलाशय या नदी के बहते पानी मे गले तक एकाध घंटा बैठाये या लेटाये रखे। ऐसा करने से हैजे का जोर कम होकर खतरा टल जायगा। मालूम होता है जल के इसी गुण को दृष्टि में रखकर हैजे से मरे व्यक्तियों को जलाने के बजाय उन्हे नदी मे फेंक देने की प्रथा चलाई गई है कि शायद हैजे के रोगी को हम मरा समझते है वह वास्तव मे मरा नही और कदाचित नदी के बहते जल के प्रभाव से वह पुन. जीवन लाभ कर ले।

(९) दस्त-कै बिलकुल बन्द हो जाने के एक दिन बाद रोगी को पानी मिलाकर फलो का रस दिन मे दो-तीन बार देना चाहिए। दूसरे, तीसरे दिन बिना पानी मिला हुआ रस और चौथे दिन थोड़ा पतला

दलिया, पाचवे दिन मीठे रसदार फल तथा उसके बाद धीरे-धीरे रोगी को हल्के एव सादे भोजन पर लाना चाहिए।

कै और मतली

जब खाया हुआ भोजन पाकस्थली से बिना पचे मुख में वापस आकर बाहर निकलना चाहता है तो उसे मतली कहते है और जब वह मुख द्वारा निकलने लगता है तो उसे कै होना कहते हैं। कै को कभी जबर्दस्ती रोकने की कोशिश नही करनी चाहिए। बल्कि मतली हो और कै न हो तो हल्का गरम पानी पीकर कै कर देना चाहिए ताकि पेट साफ हो जाय। यदि मतली हो और गरम पानी पीने पर भी कुछ न निकले तो उपचार द्वारा मतली को बन्द करना जरूरी है।

चिकित्सा

ठडे पानी मे एक या आधा कागजी नीबू निचोड़ कर पीने से कै मे लाभ होता है। साथ ही पेट पर मिट्टी की ठडी गीली पट्टी या ठडी कपडे की पट्टी देने से कै बन्द हो जाती है। उदर-स्नान से भी कै बन्द हो जाती है। रोग की बढी हुई दशा मे पेट पर १ घंटा तक वाष्प-स्नान देने के बाद कमर मे गीली चादर की लपेट देना बडा उपकारी होता है। यह लपेट रात भर रखनी चाहिए। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार दिन मे दो बार कटि-स्नान भी लेना चाहिए।

जब तक रोग दूर न हो जाय तब तक कुछ भी खाना पीना नही चाहिए। केवल नीबू का रस मिला हुआ जल ही लेते रहना चाहिए।

पेचिस

पेचिस उर्दू शब्द है। आम बोलचाल मे इसे आंव कहते है। सस्कृत मे इसका नाम आमाशय तथा अंग्रेजी मे Dysentery है। पेचिस की वजह से बड़ी आत की दीवारो मे जख्म हो जाते हैं जिनसे रक्त रिस-रिस कर आव के साथ मिलकर गिरने लगता है। इसे ही रक्तामाशय कहते है। पेचिस नई और पुरानी दो किस्म की होती है। पेचिश होने का एकमात्र कारण कब्ज है।

लक्षण

शौच साफ न होना, बार बार शौच जाने की जरूरत पड़ना, हाजत का बना रहना तथा पेट मे ऐंठन और दर्द होना पेचिश के प्रधान लक्षण है।

चिकित्सा

नई पेचिश का उपचार बहुत सरल है। रोग के प्रकाश में आते ही जल पर रहकर ४ से ७ दिन तक उपवास करना चाहिए। रोज गुनगुने पानी का एनिमा लेना चाहिए। जब तक रोग का जोर कम न हो जाय केवल गरम जल पीना चाहिए। सुबह शाम पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी आध-आध घंटे तक रखनी चाहिए। उपवास के बाद से लेकर आंव के बिलकुल साफ हो जाने तक फलों के रस या उबली तरकारियो के रस पर रहना चाहिये। उसके बाद दिन मे एक बार उबली तरकारी और दो बार रस लेना चाहिए। फिर दोपहर और शाम को उबली तरकारिया। दो तीन दिन बाद तरकारियो के साथ गाय का ताजा मठा लेना चाहिए। धीरे-धीरे मठा की मात्रा बढाकर दो सेर तक ले जानी चाहिए जिसे दिन मे चार बार मे पीना चाहिए। दोपहर शाम तरकारियो के साथ और सबेरे तथा तीसरे पहर अकेले। तत्पश्चात् धीरे धीरे साधारण सात्विक और सादे भोजन पर आ जाना चाहिए।

पुरानी पेचिस के अच्छा होने मे एक मास से साल भर तक लग सकते है। इसका इलाज भी वही है जो नई पेचिस का। फिर भी आवश्यकतानुसार नीचे लिखे उपचार भी उनमे जोडे जा सकते हैं—

(१) पेडू पर भाप देने के बाद सुबह–शाम उदर–स्नान लेना चाहिए।

(२) पेट मे ऐंठन और दर्द की हालत मे पेट पर गरम और ठंडी सेक देना चाहिए। पहले १० मिनट तक गरम सेक फिर आध मिनट तक ठडी सेक, अथवा समूचे पेट पर मिट्टी की गीली गरम पट्टी।

(३) रात को सोते वक्त कमर पर भीगी चादर की लपेट देकर सोना चाहिये।

(४) प्रतिदिन हल्का व्यायाम और सास की कसरतें करनी चाहिये।

(५) यदि आव मे भी खून जाता हो तो आसमानी रंग की बोतल के सूर्य तप्त जल की ४ खोराके (आधी छटांक की) रोज पीना चाहिये नही तो हरी और गहरीनीली बोतलो के सूर्य तप्त जल को बराबर–बराबर

मिलाकर, उसकी उतनी ही खोराके।

(६) जबतक स्राव का गिरना बद न हो तब तक अन्न को छूना भी नही चाहिए, अपितु केवल रसाहार पर रहना चाहिए। उसके बाद धीरे-धीरे अपने भोजन मे मठा, बकरी का दूध, फल, दही, चूडा, खूब पका केला, पके बेल का गूदा, कच्चा बेल आग मे पकाकर, पुराना गुड, बेल की १०-१२ पत्तियां, भुना आलू पुरानी इमली तथा भुना कच्चा केला, आदि पेचिश को दूर करने वाले खाद्य पदार्थ जोड़ने चाहिये।

(७) अच्छा हो यदि आरम्भ मे दो–तीन बार आठ–आठ आने भर की मात्रा मे इसबगोल आठ-दस घटे पानी मे भिगोकर लिया जाय। इसकी चिकनाई से आतो की जलन मे काफी सुधार होता है।

जलोदर

जलोदर को संस्कृत मे शोथ तथा अ ग्रे जी मे Dropsy कहते है। इस रोग के भी मूल मे अजीर्ण ही होता है, जिससे यकृत पित्ताशय गुर्दे और दिल कमजोर हो जाने के कारण अपना–अपना काम ठीक नही कर पाते जिसके फलस्वरूप रक्त ही वहीं बन पाता। दूसरे, जो रक्त शरीर मे पहले से मौजूद होता है वह शरीर स्थित विजातीय द्रव्य की कमी के कारण पिघल कर पानी हो जाता है जो शरीर के किसी भाग के तन्तुओ या गह्वर मे जमा होकर शोथ-रोग की उत्पत्ति का कारण बनता है। यह जल–सचय समूचे शरीर में या शरीर के किसी भाग विशेष मे हो सकता है। जब यह जल उदर मे जमा हो जाता है तो उसे जलोदर कहते है।

जलोदर रोग से पीड़ित रोगी को साधारण जल भी नही पचता, शरीर जलवद्ध हो जाता है। शरीर के मल का निष्कासन, गुदा, मूत्र, तथा पसीने द्वारा न होने के कारण बढ जाती है। पेट मे काफी पानी जमा हो जाने के कारण वह फूल जाता है। रोग की बढी हुई अवस्था मे मुह, पैरो और हाथों पर भी काफी सूजन आजाती है। कभी–कभी रोगी को ज्वर भी हो आता है जो १०१ तक चला जाता है। शोथ की जगह पर अ गुली से दबाने से उस स्थान पर गड्ढा पड़ जाता है।

चिकित्सा–डाक्टर लूई कूने ने अपनी किताब में शोथ या जलोदर रोग का अच्छा होना असम्भव लिखा है। पर ऐसी बात नही है। क्योकि प्राकृतिक चिकित्सको का अनुभव है कि इस रोग के मरीज अच्छे हो सकते है और कितने ही अच्छे हुए भी है।

जलोदर के इलाज मे इस प्रकार के भोजन और पेय देने चाहिये जिनसे पेशाब साफ हो तथा शरीर के विकार निकले, पर शरीर की पाचन शक्ति को इसके लिये बिलकुल काम न करना पडे। इसीलिए इस रोग मे शुरू ही से भोजन करना और जल पीना बिलकुल ही बद कर देना चाहिये और प्यास व भूख लगने पर दही का पानी, मखनिया दूध, खालिस गाय के दूध का मक्खन उतरा हुआ ताजा मठा, तथा रसदार फलो के रस के अलावा और कुछ भी नही देना चाहिए।

यदि रोगी बहुत कमजोर नही है तो उसे एक दिन का उपवास करना चाहिए। पेट जहा तक सूजा हो वहा तक रोज एक या दो बार मिट्टी की गीली पट्टी लगानी चाहिए। कुछ दिनों तक प्रति दिन सोने से पहले या सुबह उठने के बाद गुनगुने पानी का एनिमा लेकर पेट साफ कर लेना चाहिये। इस रोग मे दिल बडा कमजोर होता है। इसलिये दिन मे तीन बार १५ से ३० मिनट तक के लिये उस पर कपडे की ठडी पट्टी रखना चाहिए और पट्टी हटा ले ने के बाद उस स्थान को मल कर लाल कर देना चाहिए। रोगी को साफ और खुली जगह मे रहना चाहिए और कभी–कभी हल्की धूप मे थोडी देर बैठना चाहिए। उस वक्त सारे शरीर पर विशेषकर रोगी स्थान पर नारगी रंग का प्रकाश १५–२० मिनट तक डालना चाहिये।

जलोदर रोगी को नारंगी रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल की ६ खोराके (आधी छटाक की) रोज पीनी चाहिए।

पेट का दर्द

दर्द क्या है?–डाक्टर टी० डी० पामर ने एक स्थान पर लिखा है—'शरीर मे कहीं भी दर्द लाल झण्डी के समान है। इसे देखते ही खाना रोक दीजिए सब ठीक हो जायगा। यदि आपने उसकी उपेक्षा की तो दुर्घटना के लिये तय्यार रहिये।' इस कथन से स्पष्ट है कि दर्द वास्तव मे स्वय कोई रोग नही है अपितु वह रोग का एक लक्षण मात्र है। शरीर के किसी भाग मे दर्द उत्पन्न

के प्रकृति हमे सूचना देती है कि शरीर के उस भाग मे कोई गडबडी है और वहा [illegible] अङ्ग या भाग रोगी है, उधर जल्दी ध्यान देना चाहिये। तरह दर्द भगवान की एक बहुत बडी देन साबित होता है जिसका महत्व, रोग से किसी भी हालत में कम है। रोग मलपूर्ण शरीर को निर्मल बनाने आते हैं र दर्द शरीर की उस अस्वाभाविक अवस्था को पहले बता देते ताकि हम शरीर को पुन निर्मल बनाने मे प्रकृति की यथाशक्ति सहायता समय पर कर सके।

दर्द की चिकित्सा—उद्वेग को प्राप्त विजातीय द्रव्य जब शरीर की स्नायुओ पर अनावश्यक दबाव पडता तब दर्द या पीडा की उत्पत्ति होती है। प्राकृतिक उपचारो द्वारा उस स्थान की अनावश्यक गर्मी को दूर करके रक्त सञ्चालन को तीव्र कर दीजिये, दर्द छूमन्तर हो जायगा। मामूली दर्द तो मात्र ठडा जल प्रक्षालन या गर्म ठडे जल या केवल ठडे जल से भीगी पट्टियो के दो एक बार के प्रयोग से ही दूर हो जाता है। परन्तु बिच्छू आदि जहरीले जानवरो के काटे जैसे सख्त दर्द मे उस स्थान से काफी दूर तक और कई बार बदल-बदल कर मोटी ठडी पट्टिया बाधनी पड़ती है, तथा ऐसे कड़े दर्दों मे समूचे शरीर का या स्थानीय वाष्प नहान, ठडे नहानो, उपवास, तथा एनिमा आदि की भी जरूरत पड़ सकती है।

पेट के दर्द के अनेक कारण—पेट मे दर्द अनेक कारणो से हो सकता है। उनमे से कुछ निम्नलिखित है—

१—पाकस्थली या आतो आदि मे सूजन वा घाव जैसे क्षत होने से।

२—पेड़ू मे बहुत दिनो तक विकार एकत्र रहने से।

३—पाकस्थली यकृत तथा आते आदि जिस वेष्टन में वेष्टित होती है, उस वेष्टन की भीतरी झिल्ली में जलन और प्रदाह होने से।

४—पाकस्थली वा आतो मे गैस (वायु) भर जाने से।

५—पाकस्थली मे किसी उत्तेजक पदार्थ के पहुँचने या वहा उपस्थित होने से।

आमाशय वा आंतों में घाव—आमाशय के घाव उसकी भीतरी दीवारो पर होते हैं। उन्हे अग्रेजी मे Gastric ulcer कहते है। इन घावो की वजह से पेट म थोड़ा-थोड़ा [illegible] होता है जो खाना खाने के बाद [illegible] है। [illegible] रोगी को यह [illegible] होता है और कुछ खाने पर [illegible] है। नाभि के थोड़ा ऊपर [illegible] जो दबाने से बढता प्रतीत होता है। इसीलिए रोगी उस स्थान पर कोई [illegible] नहीं करता। इस रोग मे मतली और कै प्राय साथ-साथ चलती है। कै हो जाने पर रोगी को थोड़ा आराम मालूम होता है। कभी-कभी खून की कै भी होती है जिसका रग कुछ-कुछ काला होता है।

आमाशय, छोटी आत से जहा मिलता है उसको ग्रहणी या अग्रेजी मे 'ड्योडिनम' कहते है। इस स्थान पर के घाव को अग्रेजी में Duodenal ulcer कहते है। इसमे दाहिनी पजरी के नीचे खाना खाने के बाद तीन घटा के भीतर-भीतर दर्द होता है। कभी-कभी साथ-साथ कै भी होती है जिससे रोगी को आराम मिलता है। पुराने रोग में घाव से रक्तस्राव भी होता है जो मुख और मल के साथ बाहर निकलता है।

शरीर मे विजातीय द्रव्य के भार के कारण जब रक्त दूषित हो उठता है, तभी आमाशय और आत मे घाव, सूजन या क्षत होते है। अत. इस रोग के मूल मे कब्ज जरूर होता है।

चिकित्सा

पेट में घाव होने के कारण कोई भी ठोस पदार्थ खाने से तकलीफ के बढ जाने की पूरी-पूरी सम्भावना रहती है। इसलिए जब तक तकलीफ काफी कम न हो जाय तब तक केवल ताजे धारोष्ण दूध पर ही रहना ठीक है। रोज तीन-चार सेर दूध हर दो घण्टे पर दो-दो प्याला की मात्रा से ७ बजे दिन से ७ बजे रात तक पीना चाहिये। साथ मे दो एक नारगी का रस भी लिया जा सकता है। फिर धीरे-धीरे फलो का रस या तरकारी का रस, तत्पश्चात फल और दूध, अन्त मे सादे एव प्राकृतिक आहार पर आ जाना चाहिए। दिन मे तीन चार सेर पानी भी पीना आवश्यक है। नमक खाना एकदम बन्द रखना चाहिए। दूध न मिलने पर उसकी जगह पर शाक तरकारी का पतला रस या मीठे फल का

रस पानी मिला कर काम मे लाना चाहिए। मीठा मठा भी दूध की जगह इस्तेमाल हो सकता है। दो-तीन दिन केवल जल पर रह कर उपवास कर लेने के बाद यदि दूध पीना आरम्भ किया जाय तो फल अच्छा होता है।

इस रोग मे जब तक कब्ज दूर न हो जाय रोज एनिमा लेना जरूरी है। सप्ताह मे दो बार 'एप्सम साल्ट बाथ' लेना चाहिए और चार बार गरम और ठंडा उदर-स्नान। यह स्नान रात को सोने से प्रथम लेना चाहिए।

रात को सोते समय कमर की गीली पट्टी लगाकर सोना चाहिए या दिन में दो बार पेट पर गीली पट्टी रखनी चाहिए। दर्द दूर करने के लिये पेट पर गरम ठंडी सेक करनी चाहिए। कै न बन्द हो तो खूब ठंडे जल से भीगी कपड़े या मिट्टी की ठंडी पट्टी पेट पर लगानी चाहिए। मुंह से रक्तस्राव होने पर रोगी को आराम से चित लेटा रहना चाहिए और उसके मुख मे बर्फ के छोटे-छोटे टुकडे देते रहना चाहिए।

यदि सम्भव हो तो रोगी को दिन मे दो बार मेहन स्नान और दो बार तौलिया स्नान भी करना चाहिए।

(२) पेडू में बहुत दिनों तक विकार एकत्र रहने से दर्द—जब तक दर्द न जाय तब तक उपवास करके या रसाहार करके सहने योग्य गरम पानी मे आधा कागजी नीबू का रस डालकर दोनो समय एनिमा लेना चाहिए। एनिमा लेने के पहले यदि आध घटा तक पेडू पर मिट्टी की पट्टी भी रखी जाय तो लाभ शीघ्र और अधिक हो। साथ ही दिन मे तीन-चार सेर पानी कागजी नीबू का रस या सन्तरे का रस मिलाकर जरूर पीना चाहिए। सुबह सोकर उठने के बाद और शाम को सोने के पहले पीने का यह पानी सहने योग्य गरम होना चाहिए। अक्सर पेडू पर पहले गरम मिट्टी की पट्टी ५-७ मिनट तक बाधने के बाद तुरत ठंडी मिट्टी की पट्टी आध घटे तक बांधने या गरम ठंडी सेक देने से दर्द चला जाता है। सप्ताह मे दो बार पेडू पर भाप देने से काम जल्दी बनता है तथा रात भर के लिये कमर की भीगी पट्टी बाधना भी उपकारी होता है।

पेट की इस पीड़ा में पेट को दबाये रखने से रोगी को आराम मालुम होता है तथा इसके साथ ज्वर नही होता, पेडू मे बहुत दिनो तक मल एकत्र रहने के कारण पेट मे दर्द होने की यही पहचान है।

(३) पेट मे भीतरी वेष्टन में जलन होने के कारण दर्द—इस रोग को अंग्रेजी मे Peritonitis कहते हैं। पेचिश, कैंसर तथा टायफाइड आदि रोगो के परिणाम स्वरूप जब पेट के भीतरी वेष्टन की झिल्ली मे विजातीय द्रव्य जम जाता है तो उसके फलस्वरूप वहा घाव हो जाते है जिससे पेट मे असह्य पीड़ा होने लगती है जो पेट को दबाने और हिलाने-डुलाने पर बहुत बढ जाती है। पेट फूल कर काठ के समान कड़ा हो जाता है। रोगी को अधिक प्यास लगती है। कै भी होता है और ठंडा पसीना छूटता है।

चिकित्सा

थोडा मधु मिला गुनगुने पानी का एनीमा दिन में दो बार चार पाच दिनो तक देना चाहिए। उसके बाद १५ से २० मिनट तक पेट पर वाष्प देने के बाद एक घंटा के लिये ठंडी पट्टी लगानी चाहिए। दिन मे दो बार तौलिया स्नान तथा सप्ताह मे एक बार 'एप्सम साल्ट बाथ' देना चाहिए। रात भर मिट्टी की गीली पट्टी या कमर की गीली पट्टी लगानी चाहिए।

जब तक रोग का जोर बहुत ही कम न हो जाय तब तक सिवा नीबू का रस मिले हुये जल के कुछ भी खाना पीना नही चाहिए। उसके बाद धीरे-धीरे सादे भोजन पर लाना चाहिए।

(४) पेट में वायु भर जाने से दर्द—इस रोग को अंग्रेजी में Flatulence कहते है। इसमे पेट फूल जाता है, कलेजे मे जलन होती है, डकारें आती है तथा कभी-कभी श्वास कष्ट भी होता है। अजीर्ण इस रोग का कारण है।

दो-तीन दिनो तक उपवास करके और दोनो समय एनिमा लेकर पेट साफ कर लेना चाहिए। नीबू का रस मिला जल प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए। पेट पर गरम ठंडी सेक देने के बाद दिन में दो बार पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगानी चाहिये। कुछ दिनों तक रात भर के लिये कमर की गीली पट्टी लगानी चाहिये तथा रात को सोने से पहले १०-१५ मिनट तक कटि स्नान करना चाहिये।

रोज सुबह उठते ही और रात को सोने से पहले एक कागजी नीबू का रस एक गिलास गरम पानी मे निचोड कर पी जाना चाहिये।

पेट के सभी प्रकार के दर्द मे गहरी नीली बोतल के सूर्य तप्त जल की ६ खुराके (आधी-आधी छटांक की) रोज पीना लाभकारी है।

(५) पेट में किसी उत्तेजक पदार्थ के पहुँचने से दर्द — यह दर्द पेट पर बारी-बारी से गरम और ठडी सेक देने और उसके बाद मिट्टी की गीली पट्टी २०-२० मिनट बाद बदल बदल कर आध-आध घटे के लिये लगाने से अच्छा होता है। बीच-बीच मे कई बार सहने योग्य गरम पानी पीने से भी इस रोग के अच्छा होने मे बडी सहायता मिलती है।

जब तक दर्द चला न जाय तब तक उपवास या रसाहार करना चाहिये। उपवास के साथ-साथ एनिमा जरूर लेना चाहिये।

कांच निकलना

गुदा की मासपेशियो के कमजोर पड जाने एव कोष्ठ-बद्धता के परिणामस्वरूप शौच के समय जोर लगाने से प्राय: गुदा का अन्तिम भाग बाहर निकल पडता है जिसे हाथ से ठेलकर पुन: भीतर करना पड़ता है। इसी को काच निकलने की बीमारी कहते हैं।

इस रोग को दूर करने के लिए सर्वप्रथम कब्ज को दूर करना चाहिये। रोज दो बार पेडू और गुदा पर मिट्टी की पट्टी लगानी चाहिए। हरी बोतल के सूर्यतप्त तेल की बत्ती गुदा मार्ग मे प्रवेश करके रात को सोना चाहिए, तथा हरी और गहरी नीली बोतलो का सूर्यतप्त जल बराबर बराबर लेकर और मिलाकर - उसकी आठ खुराकें, आधी आधी छटाक की, रोज पीनी चाहिए।

बवासीर

बवासीर या अर्श को अंग्रेजी मे Piles कहते है। तकलीफ की प्रारम्भिक अवस्था मे गुदा द्वार की भीतरी और बाहरी नसो मे खुजली और जलन मालूम होती है। जलन कभी भीतरी नस मे होती है, कभी बाहरी और कभी भीतरी और बाहरी-दोनो नसो मे। जिस जगह जलन और खुजली होती है वहा बिना मुह के फोड़े की सी छोटी-छोटी गाठें जिनको मस्से भी कहते है निकली होती है जो आगे चलकर काफी बडी हो जाती है। ये ही जब फट जाती है और उनसे रक्त निकलने लगता है तो बवासीर खूनी कहलाती है। रक्तहीन बवासीर को वादी बवासीर कहते है।

बवासीर कोई रोग नही, अपितु रोग का लक्षण है। आते जब साफ नही रहती और कब्ज जब बराबर बना रहता है, तब आतो मे उसकी सडन से गर्मी बढ जाती है जिसके फलस्वरूप आतो की झिल्ली कमजोर हो जाती है, गुदाप्रदेश मे भारीपन का अनुभव होता है, मलत्याग मे कठिनाई और कष्ट होता है तथा गुदा के पास की नसों के अतिम छोर मे दूषित रक्त इकट्ठा हो जाने से धीरे-धीरे बदगोश्त की सृष्टि हो जाती है। यही बवासीर है। गुदा के पास की नसे या शिरायें शरीर की एक लम्बी रक्त-वाही शिरा का सबसे निचला भाग है जिस पर मलमार्ग की पेशियां असाधारण अवस्था मे अनावश्यक दबाव डालकर उन शिराओ के रुधिर-प्रवाह मे रुकावट डालती हैं, जिससे वे खून से भरकर सूज जाती है। कभी-कभी स्त्रियो को गर्भाशय मे गर्भ के ही भार से ऐसा होता है जो प्रसव के अनन्तर आप से आप दूर हो जाता है। जब मनुष्य की रीढ़ मे कोई रोग होता है तो उसके दुर्द्रव्य का भार गुदा मार्ग की शिराओ पर पड़ने से भी बवासीर के मस्सो की उत्पत्ति होती है। ये मस्से इस बात को प्रगट करते हैं कि शरीर विजातीय द्रव्य से लदा हुआ है, रक्त दूषित हो चुका है, तथा कोष्ठ मे मल भरकर पुराना पड़ चुका है। इस कथन से स्पष्ट है कि बवासीर का मूल कारण कब्ज के कारणो से भी गहरा है, और यह भी है कि बवासीर के कारणो मे से कब्ज होना सिर्फ एक कारण है। क्योकि हर कब्ज के रोगी को बवासीर नही होती, परन्तु हर बवासीर के रोगी को कब्ज होना जरूरी है। बवासीर के अन्य कारणो मे जिगर की खराबी, उदर-विकार तथा किसी प्रकार का रक्त-विकार आदि हो सकते है।

चिकित्सा

बवासीर की तकलीफ जड से दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि कब्ज को पहले दूर किया जाय और फिर उसे कभी न होने दिया जाय। कब्ज दूर करने का निश्चित उपाय ऊपर दिया जा चुका है। पुराना बवासीर सारे शरीर की स्थिति के सुधार होने पर ही जाता है।

बवासीर के रोगी की आंते बहुत कमजोर हो जाती है। अत. आरम्भ में उसे ऐसे खाद्य-पदार्थ देने चाहिये जिनसे कब्ज तो दूर हो ही, साथ ही साथ मल भी इतना मुलायम बने कि वह बिना तकलीफ दिये गुदा मार्ग से बाहर हो जाय। आहार मे यथासम्भव सलाद, रसदार फल या उसका रस और तरकारी या उसके सूप की अधिकता हो जिसमे ऊपर से पानी मिलाने या पीने की आवश्यकता न हो। इससे विशेष लाभ यह है कि तरल पदार्थ शुद्ध रूप मे प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का आहार कुछ दिनों तक चलाते रहने पर रोग उत्पन्न करने वाली स्थिति बहुत कुछ दूर हो जायगी और यदि रोग आरम्भिक अवस्था में होगा तो वह भी अच्छा हो जायगा। ऐसे भोजन पर रहते हुये भी यदि पाखाना ढीला न होने लगे तो स्थिति मे काफी सुधार होने तक प्रतिदिन दो या तीन बार एनिमा लेना चाहिए, पहले गुनगुने पानी का, उसके बाद ठडे पानी का। एनीमा के पानी मे नीबू का ८-१० बूद रस जरूर मिला लेना चाहिए। सायकाल सोते वक्त आध पाव पानी या छटांक भर नारियल के तेल का एनीमा नीबू के १/२ छटाक रस सहित लेकर रातभर रोक रखना चाहिए। इससे बडी आत के पर्दे को ठडक पहुंचेगी और मल भी ढीला पड जायगा। सायकाल के रोक रखने वाले एनीमा के साथ साथ पेडू, जघा और कटि-प्रदेश पर ऊनी कपडे का पैक रातभर के लिए देकर गर्मी पहुचाने की कोशिश होनी चाहिए। अगर इन उपचारो के बावजूद भी मलत्याग मे कष्ट हो तो गर्म और ठडे पानी का कटिस्नान करने की व्यवस्था करनी चाहिए। तीन मिनट गर्म पानी मे बैठने के बाद एक मिनट ठडे पानी मे बैठना क्रमश चलना चाहिए और गर्म पानी मे बैठते समय पैरो को एक पात्र मे रखे हुए गर्म पानी मे रखना चाहिए। इन स्नानो के बाद ठडे जल से सारे शरीर का स्नान कर सूखी तौलिया से रगड़कर बदन को सुखा लेना चाहिए और तब बिस्तर पर लेटकर विश्राम करना चाहिए।

उपर्युक्त उपचारो से जब मल ढीला आने लगे तो निम्नलिखित खाद्य पदार्थ भी रोगी के आहार मे जोडे जा सकते हैं :—

गेहूं का दलिया, चोकर समेत आटे की रोटी, गूलर, पालक, बथुआ, तोरई, परवल, मूली, पातगोभी, हरा पपीता आदि सभी हरी शाक भाजियां, पका पपीता, पका बेल, पका केला, खरबूजा, सेब, नाशपाती, मठा, दूध, किशमिश मुनक्का, आलू बोखारा, अजीर, तथा पका या कच्चा नारियल आदि। दाले और उत्तेजक खाद्य पदार्थ एकदम त्याग देना चाहिये।

पुराने बवासीर मे, जिसमे आतो की गर्मी के कारण मल कड़ा पड़ जाता है, कुछ दिनो तक प्रत्येक भोजन के साथ चार आना भर की मात्रा से ईसबगोल की भूसी उपयोग करना चाहिए। ईसबगोल का इस्तेमाल करने के पहले उसे बीस गुने वजन के पानी मे १२ से २४ घंटे तक ठडे पानी मे भिगो रखना चाहिए। जब पेट साफ होने लगे तो ईसबगोल की मात्रा कम करते हुए उसका प्रयोग बंद कर देना चाहिए।

पुराने बवासीर मे कब्ज को मिटाने और शरीर के विकार को दूर करने के लिए तीन से पाच दिनो का उपवास दोनों वक्त एनिमा के साथ अत्यावश्यक है। उपवास के दिनो मे सिर्फ नारंगी या कागजी नीबू का रस दिन मे दो-दो घटे पर लेना चाहिए। उपवास तोडने के बाद कुछ दिनो तक फलाहार करना चाहिए। उसके बाद एक वक्त रोटी सब्जी और दूसरे वक्त फलाहार करना चाहिये। तत्पश्चात् धीरे-धीरे सादे भोजन पर आना चाहिये। रोज सुबह-शाम १५ से ३० मिनट तक मस्सो पर भाप देने के बाद कटि स्नान लेना चाहिए, या पहले ३ से ५ मिनट तक गरम जल से भरे पानी के टब में कटि स्नान लेने के बाद तुरत ३० से ६० सेकण्ड तक ठडे जल से भरे पानी के टब मे वही स्नान लेना चाहिये। उसके बाद रजाई ओढ़कर गर्मी लाना चाहिए। इसे दिन मे दोबार अवश्य करना चाहिये। जुस्ट का प्राकृतिक स्नान भी रोज सुबह शाम करना चाहिए, या सवेरे नास्ता के १½-२ घंटा पहले और शाम को भोजन के दो घटे पहले सेर-डेढ़ सेर मिट्टी ठडे पानी से सान कर और उसमे आधे कागजी नीबू का रस निचोड कर नाभि के नीचे मूत्रेन्द्रिय तक एक कोख से दूसरे कोख तक फैला लेनी चाहिये और लगभग आध सेर मिट्टी गेंद सी बना कर लंगोट के सहारे गुदा द्वार पर बाध लेनी चाहिए। आध घटे बाद मिट्टी को हटा कर शक्ति होने पर २-३ मील टहल लेना चाहिये।

खूनी बवासीर में हरी बोतल के सूर्य तप्त जल की ४ खुराके और बादी बवासीर मे नारगी रग की बोतल केजल की उतनी ही खुराके आधी–आधी छटाक की मात्रा से लेनी चाहिए।

पेट में कृमि

खान-पान की गड़बड़ी और आतो की सफाई ठीक से न होने के कारण अक्सर पेट मे कीडे पड़ जाते है जो मल के साथ गुदा द्वार से निकलते है। ये कीडे चावल की लम्बाईसे लेकर दो फीट तक लम्बे होते है और जब इनकी सख्या पेट मे अधिक हो जाती है तो कभी–कभी ये मुख की राह भी निकलते है। नारू नाम का एक और विशेष प्रकार का कीडा मनुष्य के शरीर से निकलता है जो खास कर गरीबो को बहुत सताता है। नारू कीडे की बीमारी कम या अधिक सभी जगह पायी जाती है, परन्तु मध्य भारत में यह बीमारी बहुत देखने मे आती हैं। नारू कीड़ा सफेद तागे की शकल का और छोटा होता है। यह कुए और बावलियो के जल मे पैदा होता है और उस जल के साथ मनुष्य के पेट मे पहुंच कर धीरे-धीरे बढ कर लगभग २–३ फीट लम्बा हो जाता है और तब शरीर के हाथ, पांव या किसी अन्य अङ्ग को छेद कर अपना मुंह बाहर निकालता है। कितने ही लोगो के बदन से एक साथ आठ-आठ, दस दस नारू निकलते है। नारू के शरीर से बाहर मुंह निकालते समय कभी-कभी सारे शरीर मे पित्ती उछल आती है, छाला पड़ जाता है, या सूजन हो जाती है साथ ही शरीर की गिराओ मे असह्य दर्द होता है।

रोग से बचाव—पोषक तत्वो से पूर्ण प्राकृतिक आहार करने वालो को नारू की बीमारी नही होती। जो लोग सदैव पानी छान कर पीते है, तथा भोजन के साथ हीग का सेवन करते है, उन्हे नारू की बीमारी नही होती।

चिकित्सा

पेट में हर प्रकार के कृमि या कीड़ा के उत्पन्न होने पर निम्नलिखित प्रयोग काम मे लाये जाने चाहिये.- रोज सुबह नीबू का रस और सेधा नमक मिश्रित गुनगुने पानी का एनिमा लेना चाहिए। आध घटा बाद खुली हवा मे हल्की कसरत करनी चाहिए और केवल रोटी, सब्जी, कच्ची तरकारी, तथा फल का आहार करना चाहिए। पर यदि रोग पुराना पड़ गया है तो उस हालत मे ७ से १४ दिनों तक केवल फल खाकर रहना चाहिए। पेट जब तक साफ न हो तब तक एनिमा लेना न छोड़ना चाहिए। रोज सुबह शुष्क घर्षण स्नान के बाद साधारण जल स्नान करना चाहिए। दोनो वक्त उदर स्नान भी लेना चाहिए। सप्ताह मे दोबार एप्सम साल्ट बाथ भी ले लेने से रोग जल्दी दूर होता है।

एनिमा के पानी मे जरा सी सुरती या नीबू का रस घोलकर प्रयोग करना चाहिये। उसके बाद तीन-चार तोला नारियल का तेल गुदा द्वारा आतों मे पहुंचा देना चाहिए। ऐसा करने से पेट के कीड़े या तो मर जायेंगे या मल के साथ बाहर निकल आयेंगे।

नारू के मुह पर केवाच की फली के रोए चिमटे से उखाड़ कर भर देने से नारू का कीडा फौरन बाहर निकल आता है। अमर बेल को पीस कर लेप करने से नारू का कीड़ा बाहर आजाता है। बांस के कोमल अंकुर का पुल्टिस नारू पर बाधने से भी नारू बाहर निकल आता है मोर के पंख को जला कर उस की राख को गुड मे गोली बना कर खिलाने से नारू भीतर ही नष्ट हो जाता है।

पीली बोतल का सूर्य तप्त जल तीन हिस्सा और हरी बोतल का एक हिस्सा मिलाकर आधी-आधी छटाक की ६ खुराके दिन मे पीने से पेट के कीडे नष्ट हो जाते है।

आंत उतरना

आत उतरने की बीमारी अथवा अन्त्रवृद्धि को अंग्रेजी मे Hernia कहते है। शरीर की कमजोरी, विशेषकर पेड़ू में विकृत पदार्थ का अनावश्यक भार पड़ने के फलस्वरूप तलपेट की मासपेशियो की कमजोरी की वजह से इस रोग की उत्पत्ति होती है। इसमे पेशियो मे, उस स्थान पर जहां वे एक दूसरी पर पड़ती या एक दूसरी को पार करती हुई छल्ले का रूप धारण करती है, विच्छेद हो जाता है। उस वृत्त उदरावरण (Peritoneum) जिसमे पेट के सारे पाचन यन्त्र रहते है, निम्नलिखित कारणो से धक्का खाकर या भार से दबकर आत के साथ नीचे लटक आता है। यही आत उतरने की बीमारी है—

१. कब्ज होने पर मल के दबाव से,
२. कठिन व्यायाम करने से,

३. खासी, छीक, जोर की हंसी, चीत्कार, कूदने, तथा पाखाना के वक्त जोर लगाने से,

४. पेट मे वायु का प्रकोप होने से,

५. मल-मूत्र के वेग को रोकने से,

७ भारी बोझ उठाने तथा अधिक पैदल चलने से,

८. शरीर को अनावश्यक टेढ़ा-मेढा करने से, या

९. भोजन सम्बन्धी गडबड़ी एव मद्यपान के कारण उदर की पेशियों के फूल जाने से,

उदरावरण आत के साथ अपने स्थान से नीचे उतर आता है और अण्डकोप की सधि मे रुककर वहा गांठ जैसी सूजन पैदा करता है। जिसे यदि दबाया जाय तो 'कों-को' शब्द करता हुआ ऊपर चढ़ता है और छोडने पर फिर नीचे उतरकर कोष्ठ को फुलोदेता है। यह बीमारी अण्डकोष के एकतरफ, पेडू और जंघा के जोड़ में, या दोनों तरफ हो सकती है। जब यह बीमारी दोनो तरफ होती है तो उसे डबल हर्निया' कहते है। अण्डकोप का फूल जाना, उस स्थान पर पेडू मे भारीपन मालूम होना, या उस स्थान का फूल जाना इस रोग के सामान्य लक्षण हैं। आत उतरने पर असाधारण पीडा, बेचैनी और कभी-कभी तो प्राणान्तक कष्ट होता है। इस प्रकार की उग्र अवस्था मे रोगी की मृत्यु तक हो सकती है। कभी-कभी आत उतरने पर रोगी को कष्ट नही भी होता है। वह धीरे से अपनी आत फिर ऊपर चढ़ा लेता है। आत उतरने की बीमारी धीरे-धीरे बढती है, परन्तु कभी-कभी अचानक भी आक्रमण करती है।

नाभि प्रदेश में होने वाली अन्य वृद्धि पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को अधिक होती है। पहले वाली अन्त्र वृद्धि ही आमतौर से लोगो को हुआ करती है। इन दोनों जगहों के अलाव' उद प्रदेश मे भी अन्त्रवृद्धि होती है।

चिकित्सा

जब रोग का दौरा हो, अर्थात् जब आत उतर आवे तब रोगी को तुरत शीर्षासन की स्थिति मे करके या चित लिटाकर और नितम्ब को ऊंचा रखते हुए उस भाग को उंगलियों से सहलाइये और दबाइये जहा पर कष्ट है, आत अपने पूर्व स्थान पर चली जायगी। उसके बाद 'शीतल जल से स्पाइनल बाथ' (Spinal bath) देने से उदर की मासपेशियों को शक्ति प्राप्त होगी और अण्डकोष संकुचित हो जायगा। शुक्र-ग्रन्थियो (Testes) पर बरफ रखने से भी आत आदि अपने मूल स्थान पर चली जाती है। यदि किसी समय उपर्युक्त उपाय करने पर भी आंत आदि अपने-अपने स्थान पर वापस न जाय तो उसी समय से पूर्ण उपवास और विश्राम करना आरम्भ कर देना चाहिए और एक खाली रबर की नली (Syringe) बडी आत के भीतर घुसेड कर आत के भीतर सञ्चित गैस को बाहर निकाल देना चाहिये। ऐसा करने से आत सहज ही भीतर प्रवेश कर जायगी। कब्ज होने पर एनिमा के जरिये थोड़ा पानी बडी आत मे चढाकर उसमें स्थित मल को बाहर निकाल फेंकने से भी आत अपने स्थान पर चली जाती है।

स्थाई लाभ के लिए इस रोग की चिकित्सा 'हर्निया की पेटी' के इस्तेमाल के साथ आरम्भ करनी चाहिए। एक अच्छी सी सुखकर हवादार रबर की गाठ वाली पेटी इस काम के लिए चुनकर खरीद लेनी चाहिए और उसे प्रातः काल उठने के समय से रात को सोने के समय तक लगाये रखकर तलपेट के ऊपर के भाग को लटककर नीचे की ओर दबाव डालने से रोके रखना चाहिए। ऐसा करने से कुछ दिनों में ढीली मांसपेशियो के सख्त हो जाने और रोग से जल्द छुटकारा पाजाने की बहुत कुछ आशा रहती है। रात मे पेटी उतार कर सोना चाहिये।

स्थाई लाभ के लिये रुग्ण स्थल पर रोज सुबह और शाम चित लेटकर नियमपूर्वक मालिश भी करनी चाहिए। मालिश का समय ५ मिनट से आरम्भ करके और धीरे-धीरे बढाकर १० मिनट तक ले जाना चाहिये। जिस तरफ की आत उतरती है पेडू के उसी भाग पर वृत्ताकार मालिश (Circular Massage) करनी चाहिए। यदि शिकायत दाहिने तरफ हो तो दाएं से बाये घुमाकर मालिश करनी चाहिए और यदि बाये तरफ हो तो मालिश के लिए हाथ बाये से दाये घुमाना चाहिए। मालिश के लिये साथ में नरमी के तेल का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। मालिश के बाद उस स्थान पर तथा पूरे पेडू पर मिट्टी की गीली पट्टी का प्रयोग आध घटे तक करना चाहिए। मालिश और मिट्टी की पट्टी लगाने के पूर्व निम्नलिखित ढग से आक्रान्त भाग पर ...

देने से अधिक लाभ होता है —

पोस्ता की डोडी को पुरवे मे पानी के साथ पकावे। जब उबलने लगे तो उसी से भाप दे और जब पानी थोडा ठडा हो जाय तो उससे स्थान को धोये। हर्निया के रोगी को नीचे लिखे व्यायाम भी बडे लाभकारी सिद्ध होते है--
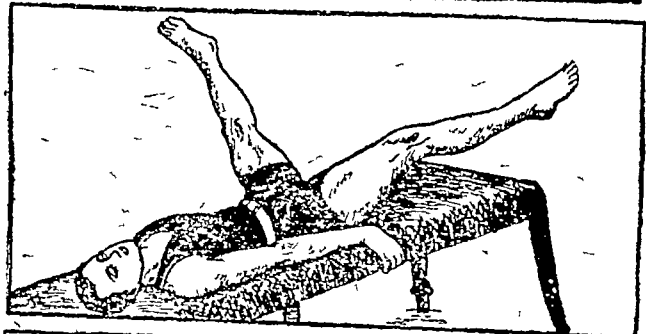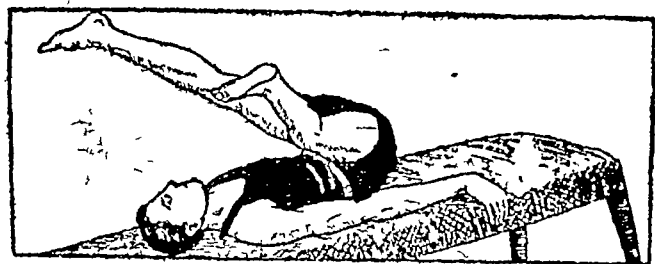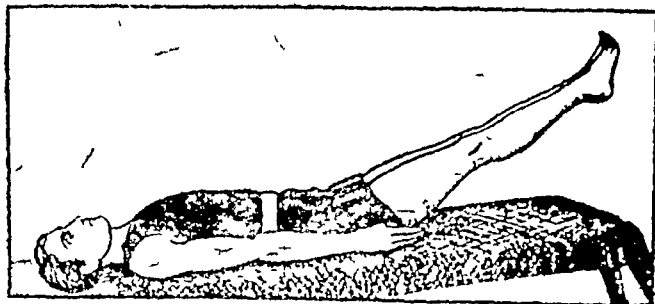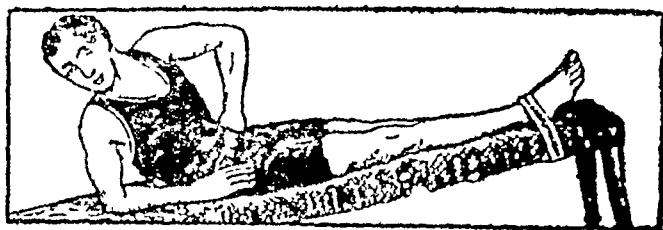
(१) पैरों को किसी से पकडवा लीजिये या पट्टी से चौकी के साथ बाध दीजिये और हाथ कमर पर रखिये। अब सिर और कन्धो को चौकी से ६ इन्च ऊपर उठाकर बदन को पहले बायी ओर और फिर पूर्व स्थिति मे लाकर और बदन को उठाकर दाहिनी ओर मोड़िये। फिर हाथो को सिर के ऊपर ले जाइये और बदन को उठाकर बैठने का प्रयत्न कीजिये। यह कसरत कुछ कडी पड़ती है इसलिये इस बात का ख्याल रखिये कि अधिक जोर न पडे। पहले इतनी ही कोशिश कीजिये जिसमे पेशियो पर तनाव आये, फिर धीरे-धीरे बढाकर इसे पूरा कीजिये।

(२) सीधे लेटकर घुटनो को मोड़ते हुए पेट से सटाइये और तब पूरी लम्बाई मे उन्हे फैलाइये और जब तक उनकी गति पूरी न हो जाय उन्हे चौकी से सटने न दीजिये।

(३) दोनों हाथो को फैलाकर चौकी के किनारे पकड़ लीजिये और पैरो को जहा तक वे फैल सकें फैलाते हुए सिर के ऊपर लाने की कोशिश कीजिये।

(४) चौकी को हाथो से पकडे रहे। पैरो को यथा सम्भव ऊचे रखते हुए सिर के ऊपर लाइये और चौकी की ओर वापस ले जाते हुये उन्हे जितना हो सके फैलाने की कोशिश कीजिये।

(५) हाथो से चौकी पकडे रहिए। पैरों को लम्ब के रूप मे ऊपर ले जाइये और तब पहले बायीं ओर और फिर दाहिनी ओर वे जहा तक नीचे ले जाये जा सकें ले जाइये। इसमे याद रखने की बात यह हैं कि जिस पार्श्व मे पैर मुडेगे उस पर असर अधिक होगा। अगर अन्त्रवृद्धि दाहिनी ओर है तो उस ओर से पैरो को मोड़ने की क्रिया बाईं ओर से अधिक बार होनी चाहिए।

हर्निया सम्बन्धी पांच व्यायाम

सर्वाङ्गासन, अर्द्धसर्वाङ्गासन, पश्चिमोत्तानासन, भुजंगासन, शीर्षासन तथा शलभासन इस रोग मे उपकारी होते है। ये सभी आसन यदि रोज न किये जा सके तो शाम व सुबह दो बार कम से कम शीर्षासन जरूर कर लेना चाहिये। शीर्षासन खाली पेट करना चाहिये और रोज १-१, २-२ मिनट से बढाकर २० या २५ मिनट तक ले जाना चाहिये।

उपचार-आरम्भ करने के प्रथम एक दिन उपवास करने के बाद रोग जाने तक केवल फल, तरकारी, मठा,

एवं कभी-कभी दूध पर ही रहना ठीक है। कब्ज तो इस रोग मे कभी होने ही न देना चाहिये। सप्ताह में एक दिन नियमपूर्वक उपवास करना चाहिये। हर रोज कम से कम एक बार ठंडे जल का एनिमा लेना चाहिये।

प्रात काल रोगी को पहले गरम जल से फिर ठंडे जल से कटि स्नान करना चाहिये। सप्ताह मे एक बार समूचे शरीर का वाष्प-स्नान भी लेना चाहिए। रोगी को तख्त पर सोना चाहिए जिसका सिरहाना कुछ ऊंचा होना चाहिए। इस रोग मे रात भर के लिए कमर की गीली पट्टी भी बड़ा लाभ करती है।

गहरी नीली बोतल के सूर्यतप्त जल की ६ खुराके आधी-आधी छटांक की रोज लेनी चाहिए।

आन्त्र-पुच्छ प्रदाह (अपेंडिसाइटिस)

तलपेट में छोटी आंत जहा बड़ी आंत से मिलती है, उसके निचले हिस्से मे आन्त्र-पुच्छ की स्थिति होती है। इस आन्त्र-पुच्छ या आत की पूंछ को उपान्त्र भी कहते हैं। इसकी लम्बाई ३ से ६ इन्च तक और मोटाई लगभग चौथाई इन्च के होती है। यह आकार मे बिलकुल छोटे केचुए के समान होती है। आंत की इस पूंछ मे जब किसी कारण से दर्द, सूजन, या जलन उत्पन्न हो जाती है तो उसे आन्त्र-पुच्छ-प्रदाह या अपेंडिसाइटिस रोग कहते हैं।

यह बीमारी धीरे-धीरे जड़ जमाकर प्रकाश मे आती है। कभी-कभी हठात् भी आ जाती है। उस वक्त पेड़ू मे दर्द होने लगता है, और पेड़ू की दाहिनी ओर का निचला भाग गाठ की तरह कड़ा होकर उभर आता है जिसको दबाने से दर्द बढ़ जाता है। दर्द के साथ ही ठंड मालूम होती है। उसके बाद ही ज्वर हो आता है जो ९९° से १०२°, और कभी कभी १०५° तक पहुंच जाता है। जोरों की मतली मालूम होती है और कै भी।

इस रोग का प्रधान कारण पुराना कब्ज है। कब्ज के कारण एकत्र पुराना मल, आतो की भीतरी झिल्ली, उसके बाद छोटी-बडी आंतो के जोड़, तत्पश्चात आगे बढकर आत की पूछ मे सूजन और प्रदाह पैदा कर देता है। यही अपेंडिसाइटिस है। इस तरह कब्ज के जितने भी कारण होते है वे सभी आन्त्र-पुच्छ-प्रदाह की उत्पत्ति मे भी मुख्य रूप से सहायक हुआ करते है।

चिकित्सा

१—इस रोग में रोग का जोर जब तक बना रहे कुछ भी खाना या पीना नही चाहिए, अपितु पूर्ण उपवास करना चाहिए। अधिक प्यास लगने पर चम्मच से थोड़ा थोड़ा पानी कई बार मे दिया जा सकता है।

२—रोग का दौरा होने पर थोडे-थोडे गरम पानी का एनिमा २-३ बार देकर आतो को साफ कर देना चाहिए। पेट मे पानी उतना ही जाना चाहिए जितना जाने से आन्त्र-पुच्छ पर अनावश्यक एवं अधिक दबाव न पडे अन्यथा दर्द मे वृद्धि हो जा सकती है। बाद में भी जब तक हालत पूरे तौर से सुधर न जाये दिन मे दो बार एनिमा जरूर लेते रहना चाहिए।

३—रोगी को पूर्ण रूप से चारपाई पर लेटकर आराम करना चाहिए।

४—सुबह, शाम और दोपहर को यानी दिन मे ३ बार दर्द की जगह पर अर्थात पेट की दाहिनी तरफ नीचे आधे-आधे घंटे तक गरम और ठण्डी सेक देनी चाहिए।

५—रोगी के पैरो को गरम पानी से भरी बोतलो द्वारा बराबर गरम रखना चाहिए और उसके सिर को दिन मे तीन बार धोने के बाद तीनो बार गीली तौलिया से उसके सारे शरीर को पोंछ देना चाहिए।

६—दर्द की जगह पर दिन मे कई बार मिट्टी की गीली पट्टी रखनी चाहिए जिसे सूखने से पहले ही बदल देनी चाहिए। मिट्टी की पट्टी काफी बड़ी और आध इन्च मोटी होनी चाहिए। सूजन कम हो जाने पर मिट्टी की पट्टी की जगह कुछ दिनो तक कपड़े की भीगी पट्टी रखनी चाहिए।

७—सुबह को कटि-स्नान और शाम को मेहन-स्नान लेना चाहिए।

८—रोग का जोर कम होने पर और मालूम होने पर कम से कम एक सप्ताह तक कोई भी ठोस चीज पेट में न ले जानी चाहिए, अपितु फलो के रस अथवा उबली तरकारी के सूप पर रहना चाहिए। उसके बाद नाश्ते में ताजे फल और दूध, दोपहर को उबली तरकारी, तथा शाम को सिर्फ दूध ले। फिर धीरे-धीरे साधारण सादे भोजन पर आ जाना चाहिए।

९—पीली और हरी बोतलो का सूर्य-तप्त जल

बराबर-बराबर लेकर उसकी आधी-आधी छटाक की ८ खुराकें प्रतिदिन लेने से इस रोग मे बड़ा लाभ होता है। कुछ दिनों तक मिश्रित जल लेने के बाद केवल हरी वोतल का जल लेना चाहिए और पूरा लाभ हो जाने पर उसे भी छोड़ देना चाहिए।

मधुमेह (Diabetes)

यह पढने-लिखने वालो, आलसियो एव केवल स्वादिष्ट भोजन करने के लिये जीने वालों का एक विशेष रोग है, जो शरीर को बहुत आराम देते हैं और उससे मेहनत का काम बहुत कम लेते हैं। श्रम जीवियों और स्त्रियो को यह रोग कम होता है। यह रोग अधिकतर चालीस वर्ष से ऊपर वाले आयु के बुद्धिजीवी पुरुषों मे पाया जाता है। कब्ज इस रोग का प्रधान कारण है। ६०% मधुमेह के रोगी या तो मोटे होते हैं या मोटे रह चुके होते हैं। रोग बढ़ने के साथ उनका वजन भी घटना शुरू हो जाता है। इससे शरीर की धमनिया कड़ी पड जाती हैं जिसकी वजह से इस रोग से ६६% मौतें होती है।

मधुमेह को प्रमेह, बहुमूत्र तथा पेशाब मे चीनी आना भी कहते हैं।

मधुमेह की दो किस्मे है। एक मे पेशाब मे चीनी आती है। परन्तु दूसरे में चीनी विलकुल नहीं आती, केवल पेशाव ही अधिक होता है।

[१] विना चीनी वाला मधुमेह--इसको बहुमूत्र और अंग्रेजी मे Diabetes Insipidus भी कहते है। इस रोग मे पानी जैसा पेशाब अधिक मात्रा मे और बार-बार आता है। यह रोग प्राय. अधिक परिश्रम करने के कारण होता है। परन्तु स्नायु दौर्बल्य इस रोग का मुख्य कारण है। अतः किसी प्रकार की मानसिक उत्तेजना होने पर यह रोग एकाएक प्रकाश मे आ सकता है। शरीर के रोम कूप जब किसी कारण से बन्द प्रायः हो जाते हैं तो शरीर का तरल मल जो शरीर से पसीने के रूप मे निकलता है बजाय रोमकूपो के रास्ते निकलने के गुर्दों मे जमा होकर पेशाब के रास्ते बहुमूत्र के रूप मे निकलने लगता है। शराब के अधिक इस्तेमाल करने, ठड लगने तथा अधिक ठंडा जल सेवन करने आदि से भी इस रोग की उत्पत्ति हो सकती है।

बहुमूत्र रोग मे २४ घंटों में लगभग १० गेलन तक मूत्र शरीर के बाहर निकलता है।

चिकित्सा

इस रोग को दूर करने के लिये सर्व प्रथम पेट को साफ करने का उपाय होना चाहिए तत्पश्चात् शरीर के रोम कूपों को खोलने का। पेट साफ करने और कब्ज दूर करने के लिये कम से कम एक सप्ताह तक रसाहार करना चाहिए और जब तक जरूरत हो गरम या ठडे पानी का एनीमा लेना चाहिए। रात भर के लिये कमर की भीगी पट्टी भी लगानी चाहिए।

रोम कूपों को सक्रिय करने के लिए रोज दो बार नगे कुर्सी पर बैठकर और कम्बल ओढ़कर ५ मिनट तक वाष्प स्नान लेना चाहिये या आतप स्नान। उसके बाद थोड़े ठडे जल मे कटि स्नान, मेहन स्नान या जुस्ट का प्राकृतिक स्नान १० मिनट तक लेना चाहिए। बाद को ठडे जल से साधारण स्नान भी किया जा सकता है। सप्ताह मे एक बार एक घंटा के लिए समूचे शरीर पर भीगी चादर की लपेट देनी चाहिए तत्पश्चात् शीतल घर्षण स्नान। प्रतिदिन हलका व्यायाम करना अथवा खुली जगह मे वायु सेवन करना भी नितान्त आवश्यक है।

क्षार धर्मी खाद्य पदार्थ जैसे फल, ताजी सब्जी तथा कच्चा ताजा दूध आदि का सेवन करना चाहिए। कागजी नीबू का रस मिश्रित जल प्रचुर मात्रा में पीना चाहिए। पहले कुछ दिनो तक गरम पानी पीना चाहिए उसके बाद ठंडा। शरीर को गरम रखने के लिए गरम वस्त्र धारण करना चाहिए।

[२] चीनी वाला मधुमेह--इस प्रकार के मधुमेह को अंग्रेजी मे Diabetes Mellitus कहते है। यह मर्ज हाजमे की खराबी से होता है और बड़ी मुश्किल से जाता है। इस रोग के साथ अन्य कितने ही रोग चलते हैं, जिनमे मन्दाग्नि, वेहद भूख, बेहद प्यास, कब्ज, सिर-दर्द, सिर में चक्कर, नेत्र विकार, त्वचा की शुष्कता, शक्तिहीनता, मसूढो का फूलना, दांत के रोग, मुंह से दुर्गन्ध का निकलना आदि मुख्य हैं। इस रोग के बढ़ जाने और पुराना पड़ जाने पर अधिक भयानक शारीरिक विकार, जैसे समस्त शरीर मे खुजली, जल्दी न

अच्छा होने वाले फोड़े, कारवंकल, शरीर के रोमकूपो का बन्द हो जाना, फेफड़ों के विकार, राजयक्ष्मा, स्नायु-विकार, अंधापन, मूत्रद्वार मे जलन, मूर्च्छा तथा उक्त वत हो जाते है।

इस रोग के रोगी का पेशाब साफ, हलका, पीलापन लिये हुये गाजयुक्त होता है। इसे बोतल मे रखने से नीचे कोई चीज नहीं जमती। परन्तु उसमे मीठी या खट्टी बू आती है। रोगी को दिन रात मे २॥ से ६ सेर तक पेशाब होता है जिसमे ४ से ५० तोले तक चीनी होती है। चिन्ता, क्रोध तथा भय आदि मानसिक विकारो के कारण रोग के उपर्युक्त लक्षणों मे असाधारण वृद्धि हो जाती है।

यह रोग धीरे-धीरे जड़ जमाता है। वजन कम होने लगता है, शरीर सूखता जाता है, कमजोरी बढती जाती है तथा शरीर का तापक्रम बढ जाता है। इस रोग मे प्लीहा और यकृत अपना काम पूरी तरह नहीं कर पाते और पाचक रस पैदा करने वाली क्लोमादि ग्रन्थियो से आवश्यक मात्रा मे पाचक रस नहीं निकलता। फलत: भोजन ठीक से नही पचता और उसके श्वेतसारीय भाग के शर्करा मे परिणित होने पर जब वह रक्त द्वारा शरीर के उपयोग के लिये प्लीहा में लाया जाता है तब प्लीहा की शिथिलता के कारण रक्त में अनावश्यक मात्रा मे शर्करा बच रहती है जिसे गुर्दे पेशाब के रास्ते शरीर के अन्य तरल विषो के साथ बाहर निकाल देने के लिये मजबूर होते है। मूत्र के साथ इस प्रकार शर्करा का आना ही मधुमेह कहलाता है। यहा यह जान लेना चाहिए कि जो कुछ हम खाते है वह पेट मे जाकर पहले शर्करा का रूप धारण करता है जिसका शोषण करके ही शरीर शक्ति एवं गरमी प्राप्त करता है। परन्तु यही शर्करा जब बिना शरीर के काम आये ही मूत्र के साथ बहने लगती है तो शरीर दिन दिन दुर्बल होने लगता है और अन्त मे नष्ट हो जाता है।

अधिकाश मोटे व्यक्ति इस रोग से ग्रस्त होते हैं तथा २० प्रतिशत मधुमेहियों मे यह रोग पैतृक होता है।

चिकित्सा

आरम्भ मे यदि रोगी अधिक दुर्बल न हो तो उसे दो या तीन दिन का उपवास एनिमा के साथ अवश्य करना चाहिए। फिर उपवास तोडने के बाद १० दिन तक अन्न का सर्वथा त्याग करके केवल उबली और कच्ची हरी शाक तरकारियो या उनके सूप (रस) एवं सन्तरे, टमाटर, मकोय, मुसम्बी, अनन्नास, अगूर, आम, जामुन, अनार, अमरूद, नाशपाती, सेव, पकी गूलर आदि फलो या उनके रस पर रहना चाहिए। इससे पेशाव मे चीनी का जाना तो कम होगा ही, साथ ही साथ शरीर के अन्दर वह शक्ति जाग्रत होगी जो चीनी को शरीर के अन्दर जज्ब करती है और उसे बेफायदा बाहर निकल जाने से रोकती है। उसके बाद एक मास तक सवेरे फलो का रस या बेल की कोमल पत्तियो को कूटकर उसका एक तोला रस नाश्ता के रूप मे, दोपहर को चोकरदार गेहूं के आटे की रोटी या गेहूं अथवा जौ की दलिया और उबली तरकारी, तीसरे पहर एक गिलास मक्खन निकला हुआ मठा, तथा शाम को केवल एक गिलास फल-रस लेना चाहिये।

साधारण स्नान शीतल जल से करना चाहिये। दुर्बलता अधिक हो तो कुछ दिनो तक स्नान गुनगुने पानी से भी किया जा सकता है। परन्तु स्नान के प्रथम मृदु धूप मे बैठकर सरसों के तेल से समूचे शरीर की खूब अच्छी तरह मालिश जरूर करा लेनी चाहिये। स्नान के समय पहले मेरुदण्ड पर ५ मिनट तक ठडे पानी की धार छोडनी चाहिये, फिर स्नान कर लेना चाहिये और शरीर पर के पानी को हाथो की हथेलियो से रगड-रगड कर सुखा देना चाहिये।

लगातार चालीस दिनो तक उपर्युक्त चिकित्सा-क्रम चलाने से मधुमेह जरूर दूर हो जाता है। और यदि रोग बढ जाने के कारण चालीसवे दिन वह पूर्णरूप मे न चला जाय तो फिर उसी चिकित्साक्रम को दोहराना चाहिये, ताकि रोग की जड़ बिलकुल कट जाय।

जब पेशाव में चीटिया न लगे तो समझिये उसमे चीनी नहीं है।

यदि रोगी जल्दी अच्छा होना चाहता है तो निम्न लिखित प्रयोग उपर्युक्त चिकित्सा-क्रम मे और जोड देने चाहिये।

(१) प्रात काल शौच के बाद ताजे पानी का एनीमा

ले। उसके बाद आध घंटे तक पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधे, या २० मिनट तक कटि-स्नान करे। फिर शक्ति भर व्यायाम करे या शुद्ध वायु मे तेजी से टहले। इससे कब्ज टूटेगा।

(२) शाम को या तीसरे पहर मेहन-स्नान करे। उसके बाद शक्ति भर थोड़ा टहले। इससे जीवनी शक्ति की वृद्धि होगी।

(३) तलपेट पर सेक देकर या मर्दन करके रात भर के लिये कमर की गीली पट्टी लगावे।

(४) नारंगी रंग की बोतल का सूर्य तप्त जल दो हिस्सा, तथा आसमानी रंग की बोतल का एक हिस्सा मिलाकर आधी-आधी छटांक की ४ खुराकें रोज पान करे।

इस परिवर्द्धित चिकित्सा-क्रम से केवल १५ दिनों मे ही पेशाब मे चीनी आना बंद हो जायगा।

उपर्युक्त के अतिरिक्त, शारीरिक और मानसिक विश्राम इस रोग मे बहुत जरूरी है, खुली हवा मे वास और गहरी सास की कसरते आवश्यक है, साथ ही कागजी नीबू का रस जल मे निचोड़ कर दिन में कई बार पीना चाहिये। ताजे आंवले के रस मे शुद्ध शहद चाटना भी लाभ करता है। जामुन की गुठली का चूर्ण १५ रत्ती की मात्रा में या केवल चार-चार जामुन की हरी पत्तिया दिन मे दो बार चबाकर खाना उपकारी होता है। तथा सप्ताह में एक दिन उपवास और मठा का कल्प मधुमेह को दूर करने मे अमोघ सिद्ध होता है। इस रोग मे २४ घंटो मे ८ गिलास पानी पीने से भी रोग निवृत्ति जल्दी होती है।

पथ्य—परवल, करेला, टमाटर, जामुन, खीरा, ककड़ी, पपीता, चना दूध मे भिगोकर शहद के साथ, जौ और चना के आधोआध मिले आटे की रोटी, पालक, बथुआ, सरसा, चौलाई, लौकी, नेनुआ, फालसा, खिन्नी, दही, तरबूज, पका आम, सहिजन, तोरई, मूली, पातगोभी धनिया की पत्ती, मेथी का साग, पोदीना, सेम, प्याज का साग, गांठ गोभी, मठा, चोकरदार गेहूं का आटा, ज्वार, सावा, रांगी, अंकुरित मूंग, चना आदि।

परहेज—आलू, चावल, मटर, गाजर, काजू, बादाम, अखरोट, साबूदाना आदि श्वेतसार प्रधान खाद्य, सब तरह के मीठे फल, मेवे जैसे खजूर, किशमिश, अंजीर, मुनक्का, खुबानी, शलजम, तेल, मसाला, चीनी, अधिक नमक, मिठाई, गुड, मास-मछली, अण्डा, चाय, काफी, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुए, अधिक भोजन, ६-७ घण्टे से अधिक सोना, दिन मे सोना, भय, क्रोध, चिन्ता आदि मानसिक विकार, घी, दूध तथा मक्खन आदि।

पित्ताशय की पथरी

पित्ताशय की पथरी और उसका शूल एक कठिन और भयानक रोग है। इसे अंग्रेजी मे 'बिलियरी कालिक' कहते हैं।

पित्ताशय नाशपाती की शकल का एक अङ्ग है जो यकृत के दाहिने भाग के नीचे रहता है। इसी मे अस्वाभाविक दशा मे पथरी बनती है। पित्ताशय को अंग्रेजी में Gall Bladder और पथरी को Gall Bladder-Stone कहते है। शरीर अथवा पित्ताशय की स्वाभाविक दशा मे पथरी कभी नही बनती।

अप्राकृतिक आहार-विहार, आहार से चिकनाई वाले पदार्थ की अतिशयता, औषधियो का अधिक सेवन, तथा मेहनत की कमी आदि के कारण जब शरीर रोगी होने लगता है तब सबसे पहले यकृत रोगी होता है। क्योंकि पचाने के काम में यकृत का बड़ा हाथ होता है। नतीजा यह होता है कि रोगी यकृत मे तैयार हुआ पित्त, विकार-युक्त हो जाता है जो पित्ताशय मे पहुँचकर उसमे सूजन और प्रदाह उत्पन्न करता है जिसके फलस्वरूप, पित्ताशय की श्लैष्मिक-कला के रुग्ण होने पर उसमें स्थित दूषित पित्त और कफ वायु से सूख कर पत्थर की तरह कठोर हो जाते है जिसे पथरी कहते है। छोटी से छोटी पथरी सरसों के दाने के बराबर होती है और बड़ी से बडी अण्डे के बराबर। एक के बजाय कई पथरियां भी बन सकती है

इस रोग म पहले दाहिनी तरफ पसलियो के नीचे नाभि तक मीठा-मीठा दर्द या बोझ-सा मालूम होता है। कब्ज भूख न लगना, भोजन से अरुचि, पीलिया रोग, तथा जाड़ा-बुखार आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। पर जब कभी पथरी पित्ताशय से बाहर निकलने की कोशिश करती है तो पित्ताशय की नलिका, जो चौथाई इञ्च से भी कम मोटी होती है, के पतले सुराख में उससे रगड़ लगने के कारण यकृत के स्थान पर यानी दाहिनी पजरी के

नीचे और कभी-कभी दाहिने कंधे तक हठात असह्य वेदना होने लगती है, साथ ही कभी-कभी शरीर ठंड से कांपने लगता है, तत्पश्चात् तेज ज्वर चढ़ता है, ठंडा पसीना आने लगता है, तथा मतली और कै होने लगती है। पथरी जब उपचार से या अपने आप पित्त-नलिका से निकल कर आंत में बाहर निकलने के लिए आ जाती है तब दर्द होना बिलकुल बंद हो जाता है। अक्सर पथरी के छोटे छोटे टुकड़े कुछ अन्तर दे दे कर निकलते है।

चिकित्सा

शूल की अवस्था मे रोगी को गरम पानी में रखना बहुत लाभदायक होता है। पानी रोगी के सहने लायक गरम होना चाहिये। कमरे मे वायु के प्रवेश का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए और रोगी के सिर पर ठंडे पानी से भीगी तौलिया रखना न भूलना चाहिए। रोगी गरम पानी में आवश्यकतानुसार आधे घंटे तक रखा जा सकता है। जिसे हृदय, यकृत या धमनी का भी रोग हो या जो वृद्ध या कमजोर हो, उसके लिए यह उपचार ठीक न होगा। ऐसे रोगी के लिए गर्म सेंक उपकारी होगी। कोई मोटा कपड़ा गरम पानी में निचोड़ कर पित्ताशय के सामने वाले भाग अर्थात् नीचे की पसलियो और उदर के ऊपर वाले पूरे भाग पर रखना चाहिए और उसकी गर्मी बनाए रहने के लिए ऊपर ऊनी कपड़ा लपेट देना चाहिए। इस पट्टी को थोड़ी-थोड़ी देर के अन्तर से बदलते रहना चाहिए। गर्मी बनाये रखने के लिए गर्म पानी की बोतल भी काम में लाई जा सकती है। इस प्रकार ताप का प्रयोग करने से शरीर के तन्तु ढीले पड़ जाते है, तकलीफ कम हो जाती है, और पथरी के निकलने मे भी सहायता मिलती है। इस अवस्था में एक गरम पानी का एनिमा, तकलीफ कम होने तक हाथों और पावो को गरम रखना, गहरी सांस लेना, गरम जल पान तथा जैतून का तेल एक-एक चम्मच कागजी नीबू का रस मिलाकर थोड़ी-थोड़ी देर बाद पिलाना भी बड़ा लाभ करता है। रोगी को जिस अवस्था मे आराम मिले उसे उसी अवस्था मे लेटा कर पूर्ण विश्राम देना चाहिये। दौरा होने के पूर्व लक्षण प्रगट होते ही गरम पानी का एनिमा देकर एक गरम जल का कटि-स्नान दे देने से बड़ी राहत मिल जाती है।

स्थाई लाभ के लिए रोग की प्रबलता के अनुसार दो से चार दिनों का उपवास करना चाहिए। उपवास दिनो मे सिर्फ ठंडा या गरम जल नीबू के रस के साथ लेना चाहिए। सुबह-शाम गुनगुने पानी का एनिमा लेना चाहिए। सुबह को शौच के बाद और शाम को सोने से कुछ देर पहले। इसके बाद तीन दिनों तक केवल रसदार फलो का आहार करना चाहिए। प्रातःकाल और रात को सोने से पहले एक गिलास गरम जल मे एक नीबू का रस डालकर रोज पीना और अपने आप पाखाना न हो तो एनिमा लेना चाहिए। तत्पश्चात तीन दिनो तक फलाहार के साथ थोड़ा धारोष्ण दूध, मठा या दही का घोल जो मुआफिक पड़े, लेना चाहिए। अंत मे कुछ दिनो तक निम्नलिखित चिकित्सा-क्रम चलाना चाहिए फिर दौरे का भय न रहेगा :—

सुबह उठकर एक गिलास गरम जल मे एक कागजी नीबू का रस निचोड़ कर पीना। नित्य-क्रिया, प्रातः भ्रमण, लौट कर विश्राम। फिर हिप बाथ (पहले गरम पानी से १५ मिनट, फिर ठंडे पानी से १० मिनट। १॥ घंटे बाद रसदार फल का जल पान, एक घंटे बाद एक गिलास ठंडे जल मे एक कागजी नीबू का रस निचोड़ कर पीना। दिवा भोजन मे भाजी, सलाद उबली तरकारी और मठा। सन्ध्या को यकृत और पेड़ू पर गीली पट्टी-आध घंटा तक फिर टहलना। सांय भोजन मे ताजे फल, किशमिश मूंग की अंकुरी और दूध सूर्यास्त से पहले रात को कमर की गीली पट्टी की लपेट।

जबतक पेट खूब ठीक न हो जाय तब तक दिन व रात के भोजन मे अन्न के बदले रामदाना, मखाना, या थोड़ा-सा चोकर जोड़ा जा सकता है। उसके बाद दिन मे थोड़ा सा चावल या एक दो चोकरदार रोटी मिला सकते है। जब कुछ ताकत हो चले तो लेट कर किए जाने वाले पैर और पेट के व्यायाम करना भी उचित है। बीच बीच में एक दिन का उपवास कर दो-दिन फलाहार करना चाहिए। प्रतिमास दो बार पूरे शरीर का भाप स्नान भी आवश्यकतानुसार।

खट्टे रसदार फल, ताजे शाक, मठा, मक्खन, जैतून का तेल सोते वक्त, तरबूजा, खीरा आदि इस रोग मे लाभ करते है। पर श्वेतसार एव चर्बी वाले खाद्य पदार्थ जैसे घी, दूध, केला आदि गूदेदार फल, मूंगफली, आलू

वगैर' जमीन के नीचे पैदा होने वाली तरकारियां मूली, गाजर, शलजम, को छोडकर, चीनी, मैदे की चीजें, तली चीजें, तथा नशीली चीजे इस रोग मे हानि पहुचाती है।

मूत्राशय और वीर्य की पथरी

शरीर के रक्त का दूषित तरल मल, गुर्दों द्वारा छन-कर मूत्र की शकल मे मूत्राशय मे जमा होता रहता है जहा से वह मूत्र-नलिका द्वारा बाहर हो जाया करता है। शरीर अथवा मूत्र यन्त्रो की अस्वाभाविक अवस्था मे जब वायु मूत्राशय मे आये हुए मूत्र को सुखा देती है अर्थात् जब मूत्र शरीर स्थित तप्त वायु से सूख कर पत्थर की तरह कड़ा हो जाता है तब पथरी रोग होता है। इसको निम्नलिखित प्रकार से भी समझा जा सकता है—

मूत्र त्याग की इच्छा होने पर जब हम उसे त्याग नही करते अपितु किसी कारणवश जबर्दस्ती मूत्राशय मे ही रोक रखते है तो मूत्र यन्त्रों—मूत्राशय और गुर्दो में उसी समय से रासायनिक प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है अथवा उद्वेग उत्पन्न हो जाता है जिससे मसाने मे गरमी बढ जाती है, मूत्र का द्रव अंश भाप बन कर उड जाता है और कुछ शरीर के रक्त में पुनः मिलकर रक्त को विषाक्त कर देता है। मूत्राशय मे मूत्र के इस प्रकार चुक जाने से मूत्र करने की हाजत ही मिट जाती है। परिणामत' मूत्राशय और गुर्दो मे नमक और न घुलने वाले विजातीय द्रव्यो के पीले रग के छोटे-छोटे रवे बाकी बच रहते है। जो बाद मे मूत्र करते समय मूत्र के साथ बह जाते हैं। परन्तु फिर भी कुछ रवे मूत्राशय मे अटके रह जाते है। इस तरह वर्षो बाद जब मूत्राशय मे ऐसे रवे अधिक मात्रा मे एकत्र होते है तब साधारणतः वे आपस मे मिलकर पथरी का रूप धारण कर लेते है। पथरी के रवे उन्ही ग्रन्थियो के मूत्राशय मे अधिक बनते है जिनके पेशाव मे विकार द्रव्यो का अंश सामान्य से बहुत अधिक होता है।

मूत्राशय मे पथरी, शरीर मे विकार उत्पन्न होने पर अथवा प्रकृति विरुद्ध आहार-विहार करने से उसी तरह बनती है जिस तरह इञ्जन के ब्यायलर मे पपड़ी जम जाती है। जब तक मूत्राशय मे पथरी छोटे-छोटे रवो के रूप मे होती है तब तक वह मूत्र के साथ निकलती रहती है और किसी प्रकार की तकलीफ नही देती। परंतु जब रवे आपस मे मिलकर बड़े हो जाते है तब मूत्र प्रणाली मे अटक कर दर्द गुर्दा पैदा कर देते है। इसी को पथरी रोग कहते है।

जो लोग मैथुन के समय अधिक आनन्द प्राप्ति के लिये स्थानच्युत या निकलते हुए वीर्य को रोक लेते है उनका वीर्य भीतर रास्ते मे ही अटक कर रह जाता है और बाहर नही निकलने पाता। उसी अटके हुए वीर्य को जब वायु लिंग और फोतो के बीच मे मूत्राशय के मुह पर ले जाकर सुखा देती है तब वह वीर्य की पथरी कहलाती है।

पथरी के निकलने के पहले मूत्राशय मे अफरा आ जाता है—वह सूज या फूल जाता है और उसके चारो तरफ अत्यन्त पीड़ा (रीनल कालिक पेन) होती है अथवा पेडू के पास के स्थानो मे दर्द होने लगता है। मूत्र मे बकरे के पेशाब की सी बदबू आती है, पेशाब कष्ट से होता है और भोजन की रुचि नही होती।

पथरी के निकल चुकने पर नाभि में, फोते के नीचे सीवन मे तथा नाभि के नीचे की जगह, मूत्राशय या पेडू के मुंह में दर्द होता है। मूत्र बहाने वाले मार्गों के बन्द हो जाने से मूत्र की धार बीच मे ही फट जाती है यानी विच्छिन्न धार से पेशाब होता है। पेशाब करते समय जोर करने से पीडा होती है। किसी समय पथरी के मूत्र मार्ग से अचानक हट जाने पर गोमेद के समान साफ पेशाब आराम से होता है। मूत्र मार्ग मे पथरी द्वारा किसी तरह का छिलन या घाव हो जाने से पेशाब में खून दिखाई देता है और पेशाब निकलते समय भयङ्कर वेदना होती है।

मूत्राशय की पथरी के लक्षण विशेष—कम्प, दांत पीसना, दर्द के मारे चिल्लाना, लिंग और नाभि को हाथो से दबाये रहना, पेशाब के समय खाँसने से अधोवायु के साथ मल निकल जाना और टप-टप करके पेशाब होना, पेडू मे अत्यन्त जलन और भयङ्कर वेदना होना तथा पेडू मे सुई गड़ाने जैसी पीड़ा होना आदि मूत्राशय की पथरी के खास लक्षण है। पथरी का रग नीला, पीला, काला, लाल अथवा सफेद होता है तथा वह कांटेदार, चिकनी, तिकोनी अथवा चिपटी आदि कई आकार-प्रकार की

होती है।

वीर्य की पथरी के लक्षण विशेष—पेड़ू मे कांटा चुभाने जैसा दर्द होना, दोनो फोतो का सूज जाना, दुर्बलता, ग्लानि, कांख मे पीड़ा, पाडुता, अरुचि मूत्राघात, तृषा, हृदय वेदना तथा वमन आदि।

चिकित्सा

इस रोग के दौरे को रोकने के लिये ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे गुर्दे और मूत्राशय को अपनी शक्ति से अधिक विकारी द्रव्यो को बहाने का काम न करना पडे। नही तो जैसे केवल पानी बहाने वाली नाली में राख, मिट्टी और कोयला डाले रहने से बारम्बार सफाई करते रहने पर भी वह गन्दी और बेकार बनी रहती है, वही दशा गुर्दे और मूत्राशय की भी होगी। गुर्दों और मूत्राशय पर अधिक बोझ न पडे, इसके लिये दो बातो पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। १—उचित आहार और २—शरीर की आन्तरिक सफाई।

सामान्यत. नीचे लिखे उपचारो से पथरी का बनना एवं तज्जन्य पीड़ा का होना तो रुक ही जायगा, साथ ही साथ लगभग समूचे शरीर के स्वास्थ्य मे सुधार हो जायगा :—

दो से चार दिनो तक केवल जल (जिसमे नीबू या नारङ्गी का रस मिला दिया जाय) पर रहना चाहिए। उसके बाद दो-तीन दिनो तक केवल रसदार खट्टे, मीठे फल लिए जाये। इन दिनो नित्य दो बार डूश लेकर सुबह-शाम पेट साफ कर लेना आवश्यक है। उसके बाद क्रमश: नीचे लिखे क्रम पर आजाना चाहिए।

सुबह को गरम पानी मे एक नीबू का रस, ताजे रसदार फलो का नाश्ता (जरूरत हो तो पावभर धारोष्ण दूध भी) ९ बजे एक गिलास पानी मे एक नीबू का रस, दिन के भोजन में थोड़ा लाल चिउडा, दही और भाजी-सलाद, ४ बजे फल-रस का पेय, सूर्यास्त से पहले गूदेदार फल, एक दो चोकरदार रोटी खजूर के साथ, कुछ भिगोयी किशमिश।

महीने मे पूरे शरीर का एक स्टीम बाथ, रोज १५ से २० मिनट तक कटिस्नान, रोज शरीर की सूखी मालिश, पाचन-क्रिया ठीक रहे इसके लिए सुबह शाम टहलना तथा कोई अन्य हल्का व्यायाम नियमित रूप से करना। ७ अथवा १५ दिन पर एक दिन उपवास।

उपर्युक्त के अतिरिक्त पथरी के रोगी को २४ घं[टे में] कम से कम ५ या ६ गिलास शुद्ध ताजा जल सादा [या] फल-रस मिलाकर अवश्य पीना चाहिए। इस रो[ग में] नारियल, ताड़ और खजूर का ताजा मीठा रस (ता[जे] फलों और शाक-सब्जियो का रस, दूध, मखनिया मठा, दूध या दही का तोड, सबेरे ताजे दूध में जल मि[ला]कर पीना, दशा कुछ सुधरने पर छेना और मक[्खन,] खरबूजा, तरबूजा, खीरा, ककड़ी, गूलर, पका केला, [पु]राना चावल, गेहूँ की दलिया, कुरथी का पानी, शहद, कि[श]मिश, अंजीर, पिंडखजूर, छुहारा, नारियल की ग[री,] बादाम तथा मूंगफली आदि पथ्य हैं, पर मास, मछ[ली,] अण्डा, दाल, नमक, मसाले, चीनी, पकवान, मिठ[ाई,] अचार-चटनी तथा सिरका आदि अपथ्य।

अम्लपित्त और पित्त की कमी
(यकृत-विकार)

लीवर, जिगर अथवा यकृत के अपना काम ठीक-ठी[क] करने से शरीर मे पित्त (Bile) की उत्पत्ति पूरी मा[त्रा] मे होती रहती है जिससे भूख खुलकर लगती है, पाचन क्रिया ठीक-ठीक और समय पर होती है, तथा शरीर [का] रक्त स्वस्थ और शुद्ध रहता है, जिसके परिणामस्वरू[प] मनुष्य पूर्णरूप से स्वस्थ रहता है तथा सुन्दर दिखता है। ऐसे व्यक्ति का मस्तिष्क साफ रहता है, बुद्धि प्रखर होत[ी] है, आखे चमकीली और स्वस्थ होती है, तथा चेहरा हंसता हुआ होता है। इसके विपरीत जिस मनुष्य का जिगर ठीक-ठीक काम नही करता वह जानता ही नहीं कि भूख क्या चीज है? उसे अपच और कब्ज की शिकायत हमेशा बनी रहती है, उसके शरीर का रक्त विषाक्त होता है जिसके फलस्वरूप ऐसा मनुष्य चिर रोगी बना रहता है और जवानी मे ही बूढा दिखने लगता है। ऐसा व्यक्ति मूर्ख, गावदी, चिड़चिड़ा, और कूढमग्ज होता है, उसकी जीभ मैली और आखे निस्तेज होती हैं, त्वचा मटमैली और खुरदुरी होती है, तथा उसका चेहरा रोता हुआ और मन गिरा हुआ होता है। ऐसे व्यक्ति को सिर दर्द, सीने में जलन, पित्त विकार, मतली, कै आदि अनेकानेक छोटे और बड़े रोग सदा घेरे रहते हैं जिनसे वह परेशान रहता मौत की घडिया गिनता रहता है।

शरीर की समस्त ग्रन्थियो मे यकृत सबसे बड़ी ग्र[न्थि]

यकृत

वाहिका ग्रन्थि है। इसका वजन शरीर के कुल वजन का लगभग ४० वा भाग या पौने दो सेर के करीब होता है। यह पेट की दाहिनी ओर वक्ष-उदर-मध्य पेशी (Diaphragm) के निचले भाग मे स्थित होकर शरीर की पाचन, अभिशोषण, तथा मलविसर्जन आदि आवश्यक क्रियाओ का सचालन करता है। यह एक थैली के आकार का होता है, जिसे पित्ता भी कहते है। आते, आमाशय, क्लोम, प्लीहा, और रक्त जिन पर शरीर के तन्तु अपने पोषण के लिये अवलम्बित रहते हैं सब के सब अप्रत्यक्ष रूप मे इसके प्रभाव के अन्दर रहते है। पित्त अथवा पाचक रस इसी पित्त या यकृत में बनता है जिससे निकलकर वह एक नली के जरिये पक्वाशय वा पित्ताशय में जमा होता रहता है।

यकृत के कार्य--यकृत का सबसे महत्वपूर्ण कार्य पित्त का उत्पादन है जो उसके कोषाणुओ की विशेषता है। पित्त का स्राव और उसका निर्माण निरन्तर होता रहता है और एक क्षण के लिये भी बन्द नही होता ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हृदय की धड़कन मरते दम तक एक क्षण के लिये भी बन्द नही होती। पित्त के स्राव की मात्रा भोजन के दो घटे बाद सबसे अधिक और आठ घटे बाद सबसे कम रहती है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया का भी इस स्राव पर असर होता है—गहरी सास लेने पर यकृत प्रणाली मे जो उसे द्वादशागुलान्त्र मे पहुंचाती है उसका प्रवाह तीव्र हो जाता है।

सयुक्त शिरा (Portal vein) के द्वारा जब द्राक्षोज क्षुद्रान्त्र (छोटी आत) से होकर यकृत मे पहुंचता है तो उसका अधिकाश भाग मधुजन (Glycogen) मे परिणत हो जाता है। यह रासायनिक परिवर्तन यकृत की समीकरण क्रिया का परिचायक होता है। पुत्तनक पदार्थो जैसे दाल, मास आदि का परिवर्तन भी यकृत में ही होता है जिसके फलस्वरूप यूरिया अम्ल उत्पन्न होता है जो गुर्दे के द्वारा सफाई करने में लगता है। इसके अतिरिक्त यकृत के छोटे-छोटे बीज कोषों मे दूषित रक्त की भी सफाई होती है। विषैली चीजो को रक्त से निकालने का कार्यभार भी यकृत पर ही पडता है। शरीर में अनावश्यक रूप से पहुँचे हुए विजातीय द्रव्यों और विषैली औषधियो के कुप्रभाव को दूर करने के लिये यकृत को विशेष रूप से उत्तेजित होकर प्रयत्न करना पड़ता है। शरीर के इन विविध कार्यों को सभालने मे यकृत को बहुत मेहनत करनी पड़ती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि यकृत को शरीर के रक्षार्थ, अकेले निम्नलिखित चार-चार प्रकार के कठिन एवं अत्यावश्यक कार्य अनवरत और एकसाथ करने पड़ते है—

(१) शरीर की गन्दगी को निकालना,

(२) पित्त का निर्माण,

(३) शर्कराजन (Glycogen) का भण्डार प्रस्तुत करना तथा

(४) उस विष को जो शरीर मे प्रवेश पा जाता है उसके प्रभाव को नष्ट करना।

यकृत के इन कार्यो में से किसी मे जब किसी कारण से बाधा उपस्थित होती है तो शरीर रोगी हो जाता है। यकृत के पहले कार्य में बाधा पड़ने पर वह स्वय सूज जाता है दूसरे कार्य मे बाधा पड़ने पर पीलिया या पथरी रोग हो जाता है, तीसरा कार्य ठीक से न हो जाने पर मधुमेह और चौथा काम बिगड़ जाने पर सारा शरीर ही

कमजोर पड़ने लगता है।

पित्त और उसके कार्य--उत्तम स्वास्थ्य के लिये यह जरूरी है कि यकृत रोज शरीर मे कम से कम आध सेर से लेकर एक सेर तक पित का निर्माण करे। क्योकि उत्तम पाचन के लिये काफी पाचक रस अर्थात् पित्त की जरूरत पड़ती है। इसीलिये प्रकृति ने पित्त को एकत्र कर रखने के लिये यकृत के दाहिने भाग के नीचे नासपाती के आकार की एक थैली लटका रखी है जिसे पित्ताशय कहते है। पित्त नलिका यकृत से निकलकर जहां आत मे मिलती है वहा एक ढक्कन (Valve) होता है। जब आत मे जाकर खाद्य को पचाने के लिये पित्त की आवश्यकता नही होती तब यह ढक्कन रास्ते को बन्द किये रहता है। उस समय पित्त/आत मे न जाकर रास्ते मे लगी एक दूसरी नलिका से जो यकृत को पित्ताशय से जोड़ती है, पित्ताशय मे पहुच कर एकत्र होने लगता है जहां से जरूरत होने पर वह आत में जाता है और अपना कार्य सम्पादन करता है।

पित्त जबर्दस्त पाचक रस होते हुए भी एक भयङ्कर विष है। यह क्षारमय होता है और चिकनाई के पाचन और उपयोग मे बड़े महत्व का कार्य करता है तथा आंतों को उद्दीप्त करता है और उन्हे क्रियाशील रखता है। पित्त का रग गहरा सुनहला या गहरा पिस्तई होता है। यह लसलसा होता है और स्वाद मे कड़ुआ होता है। यह शरीर के अन्य पाचक रसो को भी उद्दीप्त करने का कार्य करता है। उदाहरणार्थ द्वादशागुलान्त्र मे जहां आमाशय से खाद्य पदार्थ निकलने पर उनकी पाचन क्रिया पूर्ण होती है। क्लोम रस को उसका सहयोग प्राप्त होता है जिससे वह श्वेतसार और प्रोटीन को दूनी और बसा को तिगुनी शक्ति के साथ पचाने का काम करने लगता है। इस प्रकार शरीर के उचित पोपरा के लिये पित्त अनिवार्य रूप मे आवश्यक है। पित्त एक और महत्व पूर्ण कार्य करता है। वाहर रहने पर तो उसमे सड़न रोकने की शक्ति नही होती पर आंतों मे पहुंचकर खाद्य पदार्थ को जल्द सडने नही देता। अगर आतो मे उसका पहुंचना रोक दिया जाय तो खाद्य पदार्थ बहुत जल्द सड़ कर गैस उत्पन्न करने लगेगे।

पित्त-दोष और यकृत-विकार के कारण—शरीरकेकिसी भी अङ्ग से उसकी शक्ति से अधिक काम लेने पर उसको हानि पहुचती ही है। यही यकृत के साथ भी होता है। जब अन्य-निष्कासन अङ्ग त्वचा और बड़ी आत अपना काम पूरा-पूरा नहीं करते तो उनका काम भी यकृत पर आ पड़ता है। जरूरत से ज्यादा खाना, गलत खाना, व्यायाम न करना, औपधियो और मादक द्रव्यो का सेवन–ये भी यकृत का काम बढ़ा देते है। रक्त का जितना विष यकृत दूर कर सकता है उससे अधिक मात्रा हो जाने पर उसकी आवश्यक मात्रा मे पित्त पैदा करने की शक्ति कम पड़ जाती हैं और विष यकृत मे भर जाता है जिससे वह रुग्ण हो जाता है और पित्त का निर्माण होने में बाधा पड़ने लगती है। यकृत को भार-ग्रस्त करने वाले विष तले हुए गरिष्ट पदार्थ, अत्यधिक श्वेतसार आदि खाने के कारण पाचन पर बहुत अधिक भार पडने और कब्ज रहने से उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा

औषधि-विज्ञान की पुस्तको में पित्त-दोष एवं यकृत-विकार जनित पचीस-तीस रोगो का उल्लेख मिलता है। वे सभी रोग निम्नलिखित चिकित्सा-विधि से अवश्य दूर हो जाते हैं:—

१– दो-तीन दिनो का उपवास और एनिमा। उसके बाद जब तक कब्ज दूर न हो पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी रखने के बाद एनिमा।

२—गर्म या ठण्डे पानी मे नीबू का रस डालकर दिन मे कई बार पीना।

३—दो-तीन दिनो तक रसाहार। फिर एक सप्ताह तक फलाहार।

४—आहार मे ताजा फल, सलाद, उबली हुई तरकारिया, मठा, दही, शहद आदि अधिक मात्रा मे रखना तथा अन्य खाद्य पदार्थ कम मात्रा मे।

५—यकृत के स्थान पर मालिश।

६—यकृत पर बारी-बारी से गरम ठण्डी सेंक। या स्थानीय वाष्प-स्नान।

७—गहरी सास की कसरतें।

८—सुबह-शाम स्वच्छ वायु मे टहलना कम से कम एक घण्टा।

९—शुष्क घर्पण-स्नान स्नान के प्रथम।

१०—सप्ताह मे एक बार एप्सम साल्ट बाथ।

११—पीली बोतल के सूर्य तप्त जल की ६ खुराकें आधी-आधी छटाक की पीना।

१२—व्यायाम का श्रम शक्ति अनुसार।

१३—पश्चिमोत्तानासन और भुजङ्गासन रोज सवेरे नियम पूर्वक करना।

पीलिया

इस रोग मे पेशाब का रङ्ग पीला हो जाता है। उसके बाद धीरे धीरे आख,नाखून तथा त्वचा का रङ्ग भी पीला पड जाताहै। इतना ही नही, अपितु रोग के बढने पर रोगी प्रत्येक वस्तु को पीतवर्ण ही देखता है। इनके अतिरिक्त इस रोग मे बदहजमी, खुजली, ज्वर, मतली, वमन, बेचैनी तथा चिड़चिड़ापन के भी लक्षण प्रगट होते हैं। मुंह का स्वाद कडुवा हो जाता है तथा मिठाई और चिकनाई से घृणा हो जाती है। पीलिया रोग, पीले ज्वर से भिन्न होता है। पीले ज्वर की भाति पीलिया संक्रामक भी नही है और न इसमे ज्वर ही बहुत तेज (१०६° या १०७°) होता है। पीलिया रोग आराम होने के कुछ दिन पहले रोगी के स्वभाव मे कुछ कड़ुआपन आ जाता है वह अच्छी तरह सो नही पाता। उसे भोजन से अरुचि हो जाती है। पेट खराब रहने लगता है, यहा तक कि आरम्भ के २४ घटो मे रोगी जो कुछ खाता है, पीता है यहां तक कि फल का रस और पानी भी बाहर आता हुआ जान पड़ता है। कभी-कभी रोगी के दाहिने कंधे के नीचे के भाग मे मीठा-मीठा दर्द भी होता है। रोग के आक्रमण के पहले रोगी को कुछ ठण्ड सी लगती है और जी मचलाता है। पीलिया को कमल, कामला, कांवर, कावरू तथा अग्रेजी मे Jaundice कहते है।

इस रोग का मुख्य कारण यकृत दोष है अर्थात जब यकृत के कार्य मे कोई गडबडी पैदा हो जाती है तो पित्त जो वह निर्माण करता है, किसी रुकावट के कारण बजाय छोटी आत मे आकर गिरने के रक्त मे ही मिलना आरम्भ हो जाता है और तब रक्त सचालन-प्रणाली द्वारा वह सारे शरीर मे फैल जाता है। ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर पित्त का रङ्ग पीला होने के कारण रोगी की त्वचा, आंखे और पेशाब आदि सब पीत वर्ण हो जाते है।

पित्ताशय और पित्त की प्रणाली मे श्लैष्मिक कला का अस्तर हो जाता है। यकृत से जब अधिक काम लिया जाता है तो वह अस्वस्थ हो जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप उपर्युक्त श्लैष्मिक कला का स्तर सूज जाता है और उससे श्लेष्मा का स्राव होने लगता है। इस स्राव से पित्त के प्रवाह मे रुकावट पड़ती है और फलत. यकृत पित्त से भरकर फूल जाता है। उसके बाद यदि हालत न बदली तो पित्त का प्रवाह अन्त मे एक तरफ बिलकुल होता ही नहीं और पित्त को फिर शरीर के रक्त में मिल जाना पडता है जिससे पीलिया रोग की सृष्टि होती है।

भोजन मे पुत्तनक, शर्करा युक्त और स्निग्ध पदार्थों की अधिकता होने की वजह से यकृत का कार्य भार बढ जाता है जिसकी वजह से वह कमजोर,रोगी, और निकम्मा हो जाता है। बच्चो मे यकृत-दोष समय से पहले ही अन्न खिलाने, सफेद चीनी और मिठाई के व्यवहार कराने से होता है।

पित्तवाहक नली या पित्ताशय के मुख-द्वार का प्रदाह, पित्ताशय में पथरी या फोडा का होना, आवश्यकता से अधिक भोजन करना, व्यायाम या कोई श्रम न करना, पागल कुत्ता, गीदड़, तथा सांप आदि जहरीले जानवरो का काटना, सीसा या पारा जैसे धातु-विष के रक्त दोष से पित्त प्रणाली मे गाठ बध जाना, मलेरिया, टायफायड, आदि रोगो के कारण यकृत प्लीहा सहित सूज जाता है उत्तेजक पदार्थों और विषैली दवाइयो का सेवन, पानी मे अनावश्यक भीगना तथा भय, क्रोध आदि मानसिक उत्तेजना का शिकार होना आदि भी अन्य कारण है जिनसे पीलिया रोग हो सकता है।

चिकित्सा

जब तक रोग का जोर रहे या रोगी की अवस्थानुसार एक से सात दिनो तक नीबू या संतरे के रस मिले पानी पर रह कर उपवास करना चाहिए। यह न हो सके तो रोग के रूप के अनुसार १० से १४ दिनों तक केवल फलों के रस पर रहना चाहिए परन्तु एनिमा दोनो हालतों मे रोज लेना अत्यन्त आवश्यक है। उपवास या रसाहार के पश्चात् ७ से १० दिनो तक रसदार फलो पर रहनेके बाद शाक,तरकारी और रोटी पर धीरे-धीरे आना चाहिये। सप्ताह मे एक बार गुनगुने पानी से स्नान करना चाहिए या रोज गरम पानी से स्पंज, रोज

हल्का व्यायाम और सास की कसरतें करने से स्वास्थ्य लाभ में बड़ी सहायता मिलती है। यकृत की सूजन दूर करने के लिए उस स्थान पर रोज २०-२४ मिनट तक गरम-ठडी सेंक देना जरूरी है। खुजली में गरी के तेल मे नीबू का रस फेंट कर लगाना चाहिए। कटि-स्नान दिन मे दो बार और पैरो का गरम-स्नान सप्ताह मे दो बार लेना चाहिए। कब्ज टूटने तक रात को कमर की भीगी पट्टी लगाकर सोना चाहिए। यदि कफ के जमाव के कारण पित्तवाहक नली में रुकावट हो तो गरम पानी मे नमक डाल कर कै कर देने से वह दूर हो जायेगी। हल्की नीली बोतल के सूर्य तप्त जल की ६ खुराक आधी आधी छटाक की रोज पीने से भी पीलिया रोग मे लाभ होता है। अगर हल्की नीली बोतल का जल लाभकारी सिद्ध न हो तो गहरी नीली बोतल का जल काम में लाना चाहिए।

बेरीबेरी

बेरीबेरी गर्म देश का एक रोग है यह प्रायः शरीर में विटामिन 'बी' की कमी के कारण होता है। विटामिन बी के अभाव मे स्नायु-संस्थान निर्बल हो जाता है, भूख लगती नही कब्ज रहने लगता तथा पाचन बिगड़ जाता है। फलतः शरीर मे विजातीय द्रव्य भर जाता है जिससे नेत्र, स्नायु संस्थान और हृदय विशेष रूप से प्रभावित होते है।

बे कना के सड़े चावल, बेचोकर का गेहूं तथा सरसों के तेल आदि मे आर्जियोन मेक्सिकाना या हाइड्रो-सियानिक एसिड या ह्वाइट आयल या पेट्रोलियम की वजह से भी बेरीबेरी होती है।

बेरी-बेरी में कमजोरी, रक्तहीनता, सांस का फूलना, शोथ, अतिसार, ज्वर, रक्तस्राव, हृदय रोग, तथा यकृत-दोष के लक्षण सामान्यतः पाये जाते है।

बेरी-बेरी की कई किस्मे हैं। सूजन वाली बेरी-बेरी से हृदय की गति बन्द हो जाना तथा पेशाब रुक जाना सम्भव है। पुराने बेरी-बेरी के रोगी मे अधिकांश भीतरी तन्तु नाश हो चुके रहते है। इसलिये साधारणत विटामिन 'बी' वगैरह शरीर मे पहुचाने मे पूर्ण उपचार नही हो पाता। ऐसी ही बेरी-बेरी से रोगी अन्धा भी होते देखा गया है।

इस रोग से बचने के लिये चोकरदार लाल गेहू की रोटी, ढेंकी के चावल का माड सहित लाल भात लाल चिउड़ा, पोई, पालक, फूल गोभी, गाजर, आलू, शलजम, सेम, टमाटर, लेटिस आदि ताजी शाग-सब्जियां उबली दशा मे अकुरित-चना, पपीता, अनन्नास, लेमू, खूब पका केला, सेव, सूखे मेवे आदि खाने चाहिए। नमक कम खाना चाहिए।

चिकित्सा

पहले दो या तीन दिनो तक ताजे फलों का रस तीन-तीन घण्टे पर लेना चाहिए और एनिमा लेकर पेट को साफ कर देना चाहिए। फिर सात दिनो तक सुबह फल रस, दोपहर को रसदार फल और दूध तथा शाम को किसी दिन हरी भाजी का सलाद और किसी दिन उबली तरकारी। फिर सुबह फल और दूध, दोपहर को रोटी तरकारी और रात मे सिर्फ फल या तरकारी।

रोज सुबह ५ मिनट तक भाप नहान लेने के बाद कटि स्नान, रात को कमर की भीगी पट्टी लगाकर सोना, सप्ताह मे एक बार एप्सम साल्ट बाथ, कब्ज के दिनों मे एनिमा लेना तथा हृदय पर असर हो जाने पर पूर्ण आराम और आधा घण्टा तक देह की मालिश रोज कराने से इस रोग से छुटकारा पाया जा सकता है।

जगह छोड़ देने और कुछ दिनो तक दूसरी जगह चले जाने से भी इस रोग मे सुधार होते देखा गया है।

पेशाब का न होना

मूत्राशय मे मूत्र भरा रहने पर इच्छा करने पर भी जब मूत्र का निष्कासन नही हो सकता तो उस वक्त मूत्राशय मे बड़ी वेदना होती है जो कभी-कभी इतनी तीव्र हो उठती है कि रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

मूत्र बन्द होने के अनेक कारणो मे से मूत्राशय के आसपास विजातीय द्रव्य के भार के कारण मूत्रप्रणाली मे सूजन और प्रदाह का होना प्रधान कारण है।

चिकित्सा

साधारणत पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी कई बार देने से मूत्र निकलने लगता है। परन्तु यदि इससे लाभ न होता दिखाई दे तो सिर पर ठंडे पानी मे भीगा और निचोड़ा अगोछा रखकर गरम जल का कटि-स्नान देकर लेना चाहिए। गरम जल से भीगी बड़ी पट्टी मूत्राशय

ौर लिंग पर लगाने और उसे बदलते रहने से भी लाभ होता है। इस रोग मे सर्वप्रथम एक गरम जल का एनिमा कर आंतो को जरूरत साफ कर देना चाहिए।

जब तक मूत्र न निकलने लगे तब तक उपवास करना चाहिए। फिर रसाहार और फलाहार के बाद धीरे-धीरे साधारण सादे भोजन पर आजाना चाहिए।

हल्की नीली बोतल के सूर्य तप्त जल की आधी-आधी छटाक की ४ खुराके दिन मे लेने से भी उस रोग में बडा लाभ होता है।

मूत्र का न बनना या कम बनना

गुर्दों के आस-पास विजातीय द्रव्य के एकत्र हो जाने से जब उनमे खराबी आ जाती है तो उनके स्वाभाविक कार्य मे रुकावट पड़ने के फलस्वरूप शरीर के रक्त का मल मूत्र के रूप मे बन कर निकलना या तो एक बार ही बन्द हो जाता है या कम परिमाण मे निकलता है। इस तरह शरीर के रक्त की सफाई न होने के कारण रक्त विषाक्त हो जाता है जिससे कै, सिर दर्द, अचैतन्यता आदि अनेक उपद्रव खडे हो जाते है।

चिकित्सा

रोज गुर्दे पर गरम-ठडी सेक देनी चाहिए और जब तक हालत न सुधरे गरम जल का एनिमा भी लेते रहना चाहिए। पैरो का गरम-स्नान भी लाभकारी है। सप्ताह में एक दिन समूचे शरीर का वाष्प - स्नान लेना चाहिए। रात को कमर की भीगी पट्टी लगाकर सोना चाहिए।

गरम जल मे नीबू का रस निचोड़कर दिन मे कई बार पीना चाहिए। जब तक रोग अधिकाश मे दूर न हो जाय तब तक मठा या दूध मे जल मिलाकर पीना चाहिए या फल या तरकारियो के रस पर रहना चाहिए। फिर धीरे-धीरे सादे भोजन पर आजाना चाहिए।

मूत्राशय और मूत्र-ग्रन्थि प्रदाह तथा रक्त-मूत्र

देर तक मूत्र के वेग को रोक रखने, मूत्र के किसी कारण से पच-पचा जाने तथा ठड लगने आदि कारणो से जब मूत्र प्रणाली मे विजातीय द्रव्य एकत्र होकर सड़ने लगता है तो वहा पर वेदना और जलन होने लगती है, बार बार मूत्र-मार्ग से रक्त भी निकलता है, कभी पीव मिला मूत्र होता है, मूत्र त्यागने मे दर्द होता है, तथा ज्वर भी हो आता है।

चिकित्सा

प्रदाह होने पर पेट में अधिक देर तक रखकर गरम जल का एनिमा लेना चाहिए। पैरों का गरम-स्नान भी इसमें लाभकारी होता है। एनिमा लेने के तीन घंटे बाद गरम पानी पीकर गरम जल का एक कटि-स्नान करना चाहिए। उसके बाद पेडू को ठडे पानी से भीगे अगोछा से पोछ डालना चाहिए। यह क्रिया दिन में दो बार करनी चाहिए। इस रोग मे गुनगुने पानी से ही स्नान करना चाहिए।

रक्त स्राव होने पर पैरो को गरम जल में रखकर दिन में दो बार शीतल जल का कटि-स्नान लेना चाहिए, तथा शीतल जल का एनिमा भी लेना चाहिए।

इस रोग मे भी कम से कम एक दिन का उपवास करना चाहिए और रोज नीबू का रस मिला जल प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए। रोग का जोर कम होने तक रसाहार करना चाहिए। तत्पश्चात् धीरे-धीरे सादे भोजन पर आना चाहिए।

हरी बोतल के सूर्यतप्त जल की, आधी-आधी छटाक की ६ खुराके रोज लेने से रक्त-मूत्र मे लाभ होता है।

भस्मक

भस्मक या पेटूपन मे रोगी अत्यधिक खाता है। एनिमा लेकर पेट साफ कर लेने के बाद दिन मे दो बार कटि-स्नान लेना चाहिए तथा रात मे कमर की भीगी पट्टी लगाकर सोना चाहिए। पहले कुछ दिनो तक रसाहार और फलाहार करने के बाद सादे भोजन पर आजाना चाहिए।

आसमानी रङ्ग की बोतल के सूर्य तप्त जल की आठ खुराके (आधी-आधी छटाक की) रोज पीने से यह रोग जल्दी भागता है।

तृषा

इसमें अत्यधिक प्यास लगती है। इस रोग की चिकित्सा भी वही है जो भस्मक-रोग की।

अभी हाल मे पाश्चात्य स्वास्थ्य-विशेषज्ञो ने जो रिसर्च इस सम्बन्ध मे किये है, उनसे पता चलता है कि कोई आदमी मोटा या पतला क्यो होता है? इसका कारण मानव-शरीर स्थित कुछ कीटाणुओ की रासायनिक

क्रिया है जिसकी गति 'थाइराइड ग्लाएड' अर्थात् गले के पास की उस गिल्टी पर जिससे शरीर की गरमी बढती है तथा अस्थियों की वृद्धि मे योग मिलता है, निर्भर है। यह गिल्टी-विशेष जिस मनुष्य मे जितनी ही दुर्बल और छोटी होगी, वह उतना ही कमजोर और पतला बना रहेगा और इसके विपरीत जिस मनुष्य की यह गिल्टी स्वस्थ्य और मोटी होगी वह उतना ही सबल और मोटा होगा।

'थाइरायड ग्लायएड' के लिए पोषक तत्व 'आयोडीन' वाले पदार्थो मे अधिक पाये जाते है और आयोडीन अधिक मात्रा मे पाया जाता है ताजो हरी सब्जियो मे। इसलिए उन लोगो को जिन्हे मोटा होने की उत्सुकता है ताजी हरी तरकारिया कच्ची वा पकाकर, बहुतायत से खानी चाहिए। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि ऐसी तरकारियो मे मिर्च-मसालो का अधिक समावेश न होने पावे और वे अधिक पकाई भी न जावे अन्यथा आशातीत सफलता प्राप्त होने मे सन्देह की गुंजाइश है। अघपके मीठे फलों मे भी आयोडीन अधिक मात्रा मे पाया जाता है इसलिए अभीष्ट सिद्धि के लिये ताज़े फलो का भी सेवन अनिवार्य होना चाहिए। दालो से भी मोटाई बढ़ती है और विशेषकर उन दालो से जो छिलका समेत व्यवहार मे लाई जाती है जैसे उड़द की दाल, दूध, घी, तेल तथा अण्डा आदि मेदोत्पादक वस्तुओं से भी मोटाई बढाई जा सकती है और बहुत आसानी से, किन्तु वह मोटाई किसी काम की न होगी। इनसे शरीर भद्दा बन जाने के अतिरिक्त बहुधा बेकाम भी हो जाता है। अधिक दूध, घी सेवी मनुष्यो मे इसी प्रकार की मोटाई अधिक देखने मे आती है। ऐसी मोटाई तो एक प्रकार की बीमारी ही है, जो अक्सर आरामतलब लोगो को अधिक सताती है। यह बीमारी शरीर मे अधिक चर्बी इकट्ठी हो जाने से ही होती है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। इस सम्बन्ध मे एक विद्वान डाक्टर का कथन है :—

"An excess of fat is always a sign of dIsease in lateney."

इसलिये ऐसी मोटाई को चाहना करने मे पतला ही रहना लाख दर्जे अच्छा है।

यदि मोटाई अप्राकृतिक है अर्थात् अनावश्यक चर्बी बढ जाने से है तो व्यायाम द्वारा वह विजातीय चर्बी धीरे धीरे छट जायगी और शरीर पतला तथा हल्का-फुलका निकल आयेगा और व्यायाम से मोटाई बढने का यह तात्पर्य है कि व्यायाम के प्रभाव से शरीर के अंग-प्रत्यंग सजीव हो उठते हैं। उनकी शिथिलता मिट जाती है और प्रत्येक अवयव अपना कार्य सुचारु रूप से करने लगता है। जिसका फल यह होता है कि मनुष्य को स्वभावत. जितना मोटा होना चाहिए उतना वह हुये बिना नही रहता। व्यायाम से मनुष्य का शरीर सुडौल, सुन्दर तथा स्वस्थ तो बनता ही है, साथ ही साथ उसके असाधारण प्रभाव से मनुष्य की पाचन क्रिया भी अति तीव्र हो जाती है, जिससे जो कुछ भी खाया जाता है पच जाता है और भोजन पच जाने का अर्थ है स्वास्थ्योन्नति। मगर यह ध्यान रहे कि मोटा होने के लिये अधिक व्यायाम बिलकुल फजूल है और कभी-कभी वह उलटा भी सिद्ध हो सकता है। इसलिये व्यायाम थोडा किन्तु नियमित रूप से होना चाहिए जिससे थकावट न पैदा होकर चित्त को प्रसन्नता प्राप्त हो।

फिक्र और चिन्ता भी शरीर के मोटे होने मे कम बाधक नही होते। एक मनुष्य जो चिन्ताओं के वशीभूत है कभी मोटा हो नही सकता। किन्तु इसके विपरीत जो व्यक्ति सब प्रकार की चिंताओं से मुक्त है उसका तीर्थ स्थान के साड़ो की भांति मोटा होते चले जाना अनिवार्य है।

शरीर के प्रत्येक अवयव को विधिवत् मालिश करने से भी मनुष्य मोटा होता देखा गया है। पहलवानों का शरीर जो सुडौल और भरा हुआ दिखाई देता है वह व्यायाम के साथ-साथ नियमित मालिश का ही फल होता है।

किसी व्यक्ति विशेष का मोटा अथवा पतला होना उसके स्वभाव, व्यवसाय तथा उसकी सामाजिक मनोवृत्ति पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। सेठ, महाजन विशेषकर मारवाडी समाज मे आपको विरले ही पतले दिखाई देगे। किन्तु परिश्रमी खेतिहर किसानो मे कठिनाई मे दो सौ मे एक मोटा किसान तलाश करने पर मिलेगा।

मोटा होने के इच्छुकों को यह बात भी न भूलना चाहिए कि किसी भी अवस्था मे यदि मनुष्य प्रतिदिन

वगैर: जमीन के नीचे पैदा होने वाली तरकारियां मूली, गाजर, शलजम, को छोडकर, चीनी, मैदे की चीजे, तली चीजें, तथा नशीली चीजे इस रोग मे हानि पहुंचाती है।

मूत्राशय और वीर्य की पथरी

शरीर के रक्त का दूषित तरल मल, गुर्दों द्वारा छन-कर मूत्र की शकल मे मूत्राशय मे जमा होता रहता है जहा से वह मूत्र-नलिका द्वारा बाहर हो जाया करता है। शरीर अथवा मूत्र यन्त्रो की अस्वाभाविक अवस्था मे जब वायु मूत्राशय मे आये हुए मूत्र को सुखा देती है अर्थात् जब मूत्र शरीर स्थित तप्त वायु से सूख कर पत्थर की तरह कडा हो जाता है तब पथरी रोग होता है। इसको निम्नलिखित प्रकार से भी समझा जा सकता है—

मूत्र त्याग की इच्छा होने पर जब हम उसे त्याग नही करते अपितु किसी कारणवश जबर्दस्ती मूत्राशय मे ही रोक रखते है तो मूत्र यन्त्रों—मूत्राशय और गुर्दों में उसी समय से रासायनिक प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है अथवा उद्वेग उत्पन्न हो जाता है जिससे मसाने मे गरमी बढ़ जाती है, मूत्र का द्रव अंश भाप बन कर उड जाता है और कुछ शरीर के रक्त मे पुनः मिलकर रक्त को विषाक्त कर देता है। मूत्राशय मे मूत्र के इस प्रकार चुक जाने से मूत्र करने की हाजत ही मिट जाती है। परिणामतः मूत्राशय और गुर्दो मे नमक और न घुलने वाले विजातीय द्रव्यो के पीले रग के छोटे-छोटे रवे बाकी बच रहते है। जो बाद मे मूत्र करते समय मूत्र के साथ बह जाते हैं। परन्तु फिर भी कुछ रवे मूत्राशय मे अटके रह जाते है। इस तरह वर्षों बाद जब मूत्राशय मे ऐसे रवे अधिक मात्रा मे एकत्र होते है तब साधारणतः वे आपस में मिलकर पथरी का रूप धारण कर लेते है। पथरी के रवे उन्ही ग्रन्थियो के मूत्राशय मे अधिक बनते है जिनके पेशाब मे विकार द्रव्यो का अंश सामान्य से बहुत अधिक होता है।

मूत्राशय मे पथरी, शरीर मे विकार उत्पन्न होने पर अथवा प्रकृति विरुद्ध आहार-विहार करने से उसी तरह बनती है जिस तरह इन्जन के ब्यायलर में पपड़ी जम जाती है। जब तक मूत्राशय मे पथरी छोटे-छोटे रवो के रूप मे होती है तब तक वह मूत्र के साथ निकलती रहती है और किसी प्रकार की तकलीफ नही देती। परंतु जब रवे आपस मे मिलकर बडे हो जाते है तब मूत्र प्रणाली मे अटक कर दर्द गुर्दा पैदा कर देते है। इसी को पथरी रोग कहते है।

जो लोग मैथुन के समय अधिक आनन्द प्राप्ति के लिये स्थानच्युत या निकलते हुए वीर्य को रोक लेते है उनका वीर्य भीतर रास्ते मे ही अटक कर रह जाता है और बाहर नही निकलने पाता। उसी अटके हुए वीर्य को जब वायु लिंग और फोतो के बीच मे मूत्राशय के मुह पर ले जाकर सुखा देती है तब वह वीर्य की पथरी कहलाती है।

पथरी के निकलने के पहले मूत्राशय मे अफरा आ जाता है—वह सूज या फूल जाता है और उसके चारों तरफ अत्यन्त पीड़ा (रीनल-कालिक पेन) होती है अथवा पेडू के पास के स्थानो मे दर्द होने लगता है। मूत्र में बकरे के पेशाब की सी बदबू आती है, पेशाब कष्ट से होता है और भोजन की रुचि नही होती।

पथरी के निकल चुकने पर नाभि मे, फोते के नीचे सीवन मे तथा नाभि के नीचे की जगह, मूत्राशय या पेडू के मुह मे दर्द होता है। मूत्र बहाने वाले मार्गों के बन्द हो जाने से मूत्र की धार बीच मे ही फट जाती है यानी विच्छिन्न धार से पेशाब होता है। पेशाब करते समय जोर करने से पीड़ा होती है। किसी समय पथरी के मूत्र मार्ग से अचानक हट जाने पर गोमेद के समान साफ पेशाब आराम से होता है। मूत्र मार्ग मे पथरी द्वारा किसी तरह का छिलन या घाव हो जाने से पेशाब मे खून दिखाई देता है और पेशाब निकलते समय भयङ्कर वेदना होती है।

मूत्राशय की पथरी के लक्षण विशेष—कम्प, दात पीसना, दर्द के मारे चिल्लाना, लिंग और नाभि को हाथो से दबाये रहना, पेशाब के समय खाँसने से अधोवायु के साथ मल निकल जाना और टप-टप करके पेशाब होना, पेडू मे अत्यन्त जलन और भयङ्कर वेदना होना तथा पेडू मे सुई गडाने जैसी पीडा होना आदि मूत्राशय की पथरी के खास लक्षण है। पथरी का रग नीला, पीला, काला, लाल अथवा सफेद होता है तथा वह काटेदार, चिकनी, तिकोनी अथवा चिपटी आदि कई आकार-प्रकार की

होती है।

वीर्य की पथरी के लक्षण विशेष—पेडू मे कांटा चुभाने जैसा दर्द होना, दोनो फोतों का सूज जाना, दुर्बलता, ग्लानि, काख मे पीड़ा, पाडुता, अरुचि मूत्राघात, तृषा, हृदय वेदना तथा वमन आदि।

चिकित्सा

इस रोग के दौरे को रोकने के लिये ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे गुर्दे और मूत्राशय को अपनी शक्ति से अधिक विकारी द्रव्यो को बहाने का काम न करना पड़े। नही तो जैसे केवल पानी बहाने वाली नाली में राख, मिट्टी और कोयला डाले रहने से बारम्बार सफाई करते रहने पर भी वह गन्दी और बेकार बनी रहती है, वही दशा गुर्दे और मूत्राशय की भी होगी। गुर्दों और मूत्राशय पर अधिक बोझ न पडे, इसके लिये दो बातों पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। १—उचित आहार और २—शरीर की आन्तरिक सफाई।

सामान्यत नीचे लिखे उपचारो से पथरी का बनना एवं तज्जन्य पीड़ा का होना तो रुक ही जायगा, साथ हो साथ लगभग समूचे शरीर के स्वास्थ्य मे सुधार हो जायगा :—

दो से चार दिनो तक केवल जल (जिसमे नीबू या नारङ्गी का रस मिला दिया जाय) पर रहना चाहिए। उसके बाद दो-तीन दिनो तक केवल रसदार खट्टे, मीठे फल लिए जाये। इन दिनो नित्य दो बार डूश लेकर सुबह-शाम पेट साफ कर लेना आवश्यक है। उसके बाद क्रमश: नीचे लिखे क्रम पर आजाना चाहिए।

सुबह को गरम पानी मे एक नीबू का रस, ताजे रसदार फलो का नाश्ता (जरूरत हो तो पावभर धारोष्ण दूध भी) ९ बजे एक गिलास पानी मे एक नीबू का रस, दिन के भोजन में थोड़ा लाल चिउडा, दही और भाजी-सलाद, ४ बजे फल-रस का पेय, सूर्यास्त से पहले गूदेदार फल, एक दो चोकरदार रोटी खजूर के साथ, कुछ भिगोयी किशमिश।

महीने मे पूरे शरीर का एक स्टीम बाथ, रोज १५ से २० मिनट तक कटिस्नान, रोज शरीर की सूखी मालिश, पाचन-क्रिया ठीक रहे इसके लिए सुबह-शाम टहलना तथा कोई अन्य हलका व्यायाम नियमित रूप से करना। ७ अथवा १५ दिन पर एक दिन उपवास।

उपर्युक्त के अतिरिक्त पथरी के रोगी को २४ घंटो मे कम से कम ५ या ६ गिलास शुद्ध ताजा जल सादा या फल-रस मिलाकर अवश्य पीना चाहिए। इस रोग मे नारियल, ताड़ और खजूर का ताजा मीठा रस (ताडी) फलों और शाक-सब्जियो का रस, दूध, मखनिया दूध, मठा, दूध या दही का तोड, सवेरे ताजे दूध मे जल मिला कर पीना, दशा कुछ सुधरने पर छेना और मक्खन, खरबूजा, तरबूजा, खीरा, ककड़ी, गूलर, पका केला, चूड़ा, चावल, गेहूँ की दलिया, कुरथी का पानी, शहद, किशमिश, अंजीर, पिंडखजूर, छुहारा, नारियल की गरी, बादाम तथा मूंगफली आदि पथ्य हैं, पर मास, मछली, अण्डा, दाल, नमक, मसाले, चीनी, पक्वान, मिठाई, अचार-चटनी तथा सिरका आदि अपथ्य।

अम्लपित्त और पित्त की कमी
(यकृत-विकार)

लीवर, जिगर अथवा यकृत के अपना काम ठीक-ठीक करने से शरीर मे पित्त (Bile) की उत्पत्ति पूरी मात्रा मे होती रहती है जिससे भूख खुलकर लगती है, पाचन-क्रिया ठीक-ठीक और समय पर होती है, तथा शरीर का रक्त स्वस्थ और शुद्ध रहता है, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य पूर्णरूप से स्वस्थ रहता है तथा सुन्दर दिखता है। ऐसे व्यक्ति का मस्तिष्क साफ रहता है बुद्धि प्रखर होती है, आखे चमकीली और स्वस्थ होती है, तथा चेहरा हंसता हुआ होता है। इसके विपरीत जिस मनुष्य का जिगर ठीक-ठीक काम नही करता वह जानता ही नही कि भूख क्या चीज है? उसे अपच और कब्ज की शिकायत हमेशा बनी रहती है, उसके शरीर का रक्त विषाक्त होता है जिसके फलस्वरूप ऐसा मनुष्य चिर रोगी बना रहता है और जवानी मे ही बूढा दिखने लगता है। ऐसा व्यक्ति मूर्ख, गावदी, चिडचिड़ा, और कूढमग्ज होता है, उसकी जीभ मैली और आखे निस्तेज होती हैं, त्वचा मटमैली और खुरदुरी होती है, तथा उसका चेहरा रोता हुआ और मन गिरा हुआ होता है। ऐसे व्यक्ति को सिर दर्द, सीने मे जलन, पित्त विकार, मतली, कै आदि अनेकानेक छोटे और मद रोग सदा घेरे रहते है जिनमे वह परेशान रहकर मौत की घडिया गिनता रहता है।

शरीर की समस्त ग्रन्थियो में यकृत सबसे बडी ग्र-

यकृत

वाहिका ग्रन्थि है। इसका वजन शरीर के कुल वजन का लगभग ४० वा भाग या पौने दो सेर के करीब होता है। यह पेट की दाहिनी ओर वक्ष-उदर-मध्य पेशी (Diaphragm) के निचले भाग मे स्थित होकर शरीर की पाचन, अभिशोषण, तथा मलविसर्जन आदि आवश्यक क्रियाओ का सचालन करता है। यह एक थैली के आकार का होता है, जिसे पित्ता भी कहते है। आते, आमाशय, क्लोम, प्लीहा, और रक्त जिन पर शरीर के तन्तु अपने पोषण के लिये अवलम्बित रहते है सब के सब अप्रत्यक्ष रूप मे इसके प्रभाव के अन्दर रहते हैं। पित्त अथवा पाचक रस इसी पित्त या यकृत में बनता है जिससे निकलकर वह एक नली के जरिये पक्वाशय वा पित्ताशय में जमा होता रहता है।

यकृत के कार्य—यकृत का सबसे महत्वपूर्ण कार्य पित्त का उत्पादन है जो उसके कोषाणुओ की विशेषता है। पित्त का स्राव और उसका निर्माण निरन्तर होता रहता है और एक क्षण के लिये भी बन्द नही होता ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हृदय की धडकन मरते दम तक एक क्षण के लिये भी बन्द नही होती। पित्त के स्राव की मात्रा भोजन के दो घटे बाद सबसे अधिक और आठ घटे बाद सबसे कम रहती है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया का भी इस स्राव पर असर होता है—गहरी सास लेने पर यकृत प्रणाली मे जो उसे द्वादशागुलान्त्र मे पहुंचाती है उसका प्रवाह तीव्र हो जाता है।

सयुक्त शिरा (Portal vein) के द्वारा जब द्राक्षोज क्षुद्रान्त्र (छोटी आत) से होकर यकृत मे पहुंचता है तो उसका अधिकाश भाग मधुजन (Glycogen) मे परिणत हो जाता है। यह रासायनिक परिवर्तन यकृत की समीकरण क्रिया का परिचायक होता है। पुत्तनक पदार्थो जैसे दाल, मांस आदि का परिवर्तन भी यकृत मे ही होता है जिसके फलस्वरूप यूरिया अम्ल उत्पन्न होता है जो गुर्दे के द्वारा सफाई करने मे लगता है। इसके अतिरिक्त यकृत के छोटे-छोटे बीज कोषों मे दूषित रक्त की भी सफाई होती है। विषैली चीजों को रक्त से निकालने का कार्यभार भी यकृत पर ही पड़ता है। शरीर मे अनावश्यक रूप से पहुँचे हुए विजातीय द्रव्यों और विषैली औषधियो के कुप्रभाव को दूर करने के लिये यकृत को विशेष रूप से उत्तेजित होकर प्रयत्न करना पड़ता है। शरीर के इन विविध कार्यों को सभालने मे यकृत को बहुत मेहनत करनी पड़ती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि यकृत को, शरीर के रक्षार्थ, अकेले निम्नलिखित चार-चार प्रकार के कठिन एवं अत्यावश्यक कार्य अनवरत और एकसाथ करने पड़ते है—

(१) शरीर की गन्दगी को निकालना,

(२) पित्त का निर्माण,

(३) शर्कराजन (Glycogen) का भण्डार प्रस्तुत करना तथा

(४) उस विष को जो शरीर में प्रवेश पा जाता है उसके प्रभाव को नष्ट करना।

यकृत के इन कार्यों में से किसी में जब किसी कारण से बाधा उपस्थित होती है तो शरीर रोगी हो जाता है। यकृत के पहले कार्य में बाधा पड़ने पर वह स्वय सूज जाता है दूसरे कार्य मे बाधा पड़ने पर पीलिया या रोग हो जाता है, तीसरा कार्य ठीक से न हो तो मधुमेह और चौथा काम बिगड़ जाने पर मारा

कमजोर पड़ने लगता है।

पित्त और उसके कार्य—उत्तम स्वास्थ्य के लिये यह जरूरी है कि यकृत रोज शरीर मे कम से कम आध सेर से लेकर एक सेर तक पित्त का निर्माण करे। क्योकि उत्तम पाचन के लिये काफी पाचक रस अर्थात् पित्त की जरूरत पड़ती है। इसीलिये प्रकृति ने पित्त को एकत्र कर रखने के लिये यकृत के दाहिने भाग के नीचे नासपाती के आकार की एक थैली लटका रखी है जिसे पित्ताशय कहते है। पित्त नलिका यकृत से निकलकर जहां आत मे मिलती है वहा एक ढक्कन (Valve) होता है। जब आत मे जाकर खाद्य को पचाने के लिये पित्त की आवश्यकता नही होती तब यह ढक्कन रास्ते को बन्द किये रहता है। उस समय पित्त आत मे न जाकर रास्ते मे लगी एक दूसरी नलिका से जो यकृत को पित्ताशय से जोड़ती है, पित्ताशय मे पहुंच कर एकत्र होने लगता है जहां से जरूरत होने पर वह आत में जाता है और अपना कार्य सम्पादन करता है।

पित्त जबर्दस्त पाचक रस होते हुए भी एक भयङ्कर विष है। यह क्षारमय होता है और चिकनाई के पाचन और उपयोग मे बड़े महत्व का कार्य करता है तथा आतों को उद्दीप्त करता है और उन्हे क्रियाशील रखता है। पित्त का रंग गहरा सुनहला या गहरा पिस्तई होता है। यह लसलसा होता है और स्वाद मे कडुआ होता है। यह शरीर के अन्य पाचक रसो को भी उद्दीप्त करने का कार्य करता है। उदाहरणार्थ द्वादशागुलान्त्र मे जहा आमाशय से खाद्य पदार्थ निकलने पर उनकी पाचन क्रिया पूर्ण होती है। क्लोम रस को उसका सहयोग प्राप्त होता है जिससे वह श्वेतसार और प्रोटीन को दूनी और वसा को तिगुनी शक्ति के साथ पचाने का काम करने लगता है। इस प्रकार शरीर के उचित पोपण के लिये पित्त अनिवार्य रूप मे आवश्यक है। पित्त एक और महत्व पूर्ण कार्य करता है। बाहर रहने पर तो उसमे सड़न रोकने की शक्ति नहीं होती पर आतों मे पहुंचकर खाद्य पदार्थ को जल्द सड़ने नही देता। अगर आंतो मे उसका पहुचना रोक दिया जाय तो खाद्य पदार्थ बहुत जल्द सड़ कर गैस उत्पन्न करने लगेगे।

पित्त-दोष और यकृत-विकार के कारण—शरीर के किसी भी अङ्ग से उसकी शक्ति से अधिक काम लेने पर उसको हानि पहुंचती ही है। यही यकृत के साथ भी होता है। जब अन्य निष्कासन अङ्ग त्वचा और बडी आत अपना काम पूरा-पूरा नही करते तो उनका काम भी यकृत पर आ पड़ता है। जरूरत से ज्यादा खाना, गलत खाना, व्यायाम न करना, औषधियो और मादक द्रव्यो का सेवन—ये भी यकृत का काम बढा देते है। रक्त का जितना विष यकृत दूर कर सकता है उससे अधिक मात्रा हो जाने पर उसकी आवश्यक मात्रा मे पित्त पैदा करने की शक्ति कम पड़ जाती है और विष यकृत मे भर जाता है जिससे वह रुग्ण हो जाता है और पित्त का निर्माण होने में बाधा पड़ने लगती है। यकृत को भार ग्रस्त करने वाले विष तले हुए गरिष्ट पदार्थ, अत्यधिक श्वेतसार आदि खाने के कारण पाचन पर बहुत अधिक भार पड़ने और कब्ज रहने से उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा

औषधि-विज्ञान की पुस्तको में पित्त-दोष एवं यकृत-विकार जनित पचीस-तीस रोगो का उल्लेख मिलता है। वे सभी रोग निम्नलिखित चिकित्सा-विधि से अवश्य दूर हो जाते है :—

१—दो-तीन दिनो का उपवास और एनिमा। उसके बाद जब तक कब्ज दूर न हो पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी रखने के बाद एनिमा।

२—गर्म या ठण्डे पानी मे नीबू का रस डालकर दिन मे कई बार पीना।

३—दो-तीन दिनो तक रसाहार। फिर एक सप्ताह तक फलाहार।

४—आहार में ताजा फल, सलाद, उबली हुई तरकारिया, मठा, दही, शहद आदि अधिक मात्रा मे रखना तथा अन्य खाद्य पदार्थ कम मात्रा मे।

५—यकृत के स्थान पर मालिश।

६—यकृत पर बारी-बारी से गरम ठण्डी सेंक। या स्थानीय वाष्प-स्नान।

७—गहरी सास की कसरतें।

८—सुबह-शाम स्वच्छ वायु मे टहलना कम से कम एक घण्टा।

९—शुष्क घर्षण-स्नान स्नान के प्रथम।

१०—सप्ताह मे एक बार एप्सम साल्ट बाथ ।

११—पीली बोतल के सूर्य तप्त जल की ६ खुराके आधी-आधी छटाक की पीना ।

१२—व्यायाम का श्रम शक्ति अनुसार ।

१३—पश्चिमोत्तानासन और भुजङ्गासन रोज सबेरे नियम पूर्वक करना ।

पीलिया

इस रोग मे पेशाब का रङ्ग पीला हो जाता है। उसके बाद धीरे धीरे आख,नाखून तथा त्वचा का रङ्ग भी पीला पड जाताहै । इतना ही नही, अपितु रोग के बढ़ने पर रोगी प्रत्येक वस्तु को पीतवर्ण ही देखता है । इनके अतिरिक्त इस रोग मे बदहजमी, खुजली, ज्वर, मतली, वमन, बेचैनी तथा चिड़चिड़ापन के भी लक्षण प्रगट होते है। मुंह का स्वाद कड़ुवा हो जाता है तथा मिठाई और चिकनाई से घृणा हो जाती है । पीलिया रोग, पीले ज्वर से भिन्न होता है । पीले ज्वर की भाति पीलिया संक्रामक भी नही है और न इसमे ज्वर ही बहुत तेज (१०६° या १०७°) होता है । पीलिया रोग आराम होने के कुछ दिन पहले रोगी के स्वभाव मे कुछ कड़ुआपन आ जाता है वह अच्छी तरह सो नही पाता । उसे भोजन से अरुचि हो जाती है । पेट खराब रहने लगता है, यहा तक कि प्रारम्भ के २४ घटो मे रोगी जो कुछ खाता है, पीता है यहा तक कि फल का रस और पानी भी बाहर आता हुआ जान पडता है । कभी-कभी रोगी के दाहिने कधे के नीचे के भाग मे मीठा-मीठा दर्द भी होता है। रोग के आक्रमण के पहले रोगी को कुछ ठण्ड सी लगती है और जी मचलाता है । पीलिया को कमल, कामला, कावर, कांवर तथा अग्रेजी मे Jaundice कहते है ।

इस रोग का मुख्य कारण यकृत दोष है अर्थात जब यकृत के कार्य मे कोई गड़बड़ी पैदा हो जाती है तो पित्त जो वह निर्माण करता है, किसी रुकावट के कारण बजाय छोटी आत मे आकर गिरने के रक्त मे ही मिलना आरम्भ हो जाता है और तब रक्त संचालन-प्रणाली द्वारा वह सारे शरीर मे फैल जाता है । ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर पित्त का रङ्ग पीला होने के कारण रोगी की त्वचा, आंखे और पेशाब आदि सब पीत वर्ण हो जाते है ।

पित्ताशय और पित्त की प्रणाली मे श्लैष्मिक कला का अस्तर हो जाता है । यकृत से जब अधिक काम लिया जाता है तो वह अस्वस्थ हो जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप उपर्युक्त श्लैष्मिक कला का स्तर सूज जाता है और उससे श्लेष्मा का स्राव होने लगता है । इस स्राव से पित्त के प्रवाह मे रुकावट पड़ती है और फलत. यकृत पित्त से भरकर फूल जाता है । उसके बाद यदि हालत न बदली तो पित्त का प्रवाह अन्त मे एक तरफ बिलकुल होता ही नहीं और पित्त को फिर शरीर के रक्त मे मिल जाना पडता है जिससे पीलिया रोग की सृष्टि होती है ।

भोजन मे पुत्तनक, शर्करा युक्त और स्निग्ध पदार्थों की अधिकता होने की वजह से यकृत का कार्य भार बढ़ जाता है जिसकी वजह से वह कमजोर,रोगी, और निकम्मा हो जाता है । बच्चो मे यकृत-दोष समय से पहले ही अन्न खिलाने, सफेद चीनी और मिठाई के व्यवहार कराने से होता है ।

पित्तवाहक नली या पित्ताशय के मुख-द्वार का प्रदाह, पित्ताशय में पथरी या फोड़ा का होना, आवश्यकता से अधिक भोजन करना, व्यायाम या कोई श्रम न करना, पागल कुत्ता, गीदड, तथा सांप आदि जहरीले जानवरो का काटना, सीसा या पारा जैसे धातु-विष के रक्त दोष से पित्त प्रणाली मे गाठ बंध जाना, मलेरिया, टायफायड, आदि रोगो के कारण यकृत प्लीहा रहित सूज जाता है उत्तेजक पदार्थों और विषैली दवाइयो का सेवन, पानी मे अनावश्यक भीगना तथा भय, क्रोध आदि मानसिक उत्तेजना का शिकार होना आदि भी अन्य कारण है जिनसे पीलिया रोग हो सकता है ।

चिकित्सा

जब तक रोग का जोर रहे या रोगी की अवस्थानुसार एक से सात दिनो तक नीबू या सतरे के रस मिले पानी पर रह कर उपवास करना चाहिए । यह न हो सके तो रोग के रूप के अनुसार १० से १४ दिनो तक केवल फलों के रस पर रहना चाहिए परन्तु एनिमा दोनो हालतो मे रोज लेना अत्यन्त आवश्यक है । उपवास या रसाहार के पश्चात् ७ से १० दिनो तक रसदार फलो पर रहनेके बाद शाक,तरकारी और रोटी पर धीरे-धीरे आना चाहिये । सप्ताह मे एक बार गुनगुने पानी से स्नान करना चाहिए या रोज गरम पानी से स्पंज, रोज कोई

हल्का व्यायाम और सास की कसरतें करने से स्वास्थ्य लाभ मे बड़ी सहायता मिलती है। यकृत की सूजन दूर करने के लिए उस स्थान पर रोज २०-२४ मिनट तक गरम-ठडी सेक देना जरूरी है। खुजली मे गरी के तेल मे नीबू का रस फेंट कर लगाना चाहिए। कटि-स्नान दिन मे दो बार और पैरो का गरम-स्नान सप्ताह मे दो बार लेना चाहिए। कब्ज टूटने तक रात को कमर की भीगी पट्टी लगाकर सोना चाहिए। यदि कफ के जमाव के कारण पित्तवाहक नली में रुकावट हो तो गरम पानी मे नमक डाल कर कै कर देने से वह दूर हो जायगी। हल्की नीली बोतल के सूर्य तप्त जल की ६ खुराक आधी आधी छटांक की रोज पीने से भी पीलिया रोग मे लाभ होता है। अगर हल्की नीली बोतल का जल लाभकारी सिद्ध न हो तो गहरी नीली बोतल का जल काम में लाना चाहिए।

बेरीबेरी

बेरीबेरी गर्म देश का एक रोग है यह प्रायः शरीर में विटामिन 'बी' की कमी के कारण होता है। विटामिन बी के अभाव मे स्नायु-संस्थान निर्बल हो जाता है, भूख लगती नही कब्ज रहने लगता तथा पाचन बिगड़ जाता है। फलतः शरीर मे विजातीय द्रव्य भर जाता है जिससे नेत्र, स्नायु संस्थान और हृदय विशेष रूप से प्रभावित होते है।

बे कना के सड़े चावल, बेचोकर का गेहूं तथा सरसो के तेल आदि मे आर्जियोन मेक्सिकाना या हाइड्रो-सियानिक एसिड या ह्वाइट आयल या पेट्रोलियम की वजह से भी बेरीबेरी होती है।

बेरी-बेरी मे कमजोरी, रक्तहीनता, सांस का फूलना, शोथ, अतिसार, ज्वर, रक्तस्राव, हृदय रोग, तथा यकृत-दोष के लक्षण सामान्यतः पाये जाते हैं।

बेरी-बेरी की कई किस्मे है। सूजन वाली बेरी-बेरी से हृदय की गति बन्द हो जाना तथा पेशाब रुक जाना सम्भव है। पुराने बेरी-बेरी के रोगी मे अधिकांश भीतरी तन्तु नाश हो चुके रहते हैं। इसलिये साधारणतः विटामिन 'बी' वगैरह शरीर मे पहुचाने से पूर्ण उपचार नही हो पाता। ऐसी ही बेरी-बेरी से रोगी अन्धा भी होते देखा गया है।

इस रोग से बचने के लिये चोकरदार लाल गेहू की रोटी, ढेकी के चावल का माड सहित लाल भात साग दिउडा, पोई, पालक, फूल गोभी, गाजर, आलू शलजम, सेम, टमाटर, लेटिस आदि ताजी साग-सब्जियां उबली दशा मे अंकुरित चना, पपीता, अनन्नास, बेल, खूब पका केला, सेव, सूखे मेवे आदि खाने चाहिए। नमक कम खाना चाहिए।

चिकित्सा

पहले दो या तीन दिनो तक ताजे फलो का रस तीन-तीन घण्टे पर लेना चाहिए और एनिमा लेकर पेट को साफ कर देना चाहिए। फिर सात दिनो तक सुबह फल रस, दोपहर को रसदार फल और दूध तथा को किसी दिन हरी भाजी का सलाद और किसी उबली तरकारी। फिर सुबह फल और दूध, दोप रोटी तरकारी और रात मे सिर्फ फल या तरका

रोज सुबह ५ मिनट तक भाप नहान लेने के कटि स्नान, रात को कमर की भीगी पट्टी सोना, सप्ताह में एक बार एप्सम साल्ट बाथ, दिनो मे एनिमा लेना तथा हृदय पर असर हो पर पूर्ण आराम और आधा घण्टा तक देह की रोज कराने से इस रोग से छुटकारा पाया जा है।

जगह छोड देने और कुछ दिनो तक दूसरी जग जाने से भी इस रोग मे सुधार होते देखा गया है

पेशाब का न होना

मूत्राशय मे मूत्र भरा रहने पर इच्छा करने भी जब मूत्र का निष्कासन नही हो सकता तो उस मूत्राशय मे बड़ी वेदना होती है जो कभी-कभी तीव्र हो उठती है कि रोगी की मृत्यु तक हो जाती है

मूत्र बन्द होने के अनेक कारणो मे से मूत्राशय आसपास विजातीय द्रव्य के भार के कारण मूत्राशय मे सूजन और प्रदाह का होना प्रधान कारण है।

चिकित्सा

साधारणतः पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधने देने से मूत्र निकलने लगता है। परन्तु यदि इससे लाभ न होता दिखाई दे तो सिर पर ठडे पानी से भीगा और निचोड़ा अंगोछा रखकर गरम जल का कटि-स्नान देकर लेना चाहिए। गरम जल मे भीगी बड़ी पट्टी मूत्राशय

र लिंग पर लगाते और उसे बदलते रहने से भी लाभ ा है। इस रोग मे सर्वप्रथम एक गरम जल का एनिमा र आंतो को जरूरत साफ कर देना चाहिए।

जब तक मूत्र न निकलने लगे तब तक उपवास करना हिए। फिर रसाहार और फलाहार के बाद धीरे-धीरे ारण सादे भोजन पर आजाना चाहिए।

हल्की नीली बोतल के सूर्य तप्त जल की आधी-आधी क की ४ खुराके दिन मे लेने से भी इस रोग मे बड़ा भ होता है।

मूत्र का न बनना या कम बनना

गुर्दों के आस-पास विजातीय द्रव्य के एकत्र हो जाने जब उनमे खराबी आ जाती है तो उनके स्वाभाविक र्य मे रुकावट पड़ने के फलस्वरूप शरीर के रक्त का मूत्र के रूप मे बन कर निकलना या तो एक बार ही हो जाता है या कम परिमाण मे निकलता है। इस ह शरीर के रक्त की सफाई न होने के कारण रक्त षाक्त हो जाता है जिससे कै, सिर दर्द, अचैतन्यता दि अनेक उपद्रव खड़े हो जाते है।

चिकित्सा

रोज गुर्दे पर गरम-ठडी सेक देनी चाहिए और जब क हालत न सुधरे गरम जल का एनिमा भी लेते रहना ाहिए। पैरो का गरम-स्नान भी लाभकारी है। सप्ताह एक दिन समूचे शरीर का वाष्प स्नान लेना चाहिए। ात को कमर की भीगी पट्टी लगाकर सोना चाहिए।

गरम जल मे नीबू का रस निचोड़कर दिन मे कई बार पीना चाहिए। जब तक रोग अधिकाश मे दूर न हो जाय तब तक मठा या दूध मे जल मिलाकर पीना चाहिए ा फल या तरकारियो के रस पर रहना चाहिए। फिर धीरे-धीरे सादे भोजन पर आजाना चाहिए।

मूत्राशय और मूत्र-ग्रन्थि प्रदाह तथा रक्त-मूत्र

देर तक मूत्र के वेग को रोक रखने, मूत्र के किसी कारण से पच-पचा जाने तथा ठड लगने आदि कारणो से मूत्र प्रणाली मे विजातीय द्रव्य एकत्र होकर सड़ने लगता है तो वहा पर वेदना और जलन होने लगती है, बार-बार मूत्र मार्ग मे रक्त भी निकलता है, कभी पीव [illegible] होता है, मूत्र त्यागने मे दर्द होता है, तथा ज्वर भी हो आता है।

चिकित्सा

प्रदाह होने पर पेट मे अधिक देर तक रखकर गरम जल का एनिमा लेना चाहिए। पैरों का गरम-स्नान भी इसमें लाभकारी होता है। एनिमा लेने के तीन घटे बाद गरम पानी पीकर गरम जल का एक कटि-स्नान करना चाहिए। उसके बाद पेडू को ठडे पानी से भीगे अंगोछा से पोछ डालना चाहिए। यह क्रिया दिन मे दो बार करनी चाहिए। इस रोग में गुनगुने पानी से ही स्नान करना चाहिए।

रक्त स्राव होने पर पैरो को गरम जल मे रखकर दिन मे दो बार शीतल जल का कटि-स्नान लेना चाहिए, तथा शीतल जल का एनिमा भी लेना चाहिए।

इस रोग मे भी कम से कम एक दिन का उपवास करना चाहिए और रोज नीबू का रस मिला जल प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए। रोग का जोर कम होने तक रसाहार करना चाहिए। तत्पश्चात् धीरे-धीरे सादे भोजन पर आना चाहिए।

हरी बोतल के सूर्यतप्त जल की, आधी-आधी छटांक की ६ खुराके रोज लेने से रक्त-मूत्र मे लाभ होता है।

भस्मक

भस्मक या पेटूपन में रोगी अत्यधिक खाता है। एनिमा लेकर पेट साफ कर लेने के बाद दिन मे दो बार कटि-स्नान लेना चाहिए तथा रात मे कमर की भीगी पट्टी लगाकर सोना चाहिए। पहले कुछ दिनो तक रसाहार और फलाहार करने के बाद सादे भोजन पर आजाना चाहिए।

आसमानी रङ्ग की बोतल के सूर्य तप्त जल की आठ खुराकें (आधी-आधी छटांक की) रोज पीने से यह रोग जल्दी भागता है।

तृषा

इसमें अत्यधिक प्यास लगती है। इस रोग की चिकित्सा भी वही है जो भस्मक-रोग की।

अभी हाल मे पाश्चात्य स्वास्थ्य-विशेषज्ञो ने जो रिसर्च इस सम्बन्ध में किये हैं, उनसे पता चलता है कि कोई आदमी मोटा या पतला क्यो होता है? इसका कारण मानव-शरीर स्थित कुछ कीटाणुओ की रासायनिक

क्रिया है जिसकी गति 'थाइराइड ग्लाण्ड' अर्थात् गले के पास की उस गिल्टी पर जिससे शरीर की गरमी बढती है तथा अस्थियों की वृद्धि मे योग मिलता है, निर्भर है। यह गिल्टी-विशेष जिस मनुष्य मे जितनी ही दुर्बल और छोटी होगी, वह उतना ही कमजोर और पतला बना रहेगा और इसके विपरीत जिस मनुष्य की यह गिल्टी स्वस्थ्य और मोटी-होगी वह उतना ही सबल और मोटा होगा।

'थाइरायड ग्लायण्ड' के लिए पोषक तत्व 'आयोडीन' वाले पदार्थों मे अधिक पाये जाते है और आयोडीन अधिक मात्रा मे पाया जाता है ताजो हरो सब्जियो मे। इसलिए उन लोगो को जिन्हे मोटा होने की उत्सुकता है ताजो हरी तरकारिया कच्ची वा पकाकर बहुतायत से खानी चाहिए। इस सम्बन्ध मे यह ध्यान रहे कि ऐसी तरकारियो मे मिर्च-मसालो का अधिक समावेश न होने पावे और वे अधिक पकाई भी न जावे अन्यथा आशातीत सफलता प्राप्त होने मे सन्देह की गुंजाइश है। अधपके मीठे फलों में भी आयोडीन अधिक मात्रा मे पाया जाता है इसलिए अभीष्ट सिद्धि के लिये ताजे फलो का भी सेवन अनिवार्य होना चाहिए। दालो से भी मोटाई बढ़ती है और विशेषकर उन दालो से जो छिलका समेत व्यवहार मे लाई जाती है जैसे उड़द की दाल, दूध, घी, तेल तथा अण्डा आदि मेदोत्पादक वस्तुओं से भी मोटाई बढाई जा सकती है और बहुत आसानी से, किन्तु वह मोटाई किसी काम की न होगी। इनसे शरीर भद्दा बन जाने के अतिरिक्त बहुधा बेकाम भी हो जाता है। अधिक दूध, घी सेवी मनुष्यो मे इसी प्रकार की मोटाई अधिक देखने मे आती है। ऐसी मोटाई तो एक प्रकार की बीमारी ही है, जो अक्सर आरामतलब लोगो को अधिक सताती है। यह बीमारी शरीर मे अधिक चर्बी इकट्ठी हो जाने से ही होती है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान डाक्टर का कथन है :—

"An excess of fat is always a sign of dlsease in lateney"

इसलिये ऐसो मोटाई को चाहना करने से पतला ही रहना लाख दर्जे अच्छा है।

यदि मोटाई अप्राकृतिक है अर्थात् अनावश्यक चर्बी बढ जाने से है तो व्यायाम द्वारा वह विजातीय चर्बी धीरे धीरे छट जायगी और शरीर पतला तथा हल्का-फुलका निकल आयेगा और व्यायाम से मोटाई बढने का यह तात्पर्य है कि व्यायाम के प्रभाव से शरीर के अंग-प्रत्यग सजीव हो उठते है। उनकी शिथिलता मिट जाती है और प्रत्येक अवयव अपना कार्य सुचारु रूप से करने लगता है। जिसका फल यह होता है कि मनुष्य को स्वभावत. जितना मोटा होना चाहिए उतना वह हुये बिना नही रहता। व्यायाम से मनुष्य का शरीर सुडौल, सुन्दर तया स्वस्थ तो बनता ही है, साथ ही साथ उसके असाधारण प्रभाव से मनुष्य की पाचन क्रिया भी अति तीव्र हो जाती है, जिससे जो कुछ भी खाया जाता है पच जाता है और भोजन पच जाने का अर्थ है स्वास्थ्योन्नति। मगर यह ध्यान रहे कि मोटा होने के लिये अधिक व्यायाम बिलकुल फजूल है और कभी-कभी वह उलटा भी सिद्ध हो सकता है। इसलिये व्यायाम थोडा किन्तु नियमित रूप से होना चाहिए जिससे थकावट न पैदा होकर चित्त को प्रसन्नता प्राप्त हो।

फिक्र और चिन्ता भी शरीर के मोटे होने मे कम बाधक नही होते। एक मनुष्य जो चिन्ताओ के वशीभूत है कभी मोटा हो नही सकता। किन्तु इसके विपरीत जो व्यक्ति सब प्रकार की चिंताओं से मुक्त है उसका तीर्थ स्थान के साड़ो की भाति मोटा होते चले जाना अनिवार्य है।

शरीर के प्रत्येक अवयव को विधिवत् मालिश करने से भी मनुष्य मोटा होता देखा गया है। पहलवानो का शरीर जो सुडौल और भरा हुआ दिखाई देता है वह व्यायाम के साथ-साथ नियमित मालिश का ही फल होता है।

किसी व्यक्ति विशेष का मोटा अथवा पतला होना उसके स्वभाव, व्यवसाय तथा उसकी सामाजिक मनोवृत्ति पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। सेठ, महाजन विशेष-कर मारवाडी समाज मे आपको बिरले ही पतले दिखाई देगे। किन्तु परिश्रमी खेतिहर किसानो मे कठिनाई से सौ मे एक मोटा किसान तलाश करने पर मिलेगा।

मोटा होने के उत्सुको को यह बात भी न भूलनी चाहिए कि किसी भी अवस्था मे यदि मनुष्य प्रतिदिन

पर्याप्त मात्रा मे निद्रा-सुख भोगेगा तो उसके समग्र मोटा होने के साधन उपस्थित रहने पर भी वह कदापि मोटा नहीं हो सकता। क्योंकि यह स्वयं सिद्ध है कि मीठी नीद और शरीरोन्नति मे चोली और दामन का साथ होता है।

वजन बढ़ाने के इच्छुक अनेक दुबले पतले व्यक्ति लेखक के पास आये है। जिस अचूक विधि से उसने उन्हे लाभ पहुंचाया है वह निम्नलिखित है—

दो-तीन दिनों तक केवल फल पर रहना चाहिए। फलो के साथ दिन भर मे एक वा डेढ़ छटाक चोकर भी खानी चाहिए जिससे कब्ज न हो। चोकर फलो में मिलाकर या फल के रस में घोलकर या पपोता जैसे फलो के गूदे के साथ खा लेना चाहिए। फलाहार से भूख अधिक लगेगी, पाचन शक्ति तीव्र होगी। फलाहार के बाद अक्सर भोजन सवाया हो जाता है और किसी-किसी का ड्योढ़ा भी। जो अधिक नही खा पाते उनका भी वजन उतने ही भोजन से बढता है क्योकि फलाहार के कारण भोजन का अभिशोषण अच्छा होने लगता है। जिनका भोजन ड्योढ़ा हो गया था उनका वजन तो तीन पौंड प्रति सप्ताह तक बढा है।

श्वेतसार—अर्थात् आटा, चावल, मीठा, किशमिश, मुनक्का, अंजीर, खजूर तथा सभी चिकनाइयां, वजन बढाने वाले खाद्यपदार्थों मे सर्वश्रेष्ठ हैं। आरम्भ के कुछ दिनो मे तो चिकनाई की वनस्पति श्वेतसार अधिक वजन बढाता है। यदि एक छटाक चिकनाई अधिक खाई जायगी तो एक ही छटाक वजन बढ़ेगा, पर यदि एक छटाक श्वेतसार या मीठा अधिक खाया जायगा तो वजन चार छटाक बढेगा। अधिक खाने के अर्थ जो यहा समझ लेना चाहिये। अधिक खाना, अर्थात् उतने से अधिक खाना जितने भोजन से वजन न घटे बल्कि टिका रहे।

वजन बढानेके लिये मास का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। अंकुरित गेहूं की दलिया वजन बढाने के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। अंकुरित गेहूं को सिलपर पीसकर दूध में या सादा ही पकाकर खाया जा सकता है।

वजन बढाने के लिये सवेरे उठते ही, रात को सोते समय, तथा भोजन के दो घंटे बाद या पहले थोड़ा-थोड़ा करके काफी पानी पीना चाहिये। इसके अलावा खुली हवा मे रहना और सोना चाहिये। हलके व्यायाम और टहलना भी वजन बढाने में सहायक होते हैं।

उपर्युक्त विधि से महीने मे चार-पांच पौंड वजन आसानी से बढ़ जाता है। यदि महीने के अन्दर ही निश्चयपूर्वक दस-बारह पौंड वजन बढाना हो तो दूध कल्प करना चाहिये।

मोटापा

जब मोटापा असाधारण रूप से बढ़ जाता है तो उसे मेद रोग कहते है इस रोग मे शरीर में अनावश्यक चर्बी जमा हो जाती है। जिससे शरीर के अवयवो की क्रिया मे व्याघात पड़ता है। क्योंकि चर्बी उनके स्थान को घेर लेती है और भोजन से पौष्टिक तत्व लेने और श्रम एवं सञ्चरण करने की शक्ति को कम कर देती है। चर्बी के कारण शरीर के भीतरी तन्तुओ की मलिनता रक्त मे मिलकर बाहर नहीं निकल पाती जिससे मोटे आदमी का जीवन-काल कम हो जाता है। मधुमेह, हृदय-रोग, कब्ज, रक्त-चाप मे वृद्धि, मिरगी, चर्म-रोग आदि मोटे आदमियों की खास बीमारिया हैं। एक तरह से मेद रोग को सारे शरीर का कब्ज कहना चाहिए। मोटी स्त्रियों की बच्चेदानी चर्बी से भर जाती है और ऐसी स्त्रिया प्राय. बन्ध्या होती है। मोटे आदमियों को अपना बोझिल शरीर ढोना स्वयं अखरता है। उन्हे अपना जीवन बोझ और निरानन्दमय प्रतीत होता है। वे अपने मे स्फूर्ति, उमंग और चाञ्चल्य का ह्रास अनुभव करते हैं। मस्तिष्क गावदी हो जाता है, स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्य पस्तहिम्मत, और परिश्रम से जी चुराने वाले होते है। मोटे मनुष्यों को जब कोई रोग लग जाता है तो उससे मुश्किल से छुटकारा मिलता है।

मेद-रोग के अनेक कारणो मे, गलत रहन-सहन, आलस्यमय जीवन, परिश्रम न करना, शरीर मे क्षार की कमी का होना, अधिक सोना, अधिक खाना तथा पाचन-क्रिया मे बिगाड, प्रधान कारण हैं। अत. जो लोग क्षारयुक्त भोजन करते है और कसरत करने के आदी हैं, वे मोटापा रोग से बचे रहते हैं मोटापा धीरे-धीरे घटाना चाहिए। जल्दी करने से किसी कड़ी बीमारी

के हो जाने की सम्भावना रहती है। चावल, दूध, घी, दही, बासी रोटी, चीनी, दाल, गोश्त, मछली, अण्डे, मसाले, तेल, चाय, भीगे छुहारे खाकर दूध या दही पीना, तथा आम खाकर दूध पीना, आदि मोटा करने वाले योग है। इन्हे त्याग देना चाहिये। शहद पानी में घोलकर उसका शरबत पीने से मोटापा दूर होता है। फलों का रस पीना भी मेद रोग मे लाभ करता है। मोटे आदमी यदि नियमपूर्वक रोटी और शहद खाये तो कुछ दिनो मे आश्चर्यजनक रूप से पतले हो जायेगे।

अमेरिका के Journal of the American Medical Association मे प्रकाशित हुए डा० जी० ए० हैरोप के मतानुसार मोटाई को कम करने के लिए केले और मलाई रहित दूध का आहार बहुत ही अच्छा होता है। दस से पन्द्रह दिनों तक रोज केवल ६ केले और चार गिलास मलाई रहित दूध दिया जाता है। हो सके तो उस दूध का मठा बनाकर दे। इसके बाद १५ दिनो तक एक या दो केला घटाकर उसके बदले एक या दो रसदार फल दे। एक वक्त कच्चे हरे शाक भी दे। इस समय एक चोकर मिली रोटी ले सकते हैं और शहद भी। फिर १५ दिनों तक प्रथम क्रम पर रहे और इन दोनो क्रमो को तब तक चलावे जब तक मोटाई काफी तौर पर कम न हो जावे। सामान्यत: प्रति सप्ताह १ से २ पाउण्ड अथवा महीने में २½ से ५ सेर तक वजन घटना काफी है।

त्रिफला के काढ़े मे शहद मिलाकर कोसी मुंह पीने से मेद वृद्धि दूर हो जाती है।

मोटे आदमियो को गुदगुदे गद्दे पर न सोना चाहिए अपितु चौकी पर बिस्तरा लगाकर सोना चाहिए। मोटे आदमी यदि जलपान (नाश्ता) करने की आदत त्याग दे तो उनके लिए यह बड़ा लाभकारी सिद्ध होगा। ऐसे लोगों को बिना खूब भूख लगे कुछ न खाना चाहिए, और थोड़ा भूख बाकी रहते ही खाना बन्द कर देना चाहिए। पानी दिन में कई बार और खूब पीना चाहिए। यदि पानी मे लेमू का रस और कभी-कभी शहद भी मिला कर पिया जाय तो अति उत्तम। १० से १४ दिनो तक फलाहार करने से मोटापा रोग बहुत जल्द दूर होता है।

मोटे आदमियो को, उपर्युक्त के अतिरिक्त निम्नलिखित उपचार से बड़ा लाभ होगा:—

१. शाम-सुबह नियमपूर्वक, शक्ति-अनुसार खुली हवा मे तेज चलकर टहले या कोई अन्य हल्का व्यायाम किया करे।

२. सुबह उठते ही आध सेर बासी जल (उष:पान) पीकर तब शौच जाये।

३. रात को सोते समय एक गिलास गरम पानी में आधा कागजी लेमू निचोड़कर पीवे।

४. कभी-कभी जब पेट भारी हो तो उपवास करें और एनिमा ले। एनिमा के पहले ४५ मिनट तक पेडू पर मिट्टी की पट्टी भी रखे।

५. हफ्ते मे एक दिन गरम पानी भरे टब मे स्नान करके पसीना निकालना चाहिए। उसी दिन उपवास भी करना चाहिए। गर्दन के नीचे के हिस्से मे लाल प्रकाश लेना भी फायदा करता है। सप्ताह मे दो बार एप्सम साल्ट बाथ लेना चाहिए।

६. सुबह-शाम अधिक से अधिक १०-१५ मिनट तक मेहन या कटि-स्नान लेना चाहिए।

७. कभी-कभी सारे बदन की गीली पट्टी भी देना चाहिए तथा गरमी के दिनो मे धूप स्नान भी लेना जरूरी है।

८. मेद-रोग से पीड़ित रोगी को निम्नलिखित आसन १५ मिनट प्रतिदिन करना चाहिये—

जमीन पर बैठकर पैर आगे फैलाओ। फिर दोनो हाथों से दोनो पैरो के अंगूठे पकड़ लो और सिर को झुकाकर दोनो घुटनो के बीच मे रखो। यदि अंगूठे न पकड सको तो जहा तक हाथ जा सके ले जाने का प्रयत्न करो और वही से फिर सीधे बैठ जाओ। ऐसा करते समय पेट को अन्दर लेजाने और घुटने सीधे रखने का ख्याल अवश्य रखो। हाथ भी जहा तक हो सके सीधे रहे। यह आसन करते समय पेट को जितना भीतर की ओर खीचा जाय, उतना ही अधिक लाभ होगा।

९. सवेरे नाश्ते मे टमाटर या फलो का रस गरम पानी के साथ एक गिलास या मठा, दोपहर के भोजन में सलाद, चोकरदार रोटी और उबली तरकारियां। प्रात नही लेना चाहिये। शाम को सवेरे का ही भोजन और थोड़ा मक्खन लेना काफी होगा। इसके अतिरिक्त हल्का ही

तो दो-तीन बार फल वा तरकारियो का रस भी लिया जा सकता है। दुबला होने के लिये टमाटर, लीची और खीरे-ककडी लाभ करते हैं। लौकी और खीरे ककड़ी के रसमे नींबू का रस और थोडा शहद मिला देने से सर्वोत्तम शरबत बनता है। भूख अधिक लगने पर, खीरा, ककडी, टमाटर आदि यों भी खाया जा सकता है। प्रात काल और सोते समय एक गिलास गरम जल पीने से आदमी का मेद बहुत शीघ्र छटता है।

(१०) मोटापा दूर करने के लिए नीचे के व्यायाम उपयोगी सिद्ध होते हैं—

पहला व्यायाम

सीधे खड़े हो जाओ। दोनो हाथ कूल्हो पर रखो। सिर और सीने को ऊपर उठाओ। पीठको सीधा रखो। सिर को आगे की ओर झुकाओ कि ठोढी सीने को छू ले, अब गर्दन को धीरे धीरे ऊपर की ओर उठाओ और पीछे की ओर झुकाओ कि गर्दन के सामने का भाग तन जाय।

दूसरा व्यायाम

दोनो पैरों को अलग कर खडे हो जाओ। आगे की ओर झुको और शरीर के ऊपरी भागको बायी ओर घुमाओ जैसेकि चित्र २ मे है। इतना कर शरीर को सीधा करलो और अब आगे की ओर झुको तथा पूरे शरीर को दाहिने ओर घुमाओ। यह क्रिया ५ से १० बार तक
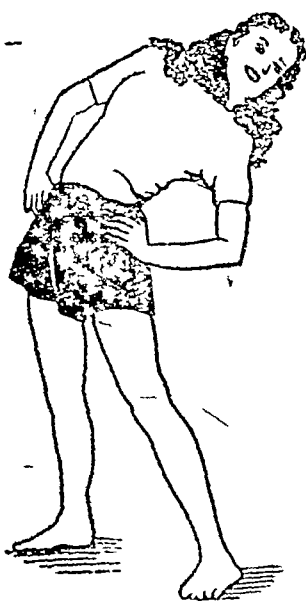
नं० १ नं० २

मोटापा दूर करने वाले व्यायाम

नं० ३

मोटापा दूर करने वाला व्यायाम
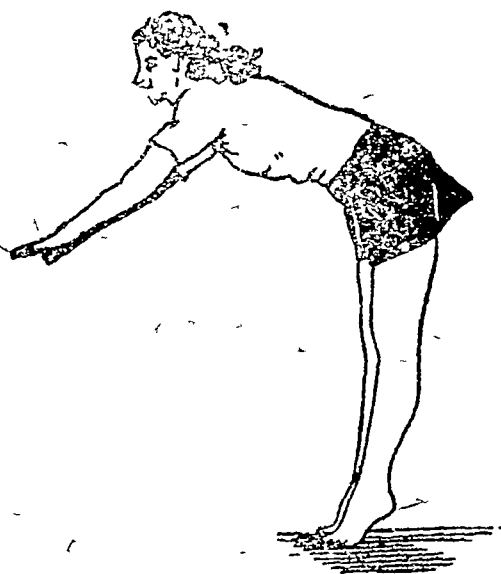
नं० ४

मोटापा दूर करने वाला व्यायाम

की जानी चाहिए। परन्तु ध्यान रहे कि थकावट आजाने पर क्रिया बन्द करदी जाय।

तीसरा व्यायाम

सीधे खडे हो जाओ। सिर ऊंचा रहे। दोनो पैरो को अलग-अलग रखो। दाये हाथ को सीने पर रखो और बाये हाथ को सिर के ऊपर ले जाओ। अब इस तरह झुको कि ऊपर उठा बाया हाथ दायीं ओर के पांव की अगुलियों को छू ले। अब पुन. अपनी पहली दशा मे वापस जाओ और बायां हाथ सीने पर रख दायें को सिर के ऊपर ले जाओ। इस क्रिया को पुन. दुहराओ।

कणों मे कमी होने के पहले कारण के दृष्टान्त है, तथा यकृत द्वारा जो द्रव पदार्थ रक्त मे मिश्रित होता है उसमे कुछ ऐसे तत्वों का समावेश हो जाना जिनकी वजह से लाल कणो का उचित मात्रा मे न बनना, पेट की खराबी तथा उसमे हाइड्रोक्लोरिक एसिड की कमी हो जाना, वात-विकार, शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता, बन्द कमरे मे वास, आहार-विहार की गड़बड़ी, मन्दाग्नि, कब्ज, हृदय एवं-नलिकाओं और रक्त बनाने वाले अवयवो का पूरी तौर से विकसित न होना, तथा मासिक-धर्म की खराबी आदि दूसरे कारण के।

साधारणत. लालकण (हेमोग्लोबिन) रक्त में ५० लाख अथवा ८०–१०० प्रतिशत होता है। किन्तु जब यह 'काउण्ट' घटकर २५ लाख से १० लाख अथवा ५० से ७० प्रतिशत या उससे भी कम हो जाता है, तब मनुष्य को रक्तहीनता-रोग से आक्रान्त समझा जाता है।

यों तो रक्ताल्पता के प्रत्येक रोगी के रोग-लक्षण रोग की तीव्रता और मन्दता के अनुसार अलग-अलग होते है, परन्तु साधारणतया निम्नलिखित लक्षण इस रोग मे प्रायः दृष्टिगोचर होते है :—

शरीर की त्वचा का रंग पीला हो जाना, कमजोरी और थोड़ी-सी मेहनत से थकावट मालूम होना, हाथ कांपना, पैरों का सुन्न हो जाना, कब्ज और मन्दाग्नि का होना, हृदय की धडकन का बढना, स्वप्नदोष होना, स्त्रियो का मासिक रुक जाना, सास लेने में कठिनाई, गला जलना, भोजन के बाद ऊर्ध्व वायु, कै तथा जवानी मे ही बुढापे का अनुभव होने लगना आदि।

चिकित्सा

एक से तीन दिनो का उपवास गुनगुने पानी का एनिमा लेकर और प्रचुर मात्रा में नींबू का रस मिला जल पीकर या रसाहार (फलो का रस या साग-सब्जियो का सूप)। इसके बाद सात दिनो तक फलाहार। फिर २ से ३ सप्ताह तक फल और दूध (दूध की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाकर ३-४ सेर तक)। फिर सवेरे फल और दोपहर और शाम को चोकर समेत आटे की रोटी, उबली साग-सब्जी तथा सलाद और थोड़ा देशी गुड। भोजन में लोह वाले खाद्य पदार्थ जैसे गाजर, पालक, किशमिश, खजूर आदि जरूर होने चाहिए। बकरे की कलेजी इस रोग मे अधिक उपकारी सिद्ध होती है।

दिन मे कम से कम ५-६ बार मुक्त वायु में गहरी सांस लेने का व्यायाम करना आवश्यक है। रोज प्रात.काल धूप मे नगे बदन बैठ कर १०-१५ मिनट तक सारे शरीर मे शुद्ध सरसो के तेल की मालिश करनी चाहिये। तत्पश्चात् स्नान कर लेना चाहिए और बदन पर के पानी को हाथो की हथेलियो से रगड़-रगड कर सुखा देना चाहिए। रोज नियमपूर्वक कोई हल्की कसरत करनी चाहिए या दो-तीन मील खुली जगह में टहलना चाहिए। रोज नीबू का रस मिला हुआ पानी प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए। रोज सवेरे मेहन स्नान सप्ताह मे एक बार 'एप्सम साल्ट बाथ' लेना चाहिए। जब कभी कब्ज हो तो कटि स्नान, कमर की भीगी पट्टी तथा एनिमा द्वारा उसे दूर कर देना चाहिये।

ज्वर

साधारणतः कोष्ठबद्धता के कारण जब तलपेट (पेडू) मे मल जमा होकर पुराना पड़ जाता है और समय पर बाहर नही निकल पाता तो वह वही पर सड़ने लगता है। उस सडन क्रिया से एक प्रकार की खमीर उठती है जो अति विषैली और गरम होती है। सड़े मल की खमीर या दूषित रस शरीर के रक्त को विषाक्त कर देते है जिसमें छूत, ऋतु परिवर्तन, उद्वेगजनक पदार्थों का आहार, मानसिक विकार तथा आघात आदि प्रतिकूल वातावरण के कारण जब उद्रेक उत्पन्न होता है तो रक्त एव शरीर के कोष-कोष मे व्याप्त विष (विजातीय द्रव्य) कुपित होकर विचलित हो उठता है। उस वक्त देह मे ताप उत्पन्न करने वाले अवयवों को उत्तेजित करके शरीर के रक्त के ताप को बढ़ाकर प्रकृति शरीर स्थित विष को भस्म करके शरीर को निर्विष, निर्दोष, एव स्वस्थ करने का प्रयत्न करती है। प्रकृति के उसी प्रयत्न को हम ज्वर की सज्ञा देते हैं।

ज्वर मे भूख बन्द हो जाती है, प्यास अधिक लगती है, कमजोरी बढ़ जाती है, किसी काम के करने की शक्ति नही रहती है। आरम्भ मे ठंड और कंपकपी लगती है, बदन में या केवल सिर मे दर्द होता है, नींद नहीं आती, रोगी बकना-झकता है, जीभ मैली हो जाती है, प्यास

होती है, नाड़ी तेज चलने लगती है, दिल अधिक है, श्वास-प्रश्वास की गति तेज हो जाती है ,पसीना,मल और मूत्र अत्यन्त बदबूदार हो जाता । ज्वर के साथ-साथ चलने वाले ये सभी लक्षण याये ऊपर से देखने मे भले ही कष्टदायक प्रतीत ास्तव मे होती है बड़ी लाभप्रद और रक्षात्मक। ार्थ ज्वर मे भूख बन्द होने का अर्थ होता है शक्ति का पूर्णत शरीर की सफाई मे लगे रहने ा उसे भोजन के पचाने का अवकाश न होना । कि ऐसी दशा मे ज्वर के रोगी का जबरदस्ती विष खाने के ही बराबर होता है। इसी तरह शरीर के निस्तेज होकर चारपाई पर गिर जाने का होता है प्रकृति का शरीर को पूर्ण रूप से आराम के लिये बाध्य करना जिससे हम आम कार्यो मे शक्ति का अपव्यय न करके उसे केवल शरीर की मे ही लगा सके । शरीरस्थित विजातीय द्रव्य विशेष- ा पेट के सञ्चित मल मे उद्रेक होने के कारण ा शरीर भर मे फैलने की चेष्टा करता है । जब दबाव त्वचा और मास-पेशियो पर होता है तो ल और गर्म हो जाती है और उनमे पीड़ा होती है जब वही उत्तेजित विष सिर पर आक्रमण करता । सिर दर्द, अनिद्रा तथा प्रलाप आदि उपद्रव उठ हो जाते है । ज्वर कभी-कभी जाड़ा देकर और पी के साथ भी आता है । उसकी व्याख्या यह है जब शरीर मे विजातीय द्रव्य का सञ्चय अधिक हो ा है तो उससे शरीर के छोरो यथा सीमांत भागो मे का सञ्चार भलीभाति नही हो पाता और रक्त चू कि ाक्त होता है इसलिये उसका अधिकाश यकृत और ा में चला जाकर उनके द्वारा साफ होने लगता है । ा शरीर की सतह पर यानी चर्म के पास रक्त का ाव हो जाता है जिसकी वजह से रोगी को ऊपर ौर कपकपी मालूम होती है परन्तु अन्तर मे ा-क्रिया अपना काम करती होती है । ठण्ड ा अवस्था बहुत देर तक नही रहती, अपितु ज्योही ा रक्त कुछ साफ हो चुकता है वह नश्वर शरीर के ा-भाग की ओर दौड जाता है और उसे अस्वाभा- ा गर्म कर देता है । इसी को ज्वर चढना कहते है । ज्वर में जीभ का मैलापन सूचित करता है कि तलपेट मल से परिपूरित है । ज्वर मे कै और मतली का होना प्रकृति द्वारा इस बात का सकेत होता है कि पेट मे मल भरा है जिसका निकल जाता बहुत जरूरी है । ज्वर अपने प्रबल ताप से शरीर स्थित रोग कीटाणुओं को भस्म करने का भी एक बड़ा ही आवश्यक और महत्वपूर्ण कार्य करता है । ज्वर के रोगी की सास, कफ, पसीना, तथा मल आदि से बड़ी कड़ी बदबू निकलती है एवं उसका पेशाब गदला और गाढा रङ्गदार होता है । इन सबका मतलब यही है कि शरीर के भीतर ज्वर के जरिये तेज सफाई का काम चालू है और शरीर की गंदगी (मूल रोग) मल, पसीना आदि के रूप मे बड़ी तेजी और अधिक परिमाण में बाहर निकल रही है। ज्वर मे नाड़ी के तेज चलने, तथा हृदय-गति के बढ़ जाने का भी यही अर्थ है कि ज्वर द्वारा आयोजित शरीर की सफाई मे हृदय भी बड़ी तेजी से योग दे रहा है । ज्वर में श्वास-प्रश्वास के तेज चलने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर के शोधन-कार्य मे हाथ बटाने में हमारे फेफड़े शरीर के अन्य अवयवो से कभी भी पीछे नही रहते ।

देश, काल, पात्र के बलाबल, उसके शरीर में स्थित विजातीय द्रव्य के प्रकार एवं परिमाण, उसकी मानसिक अवस्था, तथा परिस्थिति आदि के अनुसार ज्वर अल्प-कालिक, दीर्घकालिक, तीव्र, मद, इत्यादि अनेक रूप धारण किया करता है । ज्वर के कुछ रूपो के नाम निम्नलिखित हैं: —

साधारण ज्वर, मलेरिया, टायफाइड, टायफस, इन्फ्लोइन्जा, डेगू, फाइलेरिया, गर्दनतोड़, कालाजार तथा प्लेग, अब इनमे से प्रत्येक प्रकार के ज्वर की उपचार-विधि दी जाती है ।

साधारण ज्वर

जब यह बात सिद्ध होगयी कि ज्वर स्वास्थ्य-लाभ के लिए एक प्राकृतिक क्रिया है तो साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी यह न चाहेगा कि उसे विषैली औषधियो और इन्जेक्शनो द्वारा दबा दिया जाय और इस तरह से शरीर की सफाई मे रुकावट और अडचन डाल दी जाय । अपितु वह चाहेगा कि ज्वर अपने मार्ग पर चलकर अपना

काम अवश्य करे, साथ ही ज्वर के काम मे वह यथा सम्भव सहायता भी देगा।

जब तक ज्वर न जाय तब तक विधिपूर्वक उपवास करना चाहिए। और दोनों वक्त एनिमा लेकर पेट साफ करना चाहिए। साथ ही नीबू का रस मिला गरम या सर्द पानी प्रचुर मात्रा में पीना चाहिए, साफ और हवादार कमरे मे रहना चाहिए तथा दिन मे तीन-चार बार सिर को धोकर, भीगे तौलिये से सारे शरीर को अच्छी तरह पौछ कर कटि-स्नान देना चाहिए। ऐसा दिन में दो या तीन बार करना चाहिए। दिन मे दो बार मेहन स्नान भी देना चाहिए। यदि रोगी को ठंड लग रही हो तो एनिमा और पीने के लिए गरम पानी का इस्तेमाल करना चाहिए अन्यथा ठडे पानी का। एनिमा के पानी में एक कागजी नीबू का रस या थोड़ा-सा मधु मिला देने से पेट अच्छा साफ होता है। पेट जब तक साफ न हो तब तक रोज रात भर के लिए कमर की गीली पट्टी लगानी चाहिए, पर पेट साफ हो जाने के बाद शरीर की भीगी चादर की लपेट या पैरो का गरम स्नान देना चाहिए। तेज ज्वर मे (१०३° या इससे ऊपर) पेशावी और मस्तक पर खूब ठंडे जल से भीगी पट्टी बार-बार उस वक्त तक देते रहना चाहिए जब तक कि वह १०२° या इससे नीचे न उतर आये ज्वर उतारनेके लिये कभी-कभी धूप-स्नान या वाष्प-स्नान भी लेना जरूरी होता है। ज्वर उतर जाने के बाद फलो का रस धीरे-धीरे लेकर फल लेने लग जाना चाहिए। तत्पश्चात् फल-दूध और अन्त मे धीरे धीरे सामान्य सादे भोजन पर आजाना चाहिए।

पीली बोतल के सूर्यतप्त जल की ८ खुराके आधी-आधी छटांक की रोज पीने से साधारण ज्वर मे बड़ा लाभ होता है। पुराने ज्वर मे गहरी नीली बोतल का जल उपकारी होता है।

मलेरिया

मलेरिया ज्वर को विषम ज्वर, मौसमी या ऋतु-ज्वर, मच्छरो से पैदा होने वाला ज्वर, जाड़े का बुखार, बरसाती ज्वर, फसली बुखार, जूडी, या जड़ैया भी कहते हैं।

केवल मच्छर से जो लोग इस ज्वर की उत्पत्ति बताते हैं वे भ्रम मे है। हा, यह बात अवश्य है कि जिस मौसम में मलेरिया प्रायः फैलता है उसी मौसम मे म[illegible] भी अधिकता से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् मलेरिया [illegible] मच्छर, दोनो का कारण गंदा वातावरण है। यह [illegible] विशेष तौर पर ऋतु परिवर्तन के समय और कभी-[illegible] अन्य समयो पर भी होता है। इस ज्वर के चढने का स[illegible] वेग, ठड लग कर चढ़ेगा या बिना ठड के, तथा उतरेगा, आदि कुछ भी निश्चित नही होता। इस वे[illegible] के कारण ही आयुर्वेद में इस ज्वर को विषम वा अ[illegible]मित ज्वर कहा गया है।

ज्वर चढ़ने के पहले और कभी-कभी बाद में शरीर टूटता है, अथवा शरीर जकड़-सा जात[illegible] अंगड़ाई पर अंगड़ाई और जभाई पर जंभाई आने ल[illegible] है, आखो मे पानी भर जाता है, धूप अच्छी [illegible] लगती है और छांव खराब, मतली मालूम होती और कै भी होती है, सिर और पीठ मे दर्द होने ल[illegible] है, बेचैनी बढ़ने लगती है, हाथ-पैर के छोर ठडे जाते हैं, या जाड़ा इस जोर का मालूम होने लगत[illegible] कि समूचे बदन में कंपकपी होने लगती है और दात ब[illegible] लगते है, उस वक्त कम्बल पर कम्बल और रजाई [illegible] रजाई ओढ़ने पर भी आराम नही मिलता, कुछ देर [illegible] ज्वर चढ़ता है जो बहुत तेज होता है (१०५°), [illegible] तमतमा जाता है, सास लम्बी और काफी गरम नि[illegible] लगती है, मुह सूखने लगता है और प्यास बेहद जाती है, ज्वर की तेजी से रोगी अक्सर बर्राने ल[illegible] है, या बेहोश-सा पड़ा रहता है, थोड़ी देर बाद प[illegible] बह चलता है और ज्वर आप से आप उतर जाता [illegible] ज्वर के उतर जाने पर रोगी को बहुत कमजोरी अनुभव होने लगता है। यहां तक कि ६-७ बारी [illegible] आने तक रोगी मे फिर चलने फिरने की ताकत न रह जाती। शरीर पीला पड जाता है। तिल्ली [illegible] यकृत विषाक्त रक्त को शुद्ध करने के निमित्त अधिक [illegible] श्रम करने के कारण सूजकर बढ जाते हैं। पेट ब[illegible] होकर तन जाता है, जिस पर नीली नसे उभर आती हैं। हाथ-पाव पतले पड जाते है। मुह पर सूजन आजाती है तथा भूख बद हो जाती है।

मलेरिया ज्वर जब लौट-लौट कर रोज आता है, एक दिन अंतर देकर आता है, दो दिन अंतर दे[illegible]

आता है या तीसरे वा चौथे दिन आता है तो उसे Intermittent malarial fever या सविराम मलेरिया ज्वर कहते हैं। यह ज्वर जब पूरी तौर से नही जाता अपितु कुछ देर तक कम रह कर पुनः बढ़ जाता है तो उसे Remittent malarial fever या स्वल्प विराम मलेरिया ज्वर कहते है। इन दोनो प्रकार के मलेरिया ज्वरो से मिलता-जुलता एक तीसरे प्रकार का भी मलेरिया ज्वर होता है जिसे Malignant Malaria या सांघातिक मलेरिया ज्वर कहते है। ऐसा मलेरिया बंगाल जैसे मलेरिया वाले देशो मे विशेष रूप से पाया जाता है। एक प्रकार का और मलेरिया होता है जिसमे बिना कपकपी या हाथ-पैर ठडा हुये ही ज्वर आ जाता है।

मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति पेट की ख़राबी और गंदगी से होती है जो अनियमित आहार-विहार से सम्भव होता है। मच्छर का जहर केवल उस सञ्चित गंदगी मे उद्रेक या उभाड़ पैदा करके मलेरिया-ज्वर द्वारा हमे इस बात की सूचना देता है कि शरीर में काफी मल एकत्र हो गया है। यदि हमारा मेदा साफ हो, खून साफ हो तो मच्छर का जहर हमारा कुछ नही बिगाड़ सकता। मलेरिया रोग वहा जोर पकडता है जहां लोग बरसात के बाद ऐसी हवा मे सांस लेते है जो पृथ्वी से निकली हुई गंदी गैसो से लदी होती है जो शरीर में प्रवेश कर खून को गंदा करती है और पाचन-यन्त्रो मे विकार उत्पन्न कर देती है। क्रमागत ऐसी दुर्गन्ध और विषाक्त वायु के ग्रहण करने से जब शरीर का रक्त तेजहीन और विषाक्त हो जाता है केवल तभी मलेरिया के कीटाणु इस रक्त मे पनपते और मलेरिया ज्वर के कारण बनते है। यही कारण है जो मलेरिया का प्रकोप विशेषकर वर्षाऋतु के अन्त मे अर्थात् आश्विन-कार्तिक मे होता है और उन स्थानो में होता है जहा की पृथ्वी नम और वातावरण आर्द्र होता है। ऐसे स्थानों मे रहने से तथा वर्षाऋतु एव उसके अन्त मे सूर्य किरणो की शक्ति के क्षीण हो जाने से मनुष्यो की पाचन-शक्ति प्रकृतित: निर्बल पड़ जाती है जिससे भोजन अच्छी तरह न पचकर शरीर में विजातीय द्रव्य की वृद्धि करके मलेरिया रोग का कारण बनता है।

चिकित्सा

मलेरिया ज्वर के लक्षणो के प्रगट होते ही भोजन त्याग देना चाहिये और पैरो का एक गरम नहान देकर कटि-स्नान देना चाहिये।

ज्वर चढ़ने के समय से जब तक वह उतर न जाय, या कम से कम तीन-चार दिनों तक नीबू का रस और गरम जल दो-दो घंटे के अन्तर से लेकर उपवास करना चाहिये। फिर कुछ दिन बाद गरम पानी के बजाय ठडे पानी मे नीबू का रस लेने लग जाना चाहिये। यदि पाखाना साफ न होता हो तो दोनो वक्त चार दिनों तक गुनगुने पानी का एनिमा लेना भी जरूरी है। उसके बाद चार दिनो तक केवल एक बार ही एनिमा लेना चाहिये।

सोते समय पैरो का गरम स्नान लेना चाहिए।

ज्वर चढ़ने की दशा मे पेड़ू पर मिट्टी की गीली पट्टी कुल पेट पर अर्थात् नाभी के पाच-छः अंगुल ऊपर समूचे पेड़ू पर लगानी चाहिये। १०३° ज्वर होने पर यही पट्टी पेड़ू पर उस वक्त तक बदल-बदल कर लगानी चाहिये जब तक ज्वर १०२° पर न आजाय। अगर ज्वर १०३° से अधिक हो जाय तो सिर पर भी ठडी पट्टी रखनी आरम्भ कर देनी चाहिए और ज्वर के १०२° पर उतर जाने पर बद कर देनी चाहिए। सर गरम हो जाय और बेचैनी अधिक बढ़ जाय तो बर्फ के पानी मे भीगी पट्टी सिर पर बार-बार रखनी चाहिये और घुटने के नीचें टागों पर ठडे पानी से भीगी और निचोड़ी कपडे की पट्टी लपेटकर उसे किसी सूखे ऊनी कपड़े से ढक देना चाहिये।

तीन दिन बाद उपर्युक्त उपचार के अलावा जाड़ा आने के १५ मिनट पहले समूचे शरीर पर भीगी चादर की लपेट या न्युट्रल बाथ देना चाहिये या आध घंटा पहले वाष्प-स्नान देना चाहिए।

ज्वर उतरने या कम होने पर पहले रोगी को एक भाप-नहान या आतप-स्नान करावे, फिर एक उदर-स्नान २० मिनट का और चार-पांच घटे बाद एक मेहन-स्नान २५ मिनट का दें।

जिस दिन बारी न हो आतप-स्नान दें और बारी के दिन मेहन या उदर स्नान दे।

दिन के बारह घटो मे कम से कम एक बार, कमरा बन्द करके एक स्पज बाथ जरूर देना चाहिए। रात को सोते वक्त कमर की गीली पट्टी लगाकर सोना चाहिये।

काम अवश्य करे, साथ ही ज्वर के काम मे वह यथा सम्भव सहायता भी देगा।

जब तक ज्वर न जाय तब तक विधिपूर्वक उपवास करना चाहिए। और दोनो वक्त एनिमा लेकर पेट साफ करना चाहिए। साथ ही नीबू का रस मिला गरम या सर्द पानी प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए, साफ और हवादार कमरे मे रहना चाहिए तथा दिन मे तीन-चार बार सिर को धोकर, भीगे तौलिये से सारे शरीर को अच्छी तरह पौछ कर कटि-स्नान देना चाहिए। ऐसा दिन मे दो या तीन बार करना चाहिए। दिन मे दो बार मेहन स्नान भी देना चाहिए। यदि रोगी को ठंड लग रही हो तो एनिमा और पीने के लिए गरम पानी का इस्तेमाल करना चाहिए अन्यथा ठडे पानी का। एनिमा के पानी में एक कागजी नीबू का रस या थोड़ा-सा मधु मिला देने से पेट अच्छा साफ होता है। पेट जब तक साफ न हो तब तक रोज रात भर के लिए कमर की गीली पट्टी लगानी चाहिए, पर पेट साफ हो जाने के बाद शरीर की भीगी चादर की लपेट या पैरो का गरम स्नान देना चाहिए। तेज ज्वर मे (१०३° या इससे ऊपर) पेशानी और मस्तक पर खूब ठडे जल से भीगी पट्टी बार-बार उस वक्त तक देते रहना चाहिए जब तक कि वह १०२° या इससे नीचे न उतर आये ज्वर उतारनेके लिये कभी-कभी धूप-स्नान या वाष्प-स्नान भी लेना जरूरी होता है। ज्वर उतर जाने के बाद फलो का रस धीरे-धीरे लेकर फल लेने लग जाना चाहिए। तत्पश्चात् फल-दूध और अन्त मे धीरे धीरे सामान्य सादे भोजन पर आजाना चाहिए।

पीली बोतल के सूर्यतप्त जल की ८ खुराकें आधी-आधी छटांक की रोज पीने से साधारण ज्वर मे बड़ा लाभ होता है। पुराने ज्वर मे गहरी नीली बोतल का जल उपकारी होता है।

मलेरिया

मलेरिया ज्वर को विषम ज्वर, मौसमी या ऋतु-ज्वर, मच्छरो से पैदा होने वाला ज्वर, जाड़े का बुखार, बरसाती ज्वर, फसली बुखार, जूड़ी, या जड़ैया भी कहते हैं।

केवल मच्छर से जो लोग इस ज्वर की उत्पत्ति बताते हैं वे भ्रम मे हैं। हा, यह बात अवश्य है कि जिस मौसम मे मलेरिया प्रायः फैलता है उसी मौसम मे मच्छ भी अधिकता से उत्पन्न होते है। अर्थात् मलेरिया और मच्छर, दोनों का कारण गंदा वातावरण है। यह ज्वर विशेष तौर पर ऋतु परिवर्तन के समय और कभी-कभी अन्य समयों पर भी होता है। इस ज्वर के चढने का समय वेग, ठंड लग कर चढ़ेगा या विना ठंड के, तथा कब उतरेगा, आदि कुछ भी निश्चित नही होता। इस वैषम्य के कारण ही आयुर्वेद में इस ज्वर को विषम वा अनियमित ज्वर कहा गया है।

ज्वर चढ़ने के पहले और कभी-कभी बाद मे भी शरीर टूटता है, अथवा शरीर जकड़-सा जाता है अंगड़ाई पर अंगड़ाई और जंभाई पर जभाई आने लगते है, आंखो मे पानी भर जाता है, धूप अच्छी लगने लगती है और छाव खराब, मतली मालूम होती है और कै भी होती है, सिर और पीठ मे दर्द होने लगता है, बेचैनी बढने लगती है, हाथ-पैर के छोर ठडे हो जाते हैं, या जाड़ा इस जोर का मालूम होने लगता है कि समूचे बदन मे कंपकपी होने लगती है और दात बजने लगते है, उस वक्त कम्बल पर कम्बल और रजाई पर रजाई ओढ़ने पर भी आराम नही मिलता, कुछ देर बाद ज्वर चढ़ता है जो बहुत तेज होता है (१०५°), मुंह तमतमा आता है, सांस लम्बी और काफी गरम निकलने लगती है, मुंह सूखने लगता है और प्यास बेहद बढ़ जाती है, ज्वर की तेजी से रोगी अक्सर बर्राने लगता है, या वेहोश-सा पड़ा रहता है, थोडी देर बाद पसीना बह चलता है और ज्वर आप से आप उतर जाता है। ज्वर के उतर जाने पर रोगी को बहुत कमजोरी का अनुभव होने लगता है। यहां तक कि ६-७ बारी ज्वर आने तक रोगी मे फिर चलने फिरने की ताकत नहीं रह जाती। शरीर पीला पड जाता है। तिल्ली और यकृत विपाक्त रक्त को शुद्ध करने के निमित्त अधिक परिश्रम करने के कारण सूजकर बढ जाते हैं। पेट बड़ा होकर तन जाता है, जिस पर नीली नसें उभर आती हैं। हाथ-पांव पतले पड़ जाते है। मुंह पर सूजन आ जाती है तथा भूख बंद हो जाती है।

मलेरिया ज्वर जब लौट-लौट कर रोज आता है, एक दिन अंतर देकर आता है, दो दिन अंतर देकर

आता है या तीसरे वा चौथे दिन आता है तो उसे Intermittent malarial fever या सविराम मलेरिया ज्वर कहते हैं। यह ज्वर जब पूरी तौर से नही जाता अपितु कुछ देर तक कम रह कर पुनः बढ़ जाता है तो उसे Remittent malarial fever या स्वल्प विराम मलेरिया ज्वर कहते है। इन दोनों प्रकार के मलेरिया ज्वरो से मिलता-जुलता एक तीसरे प्रकार का भी मलेरिया ज्वर होता है जिसे Malignant Malaria या साघातिक मलेरिया ज्वर कहते है। ऐसा मलेरिया बंगाल जैसे मलेरिया वाले देशों मे विशेष रूप से पाया जाता है। एक प्रकार का और मलेरिया होता है जिसमे बिना कंपकपी या हाथ-पैर ठडा हुये ही ज्वर आ जाता है।

मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति पेट की ,खराबी और गंदगी से होती है जो अनियमित आहार-विहार से सम्भव होता है। मच्छर का जहर केवल उस सञ्चित गंदगी मे उद्रेक या उभाड़ पैदा करके मलेरिया-ज्वर द्वारा हमें इस बात की सूचना देता है कि शरीर में काफी मल एकत्र हो गया है। यदि हमारा मेदा साफ हो, खून साफ हो तो मच्छर का जहर हमारा कुछ नही बिगाड़ सकता। मलेरिया रोग वहा जोर पकड़ता है जहां लोग बरसात के बाद ऐसी हवा मे सास लेते है जो पृथ्वी से निकली हुई गदी गैसो से लदी होती है जो शरीर मे प्रवेश कर खून को गदा करती है और पाचन-यन्त्रो मे विकार उत्पन्न कर देती है। क्रमागत ऐसी दुर्गन्ध और विषाक्त वायु के ग्रहण करने से जब शरीर का रक्त तेजहीन और विषाक्त हो जाता है केवल तभी मलेरिया के कीटाणु इस रक्त मे पनपते और मलेरिया ज्वर के कारण बनते है। यही कारण है जो मलेरिया का प्रकोप विशेषकर वर्षाऋतु के अन्त मे अर्थात् आश्विन-कार्तिक मे होता है और उन स्थानो में होता है जहा की पृथ्वी नम और वातावरण आर्द्र होता है। ऐसे स्थानो मे रहने से तथा वर्षाऋतु एवं उसके अन्त मे सूर्य किरणो की शक्ति के क्षीण हो जाने से मनुष्यो की पाचन-शक्ति प्रकृतितः निर्बल पड़ जाती है जिससे भोजन अच्छी तरह न पचकर शरीर में विजातीय द्रव्य की वृद्धि करके मलेरिया रोग का कारण बनता है।

चिकित्सा

मलेरिया ज्वर के लक्षणो के प्रगट होते ही भोजन त्याग देना चाहिये और पैरों का एक गरम नहान देकर कटि-स्नान देना चाहिये।

ज्वर चढ़ने के समय से जब तक वह उतर न जाय, या कम से कम तीन-चार दिनो तक नीबू का रस और गरम जल दो-दो घंटे के अन्तर से लेकर उपवास करना चाहिये। फिर कुछ दिन बाद गरम पानी के बजाय ठंडे पानी मे नीबू का रस लेने लग जाना चाहिये। यदि पाखाना साफ न होता हो तो दोनो वक्त चार दिनो तक गुनगुने पानी का एनिमा लेना भी जरूरी है। उसके बाद चार दिनो तक केवल एक बार ही एनिमा लेना चाहिये।

सोते समय पैरों का गरम स्नान लेना चाहिए।

ज्वर चढ़ने की दशा मे पेड़ू पर मिट्टी की गीली पट्टी कुल पेट पर अर्थात् नाभी के पांच-छः अंगुल ऊपर समूचे पेड़ू पर लगानी चाहिये। १०३° ज्वर होने पर यही पट्टी पेड़ू पर उस वक्त तक बदल-बदल कर लगानी चाहिये जब तक ज्वर १०२° पर न आजाय। अगर ज्वर १०३° से अधिक हो जाय तो सिर पर भी ठडी पट्टी रखनी आरम्भ कर देनी चाहिए और ज्वर के १०२° पर उतर जाने पर बद कर देनी चाहिए। सर गरम हो जाय और बेचैनी अधिक बढ़ जाय तो बर्फ के पानी मे भीगी पट्टी सिर पर बार-बार रखनी चाहिये और घुटने के नीचें टांगों पर ठडे पानी से भीगी और निचोड़ी कपड़े की पट्टी लपेटकर उसे किसी सूखे ऊनी कपड़े से ढक देना चाहिये।

तीन दिन बाद उपर्युक्त उपचार के अलावा जाड़ा आने के १५ मिनट पहले समूचे शरीर पर भीगी चादर की लपेट या न्युट्रल बाथ देना चाहिये या आध घटा पहले वाष्प-स्नान देना चाहिए।

ज्वर उतरने या कम होने पर पहले रोगी को एक भाप-नहान या आतप-स्नान करावे, फिर एक उदर-स्नान २० मिनट का और चार-पाच घटे बाद एक मेहन-स्नान २५ मिनट का दें।

जिस दिन बारी न हो आतप-स्नान दें और बारी के दिन मेहन या उदर स्नान दे।

दिन के बारह घंटो मे कम से कम एक बार, कमरा बन्द करके एक स्पज बाथ जरूर देना चाहिए। रात को सोते वक्त कमर की गीली पट्टी लगाकर सोना चाहिये।

काम अवश्य करे, साथ ही ज्वर के काम मे वह यथा सम्भव सहायता भी देगा।

जब तक ज्वर न जाय तब तक विधिपूर्वक उपवास करना चाहिए। और दोनों वक्त एनिमा लेकर पेट साफ करना चाहिए। साथ ही नीबू का रस मिला गरम या सर्द पानी प्रचुर मात्रा में पीना चाहिए, साफ और हवादार कमरे में रहना चाहिए तथा दिन मे तीन-चार बार सिर को धोकर, भीगे तौलिये से सारे शरीर को अच्छी तरह पौछ कर कटि-स्नान देना चाहिए। ऐसा दिन मे दो या तीन बार करना चाहिए। दिन मे दो बार मेहन स्नान भी देना चाहिए। यदि रोगी को ठंड लग रही हो तो एनिमा और पीने के लिए गरम पानी का इस्तेमाल करना चाहिए अन्यथा ठडे पानी का। एनिमा के पानी में एक कागज़ी नीबू का रस या थोड़ा-सा मधु मिला देने से पेट अच्छा साफ होता है। पेट जब तक साफ न हो तब तक रोज रात-भर के लिए कमर की गीली पट्टी लगानी चाहिए, पर पेट साफ हो जाने के बाद शरीर की भीगी चादर की लपेट या पैरों का गरम स्नान देना चाहिए। तेज ज्वर मे (१०३° या इससे ऊपर) पेशानी और मस्तक पर खूब ठंडे जल से भीगी पट्टी बार-बार उस वक्त तक देते रहना चाहिए जब तक कि वह १०२° या इससे नीचे न उतर आये ज्वर उतारनेके लिये कभी-कभी धूप-स्नान या वाष्प-स्नान भी लेना जरूरी होता है। ज्वर उतर जाने के बाद फलो का रस धीरे-धीरे लेकर फल लेने लग जाना चाहिए। तत्पश्चात् फल-दूध और अन्त मे धीरे धीरे सामान्य सादे भोजन पर आजाना चाहिए।

पीली बोतल के सूर्यतप्त जल की ८ खुराकें आधी-आधी छटांक की रोज पीने से साधारण ज्वर से बड़ा लाभ होता है। पुराने ज्वर मे गहरी नीली बोतल का जल उपकारी होता है।

मलेरिया

मलेरिया ज्वर को विषम ज्वर, मौसमी या ऋतु-ज्वर, मच्छरो से पैदा होने वाला ज्वर, जाडे का बुखार, बरसाती ज्वर, फसली बुखार, जूड़ी, या जड़ैया भी कहते हैं।

केवल मच्छर से जो लोग इस ज्वर की उत्पत्ति बताते हैं वे भ्रम मे है। हां, यह बात अवश्य है कि जिस मौसम मे मलेरिया प्रायः फैलता है उसी मौसम मे मच्छ[illegible] भी अधिकता से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् मलेरिया औ[illegible] मच्छर, दोनो का कारण गदा वातावरण है। यह ज्व[illegible] विशेष तौर पर ऋतु परिवर्तन के समय और कभी-क[illegible] अन्य समयो पर भी होता है। इस ज्वर के चढने का सम[illegible] वेग, ठंड लग कर चढ़ेगा या बिना ठंड के, तथा [illegible] उतरेगा, आदि कुछ भी निश्चित नही होता। इस वैष[illegible] के कारण ही आयुर्वेद मे इस ज्वर को विषम वा अनि[illegible]मित ज्वर कहा गया है।

ज्वर चढ़ने के पहले और कभी-कभी बाद मे [illegible] शरीर टूटता है, अथवा शरीर जकड–सा जाता [illegible] अंगड़ाई पर अंगड़ाई और जंभाई पर जभाई आने लग[illegible] है, आखो मे पानी भर जाता है, धूप अच्छी ल[illegible] लगती है और छाव खराब, मतली मालूम होती [illegible] और कै भी होती है, सिर और पीठ में दर्द होने लग[illegible] है, बेचैनी बढ़ने लगती है, हाथ-पैर के छोर ठडे [illegible] जाते हैं, या जाड़ा इस जोर का मालूम होने लगता [illegible] कि समूचे बदन में कंपकपी होने लगती है और दात बज[illegible] लगते है, उस वक्त कम्बल पर कम्बल और रजाई प[illegible] रजाई ओढ़ने पर भी आराम नही मिलता, कुछ देर बा[illegible] ज्वर चढ़ता है जो बहुत तेज होता है (१०५°), [illegible] तमतमा जाता है, सास लम्बी और काफी गरम निक[illegible] लगती है, मुह सूखने लगता है और प्यास बेहद ब[illegible] जाती है, ज्वर की तेजी से रोगी अक्सर बर्राने लग[illegible] है, या बेहोश-सा पड़ा रहता है, थोडी देर बाद पसीन[illegible] बह चलता है और ज्वर आप से आप उतर जाता है[illegible] ज्वर के उतर जाने पर रोगी को बहुत कमजोरी [illegible] अनुभव होने लगता है। यहां तक कि ६-७ बारी ज्व[illegible] आने तक रोगी मे फिर चलने फिरने की ताकत नह[illegible] रह जाती। शरीर पीला पड़ जाता है। तिल्ली औ[illegible] यकृत विषाक्त रक्त को शुद्ध करने के निमित्त अधिक प[illegible] श्रम करने के कारण सूजकर बढ़ जाते हैं। पेट ब[illegible] होकर तन जाता है, जिस पर नीली नसें उभर आती हैं। हाथ-पांव पतले पड जाते है। मुंह पर सूजन आ[illegible] है तथा भूख बंद हो जाती है।

मलेरिया ज्वर जब लौट-लौट कर रोज आता है, एक दिन अंतर देकर आता है, दो दिन अंतर देकर

ाता है या तीसरे वा चौथे दिन आता है तो उसे Intermittent malarial fever या सविराम मलेरिया ज्वर कहते है। यह ज्वर जब पूरी तौर से नही जाता किन्तु कुछ देर तक कम रह कर पुनः बढ जाता है तो उसे Remittent malarial fever या स्वल्प विराम मलेरिया ज्वर कहते हैं। इन दोनो प्रकार के मलेरिया ज्वरो से मिलता-जुलता एक तीसरे प्रकार का भी मलेरिया ज्वर होता है जिसे Malignant Malaria या सांघातिक मलेरिया ज्वर कहते है। ऐसा मलेरिया बगाल जैसे मलेरिया वाले देशो मे विशेष रूप से पाया जाता है। एक प्रकार का और मलेरिया होता है जिसमें बिना कंपकपी या हाथ-पैर ठंडा हुये ही ज्वर आ जाता है।

मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति पेट की ख़राबी और गंदगी से होती है जो अनियमित आहार-विहार से सम्भव होता है। मच्छर का जहर केवल उस सञ्चित गंदगी मे उद्रेक या उभाड़ पैदा करके मलेरिया-ज्वर द्वारा हमे इस बात की सूचना देता है कि शरीर में काफी मल एकत्र हो गया है। यदि हमारा मेदा साफ हो, खून साफ हो तो मच्छर का जहर हमारा कुछ नही बिगाड़ सकता। मलेरिया रोग वहा जोर पकड़ता है जहां लोग बरसात के बाद ऐसी हवा मे सांस लेते है जो पृथ्वी से निकली हुई गंदी गैसो से लदी होती है जो शरीर मे प्रवेश कर खून को गंदा करती है और पाचन-यन्त्रो मे विकार उत्पन्न कर देती है। क्रमागत ऐसी दुर्गन्ध और विषाक्त वायु के ग्रहण करने से जब शरीर का रक्त तेजहीन और विषाक्त हो जाता है केवल तभी मलेरिया के कीटाणु इस रक्त मे पनपते और मलेरिया ज्वर के कारण बनते हैं। यही कारण है जो मलेरिया का प्रकोप विशेपकर वर्षाऋतु के अन्त मे अर्थात् आश्विन-कार्तिक मे होता है और उन स्थानो में होता है जहा की पृथ्वी नम और वातावरण आर्द्र होता है। ऐसे स्थानो मे रहने से तथा वर्षाऋतु एवं उसके अन्त मे सूर्य किरणो की शक्ति के क्षीण हो जाने से मनुष्यो की पाचन-शक्ति प्रकृतितः निर्बल पड़ जाती है जिससे भोजन अच्छी तरह न पचकर शरीर मे विजातीय द्रव्य की वृद्धि करके मलेरिया रोग का कारण बनता है।

चिकित्सा

मलेरिया ज्वर के लक्षणो के प्रगट होते ही भोजन त्याग देना चाहिये और पैरो का एक गरम नहान देकर कटि-स्नान देना चाहिये।

ज्वर चढ़ने के समय से जब तक वह उतर न जाय, या कम से कम तीन-चार दिनों तक नीबू का रस और गरम जल दो-दो घटे के अन्तर से लेकर उपवास करना चाहिये। फिर कुछ दिन बाद गरम पानी के बजाय ठंडे पानी में नीबू का रस लेने लग जाना चाहिये। यदि पाखाना साफ न होता हो तो दोनो वक्त चार दिनों तक गुनगुने पानी का एनिमा लेना भी जरूरी है। उसके बाद चार दिनो तक केवल एक बार ही एनिमा लेना चाहिये।

सोते समय पैरो का गरम स्नान लेना चाहिए।

ज्वर चढने की दशा मे पेड़ू पर मिट्टी की गीली पट्टी कुल पेट पर अर्थात् नाभी के पांच-छः अंगुल ऊपर समूचे पेड़ू पर लगानी चाहिये। १०३° ज्वर होने पर यही पट्टी पेड़ू पर उस वक्त तक बदल-बदल कर लगानी चाहिये जब तक ज्वर १०२° पर न आजाय। अगर ज्वर १०३° से अधिक हो जाय तो सिर पर भी ठडी पट्टी रखनी आरम्भ कर देनी चाहिए और ज्वर के १०२° पर उतर जाने पर बद कर देनी चाहिए। सर गरम हो जाय और बेचैनी अधिक बढ जाय तो बर्फ के पानी मे भीगी पट्टी सिर पर बार-बार रखनी चाहिये और घुटने के नीचे टांगों पर ठडे पानी से भीगी और निचोडी कपडे की पट्टी लपेटकर उसे किसी सूखे ऊनी कपड़े से ढक देना चाहिये।

तीन दिन बाद उपर्युक्त उपचार के अलावा जाड़ा आने के १५ मिनट पहले समूचे शरीर पर भीगी चादर की लपेट या न्युट्रल बाथ देना चाहिये या आध घंटा पहले वाष्प-स्नान देना चाहिए।

ज्वर उतरने या कम होने पर पहले रोगी को एक भाप-नहान या आतप-स्नान करावे, फिर एक उदर-स्नान २० मिनट का और चार-पाच घटे बाद एक मेहन-स्नान २५ मिनट का दें।

जिस दिन बारी न हो आतप-स्नान दें और बारी के दिन मेहन या उदर स्नान दे।

दिन के बारह घटो मे कम से कम एक बार, कमरा बन्द करके एक स्पंज बाथ जरूर देना चाहिए। रात को सोते वक्त कमर की गीली पट्टी लगाकर सोना चाहिये।

रोगी को २॥ तोला गहरी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल दिन में तीन बार पीने को देना चाहिए। परन्तु यदि कब्ज हो तो पहले दो-एक दिन पीली बोतल का जल रात को सोते वक्त लेकर पेट साफ कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् गहरी नीली बोतल का जल पीना चाहिए। जाड़ा आने से पहले हृदय पर हल्की नीली बोतल के सूर्य तप्त तेल की मालिश भी उपयोगी है।

बारी के दिन सुबह ही घी के साथ लहसुन खिला देने से ज्वर प्रायः नही आता।

तुलसी की ७ से १० पत्तिया पानी मे पीसकर और गरम करके रोज दोनों वक्त पीने से मलेरिया ज्वर शीघ्र भागता है।

ज्वर उतर जाने पर खाने-पीने मे असयम और जल्दी नहीं करनी चाहिए। जिस दिन ज्वर बिलकुल न रहे, उस दिन पहले टमाटर, सतरा, मुसम्मी, या अनार का रस पानी मे मिलाकर पीना चाहिए, या हरी तरकारियो का 'सूप' लेना चाहिए। फिर फल और दूध लेने लग जाना चाहिए। तत्पश्चात् धीरे-धीरे सादे भोजन पर आजाना चाहिये।

यकृत और तिल्ली यदि बढ गये हो तो उपवास, एनिमा, गीली चादर की लपेट आदि से शरीर की शुद्धि करके उन पर भीगी गरम सेक देना चाहिए और पेडू पर आतप-स्नान, तत्पश्चात् मेहन या उदर-स्नान करना चाहिए।

टायफायड

टायफायड (Typhoid) को मियादी ज्वर, सान्निपातिक ज्वर, मथर ज्वर तथा मोतीझरा आदि भी कहते है। इसका एक नाम पेट का ज्वर (Bowel Fever) भी है क्योकि इस ज्वर का प्रभाव पेट पर विशेष रूप से पड़ता है। अर्थात् इस रोग मे रोगी की छोटी आंत के निचले हिस्से में मल के सडने से छाले पड़ जाते हैं जिनके ठीक होने मे समय लगता है। जब ये छाले ठीक हो जाते हैं तब टायफायड ज्वर भी पिंड छोड देता है। छालो के ठीक होने में कम से कम तीन सप्ताह अवश्य लगते है, पर ऐसे भी 'केस' मिलते हैं जिनमे टायफायड़ तीन-तीन महीने तक जाने का नाम नही लेता।

जब ज्वर का आक्रमण मस्तिष्क पर होता है तो उसे मस्तिष्क का ज्वर (Brain fever, Typhus or Nervous Fever) कहते हैं।

टायफायड, टायफस, या कोई भी भयङ्कर ज्वर पहले दिन से ही आरम्भ नही होता, अपितु ५-७ दिनों तक जब ज्वर उचित उपचार के अभाव मे यो ही बना रहता है तब विद्वान विशेषज्ञ उसका कोई न कोई नाम रखने की कोशिश करते है। वे इस बात को मानने के लिए कभी तय्यार नही होते कि ज्वर का बिगड़ना या भयङ्कर रूप धारण करना स्वय उनकी ही गलती का परिणाम है।

टायफायड के रोगी के शरीर मे ज्वर सदा बना रहता है। प्रातःकाल ९९° या १००° से १०२ तक रहता है, परन्तु दोपहर के बाद १०३° तक चला जाता है। बिगड़ी हुई दशा मे ज्वर १०५° तक या इससे भी अधिक पहुंच जाता है जो बहुत खतरनाक साबित होता है। ज्वर के तेज होने पर रोगी बेसुध पड़ जाता है, बर्राता है, कब्ज के कारण पतले दस्त आने लगते है कभी-कभी खून के भी दस्त आते हैं, तथा वह बहुत कमजोर होजाता है, यहा तक कि यदि उसकी जीवनी-शक्ति ने साथ न दिया तो उसका बचना मुश्किल हो जाता है।

इस ज्वर मे जितना सताप अधिक होता है उसकी अपेक्षा नाड़ी की गति मद होती है। जिह्वा का अग्रभाग और मुंह लाल हो जाता है। नाभि के नीचे दबाने से पीड़ा होती है। रोगी को दाह, भ्रम, अतिसार, वमन, पिपासा, तथा अनिद्रा आदि सताने लगती हैं। ये सब लक्षण प्रथम सप्ताह मे प्रगट होते है। द्वितीय सप्ताह मे सफेद छोटे-छोटे मोतियो की भाति दाने गर्दन पर निकलते है। बाद को वे छाती पर और उसके नीचे भी निकल आते हैं जो शुभ है। पर यदि दाने गर्दन पर उभरकर नीचे न उतरें और वही से गायब या अन्तर्हित हो जायें तो यह अशुभ लक्षण है। तृतीय सप्ताह मे यदि ठीक उपचार हुआ तो ज्वर में धीरे-धीरे कमी होने लगती है पर उस हालत मे भी प्रातःकाल की अपेक्षा सायंकाल को ज्वर कुछ बढ जाता है। इस प्रकार धीरे उतरता हुआ ज्वर एक दिन नार्मल पर आजाता है।

अधिक भोजन करने, भोजन मे एक साथ बहुत सी चीज़ें रखने, विलासी आचरण, तथा अनियमित जीवन यापन के फलस्वरूप जब पाचन-सस्थान निर्बल पड जाता है तब अतड़ियो द्वारा मल का निष्कासन ठीक से नहीं हो पाता और वह वही पड़ा-पड़ा सड़ा करता है। इस सड़न से रक्त जहरीला हो जाता है जो जहरीले ज्वर अर्थात् टायफायड को जन्म देता है। साथ ही आंतो मे जगा पुराना मल आंतो की दीवारों मे रहने वाली लसीका ग्रन्थियों मे [illegible] तत्पश्चात छाले पैदा कर देता है जिनके [illegible] कला के टुकड़े झड़ने लगते हैं आंतो के साथ [illegible]

ही लसीका ग्रन्थियां भी सूज जाती है ।

चिकित्सा

रोगी को पूर्ण विश्राम करने के लिए सभी सुविधायें जुटा देनी चाहिए। पेशाब,पाखाना करने का इन्तजाम भी रोगी की चारपाई के पास ही कर रखना चाहिये। साथ ही पूरी सफाई का भी पूरा-पूरा ख्याल रखना चाहिए। रोगी को औटाकर ठंडा किया हुआ पानी पीने को देना चाहिए।

टायफायड ज्वर मियादी होने की वजह से अपनी मियाद खतम करके ही उतरता है। मियाद की अवधि सात-सात दिनो की होती है। अर्थात् ज्वर के उतरने की उम्मीद ज्वर चढ़ने के सातवे दिन १४ वे दिन, २१ वे दिन आदि आगे के हर सातवें दिन करनी चाहिये। पर यदि ज्वर के लक्षण प्रगट होते ही रोगी को उपवास कराया जाय, खूब पानी पीने को दिया जाय, रोज एनिमा दिया जाय, रोज दिन के दो-एक बार उसे स्पञ्ज बाथ दी जाय तो ज्वर दो सप्ताह बाद, या हद से हद तीन या चार सप्ताह बाद जरूर उतर जायगा और टायफायड सम्बन्धी कोई अन्य उपद्रव भी न होगा। रोगी यदि बहुत कमजोर है या बूढ़ा है तो उसे आरम्भ मे २-३ दिनो का उपवास कराकर तत्पश्चात् फलो के रस पर रखना चाहिए। दिन मे तीन, चार बार तीन-तीन छटाक फल का रस देना काफी है। फल-रस की जगह किशमिश का पानी या दूध को फाड कर उसका पानी दिया जा सकता है।

ज्वर उतरने के बाद भोजन देने मे बड़ी सावधानी चाहिए। पहले दिन एक बार पानी मिला दूध लगभग ३ छटाक और दो-तीन बार फल-रस; दूसरे दिन दो बार पानी मिला दूध और फल-रस इस तरह धीरे-धीरे चौथे पांचवें दिन खालिस दूध और कही सातवे आठवे दिन एक बार दो फुलके की पपडी और थोडी-सी उबली सब्जी, दसवें-ग्यारहवें दिन दोनों समय रोटी-सब्जी और नाश्ते मे फल या दूध लेना चाहिए।

तीन चौथाई गहरी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल और एक चौथाई पीली बोतल का एक मे मिलाकर आधी-आधी छटाक की उसकी ४ खुराकें रोज पीने से टायफायड ज्वर जल्दी जाता है। टायफस ज्वर मे यदि [illegible] मे दस्त भी आते हो तो नीली बोतल का जल लाभदायक होता है।

हठी टायफायड ज्वर में नीचे का उपचार-क्रम चलाकर लाभ उठाना चाहिये :—

उपवास के साथ एनिमा लेकर पेट साफ कर लेने के दो घंटे बाद रोज लगभग एक घण्टे के लिये समूचे शरीर की गीली चादर की लपेट लगानी चाहिये। उसके बाद स्पञ्ज बाथ। रोज दो बार पेडू-स्नान और ४-५ बार आधा-आधा घण्टा के लिये पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी भी लगानी चाहिये। एक-दो सप्ताह बाद पैरों को गरम पानी मे रखकर एक मेहन स्नान भी देना चाहिये। दिन मे दो बार सायं-प्रात. पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखने के पहले ५-७ मिनट तक पेडू पर भाप भी देना चाहिये। यदि तबियत घबराये और ज्वर, बेहोशी हो तो दिल के ऊपर और पेडू पर ठंडे पानी से भीगी पट्टी बदल-बदल कर १५-२० मिनट तक या इससे भी अधिक देर तक रखनी चाहिये। तेज ज्वर मे रातभर के लिये भी पेडू पर मिट्टी की गीली पट्टी बाधनी चाहिये। पेट मे दर्द होने पर उसपर आधे घंटे तक ठंडी और गरम सेक देनी चाहिये।

पथ्यादि ऊपर लिखे अनुसार ही देना चाहिये।

इन्फ्लोइञ्जा

यह एक छूत का रोग माना जाता है और इसकी उत्पत्ति एक विशेष प्रकार के कीटाणु—Bacillus Influenza or Pfeiffer's Bacillus से बताई जाती है। इसे वैद्यक में वात-कफ-ज्वर कहते है। संसार के अन्य देशो के अलावा भारत मे भी सन् १९१८ मे जोरदार इन्फ्लोइञ्जा फैला था जबकि केवल इस देश मे ७० लाख मनुष्य इस रोग से मरे थे।

अकस्मात् हल्का ज्वर, कंपकपी होकर ठंड लगना, सिर मे भारीपन और पीड़ा, गले में खराश और खासी, कब्ज, मानसिक अवसन्नता, कमजोरी, श्वास-कष्ट, प्रलाप कभी-कभी नाक, मुंह तथा गुदा मार्ग से रक्तस्राव, सारे शरीर मे वेदना और हड़फूटन, आख-नाक से पानी बहना, मतली, कै, अनिद्रा, बेचैनी तथा पेट मे दर्द आदि इस रोग के साधारण लक्षण हैं। उचित देखभाल और उपचार के अभाव मे यह रोग बिगड़कर निमोनियां, तेज-ज्वर (१०३° से १०५° तक) फेफड़ो में सूजन, दर्द

पसली, प्लूरिसी, जोड़ो का दर्द, लकवा, पीलिया, मूत्र-यन्त्रप्रदाह, टायफायड, यक्ष्मा, तथा दिल की धड़कन आदि भयानक रोगो की सृष्टि करता है।

इन्फ्लोइन्जा ज्वर तीन से दस दिनो के अन्दर उतर तो जाता है परन्तु कमजोरी और थकान कभी-कभी सालो तक बनी रहती है। इस बीमारी से बूढ़े अधिक मरते है। इसमे अचानक कमजोरी इतनी बढ जाती है और आदमी को इस तरह का ज्वर आता है कि वह तुरन्त खाट पकड़ने के लिए मजबूर हो जाता है।

इन्फ्लोइञ्जा प्रायः शीतकाल के अन्त में फैलता है। पर वह किसी को किसी समय भी हो सकता है। अधिक और अनाप-शनाप खाना, ऋतु परिवर्तन, जीवनी-शक्ति का ह्रास, कब्ज तथा शरीर मे विजातीय द्रव्य की स्थिति, इस रोग के होने के प्रधान कारण है।

चिकित्सा

ज्वर के दूर हो जाने तक रोगी को खाट पर रहकर पूरी तरह आराम लेना चाहिए और बूढों को ज्वर के जाने के कुछ दिन बाद तक आराम करना चाहिए। उपवास, एनिमा और कटिस्नान या पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाकर पेट की शुद्धि सर्वप्रथम कर लेनी चाहिए। शुरू मे कम से कम तीन दिनो का उपवास करना अत्यन्त आवश्यक है। उसके बाद ज्वर टूटने तक रसाहार या हल्के फलाहार पर रहा जा सकता है। अजवाइन डालकर औटाया हुआ और ठडा किया हुआ जल प्रचुर मात्रा में पाना चाहिए। रोग के आक्रमण का प्रथम चिन्ह प्रगट होते ही पेट को शुद्ध करके कम्बल ओढ़कर और पैरो के पास गरम पानी से भरी बोतले रखकर शरीर से पसीना निकालने की कोशिश करनी चाहिए, जिसके निकल चुकने के बाद गुनगुने गरम पानी से स्नान कर लेना चाहिए। कम्बल ओढ़कर पसीना निकालने के बदले पैरो के गरम स्नान या समूचे शरीर की गीली पट्टी द्वारा भी पसीना निकाला जा सकता है। यदि नाक बहती हो, जुकाम हो, या श्वास कष्ट हो तो छाती और चेहरे पर ५-७ मिनट तक भाप देनी चाहिए और भाप को नथुनों के रास्ते भीतर ले जाना चाहिए। उसके बाद छाती और पीठ पर भीगे कपड़े की लपेट (Chestpack) १½ घंटे तक लगाना चाहिए। कठिन इन्फ्लोइन्जा में दिन मे ३-४ बार 'स्पञ्जबाथ' देना चाहिए। तेज ज्वर मे पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी रोज ३ बार जरूर लगानी चाहिए। गले में तकलीफ बढ़ने से १½ घटे तक के लिये गर्दन के चारो तरफ गीली पट्टी की लपेट (Throat Pack)लगाना चाहिए। खासी हो तो दिन मे कई बार गरम जल फूक-फूककर चाय की तरह पीना चाहिए।

ज्वर उतरने के बाद भी तीन-चार सप्ताह तक पूर्ण विश्राम करते हुए विशेष सतर्कता के साथ गिरे हुए स्वास्थ्य को सुधारना चाहिये, भोजन हल्का करना चाहिए और उसमें फलो, सब्जियों, धारोष्ण दूध, मठा, दही, शहद, तथा मक्खन, एवं सप्राण खाद्य पदार्थों को प्रधानता देनी चाहिए।

डेंगू ज्वर

डेगू ज्वर (Dengue Fever) को Break bone Fever, Dandy Fever तथा Three day Fever भी कहते है। इस ज्वर का कारण वही है जो अन्य प्रकार के ज्वरो का अर्थात् शरीर मे विजातीय द्रव्य का एकत्र होना।

इस ज्वर के कुछ विशेष लक्षण है अर्थात् यह अचानक आता है और तेजी से बढ़ता है तथा अच्छा हो-हो कर पुनः पुनः आक्रमण करता है। कभी-कभी तो चार चार बार वापस आता है। ज्वर का आरम्भ जोडो और हड्डियो मे दर्द होकर होता है। उसके बाद मुंह लाल हो कर सारे शरीर मे छोटी-छोटी फुन्सिया सी निकलती हैं रोगी की बेचैनी बढ़ जाती है ज्वर १०२° से १०५° तक जाता है। दो-तीन दिनों मे रोग शात हो जाता है, मगर तीन-चार दिन बाद पुनः वापस आता है। कभी-कभी तो यह ज्वर एक मास तक भी टिक जाता है।

डेगू ज्वर की चिकित्सा भी वही है जो साधारण ज्वर की।

फाइलेरिया

फाइलेरिया, गरम जल-वायु वाले देशों मे होने वाला रोग है। इस रोग के भी कीटाणु होते हैं जो प्राय गन्दे वाले जल के द्वारा शरीर के भीतर पहुँचते हैं। अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति जिनके शरीर मे विजातीय द्रव्य की अधिकता होती है इस रोग के शिकार बहुत

जल्द बन जाते हैं। फाइलेरिया के दौरे आते हैं। इसका ज्वर प्राय: १०५° तक चला जाता है। फोतो और गुर्दों पर इस रोग का प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। फोतो की खाल मोटी होकर उसमें सूजन आजाती है और दर्द होता है।

चिकित्सा—आरम्भ में दोनो वक्त एनिमा लेकर कम से कम एक सप्ताह और अधिक से अधिक दो सप्ताह उपवास करना चाहिए। उसके बाद महीने-डेढ़ महीने रसाहार (फल-रस या तरकारियो का सूप) पर रहना चाहिए। कुछ दिन रसाहार के बाद उसकी जगह रसदार फल और धारोष्ण दूध भी लिये जा सकते है डेढ़-दो मास बाद कच्ची और पक्की सब्जी, दलिया और चोकरदार आटे की रोटी आदि सादे भोजन पर धीरे-धीरे आजाना चाहिए।

शेष चिकित्सा साधारण ज्वर की चिकित्सा की भांति करे।

प्लेग

प्लेग (Plague) को महामारी, ताऊन, और गोटी-वाला ज्वर भी कहते है। यह एक अत्यन्त भयङ्कर रोग है जो सक्रामक (Infectious) और स्पर्शाक्रमक (Contagious) दोनो होता है।

Bacillus Pestis नामक जीवाणु प्लेग-रोग के कारण होते हैं। ये कीटाणु सीलन की जगह जहां पुराना कूड़ा-करकट पड़ा-पडा सड़ा करता है और जिससे एक प्रकार की गदी और बदबूदार भाप निकला करती है, अधिक पनपते और वृद्धि को प्राप्त होते है। इन कीटाणुओ का हमला पहले पहल चूहो पर—विशेषकर काले चूहों के पिस्सुओ (Rat Fleas) द्वारा उन मनुष्यो के शरीरो पर होता है जिनके शरीरो मे पहले से ही विजातीय द्रव्य एकत्र रहता है, तथा जिनकी जीवनी-शक्ति निर्बल होती है। परन्तु जिनके भीतर रक्त मे मल पहले से नहीं विद्यमान होता। उनका ये कीटाणु कुछ भी नही बिगाड़ते और न बिगाड़ ही सकते।

प्लेग चार प्रकार का होता है—

(१) ब्यूबोनिक (Bubonic) अर्थात गिल्टी वाला प्लेग। इसमे निम्नलिखित-लक्षणो के साथ जांघ, बगल, गर्दन आदि विभिन्न अङ्गों की ग्रन्थिया दर्द के साथ सूजनी आरम्भ हो जाती है। एक के बाद दूसरी फिर तीसरी ग्रन्थिया निकलती है और फूटती है। कभी-कभी एक साथ कई ग्रन्थिया निकल आती है जो अंडे इतनी बडी होती है। अगर गिल्टिया ४-५ दिनों मे फूट जायें और ज्वर चला जाय तो शुभ लक्षण समझना चाहिए। पर गिल्टी का बैठ जाना बडा खतरनाक होता है। साधारणतः सात से दस दिनों के भीतर गिल्टियां जरूर फूट जाती है।

हमारे देश में इसी प्रकार का प्लेग अधिकतर पाया जाता है।

(२) न्यूमोनिक (Neumonic) इसमे रोग का आक्रमण फेफड़ो पर होता है और निमोनिया के लक्षण दृष्टिगोचर होते है। जैसे—खासी, श्वास कष्ट, शरीर में ठंडक लगकर सिर दर्द, पीठ दर्द, प्रलाप, तेज नाड़ी, कलेजे मे दर्द तथा फेफड़ो से रक्तस्राव, आदि।

इस प्रकार का प्लेग, गिल्टी वाले प्लेग से बहुत अधिक घातक होता है।

(३) सेप्टीसिमिक (Septicimic) अर्थात् शरीर में सड़न पैदा करने वाला प्लेग। इसमे समस्त शरीर के यन्त्र आक्रांत होकर सड़ने लगते हैं। रक्त विषाक्त हो जाता है और शारीरिक क्रियाये बन्द हो जाती है जिससे जीना मुश्किल हो जाता है।

इस प्रकार के प्लेग से रोगी एक दो दिनों से अधिक नही जीता।

(४) इटेस्टिनल (Intestinal) या आन्त्रिक प्लेग। इसमे रोग का आतों पर हमला होता है। पेट फूल जाता है। पेट और कमर मे वेदना होती है तथा कै-दस्त लग जाते है।

प्लेग जब होने को होता है तो तबियत गिरी-गिरी सी रहने लगती है तथा सुस्ती और कमजोरी बढ़ जाती है। ऐसी हालत एक घटा से सात दिनो तक रह सकती है। फिर रोग का प्रबल आक्रमण होता है। जाड़ा, तेज ज्वर (१०४° या इससे भी अधिक) सिर दर्द, हाथ पैर में ऐठन, शरीर मे असह्य पीड़ा, अत्यन्त दुर्बलता, मतली, कै, आखो का गड्ढे मे चला जाना, गालो का पीला पड जाना, नाड़ी और श्वास मे तीव्रता, आवाज का धीमा हो जाना, भूख का मर जाना, प्रलाप, अचैतन्यता, मूत्र का कम बनना या बिलकुल न बनना.

मुख या जननेन्द्रिय द्वारा रक्तस्राव, तेज पिपासा, अनिद्रा, मुख और जीभ का लाल होना तथा गिल्टियो का निकलना आदि इस रोग के विशेष लक्षण है।

प्लेग से बचने के उपाय

चूहो के गिरते ही मकान छोड़ना अच्छा है। जिस मकान मे रहे उसे और उसके आसपास खूब साफ रखे, विशेषकर नालियों और बहबचो को। सादा और शीघ्र पचने वाला भोजन करे कोष्ठबद्धता न होने दे तथा एनिमा आदि द्वारा आंतो को सदा साफ रखे। बाजार की मिठाई, दूध आदि चीजे न खाये। तात्पर्य यह कि शरीर मे विजातीय द्रव्य एकत्र न होने दे जो ताऊन के कीड़ों की खुराक होती है और जिससे वे पनपते और वृद्धि को प्राप्त होते हैं। ऐसा व्यक्ति जिसका शरीर विजातीय द्रव्य से शून्य है, चाहे कितने ही ताऊन के कीड़े निगल जाय उसको ताऊन नही हो सकता। उल्टे ये कीड़े ही ऐसे शरीर मे प्रवेश कर नाश को प्राप्त हो जायेगे। क्योंकि उनके अनुकूल वहां क्षेत्र नही होता।

ताऊन के चूहों को उन पर मिट्टी का तेल डालकर जला देना चाहिए और उस स्थान पर सूखी घास बिछाकर उसमे आग लगा देना चाहिए ताकि वहां की हवा साफ हो जाय और ताऊन के कीड़े जो वहां हो, मर जाये। ताऊन के रोगी को घर के अन्य लोगो से पृथक रखना चाहिए कारण किसे मालूम कि किस व्यक्ति के शरीर मे विजातीय द्रव्य का भार है और किस मे नही? रोगी का कमरा साफ-सुथरा और हवादार होना चाहिए जिसमे यदि धूप का भी प्रवेश हो तो अति उत्तम। प्लेग के मुर्दे को अवश्य जला देना चाहिए।

ताऊन के दिनों मे एक टुकडा कपूर का हमेशा पास मे रखना चाहिए और भोजन के साथ प्याज जरूर खाना चाहिए। सुबह उठते ही एक गिलास पानी मे नीबू का रस डालकर पीवे। फिर शौच से लौटकर और मुंह हाथ धोकर वायु सेवन के लिये खुली जगह मे निकल जाये। वहां से आकर नगे बदन पर २० मिनट तक धूप लेवे फिर साधारण स्नान करें और भीगे शरीर के पानी को हाथो की हथेलियो से रगड-रगड कर सुखा दे। गहरी सांस की कसरत रोज करें। आसमानी रङ्ग की बोतल के सूर्य तप्त जल की आधी-आधी छटाक को चार खुराके रोज ले।

चिकित्सा

ताऊन होने का खटका होते ही चाहे गिल्टी निकली हो अथवा केवल ज्वर ही हो, एनिमा लेकर पेट साफ कर लेना चाहिए। फिर तुरत पूरे शरीर का एक स्टीमबाथ आध घटे का देना चाहिए। भाप लेते समय मुह खोलकर कभी कभी भाप को भीतर भी खीचते रहना चाहिए। स्टीम-बाथ के बाद प्रत्येक चार-चार घटे बाद मेहन और उदर-स्नान बारी-बारी से आध-आध घटे का लेते रहना चाहिए। पहला स्नान तो स्टीमबाथ के फौरन बाद है उसके बाद स्नानों मे ३ या ४ घंटों का अन्तर कर दे। यदि पहले दिन के स्टीम बाथ से काफी पसीना न आये तो दूसरे दिन एक और स्टीमबाथ सावधानी के साथ ले लेना चाहिए। यदि फिर भी काफी पसीना न निकले तो [illegible] पर गीली पट्टी लगावे। यदि गिल्टी निकल आयी हो तो उसपर २-२ घण्टा पर १५ मिनट तक भाप देकर बाकी समय उसपर मिट्टी की गीली पट्टी, बरफ जल या [illegible] ठण्डे जल से भीगी कपड़े की उष्णाकर पट्टी या शीतल पट्टी ही, जैसा रोगी चाहे बाध दे। आसमानी रङ्ग की बोतल का सूर्यतप्त जल आधी-आधी छटाक ५-[illegible] मिनट पर रोगी को पिलाना चाहिए। उपवास जब तक रोग न जाय तब तक करना चाहिए। रोग की तेजी मे पूरे शरीर की भीगी पट्टी १ घण्टा तक उसके बाद स्पन्ज-बाथ बड़ा लाभकारी सिद्ध होता है।

न्युमोनिया प्लेग मे मिट्टी की गीली पट्टी पूरी छातीपर दिन मे दो-तीन बार बाधनी चाहिए। सिर मे दर्द हो तो सिर पर भी मिट्टी की गीली पट्टी या कपडे की ठण्डी पट्टी बाधना चाहिए और उसे बदलते रहना चाहिए।

पथ्यादि साधारण ज्वर की भाति ही देना चाहिए।

गर्दन तोड़ ज्वर

रीढ़ और मस्तिष्क जिस झिल्ली से ढका रहता है उसमे जब प्रदाह और जलन होने लगती है तब गर्दन तोड़ ज्वर या Meningitis रोग होता है। इसीको Cerebro-spinal Fever और Spotted Fever भी कहते हैं।

रोग होने के कुछ दिन पहले ही से भूख बद हो जाती है तथा सिर दर्द के साथ बेचैनी होने लगती है। उसके

ाद ज्वर १०३° या इससे बेशी डिग्री तक चढ़ता है, साथ
ी सारे शरीर मे गुटका–गुटका निकल कर गायब हो
ाता है। जोर का जाड़ा भी प्रतीत होता है। कै और
ुजली सताती है। सिर, पीठ और सारे बदन मे असह्य
ीड़ा होने लगती है। रोगी प्रलाप करने लगता है और
भी अचैतन्य हो जाता है। गर्दन और पीठ की मास-
ेशियो मे सख्ती आजाने के कारण मस्तक एक तरफ को
ुक जाता है। कभी–कभी बहरापन और अंधापन के
क्षण भी दिखाई देने लगते है।

अधिक भीडभाड़ वाले तथा सील वाले स्थान मे
रहना, अधिक गर्मी या अधिक सर्दी लगना, दूषित वाता-
वरण, सख्त मेहनत, तथा नशाखोरी से जब शरीर स्थित
विजातीय द्रव्य मे उद्रेक होता है तब यह सब उत्पन्न
होता है।

चिकित्सा

रोग के लक्षणो के प्रगट होते ही रोगी को किसी
शीतल, निर्मल, हवादार, पर अंधकार वाले घर मे
पूर्ण आराम करने के लिये लिटा दे। रोगी को चाहिए
कि वह बहुत देर तक चित न लेटे। तत्पश्चात् गुनगुने
पानी का एक एनिमा देकर पेट साफ कर दे। उसके एक
घटा बाद पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट लगावे,
शीतल घर्षण–स्नान करे। दो घटे बाद सिर और रीढ
पर ५–७ मिनट तक भाप देकर बाकी समय मे बर्फ जल
से भीगी शीतल पट्टी रखे। बर्फ का प्रयोग नगे चमड़े पर
हरगिज न करे। शीतल पट्टी के प्रयोग के समय पैरो को
गरम रखने के लिए १½ घटा तक कम्बल आदि से खूब
ढंककर रखे और पसीना निकल चलने पर उतार दे।
रोज दो बार मेहन–स्नान भी इस रोग मे जरूरी है।
सख्त मासपेशियो पर दिन मे दो–तीन बार ५–७ मिनट
तक भाप देकर उन पर मिट्टी की या कपडे की उष्णाकर
पट्टी देनी चाहिए। रातभर के लिए पेड़ू पर मिट्टी की
गीली पट्टी लगावे या भीगी कमर की पट्टी का प्रयोग
करे।

उपवास और पथ्यादि साधारण ज्वर की भाति।

कालाजार और लाल ज्वर

उपर्युक्त दोनो ज्वरो और साधारण ज्वर मे कोई
विशेष अन्तर नही है। अत. इनकी चिकित्सा भी उसी
प्रकार होनी चाहिए जिस प्रकार साधारण ज्वर की।

हृदय रोग

ब्रिटिश मेडिकल जनरल की रिपोर्ट है कि पिछले
२५-३० वर्षों से हृदय-रोग से—विशेषकर हृदय की गति
बंद हो जाने से मरने वालो की सख्या बढ़ती जारही है।
पता लगाने से मालूम हुआ है कि यह रोग उन्हीं लोगो
को विशेषरूप से होता है जो कोई पेशा करते है और
अपने पेशे मे जरूरत से ज्यादा व्यस्त रहने के कारण
मानसिक और शारीरिक तनाव के शिकार हो जाते हैं जो
हृदय-रोग के अनेक कारणो मे से एक कारण है। देखा
भी यही जाता है कि हृदय-रोग से डाक्टर, वकील,
राजनीतिज्ञ तथा सिनेमा के कलाकार आदि पेशेवर लोग
ही अधिक मरते है। सास फूलना, चेहरे पर भरभराहट
और पावो की सूजन साधारण हृदय-रोग के लक्षण है।

हृदय-रोग के निम्नलिखित भेद होते हैं:—

(१) हृत्कम्प—इसमे जोर-जोर से दिल धड़कने के
दौरे आते है। उस वक्त रोगी की घबड़ाहट बढ़ जाती है
और उसे मृत्यु-भय होने लगता है। यह रोग पुरुषों की
अपेक्षा स्त्रियो को अधिक होता है। आकस्मिक घटनाओं,
भय या क्रोध की दशा मे भी हृदय तीव्र गति से धड़कने
लगता है। पेशियो की विशेषकर हृदय की पेशियों और
स्नायुओ की निर्बलता इस रोग का मूल कारण है।
नशीली चीजो का सेवन, 'चाय-कहवा-पान' शारीरिक और
मानसिक दुर्बलता, रक्तहीनता, अजीर्ण, अनियमित आहार-
विहार, स्नायु-विकार, हृदय दोष, वीर्य-विकार, खूनी-
बवासीर तथा पेट मे अपच के कारण वायु की उत्पत्ति
आदि इस रोग के अन्य कारण हैं।

हृदय मे कोई दोष हो जाने के कारण जब हृत्कम्प
होता है तो उसमे हाथ अक्सर बर्फ की तरह ठण्डा हो
जाता है और ठण्डा पसीना आता है।

(२) दिल की धड़कन का बन्द होने लगना—दिल की
धड़कन तो अस्कमात बन्द हो जाती है। परन्तु उसके
पूर्व रोगी को कितने ही लक्षणो द्वारा उसका आभास
जरूर मिल जाता है जिसकी उपेक्षा करने और तुरत कोई
उपाय न कर सकने के कारण इस रोग से उसकी मृत्यु
हो जाती है। हृदय की धड़कन हमेशा के लिये बन्द होने

(Heart failure) से पहले उसमे कमी होने लगती है जिसे दिल का बैठना कहते हैं। साथ में हृदय मे कभी-कभी दर्द भी होता है। प्राय: पेट से नाभि के ऊपर कठिन पीड़ा भी होती है जिसे साधारणत: कलेजे का दर्द समझा जाता है। हृदय की धड़कन बन्द होकर जब मृत्यु होने को होती है तो अत्यधिक और अवर्णनीय प्रकार की बेचैनी होती है। अचानक बदन मे सख्त गर्मी मालूम होने लगती है और उसके बाद पसीना आता है। छाती के पास इस जोर का दर्द होता है कि रोगी छटपटाने लगता है।

(३) हृदयशूल--हृदय की रक्त की कोठरियो से जब प्रकृति वहां एकत्र विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल फेंकने की चेष्टा करती है तो रुकावटों को दूर करने में विजातीय द्रव्य के कणो मे रगड़ व टक्कर होती है जिससे भयानक पीड़ा की अनुभूति होती है। यही हृदय-शूल या दर्द दिल है। इसी दर्द को अग्रेजी मे Angina pectoris कहते हैं। यदि समय पर इसका इलाज न किया जाय तो मृत्यु निश्चित है। कभी-कभी हृदय और उसके स्नायुओं मे कमजोरी आने के कारण भी यह दर्द उत्पन्न होता है। हृदय-शूल के समय तबियत बेतरह घबड़ाती है, श्वास कष्ट होने लगता है और मृत्यु-भय उपस्थित हो जाता है। कभी-कभी यह दर्द बढ़कर पूरे बांये हाथ और पूरी बांयी छाती तक फैल जाता है। इस वक्त मुंह लाल, बदन ठण्डा तथा नाड़ी धीमी हो जाती है। दर्द के दौरे आते है। दर्द साधारणत: केवल तीन-चार मिनट तक रहता है। मगर कभी-कभी देर तक भी रहता है।

(४) हृदय का आकार मे छोटा या बड़ा हो जाना--हृदय मे या हृदय के आस-पास विजातीय द्रव्य के एकत्र हो जाने से रक्त-नलिकाओं में दूषित पदार्थ भर जाते है जिससे वे कड़ी और तग हो जाती है। साथ ही हृदय की दीवारे भी मोटी हो जाती है और फैल जाती है, जिससे हृदय आकार मे बड़ा प्रतीत होने लगता है। विजातीय द्रव्य की ही गर्मी से जब हृदय सूख जाता है तो उस वक्त वह आकार मे छोटा हो जाता है। इन दोनों हालतो मे रक्त को शरीर के समस्त भागो मे पहुँचाने के लिये हृदय को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है जिससे जल्दी ही वह बेकार हो जाता है।

(५) हृदय-शोथ—हृदय में शोथ या सूजन उत्पन्न हो जाना इस बात का प्रमाण है कि हृदय मे विजातीय द्रव्य काफी मात्रा में एकत्र हो गया है। हृदय भीतर-बाहर चारो तरफ से एक प्रकार की झिल्ली से ढंका होता है। जब ऊपर की झिल्ली मे सूजन हो जाती है तो उसे 'परिहार्दिक सूजन' या Pericarditis कहते है। और जब यह सूजन हृदय की भीतरी झिल्ली मे होती है तो उसे 'अन्त:हार्दिक सूजन' या Endocarditis कहते है तथा जब स्वयं हृदय या उसकी मांसपेशियो में सूजन हो जाती है तब उसे 'मध्यहार्दिक सूजन' या Myocarditis कहते है। प्राय. हृदय को ढकने वाली झिल्ली, जिसे 'हृदयावरण' या Pericardium कहते है, में पानी आ जाने से भी हृदय सूजा हुआ प्रतीत होता है जिसकी बढी हुई अवस्था मे रोगी को सास लेने मे कष्ट होता है।

परिहार्दिक सूजन मे हृदय में मीठा-मीठा दर्द होता है, नाड़ी तेज चलती है, और कभी-कभी ज्वर हो आता है। अन्त हार्दिक सूजन मे रोगी छाती मे भारीपन अनुभव करता है और मध्यहार्दिक सूजन मे जब रोग बढा हुआ होता है तो हृदय के स्थान पर हल्की पीड़ा, साथ ही साथ ज्वर भी होता है।

गठिया, ज्वर, आदि तीव्र रोगो को जब विषैली औषधियो द्वारा दबा दिया जाता है प्राय तब ही हृदय मे सूजन आजाती है।

हृदय रोग के कारण

हृदय–रोग (Heart-Diseases) के कारणो पर प्रकाश डालते हुए प्रेसिडेण्ट आइजन हावर के हृदय विशेषज्ञ डाक्टर डडले ह्वाइट ने एक बार जोर देकर कहा था-हम लोग आराम तलब हो गये हैं। इस समय हृदय की बीमारी की बढती के दो प्रमुख कारण है। एक तो अधिक गरिष्ठ भोजन, दूसरे व्यायाम और परिश्रम का अभाव। मांस मैदा, सफेद चीनी नशीली, चीजे, तेल, खटाई, अचार, मसाले तथा तली-भुनी चीजे गरिष्ट होती है। इनमें से प्रत्येक वस्तु हृदय-रोग उत्पन्न करने की पूरी-पूरी ताकत रखती है। क्योंकि इन वस्तुओ के सेवन से रक्त में अम्लता (खट्टापन) की वृद्धि होती है जो हृदय रोग ही क्यो ? शरीर के समस्त रोगो का प्रधान कारण होता है। इसके अतिरिक्त अधिक औषधियो का सेवन भी हृदय पर

...प्रसर डालता है। हकीमो के कुश्ते, वैद्यो के भस्म, ... डाक्टरों की ज्वर नाशक (Antipyretics) दवा-, वेदना नाशक 'सोडासैलीसाइलिट' 'एसप्रीन' तथा ... जैसी तीक्ष्ण औपधियां तथा कथित हृदय ... निवारक 'डिजीटेलिस', 'स्ट्रिकनिया' आदि दवाइयां नाना प्रकार के विषैले इञ्जेक्शन—सब के सब ... पर इतना भयानक प्रभाव डालते हैं और उसके ढाचे इतनी हानि पहुंचाते हैं कि स्थिति को सम्हालना सुधारना मुश्किल हो जाता है।

उपर्युक्त के अलावा सर्व समय उत्तेजित अवस्था मे ..., श्रम न करना या शक्ति से अधिक श्रम करना, अधिक श्रम करने लग जाना, रात्रि जागरण, ... के बाद थोडा विश्राम न करना, अधिक खाना तथा ... वीर्य क्षय होने से भी हृदय रोग की उत्पत्ति है।

तात्कालिक चिकित्सा

अधिकाश हृदय रोगो के दौरे आते हैं। उस वक्त ... बडी विकट हो जाती है और मरने जीने की ... उपस्थित हो जाती है। उस वक्त रोगी को मानसिक और शारीरिक विश्राम देने के लिये किसी ..., साफ विस्तरे पर सिर को ऊंचा रखते हुये ... देना चाहिए। शरीर के कपडो को ढीला कर देना ...। रोगी के सामने कोई ऐसी चेष्टा नही करनी ... अथवा कोई ऐसा शब्द नहीं बोलना चाहिए जिससे ... उत्तेजित हो उठे। जब तक सङ्कट टल न जाय रोगी ... उपवास कराना चाहिए। यदि रोगी बहुत दुर्बल ... ऐसी अवस्था में आवश्यकता अनुसार अंगूर, ... सन्तरे या कागजी नीवू का रस दिया जा सकता ... उपवास के दिनो मे रोगी को प्रतिदिन गुनगुने पानी ... एनिमा देकर पेट साफ कर देना चाहिए। उपवास की ... पर रोगी को कुछ दिनो तक फलो के रस, फिर ... और दूध पर रखना चाहिए। रोज दो बार १५ ... से धीरे-धीरे वढाकर एक घटा तक हृदय पर ... बरफ बन्दे की ठडी पट्टी रखनी चाहिए और अन्त ... स्थान को फ्लालेन आदि किसी सूखे कपडे से रगड़-... कर देना चाहिए। श्वास-कष्ट हो या कफ का ... हो तो पावो को गरम करने के लिये उन पर ऊनी पट्टी या गरम कपड़ा लपेट देना चाहिए। साथ ही हृदय पर ठडे पानी से भीगे कपड़े की एक पट्टी अलग से रखकर समूची छाती पर १ घटा के लिये छाती की भीगी पट्टी लगानी चाहिए। इस प्रयोग को हर २० मिनट बाद करना चाहिए तथा हर वार जब छाती की पट्टी हटाई जायतो उस स्थान को सूखे कपड़े से रगडकर लाल कर देना चाहिए। अधिक घवराहट हो तो पट्टी के वजाय साधारण ठडे पानी मे तर करने के वरफ के पानी मे तरकर और निचोड़ कर लगानी चाहिए।

यदि हृदय बैठ रहा हो और धड़कन बन्द होने वाली हो तो रीढ पर गरम ठडी सेक देनी चाहिए और बीच-बीच में स्पञ्ज वाथ, अथवा गरम पानी मे भिगोई और निचोड़ी कपड़े की पट्टी से हृदय को तव तक सेकना चाहिए जब तक कि हृदय की धड़कन अपनी स्वाभाविक अवस्था मे न आ जाय। सेकने के बाद लेटे-लेटे ही या टब मे बैठकर मेहन स्नान ले लिया जाय तो लाभ अधिक और स्थाई होता है। लाल रंग की बोतल के सूर्य तप्त तेल या जल की हृदय पर मालिश तथा पीली बोतल के सूर्य तप्त जल की आधी-आधी छटाक की ८ खुराके रोज पीना दिल बैठने मे बड़ा उपकारी सिद्ध होता है।

हृदय-शूल मे हृदय को ५ मिनट तक गरम जल में भीगे और निचोड़े कपड़े से सेककर १५ मिनट तक उस पर ठंडी पट्टी का प्रयोग करना चाहिए और इसे ४-५ बार दोहराना चाहिए अथवा ५ मिनट तक Hot foot-bath (पैरो का गरम नहान) देने के बाद आध घण्टा तक हाथो और पैरो मे गरम कपड़ा लपेट कर उन्हे गरम रखना चाहिए।

दिल की धड़कन वढ़ने मे दिल पर ठडी पट्टी आध-आध घंटा पर २० मिनट के लिये देते रहना चाहिए। पट्टी पूरे दिल और पूरी दाहिनी पंजरी तक वढ़ाकर लगानी चाहिये। प्रवल हालत मे मेरुदण्ड पर भी और प्रत्येक बार पट्टी उतरने पर स्थान को सूखे कपड़े से रगड़-रगड़ कर लाल कर देनी चाहिए। हृदय पर नीली रोशनी का प्रयोग तथा गहरी नीली वोतल के सूर्य तप्त जल की चार खुराके रोज पीना दिल की वढी हुई धड़कन मे लाभ करता है। प्रात.काल शौचादि से निवृत होने वाद मुट्ठी भर काली तुलसी (न मिले तो हरी तुलसी)

के पत्ते चबाकर थोडा जल पी लेना चाहिये। तदुपरान्त तीन घटे तक कुछ नही खाना चाहिए। कहते हैं इस प्रयोग से ३-४ दिनो में ही भयानक से भयानक हृत्कम्प, जिससे सोते समय हृत्कम्प के जोर से चारपाई तक हिल उठती है, दूर हो जाता है।

हृदय मे कोई दोष हो जाने के कारण जब तेजी से हृदय धड़कने लगे जिसको अंग्रेजी मे Palpitation of heart कहते है तो नीचे का योग आश्चर्यजनक लाभ दिखाता है।

खालिस ताबे का एक गोल पैसा या कोई चिपटा गोल टुकड़ा लेकर रेत आदि से रगड़कर साफ कर ले। फिर उसके एक सिरे में सूराख करके उसे नीले रेशमी धागे मे पिरो ले। धागा इतना लम्बा होना चाहिये कि जब उसे गले मे पहना जाय तो वह कलेजे तक लटकता रहे। इसे शुक्रवार के दिन सूरज निकलने के बाद पर दोपहर से पहले किसी नीली वस्तु का ध्यान करते हुए गले मे डाल लें ताकि ताम्बे का टुकड़ा शरीर से सदैव लगा रहे। एक बार पहने हुये ताबे के टुकड़े का असर तीन माह तक रहता है। यदि इसे तीन मास के भीतर दिल की बढी हुई धड़कन न बद हो तो ताबे के उस टुकड़े को शुक्र के दिन गले से उतार कर आग मे लाल करके तत्पश्चात् पानी मे बुझाकर रेत आदि से पुन. साफ कर उपर्युक्त विधि से फिर गले में धारण कर ले। अवश्य लाभ होगा।

हृदय रोग के साथ यदि पेट की भी तकलीफ हो तो एनिमा के साथ पेट पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिए और अजीर्ण रोग की चिकित्सा चलानी चाहिए।

हृदय रोग के साथ ज्वर हो तो भी पेडू पर मिट्टी की पट्टी का ही प्रयोग करना चाहिए या कटि-स्नान लेना चाहिए।

यदि हृदय रोग के रोगी को नींद न आती हो तो सोने के पहले १५ मिनट तक सिर पर ठडे जल से भीगा और निचोडा कपड़ा रखकर पैरो को गरम पानी मे रखने से लाभ होगा।

यदि हृदय रोग के रोगी के शरीर पर सूजन आजाय और जलोदर के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे तो इस दशा में रोगी को पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट देकर और ऊनी कम्बलो मे लपेटकर तीन चार घण्टो तक रखना चाहिए। अथवा धूप-नहान देकर पसीना निकाल देना चाहिए। तथा इन पसीना निकालने वाले प्रयोगो के बाद रोगी को तौलिया स्नान जरूर करा देना चाहिये। तत्पश्चात् कटि-स्नान या मेहन-स्नान देना चाहिये।

स्थाई चिकित्सा—

हृदय-रोगो के दौरा पड़ने के समय की तात्कालिक चिकित्सा ऊपर बताई गयी है। अब इन रोगो को जड से दूर करने के उपाय बताये जाते हैं।

हृदय रोग के रोगियो को दौरा न होने के समयो मे रोग को निर्मूल करने के लिये कुछ दिनो तक उपवास करके दिन मे दो बार एनिमा लेकर पेट साफ करना चाहिए। फिर १५ दिनो तक फलाहार या फल दूध पर रहकर दिन में दो बार घर्षण स्नान करने के बाद साधारण स्नान करना चहिए, अथवा शरीर मर्दन के बाद सवेरे कटिस्नान और उष्णपाद-स्नान के बाद सायकाल मेहन-स्नान। पेट को ठीक करने के लिए रात भर के लिए कमर की भीगी पट्टी भी लगानी चाहिये। बीच-बीच मे शरीर शुद्ध करने के लिए एक घण्टा तक पूरे शरीर की भीगी चादर की लपेट लगानी चाहिए। साथ ही जिन कारणो और कुपथ्यो से हृदय-रोग होते हैं उनसे बचना चाहिए।

शुद्ध मधु हृदय-रोग के लिये बड़ा उपकारी है। इसे थोडा-थोडा धीरे-धीरे बढाकर एक औंस रोज नीबू के रस के साथ ठडे पानी मे लिया जा सकता है।

शोथ हो जाने पर और रोग की भयंकरता में नमक खाना त्याग देना चाहिये। सायंकाल का भोजन सम्भवत. सूर्य डूबने के पहले ही कर लेना चाहिये।

बढ़ा हुआ रक्तचाप

हमे जीवित रखने के लिए रक्त हमारे शरीर के प्रत्येक भाग मे धमनियो द्वारा निरतर पहुँचकर उसे पोषण देता रहता है। यह अत्यन्त आवश्यक कार्य हमारे हृदय द्वारा अनवरत सम्पन्न होता रहता है। वह पम्प की तरह सुकड़ता दबता रहता है और रक्त को रक्तवाहिनी धमनियो और नलिकाओ मे आगे बढता रहता है। हृदय की, दबाकर रक्त को धमनियो मे आगे बढाने की क्रिया को 'रक्त चाप', खून का दबाव या ब्लड प्रेशर (Blood pressure) कहते

है। यह एक सर्वथा स्वाभाविक शारीरिक क्रिया है जिसके बगैर हम जीवित नही रह सकते। यह रक्तचाप निम्नलिखित परिस्थितियो मे किसी भी व्यक्ति का स्वाभाविक रूप से बढ सकता है जिसे कोई रोक नही सकता—

(१) तबियत मे जरा-सा भी जोश और उमग आने पर।

(२) किसी प्रकार की जरा-सी भी घबडाहट या भय होने पर।

(३) खाना खा लेने के बाद,

(४) किसी प्रकार की खुशी होने पर, यहां तक कि अत्यधिक खुशी मे आदमी का रक्तचाप बढ कर उसकी धमनियो और रक्त नलिकाओ को तोड़-फोड़ देता है जिससे उसकी मौत तुरत हो जाती है।

(५) दिलचस्प दृश्य देखने से, तेज खुश्बू या बदबू से, सुरीली या सख्त आवाज सुनने से, (फौजी बैंड का जोशीला असर थके हुये सिपाहियो पर होने का यही रहस्य है।)

(६) क्रोध आदि अन्य मानसिक आवेगो के समय,

(७) स्त्री-प्रसग के समय,

(८) ठडे पानी से नहाने से, (ठडे पानी के प्रभाव से शरीर की रक्त-नलिकाए सिकुडती है जिसके दो परिणाम साथ साथ होते है। एक तो उससे शरीर के रोगटे खड़े हो जाते है, दूसरे रक्तचाप बढ जाता है।)

परन्तु जो लोग कहते है 'हमें ब्लड प्रेशर है' उनका असली मतलब यह होता है कि उनका ब्लड प्रेशर या रक्तचाप मामूली से अधिक है और स्थाई है या उसके दौरे आते है और जो वस्तुत. एक भयानक रोग का रूप धारण कर चुका होता है। यह अवस्था सोलहो आने अस्वाभाविक होती है जिसके परिणाम किसी भी समय भयङ्कर हो सकते है। जिनको बढ़े हुए रक्तचाप की बीमारी होती है उनके शरीर मे हृदय को कमजोर बना देने वाली यह क्रिया बराबर होतीरहती है, और यह बीमारी एकाएक नही होती अपितु बहुत धीरे-धीरे भयंकर रूप प्रगट करती है।

जब तक शरीर की धमनियो और रक्त-नलिकाओ की दशा स्वाभाविक रहती है, अर्थात् जब तक वे लचीली रहती है एव उनके छिद्र पूरे खुले रहते हैं तब तक रक्त को आगे बढाने के लिये हृदय को आवश्यकता से अधिक दबाव डालने की आवश्यकता नही पडती और रक्त अपनी स्वाभाविक चाल से हृदय से निकलकर धमनियो और रक्त-नलिकाओ द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग मे पहुँचता रहता है और उसे पोषण देता रहता है। पर जब धमनियो और रक्त-नलिकाओ के छिद्र निम्नलिखित कारणों से सकरे पड जाते है तो रक्त के समुचित सञ्चालन के लिये हृदय को अस्वाभाविक रूप से अधिक दबाव डालकर इन पतले छिद्र वाली एव तग रक्तवाहिनी नलिकाओ मे रक्त को ठेलना पड़ता है। इसके लिए हृदय को काफी परिश्रम करना पडता है जिससे वह कमजोर हो जाता है इसे ही High blood pre.surc या बढाया हुआ रक्त चाप कहते है।

बढ़े हुये रक्त चाप-रोग अथवा, दूसरे शब्दों मे, रक्त नलिकाओ का अपना लचीलापन खोने और उनके छिद्रों के तग होने का मात्र कारण हमारा कृत्रिम और अप्राकृतिक जीवन एवं अनियमित आहार-विहार है। खान-पान मे असंयम करने वालो के रक्ताधार विकृत और अस्वस्थ हो जाते है। क्योकि विकार और विष की अधिक मात्रा जिसे रक्त अनावश्यक भार के रूप मे शरीर के सब अंगो मे निरन्तर वहन करता है, धीरे धीरे रक्तवाहिनी, धमनी और रक्त नलिकाओ को कड़ा कर देती है, साथ ही उनके छिद्रो मे चिपक कर रक्त-सञ्चरण के मार्ग को संकुचित एव तग कर देती है। शरीर मे मल जितनी अधिक मात्रा मे एकत्र होगा उतनी ही अधिक मात्रा मे वह नलिकाओ की दीवारो पर चिपकेगा, फलत उतना ही अधिक उनका सकोचन होकर रक्त का मार्ग तग होगा, तथा उसी अनुपात से यह रोग तेज और मंद होगा : सक्षेप में, बढ़े हुये रक्तचाप के ये कारण है—

१-श्वेतसार (मैदा आदि) से बनी हुई चीजें, चीनी, मसाले, तेल, खटाई, तली-भुनी चीजें, प्रोटीन (मछली, मांस, अण्डा, रबडी मलाई, दाल आदि) काफी, चाय, तथा सिग्रेट आदि अधिक मात्रा मे सेवन करना।

२-बार बार या अधिक खाना।

३—मादक द्रव्यो का अधिक सेवन।

४—अपर्याप्त व्यायाम।

५—असयंम।

६–चिन्ता, क्रोध, भय, आदि मानसिक विकारों का बना रहना।

७–मूत्राशय के रोग, उपदंश, पुराना आंव, कब्ज तथा मस्तिष्क की रक्त शून्यता,

रक्तचाप अधिक है, या कम या कि साधारण, यह जानने के लिये स्फाइगनो मैनोमीटर-(Sphygnomano meter) यन्त्र का सहारा लेना ठीक रहता है। जब इस यन्त्र का आविष्कार नही हुआ था तब डाक्टर लोग कलाई के ऊपर की नाड़ी मे खून के चाल की जाच करके उसके दबाब का पता लगाया करते थे जो बहुत भ्रमात्मक होता था। एक स्वस्थ २० वर्ष के युवक का रक्तचाप साधारणतः १२० मिलीमीटर होता है। परीक्षण करके इस परिणाम पर पहुंचा गया है कि रक्त चाप का साधारण स्वरूप १२० से १३० मिलीमीटर तक मानना ठीक है। १३० मिलीमीटर से ऊपर वाले रक्त को अस्वाभाविक और बढ़ा हुआ रक्तचाप मानना चाहिए, तथा १२० मिलीमीटर से यदि कम रक्तचाप हो तो उसे घटे हुए या अल्प रक्तचाप का आरम्भ समझना चाहिए। ११० मिलीमीटर तक पंहुंचा रक्तचाप असाधारण रूप से घटा हुआ रक्तचाप कहलाता है।

शरीर के सारे हिस्सो में रक्तचाप का रूप एक सा नही होता। हृदय से अग विशेष की दूरी के अनुसार उसमे भिन्नता हुआ करती है। इसलिये यन्त्र द्वारा सही रक्तचाप जानने के लिये बायी भुजा की धमनी को, जो ऊपरी हिस्से में सामने की ओर रहती है, चुना गया है जहां रक्त का दवाव शरीर के और स्थानों से अधिक रहता है। क्योंकि यह स्थान हृदय के बहुत निकट होता है।

यन्त्र द्वारा बढ़े या घटे हुये रक्तचाप को जानने के अतिरिक्त रोगी मे कितने ही अन्य प्रकार के और लक्षण प्रकट होते है जिनसे इस रोग का पता आसानी से लग जाता है। चक्कर आना, सिरदर्द, किसी काम मे दिल न लगना, नीद न आना, श्वास कष्ट, हाजमा बिगड़ जाना, चिड़चिड़ापन, शिथिलता, कभी–कभी नाक से खून गिरना, सीने में दर्द, तथा जरा-सी मेहनत मे हांफने लगना आदि लक्षण यदि किसी व्यक्ति मे हो तो उसे निश्चय ही बढ़े हुये रक्तचाप का शिकार समझना चाहिये।

चिकित्सा

जिन कारणों से रक्तचाप बढने का रोग होता है उन कारणों से बचना इस रोग की प्रमुख चिकित्सा है। साथ ही स्वास्थ्य-रक्षा के साधारण नियमो के नित्य-प्रतिपालन करने की आदत डालनी चाहिये। भोजन के समय पानी न पीना, उसके दो घंटे बाद खूब पानी पीना, भोजन चबा-चबाकर करना, भोजन के बाद पेशाब करना तथा कम से कम ५० कदम टहलना, तत्पश्चात् थोड़ा आराम करना, पर नीद से तुरन्त न सोना, सुबह-शाम शक्ति अनुसार हवाखोरी के लिये टहलना, उषःपान करना, नीबू का रस मिला जल दिन मे प्रचुर मात्रा मे पीना, शाम का खाना सूर्यास्त के पहले खा लेना, भूख न होने पर न खाना, सूर्योदय के पहले ही शय्या त्याग देना, दिन मे न सोना, सोते समय मुंह को न ढंकना, शान्त और प्रसन्नचित रहना, अधिक न खाना, कब्ज न होने देना, सप्ताह में एक-दो दिन जल पर रहकर उपवास करना, तथा गहरी नीद लेना आदि स्वास्थ्य-रक्षा के साधारण नियम हैं।

रक्तचाप के रोग में औषधियों का प्रयोग बहुत ही हानिकारक साबित होता है। अतः इस रोग में भूल से भी औषधि प्रयोग नही करना चाहिये। लिवरपूल के हृदय अस्पताल के हृदय-रोग-विशेषज्ञ डा० आई० हैरिस ने अपना अनुभव लिखते हुये एक जगह लिखा है कि औषधि द्वारा रक्तचाप की चिकित्सा करना व्यर्थ ही नही है अपितु इससे यथेष्ट अपकार भी होता है।

इस रोग में अगर हो सके तो कुछ दिनो तक उपवास चलाया जाय; पर अगर यह सम्भव न हो तो ५ से १० दिनों तक फलाहार या कच्ची और उबली तरकारियो पर ही रहे। यदि तरकारियों पर रहा जाय तो जलपान मे गाजर, खीरे आदि का एक गिलास रस लिया जाय, दोपहर का भोजन केवल सलाद का हो, तथा शाम को केवल उबली तरकारियां खाई जायें। यदि फलाहार पर रहा जाय तो दिन में केवल तीन बार फल खाये जायें। एक समय केवल एक प्रकार का फल खाया जाय। इन दिनों रोज शाम को गुनगुने पानी का एनीमा भी लेना चाहिये

तरकारी या फल का उपर्युक्त क्रम चलाने के बाद से एक मास तक सुबह मेहन-स्नान और शाम को उदर-

स्नान करना चाहिये, तथा रात भर के लिये कमर की पट्टी भी लगानी चाहिये। सप्ताह मे एक वार एप्सम साल्ट बाथ और दो बार पैरो का गरम स्नान भी लेना चाहिये। अधिक तकलीफ हो तो ५ से ७ मिनट तक गरम जल मे स्नान करना चाहिये और उसके बाद पेडू और खोपडी पर गीली मिट्टी की पट्टी बाधनी चाहिए। हृदय मे धडकन आदि का रोग हो तो गरम जल मे स्नान नही करना चाहिए। जरूरत हो तो सप्ताह मे १-२ बार ४५ मिनट से १ घंटा तक शरीर की भीगी चादर की लपेट भी लगावे। उस वक्त सिर पर ठंडे पानी से भीगा गमछा और पैरो के पास गरम पानी से भरी बोतले जरुर रखनी चाहिए, तथा बाद को रोगी को एक शीतल घर्षण स्नान देना चाहिए।

त्वचा की क्रिया ठीक करने के लिए सुबह-शाम आधा आधा घंटा के लिए सारे वदन की मृदु मालिश करनी चाहिए। मालिश सूखी की जाय तो अति उत्तम। उसके बाद गीले कपड़े से समूचे वदन को रगड़ना भी जरूरी है।

तरकारी या फल का क्रम चलाने के वाद दो सप्ताह तक फल और दूध पर रहना चाहिए। उसके बाद ही अन्न का उपयोग धीरे-धीरे करना चाहिए। अर्थात् सुवह शाम फल-दूध या तरकारी दही लेना चाहिए और केवल दोपहर के खाने मे सप्राण अन्न के भोजन का उपयोग करना चाहिए।

लहसुन का उपयोग रक्तचाप के रोग मे वड़ा उपकारी होता है।

वीज निकाले हुए वढिया आवला, हर्रा और वहेड़ा को लेकर धूप मे अलग-अलग सुखाले, और खरल में कूट कर सफूफ करले। प्रत्येक सफूफ मे से एक-एक तोला रोज किसी मिट्टी के वर्तन मे लगभग आध सेर जल के साथ रात मे भिगो दे। सुवह छानकर पी जाय। इससे वढा हुआ रक्तचाप शान्त हो जाता है।

इधर सर्पगंधा जड़ी रक्तचाप के वढाने को रोकने के लिए बहुत अधिक प्रयुक्त होने लगी है जो निर्दोष नही है। लैन्सेट नामक पत्र मे प्रकाशित हुआ है कि इस दवा के [illegible] रोगी को अतिसार और दमा हो जाता है तथा निद्रा, बदहजमी, दिमाग का भारीपन, एव [illegible] पैदा करती है।

घटा हुआ रक्तचाप

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, १२० मिलीमीटर से नीचे उतरने पर अल्प या घटे हुए रक्तचाप का आरम्भ होता है, और अगर यह उतरकर ११० पर पहुंच जाय तो इस स्थिति को भयावह समझनी चाहिए। और उसका तुरन्त इलाज करना चाहिए। कभी-कभी तो इस रोग में रक्तचाप घटकर ९० तक आ जाता है। घटा हुआ रक्तचाप बढ़े हुए रक्तचाप की तरह ही एक रोग है जिससे स्वास्थ्य और जीवन के लिए हर समय खतरा रहता है।

इस रोग मे धमनियो और रक्त-नलिकाओं की दीवारे ढीली होकर फैल जाती है जिससे उनके छिद्र आवश्यकता से अधिक कुशादा हो जाते हैं, जिसके कारण भी वे ही होते है जो बढ़े हुये रक्तचाप के कारण है अर्थात् अनियमित आहार-विहार और रक्ताधार मे बहुत अधिक विषाक्त मल का एकत्र हो जाना।

प्राय. देखा गया है कि घटे हुये रक्तचाप का रोगी क्षीणता सम्बन्धी किसी न किसी रोग का शिकार अवश्य होता है। अत. उसके उस विशेष रोग का ध्यान रखते हुए अल्प रक्तचाप के उपचार का रूप निश्चित करना चाहिए।

इस रोग मे कुछ दिनों तक उपवास कर लेने के बाद तीन सप्ताह तक बढ़े हुए रक्तचाप के लिए बताये गये नियमो की तरह ही फलाहार करना चाहिए। उसके बाद सुवह को उदर स्नान और शाम को मेहन स्नान करना चाहिए तथा कब्ज टूटने तक एनिमा लेते रहना चाहिए। फिर फल और दूध पर कुछ दिनो तक रहकर धीरे-धीरे सादे भोजन पर आ जाना चाहिए। इस रोग मे भी लहसुन का सेवन विशेष रूप से उपयोगी पाया गया है।

इस रोग मे परहेज और पथ्य वे ही रखने चाहिए जो वढ़े हुये रक्तचाप के लिये ऊपर वताये गये हैं।

विशेष उपचार के लिये सारे बदन की नित मालिश, हल्का व्यायाम या टहलना, मामूली गरम पानी से स्नान, विश्राम एव शिथिलीकरण, मोजो आदि से पैरो को गरम रखना तथा रात को सोने से पहले गरम पानी मे नीबू का रस निचोड़ करपीना आदि उत्तम हैं।

राजयक्ष्मा

राजयक्ष्मा को संस्कृत मे क्षय, यक्ष्मा, यक्ष्मी तथा शोष भी कहते है। इस रोग के आगे-पीछे तथा साथ-साथ अनेक अन्य रोग भी चलते है, इसलिये इसको राजरोग भी कहते है। हिकमत मे इस रोग का नाम तपेदिक या सिल है। एलोपैथी मे इसे 'कंजमशन', 'थाइसिस' 'तथा 'ट्यूबरक्लोसिस कहा जाता है। इस रोग मे शरीर का दिनोंदिन क्षय होता है अर्थात् शरीर की धातुओ (रस, रक्त आदि) का नाश होता है, इसलिये इसे क्षय या शोष कहते है। इसको टी० बी० या ट्यूबर क्लोसिस इसलिये कहते है क्योंकि इस रोग की उत्पत्ति का कारण एक 'ट्यूबरकल' नामक कीटाणु (Tubercle Bacillus) माना जाता है जो फेफड़ो आदि मे उत्पन्न होकर उन्हे धीरे-धीरे खाकर नष्ट कर देता है। यह कीटाणु फेफड़ों, त्वचा, जोड़ो, कण्ठ, मेरुदण्ड, अन्तड़ियो एवं हड्डियों आदि शरीर के सभी अवयवो पर समान रूप से आक्रमण करने की क्षमता रखता है।

क्षय रोग के तीन भेद होते है—फुफ्फुसीय क्षय, पेट का क्षय तथा अस्थि क्षय।

लक्षण

फुफ्फुसीय क्षय सर्व साधारण को जल्दी पहचान मे नही आता और शरीर के अन्दर बहुत दिनो तक छिपा रहकर बढ़ता रहता है। जब यह विकराल रूप धारण कर लेता है तब कही जाकर हमे पता लगता है कि यह तो क्षय रोग है। यही कारण है जो इस रोग से पीड़ित प्राणी बहुत कम बचते है। आजकल तो इस रोग का आक्रमण बूढ़े, जवान, बालक, स्त्री सब पर समान रूप से हो रहा है। भिन्न-भिन्न रोगियों म इस रोग के भिन्न-भिन्न लक्षण हुआ करते है। किसी को सास की बीमारी होती है, किसी को सिर मे दर्द की और किसी का पाचन बिगड़ा होता है। बहुतो की हड्डी गलने लगती है, कन्धो मे पीड़ा होती है अथवा कान या आख की कोई बीमारी खड़ी होकर असली रोग पर पर्दा डाले रहती है। इस रोग मे साधारणत. रोगी की नाड़ी तेज और कभी-कभी असमान गति से चलती है। पेचिश की शिकायत बहुधा बनी रहती है। रोगी कभी-कभी उल्टी भी करता है। उसकी जबान लाल हो जाती है। तापक्रम बढा रहता है और गन्दा पाखाना हुआ करता है। क्षय से रोगी व अच्छी नीद नही आती तथा चलते और सोते सम उसका मुंह खुला रहता है, उसकी जीवनी-शक्ति क्षी हो जाती है जिससे वह दुर्बल हो जाता है। चेहरा पी पड़ जाता है। कितना ही बलदायक आहार वह क्यो ले, शरीर पर मास नही चढता, कपाल उभर आता और चेहरे पर लाली और चमक दिखाई देती है। रोगी को समय-समय पर अनायास पसीना आजा करता है। क्षय के रोगी के फेफड़ों का चित्र एक्सरे द्वा लेने पर फेफड़े रोग से प्रभावित दिखाई देते है, पर वार इससे धोका भी हो जाता हैं।

क्षय रोग से पीड़ित बच्चे चिड़चिड़े हो जाते हैं। तीव्र प्रकाश देखना पसन्द नही करते और न कड़ी आव ही सहन कर सकते है। वे नीद में बड़बडाया करते और दात किटकिटाते हैं। इस रोग मे शरीर का व घट जाता है, भूख नही लगती, खासते समय सीने पीड़ा होती है और खांसी विशेषतया सवेरे सोकर उ पर तथा भोजन करने के बाद आती है। तीसरे प्रहर धीमा-धीमा ज्वर हो आता है। कफ के साथ रक्त गिरता है। तबियत उदास रहती है। भोजन मे स्वाद नही आता तथा आवाज बदल जाती है। क्षय रोग के रोगी के थूक का परीक्षण करने पर उसमें क्षय के कीटाणु बहुतायत से मिलते है।

क्षय-रोग के तीन दर्जे माने गये हैं—प्रारम्भिक, माध्यमिक, तथा अंतिम। एक प्रकार का और यक्ष्मा होता है, जिसे उद्दामयक्ष्मा (Galloping Pthysis) कहते है, जिसमे रोगी की हालत तेजी से बिगड़ने लगती है और वह बहुत जल्दी मर जाता है।

आरम्भिक अवस्था मे क्षय साध्य कहा जाता है। इसमे विशेषकर प्रातः काल खासी उठती है। खासी के साथ कभी कफ आता है, कभी नही आता, और कभी कफ मे रक्त के छींटे दिखाई देते है। शारीरिक शक्ति का ह्रास होने लगता है। भूख बन्द हो जाती है। वजन घटने लगता है। थोड़ा भी परिश्रम करने पर रोगी थक जाता है और उसके शरीर से पसीना चलने लगता है। रात को अनायास पसीना आता है। तीसरे पहर हलका ज्वर चढ़ता है और प्रात काल कभी कभी 'नार्मल' से भी नीचे चला जाता है।

माध्यमिक अवस्था में यक्ष्मा के जीवाणु रोगी के फेफड़े मे गर्त बना देते है। शरीर का रक्त और मास क्षीण होने लगता है। दोपहर के बाद जब ज्वर चढ़ता है तो जबडे फूल जाते हैं और मुंह लाल हो जाता है। रात में पसीना अधिक आने लगता है। पेट की बीमारी बढ़ जाती है। सूखी खासी अधिक उठती है। कफ का रङ्ग सफेद झागदार से बदलकर नीला हो जाता है और उसके साथ-साथ रक्त भी गिरना आरम्भ हो जाता है। कै होती है। शरीर का वजन काफी घट जाता है। कण्ठ बढ जाता है। मुंह चपटा हो जाता है। मुंह पर सूजन आ जाती है। तथा बगलो मे कभी कभी सूइया-सी चुभती प्रतीत होती है। यह दशा कष्ट साध्य होती है।

अन्तिम अवस्था मे ऊपर की सभी तकलीफे बढ़ जाती हैं। रोगी के दोनो फेफड़े खराब हो जाते है। कण्ठ विकृत हो जाता है। दस्त लग जाते हैं। नाक पतली हो जाती है। नथुनो के भीतर का भाग काला हो जाता है। कनपटिया अन्दर धस जाती हैं। घुटनो के निचले भाग मे दर्द होता है। पैरो की एड़ियो का ऊपरी भाग भी सूज जाता है। तथा रक्त का वमन होने लगता है। पर इस अवस्था मे एक विचित्र बात यह होती है कि रोगी की भूख खुल जाती है और वह सोचने लगता है कि वह अच्छा हो रहा है। लेकिन इस अवस्था को प्राप्त रोगी बहुत कम बचते है।

पेट के क्षय की पहचान भी बड़ी कठिन होती है। इसमे पेट के अन्दर क्षय की गाठे (Glands) पड़ जाती है। यह रोग अपनी बढी हुई अवस्था मे सग्रहणी कहलाता है, जिसमें रोगी को दस्त आया करते हैं।

हड्डी के क्षय मे शरीर मे जहा-तहा फोड़े और जख्म हो जाते है जो अच्छा होने का नाम नही देते। इस प्रकार के क्षय की पहिचान भी आसान है।

कारण

क्षय-रोग के होने के पूर्व, खान-पान और रहन-सहन की गलतियो से, रोगी का शरीर विजातीय द्रव्य (मल) से भर जाता है जिससे उसका शरीर धीरे-धीरे तत्वहीन होने लगता है। कभी कभी यह रोग किसी दूसरे रोग की चिकित्सा मे दी गयी दवाओ के दुष्परिणामस्वरूप भी होता है। [illegible] इस ज्वर के बाद जो दवाइयो ने दबा दिया जाता है। जिन बच्चो का सिर बड़ा होता है, या जिन्हे गण्डमाला का रोग होता है उनमे क्षय रोग के कीटाणु या तो उन्हे अपनी माता-पिता से मिलते हैं, या गलत तरीके के रहन-सहन, अथवा उनके आरम्भिक जीवन मे विषैली औषधियो के प्रयोग से उत्पन्न होते है।

जिस प्रकार एक स्वस्थ व्यक्ति के शरीर मे, खाया हुआ पदार्थ, शरीर की अग्नि और धातुओ की गर्मी से पककर शरीर मे लगता है, उस प्रकार एक क्षय-रोग के रोगी के शरीर मे, खाया द्रव्य, उसके शरीर की अग्नि तथा शरीर स्थित धातुओ की गर्मी से नही पकता। अपितु उसका खाया हुआ खाद्य पदार्थ उसके कोठे मे जाता जरूर है, लेकिन उससे बजाय रस बनने के मल ही अधिक बनता है। इसीलिए उसके शरीर मे रक्तादि धातुओ का पोषण न होने के कारण, रक्त, मांस तथा वीर्य आदि सभी आवश्यक तत्वो की एकाएक कमी होनी शुरू हो जाती है और तब वह केवल मल वा विष्टा के सहारे जीने लगता है। उस वक्त उसके जीवन का सहारा मात्र मल होता है जिसके टूटते ही उसका अन्त हो जाता है।

तपेदिक या क्षय छूत का रोग है। छूत से यह बड़ी शीघ्रता से फैलता है। इस रोग के कीटाणु होते है जो रोग के फैलने में मदद करते है। क्षय के कीटाणु की लम्बाई १/४००० इञ्च से १/१०००० इञ्च तक और मोटाई १/१००००० इञ्च के लगभग होती है। ये कीटाणु लम्बे, पतले और छडी की शकल के होते है। इनके ऊपर एक आवरण चढा होता है जो चर्बी और मोम का बना होता है। रोगी की खासी के साथ २४ घटे मे दो करोड़ या इससे भी अधिक जीवाणुओ का शरीर से बाहर निकलना साधारण-सी बात है। सूर्य के प्रकाश से, उबालने से तथा लाइसोल के घोल मे रखने से ये शीघ्र ही नष्ट हो जाते है। सीड़न, सड़न, धूल, गधी हवा, तथा अ घेरी जगहे इनके निवास स्थान हैं और मल भोजन। अधिक गर्मी, अधिक प्रकाश, स्वच्छ स्थान, स्वस्थ शरीर, एवं शुद्ध रक्त के सम्पर्क मे आते ही इनका खातमा हो जाता है। ये मल से भरे शरीरो पर ही चोट कर सकते है और करते हैं। निर्मल शरीर में इनकी दाल नही गलती। इसीलिए यह आवश्यक नही है कि जब क्षय के कीटाणु किसी व्यक्ति के शरीर में पहुंच जायें तो उसे क्षय रोग हो ही। सिद्धान्त भी यही है कि

जहां गंदगी होती है वही कीड़े उत्पन्न होकर पनपने और वृद्धि की प्राप्त होते है। परन्तु जहाँ गदगी नही वहा कीड़ो का गुजर कहां ? वहां तो उनकी मौत हो जाती है। अतः किसी रोग के रोगाणु, वस्तुतः उस रोग के कारण नही होते, अपितु वह रोग विशेष ही उस रोग के रोगाणुओ का कारण होता है। दूसरे शब्दों में इसे इस तरह कहेंगे कि रोगाणु रोग के परिणाम है।

बचाव—यह जानना, कि किसी व्यक्ति विशेष के शरीर में विजातीय द्रव्य का भार इतना है या नही कि जिससे क्षय के कीटाणुओ द्वारा उसके शरीर पर आक्रमण होकर उसे क्षय हो या न हो ? यदि असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। इसलिये यह अक्लमन्दी की बात होगी कि जहां तक सम्भव हो क्षय के रोगी के सम्पर्क से अपने को बचाये रहा जाय। उसके थूक-खखार को रोज जला दिया जाया करे, उसके बर्तन, कपड़े आदि को दूसरा कोई इस्तेमाल न करे, उसके सभी कपड़े रोज धूप मे सुखाये जाये तथा उसे बस्ती से दूर अलग किसी बगीचे आदि मे बने कमरे मे रखा जाय, ताकि उसके शरीर के क्षय के कीटाणु किसी दूसरे को हानि न पहुंचा सके। जो डाक्टर और तीमारदार ऐसे रोगी की दवा-दारू, सेवा, सुश्रूषा करे उन्हे चाहिये कि वे स्वास्थ्य के साधारण नियमो को तो पालन करे ही साथ ही साथ प्राकृतिक उपायो से अपने शरीर को विशुद्ध एव विजातीय द्रव्य से मुक्त जरूर करले, अन्यथा क्षय के कीटाणु उनके मलपूर्ण शरीरों मे प्रवेश कर किसी भी समय उन्हे रोगी बना दे सकते है।

चिकित्सा

भारतवर्ष मे इस समय लगभग सवा सौ क्षय के अस्पताल कार्य कर रहे है, जिनमे लगभग १०००० क्षय के रोगी रह रहे है। उनके अतिरिक्त २००० से ऊपर क्षय के रोगियो के रहने के लिए अन्य अस्पतालो मे भी प्रवन्ध है। इन सभी अस्पतालो मे औषधियों के योग से क्षय को दूर करने का प्रयास किया जाता है जिससे Sir William oslet M. D के शब्दों मे, लाभ के बदले हानि ही अधिक होती है। क्षय के अस्पतालो मे एक-एक करके कितनी ही औषधियो का प्रयोग हुआ जो बाद को निरर्थक साबित हुई और छोड़ दी गई। धीरे-धीरे क्षय रोग निवारण की विशेष रीतियो का आविष्कार हुआ, फुपफुसावरण-गर्त मे वायु प्रवेश कराकर रोगी को रोगमुक्त करने की रीति, 'कौक' की 'ट्यूबर्कुलिन' वाली चिकित्सा का आविष्कार तथा प्रोफेसर मौलगार्ड की स्वर्ण से तैयार की हुई 'सैनोक्राइसिन' नामक वस्तु आदि। किन्तु इनसे भी क्षय को परास्त करने की चेष्टा असफल हुई। आज भी अनेकों वैज्ञानिक क्षय के लिये किसी विशेष औषधि के अनुसधान मे व्यस्त है। तात्पर्य यह कि औषधि चिकित्सको के पास क्षय की कोई रामबाण औषधि न तो कभी थी और न आज है।

प्राकृतिक चिकित्सकों का अनुभव इस बात का साक्षी है कि क्षय के रोगी प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ९०% ठीक हो सकते है। तीसरे 'स्टेज' पर पहुंचकर भी कितने ही रोगी ठीक हो गये है। प्राकृतिक चिकित्सा से उन्ही रोगियो के चगा होने मे देर और कठिनाई होती है जिनकी जीवनी-शक्ति औषधि चिकित्सको द्वारा अत्यधिक विषैली औषधियो, इन्जेक्शनो तथा भस्मो आदि द्वारा पूर्णत. या अशत. मार दी गई होती है।

क्षय-रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा चलाने के प्रथम जिन कारणो से क्षय-रोग के होने की सम्भावना रहती है उन्हे सर्वथा त्याग देना चाहिये।

रोगी को चाहे जैसे हो, दिन-रात शुद्ध और मुक्त वायु का ही सेवन करना चाहिये। कारण, वायु, प्रकाश तथा धूप मे क्षय-रोग के भगाने की यथेष्ट शक्ति होती है। पूरे नगे शरीर पर जितनी देर हो सके स्वच्छ वायु और प्रकाश लगने देना चाहिये। रोगी का वास ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहा सोते-जागते हर समय उसे साफ हवा और रोशनी पर्याप्त मात्रा मे मिलती रहे। इस काम के लिये रोगी को नदी मे नाव पर, या पहाड पर रखना ठीक रहता है। उन्मुक्त वायु के सतत सेवन से रोगी को भूख लगती है, नींद अच्छी आती है और उसका विषाक्त रक्त शुद्ध होता है। जाडे की रातो मे भी रोगी को घर के बरामदे मे ही रजाई आदि ओढकर सोना चाहिये सोते समय मुह को कदापि ढंकना नही चाहिये। रोगी के पास दीपक, लालटेन या आग न जलने देना चाहिये। इससे वहा की वायु मे ओषजन की कमी पड़ जाती है।

फुपफुसीय यक्ष्मा के लिये चीड के दरख्तों की हवा

जिसमें तारपीन का योग होता है विशेष रूप से लाभदायक है। ऐसी हवा साफ, स्वच्छ और ताजी होती है तथा उसमें क्षय के कीटाणुओं को मार डालने की आश्चर्यजनक शक्ति होती है। इसीलिये देवदार या चीड के जगल वाले पहाडो पर क्षय के रोगियो को रखना विशेषरूप से फलदायक होता है।

निम्नलिखित हवन की सामग्री मगाकर और कूट-छाटकर उसमे शुद्ध घी इतना मिलावे कि वह खूब तर हो जाय और उसका लड्डू बन सके। इसको किसी वर्तन मे ढककर सुरक्षित रख छोडे। रोज सुबह-शाम थोड़ी सी यह मिश्रित सामग्री लेकर रोगी की चारपाई के पास नीम की लकडी की आग मे हवन करे। ऐसा करने से रोगी को अत्यधिक लाभ होगा। सामग्री की चीजे ये हैं :—

मण्डूकपर्णी, ब्राह्मी, इन्द्रायण की जड़, शतावरी, असगंध, विधारा, शालपर्णी, मकोय, अडूसा, गुलाब के फूल, तगर, रास्ना, वशलोचन, जायफल, क्षीरकाकोली, जटामासी, पण्डरी, गोखुर, पिस्ता, बादाम, मुनक्का, लौंग, हर्रबड़ी गुठली सहित, आवला, पुनर्नवा, नग्रेन्द्र-वामड़ी, चीड़ का बुरादा, खूबकला। ये सब एक-एक भाग, गिलोय और गूगल चार-चार भाग, केसर, शहद और देशी कपूर चौथाई-चौथाई भाग तथा देशी शक्कर १० भाग।

क्षय के रोगी को काफी आराम की जरूरत होती है यह आराम शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार का होना चाहिए। चिन्ता, क्रोध, भय आदि मानसिक उद्वेग रोगी के रोग को वढा देते है। दुर्वल रोगी को उपवास नही करना चाहिए। पूर्ण विश्राम मे एक तरफ तो जीवनीशक्ति कम व्यय होती है दूसरी तरफ वह सञ्चय होती रहती है जो रोग के अधिकांश उपसर्गों का शमन करने में काम आती है। डाक्टर कुलरंजन मुखोपाध्याय के विचार से कुछ सप्ताह तक यदि रोगी को चारपाई पर पड़ा रख कर पूरा पूरा आराम दिया जाय तो बहुत वार केवल [illegible] करने से ही रोगी की दुर्बलता, मन्दाग्नि, अजीर्ण, [illegible], [illegible] आदि मे कमी हो जाती है और कभी-कभी [illegible] [illegible] ही दूर हो जाते हैं। इस तरह विश्राम करने से रोगी का वजन भी [illegible] रूप से बढने [illegible] है इसलिये जब तक रोगी का ज्वर न चला जाय, तब तक उसको शय्या पर लेटे रहकर पूर्ण विश्राम करना चाहिए। रोगी जितना विश्राम करेगा, उस का रोग उतनी ही जल्दी भागेगा।

क्षय के रोग मे गाय के दूध से बकरी के दूध का सेवन विशेष लाभकारी है। भारत के पुराने वैज्ञानिकों एवं आयुर्वेदिक शास्त्रियो ने बकरी और बकरी के दूध को तपेदिक की मात्र औषधि लिखा है। न केवल यह कि बकरी के दूध को तपेदिक की दवा बतलाया है, अपितु वैद्यक मे तो यहा तक लिखा हुआ है कि बकरी का दूध, रोगी को उसके भोजन के स्थान पर देना चाहिए। यदि रोगी बकरियो के झुंड मे रखा जाय तो अत्यधिक लाभ होगा, यहां तक कि रोगी के जान के लाले पड़ गये हो तो भी वह बच जायगा। शायद इसीलिये आजकल भी क्षय के रोगी की चारपाई से बकरी बाधने की चलन है। बकरी चराने वाले एवं बकरियो के झुंड रखने वाले गड़रिये क्षय के शिकार बहुत कम होते देखे जाते हैं। हाल ही मे आयुर्वेद शास्त्र की इस सचाई की जाच करने के लिए अमेरिका के एक तपेदिक चिकित्सा-विशेषज्ञ ने एक सिनेटोरियम खोलकर लगभग २००० बकरियों को रखा। इस सिनेटोरियम मे पौष्टिक खाद्य के अतिरिक्त रोगियो को दवा की जगह केवल बकरी का दूध दिया जाता है। फलस्वरूप उस चिकित्सक को लोगो को बताना पड़ा कि दवाओ द्वारा जहा उसे एक प्रतिशत भी सफलता प्राप्त न होती थी वहां अब इस विधि से इच्छित फल अनायास ही प्राप्त हो जाता है, मानो बकरियों मे रोगियो को रखने से उन्हे आशातीत लाभ होना एक साधारण सी बात है। इस डाक्टर ने लिखा है कि बकरियो मे रहन सहन रखने से, बकरियो की सास व महक मे जो एमोनिया गैस निकलती है, वह रोगियो के लिए रामबाण का काम करती है। जर्मनी आदि पश्चिमी देशो में बकरी का दूध प्राप्त करने के लिए विशेष प्रवन्ध किए जारहे हैं और अस्पतालो मे रोगियो को बकरी का दूध ही पीने को दिया जाता है। यह सच है कि भारत मे बकरियों की अधिकता थी और लोग अधिक से अधिक बकरियां पालते थे तो क्षय का नाम भी सुनने मे न आता था। लेकिन अब तो बकरियां केवल मास के लिए पाली जाती है और शीघ्र वध कर डाली जाती है। पाश्चात डाक्टरों

और वैज्ञानिकों ने अन्वेषण करके यह भी सिद्ध किया है कि बकरी का दूध, मनुष्य के दूध से भी अधिक बलवर्धक तथा हल्का होता है, और जहां अन्य दूध से बच्चों को अपच हो जाता है, वहां बकरी के दूध के सेवन से वह अपच दूर हो जाता है। कारण, गाय आदि के दूध मे चिकनाहट की मात्रा अधिक, तथा बकरी के दूध मे कम होती है। बकरी के दूध में खाद्योज (Vitamine) भी अधिक होते हैं जो मानव-स्वास्थ्य के लिए नितान्त आवश्यक है। बकरी को कभी क्षय का रोग नही होता जब कि गाय को यह बहुधा होते देखा गया है। यही कारण है जो बकरियों के दूध मे क्षय के कीटाणु कभी नही पाये जाते और इसीलिए बकरी का दूध क्षय रोग की मुख्य औषधि है।

क्षय रोग के आरम्भ में जब सुस्ती मालूम हो तीसरे पहर कुछ ज्वर हो जाय, भूख जाती रहे और शरीर दुबला होने लगे तो इधर-उधर न भटककर तुरत प्राकृतिक उपचार शुरू कर देना चाहिये। हर रोज शौच के बाद एनिमा-प्रयोग, सुबह और शाम फल दूध, तीसरे पहर दूध, और दोपहर को रोटी और उबली भाजी का भोजन। खुली हवा में रहना और शक्ति भर टहलना बाकी समय पूर्ण आराम। आरम्भिक टी० बी० तो इतने ही उपचार से केवल ३-४ मास में ही अवश्य ठीक हो जाता है।

पुराने रोग के लिये नीचे एक चिकित्सा चार्ट दिया जाता है जिसमें मौसम के अनुसार एवं रोगी के बलाबल को ध्यान में रखते हुए फेर बदल कर लेना चाहिए और काम मे लाना चाहिए—

६ बजे सुबह—ईश प््रार्थना, नित्य क्रिया के बाद गहरी सांस की कसरत, एनिमा, आराम। एनिमा ७ रोज फिर प्रति दूसरे दिन, उसके बाद प्रति चौथे दिन।

७ बजे सुबह—मेहन स्नान और गर्मी लाना (टहल कर, व्यायाम करके या रजाई आदि ओढकर)।

८ बजे सुबह—एक पाव बकरी का ताजा दूध (कच्चा) और सन्तरे का नाश्ता या दूध-किशमिश।

९ बजे सुबह—गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल आधी छटांक पीना।

९ से १०॥ बजे तक—हवा और रोशनी मे लेटकर आराम। कभी-कभी मालिश। उसी वक्त १० मिनट से ४५ मिनट तक नीला प्रकाश छाती पर डाले।

१० बजकर ३१ मिनट पर—घर्षण स्नान और साधारण जल स्नान या स्पञ्ज बाथ रगड़-रगड़ कर। ईश प्रार्थना।

११ बजे दिन—फल दूध या रोटी भाजी। कभी-कभी लाल भात और भाजी। नमक बिलकुल न हो या कम, खाने के समय जल पान बिलकुल नही या कम।

१ बजे दिन—प्यास भर जल-पान।

२ बजे दिन—गहरी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल आधी छटांक पीना।

२ बजे से ३ बजे शाम तक—हवा और रोशनी मे लेट कर आराम, मनोविनोद, गाना बजाना। उसी समय रीढ़ की मालिश पांच मिनट तक।

३ बजे शाम—पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी। शक्ति भर थोड़ा टहलना।

४ बजकर ३० मिनट शाम को—सन्तरे का रस या मठा या बकरी के थोडे दूध के साथ आधा टमाटर या सेव।

६ बजे शाम—कागजी नीबू का रस मिला हुआ पानी पीना।

६ बजकर ३० मिनट पर—आधी छोटी चम्मच शहद, प्याज या लहसुन के चार छः बूंद रस के साथ चाटना (यह प्रयोग दिन मे दो-तीन बार तक किया जा सकता है।)

६ बजकर ४५ मिनट पर—उदर-स्नान।

७ बजे शाम को—गहरी नीली बोतल का जल पीना।

८ बजकर ३० मिनट पर शाम को—थोडा बकरी का कच्चा दूध और किशमिश या पकी तरकारी का सूप या सब्जी-रोटी।

९ बजे रात तक—मनोविनोद, हसना, गाना-बजाना। तत्पश्चात् शयन।

अनुभव से जाना गया है कि क्षय के रोगियों को फल और बकरी का दूध बडा लाभ करता है, विशेषकर आम के दिनो मे आम का सेवन और दूध पीना। मीठे बीज आम का १५-२० तोला रस, किसी पत्थर या चांदी के कटोरे मे निचोड़ कर उसमे छोटी मक्खियों का ५ तोला शहद मिलाले और रोगी को रोज सुबह-शाम २१ दिन

तक पिलावे। साथ मे पानी की जगह बकरी का धारोष्ण कच्चा दूध दिन रात मे दो तीन बार दें तो बड़ा लाभ करता है। अच्छा तो यह हो कि चिकित्सा आरम्भ करने के प्रथम रोगी को एक सप्ताह तक केवल फलों पर रखे। उसे दिन मे तीन बार आम, अंगूर एवं सन्तरे आदि फल खाने चाहिए और साथ मे बकरी का कच्चा दूध भी थोड़ा लेना चाहिए। रोगी को अपनी रुचि के अनुसार दूध और फलो का अनुपात स्थिर करना चाहिए। फल और दूध की यह खुराक एक से आठ सप्ताह तक जारी रखी जा सकती है। इसके बाद सादा भोजन धीरे-धीरे आरम्भ किया जा सकता है। मगर उस समय भी बीच-बीच में फल और दूध लेते रहना चाहिए। दूध और फल की यह मिश्रित खुराक रोगी को लगभग दो मास बाद पुनः-पुनः लेना चाहिए।

दमा।

दमा (Asthma) एक महा दुखदायी रोग है और बड़ी मुश्किल से जाता है। इसीलिए 'दमा दम के साथ' कहावत प्रचलित है मगर प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा यह रोग भी अन्य हठी रोगो की भांति आसानी से दूर किया जा सकता है। इसमे सास लेने वाली नलियो के सकुचित होने और उनमें कफ के जकड़ जाने से रोगी सास कठिनता से ले पाता है और जब सीने की असख्य ग्रन्थियां कफ से मढ़ सी जाती हैं तो दमे का दौरा होता है जो आधा घण्टा या इससे अधिक भी रह सकता है। जब कफ ढीला पड़कर निकलने लगता है तो दमे का दौरा कम होने लगता है। भयानक कब्ज होने से ही सीने की ग्रन्थियों मे कफ जकडता है। कारण, कब्ज से दूषित रक्त बनता है और दूषित रक्त से शरीर मे कफ की उत्पत्ति होती है। रोग का आक्रमण रात्रि मे या सूर्योदय के कुछ पहले विशेषरूप से होता है उस समय सीने मे एक प्रकार का शब्द होता है शरीर लाल या नीला पड़ जाता है और ठंडा हो जाता है तथा श्वास-कष्ट से पसीना छूटता है।

दमे का दौरा जाड़ा, बरसात तथा गर्मी—कभी भी हो सकता है। रोग पुराना हो जाने पर सर्दी, खांसी [illegible], गरिष्ट और अधिक भोजन आदि जनित सामान्य [illegible] से ही दौरा आरम्भ हो जाता है। दमा कई प्रकार का होता है और बालक, युवा और बूढ़े सबको हो सकता है। दमा के निम्नलिखित छ मुख्य कारण है जो शरीर के दूषित होने से होने हैं—

(१) फेफड़ो की दुर्बलता से।
(२) हृदय की दुर्बलता से।
(३) गुर्दों की दुर्बलता से।
(४) आंतों की दुर्बलता से।
(५) स्नायु-मण्डल की दुर्बलता से।
(६) नाकडा रोग के फलस्वरूप।

दमा की रोकथाम

रोग का आरम्भ होते ही नमक और सफेद चीनी छोड़ देना चाहिये और दूध, फल, सब्जी, गेहूं का दलिया या बिना छने आटे की रोटी खाकर रहना चाहिए। रोज प्रातःकाल रीढ की हड्डी को सीधे रखकर खुली और स्वच्छ वायु में ७-८ बार गहरी सासें लेना और निकालना चाहिए और कुछ दूर प्रातःकाल टहलना चाहिए। पेट को सदा साफ रखना चाहिए और कब्ज कभी न होने देना चाहिए। चिन्ता आदि मानसिक रोगों को पास न फटकने देना चाहिए। जलपान के वक्त केवल गरम पानी मे कागजी लेमू निचोडकर पीना चाहिए। इस पानी मे इच्छानुसार शुद्ध शहद भी मिलाया जा सकता है। सूर्यास्त के पहले ही फल और दूध का हल्का भोजन करना चाहिए। भोजन करते वक्त पानी न पीना चाहिए बल्कि उसके दो घटे बाद प्यास भर पानी पीना चाहिए। धूए और गंदी हवा से बचना चाहिए। तथा नित्य प्रातःकाल कुछ देर तक धूप सेवन करना चाहिए और उसी वक्त छाती पर कड़ुए तेल की मालिश भी करनी चाहिए।

साधारण उपचार के लिए प्रति रविवार को उपवास करना चाहिए और शाम को प्रतिदिन एक घटे के लिए सीने पर गीले कपडे की पट्टी रखनी चाहिए। बस इतना ही करने से साधारण दमे की बीमारी दूर हो जायगी और रोग अपनी जड न जमाने पावेगा।

दौरा होने पर उपचार

दौरे की शाति तक उपवास। साथ मे गरम पानी में नीबू का रस निचोड़कर दिन में कई बार दे। पहले पैरो का एक गरम नहान देकर गर्दन के चारो ओर खूब ठडे जल से भीगा गमछा लपेटना चाहिए। साथ ही पूरे पेट, छाती और पीठ को सेंकना चाहिए। दोनो वक्त पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और उसके बाद एनिमा गुनगुने जल का। हर १०

और वैज्ञानिकों ने अन्वेषण करके यह भी सिद्ध किया है कि बकरी का दूध, मनुष्य के दूध से भी अधिक वृद्धकारक तथा हल्का होता है, और जहां अन्य दूध से बच्चों को अपच हो जाता है, वहा बकरी के दूध के सेवन से वह अपच दूर हो जाता है। कारण, गाय आदि के दूध मे चिकनाहट की मात्रा अधिक, तथा बकरी के दूध मे कम होती है। बकरी के दूध में खाद्योज (Vitamine) भी अधिक होते हैं जो मानव-स्वास्थ्य के लिए नितान्त आवश्यक हैं। बकरी को कभी क्षय का रोग नही होता जब कि गाय को यह बहुधा होते देखा गया है। यही कारण है जो बकरियों के दूध मे क्षय के कीटाणु कभी नही पाये जाते और इसीलिए बकरी का दूध क्षय रोग की मुख्य औषधि है।

क्षय रोग के आरम्भ में जब सुस्ती मालूम हो तीसरे पहर कुछ ज्वर हो जाय, भूख जाती रहे, और शरीर दुबला होने लगे तो इधर-उधर न भटककर तुरत प्राकृतिक उपचार शुरू कर देना चाहिये। हर रोज शौच के बाद एनिमा-प्रयोग, सुबह और शाम फल दूध, तीसरे पहर दूध, और दोपहर को रोटी और उबली भाजी का भोजन। खुली हवा में रहना और शक्ति भर टहलना बाकी समय पूर्ण आराम। आरम्भिक टी० बी० तो इतने ही उपचार से केवल ३-४ मास में ही अवश्य ठीक हो जाता है।

पुराने रोग के लिये नीचे एक चिकित्सा चार्ट दिया जाता है जिसमें मौसम के अनुसार एवं रोगी के बलाबल को ध्यान में रखते हुए फेर बदल कर लेना चाहिए और काम मे लाना चाहिए—

६ बजे सुबह—ईश प्रार्थना, नित्य क्रिया के बाद गहरी सांस की कसरत, एनिमा, आराम। एनिमा ७ रोज फिर प्रति दूसरे दिन, उसके बाद प्रति चौथे दिन।

७ बजे सुबह—मेहन स्नान और गर्मी लाना (टहल कर, व्यायाम करके या रजाई आदि ओढ़कर)।

८ बजे सुबह—एक पाव बकरी का ताजा दूध (कच्चा) और सन्तरे का नाश्ता या दूध-किशमिश।

९ बजे सुबह—गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल आधी छटांक पीना।

९ से १०॥ बजे तक—हवा और रोशनी मे लेटकर आराम। कभी-कभी मालिश। उसी वक्त १० मिनट से ४५ मिनट तक नीला प्रकाश छाती पर डाले।

१० बजकर ३१ मिनट पर—घर्षण स्नान और साधारण जल स्नान या स्पन्ज बाथ रगड़-रगड़ कर। ईश प्रार्थना।

११ बजे दिन—फल दूध या रोटी भाजी। कभी-कभी लाल भात और भाजी। नमक बिलकुल न हो या कम, खाने के समय जल पान बिलकुल नही या कम।

१ बजे दिन—प्यास भर जल-पान।

२ बजे दिन—गहरी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल आधी छटांक पीना।

२ बजे से ३ बजे शाम तक—हवा और रोशनी मे लेट कर आराम, मनोविनोद, गाना बजाना। उसी समय रीढ़ की मालिश पांच मिनट तक।

३ बजे शाम—पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी। शक्ति भर थोड़ा टहलना।

४ बजकर ३० मिनट शाम को—सन्तरे का रस या मठा या बकरी के थोडे दूध के साथ आधा टमाटर या सेब।

६ बजे शाम—कागजी नीबू का रस मिला हुआ पानी पीना।

६ बजकर ३० मिनट पर—आधी छोटी चम्मच शहद, प्याज या लहसुन के चार छः बूंद रस के साथ चाटना (यह प्रयोग दिन मे दो-तीन बार तक किया जा सकता है।)

६ बजकर ४५ मिनट पर—उदर-स्नान।

७ बजे शाम को—गहरी नीली बोतल का जल पीना।

८ बजकर ३० मिनट पर शाम को—थोडा बकरी का कच्चा दूध और किशमिश या पकी तरकारी का सूप या सब्जी-रोटी।

९ बजे रात तक—मनोविनोद, हंसना, गाना-बजाना। तत्पश्चात् शयन।

अनुभव से जाना गया है कि क्षय के रोगियों को फल और बकरी का दूध बड़ा लाभ करता है, विशेषकर आम के दिनो मे आम का सेवन और दूध पीना। मीठे पके आम का १५-२० तोला रस, किसी पत्थर या चांदी के कटोरे मे निचोड़ कर उसमें छोटी मक्खियों का ५ तोला शहद मिलाले और रोगी को रोज सुबह-शाम २१ दिन

तक पिलावे। साथ मे पानी की जगह बकरी का धारोष्ण कच्चा दूध दिन रात में दो तीन बार दें तो बड़ा लाभ करता है। अच्छा तो यह हो कि चिकित्सा आरम्भ करने के प्रथम रोगी को एक सप्ताह तक केवल फलो पर रखे। उसे दिन मे तीन बार आम, अगूर एव सन्तरे आदि फल खाने चाहिए और साथ मे बकरी का कच्चा दूध भी थोड़ा लेना चाहिए। रोगी को अपनी रुचि के अनुसार दूध और फलो का अनुपात स्थिर करना चाहिए। फल और दूध की यह खुराक एक से आठ सप्ताह तक जारी रखी जा सकती है। इसके बाद सादा भोजन धीरे-धीरे आरम्भ किया जा सकता है। मगर उस समय भी बीच-बीच मे फल और दूध लेते रहना चाहिए। दूध और फल की यह मिश्रित खुराक रोगी को लगभग दो मास बाद पुनः-पुन. लेना चाहिए।

दमा।

दमा (Asthma) एक बड़ा दुखदायी रोग है और बड़ी मुश्किल से जाता है। इसीलिए 'दमा दम के साथ' कहावत प्रचलित है मगर प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा यह रोग भी अन्य हठी रोगो की भांति आसानी से दूर किया जा सकता है। इसमे सास लेने वाली नलियो के संकुचित होने और उनमें कफ के जकड़ जाने से रोगी सास कठिनता से ले पाता है और जब सीने की असख्य ग्रन्थियां कफ से मढ सी जाती हैं तो दमे का दौरा होता है जो आधा घण्टा या इससे अधिक भी रह सकता है। जब कफ ढीला पड़कर निकलने लगता है तो दमे का दौरा कम होने लगता है। भयानक कब्ज होने से ही सीने की ग्रन्थियो मे कफ जकडता है। कारण, कब्ज से दूषित रक्त बनता है और दूषित रक्त से शरीर में कफ की उत्पत्ति होती है। रोग का आक्रमण रात्रि मे या सूर्योदय के कुछ पहले विशेष-रूप से होता है उस समय सीने मे एक प्रकार का शब्द होता है शरीर लाल या नीला पड़ जाता है और ठडा हो जाता है तथा श्वास-कष्ट से पसीना छूटता है।

दमे का दौरा जाड़ा, बरसात तथा गर्मी—कभी भी हो सकता है। रोग पुराना हो जाने पर सर्दी, खांसी [illegible], [illegible] और अधिक भोजन आदि जनित सामान्य [illegible] से ही दौरा आरम्भ हो जाता है। दमा कई प्रकार का होता है और बालक, युवा और बूढ़े सबको हो सकता है। दमा के निम्नलिखित छ: मुख्य कारण हैं जो शरीर के दूषित होने से होते हैं—

(१) फेफड़ो की दुर्बलता से।
(२) हृदय की दुर्बलता से।
(३) गुर्दो की दुर्बलता से।
(४) आंतों की दुर्बलता से।
(५) स्नायु-मण्डल की दुर्बलता से।
(६) नाकड़ा रोग के फलस्वरूप।

दमा की रोक थाम

रोग का आरम्भ होते ही नमक और सफेद चीनी छोड़ देना चाहिये और दूध, फल, सब्जी, गेहूं का दलिया या बिना छने आटे की रोटी खाकर रहना चाहिए। रोज प्रातःकाल रीढ की हड्डी को सीधे रखकर खुली और स्वच्छ वायु में ७-८ बार गहरी सासे लेना और निकालना चाहिए और कुछ दूर प्रात.काल टहलना चाहिए। पेट को सदा साफ रखना चाहिए और कब्ज कभी न होने देना चाहिए। चिन्ता आदि मानसिक रोगों को पास न फटकने देना चाहिए। जलपान के वक्त केवल गरम पानी मे कागजी लेमू निचोड़कर पीना चाहिए। इस पानी मे इच्छानुसार शुद्ध शहद भी मिलाया जा सकता है। सूर्यास्त के पहले ही फल और दूध का हल्का भोजन करना चाहिए। भोजन करते वक्त पानी न पीना चाहिए बल्कि उसके दो घटे बाद प्यास भर पानी पीना चाहिए। धूएं और गदी हवा से बचना चाहिए। तथा नित्य प्रात काल कुछ देर तक धूप सेवन करना चाहिए और उसी वक्त छाती पर कड़ुए तेल की मालिश भी करनी चाहिए।

साधारण उपचार के लिए प्रति रविवार को उपवास करना चाहिए और शाम को प्रतिदिन एक घटे के लिए सीने पर गीले कपड़े की पट्टी रखनी चाहिए। बस इतना ही करने से साधारण दमे की बीमारी दूर हो जायगी और रोग अपनी जड़ न जमाने पावेगा।

दौरा होने पर उपचार

दौरे की शाति तक उपवास। साथ मे गरम पानी में नीबू का रस निचोड़कर दिन मे कई बार दे। पहले पैरो का एक गरम नहान देकर गर्दन के चारो ओर खूब ठडे जल से भीगा गमछा लपेटना चाहिए। साथ ही पूरे पेट, छाती और पीठ को सेंकना चाहिए। दोनो वक्त पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और उसके बाद एनिमा गुनगुने जल का। हर १०

मिनट बाद सुनहरी बोतल का सूर्यतप्त जल २॥ तोला पीना। सूखी सास चलती हो तो छाती पर लाल शीशी का सूर्यतप्त तेल मलना।

दौरे के बाद रोग को पूर्ण रूप से दूर करने के लिए उपचार

(१) कब्ज टूटने या तीन मास तक रोज प्रातः काल पाखाना से लौटने के बाद पेड़ू पर आधे घण्टे मिट्टी की पट्टी उसके बाद एनिमा का प्रयोग।

(२) उसके बाद १२ फुट लम्बे ६ इञ्च चौड़े सूती कपड़े को भिगो और निचोड़कर छाती, कधो के ऊपरी भाग तथा पीठ के भाग पर पट्टी बाधना चाहिए और ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेटना चाहिए। यह पट्टी एक से डेढ़ घंटो तक रहने दी जा सकती है। परन्तु पट्टी लगाने के पहले हर बार छाती पर १२ से २० मिनट तक गरम-सेक ३ से ५ बार करना चाहिए और अंत मे गरम सेक समाप्त करके गीली पट्टी बांध देनी चाहिए।

(३) शाम को सोते समय, भोजन के ढाई घटे बाद ७-८ फुट लम्बी, ६ इञ्च चौड़ी सूती कपड़े की गीली पट्टी पेड़ू के चारो तरफ कमर से लपेट कर ऊपर से ऊनी कपड़ा लगभग एक घटे तक लपेट रखना।

(४) रोगी मजबूत हो तो १० से १५ मिनट तक सप्ताह मे समूचे शरीर का एक बार भाप-नहान।

(५) सुनहरी बोतल का सूर्यतप्त जल २॥ तोला प्रतिदिन भोजन और नाश्ते के बाद।

(६) सप्ताह मे दो बार सवेरे दातौन करने के बाद लगभग १॥ सेर गुनगुने पानी मे १-१॥ तोला सेंधानमक मिला कर धीरे धीरे पीवे और फिर हलक मे अगुली डालकर सब का सब कै करदे।

(७) उपर्युक्त के अतिरिक्त, आवश्यकतानुसार, सुबह-शाम स्पन्ज बाथ, सप्ताह में दो बार तक एप्सम-साल्ट बाथ। दिन में दो बार तक कटि स्नान तथा सप्ताह मे एक बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट भी लगाई जा सकती है। इस रोग मे हल्का व्यायाम, श्वास की कसरतें तथा साधारण स्नान के पहले धूप मे सारे शरीर की मालिश आदि उपकारी होती हैं।

उपचार के आरम्भ मे रोगी को कम से कम ३ से ७ दिनो का उपवास, एनिमा और नीबू का रस मिश्रित जलपान के साथ करना चाहिए। उसके बाद तीन दिनों तक फलो के रस या तरकारी के सूप (रस) पर रहना चाहिए। फिर दो सप्ताह तक सवेरे फल तथा दोपहर और शाम को रोटी, उबली सब्जी तथा सलाद लेना चाहिये। अन्त मे धीरे-धीरे सादे भोजन पर आ जाना चाहिए।

फुफ्फुसावरण-प्रदाह

फुफ्फुसावरण-प्रदाह को उरस्तोय और अंग्रेजी मे Pleurisy (प्लूरिसी) कहते हैं। फुफ्फुसावरण उस कला को कहते है जो फुफ्फुसो को चारो तरफ से ढंके रहती है। इसके दो भाग होते है। एक भाग तो फुफ्फुसो को चारों तरफ से आच्छादित रखता है तथा दूसरा भाग वक्ष की दीवार से चिपका रहता है, साधारणतया ये दोनो भाग आपस में मिले रहते है। इन दोनो के बीच लसीका पाई जाती है जो दोनों को परस्पर घर्षण से बचाती है। फुफ्फुसों के इन्ही वेष्टनो मे जब प्रदाह उत्पन्न होता है तो उसे फुफ्फुसावरण-प्रदाह या उरस्तोय कहते है।

उरस्तोय दो प्रकार का होता है—शुष्क उरस्तोय और आर्द्र उरस्तोय।

फुफ्फुसावरणो मे शोथ उत्पन्न होने से शुष्क उरस्तोय की उत्पत्ति होती है। आवरणो के बीच की लसीका या तो बहकर निकल जाती है या सूख जाती है जिससे आवरणो की कलाओ की ऊपरी सतह सूखकर कड़ी हो जाती है और कलायें परस्पर रगड़ के कारण लाल, शुष्क एवं शोथयुक्त हो जाती है। उनके घर्षण का शब्द फुफ्फुस पर कान लगाकर या स्टेथिस्कोप के जरिये सुना जा सकता है। स्वत. रोगी भी उस शब्द का अनुभव करता है। रोगी को सास लेने मे तकलीफ और पीड़ा होती है। ऐसा मालूम होता है मानो फेफड़ो को कोई फाड रहा है या उनमें सूई चुभा रहा है। कभी-कभी सूखी खासी भी उठती है। जब कभी कफ निकलता है तो थोडा और सूखा निकलता है जिसके निकलने में कष्ट होता है। इस रोग मे थोड़ा ज्वर भी रहता है। कभी ज्वर नहीं भी रहता है। शुष्क उरस्तोय को अंग्रेजी मे Dry Pleurisy कहते हैं। यह रोग आर्द्र उरस्तोय से कम भयानक होता है पर इसमे तकलीफ और पीड़ा अधिक होती है। एक तरह से शुष्क उरस्तोय को, आर्द्र उरस्तोय की आरम्भिक अवस्था समझनी चाहिए और इसी अवस्था

श्वसनक भी कहते हैं। गर्मी की अपेक्षा जाड़े मे यह रोग अधिक होता है, विशेषकर ऋतुपरिवर्तन के समयो मे। उन दिनो जवानो की अपेक्षा बूढों को यह रोग अधिक होता है। क्योकि ऋतु परिवर्तन आदि के प्रति अधिक अवस्था के व्यक्ति वडे सवेदनशील होजाते है। इसके अलावा उनमे जवानों जैसी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करने की शक्ति की भी कमी होती है। गर्मी की अपेक्षा जाड़े में इस रोग के अधिक होने का कारण यह है कि गर्मी के दिनो मे शरीर की त्वचा फैली और बिल्कुल खुली रहती है जिससे शरीर की अधिकाश गन्दगी पसीने के रूप मे सतह से होकर निकल जाती है, पर जाड़े के दिनो मे त्वचा संकुचित और कड़ी रहती है जिससे शरीर की गन्दगी को बाहर निकलने का रास्ता नही मिलता। फलतः शरीर मे विकार इतनी अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता है कि त्वचा के अलावा अन्य जलमार्ग—आंत, फेफड़े और वृक्क उसे निकालने मे असमर्थ हो जाते है। उस वक्त प्रकृति अगों मे बढ़ते हुए विकृति पदार्थो (विषमयता) के प्रति विरोध प्रगट करती है और फेफड़ों मे प्रदाह और समस्त शरीर मे ज्वर उत्पन्न करके उस एकत्र हुए विष को जला देने का प्रयत्न करती है। यही न्यूमोनिया है।

उस रोग मे कभी एक फुप्फुस मे प्रदाह उत्पन्न होता है, कभी दोनो मे। जब एक फुफ्फुस में प्रदाह उत्पन्न होता है तो उसे Single Pneumonia कहते हैं और जब दोनो फुपफुसो मे प्रदाह एक साथ होता है तो उसे Double Pneumonia कहते है। प्रदाह फुपफुसो के निचले भाग से होना आरम्भ होता है और ठीक उपचार के अभाव मे कभी-कभी बढकर एक या दोनो फुफ्फुसों को पूरा-पूरा घेर लेता है। न्यूमोनिया बच्चो, बूढो, कमजोरो तथा शराबियो को अधिक सताता है।

शीतल पदार्थो के सेवन करने, शीतल जगह मे रहने, उष्ण स्थान से अकस्मात शीतल जगह पर आने, पसीना न निकलने, ऋतुपरिवर्तन आदि उत्तेजक कारणों के उपस्थित होने से साधारणत. यह रोग होता है।

रोगी को पहले अकस्मात जाडा मालूम होता है। उनके बाद ज्वर चढता है जो १०३° से १०४° तक जाता है। सूखी खासी आती है। होठों पर फुन्सिया निकलती है। मुंह का रग नीलापन लिये लाल हो जाता है। पार्श्व-पीडा धीरे-धीरे तेज हो जाती है। सांस लेने मे कष्ट होने लगता है। नथुने फूलते हैं। नीद हवा हो जाती है। रोगी प्रलाप करने लगता है। नाडी की गति धीमी हो जाती है। नाड़ी कभी कभी तीव्र भी होती है सिर दर्द बढ़ जाता है। तथा रोग की बढी हुई अवस्था मे फुपफुस में पीव पड़ जाती है जिससे रोगी की सांसों से बदबू आने लगती है।

चिकित्सा

रोग के आरम्भिक लक्षणो के प्रगट होते ही रोगी को कपडो से ढंककर पूर्ण आराम करने के लिये चारपाई पर किसी साफ-सुथरे घर मे लेटा देना चाहिए। उस कमरे मे शुद्ध वायु का प्रवेश तो हो, परन्तु हवा के झोंके रोगी के शरीर पर सीधे न लगने चाहिये। उसके बाद रोगी को आधा-आधा घंटा पर तीन घंटों तक सहने योग्य एक एक गिलास गरम पानी सादा या नीबू का रस मिलाकर पिलाना चाहिये। इससे रोगी को पसीना आवेगा जिससे रोग का जोर कम होगा। साथ ही गुनगुने पानी का एनिमा देना चाहिए जिससे कोठा साफ हो जाय। रोग यदि वृद्धि पर हो और ज्वर हो तो रोग का जोर कम होने तक और ज्वर के चले जाने तक उपवास करते हुए रोज दो बार—सुबह-शाम एनिमा लेना जरूरी है। इसके अलावा सप्ताह मे २ या ३ बार समूचे शरीर की गीली चादर की लपेट लगानी चाहिये आधा घटा से लेकर एक घंटा तक भीगी चादर की लपेट यदि किसी कारण से न दी जा सके तो उसकी जगह पैरों का गरम स्नान भी देना ठीक रहता है। पसीना लाने वाले इन स्नानो के बाद स्पन्ज बाथ या शीत घर्षण स्नानादि द्वारा शरीर की अतिरिक्त गर्मी को दूर कर देना चाहिये। उसके बाद हल्का गरम पानी थोड़ा-थोड़ा रोगी को पिलाते रहना चाहिये। पसीना लाने वाले स्नान के ४ घटा बाद, तीन घटा के अन्तर से १५ मिनट तक रोगी के पेट और पीठ पर भाप देने के बाद बाकी समय के लिये कधो को ढकते हुए छाती और पेट पर भीगी उष्णकर पट्टी का प्रयोग करना चाहिए और ऊपर से गरम ऊनी कपडा लपेट देना चाहिए। उसी तरह एक गरम ऊनी कपडे के टुकड़े को गरम पानी में भिगोकर और निचोड कर पीठ और दोनों पंजरियों पर रखना और उसी के ऊपर सूखा गरम कपडा लपेटना भी अच्छा है।

ओ पट्टी को १०-१० मिनट बाद या उसके गरम हो जाने पर उस जगह को रगडकर लाल कर देने के बाद बदलते रहना चाहिए। पट्टी प्रयोग के समय रोगी का सारा शरीर गर्म कपडे से ढका रहना चाहिए, विशेषकर दोनों पैरों पर गरम सूखी पट्टी बधी होनी चाहिए। दिन मे कई बार रोगी का सिर धोकर सतर्कता और शीघ्रता के साथ उसे तौलिया-स्नान भी कराना चाहिए। तेज ज्वर में पेडू पर मिट्टी की पट्टी और सिर पर बार-बार ठडे जल से भीगी कपडे की पट्टी रखनी चाहिए। पेट मे दर्द के समय पूरे पेट पर गरम-ठडी सेक देना चाहिए।

ज्वर से मुक्त होने पर पहले दिन संतरे का रस या टोमाटो या खरबूजे का रस देना चाहिए रस मे पानी मिलाकर कुछ पतला कर देना चाहिए। फिर दूसरे दिन प्रात.काल रस विना पानी मिलाये देना चाहिए, दोपहर को कोई रसदार फल, तथा शाम को उबली हुई तरकारी देना चाहिये। तीसरे दिन सुबह वाले नाश्ते के साथ १ गिलास दूध, दोपहर को फल, और शाम को उबली तरकारी और सलाद। उसके बाद धीरे-धीरे सादे भोजन पर आ जाना चाहिये।

गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल तीन हिस्सा और पीली का एक हिस्सा मिलाकर उसकी आठ–खुराके रोज पीना इस रोग मे लाभ करता है। मात्रा–बड़ो के लिये आधी छटाक।

ब्रान्को न्यूमोनिया

ब्रान्काइटिस की सुचारुरूप से चिकित्सा न होने पर वह ब्रान्को न्यूमोनिया मे परिवर्तित हो जाता है। इस रोग में श्वासनाली और वायु कोष मे प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। इस रोग का आक्रमण प्राय. जाड़ो और बरसात मे अधिक होता है तथा बूढ़े और बच्चे इस रोग के चपेट में अधिक आते हैं। ब्रान्कोन्यूमोनिया (Broncho-Pneumonia) को Lobular Pneumonia और Catarrhal Pneumonia आदि भी कहते हैं।

ब्रान्काइटिस होने के बाद हठात् किसी दिन ज्वर १००° से १०५° तक बढ़ जाना, श्वास कष्ट, तथा नाडी की तेजी इस रोग के प्रधान लक्षण हैं। इस रोग मे खासी के साथ कफ भी होती है। बेचैनी और प्रलाप भी होते हैं।

चिकित्सा

एनिमा द्वारा पेट साफ कर लेने के बाद एक से दो घंटे के लिये पूरे शरीर की भीगी चादर की लपेट देनी चाहिये या पैरो का गरम स्नान कराना चाहिये। तत्पश्चात् शीतल घर्षण या तौलिया स्नान। शेष चिकित्सा न्यूमोनिया एव ब्रान्काइटिस चिकित्सा की भाति ही करना चाहिये।

फुफ्फुस से रक्त आना

फेफड़ा, कण्ठनाली अथवा श्वासनाली से रक्त आने को Haemoptysis या फुफ्फुस से रक्त आना कहते है। इस रोग मे जो रक्त गले से होकर बाहर आता है वह ताजा, चमकीला और लाल होता है जिसमे झागदार कफ मिला होता है। साथ-साथ छाती मे दर्द और श्वास-कष्ट होता है। कभी कभी रक्त नाम मात्र को ही कफ के साथ दिखाई देता है, और कभी-कभी सेर–सेर भर तक रक्त मुंह और नाक से एक साथ निकल पड़ता है।

अत्यधिक व्यायाम वा परिश्रम, धूप मे भ्रमण करना, तथा इन्द्रिय चालन से शरीर स्थित विजातीय द्रव्य मे उद्रेक होने से रक्त मे जोश आ जाता है जिससे वह निकल पड़ता है।

चिकित्सा

मानसिक और शारीरिक पूर्ण विश्राम इस रोग मे बहुत जरूरी है। रोगी को बोलना तक बंद रखना चाहिए। रोग की तेजी जब तक चली न जाय तब तक थोड़ा–थोड़ा बरफ मे रखकर ठंडा किया हुआ पानी देते रहना चाहिए। उसके बाद उस पानी मे थोड़ा दूध मिलाकर देना चाहिए। इस तरह तीन दिन तक करना चाहिए। उसके बाद फल रस मे ठंडा पानी मिलाकर देना चाहिए। फिर धीरे-धीरे फल–रस आदि देते हुए कुछ दिनो मे सादे भोजन पर रोगी को लाना चाहिए। इस रोग में जो कुछ रोगी को दिया जाय उसका ठडा होना आवश्यक है।

रोगी का सिर ऊंचे रखकर सुलाना चाहिए। उसके बाद १५ मिनट के अन्तर से तीन मिनट तक पीठ के ऊपरी हिस्से तथा गर्दन पर भाप देने के बाद उस स्थान पर उष्णकर भीगी पट्टी का प्रयोग करना चाहिए तथा उसको १० मिनट के अन्तर से बदलते रहना चाहिए। लगभग दो घंटे तक इस उपचार को चलाना चाहिए। रोज

प्राथमिक चिकित्सा

(१) उपवास और उपयुक्त आहार—नाड़ी-दौर्बल्य जनित रोगों से छुटकारा पाने का सर्व प्रथम उपाय उपवास द्वारा शरीर को उसमें स्थित अम्ल-विष से शून्य करना है। तीन दिनों का उपवास तो घर पर ही बड़े मजे मे किया जा सकता है। मगर यदि अधिक दिनों का उपवास करना अभीष्ट हो तो उसे किसी चिकित्सक की देख-रेख में करना ठीक रहता है। उपवास के दिनों में शरीर और मस्तिष्क—दोनों को पूरा-पूरा आराम देना चाहिए और रोज रात को सोने से पहले एनिमा द्वारा पेट को साफ कर लेना चाहिए। उपवास-काल में केवल पानी या नीबू का रस मिला पानी प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए। रोगी यदि अधिक कमजोर हो तो उसे उपवास की जगह फलो के रस या तरकारियों के सूप या दोनो पर भी रखा जा सकता है।

उपवास तोड़ने के बाद २-३ दिनो तक फलों के रस पर रखना चाहिए। फिर फल और कच्ची तरकारियो के सलाद के साथ पकी हुई तरकारियां १०-१५ दिनो तक खानी चाहिए। उसके बाद धीरे-धीरे उपयुक्त आहार पर आ जाना चाहिए।

जिन खाद्य पदार्थो को हम उनके प्राकृतिक रूप में ग्रहण कर सकते हैं उन्हें उपयुक्त खाद्य-पदार्थ या आहार कहा जाता है। ऐसे आहार से उनमे स्थित जैव लवणो (आर्गेनिक साल्ट्स)-फास्फोरस, कैलशियम, सोडियम और लोहा आदि की पर्याप्त मात्रा मे प्राप्ति होती है जिनसे नाड़ियों की धातु का पुनर्निर्माण होता है और निर्जीव पडे हुये नाड़ी-कोषाणु जीवन प्राप्त करके सशक्त बनते हैं। एक फास्फोरस (यदि उसे आहार के माध्यम से ग्रहण किया जाय) नाड़ी की धातु को उचित पोषण प्रदान करने की पूरी-पूरी शक्ति अपने मे रखता है। क्योंकि सवेदनशील तथा सज्ञावहा नाड़ी सस्थान पर इसकी विशेष क्रिया होती है। अण्डे की जर्दी, चोकरदार गेहू, कना सहित चावल, नीबू जाति के रसदार फल, अधिकाश ताजी साग सब्जियो, पनीर तथा सूखे मेवो मे फास्फोरस अधिक मात्रा में पाया जाता है।

उपयुक्त आहार लेने के साथ-साथ भोजन के साधारण नियमो जैसे अधिक भोजन न करना, चबाकर खाना तथा भोजन करते समय पानी न पीना आदि का भी पालन करते रहना नितान्त आवश्यक है।

केवल भोजन-सुधार से ही कितने ही नाडी दौर्बल्य के रोगी उत्साह, मनः शक्ति तथा मस्तिष्क की शक्ति, जिनसे वे हाथ धो बैठे थे पुनः प्राप्त किये हैं।

(२) व्यायाम—रोज नियमित रूप से कोई हल्का व्यायाम करना भी नाड़ियो को सशक्त बनाने मे बड़ा सहायक होता है। इस कार्य के लिये रोज सुबह-शाम शक्ति भर टहल कर वायु सेवन करना एक अच्छा व्यायाम है।

(३) गहरी सांस लेना—हममे से अधिकांश व्यक्ति सही तरीके से सांस लेना नही जानते। हम लोग गहरी सांस न लेकर हल्की ही सास लिया करते है जिससे वायु थोड़ी ही दूर भीतर जाकर लौट आती है जिससे फेफड़ो की पूरी क्रिया सम्पन्न नही हो पाती जिससे भयङ्कर रोगों की सृष्टि होना स्वाभाविक है। इसके लिये प्राणायाम सर्वश्रेष्ठ है। प्राणायाम न हो सके तो नीचे लिखी श्वास की दो क्रियायें लाभ के साथ की जा सकती हैं। ये क्रियाये श्री दुर्गाशंकर नागर के एक सुन्दर लेख से लेकर यहां दी जा रही है—

(१) खुली और साफ जगह पर बैठकर या खडे होकर धीरे-धीरे गहरी श्वास खींचिये और कुछ क्षण उसे भीतर रोक रखने के बाद धीरे-धीरे ही बाहर निकाल दीजिये। श्वास खीचते समय यह ध्यान कीजिये कि जनन-ग्रन्थियो से शक्ति निकलकर मेरुदन्ड मे स्थित सूर्यचक्र में सञ्चित हो रही है और बाहर निकालते समय यह ध्यान कीजिये कि उपयुक्त सञ्चित शक्ति सूर्यचक्र से निकलकर शरीर के अणु-अणु मे व्याप्त होकर उसे सशक्त बना रही है। इस क्रिया को कई बार कीजिये।

(२) समतल भूमि पर नगे बदन चित लेट जाइये। शरीर को पूर्णरूप से शिथिल कर लीजिये। अब धीरे-धीरे नासिका से श्वास खीचना आरम्भ कीजिये। आरम्भ मे धीरे-धीरे वायु पेट मे फिर ऊपर के भाग मे भरते हुए फेफड़ो को वायु से पूरा भर दीजिये। बाद मे पेट मे भरिये और फिर मुह द्वारा वायु को धीरे-धीरे जिस क्रम मे भरा था बाहर निकाल दीजिये। वायु से फेफड़ों को भरने के बाद शीघ्र ही वायु को बाहर निकाल दीजिये

और उसके बाद ही शीघ्र ही भरना आरम्भ कीजिये। इस क्रिया मे कुम्भक की आवश्यकता नही है। इसे कई बार कीजिये।

उपर्युक्त क्रियाओ के करने के बाद सिर के चक्कर मालूम होगे। इसका कारण शुद्ध वायु और अशुद्ध रक्त का सयोग है। शुद्ध वायु, अशुद्ध रक्त के विष को जला डालती है जिससे कार्बन गैस उत्पन्न होती है। इसीसे चक्कर आते है। दस मिनट या अधिक समय तक इन क्रियाओ के करने से आपके शरीर के किसी भाग मे एक प्रकार की सनसनाहट मालूम होगी तब समझिये कि सारे शरीर का रक्त शुद्ध हो गया है।

इसके बाद भी पाच-सात मिनट अभ्यास जारी रखना चाहिए तत्पश्चात् थोडी देर शान्त पड़े रहना चाहिए।

ये क्रियाए-ज्ञान-तन्तु की निर्बलता और अशुद्ध रक्त से उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण रोगो को नष्ट करती हैं।

रात को सोते समय और प्रातः काल उठने पर ये क्रियाए की जा सकती हैं।

(४) नीद, विश्राम और शिथिलीकरण—नाड़ी-विकार से पीडित लोग गाढी नीद को तरसते रहते हैं। उन्हे पूरा आराम भी नही मिल पाता। गाढी नीद लाने के लिए यह जरूरी है कि रात मे देर तक कोई दिमागी काम न किया जाय। बिस्तर पर जाने से पहले मस्तिष्क को भय, चिन्ता आदि मानसिक विकारों से मुक्तकर लेना चाहिए। अधिक जागरण से स्नायुविक थकान बढती है। अत कम से कम ८ घटे तक मीठी नीद अवश्य लेनी चाहिए। हर समय काम की बात न करनी चाहिए और न सोचनी चाहिए। काम के बीच मे थोड़ा आराम भी जरूर कर लेना चाहिए। कोई 'हाबी' (शौक) रखिये। इससे थके हुये स्नायुओ को आराम मिलता है। काम के बाद कोई प्रिय खेल खेलकर मन बहलाना चाहिए। शिथिलीकरण के लिए शवासन एक उपयोगी आसन है। इसको रोज का काम निबटने के बाद एक बार नियमपूर्वक अवश्य करना चाहिए। विश्राम, शिथिलीकरण, और गाढी निद्रा से स्नायु [illegible] के तत्व का निर्माण होता है, तथा थकान से पैदा होनेवाला दूषित स्राव शरीर मे एकत्र नही होने पाता। इसलिए स्नायु विकार वालों को इन चीजो की [illegible] आवश्यकता होती है।

(५) खुली और शुद्ध वायु मे वास—रक्त की गंदगी की सफाई शुद्ध वायु से ही विशेष रूप से होती है। बन्द कमरे मे सारा बदन ढंका रखकर अधिकाश समय व्यतीत करने से यह काम पूरा नही हो सकता। क्योकि ऐसी दशा मे शरीर को प्रकाश और शुद्ध वायु की प्राप्ति उचित रूप मे नही हो पाती। इसलिए यदि प्रकाश, आतप, तथा शुद्ध वायु आदि प्राकृतिक शक्तियों का उचित उपयोग नही किया जायगा तो नाडी सस्थान पूर्णतः स्वस्थ और शक्तिशाली नही बनेगे।

(६) त्वचा को स्वस्थ और साफ रखना—त्वचा हमारा प्राकृतिक वस्त्र है जो सदैव हमारे शरीर से चिपका रहता है और कभी भी अलग नही किया जा सकता। इसीलिए इस वस्त्र को पहने ही पहने साफ करना और इसे अच्छी हालत मे रखना हमारे लिए जरूरी हो जाता है। त्वचा का वही काम है जो फुफ्फुस का है। अतः इसे सास लेने योग्य बनाये रखने के लिए इसके सारे छिद्रो का सक्रिय एवं खुला रहना आवश्यक है। इसके लिए बदन को हर समय भारी भारी कपड़ो से ढके रखना भारी भूल है। त्वचा को रोज नियमित रूप से शुष्क घर्षण व्यायाम देना चाहिये। साधारण स्नान के प्रथम और पश्चात बिना इस क्रिया के किये स्नान को तो पूर्ण ही नही समझना चाहिए।

(७) प्रसन्न चित्त रहना—स्वास्थ्य-सुधार के क्रम को चलाते समय चिन्ता, निराशा, एव निरानन्द को प्रश्रय देना आवश्यक ही नही निरर्थक भी है। उस वक्त जीवन मे आनन्द का अनुभव करना चाहिए और सरल, शान्त रहकर परमात्मा और उसकी प्रकृति मे पूर्ण विश्वास और आस्था रखनी चाहिए।

(८) थकान की सीमा के अन्दर रहना—इसका अभिप्राय है, किसी काम के करने मे अति न करना। कहा भी है 'अतिसर्वत्र वर्जयेत'। शक्ति से अधिक श्रम, किसी कार्य मे अधिक व्यस्तता, अधिक भोजन करके पाचन यन्त्रो से अधिक कार्य लेना तथा अत्यधिक रति-क्रिया, आदि करने से स्नायुविक थकान बढ़ती है जिससे नाड़ी-दौर्बल्य जनित रोगो मे तेजी आ जाती है। अत इनसे बचना चाहिए।

(९) मानसिक सतुलन—परिवारिक झंझट, वैवा-

हेक जीवन की असंगति, आर्थिक कठिनाइयां, प्रेमसम्बन्धी निराशा, यौन सम्बन्धी कुसंयोजन, तथा क्रोध, भय, कुढ़न, घृणा, आदि मानसिक उद्वेग आदि उपद्रवों से मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है जिससे शरीर के स्नायु बेतरह थक जाते है। अतः आये दिन असफलताजनित निराशाओं और मानसिक उद्वेगों से अपने को निर्लिप्त रखना चाहिए। अन्यथा लाख उपचार होने पर भी स्नायु सम्बन्धी रोगों से छुटकारा नही मिलेगा।

कुछ दिनों तक उपर्युक्त प्राथमिक चिकित्सा चलाने के बाद नाड़ी-दौर्बल्य के रोग-विशेष के रूप, लक्षण, उसकी जीर्णता, रोगी की अवस्था, तथा रोग की उग्रता और मंदता को ध्यान में रखते हुए उसमे अन्य प्राकृतिक उपचार, जैसे एप्सम साल्ट बाथ, रीढ पर ठंडे पानी का तरेरा, रीढ़ की पट्टी, कमर की भीगी पट्टी, उदरस्नान, मेहन-स्नान, आतप स्नान तथा मिट्टी की पट्टी का प्रयोग आदि, जोड़कर रोग को निर्मूल कर देना चाहिये।

स्नायु अथवा नाड़ी सम्बन्धी रोग अनेक रूपो में प्रगट होते हैं। जिनमे वात-ज्वर, पेशी-वात, ग्रन्थि-वात (गठिया), स्नायुशूल, वात-शूल (सायटिका), कटि-वात (लम्बेगो), पक्षाघात, मिर्गी, उन्माद, झिनझिनियां, अनिद्रा, मस्तिष्क की नाड़ी का फट जाना, बौनापन, हकलाहट तथा मूर्छा मुख्य हैं। इनमे से प्रत्येक की चिकित्सा-विधि नीचे दी जाती है।

वातज्वर

वात-ज्वर के कई अन्य नाम भी हैं, जैसे सम्पूर्ण देह का वात, तरुणवात, Acute Rheumatism, Rheumatic fever, Acute articular Rheumatism तथा Acute inflamatory आदि। इसमे ठड मालूम होकर ज्वर चढ़ता है। ज्वर १०४° से १०५° तक और कभी-कभी इससे भी अधिक हो जाता है। शरीर के सभी या कुछेक जोड़ों मे सूजन और वेदना होती है। कभी रोग जोड़ों पर बारी-बारी से भी आक्रमण करता है। रोगी अग को हिलाने डुलाने से वेदना में वृद्धि होती है। साथ मे कब्ज, सिर दर्द, अग्निमाद्य, लाल पेशाब का होना, सांस की चाल मे वृद्धि, तृषा तथा रात मे रोग की वृद्धि आदि लक्षण भी दृष्टिगोचर होते हैं।

चिकित्सा

पहले कटि-स्नान और गरम पानी का एनिमा देकर पेट को साफ कर लेना चाहिये। एनिमा तबतक नियमपूर्वक रोज लेना चाहिये जब तक पेट साफ न रहने लगे। पेट साफ हो लेने के बाद गरम कम्बल की लपेट लगानी चाहिये। दो सूखे कम्बल एक पर एक बिछाकर उनके ऊपर एक तीसरा कम्बल खूब गरम पानी मे भिगोकर और निचोड़ कर बिछाना चाहिये जिस पर रोगी को नगे या उसकी कमर मे अगोछा लपेटकर सुलाना चाहिए और बारी बारी से तीनो कम्बलों को उसके शरीर से, पर से लेकर गरदन तक लपेट देना चाहिये। आवश्यकतानुसार पैरो के पास उन्हें गरम रखने के लिए गरम पानी से भरी बोतले या रबड़ की थैलियां रखनी चाहिये। गरम पानी से भीगा कम्बल इतना गरम न होना चाहिये कि रोगी का चमड़ा जल जाय। इस लपेट को आध घंटा से एक घण्टा तक देना चाहिये। लपेट लगाने के पहले रोगी के सिर और गर्दन पर ठंडे जल से भीगी पट्टी लपेट देना बहुत जरूरी है। लपेट खोलने के बाद तुरत रोगी को २-३ घण्टे तक का Wet sheet pack अर्थात् समूचे शरीर की गीली चादर की लपेट देना चाहिए। लपेट हटाने के पहले अन्दर ही अन्दर गुनगुने पानी से भीगे गमछे से पूरी देह को पोंछ देना चाहिए। इस लपेट को जब तक ज्वर कम न हो जाय या जब तक जोड़ो के दर्द मे कमी न आ जाय तब तक भी रहने दिया जा सकता है। यह उपचार दो तीन दिन तक बराबर करना चाहिए या जब तक तकलीफ दूर न हो जाय तब तक करना चाहिए। इस रोग मे वेदना के स्थान पर न तो मालिश करनी चाहिए और न ठडे जल का प्रयोग ही। अपितु वेदना के स्थान के चारो तरफ लगभग आधा घंटा तक सहने योग्य भाप से सेंकना चाहिए। तदुपरान्त खूब ठण्डे जल की कपड़े की पट्टी लगाकर ऊपर से गरम कपड़ा लपेट देना चाहिए। इस पट्टी को गरम हो जाने पर बदलते रहना चाहिए। जब भाप की गर्मी शांत हो जाय तब गुनगुने पानी से भीगी पट्टी वेदना के स्थान के चारों तरफ लगानी चाहिए और ऊपर से गरम कपड़ा लपेट देना चाहिए। वेदना जब तक कम न हो जाय इस स्थानीय पट्टी को जोड़ो के चारो तरफ देते रहना चाहिए। ज्वर १०२° बेशी होने पर जब तक वह १०१° पर न आ जाय तब तक सावधानी से बार-बार समूचे शरीर को

तौलिया-स्नान कराते रहना चाहिए। रात-भर के लिए कमर की भीगी पट्टी भी लगाना इस रोग मे आवश्यक है।

कहना न होगा कि वात-ज्वर और नीचे लिखे अन्य सभी स्नायु सम्बन्धी रोगो की चिकित्सा के साथ-साथ ऊपर लिखे नाड़ी-दौर्बल्यजनित रोगो की प्राथमिक चिकित्सा सम्बन्धी सभी नियमो का अक्षरशः पालन करना नितान्त आवश्यक है।

पेशी-वात

पेशी-वात को अंग्रेजी मे Muscular Rheumatism कहते हैं। इसी मे गर्दन की मांस-पेशियो की वात या गर्दन में बल पड़ना, (Wryneck) या (Torticollis) तथा पंजरी की मासपेशियों की वात (Pleurodynia) भी शामिल है। वात-रोग के कारण जब शरीर की किसी मास-पेशी मे पीड़ा होती है जो हिलाने डुलाने से अधिक बढ़ती है तो उसे पेशी-वात कहते है। वात-रोग की प्राथमिक चिकित्सा के साथ-इस रोग की भी वही चिकित्सा है जो वात-ज्वर की। फिर भी बहुत दशाओ मे नीचे लिखा उपचार क्रम चलाने से भी उस रोग मे बड़ा उपकार होता है :—

आक्रान्त पेशी के ऊपर ५ मिनट गरम फिर ५ मिनट ठंडे पानी से भीगी और निचोड़ी कपड़े की पट्टी द्वारा बारी-बारी से आधा घंटा तक सेंक देनी चाहिये। रोग पुराना होने से २-२ घंटा बाद आक्रान्त पेशी के ऊपर लगभग आधा घंटा तक भाप देने के बाद ठंडे जल से भीगी कपड़े की पट्टी लगाकर ऊपर से गरम कपड़ा लपेट देना चाहिये और देरी तक रहने देना चाहिए। इस रोग मे मालिश लाभ नही करती है। पेशियो को पूरा-पूरा आराम देना भी जरूरी है। पथ्य एवं अन्य उपचार वात-ज्वर के पथ्य एवं उपचार की भाति ही समझने चाहिए।

गठिया

गठिया, ग्रन्थिवात, क्रोष्टि शीर्ण तथा गाउट(Gout) एक ही रोग के अलग-अलग नाम हैं। पुराने गठिया मे जोड़ जकड़ जाते है जो बहुत मुश्किल से ठीक होते हैं। ऐसी गठिया को अंग्रेजी मे Rheumatoid Arthritis कहते है।

गठिया-रोग पैरो से विशेषकर पैर के अंगूठे से आरम्भ होता है और धीरे-धीरे बढकर शरीर के अन्य छोटे-छोटे जोडों या गाठों मे फैल जाता है। गठिया के स्थान पर दर्द और सूजन होती है, तथा कभी-कभी वह स्थान गर्म और रक्त वर्ण भी हो जाता है जिसको छूने या हिलने-डुलाने से तकलीफ बढ़ जाती है। गठिया के कई प्रकार है। किसी गठिया मे शरीर के कुछ जोड़ों में कभी-कभी ही दर्द होता है, किसी मे कुछ खास-खास जोड़ो मे बराबर दर्द बना रहता है, किसी गठिया मे दर्द एक जोड़ से दूसरे, तीसरे में दौड़ता प्रतीत होता है, तथा कोई गठिया ऐसा तकलीफदेह होता है कि रोगी चारपाई से उठ नही सकता।

गठिया में रात्रि के पिछले पहर यानी सूर्योदय के थोड़ा पहले रोगी अधिक तकलीफ महसूस करता है। उस वक्त सोता हुआ रोगी गठिया की तकलीफ से प्रायःजाग पड़ता है। गठिया के साथ ज्वर भी होता है जो प्रायः १०२° से आगे नही बढ़ता। रोग की बढ़ी हुई दशा मे रोगी को कब्ज, शिर दर्द, स्नायुविक उत्तेजना, चिड़चिड़ापन, अस्थिरता, अधीरता, तृषा, तथा मूत्र-दोष आदि उपसर्ग रोग अधिक सताते है।

चिकित्सा

स्नायु सम्बन्धी समस्त रोगो की प्राथमिक चिकित्सा के बारे में ऊपर विस्तार से लिखा जा चुका है। उसके अनुसार उपवास, रसाहार, फलाहार, तथा भोजन आदि के नियमो को इस रोग मे भी कड़ाई के साथ पालन करना चाहिए, साथ ही साथ रोग और रोगी की अवस्था को ध्यान मे रखते हुये निम्नलिखित उपचार काम में लाने चाहिये।

सिर, चेहरे, और रोग वाले स्थान को केले की हरी पत्तियों से ढककर लगभग आध घंटे तक नंगे बदन धूप मे रहना चाहिए। उसके बाद ठंडे जल से भीगी और निचोड़ी तोलिया से समूचे बदन को पोंछना चाहिए या ठंडे पानी से नहा लेना चाहिए। यह क्रिया सप्ताह में तीन बार करनी चाहिए।

गठिया वाले पैर को दिन मे तीन बार आध घंटा तक गरम जल मे डुबा रखने के बाद या उस पर भाप देने के बाद रोग की जगह पर ठंडे जल से भीगी कपड़े की

पट्टी रखकर गरम हो जाने पर उसे थोड़ी देर तक पुन. पुन. बदलते रहना चाहिए । या एक सेर पीछे एकछटांक नमक मिले गरम पानी से भीगे और निचोड़े कपड़े से जोड़ों को सेंककर उन्हे ठंडे पानी से धो देना चाहिए, या कच्चे आलुओं को पीसकर उन पर बांध देना चाहिए ।

गठिया के रोगी को जल प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए विशेष कर सुबह-शाम गरम पानी मे कागजी नीबू का रस निचोड़कर जरूर पीना चाहिए ।

पुरानी गठिया में १४ दिनों तक रसाहार करने के बाद सबेरे उदर-स्नान और शाम को मेहन स्नान लेना चाहिए, तथा कब्ज दूर होने तक रोज गरम पानी का एनिमा लेना चाहिए । हर तीसरे दिन गरम पानी के टब में लेटना चाहिए या एप्सम साल्ट बाथ लेना चाहिए । दोपहर को ठंडा स्पंज-बाथ तथा घर्षण स्नान करना चाहिए । शेष उपचार आवश्यकतानुसार वात ज्वर की चिकित्सा के समान चलाना चाहिए, और यदि रोग फिर भी कुछ बाकी रह जाय अथवा जाकर वापस लौट आवे तो दो-दो मास के अन्तर से पूरे चिकित्सा क्रम को रोग के समूल नष्ट होने तक दोहराते रहना चाहिए ।

नारंगी रंग की बोतल के सूर्य तप्त जल की २½ तोले मात्रा की ४ खुराक रोज पीने और एक घंटा तक पहले लाल या नारगी रंग का प्रकाश आक्रान्त स्थान पर डालकर उसके बाद दो घंटा तक नीला प्रकाश डालने से गठिया रोग जल्द आराम होता है ।

स्नायु-शूल

स्नायु-शूल को वात-शूल भी कहते हैं । अंग्रेजी में इस रोग का नाम Neuralgia है । इसमे शरीर की कभी किसी एक स्नायु तथा उसकी शाखाओं मे दर्द होता है । और कभी एक से अधिक स्नायुओं मे । कभी दर्द कम होता है, कभी रुक-रुक कर और कभी लगातार होता है दर्द बहुत तेज होता है । साथ कभी ज्वर भी रहता है, कभी नही भी रहता ।

चिकित्सा

प्राथमिक चिकित्सा के नियमो का अनुसरण करते हुये रोगी को वाष्प-स्नान देना इस रोग मे बड़ा लाभकारी होता है । यदि एक बार मे दर्द न बंद हो तो दूसरे-तीसरे सप्ताह तक इस क्रिया को दोहराना चाहिये । दिन मे दो बार साधारण स्नान करना चाहिए जब तक दर्द रहे तक गुनगुने पानी से, परन्तु जब दर्द कम हो जाय बिलकुल चला जाय तब ठंडे पानी से स्नान करना चाहि रात को सोने से पहले आधा घंटा तक मेहन-स्नान कर चाहिए और सुबह को थोड़ी देर तक धूप मे बैठने बाद उदर स्नान कभी एप्सम साल्ट बाथ भी लेना चाहि

सिआटिका

गृध्रस्य नाड़ी जिसका ऊपरी सिरा लगभग १ इ मोटा होता है, प्रत्येक नितम्ब के नीचे से आरम्भ हो टाग के पिछले भाग से गुजरती हुई पाव की एड़ी खतम होती है । इस नाड़ी का नाम अंग्रेजी मे 'साइटि नर्व है' । इसी नाड़ी में जब सूजन और प्रदाह के कार पीड़ा होती है तो उसे गृध्रसी, रींघन वा लगड़ी का द वात-शूल, अथवा अंग्रेजी मे सिआटिका (Sciatica) कह है । इस रोग का आरम्भ अचानक और तीव्र वेदना साथ होता है । स्त्रियो की अपेक्षा मर्दो मे यह रोग अधि पाया जाता है । इसके दौरे भी होते हैं । ३० और ५ वर्ष के बीच की आयु मे इस रोग की उत्पत्ति होती है सिआटिका की पीड़ा एक समय मे प्रायः एक ही टाग होती है । साथ में प्राय. ज्वर भी रहता है ।

चिकित्सा

सिआटिका की चिकित्सा वही है जो स्नायु-शू की है ।

कटि-शूल

इसको कटि-वात और अंग्रेजी में Lumbago भी कहते हैं । इस रोग मे वात का केन्द्र कटि और मेरुदण्ड को धारण करने वाली पेशियो मे होता है, और लेटे रहने की अवस्था से सीधे खड़ा होने का प्रयत्न करने पर भयङ्कर पीड़ा होती है । कटि-शूल वस्तुतः बधक तन्तुओं के प्रदाह की अवस्था है जिसमें रक्त धारो में रक्त रुक जाने से नाड़ियो के छोर पर दबाव पड़ता है । इस रोग का भी बार-बार दौरा पड़ता है । इसमें दर्द पीठ के निम्नभाग की कशेरुका से आरम्भ होकर नितम्ब होते हुए पेट में पहुंचता है । कभी-कभी दर्द की पहुंच घुटने तक हो जाती है । पर उस वक्त भी दर्द का केन्द्र कटि-देश ही होता है ।

चिकित्सा

मालिश, बारी-बारी से गरम और ठडे जल का स्नान, तथा मेहन स्नान इस रोग मे बडे प्रभावकर सिद्ध हो जाते है। कमर पर ५ मिनट तक गरम, उसके बाद ५ मिनट ठडी पट्टी बारी-बारी से आध घटे तक देना भी लाभ करता है। रोग की तेजी होने पर प्रत्येक दो घटे बाद १५ मिनट से आध घंटा तक कमर पर वाष्प-स्नान देने के बाद उस पर उष्णकर ठडी पट्टी का प्रयोग करना चाहिये।

शेष चिकित्सा, स्नायु-शूल की चिकित्सा की तरह।

लकवा

पक्षाघात वा लकवा को अंग्रेजी में Paralysis कहते हैं। जब शरीर के किसी अंग या भाग का परिचालन अंग या भाग के स्नायुओ द्वारा उनके अस्वस्थ होने के कारण नही हो पाता तो उस अंग या भाग को लकवा मार जाना कहते हैं। कभी कभी सम्पूर्ण देह में लकवा मार जाता है। जिस अंग या भाग मे लकवा मारता है, वह अंग या भाग चैतन्य शून्य हो जाता है और धीरे-धीरे सूखने लगता है। एक प्रकार का लकवा और होता है जिसमे आक्रान्त अंग सदैव कापता रहता है।

चिकित्सा

स्नायु सम्बन्धी अन्य रोगो की भाति प्राथमिक चिकित्सा द्वारा सर्व प्रथम पेट को साफकर लेना चाहिए। तत्पश्चात् नीचे का उपचार क्रम चलाना चाहिए—

प्रतिदिन लाल कपड़ा ओढकर २ घटा तक धूप नहान लेने के बाद पैरो को गरम जल मे रखकर और सिर पर ठडे पानी से भीगा कपडा रखकर १५ मिनट तक कटि-स्नान करना चाहिए। लाल कपडा ओढ़ते समय सर को लाल कपड़े से नही ढकना चाहिए। धूप नहान लेते समय यदि आध घटा तक समूचे शरीर की मालिश भी हो तो अधिक लाभ होता है। यदि वदली होने के कारण धूप-नहान सम्भव न हो तो उसके स्थान पर ३-४ मिनट तक वाष्प स्नान ले लेना चाहिये और तब कटि-स्नान करना चाहिए। तत्पश्चात् जल्दी से एक साधारण स्नान ठडे पानी से घर लेना चाहिए। इस समूची क्रिया को [illegible] भी दोहराना चाहिए।

[illegible] पर आध घटा तक गरम और ठडी सेक देना भी उपकारी होता है। जो अङ्ग सुन्न हो गया हो उसपर कपड़े की गीली पट्टी बाधकर ऊपर से गरम कपड़ा लपेट देना चाहिए ताकि वह स्थान गरम रहे। इस पट्टी को खोलने के बाद स्थान को भीगी तौलिया से पौंछकर सूखी मालिश करके लाल कर देना चाहिए।

रोगी को नीबू का रस मिलाकर काफी पानी रोज पिलाना चाहिए। रक्तचाप यदि बढा हो तो रोगी को नमक खाना बंद कर देना चाहिए।

लकवा के रोगी को पीली बोतल के सूर्यतप्त जल की ६ खुराके (आधी छटाक मात्रा की) रोज पिलानी चाहिए। लकवा से अकड़ी नसो पर रोज पहले एक घटा तक लाल प्रकाश डालना चाहिए, उसके बाद दो घटो तक नीला प्रकाश। सर को छोड़कर शरीर के अन्य भागो पर लाल कपडा धारण करना भी इस रोग मे उपकारी है।

मृगी या मिरगी

मृगी या अपस्मार को अग्रेजी मे Epilepsy कहते है। इसके दौरे आते है। रोगी को दौरा आने के पहले प्राय मालूम हो जाता है। पर कभी-कभी मृगी का दौरा अचानक भी आता है। उस रोग का जब दौरा आता है तो रोगी बेहोश हो जाता है, उसके अंग-प्रत्यंग कापने लगते है और प्राय. मुंह से गाज निकलने लगती है। कभी-कभी रोगी की आखे खुली रहने पर भी उसे होश नही रहता, वह अपनी जीभ काटने लगता है और बेहोशी में पेशाब-पाखाना कर देता है। यह अवस्था कुछ सेकेंड से लेकर कुछ मिनटो तक रहती है। उसके बाद रोगी धीरे-धीरे अपने आप होश मे आ जाता है और थक जाने के कारण प्राय. सो जाता है। दौरे के समय रोगी के मुख मे तौलिया आदि रख देने से वह अपनी जबान को न काट सकेगा।

शरीर स्थित विजातीय द्रव्य या विषैले पदार्थ जब मस्तिष्क मे पहुँचकर उसके कोषो पर दबाव डालते है तभी मृगी रोग का दौरा या आक्रमण होता है।

स्नायु सम्बन्धी रोग से पीड़ित तथा नशेबाजों की सन्तान मृगी-रोग का शिकार हो सकती है। जो लोग तत्वहीन, क्षारहीन, तले-भुने तथा रूखा-सूखा भोजन करने के आदी होते हैं विशेषत: उन्हे ही यह रोग पकड़ता है।

इस रोग के अन्य कारणों, पथ्य एवं प्राथमिक चिकित्सा के लिये उपर्युक्त स्नायु-सम्बन्धी रोगों की प्राथमिक चिकित्सा-प्रकरण देखना चाहिए।

चिकित्सा

औषधोपचारक इस रोग मे प्राय. 'जमिनल' और ब्रोमाइड आदि विपाक्त औषधियां प्रयोग करके मस्तिष्क के स्नायुओ को चेतना शून्य कर देते है जिससे रोग और उसके लक्षण कुछ दब जाते हैं, पर रोग जड़ से हरगिज नही जाता। रोग को जड़ से दूर करने के लिये उपवास, रसाहार और फलाहार करने के बाद उपयुक्त आहार के साथ-साथ प्रातः काल कटि-स्नान, शुष्क घर्षण-स्नान तथा शाम को मेहन-स्नान, स्पाइनल बाथ या पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी लगानी चाहिए। सप्ताह मे दो दिन एप्सम साल्ट-बाथ लेना भी जरूरी है। रोज आधा घंटा तक धूप में समूचे शरीर की तेल मालिश होनी चाहिए, इसके बाद खुरदुरे तौलिये से शरीर को रगड़-रगड़ कर पौछना चाहिए। तत्पश्चात् साधारण स्नान कर लेना चाहिए। मेरुदण्ड पर दो मिनट भीगी गरम तौलिया तथा एक मिनट ठंडी तौलिया बारी-बारी से रखकर आध घंटे तक सेंकना इस रोग मे बड़ा लाभ करता है।

आसमानी रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल की आधी-आधी छटांक की ८ खुराकें रोगी को रोज पीनी चाहिए तथा बेहोशी की हालत में उसी जल का छींटा मुंह पर देना चाहिए या उस जल से भीगी कपडे की पट्टी माथे पर रखकर उसे बदलते रहना चाहिए।

पागलपन

नाड़ी-केन्द्र (मस्तिष्क) की विकृति का परिणाम पागलपन, उन्माद या Insanity होता है। इस रोग के कारण वे ही हैं जो अन्य स्नायु सम्बन्धी रोगो के कारण ऊपर बताये जा चुके हैं फिर भी भयानक कोष्ठबद्धता के कारण आंतों मे मल के सड़ने की वजह से दिमाग मे गर्मी का चढ़ जाना इस रोग का प्रधान कारण है।

चिकित्सा

उपवास या रसाहार, फलाहार, एनिमा तथा उपयुक्त आहार का आश्रय लेकर सर्व प्रथम कोष्ठ को साफ कर लेना चाहिए। उसके बाद ऐसा उपाय करना चाहिए कि २४ घंटो में ३ बार रोगी का पेट साफ होता रहे। उन्माद के रोगी को ठंडे पानी का एनिमा देना चाहिए सुबह-शाम कटि-स्नान और मेहन-स्नान, रात भर के लिये मिट्टी की गीली पट्टी या कमर की गीली पट्टी तथ सप्ताह मे दो-एक बार शरीर पर एक घंटा के लिये भीगी चादर की लपेट लगाने से बहुत लाभ होता है। लपेट के समय रोगी का सिर भी मोटी, भीगी तौलिया से लपेट रखना चाहिए और जब वह गरम हो जाय तो उसे बदल देना चाहिए। रोगी को प्रचुर मात्रा मे नीबू का रस मिला पानी पिलाना चाहिए। यदि रोगी को एक घंटे तक मामूली गरम जल से भरे टब मे लिटाये रखा जाय तो केवल इतने ही से बहुत लाभ हो सकता है। इसके अतिरिक्त सवेरे सोकर उठने के तुरन्त बाद और रात मे सोने के तुरन्त पहले ठंडे जल से भिगोई हुई तौलिया से रोगी का समूचा शरीर पोंछ देना चाहिए। दिन मे २-३ बार सिर के ऊपर गीली मिट्टी की या भीगे कपडे की पट्टी रखना भी इस रोग मे लाभ करता है। सिर पर ठंडी पट्टी रखते समय पावों को गरम रहना चाहिए।

आसमानी बोतल के सूर्यतप्त जल की ४ खुराकें (एक खुराक आधी छटांक की) रोज पीनी चाहिए और नीली रोशनी सिर पर रखनी चाहिए।

अनिद्रा

अनिद्रा (Insomnia) अर्थात् नींद का न आना एक कठिन और कष्टदायक रोग है। इससे आदमी पागल तक हो जाता है। इस रोग के कारण अनेक हैं। जैसे कोष्ठबद्धता आदि रोगो के कारण रक्त का विपाक्त होना, मस्तिष्क मे रक्ताधिक्य, सोने जाने के पहले अधिक भोजन अथवा अधिक दिमागी काम करना, शारीरिक परिश्रम कम या बिलकुल न करना, रोगी होना, नये स्थान में सोना, कमरे मे प्रकाश और शुद्ध वायु का उचित प्रबन्ध न होना, एक ही कमरे मे बहुत से आदमियो का सोना, चारपाई और बिछौने आदि का गंदा और खटमलों वाला होना मादक द्रव्यो जैसे काफी-चाय आदि का सेवन, मुंह ढककर सोना मानसिक अथवा स्नायुविक उत्तेजना, शोरगुल वाला वातावरण, उत्तेजनापूर्ण और रोचक नाटक का सोते समय अध्ययन तथा आत्मग्लानि आदि।

चिकित्सा

सर्व प्रथम जिन कारणों से अनिद्रा रोग उत्पन्न हो

है उन्हे दूर करने की भरपूर कोशिश करनी चाहिए। सोने से पूर्व किसी कठिन विषय पर लिखी गयी कोई पुस्तक पढ़ने से थोड़ी ही देर मे आंखें झपकने लगती है। भोजन में नमक की मात्रा कम कर देने से भी नीद आने में सहायता मिलती है। सोने के पहले मस्तिष्क को सभी प्रकार की चिन्ताओ और चिन्तनो से मुक्त कर देना चाहिए। रोज ठीक समय पर सोने का नियम बना लेना चाहिए। रक्त को शुद्ध बनानेवाला सात्विक और प्राकृतिक भोजन करना चाहिए।

अनिद्रा-रोग के अधिक उपचार के लिए सोने से पहले कमर और गर्दन पर कपड़े की गीली पट्टी बाधनी चाहिए। गीली पट्टी पर सूखा कपड़ा लपेटकर बिछावन को भीगने से बचाना चाहिए। सोने से पहले नहाना और गरम पानी पीना दोनो जल्द नीद लाने मे सहायक होते है। सोने से पहले आधा घटा तक मामूली गरम पानी से भरे टब मे लेटना अनिद्रा रोग की एक ही दवा है।

अनिद्रा-रोग का प्रकोप होते ही सर्व प्रथम एनिमा, कटि-स्नान तथा पेडू की पट्टी आदि द्वारा पेट को साफ कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् रोगी को पावो का गरम स्नान देना चाहिए। नीबू का रस मिला पानी रोगी को प्रचुर मात्रा मे रोज पीना चाहिए। सुबह के वक्त भीगी घास पर टहलना चाहिये। नीद लाने के लिए किसी नीद लाने वाली दवा का इस्तेमाल, हरगिज नहीं करना चाहिए।

मूर्च्छा

जब किसी कारण से मस्तिष्क मे अचानक रक्त का अभाव हो जाता है तब मनुष्य मूर्च्छित (Faint) होजाता है। उस वक्त मुख पीला पड़ जाता है, माथे से ठडा पसीना छूटने लगता है, आखो के सामने अधेरा छा जाता है, मनुष्य अचेत होकर पड जाता है।

मस्तिष्क मे रक्त का अभाव कई कारणो से होता है। इनमे लम्बा उपवास, अचानक अधिक रक्त शरीर से निकल जाना, तीव्र वेदना या चोट, दूषित गैस का सास के साथ भीतर चला जाना तथा भावावेग प्रधान हैं।

चिकित्सा

मूर्च्छा होते ही रोगी को आराम से उसके सिर को थोड़ा नीचा रखते हुए किसी हवादार स्थान में लिटा देना चाहिए। उसके बाद उसके शरीर पर के कपडों को ढीला कर देना चाहिए। सीने पर कपडे की भीगी पट्टी देकर चेहरे पर ठडे पानी का छीटा मारना चाहिए। पेडू पर भी मिट्टी की गीली पट्टी देने से अच्छा लाभ होता है। रीढ़ को भीगी तौलिया से पोछना या उस पर गरम-ठंडी सेक देना भी उपकारी होता है। होश होने पर गुनगुने पानी का एनिमा देना और मेहन-स्नान करना भी बहुत जरूरी है।

मस्तिष्क की नाड़ी का फटजाना

मस्तिष्क मे रक्ताधिक्य के कारण अथवा किसी रक्त-वहा नाड़ी मे एकाध रक्त-कणो के अटक जाने के कारण जब रक्त-संचार मे बाधा उपस्थित होजाती है तो मस्तिष्क की एक या कई दुर्बल नड़ियां एकाएक फट जाती हैं और उनसे रक्त-स्राव होने लगता है। उस वक्त सिर भारी हो जाता है और दर्द होने लगता है, चक्कर आता है, नेत्र-दोष उत्पन्न होजाते है, कान से कम सुनाई देने लगता है, नाक से खून गिरने लगता है, मतली होती है तथा मिजाज क्रोधी और चिड़चिड़ा होजाता है। ऐसा रोगी शीघ्र ही अचेत होकर मुंह से गाज गिराने लगता है और कभी-कभी उसके किसी अङ्ग मे लकवा के लक्षण भी दृष्टिगोचर होने लगते है। इस रोग को अंग्रेजी मे Apoplexy कहते है।

चिकित्सा

रोगी को तुरन्त सिरहाना ऊंचा करके खुली जगह में आराम से लिटा देना चाहिए। शरीर के कपडों को ढीला कर देना चाहिए और ठंडे जल से चेहरे को गर्दन तक धो-पोछकर सिर और गर्दन के ऊपर वर्फ जल से भीगी तौलिया लपेट देना चाहिए और उसे बदलते रहना चाहिए। उस वक्त हाथो और पावों को गरम कपड़ों मे लपेटकर या गरम पानी से भरी बोतलों द्वारा गरम रखना अतीव आवश्यक है। न हो तो दोनो हाथो और पैरो को गरम जल में रख लेना चाहिए।

मूर्च्छाभंग होनेपर रोगी को एनिमा देकर, कटि-स्नान और मेहन-स्नान कराकर उसके पेट को साफ कर देना चाहिए। रात भर के लिए कमर की भीगी पट्टी भी लगानी चाहिए। किसी अंग के बेकाम हो जाने पर उसका इलाज लकवा के इलाज की भाति करना चाहिए। शेष उपचार के लिए 'स्नायु सम्बन्धी रोगो की 'प्रायमिक-

इस रोग के अन्य कारणों, पथ्य एवं प्राथमिक चिकित्सा के लिये उपर्युक्त स्नायु-सम्बन्धी रोगो की प्राथमिक चिकित्सा-प्रकरण देखना चाहिए।

चिकित्सा

औषधोपचारक इस रोग मे प्राय. 'जमिनल' और ब्रोमाइड आदि विषाक्त औषधिया प्रयोग करके मस्तिष्क के स्नायुओं को चेतना शून्य कर देते हैं जिससे रोग और उसके लक्षण कुछ दब जाते हैं, पर रोग जड़ से हरगिज नही जाता। रोग को जड़ से दूर करने के लिये उपवास, रसाहार और फलाहार करने के बाद उपयुक्त आहार के साथ-साथ प्रातः काल कटि-स्नान, शुष्क घर्षण-स्नान तथा शाम को मेहन-स्नान, स्पाइनल बाथ या पेडू पर मिट्टी की पट्टी लगानी चाहिए। सप्ताह मे दो दिन एप्सम साल्ट-बाथ लेना भी जरूरी है। रोज आधा घंटा तक धूप में समूचे शरीर की तेल मालिश होनी चाहिए, इसके बाद खुरदुरे तौलिये से शरीर को रगड़–रगड़ कर पोछना चाहिए। तत्पश्चात् साधारण स्नान कर लेना चाहिए। मेरुदण्ड पर दो मिनट भीगी गरम तौलिया तथा एक मिनट ठंडी तौलिया बारी–बारी से रखकर आध घंटे तक सेंकना इस रोग मे बड़ा लाभ करता है।

आसमानी रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल की आधी-आधी छटांक की ८ खुराके रोगी को रोज पीनी चाहिए तथा बेहोशी की हालत में उसी जल का छीटा मुंह पर देना चाहिए या उस जल से भीगी कपडे की पट्टी माथे पर रखकर उसे बदलते रहना चाहिए।

पागलपन

नाड़ी-केन्द्र (मस्तिष्क) की विकृति का परिणाम पागलपन, उन्माद या Insanity होता है। इस रोग के कारण वे ही हैं जो अन्य स्नायु सम्बन्धी रोगो के कारण ऊपर बताये जा चुके हैं फिर भी भयानक कोष्ठबद्धता के कारण आंतो मे मल के सड़ने की वजह से दिमाग मे गर्मी का चढ़ जाना इस रोग का प्रधान कारण है।

चिकित्सा

उपवास या रसाहार, फलाहार, एनिमा तथा उपयुक्त आहार का आश्रय लेकर सर्व प्रथम कोष्ठ को साफ कर लेना चाहिए। उसके बाद ऐसा उपाय करना चाहिए कि २४ घंटो में ३ बार रोगी का पेट साफ होता रहे। उन्माद के रोगी को ठंडे पानी का एनिमा देना चाहिए। सुबह-शाम कटि-स्नान और मेहन-स्नान, रात भर के लिये मिट्टी की गीली पट्टी या कमर की गीली पट्टी तथा सप्ताह मे दो-एक बार शरीर पर एक घंटा के लिये भीगी चादर की लपेट लगाने से बहुत लाभ होता है। लपेट के समय रोगी का सिर भी मोटी, भीगी तौलिया से लपेट रखना चाहिए और जब वह गरम हो जाय तो उसे बदल देना चाहिए। रोगी को प्रचुर मात्रा मे नीबू का रस मिला पानी पिलाना चाहिए। यदि रोगी को एक घंटे तक मामूली गरम जल से भरे टब मे लिटाये रखा जाय तो केवल इतने ही से बहुत लाभ हो सकता है। इसके अतिरिक्त सबेरे सोकर उठने के तुरन्त बाद और रात मे सोने के तुरन्त पहले ठंडे जल से भिगोई हुई तौलिया से रोगी का समूचा शरीर पोंछ देना चाहिए। दिन मे २-३ बार सिर के ऊपर गीली मिट्टी की या भीगे कपडे की पट्टी रखना भी इस रोग मे लाभ करता है। सिर पर ठंडी पट्टी रखते समय पावों को गरम रहना चाहिए।

आसमानी बोतल के सूर्यतप्त जल की ४ खुराकें (एक खुराक आधी छटांक की) रोज पीनी चाहिए और नीली रोगनी सिर पर रखनी चाहिए।

अनिद्रा

अनिद्रा (Insomnia) अर्थात् नींद का न आना एक कठिन और कष्टदायक रोग है। इससे आदमी पागल तक हो जाता है। इस रोग के कारण अनेक हैं। जैसे कोष्ठबद्धता आदि रोगों के कारण रक्त का विषाक्त होना, मस्तिष्क मे रक्ताधिक्य, सोने जाने के पहले अधिक भोजन अथवा अधिक दिमागी काम करना, शारीरिक परिश्रम कम या बिलकुल न करना, रोगी होना, नये स्थान में सोना, कमरे मे प्रकाश और शुद्ध वायु का उचित प्रबन्ध न होना, एक ही कमरे मे बहुत से आदमियों का सोना, चारपाई और बिछौने आदि का गंदा और खटमलों वाला होना मादक द्रव्यो जैसे काफी-चाय आदि का सेवन, मुंह ढककर सोना मानसिक अथवा स्नायुविक उत्तेजना, शोरगुल वाला वातावरण, उत्तेजनापूर्ण और रोचक साहित्य का सोते समय अध्ययन तथा आत्मग्लानि आदि।

चिकित्सा

सर्व प्रथम जिन कारणों से अनिद्रा रोग क्र.पृ. ४६५

हैं उन्हें दूर करने की भरपूर कोशिश करनी चाहिए। सोने से पूर्व किसी कठिन विषय पर लिखी गयी कोई पुस्तक पढ़ने से थोड़ी ही देर मे आखें झपकने लगती है। भोजन में नमक की मात्रा कम कर देने से भी नीद आने में सहायता मिलती है। सोने के पहले मस्तिष्क को सभी प्रकार की चिन्ताओ और चिन्तनो से मुक्त कर देना चाहिए। रोज ठीक समय पर सोने का नियम बना लेना चाहिए। रक्त को शुद्ध बनानेवाला सात्विक और प्राकृतिक भोजन करना चाहिए।

अनिद्रा-रोग के अधिक उपचार के लिए सोने से पहले कमर और गर्दन पर कपड़े की गीली पट्टी बाधनी चाहिए। गीली पट्टी पर सूखा कपडा लपेटकर बिछावन को भीगने से बचाना चाहिए। सोने से पहले नहाना और गरम पानी पीना दोनो जल्द नीद लाने मे सहायक होते है। सोने से पहले आधा घंटा तक मामूली गरम पानी से भरे टब मे लेटना अनिद्रा रोग की एक ही दवा है।

अनिद्रा-रोग का प्रकोप होते ही सर्व प्रथम एनिमा, कटि-स्नान तथा पेडू की पट्टी आदि द्वारा पेट को साफ कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् रोगी को पावो का गरम स्नान देना चाहिए। नीबू का रस मिला पानी रोगी को प्रचुर मात्रा मे रोज पीना चाहिए। सुबह के वक्त भीगी घास पर टहलना चाहिये। नीद लाने के लिए किसी नीद लाने वाली दवा का इस्तेमाल हरगिज नहीं करना चाहिए।

मूर्च्छा

जब किसी कारण से मस्तिष्क मे अचानक रक्त का अभाव हो जाता है तब मनुष्य मूर्च्छित (Faint) होजाता है। उस वक्त मुख पीला पड जाता है, माथे से ठडा पसीना छूटने लगता है, आखो के सामने अंधेरा छा जाता है, मनुष्य अचेत होकर पड़ जाता है।

मस्तिष्क मे रक्त का अभाव कई कारणो से होता है। इनमे ज्यादा उपवास, अचानक अधिक रक्त शरीर से निकल जाना, तीव्र वेदना या चोट, दूषित गैस का सास के साथ भीतर चला जाना तथा भावावेग प्रधान है।

चिकित्सा

मूर्च्छा होते ही रोगी को आराम से उसके सिर को थोड़ा नीचा रखते हुए किसी हवादार स्थान में लिटा देना चाहिए। उसके बाद उसके शरीर पर के कपडो को ढीला कर देना चाहिए। सीने पर कपडे की भीगी पट्टी देकर चेहरे पर ठडे पानी का छीटा मारना चाहिए। पेडू पर भी मिट्टी की गीली पट्टी देने से अच्छा लाभ होता है। रीढ़ को भीगी तौलिया से पोछना या उस पर गरम-ठंडी सेक देना भी उपकारी होता है। होश होने पर गुनगुने पानी का एनिमा देना और मेहन-स्नान करना भी बहुत जरूरी है।

मस्तिष्क की नाड़ी का फटजाना

मस्तिष्क मे रक्ताधिक्य के कारण अथवा किसी रक्त-वहा नाडी मे एकाव रक्त-कणो के अटक जाने के कारण जब रक्त-संचार मे बाधा उपस्थित होजाती है तो मस्तिष्क की एक या कई दुर्बल नड़िया एकाएक फट जाती हैं और उनसे रक्त-स्राव होने लगता है। उस वक्त सिर भारी हो जाता है और दर्द होने लगता है, चक्कर आता है, नेत्र-दोष उत्पन्न होजाते है, कान से कम सुनाई देने लगता है, नाक से खून गिरने लगता है, मतली होती है तथा मिजाज क्रोधी और चिड़चिडा होजाता है। ऐसा रोगी शीघ्र ही अचेत होकर मुंह से गाज गिराने लगता है और कभी-कभी उसके किसी अङ्ग मे लकवा के लक्षण भी दृष्टिगोचर होने लगते है। इस रोग को अंग्रेजी मे Apoplexy कहते है।

चिकित्सा

रोगी को तुरन्त सिरहाना ऊंचा करके खुली जगह मे आराम से लिटा देना चाहिए। शरीर के कपडों को ढीला कर देना चाहिए और ठडे जल से चेहरे को गर्दन तक धो-पोंछकर सिर और गर्दन के ऊपर बर्फ जल से भीगी तौलिया लपेट देना चाहिए और उसे बदलते रहना चाहिए। उस वक्त हाथो और पावों को गरम कपड़ो मे लपेटकर या गरम पानी से भरी बोतलो द्वारा गरम रखना अतीव आवश्यक है। न हो तो दोनो हाथो और पैरो को गरम जल में रख लेना चाहिए।

मूर्च्छाभंग होनेपर रोगी को एनिमा देकर, कटि-स्नान और मेहन-स्नान कराकर उसके पेट को साफ कर देना चाहिए। रात भर के लिए कमर की भीगी पट्टी भी लगानी चाहिए। किसी अंग के बेकाम हो जाने पर उसका इलाज लकवा के इलाज की भांति करना चाहिए। शेष उपचार के लिए 'स्नायु सम्बन्धी रोगो की 'प्राथमिक-

चिकित्सा' देखना चाहिए। जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

झिनझिनियां

झिनझिनिया भी एक स्नायु सम्बन्धी रोग है जिसका उद्गम-स्थान शरीर का कोष्ठ प्रदेश है। इस रोग से वही व्यक्ति पीड़ित होता है जिसको पुरानी कोष्ठबद्धता की शिकायत होती है और जिसकी पाचन-शक्ति बहुत दिनों से क्षीण होती चली आती है। फल यह होता है कि वह जो कुछ खाता-पीता है उसका रस न बनकर उल्टे वह पेट में सड़ने लगता है जिससे एक प्रकार की विषैली गैस उत्पन्न होने लगती है, जो उर्ध्वगामी होकर मस्तिष्क की तरफ बढ़ने लगती है। मस्तिष्क तो स्नायुमडल का केन्द्र ठहरा, वह गैस वहा पहुँचकर उपद्रव आरम्भ करती है, और उसके बाद वह स्नायुओ द्वारा शरीर के रग-रग में व्याप्त होकर गडबड़ी पैदा कर देती है, जिससे दौरे आते है, शरीर अकड़ जाता है, मुंह विवर्ण हो जाता है, और पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक के सारे स्नायु, रोगग्रस्त एव उत्तेजित हो उठते हैं। यही झिनझिनियां रोग की उत्पत्ति का रहस्य है।

चिकित्सा

इस रोग के रोगी को, झिनझिनियां के प्रभाव से प्रभावित होते ही कटि-स्नान तब तक कराते रहना चाहिए जब तक शरीर भलीभाति ठण्डा न हो जाय। कटि-स्नान के समय टागो, पैरो और ऊपर के शरीर को शेष शरीर के साथ साथ ठडा न किया जाय। क्योंकि उन भागों मे रक्त का सचार कम होता है अतः उन्हे ऊनी कपड़े से ढके रहना चाहिए। रोग प्रायः एक ही बार के स्नान से काबू में आ जाता है। पर यदि ऐसा न हो तो कटि-स्नान चौवीस घटो में तीन बार तक दिया जा सकता है।

स्नायु सम्बन्धी रोगो की प्राथमिक चिकित्सा के नियमो का पालन करते हुये उपर्युक्त चिकित्सा चलानी चाहिए।

चोकर समेत आटे की रोटी, ताजे मौसमी फल, ताजी साग-सब्जिया, गाढी उडद या मूंग की छिलका समेत दाल, नये चावलो का माड समेत भात तथा धारोष्ण दूध आहार के रूप मे लेना चाहिए।

मसाला, नशे की चीजें, तेल, अधिक नमक, अधिक चिकनाई, सफेद चीनी, खटाई, सिरका, अचार, वनस्पति घी तथा तली भुनी चीजों से परहेज करना चाहिये।

बवनापन

यद्यपि बवनापन या छोटे कद का होना कोई रोग नही है, फिर भी बहुत से लोग जो छोटे कद वाले होते हैं अपनी ऊंचाई बढाने के लिए लालायित रहते है। क्योंकि मनुष्य की ऊंचाई के साथ उसके व्यक्तित्व का बहुत गहरा सम्बन्ध होता है।

हमारी रीढ हड्डियों के छोटे-छोटे ३२ टुकड़ो, जिन्हे कशेरुकाएं कहते हैं, से बनी है। ये टुकड़े एक के ऊपर एक स्थित होते है जिनके बीच में मुलायम तन्तुओं के गद्दे होते हैं जिन्हे उपास्थि (Cartilage) कहते हैं। देखने मे कशेरुकाये तागे की झिल्लियो में पिरोयी जान पड़ती हैं जो रबड़ की भाति लचीली होती हैं। ये ही झिल्लियां जब बढ़ती है तो शरीर को ऊंचा बनाती है। किसी कारण से जब इनमे रुधिर का दौरा नही हो पाता तब शरीर छोटा या बवना रह जाता है। रीढ़ पर गलत तरीके से बोझ पड़ने से झिल्लियो का लोच कुंठित हो जाता है, पर आराम मिलने से या सही तरीके से बोझ पड़ने से वे स्वभावतः बढ़ जाती है। यदि रीढ की हड्डी कमान की तरह झुकाई न जाय और बैठते, उठते, चलते तथा सोते—हर वक्त तीर की तरह सीधी रखी जाय तो कुछ ही दिनो में शरीर की ऊंचाई आश्चर्यजनक रूप से बढ जा सकती है।

यह भी देखा गया है कि मानसिक श्रम करने वालों से शारीरिक श्रम करने वालो की ऊंचाई कम होती है। ऐसी भी बात नही है कि बीस वर्ष का युवा ही ऊंचा हो सकता है। किसी भी उम्र का आदमी यदि दृढ विश्वास करके निम्नलिखित नियमो का पालन करे तो अभिलषित लम्बाई प्राप्त कर सकता है।

चिकित्सा

ऊंचाई बढाने के लिये सर्वप्रथम यह जरूरी है कि भोजन ऐसा किया जाय कि उसमे शुद्ध खून बने और शरीर में विजातीय द्रव्य का परिमाण न बढने पाये। इसलिए भोजन मे अच्छे धारोष्ण दूध, फल, मेवे, शहद, मठा, दही, उबली और कच्ची साग-सब्जियां आदि

सात्विक और सप्राण खाद्य पदार्थों को अधिक स्थान मिलना चाहिये ।

सदा तनकर, छाती आगे निकाल तथा गर्दन सीधी रखकर बैठना चाहिये । कुर्सी पर बैठते समय पीठ सीधी करके पूरी कुर्सी पर बैठना चाहिये, किनारे पर नही । डेस्क या मेज पर झुकते समय पीठ को एक लाइन मे सीधी झुकाना चाहिये न कि पीठ के दो हिस्से करके । चलते समय पीठ सीधी, कधे पीछे को ओर झुके हुये, सीना आगे की ओर निकला हुआ तथा हाथ घड़ी के लटकन की तरह झूलते रहने चाहिये । सोते समय पीठ और पैर एक सीध मे रहने चाहिए ।

रोज नियमितरूप से शीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन, भुजङ्गासन, हलासन, उड्डियान तथा नौलि-क्रिया करने से भी ऊंचाई बढती है ।

ऊचाई बढाने में निम्नलिखित गहरी श्वास की कसरतें तथा विशेष शारीरिक व्यायाम अधिक लाभप्रद सिद्ध होते हैं :—

श्वासोच्छ्वास सम्बन्धी व्यायाम—(१)–खुली जगह पर सीधे खडे हो जाये । दोनों हाथ बगल मे लटकते रहे और सिर सीधा रहे । अब नाक से सास अन्दर ले जाते हुए दोनो हाथ बगल से धीरे धीरे ऊपर उठाये ताकि वे कंधों की सीध मे आ जाये । हाथ तने रहे और कुहनियो से मुड़ने न पाये । इस स्थिति मे कुछ क्षण ठहरकर हाथो को जहां तक हो सके पीछे ले जाये । अब सिर को थोड़ा पीछे झुका दे और फेफड़ों मे थोड़ी हवा और भरले । कुछ क्षण इस स्थिति मे ठहरे और तब धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालते हुए पूर्वस्थिति मे आ जाये ।

(२) व्यायाम न० १ की स्थिति मे खडे होकर श्वास को भीतर खींचते हुए दोनों हाथ बगल मे ऊपर उठाते हुए कधो की सीध मे ले आये । इस समय तक श्वास इतनी ही भीतर ले कि फेफडे हवा से आधे भर जाये । कुछ क्षण ठहरे और तब हाथों को धीरे-धीरे ऊपर उठाते हुए पंजों पर खड़े हो जाये तथा श्वास भीतर खीचकर फेफड़ो को हवा से पूरा भरले । इस स्थिति मे कुछ क्षण ठहरे और धीरे धीरे श्वास बाहर निकालते हुए पूर्व स्थिति मे आ जायें ।

(३) व्यायाम नं० १ की स्थिति मे खड़े होकर दोनो हाथो को सामने की तरफ ऊंचे उठाते हुए कंधो की सीध मे ले जायें । इस समय तक श्वास भीतर खीचते हुए फेफड़ो का एक तिहाई भाग हवा से भरलें । कुछ ठहरकर तने हुए हाथो को ऊपर उठ ते हुए सिर के ऊपर की ओर ले जाये । इस समय तक फेफड़े हवा से दो तिहाई भरजायेंगे । अब हाथो को पीछे झुकाते हुए कधो की ऊंचाई से कुछ नीचे तक ले जाये और फेफड़ो को हवा से पूरा भरल
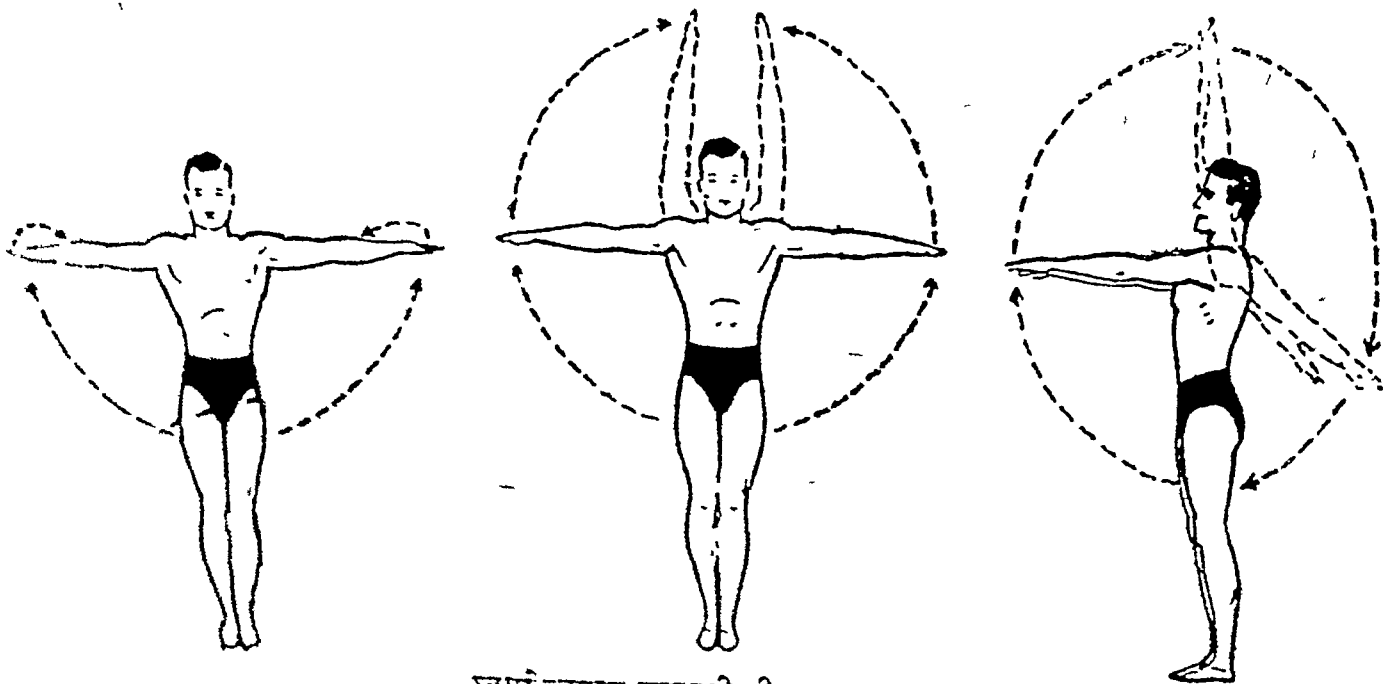
श्वासोच्छ्वास सम्बन्धी तीन व्यायाम

इस स्थिति मे कुछ क्षण ठहरे और श्वास को धीरे धीरे बाहर निकालते हुए पूर्व स्थिति मे आ जाये ।

गर्दन और रीढ़ सम्बन्धी व्यायाम—आराम से सीधे खड़े हो जाये । सिर सीधा रहे और कधे थोड़ा पीछे झुके हुए । दोनो हाथो की अंगुलियो को मजबूती से फसाकर दोनो हथेलियो को सिर के पिछले भाग पर जमादे । गर्दन कड़ी करलें और दोनो हाथो से सिर को बलपूर्वक धीरे-धीरे नीचे की ओर इतना झुकाये कि ठुड्डी छाती से जा लगे । इस स्थिति मे कुछ क्षण ठहरकर सिर को

गर्दन और रीढ सम्बन्धी व्यायाम

पीछे की ओर धीरे-धीरे जहां तक संभव हो ले जाये । इस समय हाथों का दबाव कम रहेगा ।

रीढ़ को बढ़ाने और कमर को मजबूत बनाने वाला व्यायाम—जमीन पर पीठ के बल लेटजाये । सारे शरीर की मांसपेशियों को ढीली करदें । दोनों हाथ अगल-बगल रखें । अब कमर, नितम्ब और कंधों को फैलाने का प्रयत्न करें । पैर के पंजो को सामने नीचे की ओर ताने । सिर व कंधों को ऊपर की ओर खीचे और छाती को इतना फैलायें कि वह धनुषाकार हो जाय । कुछ क्षण इस स्थिति मे ठहर कर साधारण स्थिति में आ जायें कुछ क्षण आराम करें और इसे फिर दुहरावें । लेकिन इस बार हाथों को सिर के पीछे जमीन पर रखें । पैरो के पंजो को किसी चीज से दबा लें और दोनों हाथो से किसी चीज से पकड़ कर सारे शरीर को तानकर लम्बा करने का प्रयत्न करें । कुछ क्षण इस स्थिति मे ठहरकर स्थिति मे आ जाये ।

रीढ़ को बढाने और कमर को मजबूत बनाने वाला व्यायाम

कमर और पैरों के लिये व्यायाम—किसी कुर्सी पीठ से पीठ लगाकर सीधे खड़े हो जायें । दोनो हाथों कुर्सी को मजबूती से पकड़ ले । इस तरह कुर्सी का सहा लेकर अपना दाहिना पैर कमर से धीरे-धीरे जितना ब सके ऊपर उठाये । इस बात का ध्यान रखें कि पैर घुट से मुड़ने न पावे और पजा तना रहे । कुछ क्षण इ स्थिति में ठहरकर पैर धीरे-धीरे नीचे ले जायें । यही क्रिया बांये पैर से करें । पैर को धीरे-धीरे अधि ऊंचा उठावे । थोड़े अभ्यास के बाद पैर कमर की सी मे आने लगेगा ।
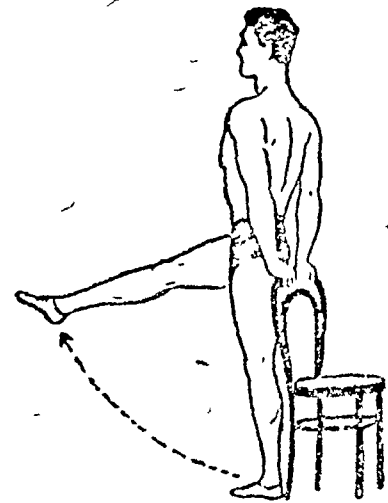
कमर और पैरों के लिये व्यायाम

हाथ-पैर और धड़ के लिये व्यायाम—कमरे की छ मे कोई चीज लटका दें । अब शरीर को तानकर दोनों हाथो को फैलाकर और सिर को थोड़ा पीछे झुकाकर उसे छूने का प्रयत्न करते हुए ऊपर की ओर कूदें ।

समय इस बात का ख्याल रखे कि पैर कड़े रहे और पीठ तनी हुई।

उपरोक्त कसरत को आनन्दपूर्वक विश्वास के साथ इच्छानुसार कई बार दुहरावें।

हाथ पैर और धड़ के लिये व्यायाम

हकलाहट

नाड़ी दौर्बल्य के परिणामस्वरूप मनुष्य हकलाने लगता है। यह भी देखा गया है कि किसी दूसरे हकलानेवाले व्यक्ति की हकलाहट की नकल करने से थोड़े ही दिनो मे नकल करने वाला व्यक्ति भी हकलाने लगता है।

चिकित्सा

सर्व प्रथम नाडी-दौर्बल्य निवारण के इस प्रकरण के प्रारम्भ मे वर्णित प्राथमिक चिकित्सा सम्बन्धी नियमो को कड़ाई के साथ पालन करना चाहिए। उसके बाद निम्नलिखित व्यायाम और प्रयोग करने चाहिए—

जबड़ो की पेशियो के कड़ापन और होठो की गति [illegible] के कारण भी हकलाहट होती है। इसके लिये मुंह मे उंगली डालकर नीचे का जबड़ा धीरे-धीरे नीचे की ओर ले जाना चाहिए। पेशियो को ढीला छोड़ देना चाहिए जिससे जबड़ा अपने ही भार से नीचे की ओर चला जाय। गले मे कोई गति नही होनी चाहिये। इस व्यायाम से कुछ ही दिनो में मुंह बिना गले की हरकत के पूरा-पूरा खुलने लगेगा।

जबड़ो के बाद जीभ को लचीली बनाने के लिये किसी आराम कुर्सी पर लेटकर शरीर को निश्चेष्ट और शिथिल कर देना चाहिए। तत्पश्चात् चेहरे की पेशियों को ढीली करके जबड़े को नीचे गिरने देना चाहिए। इस समय जीभ मुंह के तले पर चिपटी पड़ी होगी। इस व्यायाम को तब तक करना चाहिये जब तक जीभ बिलकुल लचीली न हो जाय।

मुंह की पेशियों के कुछ ठीक हो जाने पर रोज आइने के सामने १५ मिनट तक जोर-जोर से कुछ पढ़ना चाहिए। उस समय गहरी सांस लेते रहना चाहिए और प्रत्येक शब्द का उच्चारण स्पष्ट रूप में करने की कोशिश करना चाहिए।

उपर्युक्त के अतिरिक्त नीचे लिखे उपाय जिनका प्रयोग काशी मनोविज्ञानशाला मे किया गया है काम में आ सकते है—

(१) हकलाने वाले व्यक्ति के प्रति सद्भाव प्रदर्शित करना और अपनी बातचीत से उसे उत्साहित करना।

(२) हकलाने वाले को रचनात्मक कार्य मे लगाये रखना। जब किसी व्यक्ति की उन्नति एक ओर होती है तो दूसरी ओर भी उसकी उन्नति होती है।

(३) शान्त भावना का अभ्यास करना। इसके लिये रोगी को किसी एकान्त स्थान पर शान्त भाव से लेटे जाना चाहिए और उसे अपने आप को निर्देश देना चाहिए कि मैं शान्त हूं। किसी भी नये व्यक्ति से बोलते समय उसे अपनी शान्त भावना के आभास को स्मरण कर लेना चाहिए। अपने विचारो को शिथिल अङ्ग करके श्वास-प्रश्वास पर केन्द्रित करने पर भी लाभ होता है। यह आनापानसति का अभ्यास है।

(४) बालको की भाषा-शिक्षा के कार्य से रोगी की हकलाहट मे सुधार होता है। सभी प्रकार की मैत्री-

भावना के अभ्यास से इससे लाभ होता है। समाज सेवक की हकलाहट शीघ्र छूट जाती है।

(५) मानसिक रेचन—अपने दबे भावो के रेचन से हकलाहट में अवश्य सुधार होता है। इसके लिये दो मार्ग हैं—एक अपने आप को किसी श्रद्धेय व्यक्ति के समक्ष धीरे-धीरे खोलना और दूसरा मानसिक शिथिलीकरण द्वारा अपने ही दमित भावो को साक्षी रूप से देखना। पहली क्रिया को मनोविश्लेषण और दूसरी को आत्मबोध की क्रिया कहा जाता है।

(६) हकलाहट को छिपाने का प्रयत्न न कर अपनी इस कमी को पहले से ही दूसरों को बता दिया जाय। छिपाने के प्रयत्न से सभी प्रकार के मानसिक दोष बढ़ते हैं और उनको प्रकाशित होने की छूट देने से वे घट जाते हैं।

(७) जान बूझ कर हकलाना भी हकलाने का काम करना है। मनुष्य जिस बात से डरता है वह उसके गले पड़ती है, जिससे निर्भीक हो जाता है वह उसे छोड़कर भागती है।

(८) सनिर्देश की प्राप्ति से हकलाहट मे कमी होती है। यह साधारण अवस्था मे और विशेष अवस्था मे सम्भव है। रोगी को बिस्तर पर लिटाकर शान्त भाव का 'पास' देने से यह रोग नष्ट होता है। 'पास' देने पर रोगी सो जाता है और उसका रोग धीरे-धीरे चला जाता है। परन्तु यह प्रयोग छोटी उमर के लोगों पर ही सम्भव है।
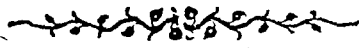
लोगो को भात चाहिए चालमोगरे की कली जैसा। पहले वे ही मिल का पालिश किया हुआ चावल लेते हैं जिस पर से सारा पौष्टिक तत्व उतार लिया जाता है। जहा से अंकुर निकलता है वही चावल का सबसे अधिक पौष्टिक भाग होता है। वह भाग चला जाता है। फिर भात सफेद हो इसलिये पानी से इतनी दफा धोते है कि थोड़ा बहुत और भी तत्व निकल जाता है। फिर उबालने पर जो माड़ रहता है उसे भी निकाल देते हैं। इस तरह से चावल को बिलकुल निःसत्व करके खाते हैं। वह भी अगर पूरा पका हुआ नहीं तो बराबर चबाया नही जा सकता और आवश्यकता से अधिक खाया जाता है। खाते ही नीद आने लगती है और फिर गणेश जैसी तोंद निकल आती है।

—महात्मा गांधी

× × × ×

अगर आजकल की सारी दवाइयो को समुद्र मे डुबो दिया जाये तो सारी मानव जाति की भलाई होगी और मछली जैसे जल-जन्तुओ को आपत्ति होगी।

—डा० आलिवर वेण्डल होम्स, एम० डी०

धन्वन्तरि

प्राकृतिक-चिकित्सांक

वर्ष ४०   अङ्क ३
मार्च   १६६६

सातवाँ अध्याय

पुरुष जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग

स्वप्नदोष

स्वप्नदोष को उर्दू मे एहतेलाम और अंग्रेजी में Wet dreams, Noctural emission अथवा night-Polution कहते हैं।

शरीर में विजातीय द्रव्य की उपस्थिति के कारण जब शरीर के स्नायु-जाल में विकार उत्पन्न हो जाता है तो पुरुष विवाहित हो या अविवाहित, उसको स्वप्न मे या जाग्रत अवस्था में भी वीर्यपात हो जाया करता है।

महीने में तीन-चार बार स्वप्नदोष का होना, यदि उसके फलस्वरूप सिर मे पीड़ा और बदन मे सुस्ती न आवे तो विशेष चिन्ता का विषय न होना चाहिए। परन्तु इससे अधिक बार स्वप्नदोष होना निश्चय ही इस बात का सूचक है कि शरीर का नाड़ी-जाल विजातीयद्रव्य के भार से वेतरह आक्रान्त है जिसे यदि शीघ्र निर्मल न किया जायगा तो शरीर में स्वप्नदोष से भी अधिक भयानक रोगों के उत्पन्न हो जाने की पूरी-पूरी सम्भावना हो जायगी।

स्वप्नदोष-रोग की चिकित्सा आरम्भ करने के पहले रोगी को कम से कम २४ घटे का उपवास कागजी नींबू का रस मिले जल पर रहकर करना चाहिए। उसके बाद दो-तीन दिनो तक फलों के रस पर रहना चाहिए। उपवास और रसाहार पर रहने के दिनो मे दोनो वक्त एनिमा लेना जरूरी है। तत्पश्चात् एक सप्ताह तक सुबह को धारोष्ण गाय का दूध और फल तथा शाम को उबली शाक सब्जियां और सलाद ले। शाम का भोजन हलका होना चाहिये और सूर्यास्त के पहले ही लेना चाहिए। इन दिनों जब कभी कब्ज रहे, एनिमा लेकर पेट साफ कर लेना चाहिए। उसके बाद सुबह को फल और दूध तथा शाम को चोकर समेत आटे की रोटी, एक-दो प्रकार की उबली शाक-सब्जी तथा सलाद ले।

जब से फल-दूध का भोजन आरम्भ किया जाय तब से रोज नियमपूर्वक ठीक समय पर नीचे का उपचार-क्रम चलाना चाहिए—

५ बजे सुबह शौचादि से निपट लेने के बाद पेडू तथा जननेन्द्रिय पर मिट्टी की पट्टी ४५ मिनट तक लगाने के बाद १० मिनट तक कटि-स्नान करे। ३ बजे दिन को पहले दिन रीढ की गीली पट्टी ३० मिनट तक या नीद आजाने पर नींद खुलने तक दे, तथा दूसरे दिन १० मिनट तक मेहन-स्नान करे। इसी प्रकार कुछ दिनो तक करे। रात को सोते वक्त कमर की गीली पट्टी लगाकर सोये या पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखकर।

आसमानी या हल्के नीले रंग की बोतल के सूर्य-तप्त जल की आधी-आधी छटाक की चार खुराके दिन में पिये तथा ६ बजे रात को सोने से पहले उसी रंग की बोतल मे तय्यार किये हुए तेल की मालिश मेरुदण्ड के निचले हिस्से पर, सिर के पिछले हिस्से पर तथा दिल पर ५ मिनट तक करे। उसके बाद अण्डकोष तथा जननेन्द्रिय को ५ मिनट तक किसी ठडे पानी से भरे बर्तन मे रखे, फिर निकालकर पोंछ डाले और पैरों को घुटनो तक, बाहों को कुहनियो तक, गले के पिछले भाग को तथा नाभि को ठंडे पानी से अच्छी तरह पोंछ डाले। सबके बाद एक गिलास गरम पानी मे आधा कागजी नीबू का रस निचोड़कर पीजाय और दाहिने करवट लेट जाय। चित्त लेटकर कभी न सोये। रात को जब नींद उचट जाय तो उठकर ठडे जल से भीगी तौलिया से समस्त शरीर को पोंछ डाले और पुनः सो जाय।

साधारण स्नान के समय कम से कम ५ मिनट तक गर्दन के पीछे तथा रीढ़ पर ठडे जल की धार गिरने देना चाहिए।

सुबह या शाम को शीर्षासन, सर्वांगासन, अंगुष्ठासन, धनुरासन तथा सर्पासन इस रोग मे बड़ा लाभ करते हैं। दिन मे दो-तीन बार गहरी सांस की कसरतें करना भी इस रोग मे बहुत जरूरी है।

शुक्रप्रमेह, शीघ्रपतन तथा शिश्न की सुस्ती आदि

नाभिचक्र से वीर्य जिस समय प्रमेहा नाड़ी से होकर अण्डकोष की ओर आता है तो वह अण्डकोष में [illegible]

होने के बजाय जब मूत्रेन्द्रिय से बाहर आने लगता है तो इस अवस्था को रोगावस्था समझना चाहिए। वीर्य जब स्वप्नावस्था मे बाहर आता है तो वह स्वप्नदोष कहलाता है, और जब जागृत अवस्था मे पेशाब के साथ बाहर आता है तो उसे प्रमेह या शुक्रप्रमेह कहते है। शुक्र प्रमेह को उर्दू मे जरियानमनी कहा जाता है। इस रोग मे वीर्य बिना इच्छा के, बिना किसी उत्तेजना के, या अल्प उत्तेजनासे, पेशाव-पाखाना करते समय जोर लगाने से, स्त्री को देखने मात्र से, नंगी तस्वीर, कामोत्तेजक साहित्य पढने से, तथा घोड़े आदि की सवारी करने से ही, पतला होकर अपने आप मूत्रेन्द्रिय की राह गिर पड़ता है।

शीघ्र पतन को उर्दू में सुरअत अंजाल और अंग्रेजी मे Low retention, Rapid ejaculation, या Premature ejaculation कहते है। इसमे पुरुष मैथुन के समय बहुत जल्द अथवा स्त्री के स्खलित होने से पहले ही स्खलित हो जाता है जिससे मैथुन का मन्तव्य पूरा-पूरा हल नही होने पाता।

वीर्य का पतला होना भी एक दोष है। इसको उर्दू मे रिकतमनी कहते है।-

मैथुन के समय शिश्न का कड़ा न पड़ना एक बहुत बड़ा दोष है। क्योकि ढीले और सुस्त शिश्न से मैथुन-क्रिया सम्पन्न ही नही हो सकती। इस रोग को उर्दू मे नुकसानबाह या जोफबाह कहते है। इसमे शिश्न योनि के भीतर प्रवेश करने के बाद उसकी गर्मी से दृढ होता है, या स्खलन के पहले ही बिना कारण के ढीला पड जाता है, या पूरी तौर से दृढ और सख्त नही होता, या योनि के भीतर प्रवेश करने के पूर्व ही स्खलित हो जाता है, या बहुत कोशिश करने और धक्का आदि देने के बाद स्खलित होता है।

जननेन्द्रिय से सम्बन्ध रखने वाला एक और रोग है। इसमे वीर्य के निकलने के प्रथम एक प्रकार का स्राव [illegible] उर्दू मे मजी कहते है, निकलकर रास्ते को चिकना [illegible] है पर स्राव निकलना बंद होजाता है जिससे वक्त [illegible] वीर्य निकलते समय मूत्र-नलिका को क्षति पहु- [illegible] सम्भावना रहती है।

उपर्युक्त सभी रोगों के कारण अस्वाभाविक इन्द्रिय- [illegible] [illegible] इन्द्रिय-सुख, [illegible]

क्रमिरोग, कोष्ठबद्धता, शरीर मे विजातीय द्रव्य की उपस्थिति, तथा असंयमी जीवन है।

आजकल ९९ प्रतिशत मर्दों मे ये रोग पाये जाते है। इन रोगों से आक्रान्त रोगी अपनी स्त्रियों को मैथुन मे संतोष नही प्रदान कर सकते जिसकी वजह से स्त्रियों के सामने उनकी बडी भद्द होती है जिससे वे मारे शरम के गड़ जाते है। मैथुन सम्बन्धी इस अतृप्ति के कारण स्त्रिया प्रायः कितनी ही योनि-सम्बन्धी बीमारियो का शिकार होकर अपने जीवन से ही निराश हो जाती हैं।

चिकित्सा

एक से तीन दिन का उपवास। फिर कब्ज टूटने तक रसाहार, और फलाहार साथ मे सुबह-शाम गुनगुने तत्पश्चात् ठंडे पानी का एनिमा। उसके बाद दिन मे दो बार ठंडे पानी का कटि-स्नान २०-२० मिनट और तीसरी बार सोने से आध घंटा पहले गुनगुने पानी का कटि-स्नान, १५ मिनट तक। रोज रात भर के लिए जननेन्द्रिय और पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी या भीगी कमर पट्टी। प्रति दूसरे दिन पूरे शरीर पर भीगी चादर की लपेट कुछ दिनों तक। गर्मियो मे दिन मे दो बार ठंडे पानी से साधारण स्नान तथा स्नान करते वक्त ५ मिनट तक पानी की धार को मेरुदण्ड पर पड़ने देना। बढ़े रोग मे सोते समय गर्दन के नीचे बर्फ की थैली रखकर सोना। कभी-कभी धूप नहान। शक्ति भर हलका व्यायाम या सुबह-शाम शुद्ध वायु मे टहलना। रोज हलासन आधा मिनट तक। हल्की नीली बोतल का सूर्यतप्त जल दिन मे ८ बार एक एक आउंस पीना। अंकुरित या भीगा चना, अथवा गेहूं, सूखे मेवे, धारोष्ण कच्चा दूध, विटामिन ई, ए और बी वाले खाद्य पदार्थ, पालक, टमाटर तथा अनुत्तेजक आहार विशेष रूप से लेना। रात को सोने से पहले अण्डकोष को ५ मिनट तक ठंडे पानी में रखना तथा नाभी, हाथ-मुंह तथा गर्दन को ठंडे पानी से धो पोंछकर डण्डी पर लाल बोतल मे तय्यार किया हुआ सूर्य तप्त तेल दो-तीन मिनट तक मलकर तब सोना उपर्युक्त रोगो की अचूक और प्राकृतिक चिकित्सा है।

मूली की जड़ एक माशा, पान के साथ सुबह-शाम या उस की छाल का एक माशा चूर्ण शाम को भिगोकर और सुबह को छानकर पीना, उपर्युक्त रोगों में बड़ा लाभ-

कारी होता है।

गुदा-मैथुन और हस्त-मैथुन

गुदा-मैथुन को उर्दू मे अगलाम, तथा हस्त-मैथुन या हथरस को जलक और अग्रेजी में मास्टरवेशन कहते हैं। ये दोनों गंदी और बुरी आदतें है जो मुश्किल से छूटती हैं और कुसंगत से पड़ती हैं। स्वाभाविक मैथुन स्त्री-पुरुष के संयोग से होता है। पर जिस क्रिया मे मूत्रेन्द्रिय को हाथ से मलकर वीर्य गिराया जाता है, उसे हस्त-मैथुन कहते है। अस्वाभाविक तरोके से वीर्य गिराने के लिए और भी तरीके काम में लाए जाते हैं जिनमे से गुदा-मैथुन या पुरुष पुरुष का सयोग एक है।

इन कुटेवो से पुरुष नपुंसक तो नही होता, परन्तु इनके भयकर दुष्परिणामों पर जब वह गौर करता है तो घबड़ा जाता है जिसका कुफल नपुंसकता अवश्य होती है। इन कुटेवो मे फसने वाले पुरुषों को निम्नलिखित दुष्परिणाम भोगने पड़ते है.—

(१) वीर्य पतला पड़ जाता है और उसमे कमी आजाती है

(२) स्वप्नदोष निरन्तर होने लगता है।

(३) सम्भोग-शक्ति क्षीण या बिलकुल गायब हो जाती है।

(४) पुरुष नपुसक हो जाता है।

(५) कब्ज पीछा नही छोडता।

(६) पाचन-शक्ति जवाब दे जाती है।

(७) शरीर दुबला और कमजोर हो जाता है।

(८) स्मरण शक्ति कम हो जाती है।

(९) आंखो से कम दिखाई देने लगता है और वे गड्ढो में घुस जाती हैं।

(१० अण्ड-कोष लटक जाते हैं।

(११) सर्दी-खासी बराबर रहने लगती है।

(१२) पुरुष उत्साह हीन और जीवन से निराश हो जाता है।

(१३) सिर मे दर्द रहने लगता है।

(१४) त्वचा की आब जाती रहती है।

(१५) इन्द्री टेढ़ी, चेहरे का रग उड़ा-उड़ा तथा गाल पिचक जाते हैं।

(१६) ऐसे मनुष्य को अंत मे शुक्रप्रमेह, मिर्गी, यक्ष्मा या पागलपन आ घेरता है जिससे उसकी मौत हो जाती है।

चिकित्सा

सबसे पहले इन कुटेवो से हाथ खीच लेने की कोशिश होनी चाहिए। पर यह काम बहुत मुश्किल है। क्योकि इस विषय मे किसी प्रकार का उपदेश निरर्थक सिद्ध होता है। यह काम तो प्रबल आत्म-नियन्त्रण तथा मानसिक-शक्ति की वृद्धि से ही बन सकता है। जिसके लिए सयमी पुरुषों की सगत करना चाहिए, सद्ग्रन्थो का अवलोकन करना चाहिए, नियमित रूप से विशुद्ध वायु मे हरी घास पर पादचारी करना चाहिए, प्रात.काल उठकर उषा-दर्शन और सूर्य नमस्कार की कसरतें करनी चाहिए, तथा अपने विचार विशुद्ध रखने चाहिए। सप्ताह मे एक दिन उपवास करने, नमक खाना त्याग देने, एकान्त से बचने तथा सच्चे दिल से भगवान को याद करने व प्रार्थना करने से इन कुटेवो पर विजय अवश्य प्राप्त होती है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त ऐसे पुरुषो को चाहिए कि वे कब्ज को कभी न होने दे, और यदि हो तो उसको दूर करने की कोशिश करें। पाचन-शक्ति बढाने के लिए सामर्थ्य के अनुसार आसन-व्यायाम आदि करें। हल्का और सुपाच्य भोजन करे, ठडे पानी से नहायें तथा पेशाव-पाखाना के बाद इन्द्रिय को खूब ठडे पानी से धोयें।

नियमित रूप से दोनो समय मेहन-स्नान करने से भी इन कुटेवो से छुटकारा पाया जा सकता है।

नामर्दी

नामर्दी को नपुसकता भी कहते है। अग्रेजी मे इसे Impotency या Sterelity कहते हैं। इसमे पुरुष अपने को मैथुन के योग्य नही पाता। उसकी मैथुन-कार्यक्षमता लोप हो जाती है और वह स्त्री के साये से कतराने लगता है। नामर्दी दो प्रकार की होती है—पूर्ण और आंशिक। नामर्दी के लक्षणो मे इन्द्रिय में सख्ती का न होना या हो तो उसका मैथुन के लिए अयोग्य होना, मैथुन करने की शक्ति न होना, इन्द्रिय का इतना छोटा होना कि वह स्त्री प्रसंग के काबिल न हो, तथा अण्डकोषो का अस्वाभाविक रूप से छोटा होना या बिलकुल ही न होना आदि शामिल हैं।

शरीर मे विजातीयद्रव्य का एकत्र होना, स्नायु जाल

का दुर्बल होना तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी अन्य रोगो का पुराना पड़ जाना, नामर्दी के प्रधान कारण हैं। अत्यधिक सम्भोग, बहुत दिनो तक सम्भोग न करने तथा अत्यधिक साइकिल की सवारी से भी नामर्दी होते देखी गयी है।

चिकित्सा

इस रोग मे दिन मे कई बार और काफी परिमाण में जल पीना चाहिए। सारे बदन मे आसमानी रग की बोतल के सूर्यतप्त तेल की मालिश करानी चाहिए। २४ घटो मे दो बार ठडे पानी से साधारण स्नान करना चाहिए। उस वक्त ५ मिनट तक मेरुदण्ड पर जल की धार अनवरत रूप से गिरने देना चाहिए। १५ दिन पर एक दिन समूचे शरीर पर भीगी चादर की लपेट लगाना चाहिए। सुबह को कटि स्नान तथा शाम को मेहन-स्नान नियमपूर्वक करना चाहिए। रात को सोते वक्त कमर की गीली पट्टी लगाकर सोना चाहिए तथा सप्ताह मे आवश्यकतानुसार दो बार तक समूचे शरीर का वाष्प-स्नान देना चाहिए।

आसमानी रग की बोतल का सूर्यतप्त जल दो भाग और गहरी नीली बोतल का एक भाग एक मे मिलाकर आधी-आधी छटाक की खुराक से दिन मे ८ खुराके लेनी चाहिए, लाल रग की बोतल के सूर्यतप्त तेल की मालिश इन्द्रिय और कमर पर करनी चाहिए तथा लाल रग का प्रकाश रोज आध घण्टा तक इन्द्रिय पर डालना चाहिए।

फोता बढ़ना

फोता बढने या अण्ड-वृद्धि को अंग्रेजी मे Hydrocele कहते है। इस रोग मे शरीर मे मल परिपूरित होने के फलस्वरूप फोतो मे पानी उतर आता है जिससे वे फूल जाते है और उनमें पीड़ा होने लगती है।

शरीर मे अधोवायु के कुपित होकर अण्डकोष और अङ्गो की सन्धियो मे पहुंचने, मल-मूत्र के वेग को रोकने, भारी वजन उठाने, बहुत अधिक पैदल चलने अङ्गो, को तोड़ने या अङ्गड़ाई लेने तथा अधिक मैथुन करने से भी कभी-कभी यह रोग हो जाता है। यह रोग धीरे-धीरे बढता है। इस रोग के परिणामस्वरूप जननेन्द्रिय की सारी नसे कमजोर और ढीली पड़ जाती है, उनमे शिथिलता आजाती है, मस्तिष्क-शक्ति क्षीण हो जाती है, कभी-कभी कै और मतली भी होती है, कब्ज रहने लगता है।

इस रोग के लिए एलोपैथिक डाक्टरो के पास सिवाय आपरेशन के और कोई दवा नही है, जिससे रोग बार बार उभड़ा करता है और बार-बार आपरेशन कराना पडता है जिसके फलस्वरूप कभी-कभी जान भी गवानी पड़ती है।

चिकित्सा

सर्व प्रथम ३ दिनों का उपवास या रसाहार कराना चाहिए। फिर १० दिनों तक फलाहार। उसके बाद फल-दूध। इन दिनों दोनों वक्त या एक वक्त एनिमा जरूर लेना चाहिए। फोतो पर रोज शाम को १५ से ३० मिनट तक वाष्प-स्नान देने के बाद पावों को गरम जल मे रखकर कटि-स्नान लेना चाहिए। सातवें दिन समूचे शरीर की गीली पट्टी देना चाहिए। रोज सुबह आध घण्टा तक पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखने के बाद मेहन स्नान करना चाहिए। रात को फोतो पर कपड़े की उष्णकर पट्टी तथा कमर पर कमर पट्टी लगाकर सोना चाहिए। सादा और सुपाच्य भोजन करना चाहिए और सयमी जीवन व्यतीत करना चाहिए।

पीली बोतल का सूर्यतप्त जल हर रोज चार खुराक आधी छटाक प्रति खुराक पीने तथा फोतो पर पहले १ घण्टा लाल प्रकाश फिर दो घण्टा नीला प्रकाश देने से अण्ड-वृद्धि रोग का नाश होता है।

गर्मी और सुजाक

(देखिए, ग्यारहवा अध्याय 'स्त्री-यौन सम्बन्धी रोग' आगे)

आठवां अध्याय

चर्म रोग

हमारी त्वचा शरीर के मुख्य मल-निष्कासक अङ्गों [illegible] महत्वपूर्ण अङ्ग है। क्योंकि इसी अङ्ग [illegible] रूप से हमारे शरीर की अधिकांश गदगी रोज निकलती रहती है। जब तक यह अंग स्वस्थ रहता है तब तक शरीर के अन्दर किसी किस्म की गदगी रहने नहीं पाती। परन्तु जब किसी कारण से यह अस्वस्थ हो

जाता है तथा इसके छिद्र बन्द हो जाते है अथवा शरीर मे गन्दगी का भार इतना बढ़ जाता है कि वह सबका सब इस अङ्ग द्वारा बाहर निकल नही पाता तो प्रकृति शरीर को मल-भार से मुक्त करने के लिए अन्य अनेक रास्ते बनाती है जिन्हे हम फोडे-फुन्सी, दाद, खुजली, उकवत, कुष्ठ, चेचक तथा कंठमाला आदि विविध प्रकार के चर्म रोगो के नाम से जानते है। इस तरह देखते है कि सारे चर्म रोग, चर्म की अस्वस्थता एवं शरीर मे अधिक मल (विजातीय द्रव्य) एकत्र होने के परिणाम के सिवा और कुछ नही है तथा यह कि चर्म-रोग स्थानीय नही होते अपितु अन्य रोगो की भांति वे भी शरीर की भीतरी खराबी और गंदगी को व्यक्त करते हैं।

चर्म-रोग से पीड़ित रोगियो की परीक्षा से यह स्पष्ट हो गया है कि चर्म रोग वर्षों अयुक्त आहार ग्रहण करने, अधिक भोजन करने, उचित और नियमित व्यायाम न करने, पूरा आराम और नीद न लेने, चाय-काफी तथा नशीली चीजों का इस्तेमाल करने, सुई लेने, तथा औषधियो का व्यवहार करने से उत्पन्न विषमयता का ही परिणाम होते है। अधिकांश रोगियो मे चर्म रोग अकेला नही आता, अपितु उसके साथ कब्ज, सिर दर्द, पेचिस आदि अन्य रोग भी होते है जो इस बात को पुष्ट करते है कि शरीर विष से भरा हुआ है और उससे छुटकारा पाने के लिए कठिन प्रयास करना आवश्यक है। ऐसी हालत मे अगर शरीर लाचार होकर एकत्र मल को शीघ्रातिशीघ्र बाहर निकाल फेकने के लिए किसी चर्म रोग के रूप मे विस्फोट उत्पन्न कर दे तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है?

चिकित्सा

ऊपर के विवेचन से हर कोई समझ सकता है कि चर्म-रोगो को अच्छा करने के लिये वाहर से औषधि लगाकर उसको दवा देना और इस तरह से उसके स्वाभाविक सफाई के कार्य मे हस्तक्षेप करना कितना हानिकारक और खतरनाक है। चर्म रोगो को पारा, गधक आदि जहरीले पदार्थों के योग से दवाने से शरीर अपने अन्दर, विभिन्न अङ्गो मे ही मल और विकार जमा करने के लिये वाध्य हो जाता है जो कालान्तर मे अधिक भीषण-रूप धारणकर श्वास रोग, वृक्क प्रदाह, नेत्र-रोग, अजीर्ण तथा कब्ज आदि अधिक कष्टदायक और दुसाध्य बीमारियो की शकल मे उत्पन्न होकर जीना दूभर कर देना है।

इसलिये चर्म रोग को दूर करने के लिये सर्व-प्रथम औषधियो का प्रयोग, यदि वह जारी हो, तुरत बन्द कर देना चाहिए और शक्ति और आवश्यकता अनुसार एक लम्बा उपवास विधिपूर्वक करना चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तो लम्बे उपवास की जगह थोड़े-थोड़े समय के कई उपवास करना चाहिए। उपवास के दिनो मे नीबू का रस मिला पानी प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए और आवश्यकतानुसार दोनो या एक समय रोज एनिमा लेना चाहिए।

चर्म रोगो पर अन्य प्रकार के रोगों की अपेक्षा उत्तम-मध्यम आहार की प्रतिक्रिया अधिक और तुरत होती है। इसलिये उपवास तोड़ने के बाद इस ओर विशेष-रूप से ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

चर्म रोग, नमक, तेल, खटाई, मसालों, नशे की चीजों आदि अम्लकारक खाद्य पदार्थों से बढ़ते है और जल्द अच्छा होने का नाम नहीं लेते। अतः इन पदार्थों का शुरु ही से त्याग कर देना चाहिए।

यदि चर्म रोग जलनवाला हो तो रोग अच्छा होने तक केवल दुग्धाहार ठीक रहता है जिसे व्यक्तिगत आवश्यकतानुसार एक दिन मे ५ सेर तक लिया जा सकता है। दूध कच्चा और धारोष्ण होना चाहिए। पुराने चर्म-रोगों मे दो-तीन महीने तक दुग्धाहार चलाना आवश्यक हो सकता है। यदि अकेला दूध न पिया जा सके तो उसके साथ मीठे फल और मेवे जैसे अगूर, मीठा सेव, पपीता, भिगोये अजीर तथा किशमिश आदि लिये जा सकते हैं। बाद को दूध के साथ सन्तरा, नारङ्गी आदि अन्य फल भी लिये जा सकते हैं। १॥-२ मास बाद आहार मे परिवर्तन करके तरकारिया अधिक खानी चाहिए। एक समय मठ के साथ उबली हरी तरकारी और सलाद और दूसरे वक्त फल और दूध। नाश्ते मे एक गिलास दूध और किशमिश आदि मीठे मेवे लिये जायें। उसके बाद धीरे-धीरे सादे सात्विक भोजन पर आ जाना चाहिए।

चर्म-रोग से मुक्ति पाने के लिये धूप और वायु का अधिक सेवन अत्यन्त आवश्यक है। रोगी को चाहिए कि दिन मे जब कभी सम्भव हो वह कुछ समय तक धूप और खुली हवा मे अवश्य बैठे। उसके बाद तौलिया स्नान द्वारा शरीर के हरएक अङ्ग को भली प्रकार और [illegible]

रगड़ना चाहिए। धूप में बैठे-बैठे शुद्ध सरसों के तेल की मालिश और उसके बाद रगड़-रगड़ कर ठडे पानी से स्नान करना भी त्वचा को सक्रिय और स्वस्थ बनाता है।

चर्म-रोग से आक्रान्त स्थल को रोज नीम के गुनगुने पानी से धोकर साफ रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के चर्म-रोगो मे अन्य प्रकार की सफाई पर पूरा-पूरा ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

चर्म-रोग के बाह्योपचार के लिये आवश्यकतानुसार सारे वदन पर के जलोपचार के साथ-साथ स्फोट पर मिट्टी की या कपडे की भीगी पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। किसी-किसी अवस्था मे सिर गरम दूध से भीगी कपडे की पट्टी भी बड़ी उपकारी होती है। शुद्ध शहद से भीगी पट्टी जख्मो को सुखाने मे प्राय. कमाल दिखाती है।

अब प्रत्येक चर्म रोग की विशेष चिकित्सा के लिये नीचे देखिए।

कुष्ठ

कुष्ठ एक महा भयानक चर्म रोग है। इसमे रक्त अत्यन्त विषाक्त होकर धीरे-धीरे शरीर को वेकार और नष्ट कर देता है। इस रोग की कई किस्मे हैं जिनमे गलित कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ (*Lucoderma*) अधिक व्यापक पाये जाते है।

गलित कुष्ठ (*Leprosy*) मे पहले हाथ-पाव की अंगुलिया अकड कर टेढ़ी-मेढी हो जाती है। फिर उनमे फोडे जैसे घाव हो जाते है। कुष्ठ के ये फोड़े शरीर के किसी एक भाग मे या पूरे शरीर पर यत्र तत्र निकल आते हैं। इन फोडों मे जलन होती है। रोगी को प्यास बहुत सताती है। तथा रोग की वढी हुई अवस्था में रोग का आक्रमण हड्डियो तक पहुच जाने पर रोगी का मास गल गलकर गिरने लगता है।

श्वेत कुष्ठ मे शरीर भर मे या उसके किसी भाग मे [illegible] सफेद दाग पडते है जहां के रोये और वाल भी सफेद हो जाते है। कारण दोनो प्रकार के कुष्ठो का एक ही है—अर्थात् रक्त का अत्यन्त दूषित होना।

गलित कुष्ठ की चिकित्सा—इसमे छोटे-छोटे कई उपवास करना चाहिए और कम से कम एक मास तक एनिमा लेना चाहिए। रोज सुवह, शाम, दोपहर—तीनों वक्त गगा के किनारे जाकर (या किसी अन्य नदी या तालाब) किनारे की गीली मिट्टी का प्रलेप समूचे शरीर पर विशेषकर रोगी भाग पर लगावे और एक घण्टा तक, या जब तक कि शरीर पर की मिट्टी सूख न जाय, वहीं किनारे पर लेटा या बैठा रहे। तत्पश्चात् देर तक गंगा मे मल-मल कर स्नान करे। उसके बाद स्वच्छ कपड़ा पहिने। सप्ताह मे दो बार वाष्प-स्नान लेकर शरीर का विकार पसीना के रूप मे निकाले, तथा आधा घण्टा तक सुबह मेहन-स्नान और आधा घण्टा तक शाम को उदर-स्नान करे। रात को पेड़ू पर और रोग की जगह पर मिट्टी की गीली पट्टी लगाकर सोये। घावो पर खुजली उठे तो हरी बोतल के सूर्यतप्त नारियल के तेल में नीबू का रस मिलाकर लगावे। हरी और पीली बोतल का सूर्यतप्त जल आधा-आधा भाग मिलाकर दिन मे आठ खुराक पीवे (१ खुराक की मात्रा आधी छटाक) रोज सुबह १५-२० मिनट तक नगे बदन धूप-सेवन आवश्यक है। फल चाहे कम सेवन किये जाये, किन्तु कच्ची और उवली शाक सब्जी काफी मात्रा मे खायी जाय। भीगे चने के आध सेर पानी मे दो तीन तोला शहद मिलाकर नित्य पीना, चने की रोटी और शहद खाना (२ तोला से अधिक शहद न हो), शाम को चने का पानी गरम करके विना शहद डाले पीना, चने का साग कच्चा या पका खाना, तथा दो मास तक लगातार केवल चने का व्यवहार करना गलित कुष्ठ मे आश्चर्यजनक रूप से लाभकारी होता है। कुष्ठ रोग मे नमक और चीनी को हाथ से छूना भी नहीं चाहिए।

श्वेत कुष्ठ की चिकित्सा—इस रोग में भी छोटे-छोटे उपवास करके और कुछ दिनो तक एनिमा लेकर शरीर को शुद्ध कर लेना चाहिए, तथा रोज तीन वार गगा के किनारे की गीली मिट्टी लगाकर स्नान करना चाहिए। साथ ही स्नान के वाद सफेद दागो पर लाल बोतल के सूर्य तप्त तेल या जल की मालिश ५ मिनट तक करनी चाहिए। यदि नदी या तालाव की गीली मिट्टी के मिलने की सुविधा न हो तो तुलसी के पेड की जड़ की मिट्टी तथा उसके पत्तो को एक साथ पीसकर सारे वदन पर या दागो पर लगावे। साथ ही तुलसी की १० पत्तियां रोज सुवह, शाम और दोपहर को खाय भी। चने का पानी

शहद डालकर पीवे। हरी और पीली बोतल का सूर्यतप्त-जल एक एक हिस्सा, तथा आसमानी का दो हिस्सा मिलाकर उसकी ६ खुराके रोज ले। (मात्रा आधी छटांक) साथ ही सारे शरीर पर पीला प्रकाश १५ मिनट तक, उसके बाद नीला २ घण्टे तक डाले। रात को सोते वक्त मूलो के बीज को खूब महीन पीसकर, कागजी नीबू के रस मे फेटकर सफेद दागो पर लगाकर रेड के पत्ते से बांध दे, तथा सुबह को उसे दही के योग से धोकर साफ करदे। अजीर के पत्तों का रस दागो पर लगाने से भी लाभ होता है।

अन्य उपचार आरम्भ मे बताये गये चर्म रोग की भाति ही।

उकवत

उकवत (Eczema) को आयुर्वेद मे कुष्ठ के ही अन्तर्गत माना गया है। यह शरीर के किसी भी भाग पर हो सकता है। यह दो प्रकार का होता है। एक को बहता हुआ उकवत या Weeping Eczema कहते हैं, और दूसरे को सूखा उकवत या Dry eczema। यह रोग अधिकतर सिर में कानों के पास, गर्दन पर, तथा अगुलियो में होता है। त्वचा पर यह मूंग या उड़द की दाल जितने आकार से लेकर कई इन्च जगह घेर लेता है। जहां यह रोग होता है वहां ललाई छाई रहती है, त्वचा कड़ी और रुखड़ी हो जाती है, तथा उसमे थोड़ी सूजन भी आजाती है। रोग की उग्रता मे रोग के स्थान पर जलन होती है और खाज उठती है। कभी-कभी वहा से द्रव रिसने लगता है। बहता हुआ उकवत ही बहुधा पुराना पड़कर सूखे उकवत का रूप धारण कर लेता है जिसकी चमड़ी खुजला-खुजला कर छिलती रहती है और पर्त उधड़-उधड़ कर गिरती रहती हैं।

जिनका रक्त विषाक्त होता है तथा जिनके शरीर मे पुरानी गदगी होती है जिसकी जड़ बड़ी गहराई मे होती है उन्ही को उकवत रोग होता है। इसके अतिरिक्त उत्तेजक साबुन व्यवहार करने, कच्चे रङ्ग का वस्त्र पहनने, गदा मोजा आदि इस्तेमाल करने, तथा रङ्ग, पालिश, सोडा, एव गंधक आदि वस्तुओ का धधा करने से भी इस रोग के होने की सम्भावना रहती है। मधुमेह अपच, गठिया आदि रोगो के पुछल्ला के रूप मे भी प्रायः यह रोग होता है जिनके दूर हो जाने पर यह रोग भी आप से आप चला जाता है। जिन बच्चो को अपनी मा का दूध कम या बिलकुल नही मिलता, अथवा अस्वच्छ दूध पिलाया जाता है उन्हे भी यह रोग अक्सर लग जाता है। ऐसे बच्चो को साफ दूध पर रखते हुये फलो का रस पिलाने से उकवत से निजात दिलाई जा सकती है।

उकवत बहुत पुराना पड़ जाने पर कई अन्य कठिन रोगो जैसे नेत्र रोग, श्वास रोग आदि की सृष्टि कर सकता है।

चिकित्सा

प्रति सप्ताह एक दिन का उपवास केवल जल पीकर और एनिमा लेकर करे। शीघ्र लाभ के लिये और पुराने उकवत में एक से तीन सप्ताह के उपवास की आवश्यकता पड़ सकती है। पर तीन दिन के उपवास से ही रोग की तीव्रता कम हो जाती है। उपवास के बाद २-३ दिनो तक फलों के रस पर रहना चाहिए। फिर दो सप्ताह तक फल और उबली तरकारियों पर। नमक बन्द रखना चाहिए। उसके बाद दूध, फल और मेवो पर कुछ दिनों तक रहकर धीरे-धीरे सादे भोजन पर आना चाहिए। फिर भी रोग जब तक जड़ से न जाय भोजन मे फल, दूध, मेवो और तरकारियो आदि क्षारधर्मी खाद्यो की अधिकता रखनी चाहिए। उकवत के रोगी को ढाई-तीन सेर पानी रोज पीना चाहिए। कब्ज टूटने तक एनिमा लेना चाहिए और कपड़े कम से कम पहनना चाहिए। गर्मी के दिनों मे दो-तीन बार नहाना चाहिए और नहाने के पहले और बाद मे अपनी हथेलियों से सारे शरीर को रगड़कर लाल कर देना चाहिए। रोग के स्थान को रगड से बचाये रखना चाहिए। दिन मे कम से कम दो बार गगा या किसी अन्य नदी या तालाब के किनारे की गीली मिट्टी सारे बदन मे लेपकर और एकाध घंटे धूप में सुखाकर नदी के पानी मे खूब मल-मलकर स्नान कर लेना चाहिए। उसके बाद हरी बोतल के सूर्य तप्त जल नारियल, के तेल से सारे बदन की मालिश धूप में बैठकर या लेटकर करानी चाहिए। इसी तेल को उकवत पर भी लगाना चाहिए। उकवत पर भीगे कपड़े की गद्दी रखकर शाम मे एक बार वाष्प स्नान तथा दो बार पूरे शरीर की गीली चादर की

[illegible] देना चाहिए। रोज रात को पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाकर सोना चाहिए। रोज २-३ बार उकवत को ४-४ मिनट तक भाप से सेंककर उसके बाद नमकीन पानी से धोकर उस पर गीली मिट्टी को छपाकर पट्टी बाधनी चाहिए। यह पट्टी २-३ घटे तक लगी रह सकती है। सप्ताह मे २ बार एप्सम साल्ट बाथ भी लेना लाभकारी होता है। हल्की कसरत जैसे १-२ मील टहलना तथा सास की कसरते प्रतिदिन करनी चाहिए। आसमानी बोतल का सूर्यतप्त जल दिन मे ६ बार पीना चाहिए (मात्रा ढाई तोला) तथा उकवत के स्थान पर हरा प्रकाश १५-२० मिनट तक डालना चाहिए।

चेचक

यह रोग प्राय. वसन्त और ग्रीष्म मे फैलता है। इस रोग मे एक खास बात यह है कि जो रोगी इस रोग से बच निकलता है अर्थात् जिसको एक बार चेचक निकलकर ठीक हो जाती है उसका बदन बिलकुल निर्दोष और शुद्ध हो जाता है। यहा तक कि फिर उसको कम से कम १२ वर्षो तक इस रोग के दुबारा होने की प्राय. सम्भावना नही रहती। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति की तन्दुरुस्ती बढ़िया हो जाती है, साथ ही शक्ति और आयु भी बढ़ जाती है। परन्तु यदि किसी कारणवश रोगी रोग की भीषणता को सहन न कर सका अथवा रोग का उचित उपचार न हुआ तो रोगी या तो निकम्मा और अपाहिज हो जाता है या मौत का शिकार ही हो जाता है।

चेचक की तीन किस्मे होती है—

(१) रोमान्तिका—इसका एक नाम दुलारी माता भी है। इसमे चेचक के दाने शरीर के रोम कूपो की ऊचाई के निकट निकलते है। इसलिये इस प्रकार के चेचक का नाम रोमान्तिका पडा। इस चेचक से रोगी मरता नही [illegible] इसको दुलारी कहते है। क्योकि इससे कोई भय [illegible]। रोमान्तिका के दाने दो-ढाई दिन मे ही शान्त [illegible] है। इसलिये इसको लोग 'ढाई दिना' माता भी [illegible]। यह [illegible] वर्ष से कम उम्र के बच्चो मे विशेषत. [illegible] होती है। इसके दाने अत्यन्त छोटे [illegible] के दानो के बराबर होते है। इसमें ज्वर [illegible] उपद्रव [illegible] कम होते हैं। इसमें घाव नही पडते और न बाद को दाग ही रहता। इस प्रकार की चेचक रोगी के हसते-खेलते आप से आप अच्छी हो जाती हैं। परन्तु एहतियात के लिये इसमे पूरी सफाई रखना, रोगी को फल और दूध का ही हल्का भोजन देना तथा यदि कब्ज हो तो एनिमा देकर पेट को साफ कर देना वाजिब है।

(२) मसूरिका—मसूर के दानों के बराबर वाली चेचक को मसूरिका, छोटी माता, छोटी शीतला या अ ग्रेजी मे Chicken pox कहते है। चेचक के ज्वरादिक उपद्रव, रोमान्तिका की अपेक्षा इसमें अधिक होते है। कम से कम दस दिनो मे इस प्रकार की चेचक प्रायः ठीक हो जाती है। परन्तु कभी-कभी इससे अधिक समय भी लग सकता है। इसमे कभी-कभी घाव हो जाते है जिससे शरीर मे कही-कही दाग भी पड़ जाते हैं। परन्तु दो मास के भीतर-भीतर वे दाग साफ हो जाते है।

यह अत्यन्त संक्रामक और स्पर्शाक्रामक रोग है परन्तु बड़ी चेचक की भाति मारात्मक नहीं है। मसूरिका बचो को ही अधिक होती है। आरम्भ मे बचा अस्वस्थ-सा जान पड़ता है ज्वर हो आता है, सिर दर्द होता है, आखे भर-भर आती है, नाक, गले आदि में जुकाम का जोर होता है, रोशनी बुरी मालम होती है, खासी और छीक आती है तथा चेहरे पर तमतमाहट रहती है। अगर इसी समय रोगी को जल और फल-रस पर रखा जाय और पेट की सफाई पर ध्यान दिया जाय तो कोई जान भी न सकेगा कि रोगी पर मसूरिका का आक्रमण होने वाला था। क्योकि इस तरह की सफाई करने वाला उपचार प्रायः रोग का निवारण कर दिया करता है, इस प्रकार के आरम्भिक उपचार के अभाव मे उपर्युक्त लक्षणो के उत्पन्न होने के दो एक दिनो बाद चेहरे पर और उसके बाद नीचे के अङ्गो पर दाने निकलते है। साधारणतः समस्त शरीर मे कुल ८-१० दाने ही निकलते है। परन्तु रोग का प्रबल आक्रमण होने पर सैकडो दाने भी निकल सकते हैं। दानो के निकलने के ५-६ घण्टो के भीतर-भीतर उनमें जल भर जाता है और वे एक दिन मे ही फफोलो की तरह झलकने लगते है अगर रोगी का उपचार ठीक तरह से न हो तो ज्वर एक सप्ताह के अन्दर अवश्य उतर जाता है और दाने मुरझा जाते हैं।

शहद डालकर पीवे। हरी और पीली बोतल का सूर्यतप्त-जल एक एक हिस्सा, तथा आसमानी का दो हिस्सा मिलाकर उसकी ६ खुराके रोज ले। (मात्रा आधी छटांक) साथ ही सारे शरीर पर पीला प्रकाश १५ मिनट तक, उसके बाद नीला २ घण्टे तक डाले। रात को सोते वक्त मूली के बीज को खूब महीन पीसकर, कागजी नीबू के रस मे फेंटकर सफेद दागो पर लगाकर रेंड के पत्ते से बाध दे, तथा सुबह को उसे दही के योग से धोकर साफ करदे। अजीर के पत्तो का रस दागो पर लगाने से भी लाभ होता है।

अन्य उपचार आरम्भ मे बताये गये चर्म रोग की भाति ही।

उकवत

उकवत (Eczema) को आयुर्वेद में कुष्ठ के ही अन्तर्गत माना गया है। यह शरीर के किसी भी भाग पर हो सकता है। यह दो प्रकार का होता है। एक को बहता हुआ उकवत या Weeping Eczema कहते हैं, और दूसरे को सूखा उकवत या Dry eczema। यह रोग अधिकतर सिर मे कानों के पास, गर्दन पर, तथा अंगुलियो में होता है। त्वचा पर यह मूग या उड़द की दाल जितने आकार से लेकर कई इञ्च जगह घेर लेता है। जहा यह रोग होता है वहां ललाई छाई रहती है, त्वचा कडी और रुखड़ी हो जाती है, तथा उसमें थोडी सूजन भी आजाती है। रोग की उग्रता मे रोग के स्थान पर जलन होती है और खाज उठती है। कभी-कभी वहा से द्रव रिसने लगता है। बहता हुआ उकवत ही बहुधा पुराना पड़कर सूखे उकवत का रूप धारण कर लेता है जिसकी चमड़ी खुजला-खुजला कर छिलती रहती है और पर्त उधड़-उधड़ कर गिरती रहती है।

जिनका रक्त विषाक्त होता है तथा जिनके शरीर मे पुरानी गदगी होती है जिसकी जड बड़ी गहराई मे होती है उन्ही को उकवत रोग होता है। इसके अतिरिक्त उत्तेजक साबुन व्यवहार करने, कच्चे रङ्ग का वस्त्र पहनने, गंदा मोजा आदि इस्तेमाल करने, तथा रङ्ग, पालिश, सोडा, एवं गंधक आदि वस्तुओं का धधा करने से भी इस रोग के होने की सम्भावना रहती है। मधुमेह अपच, गठिया आदि रोगो के पुछल्ला के रूप मे भी प्राय. यह रोग होता है जिनके दूर हो जाने पर यह आप से आप चला जाता है। जिन बच्चो को म[illegible] का दूध कम या बिलकुल नही मिलता, अथवा [illegible] दूध पिलाया जाता है उन्हे भी यह रोग अक्सर ल[illegible] है। ऐसे बच्चो को साफ दूध पर रखते हुये [illegible] रस पिलाने से उकवत से निजात दिल[illegible] सकती है।

उकवत बहुत पुराना पड़ जाने पर कई अ[illegible] रोगो जैसे नेत्र रोग, श्वास रोग आदि को [illegible] सकता है।

चिकित्सा

प्रति सप्ताह एक दिन का उपवास केवल ज[illegible] और एनिमा लेकर करे। शीघ्र लाभ के लिये [illegible] उकवत मे एक से तीन सप्ताह के उपवास की अ[illegible] पड़ सकती है। पर तीन दिन के उपवास से ही [illegible] तीव्रता कम हो जाती है। उपवास के बाद २-३ [illegible] फलों के रस पर रहना चाहिए। फिर दो सप्ताह [illegible] और उबली तरकारियो पर। नमक बन्द रखना [illegible] उसके बाद दूध, फल और मेवो पर कुछ दिन [illegible] कर धीरे-धीरे सादे भोजन पर आना चाहिए। [illegible] रोग जब तक जड़ से न जाय भोजन मे फल, [illegible] और तरकारियो आदि क्षारधर्मी खाद्यो की [illegible] रखनी चाहिए। उकवत के रोगी को ढाई-तीन [illegible] रोज पीना चाहिए। कब्ज टूटने तक एनिमा ले[illegible] और कपड़े कम से कम पहनना चाहिए। गर्मी [illegible] दो-तीन बार नहाना चाहिए और नहाने के [illegible] बाद मे अपनी हथेलियो [illegible] को रगड़ [illegible] कर देना चाहिए। रोग [illegible] रखना चाहिए। दिन मे [illegible] किसी अन्य नदी या तालाब के [illegible] सारे बदन मे लेपकर और एका[illegible] नदी के पानी मे खूब मल-मलकर स[illegible] उसके बाद हरी बोतल के सूर्य तप्त ज[illegible] सारे बदन की मालिश धूप मे बैठकर [illegible] चाहिए। इसी तेल को उकवत पर भी [illegible] उकवत पर भीगे कपडे की गद्दी रख कर [illegible] वाष्प स्नान तथा दो बार पूरे शरीर को [illegible]

गुने पानी से स्नान कराना चाहिए। भोजन मे रसदार-फल, आधा पानी मिला हुआ दूध, मधु तथा ताजी साग-सब्ज़ियां रखनी चाहिए।

(७) यह दशा शरीर की क्षति-पूर्ति एवं पुनर्निर्माण की होती है। इस समय तक बदन विजातीय द्रव्य से शून्य एवं निर्मल हो चुका रहता है। अतः हल्का, सादा, क्षारधर्मी तथा प्राकृतिक भोजन लेना चाहिए, कब्ज न होने देना चाहिए और दोनो समय कटि और मेहन-स्नान लेते रहना चाहिए।

कैंसर

इस रोग के सम्बन्ध मे एक अजीव बात यह भी है कि पुराने जमाने में और आज से १०० वर्ष पहले तक यह रोग बहुत कम दीख पडता था, पर आज इस वैज्ञानिक युग मे यह रेडियम, एक्सरे, शल्यचिकित्सा आदि आधुनिक साधनो के बावजूद घटने के बजाय दिनो दिन बढ़ता ही जारहा है।

कैंसर, अर्बुद के रूप मे कभी चर्म के ऊपरी भाग के निकट और कभी शरीर के भीतरी अंगो में प्रगट होता है। यह अधिकाशत. पाचन-संस्थान में उत्पन्न होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस रोग का उत्पादक-तत्व हमारे खाद्य और पेय पदार्थो के साथ मिलकर ही शरीरमे प्रवेश करता है और रोग का कारण बनता है। इस दिशा में अबतक के अनुसंधानो से कैंसर रोग के तीन सौ से अधिक कारण प्रकाश मे आये हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जारहे हैं। कैंसर के ये सब कारण बड़ी उम्र के लोगों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं:—

१-खाने-पीने की चीजो को विविध प्रकार के रगो से रंगना,

२-खाने-पीने की चीजो को जायकेदार बनाने के लिये तीव्र गुण वाले मसालो का प्रयोग,

३-खाने-पीने की चीजो को खुशबूदार बनाने के लिए तीव्र खुशबूदार तेलो का प्रयोग,

४-अत्यन्त गरम खाद्य खाना

५-अधिक खाना,

६-मांस अधिक खाना,

७-अप्राकृतिक भोजन और गलत रहन-सहन के कारण रक्त विकृत होने से शरीर में उपदाह की स्थिति,

८-कम पानी पीना,

९-चाय, तम्बाकू, शराब, आदि नशीली चीजो का सेवन

१०-सफेद चीनी का सेवन,

११-तरह-तरह से तय्यार किए हुए खाद्य पदार्थ जो डब्बो मे बद करके आते है,

१२-कजली, तारकोल, पिच, बेंजाइन, पाराफिन, कारबोलिक एसिड, तथा एनिलाइन आदि जब किसी प्रकार से त्वचा के सम्पर्क मे आते है, या मुख के रास्ते शरीर के भीतर प्रवेश करते है तो उसकी वजह से शरीर की समवर्तन-क्रिया (मेटाबोलिज्म) में कुछ रासायनिक क्रियाए होती हैं जिनसे भयकर विष की उत्पत्ति होती है। यही विष कैंसर रोग का मूल कारण है। चिमनी की कजली साफ करने वालों, कोयले से गैस बनाने वाले, कारखानो के श्रमिकों, सड़क पिच करने वाले मजदूरों, एनिलाइन रग जो एक प्रकार का विष है, से वस्तुओ को रगने वाले रंगसाजों, तथा बेनजाइन के कारखानो मे काम करने वाले व्यक्तियो को कैंसर रोग प्राय. देखा जाता है।

१३-मलावरोध

१४ तीव्र रोगो मे द्रव्यौषधियो का प्रयोग,

१५-आपरेशन के बाद घाव का बहुत दिनो तक न भरना,

पुरुषो मे होठ, जीभ, गला, आमाशय, यकृत तथा आत आदि मुख्य रूप से इस रोग के क्षेत्र होते हैं। जो अधिक धूम्रपान के आदी होते है उनकी जीभ, गले और फेफड़ो में कैंसर खास तौर से हुआ करता है। स्त्रियो मे स्तन, गर्भाशय, योनिमुख, आमाशय, तथा आतो मे यह रोग विशेष रूप से होता है।

चर्म पर होने वाला कैंसर कठोर और ऊंचाई लिए हुए होता है जो फटने पर घाव का रूप ले लेता है। भीतरी कैंसर कई प्रकार से पड़ा पड़ा बढता रहता है। पीड़ा दोनों प्रकार के कैंसर का प्रधान लक्षण है।

चिकित्सा

जब तक रोग का जोर कम न होजाय तब तक उपवास करते हुये रोज जरूरत के मुताबिक दोनो वक्त या एक वक्त एनिमा लेना चाहिए। दीर्घ उपवास ही इस रोग मे विशेष फलदायक होते हैं। रोज दो चार रोग के

है, जिसके फलस्वरूप गले का बैठना, पाखाना के रास्ते खून आना, निमोनिया तथा आतो के घाव आदि उपद्रव खड़े हो जाते है।

आंखो के लाल होने की दशा मे उनमे नीम की पत्ती का रस टपकाने, नीम की पत्तियों को गरम करके उससे सेंकने, आखो में प्रतिदिन २-३ बार त्रिफला का पानी या साफ जल से धोकर उनमे गुलाब जल छोडने से आखो मे फुल्ली आदि के पड़ने का भय नही रहता।

कानो मे गुलाब, काहू, चन्दन का इत्र प्रतिदिन दो-दो बूंद छोड़ने से चेचक से उनमे कोई खराबी नही होने पाती।

नाक के दोनों नथुनो मे भी उपर्युक्त इत्र को लगाने से नाक में कोई बिकार नही होता।

मुंह को चेचक के उपद्रव से बचाने के लिए रोज ५–६ बार फिटकरी के जल से कुल्ला करना चाहिए।

सौ बार धोया हुआ घृत सिर पर लगाने या नीली बोतल के सूर्यतप्त तेल की मालिश करने से खोपड़ी पर के चेचक के घाव मुलायम बने रहते हैं तथा मस्तिष्क चेचक के उपद्रवो से बचा रहता है।

इस दशा मे बन्द कमरे मे गुनगुने जल से भरे टब में दिन मे दो बार लेटना बड़ा लाभप्रद होता है। पानी से निकलने के बाद शरीर को पौछकर और कम्बल आदि ओढकर गर्मी लाना जरूरी है।

(४) रोग की चौथी दशा दानो मे पीव पड़ने की दशा होती है। इस दशा मे शरीर की सारी फुन्सियां पीव से भर जाती है और ज्वर फिर तेज हो जाता है (१०३° से १०७° तक)। फुंसियां पीव से भरकर मोती की तरह चमकने लगती हैं। इस रोगी को अधिक छेड़छाड़ करना या किसी प्रकार की चिकित्सा करना ठीक नही होता। हा रोगी को थोड़ा-थोड़ा करके स्वच्छ जल काफी मात्रा मे पिलाना चाहिए। जरूरत हो और असुविधा न हो तो इस दशा मे भी रोगी को एनिमा देना चाहिए। पाव भर गरम पानी मे १ तोला शहद मिलाकर आंत मे चढ़ा देने से भी पाखाना हो जाता है। कभी-कभी गुदा-द्वार फुन्सियो से भर जाता है और ऐनिमा देना मुश्किल हो जाता है। अत. ऐसी दशा में एनिमा लगाने मे खूब सावधानी वरतनी चाहिए। इस दशा के आरम्भ मे २-१ दिन शरीर की गीली चादर की लपेट लगाना ठीक र[illegible] है। इससे दानों की गर्मी कुछ शान्त हो जाती है। द[illegible] मे पीव के भर जाने से उनमे खाज उठती है। अत द[illegible] पर गाय का घी या मक्खन अथवा मामूली तिल का [illegible] रुई के फाया से धीरे-धीरे लगा देना चाहिए। दानो फूटने पर उन्हे कपूर वासित स्वच्छ जल अथवा नीम पत्ती डालकर उबाले हुए जल से धीरे-धीरे धोकर [illegible] सुखाकर उन पर चन्दन का इत्र या गाय का घी मक्खन लगाना चाहिए।

इस दशा में रोगी को फल रस, उबाली तरकारि[illegible] का रस तथा नीबू का रस मिला पानी दे सकते हैं। ठो[illegible] भोजन इस दशा मे हरगिज नही देना चाहिए।

इस दशा मे फेफड़े और श्वास नलिका कफ से [illegible] जाती है जिससे सांस लेने मे तकलीफ होती है और ग[illegible] मे एक प्रकार की आवाज होने लगती है। मूत्राशय औ[illegible] आतों मे भी विकार उत्पन्न हो जाते है। ऐसी हालत [illegible] रोगी के शरीर पर एक घंटे तक लाल प्रकाश डाल[illegible] चाहिए या चादर ओढ़ानी चाहिए। फेफड़ो के आक्रा[illegible] होने पर छाती और पीठ पर गीली सेक देना चाहिए।

(५) इस दशा मे घाव से भरे दाने सिकुडने औ[illegible] सूखने लगते हैं। धीरे-धीरे ज्वर भी कम होने लगता है बहुत से दाने एक दूसरे से मिल जाते है। नीद अच्छी आ[illegible] लगती है। इस दशा मे भी किसी विशेष चिकित्सा की जरूरत नही होती। दानो पर केवल नारियल या तिल का तेल, मक्खन या चन्दन का इत्र लगाना चाहिए। अधिक खुजली उठने पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए तथा सारे बदन को ठडे पानी से भीगे साफ गमछे से पौछते रहना चाहिए। बदन पर गीली चादर की कई परत करके रखने से रोगी को शान्ति मिलती है और दानो के गड्ढे शीघ्र भरते हैं। दानो को नख से कभी भी खुजलाना नही चाहिए। ऐसा करने से दानो के गड्ढे अधिक गहरे हो जायेंगे और आजन्म गहरे बने रहेंगे। इस अवस्था मे रोगी को फल तथा बिना नमक की उबली तरकारी दे सकते हैं।

(६) इस दशा मे सारे दाने सूख जाते हैं। इस समय यदि कब्ज रहे तो एनिमा देकर पेट साफ कर देना चाहिए। रोगी को अब दोनों समय तेल लगाकर [illegible]

ठंडे पानी से स्नान कराना चाहिए। भोजन में रसदार-फल, आधा पानी मिला हुआ दूध, मधु तथा ताजी साग-सब्जियां रखनी चाहिए।

(७) यह दशा शरीर की क्षति-पूर्ति एवं पुनर्निर्माण की होती है। इस समय तक बदन विजातीय द्रव्य से शून्य एवं निर्मल हो चुका रहता है। अतः हल्का, सादा, क्षारधर्मी तथा प्राकृतिक भोजन लेना चाहिए, कब्ज न होने देना चाहिए और दोनो समय कटि और मेहन-स्नान लेते रहना चाहिए।

कैंसर

इस रोग के सम्बन्ध मे एक अजीब बात यह भी है कि पुराने जमाने में और आज से १०० वर्ष पहले तक यह रोग बहुत कम दीख पडता था, पर आज इस वैज्ञानिक युग में यह रेडियम, एक्सरे, शल्यचिकित्सा आदि आधुनिक साधनो के बावजूद घटने के बजाय दिनो दिन बढ़ता ही जारहा है।

कैंसर, अर्बुद के रूप मे कभी चर्म के ऊपरी भाग के निकट और कभी शरीर के भीतरी अंगो में प्रगट होता है। यह अधिकांशतः पाचन-संस्थान में उत्पन्न होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस रोग का उत्पादक-तत्व हमारे खाद्य और पेय पदार्थों के साथ मिलकर ही शरीरमे प्रवेश करता है और रोग का कारण बनता है। इस दिशा में अबतक के अनुसंधानो से कैंसर रोग के तीन सौ से अधिक कारण प्रकाश मे आये हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जारहे हैं। कैंसर के ये सब कारण बड़ी उम्र के लोगों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं:—

१ खाने-पीने की चीजो को विविध प्रकार के रगो से रगना,

२ खाने-पीने की चीजो को जायकेदार बनाने के लिये तीक्ष्ण गुण वाले मसालो का प्रयोग,

३-खाने-पीने की चीजो को खुशबूदार बनाने के लिए तीव्र खुशबूदार चीजो का प्रयोग,

४-अत्यन्त गरम खाद्य खाना

५-अधिक खाना,

६-मांस अधिक खाना,

७-अप्राकृतिक भोजन और गलत रहन-सहन के कारण रक्त विकार होने से शरीर में उपदाह की स्थिति,

८-कम पानी पीना,

९-चाय, तम्बाकू, शराब, आदि नशीली चीजो का सेवन

१०-सफेद चीनी का सेवन,

११-तरह-तरह से तय्यार किए हुए खाद्य पदार्थ जो डब्बो मे बद करके आते है,

१२-कजली, तारकोल, पिच, बेंजाइन, पाराफिन, कारबोलिक एसिड, तथा एनिलाइन आदि जब किसी प्रकार से त्वचा के सम्पर्क मे आते है, या मुख के रास्ते शरीर के भीतर प्रवेश करते है तो उसकी वजह से शरीर की समवर्तन-क्रिया (मेटाबोलिज्म) मे कुछ रासायनिक क्रियाए होती हैं जिनसे भयंकर विष की उत्पत्ति होती है। यही विष कैंसर रोग का मूल कारण है। चिमनी की कजली साफ करने वालों, कोयले से गैस बनाने वाले, कारखानो के श्रमिकों, सड़क पिच करने वाले मजदूरो, एनिलाइन रग जो एक प्रकार का विष है, से वस्तुओ को रगने वाले रंगसाजों, तथा बेनजाइन के कारखानो मे काम करने वाले व्यक्तियो को कैंसर रोग प्राय. देखा जाता है।

१३-मलावरोध

१४ तीव्र रोगो मे द्रव्यौषधियो का प्रयोग,

१५-आपरेशन के बाद घाव का बहुत दिनो तक न भरना,

पुरुषो मे होठ, जीभ, गला, आमाशय, यकृत तथा आंत आदि मुख्य रूप से इस रोग के क्षेत्र होते हैं। जो अधिक धूम्रपान के आदी होते है उनकी जीभ, गले और फेफड़ो में कैंसर खास तौर से हुआ करता है। स्त्रियो मे स्तन, गर्भाशय, योनिमुख, आमाशय, तथा आंतो मे यह रोग विशेष रूप से होता है।

चर्म पर होने वाला कैंसर कठोर और ऊंचाई लिए हुए होता है जो फटने पर घाव का रूप ले लेता है। भीतरी कैंसर कई प्रकार से पडा पडा बढता रहता है। पीडा दोनों प्रकार के कैंसर का प्रधान लक्षण है।

चिकित्सा

जब तक रोग का जोर कम न होजाय तब तक उपवास करते हुये रोज जरूरत के मुताबिक दोनो वक्त या एक वक्त एनिमा लेना चाहिए। दीर्घ उपवास ही इस रोग मे विशेष फलदायक होते हैं। रोज दो बार रोग के

पर आतप स्नान लेने के बाद कटि स्नान, महीने दो बार पूरे शरीर का वाष्प स्नान और दो बार रोग स्नान पर पट्टी रखकर पूरे शरीर की भीगी चादर की लपेट, रोज रात भर के लिये पेडू की गीली मिट्टी की पट्टी या कमर की गीली पट्टी का प्रयोग तथा कैंसर पर तीन-तीन घंटा के अन्तर से ५ से १० मिनट तक भाप देकर बाकी समय मिट्टी की उष्णाकर गीली पट्टी १-१ घंटा बाद बदल-बदल कर रखना, इस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा है। कैंसर मे यदि वेदना हो या उससे रक्त निकले तो उस पर खूब ठंडे जल से या बर्फ-जल से भीगी कपड़े की पट्टी बदल-बदल कर रखनी चाहिए।

इस रोग मे क्षारधर्मी 'खाद्य-पदार्थों विशेषकर गाजर और पालक के रस का सेवन होना चाहिये और पेट को साफ रखना चाहिये।

फोड़ा

फोड़ा (Abscess), और सभी व्रण (Boil) शरीर द्वारा विजातीय द्रव्य के निकाले जाने के प्रयास के फल होते हैं। रक्त मे व्याप्त विजातीय द्रव्य या दूषित पदार्थ प्रकृति द्वारा हटाया जाकर शरीर के किसी कमजोर भाग में आ जाता है और प्रथम-प्रथम वहां पर गांठ पैदा करके उस स्थान को लाल एव खाज, जलन तथा पीड़ा-युक्त कर देता है। यही व्रण है। कुछ दिनों बाद वह गांठ मुलायम पड़ जाती है और उसमें पीव और दूषित रक्त भर जाता है यही फोड़ा है, जिसके पककर फूट जाने पर शरीर स्थित दूषित पदार्थ पीव और विषैले रक्त के रूप मे शरीर से बाहर निकल पड़ता है। फोड़ा या व्रण मटर के दाने से लेकर मुर्गी के अण्डे तक हो सकता है तथा उसके साथ ज्वर और कोष्ठबद्धता की शिकायते भी प्रायः होती है। कितने ही व्रण शुरू मे ही उपचार आरम्भ कर देने से तथा कभी-कभी आप से आप भी दो-तीन दिनो में बैठ जाते है। पर अधिकांश अवस्था मे ये फोडों का रूप धारण करके पकते और फूटते हैं और ७ से १० दिनो के अन्दर-अन्दर सूख जाते हैं।

वैसे तो किसी समय भी फोड़ा निकल सकता है। पर गर्मियो और बरसात में फोड़े अक्सर निकलते हैं। ये फोड़े उन्ही को निकलते हैं जिनके शरीर का संचालन करने वाली मशीन कमजोर पड़ जाती है, जिसकी वजह से शरीर का मल आतों, गुर्दो, त्वचा, एवं फेफड़ों के जरिए समुचित ढंग से बाहर नहीं निकल पाता और तभी रक्त के साथ प्रवाहित होने वाले विकार अथवा मल ऐसे शरीर मे उस कमजोर स्थान को ढूढते है जहां से वे आसानी के साथ बाहर निकल जाये। वे कमजोर स्थान की ही तलाश इसलिए करते है, क्योंकि वहाँ पर शरीर का तापमान कम रहता है और वहां पर विकारो के बाहर निकल जाने के सम्बन्ध मे अधिक अनुकूल मौका रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि निकलते हुए फोड़ो को दवाइयों आदि से दबा देना या चीरना-फाड़ना अतीव भयानक तथा हानिकारक है। क्योकि ऐसा करने से फोड़ों में आता हुआ मल, रक्त मे पुनः प्रवेश कर जाता है और बड़ा नुकसान करता है। कभी-कभी तो इसप्रकार की अनुचित छेड़-छाड़ से साधारण फोड़े, असाधारण फोड़ो जैसे जहरवाद, नहरुआ, नासूर, तथा कैंसर आदि जहरीले घावो मे परिवर्तित हो जाते है और बहुत तकलीफ देते है।

चिकित्सा

जब तक फोड़े मे पीव न पड़े तब तक उस पर रोज २-३ बार काफी गरम परन्तु सहने योग्य भाप १० मिनट तक देकर २-३ घण्टा तक बदल-बदल कर उष्णाकर मिट्टी की या कपडे की गीली पट्टी लगानी चाहिए। पट्टी चार-पांच इन्च फोड़े के चारों तरफ बढी रहनी चाहिए। लेकिन जब उसमे पीव पड़ जाय तो मृदु भाप से सेक देकर ठंडी पट्टियो का व्यवहार करना चाहिए। जब तक फोड़ा अच्छा न हो जाय तब तक रोज रात को उस पर उष्णाकर गीली पट्टी लगाकर सोना चाहिए और सुबह पट्टी को खोलकर फोड़ा को नीम की पत्तियां डालकर उबाले हुए जल या २-४ बूंद नीबू का रस मिले साफ जल से धीरे-धीरे धो देना चाहिए। जब फोड़ा पीवयुक्त होने लगे तब उस पर ५ मिनट तक गरम पानी मे भीगे कपडे से तथा उसके बाद ५ मिनट तक ठंडे पानी से भीगे कपडे से आध घंटा तक दिन में ३-४ बार सेंके। जब फोड़ा फूट जाय तो दिन मे दो या कई बार उस पर हलकी भाप देकर बलुई मिट्टी की भीगी उष्णाकर पट्टी या कपडे की भीगी पट्टी बदल-बदल कर देनी चाहिए और हर बार जब मिट्टी की पट्टी फोडे पर से हटाई जाय तो उस स्थान को ठंडे पानी से धो देना चाहिए।

जब शरीर मे काफी तादाद मे फोड़े निकले हों उस वक्त

दिनों का उपवास करना जरूरी है। उपवास न हो सके तो फलो के रस पर ही रहना चाहिए और दोनों वक्त गुनगुने पानी का एनिमा लेना चाहिए, साथ ही नीबू का रस मिला जल प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिए। सप्ताह में एक बार फोड़ो पर ठंडी पट्टी रखकर पूरे शरीर का स्नान या पैरो का गरम नहान लेना चाहिए। रोज दो बार कटि या मेहन स्नान तथा रात भर पेड़ू पर मिट्टी की अथवा कर गीली पट्टी रखनी चाहिए। गुनगुने पानी से स्नान या तौलिया स्नान करना चाहिए। फोड़ों पर हरा प्रकाश देने के बाद नीला प्रकाश देना भी लाभ करता है। लगे फोड़ो को मक्खी आदि से बचाने के लिए उन पर नारियल के तेल मे ४-६ बूंद नीबू का रस मिलाकर लगाना चाहिए। उल्टे मुह के फोड़े और जले हुए स्थान पर शुद्ध शहद लगाना बड़ा उपकारी होता है।

कारबंकल

कारबकल (Carbuncle) एक प्रकार का व्रण है जो गर्दन, ओष्ठ, पीठ, जघा, एव मस्तक में निकलता है। इस प्रकार के व्रण मे एक जगह कई मुख होते है। यह साधारण व्रण से बड़ा और अधिक प्रदाहयुक्त भी होता है। चेहरे और मस्तक के कारबकल सबसे अधिक भयंकर माने जाते हैं। ४० वर्ष से ऊपर की उम्रवालो एवं बहुमूत्र-रोग के रोगियो को यह रोग प्राय. होता है।

जब यह रोग होने को होता है तो रोग के स्थान पर पहले गांठ-सी पड़ जाती है। उसके बाद उस स्थान पर [illegible] लिए हुए ललाई छा जाती है और धीरे-धीरे उसमे सूजन, पीड़ा और प्रदाह बढ़ने लगती है। रोगी कमजोरी अनुभव करने लगता है। कभी-कभी तेज ज्वर भी चढ़ता है। ५-७ दिनो मे ही व्रण मे कई मुख दिखाई देने लगते है जिनमे से पानी-जैसी कोई चीज रसने लगती है।

चिकित्सा

यदि प्रारम्भ से ही इस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा [illegible] तो एक मास के भीतर ही यह रोग अवश्य अच्छा [illegible]।

[illegible] प्रथम २-३ दिनो का उपवास नीबू का रस मिला [illegible] के बाद पीकर या रसाहार करके एनिमा द्वारा [illegible] देना चाहिए। उसके बाद पक्व या अत्यन्त सादे और सुप्राण भोजन पर उस वक्त तक रहना चाहिए जब तक कि रोग जड़-मूल से न चला जाय। सप्ताह में एक दिन जख्म पर ठडी पट्टी रखकर एक वाष्प-स्नान लेना चाहिए। चीनी, नमक तथा सभी उत्तेजक खाद्य पदार्थों को त्याग देना चाहिए। हरी शीशी का सूर्यतप्त जल दिन मे ८ बार पिलाना चाहिए (खुराक आधी छटांक)।

बाकी उपचार वही जो फोड़ा के लिए ऊपर लिखा जा चुका है।

भगन्दर

कड़े कब्ज के कारण गुदाद्वार के पास सूजन होकर फोड़े के रूप मे भगन्दर की उत्पत्ति होती है जो बाद को फूट जाता है और उससे बहुत-सा मवाद और दूषित रक्त निकल पड़ता है। घाव कभी-कभी बहुत गहरा और चौड़ा हो जाता है जिसमें पीड़ा असह्य होती है।

चिकित्सा

दो तीन सप्ताह के लम्बे उपवास या रसाहार की इसमे जरूरत होती है। शेष सभी उपचार फोड़ा के उपचार की भाति ही करने चाहिए। इस रोग में पीली और हरी बोतल का सूर्यतप्त तेल आधा-आधा मिलाकर दिन भर मे ८ खुराक पीना चाहिए (आधी छटाक = १ खुराक)।

गूंगी

किसी अंगुली मे प्रथम-प्रथम पीड़ा उत्पन्न होती है। फिर वह पीड़ा धीरे-धीरे इतनी बढ़ जाती है कि रात को सोना हराम हो जाता है। तत्पश्चात् पीड़ा की जगह एक लाल फुड़िया निकलती है जो बाद को बढकर फफोला बन जाती है। यही गूंगी या अंग्रेजी मे Felon कहलाती है।

चिकित्सा

दिन मे तीन-चार बार ५ से १० मिनट तक रोग के स्थान पर भाप देने के बाद बाकी समय उसे काफी ठण्डे पानी मे डुबोये रखना चाहिए। साधारणत. केवल इतने ही उपचार से दर्द में कमी आ जाती है। पानी में डुबोये रखने के बजाय गूंगी पर साफ कपड़े के एक टुकड़े को खूब ठण्डे पानी से तर करके कई परत लपेट देना और उसे सदैव तर रखना भी लाभ करता है। रात में गूंगी पर गीली मिट्टी

की पुल्टिस बांधनी चाहिए। जब गूंगी में पीव भरने लगे तो दिन मे तीर-चार बार आध घंटा तक पहले गूंगी पर ५ मिनट तक भाप दे, फिर ५ मिनट तक ठण्डी पट्टी का प्रयोग करे। जब गूगी का फोड़ा बिलकुल पक जाय तो सुई से उसमे छोटा-सा एक मुख कर देने से उसमें का रुका हुआ मल और दूषित रक्त बाहर निकल जायगा जिससे तकलीफ भी कम हो जायगी और फोड़ा जल्दी सूखने भी लगेगा। फोड़ा फूट जाने के बाद भी ऊपर का उपचार चलाते रहना चाहिए। साथ ही रोज सुबह-शाम कटिस्नान भी लेना चाहिए।

भोजन और अन्य आवश्यक उपचार आदि के लिए ऊपर बताये गये फोडा के उपचार मे पढ़िए। आसमानी रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल की ६ खुराक (आधी-छटांक १ खुराक) रोज पीने और गूंगी पर हरा प्रकाश आध घंटा तक डालने से इस रोग मे लाभ होता है।

कखौरी

यह गूंगी की तरह ही केवल कांख (बगल) या Armpit मे निकलनेवाला एक प्रकार का फोड़ा है, जिसका इलाज भी मामूली फोड़े के इलाज तरह ही करना चाहिए।

इस रोग मे आसमानी रङ्ग की बोतल के सूर्यतप्त जल का २ भाग और पीली बोतल के जल का एक भाग मिलाकर दिन मे उसकी ६ खुराके पिलानी चाहिए (मात्रा आधी छटांक), तथा जख्म पर आधा घंटा तक हरा प्रकाश डालना चाहिए।

बाघी

बाघी (Bubo) जांघ और जननेन्द्रिय के बीच ऊपर की तरफ पट्ठो मे निकलती है। पहले सूजन हो जाती है, तत्पश्चात् वहा एक सख्त गाठ-सी उत्पन्न हो जाती है, जो पीड़ा सहित और पीड़ा रहित दोनो प्रकार की होती है। इसी प्रकार बाघी कभी पकती-फूटती है और कभी नहीं भी पकती-फूटती। बाघी में कभी कभी तेज दर्द होता है जो सारी जाघ मे फैला हुआ मालूम पड़ता है।

बाघी होने के कारण भी वे ही है जो अन्य प्रकार के फोड़ो के होने के होते हैं। परन्तु बहुधा यह रोग अनियमित यौन-क्रिया के एवं कूद-फाद के कारण होता है।

चिकित्सा

इस रोग मे पूर्ण विश्राम आवश्यक है। रोज दो वक्त सहने योग्य गरम पानी मे कटि स्नान ३ से ५ मिनट तक लेना चाहिए। उस वक्त सिर को ठडे पानी से धोने के बाद मस्तक पर ठण्डे पानी से भीगा एक गमछा रखा होना आवश्यक है। गरम पानी का कटि-स्नान करने के बाद तुरत दो मिनट तक ठण्डे पानी का कटि-स्नान करना चाहिए। इस क्रिया को एक ही समय दो-तीन बार दोहराना चाहिए। शेष उपचार फोडा के उपचार की भाति चलाना चाहिए।

उपचार से कभी बाघी बैठ जाती है और कभी पक-फूटकर मवाद के रूप मे शरीर का विष निकल चुकने के बाद धीरे-धीरे सूख जाती है।

नासूर

जो फोड़ा सदैव बहता रहता है और अच्छा होने का नाम नही लेता, उसे नासूर कहते है। नासूर सूचित करता है कि रोगी के शरीर में विजातीय द्रव्य का भार अत्यधिक है जिसके निकल जाने और शरीर के निर्मल हो जाने के बाद ही उसके मिटने की आशा की जा सकती है।

नासूर की चिकित्सा, कैंसर की चिकित्सा की भाति ही करनी चाहिए।

हरी बोतल का सूर्यतप्त जल दो भाग, तथा आसमानी का एक भाग मिलाकर आधी आधी छटाक, दिन में ६ बार पीना चाहिए, तथा नासूर पर आधा घण्टा तक हरा प्रकाश डालना चाहिए।

खुजली

खुजली (Itches) की बीमारी त्वचा के किसी भी हिस्से मे हो सकती है मगर विशेषकर यह हाथो और पावो के गहुओ (अगुलियो की सधियो) मे अधिक होती है। इसे खेसरा भी कहते है। यह सक्रामक रोग है। इसमें छोटी-छोटी फुन्सिया निकलती हैं जिनमे अत्यन्त खुजलाहट और जलन होती है। बाद को ये पककर फूटती भी हैं और त्वचा पर काफी जगह घेर लेती हैं। खुजली सूखी और तर दो प्रकार की होती है। खुजली के कारण वे ही हैं जो अन्य चर्म रोगो के।

चिकित्सा

अन्य रोगो की भाति ही खुजली को भी पाग,

गन्धक, तथा हड़ताल आदि विषैली दवाइयों के प्रयोग से दवा देना अतीव भयानक है। ऐसा करने से बाद को भयङ्कर बीमारियाँ शरीर को आ लगती है जिनसे छुटकारा पाना मुश्किल होता है।

आरम्भ में २-१ दिनों का उपवास करना या फलों या साग-सब्जियो के रस पर रहना ठीक रहता है। इन दिनो एनिमा लेना न भूलना चाहिए। उसके बाद ३ से ७ दिनो तक फलों या उबली साग सब्जियो पर रहना चाहिए और सप्ताह में एक बार सारे शरीर का भाप-नहान लेना चाहिए, तथा उसके बाद कटि-स्नान। रात को पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधकर सोना चाहिए और रोगी हिस्से पर भी। कटि-स्नान रोज दो बार लेना आवश्यक है। फलो या उबली साग-सब्जियो पर रहने के बाद रुचि अनुसार कच्ची साग-सब्जियां, फल, उबली तरकारिया, हरा चना, कच्चा दूध, नीवू, गेहूँ और चना के आटे की रोटी, शहद, मठा, तथा सूखे मेवे आदि मे से दो-एक चीजे एक वक्त के भोजन मे शामिल करके खानी चाहिए। नाश्ता करना बिलकुल बन्द करदेना चाहिए। केवल १२ बजे दिन और ५ बजे शाम को ही भोजन करना चाहिए।

नीवू मिला पानी अधिक पीना चाहिए। नमक खाना बन्द रखना चाहिए।

सप्ताह मे तीन बार सारे बदन पर गीली मिट्टी का लेप लगाकर धूप में बैठे और सूख जाने पर स्नान करे। या एक आदमकद टब मे गरम पानी भरकर उसमें ३० मिनट तक लेटे।

ज़ख्मों पर हरी बोतल का सूर्यतप्त जल दिन मे ४ बार पीना चाहिए (मात्रा आधी छटाक) तथा नीला या हरा प्रकाश ३० मिनट तक रोज रोगी जगह पर डालना चाहिए या समूचे शरीर पर।

इस रोग मे सदैव खुली हवा मे रहना, घूमना तथा गहरी सांस लेना चाहिए। इससे रक्त शुद्ध होकर रोग के दूर होने मे सहायता मिलती है।

दाद

दाद के शुरू होते ही तीन-तीन घण्टे पर यदि थोड़ी देर गरम और ठण्डी सेक देकर उस स्थान पर उष्णाकर गीली मिट्टी का प्रयोग किया जाय तो उसकी जड़ नष्ट हो जाती है। सूखे दाद मे उस अङ्ग को आधा घण्टा तक गरम पानी मे डुबो रखने से लाभ होता है। उसके बाद उस पर उष्णाकर गीली मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए।

दाद रोग की बढी हुई दशा मे और आर्द्र दाद होने पर उस स्थान को गुनगुने पानी मे दिन में दो-तीन बार डुबो रखना चाहिए। तत्पश्चात् उस पर गरम और ठण्डी सेक देनी चाहिए। रोज रात को सोते वक्त दाद वाले स्थान पर उष्णाकर गीली मिट्टी की पट्टी लगाकर सोना चाहिए। सप्ताह मे १-२ बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट लगानी चाहिये तथा रोज दो बार कटि स्नान लेना चाहिये। दिन मे दो बार दाद पर भाप नहान देकर उसके बाद गीली मिट्टी की उष्णाकर पट्टी रखने से भी लाभ होता है। ज्वर रहने पर रात मे पेड़ू पर भी गीली मिट्टी की उष्णाकर पट्टी रखनी चाहिये। यदि पेट साफ न हो तो कुछ दिन उपवास या रसाहार करके एनिमा द्वारा पेट साफ कर लेना चाहिये। रोगी को नीबू मिला पानी प्रचुर मात्रा मे पीना चाहिये और भोजन सप्राण और सादा करना चाहिये।

आसमानी रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल की आधी-छटाक की ४ खुराकें रोज पीने और दो घण्टा तक नीला प्रकाश दाद पर डालने से उस रोग मे जल्दी लाभ होता है।

अपरस

अपरस एक असंक्रामक चर्म-रोग है। गरम ऋतु मे प्रायः यह रोग दबा रहता है और ठण्डे मौसम मे उभड़ता है। जो लोग अधिक परेशानियो के शिकार रहते हैं उनको अक्सर यह रोग होता है। अपरस कलाई, कुहनी घुटनो, कमर, कन्धो, एव हथेलियो पर खास तौर पर होता है। आरम्भ मे त्वचा गुलाबी रङ्ग की हो जाती है, फिर उस पर सफेद खुरट आते हैं जिसके छूट जाने पर त्वचा से रक्त रिसने लगता है।

चिकित्सा

७ से १४ दिन तक फलाहार करे, फिर फल-दूध पर रहे। कब्ज दूर होने तक एनिमा ले। नमक एकदम न खाय। रोज सुबह साधारण स्नान के पहले और बाद घर्षण-स्नान करे। सप्ताह मे दो दो बार एप्सम साल्ट बाथ ले। अपरस को रोज नमक मिले गरम पानी से

धोकर उस पर जैतून का तेल या हरी वा नीली बोतल का सूर्यतप्त तेल लगावे। अपरस पर रोज नीली रोशनी डालवा भी जरूरी है। रोज हल्की कसरत और गहरी सांसें भी कुछ देर तक लेनी चाहिए। शेष चिकित्सा और पथ्य दाद की चिकित्सा और पथ्य की भांति है।

घमौरी

अम्होरी, घमौरी, या Prickly heat एक मामूली प्रकार का चर्म रोग है जो कुछ लोगों की त्वचा पर गर्मी और बरसात के मौसमो में उभरता है। इसमे छोटी-छोटी और लाल-लाल फुन्सियां निकलती हैं जो कभी-कभी पानी भी लिये हुये होती हैं और खुजलाती भी है।

चिकित्सा

प्राय:कुछ दिनों मे घमौरी आप से आप अच्छी होजाती है। परन्तु यदि इससे तकलीफ हो तो कई दिनों तक रात भर के लिए पेडू पर गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी बांधनी चाहिए और कब्ज हो तो रोज सुबह एनिमा लेना चाहिए। साथ ही रोज दो बार समूचे बदन पर गीली मिट्टी का लेप लगाकर और उसे सुखाकर स्नान कर लेना चाहिए। भोजन अनुत्तेजक और सादा होना चाहिए। बरसात के पानी में खूब मलमल कर नहाने से भी घमौरी छूट जाती है।

धोबीइच

पानी मे अधिक देर तक खड़ा रहते-रहते पैर की अंगुलियों की सधियो में सड़न पैदा हो जाती है और उसमे रह-रह कर असह्य खुजली उठती है, विशेषकर उस हालत में जबकि पैरों की अगुलियां सूखी होती है। इसी को अंग्रेजी में 'धोबी इच' कहते है। जखम पर तीन-चार मिनट तक भाप देने के बाद उस पर आध घंटा के लिये गीली मिट्टी को उष्णकर पट्टी लगानी चाहिये, दिन मे ३-४ बार। हरी बोतल का सूर्यतप्त तेल लगाना भी इस रोग मे लाभ करता है।

बेवाई

पैर की मोटी त्वचा मे बेवाई फटती हैं जो कभी-कभी बहुत तकलीफ देती है। पैर के उस भाग में समुचित रूप से रक्तसंचालन न होवा, रक्त का विपाक्त होना, तथा पैर की खाल मे कोई खराबी होना, इस रोग के होने के तीन कारण हैं।

चिकित्सा

इसमें खून को साफ करने के लिए कुछ दिनो तक (३ से ७ दिनों तक) केवल फल खाकर रहना चाहिये इन दिनो दोनो समय गुनगुने पानी का एनिमा भी लेना चाहिए। फिर ७ दिन से १५ दिन तक फल, दूध, और मठा पर रहे। इन दिनो भी जब पेट साफ न रहे तो शौच से आने के बाद एनिमा लेना चाहिये। फल-दूध-मठा के बाद धीरे-धीरे सादे भोजन पर आ जाना चाहिए। बेवाई जहां फटी हो उस स्थान को नमक मिले गुनगुने पानी से धोकर चालमोगरे के तेल या लाल बोतल के सूर्यतप्त तेल से वहां पर धीरे-धीरे १५ मिनट तक दिन में ३-४ बार मालिश करना चाहिये। रोज स्नान के पहले और बाद शुष्क घर्षण स्नान करना चाहिये।

फीलपांव

दो एक दिनो का उपवास, ५-७ दिनों का रसाहार, तथा ८-१० दिनों तक फलाहार के साथ एनिमा लेकर पहले पेट को साफ कर लेना चाहिये। उसके बाद सादे और सप्राण भोजन पर रह कर नीचे का उपचार चलाना चाहिये। उपचार, फलाहार आरम्भ करने के दिन से भी चलाया जा सकता है।

रोग के स्थान पर आध घटा तक गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी रखने के बाद उसको गरम पानी से धो डाले और लेटकर फीलपाव वाले पैर को ½ घंटा तक ऊपर तान रखे। उसके बाद पैरो का एक गरम स्नान लेना चाहिये। यह क्रिया दिन मे दो बार करनी चाहिये। इसके अलावा रात को सोते वक्त कमर की गीली पट्टी बांधनी चाहिए। दिन मे दो बार कटि-स्नान भी करना जरूरी है।

पीली और हरी बोतल का सूर्यतप्त जल सम भाग लेकर उसकी ६ खुराके (१ खुराक बराबर आधी छटाक) दिन मे पीना भी इस रोग मे बड़ा लाभ करता है।

पसीना अधिक निकलना

त्वचा के छिद्रों से पसीना रिसना तो स्वाभाविक है। परन्तु जब शरीर से अस्वाभाविक रूप से अधिक पसीना छूटने लगे तो उसे अवश्य ही रोग समझना चाहिये। किसी-किसी को रात को सोते में काफी पसीना छूटता है जो अस्वाभाविक है।

चिकित्सा

शरीर से पसीना अधिक निकलना कमजोरी की निशानी है और यह कि रक्त मे विजातीय द्रव्य का भार अधिक है। इसलिये शरीर को सबल बनाने के लिये एनिमा, कटि-स्नान, तथा कमर की गीली पट्टी आदि प्रयोगो द्वारा पेट को साफ कर लेने के बाद फल, दूध, ताजी तरकारिया आदि सादा और सप्राण भोजन खास तौर से करना चाहिये। रोगी के शरीर को दिन में दो-तीन बार और सोने जाने से पहले सहने योग्य गरम जल से भीगे और निचोड़े कपड़े से पोंछ देना चाहिए।

केवल हाथो-पैरो में पसीना आता हो तो उपर्युक्त उपचार के साथ-साथ हाथो-पैरो पर आसमानी रंग की बोतल के सूर्य-तप्त तेल की मालिश भी करनी चाहिए।

छाला

छाला, क्षत या Ulcer कई प्रकार का होता है। किसी में केवल पछा रिसता है, किसी मे रक्त चिपचिपाता रहता है, किसी मे पीड़ा अधिक होती है किसी मे कम। कोई पीव और गन्ध युक्त होता है, तो कोई पीव और गन्ध विहीन। छाला जब जल्दी अच्छा नहीं होता तो पुराना पड़कर कैंसर का रूप धारण कर सकता है। जिसके शरीर मे विजातीय द्रव्य अधिक होता है उनके चर्म पर छाला पड़ने से वह जल्दी अच्छा नही होता।

चिकित्सा

नया और मामूली छाला, केवल उस पर कपड़े की ठंडी पट्टी बाध रखने और उसे बराबर तर करते रहने से ही अच्छा हो जाता है। परन्तु जब अधिक दिनो तक यह प्रयोग चले तो दिन मे दो बार १० मिनट तक छाले पर हल्की भाप भी जरूर देना चाहिए। जब छाले से रक्त निकलता हो तो पट्टी को बर्फ जल मे भिगो-भिगोकर छाले पर रखना चाहिए या छाले वाले स्थान को ठंडे जल मे काफी देर तक डुबो रखना चाहिए।

रोगी जब बहुत दिनो तक खाट पर पड़ा रहता है तो उसकी पीठ आदि पर शैया-क्षत (Bed sore) पड जाते है। इसके लिये रोज दिन मे तीन बार क्षत पर एक घंटा [illegible] और ३ बार पहले ५ मिनट तक भाप [illegible] पानी से भीगा और निचोड़ा [illegible] [illegible]। [illegible] दिन में दो बार नमक मिले पानी से धोना भी चाहिए।

पुराने क्षत मे दीर्घ उपवास या छोटे-छोटे कई उपवास के साथ एनिमा, कटि स्नान, पेडू की गीली मिट्टी की पट्टी तथा कमर की गीली पट्टी का प्रयोग करके पहले पेट को साफ कर लेना जरूरी होता है। उसके बाद हर हफ्ते समूचे शरीर की गीली चादर की लपेट लगानी चाहिए। प्रतिदिन धूप मे बदन को गरम करके शाम-सुबह कटि स्नान लेना चाहिए। शाम को सोने से पहले १५ मिनट मेहन स्नान करना चाहिए। छाले को दिन में दो बार भाप से सेककर उस पर कपडे या मिट्टी की गीली उष्णकर पट्टी २ घंटा तक बदल-बदलकर रखनी चाहिए। दिन मे दो एक बार छालेवाले स्थान को गुनगुने पानी मे काफी देर तक डुबाये रखना भी लाभ करता है। छाले को रोज नीम के पानी या नीबू का रस मिले पानी से धोकर साफ रखना चाहिए तथा नीबू का रस मिला पानी प्रचुर मात्रा मे रोज पीना भी चाहिए।

मांस वृद्धि

मास वृद्धि, अर्बुद या Tumour शरीर के भीतरी और बाहरी दोनों हिस्सो मे हो सकता है। यह एक प्रकार का विजातीय द्रव्य ही है जो गांठ, गिल्टी या सूजन के रूप मे मनुष्य के शरीर मे वृद्धि पाता रहता है और तकलीक देता रहता है। यह रोग पुराना पड़ने पर जरा मुश्किल से जाता है।

चिकित्सा

शरीर मे ट्यूमर की उत्पत्ति का पता लगते ही कुछ दिनो तक उपवास करके या रसाहार पर रहकर कब्ज टूटने तक रोज शाम को एनिमा लेना चाहिए। फिर उसके बाद दो सप्ताह तक फल और दूध या सादे भोजन पर रहना चाहिए। रोज साधारण स्नान के पहले और बाद मे समूचे शरीर की सूखी मालिश करनी चाहिए। दिन मे दो बार तौलिया स्नान और सप्ताह मे दो बार एप्समसाल्ट बाथ देना चाहिए। हल्का व्यायाम और गहरी सास की कसरतें भी बिना नागा रोज करनी चाहिए। रोग जब तक दूर न हो जाय तब तक ऊपर का कार्यक्रम कई बार दोहराना चाहिए। रोग के स्थान पर मिट्टी की उष्णकर गीली पट्टी दिन मे कम से कम दो बार जरूर लगानी चाहिए।

जुल पित्ती

ज्वर न हो तो दिन मे दो बार समूचे बदन पर कीचड़ का लेपकर उसके सूख जाने पर स्नान कर डाले। ठंडे जल की मालिश भी करनी चाहिए। कटि या मेहन-स्नान भी रोज दो बार करना चाहिए। जरूरत हो तो एक स्टीम बाथ भी दे दे। उपवास, रसाहार या फलाहार जब तक रोग न जाय करना चाहिए। ज्वर होने पर तीन बार तौलिया, दो बार कटि स्नान, रोग के स्थान पर २-२ घंटा बाद ३-४ मिनट भाप देकर हर २० दिन-के बाद ठंडी पट्टी बदल-बदल कर दे। पर हालत सुधरने पर यह क्रिया दिन मे केवल दो बार करे।

नवां अध्याय

अचानक की तकलीफें

साप के काटे का इलाज—सांप जैसे हो काटे वैसे ही काटे स्थान के ऊपर थोड़ी-थोड़ी दूर पर काटे स्थान और हृदय के बीच मजबूत रस्सी से खूब कसकर तीन बंधन बांध देने चाहिये। तत्पश्चात् काटे हुए स्थान पर तेज चाकू या ब्लेड से चीरा लगाकर उस स्थान पर मुंह लगाकर जहरीले रक्त को चूस चूसकर बाहर उगल देना चाहिए और उसके बाद मुंह को नीबू का रस मिले गरम पानी से शुद्ध कर लेना चाहिए। खून चूसकर फेक देने के बाद तीनो बधनों को खोलकर उस स्थान को गहरे ठडे पानी मे डुबोकर मोटे कपड़े से रगड़-रगड़ कर डेढ़-दो घटे या अधिक समय तक खूब धोना चाहिए। अन्त मे घाव को नीबू का रस मिले पानी से धोकर रोगी को गुनगुने पानी का एक एनिमा देना चाहिए फिर पूरे शरीर का एक भाप-नहान। तत्पश्चात् रोगी को ठडे जल से खूब नहलाकर ४५ मिनट का एक उदर-स्नान देना चाहिए साथ ही घाव पर मिट्टी की ठंडी पट्टी बाध देनी चाहिये जिसे गरम हो जाने पर बदलते रहना चाहिए।

यदि सांप काटे २४ घंटे से ऊपर हो गया हो और रोगी के जीवित होने की आशा न हो तो उसके कद के बराबर एक गहरा कुआं खोदकर और उसमें मुह तक गीली साफ मिट्टी भरकर उसे उसी गीली मिट्टी भरे कुए में गले तक गाढ देना चाहिए और सिर पर ठडे पानी से तर तौलिया रख देना चाहिये और उसे हमेशा तर करते रहना चाहिए। रोगी को कम से कम २४ घटे तक उसी प्रकार गढा रखना चाहिए। जब उसे होश आ जाय तो कुए मे निकालकर उपर्युक्त उपचार द्वारा उसे पूर्णत: ठीक कर देना चाहिए।

बिच्छू के डंक मारने पर—डंक मारे स्थान को किसी गहरे बर्तन में भरे ठडे पानी मे डुबोकर किसी मोटे कपड़े से काफी देरतक रगड़-रगड़कर धोना चाहिए। अथवा उस स्थान वाले पूरे अङ्ग पर २०-२० मिनट के अन्तर से गीली मिट्टी की ठण्डी पट्टी लगानी चाहिए।

अन्य कीड़े-मकीड़ो के जहर को उतारने की तरकीब—बिच्छू के डंक मारने पर जो उपचार किया जाता है वही उपचार करना चाहिए।

पागल कुत्ते एवं अन्य प्रकार के जहरो का इलाज—पागल कुत्ता या गीदड़ के काट खाने पर उस स्थान को दबा-दबाकर काफी खून निकाल देना चाहिए। फिर घाव को नीबू का रस मिले पानी से खूब अच्छी तरह धोकर साफ करना चाहिए। तत्पश्चात् घाव को पोछकर उसे किसी लोहे की सलाई के सिरे को आग में लाल करके उससे जलाना चाहिए। उसके बाद ऊपर बताये गये साप के काटे वाला उपचार करना चाहिए।

जहर खा लेना—तेजाब आदि का जहर खा लेने पर रोगी को दूध या पानी में अण्डे की सफेदी अच्छी तरह फेंटकर या सिर्फ दूध या सिर्फ ठंडा पानी कई बार काफी मात्रा में पिलाना चाहिए। उतना ही दूध अन्तड़ियों मे पहुँचाना चाहिए जितना रोके रुक सके। उसके बाद रोगी की गर्दन के सामने वाले हिस्से पर मिट्टी की उष्णाकर गीली पट्टी लगानी चाहिये जिसे बदलते रहना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति ऐसा जहर खा ले जिस। उसके मुंह

...ंग आदि न जले हो तो उसे फौरन कै कराकर पेट में से जहर को बाहर निकाल देना चाहिए। इसके लिये गरम पानी में अधिक नमक मिलाकर हर ५ मिनट बाद पिलाते रहना चाहिए। हलक में उंगली आदि डालकर भी कै कराई जा सकती है। कै बार-बार करानी चाहिए। इसके अलावा नमक मिले गुनगुने पानी का दो-एक एनिमा भी देना चाहिए। फिर एक पूरे शरीर का भाप नहान और तत्पश्चात् उदर-स्नान देना चाहिए।

शीशे का चूरा खा लेने पर गाय का दही पिलाना चाहिए।

अफीम का जहर उतारने के लिये हीग को छाछ में घोलकर पिलाना चाहिए या १ तोला जामुन के पत्तों का रस।

धतूरे का विष उतारने के लिये नमक को पानी में मिलाकर पिलाना चाहिए या गूलर की जड़ की छाल को कालीमिर्च के साथ पीसकर पिलाना चाहिए।

संखिया-विष को दूर करने के लिये कड़ुवी नीम की पत्तियों को गरम जल के साथ पीसकर पिलाना चाहिए या दूध में घी मिलाकर।

भङ्ग का नशा अरहर की दाल का धोवन पीने से उतरता है।

पारे-जस्ते का जहर गेहू के आटे को पानी में घोल कर पीने से उतर जाता है।

कुचिला का जहर घी मिला दूध पीने या जामुन की गुठली का १० माशा चूर्ण फाककर पानी पीने से उतर जाता है।

चोट लगना—...र में मोच या कुचलन लग जाने पर सर्व प्रथम उस जोड़ पर 8 इस शकल की कपड़े की पट्टी मजबूती से बांधनी चाहिए और रोगी को सहारा देते हुये चिकित्सा के स्थान पर पहली पट्टी को खोलकर चोट की जगह पर ठंडे पानी से तर की हुई और निचोड़ी हुई कपड़े की एक दूसरी मोटी और लम्बी २-३ बार लपेट करके बांध देनी चाहिए। अगर हो सके तो चोट वाले स्थान को ...-... मिनट तक बर्फ से ठंडा किये हुये जल में डुबोये ..., फिर निकाल लें, तत्पश्चात् थोड़ी देर बाद पुनः वैसे ही जल में डुबो दें। आवश्यकतानुसार इस क्रिया को ... के कम हो जाने तक करते रहना चाहिए। यदि स्थान पर फिर भी सख्ती बाकी रहे तो उस पर गरम-ठंडी सेंक देनी चाहिए।

चोट लगे आदमी को सहारा देना

चोट के स्थान पर घाव होकर यदि खून बहना जारी हो जाय तो उस जगह पर अंगूठे या उंगलियों से सीधा दबाव डालकर घाव पर साफ कपड़ा की कई तहों की ठंडी पट्टी बांध देनी चाहिए और ऊंचा करके रखना चाहिए। ठंडी पट्टी को ५-७ मिनट तक घाव पर रखने के बाद ५-७ मिनट के लिये हटा लेना चाहिए और उसके बाद फिर रख देना चाहिए।
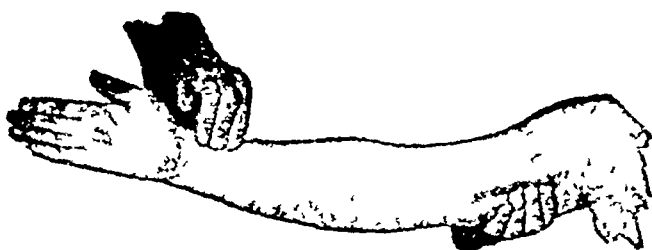
उंगलियों से दबाव डालकर खून बन्द करना

घूसे का घाव आदि भीतरी चोटों का इलाज उदर और मेहन स्नानों के साथ रक्त निकलने वाले बाहरी चोटों के इलाज की भांति ही करना चाहिए।

अधिक बेहोश आदमी की चिकित्सा नं १

अधिक बेहोश आदमी की चिकित्सा नं० २

दसवां अध्याय

ऋतु सम्बन्धी रोग

ऋतु आरम्भ में विलम्ब

यदि कोई जवान लडकी इस योग्य हो गयी हो कि मासिक धर्म हो, फिर भी उसे मासिकधर्म न हो तो वह अवश्य ही रोगी है। यदि ऐसी लड़की मे जवानी के सारे चिन्ह मौजूद हो मगर वे चिन्ह जो मासिक -धर्म के जारी होने के वक्त स्त्रियो मे प्रकृतितः कम या अधिक पाये जाते हैं, बिलकुल मौजूद न हो तो समझना चाहिए कि उसका गर्भाशय अथवा डिम्बाशय बहुत छोटा है या है ही नही। ऐसी हालत में रोग को असाध्य समझना चाहिये। इसी प्रकार यदि किसी युवती को मासिक धर्म होने के सारे चिन्ह मौजूद होते हुए भी ऋतु का रक्त जारी न हो तो समझना चाहिए कि उसके मुख का पर्दा किसी कारण से मोटा और पुष्ट हो गया है, जिसको छेदकर माहवारी का रक्त बाहर नही निकल पा रहा है। ऐसी दशा मे भी माहवारी का रक्त जारी कराने मे कोई चिकित्सा कारगर नहीं हो सकती। हां ऐसी हालत में नश्तर से कुछ काम चल सकता है।

इस सम्बन्ध मे एक बात और जान लेनी चाहिये। वह यह कि प्रथम ऋतु होने के पहले भी स्त्री गर्भवती हो सकती है। पर उस दशा मे ऐसी स्त्री 'ऋतु मे विलम्ब' की रोगी नही समझी जा सकती है।

ऋतु-आरम्भ मे विलम्ब प्रायः उन लड़कियो मे अधिक होता है जिनके शरीर मे खून की कमी होती है या जो क्षय और राजयक्ष्मा जैसे शरीर को कमजोर करने वाले रोगो के चंगुल मे फंसी होती हैं। इसके अतिरिक्त अविकसित गर्भाशय और डिम्बाशय, उनकी सूजन, गर्भाशय का अपनी जगह से टला होना, छूतवाले रोग, गंदी वायु में रहन-सहन, व्यायाम का अभाव, मिथ्या आहार, अधिक चिन्ता, शोक, भय आदि तथा कस-कर साड़ी बांधना आदि भी इस रोग के कारण हो सकते है।

ऋतु होने की उम्र मे ऋतु आरम्भ न होने से लड़-कियों को बड़ी तकलीफ होती है। सिर दर्द, चक्कर आना भूख का न लगना, मानसिक गड़बड़ी, पेट के रोग तथा छाती के अनेक रोग आ घेरते हैं।

इस रोग की चिकित्सा के लिए सर्व प्रथम रोग के कारणो को त्याग कर देना चाहिए और संयमी जीवन बिताना चाहिए। शुद्ध वायु मे रहना, उचित व्यायाम करना, सदैव प्रसन्न रहना, साफ सुथरे वस्त्र धारण करना मिरच मसाला, सफेद चीनी, नशीली चीजो तथा सभी उत्तेजक खाद्यो से परहेज करना इस रोग को दूर भगाने मे मदद करते हैं।

प्रतिदिन सुबह-शाम नियमित रूप से शक्ति-अनुसार मेहन स्नान अथवा कटि-स्नान कराना चाहिए। रात को या तीसरे पहर रोज आध घण्टा के लिए गीली मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर बांधनी चाहिए तथा महीने मे एक-दो बार पूरे शरीर का या केवल पेड़ू का वाष्प-स्नान लेना चाहिये।

ऋतु का असमय में बंद हो जाना

प्रथम बार माहवारी होने के बाद से प्रौढावस्था मे

माहवारी के प्रक्रतित. बद होने तक के समय के बीच मे ही माहवारी बन्द हो जाना अस्वाभाविक है, अतः रोगों मे इसकी गिनती होती है। इस अवस्था को ऋतुरोध, रज.स्तम्भ, नष्टार्तव या अग्रेजी मे 'एमीनोरिया' कहते है। परन्तु गर्भावस्था मे और प्रसव के बाद बहुत दिनों तक बच्चा को दूध पिलाने के समय स्वाभाविकतया माहवारी का बन्द होना रोग नही है।

मिथ्या आहार-विहार, आलस्य, अधिक परिश्रम, उत्तजक औषधियो और नशीली वस्तुओं का सेवन, भय, क्रोधादि मानसिक उत्तेजनायें, रक्तालपता, क्षय, मलेरिया आदि रोग, सहसा जाड़ा लग जाना, बर्फ का पानी पीना, माहवारी के दिनों में भीगना, गर्भाशय के रोग जैसे गर्भाशय का मुंह फिर जाना, उसमे सूजन होना, उसका टल जाना, पाखाने के मुकाम का रोग, तिल्ली या जिगर का रोग, गर्भपात, कम भोजन मिलना, अधिक पतला होना, अधिक मोटा होना तथा अधिक रक्त होजाना और गुप्त-इन्द्रिय की निर्बलता के कारण वजाय योनिमार्ग से शरीर के अन्य मार्गों—नाक, कान आदि से उसका निकलना आदि ऋतु के असमय मे बन्द हो जाने के कारण हो सकते हैं।

असमय मे ऋतु बन्द हो जाने से स्त्री को बड़ा कष्ट होता है। पीठ, कमर और सर में दर्द होता है। पेड़ू भरा-भरा सा प्रतीत होता है तथा मतली, कै, श्वास-कष्ट, थकावट, आलस्य, निद्रा आदि भी सताने लगते हैं।

इस रोग की चिकित्सा के लिए भी संयमी जीवन बिताना और स्वास्थ्य के अन्य नियमो को पालन करना जरूरी है, साथ ही जिन कारणो से यह रोग होता है उन्हे दूर कर देना चाहिए। तत्पश्चात् यदि रोगिणी बहुत कमजोर न हो तो उसे ३ दिन तक फलो या सब्जियो के रस पर रहना चाहिये और आवश्यकतानुसार एक या दोनों समय एनिमा लेना चाहिये। फिर सात दिनों तक फलाहार करना चाहिये। उसके वाद १० दिनों तक फल-दूध या मठा पर रहना चाहिये। फलाहार और फल-दूध पर रहने के दिनो मे सुबह या शाम एक बार एनिमा भी लेना जरूरी है। यदि रोगिणी बहुत कमजोर है तो वह तीन दिन का रसाहार न चलावे अपितु अपने रोग की चिकित्सा का आरम्भ वह सात दिन के फलाहार से करे।

फल और दूध आरम्भ करने के दिन से सवेरे मेहन [illegible] स्नान और तीसरे पहर या रात मे सहने लायक गरम [illegible] पानी के टब में पैरो को बाहर निकालकर केवल बैठ जाय, पेडू को मलने की जरूरत नही है। शक्ति अनुसार [illegible] ५ से १५ मिनट तक गरम पानी के टब मे बैठे रहना चाहिए। पानी बराबर गरम रहे इस बात का ध्यान रखना चाहिए। इसके लिये थोडी थोड़ी देर बाद टब से २-३ लोटे पानी निकालकर उतना हो डालते रहना चाहिए। टब से निकलने के बाद शरीर को पहले ठंडे पानी से भीगे और निचोड़े तौलिये से उसके बाद सूखे तौलिये से पोछना चाहिए। भोजन और इस स्नान में २ घटे का अन्तर जरूर रखना चाहिए। कभी-कभी धूप-स्नान और १५ दिनों मे एक बार भाप नहान लेने से इस रोग में जल्दी लाभ होता है। रोगिणी को शक्तिभर टहलना या कोई हल्की कसरत प्रतिदिन करना चाहिए, तथा सुबह-शाम गहरी सांस की कसरत भी। आवश्यकता पड़ने पर पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी और उस पर कभी कभी भाप-स्नान का प्रयोग भी लाभदायक सिद्ध होता है।

यदि भीगने या सर्दी के कारण ऋतु बंद हुआ हो तो रजोदर्शन के समय के पूर्व पावो का गरम स्नान करना चाहिये; साथ-साथ कटि-स्नान और गुनगुने पानी का एनिमा भी लेना चाहिए।

अनन्नास, मछली, तिल, मसूर, दही, पका पपीता, कच्चा ताजा दूध, कच्चे पपीते की तरकारी, प्याज, दालें, अंकुरित चना तथा मूंग जैसे फासफोरस वाले खाद्य पदार्थ इस रोग में लाभ करते हैं।

दर्द के साथ ऋतु होना

यह रोग निम्नलिखित कारणो से होता है:—

(१) योनिमार्ग के निचले भाग में दोष के कारण तनाव उत्पन्न हो जाने से।

(२) शरीर में रक्त की कमी एव कमजोरी से।

(३) शरीर के रक्त के दूषित हो जाने से।

(४) मिथ्या आहार।

(५) वस्तिगह्वर मे रक्त सञ्चय के साथ रक्तसंचार प्रवाह।

(६) पुरुष के सहवास से वञ्चित रहना।

आलसी जीवन बिताना, किसी प्रकार की कसरत
रिश्रम न करना। दिन मे सोना।
) ऋतु के समय अथवा उसके पहले पुरुष-सहवास

) भय, शोक आदि मानसिक वेदना।
०) गर्भाशय-द्वार का पैदायशी तंग होना।
१) गर्भाशय के मुख पर बतौड़ी होना, उसका
कल आना, उलट जाना अथवा उसमे सूजन का

२) खडे होने, चलने एव बैठने-उठने के गलत

रोग की चिकित्सा के लिये सर्वप्रथम उन कारणों
कर देना चाहिए जिनकी वजह से रोग की
हुई है। अर्थात् शरीर मे विशेषकर पेडू में एकत्र
ो जो अप्राकृतिक खान-पान एव आहार-विहार के
हैं, दूरकर देना चाहिए। इस रोग के जाने मे
से साल भर तक लग सकता है जो शरीर मे एकत्र
कम अथवा अधिक परिमाण तथा रोगिणी के
मे मौजूद कम अथवा अधिक जीवनी-शक्ति पर
करता है। रोग जब तक जड़-मूल से चला न जाय
क पुरुष-सहवास से परहेज करना चाहिए। चाय,
आदि सभी नशीली और उत्तेजक वस्तुयें त्याग
चाहिए। कब्ज न होने देना चाहिए। शक्तिअनुसार
खुली वायु मे सवेरे-शाम टहलना चाहिए।
आरम्भ मे मासिक शुरू होने के ७ दिन पहले ४
रसाहार और तीन दिन केवल सुस्वादु मौसमी फलो
रहना चाहिए। इन दिनो दोनो वक्त एनिमा लेकर
साफ भी करना चाहिए; और रोज एक टब में ५
सहने योग्य गरम पानी भरकर उसमे ५ से ३० मिनट
केवल बैठना चाहिए। दर्द अधिक होने पर दर्द वाले
पर दिन रात मे २-३ बार गर्म और ठडे पानी की
दे। कभी कभी दर्द की हालत मेरुदण्ड के निचले भाग
[illegible] करने के बाद उसपर और वस्ति देश में केवल
[illegible] की सेंक देने से भी लाभ होता है। रोग का
[illegible] पर गरम और ठण्डे जल की पट्टी के स्थान पर
[illegible] और ठंडे जल से भरे टब मे बारी-बारी से बैठना
[illegible] है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त रोगिणी को रोज प्रातःकाल एक बार कटि-स्नान, तथा सायकाल एक बार मेहन स्नान लेना जरूरी है, तथा रात मे पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी बाँधकर सोना भी। इस रोग मे स्थानीय वाष्पस्नान वा केले की पत्ती रखकर धूप स्नान से भी बड़ा लाभ पहुँचता है। पेडू मे दर्द हो तो मिट्टी की गरम पट्टी से आराम पहुँचता है।

खून निकलने के दिनो में दर्द को शान्त करने के लिये गर्म पानी के टब में न बैठकर केवल सेकों से ही काम चलाना चाहिए।

अत्यधिक ऋतु-रक्त-स्राव

मासिक धर्म के दिनो मे जब ऋतु का रक्त आवश्यकता से अधिक जाने लगता है तो उसे अत्यार्तव, रजाधिक्य अथवा अंग्रेजी मे 'मेनोरेजिया' रोग कहते हैं। इस रोग में माहवारी के समय से पहले अथवा उसके बाद भी अधिक परिणाम में ३ से ७ दिनों तक रक्त निकलता रहता है। यह रोग प्रौढ़ा स्त्रियो को जो अधिक सन्तानो को जन्म देती हैं, अधिक होता है। शरीर मे दोष एकत्र होकर डिम्बकोष अथवा डिम्बप्रणाली मे बतौड़ी वा कैंसर तथा गर्भाशय मे प्रदाह वा सूजन पैदा कर देते है जिसकी वजह से रक्त पतला एवं दूषित होकर स्राव अधिक मात्रा मे होने लगता है। इस रोग मे सिर, कमर, पीठ एवं पैरों मे दर्द हुआ करता है, भूख बन्द हो जाती है, कभी-कभी जाड़ा सा मालूम होने लगता है और पैरो के तलुए ठंडे हो जाते हैं। रोग की बढी हुई अवस्था में उचित उपचार के अभाव में रोगिणी के प्राणों पर भी आ बनती है।

दर्द के साथ ऋतु होने के जो कारण ऊपर गिनाये गये हैं लगभग वे ही सब कारण इस रोग के भी समझने चाहिए। उनके अतिरिक्त अधिक पुरुष सहवास, बिगड़ी हुई माहवारी, ऋतु के अलावा गर्भाशय से रक्तस्राव, शरीर मे रक्त की अधिकता, यकृत मे शोथ, अधिक भोजन तथा गर्मी का मौसम आदि भी इस रोग के कारण हो सकते हैं।

रोग के असली कारण को ढूंढकर उसको दूर करना ही इस रोग का उचित उपचार है। रोगी को रोग निवृति तक बिस्तर पर लिटाये रखना चाहिए। बिस्तर का पायताना सिरहाने से थोड़ा ऊंचा रखना चाहिए। एनिमा

द्वारा बीच-बीच में पेट साफ कर देना चाहिये । रोज एक बार ठडे पानी का डूस लेकर योनि मार्ग को धो देना भी जरूरी है । यदि खून अत्यधिक जाता हो तो कपड़े की एक थैली में बर्फ भरकर पेड़ू पर रखना चाहिए तथा योनि मार्ग में भी बर्फ के कुछ टुकड़े रख देने चाहिए । जब रक्तस्राव मे थोड़ी कमी हो जाय तो योनिमार्ग में बारीक झीना कपड़ा लगा देना चाहिए ताकि रक्त को गाढ़ा होने का अवसर मिले । उसके बाद से हल्की कसरत या शुद्ध वायु मे टहलना आरम्भ करना चाहिए तथा २४ घंटो में दो बार मेहन और दो बार उदर-स्नान लेना चाहिए । रोग की बढ़ी हुई अवस्था में रात भर के लिये कमर की गीली पट्टी का भी प्रयोग करना चाहिए ।

सब तरह के उत्तेजक भोजन का त्यागकर देना चाहिए । मांस-मछली, मिर्च-मसाला, सफेद चीनी आदि को हाथ से भी नही छूना चाहिए । फलों के रस या फल-दूध या मठा पर कुछ दिनों तक रहना चाहिए । उसके बाद उबली हरी साग-सब्जियां, सलाद और चोकर मिले गेहूं के आटे की रोटी या दलिया लिया जा सकता है ।

अत्यल्प ऋतु-रक्त स्राव

किसी-किसी स्त्री के स्वभाव एवं प्रकृति के अनुसार साधारणतः प्रति मास जितना मासिक स्राव होना चाहिए उससे कम उसे मासिक स्राव होना अल्पार्तव, स्वल्परजः अथवा अंग्रेजी मे 'स्कैन्टी मेनस्ट्रूरेशन' रोग कहलाता है । गर्भाशय रोग, क्षय रोग वा मानसिक अवसाद आदि इस रोग के परिणाम होते हैं । पहले ३ दिन तक रसाहार फिर तीन दिनो तक फल-दूध पर रहकर और दोनों समय एनिमा लेकर पेट को साफ कर लेना चाहिए । तत्पश्चात् सबेरे-शाम २०-२० मिनट तक मेहन स्नान लेना चाहिए और रात के लिये पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाना चाहिए ।

रजो निवृत्ति के बाद के कष्ट

४०-४५ वर्ष की अवस्था पार कर चुकने के बाद जब माहवारी सदा के लिये बन्द हो जाती है तब कुछ रोगी स्त्रियो की वह अवस्था बड़ी सङ्कटपूर्ण हो जाती है । उस समय उन्हे चक्कर आना, छाती मे दर्द होना, जोड़ो मे दर्द होना, पाचन शक्ति का बिगड़ जाना, कोष्ठबद्धता, चर्बी छा जाना तथा पागलपन आदि कितने ही शारीरि[illegible] और मानसिक विकार सताने लगते हैं । लेकिन ऐस[illegible] होना सिर्फ इसलिये है कि ऐसी स्त्रियों का स्वास्थ्य पह[illegible] ही से गिरा होता है ।

मासिक धर्म सदा के लिये बन्द हो जाने के बा[illegible] किसी प्रकार का कष्ट होने पर नीचे का उपचार चला[illegible] में अवश्य लाभ होता है—

रोज गहरी सास लेने की क्रिया करना, प्रातः शा[illegible] दूर तक शुद्ध वायु मे टहलना, बदन की सूखी मालिश और उसके बाद ठंडे जल से स्नान, साग-सब्जियो एवं फल-दू[illegible] या मठा का सेवन, चोकरदार आटा, छिलकेदार दाल (कम परिमाण मे) कनादार चावल का सेवन, उदर प[illegible] मेहन स्नान तथा पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाना, सूर्य-स्नान सप्ताह में एक बार तथा कब्ज होने पर उपवास या रसाहार पर रहकर एनिमा द्वारा पे[illegible] साफ करना ।

अनियमित मासिक धर्म

इस रोग मे यह नही पता रहता कि मासिक धर्म कब होगा अथवा वह कितने दिनो तक रहेगा ? कभी मास में दो बार मासिक धर्म हो जाता है, कभी ३-४ मास बाद ऋतु आता है, तथा कभी एक या दो मास तक लगातार रक्तस्राव होता रहता है और कभी उससे कम दिनो तक । इस रोग मे कमर, पेट, पेड़ू तथा दोनो स्तनों में भी दर्द होता है, तथा आख, हाथ की हथेलियो एव योनि मे जलन होती है । कष्ट के साथ मासिक होने के जो कारण और उपचार ऊपर बताए गए है, वे ही कारण और उपचार इस रोग के भी है ।

ऋतु के अलावा गर्भाशय से रक्त-स्राव

मासिक धर्म के अलावा यदि अन्य समयों में भी गर्भाशय से रक्तस्राव हो तो उसे रोग जानना चाहिए । इस रोग को अंग्रेजी मे 'मेट्रोरेजिया' कहते हैं । गर्भावस्था में रक्तस्राव और प्रसव के समय अधिक रक्तस्राव इसी रोग के अन्तरगत माने जाते हैं ।

प्रसव के समय किसी पदार्थ का अन्दर रह जाना, सगर्भावस्था में इन्द्रिय चालन के फलस्वरूप गर्भाशय के बाहर रज और वीर्य का मिलन, गर्भाशय का [illegible] अन्य गर्भाशय सम्बन्धी गड़बड़ियां इस रोग का [illegible]

होती हैं। खान-पान की गड़बड़ी, मानसिक उद्वेग, पेड़ू में चोट लगना, पेशरी आदि का व्यवहार तथा औषधियों का अधिक सेवन, आदि इस रोग के अन्य कारण है।

इस रोग मे ज्वर रहता है, सास लेने में कष्ट होता है, पेट साफ नही रहता, शरीर मे आलस्य और सिर म भारीपन रहता है तथा रक्त अधिक ज.ने के कारण रोगिणी कभी-कभी बेहोश भी हो जाती है।

इस रोग में रोगिणी को आराम से लिटाये रखना चाहिये। यदि रक्त-स्राव बहुत अधिक हो तो ठडे पानी मे साफ चिथड़ा भिगोकर उससे योनिद्वार को बन्द रखना चाहिये। तलपेट पर ठडे पानी की पट्टी या मिट्टी की गीली पट्टी लगानी चाहिए तथा सुबह-शाम मेहन या उदर-स्नान लेना चाहिए। रोग का जोर रहने तक केवल रसाहार, मठा या नीबू के रस अथवा फलाहार या फल-दूध पर रहना चाहिए। यदि पानी पीकर और एनिमा लेकर पूर्णउपवास किया जाय तो अधिक लाभ होगा। रोग जब घटने लगे और काफी घट जाय तब धीरे-धीरे प्राकृतिक आहार पर आ जाना चाहिए।

रक्त-गुल्म

गर्भाशय में जब ऋतु का रक्त किसी कारण से जमकर गोला का आकार धारण कर लेताहै तब उसे रक्त-गुल्म रोग कहते हैं। रक्तगुल्म और गर्भ दोनो ही मे धड़कन होती है और दोनो ही मे मासिक स्राव बद रहता है। अत पेट में रोग है या गर्भ, इसका जानना बडा कठिन हो जाता है। इसलिए रोग का पूर्ण निश्चय हो जाने पर ही उसकी चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिए, अन्यथा भ्रूण-हत्या हो जाने की बड़ी सम्भावना रहती है। इसी बात को ध्यान में रखकर आयुर्वेदाचार्यों ने इस रोग की चिकित्सा के प्रसग में लिखा है—'मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्य' अर्थात् दस मास पर्यन्त प्रतीक्षा कर लेने के बाद भी जब गर्भ न साबित हो तभी रक्त-गुल्म-रोग समझ कर उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

इस रोग की चिकित्सा वही है जो ऋतु का अवरोध [illegible] हो जाने की है।

प्रदर

[illegible]

दिन तक रहता है। यह स्वाभाविक है। पर ६ दिन से अधिक दिनो तक ऋतु का रक्तस्राव होते रहने से वह बिगडकर प्रदर रोग का रूप धारण कर लेता है। प्रदर का श्लेष्मिकस्राव नीला, गुलाबी, सफेद, लाल, हरा, पीला, गाढ़ा, पतला, मास के छिछड़े सहित, फेनदार, लसीला, बेबदबू का तथा बदबूदार कई रूप-रग का होता है। इस रोग को साधारण तौर पर श्वेतप्रदर तथा अग्रेजी मे 'ल्यूकोरिया' या 'ह्वाइट्स' कहते हैं। प्रदर का स्राव गर्भाशय, योनि और उसके आसपास के यन्त्रों मे प्रदाह होने के कारण होता है। यह स्राव कभी बहुत अधिक और कभी बहुत कम मात्रा मे होता है। साधारणतः माहवारी के समय ही प्रदर का स्राव होता है। अधिक स्राव होने पर पेडू में भार पैदा हो जाता है, सर में चक्कर आने लगता है, शरीर और हाथ-पैरो मे दर्द और ऐंठन होने लगती है, मतली और कै आने लगते है, कमजोरी बहुत बढ़ जाती है, स्त्री का सौंदर्य नष्ट हो जाता है, मुंह सूज जाता है, आखो के चारो तरफ काला घेरा पड़ जाता है शरीर पीला पड जाता है, मुख पर झुर्रिया पड़ जाती हैं। किसी का शरीर ढीला और किसी का दुबला-पतला हो जाता है, कमर, पीठ, और सारे शरीर मे थोडा बहुत दर्द रहने लगता है, आंखो एवं हथेलियो और पाव के तलुओ मे जलन होतीहै, तन्द्रा, ज्वर, मूर्छा, प्यास, कब्ज आदि रोगिणी को सताने लगते है, भूख मर जाती है, योनि मे खाज, दाने एव सूजन आजाती है, पुरुष सहवास के समय दर्द होता है, पेशाब मे जलन होने लगती है, किसी काम मे मन नहीं लगता, मिजाज चिड़चिड़ा हो जाता है, मास फूलने लगती है, दिल की धडकन का रोग हो जाता है, प्रदर के स्राव से योनिमार्ग में घाव होकर मवाद निकलने लगता है, पीलिया, हिस्टीरिया या राज-यक्ष्मा रोग उत्पन्न हो जाता है तथा गर्भ-स्थिर नही होता और स्त्री बाझ हो जाती है।

इस रोग के मूल कारण अप्राकृतिक जीवन, अप्राकृतिक भोजन, गन्दी आदतें, एव अस्वास्थ्यकर वातावरण हैं। इनके अतिरिक्त इस रोग के निम्नलिखित कारण भी हो सकते हैं —

अधिक पुरुष सहवास। दवाओं का अधिक सेवन। पेशरी [illegible] आदि का योनि मे प्रयोग। [illegible] और

कब्ज। पिता के सुजाक दोष से कन्या को बचपन से ही यह रोग हो जाता है जिसे बचपन का श्वेत प्रदर या अंग्रेजी मे इनफैंटाइल ल्यूकोरिया कहते हैं। कृमि और गण्डमाला आदि रोगो से भी बचपन में ही यह रोग हो जाता है। मदिरा, भाग आदि नशीली चीजो का सेवन। गर्भपात। निरन्तर शोक-चिन्ता। अधिक सवारी करना वा चलना-फिरना। दिन मे सोना। भारी बोझ उठाना। आलस्य और अकर्मण्यता। हर प्रकार की कमजोरी जो कठिन रोगो के बाद होती है। रक्तहीनता गर्भाशय का टला होना, उसमे घाव, सूजन खाज आदि का होना। बवासीर आदि के रोग। बहुमूत्र रोग और पेशाव-नली के रोग। पेट के भीतरवाले अगो जैसे आंत, प्लीहा आदि के घाव। जल्दी सन्तान होना। मासिक धर्म की बीमारिया। पति वा पत्नी को सुजाक होना। पुरुष सहवास से किसी कारणवश तृप्त न होना। गुदा के कीड़ो का किसी प्रकार से योनि मे प्रवेश कर जाना। गुप्ताङ्गों पर अधिक चोट लगना। मासिक स्राव के समय मैथुन।

प्रदर-रोग की चिकित्सा-आरम्भ करने के पहले सर्व-प्रथम यह जरूरी है कि जिन कारणो से यह रोग होता है उन कारणो को सम्भवतः दूर कर दिया जाय और पूरे परहेज से रहा जाय।

प्रदर की वजह से यदि गर्भाशय वा योनि मे सूजन, प्रदाह, अथवा घाव आदि होगया हो तो सबसे पहले उसे मिटाने या उनके जोर को कम करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये प्रतिदिन सात दिनो तक नीम के, हल्के गरम पानी का डूश योनि मार्ग मे देना चाहिये। यह पानी नीली अथवा हरी बोतल का सूर्यतप्त हो तो अति उत्तम। सातदिनो तक निरन्तर डूस देने के बाद उसे प्रति दूसरे दिन देने लग जाना चाहिये। कुछ दिनो बाद हफ्ते मे दो बार, फिर एक बार डूस देना चाहिए। गरम पानी के डूश के तुरन्त बाद रोगिणी को सहने योग्य गरम पानी के टब मे १०-१५ मिनट तक निवस्त्र होकर बैठना चाहिये। दो-तीन सप्ताह तक ऐसा करने से गर्भाशय वा योनि की सूजन आदि बहुत कुछ कम हो जायगी। डूश देते वक्त इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि डूश का पानी अधिक गर्म न हो जो योनि मार्ग में फफोले डाल दे और न उसकी धार इतनी तेज हो कि उससे भीतर चोट लगे। डूश और उसके बाद गरम पानी के टब मे बैठने के बाद मक्खन या गाय के घी से योनि-लेपन करना चाहिए। योनि की सफाई के बाद गर्भाशय-द्वार को एक विशुद्ध फाये या पोटली से बंदकर देना चाहिए और उसे दिन मे ४-५ बार बदल देना चाहिए या २-२॥ इञ्च चौडी तथा ४-५ इञ्च लम्बी पानी से भीगी ५-६ तह कपड़े की गद्दी लगोट के सहारे से योनिमुख पर १ घटा तक या यदि रात को सोते समय लगावे तो रात भर नीद खुलने तक रखे।

स्थानीय तकलीफ के कम होने के बाद प्रदर रोग की जड़ को काटने के लिये निम्नलिखित चिकित्सा-क्रम चलाना चाहिए—

रोगिणी को आरम्भ मे शक्ति के अनुसार तीन से सात दिन तक का उपवास, रसाहार, या फलाहार करना चाहिए। इन दिनो दोनो समय एनिमा तथा सारे शरीर का साधारण स्नान जरूर जारी रखना चाहिए। इसके बाद दूध का कल्प ६ सप्ताह तक करना चाहिए। एक बार ही इतने दिनो का दुग्ध-कल्प यदि न हो सके तो बीच-बीच में कुछ दिन रसाहार के बाद फिर दो-तीन सप्ताह तक दूध पीना चाहिए। दो-तीन बार ऐसा करने से प्रदर रोग अच्छा हो जायगा। दुग्ध-कल्प के स्थान पर अंगूर-कल्प और आम के मौसम मे आम और दूध का मिश्रित-कल्प भी करा सकते है। यदि किसी कारण से कोई भी कल्प सम्भव न हो तो उपवास, रसाहार वा फलाहार के बाद कुछ दिनो तक फल और दूध पर ही रह जाना चाहिए।

फल और दूध आरम्भ करने के समय मे गरम और ठडा बैठक नहान सप्ताह मे ४-५ दिन करना चाहिए। आसनो मे सर्वाङ्गासन, पश्चिमोत्तान, भुजङ्ग अथवा हला-सन विशेष रूप से लाभप्रद सिद्ध होते हैं। खुले स्थान मे रहना, गहरी सांस लेना, प्राणायाम करना, ताकत भर सुबह शाम खुले मैदान में वायु सेवन को जाना या हल्की कसरत करना भी इस रोग की चिकित्सा के अग है। इन्हे जरूर करना चाहिए। कसरत की जगह पर का काम-काज करना, चक्की आदि चलाना जिसमे थोड़ा पसीना आजाय पर थकावट न हो यथेष्ठ है। श्रम के

बाद ही साधारण स्नान करना चाहिए। तत्पश्चात् अपने हाथ की हथेलियो से पूरे शरीर का घर्षण-स्नान भी करना चाहिए।

सप्ताह मे एक या दो बार सारे शरीर का और कभी-कभी स्थानीय भाप-नहान या धूप-नहान १० मिनट तक लेकर पसीना निकालना चाहिए। गरम बालू की पोटली या गरम ईंट या पत्थर को कपड़े मे लपेटकर योनि स्थान को सेंकने से भी स्थानीय उपचार हो जाता है और पसीना निकलने लगता है। पसीना निकलने के बाद तुरन्त १० मिनट तक मेहन स्नान करना चाहिए।

योनि-दर्द की हालत मे गरम कपडा पेट पर लपेटना, गरम पानी का सेक, गरम जल पीना, गरम मिट्टी की पट्टी २० मिनट तक योनि और पेडू पर देना तथा गरम जल मे बैठना लाभ करता है।

इस रोग मे आधा पीली बोतल का तथा आधा हरी बोतल का सूर्यतप्त जल मिलाकर २४ घटे में ६ खुराकें देनी चाहिए तथा रोज सारे शरीर पर विशेषकर योनि पर १५ मिनट तक हरा प्रकाश डालना चाहिए।

हरे आवले का रस १ तोला, ताजी मूली का रस १ तोला, शतावर का रस १ तोला लेकर और सबको दो तोला शुद्ध शहद मे मिलाकर रोज सबेरे सात बजे पीने से भी प्रदर रोग अच्छा हो जाता है।

इस रोग मे सदैव सादा और अनुत्तेजक भोजन करना चाहिए। कब्ज न होने देना चाहिए।

मासिक धर्म के दिनो मे उपचार बन्दकर परहेज जारी रखना चाहिए।

ग्यारहवां अध्याय

स्त्री-यौन सम्बन्धी रोग

सोम रोग

सोम का दूसरा नाम शरीर स्थित जल वा धातु है। सोम रोग को धातु-क्षीणता रोग कह सकते है। इस रोग मे स्त्री-शरीर की धातु पतली होकर पानी की भाति मूत्रमार्ग से बिना पीड़ा वा गध के गिरती रहती है, जिसकी वजह से शरीर थोडे ही दिनो मे जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। किसी काम के करने मे मन नही लगता, थोडा ही परिश्रम करने से थकावट आ जाती है, प्यास अधिक और थोड़ी-थोड़ी देर बाद लगने लगती है, रोग की बढी हुई दशा मे अधिक और घड़ी-घडी पर पेशाब होने लगता है और कलेजा निर्बल पड़ जाता है पाचन बिगड जाता है, पर भोजन से तृप्ति नही होती। जभाई और आलस्य इसकी चरम सीमा पर पहुँच जाता है, शरीर कृश तथा [illegible] पड़ जाता है, सिर, कमर और पीठ मे पीड़ा होती है, मुख और तालु सूखते रहते है, आंखो के सामने कभी-कभी अंधेरा छा जाता है, प्रलाप होने लगता है तथा कभी-कभी मासिक धर्म भी [illegible] अनियमित हो जाता है।

इस रोग को लोग भूल से श्वेतप्रदर समझते है। वास्तव मे यह मूत्र-नली का रोग है जबकि प्रदर-रोग गर्भाशय से सम्बन्ध रखता है। सोम रोग मे शरीर का जल मूत्र-मार्ग से जाता है और प्रदर-रोग मे स्राव गर्भाशय से होता है।

कारण—मिथ्या आहार एव जीवन-यापन, अधिक पुरुष-सहवास, अधिक शोक, चिन्ता, भयादि, अधिक परिश्रम, अधिक औषधि-सेवन, दस्तो की बीमारी, शराब आदि नशीली वस्तुओ का सेवन।

एक सेर जल मे १ छटाक फिटकिरी पीसकर डालने के बाद उसे गरम करे। जब जल तीन पाव रह जाय तो उतारकर थोडा ठडा करले और जब उस जल मे बदन की गर्मी के बराबर गर्माहट रह जाय तो उससे डूश लेकर योनि मार्ग की सफाई कर डाले। डूश सुबह–शाम दोनो वक्त लेना चाहिए। शेष उपचार प्रदर–रोग के उपचार की भाति ही चलाना चाहिए।

उपदंश (गर्मी) और सुजाक

इस रोग से छुटकारा पाने के लिये धैर्य धारण करके कुछ दिनो तक निम्नलिखित उपचार चलाना चाहिए [illegible] सफलता मिलेगी। रोग के जड़ से जाने में ६ मास

से ६ मास तक लग सकते है और कभी-कभी वर्षों लग जाते हैं। उस वक्त घबड़ाकर चिकित्सा छोड़ नहीं देनी चाहिए।

इन रोगों के रोगी को बड़ी सफाई से रहना चाहिये उसका शरीर, वास–स्थान, कपड़े, बिस्तरा, तथा खाने पीने के बर्तन आदि सभी कुछ पूर्णतः साफ और स्वच्छ रहने चाहिए। शरीर के रोगी भाग को छूने के बाद अपने हाथों को अवश्य धो लेना चाहिए अन्यथा आंखो में गंदा हाथ लगने से वे अंधी हो जा सकती है।

इन रोगों मे सयम से रहने की बड़ी जरूरत है। उष.पान करना, पूर्ण विश्राम करना, प्रातः सायं शुद्ध वायु मे टहलना और गहरी सांस लेना, अधिक पानी तथा नीबू का रस मिला पानी पीना आदि भी कम जरूरी नही है।

उत्तेजक खाद्य पदार्थ, नशे की चीजे, धूम्रपान, जर्दा, मिर्च, मसाला, नमक, चीनी, मास, अण्डा, मछली, तथा चाय आदि इन रोगो में जहर का काम करते हैं। अतः इनसे परहेज करना चाहिये।

आरम्भ मे रोगी के बलाबल केअनुसार उसे ३-४ दिनों का उपवास या रसाहार करना चाहिये। साथ ही सुबह-शाम या केवल सुबह को पाखाना होने के बाद एनिमा लेना चाहिए। उसके बाद काफी अर्से तक फलो या ताजी और उबली साग-सब्जियों पर रहना चाहिए। फलः मे सभी मौसमी फल. जैसे खरबूजा, खीरा, ककड़ी, बेल, अनार, सतरा, नारंगी तथा मुसम्मी आदि लिए जा सकते हैं। बाद को रोटी सब्जी, अकुरित गेहूं या चना, सलाद तथा दूध-फल आदि सादा भोजन लेने लग जाना चाहिए।

फलाहार आरम्भ करने के दिन से कमजोर रोगी को एक बार, पर कुछ दिनों बाद सबल हो जाने पर दो बार रोज कटि-स्नान या मेहन स्नान १०-१० मिनट तक करना चाहिए, स्त्री-रोगी के लिये मेहन-स्नान अधिक लाभ करता है।

प्रथम सप्ताह मे दो बार, पर उसके बाद से सप्ताह में एक बार पूरे शरीर का भाप-स्नान, या किसी वजह से यदि यह सम्भव न हो तो केवल पेडू और आक्रान्त अग विशेष का भाप-नहान जरूर लेना चाहिये।

रोज थोड़ी देर तक सुबह को धूप-स्नान लेने के बाद स्पज स्नान, फिर दो से तीन घंटे तक गीली चादर से समूचे शरीर को लपेट रखना चाहिए ताकि पसीना बह चले।

उपदश मे रोज रोगी के मेरुदण्ड पर गरम और ठडी सेक ५-५ मिनट के अन्तर से आध घटे तक देना बड़ा लाभ करता है, तथा साधारण स्नान के प्रथम या रात को सोने से पहले समशीतोष्ण जल मे कटि स्नान करना भी उपयोगी है। इस रोग में पीली बोतल का सूर्य-तप्त जल पहले सात दिनो तक आधी-आधी छटांक दिन मे चार-छः बार पीना चाहिए, तत्पश्चात् हरी बोतल का जल। तथा सादे पानी मे भिगोई कपड़े की बत्ती मूत्र-मार्ग मे रखकर उस पर १५ मिनट तक हरा प्रकाश डालना चाहिए।

सुजाक मे सुबह बिस्तर से उठते ही १ तोला अलसी को आधा सेर पानी मे उबाले। जब एक पाव जल रह जाय तब उसे ठंडा करके पी ले। इसके अतिरिक्त इस रोग मे गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल तीन भाग तथा नारंगी रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल एक भाग मिलाकर आधी आधी छटांक दिन में चार छः बार पीना बड़ा उपयोगी होता है। पेडू और लिङ्ग पर रोज १५ मिनट हरा प्रकाश भी डालना चाहिए। हरी बोतल के सूर्यतप्त जल की मूत्र नली मे पिचकारी तथा उसी रग की बोतल के सूर्यतप्त तेल की आक्रान्त अग पर प्रतिदिन एक बार मालिश बड़ी उपयोगी होती है।

रोगी अंग को दिन मे ४ बार गरम पानी से धीरे-धीरे रगड़कर धोना या उसे १० मिनट तक गरम पानी मे कपड़ा भिगो भिगोकर सेकना चाहिए। उसके बाद आध घटा के लिए पेडू और उस भाग पर तथा गुदा तक गीली मिट्टी की पट्टी लगाना चाहिए। सुजाक के रोगी को सर्वाङ्गासन, मत्स्यासन, और पश्चिमोत्तानासन बड़ा लाभ करते हैं।

उपचार के अत मे दुग्ध-कल्प लेकर रोगी अपने स्वास्थ्य को और भी उत्तम बना सकता है।

हिस्टीरिया

हिस्टीरिया रोग सैंतीस प्रकार का होता है। इसके दौरे आते है जो अधिकतर मासिक धर्म के दिनों में ही आते हैं। दौरा कुछ मिनटों से लेकर ३-४ घंटों तक रहता है। कभी-कभी एक के बाद दूसरा दौरा भी आता है।

हिस्टीरिया के दौरो में खास बाते ये होती है कि प्रथम ये दौरे जागने की हालत मे ही आते है, दूसरे मृगी के रोगी के समान इसके रोगी को बिलकुल बेहोशी नही होती अपितु दौरे की हालत में भी चेतना बनी रहती है और न मुंह से झाग ही निकलती है, तीसरे इस रोगिणी की मृत्यु बहुत कम होती है।

हिस्टीरिया की रोगिणी के पेट मे दर्द, उसमें गोला सा किसी वस्तु का उठकर छाती की ओर जाना, भारीपन, गर्मी तथा खुश्की का अनुभव विशेष रूप से करती है। दौरा आने पर वह चीखकर भूमि पर गिरकर छटपटाने लगती है, हाथ-पैर और छाती पीटने लगती है, कभी रोती है, कभी हंसती है, कभी लम्बी-लम्बी उसासे लेती है, कूदती-उछलती भी है, दांतों को जकड़ लेती है। अपने शरीर के कपड़ो को अस्त-व्यस्त कर लेती है तथा अपने शरीर को संभाल नही सकती है। दौरा जब खतम होने को होता है तब बेहोशी घटने लगती है, पर शिर मे पीड़ा, सुस्ती और थकावट बनी रहती है तथा भूख भी गायब रहती है।

हिस्टीरिया रोग की चिकित्सा आरम्भ करने से पहले इस रोग के कारणो का पता लगाकर पहले उन्हे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस रोग से पीड़ित जवान लड़कियो का विवाह कर देने से प्राय यह रोग अच्छा हो जाता है। इसी प्रकार पुरुष-सहवास की प्रबल इच्छा रखने वाली रोगिणी, पति-सहवास प्राप्त कर लेने पर हिस्टीरिया रोग से मुक्त होते देखी गई है। सन्तान हो जाने पर भी स्त्रियो का यह रोग आप से आप चला जाता है।

बेहोश रोगिणी को होश मे लाने के लिये ठंडे पानी के छींटे उसके चेहरे पर मारने चाहिये। यदि मुंह बन्द हो तो उसपर धार बांधकर शीतल जल कुछ देर तक डालते रहने से मुंह खुल जाता है। चूना और नौसादर समभाग लेकर और पानी मे घोलकर सुंघाने से भी [illegible] दूर हो जाती है। [illegible] के ऊपर ठंडे पानी की पट्टी [illegible] दूर हो जाती है।

[illegible] दूर हो जाने के बाद एक लम्बे टब मे [illegible] बराबर गरम पानी भरकर उसमे रोगिणी को [illegible] चाहिए। इस [illegible] ठंडे पानी मे भीगी [illegible] से [illegible] थकान शीघ्र दूर हो जाती है और उत्तेजित स्नायु शांत हो जाते है। लम्बे टब के अभाव मे मामूली गरम पानी से नहाने से भी काम चल जाता है, पर सिर के ऊपर उस हालत से भी ठंडे पानी से भीगी तौलिया का बंधा रहना आवश्यक है। यदि गरम पानी से स्नान भी सम्भव न हो तो रोगिणी के पैरो को ही गरम पानी से भरी बाल्टियों मे रख छोड़ना चाहिए और सिर को ठंडे पानी से भीगी तौलिया से लपेट रखना चाहिए। गरम पानी मे पैर न भी रखा जाय तो भी सिर पर ठंडे पानी से भीगी तौलिया रखने और उसे बार-बार बदलते रहने से लाभ होगा। उसके बाद यदि रोगिणी पी सके तो उसे गरम पानी, गरम दूध, या हल्के गरम पानी मे थोड़ासा शुद्ध शहद मिलाकर पीने को देना चाहिए। हिस्टीरिया के रोगी को भाप-नहान भूल से भी नही देना चाहिए। हां, प्रतिदिन १० मिनट तक सूर्य-स्नान करने के बाद २० मिनट तक कटिस्नान करना चाहिए। समूचे शरीर पर, विशेषकर सिर के आगे और पीछे रोज १५ मिनट तक नीला प्रकाश डालना भी लाभ करता है। गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल तथा आसमानी बोतल का सूर्यतप्त जल समभाग लेकर आधी-आधी छटाक की आठ खुराक दिन मे ३-३ घंटे के अन्तर से देना चाहिये। तथा सिर पर विशेषकर उसके पिछले हिस्से मे आसमानी बोतल के सूर्य-तप्त तेल को मालिश १५ मिनट तक करनी चाहिए। मिट्टी की गीली पट्टी गले के चारो तरफ और पेडू पर रोज आध घंटे तक लगानी चाहिए। उसके बाद यदि कब्ज हो तो गुनगुने पानी का एनिमा भी लेना चाहिए। यदि रोगिणी की चिकित्सा के साथ-साथ रोगिणी के पति की चिकित्सा भी उसकी कमजोरी एव वीर्य शुद्धि के लिए चले तो अति उत्तम हो।

योनि द्वार में जलन, दुर्गन्ध, खुजली और पीड़ा

स्थानीय उपचार के लिये योनि को साफ ठंडे जल में एक सेर पानी पीछे ६ माशा फिटकिरी, नमक या कागजी नींबू का रस मिलाकर धोना चाहिए। ऐसा करने से भी यदि खुजली न [illegible] तो योनि को गरम और ठंडी [illegible] पानी में १५ मिनट तक देने के बाद उस पर [illegible] मिट्टी की पट्टी बांध देनी चाहिए। गुनगुने पानी का

योनि मार्ग मे डूस देना भी लाभ करता है।

स्थाई लाभ के लिये कुछ दिनो तक रसाहार तत्पश्चात फलाहार पर रहकर दोनो समय मेहन स्नान करना चाहिए और कब्ज रहने पर एनिमा लेकर पेट को साफ रखना चाहिए।

गर्भाशय का अर्बुद (कैंसर)

गर्भाशय या स्तन का अर्बुद (कैंसर) एक भयानक रोग है। अतः इसको जड़ से दूर करने के लिये सर्व प्रथम १० से ३० दिनों का उपवास या रसाहार जरूर करना चाहिए। उपवास विधिपूर्वक और एनिमा के साथ करना चाहिए। ३ से ५ दिनो का उपवास या रसाहार तो जरूर ही करना चाहिए। उपवास समाप्ति के बाद विशुद्ध सादा और सात्विक भोजन पर रहकर प्रतिदिन शुष्क घर्षण स्नान, मेहन स्नान, सास और शरीर के अन्य व्यायाम तथा सायं-प्रातः शुद्ध वायु मे टहलना चाहिए। सप्ताह मे दो बार 'एप्सम साल्ट-बाथ' लेना भी इस रोग मे बड़ा लाभ करता है। गर्भाशय के अर्बुद में रोज रात के समय गरम और ठडे पानी का मेहन स्नान लेना चाहिए। लेकिन 'एप्सम-साल्ट बाथ' के दिन इस स्नान को बन्द रखना चाहिए। स्तन के अर्बुद में स्तन को गरम और ठंडी सेक देनी चाहिए। सेक देने के बाद हल्के हाथो स्तन की मालिश करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त गर्भाशय के अर्बुद मे सप्ताह मे दो तीन दिन रात के समय गुनगुने पानी के डूस के जरिये गर्भाशय को धोकर साफ कर देना भी जरूरी है।

मासिक धर्म के दिनों मे सभी उपचार बन्दकर शरीर को पूर्ण विश्राम देना चाहिए।

डिम्बाशय एवं जरायु-प्रदाह

इस रोग मे शुरू-शुरू मे गर्भाशय-ग्रीवा रोग से आक्रान्त होती है। बाद मे रोग धीरे-धीरे बढ़कर पूरे गर्भाशय को घेर लेता है जिससे वह फूल जाता है और उसम दर्द और जलन होने लगती है। साथ ही श्लेष्मा-मिश्रित रक्त स्राव होने लगता है। इनके अतिरिक्त पेडू मे भारीपन का अनुभव होता है, थकावट सी मालूम होने लगती है, सर घूमता है, कभी-कभी कपकंपी आकर ज्वर हो जाता है तथा रोग की बढी हुई अवस्था मे योनि से बदबू आती है और उससे बदबूदार स्राव होने लगता है और कभी-कभी रोग सड़नेवाले जख्म का रूप धारण कर लेता है।

कब्ज, कृमि, अधिक पुरुष-सहवास, नकली मैथुन तथा ऋतु-विकार आदि इस रोग के प्रधान कारण हैं।

रोग निवारण के लिये रोज कम से कम एक बार गरम और ठडे जल का डूस बारी-बारी से देना चाहिए। दर्द की जगह गरम और ठडी सेक देनी चाहिए। पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी भी जरूर देना चाहिए तथा सुबह शाम मेहन या उदर स्नान लेना चाहिए।

भोजन में फल, कच्ची-पक्की साग-सब्जी, मठा, दही तथा प्राकृतिक खाद्य लेने चाहिए। हल्का व्यायाम, स्वच्छ वायु मे टहलना तथा सास की कसरते इस रोग मे भी बड़ी लाभकारी हैं।

कुछ अन्य योनि-दोष

कुछ स्त्रियों का जननेन्द्रिय मुख स्वभावत. इतना छोटा और संकीर्ण होता है कि सहवास के समय उन्हे बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है। कभी-कभी तो वे बेहोश तक हो जाती हैं और कभी-कभी सहवास असम्भव होने के कारण उनकी बड़ी दुर्दशा हो जाती है। स्त्रियो में यह दोष उनकी माताओ के मिथ्या आहार-विहार के कारण होता है। ऐसी योनि सूचिवक्रा योनि कहलाती है।

कई बच्चे हो जाने के कारण कितनी ही स्त्रियो की योनि अनावश्यक रूप से फैल जाती है जिसे महता-योनि कहते हैं।

कुछ स्त्रियों की योनि से पुरुष सहवास के समय असाधारण रूप से पानी निकला करता है जिसमे कभी-कभी बदबू भी होती है। प्रसव के बाद दो तीन मास के भीतर पुरुष सहवास करने लग जाने से यह दशा हो जाती है। ऐसी योनि त्रिमुखा योनि कहलाती है।

कुछ स्त्रियो को पुरुष-सहवास से तृप्ति ही नहीं होती। ऐसी स्त्रियो की योनि को अत्यानन्दा कहा गया है। यह अवस्था कभी-कभी पति की इज्जत और स्वास्थ्य दोनों पर पानी फेर देती है।

कुछ स्त्रियां सहवास के समय पुरुष से पहले ही स्खलित हो जाती है। ऐसी योनि आनन्दचरण [illegible] कहलाती है तथा कुछ पुरुष के स्खलित होने के बहुत बाद स्खलित होती हैं जिनकी योनि को अतिचरणा

[illegible] कहते हैं।

उपर्युक्त सभी प्रकार के योनि-दोष के लिये उपवास, [illegible]हार, फलाहार, एनिमा, संयम, वायु सेवन, नित गरम पानी के टब मे कुछ देर तक बैठना तथा दिन में कम से कम दो बार मेहन या उदर स्नान लेना बड़े लाभकारी है।

बारहवां अध्याय

गर्भ सम्बन्धी रोग

गर्भ न ठहरना (बांझपन)

बाझपन या वन्ध्यत्व रोग को अंग्रेजी मे Sterility [illegible]ते हैं। यह कई प्रकार का होता है, जैसे जन्म वन्ध्यत्व, [illegible] वन्ध्यत्व, मृतवत्सा वन्ध्यत्व, गर्भस्रावी वन्ध्यत्व, [illegible]दोष वन्ध्यत्व, त्रिपक्षी वन्ध्यत्व, त्रिमुखी वन्ध्यत्व, वकी [illegible]त्व, कमनी वन्ध्यत्व, तथा व्यक्तिनी वन्ध्यत्व, आदि।

कारण

बहुत मोटापा, स्थ.यही गर्भाशय का छोटा पड़ जाना और तोंद निकल आना, वहुत दुवलापन, माहवारी का बिलकुल बंद हो जाना, या रुक-रुक कर आना, डिम्बा[illegible] का न होना, गर्भाशय का न होना, या उसके मुंह [illegible] तंग होना, गर्भाशय मे सख्ती या सूजन का होना, [illegible] का मुंह फिरा होना, पुरुष-सहवास के बाद [illegible] का [illegible] हो जाना, छीकना, कूदना, या पेशाब करना। विपरीत रति, अधिक पुरुष-सहवास, यौन सम्बन्धी [illegible], प्रदर, गर्मी, तथा सूजाक आदि, प्रथम प्रसव के [illegible] योनि का फट जाना, मादक द्रव्य-प्रयोग। कण्ठ [illegible] एवं [illegible] झिल्लियों की विकृति,

[illegible] गर्भ न ठहरने अथवा बांझपन मे सोलहो [illegible] दोष स्त्रियों का ही नहीं होता अपितु उनके पतियो [illegible] निम्नलिखित दोषों के होने की वजह से भी गर्भ स्थिति [illegible] रहती है —

वीर्य निकलने की नली में [illegible] न [illegible] होना, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] होना, [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] रोगी, [illegible] आदि [illegible] के कारण वीर्य

में गर्भाधान की शक्ति का न होना,

अब प्रश्न स्वतः उपस्थित होता है कि यह कैसे जाना जाय कि बांझपव के लिये पति-पत्नी में कौन कसूरवार है, कौन नही? अतः इस बात को मालूम करने के लिए दो तरकीबें नीचे दी जाती है —

१– किसी दिन प्रात काल उठते ही बांझ स्त्री को चाहिए कि वह लहसुन छील कर अपनी योनि में रखले और उसे २४ घंटे बराबर रहने दे, ऐसी अवस्था मे यदि उसके मुंह में लहसुन की महक मालूम दे तो बांझपन मे अपना कसूर न समझे।

२-मूंग या गेहू के कुछ दाने अलग-अलग दो वर्तनो मे भिगोकर रखे। एक वर्तन मे पति पेशाब करे और दूसरे मे पत्नी। जिसके वर्तन के दाने अंकुरित हो उठें उसमे बांझपन का दोष नही समझना चाहिए।

यदि स्त्री शरीर मे दोष होने के कारण गर्भ नही ठहरता है और यदि उसके शरीर मे विजातीय द्रव्य का भार बहुत अधिक नही, साथ ही शरीर मे जीवनी-शक्ति भी मौजूद है तो वन्ध्यत्व-रोग दूर हो सकता है। समय महीनो लग सकता है।

उपचार तीन दिन के उपवास या रसाहार से आरम्भ करना चाहिए। [illegible]न दिनों एक या दोनों वक्त एनिमा भी लेते रहना चाहिये। उपवास यदि किया हो तो उसके बाद ४ दिनों तक केवल किसी रसदार फल जैसे संतरा पर रहना चाहिये। फिर सात दिनों तक सुबह-शाम संतरा ले और दोपहर को चोकरदार आटे की रोटी या दलिया और तरकारी। तदनन्तर १५ दिनों तक फिर केवल संतरों पर रहा जाय। उसके बाद ७ दिनों तक सुबह-शाम संतरा और दोपहर को रोटी या दलिया और उबली साग-भाजी लेवें। तत्पश्चात् १५ दिनों तक फिर

केवल सतरों पर रहा जाय। उसके बाद खरबूजे का कल्प आरम्भ करदे। पहले दिन २½ सेर, दूसरे दिन ३ सेर, तीसरे दिन ५ सेर, तत्पश्चात् भूख के अनुसार लेते हुए ४० दिन बितावे। उसके बाद १५ दिनो तक पनले रसवाले बीजू आम का कल्प कर डाले। यदि यह कल्प १५ दिनों तक न चल सके तो जितने दिनो तक बीजू आम मिले उतने ही दिनो तक आम-कल्प चलावें। आम-कल्प के बाद अंगूर और दूध का कल्प कुछ दिनो तक चलावे। अंगूर दो सेर और दूध दो सेर साथ-साथ ले।

जब से फलों पर रहना आरम्भ करे तभी से प्रतिदिन कटि-स्नान १० मिनट तक सुबह और शाम ७ दिनो तक लेने के बाद कटि-स्नान की जगह पर मेहन-स्नान लेने लग जाय। साथ ही सुबह-शाम २० मिनट के लिए गीली मिट्टी की पट्टी योनि और पेड़ू पर भी रखे।

सप्ताह मे एक दिन सुबह मेहन-स्नान के प्रथम पूरे शरीर का वाष्प-स्नान या केवल पेड़ू का भाप नहान करे। हर तीसरे दिन १० मिनट तक धूप-नहान करने के बाद मेहन-स्नान लेना चाहिये।

साधारण कसरत, गहरी सास लेने की कसरत तथा प्रातः भ्रमण आदि भी करता रहे। आसनो मे सर्वाङ्गासन, पश्चिमोत्तासन, तथा हलासन इस रोग मे विशेषरूप से उपयोगी है।

पीली और हरी बोतल का सूर्यतप्त जल बराबर-बराबर आधी छटाक की मात्रा से दिन मे ६ खुराकें एक मास तक पीवे। तत्पश्चात् केवल हरी बोतल का ही सूर्यतप्त जल पूरी मात्रा से पीवे।

गर्भाशय का अपनी जगह से टल जाना

कारण—आंतो मे दूषित वायु अथवा मल भरा रहने के कारण उनका फूल जाना, कोष्ठबद्धता, कसकर साड़ी बांधना, झुककर बैठना, कोई व्यायाम आदि न करना, प्रसव के समय असावधानी तथा प्रसव के तुरत बाद चलने फिरने लगना, निर्बलता, निर्बलता मे व्यायाम करना, थोड़ी अवस्था की स्त्री के साथ पूर्ण वयस्क पति द्वारा प्रसंग, कूदना, दौड़ना, सीढ़ियो पर चढ़ना तथा मुंह या पीठ के बल गिरना।

उपर्युक्त कारणो से कितने ही ढंग से गर्भाशय अपनी जगह से हटता है। जैसे गर्भाशय और उसके साथ ही योनिदेश का झूल पड़ना, गर्भाशय का पीछे की ओर घूम जाना और गर्भाशय-ग्रीवा का सामने की ओर आ जाना, गर्भाशय के भीतरी भाग का निकल पड़ना, समूचे गर्भाशय का अपनी जगह से हट जाना, गर्भाशय का टेढा पड़कर उलट जाना तथा गर्भाशय का दाहिने या बायें टेढ़ा हो पड़ना।

जब किसी कारण से गर्भाशय अपने स्थान से टल जाता है तो रोगिणी को ऐसा मालूम होता है जैसे उसके योनिद्वार से कोई चीज बाहर निकल जायगी। उस वक्त योनि मे उंगली नही डाली जाती। बार-बार पाखाना, और पेशाब की अनुभूति होती है। कभी-कभी पेशाब एकबारगी ही बंद हो जाता है तो कभी पेशाब करने मे तकलीफ होती है। कभी-कभी रक्तस्राव और बेहोशी भी होती है। पीठ, जंघा, पेण्डुली, वक्षस्थल तथा बगलो मे पीड़ा होती है। इस प्रकार लगातार पीड़ा और ऐंठन होते रहने से रोगिणी की बुरी गति हो जाती है और उसका स्वास्थ्य गिरने लगता है।

जिस समय गर्भाशय के टलने की अवस्था उपस्थित हो, उस समय रोगिणी को बैठकर थोडी देर बाद धीरे-धीरे तकिये के सहारे बिस्तर पर लेट जाना चाहिए और पैरो को तकिए आदि के सहारे लगभग १॥ फीट ऊपर उठा रखना चाहिए और उन्हे उसी हालत मे आध घटा से एक घटे तक रखना चाहिए। इस क्रिया को दिन मे दो-तीन बार करना चाहिए। इससे रोगिणी को आराम मिलता है। आरम्भ मे ज्योही यह पता चले कि गर्भाशय अपनी जगह से टल गया है त्योही योनि पर घी की मालिश करने के बाद उस पर दूध की भाप देकर रुई या साफ कपड़े के सहारे उसे अपने स्थान पर पुन बैठा देने की कोशिश करनी चाहिए। जब वह अपने स्थान पर बैठ जाय तो उस पर बैण्डेज बांध देना चाहिए। साथ ही पेड़ू पर गीली मिट्टी की या भीगे कपड़े की पट्टी रखकर रोगिणी की पीडा कम करने की चेष्टा करनी चाहिए। जब तक तकलीफ दूर न हो जाय तब तक रोगिणी को आराम से बिस्तर पर सम्भवतः बिना हिले डुले पड़ा रहना चाहिए।

रोगिणी को पहले तीन दिनों केवल [illegible] पर रहना चाहिए। तत्पश्चात् सात दिनो तक [illegible]

चाहिए दिन मे तीन बार। कटहल, केला और सूखे फल नही लेने चाहिए। पीने के लिए शुद्ध, ठडा और गरम पानी नीबू के रस के साथ या अकेले ही लेना चाहिए। रसाहार के दिनो मे रोज रात को गरम पानी का एनिमा लेना भी जरूरी है।

पीडा कुछ कम होने पर रोज सुबह शुष्क घर्षणस्नान तथा सास और अन्य प्रकार की हल्की कसरतें करने लग जायें। शाम को २० मिनट तक कटि-स्नान भी करे।

सप्ताह में दो बार 'एप्सम साल्ट बाथ' तथा तीन बार रात मे सोने से पहले गरम और उसके तुरत बाद शीतल जल से मेहन-स्नान करना इस रोग मे बड़ा गुण करता है। इन स्नानो से गर्भाशय के आसपास के अवयव एव तन्तु शक्तिशाली बनते हैं।

गर्भाशय के पूरी तौर से बैठ जाने के बहुत दिनो बाद तक अधिक चलना-फिरना, मैथुन तथा अधिक परिश्रम आदि बद रखना चाहिये।

गर्भ गिर जाना

गर्भाशय मे सचित विजातीय द्रव्य की गर्मी और तज्जनित प्रदाह के कारण गर्भाशय मे तनाव और अतिरिक्त गर्मी का बढ जाना इस रोग का प्रधान कारण है। इस प्रधान कारण मे निम्नलिखित कुछ अन्य कारण जलती आग मे घृत का काम करते हैं—

त्रास, भावावेश, भय, चिन्ता आदि मानसिक उत्तेजना, कमर बाधना या कसकर साडी आदि पहनना, उपदश, श्वेत प्रदर आदि जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग, रक्त-दोष। अधिक सहवास, गर्भावस्था के प्रारम्भिक महीनो मे सहवास, मिथ्या आहार और अधिक भोजन, नशीली वस्तुओ का सेवन, किसी प्रकार का आघात, चोट लगना, फिसल पड़ना, उछलना-कूदना, सीढी चढना तथा भारी बोझ उठाना, दुर्बल गर्भाशय, रक्ताल्पता, दूषित और शक्तिहीन वीर्य, ज्वर, चेचक, खसरा, दस्त, यक्ष्मा, [illegible] आदि, [illegible]। [illegible] स्थान मे [illegible]। जान बूझकर गर्भ गिराने की कोशिश करना, [illegible] की दशा मे अधिक परिश्रम या व्यायाम करना, [illegible] मोटर आदि मे दूर का [illegible], [illegible] पेट मे [illegible] का पड़ जाना।

[illegible] गर्भ-स्राव की आशका होने पर रोगिणी को किसी साफ और हवादार कमरे में पूर्ण आराम करने के लिये एक चारपाई पर लिटा देना चाहिए जिसका पैताना, सिरहाने से कुछ ऊंचा हो। कमरे का वातावरण बिलकुल शान्त रहना चाहिए और वहा कोई ऐसी बात नही होनी चाहिए जिससे रोगिणी को किसी प्रकार की मानसिक उत्तेजना हो। पाखाना-पेशाब चारपाई पर ही 'बेड-पैन' मे कराना चाहिए।

यदि रोगिणी कुछ खाना चाहे तो उसे फलो का रस, उबली साग-सब्जी का रस अथवा बार्ली के पानी मे थोड़ा दूध मिलाकर पिलाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसे कोई चीज नही खिलानी चाहिए।

पेडू पर गीले कपड़े की ठडी पट्टी या गीली मिट्टी की पट्टी ऊपर से बिना ऊनी कपड़ा लपेटे ३-३ घटे बाद आधे-आधे घंटे के लिये रखनी चाहिए। रक्त-स्राव जब बन्द हो जाय तो पट्टी ४-४ या ६-६ घटे बाद रखे।

चारपाई पर २-२, ३-३ दिन पड़े रहने की वजह से यदि रोगिणी को पाखाना न मालूम हो तो मामूली ठडे पानी का एनिमा जरूर देना चाहिए।

जब गर्भपात रुकने की सम्भावना न हो तो पेडू पर मिट्टी की गीली पट्टी दिन मे कई बार देनी चाहिए। इससे गर्भपात मे नाम मात्र को ही तकलीफ होगी। यदि बेहोशी और चक्कर आने आदि की शिकायत हो तो रोगिणी के सिर और चेहरे को गीले कपड़े से बार-बार पोछते रहना चाहिए। कमजोरी की हालत मे पैरो के पास गरम पानी की बोतलें या गरम पानी मे पाव रखे जायें। रोगिणी को गरम कपड़े ओढाना चाहिये और ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि कपड़ा खून से भीगा न रहे। इसके लिये कपड़े को बदलते रहना चाहिए।

जब गर्भ गिर जाय तो उसके दूसरे दिन गुनगुने पानी के डूस से जननेन्द्रिय को साफ कर देना चाहिए। उसके बाद दो तीन दिन तक सिर्फ दूध पर रहना चाहिए। तत्पश्चात् ४ ५ दिन तक फल और दूध पर रहकर तब साधारण सादे भोजन पर आना चाहिए।

जिस स्त्री को बार-बार गर्भपात होने की शिकायत हो, उसकी यह शिकायत भी नीचे के उपचार से दूर की जा सकती है—

प्रथम तीन दिनो तक उपवास या रसाहार [illegible] साथ

मे एनिमा का प्रयोग करना चाहिए। आरम्भ मे लगभग २-३ सप्ताह तक गुनगुने पानी का कटि-स्नान दिन मे दो बार और यदि श्वेतप्रदर की भी शिकायत हो तो गुनगुने पानी का डूश भी देवें। इन दिनो रोगिणी का पथ्य केवल फल और साग-सब्जी होना चाहिए।

३ सप्ताह बाद पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी आध से १॥ घंटे तक सुबह और १० से ३० मिनट तक कटि-या मेहन-स्नान प्रतिदिन सायकाल लेना चाहिए। सप्ताह मे एक दिन पेडू का भाप-नहान और एक दिन आतप-स्नान। सप्ताह मे एक दिन उपवास और एनिमा, भोजन सादा और सात्विक।

गर्भस्राव मे आसमानी बोतल का सूर्यतप्त जल आधी-आधी छटाक दिन में ५ बार पिलाना चाहिए और हरी बोतल के सूर्यतप्त जल का फाया योनि मे रखना चाहिए। इससे बड़ा लाभ होता है। गर्भपात में गहरी नीली बोतल का जल पिलाना चाहिए और हरी बोतल के जल का फाया योनि मे रखना चाहिए। दोनो हालतो मे हरी बोतल के सूर्यतप्त जल से भीगी कपडे की पट्टी ३ घटे तक पेडू पर बाध रखना भी बड़ा उपयोगी है।

गर्भकाल के उपद्रव

गर्भकाल के कुछ उपद्रव और उसके उपचार निम्नलिखित है—

१—रक्तस्राव—गर्भावस्था की दशा मे भी किसी किसी स्त्री को ऋतुकाल के दिनो मे बहुधा थोडी-थोड़ी मात्रा मे रक्तस्राव होता है जिनके लिये विशेष चिन्तित होने की आवश्यकता नही है। यह दोष सगर्भावस्था के लिये बताये गये नियमो का पालन करने मात्र से ही प्रायः दूर हो जाता है। परन्तु किसी-किसी गर्भिणी स्त्री को कभी-कभी पाकस्थली, गर्भाशय, नाक और फेफडो से भी रक्त निकलने लगता है जो बडा खराब और प्राणघातक होता है। यह गड़बड़ी प्राय कब्ज के कारण होती है। अतः पेडू पर मिट्टी की पट्टी देने के बाद एनिमा का प्रयोग करने से यह तकलीफ धीरे-धीरे दूर हो जाती है। भूख न लगने पर भोजन एकदम बन्द कर देना चाहिए। भूख कम मालूम होने पर रसाहार अथवा केवल मठा पीना चाहिए।

जब तक रक्त-स्राव हो तब तक आसमानी बोतल के सूर्यतप्त जल की आधी छटाक मात्रा की खुराक दो-दोघटे पर देनी चाहिए। तत्पश्चात् गहरी नीली बोतल का जल तीन भाग और पीली बोतल का जल एक भाग मिलाकर ४-४ घटे के अंतर से पिलाना चाहिए। हरी बोतल के जल का फाया योनि मे रखना, तथा गहरा नीला प्रकाश मुंह और गर्दन पर डाले।

२—छाती या पंजरी मे दर्द—किसी-किसी गर्भिणी स्त्री को छाती के पास या उसके निचले हिस्से मे कभी-कभी दर्द होने लगता है जिसकी वजह से वह उस करवट लेट नही सकती। इसके लिये सादे भोजन पर रहकर दर्द वाली जगह पर दिन मे दो बार गीली मिट्टी की पट्टी देना चाहिए। उस स्थान को हल्का सूर्य-स्नान कराकर उसके बाद कटि-स्नान या मेहन स्नान भी कराना चाहिये।

पीली बोतल का सूर्यतप्त जल तीन हिस्सा तथा गहरी नीली बोतल का जल एक हिस्सा मिला कर दिन मे ४ खोराके पिलानी चाहिए। साथ ही पीली और हरी बोतलो का सूर्यतप्त जल बराबर बराबर लेकर और गरम करके उससे दर्द वाले स्थान को कपडे की गद्दी के सहारे सेकना चाहिये।

३—कब्ज—साधारण अवस्था मे कब्ज को समस्त रोगो की जड़ माना जाता है जो बड़ा दुखदायी होता है, वही कब्ज गर्भावस्था मे कितना अधिक दुखदायी होता है इसे कुछ भुक्त-भोगिनी गर्भिणी स्त्रिया ही भली भांति जानती हैं जिनको इस रोग से पाला पड चुका होता है। मगर गर्भावस्था में कब्ज उन्ही स्त्रियो को सताता है जो आलस्यमय जीवन व्यतीत करती है और मिथ्या आहार-विहार की पक्षपातिनी होती है।

कब्ज होने पर उसको तोड़ने के लिए किसी प्रकार की औषधि व्यवहार करना या जुलाब आदि लेना व्यर्थ ही नही भयावह भी है। कारण तेज दवा या जुलाब के फलस्वरूप प्राय. गर्भपात होजाता है। अतः कब्ज दूर करने के लिये निहार-मुह जल पीना, दो-एक दिन उपवास या रसाहार या फलाहार पर रहना, खुलीवायु मे टहलना, कटि-स्नान तथा एनिमा के प्रयोग काफी हैं।

४—पनले दस्त—गर्भावस्था मे पनले दस्त आना, अतिसार या संग्रहणी होजाना बहुत बुरा है। इसमें गर्भिणी कमजोर तो हो ही जाती है, साथ ही पनले दस्तो के बहुत दिनो तक आते रहने से कभी-कभी गर्भस्राव तक होजाता

है। पतला दस्त, पाचन-शक्ति की कमजोरी से आता है। अतः जब तक पेट ठीक न हो जाय कुछ भी खाना नहीं चाहिए। केवल ठडा जल पीना चाहिए। ठडे जल में कागजी नीबू का रस निचोड़ कर पिया जाय तो अति उत्तम। नारियल-जल का पीना भी ठीक रहता है।

उपचार के लिये रोज सुबह पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी आध घंटा तक रखने के बाद ठंडे पानी का एनिमा लेना चाहिए और शाम को २० मिनट का मेहन-स्नान। सुबह को मिट्टी की पट्टी की जगह कटि स्नान २० मिनट तक लिया जा सकता है। इस उपचार से कोठा साफ होकर दस्त आने बद जायेंगे।

५-मतली और कै—यह शिकायत कम या अधिक प्राय सभी स्त्रियों मे होती है। पहले ४-५ महीनों मे यह शिकायत होते अक्सर देखी गयी है। इसके लिए सुबह पाखाना से लौटने के बाद गुनगुने पानी का एनिमा लेकर पेट को साफ कर देना चाहिए। बिस्तर से उठते ही गरम पानी मे नीबू निचोडकर और उसमे थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर थोड़ा थोड़ा पीने से भी बडा लाभ होता है। निथरा हुआ चूने का पानी भी कै, मतली को बद करता है। अखुये निकले हुये गेहूं को सुखाकर उसके आटे की अच्छी सिकी रोटी मुनक्के के साथ खूब कुचल-कुचल कर खायें या भुने हुये चने या जो का सत्तू खायं। बरफ का टुकडा मुंह में डाल कर धीरे-धीरे चूसे तथा नारियल का पानी पीवें।

यदि पाचन में विशेषरूप से बिगाड हो गया हो तो पूर्ण विश्राम के साथ भोजन करना त्याग देना चाहिए। और फलों के रस या तरकारी के सूप पर रहना चाहिये। जरूरत पड़ने पर एनिमा और पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी लगावे।

६-मुंह में अधिक लार बनना—गर्भावस्था मे बहुत सी स्त्रियों के मुह मे अत्यधिक लार गिरता है, जिससे वे परेशान रहती है। इसके लिये शीघ्र पचनेवाला भोजन करना चाहिये और एनिमा लेकर पेट साफ कर डालना चाहिये। तात्कालिक शांति के लिये फिटकरी मिले पानी से [illegible] करनी चाहिए।

७-मूत्र रोग—गर्भावस्था मे अक्सर मूत्र-रोग सम्बन्धी [illegible] शिकायतें हो जाती है, जैसे मूत्र का शीघ्र शीघ्र [illegible] मूत्र का रुक जाना, [illegible] जिनमे गुर्दे की कमजोरी के

समान धातु (Albumin) जाने लगती है जिससे दुर्बलता तथा हाथ-पैर और कभी-कभी सारे शरीर मे शोथादि उपद्रव होकर बहुधा गर्भ गिर जाता है आदि इन सबका कारण वृक्क के ऊपर बढते हुए गर्भाशय का दबाव होता है। इन सब लक्षणों या इनमे से किसी एक लक्षण के प्रगट होते ही एनिमा का प्रयोग जारी कर देना चाहिए और थोडा थोडा करके पानी खूब पीने लग जाना चाहिए, साथ ही शीघ्र पचने वाला भोजन भूख लगने पर करना चाहिए, गर्म पानी से स्नान करना चाहिये, सुबह-शाम मेहन-स्नान करना चाहिए और रात को खाना खाने के २ घंटा बाद पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी रखे।

८-अनिद्रा—गर्भवती स्त्री को प्रायः नींद न आने की शिकायत रहा करती है। इसका प्रधान कारण उसका आलसी जीवन और व्यर्थ की चिन्ता-फिक्र है। अधिक खाने से भी अच्छी नींद आती है। इसके लिए सादा और सुपच भोजन करना चाहिए, प्रतिदिन थोड़ा बहुत हलका व्यायाम या घर का काम-काज जरूर करना चाहिए। खुली जगह मे सोना चाहिए जहाँ स्वच्छ वायु की हरवक्त गुजर हो, चाय तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं का सेवन भूल से भी न करें तथा कब्ज न होने दे।

९-सिर दर्द—किसी किसी स्त्री को गर्भावस्था मे बडे जोरो का सिर दर्द उठता है जिससे वह बेचैन हो जाती है। इसके लिये भोजन हलका, सादा और कम करना चाहिये, एनिमा लेकर पेट साफ कर डालना चाहिये, खूब पानी पीना चाहिये तथा नित्यप्रति स्नान और कोई हलका व्यायाम करना चाहिए। आवश्यकतानुसार दिन मे एक बार पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी भी रखी जा सकती है।

१०-बेहोशी—दिल या दिमाग की कमजोरी के कारण बहुत सी गर्भवती स्त्रियां अक्सर बेहोश हो जाया करती हैं। इसके लिए उस वक्त उनकी छाती पर के कपड़े के बटन खोल देने चाहिये और चेहरे पर ठडे पानी का छींटा मारना चाहिए। इससे बेहोशी जरूर दूर होजायगी भोजन में फल और दूध अधिक रखना चाहिए।

११-प्रदर-गर्भावस्था में कभी-कभी स्त्रियों को प्रदर की शिकायत हो जाती है। इसके कारण प्रदर-रोग पुराना रोगी होना, गर्भ के दिनों में पुरुष सहवास तथा [illegible] आहार आदि हैं। इसकी चिकित्सा विस्तार

ऊपर दी जा चुकी है।

१२–उदरशूल—बहुत-सी गर्भवती स्त्रिया पेट के दर्द से परेशान रहती है। उन्हे इसका दौरा उठा करता है। इसका कारण उनका असंयमी जीवन तथा मिथ्या आहार-विहार है। इसके लिए जब तक पूर्ण स्वस्थ न हो ले, चलना फिरना बंद रखना चाहिये, चित्त लेटना चाहिये तथा गर्भवती की पेटी का व्यवहार करना चाहिए। इनके अतिरिक्त पेट पर गर्म-ठडी सेक तथा पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी रखनी तथा साथ मे एनिमा भी लेना चाहिए।

१३–हृदय की धड़कन—गर्भवती स्त्रियो का हृदय कभी-कभी असाधारण रूप से धड़कने लगता है जो मिथ्या आहार का सूचक है। एनिमा लेकर पेट साफ कर लेने के बाद हल्के और सादे भोजन पर रहने से यह दोष दूर हो जाता है। जब हृदय धड़कने लगे तो उस वक्त चित्त न लेटे। शहद का उपयोग इस रोग मे रामवाण है।

१४–हाथ-पैर में एंठन—यह दोष गर्भवती स्त्रियो को कब्ज और शरीर की दुर्बलता से होता है। इन दोनो कारणो को दूर कर देने से हाथ-पांव की ऐठन आप से आप दूर हो जाती है।

१५–खांसी—गर्भावस्था मे कब्ज रहने के फलस्वरूप गर्भिणी को अक्सर खासी की शिकायत हो जाती है। अतः खासी को दूर करने के लिए कब्ज न रहने दे।

१५–योनिद्वार की खुजली—कितनी ही गर्भवती स्त्रियो के योनिद्वार मे भयानक खुजली उठा करती है। उसके लिये योनिद्वार को गर्म पानी से अच्छी तरह धोकर उस पर गीली मिट्टी का लेप चढ़ाना चाहिए।

तेरहवां अध्याय

प्रसव सम्बन्धी रोग

पेट में बच्चे का मर जाना

मानसिक और शारीरिक कतिपय रोगो के परिणाम-स्वरूप, तथा प्रहार आदि के कारण प्रसव के पूर्व ही बच्चा माता के पेट मे ही मर जाता है, जिसकी पहचान यह है कि वह पेट मे हिलता-डुलता नही, प्रसव-पीड़ा उठनी बन्द हो जाती है, गर्भवती का शरीर हरा या नीला पड़ जाता है, उसको सांस मे मुर्दे जैसी गंध आने लगती है, तथा उसके पेट पर सूजन चढ़ आती है।

जब यह निश्चय हो जाय कि गर्भवती के पेट मे उसका बच्चा मर गया है तो उसे धीरे से चारपाई पर लिटाकर उसका हिलना-डुलना बिलकुल बद कर देना चाहिए। उसके बाद लगातार बदल-बदलकर उसके पेट पर ठंडे पानी से भीगी कपड़े की पट्टी या गीली मिट्टी की पट्टी देते रहना चाहिए, और बीच-बीच में रोगिणी को थोड़ा-थोड़ा ठडा पानी भी पिलाते रहे।

सांप की केचुल को दो सकोरो में बन्द करके जलाइये। उसकी राख को शुद्ध शहद मे मिलाकर स्त्री की आंख मे आंज दीजिये, इससे यदि पेट मे बच्चा जीवित होगा तो फौरन बाहर आजायगा।

नकली प्रसव-पीड़ा

कुछ गर्भवती स्त्रियो को प्रसव के दिन से बहुत पहले एक तरह का प्रसव के दर्द से मिलता-जुलता, दर्द पैदा हो जाता है, जो प्रसव का असली दर्द नही होता। यह दर्द काफी देर तक रहता भी नही और जोरों का भी नही होता। इसके निवारण के लिये पेट पर ठडे पानी से भीगी पट्टी देनी और ठडा पानी पीना चाहिए।

कष्टकर-प्रसव

प्रसव के समय सभी स्त्रियों को थोड़ी-बहुत तकलीफ तो होती ही है, पर बहुत सी स्त्रियो को आवश्यकता से अधिक तकलीफ होती है, यहा तक कि वे मूर्छित तक हो जाती है। ऐसी हालत में थोडे उपचार का सहारा लेना जरूरी हो जाता है अतः दर्द का कारण यदि कब्ज हो तो एनिमा द्वारा पेट साफ कर लेना चाहिए। गर्भाशय ग्रीवा के कड़ेपन की वजह से यदि तकलीफ हो तो गर्भाशय-द्वार में धीरे-धीरे पिचकारी की सहायता से गरम पानी पहुँचाकर उसे नर्म करदेना चाहिए। ऐसा करने से कष्ट दूर होकर प्रसव जल्दी हो जाता है। अन्य कारणों से दर्द होने पर मेहन-स्नान या एक-एक या दो-दो घंट

[illegible] प्रतिदिन नियमपूर्वक मेहन स्नान या कटि-[illegible] और सप्ताह मे एक बार वाष्प स्नान भी ।

सूतिका रोग या प्रसूत-ज्वर

सूतिका रोग या प्रसूत ज्वर केवल उन्हीं स्त्रियों को [illegible] जो सगर्भावस्था के नियमो को पूरे तौर पर नहीं करती अथवा जिनके शरीर मे प्रसव के बाद [illegible] उत्तेजना देने के लिये यथेष्ट विजातीय द्रव्य रह [illegible] है। इसके अतिरिक्त प्रसवावस्था मे चलना-[illegible], प्रसव के पहले ही रक्तस्राव का बन्द हो जाना, [illegible], ठडा पानी वर्तना, प्रसव के बाद गर्भाशय [illegible] प्रकार का मल रुक जाना या उसमे जखमादि [illegible], प्रसव के बाद ही सफर तथा मल–मूत्रादि [illegible] आदि कारणों से भी शरीर मे बिष फैलकर जच्चा [illegible] । रोग हो जा सकता है ।

प्रसूत ज्वर १०३° से १०५° के बीच घटता-बढ़ता रहता है, साथ ही गर्भाशय मे पीड़ा होती है, दस्त-कै होते है, जोड़ों मे दर्द, हाथ पैर में ऐठन तथा कभी-कभी बेहोशी भी हो जाती है ।

इस रोग को अच्छा करने के लिये १५ से ३० मिनट तक रोज चार बार मेहन स्नान लेना चाहिए । अगर रोगिणी अति दुर्बल हो तो मेहन स्नान का पानी ठडा न लेकर थोड़ा गुनगुना लेना चाहिए। साधारण अवस्था में रोज दो बार मेहन स्नान और एक बार पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी देने से भी रोग में सुधार शीघ्र होता है ।

पीली शीशी का सूर्यतप्त जल तीन हिस्सा और गहरी नीली शीशी का एक हिस्सा मिलाकर आधी-आधी छटाक की ६ खुराके दिन मे ले ।

चौदहवां अध्याय

बच्चों के रोग और उनका उपचार

[illegible] हे बच्चे अक्सर धाय या माता के दूषित दूध [illegible] से बीमार पडते हैं, और माता या धाय का दूध [illegible] होता है, उनकी बीमारी एव मिथ्या आहार-विहार [illegible] दूषित दूध पीने से बीमार होनेवाले बच्चो का [illegible] न कर यदि साथ ही साथ उनकी माताओ का [illegible] किया जाय तो उनको शुद्ध दूध होने लगेगा [illegible] पीकर बीमार बच्चे बहुत जल्द स्वस्थ हो जावेगे ।

[illegible] के शुद्ध दूध की पहचान यह है कि वह जल मे [illegible] जल मे मिल जाता है और उसका कोई अश वा [illegible] आदि जल से भिन्न प्रतीत नही होता । इसके [illegible] का दूषित दूध जल मे डालने से या तो [illegible] पीला तार छोडता है या डूब जाता हैं । स्वाद [illegible], झागदार, रूक्ष, खट्टा, कडुवा या [illegible] होता है ।

[illegible] की हालत मे बच्चे को किसी [illegible] या गाय बकरी का दूध पिलाकर [illegible] ।

[illegible] के सिद्धान्तानुसार कोई भी रोग होने [illegible] चाहिये कि कमरे की खिडकियां [illegible] दिया देना चाहिये और यदि वे चाहे तो वही चलने फिरने देना चाहिये । यह जितनी ही देर तक किया जा सके उतना ही अच्छा है । यदि सम्भव हो सके तो रोगावस्था मे बच्चे को खुली जगह मे टहलने देना अधिक अच्छा है । इस समय प्राकृतिक स्नान करना चाहिए और पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए। यदि बच्चा डिपथीरिया का रोगी हो तो मिट्टी की पट्टी गर्दन पर रखनी चाहिए । यह भी आवश्यक है कि रोगा-वस्था मे बच्चे को कुछ भी खाने को न दिया जाय और यदि दें तो बहुत अल्प मात्रा में, सो भी फल और मेवे ।

बच्चो के रोग जानने की रीति

नीचे बच्चो के रोग जानने और समझने की कुछ रीतिया दी जाती है जिनसे लाभ उठाया जा सकता है :—

(१) बालक के हल्के और तेज रोग को उसके रोने से पहचानना चाहिये ।

(२) जिस अङ्ग को या शरीर के जिस भाग को बालक स्वयं छूवे और दूसरो के हाथ लगाने से रोवे उस अङ्ग मे या शरीर के उस भाग मे पीड़ा होना समझें ।

(३) यदि बालक [illegible] तो उसके सिर में दर्द होना जाने ।

(४) यदि बालक [illegible] और होठों को [illegible]

पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाकर उसे रात भर तक लगी रहने देना चाहिए।

रक्तस्राव के कारण यदि रोगिणी को कमजोरी अधिक आजाए तो उसके सिर के नीचे से तकिया हटाकर चारपाई का पायताना ८-९ इञ्च ऊंचा कर देना चाहिए इससे मस्तिष्क मे रक्त की कमी के कारण मूर्च्छा आदि नही आने पाती।

रक्तस्राव के बाद पुनः रक्त की मात्रा में वृद्धि करने के लिए रोगिणी को हर दो तीन घटे बाद गरम दूध दे। बीच बीच मे फल रस और पानी भी पिलाये।

प्रसव के समय प्रसव-पथ का फट जाना

मलद्वार और योनि के बीच जो सीवन होती है प्रसव के समय बहुधा उसका कुछ भाग फट जाता है। गर्भावस्था के अन्तिम दिनो मे प्रतिदिन कटि-स्नान लेने से प्रसव के समय ऐसी घटना नही होने पाती। प्रसव के समय उस स्थान पर गरम ठंडी सेक देने अथवा गरम पानी के डूश के प्रयोग करने से भी सीवन को फटने से बचाया जा सकता है। सीवन के फट जाने पर उस स्थान पर गीली मिट्टी की पट्टी या गीले कपड़े की पट्टी का प्रयोग करने से कुछ दिनो मे वह भर जाता है।

प्रसव के बाद भी दर्द

प्रसव के बाद भी बहुत सी स्त्रियो की कमर और पेडू मे प्रसव की तरह ही दर्द हुआ करता है जो पेडू पर बारी-बारी से गरम और ठंडी सेक देने से दूर हो जाता है।

प्रसव के बाद पेशाब का रुकना

इसके लिये खूब पानी पीना चाहिए और मेहन स्नान या पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाना चाहिए।

दूध-ज्वर

प्रसव के २-३ दिन बाद अक्सर प्रसूता के स्तन भारी होकर तन जाते है और तब दूध उतरता है। उस वक्त स्तन सूज जाते हैं और उसमे दर्द और पकन होने लगती है, ज्वर हो आता है तथा सर मे दर्द और जाड़ा लगने लगता है। बच्चे के दूध पीने लगने पर प्रायः ये तकलीफे आपसे आप दूर हो जाती हैं अन्यथा रबर पम्प द्वारा दूध को खींचकर निकाल फेकना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्तनो पर गर्म पानी से सेक देकर उन पर भीगे कपड़े की ठडी-पट्टी बांधनी चाहिए।

स्तन-प्रदाह (थनैली)

बच्चे को स्तनपान न कराने अथवा कितने ही कारणों से स्तनो में दूध जम जाता है जिससे वे फूल [जाते] हैं और कभी-कभी ज्वर भी आ जाता है। इसके [लिए] रोग आरम्भ होते ही कई घटे तक लगातार स्तनो [पर] गरम पानी से भीगे और निचोडे कपड़े से सेक देना जरू[री] है। इतने ही से रोग दूर हो जायगा। परन्तु यदि गर[म] पानी के सेक से लाभ होता न दिखाई दे तो गरम [और] ठडी सेक देना आरम्भ कर देना चाहिए।

स्तनो से अधिक दूध बहना

किसी-किसी प्रसूता के स्तनों से ढेर का ढेर दूध ब[हा] करता है और पीठ आदि मे दर्द का अनुभव भी साथ-साथ होता है। इसके लिये स्तनों पर लगातार ठडे जल [में] भीगी जल पट्टी रखनी चाहिए और मेहन या कटि स्ना[न] नियमित रूप से लेना चाहिए।

स्तनों मे दूध की कमी

कारण—मिथ्या आहार विहार, भयङ्कर रोग होने के कारण, स्तन्यकाल मे गर्भ रह जाना, मानसिक आघात और शिशु के प्रति स्नेह मे कमी, छोटी आयु मे माता बनना, औषधि सेवन और टीका—इन्जेक्शन आदि, स्तनों का बहुत बड़ा-बड़ा होना और स्त्री का बहुत दुबला पतला होना। अतः उपर्युक्त कारणो को दूर करने के बाद माता के भोजन में उचित सुधार तथा कुछ उपचार काम मे लाने से उसके स्तनो मे दूध की वृद्धि आसानी से की जा सकती है। ऐसी माता को चाहिए कि वह चीनी, दाल, मैदा, मिर्च-मसाले, तली चीजे, खटाई-अचार, बासी खाद्य तथा अन्य दुष्पाच्य भोजन लेना तुरत त्याग दे और उनके स्थान पर मौसिमी ताजे फल, ताजी साग-सब्जियां, दूध, मक्खन, शहद, हाथ कुटा चावल तथा हाथ की चक्की का पिसा चोकर मिला हुआ आटा ले। बिल्व पत्र दूध बढ़ाने मे अपना सानी नही रखता, अतः ५-७ पत्ती बिल्व की पीसकर रोज पी लेने से बडा लाभ होता है। सप्ताह मे कम से कम एक दिन उपवास करना जरूरी है। इसके अतिरिक्त रोज २०-३० मिनट तक स्तनो और सारे शरीर की सूखी मालिश के बाद स्नान, ५-१० मिनट तक [illegible] स्नान, कब्ज रहने पर एनिमा का प्रयोग, [illegible] नना तथा आवश्यक व्यायाम भी करना कम जरूरी नहीं है।

[illegible] साथ प्रतिदिन नियमपूर्वक मेहन स्नान या कटि-[illegible] और सप्ताह मे एक बार वाष्प स्नान भी।

सूतिका रोग या प्रसूत-ज्वर

[सूतिका] रोग या प्रसूत ज्वर केवल उन्हीं स्त्रियों को [होता है] जो सगर्भावस्था के नियमों को पूरे तौर पर [नहीं] करती अथवा जिनके शरीर मे प्रसव के बाद [उत्ते]जना देने के लिये यथेष्ट विजातीय द्रव्य रह [जाता] है। इसके अतिरिक्त प्रसवावस्था में चलना-[फिरना], प्रसव के पहले ही रक्तस्राव का बन्द हो जाना, [illegible], ठंडा पानी बर्तना, प्रसव के बाद गर्भाशय [में किसी] प्रकार का मल रुक जाना या उसमे जखमादि [होना], प्रसव के बाद ही सफर तथा मल-मूत्रादि [रोकना] आदि कारणों से भी शरीर मे बिष फैलकर जच्चा [को यह] रोग हो जा सकता है।

प्रसूत ज्वर १०३° से १०५° के बीच घटता-बढता रहता है, साथ ही गर्भाशय मे पीड़ा होती है, दस्त-कै होते है, जोड़ों मे दर्द, हाथ पैर में ऐंठन तथा कभी-कभी बेहोशी भी हो जाती है।

इस रोग को अच्छा करने के लिये १५ से ३० मिनट तक रोज चार बार मेहन स्नान लेना चाहिए। अगर रोगिणी अति दुर्बल हो तो मेहन स्नान का पानी ठंडा न लेकर थोड़ा गुनगुना लेना चाहिए। साधारण अवस्था मे रोज दो बार मेहन स्नान और एक बार पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी देने से भी रोग में सुधार शीघ्र होता है।

पीली शीशी का सूर्यतप्त जल तीन हिस्सा और गहरी नीली शीशी का एक हिस्सा मिलाकर आधी-आधी छटाक की ६ खुराके दिन मे ले।

चौदहवां अध्याय

बच्चों के रोग और उनका उपचार

[illegible] हुए बच्चे अक्सर धाय या माता के दूषित दूध [पी]ने से बीमार पड़ते हैं, और माता या धाय का दूध [दूषित] होता है, उनकी बीमारी एव मिथ्या आहार-विहार [से]। दूषित दूध पीने से बीमार होनेवाले बचो का [इलाज] न कर यदि साथ ही साथ उनकी माताओं का [इलाज] किया जाय तो उनको शुद्ध दूध होने लगेगा [और] बीमार बच्चे बहुत जल्द स्वस्थ हो जावेगे।

[माता] के शुद्ध दूध की पहचान यह है कि वह जल मे [डालने] पर जल में मिल जाता है और उसका कोई अंश या [illegible] आदि जल से भिन्न प्रतीत नही होता। इसके [विपरीत] [illegible] का दूषित दूध जल मे डालने से या तो [illegible] पीला तार छोड़ता है या डूब जाता है। स्वाद [illegible], मागदार, रूक्ष, खट्टा, कड़ुवा या [illegible] होता है।

[illegible] की हालत में बच्चे को किसी [illegible] का या गाय बकरी का दूध पिलाकर [illegible]।

[illegible] के [illegible]नुसार कोई भी रोग होने [illegible] रखनी चाहिये कि बच्चे को [illegible] [illegible] देना चाहिये और यदि वे चाहे तो वही चलने फिरने देना चाहिये। यह जितनी ही देर तक किया जा सके उतना ही अच्छा है। यदि सम्भव हो सके तो रोगावस्था मे बच्चे को खुली जगह मे टहलने देना अधिक अच्छा है। इस समय प्राकृतिक स्नान करना चाहिए और पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए। यदि बच्चा डिफ्थीरिया का रोगी हो तो मिट्टी की पट्टी गर्दन पर रखनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि रोगा-वस्था मे बच्चे को कुछ भी खाने को न दिया जाय और यदि दें तो बहुत अल्प मात्रा में, सो भी फल और मेवे।

बच्चों के रोग जानने की रीति

नीचे बचो के रोग जानने और समझने की कुछ रीतिया दी जाती हैं जिनसे लाभ उठाया जा सकता है :—

(१) बालक के हलके और तेज रोग को उसके रोने से पहचानना चाहिये।

(२) जिस [अङ्ग] को या शरीर के जिस भाग को बालक स्वयं छूवे और दूसरो के हाथ लगाने से रोवे उस अङ्ग मे या शरीर के उस भाग मे पीड़ा होना समझे।

(३) यदि बालक [illegible] [illegible] तो उसके सिर में दर्द होना जाने।

(४) यदि बालक [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible]

के विकलने की जगह से दबावे तो उसे श्वास का रोगी जानना चाहिए। श्वास की नली मे दोष होने से बालक सोते-सोते चौक पड़ता है और खांसने लगता है और कभी कभी सिसकियां लेने लगता है।

(५) मुट्ठिया मीचे तो बालक के हृदय मे पीड़ा जाने।

(६) बालक के मुंह से पानी गिरना उसके कोठे मे पीड़ा का सूचक है।

(७) आतों की तकलीफ मे बच्चे स्तनो को काटते हैं।

(८) यदि बालक का मल-मूत्र रुक जावे और वह त्रासयुक्त नेत्रो से दिशाओ को देखे तो उसकी बस्ति मे पीड़ा जाने।

(९) रोगी बच्चे की जीभ मैली और भूरे रंग की होती है। उसका मुख पीला होता है और उस पर सिलवटें सी पड़ जाती हैं। उसे मल-मूत्र त्यागने मे भी कुछ कष्ट होता है। उसे नीद अच्छी नही आती और वह स्वप्न मे चीखने और चिल्लाने लगता है। उसकी बाढ़ रुक जाती है। वजन कम हो जाता है। भूख मर जाती है।

(१०) छाती और पसली के दर्द मे वच्चा खांसते समय बहुत रोता है।

(११) यदि बच्चे के माथे पर सिलवटे पड़ जायें और उसे आराम की नीद न आये तो उसे फेफड़े का रोगी जाने।

(१२) बच्चे को निमोनिया होने पर या उसकी छाती मे कफ अटक जाने पर वह मुंह खोलकर जल्दी-सांस लेने लगता है, या सास लेते समय उसके नथुने फूलते है, और छाती मे साय-साय का शब्द सुनाई देता है।

(१३) यदि वच्चा अपनी अ गुली कान की ओर ले जाय तो उसे कान का रोगी जानना चाहिए।

(१४) यदि वच्चा ज्वर की हालत मे वार-वार छीके, खांसे, और उसके मुख का रङ्ग लाल पड़ जाय तो समझें कि उसे छोटी या वड़ी माता निकलने वाली है।

(१५) जिस वच्चे के पेट मे कृमि होते हैं, वह सोने मे दांत पीसता है, नाक खुजाता है तथा मल-मूत्र के स्थान को मलता है।

१—वच्चों का अधिक रोना

जल्दी-जल्दी और कलेजा तोड़कर रोते हुये यदि वच्चा अपने पैरों को मोड़ ले तो उसके पेट मे दर्द होना समझना चाहिए। थोड़ी-थोडी देर वाद रोना, बे[illegible] हो जाना तथा सर पटकना यह जाहिर करता है कि बा[illegible] के कान मे दर्द है। जिस कान में दर्द होगा, उसे छूते [illegible] वच्चा जोर से चिल्ला पड़ेगा। यदि वच्चा रोते वक्त का[illegible] की कोशिश करे और मुह मे अ गुली दे तो समझ[illegible] चाहिए कि उसे दात निकलने की तकलीफ है। रोते सम[illegible] बच्चे का खांसना उसके सीने मे दर्द का सूचक है। [illegible] करने की कोशिश के साथ रोना अपच सूचित करता है [illegible] शरीर के किसी भाग को छूने पर यदि वच्चा रोये तो उ[illegible] भाग मे या तो चोट लगी है या वहा गठिया का दर्द है [illegible] आलपीन, काटा आदि के गड़ने, मच्छर, खटमल आदि [illegible] कीड़े-मकोड़े के काट खाने तथा शरीर पर अधिक और [illegible] कसे हुए कपड़ो के कारण भी वच्चे रोते हैं। अतः इन कारणो को दूर कर देने से वे अवश्य चुप हो जाते हैं। कभी-कभी नीद के कारण भी वच्चे रोते है और लेटना चाहते है। उस समय उन्हे आराम से लिटा देने से चुप हो जाते है और तुरत सो जाते है।

किसी रोग के कारण रोते वच्चे को चुप कराने के लिए उसे दिन मे दो-तीन वार उदर-स्नान देना वड़ा लाभ करता है। गहरा नीला प्रकाश वच्चे के मुह पर दिन मे दो घंटे तक देना तथा पीली और गहरी नीली बोतलों के वरावर वरावर जल को खुराकें दो दो घंटे पर पिलायें।

२—वच्चों का बोदापन, पागलपन, आदि

ऐसे वच्चो को खुली वायु मे रखना चाहिए, सादा और सात्विक आहार देना चाहिए, तथा उनके मस्तिष्क-विकार के लिये डाटना-फटकारना नही चाहिए। ऐसे वच्चो को अपने से कम आयु के कम शक्ति वाले बच्चों में खेलने देने का अवसर देना चाहिए, तथा उन्हें उदास कभी न होने देना चाहिए।

मस्तिष्क सम्बन्धी रोगो का प्रधान कारण कब्जियत का रहना है। इसलिये सवेरे उदर-स्नान और शाम को मेहन-स्नान देना चाहिए। रात भर के लिये पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी वा कमर के चारों तरफ गीली चादर की लपेट वांधना चाहिए और जब तक कब्ज दूर न हो जाये रोज सवेरे शौच के वाद [illegible]

[illegible]ना चाहिए।

३-बच्चों का दांत निकलना

देर से दात निकलने का कारण बुरा स्वास्थ्य है। ऐसे [illegible] सूखा, कमजोरी आदि रोगो से पीड़ित होते है।

दन्तोद्भेदक सभी उपद्रवो की शाति के लिए गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल बच्चा और उसकी मा—दोनो को व्यवहार मे लाना चाहिए। बच्चो को प्रत्येक दो-दो घटे पर दो दो चम्मच तथा मां को ४-४ घटे पर आधी-आधी [illegible] यह जल पिलाना चाहिए। दस्त मे पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी १५-२० मिनट के लिए दिन मे दो बार बांधनी चाहिये।

४-बच्चों का हकलाना और तोतलाना

हकलाते बच्चो का हकलाना बचपन में आसानी से छुड़ाया जा सकता है, जबकि बड़े होने पर वही उनकी प्रकृति में दाखिल होकर असाध्य नहीं तो दुसाध्य अवश्य बन जाता है। सभी बच्चे थोड़ा बहुत तोतलाते है जो स्वाभाविक है जबकि हकलाना बुरी आदत है जो दिन-दिन मजबूत ही होती है और अन्त मे बीमारी का रूप धारण कर लेती है। यदि किसी बच्चे का तोतलापन अधिक बढ़ा हो और उसको कम करना या बिलकुल ही गायब करना मंजूर हो तो उस बच्चे से बिल्ली या कुत्ते की तरह चारो हाथ पाव के बल चलने की चेष्टा करवाइये कुछ ही दिनो मे तोतलापन कम होते होते एक बारगी ही छूट जायगा। छोटे बच्चो के स्वभावत. बकइया खीचने मे यही रहस्य छिपा हुआ है।

हकलाना भी एक मस्तिष्क सम्बन्धी रोग है जो पीठ के ऊपरी भाग एव गर्दन के आस-पास विजातीय द्रव्य के जमा होने से स्नायुओ मे गडबड़ी उत्पन्न होजाने की वजह से उत्पन्न हो जाता है। हकलाने वाले व्यक्ति के [illegible] अवयवों एवं मस्तिष्क के स्नायुओ मे समन्वय [illegible] जिससे वह ठीक से बोल नहीं पाता। नकल [illegible] हकलाने की आदत पड जाती है। [illegible] मस्तिष्क मे भारी चोट लगने अथवा [illegible] करनेवाले रोगो से भी कभी-कभी [illegible] उत्पन्न हो जाती है।

[illegible] इलाज करने के लिए प्रथम हकलाने- [illegible] उत्पन्न करना चाहिये कि वह किसी से भय न खाय अथवा संकोच न करे।

सवेरे २० मिनट तक मेहन-स्नान तीसरे पहर आधे-घंटे तक रीढ़ की गीली पट्टी, सिर और गर्दन पर नीली बोतल के सूर्यतप्त तेल की प्रतिदिन मालिश तथा शिर और पीठ पर नीले शीशे द्वारा प्रकाश डालने से कुछ ही दिनो मे हकलाने की आदत छूट जाती है। सर्वाङ्गासव भी इस रोग मे बडा लाभ करता है।

५—अंगूठा चूसना

बच्चो का अधिक अंगूठा चूसना बुरा है जिसको रोग की संज्ञा दी जा सकती है। क्योकि अंगूठा चूसनेवाला बच्चा प्राय. मुंह से सास लेता है जो हानिकारक है। दूसरे यह कि अंगूठा चूसने वाले बच्चें के आगे के दो दातो के अनावश्यक रूप से बढ़ जाने से वह कुरूप हो जाता है। अतः इस आदत को छुड़ाने के लिये सर्व प्रथम बच्चे को ठीक समयो पर दूध पिलाने की आदत डालनी चाहिये। यह प्रयत्न कदापि नही करना चाहिए कि बच्चे को डांट-फटकार कर एव भयभीत करके उसकी यह आदत छुड़ाई जाय। अंगूठे पर पट्टी आदि बाधकर भी उसकी चूसने की आदत छुड़ाना ठीक नही। सबसे अच्छा तरीका इस आदत को छुडाने का तो यह है कि जब कभी बच्चा अपने अंगूठे को मुख मे ले जाने की कोशिश करे ठीक उसी समय उसके सामने कोई आकर्षक खिलौना फेक दिया जाय।

६—सोते में पेशाब करना

ऐसे बच्चो को अधिक समय तक खुली हवा मे रहना चाहिए और उन्हे दौड़ने-धूपने देना चाहिए। बच्चे को पेट साफ हो जाने तक प्रतिदिन एनिमा देना चाहिए। साथ ही सवेरे ५ मिनट का उदर-स्नान एव शाम को ३ मिनट का मेहन-स्नान देना बड़ा लाभ करता है। हरी बोतल का सूर्यतप्त जल दिन मे चार खुराक पीना तथा गहरे नीले शीशे द्वारा सूर्य-प्रकाश पेड़ू और मूत्राशय पर रोज आधा घण्टे तक ले।

७—सोते में चौंक उठना

बच्चे सोते मे [illegible] के कारण भी चौंकते है और मस्तिष्क [illegible] विकृति से भी। इसके निवारण के लिये ऐसे बच्चों को गहरी नीली बोतल के [illegible] खुराकें रोज देना और नीला प्रकाश

के निकलने की जगह से दबावे तो उसे श्वास का रोगी जानना चाहिए। श्वास की नली मे दोष होने से बालक सोते-सोते चौक पड़ता है और खांसने लगता है और कभी कभी सिसकियां लेने लगता है।

(५) मुट्ठिया मीचे तो बालक के हृदय मे पीड़ा जाने।

(६) बालक के मुंह से पानी गिरना उसके कोठे मे पीड़ा का सूचक है।

(७) आंतो की तकलीफ मे बच्चे स्तनो को काटते हैं।

(८) यदि बालक का मल-मूत्र रुक जावे और वह त्रासयुक्त नेत्रो से दिशाओ को देखे तो उसकी बस्ति मे पीड़ा जाने।

(९) रोगी बच्चे की जीभ मैली और भूरे रंग की होती है। उसका मुख पीला होता है और उस पर सिलवटें सी पड़ जाती हैं। उसे मल-मूत्र त्यागने मे भी कुछ कष्ट होता है। उसे नीद अच्छी नही आती और वह स्वप्न मे चीखने और चिल्लाने लगता है। उसकी बाढ़ रुक जाती है। वजन कम हो जाता है। भूख मर जाती है।

(१०) छाती और पसली के दर्द मे बच्चा खासते समय बहुत रोता है।

(११) यदि बच्चे के माथे पर सिलवटे पड़ जायें और उसे आराम की नीद न आये तो उसे फेफड़े का रोगी जाने।

(१२) बच्चे को निमोनिया होने पर या उसकी छाती मे कफ अटक जाने पर वह मुंह खोलकर जल्दी-सांस लेने लगता है, या सास लेते समय उसके नथुने फूलते है, और छाती मे साय-साय का शब्द सुनाई देता है।

(१३) यदि बच्चा अपनी अंगुली कान की ओर ले जाय तो उसे कान का रोगी जानना चाहिए।

(१४) यदि बच्चा ज्वर की हालत मे बार-बार छींके, खांसे, और उसके मुख का रङ्ग लाल पड़ जाय तो समझें कि उसे छोटी या बड़ी माता निकलने वाली है।

(१५) जिस बच्चे के पेट मे कृमि होते हैं, वह सोने मे दांत पीसता है, नाक खुजाता है तथा मल-मूत्र के स्थान को मलता है।

१—बच्चों का अधिक रोना

जल्दी-जल्दी और कलेजा तोड़कर रोते हुये यदि बच्चा अपने पैरों को मोड़ ले तो उसके पेट में दर्द होना समझना चाहिए। थोड़ी-थोडी देर बाद रोना हो जाना तथा सर पटकना यह जाहिर करता है कि ... के कान मे दर्द है। जिस कान में दर्द होगा, उसे ... बच्चा जोर से चिल्ला पडेगा। यदि बच्चा रोते वक्त ... की कोशिश करे और मुह मे अगुली दे तो स... चाहिए कि उसे दात निकलने की तकलीफ है। रोते ... बच्चे का खांसना उसके सीने मे दर्द का सूचक है ... करने की कोशिश के साथ रोना अपच सूचित करता ... शरीर के किसी भाग को छने पर यदि बच्चा रोये तो ... भाग मे या तो चोट लगी है या वहा गठिया का दर्द ... आलपीन, काटा आदि के गडने, मच्छर, खटमल ... कीड़े-मकोड़े के काट खाने तथा शरीर पर अधिक ... कसे हुए कपड़ो के कारण भी बच्चे रोते हैं। अत ... कारणो को दूर कर देने से वे अवश्य चुप हो जाते। कभी-कभी नीद के कारण भी बच्चे रोते हैं और ... चाहते हैं। उस समय उन्हें आराम से लिटा देने से ... हो जाते है और तुरत सो जाते है।

किसी रोग के कारण रोते बच्चे को चुप कराने ... लिए उसे दिन मे दो-तीन बार उदर-स्नान देना बड़ा ला... करता है। गहरा नीला प्रकाश बच्चे के मुंह पर ... मे दो घटे तक देना तथा पीली और गहरी नीली बोत... के बराबर बराबर जल की खुराके दो दो घटे पिलायें।

२—बच्चों का बोदापन, पागलपन, आदि

ऐसे बच्चो को खुली वायु मे रखना चाहिए, ... और सात्विक आहार देना चाहिए, तथा उनके मस्तिष्क विकार के लिये डांटना-फटकारना नही चाहिए। ... बच्चो को अपने से कम आयु के कम शक्ति वाले ... में खेलने देने का अवसर देना चाहिए, तथा उन्हें उत्... कभी न होने देना चाहिए।

मस्तिष्क सम्बन्धी रोगो का प्रधान कारण कब्ज ... का रहना है। इसलिये सवेरे उदर-स्नान और शाम ... मेहन-स्नान देना चाहिए। रात भर के लिये ... पर मिट्टी की पट्टी या कमर के चारों ... गीली चादर की लपेट बांधना चाहिए और अगर कब्ज दूर न हो जाये रोज सवेरे शौच के बाद ...

चाहिए।

३-बच्चों का दांत निकलना

देर से दात निकलने का कारण बुरा स्वास्थ्य है। ऐसे बच्चे सूखा, कमजोरी आदि रोगो से पीड़ित होते है।

दन्तोद्भेदक सभी उपद्रवों को शाति के लिए गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल बचा और उसकी मा—दोनो को काम में लाना चाहिए। बचो को प्रत्येक दो-दो घटे पर दो-दो चम्मच तथा मा को ४-४ घटे पर आधी-आधी छटाक यह जल पिलाना चाहिए। दस्त मे पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी १५-२० मिनट के लिए दिन मे दो बार देनी चाहिये।

४-बच्चों का हकलाना और तोतलाना

हकलाते बच्चो का हकलाना बचपन में आसानी से छुड़ाया जा सकता है, जबकि बडे होने पर वही उनकी प्रकृति में दाखिल होकर असाध्य नही तो दुसाध्य अवश्य बन जाता है। सभी बच्चे थोड़ा बहुत तोतलाते है जो स्वाभाविक है जबकि हकलाना बुरी आदत है जो दिन-दिन मजबूत ही होती है और अन्त मे बीमारी का रूप धारण कर लेती है। यदि किसी बच्चे का तोतलापन अधिक बढ़ा हो और उसको कम करना या बिलकुल ही गायब करना मंजूर हो तो उस बच्चे से बिल्ली या कुत्ते की तरह चारो हाथ पाव के बल चलने की चेष्टा करवाइये कुछ ही दिनो में तोतलापन कम होते होते एक बारगी ही छूट जायगा। छोटे बच्चो के स्वभावत: बकइया खीचने मे यही रहस्य छिपा हुआ है।

हकलाना भी एक मस्तिष्क सम्बन्धी रोग है जो पीठ के ऊपरी भाग एव गर्दन के आस-पास विजातीय द्रव्य के जमा होने से स्नायुओ मे गड़बड़ी उत्पन्न होजाने की वजह से उत्पन्न हो जाता है। हकलाने वाले व्यक्ति के बोलने वाले अवयवो एवं मस्तिष्क के स्नायुओ मे समन्वय नहीं रहता जिससे वह ठीक से बोल नही पाता। नकल करने से भी अक्सर हकलाने की आदत पड़ जाती है। ऊंचे से अचानक गिरने या मस्तिष्क मे भारी चोट लगने अथवा मस्तिष्क को विकृत करनेवाले रोगो से भी कभी-कभी मनुष्य में हकलाने की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

हकलाने का इलाज करने के लिए प्रथम हकलाने-वाले व्यक्ति के आसपास ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिये कि वह किसी से भय न खाय अथवा संकोच न करे।

सवेरे २० मिनट तक मेहन-स्नान तीसरे पहर आधे-घटे तक रीढ़ की गीली पट्टी, सिर और गर्दन पर नीली बोतल के सूर्यतप्त तेल की प्रतिदिन मालिश तथा शिर और पीठ पर नीले शीशे द्वारा प्रकाश डालने से कुछ ही दिनो में हकलाने की आदत छूट जाती है। सर्वाङ्गासन भी इस रोग मे बड़ा लाभ करता है।

५—अंगूठा चूसना

बच्चो का अधिक अंगूठा चूसना बुरा है जिसको रोग की संज्ञा दी जा सकती है। क्योंकि अंगूठा चूसनेवाला बच्चा प्राय. मुंह से सास लेता है जो हानिकारक है। दूसरे यह कि अगूठा चूसने वाले बच्चे के आगे के दो दातो के अनावश्यक रूप से बढ़ जाने से वह कुरूप हो जाता है। अत. इस आदत को छुड़ाने के लिये सर्व प्रथम बच्चे को ठीक समयो पर दूध पिलाने की आदत डालनी चाहिये। यह प्रयत्न कदापि नही करना चाहिए कि बच्चे को डांट-फटकार कर एवं भयभीत करके उसकी यह आदत छुड़ाई जाय। अंगूठे पर पट्टी आदि बाधकर भी उसकी चूसने की आदत छुड़ाना ठीक नही। सबसे अच्छा तरीका इस आदत को छुड़ाने का तो यह है कि जब कभी बच्चा अपने अंगूठे को मुख मे ले जाने की कोशिश करे ठीक उसी समय उसके सामने कोई आकर्षक खिलौना फेक दिया जाय।

६—सोते में पेशाब करना

ऐसे बच्चो को अधिक समय तक खुली हवा मे रहना चाहिए और उन्हे दौड़ने-धूपने देना चाहिए। बच्चे को पेट साफ हो जाने तक प्रतिदिन एनिमा देना चाहिए। साथ ही सवेरे ५ मिनट का उदर-स्नान एव शाम को ३ मिनट का मेहन-स्नान देना बड़ा लाभ करता है। हरी बोतल का सूर्यतप्त जल दिन मे चार खुराक पीना तथा गहरे नीली शीशे द्वारा सूर्य-प्रकाश पेडू और मूत्राशय पर रोज आधा घण्टे तक लें।

७—सोते में चौंक उठना

बच्चे सोते मे भयानक स्वप्न देखने के कारण भी चौंकते हैं और मस्तिष्क सम्बन्धी विकृति मे भी। इसके निवारण के लिये ऐसे बच्चो को गहरी नीली बोतल के तप्तजल की चार खुराकें रोज देना और नीला प्रकाश

के निकलने की जगह से दबावे तो उसे श्वास का रोगी जानना चाहिए। श्वास की नली मे दोष होने से बालक सोते-सोते चौक पड़ता है और खांसने लगता है और कभी कभी सिसकिया लेने लगता है।

(५) मुट्ठिया मीचे तो बालक के हृदय मे पीड़ा जाने।

(६) बालक के मुंह से पानी गिरना उसके कोठे मे पीड़ा का सूचक है।

(७) आतो की तकलीफ मे बच्चे स्तनो को काटते हैं।

(८) यदि बालक का मल-मूत्र रुक जावे और वह त्रासयुक्त नेत्रो से दिशाओ को देखे तो उसकी बस्ति मे पीड़ा जाने।

(९) रोगी बच्चे की जीभ मैली और भूरे रग की होती है। उसका मुख पीला होता है और उस पर सिलवटें सी पड़ जाती हैं। उसे मल-मूत्र त्यागने मे भी कुछ कष्ट होता है। उसे नीद अच्छी नही आती और वह स्वप्न मे चीखने और चिल्लाने लगता है। उसकी बाढ़ रुक जाती है। वजन कम हो जाता है। भूख मर जाती है।

(१०) छाती और पसली के दर्द मे बचा खांसते समय बहुत रोता है।

(११) यदि बच्चे के माथे पर सिलवटे पड़ जायें और उसे आराम की नीद न आये तो उसे फेफड़े का रोगी जानें।

(१२) बच्चे को निमोनिया होने पर या उसकी छाती मे कफ अटक जाने पर वह मुंह खोलकर जल्दी-सांस लेने लगता है, या सास लेते समय उसके नथुने फूलते है, और छाती मे साय-साय का शब्द सुनाई देता है।

(१३) यदि बचा अपनी अ गुली कान की ओर ले जाय तो उसे कान का रोगी जानना चाहिए।

(१४) यदि बचा ज्वर की हालत मे बार-बार छीके, खांसे, और उसके मुख का रङ्ग लाल पड़ जाय तो समझें कि उसे छोटी या बड़ी माता निकलने वाली है।

(१५) जिस बच्चे के पेट मे कृमि होते हैं, वह सोने मे दात पीसता है, नाक खुजाता है तथा मल-मूत्र के स्थान को मलता है।

१—बच्चों का अधिक रोना

जल्दी-जल्दी और कलेजा तोड़कर रोते हुये यदि बच्चा अपने पैरो को मोड़ ले तो उसके पेट में दर्द होना समझना चाहिए। थोड़ी-थोड़ी देर बाद रोना, बेचैन हो जाना तथा सर पटकना यह जाहिर करता है कि बच्चे के कान मे दर्द है। जिस कान में दर्द होगा, उसे छूते ही बच्चा जोर से चिल्ला पड़ेगा। यदि बच्चा रोते वक्त काटने की कोशिश करे और मुह मे अंगुली दे तो समझना चाहिए कि उसे दांत निकलने को तकलीफ है। रोते समय बच्चे का खांसना उसके सीने मे दर्द का सूचक है। कै करने की कोशिश के साथ रोना अपच सूचित करता है। शरीर के किसी भाग को छूने पर यदि बचा रोये तो उस भाग मे या तो चोट लगी है या वहा गठिया का दर्द है। आलपीन, काटा आदि के गड़ने, मच्छर, खटमल आदि कीड़े-मकोड़े के काट खाने तथा शरीर पर अधिक और कसे हुए कपड़ो के कारण भी बच्चे रोते है। अत. इन कारणो को दूर कर देने से वे अवश्य चुप हो जाते हैं। कभी-कभी नीद के कारण भी बच्चे रोते है और लेटना चाहते हैं। उस समय उन्हे आराम से लिटा देने से चुप हो जाते है और तुरत सो जाते है।

किसी रोग के कारण रोते बच्चे को चुप कराने के लिए उसे दिन मे दो-तीन बार उदर-स्नान देना बड़ा लाभ करता है। गहरा नीला प्रकाश बच्चे के मुह पर दिन मे दो घटे तक देना तथा पीली और गहरी नीली बोतल के बराबर बराबर जल की खुराकें दो-दो घटे पर पिलायें।

२—बच्चों का बोदापन, पागलपन, आदि

ऐसे बचो को खुली वायु मे रखना चाहिए, सादा और सात्विक आहार देना चाहिए, तथा उनके मस्तिष्क-विकार के लिये डाटना-फटकारना नही चाहिए। ऐसे बचो को अपने से कम आयु के कम शक्ति वाले बच्चों में खेलने देने का अवसर देना चाहिए, तथा उन्हें उदास कभी न होने देना चाहिए।

मस्तिष्क सम्बन्धी रोगो का प्रधान कारण [illegible] का रहना है। इसलिये सवेरे उदर-स्नान और शाम को मेहन-स्नान देना चाहिए। रात भर के लिए [illegible] पर मिट्टी की पट्टी या कमर के चारों [illegible] गीली चादर की लपेट बांधना चाहिए और [illegible] कब्ज दूर न हो जाये रोज सवेरे [illegible]

लगाना चाहिए।

३–बच्चों का दांत निकलना

देर से दांत निकलने का कारण बुरा स्वास्थ्य है। ऐसे बच्चे सूखा, कमजोरी आदि रोगों से पीड़ित होते है।

दन्तोद्भेदक सभी उपद्रवो की शांति के लिए गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल बच्चा और उसकी मा–दोनो को व्यवहार मे लाना चाहिए। बच्चो को प्रत्येक दो-दो घंटे पर दो-दो चम्मच तथा मां को ४-४ घंटे पर आधी-आधी छटाक यह जल पिलाना चाहिए। दस्त मे पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी १५-२० मिनट के लिए दिन मे दो बार बांधनी चाहिये।

४-बच्चों का हकलाना और तोतलाना

हकलाते बच्चो का हकलाना बचपन में आसानी से छुडाया जा सकता है, जबकि बड़े होने पर वही उनकी प्रकृति मे दाखिल होकर असाध्य नही तो दुसाध्य अवश्य बन जाता है। सभी बच्चे थोड़ा बहुत तोतलाते हैं जो स्वाभाविक है जबकि हकलाना बुरी आदत है जो दिन-दिन मजबूत ही होती है और अन्त मे बीमारी का रूप धारण कर लेती है। यदि किसी बच्चे का तोतलापन अधिक बढा हो और उसको कम करना या बिलकुल ही गायब करना मन्जूर हो तो उस बच्चे से बिल्ली या कुत्ते की तरह चारो हाथ पाव के बल चलने की चेष्टा करवाइये कुछ ही दिनो मे तोतलापन कम होते होते एक बारगी ही छूट जायगा। छोटे बच्चो के स्वभावत. बकइयां खीचने मे यही रहस्य छिपा हुआ है।

हकलाना भी एक मस्तिष्क सम्बन्धी रोग है जो पीठ के ऊपरी भाग एव गर्दन के आस-पास विजातीय द्रव्य के एकत्र होने से स्नायुओ मे गड़बड़ी उत्पन्न होजाने की वजह से उत्पन्न हो जाता है। हकलाने वाले व्यक्ति के बोलने वाले अवयवो एवं मस्तिष्क के स्नायुओ मे समन्वय नही रहता जिससे वह ठीक से बोल नही पाता। नकल करने से भी अक्सर हकलाने की आदत पड़ जाती है। इसी प्रकार गिरने या मस्तिष्क मे भारी चोट लगने अथवा मस्तिष्क को विकृत करनेवाले रोगो से भी कभी-कभी मनुष्य मे हकलाने की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

हकलाने का इलाज करने के लिए प्रथम हकलाने-वाले व्यक्ति के आसपास ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिये कि वह किसी से भय न खाय अथवा संकोच न करे।

सवेरे २० मिनट तक मेहन-स्नान तीसरे पहर आधे-घंटे तक रीढ की गीली पट्टी, सिर और गर्दन पर नीली बोतल के सूर्यतप्त तेल की प्रतिदिन मालिश तथा शिर और पीठ पर नीले शीशे द्वारा प्रकाश डालने से कुछ ही दिनो मे हकलाने की आदत छूट जाती है। सर्वाङ्गासव भी इस रोग मे बड़ा लाभ करता है।

५—अंगूठा चूसना

बच्चो का अधिक अंगूठा चूसना बुरा है जिसको रोग की संज्ञा दी जा सकती है। क्योंकि अंगूठा चूसनेवाला बच्चा प्रायः मुंह से सास लेता है जो हानिकारक है। दूसरे यह कि अंगूठा चूसने वाले बच्चे के आगे के दो दांतों के अनावश्यक रूप से बढ जाने से वह कुरूप हो जाता है। अतः इस आदत को छुड़ाने के लिये सर्व प्रथम बच्चे को ठीक समयो पर दूध पिलाने की आदत डालनी चाहिये। यह प्रयत्न कदापि नही करना चाहिए कि बच्चे को डाट-फटकार कर एव भयभीत करके उसकी यह आदत छुडाई जाय। अंगूठे पर पट्टी आदि बाधकर भी उसकी चूसने की आदत छुड़ाना ठीक नही। सबसे अच्छा तरीका इस आदत को छुड़ाने का तो यह है कि जब कभी बच्चा अपने अंगूठे को मुख मे ले जाने की कोशिश करे ठीक उसी समय उसके सामने कोई आकर्षक खिलौना फेंक दिया जाय।

६—सोते में पेशाब करना

ऐसे बच्चो को अधिक समय तक खुली हवा मे रहना चाहिए और उन्हे दौड़ने-धूपने देना चाहिए। बच्चे को पेट साफ हो जाने तक प्रतिदिन एनिमा देना चाहिए। साथ ही सबेरे ५ मिनट का उदर-स्नान एव शाम को ३ मिनट का मेहन-स्नान देना बड़ा लाभ करता है। हरी बोतल का सूर्यतप्त जल दिन मे चार खुराक पीना तथा गहरे नीली शीशे द्वारा सूर्य-प्रकाश पेड़ू और मूत्राशय पर रोज आधा घण्टे तक ले।

७—सोते में चौंक उठना

बच्चे सोते मे भयानक स्वप्न देखने के कारण भी चौंकते हैं और मस्तिष्क सम्बन्धी विकृति से भी। इसके निवारण के लिये ऐसे बच्चो को गहरी नीली बोतल के तप्तजल की चार खुराकें रोज देना और नीला प्रकाश

सिर और मुंह पर एक घंटे तक डालना चाहिये।

८—दूध डालना या फेंकना

आवश्यकता से अधिक दूध मिलने पर ही बच्चे दूध फेंका करते हैं। कारण जितना दूध उन्हें पिलाया जाता है उसमें से आवश्यकता भर दूध पेट मे रखकर बाकी को पेट के बाहर निकाल देना उनका स्वभाव होता है। अत. इसका उपचार बच्चो को अन्दाज से उनकी आवश्यकतानुसार दूध पिलाना ही है। यदि बच्चा न माने और अधिक दूध पीने की माग करे तो प्रति बार दूध पिलाने के पहिले बच्चे को थोड़ा पानी पिला देना चाहिए। इससे वह दूध कम पीयेगा और उसका दूध डालना धीरे-धीरे बन्द हो जावेगा।

९—कृमि या चुन्ना रोग

ये कृमि या कीड़े चार प्रकार के होते है —

१—साधारण फीते के आकार के। ये दो प्रकार के होते हैं।

२—लम्बा गोल कृमि। ये ६ से ९ इञ्च तक लम्बे होते है ये नर व मादा दो प्रकारके होते है। पेट मे २ से २ तक पाए जाते है।

३— छोटे और पतले सूत जैसे कृमि। ये आध इञ्च लम्बे होते है और आत के निचले भाग में रहते है। चुन्ना कहलाते हैं।

४—लम्बे और पतले सूत जैसे कृमि।

जिन बच्चो को कब्ज और जोकाम रहता है उन्ही पेट में ये कीड़े अधिकतर पाये जाते हैं। यदि कहा जाय कि कब्ज और जोकाम इस रोग के मुख्य कारण है तो गलत न होगा। अयुक्त भोजन, अधिक मीठे का सेवन, बुरा मास भक्षण, तथा इन कृमियो के सूक्ष्म अण्डो का निम्नलिखित प्रकार से पेट मे [illegible] भी इस रोग के कारण माने जाते हैं —

१—कृमियोके अण्डे गदे पानी व हरी परन्तु सड़ी-गली [illegible] मे पाये जाते है, जिनके द्वारा ये अण्डे पेट के अन्दर पहुंचजाते है। उस वक्त यदि पेट कब्ज वा आंत के [illegible] के कारण गदा रहा तो इन अण्डो को वहा रुकने और बढने का अवसर मिल जाता है।

२—गदे हाथ मे भोजन करने मे।

३—नाक अथवा मुंह मे अगुली डालने से।

४—जमीन पर गिराहुआ भोजन खाने से।

५—बच्चे का चुन्ना लगने के स्थान पर हाथ ले जाकर खजुलाना, तत्पश्चात् उसी हाथ को फिर मुह मे डालने से

६—चुन्ना रोग से पीड़ित बच्चे के साथ रहने और खेलने से, तथा उसकी जाघिया आदि इस्तेमाल करने से

७—आंव की बीमारी के कारण

लक्षण—रात को नीद में दांत पीसना या कटकटाना, नाक, मूत्र एव गुदा मार्ग को खुजलाना, क्योकि जब ये कीड़े गुदा द्वार पर पहुंचते है तो इन अङ्गो मे खाज उठती है, कभी-कभी ऊपरी होठ का अकस्मात सूज आना, रात मे अधिक परेशान रहना, गहरी नीद का न आना, सुषुप्तावस्था मे एक ही स्थान पर न रहना भूख का कम या अधिक लगना, दस्त ठीक न होना, पाचन क्रिया का बिगड़ना तथा आव पड़ना वा दस्त होना, शरीर का पीला रङ जाना, चिड़चिड़ा मिजाज और अचानक जाग कर रोने लगना, प्राय नाभि के नीचे दर्द का होना और साथ में कभी-कभी कै, आंखों के नीचे कालापड जाना, मल के साथ कीड़ो का निकलना दिखाई देना, और कभी-कभी सोते हुये बच्चे के गुदा द्वार पर।

चिकित्सा—१—जिन कारणो से ये कीडे पेट में उत्पन्न हो जाते हैं उन कारणो को दूर कर देना चाहिए।

२—गुदा द्वार की खाज के लिए बच्चे की उम्र के लेहाज से पाव भर या आध सेर गुनगुने पानी मे आठ आने या रुपये भर नमक मिलाकर उससे एनिमा देकर पेट साफ कर देना चाहिए। तत्पश्चात् तीन-चार तोला नारियल का तेल पिचकारी से गुदा द्वारा आंतों मे चढा देना चाहिए। अच्छा हो यदि १ तोला वायविडङ्ग को आध सेर पानी मे उबाल कर, उसके पानी का एनिमा दिया जाय। एनिमा रोज जब तक रोग दूर न हो जाय देते रहना चाहिए।

३— बच्चा भरसक पानी पीकर एक या दो दिन का उपवास करे तो अच्छा है, नहीं तो एक दो दिन उसे फलों के रस पर या दूध और फल-रस या साग-रस पर आश्रय रखना चाहिए। जामुन, अनन्नास, सन्तरा, मुसम्मी तथा टमाटर का रस इस रोग मे लाभप्रद है। नारंगी [illegible] का रस दिन मे दोबार जरूर देना चाहिए।

४—रोगी बच्चे को जहा तक सम्भव हो खुली वायु में रखना और खेलने देना चाहिए।

५—रोज सायंकाल को बच्चे के पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी २० मिनट तक बाधने के बाद ही एनिमा का प्रयोग करना चाहिए।

६—चिकित्सा आरम्भ करने के २-३ दिन बाद से बच्चे को आधी रत्ती हींग पानी मे घोलकर रात को सोने से पहले दूध मे मिलाकर पिला देना चाहिए, या थोड़ा-सा लहसुन का रस। ये दोनो चीजें कृमिनाशक हैं।

१०—यकृत और प्लीहा का बढ़ना

रोग के शुरू मे मीठा ज्वर, पेशाब थोड़ा और पीला आना, पेशाब जहा करे वहा सफेदी जम जाना, ठंडी जमीन पर पड़े रहने की इच्छा होना, दस्त साफ न आना, कभी-कभी सफेद और कड़ा दस्त आना, यकृत के स्थान को दबाने से थोड़ा दर्द होना, मिट्टी, राख एव सोंधी चीज खाने का जी चाहना, पेट फूलना तथा खासी आदि उत्पन्न होते हैं। रोग की बढी हुई अवस्था मे शरीर और पेट पर सूजन आकर जलोदर के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं, आखे और दात पीले पड़ जाते है, श्वास तेज चलने लगती है, बेचैनी और दुर्बलता बढ जाती है, हाथ पैर हिलने लगते है, उबकाई आती है, मूत्र का परिमाण बहुत कम हो जाता है और वह अधिक गाढ़ा तथा लाल रंग का हो जाता है, शरीर में रक्त की कमी हो जाती है तथा वह सूखने लगता है।

यदि यकृत और प्लीहा बढ़ने के साथ-साथ ज्वर न हो तो रोज आसमानी बोतल के सूर्यतप्त तेल से यकृत और प्लीहा स्थान की मालिश एव अन्य अङ्गो की साधारण सूखी मालिश करने के बाद या पेट पर गरम-ठंडी सेंक देने के बाद गुनगुने गरम पानी मे ८-१० बूद नीबू का रस मिलाकर एनिमा दें। दिन मे एक बार आध घण्टा के लिए मिट्टी की पट्टी या पेट के चारो ओर ठंडे पानी से भीगी गीली पट्टी लपेटकर उसपर ऊनी कपडा लपेट रखें। सप्ताह मे एक दिन समूचे शरीर को ढककर हल्की भाप द्वारा पसीना निकाल दे और उसके तुरत बाद शरीर को गीले कपड़े से खूब अच्छी तरह पोछ दें। भोजन मे मखनिया दूध, फलो का रस, फल एव उबली तरकारियां दे। गेहूँ का सादा दलिया भी दे सकते हैं। सूर्य-किरण द्वारा तप्त आसमानी जल एक-एक चम्मच दिन मे चार बार पीने तथा आसमानी शीशे द्वारा नीला सूर्य-प्रकाश यकृत पर डालने से शीघ्र लाभ होता है। ऐसे रोगियो को प्रतिदिन एक बार १०-१५ मिनट के लिए धूप सेवन करना अच्छा रहता है। परन्तु सर को हर हालत मे साए मे रखना चाहिए और उसे धूप में आने से पहले धो लें।

यदि इस रोग के रोगी को सदैव ज्वर रहे तो उसके पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी १०-२० मिनट तक दिन मे ३-४ बार रखनी चाहिए और फिर को ठंडे पानी से धोकर उसके शरीर को दिन मे तीन बार एक गीले कपडे से पोछ देना चाहिए। ठंड के दिनो मे शरीर को गले तक कम्बल से ढककर ठंडे पानी की जगह गुनगुने पानी का इस्तेमाल किया जा सकता है। सूर्य किरण द्वारा पकाया गया नीली और पीली शीशियो का बराबर-बराबर जल भी मिलाकर एक-एक चम्मच दिन मे ४ या ६ बार देना चाहिए और ज्वर कम हो जाने पर या बिलकुल न रहने पर इसके पहले वाला चिकित्सा क्रम चलाना चाहिये।

यदि रोगी के पेट अथवा हाथ-पैरो मे पानी आ जाय तो ऊपर का चिकित्साक्रम चलाने के साथ-साथ रोगी के दोनो मूत्रयन्त्रो (किडनियो) के ऊपर गरम ठंडी सेक देना चाहिए। पर ऐसा करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रीढ़ पर गरमी न लगने पाए। इसके लिये उस वक्त दोनो किडनियो के बीच वाले मेरुदण्ड के भाग पर एक ठंडे पानी से भीगा तौलिया रख देना चाहिये।

गरम ठंडी सेक देने के समय यदि रोगी को ज्वर हो तो किड़नी पर ठंडी पट्टी रखने के बाद गरम सेक देनी चाहिए और सेक का पानी अधिक गरम नहीं होना चाहिये। साथ ही उस समय रोगी के हाथ पैरो को गरम और सिर को ठंडा रखना चाहिये।

ऐसे रोगियो को नमक एकदम नहीं देना चाहिए और माता के शुद्ध दूध के अभाव मे मखनिया दूध देना चाहिए। सर्दी-जुकाम न रहने पर ताजा मठा भी दिया जा सकता है पर उसमे का मक्खन पूरी तरह से निकाल लेना चाहिए। इनके अतिरिक्त नारंगी आदि रसदार फलो का रस मधु मिलाकर या खाली रोगी ले सकता है। सवा साल से ऊपर की उम्र वाले रोगी को अन्य फल, उबली तरकारी एवं उसका सूप देना चाहिए।

११—छोटी माता

चिकित्सा के लिए रोगी को दो दिनो तक सिर्फ पानी पिलाकर उपवास कराना चाहिए। तत्पश्चात् रोग-मुक्ति तक फल-रस और फल पर रखना चाहिए। दो-तीन दिनो तक सबेरे पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी २० मिनट तक रखने के बाद गुनगुने पानी का एनिमा देना चाहिए। हो सके तो एक दिन सारे शरीर पर ठडे जल से भीगी और निचोड़ी कपड़े की पट्टी लगाकर आधे घंटे तक ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेट रखे। इससे फुन्सिया पूरी-पूरी निकल आयेंगी और खतरा टल जायेगा। जरूरत होने पर इस रोग मे पूरे शरीर का भाप-नहान भी देते हैं। पांचवे दिन रोग का जोर कम हो जाने पर सारे शरीर पर घी की मालिश कर देनी चाहिये।

१२—बड़ी माता

इस रोग में सफाई की बड़ी आवश्यकता है। वही उपचार चलाना चाहिए जो ऊपर छोटी माता के लिए बतलाया गया है। नमक मसाला खाना एक दम-बद कर देना चाहिए। कमरे मे प्रात.सायं नीम के पत्तो की धूप दे।

१३—मलबन्ध और कब्ज

मलबन्ध प्रायः स्तनपायी बच्चो मे होता है। इस रोग को दूर करने के लिए माता या बच्चे को कभी भी विरेचक औषधियां नही देनी चाहिए। रोगी को गरम पानी पिलाने, साबुन की बत्ती गुदा मे देने या एनिमा देने से यह रोग आसानी से अच्छा हो सकता है।

कब्ज की चिकित्सा के लिए आधे पेट से नीचे कमर के चारो तरफ ठडे पानी से भीगी और निचोडी कपड़े की मोटी पट्टी एक या दो घटे तक लपेटकर ऊपर से सूखा ऊनी कपड़ा बाधना चाहिए। उसके बाद गुनगुने पानी का एनिमा देना चाहिए। इसके अतिरिक्त रोगी के पेट पर गरम ठडी सेक दें और धीरे-धीरे मालिश करे तथा पानी अधिक पिलावें और भोजन की मात्रा कम करदे।

१४—काली खांसी

इस रोग के निवारण के लिए पहले रोगी बच्चे का पेट साफ कर देना चाहिए। इसके लिये बच्चे के गुदा द्वार के भीतर पान की डडी के सिरे पर थोड़ा सा नारियल का तेल लगाकर उसे घुसा देने से मल आप मे आप बाहर हो जाता है। अथवा जल के साथ मधु या नीबू का रस मिलाकर गुनगुने पानी का एनिमा दे देना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्न का आहार बिलकुल बन्द कर देना चाहिए और पूर्ण आराम के साथ उपवास करना चाहिये। उपवास सम्भव न होने पर बच्चा माता का दूध पी सकता है अथवा फल रस या मधु मिले छेने के पानी पर रह सकता है। फिर फल और सब्जी ले सकता है। बलगम निकालने के लिए छाती पर गरम-ठंडा सेक (हृदय बचाकर) और नीली बोतल के तेल की मालिश करना चाहिये तथा दिन मे तीन बार गर्दन और सीने के चारो तरफ ठडे पानी से भीगे और निचोड़े कपड़े की पट्टी सूखे ऊनी कपड़े से ढंककर आधे-आधे घंटे के लिये बांधना चाहिये। रात भर पेड़ू पर गीली मिट्टी की या कपड़े की पट्टी भी बाध रखना बड़ा लाभकारी सिद्ध होता है। रोगी को नीबू का रस मिलाकर काफी जल पिलाना भी इस रोग मे जरूरी है तथा रोज एक बार भीगे तौलिये से शरीर अंगोछना या ठडे जल से नहलाना उसके बाद हाथों से रगड़कर समूचे शरीर को गरम करना चाहिये।

१५—सूखा रोग

बच्चो को जब कैलशियम और विटामिन 'डी' तत्व नही मिलते तब उन्हे यह रोग धर दबाता है। कैलशियम से अस्थियो का निर्माण होता है और विटामिन 'डी' उन अस्थियो को मजबूत करता है। ५ वर्ष से कम आयु वाले बच्चो को ही यह रोग होते प्राय. देखा गया है। सूखा में बच्चो की पाचन शक्ति खराब हो जाती हैं। प्रायः दस्त हुआ करते हैं। बच्चा दुर्बल और चिड़चिड़ा हो जाता है तथा उसके शरीर की अस्थियां टेढ़ी होजाती है। दांत विलम्ब से निकलते है। तथा अन्तिम अवस्था मे उनके पैर और दूसरे अङ्ग सूजने लगते है। इस रोग के कुछ विशेष कारण भी हैं, जैसे—माता के स्तनो मे पर्याप्त और शुद्ध दूध का न होना, बच्चे को समय से पहले ही अन्न खिलाने लग जाना, बच्चे के पेट मे कृमि आदि का होना, पुराना आंव, अधिक मीठा खाना।

इस रोग के रोगी को शुद्ध दूध पीने को देना चाहिये, साथ मे सतरे और अनार का रस भी देना जरूरी है। कभी-कभी नीबू के रस मे शहद मिलाकर भी चटाना चाहिये। बच्चे को खुली हवा मे रखना चाहिए और उसे [illegible]

रोज धूप मे गहरे नीले रग की बोतल के सूर्यतप्त तेल की मालिश करना चाहिये । यदि बच्चा ऊपरी दूध पीता है तो उसको बकरी का दूध पिलाना चाहिये । इसके अतिरिक्त रोज सबेरे पेडू पर मिट्टी की पट्टी की हल्की पट्टी रखनी चाहिए और शाम को ४-५ मिनट तक रोज उदर-स्नान कराना चाहिये । कब्ज रहने पर एनिमा देना चाहिये। गहरा नीला प्रकाश छाती और मुह पर एक घटा तथा पीला प्रकाश पेट पर रोज देना चाहिए और तीन हिस्सा आसमानी तथा एक हिस्सा पीली बोतल का सूर्यतप्त जल मिलाकर चार खुराक दिन मे पिलानी चाहिये ।

१६—पसली चलना

इस रोग मे यदि रोगी को कब्ज हो तो गुनगुने पानी का एनिमा देकर पहले पेट साफ कर देना चाहिये । तक-लीफ की हालत में दिन मे तीन बार एक-एक घंटे के लिये पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए । छाती के ऊपर भी ठडी कपडे की पट्टी ऊनी कपडा ऊपर से लपेट कर देना बड़ा लाभकारी है । इस पट्टी को थोड़ी-थोड़ी देर बाद बदलते रहना चाहिये । रोगी के पैर को सदैव गरम रखना चाहिये । नीबू का रस मिला पानी दिन में कई बार पिलाना चाहिये, तथा शुद्ध दूध एव फलो का रस बीमारी दूर होने तक पिलाना चाहिये ।

१७—जमुणा या ऐंठन

यह एक बड़ा घातक रोग है । इसमें हाथो-पैरो में खिचाव होने लगता है जिससे कभी-कभी बेहोशी भी हो जाती है, मुंह एकाएक पीला हो जाता है, आखे की टक-टकी बध जाती है, सिर पीछे लटक जाता है तथा हाथो की मुट्ठिया बध जाती हैं ।

यह रोग कब्ज होने के कारण होता है और सूखे रोग के रोगी, कृमि रोग के रोगी, शीत ज्वर तथा हैजे के रोगो को यह रोग प्रायः होजाता है ।

इस रोग में पहले एनिमा से पेट साफ कर देना चाहिये । फिर रोज गुनगुने पानी से भरे टब मे १०-१५ मिनट तक रोगी को गर्दन तक बैठाना चाहिये, उस वक्त उसके सर पर ठडे पानी से भीगी एक तौलिया निचोड़कर रख देना चाहिये । एक या दो दिन रोगी को केवल गरम पानी पिलाकर उपवास करा देना इस रोग मे बडा लाभ करता है । फिर शुद्ध दूध या फलो का रस देना चाहिये ।

१८—गर्दन की गांठियों में सूजन

इसे अंग्रेजी मे मम्प्स कहते हैं । इसमे गले की लाल ग्रन्थियां सूज जाती है जिससे निगलने मे तकलीफ होती है । कभी-कभी ज्वर भी आजाता है और मुंह सूखने लगता है । दो-एक दिन रोगी को फलो के रस पर रखकर दोनो वक्त गुनगुने पानी का एनिमा देना चाहिए । सूजन की जगह पर दिन मे तीन-चार बार गरम और ठडी सेक दे ।

१९—डिप्थीरिया

इस रोग मे पहले गले मे गहरी ललाई छाजाती है । फिर गलगुओ (tonsils) के ऊपर और आसपास का चमडा भूरे रङ्ग का हो जाता है । निगलने मे तकलीफ होने लगती है और कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है ।

इस रोग मे दूध बन्द करके ज्वर के दूर होने तक उपवास या रसाहार करना चाहिए, साथ मे शाम व सुबह हल्का एनिमा भी देना चाहिए । दिन मे एक बार समूचे शरीर की कपड़े की गीली पट्टी तथा तीन-तीन घंटे पर गर्दन की गीली पट्टी भी देना चाहिए ।

२०—बच्चों का लकवा

यह रोग भी गलत खान-पान का ही नतीजा होता है । इसमे जब तक ज्वर आना न बन्द हो रोज एनिमा देना आवश्यक है और उपवास करवा चाहिए या फलों के रस पर रखना चाहिए । रोज नीबू का रस मिला हुआ काफी पानी पीना भी इस रोग में जरूरी है । लकवा वाले अङ्ग पर लाल शीशी का सूर्यतप्त तेल मालिश करना चाहिए । मेरुदण्ड पर जहां दर्द हो वहा या दर्द का स्थान न मालूम होने पर समूचे मेरुदण्ड पर गरम-ठडी सेक देना चाहिए, तत्पश्चात् उस स्थान को समूचे मेरुदण्ड को मोटे भीगे कपड़े की पट्टी से ढंककर ऊपर से ऊनी कपड़ा बाध देना चाहिए । ज्वर रहे तो प्रत्येक आधे घटे पर और ज्वर न रहे तो प्रत्येक दो घण्टे पर पट्टी को बदल देना चाहिए । ऐसा दिन मे ३-४ बार करना चाहिए । इसके साथ-साथ सुबह–शाम धूप–स्नान के बाद १० मिनट का उदर–स्नान भी देना चाहिए । रोगी अङ्ग को सदैव ढककर और गरम रखे ।

फल–रस, फल, तरकारियो का सलाद, ताजे साग का रस, उबला साग, शुद्ध धारोष्ण दूध, मधु और नीबू

के रस के साथ काफी पानी पीयें।

२१—ज्वर

साधारण ज्वर बच्चे को एकाध दिन का उपवास करा देने, एनिमा देने और बाद में दो-चार दिनो तक फल-रस या फल पर रखने से ही अच्छा हो जाता है। जरूरत समझने पर दो-तीन दिनो तक पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी भी बांधी जा सकती है।

सभी प्रकार के ज्वर उपवास, एनिमा, मिट्टी की पट्टी, उदर स्नान, धूप-स्नान तथा रसाहार या फलाहार से अवश्य चले जाते हैं।

२२—स्कर्वी

इस रोग मे भी 'निर्बलता आती है और लकवे की तरह हाथ-पैर कुछ निकम्मे हो जाते है और इनमे सूजन आ जाती है। मसूढों से रक्त-स्राव, हृदय की धड़कन तथा बदन का पीला पड़ जाना आदि लक्षण भी इस रोग में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

जो बच्चे मिठाइयां अधिक खाते हैं और ताजे फल छूते नहीं उन्हें यह रोग अवश्य होता है। क्योकि विटामिन 'सी' की कमी की वजह से ही यह रोग होता है और विटामिन 'सी' हम प्राप्त करते है ताजे फलो से विशेषकर सन्तरा नीबू जाति के फलो और टमाटर से। इसलिये इस रोग की प्रधान चिकित्सा है ताजे फलों का सेवन करना। इस रोग के रोगी को यदि केवल टमाटर का रस सवेरे शाम और रात्रि में जरूरत के मुताबिक नियम-पूर्वक नित्य सेवन कराया जाय तो कुछ ही दिनों मे रोग चला जायेगा। टमाटर के रस के अतिरिक्त रोगी को हरी शाक-सब्जी, फल और शुद्ध दूध भी काफी मात्रा में दें।

२३—उकवत [एक्जिमा]

यह बच्चो का चर्म रोग है जो प्रायः उनके सिर में होता है। इसमे बड़ी असह्य खुजली होती है। त्वचा लाल हो जाती है और उसमें चकत्ते से उभड़ आते हैं।

जब तक रोग का जोर कम न हो रोगी को फलो या सब्जियों के रस पर रखा जाय और दोनों वक्त पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी आधा घंटा तक देने के बाद उसे एनिमा दिया जाय। रोज धूप स्नान तथा सप्ताह मे दो बार नमक मिले पानी से स्नान कराया जाय, शरीर के रोगी भाग को एक कागजी नीबू का रस मिले नीम के पानी या केवल गरम पानीसे रोज आधा घंटा तक धोया जाय। फिर उस पर भी ४५ मिनट तक मिट्टी की पट्टी रखी जाय। अन्य समयो पर खुले जख्म पर चमेली का तेल या गरी का तेल उसे नरम रखने के लिये लगाया जा सकता है। यदि आसमानी बोतल के सूर्यतप्त जल की चार खुराके दिन मे पिलाई जाये, साथ ही साथ हरी बोतल के जल से जख्म को धोकर उसी की पट्टी उस पर बांधी जाय तथा हरा प्रकाश उस पर डाला जाय और हरी बोतल के सूर्यतप्त तेल की मालिश जख्म पर की जाय तो यह रोग अवश्य दूर हो जाता है।

२४—बच्चों के दस्त

गड़बड़ भोजन या अति भोजन से ही बच्चो में दस्त या बालविशूचिका का रोग होता है। दूध पीने वाले बच्चे के मल मे यदि जमा हुआ दूध निकलता दिखाई दे तो यह अति भोजन से होने वाले खतरे का सूचक है। इस पर ध्यान न देने से गर्मी के मौसम मे तो जरूर ही बच्चो के दस्त लग जाते है। दस्त का रंग पहले पीला फिर हरा श्लेष्मा और रक्त मिश्रित हो जाता है। अन्त में दस्त दुर्गन्धमय और पानी-पानी ही आने लगता है। कारण उस वक्त आत्मरक्षा के प्रयत्न मे आतें क्षुब्ध होकर अत्यधिक लसीका निकालने लगती हैं जिससे बच्चे का शरीर शीघ्र ही शिथिल पड़ जाता है और यदि उसकी जीवनी-शक्ति प्रबल न हुई तो प्रायः मृत्यु भी होजाती है।

इस रोग मे सर्व प्रथम भोजन एकदम बन्द कर देना चाहिए। दूध भी नहीं देना चाहिए। केवल मांगने पर सिर्फ गुनगुना पानी थोड़ा-थोड़ा देना चाहिए। सेब या अनार का रस भी दो छोटे चम्मच बराबर दिन में चार बार दे सकते हैं। फिर गुनगुने पानी का एनिमा देकर आंतो को साफ कर देना चाहिए। रोगी को स्वच्छ-साफ कमरे में जिसकी वायु शुद्ध हो रखा जाकर उसके पेड़ू और पैरों को गरम रखने का प्रयत्न किया जाय। यदि दस्त हरे रङ्ग के हो तो चूने का पानी १-१ छोटा चम्मच दिन मे छ बार दूध में या अकेले ही दें। पेड़ू पर भीगे कपड़े की पट्टी या मिट्टी की पट्टी देना भी लाभ करता है। पीली और हरी बोतल की शक्कर १-१ गोली प्रति घंटे खिलाना चाहिए।
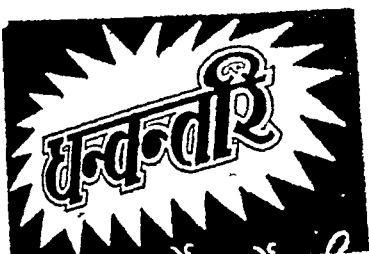
प्राकृतिक-चिकित्सांक

(चतुर्थ खण्ड)

अन्य लेखकों के लेख

प्राकृतिक चिकित्सा, विशुद्ध आयुर्वेद है

श्री प० रामस्वरूप आयुर्वेदाचार्य अध्यक्ष, गोपाल आयुर्वेदिक-भवन, उखलाना (अलीगढ)

आयुर्वेद जो अथर्ववेद का उपाङ्ग है, उसमें महर्षि-अग्निवेश अपनी चरक-संहिता के प्रारम्भ में ही लिखते हैं।

—"अथातो दीर्घजीवितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः"

अर्थात् आयुर्वेद ही दीर्घजीवनविज्ञान है। तात्पर्य यह कि जो दीर्घजीवन विज्ञान है वही आयुर्वेद है। प्राकृतिक चिकित्सा, जो वस्तुतः दीर्घजीवन-विज्ञान है इसलिये सही अर्थों में विशुद्ध आयुर्वेद है।

जिस प्रकार प्राकृतिक सृष्टि अनादि और अनन्त है, उसी प्रकार आयुर्वेद भी अनादि और अनन्त है और वह प्राकृतिक नियमों के अनुसार है। विश्व की सारी चिकित्सा प्रणालियां इस विशुद्ध आयुर्वेद से ही उद्भूत हुई है जिनके मूलभूत सिद्धान्त इसमे सूत्ररूप से विद्यमान है यद्यपि देश, काल, और परिस्थितियो के कारण उनमे परिवर्तन हो गया है। विशेषकर एलोपैथी जो इतनी अधिक परिवर्तित हो गयी है और प्रकृति से इतनी दूर जा पड़ी है कि जानी ही नही जाती कि वह किसी समय विशुद्ध आयुर्वेद से ही उत्पन्न हुई थी। इस एलोपैथी मे आज अनेक प्रकार की विष-तुल्य अप्राकृतिक औषधियो, सीरमो और इन्जेक्शनो की भरमार है। विशुद्ध आयुर्वेद मे जिस शल्य-तन्त्र को आसुरी चिकित्सा कहकर सबोधित किया गया है वही आजकल एलोपैथी-चिकित्सा का प्रधान साधन बना हुआ है जिसके सम्बन्ध मे अमेरिका के विख्यात डा० हेनरीलिएडल्हार एम० डी० का कहना है कि हर प्रकार के बडे आपरेशन के बाद रोगी की आयु १० वर्ष कम हो जाती है।

मानव-शरीर प्रकृति जन्य है जो आत्मा का निवास-स्थान है। अतः आत्मा के गृह (मकान) की पूर्णता एवं सुरक्षा प्रकृति द्वारा ही सम्भव है। जिस प्रकार ईंट-पत्थर और चूने के बने मकान की मरम्मत उन्हीं वस्तुओं से हो सकती है जिससे वह बना है, उसी प्रकार वही चिकित्सा-प्रणाली विशुद्ध कही जा सकती है जिसका आधार प्राकृतिक नियम हो। जंगली पशु और पौधो का पालन-पोषण प्रकृति द्वारा ही होता है। वे आकाश के नीचे सूर्य-ताप और खुली वायु मे रहकर वर्षा-जल से अपने शरीर का सि[illegible] करते हुए उत्तम स्वास्थ्य और पूर्ण आयु का उपभोग क[illegible] हैं। इस तरह वे प्राकृतिक-चिकित्सा अथवा प्राकृ[illegible] जीवन-विज्ञान के बारे मे कुछ भी न जानते हुए भी द[illegible] असल सच्चे अर्थों मे प्राकृतिक चिकित्सा एव प्राकृ[illegible] जीवन-विज्ञान के प्रबल जानकार है।

प्रकृति के अपरा और परा दो भेद होते है जिन[illegible] प्रश्नोपनिषद मे रयि और प्राण के नाम से पुकारा ग[illegible] है। अपरा प्रकृति जड़ है, किन्तु परा प्रकृति, ईश्वर [illegible] प्रेरणा-शक्ति से विख्यात है जो प्रत्येक प्राणी को जीव[illegible] प्रदान करती है। उस परा प्रकृति के बिना ससार औ[illegible] उसमे रहने वाले प्राणी की कोई क्रिया नही हो सकती और न उसके बिना कोई जीवित ही रह सकता है।

रोग, प्रकृति के नियमों को भग करने से होते हैं क्योंकि प्रकृति के नियमो को भंग करने से शरीर मे दो[illegible] अथवा विजातीय द्रव्य की उत्पत्ति होती है। आयुर्वेद मे अधिष्ठान भेद से शारीरिक और मानसिक—दो प्रकार के रोग कहे गये है और उनकी उत्पत्ति के तीन कारण बताये गये है—

'काल बुद्धि इन्द्रियार्थानां योगोमिथ्यान चातिच।
द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधोहेतु संग्रह' ॥ च०सू०अ०१

अर्थात् काल बुद्धि और इन्द्रियों के विषयो का मिथ्या-योग, अयोग और अतियोग—ये तीनो शारीरिक एव मानसिक व्याधियो के कारण हैं। इन्ही कारणों से वातादि दोषो का प्रकोप होकर शरीर व्याधियुक्त होता है जिससे प्रत्येक रोग मे रोगी को कष्ट होता है।

आयुर्वेद रोगो की एकता को भी स्वीकार करता है यथा—"रोगत्वमेकविध भवति रुक् सामान्यात्" च० सू० अ० २०/३ और यही सिद्धान्त प्राकृतिक चिकित्सा का मूल सिद्धान्त है। उक्त तीनो कारणों द्वारा [illegible] प्राकृतिक अनुशासन की अवहेलना की जाती है [illegible] वातादि तीनों शारीरिक दोष और मानसिक रजोगुण [illegible] तमोगुण दोष विषमावस्था को प्राप्त होकर [illegible]

अथवा मानसिक रोगोत्पत्ति करते है। इसीको प्राकृतिक चिकित्सा मे 'विकृति' वा विजातीय द्रव्य जन्य उपद्रव कहा जाता है और आयुर्वेद में —

"दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेक कारणम्"
सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितामलाः
तत्प्रकोपस्यतु प्रोक्तं विविधाऽहि सेवनम्। मा० नि०

प्रकृति की क्रियाकारी शक्तियो का नाम ही त्रिदोष है। "वात पित्त श्लेष्माण. शरीर सभव हेतव." चरके। प्राकृतिक जगत और मानव देह मे जब तक ये तीन प्रकार की क्रियाये विसर्ग, आदान और विक्षेप होती रहती हैं तभी तक इस जगत और शरीर की स्थिति है। यदि ये क्रियाये होनी बन्द हो जावें तो न यह संसार ही रहे और न यह शरीर ही। ये क्रियाये प्राकृतिक क्रियाये है। विसर्ग का अर्थ है किसी वस्तु का ग्रहण अथवा पोषण करना। आदान का अर्थ है आत्मसात् करना शोषण करना और विक्षेप का अर्थ है फेकना वा निकालना ये तीनो प्रकार की क्रियायें मानव शरीर और जगत मे अनवरत होती रहती हैं। मानव शरीर में कफ, पित्त और वात के नाम से ये क्रियाये व्यवहृत होती है और जगत मे इनका नाम सोम, सूर्य और वायु है जिनसे जगत मे विसर्ग, आदान और विक्षेप की क्रियाये होती है। यथा—

विसर्गादान विक्षेपैः सोम सूर्यानला यथा।
धारयन्तिजगद्देहं कफ पित्तानिलास्तथा॥
--सु. सू अ. २१ श्लो ८

यदि मानव शरीर को पोषक-तत्व न मिले तो जीवन नही चल सकता और पोषकतत्व मिलने पर यदि उनका पचन होकर वे आत्मसात न हो तब भी जीवन की खैर नहीं। तथा इन दोनो बातो के होने पर भी यदि शारीरिक मलो का निकलना बन्द हो जाय तब तो शरीर एक मिनट भी नहीं ठहर सकता। इन तीनो क्रियाओं का शरीर मे स्वभावत. होते रहना आरोग्य कहलाता है और इन क्रियाओ का न होना या धीमा होना रोग और यदि ये तीनो क्रियाये एक बारगी ही बन्द हो जाये तो मृत्यु अवश्यम्भावी है। यथा—

"रोगस्तुदोष वैषम्यं दोष साम्यमरोगता।" च० सू० अ० १

शरीर केवल पञ्चमहाभूतसमुदायात्मक ही नहीं, अपितु इसमें चेतना भी है, यह न भूलना चाहिए। देव ३३ हैं। अर्थात् ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति। इन ३३ देवो के आश्रयभूत जो चिकित्सा की जाती है वह 'दैवव्यपाश्रय'—चिकित्सा कहलाती है।

आठ वसु इस प्रकार है—अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र। इनमे प्राणी निवास करते हैं। इसी कारण इनको वसु कहते हैं। जल भी वसुओ मे ही है क्योकि उसमे भी जीव निवास करते है। किन्तु वह पृथ्वी के ही अन्तर्गत आ गया है अब इन वस्सुओ से किस प्रकार चिकित्सा की जाती है। उसका वर्णन सक्षेप मे यो है :—अग्नि द्वारा वाष्प देकर शरीर का मल स्वेद द्वारा बाहर निकालकर चिकित्सा की जाती है। पृथ्वी द्वारा चिकित्सा पृथिवी की शुद्ध मिट्टी द्वारा मर्दन और उसकी पुलटिस वगैरह से की जाती है जिससे शरीर का विजातीय द्रव्य शरीर से निकल जाता है। जल चिकित्सा आजकल प्रसिद्ध ही है जिसका विशेष प्रचार डा० फुई कुहनी ने किया है। वायु चिकित्सा का महत्व किसी से छिपा नही है। यक्ष्मा जैसे भयावक रोगों मे यही चिकित्सा विशेष रूप से लाभप्रद सिद्ध होती है।

अन्तरिक्ष और नक्षत्र चिकित्सा जिसे आकाश चिकित्सा भी कहते है, के अन्तर्गत उपवासादि प्रभावकारी प्रयोग है जो जीर्ण से जीर्ण रोगो को भी ठीक करने की क्षमता रखते है।

द्यौ चिकित्सा—द्यौ प्रकाश का नाम है, प्रकाश प्राणी मात्र के लिए कितना लाभप्रद है यह बात किसी से छिपी नही है। इसी चिकित्सा के अन्तर्गत सूर्य किरण चिकित्सा तथा ताप चिकित्सा आदि है।

इस प्रकार इस अष्ट वसु चिकित्सा का आयुर्वेद में उल्लेख है। जिसको प्राकृतिक चिकित्सक काम मे लाते है।

१० प्राण और जीव, एकादश रुद्र है। इनके द्वारा चिकित्सा करना प्राणायाम-चिकित्सा कहलाती है जो प्राकृतिक चिकित्सा का एक अंश है।

द्वादश आदित्य—यह बारह महीने पृथ्वी के आदित्य के चारो ओर गति करने से होते हैं। ये क्रमश. वातादि दोषो का सचय, कोप और शमन करके शरीर को शुद्ध करते रहते हैं।

इन्द्र, विद्युत अथवा बिजली द्वारा चिकित्सा को आजकल सभी जानते हैं। इसका भी आयुर्वेद मे वर्णन है और

—शेषांश पृष्ठ ५२५ पर।

कुछ विवाद ग्रस्त प्रश्नों के उत्तर

सत्य चिकित्सक श्री विट्ठलदास मोदी।

(आजकल भारत मे ही नही, संसार में सत्य चिकित्सकों के दो दल हो गये है। एक कूनेस्कूल वाला दल, दूसरा केलाग स्कूल वाला दल। कूनेस्कूल वाला दल कूने द्वारा आविष्कृत प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति आज भी अपनाये हुये है और केवल उसी मे आस्था रखता है, जबकि केलागस्कूल-वाला दल कूने प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के साथ-साथ केलाग द्वारा आविष्कृत या प्रचारित विद्युत-चिकित्सा तथा शल्य चिकित्सा आदि आधुनिक चिकित्सा पद्धतियो को भी अपनाता है और उनको प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत मानता है। श्री विट्ठलदास जी मोदी पहले दल के है। आप गोरखपुर के प्रसिद्ध 'आरोग्यमन्दिर' के सञ्चालक तथा 'आरोग्य' के सुयोग्य सम्पादक है।

हमने विशेषाक के लिए प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी जिन छ विवाद ग्रस्त प्रश्नो के उत्तर लेख रूप में अन्य अधिकारी विद्वानो से आमन्त्रित किये थे, आप से भी किये थे। आपने उन सभी प्रश्नों से उत्तर विस्तार से तो नही, पर बहुत ही संक्षेप मे यहां दिये है। आशा है पाठक इस लेख को मनोयोग द्वारा पढ़ेगे और अपना ज्ञान-वर्द्धन करेंगे। —वि० सं०)

प्रकृति ने पशु पक्षी और मनुष्य को यदि वह अस्वस्थ जाय तो स्वयं स्वस्थ हो जाने की शक्ति देकर ही इस ।पर भेजा है। आंख में किरकिरी गिर जाने, नाक मे ..चले जाने पर इन्हे कौन निकालता है? वह हमारे ..की शक्ति ही है—जिसे हम जीवन-शक्ति कहते हैं, ..कालती है। आंख में पानी आने लगता है आंख धुल ..ता है निकल जाता है, नाक में छींक उठती है और ..ड़ निकल जाता है। बड़ा उदाहरण लेना चाहे तो ..हुये शरीर की कोई हड्डी टूट जाने पर उसे कौन ..ता है? जब शरीर के किसी अङ्ग की कोई हड्डी टूट ..ी है तो बस उसे ठीक स्थान पर रख देने की जरूरत ..है। न उसमे गांठ लगाने की जरूरत होती है, न तार बांधने की और न उस पर कील ठोकने की। हड्डी जगह रख दी जाती है और जीवन शक्ति उसे जोड देती ।इसी तरह कोई भी रोग क्यों न हो शरीर उसे स्वयं कर लेता है पर स्वयं दूर करे इसके लिये उसे मौका चाहिए और यह मौका उसे भोजन पचाने का काम न ..या श्रम लेकर तथा शारीरिक और मानसिक श्रम काम न लेकर ही दे सकते है। यदि आपका बैल ..र हो जाता है तो वह भोजन बन्द कर देता है। काम उसे लगाया नहीं जा सकता। चुपचाप वह आराम ..ता है और अच्छा हो जाता है। कोई भी कारण नहीं कि आप भी ऐसा करें तो आपका रोग क्यों न चला ..? अवश्य ही जायगा। फिर बताइये औषध की या .. विद्युत यंत्र की आवश्यकता कहां रहती है?

जब तीव्र रोगों की स्वाभाविक चिकित्सा नहीं की जाती, रोग को दवाओं द्वारा दबाया जाता है तब तरुण रोग जीर्ण रोग बनाता है। नया जुकाम दवा लेने पर खांसी और दमा बनता है। अतिसार, पुराना आंव, संग्रहणी का रूप धारण करता है। गरज यह है कि तीव्र रोग दवा द्वारा दबाये जाने या कहिये तीव्र रोगों के रूप में शरीर के अपने ऊपर इकट्ठी गन्दगी को निकालने के प्रयत्न को दवा द्वारा रोक देने पर ही जीर्ण रोग होते है और फिर उचित भोजन, व्यायाम, सात्विक जीवन और धूप, जल आबहवा का सहारा लेने पर जब जीवन शक्ति बढ़ जाती है तो फिर पुराने रोगों को नया बनाकर शरीर उन्हे बहिष्कृत कर देता है।

गाजर, मूली, परवल, भिंडी, पालक, बथुआ को आप जडी बूटी नहीं मानते। यदि मनुष्य इन्हें कम्पोस्ट से पैदा करता है तो क्या ये जडी बूटी नहीं हैं? यदि ब्राह्मी को हर किसान खेत में उगाने लगे और लोग इसका साग की तरह उपयोग करने लगें तो क्या ब्राह्मी, ब्राह्मी नहीं रह जायगी यही बात इन तरकारियों के बारे में भी जानना चाहिए। मेरे कहने का मतलब यह है कि प्राकृतिक चिकित्सक हर जडी बूटी को उपयोग करने को तैयार रहता है जो भोजन का भी काम दे। जो जडी बूटी भोजन का काम नहीं देती जैसे भांग, कुचला, [illegible], [illegible] आदि इनका उपयोग करने को हम तैयार नहीं हैं [illegible] काम की नहीं हैं। यदि इन्हे काम मे लायें तो [illegible] विष अर्थात् विजातीय द्रव्यों को शरीर [illegible] नहीं बना पाता और इन्हे बाहर निकालने का प्रयत्न [illegible]

—शेषांश पृष्ठ [illegible] पर।

जल-चिकित्सा-प्रणाली और उसके निर्देशन-सिद्धान्त

सत्व चिकित्सक खुशीराम दिलकश, एम० एस० बी०, एल० एस० इ० पी०, एन० डी०
प्रिंसीपल, नेशनल कालेज आफ नेचुरोपैथी, मन्त्री, उत्तर-प्रदेश प्राकृतिक चिकित्सा समिति
संचालक, आरोग्य निकेतन, लखनऊ, प्रधान सम्पादक–प्राकृतिक जीवन, तथा प्रधान मंत्री
The Society for physically Handicapped and mentally retarded
children, Lucknow

सत्व चिकित्सक के० आर० दिलकश भारत में वर्तमान समय के गण्यमान, अनुभवी, एवं अग्रगणी सत्व चिकित्सकों में से एक हैं। आपको नैसर्गिक चिकित्सा का पूरा-पूरा ज्ञान तो है ही, साथ ही उसके एक अङ्ग विद्युत-चिकित्सा के आप पूर्णज्ञाता और विशेषज्ञ है। आप प्राकृतिकचिकित्सा के क्षेत्र में कूपमण्डूकता मे विश्वास नही करते, बल्कि प्रगतिशीलता और आधुनिकता मे आस्था रखते हैं। यही वजह है कि आपका चिकित्सालय प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी प्राचीन उपकरणों के साथ साथ नये-नये और आधुनिक ढङ्ग के उपकरणो से भी हर समय सुसज्जित रहता है।

चिकित्सा–निर्देशन रचना (Prescription making) विषय पर आपका यह महत्वपूर्ण लेख चिकित्सक वर्ग के लिये लाभदायक सिद्ध होगा।—वि०स०

जीवन-विधान पर आधारित नैसर्गिक चिकित्सा, प्राकृतिक शक्तियों अथवा साधनों, आकाश,प्रकाशतथा ताप, वायु जल, एवं मिट्टी के योग से रोगों के उपचार की एक वैज्ञानिक पद्धति है। जीवन सेवन शक्तिशाली है, और इन सब शक्तियों का सृजनहार तो राम है जो इस शरीर के अन्दर और बाहर सभी जगह है। महात्मागांधी शारीरिक व्याधियों से लडने में भी इसीलिए रामनाम पर सदा बहुत जोर देते रहे और यही बात संसार के लगभग सभी धर्म-ग्रन्थों में भी मिलती है।

नैसर्गिक चिकित्सा का ज्ञान उतना ही पुराना है जितना कि मानव-जाति की सृष्टि स्वयं। आदि मानव ने इस ज्ञान को अपनी अन्तः प्रेरणा से जाना, क्योंकि आत्म-रक्षा प्रकृति का सर्व प्रथम विधान है। आदि चिकित्सक भी इससे अनभिज्ञ न थे। चिकित्सा-कला के आदि प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि, चरक, और बोकरात जिन्होने चिकित्सा-प्रणाली के मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, इस तथ्य को जानते थे। वे जीवन के सम्बन्ध मे प्रकृति की कार्य-प्रणाली को भली भांति समझते-बूझते थे। आज शताब्दियां बीत गईं, परन्तु उपर्युक्त मार्गदर्शक जो कुछ हमें सिखा गये—सिद्धांत स्थिर कर गये, वे आज भी ज्यों के त्यों हैं। उनमें न कोई बढ़ोतरी हुई और न फेर-बदल।

नैसर्गिक चिकित्सा में रोग निवारणार्थ जितने साधन प्रयुक्त होते हैं, उनमे जल-चिकित्सा का भाग अधिक महत्व पूर्ण है। इसलिये यहां पर उसी पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। क्योंकि जल से बढ़कर अन्य कोई साधन शरीर-विज्ञान सम्बन्धी विविध प्रकार के प्रभावों को उत्पन्न करने वाला नहीं होता, न अन्य किसी साधन की इतनी सार्वभौम स्थिति ही है जितनी जल की और न अन्य साधन नये और पुराने रोगो में संकट-काल उपस्थित होने के समय उतना फलप्रद ही सिद्ध होते हैं जितना कि जल। इसके अलावा एक सुभीता जल में यह भी है कि इसे विविध तापों, विविध रूपों, जैसे तरल-रूप मे, बर्फ के रूप में और वाष्प के रूप में तथा बाहर-भीतर सर्वत्र सुगमता के साथ प्रयोग किया जा सकता है।

स्वास्थ्य, शरीर की वास्तविक दशा होती है और रोग ऋणात्मक दशा, जिसमें शरीर की सुरक्षा मंद पड़ जाती है और शरीर के कोषों के स्वाभाविक कार्य में बाधा उपस्थित होजाती है,जिससे जीवन को नष्ट करने वाले तत्वों को मौका मिलता है कि वे शरीर के एक या अनेक भागों पर अपना असर जमावें और उनके विविध कार्यों मे मंदी अथवा तेजी लाकर शरीर प्रणाली के संतुलन को नष्ट-भ्रष्ट कर दें। उस वक्त जीवन-शक्ति दुर्बल होजाती है। अतः रोग की दशा को निर्मूल करने के लिए और शरीर को स्वाभाविक दशा में लाने के लिये हमें नीचे लिखी बातों की आवश्यकता होती है—

(१) विषों से युद्ध छेड़ने की (२) शारीरिक क्रियाओं को ठीक दशा मे लाने की (३) जीवन-शक्ति को बढ़ाने की। इसलिए किसी रोगी का निर्देशन-पत्र बनाने में उसके शरीर की कुछ क्रियाओं को बढ़ावा देने का ध्यान

ना चाहिये और कुछ को घटाने का, तभी अभीष्ट की द्धि सम्भव है।

जिन क्रियाओ को बढावा देना चाहिए वे निम्न-खित हैं—

ग (अ) (१) साधारण जैव प्रतिरोध-क्रिया।

अ--विषहीन करने वाली पद्धति द्वारा

ब--विषो और कीटाणुओ के निष्कासन द्वारा

(२) ओजनीकरण (Oxidation)

(३) परावर्तित क्रियाये तथा स्वचालित केन्द्रो की क्रियायें

(४) हृद्पिण्ड की क्रिया तथा रक्त-प्रवाह की सामान्य क्रिया

(५) तापोत्पत्ति तथा ताप बहिष्करण (मंद दशा)

ग (ब) क्रियाये जिन्हे न्यून करना चाहिए—

(१) स्नायुविक उत्तेजना

(२) कीटाणु-वृद्धि

(३) रक्त-संचरण तथा आयतन(रक्त-संचयन व Congestion)

(४) तीव्र सेवनन तथा ग्रन्थि-क्रियाये

(५) तापोत्पत्ति तथा वहिष्करण (तीव्र)

निम्नलिखित प्रभावो के लिए जल का प्रयोग करना ाहिए—

(१) शरीरोत्पन्न विषनाशक, (२) ज्वर नाशक तथा ापहारक, (३) मोटापा निवारक (Spoliative) (४) रक्त-व शामक (Hemostatic) (५) पुष्टकारक अथवा उत्ते-क (६) अवसादक, (७) कफ निःसारक (८) टंकार निवा-क (९) वेदना नाशक (Antiphelogenic)

अब हम विशेष दशाओं के लिए जल के प्रयोग दे हे हैं जो निर्देशन के आधार है।

१. प्रयोग, जिनसे जैव प्रतिरोध-शक्ति बलवती होती ;, निम्नलिखित हैं। जीवनी-शक्ति प्रत्येक शारीरिक कोष की उसकी अपनी सम्पत्ति होती है। इसलिए जीवन-शक्ति को बढाने के लिए कोषो की जीवन-शक्ति को बढाना चाहिये—

१. भीगे हाथ से मालिश या भीगे दस्ताने से रगडना या भीगे तौलिये से रगडना या बारी-बारी से पृष्ट भाग को स्पञ्ज करना। २. भीगी चादर से रगडना या ड्रिपिंग सीट या भीगी चादर की लपेट सम्पूर्ण अथवा आंशिक। ३. ब्रैंड-बाथ या काकस्नान (Shallow Bath) या प्राकृतिक स्नान (ए० जुस्ट) ४. ठंडा तरेरा (डूश) ५. ठंडा जल-पान या ठंडे पानी का छोटा एनिमा।

नीति, काल तथा तापमान का निर्धारण रोगी के बलाबल तथा मौसम के अनुसार होना चाहिये। अच्छे परिणाम के लिये ठंडे प्रयोगो के प्रथम अल्पकालिक गरम प्रयोग करने चाहिये।

जिगर और तिल्ली पर रोजाना दो या तीन बार गरम-ठंडी सेंक देने से वे पुष्ट होते है। विद्युत-प्रकाश-स्नान अथवा हल्के भाप का नहान (Vapour Bath), लम्बे काल की ठंडी चादर की लपेट, एनिमा, उसके पहले पेडू की मिट्टी की पट्टी, जल-पान, एप्समसाल्ट बाथ (गरम) धूप-नहान तथा अल्ट्रा वायलेट रेज का प्रयोग विष (विजातीय द्रव्य) वहिष्करण के सर्वोत्तम साधन है। इन प्रयोगो से कीटाणु भी नष्ट हो जाते है।

२. प्रयोग, जिनसे ओजनीयकरण मे वृद्धि होती है--

प्रत्यामिन या कार्बोज नथा वसा का ओजनीकरण वह प्रयोग है जिससे ओषजन के समीकरण में तथा कर्बनद्वि-ओषिद् के वहिष्करण मे वृद्धि होती है।

लम्बा कटि स्नान, सम्पूर्ण डूब स्नान (Full immersion Bath) तथा ठंडी भीगी चादर की लपेट, कार्बोज तथा वसा ओजनीकरण मे लाभकारी है, जबकि गरम डूब स्नान, गरम वायु, भाप, विद्युत प्रकाश, टर्किश या रशियन बाथ, प्रत्यामिन अथवा नत्रजन के ओजनीकरण के उत्कृष्ट साधन हैं।

३. केन्द्रीय वातगण्ड (Ganglia) को सक्रिय करने के लिये—

मई मास के तीव्र ज्वर, स्नायु दौर्बल्य की दशायें, हृदपिण्ड की काय अक्षमता, गुर्दों के दोष (Renal insufficiency) तथा कोष्ठ की ओर के रक्त-संचय मे रोग से लड़ने के लिये केन्द्रीय वातगण्ड को सक्रिय एवं उत्तेजित किया जाता है जिसके लाभकारी प्रयोग निम्नलिखित हैं—

बहुत गरम या बहुत ठंडा डूब स्नान, गरम व ठंडा स्नान, बारी बारी की पीठ की गरम व ठंडी पट्टी अथवा सेंक।

४. हृद्पिण्ड की क्रिया तथा रक्त-प्रवाह बढाने के लिए-

क्रमिक पुष्टिकारक प्रयोग हृदय को शक्ति प्रदान करने मे लाभकारी होते हैं।

हृदय के ऊपर १५ मिनट तक बर्फ की थैली रखना, प्रबुदबुद-स्नान (Effervascent Bath) तथा पैरों के स्नान में हृदय की शक्ति बढती है।

३ मिनट तक हृदय पर गरम सेंक देना, उसके बाद उठाकर ठंडी पट्टी लगाना और उसे हर २० मिनट के बाद बदलते रहना, हृदय-वेदना को शांत करता है।

भीगी चादर से रगडना तथा ठंडे तौलिये से [illegible] प्रान्तस्थ रक्त-प्रवाह को बढाना है। हृच्छूल की दशा मे [illegible]

भाग पर बर्फ की थैली का प्रयोग (केलाग) तथा पैरों की गरम पट्टी लाभकारी है।

हृदय-प्रदाह तथा हृदावरक झिल्ली के प्रदाह में हृदय के ऊपर ठंड का प्रयोग लाभकारी होता है। (विन्टरनिज)

उष्णकर भीगी चादर की लपेट, स्नानीय अथवा सामान्य गरम स्पंजिंग, तत्पश्चात् ठंडा स्पंजिंग और अल्प-कालिक कटि स्नान, गरम या ठंडा पावों का स्नान तथा प्राकृतिक स्नान (ए० जुस्ट) से स्थानीय वा सामान्य रक्त-प्रवाह में वृद्धि होती है।

५. तापोत्पत्ति या ताप-बहिष्करण के लिए—

तापोत्पत्ति की कमी विशेषकर ज्वर की दशाओं में आवश्यक होती है। इसके लिए अल्पकालिक ठंडे प्रयोग, कटिस्नान, पेडू की मिट्टी की पट्टी, ठंडा एनिमा, २०-२० मिनट पर बदल-बदल कर ठंडी चादर की लपेट, ठंडा जलपान त्वचा की अत्यधिक शुष्कता की दशा में अल्पकालिक गरम स्नान या पीठ की सेक लाभकारी होते हैं।

अत्यधिक स्नायु उत्तेजना की दशा में दीर्घकालिक गुनगुने पानी के स्नान का प्रयोग किया जाना चाहिए।

ताप बहिष्करण को कम करने लिए जिसकी आवश्य-कता कम ही पड़ती है। बारी बारी से गरम व ठंडे प्रयोग, भीगे हाथ की ठण्डी रगड़ तथा गरम एनिमा लाभकारी हैं। ❀

पृष्ठ ५२१ का शेषांश

प्राकृतिक चिकित्सा मे यह प्रयोग भी किया जाता है।

प्रजापति अर्थात् यज्ञ-चिकित्सा का वर्णन भी आयुर्वेद मे है।

इनके अतिरिक्त गवादि पशुओ के दुग्ध, दधि, घृत, मूत्र, गोवर आदि के प्रयोग रोगो के शमनार्थ होते ही हैं। इसी प्रकार युक्ति व्यापाश्रय का सिद्धान्त आयुर्वेद मे भी है और प्राकृतिक चिकित्सा मे भी। आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य इनमें युक्ति व्यपाश्रय का सार, सक्षेप मे आ जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि प्राकृतिक चिकित्सा और आयुर्वेद मे बहुत अधिक अन्तर नही है तथा यह कि प्राकृतिक चिकित्सा ही विशुद्ध आयुर्वेद है।

❀ यह लेख अंग्रेजी भाषा मे प्राप्त हुआ था, जिसका हिन्दी रूपान्तर यहां दिया गया है।—वि० सं०

पृष्ठ ५२२ का शेषांश

है और निकालने में यदि असफल हो जाता है तो फिर रोग दब जाता है और जीर्ण रोग उत्पन्न होते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में हम केवल जीवनी शक्ति के हितार्थ या सहायतार्थ उन्हीं तत्वों का उपयोग करते है जिनसे हमारा शरीर सामंजस्य स्थापित कर पाता है। इस तरह प्राकृतिक चिकित्सा में न विषैली जड़ी बूटियों की न बिजली की जरूरत है न किसी रस रसायन की या आसव अरिष्ट की।

कुल मिलाकर प्राकृतिक चिकित्सा एक सात्विक जीवन प्रणाली है। अपने आचार, विचार और व्यवहार इन तीनों को सात्विक बनाकर रोग से मुक्ति पाने की यह एक विधि है। जो व्यक्ति जितना ही इस पथ का दृढ़ता से अनुसरण करता है उतनी ही उसकी जीवन शक्ति बढ़ती है और रोग शीघ्रता से जाते हैं। पर यदि भोजन पवित्र हो, व्यवहार भी देखने से शुद्ध हो पर मानसिक शुचिता न हो तो प्राकृतिक चिकित्सा कोई काम नहीं करती और रोग थोड़े समय के लिए जाता दिखाई भी दे तो भी रोगी फिर वहीं का वहीं पहुंच जाता है। जिस रोग से उसने मुक्ति पाई थी वह रोग भले ही न हो पर कोई न कोई रोग हो ही जाता है अतः प्राकृतिक चिकित्सा मे शारीरिक शुचिता के साथ-साथ मानसिक शुचिता की भी अत्यन्त आवश्यकता है और इसे प्राप्त करना किसी योगी के लिए ही सम्भव है और सब लोग योगी हो नहीं सकते या कहिये बनाए नहीं जा सकते अतः प्राकृतिक चिकित्सा की ओर कम लोग आक-र्षित होते हैं और जो आकर्षित होते है उनमें भी बहुत दृढ़ इच्छा शक्ति वाले ही लाभ उठा पाते है।

कुछ लोग प्राकृतिक चिकित्सा को नुस्खे की तरह भी बरतते है और कहते है इस रोग की यह सफल चिकित्सा है और बहुत सरल है पर उन्हे इस बात के लिये दुख होता है कि सभी रोगी उनकी सरल और सस्ती राह को उनके नुस्खे को नही अपनाते। उनका नुस्खा कितना लाभदायक हो सकता है इस पर यहां बहस नहीं करना है पर यदि वह पूरा लाभप्रद हो तो भी मै ऊपर कह चुका हूं उनके नुस्खे को अपनाना योगी बनना है और हर व्यक्ति योगी नहीं बन सकता। प्राकृतिक चिकित्सा हर रोगी की चिकित्सा नही है। इसे बहुत समझ बूझकर अपने गलत आहार विहार को त्यागकर सही मार्ग पर चलने वाले को ही अपनाना चाहिये—प्राकृतिक चिकित्सा करनी चाहिए। इसीलिए प्राकृतिक चिकित्सा को चिकित्सा नही प्राकृतिक जीवन कहना अधिक युक्ति संगत होगा।

—

पवास से प्रमेह, स्वप्नदोष तथा बवासीर नष्ट हुए

मुझे अबतक मिले हुए अनेक साधुओ में से श्री व स्वरूप जी की सबसे अच्छी छाप पडी है मेरे मन पर। सच्चे निःस्पृह, त्यागी थे। वह सन् १९२४ में गोरख- में गीता प्रेस शुरू हुआ था, वहां वह मेरे पास सिद्धांत ग्दर्शन पुस्तक छपाने आये थे। एक वर्ष के करीव पास । याद नहीं पडता कि एक दिन भी इनके लिए मन में ादर आया हो। त्यागी अक्सर अकड़ का त्याग नहीं पाते, पर ये अत्यन्त सरल थे, हठयोग की कई विशेष यायें हम लोगो ने साथ साथ सीखीं। पुस्तक छपवाकर ऋषिकेश चले गये। एक बार वहां भेट हुई, बीच मे दो पत्र भी आये। फिर तीस पेंतीस साल तक इनका ा नहीं रहा। एक दिन वालों ही बातो में जसीडीह के पंजाबी साधु श्री प्रीतमदास से पता चला कि वह श्री वस्वरूप जी से पढे हैं। उसके बताये पते पर पत्र खा, पर जवाब न आया।

६ महीने के करीब हुए श्री विट्ठलदास मोदी, ोग्य मन्दिर, गोरखपुर का पत्र आया कि श्री केशव- रूप जी उपचार के लिए वहां पहु चे है। यहां भेजने को खा मैने। उत्तर मिला, उपवास प्रारम्भ कर रखा है, पूरा पर जसीडीह जायेगे।

४१ दिन का उपवास करके वह दुग्ध-कल्प के लिए ां आ गये। उन्हें लिवाने मै और श्री रामेश्वर जी टेया एम० पी० स्टेशन गये। उपवास के कारण काफी ले हो गये थे और ४० साल बाद देखा तो शरीर में काफी फर्क पडा दिखाई दिया। उपवास बाद के फोटो शरीर काफी दुर्वल है पर रोग मुक्त हो गया है। खिए चित्र]

श्री केशवस्वरूप जी
उपवास के बाद

हमारी आखिरी भेंट के बाद रोग का और इतने बे उपवास का उनका बतलाया हुआ विवरण श्री ार्क प्रसाद (काशी) ने उनसे दरियाफ्त करके लिखा । ऋषिकेश मे भिक्षा के लिए तभी निकलते थे जब असह्य हो जाती थी। तब खूब कसकर खा लेते, फिर दिन नहीं खाते। इस गलत तरीके ने शरीर को रुग्ण दिया।
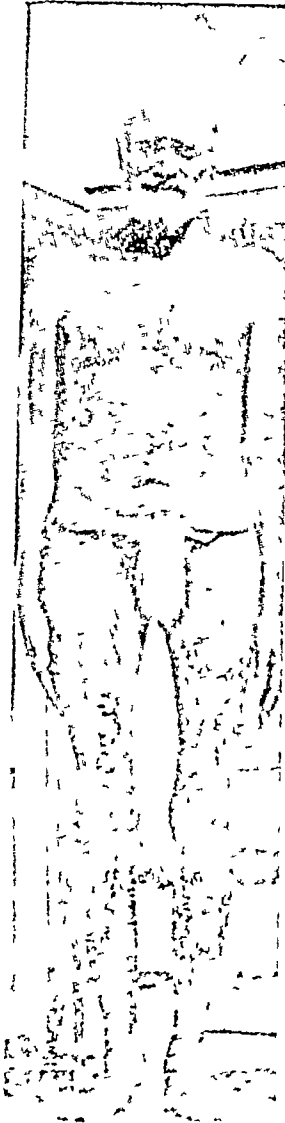
वहां से घूमते फिरते गंगा किनारे फर्रुखाबाद आ गये। गरमी मे एक दिन भिक्षा केलिए निकले तो लू लग गई। सेवा सुश्रूषा के अभाव में दशा खराब होगई। प्रमेह हो गया, स्वप्नदोष होने लगा। शरीर क्षीण होता गया। शीर्षासन से लाभ की कल्पना करके वह आरम्भ किया। तीन घण्टे तक बढ़ाते गये। (शीर्षासन तीन मिनट करना काफी होता है। ले०) शरीर सूखता ही गया। इसी बीच, वहां की एक पाठशाला के पंडित जी ने कहा कि इतनी देर के शीर्षासन के लिये तो रोज एक पाव घी खाना चाहिए। (एक पाव घी खाकर भी तीन घण्टे शीर्षासन क्यो? घी और शरीर दोनो की बरबादी ले०) खैर, शीर्षासन छोटा।

वहां से प्रयाग पहुंचे। सयोग से वहां विरक्त मंडलेश्वर श्री स्वामी अनन्त प्रकाश जी से भेंट हो गई। उनसे तीन साल तक वेदांत के ग्रन्थो का अध्ययन करते रहे। एक वैद्य की दवा भी लेते रहे। एक बार रोग दबकर कुछ दिनो बाद प्रमेह फिर उभरा और इस बार साथ बवासीरभी लाया। बवासीर का आपरेशन कराना पड़ा। सारे शरीर में वायु का प्रकोप बढ़ गया। अङ्ग अङ्ग में दर्द रहने लगा। दशा बिगड़ती ही गई। फिर वैद्यो की शरण गये। उन्होने संखिया, सिगरफ और चांदी, सोने की नाना प्रकार की भस्में खिलाईं, एक बार कुछ फायदा नजर आता, फिर उसी हालत में पहुंच जाते। बीमारियां बढ़ती ही गईं।

श्री केशवस्वरूप जी
उपवास के पहले

साथ साथ ही उम्र भी साठी आगई। पानी बहता भला, साधु रमता भला के उपासक ठहरे, रमते रमाते जोधपुर जा पहुंचे। रोग के साथ काया भी बढ़ गई थी-कुछ स्थूलता आ गई थी जोधपुर में कोई साधु मिल गए, उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की सलाह दी। कुछ किया, थोड़ा लाभ भी हुआ। कुछ साहित्य मंगवाकर पढा तो निश्चय किया कि किसी जानकार की चिकित्सा करानी चाहिए। आरोग्य मंदिर, गोरखपुर मे पहुंच गये। वहां चिकित्सक की सलाह से ४१ दिन का उपवास किया। उपवास के दिनों में दिन भर मे ४ कागजी नीबू आठ गिलास (४ सेर) पानी मैं लेते रहे। एक दो मील रोज घूमते भी रहे। एनिमा रोज लेते थे। जसीडीह में ४१ दिन दुग्धकल्प किया। बढ़ाते बढाते रोज ११ सेर दूध तक पहुंच गए। प्रा० चि० केन्द्र, जसीडीह में अब तक किसी ने इतना दूध नही पिया था। वजन उपवास के अन्त में १४२ पौंड था, घटकर १२२ रह गया, दुग्ध कल्प के अन्त मे १५४ हो गया।

स्व० श्री केशवस्वरूप जी ने रोग और दवाइयों के सम्बन्ध में निम्न लिखित पांचों सत्रों मे अपने अनुभव प्रकट किए है।

१. रोग का कारण अनियमित जीवन है।

२. दवाइयां रोग को दबाती हैं और दूसरे नये रोगो को जन्म देती है।

३. उपवास रामबाण औषधि है। इससे असाध्य समझे जाने वाले रोग भी साध्य हो जाते है। उपवास से जीवन नया हो जाता है।

४. दवा खाकर मरने से आत्महत्या करना अच्छा है।

५. प्राकृतिक चिकित्सा ही रोग मुक्ति का एक मात्र उपाय है।

—श्री महावीर प्रसाद पोद्दार संचालक
'प्राकृतिक चिकित्साकेन्द्र' जसीडीह,
संथाल परगना, बिहार

२–कृमि-रोग से मुक्ति

श्री जोरावर सिंह, उम्र ३० वर्ष, निवासी खेड़ा खजुरी, राजस्थान, पेट के कृमिरोग से पीड़ित था। भयकंर उदर शूल, बेचैनी, कब्ज तथा अनिन्द्रा आदि रोग के लक्षण थे। रोगी ने झालावाड़ के सिविल अस्पताल मे अपने रोग का इलाज डेढ माह तक कराया, पर कोई लाभ न हुआ। तब वह मेरे पास चिकित्सार्थ आया। मैने उसके रोग का निरीक्षण किया। पता चला, रोगी को मीठा खाने की बडी पुरानी आदत है जिसके लिए उसकी इच्छा बड़ी प्रबल रहती है। उसके कृमि-रोग का यही कारण था मैने पहली सलाह जो उसको दी वह थी अन्य प्रकार की मिठाइयो को छोड़कर सुबह संतरा पेट भर खाने की। फिर उसे उपवास कराया और उपवास के दिनो में कागजी नीबू का रस और थोड़ी सी शहद मिलाकर दिया इससे उदर-शूल कुछ घटा। उसके बाद दर्द के स्थान पर हलके हाथों तारपीन तैल युक्त हलकी मालिश करके उस पर गीली काली मिट्टी की पट्टी बांधी गयी। इससे अनिद्रा का लक्षण दूर हो गया और रोगी को सुखपूर्वक गाढी नींद आयी। शाम को ढाई तोला एरण्ड तेल गोदुग्ध के साथ दिया गया। दूसरी सुबह नीम तेल आधा तोला, तारपीन तेल आधा तोला, लहसुन-रस दस बूंद-- तीनो को गरम जल मे मिलाकर उसी का रोगी को एनिमा दिया गया। जिससे सूखे सुद्दो से भरा दस्त हुआ और साथ लगभग एक फुट लम्बा कृमि निकला जिसे देख रोगी घबडा सा गया। आगे भी यही क्रिया चलती रही। दस-रोज मे और भी कितने ही कृमि निकले। इस चिकित्सा से रोगी को थोडी कमजोरी आयी। अतः शक्ति बढाने के लिए दूध, मूंग की दाल का पानी, पपीता, टमाटर, दलिया पालक, बथुआ तथा पुदीना व लहसुन की चटनी आदि देने की व्यवस्था की गयी, साथ मे ऊपर की चिकित्सा भी चलती रही। दो मास में रोगी पूरे तौर से रोगमुक्त हो गया और टमाटर के रंग की तरह लाल होकर अपने घर वापस गया।

--डा० श्री जतीचन्द्रशेखर आयुर्वेदाचार्य
L. M. S., M. D. H,
बोलिया (म० प्र०)

३–पित्ती का रोग गया

माघ के महीने में मुझे हरसाल शरीर में खुजली उठती थी और बड़े बड़े फफोले से पड़कर शरीर फूल जाता था। खुजलाते-खुजलाते त्वचा लाल हो जाती थी, विशेषकर पेट, पीठ और जांघ वाले भागों की त्वचा। लोगों ने इस रोग का नाम पित्ती या शीतपित्ती बताया। इसके लिए मैंने कई प्रकार के आयुर्वेदिक और एलोपैथिक इलाज किये मगर लाभ बिल्कुल न हुआ। अन्त में हारकर प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली और केवल धूप-स्नान द्वारा मेरा यह रोग सदा के लिये दूर हो गया।

धूप स्नान लेने के लिये मैं हलकी धूप में जमीन पर एक कम्बल बिछाकर और सिर पर ठण्डे पानी से भीगा गमछा रखकर लेट जाता था और ऊपर से एक दूसरा कम्बल ओढ लेता था। थोडी देर में शरीर से पसीना बह चलता था। जब पसीना बन्द हो जाता था तो उठकर ठंडे जल से स्नान कर लेता था और समूचे शरीर को सूखी तौलिया से रगड-रगड कर साफ कर देता था। यह चिकित्साक्रम मैंने केवल तीन दिन चलाया और चौथे दिन मेरे रोग का कहीं पता न था।

—डा० श्री ब्रह्मदेवप्रसाद सिन्हा
स्कूल भण्डाजोर, पो० कोशी (गया)

४-मलावरोध और रक्त-विकार ठीक हुए

मेरे पास एक ऐसी श्री मती जी का केश आया जो विगत दस सालों से मलावरोध रोग से पीडित थी। जिसकी वजह से उनके मुंह पर श्यामता छागयी थी और रक्त विकृत हो गया था, साथ में सिर दर्द भी रहता था। उन्होंने अपने उस रोग की कितनी ही दवाइयां की मगर लाभ किसी भी दवाई से न हुआ।

मैंने उसके लिए निम्न प्रकार की प्राकृतिक-चिकित्सा की व्यवस्था की--

रात को काले द्राक्ष के ८० दाने लेकर साफ करके ३० ग्राम पानी में भिगो दें, सुबह उठते ही दो कुल्ले करके द्राक्षों को पानी समेत खूब मसलें और रस निथार लें। फिर उन्हीं द्राक्षों को दूसरे १०० ग्राम पानी में डालकर पुनः मसलें और रस निथार लें। अब इन दोनों रसों को एक में मिलालें और कपडे से छानकर पीजायें। उसके बाद दिन-चर्य्या आरम्भ करें। ११-१२ बजे जब भूख लगे तो केवल मूंग का पानी और चावल लेवे। शाम को केवल पका पपीता ही लें।

इस चिकित्सा को उपर्युक्त उल्लिखित बहन ने ४० दिन तक किया ४१ वे दिन न तो उसे मलावरोध की शिकायत रह गयी, न सिर दर्द की और न रक्तविकार की ही।

--श्री आर्य वैद्य पं० मिलिन्द,
साहित्य विद्यारत्न, तन्त्री
आरोग्य साधना, दिवानपरा
बार्टन सामे, भावनगर (गुजरात)

५ तेज ज्वर और हरे दस्तों के साथ जहरवाद दो दिनों में ठीक

रोगी को तेज ज्वर था। दाहिना हाथ सूजा हुआ था। उसमें जलन और दर्द दोनों ही थे। हरे दस्त हो रहे थे, डाक्टरों ने जहरवाद-रोग तजवीज किया था और हाथ को काट डालने की सलाह दी थी। कलाई पर एक छोटी-सी फुन्सी के रूप में यह रोग शुरू हुआ था।

पेडू पर मिट्टी की पट्टी को एक घंटा बांधने के बाद एनिमा लेने की सलाह दी गयी। तदोपरान्त कलाई पर मिट्टी की पट्टी लगाने को कहा गया। यह पट्टी हर ३० मिनट के बाद बदली गयी। सुबह होते-होते रोगी की हालत सुधर गयी और आने वाले दो दिनों में वह बिलकुल चंगा होगया।

— श्री सत्य चिकित्सक के० आर० त्रिलक
संचालक 'आरोग्य निकेतन
डाली गंज, लखनऊ

संस्थापित १८९८

धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़ अलीगढ़
की

प्रामाणिक आयुर्वेदिक औषधियां
एवं
चिरपरीक्षित सफल पेटेण्ट औषधियां
(केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए)

हम गत ६८ वर्षों से शास्त्रोक्त-विधि से अत्युत्तम द्रव्यों द्वारा योग्य एव अनुभवी व्यक्तियो की देख-रेख में पूर्ण प्रभावशाली आयुर्वेदिक औषधियो का निर्माण कर भारत के प्रतिष्ठित चिकित्सको को उचित मूल्य पर सप्लाई करते हैं। हम अपनी औषधियों का अन्य फार्मेसियो की तरह धुआंधार प्रचार नहीं करते, लेकिन हमारी औषधियां अपने गुणो के कारण उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रसार प्राप्त करती जा रही है। आपसे भी साग्रह निवेदन है कि हमारी औषधियो को एक बार व्यवहार करके उनकी परीक्षा अवश्य करे।

आवश्यक निवेदन

इस समय हर प्रकार की वस्तुओ की उत्तरोत्तर महगाई के कारण विवशत: हमको औषधियो के भाव बढाने पड़े है तथा आगे भी कब बढाने पड़ जाये ? नही कहा जा सकता। अस्तु जब जैसा भाव होगा उसी के अनुसार औषधियां भेजी जायेगी।

नियम

१–कमीशन

अ. १५.०० से कम मूल्य की दवा मंगाने पर कोई कमीशन नही दिया जायगा ।

आ. ३५.०० तक की दवा मंगाने पर १२॥ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा ।

इ. ३५.०० से अधिक मूल्य की दवा मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा ।

ई. १००.०८ से अधिक मूल्य की दवा मगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा तथा मालगाड़ी का किराया कार्यालय देगा ।

उ. ५०.०० से अधिक नैट-मूल्य (कमीशन कम करके) की केवल रस-रसायन मूल्यवान् औपधियां मगाने पर पोस्ट-व्यय कार्यालय देगा ।

२–आर्डर देते समय—

अ. आदेशपत्र मे औषधियों का नाम, उनका नम्बर, तौल, पैकिग की तौल तथा मूल्य सभी बाते स्पष्ट लिखे । नीचे मूल्य का जोड़ लगावे तथा उपयुक्त नियमानुसार जो कमीशन बनता हो उसको भी लिखे । यदि आप एजेंट है तो एजेंसी–नम्बर भी लिखे ।

आ. हर पत्र मे अपना पूरा पता तथा पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखे ।

इ. पार्सल पोस्ट से भेजी जाय या रेल से, सवारीगाड़ी से भेजी जाय या मालगाड़ी से यह विवरण अवश्य लिखना चाहिये ।

ई. आर्डर देते समय चौथाई मूल्य अथवा कम से कम ५.०० एडवांस मनियार्डर से अवश्य भेजे तथा आदेश-पत्र मे मनियार्डर का नम्बर व तरीख दें ।

३—दवा भेजते समय पैकिग करने में पूर्ण सावधानी रखी जाती है और प्रायः टूट-फूट नही होती । किन्तु अगर किसी कारण कोई टूट-फूट हो जाती है तो उसका जिम्मेदार कार्यालय नही है ।

४—पार्सल मगाकर वी० पी लौटाना अनुचित है । एक बार वी० पी० वापस आने पर कार्यालय पुनः उस ग्राहक को वी० पी० न भेजेगा तथा खर्चा लेने का हकदार होगा । यदि बिल मे कोई भूल है तो वी.पी. छुड़ाकर पत्र डालकर उसका सुधार कराले ।

५—हमारे यहां उधार का लेना-देना नही है । बीजक का रुपया बैंक या वी. पी. से लिया जाता है ।

६— उत्तर प्रदेश से बाहर के ग्राहकों को अन्तर्प्रान्तीय बिक्रीकर १० प्रतिशत देना होगा । सी–फार्म आर्डर के साथ (बाद मे नही) मिलने पर २ प्रतिशत टैक्स लगाया जायगा ।

७ – ग्राहको को पार्सल का बारदाना, पैकिग व्यय,पोस्ट-व्यय, स्टेशन पहुँचाई आदि सभी खर्च पृथक देने होते हैं ।

८—धन्वन्तरि कार्यालय के किसी भी विभाग का कोई भी झगड़ा अलीगढ की अदालत मे तय होगा ।

९—नियमो मे अथवा औषधियो के भावो मे किसी भी समय सूचना दिये विना, परिवर्तन करने का कार्यालय को पूरा अधिकार है ।

अन्तर्प्रान्तीय बिक्रीकर

यह अन्तर्प्रान्तीय बिक्रीकर उत्तरप्रदेश से बाहर के सभी ग्राहको, एजेन्टो से १० प्रतिशत अवश्य लिया जायगा । सी फार्म आर्डर के साथ भेजने पर ही २ प्रतिशत सेलटैक्स लिया जाता है । अतएव सी-फार्म न भेजकर सेलटैक्स की छूट करने के लिये कृपया आग्रह न करें । सी- फार्म न मिलने पर १० प्रतिशत बिक्रीकर अवश्य लगाया जायगा । बिल पहुँचने पर यदि आप सी फार्म भेजते हैं तो हम ८ प्रतिशत बिक्रीकर आपको वापस कर देंगे । उत्तर प्रदेश के ग्राहको से २ प्रतिशत सेलटैक्स ही लिया जायगा ।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ की शास्त्रोक्त औषधियों

के परिवर्द्धित भाव

कूपीपक रसायन

	१ ग्राम	१० ग्राम
सि. मकरध्वज नं १	५.५५	५५.००
सि. मकरध्वज न. २	४.०५	४०.००
सि. मकरध्वज नं ३	३.०५	३०.००
सि. मकरध्वज न. ४	३.५५	३५.००
सि. मकरध्वज न. ५	२.५५	२५.००
सि. मकरध्वज नं. ६	२.०५	२०.००
सि. चन्द्रोदय नं. १	६.०५	६०.००
अनुपान मकरध्वज	०.९५	९.००
रस सिंदूर न० १	१.८५	१८.००
रस सिंदूर न० २	१.५५	१५.००
रस सिंदूर न० ३	१.२५	१२.००
मल्ल चन्द्रोदय	५.५५	५५.००
मल्ल सिंदूर	१.२५	१२.००
ताल सिंदूर	१.२५	१२.००
ताम्रसिंदूर	१.२५	१२.००
शिलासिंदूर	१.२५	१२.००
स्वर्णबङ्ग भस्म	०.४०	३.५०
मृतसजीवनी रस	०.५०	४.५०
रस कर्पूर	१.१०	१०.५०
रस माणिक्य	०.४०	३.५०
समीरपन्नग रस नं० १	३.२५	३२.००
समीरपन्नग रस न २	१.२५	१२.००
पचसूत रस	१.२५	१२.००
स्वर्णभूपति रस	३.२५	३२.००
व्याधिहरण रस	१.५५	१५.००

भस्में

	३ ग्राम	१० ग्राम
अभ्रक भस्म न० १	१३.५५	४५.००
अभ्रक भस्म नं० २	१.४५	४.२५
अभ्रक भस्म न० ३	०.७०	२.२५
अकीक भस्म	१.१०	३.५०

	३ ग्राम	१० ग्राम
कपर्द (कौड़ी) भस्म	०.२०	०.४५
कात लोह भस्म	०.७०	२.२५
कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म	०.३५	१.००
गोदन्तीहरताल भस्म	०.२०	०.४५
जहरमोहरा भस्म	०.९०	२.७५
तबकी हरताल भस्म	२.७५	९.००
ताम्र भस्म नं० १	२.१५	७.००
ताम्र भस्म नं० २	१.२५	४.०५
ताम्र भस्म नं० ३	०.८५	२.७५
नाग भस्म नं० १	१.०५	३.२५
नाग भस्म न० २	०.६५	२.०५
प्रवाल भस्म न० १	२.००	६.५०
प्रबाल भस्म न० २	०.८०	२.५०
प्रवाल भस्म नं० ३	०.८०	२.५०
प्रवाल भस्म न० ४	०.७०	२.२५
प्रवाल भस्म चन्द्रपुटी	०.७०	२.२५
बङ्ग भस्म न० १	०.९५	३.०५
बङ्ग भस्म न० २	०.७०	२.२५
बैक्रान्त भस्म	२.२५	७.२५
मल्ल (सखिया) भस्म	१.८५	६.००
मृगश्रृंग भस्म (श्वेत)	०.२५	०.६०
माणिक्य भस्म	४.५५	१५.००
माङ्कर (कीट) भस्म नं० १	०.३०	०.८०
माङ्कर भस्म न० २	०.२५	०.६०
मुक्ता भस्म नं. १	३६.००	१२०.००
मुक्ता भस्म न० २	२७.००	९०.००
यशद भस्म	०.५५	१.७५
रौप्य भस्म नं० १	३.७५	१२.५०
रौप्य भस्म न० २	३.०५	१०.००
लोह भस्म न० १	२.४५	८.००
लोह भस्म नं० २	०.६५	१.८५
लोह भस्म न० ३	०.४०	१.१५
स्वर्ण भस्म	८५.०	×

	३ माशा	१० ग्राम
स्वर्ण माक्षिक भस्म	०.७५	२.३०
शङ्ख भस्म	०.२५	०.४५
शङ्कर लौह भस्म	१.४०	४.५०
शुक्ति (मोतीसीप) भस्म	०.३०	०.६५
सङ्गजराहत भस्म	०.३०	०.८०
त्रिबङ्ग भस्म न० १	१.४०	४.५०
त्रिवङ्ग भस्म नं० २	०.४०	१.१५

पिष्टी

	३ ग्राम	१० ग्राम
प्रबाल पिष्टी	०.७०	२.२५
मुक्ता पिष्टी न० १	३३.००	११०.००
मुक्ता पिष्टी न. २	२४.०५	८०.००
अकीक पिष्टी	०.७५	२.३०
जहरमोहरा पिष्टी	०.७५	२.३०
कहरवा पिष्टी	३.०५	१०.००
मुक्ताशुक्ति पिष्टी	०.३०	०.५५
माणिक्य पिष्टी	१.८५	६.००
बैक्रान्त पिष्टी	१.८५	६.००

शोधित द्रव्य

	१०० ग्राम	१० ग्राम
शुद्ध गन्धक आमलासार	४.००	०.५०
शुद्ध बच्छनाग	६.००	०.६५
शुद्ध बिषवीज (वस्त्रपूत)	८.५०	०.९०
शुद्ध जयपाल	७.००	०.७५
शुद्धताल (हरताल)	१२.००	१.२५
शुद्ध भल्लातक	५.००	०.५५
शुद्ध शिला (मनशिल)	१२.००	१.२५
शुद्ध ताम्र चूर्ण १ किलोग्राम		२०.००
शुद्ध लोह (फौलाद)	,,	७.००
शुद्ध धान्याभ्रक (शुद्ध वज्राभ्रक)	,,	६.००
शुद्ध मांडूर	,,	३.००

पर्पटी

	१ ग्राम	१० ग्राम
ताम्र पर्पटी नं १	०.९५	९.००
ताम्र पर्पटी नं० २	०.५०	४.५०
पंचामृत पर्पटी नं १	०.९५	९.००
पंचामृतपर्पटी नं०२	०.५०	४.५०
विजय पर्पटी (स्वर्ण मुक्ता घटित)	३.५५	३५.००
बोल पर्पटी नं० १	०.८५	८.००
बोल पर्पटी न० २	०.४५	४.००
रस पर्पटी नं० १	०.८५	८.००
रस पर्पटी नं० २	०.६०	५.५०
लोहपर्पटी नं० १	०.९५	९.००
लोहपर्पटी नं० २	०.५०	४.५०
श्वेत पर्पटी	०.१५	०.४५
स्वर्णपर्पटी नं० १	३.५५	३५.००
स्वर्णपर्पटी नं०२	२.१५	२१.००

नोट--नं०१ की पर्पटी विशेष शुद्धपारद से निर्मित है तथा नं ० २ हिंगुलोत्थ पारद द्वारा निर्मित हैं। नं० १ की पर्पटी की मात्रा कम और गुण अधिक होने से व्यवहार में अधिक लेते है।

बहुमूल्य रस रसायन गुटिका

	१ ग्राम	१० ग्राम
आमवातेश्वर रस	१.७०	१६.००
वृ० कस्तूरीभैरव रस	२.८५	२८.००
कस्तूरी भैरव रस	२.२५	२२.००
कस्तूरी भूषण रस	२.४५	२४.००
वृ०कामचूड़ामणि रस	१.५५	१५.००
कामदुघा रस	१.२५	१२.००
कामिनीविद्रावण रस	१.४५	१४.००
कुमारकल्याण रस	५ ०५	५०.००
कृष्णाचतुर्मुख रस	२ ०५	२० ००
चतुर्मुख चिंतामणि रस	२.८५	२८ ००
जयमंगल रस (स्वर्ण युक्त)	३.६५	३६ ००
प्रवाल पञ्चामृत रस	१.४५	१४.००
पुटपक्वविषमज्वरांतक लोह	१.८५	१८.००
वृ० पूर्णचन्द्र रस	२.४५	२४.००
बसन्तकुसुमाकर रस	३.५५	३५.००
वृ०वातचिंतामणि रस	३.८५	३८.००
ब्राह्मीवटी नं० १ (स्वर्ण मुक्ता युक्त)	४.०५	४०.००
मृगाङ्कपोटलीरस	९.६५	९६.००
मधुमेहांतक रस १० गोली		३.००
मधुरातक वटी (मौक्तिक वटी)	१.४५	१४.००
महाराजनृपतिवल्लभरस	१.१५	११.००
महा लक्ष्मीबिलास रस (नारदीय)	१.४५	१४.००
महाराज बङ्ग भस्म	१.२५	१२.००
योगेन्द्र रस	४.८५	४८.००
रसराज रस	३.२५	३२.००
राजमृगांक रस	३ ५५	३५.००
वृ० लोकनाथरस	०.५५	५.००
श्वास चिन्तामणिरस	२.०५	२०.००
स्वर्ण बसन्तमालती नं० १	३.५५	३५.००
स्वर्ण वसन्त मालती नं. २ (शास्त्रीय)	२.१५	२१.००
सर्वाङ्गसुन्दररस	३ ०५	३०.००
संग्रहणी कपाट रस नं० १	४.०५	४०.००
सूतशेखर रस नं० १ (स्वर्ण युक्त)	१.७५	१७.००
हिरण्यगर्भपोटली रस	३.८५	३८.००
हेमगर्भ रस	४ ०५	४०.००

रसायन गुटिका

	१० ग्राम	५० ग्राम
अग्निकुमार रस	०.७५	३.५०
अजीर्ण कण्टक रस	०.९०	४.२५
अग्नितुण्डी वटी	०.८०	३.७५
आनन्दभैरवरस(बाल)	१.४५	७.००
आनन्दोदय रस	१.८५	९.००
आदित्य रस	१.३०	६ २५
आमलकी रसायन	१.१५	५.५०
आरोग्यवर्धिनी वटी	१.१५	५.५०
इच्छाभेदी रस	१.२५	६.००
इच्छाभेदीवटी(गोली)	१.३०	६.५०
उपदंशकुठार रस	०.९०	४.२५
एकांगवीर रस	५.००	२४.००
एलादि वटी	०.६५	३.००
एलुआदि वटी	०.६५	३.००
कर्पूर रस	५.७०	२८.००
कनकसुन्दर रस	१.०५	५.००
कफकुठार रस	१.६५	८.००
कफकेतु रस	०.९०	४.२५
कामधेनु रस	२.५०	१२.००
कामदुधा रस न. २	२.१०	१०.००
कांकायन गुटिका	०.७५	३.५०
कीटमर्द रस	०.७५	३.५०
क्रव्यादि रस	४.५०	२०.००
क्रमिकुठार रस	१.५५	७.५०
खैरसार वटी	०.७०	३.२५
गंगाधर रस	२.०५	१०.००
गन्धक वटी	०.६५	३.००
गन्धक रसायन	१.८५	९.००
गर्भविनोद रस	१.१५	५.५०
गर्भपाल रस	२.४५	१२.००
गर्भचिन्तामणि रस	३.५०	१७.००
गुल्म कुठार रस	१.३५	६ ५०
गुल्म कालानल रस	१.५५	७.५०
गुडपिप्पली	०.७५	३.५०
गुडमार वटी	०.६५	३ ००
ग्रहणी गजेन्द्र रस	३ ६५	१८.००
ग्रहणीकपाट रस न. २	१ ८५	९ ००
ग्रहणीकपाटरस(लाल)	३.६५	१८.००
घोड़ाचोली रस(अश्वकञ्चुकी रस)	१.१५	५.५०

	१० ग्राम	५० ग्राम
चन्द्रप्रभावटी	१.०५	५.००
चन्द्रोदय वर्ती	०.९५	४.५०
चन्द्रकलारस	१.५५	७.५०
चन्द्रांशु रस	१.८५	९.००
चन्द्रामृत रस	१.१५	५.५०
चित्रकादि वटी	०.५०	२.५५
ज्वरांकुश रस	१.०५	५.००
जयवटी	१.८५	९.००
जलोदरारि वटी	१.२५	६.००
जातीफल रस	२.८५	१४.००
तक्रवटी	१.५०	७.२५
दुर्जलजेता रस	१.१०	५.२५
दुग्धवटी नं० १		
(अहिफेन युक्त)	६.००	२९.००
दुग्धवटी न० २	१.२५	७.२५
नवज्वरहर वटी	१.२५	७.२५
नष्ट पुष्पान्तक रस	४.२५	२१.००
नृपतिवल्लभ रस	१.८५	९.००
नाराच रस	१.२५	६.००
नित्यानन्द रस	१.३५	६.५०
प्रतापलंकेश्वर रस	१.२५	६.००
प्रदरारि रस	१.४५	७.००
प्रदरान्तक रस	२.२५	११.००
प्लीहारि रस	१.२५	६.००
प्राणेश्वर रस	३ ४५	१७.००
प्राणदा गुटिका	० ७०	३.२५
पञ्चामृत रस न०१	१.४५	७.००
,, ,, २	१ ४५	७.००
पाशुपत रस	१ २५	६ ००
पीपल ६४ प्रहरी	४.२५	२१.००
वृ० शङ्ख वटी	१ ०५	५.००
वृ० नायकादि रस	० ९०	४.२५
बहुमूत्रान्तक रस	४.८५	२४.००
बहुशाल गुड़	० ७५	३.५०
बालामृत रस (वटी)	५.६५	२८ ००
ब्राह्मी वटी न० २	२.०५	१०.००
वातगजांकुश रस	२.१५	१० ५०

	१० ग्राम	५० ग्राम
विषमुष्टिकावटी	०.९०	४.२५
वैताल रस	३.००	१४.००
व्योषादि वटी	०.६५	३.००
महामृत्युञ्जय रस (रक्त)	१.७५	८.५०
,, (कृष्ण)	१.७५	८.५०
मकरध्वजवटी ५०० गोली		३६.००
महागन्धक रस	१.४५	७.००
मरिच्यादि वटी	०.६५	३ ००
महाशूलहर रस	१ ७५	८ ५०
महावातविध्वंस रस	३.६५	१८.००
मार्कण्डेय रस	१.२५	६.००
मूत्रकृच्छ्रांतक रस	४ २५	२१ ००
मेह मुद्गर रस	१.४५	७.००
रक्तपित्तान्तक रस	१ ७५	८.५०
रस पीपरी	३ ०५	१५.००
रामबाण रस	१.२५	६.००
लशुनादि वटी	०.६५	३.००
लघुमालती बसंत	३.०५	१५ ००
लक्ष्मीविलास रस	२.०५	१०.००
लक्ष्मीनारायण रस	३.६५	१८ ००
लाई (रस) चूर्ण	१.२५	६.००
लीलावती गुटिका	१.२५	६.००
लीलाविलास रस	२ ०५	१०.००
लोकनाथ रस	२.२५	११.००
श्वासकुठार रस	१.२५	६.००
शंखवटी	० ६५	३.००
संशमनी वटी	१.२५	६ ००
शिरोवज्र रस	१ ४५	७.००
शिलाजीत वटी	१ ४५	७ ००
शीतभञ्जी रस (वटी)	२.३०	११ ५०
शूल वज्रिणी वटी	१ ४५	७ ००
शूलगजकेशरी रस	२.८५	१४ ००
शृंगाराभ्रक रस	२.२५	११ ००
समीरगज केशरी	५ ६५	२८.००
स्मृतिसागर रस	४ २५	२१.००
सन्निपात भैरव रस	१ ८५	९ ००

	१० ग्राम	५० ग्राम
संजीवनी वटी	०.६५	३.००
सर्पगंधा वटी	२.२५	११.००
सिद्ध प्राणेश्वर रस	१.२५	६.००
सूत शेखर रस	३.४५	१७.००
सूरण मोदक वृ०	० ६५	३.००
सौभाग्यवटी	१ २५	६.००
हिंग्वादिवटी	०.६५	३.००
हृदयार्णव रस	३.०५	१५.००
त्रिपुर भैरवरस	१.४५	७.००
त्रिभुवन कीर्ति रस	१.१५	५.५०
त्रिविक्रम रस	३.४५	१७.००

लौह-मण्डूर

	१० ग्राम	५० ग्राम
अम्लपित्तांतक लोह	२.२५	११ ००
चन्दनादि लोह	१.५०	७.००
चन्दनादि लोह	१.८०	८.७५
ताप्यादिलोह	३.५५	१७.५०
धात्री लोह	१.२५	६.००
नवायस लोह (लोह— भस्म से निर्मित)	०.९५	४.५०
प्रदरारि लोह	१.६०	७.५०
प्रदरांतक लोह	१.९०	९.००
पुनर्नवादि मांडूर	०.९५	४.५०
विडङ्गादि लोह	१.०५	५.००
विषम ज्वरांतक लोह	१.७५	८.५०
यकृत् हर लोह	१.५५	७.५०
शोथोदरारि लोह	१ ९५	९.००
सर्वज्वरहर लोह	१ ७५	८.५०
सप्तामृत लोह	१.४५	७ ००
त्र्यूषणादि लोह	१.४५	७.००

गुग्गल

	१० ग्राम	५० ग्राम
अमृतादि गुग्गल	० ६५	३.००
काचनारि गुग्गुल	० ५५	२ ५०
किशोर गुग्गुल	० ५५	२.५०
गोक्षुरादि गुग्गुल	०.५५	२.५०
पुनर्नवादि गुग्गुल	० ५५	२.५०
वृ० योगराज गुग्गुल	१.४०	६.७५

	१० ग्राम	५० ग्राम		१० ग्राम	५० ग्राम		१० ग्राम	५० ग्राम
योगराज गुग्गुल	०.४५	२.००	रास्नादि गुग्गुल	०.५५	२.५०	त्रियोदशाग गुग्गुल	०.५५	२.५०
रसाभ्र गुग्गुल	१.२५	६.००	सिंहनाद गुग्गुल	०.५५	२.५५	त्रिफलादि गुग्गुल	०.५५	२.५०

अरिष्ट-आसव

	६२६ मि.लि. (१ बोतल)	४५५ मि.लि. (१ पौंड)	२२७ मि.लि. (८ औंस)
अमृतारिष्ट	३.२५	२.८०	१.५०
अर्जुनारिष्ट	३ ३५	२.८५	१.५०
अरविंदासव नं० १	९.००	७ ६०	४.००
केशरयुक्त	११४ मि. लि. (४ औंस)		२.१५
अरविंदासव नं० २	३.७५	३ १०	१.९०
अशोकारिष्ट	३.३५	२ ८५	१ ६०
अभयारिष्ट	३.३५	२ ८०	१.५०
अश्वगधारिष्ट	३.७५	३.१०	१.६०
उशीरासव	३.२५	२.८०	१ ५०
कनकासव	३.२५	२.८०	१.५०
कुमारी आसव	३.३५	२.८५	१.५०
कुटजारिष्ट	३.३५	२.८५	१.५०
खदिरारिष्ट	३.१५	२.७५	१.४५
चन्दनासव	३.१५	२ ७५	१.४५
दशमूलारिष्ट नं० १ (कस्तूरी सहित)	६.००	५.००	२.६०
दशमूलारिष्ट नं० २ (कस्तूरी रहित)	३.६०	३.००	१.६०
द्राक्षासव	३.६०	३ ००	१.६०
द्राक्षारिष्ट	३ ६०	३.००	१.६०
देवदार्व्यारिष्ट	३ ३५	२.८५	१.५०
पत्रांगासव	३ ३५	२.८५	१ ५०

	६२६ मि. लि. (१ बोतल)	४५५ मि. लि (१ पौंड)	२२७ मि. लि. (८ औंस)
पिप्पल्यासव	३ ३५	२ ८५	१ ५०
पुनर्नवासव	३.१५	२.७५	१.४५
बल्लभारिष्ट	५.७५	४ ७५	२ ४५
वासारिष्ट	३.६०	३.००	१.६०
बालरोगान्तकारिष्ट	४ १०	३.४०	१.८०
विडङ्गासव	३.२५	२.८०	१.५०
रक्तशोधिकारिष्ट	३ ७५	३ १०	१.६०
रोहितकारिष्ट	३.१५	२.७५	१.४५
लोहासव	२.६५	२.६०	१४०
सारस्वतारिष्ट नं० १ (स्वर्ण युक्त)	×	×	७.२५
सारस्वतारिष्ट नं० २	४.१०	३.४०	१.८०
सारिवाद्यासव	३.६०	३.००	१.६०

अर्क

अर्क उसवा	४.१०	३.४०	१.८०
दशमूल अर्क	२.५०	२ २५	१.२०
द्राक्षादि अर्क	३.१०	२.७५	१.४५
महामंजिष्ठादि अर्क	२ ५०	२.२५	१.२०
रास्नादि अर्क	२.५०	२.२५	१.२०
सुदर्शन अर्क	२.८०	२.५०	१.३०
अर्क सौंफ	२.७५	२.४५	१.३०
अर्क अजवायन	२.७५	२.४५	१.३०
अर्क पोदीना	२.८०	२.५०	१.३०

क्वाथ

दशमूल क्वाथ १ किलोग्राम १७५,
१०० ग्राम ०.२५
२० ग्राम की १०० पुड़ियां ५.५०

	१ किलोग्राम	१२५ ग्राम
दार्व्यादि क्वाथ	५.००	०.७०
देवदार्व्यादि क्वाथ	४.२५	०.६०
द्राक्षादि क्वाथ	[illegible]	० ५०
वलादि क्वाथ	३.००	०.४५
महामंजिष्ठादि क्वाथ	५ ००	०.७०
महारास्नादि क्वाथ	५.००	०.७०
त्रिफलादि क्वाथ	४.२५	०.६०

चूर्ण

	१ किलोग्राम	५० ग्राम
अग्निमुख चूर्ण	१४ ००	०.९०
अविपत्तिकर चूर्ण	१२.५०	०.८५
अजीर्णपानक चूर्ण	१७ ००	१.०५
उदरभास्कर चूर्ण	१६ ००	१.००
एलादि चूर्ण	२१ ००	१.३०
कपित्थाष्टक चूर्ण	१२.५०	०.८०
कामदेव चूर्ण	१६.००	१ ००
गगाधर चूर्ण	१४ ००	०.९०
चन्दनादि चूर्ण	१४.००	० ९०
ज्वर भैरव चूर्ण	१४.००	०.९०
जातीफलादि चूर्ण	२८.००	१.६०
तालीसादि चूर्ण	२१.००	१.३०
दशनसंस्कार चूर्ण	१७ ००	१.०५
नारायण चूर्ण	१४.००	०.९०
निम्बादि चूर्ण	१४.००	०.९०
प्रदरान्तक चूर्ण	१४.००	०.९०
पञ्चसकार चूर्ण	१० ००	०.७०
प्रदरारि चूर्ण	१४.००	०.९०
पुष्यानुग चूर्ण	१४.००	०.९०
यवानीखाडव चूर्ण	१४.००	०.९०
लवङ्गादि चूर्ण	२४.००	१.५०
लवणभास्कर चूर्ण	१०.५०	०.७५
सारस्वत चूर्ण	१४.००	०.९०
सामुद्रादि चूर्ण	१६.००	१.००
शृंग्यादि चूर्ण	१७.००	१.०५
सितोपलादि चूर्ण (असली वंसलोचन से बना)	३५.००	१.९५
महा सुदर्शन चूर्ण	११.००	०.७५
हिंग्वाष्टक चूर्ण	२०.००	१.२०
त्रिफलादि चूर्ण	९.००	०.६५

तैल-घृत

	४५५ मि. लि (१ पौंड)	१४४ मि. लि. (४ औस)	७५ मि. लि. (२ औस)
आवला तैल	६.००	१ ५५	०.८०
इरमेदादि तैल	८.५०	२.२५	१ २०
कर्पूरादि तैल	१४.००	४ ००	२.०५
कट्फलादि तैल	१०.००	२.६०	१.३५
कन्दर्प सुन्दर तैल	११.००	२ ८५	१ ५०
काशीसादि तैल	८ ५०	२ २५	१.२०
किरातादि तैल	८.५०	२ २५	१ २०
कुमारी तैल	९.००	२.४०	१.२५
ग्रहणीमिहिर तैल	१० ००	२ ६०	१.३५
गुडूच्यादि तैल	९.००	२.४०	१.२५
महाचन्दनादि तैल	११.००	२.८५	१ ५०
चन्दनवलालाक्षादि तैल	११.००	२.८५	१.५०
जात्यादि तैल	११.००	२.८५	१ ५०
दशमूल तैल	१० ००	२ ६०	१.३५
दार्व्यादि तैल	११ ००	२.८५	१.५०
महानारायण तैल	१०.००	२ ६०	१.३५
पिप्पल्यादि तैल	१०.००	२.६०	१ ३५
पिड तैल	१२ ००	३.१०	१ ६०
पुनर्नवादि तैल	९.००	२.४०	१.२५
ब्राह्मी तैल	८ २५	२.१५	१ १०
बिल्व तैल	११.००	२.८०	१ ५०
विषगर्भ तैल	९ ००	२.४०	१.२५

	४५५ मि. मि. लि. (१ पौंड)	११४ मि. लि. (४ औस)	७५ मि. लि. (२ औस)
भृङ्गराज तैल	१०.००	२ ६०	१.३५
महाविषगर्भ तैल	१०.००	२ ६०	१.३५
बैरोजा का तैल	१४.००	३.६०	१.९०
महामरिच्यादि तैल	९ ००	२.४०	१.२५
महामाष तैल	११.००	२.८५	१.५०
मोम का तैल	१७ ००	४.३५	२.२५
राल का तैल	१६.००	४.१०	२.१०
लाक्षादि तैल	१०.००	२.६०	१.३५
शुष्कमूलादि तैल	९ ००	२ ४०	१.२५
षट्बिन्दु तैल	१०.००	२.६०	१.३५
हिमसागर तैल	११ ००	२.८५	१.५०
क्षार तैल	१६ ००	४.१०	२.१०
अर्जुन घृत	१४.००	३.६०	१.९०
अशोक घृत	१४ ००	३.६०	१ ९०
अग्नि घृत	१४.००	३.६०	१ ९०
कदली घृत	१५.००	३.९५	२.००
कामदेव घृत	१७.००	४.३५	२.२५
दूर्वादि घृत	१४ ००	३ ६०	१.९०
धात्री घृत	१४ ००	३.६०	१.९०
पञ्चतिक्त घृत	११.००	२ ८५	१.५०
फल घृत	१४.००	३ ६०	१.९०
ब्राह्मी घृत	१४.००	३.६०	१.९०

	४५५ मि.लि. (१पौंड)	११४ मि.लि. (४औंस)	५७ मि.लि (२औंस)
महाविन्दु घृत	१४.००	३.६०	१.९०
महात्रिफलादिघृत	१६.००	४.१०	२.१०
श्रृंगीगुड़ घृत	१४.००	३.६०	१.९०

	४५५मि.लि. (१पौंड)	११४ मि.लि. (४औंस)	५७मि.लि (२औंस)
सारस्वत घृत	१४.००	३.६०	१.९

नोट—सभी शीशिया पिलफर कैप से सुन्दर पैक क जाती है।

क्षार-सत्व-द्राव

	१०० ग्राम	१० ग्राम
वज्रक्षार	३.५०	०.४०
अपामार्ग क्षार	३.५०	०.४०
इमली क्षार	३.५०	०.४०
वासा क्षार	४.००	०.४५
कटेरी क्षार	४.००	०.४५
कदली क्षार	३.५०	०.४०

	१०० ग्राम	१० ग्राम
तिल क्षार	४.००	०.४५
मूली क्षार	५.००	०.५५
ढाक क्षार	३,५०	०.४०
आक क्षार	३.५०	०.४०
केतकी क्षार	३.५०	०.४०
चना (चणक) क्षार	४.००	०.४५

	१०० ग्राम	१० ग्रा
यव क्षार	२.५०	०.३
गिलोय सत्व	४.००	०.४
भीमसैनी कपूर	×	७.०
नाड़ी क्षार	५.००	०.५५

शंखद्राव ११४ मि० लि० (४ औंस) ८.५०, २८ मि०लि० (१ औंस) २.१५

अवलेह

च्यवनप्राशअवलेह १ किलोग्राम ८.०० ४५० ग्राम शीशी मे ४ ००, २५० ग्राम शीशी मे २.२५, १२५ ग्राम शीशी मे १.३०

	१ किलोग्राम	२५० ग्राम
कुटजावलेह	१३.००	३.४५
कण्टकारी अवलेह	११.००	२.९५
कुशावलेह	१३.००	३ ४५

	१ किलोग्राम	४५० ग्राम
वासावलेह	११.००	२.९५
ब्राह्मी रसायन	१४ ००	३ ७०
आर्द्रक खण्ड	११.००	२.९५
विषमुष्टिकावलेह	५०ग्राम	६.७५
मधुकाद्यवलेह	१७५ ग्राम (१५ तो)	३.५०

	१ किलोग्राम	१२५ ग्राम
कन्दर्प सुन्दर पाक	१७.००	२ ३५
बादाम पाक	३४.००	४ ४५
मूसली पाक	२१.००	२.८५
सुपारी पाक	१३ ००	१ ८५
सौभाग्यसुण्ठी पाक	१३.००	१.८५

मलहम

	८ औंस	४ औंस
जात्यादि मलहम	५ ००	२ ६५
पारदादि मलहम	७ ५०	३ ८५
अग्निदग्धव्रणहर मलहम	४ ५०	२.४०
दशांग लेप	५ ००	२.६५

बहुमूल्य द्रव्य

	१० ग्रा.
असली कस्तूरी नं० १	१२०.००
कस्तूरी काश्मीरी उत्तम	७० ००
अम्बर	३६ ००

	१० ग्राम
गोलोचन	४० ००
केशर काश्मीरी मोगरा	४५ ००
चादी के वर्क	१० ००

	१० ग्रा,
केशर चूरा (औषधि निर्माण के लिये उत्तम)	१६.००

भस्म निर्माणार्थ

अकीक दाना	५० ग्राम २.००
वैक्रान्त खड़	१० ग्राम २ ००
अकीक खड़	१ ००
माणिक्य (याकूत)	२.००

जहरमोहरा खताई	१ ००
नीलम खड़	३ ००
खर्पर (खपरिया)	२ ००

पिरोजा खड	२.००
कहरवा	५.५०
पुखराज खड़	२.००

नोट—बहुमूल्य द्रव्य एव भस्म निर्माणार्थ द्रव्यो के भाव नेट हैं। इन भावो पर किसी को कमीशनादि नहीं दिया जायगा। इन भावो मे घट बढ़ होना भी संभव है। आर्डर सप्लाई के समय जो भाव होगा वह लगाया जायगा।

केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए--

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा निर्मित

अनुभूत एवं सफल पेटेण्ट दवायें

हमारी ये पेटेन्ट औषधियां ६८ वर्ष से भारत के प्रसिद्ध वैद्यराजों और धर्मार्थ औषधालयो द्वारा व्यवहार की जा रही हैं। अतः इनकी उत्तमता के विषय मे किसी प्रकार का सदेह नही करना चाहिये।

मकरध्वज वटी

(अर्थात् निराशबन्धु)

आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति मे सबसे अधिक प्रसिद्ध एव आशुफलप्रद महौषधि सिद्ध मकरध्वज न० १ अर्थात् चन्द्रोदय है। इसी अनुपम रसायन द्वारा इन गोलियो का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त अन्य मूल्यवान एव प्रभावशाली द्रव्यो को भी इसमे डाला जाता है। ये गोलियां भोजन को पचाकर रस, रक्त आदि सप्त धातुओ को क्रमशः सुधारती हुई शुद्ध वीर्य का निर्माण करती और शरीर मे नव-जीवन व नव-स्फूर्ति भर देती है। जो व्यक्ति चन्द्रोदय के गुणो को जानते हैं, वे इसके प्रभाव मे सन्देह नही कर सकते। वीर्य-विकार के साथ होने वाली खासी, जुकाम, सर्दी, कमर का दर्द, मन्दाग्नि, स्मरण शक्ति का नाश आदि व्याधियां भी दूर होती हैं। क्षुधा बढती व शरीर हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनता है। जो व्यक्ति अनेक औषधिया सेवन कर निराश हो गये हैं उन निराश पुरुषो को यह औषधि बन्धु तुल्य सुख देती है। इसीलिये इसका दूसरा नाम निराश बन्धु है।

४० वर्ष की आयु के बाद मनुष्य को अपने मे एक प्रकार की कमी और शिथिलता का अनुभव होता है। ऐसारोग प्रतिरोधक शक्ति में कमी आ जाने के फलस्वरूप होता है। मकरध्वज वटी इस शक्ति को पुन. उत्तेजित करती और मनुष्य को सबल व स्वस्थ बनाये रखती है। मूल्य—१ शीशी (४१ गोलियो की) ३.००, छोटी शीशी (२१ गोलियों की) १ ६०।

कुमारकल्याण घुटी

(बालकों के लिये सर्वोत्तम मीठी घुटी)

इसके सेवन करने वाले बालक कभी बीमार नही होते किन्तु पुष्ट हो जाते हैं। यह बालको को बलवान बनाने की बड़ी उत्तम औषधि है। रोगी बालक के लिए तो सजीवनी है। इसके सेवन से बालको के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे-पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त मे कीडे पड जाना, दस्त साफ न होना सर्दी, कफ-खासी, पसली चलना, सोते मे चौंक पड़ना, दात निकलने के रोग आदि सब दूर हो जाते है। शरीर मोटा-ताजा और बलवान हो जाता है। पीने मे मीठी होने से बच्चे आसानी से पी लेते है। मूल्य—एक शीशी आध औंस (१४ मि लि) ३१ न. पै, ४ औंस (११४ मि. लि) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स मे २ ००, २ औंस (५७ मि लि) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स में १ १० रु०

कुमार रक्षक तैल— इसको बच्चे के सम्पूर्ण शरीर पर धीरे-धीरे रोजाना मालिश करे। आध घण्टे बाद स्नान करायें। बच्चे मे स्फूर्ति बढ़ेगी, मांसपेशियां सुदृढ हो जायेगी, हड्डियों मे ताकत पहुँचेगी। मूल्य १ शीशी ४ औंस (११४ मि लि) २ ००, छोटी शीशी २ औंस (५७ मि. लि) १ १० रु०

ज्वरारि— कुनीनरहित विशुद्ध आयुर्वेदिक, ज्वर-जूडी को शीघ्र नष्ट करने वाली सस्ती एव सर्वोत्तम महौषधि है। जूड़ी और उसके उपद्रवो को नष्ट करती है। मूल्य—१० मात्रा की शीशी १ २५, २० मात्रा की बड़ी शीशी २.००, ५० मात्रा की पूरी बोतल ४.०० रु०

कासारि—हर प्रकार की खासी को दूर करने वाली सर्वत्र प्रशसित अद्वितीय औषधि है। यह वासा पत्र-क्वाथ एवं पिप्पली आदि कासनाशक आयुर्वेदिक द्रव्यो से निर्मित शर्बत है। अन्य औषधियो के साथ इसको अनुपान रूप मे देना भी उपयोगी है। सूखी व तर दोनो प्रकार की खांसी को नष्ट करने वाली सस्ती दवा है। मूल्य—२० मात्रा की शीशी १ २५, ५ मात्रा की शीशी ५० न. पै, १ पौंड (४५५ मि. लि.) ४.२५ रु०

कामिनी गर्भ रक्षक—बार-बार गर्भस्राव हो जाना, बच्चो का छोटी आयु मे ही मर जाना, इन भयङ्कर व्याधियो से अनेक सुकुमार स्त्रियां आजकल पीड़ित है। यदि कामिनीरक्षक को गर्भ के प्रथम माह से नवम माह तक सेवन करावे तो न गर्भस्राव होगा और न गर्भपात। बच्चा स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल उत्पन्न होगा। मूल्य–२ औस (५७ मि. लि) की १ शीशी २.०० रु०

शिरोविरोचनीय सुरमा—जिनको जुकाम रुकने के कारण सिर मे दर्द हो इस सुरमा को सफाई से हल्का हल्का नेत्रो मे आजे। थोडी देर मे आख व नाक से बलगम निकलना प्रारम्भ हो जायगा और सभी कष्ट दूर होंगे। पुराने सिर दर्द में पथ्यादि क्वाथ व शिरोवज्र रस भी साथ मे सेवन कराने से शीघ्र लाभ होगा। मूल्य-१ ग्राम की शीशी ५० न पैं.

वातारि वटी—वातरोगनाशक सफल और सस्ती दवा है। १-२ गोली प्रात साय गरम जल या रास्नादि क्वाथ के साथ लेने से सभी प्रकार की वात व्याधियां नष्ट होती है। मू०—१ शीशी (५० गोली) २.०० रु०

करंजादि वटी—ये गोलियां मलेरिया के लिये उत्तम प्रमाणित हुई है। १ शीशी (५० गोली) १.०० रु.

कासहरवटी—हर प्रकार की खासी के लिये सस्ती व उत्तम गोलिया है। दिन मे ५-७ बार अथवा जिस समय खासी अधिक आ रही हो १–१ गोली मुंह मे डाल रस चूसे, गला व श्वास–नली साफ होती है। कफ बन्द होजाता है। मूल्य–१ शीशी (१० ग्राम) ४० न.पै.

निम्बादि मलहम—यह मलहम फोड़ा फुन्सी व घावो के लिये अत्युत्तम है। निम्बक्वाथ से घाव या फोडों को साफ कर इस मलहम को लगाने से वे शीघ्र ही भरते है। नासूर तक को भरने की इसमे शक्ति है। मूल्य—१ शीशी आध औस ४० न. पै, २०० ग्राम का १ पैक ६.०० रु०

वल्लभ रसायन—किसी भी रोग से किसी भी प्रकार का रक्तस्राव होता हो तो यह विशेष लाभ करता है। रक्त को बन्द करने के लिये अव्यर्थ औषधि है। मूल्य १ शीशी २ औंस की १ ५० रु०

रक्तवल्लभ रसायन—इससे ज्वर के साथ होने वाला रक्तस्राव बन्द होता है। ज्वर को दूर करने और रक्त को बन्द करने के लिये अव्यर्थ है। १ शीशी आध औस (१४ मि. लि.) १ ५० रु०

सरलभेदी वटी—जिनको नित्य ही कब्ज की शिकायत रहती हो और कई–कई बार दस्त जाना पड़ता हो उन्हे १-२ गोली रात्रि मे सेवन करने से नित्य प्रात. दस्त साफ होजाता है, तथा कार्य करने मे उत्साह बढता है, मूल्य १ शीशी (३१ गोली) १.२५ रु.

गोपाल चूर्ण—जिनकी प्रकृति पित्त की हो उन्हे इसके सेवन से दस्त साफ होता है। जिनको मलावरोध हो उन्हे इसमें से तीन मासे रात को सोते समय गुनगुने जल के साथ या गरम दूध के साथ फका देने से सुबह दस्त हो जाता है। १ शीशी (२ औस) ७५ न. पैं.

मृदुविरेचन चूर्ण—यह मृदु विरेचक है। जिन्हे मलावरोध रहता हो और अनेक औषधियो से न गया हो भोजनोपरात तीन–तीन मासे गुनगुने पानी से फकाये। यदि पेट मे खुरचन सी मालूम पड़े तो थोडी सौफ चवा ले। इसके १५ दिन के सेवन से मलावरोध नष्ट हो जाता है। मूल्य १ शीशी ७५ न. पैं०

आंवनिस्सारक वटी—प्रात.काल गुनगुने जल के साथ तीन गोली तक सेवन कराने से गुदा के द्वारा आव निकलने लगती है। आव निकालने के लिये यह एक ही वस्तु है। यदि पेट मे दर्द ऐंठा करे तब चिन्ता नही करें क्योकि आंव निकलते समय प्राय: ऐसा होता है। मूल्य १ शीशी १ तोला (१० ग्राम) १.०० रु०

मुंह के छालों की दवा—इसको छालो पर बुरककर मुंह नीचे करदे, लार गिरने लगेगी, दिन रात मे छाले नष्ट होजायेंगे। मू १ शीशी (आध औंस) ० ७५ रु०

कर्णामृत तैल—कान मे सांय-साय का शब्द होना, दर्द होना, कान से मवाद बहना आदि सभी कर्ण-रोगों के लिए उत्तम तैल है। आध औंस (१४ मि लि) ० ७५

बालोपकारक वटी—बालक बेहोश होजाता है, हाथ पैर ऐंठ जाते हैं, मुख से लार (झाग) देने लगता है, दाती बन्द हो जाती है। बालक की ऐसी हालत मे यह अक्सीर प्रमाणित होती है। १ शीशी (३१ गोली) २ ५०

मधुरौल—मधुमेह बहुमूत्र व सोमरोग मे भी यह लाभप्रद है। मूल्य १० गोली २.७५ रु०

पायरिया मंजन—इस मंजन के नित्य व्यवहार

से दातो मे खून जाना, मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना आदि दूर होते है। मू १ शीशी १ ००

नयनामृत सुरमा–नेत्र- रोगो के लिए उपयोगी सुरमा है। चांदी या कांच की सलाई से दिन मे एक बार लगाने से घु धला दीखना, पानी निकलना, खुजली नष्ट होती है। मू ३ माशे(२ ९२ ग्राम)की शीशी ७५ न०पै०।

अग्नि संदीपन चूर्ण–अग्नि को उत्तेजित करने वाला मीठा व स्वादिष्ट चूर्ण है। भोजन के बाद ३-३माशे लेने से कब्ज दूर हो रुचि बढ़ेगी। १ शीशी(२ऑस) ० ७५

मनोरम चूर्ण–स्वादिष्ट, शीतल व पाचक चूर्ण। एक बार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेगे। गुण और स्वाद दोनो मे लाजबाव है। १ शीशी (२ औंस) ०.७५, छोटी शीशी (१ औंस) ०.४५ रु०

अग्निवल्लभ क्षार—इसके सेवन से अग्नि प्रज्व-लित होती व खाना हजम होता है। भूख न लगना, दस्त साफ न होना, खट्टी डकारो का आना, पेट मे दर्द तथा भारीपन होना, तबियत मचलना, अपान वायु का बिगड़ना इत्यादि शिकायते दूर होती हैं। जल-दोष नही सताता। सग्रह करने योग्य महौषधि है। क्योंकि जब किसी तरह की शिकायत हुई चट अग्निबल्लभक्षार सेवन करने से उसी समय तबियत साफ होजाती है। १ शीशी(२ औंस)का मू. १.२५

ग्रहणी रिपु—यह ग्रहणी रोग के लिए अव्यर्थ है। १ शीशी आध औस ३.५० रु०

खाजरिपु—गीली तथा सूखी खाज के लिए यह अक्सीर है। मूल्य १ शीशी (२ औंस) १ ०० छोटी शीशी ०.५६ रु०

दाद की दवा–यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद को साफ करके किसी मोटे वस्त्र से खुजलाकर दवा की मालिश करे। स्नान करने के बाद रोजाना वस्त्र से अच्छी प्रकार पोंछ लिया करें। १ शीशी ७५ न०पै०

नेत्रबिन्दु–दुखती आखो के लिए अत्युपयोगी। मू आधा औस(१४ मि लि) ०.८८, १।४ औस ०.५० रु०

आनन्दवटी—३२ गोली की १ शीशी २ ००

स्वप्नोजित वटी–३० गोली की १ शीशी २.५०

स्वप्नोजित चूर्ण–१ औस की शीशी २.५०

नारी सुखदा वटी–३० गोली की शीशी १.५०

हमारे सफल सैट

स्त्री रोगहर सैट—स्त्री सुधा स्त्रियो के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध लाभकारी औषधि, मूल्य १ बोतल ४ ५०, १ शीशी २ ०० मधुकाद्यवलेह–स्त्री सुधा के साथ इसे सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। १ शीशी ३.५०

हिस्टेरियाहर सैट–१५ दिन की तीन दवाओ का मूल्य ९ ०० रु०

निर्बलताहर सैट–मकरध्वज वटी, तैल व पोटली तीनो दवायें २० दिन व्यवहार करने योग्य मूल्य ८ ०० रु०

धन्वन्तरि तैल—मुरदार नसो पर मालिश के लिए १ शीशी ३ ०० रु०

धन्वन्तरि पोटली—सिकाई करने के लिए १ डिब्बा मूल्य ३ ०० रु०

श्वेतकुष्ठहर सैट—इसमे श्वेतकुष्ठहर अवलेह, वटी व घृत तीन औषधिया है। इन तीनो औषधियो के विधिवत् अधिक दिन सेवन करने से श्वेत कुष्ठ अवश्य नष्ट होता है। मूल्य १५ दिन को तीनो औषधियो का ७ ०० रु०

रक्तदोषहर सैट–इसमे धन्वन्तरि आयुर्वेदीय सालसा परेला, तालकेश्वर रस, इन्द्रवारुणादि क्वाथ–ये तीन औषधिया है। इनके सेवन से सभी प्रकार के रक्त विकार तथा चर्मरोग नष्ट होकर शरीर सुडौल बनता है। मूल्य १५ दिन को तीन दवाओं का ८ ००, पोस्ट व्यय ४.००

अर्शान्तक सैट–इसमे वटी, मलहम तथा चूर्ण तीन औषधिया हैं। इनके प्रयोग से दोनो प्रकार के अर्श नष्ट होते हैं। अर्श से आने वाला रक्त २-१ दिन मे बन्द हो जाता है। मूल्य १५ दिन की तीनो दवाओ का ५ ००

वातरोगहर सैट–इसमे वातरोगहर तैल, रस एव अवलेह ये तीन औषधिया है। इन तीनो औषधियो के व्यवहार से जोड़ो का दर्द, सूजन, अङ्ग विशेष की पीड़ा पक्षाघात आदि समस्त वात व्याधियो मे लाभ होता है। १५ दिन सेवन योग्य तीनो औषधियो का मूल्य १०,००

पता–धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

असली एवं पूर्ण विश्वस्त

निम्न वस्तुएं बाजारों मे अधिकाशतः नकली तथा निम्न कोटि की मिलती हैं। ये वस्तुएं ऐसी हैं जिनकी आवश्यकता प्रत्येक वैद्य एव औषधि निर्माता को होती है। नकली उपादानो से निर्मित औषधि लाभ क्या कर सकेगी यह आप भी भलीभाति जानते है। अतएव हम अपने ग्राहको से आग्रह करते हैं कि इन वस्तुओ को आप पूर्ण विश्वस्त होने का विश्वास रखते हुए हमसे मंगाइयेगा और रोगियो को लाभ पहुँचाइयेगा ।

रुदन्ती फल

राजयक्ष्मा मे उपयोगी इन फलों को हमने संग्रह करा कर रखा है। आप भी मगा कर अपने रोगियों को दें तथा लाभ उठायें। मूल्य— १ किलोग्राम—४३ ००
१०० ग्राम—४ ५०

पूर्ण विश्वस्त

सर्वोत्तम शिलाजीत नं० १

सूर्यतापी

शिलाजीत पत्थर मंगा कर हम अपनी देखरेख मे अत्युत्तम शिलाजीत निर्माण करते है किसी भी प्रकार की शका न करते हुए आवश्यकतानुसार शिलाजीत हमारे यहा से मगाइयेगा। मूल्य—१ किलोग्राम १००.००
५० ग्राम ५.०५ १० ग्राम १.०५

शहद

अत्युत्तम एव विशुद्ध शहद जंगलों से संग्रह कराया जाता है। किसी भी प्रकार की मिलावट नही होगी पैकिङ्ग भी पिल्फर प्रूफ कार्क द्वारा सुन्दर आकर्पक किया जाता है। मूल्य—१ पौंड (४६७ ग्राम) ४.५०
१० तोला (११७ ग्राम) १.५०

गिलोय सत्व

जङ्गलो मे आदमी भेजकर बहुत बड़ी तादाद मे गिलोय सत्व तैयार कराते है। पूर्ण विश्वस्त गिलोय सत्व हमसे मगाइये। मूल्य—१ किलोग्राम २२.००
१० ग्राम ०.३०

कस्तूरी केशर आदि

पूर्ण विश्वस्त एव उचित मूल्य पर निम्न द्रव्य हमसे मंगाकर व्यवहार करे ।

कस्तूरी न० १ सर्वोत्तम	१० ग्राम	१२०.००
कस्तूरी काश्मीरी उत्तम	,,	७०.००
केशर काश्मीरी	,,	४०.००
केशर चूरा [औषधि निर्माण मे व्यवहार करने योग्य उत्तम]	,,	१६.००
अम्बर अत्युत्तम	,,	३६.००
गौलोचन असली	,,	४०.००
कहरवा	,,	५.५०
खर्पर [खपरिया]	,,	२.००
नीलम खड़	,,	३.००
जहरमोहरा खताई	,,	१.००
वैक्रान्त खड़	,,	२.००
पुखराज खड़	,,	३ ००
अकीक दाना	५० ग्राम	२.००
अकीकखड़	,,	१.००

सर्पगंधा

उन्माद एव अन्य मस्तिष्क विकृतियो के लिए यह जड़ी सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुकी है एवं इसकी प्रसिद्धि के कारण ही इसकी माग अधिक होने के कारण नकली जडी भी वाजार मे चल रही हैं। सर्वोत्तम असली सर्पगन्धा हमने सग्रह की है।
मूल्य— १ किलोग्राम ३०.००

इन द्रव्यों के भाव कमीशनादि कम करके लिखे गये हैं, अतएव इन भावों पर किसी को किसी प्रकार का कमीशन नहीं दिया जायगा ।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

शारीरिक चित्र

ये चित्र अनेक रंगो में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये गये हैं। इन चित्रों का साइज एक समान, २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढे हैं तथा चिकित्सालय मे टांगने पर उसकी शोभा बढ़ाने वाले है। सभी विवरण हिन्दी में लिखा है।

न० १–अस्थिपञ्जर—इस चित्र मे सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियो को बडे सुन्दर ढग से दर्शाया गया है। हाथ, पैर, रीढ़, छाती की सभी अस्थिया स्पष्ट समझ सकते हैं। मूल्य ५.००

न० २–रक्तपरिभ्रमण—इस चित्र में शुद्ध-अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिरायें अपने प्राकृतिक रंगों में दर्शाई हैं। भ्रूण मे रक्तपरिभ्रमण का पृथक् चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर मे शिरायें दिखाई गई हैं। मूल्य ५ ०० रु०

न० ३–वात नाड़ी संस्थान—इस चित्र मे सम्पूर्ण वात-नाड़ी मण्डल (Nervous System) का सुन्दर स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वंग-वातनाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क सम्बन्ध का चित्रण प्रथक् किया है। चित्र अपने ढंग का निराला है। मूल्य ५ ०० रु०

न० ४–नेत्र रचना एव दृष्टि विकृति—इस में प्रथक्-प्रथक् ६ चित्र हैं। १–दक्षिण चक्षु–इसमे चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाये गये है। २—पटलों और कोष्ठों को दिखाने के लिये चक्षु का क्षितिज काट। ३–चक्षु से सम्बन्धित नाडी। ४–नेत्र चालिनी पेशियां। ५–दृष्टिभेद (दर्शनसामर्थ्य)। ६–साधारण स्वस्थ नेत्र एव दृष्टि विकृति। इन चित्रो से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ मे आयेगा। मूल्य ५.००

चारो चित्र एक साथ मंगाने पर मूल्य केवल १६.०० पोस्ट व्यय प्रथक।

नोट—सादे बिना कपडा लकड़ी लगे चित्र शीशा मे मढने के लिए १ चित्र ४.००। चारों चित्र मंगाने पर १२.००

वैद्यों के लिये आवश्यक

रोगी रजिस्टर—हर वैद्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने रोगियो का विवरण नियमित रूप से लिखें। यह चिकित्सक को अपनी सुविधा तथा कानूनी दृष्टि दोनो प्रकार से आवश्यक है। २००, ४०० तथा ६०० पृष्ठो के ग्लेज कागज के सजिल्द 'रोगी रजिस्टर' हमने तैयार किये है जिनमें आवश्यक कालम दिये है। मूल्य २०० पृष्ठो का ३.५० रु०, ४०० पृष्ठों का ६.५० रु०, ६०० पृष्ठो का ६.५० रु०।

रोगी प्रमाणपत्र पुस्तिका—रोगियों को अवकाश प्राप्ति के लिये प्रमाणपत्र देने के फार्म ग्लेज कागज पर दो रंगो मे तैयार किये है। हिन्दी मे ५० प्रमाणपत्रो की पुस्तिका का मूल्य १.००, अंग्रेजी अथवा हिन्दी में बढिया कागज पर धन्वन्तरि साइज मे दो रंगो से छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.२५ रु०।

स्वास्थ्य प्रमाणपत्र पुस्तिका—सरकारी कर्मचारी बीमार होने के कारण अवकाश लेते है। स्वस्थ होने पर अपने कार्य पर पहुंचने पर उन्हें 'वे स्वस्थ है' इस विषय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है। वैद्य इस पुस्तिका को मंगाकर स्वस्थ-प्रमाणपत्र आसानी से दे सकेंगे। हिन्दी मे ५० प्रमाणपत्रो की पुस्तिका का मूल्य १.०० रु०, अंग्रेजी अथवा हिन्दी में बढिया कागज पर धन्वन्तरि साइज मे दो रंगो मे छपे ४० प्रमाणपत्रो की पुस्तिका का मूल्य १.२५ रु०।

रोगी-व्यवस्थापत्र—रोगी के लक्षण, तारीख, औषधि आदि इन फार्मों पर लिखकर रोगी को दे दीजिये वे रोगी रोजाना या जब औषधि लेने आयेंगे तो आपको यह फार्म दिखा देंगे। इससे उसका पहिला पूरा विवरण आपके सामने आ जायगा। साइज २०×३०=३२ पेजी। मूल्य ०.३७ प्रति सैकडा।

आघात-प्रमाणपत्र—चोट लग जाने पर चिकित्सक को प्रमाणपत्र देना होता है। इस फार्म पर आप यह प्रमाणपत्र सुगमता से दे सकेंगे। फुलस्केप साइज के २५ प्रमाणपत्रो की पुस्तिका का मूल्य १.०० रु०।

तापमापक तालिका (टेम्परेचर चार्ट)—इससे रोगियो का तापमान अङ्कित करने में बड़ी सुविधा रहती है। इस चार्ट पर दिन मे चार समय का तापमान १२ दिन तक अङ्कित किया जा सकेगा। अन्य निदान विषयक आंकड़े भी लिखे जा सकते हैं। मूल्य २५ चार्ट का १.०० मात्र।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा प्रकाशित

* आयुर्वेदिक पुस्तकें *

यन्त्र शस्त्र परिचय—लेखक डा० दाऊदयाल गर्ग ए०, एम० बी० एस० । प्रत्येक चिकित्सक का यह परम कर्तव्य है कि उस प्रत्येक उपकरण के बारे मे पूरी जानकारी रखे जिसका कि वह प्रयोग कर रहा है तथा उसकी सही व्यवहार विधि जानना अति आवश्यक है तभीवह चिकित्सा क्षेत्र मे सफलता प्राप्त कर सकता है। इस पुस्तक से चिकित्सक सभी यंत्र शस्त्रों के बारे मे पूरी सही जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस पुस्तक को चार खण्डों मे विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में उन यन्त्रशस्त्रो का वर्णन किया गया है जिनका प्रयोग केवल निदान (Diagnosis) में किया जाता है यथा रक्तचापमापक यंत्र, थर्मामीटर, स्टेथिस्कोप, नाक व गले आदि की परीक्षार्थ डाइग्नोस्टिक सैट गुदा परीक्षण यंत्र आदि। द्वितीय खण्ड मे चिकित्सा कार्य मे प्रयुक्त होने वाले उपकरणो की प्रयोग विधि दी गई है यथा इंजेक्शन लगाना, ट्रोकार एण्ड कैनूला, कर्ण प्रक्षालन, दांत उखाड़ना, आमाशय प्रक्षालन, योनि प्रक्षालन, एनिमा, कैथीटर आदि। तृतीयखण्ड मे शल्यकर्म (चीर फाड़) में काम आने वाले उपकरणोका वर्णन दिया गया है। इसी खण्ड मे टाके किस प्रकार लगाये जाते है तथा शल्य के विषय मे सभी बाते दी हैं। चतुर्थ खण्ड मे सन्तति निरोध (Birth Control) मे प्रयुक्त होने वाले उपकरणो के विषय मे आवश्यक जानकारी दी गई है।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता चित्रों की भरमार है। ३२० पृष्ठो की पुस्तक में २३० चित्रदिये गये हैं। इन चित्रो की अधिकता के कारण ही प्रत्येक विषय स्पष्ट, सरल एव सहज बुद्धिगम्य बन पड़ा है। भाषा अत्यन्त सरल है।

उत्तम ग्लेज कागज पर छपी, २०×३० सोलह पेजी साइज मे ३२० पृष्ठ, उत्तम छपाई सुपुष्ट जिल्द, आकर्षक दोरगा टाइटिल तथा २३० चित्रों स युक्त पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ६.०० है।

चिकित्सा रहस्य—लेखक श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य, इस पुस्तक मे विषय प्रवेश के पश्चात् आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त 'दोष धातु मल मूल हि शरीर' के अनुसार चिकित्सा के उपयुक्त शरीर, मन और आत्मा को स्वस्थ दशा की सुस्थिति एवं रोग प्रतिकार की दृष्टि से आवश्यक स्वस्थवृत्त सम्बन्धी कुछ बाते प्रथम अध्याय से दशम अध्याय तक संक्षेप मे वर्णित है। तत्पश्चात् रोग प्रतिकार एवं चिकित्सा-सारल्य की दृष्टि से आयुर्वेदीय प्रमुख सूत्रो का विवेचन ११ वे अध्याय में किया गया है। तदुपरात चार अध्यायो मे तीनो दोषों का विशद विवेचन एवं तत्सम्बन्धी चिकित्सा दर्शाई गई है। इस पुस्तक मे उन्ही बातो का उल्लेख किया गया है जिनकी जानकारी चिकित्सा कर्म के पूर्व ही उसकी सफलता के लिये अत्यावश्यक हैं आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति का अन्य चिकित्सा पद्धतियो के साथ तुलनात्मक विचार भी किया गया है। बीच-बीच में आधुनिक विज्ञान द्वारा समन्वय करने का प्रयत्न किया गया है। लेखन शैली इतनी सरल और रोचक है कि बहुत शीघ्र ही गूढ़ विषय भी समझ मे आ जाता है। आयुर्वेद छात्रो तथा आयुर्वेदानुरागियो के लिये यह ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा। उत्तम ग्लेज कागज पर छपी २०×३० सोलह पेजी साइज मे ३७५ पृष्ठ, सुपुष्ट जिल्द मूल्य ४.५०

वृ पाक सग्रह—लेखक श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य। इस पुस्तक में ४०० से अधिक पाकों का सग्रह प्रकाशित है। हर पाक की निर्माण विधि, मात्रा, सेवन-विधि आदि दिये है। प्राय: सभी रोगो पर २-४ प्रयोग इस पुस्तक मे आपको मिलेगे। पुस्तक हर प्रकार से उपयोगी है। मूल्य सजिल्द ३.५०

सूर्यरश्मि-चिकित्सा (नवीन सस्करण)—सूर्यरश्मि चिकित्सा को अग्रेजी मे क्रोमोपैथी (Chromopathy) कहते है। इस पुस्तक मे सूर्य की किरणो से ही समस्त रोग दूर करने का विधान है। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है। इसको पढ़कर पाठक देखेगे कि सूर्य कितना शक्तिशाली है। उसकी किरण शरीर को कितनी लाभदायक है और उसके द्वारा रोग किस प्रकार बात की बात में दूर किये जा सकते हैं। अनेक रगीन चित्र है। मूल्य ०.७५

उपदश विज्ञान (द्वितीय सस्करण)—लेखक श्री कविराज प० बालकराम जी शुक्ल आयुर्वेदाचार्य। इस

पुस्तक में गरमी, (चादी) रोग के वैज्ञानिक कारण, निदान, लक्षण तथा चिकित्सा का वर्णन किया गया है। पुस्तक के कुछ शीर्षक ये हैं—-उपदंश परिचय, प्राच्य-पाश्चात्य का साम्यवाद, संक्रमण निदान, सिफलिस के भेद, उपदंश प्राथमिक कील, लिगार्श, औपसर्गिक सकल रोग, उपदंश विकृतिया, मस्तिष्क विकार, फिरंग-चिकित्सा में पारद-प्रयोग, पथ्यापथ्य आदि उपदंश सम्बन्धी सभी विषय वर्णित है। मूल्य १.००

प्रयोग-पुष्पावली—-ये प्रयोग बहुत समय से परीक्षित हैं और सफल प्रमाणित हो चुके है। अनेक उद्योग धधो का संकेत इसमें मिलेगा जिससे पाठक बहुत लाभ उठा सकते है। समष्टि रूप मे पुस्तक बेकार मनुष्यो को व्यवसाय की ओर झुकाने वाली है। पहिले दो संस्करण शीघ्र समाप्त हो जाना इसकी उत्तमता का प्रमाण है। पृष्ठ संख्या ११२ मूल्य १ २५

रसायन सहिता (भाषा टीका सहित)—-इसमे अनेक अव्यर्थ प्रयोग, सत्व प्रस्तुत विधि, उपधातु का शोधन, मारण प्रभृति अनेक विषय दिये गये है। मूल्य १ ००

कुचिमार तंत्र (भाषाटीका)यह श्री मद्कुचिमार मुनि प्रणीत है। इसमे इन्द्रिय वृद्धि, स्थूलीकरण,कामोद्दीपनलेप, वाजीकरण,द्रावण,स्तम्भन,सकोचन व केशपात,गर्भाधान, सहज प्रसव आदि पर अनेक योग भली भाति बताये गये है। इस नवीन संस्करण मे प्रमेह, नपुंसकता, मधुमेह आदि रोगो पर स्वानुभूत प्रयोगो का एक छोटा सा सग्रह भी दिया है। मूल्य ० ५०

दशमूल (सचित्र)—-ले० लाला रूपलाल जी वैश्य,बूटी विशेषज्ञ। इस पुस्तक मे दशमूल की दशो औषधियो का सचित्र वर्णन है। साथ ही उनके पर्याय नाम, गुण और प्रयोग भी बतलाये गये हैं तथा दशमूल पञ्चमूल से बनने वाले अनेक योगों को विधिया दी गई हैं। मूल्य ०.५०

दत विज्ञान (द्वितीय सस्करण)—-लेखक स्वर्गीय श्री गोपीनाथ जी गुप्त। इसमे दातो की रचना, आतरिक दशा, रक्षा के उपाय, अनेक दन्त रोगो के भेद, वर्णन और सरल चमत्कारिक उपचार दिये गये है। चार चि- त्रयुक्त मूल्य ०.३७

न्यूमोनियां प्रकाश (द्वितीय सस्करण)—-आयुर्वेद मनीषी स्वर्गीय पंडित देवशरण जी वाजपेयी की यह वही उत्तम रचना है जिस पर धन्वन्तरि-पदक मिला था और जो निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन से सम्मान और पदक प्राप्त कर चुकी है। न्यूमोनियां की शास्त्रीय व्युत्पति, कारण, निदान, परिणाम, चिकित्सा आदि सभी बातें भली भाति वर्णित है। मूल्य ० ३७

प्राकृतिक ज्वर—-लेखक स्वर्गीय लाला –राधावल्लभ जी वैद्यराज। मलेरिया (फसली बुखार) का पूर्ण विवेचन है। आयुर्वेदीय मत से मलेरिया कैसा होता है। उसके दूर करने के लिये आयुर्वेदीय प्रयोग, क्विनाइन से हानि आदि विषयो पर पूर्ण प्रकाश डाला है। मूल्य ० २५

वेदो मे वैद्यक ज्ञान—-लेखक स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। वेद के मन्त्र जिनमे आयुर्वेदीय विषयो का वर्णन है तथा जिनसे आयुर्वेद की प्राचीनता प्रमाणित होती है, शब्दार्थ सहित दिये है। मूल्य ० २०

कूपीपक्व रसायन–लेखक वैद्य देवीशरण जी गर्ग, प्रधान सम्पादक 'धन्वन्तरि'। धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्माण होने वाले कूपीपक्व रसायनो के गुण, मात्रा, अनुपान, सेवन-विधि आदि विस्तृत रूप से वर्णित हैं। मूल्य प्रचारार्थ केवल ० ६

चन्द्रोदय मकरध्वज (तृतीय सस्करण)—लेखक स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। इस पुस्तक मे पारद-शुद्धि, गंधक-शुद्धि, पारद के सस्कार, मकरध्वज बनाने की विधि, अष्टी बनाने की विधि, मकरध्वज के गुण तथा भिन्न-भिन्न रोगो मे अनुभव सभी बाते स्वानुभव के आधार पर वर्णित हैं। मूल्य ०.२५

भस्म पर्पटी—लेखक देवीशरण जी गर्ग प्र० सम्पादक—धन्वन्तरि—इसमे धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्माण होने वाली भस्मो और पर्पटियो का विस्तृत रूप से वर्णन है। रोग लक्षणानुसार औषधियो को किस प्रकार सफलता के साथ व्यवहार किया जा सकता है यह आप इस पुस्तक से जान सकेंगे। मूल्य ६ न० पै०

रस रसायन गुटिका गूगल—धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक एवं अनुभवी चिकित्सक वैद्य देवीशरण जी गर्ग ने इस पुस्तक मे धन्वन्तरि कार्यालय में निर्मित रस-रसायन गुटिका गूगल के गुण, मात्रा, अनुपान, व्यवहारविधि बड़े ही उपयोगी ढङ्ग मे लिखी है। मूल्य ५० न० पै०

रक्त (Blood)—श्री वैद्यराज राधावल्लभ जी ने रक्त की बनावट, उपयोगिता एवं रक्त सम्बन्धी सभी

...छोटी-मोटी बातें आयुर्वेद एवं एलोपैथी उभय-पद्धतियों ...सरल हिन्दी भाषा में समझाकर लिखी है। नवीन संस्करण मू० २५ न० पै०

इन्फ्लुएन्जा (फ्लु)—लेखक श्री प० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य। इसमे इन्फ्लुएन्जा रोग का विस्तृत विवेचन तथा सफल चिकित्सा-विधि वर्णित है।। फ्लु और इसके सभी उपद्रवों की आयुर्वेदीय-चिकित्सा है। मूल्य ५० न० पै०

अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें

आयुर्वेदीय ग्रन्थ--रत्न

अष्टांगहृदय (सम्पूर्ण)—विद्योतनी भाषा टीका, वक्तव्य, परिशिष्ट एव विस्तृत भूमिका सहित। टीकाकार श्री अत्रिदेव, मूल्य १५.००, कृष्णलाल भारतीय २०.००।

अष्टांग सग्रह (सूत्र स्थान)—हिन्दी टीका, व्याख्याकार गोवर्धन शर्मा छांगाणी। मूल्य ८.००

काश्यप सहिता—टीकाकार श्री सत्यपाल भिषगाचार्य, विद्योतनी भाषा टीका विस्तृत सस्कृत हिन्दी उपोद्घात सहित। ग्रन्थ का मुख्य विषय 'कौमारभृत्य' अष्टाङ्गायुर्वेद का अपरिहार्य अङ्ग है। यह विषय पूर्ण विस्तृत और प्रमाणिक रूप से वर्णित है। मूल्य १६.००

कौमारभृत्य (नव्य बाल रोग सहित)—बाल रोगो पर प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा—विज्ञान के आधार पर श्री प रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी A M S. द्वारा लिखित विशाल ग्रन्थ। मूल्य ८.००

गगयति निदान—लेखक जैन यति गगाराम जी, अनुवादकर्ता आयुर्वेदाचार्य श्री नरेन्द्रनाथ जी शास्त्री। मूल्य ६ ००

चरक सहिता (संपूर्ण)—श्री जयदेव विद्यालंकार द्वारा सरल सुविस्तृत भाषा टीका युक्त दो जिल्दो में, [छठा सस्करण] मूल्य ३० ००

चरक सहिता—हिन्दी व्याख्या 'विमर्ग' परिशिष्ट सहित दो भागो मे। अत्युपयोगी नवीन विस्तृत टीका। मूल्य ३६.००

चरक सहिता (सम्पूर्ण)—तीनो भागो मे टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त। मूल्य २४ ००

चक्रदत्त—भावार्थ सदीपनी विस्तृत भाषा टीका तथा विमर्श टिप्पणी सहित। परिशिष्ट मे पंचलक्षी निदान, नाड़ी मूत्र परीक्षा, पथ्यापथ्य सहित। मूल्य १०.००

द्रव्य गुण विज्ञान (पूर्वार्ध)—छात्रोपयोगी सस्करण। लेखक आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य द्रव गुण, रसवीर्य, विपाक, प्रभाव, कर्म का विज्ञानात्मक विवेचन। मूल्य ५.००, प्रियव्रत शर्मा लिखित प्रथम भाग ५.५० द्वितीय, तृतीय भाग १२.५०

भावप्रकाश (सम्पूर्ण)—भाषा टीका सहित। दो जिल्दो मे शारीरिक भाग पर प्राच्य पाश्चात्य मतों का समन्वयात्मक वर्णन निघण्टु भाग पर विशिष्ट विवरण तथा चिकित्सा-प्रकारण मे प्रत्येक रोग पर प्राच्य पाश्चात्य मतो का (समन्वयात्मक) वर्णन विशेष टिप्पणी से सुशोभित है मूल्य २६ ००, श्री लालचन्द्रकृत १६.००, कान्तिनारायण मिश्र २०.००

भावप्रकाश निघण्टु—भाषा टीका एव वृहद् परिशिष्ट सहित। लेखक पडित गंगासहाय मू ९ ०० हरीतक्यादि वर्ग लेखक विश्वनाथ द्विवेदी ७ ००

माधव निदान (भाषा टीकायुक्त)—पूर्वार्द्ध-मधुकोष-संस्कृत टीका विद्योतनी भाषा टीका तथा वैज्ञानिक विमर्श टिप्पणीयुक्त। यह माधव निदान बड़ा उपयोगी बन गया है। दो भाग मूल्य १४.००

माधव निदान—मूलपाठ, मूलपाठ की सरल हिन्दी व्याख्या, मधुकोष सस्कृत व्याख्या और उसका सरल अनुवाद। वक्तव्य एवं टिप्पणीयुक्त। यह ग्रन्थ विद्यार्थियो तथा चिकित्सको के लिये अवश्य पठनीय है। पं. पूर्णानन्द शास्त्रीकृत टीका पृ०5 १०१८, दो भागो मे मूल्य १२.००,

माधव निदान—सर्वाङ्ग सुन्दरी भाषा टीका ४ ५०

माधव निदान—टीकाकार ब्रह्मशंकर शास्त्री, मधुकोष, संस्कृत व्याख्या तथा मनोरम हिन्दी टीका सहित। पृष्ट संख्या ४१२ मूल्य ६.००

रसायनसार—श्री पं श्यामसुन्दराचार्य के बीसियो वर्षों के परिश्रम से प्राप्त प्रत्युक्षानुभव के आधार पर लिखित अपूर्व रसग्रन्थ। मूल्य ८.००

रसेन्द्रसार संग्रह—वैज्ञानिक रस चन्द्रिका भाषा टीका परिशिष्ट मे नवीन रोगे पर रसो का प्रभाव मानपरिभाषा, मूषा, पुटप्रकरण, अनुपान-विधि तथा औषधि बनाने के नियमादि। मूल्य ६.००

रसेन्द्रसार संग्रह (तीन भागों मे)—आयुर्वेद वृहस्पति पं. घनानन्द जी पन्त द्वारा सस्कृत टीका और हिन्दी भाषा सहित वैद्यो, विद्यार्थियो के लिये उपयोगी है। पृष्ठसख्या ११५० मूल्य ११ ००

रसरत्न समुच्चय—नवीन सुरत्नोज्वला विस्तृत भाषा टीका एवं परिशिष्ट सहित मूल्य १०.०० श्री पं. धर्मानन्द कृत तत्व बोधिनी हिन्दी टीका १० ००

रसतरङ्गिणी चतुर्थ सस्करण—भाषाटीका सहित रस निर्माण, धातु उपधातुओ का शोधन मारण युक्त यह अनुपम ग्रन्थ है। मूल्य १०.००

रसराज महोदधि (पाच भाग)—वस्तुत यह आयुर्वेदीय रसों का सागर ही है। प्राचीन तथा सरल भाषा मे लिखा उपयोगी रस ग्रन्थ है, नवीन सजिल्दसंस्करण। मू. १०.००

योगरत्नाकर—काय चिकित्सा विषयक उपलब्ध ग्रन्थो मे यह सर्वोत्कृष्ट रचना है। चिकित्सको के लिये ज्ञातव्य सभी आवश्यक विषयों का सग्रह किया गया है। माधवोक्त-क्रम से सभी रोगो के निदान व चिकित्सा का वर्णन है। मू. १८.००

सौश्रुती - लेखक रमानाथ द्विवेदी। अष्टांग आयुर्वेद के शल्यतन्त्र पर लिखित प्राच्यपाश्चात्य समन्वय से युक्त। मू. ८ ५०

शारंगधर सहिता—वैज्ञानिक विमर्शोपेत सुबोधिनी हिन्दी टीका, लक्ष्मी नामक टिप्पणी, पथ्यापथ्य एवं विविध परिशिष्ट सहित मू.-६ ०० राधाकृष्ण पाराशर कृत टीका ५.७५

सुश्रुत सहिता सम्पूर्ण—सरल हिन्दी टीका सहित टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त। विद्यार्थियो के लिये पठनीय है। पक्के कपडे की जिल्द मू १५ ००, कविराज अम्बिकादत्त कृत सम्पूर्ण २४.००

हारीत संहिता—ऋषि प्रणीत प्राचीन सहिता। भाषा टीका सहित, टीकाकार शिवसहाय जी सूद. पृष्ठ ५१५ मूल्य ८.५०

हरिहर संहिता—वैद्यराज हरिनाथ साख्याचार्य नवीन औषधियों का भी समावेश है। सरल भाषा टीका सहित मूल्य ८.००

चिकित्सा रत्न—ले. रामरतन गगेले। एक चिकित्सक के लिये सब प्रकार की सक्षिप्त उपयोगी सामग्री से युक्त सजिल्द मू० ६.००

चिकित्सातत्व प्रदीप—एक चिकित्सक के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ। प्रथम ६.००, सजिल्द ११.०० द्वितीय भाग १० ०० सजिल्द १२.००

वनौषधि चन्द्रोदय [१० भाग]—प्रत्येक वनस्पति के पर्याय, परिचय, गुणकर्मादि-विवेचन युक्त श्री चन्द्रराज भडारी कृत मू० ४०.००, प्रत्येक भाग ५.००

चिकित्सा चन्द्रोदय (सात भाग)

हिन्दी ससार मे अपूर्व और पहला ग्रन्थ बिना गुरु के वैद्यक सिखाने वाला, जो सस्कृत जरा भी नहीं जानते वे भी इस ग्रन्थ को बिना गुरु के पढकर वैद्य बन सकते है। जिन्हे शक हो वे केवल चोथा भाग मगा कर दिल का वहम मिटा लें।

चिकित्सा चन्द्रोदय	१ ला	भाग	४.५०
,, ,,	२ रा	भाग	८ ००
,, ,,	३ रा	भाग	६.००
,, ,,	४ था	भाग	८.५०
,, ,,	५ वा	भाग	८ ००
,, ,,	६ ठा	भाग	५ ००
,, ,,	७ वा	भाग	१३.००
			५३.००

नोट—एक साथ ७ भाग खरीदने वाले को किताबें रेल पार्सल से मंगानी चाहिए। एक पूरा सैट लेने वालों को कमीशन कम करके ४८.०० रु० देने पडते है।

स्वास्थ्य रक्षा—गृहस्थो के घर की यह रामायण है। हर घर मे इसका रहना जरूरी है। इसका नाम ही स्वास्थ्य रक्षा उर्फ तन्दुरुस्ती का बीमा है। तन्दुरुस्ती नही तो दुनिया मे रहा ही क्या ? मू० ६.००

काय चिकित्सा (प्रथम भाग)—श्री रामरक्ष पाठक जी की किसी भी पुस्तक को जिसने पढा है वह भली प्रकार इस पुस्तक की उपयोगिता जान सकता है। इस पुस्तक मे आयुर्वेद सिद्धान्तों का विशद रूप में विवेचन

किया गया है । पुस्तक विद्यार्थियो एव अध्यापकों सभी के लिए अत्युपयोगी है । लगभग ५५० पृष्ठ, क्राउन साइज, छपाई सुन्दर, कपड़े की जिल्द मूल्य १२.५०

भैषज्य सार सग्रह—लेखक कविराज हरस्वरूप शर्मा, इसमे सभी प्रचलित आयुर्वेदिक औषधियों की निर्माण विधि, मात्रा, अनुपान, गुण एवं विशेष विवेचन दिया गया है। उत्तम ग्लेज कागज पर सुन्दर सजिल्द ८८६ पृष्ठ की पुस्तक चिकित्सको, औषधि-निर्माताओ के लिए अत्युपयोगी है । मूल्य १५ ००

वृ० रसराज सुन्दर—श्रीदत्तराम चौबे द्वारा सकलित अत्युपयोगी रसग्रन्थ भाषाटीका सहित । सजिल्द मूल्य १०.००

शार्ङ्गधर सहिता—भाषाटीका सहित । टीकाकार पं० केशवदेव शास्त्री साहित्याचार्य । सजिल्द ८ ००
श्री पं० रामेश्वरभट्ट कृत टीका ८ ००

निदान चिकित्सा हस्तामलक—लेखक वैद्य रणजीत-राय देसाई, विद्वान चिकित्सको के लिये पठनीय उत्तम पुस्तक सजिल्द लगभग ७०० पृष्ट ६.००

व्याधि मूल विज्ञान—(पूर्वार्ध) ले० स्वामी हरि-शरणानन्द वैद्य पुस्तक अपने ढङ्ग की उत्तम तथा पठनीय है । १२.००

औषधि गुण-धर्म विवेचन—कालेड़ा-बोगला से प्रका-शित अपने विषय की उत्तम पुस्तक पृष्ठ ३०६ मूल्य ३ ०० मात्र ।

भिषक्कर्म सिद्धि—आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् श्री रमानाथ द्विवेदी द्वारा लिखित यह अनुपम ग्रन्थ है । चिकित्सक के लिए जानने योग्य सभी विषयो का इनमे सग्रह किया गया है । ग्रन्थ के ५ खण्ड किये गए हैं—प्रथम खण्ड में निदान पचक, द्वितीय खण्ड मे पचकर्म, तृतीय मे चिकित्सा के आधारभूत सिद्धान्त, चतुर्थ खण्ड मे ३३ अध्यायो मे रोगानुसार आयुर्वेदीय सफल-चिकित्सा तथा अन्त मे पंचम खण्ड में परिशिष्टाध्याय मे आवश्यक जानकारी दी गई है। पुस्तक चिकित्सको, अध्यापको एवं विद्यार्थियो के लिए अद्वितीय है। सुन्दर छपाई, पक्के कपड़े की जिल्द ७२५ पृष्ठ । मूल्य २०.००

काय चिकित्सा—श्री गगासहाय पाण्डेय-इस पुस्तक मे चिकित्सा के सैद्धान्तिक पक्ष का स्पष्टीकरण एवं चिकित्सा के विभिन्न उपक्रमो का व्यवहारिक स्वरूप देने के अतिरिक्त व्याधि की विभिन्न अवस्थाओं के उपचार-क्रम का विशद विवेचन किया गया है। प्राच्य एव पाश्चात्य चिकित्सा का समन्वयात्मक निर्देश भी किया गया है। अन्त मे विशिष्ट सक्रामक व्याधियो का विस्तृत परिचर्यादि एव चिकित्सा-क्रम है। लगभग १००० पृष्ठ, सुन्दर छपाई, क्राउन साइज सजिल्द मूल्य २५.००

इन्द्र निदान—इसमे सस्कृत माधव-निदान को अनेक प्रकार के शब्दो मे बडी सरल और सरस हिन्दी भाषा मे टीका की गई है तथा आधुनिक रोगो का परि-शिष्ट मे कथन कर दिया है। इसके टीकाकार श्री इन्द्रमणि जैन अलीगढ हैं । सुन्दर पक्की बढ़िया जिल्द ३०० पृष्ठ । मूल्य केवल ६ ००

वात्स्यायन कामसूत्र—कविराज डा० रामसुशील सिह शास्त्री एम० ए०, ए० एम० एस०, इसमें कामशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग नातिसक्षेप विस्तरेण वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमे पुरुष तथा स्त्री जननेन्द्रियो के शारीर तथा क्रिया-विज्ञान का सक्षिप्त परिचय, तथा वीर्य सम्बन्धी प्रायशः होने वाले प्रमुख रोगो पर भी प्रकाश डाला गया है। यथावश्यक चित्र भी दिये हैं। मूल्य ५ ५०

चिकित्सादर्श—आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान श्री राजेश्वरदत्त जी शास्त्री द्वारा लिखित यह अपूर्व ग्रन्थ चिकित्सा-सूत्रो का एकत्र सग्रह है। नुस्खा नवीसी की तो यह अपूर्व पुस्तक है। द्वितीय एव तृतीय भाग मे रोगों का विशिष्ट वर्णन दिया है। मूल्य प्रथम भाग ३.५०, द्वितीय भाग ७ ००, तृतीय भाग ७ ००

आयुर्वेद मलेरिया-चिकित्सा—मलेरिया के विषय मे सम्पूर्ण जानकारी देने वाली पुस्तक है। लेखक श्री डा० परमानन्द तिवारी एव कवि डा० राधाकृष्ण पाराशर हैं। मूल्य २ ००

यकृत चिकित्सा—डा० दयाशकर पाण्डेय–० ७५

मोटापा दूर करने के साधन—डा० युगलकिशोर चौधरी—१ ००

शेखावाटी की जड़ी बूटियां—आचार्य नित्यानन्द एव कवि० कैलाशचन्द्र शर्मा–१.५०

मधुमेह, जिगर, गुरदो एव मसाने के रोग—डा० युगलकिशोर चौधरी–१.५०

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की १९६५ की उपवैद्य, वैद्य-विशारद, आयुर्वेदरत्न, तथा समस्तरीय परीक्षाओं के लिए विशेष उपयोगी पुस्तकें—

अशोक उपवैद्य गाइड—(शिवकुमार व्यास) सम्पूर्ण छः पत्रों की परीक्षोपयोगी सामग्री प्रश्नोत्तर रूप में गत परीक्षाओं के प्रश्न पत्र के आधार पर दी है। ५.००

अशोक वैद्य विशारद गाइड–(प्रथम खण्ड) लेखक–आचार्य ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, द्वितीय सस्करण ६.००

अशोक वैद्य विशारद गाइड–(द्वितीय खण्ड) लेखक–आचार्य ज्ञानेन्द्र पाण्डेय द्वितीय संस्करण ८.००

अशोक आयुर्वेदरत्न गाइड—(प्रथम खण्ड) लेखक–शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य (B.I.M S.) १५.००

अशोक आयुर्वेदरत्न गाइड–(द्वितीय खण्ड) लेखक–शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य (B.I.M.S.) १५.००

इन गाइडो मे निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार परीक्षोपयोगी शैली में मैटर दिया गया है।

पदार्थ विज्ञानम्—लेखक श्री पं. वागीश्वर शुक्ल वैद्य। इस ग्रन्थ मे आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन सरल भाषा में किया गया है। मूल्य ८ रु०।

शुद्ध आयुर्वेद चिकित्सा मार्ग दर्शिका (आयुर्वेदिक गाइड) इसके लेखक हैं आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान श्री अत्रिदेव विद्यालकार–इस पुस्तक के तीन भाग है–प्रथम भाग में रोगानुसार चिकित्सा, द्वितीय भाग मे विशिष्ट ज्ञातव्य तथा तृतीय भाग में रोगानुसार सिद्ध योगो का सग्रह है। सजिल्द मूल्य ५ रुपया।

अष्टांग हृदयम्–सर्वाङ्ग सुन्दरी व्याख्या विभूषित। टीकाकार श्री ग- लालचन्द्र वैद्य। व्याख्या बहुत सुन्दर एव सरल भाषा मे की गई है। लगभग ८५० पृष्ठ, बड़ा साइज, कपड़े की सुपुष्ट जिल्द मूल्य केवल १५ रु०

आयुर्वेद प्रकाश–टीकाकार श्री गुलराज शर्मा मिश्र आयुर्वेदाचार्य लगभग ५०० पृष्ठीय रसशास्त्र के इस उत्कृष्ट ग्रन्थ मे लेखक के वचनानुसार केवल उन्ही विषयो का समावेश किया गया है जिनकी कि उसने स्वय परीक्षा कर ली है। मूल्य १२.५०

भेल सहिता—सस्कर्त्ता आचार्य गिरिजादयालु शुक्ल, संस्कृत भाषा मे श्लोको का अभूतपूर्व सग्रह, अत्युत्तम छपाई मूल्य १० रु०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान—लेखक श्री शिवकुमार व्यास। प्रारम्भ मे द्रव्य गुण कर्म वीर्य विपाक व प्रभाव का विवेचन देकर बाद मे लगभग ३५० द्रव्यो का विवरण, उनके गुण आदि दिये गए है। सजिल्द १० रु०

स्वास्थ्य विवेचन—लेखक श्री शिवकुमार वैद्यशास्त्री, इसमे क्षय रोग के सम्बन्ध मे सभी ज्ञातव्य बाते, एवं चिकित्सा दी है। कपड़े की जिल्द मूल्य ५ रुपया

स्वास्थ्य शिक्षा पाठावलि–श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर एवं वासुदेव भास्कर घाणेकर। आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-ज्ञान सम्बन्धी उत्कृष्ट संग्रह। साथ ही सरल हिन्दी भाषा मे टीका दी है। मूल्य ३.५०

दिक व सिल गाइड (रुदन्ती चिकित्सा)—लेखक अमरदास भाटिया–इससे क्षय रोग का नवीन उपचार रूदन्ती द्वारा अनेक एक्सरे फोटो देकर समझाया गया है। मूल्य ३ रुपया

घर मे वैद्य—रोगानुसार सस्ते नुस्खे दिए हैं। मूल्य १ रु०

पुरुष रोग चिकित्सा और ताकत की दवाइया—कविराज दाऊदयाल गुप्त—पुरुषों के गुप्त रोगो मे उपयोगी बहुमूल्य नुस्खे दिए हैं मूल्य ७५ नये पैसे

नाड़ी परीक्षा–लेखक पं० बाबूराम शर्मा ४० पैसे

एलोपैथिक पुस्तकें हिन्दी में

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—लेखक हरिस्वरूप कुल-श्रेष्ठ नवीन मतानुसार शवच्छेदन (Dissection) विषयक विशाल ग्रन्थ है। विषय का स्पष्ट ज्ञान करने के लिए अनेक चित्र साथ मे दिए गए है। मूल्य १५ ००

अभिनव विकृति विज्ञान—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A. M. S.—विकृति-विज्ञान (Pathology) विषय का हिन्दी भाषा मे विशाल ग्रन्थ। अनेक चित्र साथ मे दिये गये है। प्रत्येक रोग का विकास किस प्रकार होता है। एव उस समय शरीर के किस अंग मे क्या क्या परिवर्तन होते है स्पष्ट रूप से समझाया गया है। अन्त मे हिन्दी एव इंगलिश शब्दो की विशाल सूची दी गई है। विद्यार्थियों के लिये उपादेय है। मूल्य २२.००

एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा—लेखक डा० अयोध्यानाथ पाण्डेय। अकारादि क्रमानुसार प्रत्येक रोग पर

प्रयोग की जाने वाली पेटेण्ट औषधिया दी है तथा वे पेटेण्ट औषधि किस-किस रोगो पर प्रयुक्त हो सकती है यह भी दिया गया है मूल्य २.००

अभिनव नेत्र चिकित्सा विज्ञान—लेखक प० विश्वनाथ द्विवेदी शास्त्री B. A. आयुर्वेदाचार्य। प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनो का समन्वय करते हुए नेत्र-चिकित्सा पर हिन्दी मे विशाल ग्रन्थ। मूल्य १०.००

शल्य प्रदीपका—लेखक डा० मुकन्दस्वरूप वर्मा। शल्य(सर्जरी)विषयक हिन्दी मे लिखी हुई पुस्तक है। प्रत्येक प्रकार के शल्य कर्म को विस्तार से लिखा है। अनेक चित्र दिये है। मूल्य १२ ५०

वाल रोग चिकित्सा—लेखक डा० रमानाथ द्विवेदी एम. ए, ए. एम एस.। प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का विस्तार से समन्वय करते हुए विशुद्ध वर्णन युक्त। मूल्य ५ ००

अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान—लेखक प्रियव्रत शर्मा। यह पुस्तक हिन्दी में अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। मूल्य १०.००

धात्री विज्ञान—डा० शिवदयाल गुप्ता A, M. S, प्रारम्भ मे नारी जननेन्द्रिय रचना एव क्रिया शरीर, गर्भिणी परिचर्या, नवजात शिशु-परिचर्या एव बाल्यकालीन रोगो का सक्षेप वर्णन किया है। अनेक सम्बन्धित चित्र भी दिये हैं। मूल्य २.५०

गर्भस्थ शिशु की कहानी—लेखक डा. लक्ष्मीशङ्कर गुरु। प्रसूत विषयक हिन्दी मे उत्तम एवं सक्षिप्त पुस्तक। सम्बन्धित चित्र भी हैं। मूल्य २ ००

जन्म-निरोध—लेखक ए० ए० खां M Sc.। पुस्तक मे जन्मनिरोध के लिये अनेक प्रकार की भौतिक, रासायनिक, यान्त्रिक एव शल्यकर्मीय विधिया दी गई है। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। मूल्य ६ ००

सामान्य शल्य विज्ञान [सचित्र]—लेखक डाक्टर शिवदयाल गुप्त A. M. S.। शल्य [सर्जरी] विषयक हिन्दी भाषा मे विशाल ग्रन्थ। प्रत्येक विषय को आवश्यकीय चित्रो द्वारा समझाया गया है। पुस्तक अध्यापकों, विद्यार्थियो एव चिकित्सको—सभी के लिये अत्यन्त उपादेय है। मूल्य १२.००

आदर्श एलोपैथी मेटेरिया मैडिका—एलोपैथी विज्ञान के अनुसार प्रत्येक औषधि की प्रकृति, गुणधर्म, उपयोग, मात्रा, रोग, निदान के अनुसार वर्णित हैं। मूल्य ११.००

हिन्दी मार्डन मैडिकल ट्रीटमेट—(आधुनिक चिकित्सा) लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री एम. एल. गुजराल M. B.M .R .C. P [लन्दन] द्वारा लिखित एलोपैथिक चिकित्सा का सर्वोत्तम प्रामाणिक ग्रन्थ है। चिकित्सको के लिये अत्युपयोगी है। मूल्य २०.००

पेटेन्ट प्रैस्क्राइबर या पेटेन्ट चिकित्सा—प्रत्येक रोग पर व्यवहार होने वाली एलोपैथिक पेटेट औषधियो का तथा इन्जेक्शनों का विवरण सुन्दर ढंग से दिया है। मूल्य द्वितीय संस्करण ८.००

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान [दो भाग]—श्री डा० आशानन्द पचरत्न M B. B S. आयुर्वेदाचार्य। यह चिकित्सा-विज्ञान की सुन्दर रचना है। इसमे १९ अध्यायो मे रोगो का वर्णन तथा उनकी सफल एलोपैथिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा बड़ी खूबी के साथ दी है। इनकी वर्णन-शैली तुलनात्मक दृष्टि से भी महत्व की नहीं वरन् सफल चिकित्सा की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ चिकित्सकों को उपादेय है। कपड़े की सुन्दर जिल्द मूल्य प्रथम भाग १० ०० द्वितीय भाग [समाप्त]

आयुर्वेद एण्ड एलोपैथिक गाइड—लेखक आयुर्वेदाचार्य प० रामकुमार द्विवेदी। हिन्दी मे प्राच्य-पाश्चात्य विज्ञान का विस्तृत ज्ञान देने वाली बेजोड़ पुस्तक है। मू० १२००

वर्मा एलोपैथिक निघण्टु—डा० वर्मा जी की कृति। इसमे १००० से अधिक पेटेन्ट तथा साधारण औषधियों के वर्णन के अतिरिक्त सैकड़ों नुस्खे तथा अन्य उपयोगी बातें दी है। मूल्य १२.००

एलोपैथिक गाइड—लेखक डा० रामनाथ वर्मा एलोपैथी की ज्ञातव्य बातें सरल हिन्दी मे बताने वाली सुप्रसिद्ध पुस्तक, छटा संस्करण। मूल्य १२.००

एलोपैथिक योगरत्नाकर—श्री वर्मा जी की उपयोगी पुस्तक। एलोपैथिक मिक्श्चर तथा प्रयोगो का विशाल संग्रह। पृष्ठ ७४१. मूल्य १३.००

(एलोपैथिक-चिकित्सा (चौथा संस्करण)—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा। इसमें प्रायः सभी रोगो के लक्षण, निदान आदि सक्षेप मे वर्णन करके उन रोगो

की चिकित्सा विस्तृत रूप से दी है। योग आधुनिकतम अनुसन्धानो को मथकर और अनुभव सिद्ध लिखे गये है। ८२५ पृष्ठ विशाल सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२.००

एलोपैथिक पाकेट गाइड—एलोपैथिक चिकित्सा का सूक्ष्म रूप यह पाकेट गाइड है इसे आप जेब मे रखकर चिकित्सार्थ जा सकते है जो आपका हर समय साथी का काम देती है। मूल्य ३ ००

एलोपैथिक पेटेन्ट मेडीशन—लेखक डा० अयोध्यानाथ पाण्डेय। कौन पेटेन्ट औषधि किस कम्पनी की तथा किन-किन द्रव्यो से निर्मित हुई है किस रोग मे प्रयुक्त होती है ? लिखा गया है। दूसरे अध्याय मे रोगानुसार औषधियो का चुनाव किया है। मू० ४.५०

एलोपैथिक मेटेरिया मैडिका—(पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान)लेखक कविराज रामसुशीलसिंह शास्त्री A M S। यह पुस्तक अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। लेखक ने विषय को आयुर्वेद चिकित्सकों तथा विद्यालयो के लिये विशेष उपयोगी ढङ्ग से प्रस्तुत किया है। मू० प्रथम भाग समाप्त, द्वितीय भाग ३०.००

एलोपैथिक मैटेरिया मैडिका—लेखक डाक्टर शिवदयाल जी गुप्ता ए. एम. एस.। इस पुस्तक में अब तक की सम्पूर्ण औषधिया जो एलोपैथी मे समाविष्ट हो चुकी है। सभी दी है। सफल, सुबोध, भाषा, वैज्ञानिक-क्रम से विषय का स्पष्टीकरण, औषधियो के सम्बन्ध मे आधुनिक सूचना, भिन्न-भिन्न औषधियो से सम्बन्धित तथा चिकित्सा मे प्रयुक्त योगो का निर्देश पुस्तक की विशेषता है। हिन्दी मे सबसे महान् और विशाल अद्वितीय पुस्तक जिसमे १३०० पृष्ठ है। मू० १२.००

एलोपैथिक सफल औषधियां—एलोपैथी की नवीनतम अत्यन्त प्रसिद्ध खास खास औषधियो का गुणधर्म विवेचन जो आजकल बाजार में वरदान सिद्ध हो रही हैं। सभी सल्फाग्रुप आदि औषधियों के वर्णन सहित। मू० ३ ५०

सचित्र नेत्र विज्ञान—लेखक डा० शिवदयाल गुप्त, पृष्ठ संख्या ५९४, चित्र संख्या १३, मूल्य ८ ००

मल-मूत्र-रक्तादि परीक्षा—लेखक डा० शिवदयाल गुप्त, अपने विषय की सर्वाङ्ग पूर्ण सचित्र और वैद्यों के बड़े काम की पुस्तक है। मूल्य ३ ००

मिक्श्चर (छठा संस्करण)—प्रथम २९ पृष्ठो में मिक्श्चर बनाने के नियम, औषधियो की तोल-नाप व्यवस्थापत्रो मे लिखे जाने वाले संकेतो की व्याख्या आदि ज्ञातव्य बाते दी हैं। बाद मे उपयोगी इञ्जेक्शनो का भी संकेत किया है। अन्त मे देशी दवाओ के अंग्रेजी नाम दिए है। २१७पृष्ठ की यह पुस्तक चिकित्सको के लिए अत्युपयोगी है। मूल्य २.५०

एनिमा और कैथीटर	०.३७
एनिमा टीचर	०.२५
कम्पाउन्डरी शिक्षा	२.५०

सफल कम्पाउण्डर कैसे बने—डा० रामचन्द्र सक्सैना। हिन्दी में अब तक ऐसी पुस्तक की कमी थी जिससे कम्पाउण्डर बनने की प्रारम्भिक आवश्यकताओ, शिक्षण, छोटे-मोटे नुस्खे, नर्सिंग शिक्षा, फर्स्टएड आदि का ज्ञान हो सके। प्रस्तुत पुस्तक से यह कमी दूर होती है। सुन्दर छपाई, सजिल्द मू० ३ ००

नव्य चिकित्सा-विज्ञान (संक्रामक रोग) भाग १—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा व्यस्त चिकित्सको के लिए आधुनिक चिकित्सा विषयक अति उत्तम पुस्तक है। मू० केवल ८ ००, द्वितीय भाग ८ ००

बीसवी शताब्दी की औषधिया—इसमे नवाविष्कृत सभी औषधियो के गुणधर्म आदि नातिसंक्षेपविस्तरेण दिए गए है। हिन्दी भाषा में अपने विषय की उत्तम कृति है। मू० ८.००

रोग निवारण—प्रस्तुत पुस्तक मे आधुनिक-चिकित्सा पद्धति के अनुसार रोगो की चिकित्सा के विस्तारपूर्वक वर्णन के साथ-साथ संक्षेप मे आयुर्वेदिक-चिकित्सा का भी वर्णन किया है इसके लेखक प्रसिद्धि प्राप्त डा० शिवनाथ खन्ना है। ८४८ पृष्ठ, १८४ पृष्ठ की परिशिष्ट, मू० १४ ००

गर्भरक्षा तथा शिशु परिपालन श्री डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा द्वारा लिखित अपने विषय की सरल हिन्दी में उत्कृष्ट पुस्तक है। यथास्थान चित्र भी दिए गए है। मूल्य ४.५० मात्र

शालाक्य तंत्र (निमि तंत्र)—अष्टाङ्ग आयुर्वेद के महत्वपूर्ण अङ्ग शालाक्य पर यह एक उत्तम ग्रन्थ है। आधुनिक एवं प्राच्य दोनो दृष्टिकोण से पूर्ण विवेचन किया गया है। इसके रचियता आयुर्वेद-बृहस्पति श्री रमानाथ जी द्विवेदी ए. एम एस है। मू० ६ ००

संकटकालीन प्राथमिक चिकित्सा—डा० प्रियकुमार चौबे द्वारा लिखी गई हिन्दी मे अपने विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। विषय को स्पष्टतः समझाने के लिए पुस्तक मे ८२ चित्र दिए गए हैं। मूल्य केवल ४.७५

नासा, गला एवं कर्ण रोग चिकित्सा—डा० प्रियकुमार चौबे द्वारा लिखी गई इस पुस्तक मे समस्त रोगों का विशद रूप से परिचय कराया गया है। आजकल की पेटेन्ट औषधियो का भी उत्तम रूप से परिचय है। यथास्थान चित्र भी दिए है। मूल्य केवल ३ ५०

जीवतिक्ति विमर्श या विटामिन तत्व—लेखक डा० पद्मदेव नारायणसिंह। विटामिन विषयक अत्युपयोगी सचित्र पुस्तक ५.००

प्रसूति तंत्र—लेखक डा० रामदयाल कपूर। पुस्तक मे श्रोणि-रचना, काम-विज्ञान, गर्भ-विज्ञान, गर्भावस्था और उसकी चर्या, प्रसव-विधि, प्रसवोत्तर कर्म, गर्भावस्था के विकार, प्रसव के विकार, प्रसूनिकालिक विकार, नवजात शिशु के विकार, प्रसूतिका शल्य-कर्म आदि सभी विषय अच्छी तरह समझाकर लिखे गये है। मू० ५.७५

ऐलोपैथिक सग्रह—भाग प्रथम, मैटीरिया मैडिका ऐलोपैथिक तथा डिस्पेंसिंग गाइड—जिसमे सभी ऐलोपैथिक औषधियो का ब्यौरा बिस्तारपूर्वक दिया गया है सभी औषधियो के देशी प्रचलित नाम, मात्रा एवं लाभ, सभी नवीन औषधिया,कई एक फार्माकोपिया की सभी औषधियां इसमे सम्मिलित है। मू० १२.००

ऐलोपैथिक संग्रह—भाग पाचवा—नर्सिंग, मिडवाइफरी तथा स्त्री रोग चिकित्सा मू० ७ ५०

ऐलोपैथिक सग्रह—भाग छठा—यह सर्जीकल तथा मकैनीकल दन्द नसाजी पर पहली सम्पूर्ण हिन्दी पुस्तक है जिसमे सर्जीकल दन्त चिकित्सा, दांतो के सैट बनाने का पूर्ण कोर्स है। दर्जनो फोटो हैं मू० १५ ००

बाल रोग चिकित्सा—इसमे बालको के समस्त रोगो का ब्यौरा दिया गया है। मू० २.५०

दिक सिल तथा रुदन्ती—इस पुस्तक में दिक रोग का नवीन उपचार रुदन्ती द्वारा, कई ऐक्सरे फोटो दे कर समझाया गया है। मूल्य ३.००

एक्सपर्ट फार्मासिस्ट तथा कम्पाउण्डरी शिक्षा—अमरनाथ भाटिया—२ ५०

डिस्पेंसर गाइड तथा डाक्टरी नुस्खे—इस पुस्तक में यह समस्त जानकारी दी गई है जो एक डिस्पेंसर तथा फार्मासिस्ट के लिए आवश्यक है। मूल्य २.५०

होम्योपैथिक सग्रह—भाग प्रथम—इसमे पूर्ण होम्योपैथिक विधान (Organon), मैटीरिया मैडीका, रेपर्टरी तथा नुस्खे दिए गए हैं। मू० १०.००

होम्योपैथिक सग्रह—भाग दूसरा—इसमें मेडिका होम्यो विस्तारपूर्वक दिया गया है। औषधियो के हिन्दी प्रचलित नाम, मदर टिंक्चर तथा डाइलूशन बनाने की विधि, औषधि चिन्ह कच्चे रूप में इसका प्रयोग, होम्योपैथिक प्रूविंग तथा औषधियो के सम्बन्ध पूर्ण रूप से दिए गए हैं। ऐसा सम्पूर्ण मैटीरिया मैडीका आज तक हिन्दी भाषा मे नही छापा गया। १५.००

एलोपैथक पाकेट प्रेस्क्राइबर—श्री डा० शिवनाथ खन्ना—प्रत्येक रोग पर सफल पेटेन्ट औषधिया तथा मिक्चर आपको इस पुस्तक मे मिलेगे। पृष्ठ ३१२ सजिल्द ५.००

सफल आधुनिक औषधिया—श्री डा० पद्मदेव नारायणसिंह एम० बी० बी० एस०—इसमे नवीन आविष्कृत एवं चमत्कारिक अचूक औषधियों का वर्णन है। विटामिन्स, टानिक्स, सल्फा ग्रुप की तथा एण्टीबायोटिक्स की समस्त औषधियों के साथ-साथ टी० बी०, डायबिटीज, गठिया, कृमि, कुष्ठ, हाईब्लडप्रेशर आदि का विशेष विवेचन दिया है। पृष्ठ ३६२, सजिल्द ४ ५०

एलोपैथिक पाकेट प्रेस्क्राइबर—शिवनाथ खन्ना—यह बहुत उपयोगी पुस्तक है। तमाम पुस्तक मे अंग्रेजी दवाओं के उपयोगी नुस्खे दिये गए है। अवश्य मगायें। मूल्य ५.००रुपया।

एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत—डा० हरनारायण कोकचा—यह पुस्तक ५ ० के लगभग चार्टों तथा तालिकाओ से सुसज्जित है। इसमे एलोपैथिक की लगभग दस हजार पेटेण्ट औषधियो और इजेक्शनो को चार्टों मे खोलकर खुलासा समझाया गया है। सैकड़ों रोगों के सफल इलाज का विस्तृत वर्णन चार्टो के रूप मे दिया गया है। पुस्तक अत्युपयोगी है। मूल्य ८ रु० मात्र

कम्पाउन्डरी शिक्षा, रोगी परिचर्या, विषविज्ञान तथा चिकित्सा प्रवेश—डा० आर० सी० भट्टाचार्य इस पुस्तक मे औषधि निर्माण, विष चिकित्सा, रोगी परिचर्या,सामान्य चिकित्सा आदि समाविष्ट है। मूल्य ६ रुपया

एलोपैथिक नुस्खा—डा० एम० एल० शर्मा–इसमें बीमारियों के नाम, सर्वसाधारण के रोज काम में आने वाले इंजेक्शन तथा पेटेण्ट दवाओ का ही वर्णन है। मूल्य २.००

एलोपैथिक नुस्खा	२.००
आपरेशन अथवा चीरफाड़	०.५०
कपिङ्ग ग्लास मैन्युअल	०.६०
मलेरिया (एलोपैथिक)	२.२५
कैथीटर गाइड	०.२५
तापमान (थर्मामीटर)	०.२८
थर्मामीटर मास्टर	०.२५
स्टेथिस्कोप तथा नाड़ी परीक्षा	०.७५
स्टेथिस्कोप शिक्षक	१.००
स्टेथिस्कोप विज्ञान	१ ३७
एलोपैथिक सार संग्रह	७.००
एनाटोमी (शरीर ज्ञान संग्रह)	५.००
मलेरिया कालाजार	१.७५
मैडीसन (चिकित्सा ज्ञान सग्रह)	५ ००

इंजेक्शन विषयक पुस्तकें

इजेक्शन—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा-अपने विषय की हिन्दी मे सचित्र सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। थोड़े समय मे ही ६ संस्करण हो जाना ही इसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है। इसके आरम्भ मे सिरिज के प्रकार, इजेक्शन लगाने के प्रकार तथा उनके लगाने की विधि रगीन एव सादे चित्रो सहित पूरी तरह समझाई गई है। बाद मे प्रत्येक इंजेक्शन का वर्णन, उसकी मात्रा, उसके गुण, प्रयोग करने मे क्या सावधानी बर्तनी चाहिए आदि सभी बाते विस्तार से लिखी गई है। अन्त मे अकारादि क्रम से समस्त इजेक्शनों की सूची तथा पृष्ठ संख्या दी गई है। चिकित्सको के लिये पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। सजिल्द मू १०.००

सचित्र इंजेक्शन—डा. शिवनाथ खन्ना–प्रस्तुत पुस्तक इजेक्शन अर्थात् सूचीवेधन नामक विषय पर विस्तार-पूर्वक, सरल, जनप्रचलित भाषा मे समझाकर लिखी गई है। चार खण्ड है जिसमे प्रथम खण्ड मे इजेक्शन की विधियां तथा इजेक्शन के भेद, द्वितीय खण्ड मे विभिन्न इंजेक्शनों के गुण, कर्मादि, तृतीय खण्ड में प्रधान रोगो के लक्षण तथा उनमे दिये जाने वाले इजेक्शन और चतुर्थ खण्ड में अन्य आवश्यक जानकारी दी है। पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम है। म. ११ ००

इजेक्शन तत्व प्रदीप—लेखक डा० गणपति सिंह वर्मा। सभी इजेक्शनो का वर्णन है तथा उनके भेद और लगाने की विधि सरलतया दी है। मू. ५ ००

सूचीवेध विज्ञान—लेखक डा. रमेशचन्द्र वर्मा डी. आई एम. एस.। यह पुस्तक भी एलोपैथी इजेक्शनो की उपयोगी विस्तृत-सामग्री से पूर्ण है। पैनसिलीन, विटामिन आदि का भी विस्तृत वर्णन है। पक्की जिल्द मू० ७.५०

सूचीवेध विज्ञान—लेखक श्री राजकुमार द्विवेदी। इस छोटी पुस्तिका मे आपको बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। गागर मे सागर भर दिया है। मू २ ५०

होमियो इजेक्शन चिकित्सा—आरम्भ मे इजेक्शनो के भेद तथा उनके लगाने की विधि आदि का सचित्र वर्णन दिया है। तत्पश्चात् होमियोपैथिक औषधियो के गुणादि का वर्णन दिया है। मू. १.७५

आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध (इजेक्शन)—लेखक वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन। इस पुस्तक मे आयुर्वेदिक द्रव्यो एव जड़ी बूटियो के इजेक्शनो का विस्तृत वर्णन किया गया है। स्वानुभव के आधार पर लिखी अत्यन्त उपयोगी पुस्तक का मूल्य ५ ००

इजेक्शन गाइड—श्री महेन्द्रप्रताप शर्मा एवं प्रमोद बिहारी सक्सैना–इस पुस्तक मे एलोपैथिक प्रणाली की विशद विवेचना के साथ साथ होमियोपैथी एव आयुर्वेदिक प्रणाली द्वारा इजेक्शन क्रिया का यथेष्ट वर्णन किया गया है। सजिल्द मू. ६.००

होमियोपैथिक इजेक्शन गाइड—डा० जगदीश्वर सहाय भार्गव–होमियो इन्जेक्शनों का सारगर्भित वर्णन किया है। मूल्य १ ५०

यूनानी पुस्तकें

जर्राही प्रकाश (चारो भाग)–इसमे घाव और व्रण से सम्बन्धित जर्राही के लिये उर्दू, संस्कृत व डाक्टरी आदि अनेक ग्रंथो का सार भाग सग्रह किया गया है। पृष्ठ संख्या २१८ मू ३ ५०

यूनानी चिकित्सा सार—इसमे यूनानी मत से सब रोगों का निदान व चिकित्सादि दी गई है। वैद्यराज दलजीतसिंह जी ने यह ग्रन्थ वैद्यो के लिये हिन्दी भाषा मे लिखा है जिसमें यूनानी चिकित्सा पद्धति का सभी कुछ दे दिया है। यह ग्रन्थ अनेक अरबी, फारसी ग्रन्थो का साररूप है। छपाई सुन्दर है। मूल्य ४.५०

यूनानी चिकित्सा विधि—इससे लेखक श्री मंसाराम जी शुक्ल हकीम वाइस प्रिन्सिपल यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली हैं इसमें दिल्ली के प्रसिद्ध यूनानी खानदानी हकीमो के अनुभूत प्रयोगों का निचोड़ है जिसके कारण, यूनानी हकीमो की चिकित्सा दिल्ली मे खूब चमकी और आज तक नाम है। कपडे की पक्की जिल्द मू० ५.००

यूनानी चिकित्सा सागर—श्री मंसाराम जी शुक्ल द्वारा लिखा हुआ हिन्दी भाषा मे यूनानी का विशाल ग्रन्थ है जो 'रसतन्त्रसार' के ढङ्ग पर लिखा गया है। इसमें पुराने व आधुनिक सभी हकीमो के १००० अनुभूत प्रयोग हैं। औषधियो के नाम हिन्दी में अनुवाद करके दिये गये हैं। जिनके नाम नही मिले हैं ऐसी २५० औषधियो का वर्णन परिशिष्ट मे दिया है। ५१६ पृष्ठ। मू० १०.००

यूनानी चिकित्सा विज्ञान—यूनानी चिकित्सा-विज्ञान का हिन्दी में अनुपम ग्रन्थ। इस पुस्तक के दो भाग किए गये हैं। प्रस्तुत भाग मे यूनानी चिकित्सा और निदान के मूलभूत सिद्धान्तो का विशद विवेचन है। इसमे रोग के लक्षण, निदान, भेद तथा परीक्षा की सामान्य विधियाँ है। ६६६ पृष्ठों के इस ग्रंथ का मूल्य ८.४०

यूनानी सिद्ध योग सग्रह—यह यूनानी सिद्ध योगों का संग्रह है। सभी योग सफल परीक्षित और सहज में बनने वाले है, हरेक वैद्य के काम की चीज है। इसके संग्रहकार है वैद्यराज दलजीतसिंह जी आयु. वृहस्पति। मू० २.५०

यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धान्त—(कुल्लियात) श्री बाबू दलजीतसिंह जी व उनके भाई रामसुशीलसिंह जी ने इस छोटे से ग्रन्थ मे इस बात कोदिखाने का प्रयत्न किया है कि आयुर्वेद और यूनानी-चिकित्सा-पद्धतियो में कितना साहश्य तथा कितना असादृश्य है। इसका निर्माण दानो का समन्वय हो सकता है इस आधार पर किया गया है। मू १.२५

मखजनउल मुफरदात (निघण्टु विज्ञान)—लेखक प० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा। मू २.००

करावादीन सिफाई—यूनानी प्रयोग सग्रह—लेखक पं. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा मू--२ ००

करावादीन कादरी—लेखक जगन्नाथ प्रसाद हैड मुदर्रिस। चार भाग मू ८ ००

यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान—हकीम डा. दलजीतसिंह ने पूर्वार्ध मे द्रव्य गुण कर्म आदि का विवेचन किया है। उत्तरार्ध मे ५३० यूनानी द्रव्यो के पर्याय, उत्पत्तिस्थान, वर्णन, रासायनिक संगठन, प्रकृति और गुण का पूर्ण विवेचन दिया गया है। मू २२.००

यूनानी शब्दकोष—यूनानी दवाओ के हिन्दी पर्याय इसमे मिलेंगे। इससे दवा लेने में बड़ी सहूलियत होगी। मू. ०.३७

सरल सिद्ध प्रयोगों की पुस्तकें

अनुभूत योग प्रकाश—ले. डा० गणपतिसिंह वर्मा। प्राय. सभी रोगो पर आपको सरल सफल प्रयोग इस पुस्तक मे मिलेगे। मू. ६ २५

अनुभूति—ले डाक्टर नरेन्द्रसिंह नेगी इसमे भिन्न-भिन्न रोगो पर अनुभूत योगो का वर्णन है। मू. २ २५

पैसे पैसे के चुटकुले—सस्ते तथा सफल प्रयोगो का सग्रह मू ३ ००

महात्मा जी के १२५१ नुस्खे—इस पुस्तक मे जनता के लाभार्थ महात्मा जी ने अपने स्वानुभूत प्रयोगो द्वारा सागर में सागर भर दिया है। सजिल्द मूल्य ३.००

सिद्ध मृत्युञ्जय योग—इस पुस्तक मे ५३ सफल प्रयोगो का वर्णन है। प्रयोग, मात्रा, सेवन-विधि, गुण आदि देकर यह स्पष्ट लिख दिया है कि प्रयोग किस प्रकार प्राप्त हुआ तथा कहां सफलता के साथ व्यवहृत हुआ है। मू १ ००

औषध स्वावलम्बन—ले वि० विद्यानारायण शास्त्री तुलसी, पान, आर्द्रक आदि सुगमता से प्राप्य औषधियो का प्रारम्भ मे सक्षिप्त वर्णन देते हुए बाद में यह समझाया गया है कि वह औषधि किन-किन रोगो पर किस प्रकार कार्य कर सकती है। मू २.००

सिद्ध योग (दो भाग)—प विश्वेश्वर दयाल वैद्यराज। इस पुस्तक मे अनेक सिद्ध योगो का रोगानुसार

वर्गीकरण करते हुए संग्रह किया है । मूल्य प्रथम भाग १.००, द्वितीय भाग ०.५०

वैद्य जीवनम्-श्री लोलम्वराज कृत संस्कृत मे प्रयोगों का संग्रह है। सरल हिन्दी टीका की गई है। टीकाकार पं० किशोरीदत्त शास्त्री मूल्य ०.७५, पं. कालीचरण पाडेय एम. ए कृत १ २५, केशवदास जी १.००

वैद्य बाबा का बस्ता—जैसा कि नाम से प्रगट है, श्री बंसरीलाल जी साहनी द्वारा रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए लगभग ६५० प्रयोगो का संग्रह है। पुस्तक का आकार डायरी के समान है। सजिल्द १.२५

नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह–नित्य उपयोग मे आने वाले १३१ चूर्णों का संग्रह विभिन्न ग्रन्थो से किया गया है। उसके बनाने की विधि, मात्रा, अनुपान एव गुणों का वर्णन किया है। मू. १.२५

नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह–क्वाथ चिकित्सा, आयुर्वेद की प्राचीन, अल्प व्यय साध्य एव आशुफलप्रद चिकित्सा है। इस पुस्तक में १६ क्वाथों का संग्रह प्रकाशित किया गया है । मू १.२५

नित्योपयोगी गुटिका संग्रह–३२३ बूटियो (गुटिकाओं) का उपयोगी संग्रह । मू० २.००

अनुभूतयोग चिन्तामणि–डाक्टर गणपतिसिंह वर्मा राजवैद्य । वर्गानुसार रोगों का वर्णन कर तत्पश्चात् उपयोगो नुस्खे दिए गए है जो कि सस्ते, सरल एवं आशुफलप्रद हैं। अल्प काल मे पाच संस्करण हो जाना ही इसकी उत्तमता का प्रमाण है । मूल्य प्रथम भाग ४ २५, द्वितीय भाग ४ ००

सिद्ध भैषज्य संग्रह—चूर्ण, वटी, तैल अवलेह आदि वर्गानुसार अनेक सिद्ध औषधियों का विवेचन किया गया है । अन्त मे ज्वर, अतिसार आदि रोगो पर प्रयुक्त को जाने वाली औषधियो की सूची विस्तृत रूप से दी गई है । सजिल्द मू. ८.००

देहाती अनुभूत योग संग्रह–(दो भाग) अनुवादक अमोलकचन्द शुक्ल–देहाती वस्तुओं से उत्तमोत्तम प्रयोगो को बनाने की विधियां वर्णन की गई हैं। दोनों भागो को मिलाकर लगभग ९५० प्रयोग दिये हैं। सजिल्द मूल्य प्रथम भाग ६.००, द्वितीय भाग ७.००

डाक्टरी नुस्खे–डाक्टर राधावल्लभ पाठक–अनेक अचूक डाक्टरी नुस्खो का संग्रह सजिल्द मूल्य ५ ०० ।

अनुभूत योग चर्चा—लेखक बसरीलाल साहनी–प्रथम भाग मे २०७ प्रयोगों तथा द्वितीय भाग में ४३३ प्रयोगो का संग्रह है । इस पुस्तक मे अति सरल प्रयोग वर्णित हैं। मूल्य प्रथम भाग २.५०, द्वितीय भाग ३ ५०

अनुभूत योग—दो भाग में लगभग १५० प्रयोगो की निर्माण विधि, मात्रा, अनुपान एव उनके गुणो का विस्तृत विवेचन किया है । मूल्य प्रत्येक भाग का १.००

सिद्धयोग संग्रह–आयुर्वेद मार्तण्ड श्री यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य के द्वारा अनुभूत सफल प्रयोगों का संग्रह । हर चिकित्सक के लिये उपयोगी पुस्तक है। इसके सभी प्रयोग पूर्ण परीक्षित और सद्य लाभदायक है ।

रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह–संशोधित अष्टम संस्करण । इस ग्रन्थ मे रस-रसायन, गुटिका, आसव, अरिष्ट, पाक, अवलेह, लेप-सेंक, मलहम, अजनादि सभी प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियो के सहस्रशः अनुभूत एव शास्त्रीय प्रयोग तथा विस्तृत गुणधर्म विवेचन हैं। प्रथमभाग ९.०० सजिल्द १२.००, द्वितीय भाग ६ ०० सजिल्द ७.५०

एलोपैथिक नुस्खा	२ ००
होमियोपैथिक नुस्खा	१ २५

होमियो बायोकैमिक पुस्तकें

आर्गेनन—यह होमियोपैथी की मूल पुस्तक है जिसमे इस पैथी के मूल प्रवर्तक महात्मा सैमुएल हैनिमैन के २९१ सूत्र हैं । इस पुस्तक मे इन्ही पर डा० सुरेशप्रसाद शर्मा ने व्याख्या इतनी सुन्दर और सरल की है कि हिन्दी जानने वाले इन सूत्रों वा मन्तव्य भलीभांति समझ सकते हैं। विना इस पुस्तक के होम्योपैथी को जानना दुराशा मात्र है ३८८ पृष्ठ सजिल्द मू ४ ००

इन्जेक्शन चिकित्सा होमियो–लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा इसमें होम्योपैथी इन्जेक्शनो का वर्णन है साथ ही होमियोपैथी औषधियो से इन्जेक्शन बनाना आदि भलीभाति बताया है १ ७५

ज्वर चिकित्सा–उत्तर प्रदेशीय सरकार मे पुरस्कार प्राप्त इसमे सभी प्रकार के ज्वरो की एलोपैथिक, आयुर्वेदिक एवं यूनानी मत से चिकित्सा वर्णित है। मू २ ००

पशु चिकित्सा होमियो--यह आयुर्वेदिक तथा होम्यो-पैथिक दोनो से सम्बधित पशु-चिकित्सा पर बहुत उपयोगी साहित्य है मू० २.१२

प्रिंस मेटेरिया मेडिका (कम्परेटिव)-डा० सुरेशप्रसाद शर्मा प्रिंस होम्योपैथिक कालेज के प्रिंसिपल द्वारा प्रणीत यह होम्योपैथिक मेटेरिया मेडिका है। औरो से इसमें बहुत कुछ विशेषता है। थेराप्युटिक ही नही इसमे फार्माकोपिया भी सम्मिलित की गई है। प्रत्येक औषधियो के मूलद्रव्य, प्रस्तुत विधि, वृद्धि, उपशय, प्रमुख एव साधारण लक्षणो आदि सभी विषयो का वर्णन किया गया है। १३७२ पृष्ठों का मूल्य केवल ६.००

किंगहोमियो मिक्श्चर्स--श्री शंकरलाल गुप्ता। यह पुस्तक होमियोपैथिक डाक्टरो के दैनिक व्यवहार के लिए अत्युपयोगी है। मूल्य २ ५०

किंगहोमियो मिक्श्चर्स एवं पेटेन्ट मेडीसन गाइड--श्री डा० शकरलाल गुप्ता। इसमें होमियोपैथिक दृष्टि से रोग का परिचय, कारण, लक्षण, रोग की चिकित्सा आदि पर उत्तम प्रकाश डाला गया है। मू० ७.५०

होमियो मेटेरिया मेडिका (रेपर्टरी सहित)--डा० विलयम वोरिक-अब तक यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में थी जिसका यह सरल हिन्दी भाषा मे अनुवाद है। मेटेरिया मेडिका अध्याय के बाद रेपर्टरी अध्याय लिखा गया है। लगभग १८०० पृष्ठ मूल्य १५.००

होमियोपैथिक लेडी डाक्टर (छठा संस्करण)--इस पुस्तक मे स्त्री रोगो की सरल होमियोपैथिक चिकित्सा दी गई है। पाच सस्करण शीघ्र ही समाप्त हो जाना इस पुस्तक की उपादेयता का द्योतक है। मूल्य १.६२

होमियोपैथिक नुस्खा--डा० श्यामसुन्दर शर्मा-इस पुस्तक मे अनेक उपयोगी होमियोपैथी नुस्खे दिये है। मू १ २५

भैषज्यसार--होम्योपैथी की पाकेट गुटिका। सभी रोगो मे दवाओ के प्रयोग व मात्राये दी हैं। मूल्य २.००

भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेन्ट मेडिसन--डा० सुरेशप्रसाद ने इस पुस्तक मे उन औषधियो को लिया है जो भारतीय औषधियो से तैयार होती हैं। साथ ही सार मे कुछ होम्योपैथिक पेटेन्ट औषधियो को वह किस रोग मे दी जाती हैं, दिया है। मूल्य १ ५०

रिलेशन शिप--नित्य व्यावहारिक औषधियो का सहायक अनुसरणीय प्रतिषेधक तथा विपरीत औषधियो का संग्रह किया गया है। मू० २.००

सरल होमियो चिकित्सा--इसमे सभी स्त्री पुरुष के स्वास्थ्य नियमो को बताया है तथा उनसे विपरीत होने वाले सभी रोगों की होमियोपैथी चिकित्सा दी गई है। रोग वर्णन तथा चिकित्सा दोनो ही अत्यन्त सरल और समझाकर लिखे गये है। मू० ४.५०

रोग निदान चिकित्सा--इस छोटी पुस्तक मे १०० पृष्ठों मे रोगी की परीक्षा विधि व ५० पृष्ठो मे होमियो-पैथी एव आयुर्वेदिक चिकित्सा है। मूल्य २. ०

स्त्री रोग चिकित्सा--डा० सुरेशप्रसाद शर्मा लिखित स्त्री-जननेन्द्रिय के समस्त रोग, गर्भाधान, प्रसव के रोग तथा स्त्रियो को होने वाले अन्य सभी रोगो का निदान व चिकित्सा दी है। मू० ४ ५०

होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका--जिन्हे मोटे-मोटे ग्रथ पढ़ने का समय नही है उनके लिए यह मेटेरिया मेडिका बहुत उपयुक्त है। सजिल्द ४ ० पृष्ठ मूल्य ३.७५

होमियो मेटेरिया मेडिका--डा० श्योसहाय भार्गव द्वारा रचित। सभी आवश्यक विषय है कोई छूटने नही पाया है। ५६१ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य ५.००

होमियो चिकित्सा विज्ञान--(Practice of medicines)--ले० डा० श्यामसुन्दर शर्मा। प्रत्येक रोग का खण्ड खण्ड रूप मे परिचय, कारण, शारीरिक विकृति, उपद्रव, परिणाम और आनुषङ्गिक चिकित्सा के साथ आरोग्य चिकित्सा का वर्णन है। सजिल्द मूल्य ३.५०

बारह तन्त औषधियां--इसमे प्रारम्भ मे १२ मूल औषधियो के विषय मे लगभग १८० पृष्ठो मे पर्याप्त जान-कारी प्रदान करने के पश्चात् रोगानुसार बायोकैमिक चिकित्सा विस्तार से दी है। छठो संस्करण मू० ७००

होमियोपैथिक संग्रह-प्रथम भाग--इसमे पूर्ण होमियो-पैथिक विधान (Organon), मैटेरिया मैडिका, रेपर्टरी तथा नुस्खे दिये गये है। मू० १०.००

होमियोपैथिक संग्रह-दूसरा भाग--इसमे मैटेरिया मैडिका का होम्यो विस्तारपूर्वक दिया गया है। औषधियो के प्रचलित नाम, मदर टिंक्चर तथा डाइलूशन बनाने की विधि, औषधि चिन्ह, कच्चेरूप मे इसका प्रयोग, होम्योपैथिक प्रविङ्ग तथा औषधियो के सम्बन्ध दिये हैं। मू० १५.००

कालरा या हैजा--इस महाव्याधि पर सुन्दर सामग्री प्रस्तुत है। प्रत्येक अवस्था पर औषधियो का सग्रह मू० ३ ००

बायोकैमिक चिकित्सा--बायोकैमिक चिकित्सा सिद्धांत

के सम्बन्ध में आवश्यक बातें तथा बारहों औषधियों के वृहद् मुख्य लक्षण और किन-किन रोगों मे उनका व्यवहार होता है, सरल ढंग से समझाया है। पृष्ठ ४३६ मू. ४.००

बायोकैमिक रहस्य--(नवम् संस्करण) बायोकैमिक क्या है ? इस विषय पर पुस्तक सभी आवश्यक अङ्गो की जानकारी देती है तथा बारहो दवाओ का भिन्न भिन्न रोगों पर सफल वर्णन किया गया है। सजिल्द मू० ३.००, कैलाशभूषण लिखित १.५०

बायोकैमिक मिक्चर—बारहो क्षारो का विभिन्न रोगों मे मिक्श्चर रूप व्यवहार करना यह पुस्तक बताती है। मूल्य ०.७५

होमियो पारिवारिक चिकित्सा—लेखक डा० सुरेश प्रसाद शर्मा। प्रत्येक रोग के लक्षण एव उनकी होमियोपैथिक चिकित्सा विस्तृत रूप से दी गई है। आधुनिक वैज्ञानिक विवेचन भी साथ मे दिया गया है। पृष्ठ लगभग १६००। मूल्य ६.००

होमियोपैथिक नुस्खा	डा० श्याम सुन्दर शर्मा	१.२५
घाव की चिकित्सा	श्यामसुन्दर शर्मा	१.००
निमोनिया चिकित्सा	डा० बी. एन. टंडन	०.७५
,, ,,	डा० सुरेशप्रसाद	०.७५
होमियो थाइसिस चिकित्सा	,,	०.७५
होमियोटाइफाइड चिकित्सा	डा० सुरेशप्रसाद	०.७५
होमियो पाकेट गाइड	,, ,,	१.००
ग्रह चिकित्सा	,, ,,	२.२५
,,	डा० बी. एन. टंडन	१.५०
सरल होमियो पारिवारिक चिकित्सा	डा० श्योसहाय भार्गव	५.००
होमियो फार्माकोपिया	डा० बी. एन. टंडन	२.००

प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकें

रोगो की सरल चिकित्सा (तीसरा परिवर्तित सस्करण) लेखक श्री विट्ठलदास मोदी। १०,००० से अधिक रोगियों पर किये गये अनुभव के आधार पर लिखी गई हिन्दी की यह प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तक है, अब तक इसकी पन्द्रह हजार प्रतियां बिक चुकी हैं। पृष्ठ सख्या ३५०, बढ़िया पक्की जिल्द मूल्य ४.००

बच्चों का स्वास्थ्य और उनके रोग—बच्चो के पालन-पोषण की विधि के साथ साथ उनके रोगी होने पर उन्हे रोगमुक्त करने की विधि इस पुस्तक मे विस्तार से दी गई है। मूल्य केवल ३.००

रोगों की नई चिकित्सा—लेखक लूईकूने। यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा का बहुत पहले आविर्भाव हो चुका था पर हिन्दुस्थान मे प्राकृतिक चिकित्सा कूने की पुस्तक 'न्यू साइन्स आफ हीलिंग' के साथ ही आई। कूने की इस पुस्तक का ही 'रोगी की नई चिकित्सा' भावात्मक अनुवाद है। पृष्ठ २६०, बढ़िया छपाई मूल्य २.००

प्राकृतिक जीवन की ओर—मिट्टी, पानी, धूप, हवा और भोजन की सहायता से नये पुराने सब रोगो को दूर करने वाली दवा स्वास्थ्य बढिया बनाने की विधि सिखाने वाली जर्मन पुस्तिका का अनुवाद मूल्य २.५०

जीने की कला—यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढायेगी, चिन्ताओ से मुक्त करेगी तथा आपके सामने वे सारे रहस्य खोलकर रख देगी जिसके कारण मनुष्य स्वस्थ बनता है। मूल्य १.२५

स्वास्थ्य कैसे पाया ?—इस पुस्तक में स्वास्थ्य को उन्नत बनाने और लोगों की रोगों से मुक्ति पाने की आत्म-कथाये पढ़ स्वस्थ रहने का सही तरीका जान। मूल्य १.५०

उपवास के लाभ—उपवास की महिमा, उपवास करने की विधि और रोगो के निवारण मे उपवास का स्थान बताने वाली पुस्तक मू. १.५०

उठो ?—इस पुस्तक को पढे और दु.ख, परेशानी और मुसीबतो से छुटकारा पाकर जीवन सरल बनायें मूल्य १.००

आदर्श आहार—भोजन से स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है और भोजन द्वारा रोग का निवारण कैसे किया जा सकता है बताने वाला एक ज्ञानकोष मू. १.००

आहार चिकित्सा—आहार द्वारा रोग निवारण की शास्त्रीय विधि इस पुस्तक मे सरल भाषा मे समझाई है। इसके लेखक श्री विट्ठलदास मोदी है। मू. १.५०

सर्दी जुकाम खांसी—इन रोगो के कारण, उनको दूर करने की सरल घरेलू विधि और उनसे बचने का रास्ता बताने वाली एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक। मूल्य ०.७५

योगासन—लेखक आत्मानन्द। योगासन हिन्दुस्तान के ऋषियो द्वारा सपादित प्राचीनतम प्रणाली है। योगासन की विधियां और योगासनों द्वारा रोग-निवारण की कला की जानकारी प्राप्त कीजिये। मू. केवल २.००

दुग्धकल्प—दूध में क्या गुण हैं ? इससे इलाज

किस प्रकार कया जाता है? दूध से बनी विभिन्न वस्तुओं का हमारे स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है आदि वर्णन इस पुस्तक मे पढ़िये। मू० ४००

स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां (चतुर्थ संस्करण) शाक तरकारिया जो हम रोजाना खाते है इनका मनुष्य के स्वास्थ्य और सौन्दर्य से क्या सम्बन्ध है, कौन-कौन सी शाक-तरकारिया कब और कैसे खानी चाहिए आदि सभी बाते इस छोटी सी पुस्तक मे हैं। मू० २.००

स्वास्थ्य और जल चिकित्सा (छठा संस्करण)-लेखक केदारनाथ गुप्ता एम० ए०। इसमे जल-चिकित्सा के सारे सिद्धान्तो का बडी सरल भाषा मे प्रतिपादन किया गया है। पानी के द्वारा समस्त रोगो की चिकित्सा कैसे करें? यह इस पुस्तक मे पढिए। मू० २.००

दैनन्दिनी रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा—लेखक कुलरजन मुखर्जी। इस पुस्तक मे ज्वर, प्रतिश्याय, अतिसार, प्रवाहिका, फोड़ा, फुन्सी, घाव, सिर-दर्द, हैजा, चेचक आदि रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा दी गई है। मू० ४.०० मात्र

पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा—लेखक डा० कुलरंजन मुखर्जी। इस पुस्तक मे अजीर्ण, सग्रहणी, श्वास, यक्ष्मा, कैंसर, मधुमेह, दाद, उन्माद, रक्तचाप, अश्मरी, नपुंसकता, अण्डवृद्धि आदि सभी जीर्ण रोगो की प्राकृतिक-चिकित्सा दी गई है। ४.००

प्राकृतिक शिशु-चिकित्सा—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा। शिशुओ के विभिन्न रोग किस कारण से होते हैं? तथा उनका नाम-मात्र व्यय मे किस प्रकार उपचार किया जाय? बच्चो को निरोग रखने के उपाय एवं विविध प्रकार के स्नान इस पुस्तक मे है। मू० २००

देहाती प्राकृतिक-चिकित्सा—इस पुस्तक मे नेत्र, कर्ण, नासिका, दन्तरोग, मुख तथा कंठरोग, श्वास, कास अजीर्ण, विशूचिका, प्रवाहिका, अतिसार, संगहणी, वृक्कशूल, मूत्रावरोध, दाद, श्वित्र, नपुंसकता आदि रोगो के उपयोगी प्रयोग दिए गए हैं। मूल्य सजिल्द ५००

आरोग्य साधन—महात्मा गांधी द्वारा गुजराती भाषा मे लिखित पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। आरोग्य का सच्चा अर्थ बताने वाली ऐसी दूसरी पुस्तक शायद ही मिले। मू० केवल ०.८७

आकृति निदान—आकृति निदान का मूल रूप जर्मनी भाषा की एक पुस्तक है जिसका कि अनुवाद किया गया है। अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। अन्त मे ५२ फोटो चित्रों द्वारा विभिन्न—आकृतियो का ज्ञान कराया गया है। बादीपन का इलाज बहुत विस्तृत रूप से दिया गया है। सजिल्द मूल्य २.५०

जल चिकित्सा—श्री राखालचन्द्र चट्टोपाध्याय बी० एल०। अनुवादक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा। इस पुस्तक के तीन भाग हैं। तृतीय भाग मे सब तरह के स्त्री-रोगों का ज्ञान दिया गया है। मू०प्रथम भाग व द्वितीय भाग समाप्त, तृतीय भाग १.५०

तदुरुस्त कैसे रहे?—बर्नर मकफैडन—इसमें अनेकों चित्र देते हुए व्यायामो का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है।—मूल्य ३ रुपया

स्वास्थ्य-साधन	श्री रामदास गौड़ सजिल्द	४.००
दमा-श्वासखासी का इलाज	डा युगलकिशोर चौधरी	०.५०
नवीन चिकित्सा-पद्धति	,, ,,	१.२५
सूर्योदय	,, ,,	१.००
व्यायाम काया कल्प	,, ,,	२.००
चिकित्सा -सागर	,, ,,	० ७०
मै निरोग हूँ या रोगी	, ,,	०.६२
कपड़ा और तन्दुरुस्ती	,, ,,	०.५६
घरेलू कुदरती इलाज	केदारनाथ गुप्ता	१.००
जल-चिकित्सा (पानी का इलाज)	डा० युगलकिशोर चौधरी	१.००
दुग्धकल्प व दुग्ध-चिकित्सा	डा. युगलकिशोर चौधरी	१.२५
नेत्र-रक्षा व नेत्र-रोगो की प्राकृतिक-चिकित्सा	,, ,,	०.७५
प्राकृतिक-चिकित्सा पथप्रदर्शक	,, ,,	०.३७
,, ,, प्रश्नोत्तरी	,, ,,	०.५०
, ,, सागर	,, ,,	०.७५
प्राकृतिक-चिकित्सा	पं० चन्द्रशेखर	१.००
बच्चो का पालन और चिकित्सा	युगलकिशोर चौधरी	०.७५
मलेरिया मोतीझरा न्यूमोनिया	,, ,,	० ७५
भिन्न-भिन्न रोगो की प्राकृतिक-चिकित्सा	,,	०.५०
स्त्री–रोग चिकित्सा	,, ,,	०.७५
सूर्य रश्मि चिकित्सा	वैद्य बाकेलाल गुप्ता	०.७५

चिकित्सोपयोगी नवीन उपकरण

एक सफल चिकित्सक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह रोगी का सही निदान करे तथा उसकी चिकित्सा में औषधि-प्रयोग के साथ आधुनिकतम यन्त्र-शस्त्रों का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार करे। इन आधुनिक यन्त्र शस्त्रो के प्रयोग से आपको तो अपनी चिकित्सा में सफलता मिलती ही है साथ ही रोगी पर भी आपके प्रति बहुत अनुकूल प्रभाव पडता है। हमने अपने स्टोर्स मे नवीन-नवीन यंत्रशस्त्रो का विक्रयार्थं विशाल संग्रह किया है। चिकित्सको को चाहिए कि वे आवश्यकता-नुसार इन वस्तुओ को मंगाकर रखे तथा अपने चिकित्सा-कार्य मे सफलता एवं यश प्राप्त करे।

डाइग्नोस्टिक सैट—इस सैट द्वारा नाक, कान तथा गले को अन्दर से देखते है। इसमें एक टार्च होती है जिसमे २ सैल डाले जाते है। उस टार्च के ऊपर कान देखने का आला, नासिका प्रेक्षण यन्त्र तथा गले व जबान देखने की जीभी तीनों मे से कोई सा एक फिट हो जाता है। इसमे प्रकाश की व्यवस्था होने से बहुत सुविधा रहती है। साथ ही रोगी पर प्रभाव भी पड़ता है। इसका प्रत्येक चिकित्सक के पास होना अत्यन्त आवश्यक है। सैल सहित पूरे सैट का मूल्य केवल ३६.००

चिपकने वाली पट्टी (Adhesive Plaster)—पीठ, पेट, छाती या किसी अन्य ऐसे स्थान पर घाव हो जहां पर पट्टी बांधने मे असुविधा हो तो आप इसका प्रयोग करें। यह उसी स्थान पर काट कर चिपका दी जाती है। मूल्य (१ इंच × ५ गज) २.००

आमाशय प्रक्षालिनी नलिका (stomach wash tube)—यह प्रत्येक चिकित्सक के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। किसी विष के खा लेने पर तुरन्त ही प्रक्षालन की आवश्यकता होती है जो कि इसी नलिका की सहायता से किया जाता है। मूल्य--७.००

नमक का पानी चढ़ाने का यन्त्र (saline apparatus)—हैजा मे नमक का पानी चढ़ाना चिकित्सक के लिए अत्यन्त आवश्यक है जो कि इसी यन्त्र की सहायता से चढ़ाया जाता है। मूल्य १२.५०

आंख धोने का ग्लास—किसी वस्तु का कण या उडता हुआ कोई छोटा सा कीड़ा आंख मे पड जाने पर निकलना कठिन हो जाता है और वह बड़ा कष्ट देता है। इस ग्लास मे जल भरकर आंख मे लगा देने पर आसानी से निकल जाता है। मूल्य १.००

शर्करामापक यन्त्र----मधुमेह रोग मे चिकित्सक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे मूत्र मे जाने वाली शर्करा की प्रतिशत मात्रा ज्ञात हो। बिना प्रतिशत मात्रा ज्ञात हुए अनुमान द्वारा Insulline का प्रयोग कभी-कभी रोगी को घातक सिद्ध होता है। रोगी स्वास्थ्य लाभ कर रहा है या नहीं यह भी आप इसी यन्त्र द्वारा निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं। मूल्य केवल ५.००

रक्तचापमापक यंत्र—अनेक रोगो मे रोगी का रक्तचाप (Blocd pressure) जानना आवश्यक है। शल्य कर्म के पश्चात् तो इसका प्रयोग रोगी की स्थिति ज्ञात रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार के आधुनिक यन्त्रो का प्रभाव भी रोगी पर बहुत अच्छा

है तथा इससे चिकित्सको को अपनी चिकित्सा मे
म भी रहती है। प्रत्येक वैद्य को यह यन्त्र अवश्य
र रखना चाहिए। मू० १२५.००
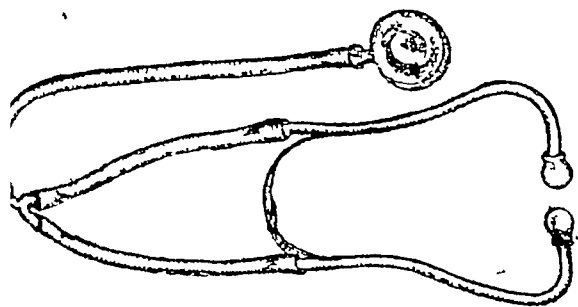
स्टेथिस्कोप (वक्ष परीक्षा यन्त्र)—इस यन्त्र से सुविधा
है। साथ ही आजकल के जमाने में चिकित्सक का
ान भी इसी मे है कि वे इस प्रकार के यन्त्रो को
हार मे लाते हुए रोगियो पर अपनी धाक जमाये।
भारतीय उत्तम १०.००, एक चैस्ट पीस वाला
ानी बढिया सर्वोत्तम ४०.००, केवल चैस्ट पीस
रतीय) ४ ००

स्टेथिस्कोप रखने का थैला—स्टेथिस्कोप की रबड
ली) नमी आदि से गल जाती है। हमने बढ़िया
डे के स्टेथिस्कोप रखने के बहुत सुन्दर बेग बनवाये
। इसमे एक ओर आप स्टेथिस्कोप रख सकते हैं तथा
हर नाम का कार्ड लगाने का स्थान है, हाथ मे लट-
या जा सकता है। दो जेबों का मू० ५ ५०

जिप (जजीर) लगा एक जेब का चमड़े का
ाधारण (इसमे नाम का कार्ड नहीं लगाया जा सकता
, एक जेब है) मूल्य ४ ५०

मोतीझला देखने का शीशा-मोतीझला (Typhoid)
के दाने बहुत सूक्ष्म होने के कारण देखने मे नही आते इस-
लिए कभी-कभी निदान करने मे बड़ी भूल हो जाती है,
इस शीशा के द्वारा वे दाने बड़े-बड़े दीख पड़ते है तथा
आसानी से पहिचान सकते हैं। प्लास्टिक का हैंडिल छोटा
[illegible] २.५०, बढ़िया बडा ३.००; धातु का हैंडिल सर्वोत्तम
[illegible], बड़ा ५ ५०

मरहम मिलाने की छुरी—स्पेचुला (Spetula)
[illegible] का हैंडिल मूल्य १ २५, धातु का हैंडिल १.७५

मरहम मिलाने की प्लेट (चीनी की)—साइज ४×४
[illegible] १.००, [illegible] १ २५, ८×८ इच ३ ५०८०

संतति निरोध (Birth control) के लिए —पुरुषों
को फ्रैंच लैदर साधारण ० ५० (१ दर्जन ५ ००),
बढिया ०.७५ (१ दर्जन ७ ५०), क्रोकोडायल फ्रैंच-
लैदर सर्वोत्तम-एक ओर चिकना तथा दूसरी ओर खुर-
दरा १.०० (१ दर्जन १०.००)

स्त्रियो को चैकपैसरी—जापानी ०.८७ (१ दर्जन
८.५०), डाइफ्राम (डच) पैसरी बढिया २.५० (१ दर्जन
२५.००)

नोट—उपर्युक्त कोई भी सामान एक दर्जन से कम
मंगाने पर एक नग का जो मूल्य लिखा है वह ही लगाया
जायगा, दर्जन वाला मूल्य नही। डाइफ्राम (डच)पैसरी
६ नग मंगाने पर १२.५० लगाये जायेंगे।

रिंगपैसरी रबड़ की—१ पैसरी का मूल्य ०.७५,
होज पैसरी (Hodge passery)—मूल्य ०-८७

किडनी ट्रे (Kidney tray)—स्नान धोने के समय
लगाने के लिए ६ इची २ २५, ८ इन्ची २.७५, १०
इन्ची ३.२५, ८ इन्ची नाइलोन की (न टूटने वाली
सुन्दर) ३.२५

सस्पैन्सरी बेन्डेज—यह बढ़े हुए अण्डकोषो को सभा-
लने के काम आती है। यह पेटी (Belt) की भाति कमर
मे कस जाती है तथा एक जाली का बना थैला इस
प्रकार लगा रहता है कि अडकोष उसमे रख जाते है।
लगोट बांधने से अंडकोष लटके नही रहते लेकिन
उन पर कसाव पड़ता है जो कि अवाछनीय है लेकिन
इस बेन्डेज मे ऐसा नही होता है। इलास्टिक लगी हुई
है। मूल्य केवल १ ५०

हीमोग्लोबिन स्केलबुक (Haemoglobin scale
book)—बिना किसी यन्त्र की सहायता के हीमोग्लोबिन
की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करे। मूल्य केवल २ ००

पैन टार्च—यह टार्च जेब मे पेन की तरह लगाई
जाती है। इसमे बहुत पतले दो सैल पडते हैं। चिकि-
त्सको के लिये गले, नाक आदि की परीक्षा करने के लिए
अत्यन्त उपयोगी है। यह टार्च मोटे पैन के बराबर बड़ी
होती है मूल्य दो सैल सहित केवल १०.००

इसी टार्च पर गले, जबान देखने, कान तथा नाक
देखने की कांच की ठोस नली फिट हो जाती हैं जिनसे
इन अङ्गो को आसानी से देखा जा सकता है। कपड़ा मढ़े

एक बक्स में रखे हुये पूरे सैट का मूल्य केवल २४.००
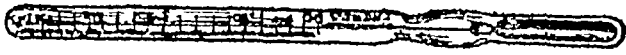
थर्मामीटर(तापमापक यन्त्र)जापानी—२.७५, भारतीय १.७५

थर्मामीटर केस—धातु के निकिल किये क्लिप सहित १.५०

आटोमाइजर (Automizer)—गले मे, नाक कान के अन्दर तक कोई दवा पहुंचानी है तो वह दवा इस यन्त्र मे भरकर पहुचायी जाती है। बहुत से चिकित्सक कागज की बत्ती बनाकर उसमे औषधि को रखकर फूंक मारकर यह कार्य करते हैं। लेकिन इस प्रकार से ठीक प्रकार से औषधि नही पहुंचती, कभी-कभी उल्टी चिकित्सक के मुख मे औषधि पहुंच जाती है और काफी औषधि व्यर्थ जाती है। इस यन्त्र को मंगाने पर आपको ये असुविधायें न रहेगी। एक यन्त्र मगाकर अपने चिकित्सालय में अवश्य रखे। मू. ८.५०

धमनी संदश (Artery Forceps)—शल्य कर्म करते समय रक्तस्राव करती हुई धमनी को इससे पकड़कर रक्तस्राव रोका जाता है। छोटे तथा बड़े प्रत्येक प्रकार के शल्य कर्म मे इसकी आवश्यकता पड़ती है। मूल्य ५ इंची ४.००, ६ इंची ५.००, स्टेनलैस स्टील की ५ इंची ६.२५, ६ इंची ७ ००

सूचिका सदंश(Needle Holder)—शल्य कर्म मे मास तन्तु आदि एवं त्वचा को सीते समय सुई को इसी से पकड़ा जाता है। इसके बिना सीवन कर्म सम्भव नही। मू० ८.००, कैंची की तरह का ४.५०

सूचिका (Needles)—सीवन कर्म के लिये ६ सुई का पैकिट (इंग्लैड की) ४.००

शीशे पर लिखने की पेन्सिल—इस पैंन्सिल से आप शीशा, प्लास्टिक तथा धातु के वर्तन आदि पर लिख सकते हैं। इसका उपयोग स्लाइड पर लिखने के, या अन्य कार्यों में भी किया जाता है। साधारण पैंसिल पेन से आप शीशे आदि पर नही लिख सकते। मूल्य ०.७५

मसूढ़े चीरने का चाकू—सीधा १.३७, फोल्डिंग २.२५

इंजेक्शन सिरिंज

सम्पूर्ण कांच की २ सी.सी की २ ७५, ५ सी सी. की
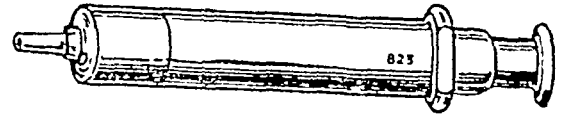
४.००, १० सी.सी. की ६.००, २० सी.सी. की १०.०० ३० सी सी. की १२.००, ५० सी.सी. की २८ ००

ल्यूर लाक—२ सी. सी. की ६.००, ५ सी. सी की ६.००, १० सी. सी. की १२.००।

ल्यूर लाक जापानी—२ सी. सी. की १०.००, ५ सी. सी. की १२.००, १० सी. सी. की १५ ००, २० सी. सी. की २०.००, ३० सी. सी. की २८ ००, ५० सी. सी. की ३२ ००।

रिकार्ड सिरिंज—२ सी. सी. की ११.००, ५ सी. सी. की १५.००।

नाइलोन की—२ सी. सी. की २.७५, ५ सी. सी. की ४.००, १० सी. सी. की ५ ५०

परवाल उखाड़ने की चीमटी (Cilia Forceps)—आंख में परवाल पड़ जाने पर उनका उखाडा जाना आवश्यक है। साधारण चीमटी की पकड़ मे यह बाल (Cilia) नही आते। उपरोक्त चीमटी विशेषतः परवाल उखाड़ने को ही बनाई है। प्रत्येक चिकित्सक को एक चीमटी अपने पास अवश्य रखनी चाहिये। २.५०

इंजेक्शन की सुई (नीडिल)—१ नग ०.७५
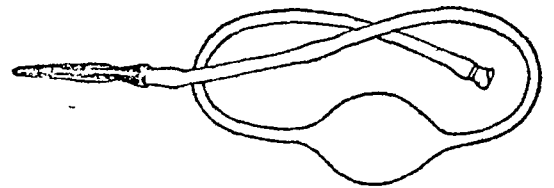
एनीमा सिरिज (वस्ति यंत्र)—इस यन्त्र से जल या औषधि-द्रव्य गुदा मे आसानी से चढाया जा सकता है। मूल्य रबड़ का जर्मनी १४.००, भारतीय उत्तम ५ ००

घाव मे डालने की सलाई(Probe)—आयुर्वेद मे यह एषणी शलाका के नाम से प्रसिद्ध है। घाव की गहराई, उसकी दिशा जानने तथा किसी नाड़ी व्रण मे अन्दर गोज भरने के लिए इसका पास में होना अत्यन्त आवश्यक है। मू. ० ३५

दवा नापने का ग्लास (Meassuring Glass)–कम्पाउन्डर अनुमान से दवा देकर कभी-कभी बड़ा अनर्थ कर डालते हैं। अतएव हर चिकित्सक को इन ग्लासो को अवश्य मगाकर रखवा चाहिए। गलती कभी न होगी। मूल्य २ ड्राम का (बूद नापने के काम आता है) ०.७० १ औंस का ०.६०, २ औंस का १ ००, ४ औंस का १.२५

गरम पानी की थैली—ज्वर, पीड़ा, शोथ या अन्य आवश्यक स्थानों पर इस थैली मे गरम पानी भरकर सुगमता से सिकाई की जा सकती है। मूल्य ५.००

बरफ की थैली–तेज बुखार, प्रलापावस्था, शिर की पीड़ा या अन्य व्याधियो मे चिकित्सक सिरपर बरफ रखवाते हैं। इस थैली में बरफ भरकर रखने से सुविधा रहती है, रोगी को इसकी ठडक पहुँचती है किन्तु उससे वह भीगता नही है। मूल्य २.५०

गले व जबान देखने की जीभी–(Tongue Depressure)–गला देखने के लिए जब रोगी मुंह खोलता है तब जीभ (जिह्वा) का उठाव गले को ढक लेता है और गले मे क्या बाधा है चिकित्सक नही देख पाता। इस यन्त्र से जीभ दबाकर देखने से गला तथा अन्दर की जीभ स्पष्ट दीखती है। मूल्य साधारण सीधी १ २५ फोल्डिङ्ग २.००
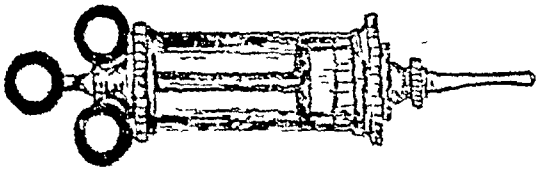
कान धोने की पिचकारी–धातु की १ औंस ६.५०, २ औंस की ७.५०, ४ औंस १०.००

बिश्चूरी–इसका फलक पतला तथा तिरछा होता है। इसके द्वारा भेदन-कार्य किया जाता है। सीधी का मूल्य १ २५, फोल्डिङ्ग २.२५

चीमटी–चीमटी ४ इंची ०.८७ ५ इन्ची १.०० दांतो मे दवा लगाने की चीमटी २ ००

चाकू–चाकू सीधा ५ इन्ची १.२५, फोल्डिङ्ग २ २५

आपरेशन करने का चाकू–इसमे हैंडिल प्रथक होता है तथा काटने वाला ब्लेड प्रथक होता है जो कि खराब होने पर बदला जा सकता है। मूल्य १ ब्लेड सहित ३ ५०, ६ ब्लेडो सहित ५.५०

दांत निकालने का जमूड़ा (Tooth forceps universal)–इससे दात मजबूती से पकड़कर उखाड़ा जा सकता है। मूल्य ६.५०

आख मे दवा डालने की पिचकारी–१ दर्जन ०.४०
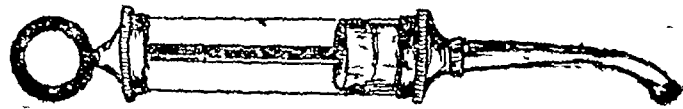
ग्लेसरीन की पिचकारी (प्लास्टिक की)–गुदा मे ग्लेसरीन चढाने के लिये प्लास्टिक की उत्तम क्वालिटी की पिचकारी। मूल्य १ औंस २.५०, २ औंस ४.००
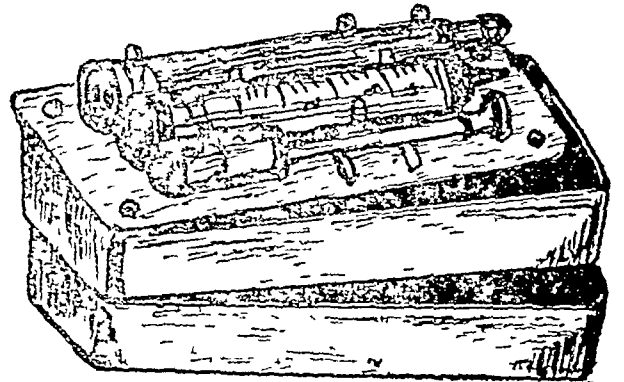
सिरिंज केस निकिल के–सिरिंज सुरक्षित रखने के लिए १ केस २ c. c. की सिरिंज के लिए २.००, ५ c. c की सिरिंज के लिए ३.००, १० c. c. की सिरिंज के लिए ५.००, २० c. c की सिरिंज के लिये १०.०० तथा ३० एवं ५० c. c. की सिरिंज के लिए १५.००
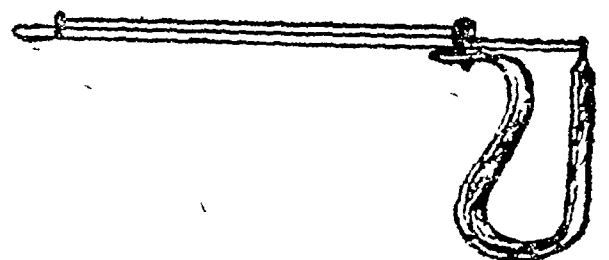
कान मे से दाना निकालने का यन्त्र–कान मे यदि कोई

अनाज का दाना आदि पड़ गया है तो उसे किसी साधारण चीमटी से निकालने का प्रयत्न कदापि न करे नहीं तो वह आगे सरक जायगा। यह यन्त्र दाने आदि को सुगमता से खीचकर लाता है। मूल्य २.००

आमाशय मे दूध चढ़ाने की नली—जब रोगी की अवस्था इस प्रकार की हो कि वह मुंह द्वारा अपना आहार ग्रहण न कर सके यथा बेहोशी मे, पक्षाघात मे, किसी दौरे आदि मे—तो आप इस नली द्वारा दूध या अन्य पोष्य-द्रव्य पदार्थ आमाशय मे पहुँचा सकते हैं। ३.००
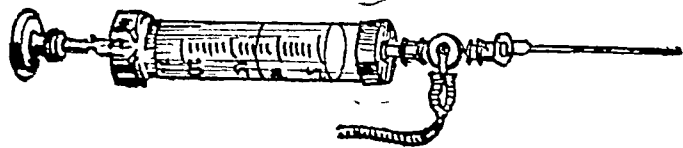
तीन मार्ग वाला यन्त्र (Three way Canula)—किसी रोगी को द्रव पदार्थ अधिक मात्रा मे चढ़ाना है तथा आपके पास सिरिंज उससे छोटी है तो आप इसका प्रयोग करे अथवा जो चिकित्सक बड़ी सिरिंज द्वारा ठीक प्रकार इंजेक्शन नही लगा पाते वे इसका प्रयोग करे। प्रत्येक के लिए आवश्यक यन्त्र है। ऊपर चित्र में यह यन्त्र सिरिंज में लगा हुआ दिखाया है। मू. ८ ००
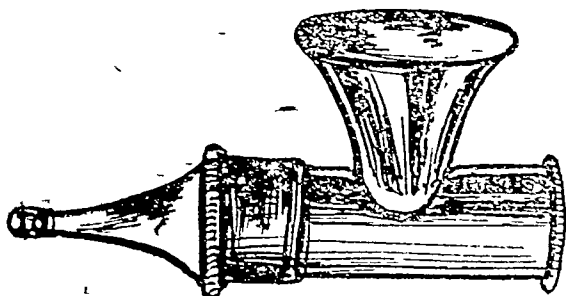
कान देखने का आला—कान मे फुंसी है, सूजन है या किसी अनाज का दाना पड़ गया है और वह फूलकर, कष्ट दे रहा है तो उसे देखना कठिन हो जाता है। इस यन्त्र (आले) से कान के अन्दर का दृश्य स्पष्ट दीख पड़ता है। कपड़े से मढ़े एक सुन्दर लकडी के डिब्बे मे रखा दो अतिरिक्त ईअरपीस सहित। मू. १२ ५०

स्तनो से दूध निकालने का यन्त्र—स्त्री के स्तन मे पकाव या फोड़ा हो जाने पर अथवा नवजात शिशु की मृत्यु हो जाने पर स्तनो मे भरा हुआ दूध बड़ा परेशान करता है। इस यन्त्र द्वारा आसानी से दूध निकाला जाता है। मू. २.२५

टूर्नीकेट—नस का इन्जेक्शन लगाने के लिये आवश्यक मू०. ०.७५
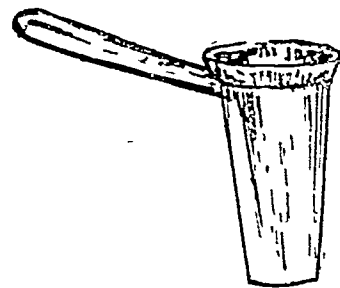
गुदा परीक्षण यन्त्र (proct oscope)—गुदा के अन्दर की परीक्षा करने के लिए यह एक आवश्यक यन्त्र है। अर्श अथवा अन्य गुद-रोगो के शल्य कर्म, क्षार कर्म, अग्निकर्म मे इसका होना अत्यन्त आवश्यक है। इससे गुदा के अन्दर की स्थिति देखी जाती है। मूल्य साधारण १२.५०, टार्च के हैंडिल पर लगे प्रकाश की बहुत उत्तम व्यवस्थायुक्त सैल सहित सुन्दर बक्से मे रखा मू. ७५.००

मूत्र कराने की नली (कैथीटर)—मूल्य रबड़ का ० ७५, स्त्रियोके लिए धातु का १ २५, पुरुषो के लियेधातु का २ ७५

जलोदर में उदर से पानी निकालने का यंत्र-जलोदर रोग मे उदर गह्वर से एव अंडवृद्धि मे अंडकोषो से पानी निकालने के लिये इस यन्त्र का प्रयोग होता है। पानी निकाल देने से रोगी जल्दी स्वास्थ्य लाभ करता है तथा उस पर प्रभाव भी अच्छा पडता है। मू० ३.७५

आंख टैस्ट करने का चार्ट—साधारण तौर से आप इन चार्टो को रोगी से पढवा कर दृष्टि-परीक्षा कर सकते हैं। मूल्य ० ७५ प्रति चार्ट

मलहम लगाने का यन्त्र (Ointment introducer)—अर्श रोगी को गुदा मे मलहम लगाने के लिए उपयोगी। मूल्य २.५०

आपेक्षिक घनत्वमापक यन्त्र (Urinometer)—मूत्र अथवा अन्य द्रव का आपेक्षिक घनत्व इस यन्त्र द्वारा मालूम किया जाता है। मू १ ५०, बड़ा (१००० से २००० तक चिह्न वाला) २.००

रबड के दस्ताने—चीड़-फाड़ करते समय संक्रमण से रोगी को और अपने को बचाने के लिए चिकित्सक इन दस्तानो को हाथ मे पहनते हैं। मू० १ जोड़ी ३.५०

कैंची—५ इंची साधारण २ ००, मुड़ी हुई ४ इंची २.१२,५ इंची २ २५,कैंची एक ओरको मुड़ी हुई ४ इंची २.५०, ५ इंची ३ ००,कैंची,सीधी ४ इंची बढिया २.००

काटे (Scales)–अंग्रेजी वैलैस की तरह की कीमती दवाओं को सही व आसानी से तौलने के लिए व्यवहार मे लाने चाहिए। निकिल पालिश, लकड़ी के बक्स के अन्दर रखे हैं मूल्य बाटो सहित पीतल का निकिल किया १५.००

डूम–इससे फोड़ा आदि धोने मे बड़ी सुविधा रहती है। इससे एनीमा लगाया जाता है। मू० रबड़ की टोटनी आदि से पूर्ण २ पिंट का ५ ००, ४ पिंट का ७.५०, २ पिंट का नाइलौन का सुन्दर पात्र रबड़ टोंटनी सहित७ ५०

स्प्रिट लैम्प---थोड़ी दवा गरम करनी हो अथवा सूखी दवा से इंजेक्शन के लिए दवा तैयार करनी हो तब इस लैम्पकी सहायता लेनी पडती है। मूल्य काच का २ ००,धातु का दो औंस का ३.५०, ४ औंस का ४.००
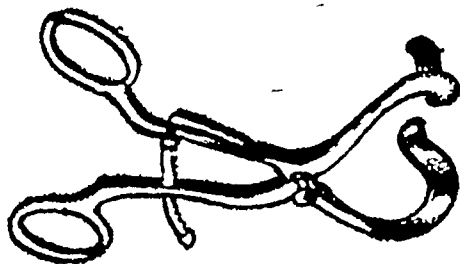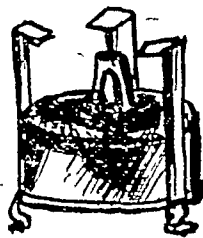
मुख–विस्फारक (Mouth gag)---मुख के अन्दर परोक्षा करते समय या कोई दवा लगाते समय या कोई शल्य कर्म करते समय, किसी विष के खा लेने पर आमाशय प्रक्षालनी-नलिका के प्रयोग मे रोगी के मुख का खुला रहना आवश्यक है जो इसी यन्त्र की सहायता से खुला रखा जाता है। मूल्य १० ००

उन्नामक तैयार करवाया है जो कि प्रत्येक दात के लिए एक यही काम करेगा। मूल्य ६.००

नासिका प्रेक्षण यन्त्र—नाक मे सूजन है, फुन्सी है या किसी और कारण से कष्ट है तो उसे ठीक प्रकार से देखा नही जा सकता। यह यन्त्र नाक मे डालकर चौड़ा दिया जाता है जिससे नाक चौड़ जाती है और फिर आप नाक के अन्दर के सभी अवयव स्पष्टतः देख सकते हैं। मू० ५ ००

अंगुली के रबड के दस्ताने (Finger stalls)--यह अगुली पर चढा लिया जाता है तथा फिर योनि, गुदा आदि अगों की परीक्षा की जाती है। यह सस्ते रहते है। मूल्य ३० न० पैं०, १ दर्जन ३.००

मूत्र पात्र (Urinal pot)–जब रोगी की स्थिति इस प्रकार की होती है कि वह बिस्तर से न उठ सके तो उसे पेशाब बिस्तर पर इसी पात्र मे करना पड़ता है। तामचीनी का मूल्य ६ २५, नाइलोन का बढ़िया७.५०

कपिंग ग्लास—उदरशूल तथा अन्य अनेक रोगो मे इन ग्लासों का प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद-शास्त्र में इनका प्रयोग अलाबू यन्त्र के नाम से किया जाता है। तीन ग्लासो के १ सैट का मूल्य ४ ००

सुरमा लगाने की सलाई---(कांच की) १ दर्जन ३ न० पै०, १ ग्रौस २ ५०

डाक्टर्स इमर्जैंसी बैग–इसमें आवश्यकता के समय चिकित्सक अपना आवश्यक सामान रखकर रोगी की परीक्षार्थ जा सकता है। मूल्य १० इञ्ची सम्पूर्ण चर्म का जिप (जजीर) लगा सुन्दर १५ ००

थूकने का पात्र---जब रोगी

शीघ्र लाभ करने वाली

बिजली की मशीन

(Medico-electric Machine)

इस मशीन की विशेषतायें

- मशीन के व्यवहार मे किसी प्रकार की परेशानी नही, हर कोई बडी सफलता से व्यवहार कर सकता है ।
- इसमे खर्चा नही के बराबर होता है तथा लाभ बहुत अधिक अर्थात् "कम खर्च वाली मशीन"
- अनेक रोगो मे तुरन्त लाभ होने के कारण—
- रोगियों को आकर्षित करने का उत्तम साधन है ।
- मशीन टिकाऊ है, सुन्दर है, प्रभावशाली है, बहुत दिनो तक निर्बाध काम देने वाली है ।
- टार्च मे पड़ने वाले गोल सैल इसमे पडते है जो सर्वत्र मिल जाते हैं ।
- गाव-शहर हर स्थान पर इसे काम मे लिया जा सकता है ।

मूल्य—३५.०० मात्र (सैल नही) । पैकिग-पोस्ट व्यय लगभग ५.००, एव सेलटैक्स पृथक् । बिजली की मशीन डाइनुमायुक्त (इसमे सैलो का कोई खर्चा नही होता) का मूल्य ६०.००, पोस्ट पैकिग व्यय ६ ५० एव सेलटैक्स प्रथक् । मशीन के साथ व्यवहार विधि मुफ्त भेजी जाती है । आर्डर के साथ ५.०० एडवास अवश्य भेजे ।

... ली की मशीन नयी डिजायन में

...निम्न और विशेषतायें है—

...गया है, जिससे उसकी

१४ इन्ची
१५ इन्ची × ९३.०० ७०...
१६ इन्ची × ११३.५० ८२ ५० ६२.५०
१७ इन्ची × १३४.०० ९५.०० ७५.०० ×
...ची × १५७.०० १०५.०० ९०.०० ×
× १८२.५० . २०

...या किसी अनाज क...
...कष्ट दे रहा है तो उसे दे... यन्त्र (आले) से कान के अन्दर का दृश्य स्पष्ट दीख पड़ता है । कपड़े से मढ़े एक सुन्दर लकडी के डिब्बे मे रखा दो अतिरिक्त ईअरपीस सहित । मू. १२ ५०

... उप-योगी । मूल्य २.५०

स्तनों से दूध निकालने का यन्त्र—स्त्री के स्तन मे पकाव या फोड़ा हो जाने पर अथवा नवजात शिशु की मृत्यु हो जाने पर स्तनो मे भरा हुआ दूध बड़ा परेशान करता है । इस यन्त्र द्वारा आसानी से दूध निकाला जाता है । मू. २.२५

टूर्नीकेट—नस का इन्जेक्शन लगाने के लिये आवश्यक मू०. ०.७५

आपेक्षिक घनत्वमापक यन्त्र (Urinometer)—मूत्र अथवा अन्य द्रव का आपेक्षिक घनत्व इस यन्त्र द्वारा मालूम किया जाता है । मू. १.५०, बड़ा (१००० से २००० तक चिह्न वाला) २.००

रबड के दस्ताने—चीड़-फाड़ करते समय संक्रमण से रोगी को और अपने को बचाने के लिए चिकित्सक इन दस्तानो को हाथ में पहनते है । मू० १ जोड़ी ३.५०